अनुसार 'महागणपति'-शब्द भी २८ संख्याका अवबोधक है। कई देवतावाचक शब्द इस प्रकार बने हुए हैं कि शब्दसे बोधित संख्यासे तत्तद्देवताके मन्त्रके अक्षरोंकी संख्या मिल जाती है। यह गम्भीर विषय है, जो गुरु-परम्परासे ही गम्य है।

आज हम चमत्कारोंको देखकर नमस्कार करते हैं, किंतु नमस्कार करनेसे चमत्कार उत्पन्न होता है, यह बात हम भूल गये हैं। चमत्कार ही आध्यात्मिक शक्ति है। यह देवताओंके नमस्कार और पूजनसे ही सिद्ध होता है। अच्छे फलकी प्राप्तिके लिये अच्छे कर्मोंका अनुष्ठान न्याय-संगत है। यह धर्मसम्मत है। बिना अच्छे कर्मके किये फलमात्रकी कामना उचित नहीं। विशेषतः देवता-प्रसादके लिये यथोचित कर्म करना पड़ता है। संसारमें रहते हुए संसार आवश्यक है। देशका गौरव अच्छे कर्म और अच्छे आचरण करनेवालोंपर अवलम्बित है। बड़ी-बड़ी इमारतों और अस्त्र-शस्त्रोंकी अभिवृद्धिसे देशका गौरव नहीं माना जा सकता। सदाचार-सम्पत्ति, सत्कर्मानुष्ठान, सबसे सुहृद्-भाव या भ्रातृ-भाव आदिसे ही देशका गौरव है। गणेश-चतुर्थी जैसे महापर्वपर यदि हम सात्त्विकरूपसे उत्सव मनायें और अपनी भक्ति-श्रद्धाञ्जलि भगवान्‌के अर्पण करें तो देशका आजका दुर्भिक्ष और उसकी अशान्ति दुर्निवार-रूपसे दूर हो जायगी। हम सिद्धिविनायक महागणपतिसे प्रार्थना करते हैं कि वे प्राणिमात्रको सुखी बनायें और उपस्थित अशान्तिको दूर करें तथा मङ्गलमूर्ति भगवान् श्रीगणेश प्रसन्न होकर सभीका कल्याण करें।

श्रीगणेशपूजनसे जीवका कल्याण

(ब्रह्मलीन परमपूज्य जगद्गुरु शंकराचार्य श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज)

भगवान् श्रीगणेश हम सनातनधर्मी हिंदुओंके लिये परम सम्माननीय देवता हैं। वे साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हैं। भगवान् श्रीगणेशको प्रसन्न किये बिना कल्याण सम्भव नहीं। भले ही आपके इष्टदेव भगवान् श्रीविष्णु अथवा भगवान् श्रीशंकर अथवा पराम्बा श्रीदुर्गा हैं, इन सभी देवी-देवताओंकी उपासनाकी निर्विघ्न सम्पन्नताके लिये विघ्न-विनाशक श्रीगणेशका स्मरण आवश्यक है। भगवान् श्रीगणेशकी यह बड़ी अद्भुत विशेषता है कि उनका स्मरण करते ही सब विघ्न-बाधाएँ दूर हो जाती हैं और सब कार्य निर्विघ्न पूर्ण हो जाते हैं। लोक-परलोकमें सर्वत्र सफलता पानेका एकमात्र उपाय है कि कार्य प्रारम्भ करनेसे पहले भगवान् श्रीगणेशका स्मरण-पूजन अवश्य करें। यदि सुख-शान्ति चाहते हो तो भगवान् श्रीगणेशकी शरण लो; तभी कल्याण होगा। (प्रेषक—श्रीरामशरणदासजी)

श्रीगणेशसे प्रार्थना

(श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीश्रीधरस्वामिकृत)

आनन्दरूप करुणाकर विश्वबन्धो संतापचन्द्र भववारिधिभद्रसेतो।
हे विघ्नमृत्युदलनामृतसौख्यसिन्धो श्रीमन् विनायक तवाङ्घ्रियुगं नताः स्मः॥
यस्मिन्न जीवजगदादिकमोहजालं यस्मिन्न जन्ममरणादिभयं समग्रम्।
यस्मिन् सुखैकघनभूम्नि न दुःखमीषत् तद् ब्रह्म मङ्गलपदं तव संश्रयामः॥

आनन्दस्वरूप श्रीमन् विनायक! आप करुणाकी निधि एवं सम्पूर्ण जगत्‌के बन्धु (अकारण हितैषी) हैं, सांसारिक तापका शमन करनेके लिये परमाह्लादक चन्द्रमा हैं, भव-सागरसे पार होनेके लिये कल्याणकारी सेतु हैं तथा विघ्नरूपी मृत्युका नाश करनेके लिये अमृतमय सौख्यके सागर हैं, हम आपके युगल चरणोंमें प्रणाम करते हैं।

जिसमें जीव-जगत् इत्यादि मोहजालका पूर्णतः अभाव है; जहाँ जन्म-मरण आदिका सारा भय सर्वथा है ही नहीं; जिस अद्वितीय आनन्दघन भूमामें किंचिन्मात्र भी दुःख नहीं है, उस ब्रह्मस्वरूप आपके मङ्गलमय चरणकी हम शरण लेते हैं।

गणपति-तत्त्व

(अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

सर्वजगन्नियन्ता पूर्ण परमतत्त्व ही 'गणपति-तत्त्व' है; क्योकि 'गणानां पतिः गणपतिः।' "'गण'-शब्द-समूहका वाचक होता है—गणशब्दः समूहस्य वाचकः परिकीर्तितः ।" समूहोका पालन करनेवाले परमात्माको 'गणपति' कहते हैं। देवादिकोंके पतिको भी 'गणपति' कहते हैं। अथवा 'महत्तत्त्वगणानां पतिः गणपतिः।' अथवा 'निर्गुणसगुणब्रह्मगणानां पतिः गणपतिः'। अथवा "सर्वविध गणोंको सत्ता-स्फूर्ति देनेवाला जो परमात्मा है, वही 'गणपति' है।" अभिप्राय यह कि 'आकाशस्तल्लिङ्गात्' (ब्रह्मसूत्र १ । १ । २२)—इस न्यायसे जिसमें ब्रह्मतत्त्वके गुण जगदुत्पत्ति-स्थिति-लय-लीलत्व, जगन्नियन्तृत्व, सर्वपालकत्वादि पाये जायँ, वही 'ब्रह्म' होता है। जैसे आकाशका जगदुत्पत्तिस्थिति-कारणत्व—'इमानि भूतानि आकाशादेव जायन्ते' (नृसिंहपूर्वतापिनी ३ । ३) इस श्रुतिसे जाना जाता है; इसलिये वह भी आकाशपदवाच्य परमात्मा माना जाता है, वैसे ही 'ॐ नमस्ते गणपतये त्वमेव केवलं कर्तासि, त्वमेव केवलं धर्तासि, त्वमेव केवलं हर्तासि, त्वमेव सर्वं खल्विदं ब्रह्मासि।' इत्यादि 'गणपत्यथर्वशीर्ष' (१) वचनद्वारा 'गणपति'-शब्दसे भी ब्रह्म ही निर्दिष्ट होता है।

अतीन्द्रिय, सूक्ष्मातिसूक्ष्म वस्तुतत्त्वका निर्णय केवल शास्त्रके ही आधारपर किया जा सकता है। जैसे शब्दकी अवगति श्रोत्रसे ही होती है, वैसे ही पूर्ण परमतत्त्वकी अवगति भी शास्त्रसे ही होती है। इसलिये 'तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि' (बृहदारण्यकोपनिषद् ३ । ९ । २६), 'शास्त्रयोनित्वात्।' (ब्रह्मसूत्र १ । १ । ३) इत्यादि वेदमन्त्र, ब्रह्मसूत्र एवं अनेकविध युक्तियोंसे भी यही सिद्ध होता है कि सर्वजगत्कारण ब्रह्म शास्त्रैकसमधिगम्य ही है। यदि शास्त्रातिरिक्त अन्य प्रमाणोंसे सूक्ष्मतम अतीन्द्रिय-तत्त्वकी अवगति हो जाय तो शास्त्रोंके अनुवादकमात्र रह जानेसे उनका नैरर्थक्य-प्रसङ्ग भी दुर्वार हो जायगा। इसलिये गणपति-तत्त्वकी अवगतिमे मुख्यतया शास्त्र ही प्रमाण हैं। शास्त्रानुसार यही जाना जाता है कि "सर्वदृश्यजगत्का पति ही 'गणपति' है" क्योंकि 'गण्यन्ते बुद्ध्यन्तेते गणाः'—इस व्युत्पत्तिसे सर्वदृश्यमात्र ही 'गण' है और इसका जो अधिष्ठान है, वही 'गणपति' है। कल्पितकी स्थिति एवं प्रवृत्ति अधिष्ठानसे ही होती है; अतः कल्पितका पति अधिष्ठान ही युक्त है। यद्यपि इसपर कहा जा सकता है कि 'तब तो भिन्न-भिन्न पुराणोंमे शिव, विष्णु, सूर्य, शक्ति आदि सभी ब्रह्मरूपसे ही विवक्षित हैं। जब कि ब्रह्मतत्त्व एक ही है तो उसके नाना रूप भिन्न-भिन्न पुराणोंमें कैसे पाये जाते हैं?' इसका उत्तर यही है कि 'एक ही परमतत्त्व भिन्न-भिन्न उपासकोंकी भिन्न-भिन्न अभिलषित सिद्धिके लिये अपनी अचिन्त्य लीला-शक्तिसे भिन्न-भिन्न गुणगणसम्पन्न होकर नाम-रूपवान् होकर अभिव्यक्त होता है। जैसे भामनीत्व, सर्वकामत्व, सर्वरसत्व, सत्संकल्पत्वादिगुणविशिष्ट ब्रह्मतत्त्वकी उपासना करनेसे उपासकोंको उपास्य-विशेषण गुण ही फलरूपमें प्राप्त होते हैं, ठीक वैसे ही प्राधान्येन विघ्नविनाशकत्वादि गुणविशिष्ट वही परमतत्त्व गणपतिरूपमें आविर्भूत होता है।'

यदि कहा जाय कि 'फिर इसी तरहसे बाह्याभिमत भिन्न-भिन्न देव भी ब्रह्मतत्त्व ही होंगे; और फिर इतना ही क्यों, जब कि सारा प्रपञ्च ही ब्रह्मतत्त्व है, तब गणपति ही क्यों विशेषरूपसे ब्रह्म कहे जायँ?' इसका उत्तर यही है कि 'यद्यपि अधिष्ठानरूपसे बाह्याभिमत देव तथा तत्तद्वस्तु सकल ब्रह्मरूप कहे जा सकते हैं, तथापि तत्तद्गुणगणविशिष्टरूपसे ब्रह्मतत्त्व तो केवल शास्त्रसे ही जाना जा सकता है, अर्थात् शास्त्र ही जिन-जिन नाम-रूप-गुणयुक्त तत्त्वोंको ब्रह्म बतलाते हैं, वे ही ब्रह्म हो सकते हैं; क्योंकि यह कहा जा चुका है कि अतीन्द्रिय वस्तुका ज्ञान करानेमें एकमात्र शास्त्र ही प्रमाण हो सकता है।' शास्त्र मुख्यरूपसे वेद और वेदानुसारी स्मृतीतिहासपुराणादि ही हैं, यह बात आगे पूर्णरूपसे विवेचित की जायगी। शास्त्र गणपतिको 'पूर्ण ब्रह्म' बतलाते हैं। पूर्वोक्त 'गणपत्यथर्व श्रुति'(१)में गणपतिको 'त्वमेव प्रत्यक्षं तत्त्वमसि'—ऐसा कहा गया है। उसका अभिप्राय यह है कि गणपतिके स्वरूपमे नर तथा गज—इन दोनोंका ही सामञ्जस्य पाया जाता है। यह मानो प्रत्यक्ष ही परस्पर-विरुद्ध-से प्रतीयमान 'तत्-पदार्थ' तथा 'त्वं-पदार्थ'के अभेदको सूचित करता है; क्योंकि 'तत्-पदार्थ' सर्वजगत्कारण, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् 'परमात्मा' होता है एवं 'त्वं-पदार्थ' अल्पज्ञ, अल्पशक्तिमान् 'जीव' होता है। उन दोनोंका ऐक्य यद्यपि आपाततः विरुद्ध है, तथापि लक्षणासे विरुद्धांशद्वयका त्याग कर एकता सुसम्पन्न होती है। इसी प्रकार लोकमे यद्यपि नर और गजका ऐक्य

असम्मत है, तथापि लक्षणासे विरुद्ध-धर्माश्रय भगवान्‌में वह सामञ्जस्य है। अथवा जैसे तत्पद-लक्ष्यार्थ सर्वोपाधिनिष्कृष्ट 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।' (तैत्ति० उप० २।१।१) एवं लक्षणालक्षित ब्रह्म है, वैसे ही 'त्वं-पदार्थ' जगन्मय सोपाधिक ब्रह्म है। इन दोनोंका अखण्डैकरस, 'असि-पदार्थ'में सामञ्जस्य है; इसी तरह नर और गज-स्वरूपका सामञ्जस्य गणपति-स्वरूपमें है। 'त्वं-पदार्थ' नर-स्वरूप है तथा 'तत्'-पदार्थ गज-स्वरूप एवं अखण्डैकरस गणपतिरूप 'असि-पदार्थ'में इन दोनोंका सामञ्जस्य है।

शास्त्रमे नर-पदसे प्रणवात्मक सोपाधिक ब्रह्म कहा गया है— 'नराज्जातानि तत्त्वानि नाराणीति विदुर्बुधाः।' 'गज'-शब्दकी व्याख्या शास्त्रोंमें इस प्रकार की गयी है—"समाधिना योगिनो यत्र गच्छन्ति इति 'ग.' यस्माद् बिम्बप्रतिबिम्बतया प्रणवात्मकं जगज्जायते इति 'जः'।—समाधिसे योगीलोग जिस परमतत्त्वको प्राप्त करते हैं, वह 'ग' है और जैसे बिम्बसे प्रतिबिम्ब उत्पन्न होता है, वैसे ही कार्य-कारणस्वरूप प्रणवात्मक प्रपञ्च जिससे उत्पन्न होता है, उसे 'ज' कहते हैं।" 'जन्माद्यस्य यत.।' (ब्रह्मसू० १।१।२), 'यस्मादोंकारसम्भूतिर्यतो वेदो यतो जगत्।'* इत्यादि वचन भी उसके पोषक हैं। सोपाधिक 'त्वं'-पदार्थात्मक नर गणेशका पादादिकण्ठपर्यन्त देह है। यह सोपाधिक होनेसे निरुपाधिकापेक्षया निकृष्ट है, अतएव अधोभूताङ्ग है। निरुपाधि सर्वोत्कृष्ट 'तत्'-पदार्थमय गणेशजीका कण्ठादिमस्तकपर्यन्त गज-स्वरूप है; क्योंकि वह निरुपाधिक होनेसे सर्वोत्कृष्ट है। सम्पूर्ण पादादि-मस्तक-पर्यन्त गणेशजीका देह 'असि-पदार्थ' अखण्डैकरस है।

यह गणेश एकदन्त है। 'एक'-शब्द 'माया'का बोधक है और 'दन्त' शब्द 'मायिक'-का बोधक है। मुद्गलपुराणमें कहा गया है—

एकशब्दात्मिका माया तस्याः सर्वं समुद्भवम्।
दन्त. सत्ताधरस्तत्र मायाचालक उच्यते॥

अर्थात् गणेशजीमें माया और मायिकका योग होनेसे वे 'एकदन्त' कहलाते हैं। गणेशजी वक्रतुण्ड भी हैं— 'वक्रम् आत्मरूपं मुखं यस्य।' 'वक्र' टेढ़ेको कहते हैं, आत्मस्वरूप टेढ़ा है; क्योंकि यह सम्पूर्ण जगत् तो मनोवचनोंका गोचर है, किंतु आत्मतत्त्व उनका—मन-वाणीका अविषय है—'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।' (तैत्ति० उप० २।४)

इत्यादि वचन इसके प्रमाण हैं और भी—

कण्ठाधो मायया युक्तं मस्तकं ब्रह्मवाचकम्।
वक्राख्यं येन विघ्नेशस्तेनायं वक्रतुण्डकः॥

गणेशजी 'चतुर्भुज' भी हैं; क्योंकि वे देवता, नर, असुर और नाग—इन चारोंका स्थापन करनेवाले हैं एवं चतुर्वर्ग-चतुर्वेदादिके भी स्थापक हैं। वे भक्तानुग्रहार्थ अपने चारों हाथोंमें पाश, अङ्कुश, वर-मुद्रा और अभय-मुद्रा धारण करते हैं। भक्तोंके मोहरूपी शत्रुको फँसानेके लिये 'पाश' तथा सर्वजगन्नियन्तृरूप ब्रह्म 'अङ्कुश' है। दुष्टोंका नाश करनेवाला ब्रह्म 'दन्त' और सर्व-कामनाओंको पूर्ण करनेवाला ब्रह्म 'वर' है। तथा च—

स्वर्गेषु देवताश्चायं पृथ्व्यां नरांस्तथाऽतले।
असुरान्नागमुख्यांश्च स्थापयिष्यति बालकः॥
तत्त्वानि चालयन् विप्रास्तस्मान्नाम्ना चतुर्भुजः।
चतुर्णां विविधानां च स्थापकोऽयं प्रकीर्तितः॥

भगवान् गणपतिका वाहन 'मूषक' सर्वान्तर्यामी, सर्वप्राणियोंके हृदयरूप बिलमें रहनेवाला, सर्वजन्तुओंके भोगोंको भोगनेवाला ही है। वह चोर भी है; क्योंकि जन्तुओंके अज्ञात सर्वस्वको हरनेवाला है। उसको कोई जानता नहीं; क्योंकि मायासे गूढ़रूप अन्तर्यामी ही समस्त भोगोंको भोगता है। इसीलिये वह 'भोक्तारं सर्वतपसाम्' कहा गया है। 'मूष स्तेये'—इस धातुसे मूषक-शब्द निष्पन्न होता है। मूषक जैसे प्राणियोंकी सर्वभोग्य वस्तुओंको चुराकर भी पुण्य-पापोंसे विवर्जित ही रहता है, वैसे ही मायागूढ़ सर्वान्तर्यामी भी सब भोगोंको भोगता हुआ पुण्य-पापोंसे विवर्जित है। वह सर्वान्तर्यामी गणपतिकी सेवाके लिये मूषक-रूप धारणकर उनका वाहन बना है—

मूषकं वाहनं चास्य पश्यन्ति वाहनं परम्।
तेन मूषकवाहोऽयं वेदेषु कथितोऽभवत्॥
मुष् स्तेये तथा धातुर्ज्ञातव्य. स्तेयवाचकः।
नामरूपात्मकं सर्वं तत्रासद् ब्रह्म वर्तते॥
भोगेषु भोगभोक्ता च ब्रह्माकारेण वर्तते।
अहंकारयुतास्तं वै न जानन्ति विमोहिताः॥

* 'जिससे इस जगत्‌के जन्म आदि होते हैं।' 'जिससे ओंकार-का प्रादुर्भाव होता है तथा 'जिससे वेद एवं जगत्‌का प्राकट्य हुआ है।'

ईश्वरः सर्वभोक्ता च चोरवत्तत्र संस्थितः ।
स एव मूषकः प्रोक्तो मनुजानां प्रचालकः ॥

एवमेव भगवान् श्रीगणेश 'लम्बोदर' हैं; क्योंकि उनके उदरमें ही समस्त प्रपञ्च प्रतिष्ठित हैं और वे स्वयं किसीके उदरमें नहीं हैं । तथा च—

'तस्योदरात् समुत्पन्नं नाना विश्वं न संशयः ।'

इसी प्रकार भगवान् गणेश 'शूर्पकर्ण' हैं; क्योंकि वे योगीन्द्र-मुखसे वर्ण्यमान तथा उत्तम जिज्ञासुओंसे श्रूयमाण तथा हृदयंगत होकर, शूर्पके समान मायामय पाप-पुण्यरूप रजको दूर करके शुद्ध ब्रह्मकी प्राप्ति सम्पादित करवा देते हैं—

रजोयुक्तं यथा धान्यं रजोहीनं करोति च ।
शूर्पं सर्वनराणां वै योग्यं भोजनकाम्यया ॥
तथा मायाविकारेण युतं ब्रह्म न लभ्यते ।
त्यक्तोपासनकं तस्य शूर्पकर्णस्य सुन्दरि ॥
शूर्पकर्णं समाश्रित्य त्यक्त्वा मलविकारकम् ।
ब्रह्मैव नरजातिस्थो भवेत्तेन तथा स्मृतः ॥

इसी प्रकार भगवान् गणेश 'ज्येष्ठराज' हैं । सर्वज्येष्ठों (बड़ों)के अधिपति या सर्वज्येष्ठ जो ब्रह्मा आदि हैं, उनके बीचमें वे विराजमान हैं । वे ही गणेशजी शिव-पार्वतीके तपसे प्रसन्न होकर पार्वती-पुत्ररूपमे भी प्रादुर्भूत होते हैं ।

श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्णचन्द्र जैसे दशरथ एवं वसुदेवके पुत्ररूपसे प्रादुर्भूत होकर भी उनसे अपकृष्ट नहीं हैं, वैसे ही भगवान् श्रीगणेश शिव-पार्वतीसे उत्पन्न होकर भी उनसे अपकृष्ट नहीं हैं, अतएव उनकी शिव-विवाहमें विद्यमानता और पूज्यता होना भी कोई आश्चर्य नहीं है । 'ब्रह्मवैवर्त्तपुराण'मे कहा गया है कि 'पार्वतीके तपसे गोलोक-निवासी पूर्ण परब्रह्म श्रीकृष्ण परमात्मा ही गणपतिरूपसे प्रादुर्भूत हुए ।' अतः गणपति, श्रीकृष्ण, शिव आदि सब एक ही तत्त्व हैं । इसी गणपति-तत्त्वको सूचित करनेवाला 'ऋग्वेद'का यह मन्त्र है—

गणानां त्वा गणपतिꣳहवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्॥
(२ । २३ । १)

इससे मिलता-जुलता ही गणपतिका एक स्तावक मन्त्र 'यजुर्वेद'में भी है—

'गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे०' (यजु० २३ । १९) —इत्यादि । ऋग्वेदके मन्त्रका सर्वथा गणपति-स्तुतिमें ही तात्पर्य है । यजुर्वेदगत मन्त्रका विनियोग यद्यपि अश्व-स्तवनमें है, तथापि सूक्ष्मदृष्ट्या केवल अश्वमें मन्त्रोक्त-गुण अनुपपन्न होनेसे अश्वमुखेन गणपतिकी ही स्तुति इस मन्त्रसे परिलक्षित होती है । मन्त्रार्थ इस तरह है—

'हे वसो ! वसति सर्वेषु भूतेषु व्यापकत्वादिति, तत्सम्बुद्धौ । गणानां महदादीनां ब्रह्मादीनाम् अन्येषां वा समूहानाम् । गणरूपेण साक्षिरूपेण, ज्ञेयाधिष्ठानरूपेण वा । 'गण' संख्याने इत्यस्माद् गण्यते बुद्ध्यते, योगिभिः साक्षात्क्रियते यः स गणस्तद् रूपेण वा पालकम्, एतादृशं त्वां आवाहयामहे । तथा प्रियाणां वल्लभानां प्रियपतिम्, प्रियस्य पालकम् । तच्छेषतयैव सर्वस्य प्रेमास्पदत्वात् । 'आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवतीति श्रुतेः ।' निधीनां सुखनिधीनां सुखनिधेः पालकं त्वां हवामहे आवाहयामहे । मदन्तःकरणे प्रादुर्भूय स्वस्वरूपानन्दसमर्पणेन ममापि पतिर्भूयाः । पुनः हे देव ! अहं ते गर्भधम् अजायां प्रकृतौ चैतन्यप्रतिबिम्बात्मकं गर्भं दधातीति गर्भधं बिम्बात्मकं चैतन्यम्, (तथा च—मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहमिति भगवत्स्मरणात्) आ-आकृष्य योगबलेन, अजानि स्वहृदि स्थाप्यानि, त्वं च मम हृदि अजासि—क्षिपसि स्वस्वरूपं स्थापयसि।'

अधिकारी उपासक गणपतिकी इस प्रकार प्रार्थना करता है—'हे सर्वान्तर्यामिन् ! देवादिसमूहको अधिष्ठान तथा साक्षी रूपसे, प्रियोंको प्रिय रूपसे, लौकिक प्रेमास्पदोंको परम प्रेमास्पदस्वरूपसे, लौकिक सुख-राशियोंको अलौकिक परमानन्दसे पालन करनेवाले अर्थात् अपने अंशसे सम्पादन करनेवाले आपका मैं पतिरूपसे आवाहन करता हूँ । आप भी स्वरूपानन्द-समर्पणद्वारा मेरा पालन करें । जगदुत्पादनार्थ प्रकृतिरूप योनिमे स्वकीय चैतन्यप्रतिबिम्बात्मक-रूप गर्भको धारण करनेवाले बिम्बचैतन्यरूपको मैं अपने हृदयमें विशुद्धान्तःकरणसे धारण करूँ, एतदनुकूल अनुग्रह करें ।'

इस तरह मन्त्र-प्रतिपाद्य गणपतितत्त्व सर्वविघ्नोंका विनाशक है । अतएव 'गणपत्यथर्वशीर्ष'के दसवें मन्त्रमें 'विघ्ननाशिने शिवसुताय वरदमूर्तये नमः' ऐसा आया है ।

स्मरण करते हैं एवं कोई योगमय गणपतिका स्मरण करते हैं। इस तरह सभी शुभ कार्योंके आरम्भमें येन-केनापि रूपेण गणेश-स्मरण देखा जाता है।

कोई कहते हैं कि प्राण-प्रयाण-समय एवं पितृ-यज्ञादिमें गणेश-स्मरण प्रसिद्ध नहीं है; किंतु यह कथन भी ठीक नहीं है; क्योंकि गण-स्थित गणेश-पद प्रत्यक्ष ही पितृ-मुक्तिप्रदिष्ट है। वेदोक्त पितृयज्ञारम्भमें गणेश-पूजनका निषेध नहीं है। अतः वहाँ भी गणेश-पूजन होता है और होना युक्त है, इसीलिये श्रुति गणाधिपतिको ज्येष्ठराज-पदसे सम्बोधित करती है।

'गणेशपुराण'के १।४५।१०-११ में त्रिपुर-वधके समय शिवजीने कहा है—

शैवैस्त्वदीयैरथ वैष्णवैश्च शाक्तैश्च सौरैरथ सर्वकार्ये। शुभाशुभे लौकिकवैदिके च त्वमर्चनीयः प्रथमं प्रयत्नात्॥

'गणेश-गीता' (६।१६) में मरण-कालमें भी गणेश-स्मरण कहा गया है—

यः स्मृत्वा त्यजति प्राणमन्ते मां श्रद्धयान्वितः।
स यात्यपुनरावृत्तिं प्रसादान्मम भूभुज॥

'गणेशोत्तरतापनी' (३) मे भी कहा है—'ॐ गणेशो वै ब्रह्म तद् विद्यात्। यदिदं किं च सर्वं भूतं भव्यं जायमान च तत् सर्वमित्याचक्षते।'

इस तरह यह सिद्ध हुआ कि पूर्ण ब्रह्म परमात्मा ही निर्गुण एवं विघ्नविनाशकत्वादिगुणगणविशिष्ट गजवदनादि-अवयव-मूर्तिधर रूपमे श्रीगणेश हैं।

क्या गणेशजी अनार्य देवता हैं?

आजकल कुछ ग्रन्थचुम्बक पण्डितम्मन्य पाश्चात्त्योंके शिष्य बनकर बाह्य कुसंस्कारदूषितान्तःकरण सुधारक श्रीगणेश-तत्त्वपर ऊटपटाँग विचार करनेका साहस करने लगे हैं। ये भला अपने उन पाश्चात्त्य गुरुओंके विपरीत कितना विचार कर सकते हैं! उनका कहना है कि 'पहले गणेशजी आर्योंके देवता नहीं थे; किंतु एतद्देशीय अनार्योंको पराजित करनेपर उनके सान्त्वनार्थ गणेशको आर्योंने अपने देवताओंमें मिला लिया है।' इस ढंगके विद्वान् कुछ पुराण, कुछ वेदमन्त्र, कुछ चौपाइयोका संग्रह कर अपनी अनभिज्ञताका परिचय देते हुए ऐसे गणपतिस्वरूपका वर्णन करते हैं कि उससे शास्त्रीय गणपतिस्वरूप ही समाच्छन्न हो जाता है। यद्यपि थोड़ा-सा भी तत्त्वज्ञान रखनेवाले पुरुषके लिये ऐसे असम्बद्धालाप उपेक्ष्य ही हैं, तथापि गतानुगतिक कतिपय मूर्खोंको तो उनसे व्यामोह होना स्वाभाविक है। अतः यहाँ इसपर भी थोड़ा-सा विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। पहली बात यह है कि यदि कोई इन महानुभावोंसे पूछे कि 'गणेश-नामका कोई तत्त्व है, यह आपको कैसे ज्ञात हुआ? पुराणादि शास्त्रोंके अध्ययनद्वारा या यत्र-तत्र गणपतिकी मूर्तियोंको देखकर?' यदि कहा जाय कि 'शास्त्रोंके अध्ययनादि-द्वारा' तो फिर गणेशको अनार्योंके देव कैसे कहा जा सकता है? क्योंकि शास्त्रोंमें तो वे ब्रह्मादिके पूज्य बतलाये गये हैं। रही बात मूर्तियोंको देखकर जाननेकी तो फिर प्रश्न होगा कि 'ये मूर्तियाँ किस आधारपर बनीं। वे तो शास्त्रप्रोक्त ध्यानानुकूल ही बनी हैं। यदि इसे उचित न मानें तो गणपतिको देवता या पूज्य समझना केवल मूर्खताकी ही बात होगी; क्योंकि केवल अजायबघर-जैसी चीजोंमें रखी काष्ठमृत्पाषाणादिको भी कोई अभिज्ञ-जन पूज्य कैसे समझेगा?' यदि कहा जाय कि 'अदृश्य शक्ति-विशेषका उस मूर्तिमें आवाहन कर उसका पूजन किया गया है, तो भी वह विशिष्ट देवशक्ति किस प्रमाणसे पहचानी या आहूत की गयी है?' इसके उत्तरमें यदि यह कहा जाय कि ''यह बात शास्त्रोंसे ही जानी गयी' तो फिर शास्त्रोंने तो गणेश-तत्त्वको अनादि ईश्वर ही कहा है। फिर वे अनार्योंके देवता कैसे हुए?'

एक दूसरी विलक्षण बात यह है कि शास्त्रोंके ही आधारपर गणेशको अनार्याभिमत देव कहना और आर्योंका कहीं बाहरसे यहाँ आना मानना, भारतवर्षमे प्राथमिक अनार्योंका निवास और अनार्योंके देवता गणेशका आर्योंद्वारा ग्रहण आदि मानना—ये सब बे-सिर-पैरकी बातें भला अनार्य-शिष्योंके अतिरिक्त और किनको सूझ सकती हैं! भला कोई भी सहृदय पुरुष वेद-पुराणादि शास्त्रोंको मानता हुआ भी क्या गणेशका अनार्य-देवत्व स्वीकार कर सकता है? वस्तुतः यह सब दूषित संस्कारों एवं आचार-शून्य मनमाने शास्त्रोंको बिना सोचे-समझे ही पढने एवं ऊटपटाँग अनुसंधान करनेका कुफल है। इसीलिये ज्ञानलवदुर्विदग्धोंको अनभिज्ञोंसे भी अधिक शोचनीय कहा गया है—

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि तं नरं न रञ्जयति॥

सच्छास्त्रके अध्ययनका भी यही नियम है कि आचार्य-परम्परासे शास्त्रीय गूढ रहस्योंको समझना चाहिये और परस्पर-विरोधी प्रतीत होनेवाले वाक्योंको शङ्का-जिज्ञासादि-समन्वयद्वारा करना या ठीक-ठीक अन्य पुराण-

शास्त्रों आदिद्वारा समझना चाहिये। ऐसा न होनेसे ही श्रीगणपतिकी भिन्न-भिन्न लीलाएँ प्राणियोंको मोहित करती हैं। जैसे—उनका नित्यत्व, पार्वती-पुत्रत्व, शनिके दृष्टिपातसे शिरश्छेद और गजवदनका पुनः संधान आदि।

ये सब बातें केवल गणपतिके ही विषयमें नहीं, अपितु श्रीरामचन्द्र आदिकोंके विषयमें भी हैं। जैसे—अजत्व और जायमानत्व, नित्यमुक्तत्व और सीता-विरहमें रोदनादि। इसीलिये गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने कहा है कि 'राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे॥' (मानस २। १२६। ३½) वस्तुतः जिन्होंने भगवान्‌की अघटनघटनापटीयसी मायाका महत्त्व नहीं समझा, उन्हें अचिन्त्यमहामहिम वैभवशाली भगवान्‌की निर्गुण तथा सगुण लीलाओंका ज्ञान कैसे हो? 'अजायमानो बहुधा विजायते।' (यजुर्वेद ३१। १९) 'मत्स्थानि सर्वभूतानि' (गीता ९। ४), 'न च मत्स्थानि भूतानि' (गीता ९। ५) इत्यादिका अभिप्राय कैसे विदित हो? सगुण लीला तो निर्गुणकी अपेक्षा भी भावुकोंकी दृष्टिमें दुरवग्राह्य है—

> निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन न जानहिं कोइ।
> सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ॥
> (मानस ७। ७३ ख)

इसीलिये गोस्वामीजीने कहा है कि अनादि देवता समझकर गणेशादिके रूप-भेद, शिवपूज्यता आदि अंशोंमें संशय न करें—'कोउ सुनि संसय करै जनि सुर अनादि जियँ जानि॥' (मानस १। १००)

फिर जब बड़े-से-बड़े तार्किकोंका तर्क भौतिक भावोंमें ही कुण्ठित हो जाता है, तब व्याप्ति या हेतु तथा हेत्वाभासके ज्ञानसे शून्य आधुनिक विद्वानोंके देवता या ईश्वरके विषयमें तर्क करनेका क्या अर्थ है? वे महानुभाव यदि तर्कके स्वरूपका भी ठीक-ठीक निरूपण कर सकें तो उन्हें यह पता लग सकेगा कि धर्म तथा देवतापर यह तर्क भी कुछ काम कर सकता है या नहीं। भला यदि इनसे कोई पूछे कि 'यह आपने कैसे अनुमान किया कि गणेश अनार्योंके देवता हैं और आदि भारतवासी अनार्य ही हैं? क्या कोई अव्यभिचरित हेतु इसका आपके पास है?' तो लोग सिवा अटकलपच्चू पाश्चात्यस्वार्थकल्पित, मिथ्या मनगढंत इतिहासके क्या आधार बतला सकते हैं। यह इतिहास तो उनकी यहाँ सदा बने रहनेकी राजनीतिक चालमात्र थी, जो चल न पायी। उसे कोई प्रमाण मान ले और प्राचीन-आध्यात्मिक गम्भीर भावपूर्ण हमारे सच्चे इतिहासको न माने, इससे बढ़कर अंधेर-खाता या उन्मार्ग क्या होगा?

अस्तु, आस्तिकोंको पूर्वोक्त प्रमाणोंसे निर्धारित गणपति-तत्त्वका श्रद्धासहित ज्ञानार्जन कर समस्त कर्मोंके प्रारम्भमें उनका आराधन अवश्य करना चाहिये। पारलौकिक तत्त्व-निर्धारणमें एकमात्र शास्त्र ही आदरणीय हैं। इसीलिये श्रीभगवान्‌ने भी गीतामें कहा है—

> तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
> ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥
> (१६। २४)

जय जय जय गणपति गणनायक!

(रचयिता—स्वामी श्रीसनातनदेवजी)

> जय जय जय गणपति गणनायक!
> करुणासिन्धु, बन्धु जन-जनके, सिद्धि-सदन, सेवक-सुखदायक॥
> कृष्णस्वरूप, अनूप-रूप अति, विघ्न-विदारण, बोध-विधायक।
> सिद्धि-बुद्धि-सेवित, सुषमानिधि, नीति-प्रीति-पालक, वरदायक॥
> शंकर-सुवन, भुवन-भय-वारण, वारन-वदन, विनायक-नायक।
> मोदकप्रिय, निज-जन-मन-मोदक, गिरि-तनया-मन-मोद-प्रदायक॥
> अमल, अकल अरु सकल-कलानिधि, रिद्धि-सिद्धिदायक, सुरनायक।
> ज्ञान-ध्यान-विज्ञान दान करि निज-जन-मनवाञ्छित फल-दायक॥
> प्रथम-पूज्य, सुरसेव्य एक-रद, सदा एकरस, खल-दल-शायक।
> विद्या-बल-विवेक-वर-वारिधि, विश्ववन्द्य, विबुधाधिप-नायक॥
> चरण-शरण-जन जानि दयानिधि! देहु एक यह वर वरदायक।
> जन-जनमें हो नीति-प्रीति नित, रहे न कोउ विषय-विष-पायक॥

श्रीगणेश, शिव, राम, कृष्ण आदि रूपोंमें एक ही परमात्मा उपास्य है

(ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

निराकार ब्रह्म भक्तोंके प्रेमवश उनके उद्धारार्थ साकाररूपसे प्रकट होकर उन्हें दर्शन देते हैं। उनके साकार रूपोंका वर्णन मनुष्यकी बुद्धिके बाहर है; क्योंकि वे अनन्त हैं। भक्त जिस रूपसे उन्हें देखना चाहता है, वे उसी रूपमें प्रत्यक्ष प्रकट होकर उन्हें दर्शन देते हैं। भगवान्का साकार रूप धारण करना भगवान्के अधीन नहीं, प्रेमी भक्तोंके अधीन है। अर्जुनने पहले विश्वरूप-दर्शनकी इच्छा प्रकट की, फिर चतुर्भुजकी और तदनन्तर द्विभुजकी। भक्तभावन भगवान् कृष्णने अर्जुनको उसके इच्छानुसार थोड़ी ही देरमें तीनों रूपोंसे दर्शन दे दिये और उसे निराकारका भाव भी भलीभाँति समझा दिया। इसी प्रकार जो भक्त परमात्माके जिस स्वरूपकी उपासना करता है, उसको उसी रूपके दर्शन हो सकते हैं।

अतएव उपासनाके स्वरूपमें परिवर्तनकी कोई आवश्यकता नहीं। भगवान् विष्णु, राम, कृष्ण, शिव, नृसिंह, देवी, गणेश आदि किसी भी रूपकी उपासना की जाय, सब उसीकी होती है। भजनमें कुछ भी बदलनेकी जरूरत नहीं है। बदलनेकी जरूरत यदि है, तो परमात्मामें अल्पत्व-बुद्धिकी। भक्तको चाहिये, वह अपने इष्टदेवकी उपासना करता हुआ सदा समझता रहे कि मैं जिस परमात्माकी उपासना करता हूँ, वे ही परमेश्वर निराकार रूपसे चराचरमें व्यापक हैं, सर्वज्ञ हैं, सब कुछ उन्हींकी दृष्टिमें हो रहा है। वे सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वगुणसम्पन्न, सर्व-समर्थ, सर्वसाक्षी, सत्-चित्-आनन्दघन मेरे इष्टदेव परमात्मा ही अपनी लीलासे भक्तोंके उद्धारके लिये उनके इच्छानुसार भिन्न-भिन्न स्वरूप धारणकर अनेक लीलाएँ करते हैं।

श्रीविष्णुपुराणमें श्रीविष्णुको ही सर्वोपरि बतलाया गया है और कहा गया है कि 'संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और लय श्रीविष्णुसे ही होते हैं; वे ही साक्षात् पूर्णब्रह्म परमात्मा हैं; वे ही सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तर्यामी और सर्वश्रेष्ठ हैं; उनसे बढ़कर और कोई नहीं है।' इसी प्रकार शिवपुराणमें श्रीशिवको, देवीभागवतमें श्रीदेवीको, गणेशपुराणमें श्रीगणेशको तथा सौरपुराणमें श्रीसूर्यको ही सर्वोपरि, सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार, पूर्णब्रह्म परमात्मा कहा गया है। इसी प्रकार अन्य सब पुराणोंमें भी वर्णन आता है। इससे एक-दूसरेमें परस्पर विरोध, एक-दूसरेकी अपेक्षा परस्पर श्रेष्ठता तथा उसकी महिमाकी अतिशयोक्ति प्रतीत होती है। इसका भाव यह है कि जैसे सती-शिरोमणि पार्वती-के लिये केवल एक श्रीशिव ही सर्वोपरि हैं, उनसे बढ़कर और कोई नहीं; और भगवती लक्ष्मीके लिये केवल एक श्रीविष्णु ही सबसे बढ़कर हैं, इसी तरह सच्चिदानन्दघन पूर्णब्रह्म परमात्माको लक्ष्यमें रखकर सभी उपासकोंको परमात्माकी शीघ्र प्राप्ति हो जाय, इस दृष्टिसे महर्षि वेदव्यास-जीने एक-एक देवताको प्रधानता देकर तत्तत्पुराणोंकी रचना की है। प्रत्येक पुराणके अधिष्ठाता देवताके नाम-रूप परमात्माके ही नाम-रूप हैं—यह भलीभाँति समझ लेनेपर उपर्युक्त शङ्का रह नहीं सकती। किसी भी देवताका उपासक क्यों न हो, उस उपासकको पूर्णब्रह्म परमात्माकी प्राप्तिरूप सर्वोपरि फल मिलना चाहिये—यह पुराण-रचयिताका उद्देश्य बहुत ही उत्तम और तात्त्विक है। प्रत्येक पुराणमें उसमें प्रतिपाद्य स्वरूपको सर्वोपरि बतलानेका प्रयोजन दूसरेकी निन्दासे नहीं है, किंतु उसकी प्रशंसामें है और उसकी प्रशंसा उस उपासककी उस पुराण और देवतामें श्रद्धापूर्वक एकनिष्ठ भक्ति करानेके उद्देश्यसे ही है और यह उचित भी है। इस प्रकार होनेसे ही साधकका अनुष्ठान साङ्गोपाङ्ग पूर्ण होकर उसे पूर्णब्रह्म परमात्माकी प्राप्ति शीघ्र हो सकती है।

जितने भी पुराण-उपपुराण हैं, उनके अधिष्ठाता देवता-का नाम और रूप (आकृति) भिन्न होते हुए भी उनका लक्ष्य एक पूर्णब्रह्म परमात्माकी ओर रखा गया है; क्योंकि गुण, प्रभाव, लक्षण, महिमा और स्तुति-प्रार्थनाका वर्णन करते हुए प्रत्येक देवताको ब्रह्मका रूप दिया गया है। इसीलिये एक-दूसरे देवताकी स्तुति परस्पर प्रायः मिलती-जुलती आती है, जो पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही घटती है। पुराणोंमें जो पुराणोंके अधिष्ठातृ-देवताकी प्रशंसा एवं स्तुति की गयी है, वह अतिशयोक्ति नहीं है; क्योंकि परमात्माकी महिमा अतिशय, अपार और अपरिमित होनेसे उस अधिष्ठातृ-देवताको परमात्माका रूप देनेपर जितनी भी उसकी महिमा बतलायी जाय, वह अल्प ही है। वाणीके द्वारा जो कुछ कहा जाता है, वह परिमित ही है। अतएव

वास्तवमे वाणीद्वारा परमात्माकी महिमाका कोई किसी प्रकार भी वर्णन नहीं कर सकता।

आशय यह है कि जो भक्त जिस देवताकी उपासना करता है, उस उपासकको अपने उपास्यदेवको सर्वोपरि पूर्ण ब्रह्म परमात्मा मानकर उपासना करनी चाहिये। इस प्रकारकी दृष्टि रखकर उपासना करनेसे ही सर्वोपरि सच्चिदानन्दघन पूर्ण ब्रह्म परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है; क्योंकि सभी नाम और रूप परमात्माके ही होनेसे वह उपासना परमात्माकी ही उपासना है। अतः परमात्माको लक्ष्य करके किसी भी नाम और रूपकी उपासना की जाय, उसका फल एक पूर्ण ब्रह्म परमात्माकी ही प्राप्ति होता है। इसलिये मनुष्यको अपने इष्टदेवको पूर्ण ब्रह्म परमात्मा समझकर उसके नामका जप और स्वरूपका ध्यान नित्य-निरन्तर करना चाहिये।

परममङ्गलस्वरूप श्रीगणेश

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्री 'श्रीजी' राधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज)

आदिपूज्यं गणाध्यक्षमुमापुत्रं विनायकम्।
मङ्गलं परमं रूपं श्रीगणेशं नमाम्यहम्॥

तैंतीस कोटि देवताओंमे श्रीगणेशका जो महत्त्व दृष्टिगत होता है, वह सभीसे विलक्षण है। किसी भी देवकी आराधनाके आरम्भमे, किसी भी सत्कर्मानुष्ठानमे, किसी भी उत्कृष्ट-से-उत्कृष्ट एवं साधारण-से-साधारण लौकिक कार्यमें भी भगवान् गणपतिका स्मरण, उनका विधिवत् अर्चन एवं वन्दन किया जाता है। यह परमश्रेष्ठत्व भवभयहरण, मङ्गलकरण, सुभगचरण श्रीविनायकको ही प्राप्त है। श्रीगणेशकी असीम महिमा एव उनके परम दिव्य मङ्गल-स्वरूपका मधुर वर्णन श्रुति-स्मृति-पुराण-तन्त्र-सूत्रादि ग्रन्थोंमें विस्तृतरूपसे प्रतिपादित है। इनके मङ्गलमय पावन-विग्रहके दर्शन तथा स्मरणमात्रसे ही त्रिविध पाप-ताप एवं विविध उग्रतम अन्तरायोंका ध्वंस सहजमें ही हो जाता है। श्रेष्ठ किंवा सामान्य अनुष्ठेय कार्यके प्रारम्भ, मध्य और अन्तमें श्रीगणपति-भगवान्का स्मरण न हो तो समारम्भ किये हुए कार्यकी सम्पन्नता कठिन हो जाती है। लोकमे भी शास्त्रसिद्धान्तानुसार एवं प्रत्यक्ष नानाविध चमत्कृतिपूर्ण उदाहरणोंसे सुस्पष्ट है कि श्रीगणेशके स्मरण-पूजनके विना अनेक विघ्न-बाधाओंका आना स्वाभाविक है। अतः इन महामङ्गलमूर्तिका ध्यान-आराधन परम अपेक्षित है।

श्रीगणेश जिस प्रकार ऋद्धि-सिद्धि-बुद्धिके दाता हैं, उसी प्रकार ये अपने अद्भुत रूप-सौन्दर्यपूर्ण विग्रहके दर्शनोंसे अनन्त सुख-समृद्धिके भी प्रदाता हैं। बुद्धि-वैभवके तो ये सर्वतोमुख भंडार हैं, तभी तो भगवान् वेदव्यास-प्रणीत महाभारत-जैसे विशाल ग्रन्थके लेखनका कार्य इन्होंने ही पूर्ण किया। 'भगवन्नाम'-अङ्कित कर और उसकी परिक्रमा करके सम्पूर्ण देवताओंसे धरित्री-परिक्रमामे भी प्राथमिकता प्राप्त करनेकी पौराणिक गाथा इनकी अनन्त-मतिसिन्धुता एवं हरिनामामृत-महिमाभिज्ञताका संदर्शन कराती है। इसके अतिरिक्त ये गणपति अपनी संक्षिप्त अर्चनासे ही अतिशय संतुष्ट हो भक्तको ऋद्धि-सिद्धिसे परिपूर्ण कर देते हैं। इनकी अर्चना कदापि निष्फल नहीं जाती। ऐसे सुभग, सरल, वरद देवका अर्चन-स्मरण-चिन्तन सभीके लिये परम कल्याणप्रद है। अतीव प्रसन्नताकी बात है कि इस वर्ष 'कल्याण'का विशेषाङ्क 'श्रीगणेश-अङ्क' प्रकाशित हो रहा है। अतः श्रीगणेश-सम्बन्धी सभी जिज्ञासाओंका सम्यक्-समाधान इस एक ही महान् ग्रन्थसे उपलब्ध हो सकेगा। सभी भावुक पाठक इस परमोपादेय ग्रन्थका अनुशीलन कर अतिशय लाभान्वित हों।

मङ्गलविधायक श्रीगणेश

(पूज्यपाद योगिराज अनन्तश्री देवरहवाबावा)

प्रत्येक हिंदू-घरमे जो भी कार्य हम सर्वप्रथम आरम्भ करते हैं, वह गणेशजीका नाम लेकर ही करते हैं। इसलिये कि उसमे कोई विघ्न न आये और कार्य सफल हो जाय। चाहे हम गणेशजीकी विधिवत् पूजासे अपना कार्य आरम्भ करें, चाहे पूजा न करके भी, गणेशजीका नाम-स्मरण ही कल्याणकारी है। व्यवसायी लोग अपने व्यवसायके आरम्भमे और माता-पिता अपने बालकोंके विद्यारम्भमे गणेशजीका पूजन अवश्य करते हैं। व्यावसायिक बही-खातोंके या पुस्तकोंके प्रथम पृष्ठपर 'श्रीगणेशाय नमः' यह माङ्गलिक वाक्य सर्वप्रथम अवश्य लिखा जाता है।

पार्वती-शिव-तनय सर्वाग्र-पूज्य गणेशजीकी इस गरिमा-का हेतु रामचरितमानसमे संत तुलसीदासजी बताते हैं—

'महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ॥'

(मानस १ । १८ । २)

इसके विषयमे कथानक इस प्रकार है। एक बार देवताओंमे इस बातकी होड़ लगी कि जो कोई देवता पृथ्वीकी परिक्रमा सर्वप्रथम कर लेगा, वही आदिपूज्य होगा। सभी देवता उस दौड़मे सम्मिलित हुए। उसमे श्रीगणेश भी थे; किंतु उनको कोई अभिमान नहीं था; वे जानते थे कि मेरे वाहन श्रीमूषकजी है, जिनकी चाल बहुत धीमी है; भला, इनके द्वारा पृथ्वीकी परिक्रमा कैसे हो सकेगी ? लेकिन गणेशजी 'राम-नाम'के प्रभावको जानते थे। 'राम-नाम' के द्वारा कौन-सी सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती ?

उन्होने तुरंत यह कार्य किया कि पृथ्वीपर ही राम-नाम लिख दिया। 'राम'से सारा विश्व ही ओत-प्रोत है और उसी राम-नाम लिखी हुई पृथ्वीकी उन्होने अपने मूषकसहित परिक्रमा कर दी। इस प्रकार उनके द्वारा पूरी पृथ्वीकी परिक्रमा सम्पन्न हो गयी। इस रीतिसे देवताओंकी परिक्रमाकी होड़मे वे सर्वप्रथम आ गये। बुद्धिसे कौन-सा काम कठिन है ? राम-नामका प्रभाव और साथ-साथ उसमे बुद्धिका समावेश—इन दोनोंके द्वारा श्रीगणेशजी सर्व-प्रथम पूज्य एवं वन्द्य हो गये।

राम-नाम स्वयं एक महामन्त्र है, जिसके जपनेसे कोई-भी ऐसी सिद्धि नहीं है, जो प्राप्त नहीं हो सकती ? संत तुलसीदास राम-नामकी महत्ताको जानने और समझनेवाले थे। अपनी रचना रामायणमें जहाँ उन्होने राम-नामकी महत्ताका वर्णन किया है, वहाँ स्पष्ट शब्दोमे स्वीकार किया है कि 'राम-नाम-जपका ही यह प्रभाव था, जिसके द्वारा श्रीगणेशजी समस्त देवता-समूहमे सर्वप्रथम पूजनीय हो गये।'

यही गणेशजीकी महिमा है, जिसके कारण हम सर्वप्रथम अपने सभी मङ्गल-कार्योंमें 'श्रीगणेशाय नमः' बोलते और लिखते हैं तथा हमारे सभी मङ्गल-कार्योंके प्रारम्भ करनेका पर्यायवाची शब्द 'श्रीगणेशाय नमः' बन गया है।

(प्रेषक—श्रीरामकृष्णप्रसादजी)

श्रीगणेशका विरद !

बालक मृनालनि ज्यौं तोरि डारै सब काल,
　　कठिन कराल त्यौं अकाल दीह दुख कों।
बिपति हरति हठि पद्मिनी के पात सम,
　　पंक ज्यौं पताल पेलि पठवै कलुख कों॥
दूरि कै कलंक-अंक भव-सीस-ससि सम,
　　राखत है 'केसौदास' दास के बपुख कों।
साँकरे की साँकरनि सनमुख होत तोरै,
　　दसमुख मुख जोवैं गज-मुख-मुख कों॥

—महाकवि केशवदास

ओंकारस्वरूप श्रीगणपति

(महात्मा श्रीसीताराम ओंकारनाथजी महाराज)

'ॐ' यह अक्षर वर्णजगत् तथा भूः, भुवः, स्वः—त्रिभुवनमे जो कुछ है, सब है। इसकी सुस्पष्ट व्याख्या यही है कि अतीत, वर्तमान और भविष्यत् सब कुछ 'ॐ' है। इसके अतिरिक्त त्रिकालातीत जो कुछ है, वह भी ओंकार है। ओंकारके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। स्थावर-जङ्गम सब कुछ ओंकार है। यह ओंकार ही परमार्थका सार अद्वैत ब्रह्म है—

'परमार्थसारभूतं हि यदद्वैतमशेषतः।'

यह ओंकार और गणपति एक ही तत्त्व हैं, यह हम 'गणपत्यथर्वशीर्षोपनिषद्'मे देख सकते हैं।

श्रीगणेशाय नमः

अथ गणपत्यथर्वशीर्षोपनिषद्

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा
भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभि-
र्व्यशेम देवहितं यदायुः॥ १॥

'हे देवगण! (यज्ञमे व्रती होकर) हम कानोसे भद्र (मङ्गलमय) शब्द सुनें। यज्ञमे व्रती होकर हम आँखोंसे भद्र (मङ्गलमय) रूपका दर्शन करें। सुस्थिर अङ्गों तथा शरीरोद्वारा तुम्हारा स्तवन करते हुए हम देववृन्दके लिये जो हितकर आयु हो, उसका उपभोग करें।'

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

'बढ़े हुए सुयशवाले जो इन्द्र हैं, वे हमारे लिये मङ्गलमय हों। सर्वज्ञ पूषा (सूर्य) हमारे लिये मङ्गलमय हों। तार्क्ष्य, अजेय (अप्रतिहत-शक्ति) गरुड़ हमारे लिये मङ्गलमय हों। बृहस्पति हमारे लिये मङ्गलमय हों। हमारे त्रिविध तापोंकी शान्ति हो।'

अथ गणेशाथर्वशीर्षं व्याख्यास्यामः—

'अब हम गणेशाथर्व-शीर्षकी व्याख्या करेंगे।'

ॐ नमस्ते गणपतये। त्वमेव प्रत्यक्षं तत्त्वमसि। त्वमेव केवलं कर्तासि। त्वमेव केवलं धर्तासि। त्वमेव केवलं हर्तासि। त्वमेव सर्वं खल्विदं ब्रह्मासि। त्वं साक्षादात्मासि नित्यम्॥ १॥

'आप गणपतिको नमस्कार है। तुम्हीं प्रत्यक्ष तत्त्व हो। तुम्हीं केवल कर्ता, तुम्हीं केवल धारणकर्ता और तुम्हीं केवल संहारकर्ता हो। तुम्हीं केवल यह समस्त विश्वरूप ब्रह्म हो और तुम्हीं साक्षात् नित्य आत्मा हो।'

ऋतं वच्मि। सत्यं वच्मि॥ २॥

'यथार्थ कहता हूँ। सत्य कहता हूँ।'

अव त्वं माम्। अव वक्तारम्। अव श्रोतारम्। अव दातारम्। अव धातारम्। अवानूचानमव शिष्यम्। अव पश्चात्तात्। अव पुरस्तात्। अवोत्तरात्तात्। अव दक्षिणात्तात्। अव चोर्ध्वात्तात्। अवाधरात्तात्। सर्वतो मां पाहि पाहि समन्तात्॥ ३॥

'तुम मेरी रक्षा करो। वक्ताकी रक्षा करो। श्रोताकी रक्षा करो। दाताकी रक्षा करो। धाताकी रक्षा करो। षडङ्गवेदविद् आचार्यकी रक्षा करो। शिष्यकी रक्षा करो। पीछेसे रक्षा करो। आगेसे रक्षा करो। उत्तर (वाम) भागकी रक्षा करो। दक्षिण भागकी रक्षा करो। ऊपरसे रक्षा करो। नीचेकी ओरसे रक्षा करो। सर्वतोभावसे मेरी रक्षा करो। सब दिशाओंसे मेरी रक्षा करो।'

त्वं वाङ्मयस्त्वं चिन्मयः। त्वमानन्दमयस्त्वं ब्रह्ममयः। त्वं सच्चिदानन्दाद्वितीयोऽसि। त्वं प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वं ज्ञानमयो विज्ञानमयोऽसि॥ ४॥

'तुम वाङ्मय हो, तुम चिन्मय हो। तुम आनन्दमय हो, तुम ब्रह्ममय हो। तुम सच्चिदानन्द अद्वितीय परमात्मा हो। तुम प्रत्यक्ष ब्रह्म हो। तुम ज्ञानमय हो, विज्ञानमय हो।'

सर्वं जगदिदं त्वत्तो जायते। सर्वं जगदिदं त्वत्तस्तिष्ठति। सर्वं जगदिदं त्वयि लयमेष्यति। सर्वं जगदिदं त्वयि प्रत्येति। त्वं भूमिरापोऽनलोऽनिलो नभः। त्वं चत्वारि वाक्पदानि॥ ५॥

'यह सारा जगत् तुमसे उत्पन्न होता है। यह सारा जगत् तुमसे सुरक्षित रहता है। यह सारा जगत् तुममें

लीन होगा। यह अखिल विश्व तुममें ही प्रतीत होता है। तुम्हीं भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश हो। तुम्हीं परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी चतुर्विध वाक् हो।'

त्वं गुणत्रयातीत.। त्वं देहत्रयातीतः। त्वं कालत्रयातीतः। त्वं मूलाधारस्थितोऽसि नित्यम्। त्वं शक्तित्रयात्मकः। त्वां योगिनो ध्यायन्ति नित्यम्। त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णुस्त्वं रुद्रस्त्वमिन्द्रस्त्वमग्निस्त्वं वायुस्त्वं सूर्यस्त्वं चन्द्रस्त्वं ब्रह्म भूर्भुव. स्वरोम्॥ ६॥

'तुम सत्त्व-रज-तम—इन तीनों गुणोंसे परे हो। तुम स्थूल, सूक्ष्म और कारण—इन तीनों देहोंसे परे हो। तुम भूत-भविष्यत्-वर्तमान—इन तीनों कालोंसे परे हो। तुम नित्य मूलाधार-चक्रमे स्थित हो। तुम प्रभुशक्ति, उत्साहशक्ति और मन्त्र-शक्ति—इन तीनों शक्तियोंसे संयुक्त हो। योगीजन नित्य तुम्हारा ध्यान करते हैं। तुम ब्रह्मा हो, तुम विष्णु हो, तुम रुद्र हो, तुम इन्द्र हो, तुम अग्नि हो, तुम वायु हो, तुम सूर्य हो, तुम चन्द्रमा हो, तुम (सगुण) ब्रह्म हो, तुम (निर्गुण) त्रिपाद भूः, भुवः, स्वः एवं प्रणव हो।'

गणादिं पूर्वमुच्चार्य वर्णादिं तदनन्तरम्। अनुस्वारः परतरोऽर्धेन्दुलसितं तारेण रुद्धम् एतत्तव मनुस्वरूपम्। गकारः पूर्वरूपम्। अकारो मध्यमरूपम्। अनुस्वारश्चान्त्यरूपम्। बिन्दुरुत्तररूपम्। नादः संधानम्। संहिता संधिः सैषा गणेशविद्या। गणक ऋषिः, निचृद् गायत्रीछन्दः, गणपतिर्देवता। ॐ गं गणपतये नमः॥ ७॥

''गण-शब्दके आदि अक्षर गकारका पहले उच्चारण करके अनन्तर आदिवर्ण अकारका उच्चारण करे। उसके बाद अनुस्वार रहे। इस प्रकार अर्धचन्द्रसे शोभित जो 'गं' है, वह ओंकारके द्वारा रुद्ध हो, अर्थात् उसके पहले और पीछे भी ओंकार हो। यही तुम्हारे मन्त्रका स्वरूप (ॐ गं ॐ) है। 'गकार' पूर्वरूप है, 'अकार' मध्यमरूप है, 'अनुस्वार' अन्त्यरूप है। 'बिन्दु' उत्तररूप है, 'नाद' संधान है, 'संहिता' संधि है। ऐसी यह गणेशविद्या है। इस विद्याके गणक ऋषि हैं, निचृद्-गायत्री छन्द है और गणपति देवता हैं। मन्त्र है—गं (ॐ गं गणपतये नमः)।''

एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥ ८॥

'एकदन्तको हम जानते हैं, वक्रतुण्डका हम ध्यान करते हैं। दन्ती हमको उस ज्ञान और ध्यानमे प्रेरित करें।'

एकदन्तं चतुर्हस्तं पाशमङ्कुशधारिणम्।
रदं च वरदं हस्तैर्बिभ्राणं मूषकध्वजम्॥
रक्तं लम्बोदरं शूर्पकर्णकं रक्तवाससम्।
रक्तगन्धानुलिप्ताङ्गं रक्तपुष्पैः सुपूजितम्॥
भक्तानुकम्पिनं देवं जगत्कारणमच्युतम्।
आविर्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात् परम्॥
एवं ध्यायति यो नित्यं स योगी योगिनां वरः॥ ९॥

'गणपति-देव एकदन्त और चतुर्बाहु हैं। वे अपने चार हाथोंमे पाश, अङ्कुश, दन्त और वरमुद्रा धारण करते हैं। उनके ध्वजमें मूषकका चिह्न है। वे रक्तवर्ण, लम्बोदर, शूर्पकर्ण तथा रक्तवस्त्रधारी हैं। रक्तचन्दनके द्वारा उनके अङ्ग अनुलिप्त हैं। वे रक्तवर्णके पुष्पोंद्वारा सुपूजित हैं। भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाले, ज्योतिर्मय, जगत्के कारण, अच्युत, तथा प्रकृति और पुरुषसे परे विद्यमान वे पुरुषोत्तम सृष्टिके आदिमे आविर्भूत हुए। इनका जो इस प्रकार नित्य ध्यान करता है, वह योगी योगियोंमे श्रेष्ठ है।'

नमो व्रातपतये, नमो गणपतये, नमः प्रमथपतये, नमस्तेअस्तु लम्बोदरायैकदन्ताय विघ्ननाशिने शिवसुताय श्रीवरदमूर्तये नमः॥ १०॥

'व्रातपतिको नमस्कार, गणपतिको नमस्कार। प्रमथपतिको नमस्कार, लम्बोदर और एकदन्तको नमस्कार हो। विघ्ननाशक, शिवतनय श्रीवरदमूर्तिको नमस्कार हो।'

एतदथर्वशीर्षं योऽधीते। स ब्रह्मभूयाय कल्पते। स सर्वतः सुखमेधते। स सर्वविघ्नैर्न बाध्यते। स सर्वमहापापात्प्रमुच्यते। सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति। प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति। सायं प्रातः प्रयुञ्जानोऽपापो भवति। सर्वत्राधीयानोऽपविघ्नो भवति धर्मार्थकाममोक्षं च विन्दति। इदमथर्वशीर्षम् अशिष्याय न देयम्। यदि मोहाद् दास्यति, स पापीयान् भवति। सहस्रावर्तनाद् यं यं काममधीते तं तमनेन साधयेत्॥ ११॥

'इस अथर्वशीर्षका जो पाठ करता है, वह ब्रह्मीभूत होता है। वह सर्वतोभावेन सुखी होता है, वह किसी प्रकारके विघ्नोंसे बाधित नहीं होता। वह समस्त महापातकोंसे मुक्त हो जाता है। सायंकाल इसका अध्ययन करनेवाला दिनमे किये हुए पापोंका नाश करता है, प्रातःकालमे अध्ययन करनेवाला रात्रिकृत पापोंका

नाश करता है। सायं और प्रातःकाल पाठ करनेवाला निष्पाप हो जाता है। सर्वत्र अध्ययन करनेवाला विघ्नशून्य हो जाता है और धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको प्राप्त करता है। यह अथर्वशीर्ष उसको नहीं देना चाहिये, जो शिष्य न हो। जो मोहवश अशिष्यको भी इसका उपदेश देगा, वह महापापी होगा। इसकी एक हजार आवृत्ति करनेसे उपासक जो-जो कामना चाहेगा, इसके द्वारा उसे सिद्ध कर लेगा।'

अनेन गणपतिमभिषिञ्चति स वाग्मी भवति। चतुर्थ्यामनश्नन् जपति स विद्यावान् भवति। इत्यथर्ववाक्यम्। ब्रह्माद्यावरणं विद्यान्न बिभेति कदाचनेति॥ १२॥

'जो इस मन्त्रके द्वारा श्रीगणपतिका अभिषेक करता है, वह वाग्मी हो जाता है। जो चतुर्थी तिथिमें उपवास करके जप करता है, वह विद्यावान् (अध्यात्मविद्याविशिष्ट) हो जाता है। यह अथर्व-वाक्य है। जो ब्रह्मादि आवरणको जानता है, वह कभी भयभीत नहीं होता।'

यो दूर्वाङ्कुरैर्यजति स वैश्रवणोपमो भवति। यो लाजैर्यजति स यशोवान् भवति, स मेधावान् भवति। यो मोदकसहस्रेण यजति स वाञ्छितफलमवाप्नोति। यः साज्यसमिद्भिर्यजति, स सर्वं लभते स सर्वं लभते। अष्टौ ब्राह्मणान् सम्यग् ग्राहयित्वा सूर्यवर्चस्वी भवति। सूर्यग्रहे महानद्यां प्रतिमासंनिधौ वा जप्त्वा सिद्धमन्त्रो भवति। महाविघ्नात्प्रमुच्यते। महादोषात् प्रमुच्यते। महाप्रत्यवायात् प्रमुच्यते। स सर्वविद्भवति। स सर्वविद्भवति। य एवं वेद। इत्युपनिषद्॥ १३॥

इति गणपत्यथर्वशीर्षं सम्पूर्णम्।

'जो दूर्वाङ्कुरोंद्वारा यजन करता है, वह कुबेरके समान हो जाता है। जो लाजाके द्वारा होम करता है, वह यशस्वी होता है, मेधावान् होता है। जो सहस्र मोदकोंके द्वारा यजन करता है, वह मनोवाञ्छित फल प्राप्त करता है। जो घृताक्त समिधाके द्वारा होम करता है, वह सब कुछ प्राप्त करता है, सब कुछ प्राप्त करता है। जो आठ ब्राह्मणोंको इस उपनिषद्का सम्यक् ग्रहण करा देता है, वह सूर्यके समान तेजःसम्पन्न होता है। सूर्यग्रहणके समय महानदीमें अथवा प्रतिमाके निकट इस उपनिषद्का जप करके साधक सिद्धमन्त्र हो जाता है। सारे महाविघ्नोंसे मुक्त हो जाता है। महान् दोषोंसे मुक्त हो जाता है। महापातकसे मुक्त हो जाता है। वह सर्वविद् हो जाता है। वह सर्वविद् हो जाता है। जो इस प्रकार जानता है। इत्युपनिषद्।

ॐ सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै॥

'हे परमात्मन्! आप हम दोनों—शिष्य और आचार्यकी साथ-साथ रक्षा करें। हे परमात्मन्! आप हम दोनों—शिष्य और आचार्यको अपना अभेदानन्द-भोग प्राप्त करावें। हे परमात्मन्! आप हम दोनोंको निदिध्यासन, ध्यान और समाधिकी सामर्थ्य प्रदान करें। हमारी अधीत विद्या तेजस्विनी हो, हम दोनों—आचार्य और शिष्यके बीच कभी विद्वेष न हो। त्रिविध दुःख शान्त हों।'

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः॥ स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः। हरिः ॐ॥

इस प्रकार 'गणपत्यथर्वशीर्ष उपनिषद्' पूर्ण हुआ।

श्रीब्रह्माका पार्वतीजीसे उलाहना

सुंड सौं लुकाइ औ दबाइ दंत दीरघ सौं, दुरित दुरूह दुख दारिद बिदारे देत।
कहै 'रतनाकर' बिपत्ति फटकारैं फूँकि, कुमति कुचार पै उछारि छार डारे देत॥
करनी बिलोकि चतुरानन गजानन की, अंब सौं बिलखि यौं उराहनौ पुकारे देत।
तुमही बतावौ कहाँ बिघन बिचारे जाहिं, तीनौं लोक माहिं ओक उनकौं उजारे देत॥

—कविवर 'रत्नाकर'

ॐकारस्वरूप श्रीगणेश

ॐकारमाद्यं प्रवदन्ति संतो वाचः श्रुतीनामपि यं गृणन्ति।
गजाननं देवगणानताङ्घ्रिं भजेऽहमर्धेन्दुकृतावतंसम्॥

'संत-महात्मा जिन्हें आदि ॐकार बताते हैं; श्रुतियोंकी वाणियाँ भी जिनका स्तवन करती हैं; समस्त देव-समुदाय जिनके चरणारविन्दोंमें प्रणत होता है तथा अर्धचन्द्र जिनके भालदेशका आभूषण है, उन भगवान् गजाननका मैं भजन करता हूँ।'

गणेश-तत्त्वका महत्त्व

(स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

प्रत्येक मानव मानव होनेके नाते जन्मजात साधक है। साधक सभीके लिये उपयोगी होता है। कारण कि सत्सङ्ग ही साधकका स्वधर्म है। स्वधर्मनिष्ठ होनेसे ही साधक धर्मात्मा, जीवन्मुक्त तथा भक्त हो सकता है। इस दृष्टिसे सत्सङ्ग ही अग्रगण्य देव गणेशकी पूजा है। सत्यको स्वीकार करना 'सत्सङ्ग' है। बुराईरहित होकर साधक धर्मात्मा होता है और अकिंचन, अचाह, अप्रयत्नपूर्वक साधक जीवन्मुक्त होता है तथा आत्मीयतासे जाग्रत् अखण्ड-स्मृति एवं अगाधप्रियतासे भक्त होता है। यह सत्सङ्ग अर्थात् गणेश-तत्त्वका महत्त्व है।

सच्चर्चा, सच्चिन्तन और सत्कार्यके द्वारा सत्सङ्गकी माँग जाग्रत् होती है। सत्सङ्ग मानवका स्वधर्म है। चर्चा, चिन्तन तथा कार्यके लिये पराश्रय और परिश्रम अपेक्षित है, किंतु सत्सङ्गके लिये पराश्रय तथा परिश्रमकी अपेक्षा नहीं है। अतः सत्सङ्ग स्वाधीनतापूर्वक साध्य है। निज ज्ञानके प्रकाशमे यह स्पष्ट विदित होता है कि शरीर और संसारसे मानवकी जातीय भिन्नता है। जिससे जातीय भिन्नता है, उससे नित्य-योग तथा आत्मीयता सम्भव नहीं है। इस दृष्टिसे केवल जो अनुत्पन्न हुआ अविनाशी, स्वाधीन, रसरूप, चिन्मय, अनादि, अनन्त तत्त्व है, उससे मानवकी जातीय एकता है और वही मानवका अपना है। अपनेमे अपनेकी अखण्ड स्मृति तथा अगाधप्रियता स्वतः होती है। स्मृतिके जाग्रत् होते ही इन्द्रियाँ अविषय, मन निर्विकल्प तथा बुद्धि सम हो जाती है और फिर स्मृति, योग, बोध तथा प्रेमसे अभिन्न कर देती है। इस दृष्टिसे सत्सङ्ग ही एकमात्र सिद्धिदायक है। जो सिद्धिदायक है, वही गणेश-तत्त्व है।

गणेश-तत्त्वको अपनाये बिना अन्य किसी भी प्रकारसे साध्यतत्त्वकी प्राप्ति सम्भव नहीं है। कारण कि सत्सङ्गसे ही असत्का त्याग और इस दृष्टिसे साध्यकी माँग ही साध्यकी प्राप्तिमे हेतु है। साध्य उसे नहीं कहते, जो सदैव, सर्वत्र, सभीमे न हो, और साधक भी उसे नहीं कहते, जिसमें साध्यकी माँग न हो। इस सत्यको स्वीकार करनेपर साधक स्वतः साधन-तत्त्वसे अभिन्न हो जाता है, जो साधकका जीवन तथा साध्यकी महिमा है। साध्यके अस्तित्व, महत्त्व तथा अपनत्वको स्वीकार करना 'सत्सङ्ग' है। साधकके लिये साध्यसे भिन्न किसी अन्य वस्तुका अस्तित्व ही नहीं है। इस वास्तविकताको अपना लेनेपर साधक अकिंचन, अचाह तथा अप्रयत्नपूर्वक साधन-तत्त्वसे अभिन्न हो जाता है, यह आस्थावान् साधकोंका अनुभव है। माँग और कामका पुञ्ज ही केवल सीमित अहम्-भाव है। स्वभावजनित माँगके सबल होनेपर प्रमादसे उत्पन्न हुए कामका नाश हो जाता है और फिर माँग स्वतः पूरी हो जाती है, जिसके होते ही सीमित अहम्-भावका अन्त हो जाता है और फिर केवल साधन-तत्त्व और साध्यका नित्य-विहार ही शेष रहता है।

जिस प्रकार साध्य अखण्ड, असीम तथा अनन्त है, उसी प्रकार साधन-तत्त्व भी असीम तथा अनन्त है। साधककी अभिन्नता साधन-तत्त्वसे होती है। साधन-तत्त्वसे ही साध्यको नितनव-रस मिलता है, जो क्षति, पूर्ति और निवृत्तिसे रहित होनेसे असीम है। साधकमे ही असीम साधन-तत्त्व और अनन्त साध्य-तत्त्व विद्यमान हैं। परंतु यह रहस्य एकमात्र सत्सङ्गसे ही स्पष्ट होता है। इस दृष्टिसे गणेश-तत्त्वके द्वारा ही साधक प्रेम और प्रेमास्पदसे अभिन्न होता है। इसी रहस्यको बतानेके लिये गौरी-शंकर, सीता-राम और राधा-कृष्णके विहारकी चर्चा है। गणेश-तत्त्वको गौरी और शिवका आत्मज कहा है। पूर्ण-तत्त्वसे ही साधन-तत्त्वकी अभिव्यक्ति होती है। साधन-तत्त्व और साध्यमे असत्के त्यागसे ही अकर्तव्य, असाधन और आसक्तिका नाश होता है और फिर स्वतः साधकमे साधन-तत्त्वकी अभिव्यक्ति होती है। साधन-तत्त्व साधकको साध्यसे अभिन्न कर देता है। यह जीवनका सत्य है। अकर्तव्यका अन्त होते ही कर्तव्यपरायणता स्वतः आती है। कर्तव्यपरायणतासे विद्यमान रागकी निवृत्ति होती है तथा सुन्दर समाजका निर्माण होता है। इतना ही नहीं, कर्तव्यनिष्ठ साधकके जीवनमे अधिकार-लालसाकी गन्ध भी नहीं रहती। कारण कि वह कर्तव्यपालनमे ही अपना अधिकार मानता है। अधिकार-लोलुपताका अन्त होते ही साधक क्रोधरहित हो जाता है। राग और क्रोधके न रहनेपर स्वतः योग तथा स्मृति जाग्रत् होती है। योग-बोधसे स्मृति प्रेमसे अभिन्न कर देती है। समस्त साधनोंकी परिणति प्रेम-तत्त्वमे होती है। प्रेम-तत्त्व प्रेमास्पदका स्वभाव और प्रेमीका जीवन है और प्रेम-तत्त्वकी प्राप्तिमें ही जीवनकी पूर्णता है। यही साधकके विकासकी चरम सीमा है।

साधकके पुरुषार्थका आरम्भ और अन्त सत्सङ्गमे ही निहित है। सत्सङ्ग शरीरधर्म नहीं है, अपितु आत्मधर्म है। स्वधर्मको अपनानेमे सभी साधक सर्वदा स्वतन्त्र हैं। स्वधर्मनिष्ठ हुए बिना सर्वतोमुखी विकास सम्भव नहीं है। स्वधर्मनिष्ठ होनेमे किसी प्रकारकी पराधीनता तथा असमर्थता नहीं है। 'स्व'को यह बोध स्वतःप्राप्त है कि समस्त दृश्य एक ही इकाई है और जिसकी माँग है, वह भी अद्वितीय ही है और जिसमे माँग है, वह 'मैं'-तत्त्व भी एक ही है। अब विचार किया जाय कि माँगका अनुभव 'स्व'-को स्वतः होता है और जब माँग सबल तथा स्थायी हो जाती है, तब कामका स्वतः नाश हो जाता है। कामका नाश होते ही माँग अपने-आप पूरी हो जाती है। यह जीवनका सत्य है, स्वरूपसे अभिन्नता है। उस अभिन्नताका स्पष्टीकरण सत्सङ्गसे ही अर्थात् गणेश-तत्त्वसे ही होता है, जो कि जीवनका सत्य है।

गणेश-तत्त्व अनुत्पन्न हुआ अलौकिक तत्त्व है। जिस प्रकार साधकको शरीर और संसारकी उत्पत्ति, परिवर्तन और अदर्शनका बोध है, उसी प्रकार उसे न तो अपनी उत्पत्तिका बोध है और न परिवर्तन तथा अदर्शनका। इस दृष्टिसे 'स्व'-तत्त्व ही गणेश-तत्त्व है। 'स्व'में ही 'है' की माँग होती है। माँग ही 'है'की प्राप्तिमें हेतु है। 'स्व' 'है'मे और 'है' 'स्व'मे ओत-प्रोत है। जब 'स्व' 'है'के अस्तित्वको स्वीकार करता है, तब उसकी साधक-संज्ञा होती है। साधकका स्वधर्म 'है'के महत्त्व और अपनत्वको स्वीकार करना है। साधक जिसके महत्त्वको स्वीकार करता है, उसीमे उसका नित्य वास रहता है; और जिसके महत्त्वको स्वीकार करता है, उसीमे अगाधप्रियता होती है। जो सदैव, सर्वत्र, सभीका अपना है, उसीको अपना मानना और अपनेमें ही स्वीकार करना साधकका स्वधर्म है, अर्थात् 'सत्सङ्ग' है। इस प्रकार प्रत्येक साधक अग्रगण्य देव गणेशकी पूजा कर बड़ी सुगमतापूर्वक प्रेम तथा प्रेमास्पदसे अभिन्न बन जाता है।

वेदमें गणपति

(वेददर्शनाचार्य स्वामी श्रीगङ्गेश्वरानन्दजी महाराज, उदासीन)

'तत्पुरुषाय विद्महे, वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥'

(तैत्तिरीयारण्यक, प्रपाठक १०; नारायणोपनिषद्, अ० ५)

गणपति, दन्ती और वक्रतुण्ड श्रीगणेशजीके ही नामान्तर हैं। 'दन्तिन्' शब्दसे उनका गजानन होना सूचित होता है। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके गणेशखण्डमे उनकी निस्सीम महिमा वर्णित है। महर्षि व्यासको जब उतनेसे ही संतोष नहीं हुआ, तब उन्होने एक स्वतन्त्र 'गणेशपुराण'की भी रचना की। 'शिव', 'स्कन्द' आदि पुराणोमे भी यत्र-तत्र प्रसङ्गवश गणेशजीका महत्त्व उपलब्ध है, किंतु हम यहाँ केवल वेद-मन्त्रोके आधारपर ही उनकी दिव्यताका दिग्दर्शन करायेंगे।

इतिहास-पुराण-निर्माता महर्षि व्यासजी श्रीगणेशके विशेष कृतज्ञ एवं आभारी हैं; क्योंकि जब उन्होने लक्षश्लोकात्मक 'महाभारत'नामकी शतसाहस्री-संहिताका निर्माण किया, तब उन्हे चिन्ता हुई कि इस महान् ग्रन्थका प्रचार बिना लिखे शक्य नहीं; कुशल लेखक कोई मिल नहीं रहा है। स्मरण करते ही ब्रह्मदेव उपस्थित हुए। सर्वान्तर्यामी ब्रह्माने व्यासका भाव जान लिया था। उन्होंने व्यासको आदेश दिया कि 'इस कार्यके लिये आप विघ्नेश्वर गणेशजीका स्मरण करें; वे ही इस कार्यके लिये उपयुक्त होंगे।' व्यासजीके ध्यान करते ही गणपति आये और उनका मनोरथ पूरा किया। अतः पुराणोमे गणपतिका गुणगान नैसर्गिक ही है। इनके असंख्य आख्यान एवं प्रमाण श्रद्धालु पाठकोंसे अविदित नहीं हैं।

वेदोका अभ्यास न होनेके कारण ही आजकलके अर्वाचीन सज्जन यह कहनेमे संकोच नहीं करते कि जिन गणपतिका विद्वान् प्रत्येक ग्रन्थके आरम्भमे मङ्गलमय स्मरण करते हैं, आर्योंके विवाह-यागादि प्रत्येक कार्यके आरम्भमे जिनका प्रथम पूजन होता है, उनका वेदोमे नामतक नहीं है। यहाँ उनके भ्रम-निवारणके लिये कतिपय वेदमन्त्र नीचे दिये जाते हैं—

गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ॥

(ऋग्वेद २।२३।१)

हे ब्रह्मणस्पते—ब्रह्मण. परिवृढस्य कर्मण. पते,

पालक; गणानाम्—देवसंघानां विद्याधरादिभेदेनानन्तानां सम्बन्धिनम्; गणपतिम्—गजाननं शिवतनयम्; कवीनाम्—क्रान्तदर्शिनाम्; कविम्—क्रान्तदर्शिनम्; उपमश्रवस्तमम्—उपमीयते अनया इति उपमा, सर्वेषामन्नानामुपमानं श्रवः अन्नं यस्य सः उपमश्रवाः, उपपूर्वात् माधातोः करणेऽङ्‌प्यापोरिति ह्रस्वः, अतिशयेन स उपमश्रवाः उपमश्रवस्तमः, तं स्वान्नोपमितसर्वोन्नतमम्; ज्येष्ठराजम्—ज्येष्ठानां प्रशस्यतमानां देवानां राजानं भूपतिं सर्वदेवोत्तमम्; ब्रह्मणाम्—मन्त्राणां स्वामिनम्; त्वा—त्वाम्; हवामहे—वयं स्तोतारः अस्मिन् कर्मणि आह्वयामः; नः—अस्माकं स्तुतिम् शृण्वन्—आकर्णयन्; ऊतिभिः—रक्षणैः, सादनम्—सदनं यज्ञशालां हृदयं वा; सीद—आसीद, आगत्य उपविशेत्यर्थः।

'हे कर्मोंके पालक ! आप विद्याधरादि देवगणोके पति, त्रिकालदर्शी, अमितान्नवान्, सकलदेवोत्तम, मन्त्रोके स्वामी हैं। हम सब स्तोता आपका आह्वान करते हैं। आप हमारी स्तुति सुनकर रक्षण-शक्तिसहित हमारी यज्ञशालामे अथवा हृदयमे पधारकर विराजमान होइये।'

'नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमो नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः ॥'

(शुक्लयजु० १६ । २५)

गणेभ्यः—देवानुचरा भूतविशेषा गणास्तेभ्यः; गणपतिभ्यः—विश्वनाथमहाकालेश्वरादिवत् पीठभेदेन भिन्नेभ्यो गजवदनेभ्यः; वः—युष्मभ्यम् 'च'—समुच्चये, नमो नमः; इति द्विरुक्तिरादरार्थो; व्रातः—सङ्घः; व्रातपतयः—यूथपतयस्तेभ्यः; गृत्साः—मेधाविनः; गृत्सपतयः—मेधाविपतयश्च तेभ्यः; विलक्षणं रूपं येषां ते विरूपाः—दिगम्बरपरमहंसजटिलास्तुरीयाश्रमिणस्तेभ्यः; विश्वम्—सर्वं रूपं येषां ते विश्वरूपाः, ब्रह्माद्वैतदर्शनेन सर्वेष्वात्मभावमापन्ना ज्ञानिनः तेभ्यः। शिष्टं समानम्।

'देवानुचर गण-विशेषोको, विश्वनाथ महाकालेश्वर आदिकी तरह पीठभेदसे विभिन्न गणपतियोंको, सङ्घोको, सङ्घपतियोंको, बुद्धिशालियोको, बुद्धिशालियोंके परिपालन करनेवाले उनके स्वामियोको, दिगम्बर-परमहंस-जटिलादि चतुर्थाश्रमियोको तथा सकलात्मदर्शियोंको नमस्कार हो।'

'गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ॥'

(शुक्लयजु० २३ । १९)

गणानाम्—स्वस्वकार्यविशेषेषु नियुक्तानां शिवानुचराणां सम्बन्धिनम्, स्वामिपुत्रत्वाद् आदरणीयम्; अपि वा गणानाम्—गणदेवानां विश्वेषां देवानाम् मरुताम् एकोनपञ्चाशत्संख्यानाम्, अष्टानां वसूनाम्, एकादशानां रुद्राणाम्, द्वादशानामादित्यानां मान्यम्, नूतनकार्यारम्भे पूजनीयं विघ्नहर्तृत्वात्; गणपतिम्—गणपतिसंज्ञं शिवतनयं गणेशम्; त्वा—त्वाम्; हवामहे—आह्वयामः। प्रियाणाम्—अभीष्टानां सम्बन्धिनं तेषां दातारम्; प्रियपतिम्—प्रियाणां प्रेमास्पदधनसुतधान्यादीनां पतिं पालकम्, न केवलं तेषां दातारम् दत्तानां रक्षकञ्चेति भावः; त्वा—त्वाम्; हवामहे आह्वयामः। निधीनाम्—सुखनिधीनां दयानिधीनां वा मध्ये निधिपतिम्—निधीनां पूर्वोक्तानां पतिम् मुख्यम्। निरतिशयसुखनिधिं दयालुशिरोमणिञ्चेति तात्पर्यम्। नवानां निधीनां शास्त्रप्रसिद्धानां स्वामिनमिति वा। किं बहुना वसो—वसति यस्मिन् विश्वम्, वासयति विश्वम्, सर्वत्र वसतीति वा वसुः, तत्सम्बोधने वसो ! विश्वाधार ! विश्ववासनहेतो ! विश्वव्यापक ! वा त्वम्; मम—त्वत्पादपद्मप्रपन्नस्य त्वदाराधकस्य त्राता भवेति शेषः। अहम् उपासकः; गर्भधः—गर्भे स्वोदरमध्ये विश्वं दधातीति गर्भधः, स्वोदरवर्तिचतुर्दशभुवनः, तम् जगत्स्वामिनम्, अतएव लम्बोदरम्; अजानि—गच्छेयम्, प्राप्नुयाम्, लभेय। गर्भधम्—गर्भे हृदयमध्ये ध्यानेन स्थापयतीति गर्भधस्त्वदुपासकस्तम्, हृदि दिवानिशं तव ध्यातारम् माम्; आ अजासि—आगच्छ। मम मनस्याविर्भूतो भव। सततं तिष्ठेति भावः।'

'अपने-अपने कर्तव्य-विशेषमे नियुक्त शिवानुचरोके स्वामिपुत्र होनेसे सत्करणीय, अथवा विश्वेदेव अर्थात् उन्चास मरुद्गण, आठ वसु, बारह आदित्य तथा ग्यारह रुद्र—इन गणदेवोमे विघ्नविघातक होनेसे नूतन कार्यारम्भमे पूजनीय शिवपुत्र गणेशका हम साधक आह्वान करते हैं। अभीष्ट पुत्र, धन-धान्यादिके प्रदाता—दाता ही नहीं, अपितु उन अभीष्ट पुत्रादिकोंके रक्षक आपका हम आह्वान करते हैं। सुखनिधि एवं दयानिधि देवोके मध्यमे निरतिशयानन्दस्वामी एवं दयालु-शिरोमणि, अथवा शास्त्रप्रख्यात नव-निधियोके पालक आपका हम आह्वान करते हैं। अधिक क्या कहें,

जगदाधार, जगत्के निवास-कारण सर्वव्यापक देव ! आप मेरे रक्षक हो। मैं उदरके मध्यमे चतुर्दश भुवनोंके धारक, अतएव लम्बोदर आपको प्राप्त करूँ। आप भी अपने हृदयमे अहर्निश ध्यानद्वारा आपको स्थापित करनेवाले, दूसरे शब्दोंमें आपके सतत ध्याता मुझ उपासकके पास आवें अर्थात् मेरे हृदयमें आविर्भूत होवें एवं सतत स्थिर रहें। आपका सतत संनिधान ही मुझे अभीष्ट है।'

श्रीगणपतिदेवका ध्यातव्य स्वरूप

खर्वं स्थूलतनुं गजेन्द्रवदनं लम्बोदरं सुन्दरं
प्रस्यन्दन्मदगन्धलुब्धमधुपव्यालोलगण्डस्थलम्।
दन्ताघातविदारितारिरुधिरैः सिन्दूरशोभाकरं
वन्दे शैलसुतासुतं गणपतिं सिद्धिप्रदं कर्मसु॥

अर्थात्—श्रीगणेशजीकी आकृति छोटी है। उनका शरीर स्थूल है, मुख गजेन्द्रका है, उदर विशाल और सुन्दर है। उनके गण्डस्थलोंपरसे मदधारा स्रवित हो रही है और भ्रमरगण चारों ओरसे उनपर एकत्रित हो रहे हैं। वे अपने दाँतसे शत्रुओंका विदारण कर उनके खूनका शरीरमे अवलेपन कर सिन्दूरके अवलेपनकी-सी शोभाको धारण किये हुए हैं। अष्टसिद्धियाँ और नवनिधियाँ साक्षात् विग्रह धारणकर उनकी सेवामें उपस्थित हैं। देवगण श्रीपार्वतीजीके पुत्र इन्हीं श्रीगणेशजीकी अहर्निश सेवा करते हुए उनकी कृपादृष्टिकी याचना किया करते हैं।

शास्त्रोंमें कहा गया है कि गणेशजी परमात्माकी बुद्धिरूप हैं। इसलिये भावुक उपासक गणेशजीके सगुण स्वरूपमें संयम करता हुआ उनकी समष्टि बुद्धिवृत्तिमें चित्तको लीन कर लेता है और सब प्रकारके दिव्य ऐश्वर्योंको प्राप्तकर मुक्त हो जाता है।

रहस्य—गीतामें दो प्रकारकी बुद्धियोंका वर्णन आता है। जो बुद्धि संसारके द्वैतभावको नष्ट कर अद्वैतभावरूप सच्चिदानन्द परब्रह्ममें अवस्थान करा दे, वही 'व्यवसायात्मिका बुद्धि' अर्थात् सुबुद्धि कही जाती है और जो बुद्धि परमात्माको विषय न करती हुई अद्वैतमय परमतत्त्वमें समस्त संसार-प्रपञ्चका विस्तार करे, वह 'अव्यवसायात्मिका बुद्धि' अर्थात् कुबुद्धि कही जाती है। व्यवसायात्मिका बुद्धिमें प्रपञ्च क्षीण होकर अद्वैतभावमें लीन हो जाता है, इसी भावको गणेशजीके खर्वशरीरसे सूचित किया गया है। व्यवसायात्मिका बुद्धिके उदय होते ही योगीमें सब प्रकारकी ऋद्धि-सिद्धियाँ आ उपस्थित होती हैं। परमात्मा तो सदा ही सुबुद्धिवाले हैं, इसलिये उनमें नित्य ही ऐश्वर्य विद्यमान रहा करता है; इस भावको प्रकट करनेके लिये गणेशजीके पास हर समय ऋद्धि-सिद्धि उपस्थित रहती हैं। व्यवसायात्मिका बुद्धि सारग्राहिणी और शक्तिशालिनी होती है। इस भावको गणपतिजीके स्थूल-विग्रहसे सूचित किया गया है।

प्रकृतिके कार्यभूत परमात्माके राज्यरूप जगत्का नियन्त्रण करनेके लिये परमात्माकी विभूतिरूप देवगण जगत्के भिन्न-भिन्न विभागोंमें नियुक्त हैं। संसारका कोई भी भाव देव-अधिकारसे रिक्त नहीं; सब पदार्थोंकी नियामक चेतन-सत्ता उनमें देवरूपसे विद्यमान है—इस सम्बन्धको प्रकट करनेके लिये मनुष्येतर प्राणीको उनका वाहन बनाया गया है या किसी प्राणीके अङ्गको उनके शरीरमें दिखलाया गया है। मनुष्येतर प्राणियोंमें हाथी सबसे अधिक बुद्धिमान् और गम्भीर स्वभावका है। अप्रकटरूपसे बुद्धिसत्त्व सबमें विद्यमान है। इस समष्टि-बुद्धिके अधिष्ठाता देव गणेशजी हैं—इस भावको सूचित करनेके लिये ही श्रीगणपतिजी गजवदन हैं। 'व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।' (गीता २। ४१)—भगवान्की इस उक्तिके अनुसार सुबुद्धि एक है और वह सदा अद्वैतभावकी ओर ही प्रवाहित होती रहती है। गणेशजी इसी बुद्धिके अधिष्ठाता देव हैं, इस भावको सूचित करनेके लिये वे 'एकरदन' हैं। अव्यवसायात्मिका बुद्धि विस्तारवाली होती हुई भी गम्भीरतासे विहीन होती है, परंतु सुबुद्धिमें ऐसा नहीं; वह गाम्भीर्य-भावयुक्त है—इस भावको सूचित करनेके लिये गणेशजी 'लम्बोदर' हैं। व्यवसायात्मिका बुद्धि-द्वारा ही ज्ञानामृतका क्षरण होता है। उसका पान करनेके लिये ही मुमुक्षुओंको भ्रमरोंके रूपसे सूचित किया गया है। सुबुद्धिमें ही अद्वैत-भावकी निष्ठा होती है। यह अद्वैत-भाव ही उसका अप्रतिहत गतिवाला अस्त्र है। सुबुद्धिमें अद्वैत-भावके उदय होते ही प्रकृतिके प्रपञ्च-विस्तारक रजोगुण और तमोगुण मृत-प्राय हो जाते हैं। इन दोनों गुणोंके कार्यभूत लोभ-मोह-मद-मात्सर्य-अहंकारादि विनष्ट हो जाते हैं। इससे ज्ञात होता है कि सुबुद्धि इन सबकी घातिका है। इस भावको सूचित करनेके लिये गणेशजीने दन्त-प्रहारसे अपने विरोधियोंका वध करके उनके खूनको अपने वदनपर लगा रखा है। राजस और तामस धर्मोंके विनष्ट हो जानेपर जिस प्रकार अद्वैतनिष्ठ महापुरुषकी शोभा बढ़ जाया करती है और उसमें ब्रह्मवर्चस्

प्रकाशित होकर प्रातःकालके सूर्यके समान उसका शरीर कान्तिमान् हो जाया करता है, उसी प्रकार गणेशजीका शरीर खूनके लगनेसे भयानक न प्रतीत होकर अतिसुन्दर प्रतीत होता है। हिमवान्-कुमारी श्रीपार्वतीजी ही आद्या प्रकृति है। उसी प्रकृतिके सात्त्विक अंशसे व्यवसायात्मिका बुद्धिकी उत्पत्ति होती है, इसी भावको सूचित करनेके लिये शास्त्रोंमे गणेशजीका जन्म श्रीपार्वतीजीसे हुआ बताया गया है। अव्यवसायात्मिका—कुतर्क-बुद्धिको ही गणेशजीके वाहन मूषकरूपसे दर्शाया गया है। सुबुद्धि ही कुतर्क-बुद्धिको दबानेमें समर्थ है। जिस प्रकार चूहा वस्तुके गुणोका ध्यान न रखकर उसे काटकर नष्ट कर देता है, उसी प्रकार कुतर्क-बुद्धि भी भावके सारासारको न देखती हुई उसे खण्डित कर व्यर्थ बना देती है। इसीलिये सुबुद्धिरूप गणेशजीका वाहन कुतर्करूप चूहा बनाया गया है। जिस महापुरुषमे सुबुद्धि जितनी विशाल होती है, उसकी अपेक्षासे उसमे कुतर्क-बुद्धि भी उतनी ही स्वल्प होती है, इस भावको सूचित करनेके लिये गणेशजी उतने ही विशालकाय और उनका वाहन चूहा उतना ही छोटा है। यही गणपतिके स्वरूपका संक्षेपमे रहस्य है।

अर्वाचीन सज्जनोकी वेदमे गणपति—नामके अनुल्लेखकी भ्रान्ति उपर्युक्त वेद-मन्त्रोके प्रमाणसे दूर की गयी। साथ ही गणपतिके ध्येयस्वरूप और उसके गूढ़ रहस्यका परिचय पाठकोको दिया गया।

अगजाननपद्मार्कं गजाननमहर्निशम्।
अनेकदं तं भक्तानामेकदन्तमुपास्महे॥

श्रीगणेश—परम देवता

(श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी महाराज)

स्मार्त पञ्चदेवोपासक होते हैं। ये पाँच देव—१—श्रीविष्णु, २—श्रीशिव, ३—श्रीशक्ति, ४—श्रीसूर्य और ५—श्रीगणपति है। इनमें जो स्मार्त वैष्णव हैं, वे विष्णुको ही मुख्य अङ्गी और शेष चारोको उनके अङ्ग मानकर पूजन करते है। इसी प्रकार स्मार्त शैव शिवको, शाक्त शक्तिको, सौर सूर्यको और गाणपत्य गणेशजीको मुख्य मानते हैं। पूजा वे पाँचोंकी करते है। वास्तवमे देखा जाय तो नाम-रूपकी विभिन्नता होनेपर भी तत्त्वतः ये पाँचो एक ही है; क्योंकि मुख्य तत्त्व तो एक अद्वैत है, किंतु उपासकोंकी भावनाके अनुसार लोग उसी एकको ही विविध नाम-रूपोसे पूजते, मानते और स्मरण करते हैं—'रूपैस्तु तैरपि विभासि यतस्त्वमेकः।'

'गणेश'-शब्दका अर्थ है—'जो समस्त जीव-जातिके 'ईश'—स्वामी हो—'गणानां जीवजातानां य. ईशः—स्वामी स गणेश.।' इन भगवान् गणपतिका सृष्टिके आदिमे प्रादुर्भाव हुआ। कुछ लोगोका कहना है कि 'ये अनार्योंके देवता है। आर्योंने अनार्योंको अपनेमे मिलानेके लिये इन्हें पञ्चदेवोंमे स्वीकार कर लिया।' ऐसी विचारधारा उन विदेशियोकी है, जो आर्योंको भारतके बाहरसे आया मानते हैं, जो कि असभ्यावस्थामे कुछ ही सहस्र वर्षपूर्व विदेशोसे आकर भारतमे बसे और शनैः-शनैः सभ्य होते गये। ये भ्रान्त विचार है। हमारे वेद-शास्त्रोके अनुसार तो सृष्टिका आरम्भ ही पुष्करसे हुआ। आर्य सदासे यहींके निवासी हैं। वे आरम्भमे असभ्य नहीं, पूर्ण सभ्य थे। वसिष्ठ, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य और क्रतु—ये सब पूर्ण पुरुष परम सभ्य थे। राम, कृष्ण, परशुराम आदि अवतार यहीं अवतरित हुए। न जाने कितने सत्ययुग त्रेता, द्वापर और कलियुग बीत गये, हमारे यहाँ आर्य-अनार्यका कोई प्रश्न ही नहीं रहा। दो तरहके मनुष्य होते थे—नगर-निवासी और वनवासी। दोनो स्वतन्त्र तथा एक दूसरेके पूरक होते थे। गणपति अनादिकालसे आर्योंके परम पूजनीय देव रहे हैं। समस्त मङ्गलकार्योंमे सबसे प्रथम गणेशजीकी पूजा होती है। शिवजीका जब पार्वतीजीके साथ विवाह हुआ तो सर्वप्रथम गणेश-पूजन तब भी हुआ।

कुछ लोग शङ्का करते हैं—'गणेशजी तो शिवजीके पुत्र हैं; उनके विवाहमे तो वे पैदा भी नहीं हुए थे; फिर उनका पूजन कैसे हुआ?'

वास्तवमे गणेशजी किसीके पुत्र नहीं। वे अज, अनादि एवं अनन्त है। ये जो शिवजीके पुत्र गणेश हुए, वे तो उन गणपतिके अवतार है। जैसे विष्णु अनादि है; राम, कृष्ण, नृसिंह, वामन, हयग्रीव—ये सब उनके अवतार हैं। मनु, प्रजापति, रघु, अज—ये सभी रामकी उपासना करते थे।

दशरथ-नन्दन राम उन अनादि रामके अवतार हैं। इसी प्रकार शिव-तनय गणपति उन गणेशके अवतार हैं। इस सम्बन्धकी पुराणोंमें अनेकों कथाएँ हैं।

'ब्रह्मवैवर्तपुराणमें बताया गया है कि एक बार भगवान् श्रीकृष्ण वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारणकर पार्वतीजीके समीप गये और उनकी स्तुति करके कहने लगे—'हे देवि! गणेश-रूप जो श्रीकृष्ण है, वे कल्प-कल्पमें तुम्हारे पुत्र होते हैं। अब वे शिशु होकर शीघ्र ही तुम्हारी गोदमें आयेंगे।' ऐसा कहकर विप्ररूपधारी श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये। तब एक अत्यन्त सुन्दर, सुकुमार, सर्वाङ्गमनोहर शिशु माँ पार्वतीजीकी शय्यापर प्रादुर्भूत हो गया। बालक इतना सुन्दर और सुगठित शरीरका था कि उसे देखनेके लिये समस्त ऋषि-मुनि, ब्रह्मा-विष्णु आदि देवतागण आने लगे। एक दिन उस सुन्दर शिशुको देखने शनिदेव भी आये। शनिदेवका पत्नीने किसी बातसे रुष्ट होकर उन्हें शाप दे दिया था कि 'तुम जिसकी ओर देखोगे, उसका सिर धड़से पृथक् हो जायगा।' अत: वे आकर चुपचाप पार्वतीजीके समीप बैठ गये। पार्वती ने बार-बार कहा—'शनि! तुम मेरे पुत्रको देखते क्यों नहीं? देखो, कितना सुन्दर सुललित शिशु है।' शनिने बहुत कहा—'माँ! मेरी घरवालीने मुझे शाप दे दिया है, जिसके कारण मेरी दृष्टि अनिष्ट कारक हो सकती है।' किंतु माँने उनकी बात मानी नहीं; देखनेको कहती ही रहीं। शनिकी भी इच्छा, उस शिशुको देखनेकी हुई। ज्यों ही उन्होंने गणेशकी ओर देखा, त्यों ही उनका सिर धड़से पृथक हो गया। इससे सर्वत्र हाहाकार मच गया। तब भगवान् विष्णु पुष्पभद्रा-नदीके अरण्यमें एक गजशिशुका मस्तक काटकर लाये और गणेशजीके मस्तकपर जमा दिया। तभीसे गणेशजी 'गजानन' हो गये।

स्कन्दपुराणमें लिखा है—'माँ पार्वतीने अपने उबटनकी बत्तियोंसे एक शिशु बनाकर उसे जीवित करके पुत्र मान लिया और कहा—'मैं स्नान कर रही हूँ, तुम किसीको भीतर मत आने देना।' इसी बीच शिवजी आ गये। इन्होंने शिवजीको रोका। दोनोंमें घोर युद्ध हुआ। शिवजीने इनका मस्तक काट लिया। इसे सुनकर पार्वतीजी 'पुत्र-पुत्र' कहकर बहुत रुदन करने लगीं। उसी बीच गजासुर शिवजीसे लड़ने आया। शिवजीने उसका मस्तक काटकर इनके धड़पर जमा दिया। इससे ये 'गजानन' हुए।

इसी प्रकारकी पुराणोंमें अनेक कथाएँ हैं। कल्पभेदसे ये सभी सत्य हैं। गणेश परम देवता हैं। इनके गणेश, गणपति, विनायक, सुमुख, एकदन्त, गणाधिप, हेरम्ब, लम्बोदर, विकट, धूम्रकेतु, गजानन, विघ्नेश, परशुपाणि, गजास्य, शूर्पकर्ण तथा मूषकध्वज आदि अनेक नाम हैं।

(छप्पय)

सूत-परिस बड कान भक्त अनुकम्पा-कारक।
अच्युत, जगके हेतु, सृष्टिके आदि प्रवर्तक॥
प्रकृति पुरुष तें परे ध्यान गनपति को करिहैं।
नमैं सकल तिनि विघ्न अवसि भव-सागर तरिहैं॥
पाठ-हवन-पूजन करें, पाप रहित होवैं भगत।
सब विघ्ननि तैं छूटिकैं, लेहिं जनम नहिं पुनि जगत॥*

देव-देव ! भक्तनके मानसमें आइये !

मंत्रमय गनेस विघन-हरन सदा गाइये।
प्रथम जाहि गाय-गाय सकल सिधि पाइये॥
मंत्रको सरूप सोई गजमुख ठहराइये।
मंत्र-भाग चारि भुजा भालचंद्र ध्याइये॥
अंकुश-सी दूब ज्ञान रूप सो बढ़ाइये।
मदहर सिंदूर शीश, मोदक-फल भाइये॥
भक्तमाल एकदंत केवल सुखदाइये।
देव-देव ! भक्तन के मानसमें आइये॥

(काष्ठजिह्वास्वामी-'वैराग्य-प्रदीप' १—४)

* पूज्य महाराजजीने अपने लेखमें श्रीगणपति-उपनिषद्का सार बड़े ही सुन्दर ढंगसे दिया था, पर उक्त उपनिषद्का सार अन्य महात्माओंके लेखोंमें विस्तारसे आ जानेके कारण उसे यहाँ नहीं दिया गया है—इस विवशताके लिये हम क्षमा-प्रार्थी हैं। —सम्पादक

श्रीगणेश तत्त्वतः राम, कृष्ण, शिव आदिसे अभिन्न हैं

(नित्यलीलालीन परमश्रद्धेय श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

भगवान्‌का वास्तविक स्वरूप कैसा है, इस बातको तो वे ही जानते हैं, परंतु इतना तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि भगवान् अनेक रूपों और नामोंसे प्रसिद्ध होनेपर भी यथार्थमें एक ही हैं; भगवान् या सत्य कदापि दो नहीं हो सकते। भगवान्‌के अनन्त रूप, अनन्त नाम और अनन्त लीलाएँ हैं। वे भिन्न-भिन्न स्थलों और अवसरोंपर भिन्न-भिन्न नाम-रूपोंमें अपनेको प्रकाशित करते हैं। भक्त अपनी-अपनी रुचिके अनुसार भगवान्‌के भिन्न-भिन्न स्वरूपोंकी उपासना करते हैं और अपने इष्टरूपमें ही उनके दर्शन प्राप्तकर कृतार्थ होते हैं। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि एक भक्तका उपास्य स्वरूप दूसरे भक्तके उपास्य स्वरूपसे पृथक् होनेके कारण दोनों स्वरूपोंकी मूल एकतामें कोई भेद है। वे ही ब्रह्म हैं, वे ही राम हैं, वे ही कृष्ण हैं; वे ही शिव हैं, वे ही विष्णु हैं, वे ही सच्चिदानन्द हैं, वे ही माँ जगज्जननी हैं, वे ही सूर्य हैं और वे ही गणेश हैं।

जो भक्त इस तत्त्वको जानता है, वह अपने इष्ट रूपकी उपासनामें अनन्यभावसे संलग्न रहता हुआ भी अन्यान्य सभी भगवत्-स्वरूपोंको अपने ही इष्टदेवके रूप मानता है, इसलिये वह किसीका भी विरोध नहीं करता। वह अनन्य श्रीकृष्णोपासक होकर भी मानता है कि 'मेरे ही मुरलीधर श्यामसुन्दर भगवान् कहीं श्रीराम-स्वरूपमें, कहीं शिव-स्वरूपमें, कहीं गणेश-स्वरूपमें, कहीं माँ कालीके स्वरूपमें और कहीं निर्लेप निराकार ब्रह्मरूपमें उपासित होते हैं, मेरे ही श्यामसुन्दर अव्यक्तरूपसे समस्त विश्व-ब्रह्माण्डमें नित्य एकरस व्याप्त हैं; वे ही मेरे नन्दनन्दन त्रिकालातीत, भूमा, सच्चिदानन्दघन ब्रह्म हैं; वे ही मेरे पुरुषोत्तम आत्मरूपसे समस्त जीव-शरीरोंमें स्थित रहकर उनका जीवत्व सिद्ध कर रहे हैं; वे ही समय-समयपर भिन्न-भिन्न रूपोंमें अवतीर्ण होकर संत-भक्तोंको सुख देते और धर्मकी संस्थापना करते हैं और वे ही जगत्‌के पृथक्-पृथक् उपासक-समुदायोंके द्वारा पृथक्-पृथक् रूप-गुण-भावसम्पन्न होकर उनकी पूजा ग्रहण करते हैं। प्रत्येक परमाणुमें उन्हींका नित्य निवास है।' इसी प्रकार अनन्य श्रीरामोपासक, अनन्य श्रीशिवोपासक और श्रीगणेशोपासकोंको भी—सबको अपने ही प्रभुका स्वरूप, विस्तार और ऐश्वर्य समझना चाहिये। जो मनुष्य दूसरेके उपास्य इष्टदेवको अपने प्रभुसे भिन्न मानता है, वह प्रकारान्तरसे अपने ही भगवान्‌को छोटा बनाकर उनका अपमान करता है। वह असीमको ससीम, अनन्तको स्वल्प, व्यापकको एकदेशी और विश्वपूज्यको क्षुद्रसम्प्रदायपूज्य बनाता है। केवल हिंदुओंके ही नहीं, समस्त विश्वकी विभिन्न जातियोंके पूज्य परमात्मदेव यथार्थमें एक ही सत्य तत्त्व हैं। ये सारे भेद तो देश, काल, पात्र, रुचि, परिस्थिति आदिके भेदसे हैं, जो भगवत्कृपासे भगवान्‌की प्राप्ति होनेके बाद आप ही मिट जाते हैं, अतएव अपने इष्टस्वरूपका अनन्य उपासक रहते हुए ही वस्तुगत भेदको भुलाकर सबमें, सर्वत्र, सब समय परमात्माके दर्शन करने चाहिये। यह समस्त चराचर विश्व उन्हीं भगवान्‌का शरीर है, उन्हींका स्वरूप है—यह मानकर कर्तव्य-बोधसे जीवमात्रकी सेवा करके भगवान्‌को प्रसन्न करना चाहिये। सम्प्रदायभेदके कारण एक-दूसरेके उपास्यदेवकी निन्दा करना अपराध है।

अतएव सारे भेदमूलक विरोधी द्वेष-भावोंको त्यागकर अपनी-अपनी भावना और मान्यताके अनुसार भगवान्‌की भक्ति करनी चाहिये। उपासना करते-करते जब भगवान्‌की कृपाका अनुभव होगा, तब उनके यथार्थ स्वरूपका अनुभव आप ही हो जायगा। भगवान्‌का वह रूप कल्पनातीत है। मनुष्यकी बुद्धि वहाँतक पहुँच ही नहीं पाती। निराकार या साकार भगवान्‌के जिन-जिन स्वरूपोंका वाणीसे वर्णन या मनसे मनन किया जाता है, वे सब शाखाचन्द्र-न्यायसे भगवान्‌का लक्ष्य करानेवाले हैं; यथार्थ नहीं। भगवान्‌का स्वरूप तो सर्वथा अनिर्वचनीय है। इन स्वरूपोंकी वास्तविक निष्काम उपासनासे एक दिन अवश्य ही भगवत्कृपासे यथार्थ स्वरूपकी उपलब्धि कर भक्त-जीवन धन्य और कृतार्थ हो जायगा। फिर भेदकी सारी गाँठें अपने-आप ही पटापट टूट जायँगी। परंतु इस लक्ष्यके साधकको पहलेसे ही सावधान रहना चाहिये। कहीं विश्वव्यापी भगवान्‌को अल्प बनाकर हम उनकी तामसी पूजा करनेवाले न बन जायँ; कहीं असीमको सीमाबद्ध कर हम उनका तिरस्कार न कर बैठें। भगवान् महान्-से-महान् और अणु से अणु हैं, त्रिकालमें नित्य स्थित और त्रिकालातीत

हैं; तीनों लोकोंमें व्याप्त और तीनोंसे परे हैं। सब कुछ उनमें हैं और वे सबमें हैं। बस, वे ही वे हैं; उनकी महिमा उन्हींको ज्ञात है, उनका ज्ञान उन्हींको है, उनका स्वरूप-भेद उन्हींमें है।

हमारा कर्तव्य तो विनम्र-भावसे सदा-सर्वदा उनके चरणोंमें पड़े रहकर उनके कृपा-कटाक्षकी ओर सतृष्ण दृष्टिसे निहारते रहना ही है। जब वे कृपा करके अपना स्वरूप प्रकट करेंगे, तभी हम उन्हें जान सकेंगे। इसके सिवा उन्हें जाननेका हमारे लिये और कोई भी सहज उपाय नहीं है। परंतु इसके लिये हमें कुछ तैयारी करनी होगी; मनका मैल दूर करना होगा; सारे जगत्में उनका दीदार देखना होगा; सभी धर्मों और सम्प्रदायोंमें उनकी छायाका प्रत्यक्ष करना पड़ेगा। जगत्में कौन ऐसा है, जिसका किसी प्रकारसे भी उन्हें स्वीकार किये बिना छुटकारा हो सके। भिन्न-भिन्न दिशाओंसे आनेवाली नाना नदियाँ एक ही समुद्रकी ओर दौड़ती हैं। इसी तरह सभीको सुखस्वरूप भगवान्‌की ओर दौड़ना पड़ता है। नास्तिकको भी किसी-न-किसी प्रकारसे उनकी सत्ता स्वीकार करनी ही पड़ती है; फिर दूसरोंकी तो बात ही क्या है? इसलिये सबमें उन्हें देखनेकी कोशिश करनी चाहिये।

＊ ＊ ＊ ＊

गणेशजीके हाथीके सिर और मूषककी सवारीपर लोग शङ्का करते हैं। इसका कारण यह है कि वे यही समझते हैं कि यहाँके मनुष्य-जैसा उनका धड़ होगा, यहाँके हाथी-जैसा उनका मस्तक होगा और यहाँके छोटे-से चूहे-जैसी उनकी सवारी होगी। वे अपने कल्पित अनुमानको सत्य मानकर ही यह शङ्का उठाते हैं। पर यदि किसीको यह बात ठीक-ठीक जाननी हो तो उसे भक्ति-भावसे श्रीगणेशकी आराधना करनी चाहिये। वे ही अपने धड़, मस्तक और सवारीका यथार्थ रहस्य बतायेंगे। उस समय कोई शङ्का नहीं रह जायगी। आपको सोचना चाहिये कि जब गणेशजी साक्षात् महेश्वरके पुत्र हैं, तब उनका शरीर कैसा होगा। भगवान् शंकरको 'कृत्तिवास' कहा गया है। वे हाथीका चमड़ा लंगोटकी तरह धारण करते हैं। इससे हाथीकी अपेक्षा उनके शरीरका बड़ा होना स्वतः सिद्ध है। इसी प्रकार श्रीगणेशका शरीर भी होगा। उनके मस्तकपर हाथीके बच्चेका ही मस्तक जोड़ा गया था। जब गणेशजीने सोच-समझकर चूहेको अपना वाहन बनाया है, तब वह चूहा भी वैसा होगा, जो उनका भार वहन कर सके।

भगवान् विष्णुका वाहन गरुड़ है। गरुड़ एक पक्षीका नाम है। क्या जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेवाले भगवान् विष्णुका वाहन एक पक्षी हो सकता है? किंतु नहीं, गरुड़ साधारण पक्षी नहीं हैं। वे ऐरावत-जैसे बड़े-बड़े गजराजोंको अपने पंजेमें दबाकर हजारों योजन उड़नेकी शक्ति रखते हैं। हनुमान्‌जी वानर ही कहे जाते हैं, जिनके एक मुक्केकी मारसे त्रिभुवनविजयी रावणको भी मूर्छा आ गयी थी। क्या आजकलके साधारण वानरोंसे उनकी तुलना की जायगी?

श्रीगणेशका आधिदैविक रूप जैसा विशाल है, उसके अनुरूप ही उनका धड़, मस्तक और वाहन आदि सभी वस्तुएँ हैं।

आध्यात्मिक भावमें वे सबके आत्मा हैं, अन्तर्यामी हैं और सर्वत्र व्यापक हैं। इन्द्रियोंके स्वामी होनेसे वे 'गणेश' हैं। मूषकका अर्थ है—चोरी करनेवाला। मनुष्यके भीतर जो चोरी आदि पापकी वृत्तियाँ हैं, उनका प्रतीक है—मूषक। गणेशजी उस मूषकपर चढ़ते हैं, अर्थात् उसपर चरण-प्रहार करके उसे दबाये रहते हैं। गणेशजीके चिन्तन और स्मरणसे भीतरके दुर्गुण दब जाते हैं। गणेशका अर्थ सभी प्रकारके गणोंका स्वामी भी होता है। किसी भी संघके सभापति या राजा भी गणेशके स्वरूप हैं। वहाँ भी मूषकवाहनका अर्थ दुष्टों एवं दुर्वृत्तियोंका दमन ही है। गजमुख होना भी रहस्यसे शून्य नहीं है। 'गज'का अर्थ होता है—आठ। जो आठों दिशाओंकी ओर मुख रखे, वह 'गजमुख' है। यह गुण प्रत्येक स्वामी या राजामें होना अभीष्ट है। गणेशजी विभु एवं सर्वज्ञ होनेसे आठों पहरकी और आठों दिशाओंकी खबर रखते हैं, इसलिये वे 'गजमुख' हैं। जो उन्हींकी भाँति 'गजमुख' और 'मूषकवाहन' होगा, वह सिद्धि-बुद्धियोंका स्वामी बन सकता है। यह प्रसिद्धि है कि ऋद्धि और सिद्धि—दोनों गणेशजीकी सेवामें खड़ी होकर उन्हें चँवर डुलाती रहती हैं।

पञ्चदेवोपासनामें श्रीगणेशका स्थान

(महामण्डलेश्वर अनन्तश्री स्वामी भजनानन्दजी सरस्वती महाराज)

शास्त्रीय प्रमाणोंसे पञ्चदेवोंकी उपासना सम्पूर्ण कर्मोंमें प्रख्यात है। 'शब्दकल्पद्रुम'कोशमें लिखा है—

आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रं च केशवम्।
पञ्चदैवतमित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत्॥

पञ्चदेवोंकी उपासनाका रहस्य पञ्चभूतोंके साथ सम्बन्धित है। पञ्चभूतोंमें पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश प्रख्यात हैं और इन्हींके आधिपत्यके कारणसे आदित्य, गणनाथ (गणेश), देवी, रुद्र और केशव—ये पञ्चदेव भी पूजनीय प्रख्यात हैं। एक-एक तत्त्वका एक-एक देवता स्वामी है—

आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः॥

क्रम निम्न प्रकार है—

महाभूत	अधिपति
१—क्षिति (पृथ्वी)	शिव
२—अप् (जल)	गणेश
३—तेज (अग्नि)	शक्ति (महेश्वरी)
४—मरुत् (वायु)	सूर्य (अग्नि)
५—व्योम (आकाश)	विष्णु

यह विषय गम्भीरतासे मननीय तथा गवेषणीय है। इस विषयमें अल्प ही संकेत दिये जा सकते हैं। भगवान् श्रीशिवके पृथ्वीतत्त्वके अधिपति होनेके कारण उनकी पार्थिव-पूजाका विधान है। भगवान् विष्णुके आकाशतत्त्वके अधिपति होनेके कारण उनकी शब्दोंद्वारा स्तुतिका विधान है। भगवती देवीके अग्नि-तत्त्वका अधिपति होनेके कारण उनका अग्निकुण्डमें हवनादिके द्वारा पूजाका विधान है। श्रीगणेशजीके जलतत्त्वके अधिपति होनेके कारण उनकी सर्वप्रथम पूजाका विधान है। मनुका कथन है—'अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्।' (मनुस्मृति १। ८) इस प्रमाणसे सृष्टिके आदिमें एकमात्र वर्तमान जलका अधिपति गणेश हैं। अतः जितने भी अनुष्ठान किये जायँ, उनके आरम्भमें गणेश-पूजन अत्यन्त आवश्यक है। सूर्यके वायुतत्त्वके अधिपति होनेके कारण प्राणकी रक्षाके लिये 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' (यजुर्वेद ७। ४२) इस प्रमाणसे नमस्कारादिद्वारा पूजनका विधान है।

'मन्त्र-योग-संहिता'में कहा गया है—

'मानवानां प्रकृतयः पञ्चधा परिकीर्तिताः।
यतो निरूप्यते सर्गः पञ्चभूतात्मकैर्बुधैः॥
भिन्ना यद्यपि भूतानां प्रकृतिः प्रकृतेर्वशात्।
तथापि पञ्चतत्त्वानामनुसारेण तत्त्ववित्॥
प्रत्येकतत्त्वप्राचुर्यं विमृश्य विधिपूर्वकम्।
उपासनाधिकारस्य पञ्चभेदमवर्णयत्॥

तात्पर्य यह है कि समस्त जगत् पञ्चभूतात्मक है। इसलिये तत्सम्बन्धी पञ्चदेवोंकी उपासना अनिवार्य है। प्रत्येक पूजामें पञ्चदेवोपासनाका विधान है—'गणेशादिपञ्चदेवताभ्यो नमः' (नारदपुराण ३। ६५)। उनमें भी सर्वप्रथम गणेशकी पूजा अनिवार्य है। इन गणेशकी पूजाके लिये अनेक प्रमाण हैं—

'गणानां त्वा' इत्यादि (शुक्लयजुर्वेदसंहिता २३। १९)

'गणपत्यथर्वशीर्ष उपनिषद्' (६)में इनको सर्वदेवमय माना गया है और इनकी पूजासे सब देवताओंकी पूजा होती है, ऐसा लिखा है—

'त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णुस्त्वं रुद्रस्त्वमिन्द्रस्त्वमग्निस्त्वं वायुस्त्वं सूर्यस्त्वं चन्द्रमास्त्वं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्॥'

इसी प्रकार 'गणपत्यथर्वशीर्ष उपनिषद्'में लिखा है कि 'जो गणेशकी पूजा करता है, वह सम्पूर्ण दोषोंसे, सम्पूर्ण विघ्नोंसे, सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है और वही सर्ववित् है—

महाविघ्नात् प्रमुच्यते। महापापात् प्रमुच्यते। सर्वदोषात् प्रमुच्यते। स सर्वविद् भवति।' (११)

इसी उपनिषद्के मन्त्र ४ में भी इनकी पूजा और जपका विधान है—

'गणादिं पूर्वमुच्चार्य वर्णादिं तदनन्तरम्। अनुस्वारः परतरः, अर्धेन्दुलसितम्, तारेण रुद्धम्। एतत्तव मनुस्वरूपम्। गकारः पूर्वरूपम्। अकारो मध्यमरूपम्। अनुस्वारश्चान्त्यरूपम्। बिन्दुरुत्तररूपम्। नादः संधानम्, संहिता संधिः। सैषा गणेशविद्या। ॐ गं (गणपतये नमः)।'

श्रीगणेशकी अनेक उपनिषदोंमें भिन्न-भिन्न गायत्रियाँ भी प्राप्त होती हैं—

१—एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि ।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥ (गणपत्युपनिषद्)
२—तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि ।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥ (नारायणोपनिषद् १० । १)
३—तत्कराटाय विद्महे हस्तिमुखाय धीमहि ।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥ (मैत्रायणीसंहिता २ । ९ । ६)

पञ्चदेवोपासना वेदविहित है । इस विषयमें अनेक वैदिक प्रमाण उपलब्ध हैं । पञ्चदेवोपासनामें गणेशका स्थान सर्वप्रथम है; क्योंकि ये प्रथम उत्पन्न होनेवाले (जल)तत्त्वके अधिपति हैं; इसलिये सर्वप्रथमतत्त्वके अधिपतिकी पूजा सर्वप्रथम होनी ही चाहिये ।

गणेश-गीता १ । २१ में लिखा है कि 'शिव, विष्णु, शक्ति, सूर्य और मुझ गणेशमें अभेदबुद्धि रखनेवाला ही योगी होता है'—

शिवे विष्णौ च शक्तौ च सूर्ये मयि नराधिप ।
याऽभेदबुद्धिर्योगः स सम्यग्योगो मतो मम ॥

इसलिये सभी देवताओंमें गणेशकी पूजाका सर्वप्रथम स्थान युक्तिसंगत है ।

श्रीगणेशदर्शनकी दृष्टि

(साधुवेषमें एक पथिक)

तत्त्ववेत्ता तो आत्माको ही एकमात्र सर्वाधार परम देवता समझते हैं और उसी एक महादेवकी उपासनामें तत्पर रहते हैं । आजका भौतिक विज्ञानी अणुशक्तिसे परिचित है, पर आधिदैविक और आध्यात्मिक विज्ञानसे अपरिचित रहनेके कारण वह अन्तर्जगत्के दिव्य अणुओं तथा अध्यात्मलोकके आत्माणुके विषयमें आकर्षित नहीं दीखता । जिस प्रकार पार्थिव अणुकी शक्तिकी खोज ध्यानयोगद्वारा सम्भव हो सकी है, उसी प्रकार सूक्ष्म-जगत्की शक्तियोंकी खोज बहुत पहले ही हो चुकी है । 'गणेश' शब्दका अर्थ है—गणोंका स्वामी । हमारे शरीरमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और चार अन्तःकरण हैं । इनके पीछे जो शक्तियाँ हैं, उन्हींको चौदह देवता कहते हैं । इन देवताओंके मूल प्रेरक हैं—श्रीगणेशजी ।

प्रायः मनुष्य अपनी देहके बाहरी कोषसे ही आत्मिक-रूपमें परिचित होते हैं । उनमेंसे अधिकांश लोग अन्तरङ्ग शक्तियोंसे अनभिज्ञ रहते हैं । शरीरके भीतर गुदास्थानमें गणेशचक्र है, यह 'मूलाधारचक्र' कहलाता है । ध्यानयोगके द्वारा योगियोंको इसका दर्शन होता है । उसके दल, वर्ण, तत्त्व, बीज, वाहन और चक्रके देवता तथा उनके गुण और शक्ति आदिका अनुभव होता है । जो साधक इस मूलाधार—गणेशचक्रको ध्यानसे देखता रहता है, उसको विद्या तथा आरोग्यकी प्राप्ति होती है । मूलाधार-गणेशचक्रसे शक्ति और ज्ञानकी गतिका विलक्षण दर्शन मिलता है । यही कारण है कि सबसे पहले गणेशजीकी वन्दना और स्मरणको सिद्धिप्रद माना गया है । श्रीगणेशजीकी मूर्ति तो बालक भी देख लेते हैं, पर उनके दिव्य रूपको ध्यानयोगद्वारा कोई साधक ही समझ पाता है । गणेशजीको तत्त्वतः जाननेमें कोई सिद्ध ही समर्थ होता है ।

श्रीकार्तिकेयका विनोद

जयति कुमार-अभियोग-गिरा गौरी-प्रति स-गण गिरीश जिसे सुन मुसकाते हैं ।
'देखो अंब, हेरंब ये मानसके तीरपर तुंदिल शरीर एक ऊधम मचाते हैं ॥
गोद-भरे मोदक धरे हैं सविनोद उन्हें सूँड़से उठाके मुझे देनेको दिखाते हैं ।
देते नहीं, कंदुक-सा ऊपर उछालते हैं, ऊपर ही झेलकर, खेलकर खाते हैं ॥'

—मैथिलीशरण गुप्त

सिद्धिदाता गणेश

(महामहोपाध्याय प० श्रीगोपीनाथजी कविराज)

प्राचीन देवताओंमें सिद्धिदाता गणपतिका स्थान बहुत ही उच्च है। महागणपति, सिद्धिगणपति, हरिद्रागणपति आदि भेदसे उनके अनेक प्रकार हैं। गणपतिकी उपासना प्राचीन आर्यजगत्‌की पञ्चदेवोपासनामें एक मुख्य उपासना है। कल्पनाके आधारपर अनेक लोग अनेक प्रकारसे गणेशकी व्याख्या किया करते हैं। इसके मूलमें गणपतिके प्रति देशव्यापी श्रद्धाकी अधिकता देखनेमें आती है। वर्तमान युगमें कोई-कोई रूपकके रूपमें गणपतिकी व्याख्या करते हैं। उनके अनुसार वे सिद्धिदायक दिव्य शक्तिके एक रूपकके सिवा और कुछ भी नहीं हैं। गणपति-तत्त्वकी शास्त्रीय आलोचना करनेपर ज्ञात होता है कि एक प्रकारसे गणपति ॐकारके ही प्रतीक हैं। ऐतिहासिक दृष्टिसे देवतत्त्वका विश्लेषण करना वर्तमान युगमें शिक्षाका एक अङ्ग है। अध्यापक मैकडानल्ड (Macdonlld) आदि बहुतेरे गवेषकोंने इस विषयमें यथाशक्ति अपनी विद्या-बुद्धिका उपयोग किया है। गणपतिके सम्बन्धमें बहुत-सी ऐतिहासिक और अनैतिहासिक कहानियाँ निबद्ध हैं। उन सबकी भलीभाँति आलोचना करनेसे ज्ञात होता है कि वैचित्र्यके साथ-साथ उन सबमें एक प्रकारका साम्य है। वस्तुतः सत्यका रूप विभिन्न दिशाओंमें विभिन्न प्रकारसे प्रकाशित होता है। गणपतिका वह हस्ति-शुण्ड प्राचीन युगके चिन्तनका निदर्शन है। वर्तमान युगके मनीषीगण ओंकारको अधिकांशमें गणपतिका एक प्रतीक मानते हैं। यह माङ्गल्य-वाचक है, विचित्र एवं विशिष्ट शक्तिका निदर्शन है। मैं आशा करता हूँ कि यह गणपति-विषयक अनुसंधान सम्पूर्णरूपमें प्रकाशित होनेपर गणपतिके सम्बन्धमें प्राचीन आर्योंकी चिन्तन-धारा कुछ अंशमें अभिव्यक्त हो सकेगी।

गणपतिकी आराधनाके अनेक प्रकारभेद हैं। विभिन्न प्रकारके प्रयोजनोंकी सिद्धिके लिये उनकी विभिन्न प्रकारकी उपासनाका प्रवर्तन हुआ है। परंतु मूलभाव सर्वत्र एक ही है। गणपतिके हस्ति-शुण्ड क्यों है, इसके पौराणिक तथा ऐतिहासिक अनेक कारण हैं। भाव-जगत्‌में भी इसका एक तात्पर्य है। यह एक ओर जैसे प्राणि-विशेषका अङ्गविशेष दीख पड़ता है, उसी प्रकार दूसरी दृष्टिसे इसकी तात्त्विक गवेषणाके लिये भी बहुत गुंजाइश है। गणेश-उपासनाके भी अनेक प्रकारभेद थे। हरिद्रागणपतिकी बात बहुत सुननेमें आती है, किंतु मूलमें वहाँ हस्तिशुण्ड भी नहीं है। उसमें किसी देवताका नाम है, इसमें संदेह नहीं। हमारे प्राचीन आर्य लोगोंने पञ्चदेवोपासनाका जो क्रम निबद्ध किया था, उसी क्रममें गणपतिकी उपासनाका एक स्थान है। यह उपासना भारतीय लोगोंकी विशिष्टता है। अतएव भारतीय सभ्यताकी अति प्राचीन अवस्थाके साथ इसका योग रहा है। गणपति सिद्धिदाताके रूपमें प्रसिद्ध हैं। सारी उपासनाका अन्त सिद्धिका सूचक होता है। ओंकार-उपासना जैसे माङ्गलिक है, वैसे ही गणपतिकी उपासना भी माङ्गलिक मानी जाती रही है। सब उपासनाओंकी दो दिशाएँ हैं—एक आदिम और दूसरी अन्तिम। इस दृष्टिसे सब प्रकारकी उपासनाके मूलमें एक ही तत्त्व रहता है और उसके अन्तमें उसी तत्त्वका पूर्ण विकास होता है। पञ्चदेवतामें प्रत्येकके साथ प्रत्येक आर्य-संतानका परिचय है और उसकी चरम स्थितिके सम्बन्धमें भी सर्वत्र एक ही रहस्य रहता है।

इस सम्बन्धमें विभिन्न लेखकोंसे प्राप्त विभिन्न दृष्टिकोणोंसे रचित निबन्धावली प्राप्त होनेपर निबन्धावलीके अन्तमें चरम रहस्यके रूपमें गणपति-तत्त्वकी आलोचना सम्भव हो सकेगी। गणेशके सम्बन्धमें अनेक बातें अनेक पुराणोंमें विभिन्न प्रकारसे विभिन्न स्थानोंमें वर्णित हुई हैं। उन सब बातोंका तत्त्व निर्णय करके ग्रन्थावलीके सम्पादक महोदय इस गणपति-तत्त्वके रहस्यकी व्याख्या करेंगे। उस व्याख्याको देखनेके लिये हम सब उत्कण्ठित हैं। उसमें गणपति-सम्बन्धी समस्त विचारधाराओंका संक्षिप्तरूपमें प्रकाशन होगा। अनेक साधनाओंके अनेक रहस्य प्रकाशित होंगे। उस शुभ दिनके लिये प्रार्थना करते हुए मैं अब अपनी लेखनीको विश्राम दे रहा हूँ। इन लेखोंमें वैदिकयुगके गणपति, पौराणिक गणपति और तान्त्रिक गणपति-तत्त्वके साथ सामञ्जस्य प्रकाशित होगा, ऐसी आशा है।

श्रीगणेश सर्वत्र प्रथमपूज्य क्यों ?

(महामहोपाध्याय श्रीबालशास्त्री हरदास)

अपने सनातन वैदिक हिंदू-धर्मके उपास्य देवताओंमें श्रीगणेश देवका महत्त्व अनन्य-साधारण है। किसी भी धार्मिक और माङ्गलिक कार्यके प्रारम्भमें उनकी पूजा किये बिना उस कार्यका आरम्भ नहीं हो सकता। इतना ही नहीं, किसी भी देवताके पूजन और उत्सव-महोत्सवका प्रारम्भ करते ही महागणपतिका स्मरण और उनका पूजन करना ही पड़ता है। इतना महत्त्व अन्य किसी देवताका नहीं है। इस देवताके इतने महत्त्वका कारण क्या है, यह प्रश्न सहज ही किसीके भी मनमें उत्पन्न हो सकता है। यह देवता शब्दब्रह्म अर्थात् ओंकारका प्रतीक है, यही इसकी महत्ताका मुख्य कारण है।

ओंकारका महत्त्व

अपने तत्त्वज्ञानके प्रमाणसे ओंकार ही सृष्टिका आदि-कारण है। यह अव्यक्त परब्रह्मका सबसे प्रथम व्यक्त स्वरूप है। उपनिषदोंके अनुसार ब्रह्मसे सर्वप्रथम आकाश उत्पन्न हुआ। आकाशका विशुद्ध स्वरूप अथवा तन्मात्रा शब्द होनेके कारण यह शब्द 'ओंकार' है। इस कारण ब्रह्म अथवा परमेश्वरमें तथा ओंकारमें परस्पर वाच्य-वाचक-भाव-सम्बन्ध है। यह आजकी भाषाके अनुसार तत्तत्-पदार्थ-के वाचक शब्दोंका उनके अर्थोंसे होनेवाले सम्बन्धके समान केवल सांकेतिक अथवा मनुष्यकृत नहीं, अपितु स्वयम्भू-सम्बन्ध है। इस ओंकार और परमेश्वरके सम्बन्धको दृष्टिगत रखकर भगवान् पतञ्जलिने ईश्वरकी उपासना करते समय 'वह किस नामके उच्चारणसे करनी चाहिये अथवा उस समय किस शब्दका जप करना चाहिये'—इसका स्पष्टीकरण आगेके तीन सूत्रोंमें किया है। ये सूत्र हैं—

'ईश्वरप्रणिधानाद्वा ।' 'तस्य वाचकः प्रणवः ।'
(योगसूत्र १ । २३, २७)

तथा—

'तज्जपस्तदर्थभावनम् ।' (योगसूत्र १ । २८)

ओंकार और ईश्वरका स्वयम्भू-सम्बन्ध

यह ओंकार नादमय है और ईश्वर चैतन्यशक्तिस्वरूप है। भगवान् पतञ्जलिने उनके जिस परस्पर वाच्य-वाचक-सम्बन्धका वर्णन किया है, उसका ठीक-ठीक अर्थ समझ लेना आवश्यक है। शब्दोंके अर्थ तीन प्रकारके हैं—वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ एवं व्यङ्ग्यार्थ। इन तीन प्रकारके अर्थोंसे होनेवाले वाच्य-वाचक, लक्ष्य-लक्षक और व्यङ्ग्य-व्यञ्जक सम्बन्धोंसे सभी लोग परिचित हैं। परंतु इनमें अलग भी इस प्रकारके शब्दका अर्थसे सम्बन्ध है। वह स्वयम्भू अथवा नैसर्गिक सम्बन्ध है। लौकिक वाणीके शब्दोंका अर्थोंसे इस प्रकारका सम्बन्ध नहीं रहता। केवल मन्त्रमय वाणीका ही अर्थोंके साथ इस प्रकारका सम्बन्ध होता है। इसी कारण लौकिक भाषापर आधारित व्याकरण, मीमांसा, साहित्य इत्यादि शास्त्रोंमें उपर्युक्त तीन प्रकारके सम्बन्धोंका वर्णन उपलब्ध होता है। कारण, यह स्वयम्भू-सम्बन्ध उन शास्त्रोंका विषय नहीं है। वेदान्त, मन्त्रशास्त्र और योगशास्त्रोंमें इस स्वयम्भू सम्बन्धका निर्देश स्थान-स्थानपर उपलब्ध होता है। यह स्वयम्भू-सम्बन्ध अर्थात् उत्पादक-उत्पाद्य भावका सम्बन्ध है।

उपनिषदोंमें कहा गया है कि 'इस व्यक्त सृष्टिका घटक द्रव्य आकाश है। अव्यक्तका प्रथम व्यक्तीकरण आकाशके रूपमें हुआ। 'तस्माद्वा एतस्मा दात्मन आकाशः सम्भूत.' (तैत्तिरीयोपनिषद् २ । १ । १) यह उपनिषद्की वाणी है। परंतु आकाशका विशुद्ध स्वरूप क्या है ? इस विशुद्ध स्वरूपको 'तन्मात्रा' कहते हैं। हिंदू-तत्त्वज्ञानके अनुसार आकाशकी तन्मात्रा शब्द अथवा नाद है। आकाशसे ही समस्त व्यक्त सृष्टिका आविर्भाव हुआ। इसका अर्थ यही है कि नादसे ही सम्पूर्ण सृष्टिका निर्माण हुआ है। उपनिषदोंमें संक्षेपसे वर्णित सृष्टिकी उत्पत्तिके क्रमका श्रीमद्भागवतमें अत्यधिक सूक्ष्म रीतिसे ब्यौरेवार वर्णन किया गया है। उसमें कहा गया है कि 'परमेश्वरसे नाद अथवा शब्द, उससे आकाश, आकाशसे स्पर्श, उससे वायु, वायुसे रूप, उससे तेज, तेजसे रस, उससे जल, जलसे गन्ध और उससे पृथ्वी—इस क्रमसे सारी सृष्टि उत्पन्न हुई।'

इस प्रत्येक व्यक्तीकरणकी प्रक्रियामें सृष्टिका आदि घटक द्रव्य अर्थात् शब्द अथवा नाद अनुस्यूत है। इसका अर्थ यह हुआ कि यह नाद ही विश्वका आदि घटक द्रव्य है। यह विश्वरूप नाद अपनी श्रवणेन्द्रियको योगकी प्रक्रियासे शुद्ध करके सुननेका प्रयास करनेपर ओंकार-जैसा

सुनायी देता है। इसका अर्थ यह हुआ कि 'ओंकार ही सृष्टिका आदि घटक द्रव्य है। नाद या शब्द इस प्रकार-का आदि घटक द्रव्य होनेसे उसका या विश्वका उत्पाद्य-उत्पादक-भाव-सम्बन्ध सिद्ध होता है। विश्व-पदार्थोंके पृथक्-पृथक् मूल घटक द्रव्य शब्द होनेके कारण उनके उच्चारणकी ठीक-ठीक प्रक्रिया ज्ञात होनेपर उक्त उच्चारणके अनुरूप पदार्थ दिखायी देने लगेगा। उन समस्त शब्दोंको ध्वनि-लहरीका पुञ्ज भी कहा जा सकता है। तात्पर्य यह है कि ओंकार ही विश्वका मूल कारण है; और विश्वके अन्तर्गत जो-जो, जितने पदार्थ हैं, वे वस्तुत. ध्वनि-लहरीकी सृष्टि है। इसी ध्वनि-लहरीकी संज्ञा 'वेद'है। 'वेद' अनन्त 'होनेसे 'अनन्ता वै वेदाः' यह निर्देश उपलब्ध होता है। मनुस्मृति (१ । २१) के 'वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ।'[1] इस वचनद्वारा सृष्टिका यह निर्माण-क्रम शास्त्रानुसार ही वर्णित है; और यह सामर्थ्य देखकर जो उसका उपयोग नहीं कर सकता, उसका वेदाध्ययन व्यर्थ है। इस बातका प्रत्यक्ष उल्लेख ऋग्वेदमे 'किमृचा करिष्यति' (१ । १६४ । ३९) —इस मन्त्रद्वारा किया गया है। आजकलके बढ़े हुए विज्ञान अथवा आधुनिक प्रयोगशालाओंमे भी शब्द अथवा नाद-लहरीकी उत्पादन-क्षमता अब सिद्ध हो चुकी है। उत्पादक ध्वनि-लहरी और उससे उत्पन्न होनेवाले पदार्थका सम्बन्ध न तो वाच्यार्थ है, न लक्ष्यार्थ है और न वह व्यङ्ग्यार्थ ही है, अपितु स्वर्ण और उसके अलंकारमे जैसा स्वयम्भू एवं नैसर्गिक सम्बन्ध है, वैसा ही स्वयम्भू-सम्बन्ध है। इसी अभिप्रायसे श्रीतुकाराम महाराजने ओंकार-को 'कल्पोंका बीज' (विश्व-सृष्टिका मूल कारण) कहा है। ओंकार और ईश्वरके इस सम्बन्धको दृष्टिमे रखकर ही भगवान् पतञ्जलिने उसे 'ईश्वरका वाचक' कहा है। ओंकारके इस स्वरूपको ध्यानमे रखकर उसे ईश्वरके समान ही उपास्य बतलाया गया है—

एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम् ।
यस्यांशांशेन सृज्यन्ते देवतिर्यङ्नरादय. ॥
(श्रीमद्भा० १ । ३ । ५)

'यह नाना अवतारोंका निधान (आकर) और अविनाशी बीज है, जिसके अंशांशसे देवता, पशु-पक्षी और मनुष्यादिकी सृष्टि होती है।'

ओंकार और गणेश एक ही हैं

'श्रीगणपत्यथर्वशीर्ष'मे कहा गया है कि 'ओंकारका ही व्यक्त स्वरूप गणपति देवता हैं।' सब प्रकारके मङ्गल-कार्यों और देवता-प्रतिष्ठापनके आरम्भमे श्रीगणपतिकी पूजा करने-का कारण यही है। जिस प्रकार प्रत्येक मन्त्रके आरम्भमें ओंकारका उच्चारण आवश्यक है, उसी प्रकार प्रत्येक शुभाव-सरपर गणपतिकी पूजा अनिवार्य है। यह परम्परा शास्त्रीय है और इसे किसी गणेशभक्तने प्रारम्भ नहीं किया है। वैदिक-धर्मान्तर्गत समस्त उपासना सम्प्रदायोंने एक स्वरसे इस प्राचीन परम्पराको स्वीकार कर इसका अनुसरण किया है।

'मन ! गननायक बिनायक मनाइये ।'

अभय बरद यह एकरद छिरद है, छिरद-बदन को बिरद बड़ो गाइये।
बि-नायक नायक बिनायक के पाय बिना अहै न उपाय अनपाय पद पाइये ॥
कवि 'लाल' याके भाल-मद-नद बिहद में बिपद बिदारि कै निरापद अन्हाइये।
सब बिधि नवनिधि सिधि-पति बन्दन कै, आनन्दमगन मन ! गनपति ध्याइये ॥
बिपति बिदारिबे को गनपति गाइये औ बिघन-बिनासक गनेस गोहराइये।
रिधि-सिधि-नवनिधि-मङ्गल-सदन गजबदन मदन-मद-मरदन ध्याइये ॥
हिमगिरि-नन्दिनी के नन्दन के पद पर चन्दन चढ़ाइ कै परम पद पाइये।
बिधि के बिधायक, अभय बरदायक, रे मन ! गननायक बिनायक मनाइये ॥

—रामलाल

१—परमेश्वरने सृष्टिके आदिकालमें वेदके शब्दोंसे ही विश्वका निर्माण किया।

विविध गणेश

(अनन्तश्री जगद्गुरु रामानुजाचार्य पुरुषोत्तमाचार्य रङ्गाचार्यजी महाराज)

'गणपति'-स्वरूपकी जिज्ञासामे प्रवृत्त पूर्वाचार्योंने वेदोमे प्रतिपादित पदार्थ-विद्या एवं योगजधर्मसे उत्पन्न आर्षचक्षुद्वारा—तन्त्र, पुराण एव श्रौतसूत्र आदि आर्षग्रन्थोमे यह निर्णय किया है कि विश्वका आधार-प्राण (शक्ति) 'गणपति' है । प्रतिष्ठा-प्राण, आलम्बन-प्राण, स्थिति-प्राण, नियमन-प्राण आदि इसके नामान्तर है । 'पाञ्चरात्र-तन्त्र' मे इसका नाम 'आधारशिला' है। परमात्मा ही 'गणपति'-रूपसे परिणत होते हैं, यह निर्णय तत्त्व-चिन्तकोंने किया है ।

गणेशोपासना—ईश्वरोपासना

'अङ्गोपासना अङ्गीकी उपासना है'—यह निर्णय वेदान्त-मीमांसामे किया गया है । 'तैत्तिरीय उपनिषद्' (१ । ५ । १) मे उपलब्ध 'अङ्गान्यन्या देवताः'के आधारसे 'गणपति' अङ्गी परमात्माके अङ्ग है। इस प्रकार अङ्गरूप इस गणपतिकी उपासना भी अङ्गीरूप परमात्माकी उपासना हो जाती है ।

इन आधाररूप 'गणपति'को आधार बनाकर ही कूर्म-प्राण, शेष-प्राण, गन्ध-प्राण, रस-प्राण (क्षीराब्धि), रूप-प्राण, स्पर्श-प्राण एवं शब्द-प्राण आदि अनेक आधेय प्राण स्थित, विकसित एवं स्थिर रहते हैं; अतः यह प्राण (आधेय) अनेक प्राणगणोका पति (आधार) होनेसे वेदोंमे 'गणपति'-शब्दसे अभिहित है । किं बहुना, इसकी स्थिरतामे विश्व स्थिर एवं इसके विक्षोभमे वह विक्षुब्ध हो जाता है ।

अधिदैवत (ब्रह्माण्ड) मे इस प्राणका पृथ्वीमे अतितरा विकास है, अतः 'तन्त्रशास्त्र'मे पृथिवीको 'गणपति' मान लिया गया है। दूसरे शब्दोमे 'पृथिवी गणेशका स्थूलतम रूप है ।' अर्थात् पार्थिव आग्नेय-प्राण (देवता) ही विश्वका आधार है ।

योगमे विहित 'भक्तियोग'मे 'भूतशुद्धि'के लिये मूलाधार, मणिपूर, स्वाधिष्ठान, अनाहत एवं सहस्रार-दल-कमलमें क्रमशः गणपति, दुर्गा (शक्ति), सूर्य एवं विष्णुका चिन्तन विहित है । यही आर्योंकी समष्टि उपासनारूप 'पञ्चदेवोपासना' है । इन पञ्चदेवोका क्रमशः पृथिवी, जल, तेज, वायु एवं आकाश—इन पॉच भूतोंके साथ अभेद-सम्बन्ध माना गया है; अतः 'गणेश' पृथिवी हैं, यह सिद्धान्त वेद (पदार्थविद्या)के अनुकूल है । पृथिवीसे अभिन्न होनेके कारण ही 'गणपति'का 'गं'—यह बीज माना गया है । वेदकी परिभाषामे 'गं' यह पृथिवीका असाधारण गुण गन्ध है ।

योगमार्गमे निर्दिष्ट इस भक्तियोगका मूलाधारमें स्थित 'गणपति' प्रारम्भ है और सहस्रारमे विद्यमान 'विष्णु' पर्यवसान है । एक ही उपासना (भक्ति) अवस्था-भेदसे 'भक्ति' एवं 'प्रपत्ति'—इन दो नामोंसे वेदमें अभिहित होती है । 'गणपति'से लेकर 'शिव'तक वह 'भक्ति' है एवं वही विष्णुमे प्रविष्ट होकर 'प्रपत्ति' है । इस प्रपञ्चका तात्पर्य यही है कि वेदोंमे भक्ति एवं प्रपत्तिमे स्वरूपतः भेद न मानकर केवल अवस्थाकृत भेद माना गया है । 'उपासना'की साधनावस्था 'भक्ति' एव फलावस्था 'प्रपत्ति' है । किं बहुना, तरुण-ज्ञान-वैराग्यसहकृता भक्ति ही 'प्रपत्ति' है और वृद्ध-ज्ञान-वैराग्यसहकृता भक्ति 'भक्ति' है ।

आधार-प्राणरूप इस 'गणेश'का अध्यात्म-संस्थामे विकास 'मूलाधार'मे होता है; अतः मूलाधारचक्र 'गणपति' है । इसका नामान्तर 'मूलग्रन्थि' भी है । मूलग्रन्थि-रूप यह 'गणपति' सुमेरुके मूलमे स्थित है; अतः यह भी मेरु-पर्वमे स्थित देवगणोका पति (आधार) होनेसे 'गणपति' है ।

वेदोंमे आधारका दूसरा पर्याय 'ब्रह्म'-शब्द भी है, अतः 'मूलग्रन्थि'का नामान्तर 'ब्रह्मग्रन्थि' भी है । 'ऋक्-प्रातिशाख्य'मे उपलब्ध 'बिभर्ति इति ब्रह्म'—इस निर्वचनसे 'ब्रह्म'-शब्दका अर्थ 'आधार' भी है । इस निर्वचनसे उपलब्ध 'ब्रह्म'-शब्दका अर्थ सविशेष है, अतः ब्रह्मसूत्र-भाष्यकारोंका 'ब्रह्म'को निर्विशेष मानना वेदप्रतिपादित पदार्थ-विद्याके विरुद्ध है ।

प्रत्येक पदार्थमे प्रतिष्ठा, आगति एवं गति—ये तीन भाव प्रतिष्ठित हैं । इनमे प्रतिष्ठा-भाव 'ब्रह्मा' है, आगतिभाव 'विष्णु' है और गतिभाव 'महेश्वर' है । 'प्रतिष्ठा'-भाव 'गणपति'से अभिन्न है, यह कहा गया है । ये तीनों भाव सदा सहचर हैं । एक ही प्राण-(शक्ति)-के ये तीन भाव हैं, अतः शास्त्रोंमे 'एका मूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः'। कहा गया है ।

पदार्थोंमें गणेशका आवास

योगशास्त्रका विज्ञान है कि इस 'प्रतिष्ठा'-प्राणरूप 'गणपति'का आवास पदार्थोंके देहमध्य (केन्द्र) मे रहता है। यह 'देहमध्य' भिन्न-भिन्न पदार्थोंमे भिन्न-भिन्न स्थलोंमे रहता है। केवल प्राणियोंके विषयमे 'देहमध्य'का विवेचन भगवान् याज्ञवल्क्यने इस प्रकार किया है—

गुदात्तु द्व्यङ्गुलादूर्ध्वमधो मेढ्राच्च द्व्यङ्गुलात्।
देहमध्यं तयोर्मध्ये मनुष्याणामितीरितम्॥
चतुष्पदां तु हृदयं तिरश्चां तुन्दमध्यमम्।
द्विजानां तु वरारोहे तुन्दमध्यमितीरितम्॥

अर्थात् मनुष्य—प्राणियोंमे 'देहमध्य' गुदासे दो अङ्गुल ऊपर एवं शिश्न (लिङ्ग) से दो अङ्गुल नीचे है। इसमे 'गणपति'का आवास है। ब्रह्मा, शेष एवं कूर्मका भी यही आवास है। पशुओंमे हृदय देहमध्य है। उनके हृदयमे गणपतिका आवास है। पक्षियोंका देहमध्य तुन्द (उदर)का मध्यभाग है। अतः उसमें गणेशका आवास है, अर्थात् पक्षियो के उदर-मध्यमे गणपतिका आवास है। वृक्षोंके मूलमे गणेश-का निवास है। भूमिके भी केन्द्रमे गणेश, शेष, कूर्म आदि प्राण निवास करते हैं। ये सब पृथिवीको धारण करते हैं, अतः 'शेषेण धर्तुं धराम्' यह कवियोंने कहा है।

विविध गणेश

विश्वकी आधार-शक्ति (प्राण) 'गणपति' है, यह कहा गया है। अब विविध गणपतियोंमे यह 'महागणपति' है यह बात कही जायगी। यह 'आधार-शक्ति' वस्तु-भेदसे असंख्य एवं विविध है। उससे अभिन्न होनेके कारण गणपति भी असंख्य एवं विविध हैं। उनके नाम, रूप (आकृति), वर्ण (रग), वस्त्र, आयुध, वाहन एवं कार्य आदि भी असंख्य एवं विविध हैं। उन सबका सम्पूर्णरूपसे वर्णन अशक्य है तो भी तत्त्ववेत्ताओने उनमेंसे कतिपय विविध गणपतियो, उनके नामो, आकृतियो, वर्णों, वस्त्रों, आयुधों एवं वाहनोंका निर्देश 'श्रीतत्त्वनिधि' एवं 'श्रीविद्यार्णव-तन्त्र' आदि ग्रन्थोंमे किया है, उनके आधारसे कतिपय गणपतियोंके वैविध्यका वर्णन यहाँ दिया जाता है।

पर्याय नहीं

अमरकोश (१। ३८) मे 'अप्येकदन्तहेरम्बलम्बोदर-गजाननाः' शब्द आदि 'गणेश'के पर्यायवाचक हैं। अर्थात् ये शब्द एकार्थक हैं, किंतु वेदमे देवतावाचक जितने भी शब्द हैं, वे परस्पर भिन्नार्थक हैं। अतः नाम-भेदसे गणपति भी विविध हैं। एक शब्दका दूसरा पर्याय होता है, यह सिद्धान्त वैदिक-पदार्थविद्यामे सर्वथा त्याज्य है। कोशोंमे एक ही देवताके जो अनेक पर्याय मिलते हैं, वे केवल शब्दमात्रके परिचायक हैं। ब्रह्माके नामोंमे एक ही ब्रह्माके परमेष्ठी, हिरण्यगर्भ, पद्मभू आदि अनेक नाम निर्दिष्ट हैं; स्वामी कार्तिकेयके कार्तिकेय, कुमार, स्कन्द आदि नाम हैं तथा इन्द्रके वासव, मरुत्वान्, मघवा आदि पर्याय हैं; किंतु ये सब विभिन्नार्थक हैं।

सूर्यके ऊपर चतुर्थ अपोलोक है, जो पुराणोंमे 'क्षीर-सागर'के नामसे प्रसिद्ध है। उसमे रहनेवाला ब्रह्मा 'परमेष्ठी' है, सूर्यलोकका ब्रह्मा 'हिरण्यगर्भ' है और पृथिवीलोकका ब्रह्मा 'पद्मभूः' है। किंतु ब्रह्मा सब हैं; अतः इनको पर्याय मान लिया गया है।

स्वामी कार्तिकेयके नाम भी इसी प्रकार विभिन्नार्थक हैं। कृत्तिका-नक्षत्रोंमें जो अग्नितारा है, वह 'कार्तिकेय' है; पार्थिव उष्मामे जो अग्नि उत्पन्न होता है, वह 'कुमार' है; संवत्सराग्नि एवं अध्यात्ममें अहंकाराग्नि दोनों 'षण्मुख' हैं। एकके ऋतुरूप षण्मुख हैं तो दूसरेके इन्द्रियरूप षण्मुख हैं। इसी प्रकार एक ही गणपतिके एकदन्त, लम्बोदर, गजानन, गणपति, विघ्नराज, विनायक आदि अनेक पर्याय परिपठित हैं। परंतु ये सब विभिन्नार्थक हैं। इनमे पार्थिव पूषा-प्राण 'एकदन्त' है, पार्थिव ईश-प्राण 'गजानन' है, आन्तरिक्ष्य-प्राण 'लम्बोदर' है, मरुत्-प्राण 'गणपति' है और आकाश-प्राण 'विनायक' है।

विविध गणपतियोंके नाम

'श्रीतत्त्वनिधि'-ग्रन्थमे कर्णाटकके महाराजा मुम्मडि कृष्णराज ओटयरने ३२ गणपतियोंके नाम-रूपोंका निर्देश इस प्रकार किया है।

१.बालगणपति—रक्तवर्ण, चतुर्हस्त।
२.तरुणगणपति—रक्तवर्ण, अष्टहस्त।
३.भक्तगणपति—श्वेतवर्ण, चतुर्हस्त।
४.वीरगणपति—रक्तवर्ण, दशभुज।
५.शक्तिगणपति—सिन्दूरवर्ण, चतुर्भुज।
६.द्विजगणपति—शुभ्रवर्ण, चतुर्भुज।
७.सिद्धगणपति—पिङ्गलवर्ण, चतुर्भुज।

८.उच्छिष्टगणपति—नीलवर्ण, चतुर्भुज ।
९.विघ्नगणपति—स्वर्णवर्ण, दशभुज ।
१०.क्षिप्रगणपति—रक्तवर्ण, चतुर्हस्त ।
११.हेरम्बगणपति—गौरवर्ण, अष्टहस्त, पञ्चमातङ्गमुख; सिंहवाहन ।
१२.लक्ष्मीगणपति—गौरवर्ण, दशभुज ।
१३.महागणपति—रक्तवर्ण, त्रिनेत्र, दशभुज ।
१४.विजयगणपति—रक्तवर्ण, चतुर्हस्त ।
१५.नृत्तगणपति—पीतवर्ण, चतुर्हस्त ।
१६.ऊर्ध्वगणपति—कनकवर्ण, षड्भुज ।
१७.एकाक्षरगणपति—रक्तवर्ण, चतुर्भुज ।
१८.वरगणपति—रक्तवर्ण, चतुर्हस्त ।
१९.त्र्यक्षरगणपति—स्वर्णवर्ण, चतुर्बाहु ।
२०.क्षिप्रप्रसादगणपति—रक्तचन्दनाङ्कित, षड्भुज ।
२१.हरिद्रागणपति—हरिद्रावर्ण, चतुर्भुज ।
२२.एकदन्तगणपति—श्यामवर्ण, चतुर्भुज ।
२३.सृष्टिगणपति—रक्तवर्ण, चतुर्भुज ।
२४.उद्दण्डगणपति—रक्तवर्ण, द्वादशभुज ।
२५.ऋणमोचनगणपति—शुक्लवर्ण, चतुर्भुज ।
२६.ढुण्ढिगणपति—रक्तवर्ण, चतुर्भुज ।
२७.द्विमुखगणपति—हरिद्वर्ण, चतुर्भुज ।
२८-त्रिमुखगणपति—रक्तवर्ण, षड्भुज ।
२९.सिंहगणपति—श्वेतवर्ण, अष्टभुज ।
३०.योगगणपति—रक्तवर्ण, चतुर्भुज ।
३१.दुर्गागणपति—कनकवर्ण, अष्टहस्त ।
३२.संकष्टहरगणपति—रक्तवर्ण, चतुर्भुज ।

इस प्रकार यहाँ विविध अनन्त गणपतियोंमेंसे कतिपय गणपतियोंके केवल नाममात्रका उल्लेख किया गया है । उनकी आकृतियों, वस्त्रों, आयुधों एव वाहनोंका भेद तन्त्रोंसे जानना आवश्यक है । यहाँ केवल 'सिंह-गणपति'का ध्यान लिखा जाता है । इसके भी उल्लेखका विशेष कारण यह है कि विश्वमे गणपतिकी केवल 'गजाननता' ही प्रसिद्ध है । परंतु वे 'सिंहानन' भी हैं, यह उनके इस ध्यानसे अवगत होता है—

वीणां कल्पलतामरिं च वरदं दक्षे विधत्ते करै-
र्वामे तामरसं च रत्नकलशं सन्मञ्जरीं चाभयम् ।
शुण्डादण्डलसन्मृगेन्द्रवदनः शङ्खेन्दुगौरः शुभो
दीव्यद्रत्ननिभांशुको गणपतिः पायादपायात् स नः ॥

'जो दायें हाथोंमे वीणा, कल्पलता, चक्र तथा वरद (मुद्रा) धारण करते हैं और बायें हाथोंमें कमल, रत्नकलश, सुन्दर धान्य-मञ्जरी तथा अभय लिये रहते हैं; जिनका सिंहसदृश मुख शुण्डादण्डसे सुशोभित है; जो शङ्ख और चन्द्रमाके समान गौरवर्ण हैं तथा जिनका वस्त्र दिव्य रत्नोंके समान दीप्तिमान् है, वे शुभस्वरूप (मङ्गलमय) गणपति हमको अपाय (विनाश)से बचावें ।'

फल-भेदसे ध्यान-भेद

शास्त्रोंमें फल-भेदसे ध्यान-भेद विहित हैं । विभिन्न फलोंकी प्राप्तिके लिये 'गणेश'के भिन्न-भिन्न ध्यानोंका वर्णन इस प्रकार है—

पीतं स्मरेत् स्तम्भनकार्य एनं वश्याय मन्त्री ह्यरुणं स्मरेत् तम् ।
कृष्णं स्मरेन्मारणकर्मणीशमुच्चाटने धूम्रनिभं स्मरेत् तम् ॥
बन्धूकपुष्पादिनिभं च कृष्टौ स्मरेद् बलार्थं किल पुष्टिकार्ये ।
स्मरेद् धनार्थी हरिवर्णमेतं मुक्तौ च शुक्लं मनुवित् स्मरेत् तम्॥
एवं प्रकारेण गणं त्रिकालं ध्यायञ्जपन् सिद्धियुतो भवेत् स ॥

'मन्त्र-साधक स्तम्भन-कार्यमें गणेशजीके पीत कान्तिवाले स्वरूपका ध्यान करे, वशीकरणके लिये उनके अरुण कान्तिमय स्वरूपका चिन्तन करे । मारणकर्ममें गणेशजीकी कृष्ण-कान्तिका ध्यान करे तथा उच्चाटनकर्ममें उनके धूम्र वर्णवाले स्वरूपका स्मरण करे । आकर्षण-कर्ममें बन्धूक पुष्प (दुपहरियाके फूल) आदिके समान लाल वर्णवाले गणेशका ध्यान करे, बलके लिये तथा पुष्टिकार्यमें भी वैसे ही ध्यानका विधान है । धनार्थी पुरुष इनके हरितवर्ण तथा मोक्षकामी मन्त्रवेत्ता शुक्लवर्णवाले स्वरूपका चिन्तन करे । इस प्रकार तीनों समय गणपतिका ध्यान और जप करनेवाला साधक सिद्धि प्राप्त कर लेता है ।'

अग्रपूज्यता एवं सर्वपूज्यता

विश्वमे किसी भी कार्यारम्भमें गणेशजीकी अग्रपूज्यता एवं सर्वपूज्यताका शास्त्र एवं इतिहासमें उल्लेख है । इसका कारण यह है कि प्रकृतिमे किसी भी कार्यकी सिद्धि बिना आलम्बन (आधार)के अशक्य है । अतः कार्यमात्रमें

आलम्बनरूप गणेशकी अर्चना सबके लिये अनिवार्य है। इस रहस्यका प्रतिपादन सरस काव्य-शैलीमे किसी कविने इस श्लोकमे भली प्रकारसे किया है। इसमे अनेक ऐतिहासिक घटनाओका उल्लेख भी है--

जेतुं यस्त्रिपुरं हरेण हरिणा व्याजाद् बलिं बध्नता
स्रष्टुं वारिभवोद्भवेन भुवनं शेषेण धर्तुं धराम् ।
पार्वत्या महिषासुरप्रमथने सिद्धाधिपैः सिद्धये
ध्यातः पञ्चशरेण विश्वजितये पायात् स नागाननः ॥*

श्रीगणेशतत्त्व

(राष्ट्रगुरु श्री१००८ पूज्यपाद श्रीस्वामीजी महाराज, श्रीपीताम्बरापीठ, दतिया)

भगवान् गजाननकी मान्यता भारतवर्षमे बहुत प्राचीन समयसे चली आ रही है। स्मार्त-उपासना (विष्णु, सूर्य, शक्ति, शिव और गणेश)मे भी गणेशकी गणना की जाती है। वेदमे भी 'गणानां त्वा गणपतिᳪ हवामहे' (यजु० २३। १९) इत्यादि मन्त्रमे गणपतिका अर्थ ग्रहण किया गया है। यद्यपि वेदभाष्यकार उवट-महीधरने इस मन्त्रका अर्थ प्रकरणानुसार कुछ और किया है, तथापि यास्कमुनिके कथनानुसार तपसे वेदमन्त्रोंके अनेक अर्थोंका साक्षात्कार किया जा सकता है; ऐसा सिद्धान्त होनेसे गणपतिपरक अर्थकी सम्भावनामे कोई संदेह नहीं किया जा सकता। अवैदिक जैन एवं बौद्ध-धर्ममे भी गणेशकी मान्यता स्वीकार की गयी है। कुछ लोगोकी ऐसी धारणा है कि गणेशकी पूजा अनार्योंसे आर्योंमे आयी है। यह कथन सर्वथा अप्रामाणिक है। नेपाल, तिब्बत, कंबोडिया, चीन, जापान, मंगोलिया आदि देशोमे भी गणेशकी प्रतिमाएँ मिली हैं, जिससे इस उपासनाकी व्यापकता सिद्ध होती है; और यह गणेशका विज्ञान या उपासना-क्रम भी भारतवर्षसे ही इन देशोंमे गया है; जैसा कि मनुमहाराजने कहा है—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥
(मनुस्मृति २। २०)

'इस देशमे पैदा हुए अग्रजन्मा ब्राह्मणोंसे संसारके सभी लोग अपने-अपने चरित्र (एवं सभ्यता) को सीखें।' इसलिये इस गणेश-विज्ञानको अनार्योंसे आर्योंके सीखनेका कोई प्रमाण नहीं है।

गणेश-विज्ञान

महाकवि कालिदासने 'चिद्गगन-चन्द्रिका'मे गणेशजीके आविर्भावके सम्बन्धमे निम्नलिखित श्लोक कहा है—
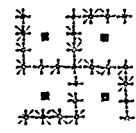
क्षीरोदं पौर्णमासीशशधर इव यः प्रस्फुरन्निस्तरङ्गं
चिद्व्योम स्फारनादं रुचिविसरलसद्बिन्दुवक्रोर्मिमालम् ।
आद्यस्पन्दस्वरूपं प्रथयति सकृदोंकारशुण्डः क्रियादृग्
दन्त्यास्योऽयं हठाद्वः शमयतु दुरितं शक्तिजन्मा गणेशः ॥
(चिद्गगनचन्द्रिका १। १)

'जैसे पूर्णिमाका चन्द्रमा शान्त तरंगवाले क्षीरसागरको ऐसा क्षुब्ध कर देता है कि उसमे गर्जनके साथ गगन-चुम्बिनी ऊर्मिमालाएँ उठने लगती हैं, उसी प्रकार जो पूर्णतः प्रकाशमान हो एक बार निस्तरंग चिदाकाशमें प्रणवके नादतत्त्वको फैलाकर बिन्दुतत्त्वकी वक्रलहरोंको उद्वेलित कर देता है, जो शब्द-ब्रह्मका आदि स्पन्दनरूप है; ओंकार जिसका शुण्डदण्ड है तथा जो सम्पूर्ण क्रियाओंका द्रष्टा (साक्षी) है, वह शक्तिनन्दन गजमुख गणेश हठात् आप सबके पाप-तापोका शमन करे।'

इस श्लोकमे शब्द-ब्रह्मरूप 'ॐ'का आविर्भाव बताया गया है और इसी (ॐ)से श्रीगणेशजीकी मूर्तिकी रचना की गयी है, जो इस प्रकार है—प्रथम भाग—उदर, मध्य शुण्डाकार—दण्ड, ऊपर अर्द्धचन्द्र—दन्त, अनुस्वार—मोदक।

और एक 'ॐ'का स्वरूप वैश्य, व्यापारी लोग अपनी बहियोमे बनाते हैं। [स्वस्तिक चिह्न] इसे 'स्वस्तिक' कहते हैं। ये ही गणेशजीके चारो हाथ हैं। यह चतुर्भुज ओंकार है।

'ओमभ्यादाने'—इस पाणिनिकी अष्टाध्यायीके ८। २। ८७ वें सूत्रके द्वारा मन्त्रके आरम्भमे प्रयुक्त 'ओम्'-को प्लुत स्वरमे उच्चारणीय बताया गया है, जिसकी आकृति '३' यह है। इस प्लुत स्वरको ही गणेशजीका मूषकवाहन

* इस श्लोकका अर्थ पृष्ठ ७३में देखना चाहिये।

बताया गया है । इन्हीं बातोंको लेकर गणेशजीकी प्रतिमाकी भावना की गयी है; जो भिन्न-भिन्न रूपोंमें देखी जाती है, जिसका योगी लोग मूलाधार चक्रमें ध्यान करते हैं; जिससे समस्त योगविघ्नोंका नाश होता है, जिसका पुराणोंमें भी अनेक प्रकारसे वर्णन किया गया है । श्रीमद्भगवद्गीतामें भी अन्तिम गतिके समय इसके स्मरणका माहात्म्य बतलाया गया है—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम् ॥
(गीता ८ । १३)

"जो पुरुष 'ॐ'—ऐसे इस एक अक्षररूप ब्रह्मका उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थस्वरूप मेरा चिन्तन करता हुआ शरीरका त्याग करता है, वह पुरुष परमगतिको प्राप्त होता है ।"

यही ओंकार-ब्रह्म नाद-तत्त्वके अंदर वर्णोंका भी अभिव्यञ्जक है, जिसे तन्त्रशास्त्रमें 'मातृकाएँ' कहते हैं । ये मातृकाएँ ५२ हैं ।

गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीराशिरूपिणीम् ।
देवीं मन्त्रमयीं नौमि मातृकापीठरूपिणीम् ॥

इन ५२ मातृकाओंको 'लघुषोढान्यास'के अन्तर्गत शक्ति-सहित गणेशजी बताया गया है—

ऐं ह्रीं श्रीं अं श्रीयुक्ताय विघ्नेशाय नमः, शिरसि ।
ऐं ह्रीं श्रीं आं ह्रीयुक्ताय विघ्नराजाय नमः, मुखवृत्ते ।
ऐं ह्रीं श्रीं इं तुष्टियुक्ताय विनायकाय नमः, दक्षनेत्रे ।
ऐं ह्रीं श्रीं ईं शान्तियुक्ताय शिवोत्तमाय नमः, वामनेत्रे ।
ऐं ह्रीं श्रीं उं पुष्टियुक्ताय विघ्नहृते नमः, दक्षकर्णे ।
ऐं ह्रीं श्रीं ऊं सरस्वतीयुक्ताय विघ्नकर्त्रे नमः, वामकर्णे ।
ऐं ह्रीं श्रीं ऋं रतियुक्ताय विघ्नराजे नमः, दक्षनासापुटे ।
ऐं ह्रीं श्रीं ॠं मेधायुक्ताय गणनायकाय नमः, वामनासापुटे ।
ऐं ह्रीं श्रीं ऌं कान्तियुक्ताय एकदन्ताय नमः, दक्षगण्डे ।
ऐं ह्रीं श्रीं ॡं कामिनीयुक्ताय द्विदन्ताय नमः, वामगण्डे ।
ऐं ह्रीं श्रीं एं मोहिनीयुक्ताय गजवक्त्राय नमः, ऊर्ध्वोष्ठे ।
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं जटायुक्ताय निरञ्जनाय नमः, अधरोष्ठे ।
ऐं ह्रीं श्रीं ओं तीव्रायुक्ताय कपर्दभृते नमः, ऊर्ध्वदन्तपङ्क्तौ ।
ऐं ह्रीं श्रीं औं ज्वालिनीयुक्ताय दीर्घमुखाय नमः, अधोदन्तपङ्क्तौ ।
ऐं ह्रीं श्रीं अं नन्दायुक्ताय शङ्कुकर्णाय नमः, जिह्वाग्रे ।
ऐं ह्रीं श्रीं अः सुरसायुक्ताय वृषध्वजाय नमः, कण्ठे ।

ऐं ह्रीं श्रीं कं कामरूपिणीयुक्ताय गणनाथाय नमः, दक्षबाहुमूले ।

ऐं ह्रीं श्रीं खं सुभ्रूयुक्ताय गजेन्द्राय नमः, दक्षकूर्परे ।

ऐं ह्रीं श्रीं गं जयिनीयुक्ताय शूर्पकर्णाय नमः, दक्षमणिबन्धे ।

ऐं ह्रीं श्रीं घं सत्यायुक्ताय त्रिलोचनाय नमः, दक्षकराङ्गुलिमूले ।

ऐं ह्रीं श्रीं ङं विघ्नेशीयुक्ताय लम्बोदराय नमः, दक्षकराङ्गुल्यग्रे ।

ऐं ह्रीं श्रीं चं सुरूपायुक्ताय महानादाय नमः, वामबाहुमूले ।

ऐं ह्रीं श्रीं छं कामदायुक्ताय चतुर्मूर्तये नमः, वामकूर्परे ।

ऐं ह्रीं श्रीं जं मदविह्वलायुक्ताय सदाशिवाय नमः, वाममणिबन्धे ।

ऐं ह्रीं श्रीं झं विकटायुक्ताय आमोदाय नमः, वामकराङ्गुलिमूले ।

ऐं ह्रीं श्रीं ञं पूर्णायुक्ताय दुर्मुखाय नमः, वामकराङ्गुल्यग्रे ।

ऐं ह्रीं श्रीं टं भूतिदायुक्ताय सुमुखाय नमः, दक्षोरुमूले ।

ऐं ह्रीं श्रीं ठं भूमियुक्ताय प्रमोदाय नमः, दक्षजानुनि ।

ऐं ह्रीं श्रीं डं शक्तियुक्ताय एकपादाय नमः, दक्षगुल्फे ।

ऐं ह्रीं श्रीं ढं रमायुक्ताय द्विजिह्वाय नमः, दक्षपादाङ्गुलिमूले ।

ऐं ह्रीं श्रीं णं मानुषीयुक्ताय शूराय नमः, दक्षपादाङ्गुल्यग्रे ।

ऐं ह्रीं श्रीं तं मकरध्वजायुक्ताय वीराय नमः, वामोरुमूले ।

ऐं ह्रीं श्रीं थं वीरिणीयुक्ताय षण्मुखाय नमः, वामजानुनि ।

ऐं ह्रीं श्रीं दं भ्रुकुटीयुक्ताय वरदाय नमः, वामगुल्फे ।

ऐं ह्रीं श्रीं धं लज्जायुक्ताय वामदेवाय नमः, पादाङ्गुलिमूले ।

ऐं ह्रीं श्रीं नं दीर्घघोणायुक्ताय वक्रतुण्डाय नमः, वामपादाङ्गुल्यग्रे ।

ऐं ह्रीं श्रीं पं धनुर्धरायुक्ताय द्विरण्डकाय (द्वितुण्डाय) नमः, दक्षपार्श्वे ।

ऐं ह्रीं श्रीं फं यामिनीयुक्ताय सेनान्यै नमः, वामपार्श्वे ।

ऐं ह्रीं श्रीं बं रात्रियुक्ताय ग्रामण्ये नमः, पृष्ठे ।

ऐं ह्रीं श्रीं भं चन्द्रिकायुक्ताय मत्ताय नमः, नाभौ ।

ऐं ह्रीं श्रीं मं शशिप्रभायुक्ताय विमत्ताय नमः, जठरे ।

ऐं ह्रीं श्रीं यं लोलायुक्ताय मत्तवाहनाय नमः, हृदये ।

ऐं ह्रीं श्रीं रं चपलायुक्ताय जटिने नमः, दक्षस्कन्धे ।

ऐं ह्रीं श्रीं लं ऋद्धियुक्ताय मुण्डिने नमः, गलपृष्ठे ।

ऐं ह्रीं श्रीं वं दुर्भगायुक्ताय खड्गिने नमः, वामस्कन्धे।

ऐं ह्रीं श्रीं शं सुभगायुक्ताय वरेण्याय नमः, हृदयादिदक्षकराङ्गुल्यन्तम्।

ऐं ह्रीं श्रीं षं शिवायुक्ताय वृषकेतनाय नमः, हृदयादिवामकराङ्गुल्यन्तम्।

ऐं ह्रीं श्रीं सं दुर्गायुक्ताय भक्ष्यप्रियाय नमः, हृदयादिदक्षपादाङ्गुल्यन्तम्।

ऐं ह्रीं श्रीं हं कालीयुक्ताय गणेशाय नमः, हृदयादिवामपादाङ्गुल्यन्तम्।

ऐं ह्रीं श्रीं लं कालकुब्जिकायुक्ताय मेघनादाय नमः, हृदयादिगुह्यान्तम्।

ऐं ह्रीं श्रीं क्षं विघ्नहारिणीयुक्ताय गणेश्वराय नमः, हृदयादिमूर्धान्तम्।

इस प्रकार शब्द-ब्रह्म श्रीगणेशस्वरूप ओंकारका मातृकाओंके साथ विस्तार किया गया है। इन्हींके योगसे तन्त्रग्रन्थोंमें अनेक स्तोत्र-मन्त्रोंका आविर्भाव किया गया है, जिससे अनेक प्रकारकी सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है। इसका विशेष माहात्म्य गणेशपुराण, शिवपुराण, ब्रह्माण्डपुराण आदि पुराणोंमें बताया गया है। 'गणपत्यथर्वशीर्ष उपनिषद्' भी गणपति-तत्त्वको बताता है। इसी प्रकार अन्य उपनिषद्-ग्रन्थोंमें भी इस तत्त्वका विचार किया गया है।

'ॐ नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमः।' (यजुर्वेद १६।२५)

भगवान् श्रीगणेशकी विलक्षण महिमा

[एक वीतराग ब्रह्मनिष्ठ संतके सदुपदेश] (प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

भगवान् श्रीगणेश साधारण देवता नहीं हैं। वे साक्षात् अनन्तकोटि-ब्रह्माण्डनायक जगन्नियन्ता परात्पर ब्रह्म ही हैं। श्रीगणेशजी तैंतीस करोड़ देवी-देवताओंके भी परमाराध्य हैं। हम भारतीय सनातनधर्मी हिंदुओंके तो वे प्राणाधार ही हैं। जन्मसे लेकर मरणपर्यन्त हमारा उनसे अखण्ड सम्बन्ध बना रहता है। प्रत्येक कार्य करनेके प्रारम्भमें श्रीगणेशजीका स्मरण करना अत्यावश्यक कर्तव्य माना गया है। पत्र या बहीखाता या ग्रन्थ लिखते समय सबसे पहले 'श्रीगणेशाय नमः' लिखकर तब आगे कुछ और लिखना होता है। किसी भी देवी-देवताकी पूजा करते समय अथवा यज्ञ करते समय सबसे पहले यदि श्रीगणेश-पूजन नहीं किया गया तो नाना प्रकारकी विघ्न-बाधाएँ आ जाती हैं। दान-पुण्य करिये तो पहले भगवान् गणेशजीको मनाना न भूलिये। विवाह-शादी करने, मकान बनवाने, नयी दूकान खोलनेमें सबसे पहले उन्हींकी पूजा होती है। भारतके प्राचीन राजमहल, किले, विशाल देव-मन्दिर, अट्टालिका आदिके मुख्यद्वारपर उन्हींकी मूर्ति अवश्य विराजमान मिलेगी। दीपावलीके दिन तो सभी हिंदू श्रीगणेशजी और श्रीलक्ष्मीजीका पूजन करते हैं। प्रत्येक धार्मिक-सामाजिक कार्यके पहले श्रीगणेश-पूजन एक अनिवार्य कृत्य है।

परमात्माके विवाहमें भी श्रीगणेशका पूजन

भगवान् श्रीराघवेन्द्रका जब विवाह हुआ तो उन्होंने स्वयं अपने हाथोंसे श्रीगणेशजीकी बड़े प्रेमसे पूजा की। आशुतोष शंकरजी और पराम्बा पार्वतीने अपने विवाहके समय सबसे पहले उन्हींकी पूजा की। परब्रह्म परमात्मा श्रीगणेश सभीके पूज्य हैं। उनका स्मरण-पूजन करनेसे समस्त विघ्न-बाधाएँ तत्क्षण दूर हो जाती हैं। वे बड़े ही दयालु और करुणासिन्धु हैं।

यदि उन्होंने भगवान् श्रीविघ्न-विनाशक गणेशकी शरण नहीं ली तो एक-न-एक दिन उनका अधःपतन होनेमें तनिक भी देर नहीं लगेगी। जिन योगियों, सिद्धों, वेदान्तियों और ब्रह्मज्ञानियोंने अपने साधनके अभिमानवश विघ्नविनाशक भगवान् श्रीगणेशकी उपेक्षा की और अपने ज्ञान, योग एवं सिद्धि आदिके बलपर ही आगे बढ़नेका प्रयास किया, उनको अपने जीवनमें भीषण विघ्न-बाधाओंका सामना करना पड़ा। भगवान् श्रीगणेशकी कृपा ही सब प्रकारकी विघ्न-बाधाओंसे बचाकर हमारा लोक-परलोक बना सकती है; इसके अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं है। इसीलिये कलिपावनावतार गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने अपने परम इष्टदेव भगवान् श्रीसीतारामकी प्राप्तिके लिये भगवान् श्रीगणेशकी वन्दना करना परमावश्यक माना था। उन्होंने विनयपत्रिकाके प्रथम पदमें उनकी स्तुति करते हुए कहा है—

'गाइये गनपति जगबंदन। संकर-सुवन भवानी-नंदन॥'

और अन्तमें उनसे यह वर माँगा—

'माँगत तुलसिदास कर जोरे । बसहिं रामसिय मानस मोरे ॥'

भगवान् श्रीगणेशकी हिंदूजातिपर अद्भुत कृपा

भगवान् श्रीगणेशने हिंदूजातिके ऊपर असीम कृपा की है और उसका बड़ा उपकार किया है, इसीलिये वह उनकी ऋणी है और उन्हें कभी भुला नहीं सकती ।

समस्त विश्व-साहित्यमें 'महाभारत' कोई साधारण पुस्तक नहीं, अपितु साक्षात् पञ्चम वेद है । यह अनन्त विद्याओंका भंडार है । उसपर आज समस्त विश्व मुग्ध हो रहा है । नास्तिक रूस भी महाभारतका रूसी भाषामें अनुवाद करा रहा है । ज्ञानके भंडार एवं विद्याओंकी खान पञ्चम वेद महाभारतको यदि भगवान् श्रीगणेश न लिखते तो यह अद्भुत महान् रत्न हिंदूजातिको कैसे प्राप्त हो पाता ? श्रीवेदव्यासजी बोलते गये और श्रीगणेशजी इसे लिखते गये । तभी उनकी कृपासे यह महान् ग्रन्थ-रत्न हिंदुओंको प्राप्त हुआ है ।

भगवान् श्रीगणेश कैसे प्रसन्न हों ?

भगवान् श्रीगणेशजीको प्रसन्न करनेका साधन बड़ा ही सरल और सुगम है । उसे प्रत्येक गरीब-अमीर व्यक्ति कर सकता है । उसमें न विशेष खर्चकी, न विशेष दान-पुण्यकी, न विशेष योग्यताकी और न विशेष समयकी ही आवश्यकता है ।

पीली मिट्टीकी डली ले लो । उसपर लाल कलावा (मोली) लपेट दो । भगवान् श्रीगणेश साकार रूपमें उपस्थित हो गये । रोलीका छींटा लगा दो और चावलके दाने डाल दो । पूजनकी यही सरल विधि है । गुड़की डली या चार बताशा चढ़ा दो, यह भोग लग गया और—

गजाननं भूतगणादिसेवितं कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम् ।
उमासुतं शोकविनाशकारकं नमामि विघ्नेश्वरपादपङ्कजम् ॥

यह छोटा-सा श्लोक बोल दो, मन्त्र हो गया । बस, इतनेमात्रसे ही वे तुमसे प्रसन्न हो गये ! कैसे दयालु हैं वे ? कुछ भी न बने तो दूब ही चढा दो और अपने सारे कार्य सिद्ध कर लो । खर्च कुछ भी नहीं और काम सबसे ज्यादा; यही तो उनकी विलक्षण महिमा है ।

भारतके घोर अधःपतनका कारण भगवान् श्रीगणेशकी उपेक्षा

भारतके घोर अधःपतनका एकमात्र कारण भगवान् श्रीविघ्नविनाशक गणेशजीकी घोर उपेक्षा है । पहले धर्मप्राण भारतके प्रत्येक विद्यालयमें बालकोंसे सर्वप्रथम तख्तीपर 'श्रीगणेशाय नमः' लिखवाकर और भगवान् श्रीगणेशका पूजन करवाकर अध्यापक पढाना प्रारम्भ करता था । प्रतिवर्ष सारे विद्यालयोंमें भाद्रपद श्रीगणेश-चतुर्थी (डंडा चौथ) को उनका बड़ी धूम-धामके साथ पूजन कराया जाता था, जो बस, देखते ही बनता था । समस्त भारत श्रीगणेश-भक्तिके रंगमें रँग जाता था और बच्चा-बच्चा उनके प्रेममें विभोर हो जाता था । आज उसी धर्मप्राण भारतके सभी विद्यालयोंमें भगवान् श्रीगणेशका पूजन करना तो दूर रहा, उनका नाम भी नहीं लिया जाता । जबतक विद्यार्थी भगवान् श्रीगणेश और माता श्रीसरस्वतीका स्मरण-पूजन करते रहे, तबतक बालकोंकी बुद्धि शुद्ध और निर्मल रही । पर जबसे इन विद्यार्थियोंसे भगवान् श्रीगणेशका पूजन करना छुड़ाया गया, पूजनादिको पाखण्डवाद बताया गया, तबसे इन पढनेवाले विद्यार्थियोंकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी, जिसका घोर भयंकर दुष्परिणाम अनैतिकता, अनुशासनहीनता आदिके रूपमें प्रत्यक्ष देखनेमें आ रहा है । जो पतन यवन-शासनकालमें अथवा अंग्रेज-शासनकालमें नहीं हुआ, वह हो गया । बालकोंको अक्षरज्ञान कराते समय आजकल 'ग' माने 'गणेश' न पढाकर, 'ग' माने 'गदहा' पढ़ाया जाता है ।

श्रीगणेश-भक्तोंका परम कर्तव्य

भगवान् श्रीगणेशके भक्तोंको निम्नलिखित बातोंपर अवश्य ध्यान देना चाहिये ।

१—भगवान् श्रीगणेशका नित्यप्रति पूजन करो और प्रातःकाल उठकर सर्वप्रथम उनके चित्रका दर्शन करो ।

२—किसी कार्यके आरम्भके पूर्व श्रीगणेशका स्मरण करना कदापि न भूलो ।

३—अपना घर, मकान महल बनाते समय द्वारपर आलेमें भगवान् श्रीगणेशजीकी सुन्दर प्रतिमा लगाना न भूलो; जिससे तुम्हें हर समय दर्शन-स्मरण करनेका सौभाग्य प्राप्त होता रहे ।

४—समाजके लिये हानिकारक तामसिक वस्तुओं (जैसे—बीड़ी या मदिरा) को बेचनेके लिये उनपर अथवा जूते-चप्पलपर गणेशजीका मार्का मत लगाओ ।

५—भगवान् श्रीगणेशको प्रसन्न करनेके लिये स्वयं भी सात्त्विक बनो । तामसिक पदार्थोंका सेवन मत करो ।

६—पीली मिट्टीकी गणेश-प्रतिमा बनाकर उनका पूजन करनेके पश्चात् उन्हें ठीकसे किसी पवित्र स्थानपर रख दो और बादमे श्रीगङ्गा-यमुना आदि पवित्र नदियोमे ले जाकर प्रवाहित कर दो। वह पैरोमे न आने पाये, इस बातका पूरा-पूरा ध्यान रखो।

७—पूज्य ब्राह्मणोके द्वारा श्रीगणेशपुराणकी कथाका श्रवण करो। गणेश-मन्दिरमें जाकर श्रीगणेशका दर्शन-पूजन करो। उनके मन्त्रका जप करो और उनके नामका संकीर्तन करो। वर्णाश्रमधर्मके अनुसार चलो और पापोसे बचो। इसीसे तुमपर भगवान् श्रीगणेशजी प्रसन्न होगे और तुम्हारी सब विघ्न-बाधाओंको दूरकर तुम्हारा परम कल्याण करेंगे।

जनगणके गणपति

(लेखक—आचार्य प्रभुपाद श्रीमत् प्राणकिशोर गोस्वामी)

भारतीय विज्ञान-दर्शनमें अखण्डतत्त्व-दर्शन सर्वत्र समादृत हुआ है। श्रीहर्षकृत 'खण्डन-खण्ड-खाद्यम्'-नामक दर्शनशास्त्रके ग्रन्थमे भी विचित्र चमत्कृति है और सौन्दर्य-उपलब्धिकी विराट् परिकल्पना है। गणपति गणेशका प्राचीन ऋषियोंने दो प्रकारसे दर्शन किया है—गुरु-शिष्य-मिलन-क्षेत्रमे एव उपनिषद्मे कथित प्रत्यक्ष तत्त्व-स्वरूपमे। उपर्युक्त 'खण्डन-खण्ड-खाद्यम्' दर्शन-ग्रन्थमे उनको ही कर्ता, धर्ता और हर्ता बतलाया गया है। सर्वमय गणपति नित्य 'परमात्मा' नामसे पुकारे गये हैं। उपनिषद्का कथन है कि हे गणपति! तुम आनन्दमय ब्रह्म, अद्वितीय, सच्चिदानन्द, विज्ञानात्मा हो। पञ्चतत्त्वात्मक जगत्के उद्भवस्थान हो। ध्वनितत्त्वकी परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी वाणीमे तुम्हारा ही विस्तार है। तुम त्रिगुण, त्रिकाल तथा स्थूल-सूक्ष्म और कारण—इन त्रिविध देह-सम्बन्धोंसे अतीत, मूलाधार हो। ज्ञान, क्रिया और बल—इन तीनो शक्तियोके परम आश्रय हो। योगी तुम्हारा ध्यान इस प्रकार करते हैं—

एकदन्तं चतुर्हस्तं पाशमङ्कुशधारिणम्।
अभयं वरदं हस्तैर्बिभ्राणं मूषकध्वजम्॥
रक्तं लम्बोदरं शूर्पकर्णकं रक्तवाससम्।
रक्तगन्धानुलिप्ताङ्गं रक्तपुष्पैः सुपूजितम्॥
भक्तानुकम्पिनं देवं जगत्कारणमच्युतम्।
आविर्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात् परम्॥*

निवृत्तिदास ज्ञानदेव कहते हैं—'हे प्रणवस्वरूप परब्रह्म गणपति! तुम्हे नमस्कार। तुम आद्य और निखिल वेद-प्रतिपाद्य हो। हे परमात्मस्वरूप! तुम स्वसवेद्य हो। तुम्हारी जय हो। तुम सारे ज्ञानके प्रकाशक गणेशस्वरूप हो। बुद्धिके प्रकाशमे तुम एकेश्वर हो। हे पूर्णाङ्ग वेदस्वरूप! तुम्हारी मूर्ति अपूर्व सौन्दर्य-मण्डित है। तुम्हारी अङ्ग-कान्ति निर्दोष है। इस रूपको लेकर तुम विराजमान हो रहे हो। मनुस्मृति आदि शास्त्र सब तुम्हारे अवयव है।'

महाराष्ट्रके भक्तप्रवर एकनाथस्वामी ज्ञानेश्वरका अनुसरण करते हुए कह रहे हैं—'श्रीएकदन्तको नमस्कार। एक दन्तके कारण ही तुम अद्वितीय हो। अनन्तरूपमे प्रकाशित होकर भी विभु हो; तुम्हारे अद्वैतभावकी हानि नहीं होती। विश्व-चराचरमे निवास करते हुए भी तुम लम्बोदर हो, सब जीवोके आश्रय हो, सबके संग्राहक हो। तुम्हारे दर्शनसे दुःखमय संसार सुखमय हो उठता है।'

भक्तकवि तुलसीदास कहते हैं—

जो सुमिरत सिधि होइ गन नायक करिबर बदन।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन॥

(मानस १। १ सो०)

विनायक, विघ्नराज, द्वैमातुर, गणाधिप, एकदन्त, हेरम्ब, लम्बोदर, गजानन, परशुपाणि, आखुग, शूर्पकर्ण आदि नामसे गणपति पुराणो, तन्त्रो और अन्यान्य शास्त्रोमे अभिहित होते है। अद्भुत है उनकी मूर्ति। ये हयग्रीव एवं नरसिंहके साथ तुलनीय हैं। नरदेहसे गज-शुण्ड केवल आजके भारतीय प्राचीन शास्त्रोमे ही नहीं, बल्कि प्राचीन युगमे अन्य देशोकी इतिकथामे भी इस प्रकारके अवयव-संस्थानकी बात आती है। मानव-प्रकृतिके साथ पशु-जगत्के सम्मिश्रणमे इस जातीय भावनाका उद्भव होता है। यही बात ऋष्यशृङ्ग आदि मुनियोके अवयव-संस्थानके सम्बन्धमे भी विचारणीय है

गणेश, महागणेश, हेरम्ब और हरिद्रागणेश—ये तन्त्रशास्त्रमे नाना प्रकारके ध्यान और पूजाके विषय बने

* इन श्लोकोंका अर्थ पृष्ठ ३५ पर देखें।

हैं। विविध कामनाओंकी सिद्धिके लिये पृथक्-पृथक् मन्त्रोंके प्रयोगकी व्यवस्था है।

गणेशका ध्यान—

ये सिन्दूरके समान रक्तवर्ण, त्रिनयन, स्थूल उदर तथा चतुर्भुज हैं। चारो हाथोंमे क्रमशः दन्त, पाश, अङ्कुश और वरमुद्रा है। इनके ललाटमे चन्द्रकला है तथा इनके मदवारिसे इनका गण्डस्थल अभिषिक्त है। इनके सर्वाङ्गमें सर्पभूषण हैं तथा ये परिधानमे रक्तवस्त्र पहने है।

महागणेशके ध्यानमे एक विशेषता है। वे स्वाङ्कस्थिता पद्महस्ता निजप्रियाके द्वारा आलिङ्गित हैं। उनके हाथमे दाडिमफल, गदा, धनुष, त्रिशूल, चक्र, पद्म, पाश, उत्पल, व्रीहिगुच्छ, अपना भग्नदन्त और रत्नकलश है। तान्त्रिकाचार्य अन्य रूपमे भी उनका ध्यान बतलाते हैं। महागणेश मुक्ताके समान गौरवर्ण हैं। उनकी क्रोडमे उनकी पत्नी विराजित हैं। किसी प्रतिमामे ये गौरवर्णा हैं और कहीं उनका स्वरूप श्यामाङ्ग रहता है। तन्त्रमे गणेशजी गौरवर्ण, धूम्रवर्ण और रक्तवर्ण—त्रिविध वर्णित हुए हैं। मूषकवाहनके रूपमे ही श्रीगणेशकी प्रसिद्धि है। तन्त्रोक्त हेरम्बसाधनामे गजमुख गणेश सिंहवाहन है—

मुक्ताकाञ्चननीलकुन्दघुसृणच्छायैस्त्रिनेत्रान्वितै-
र्नागास्यैर्हरिवाहनं शशिधरं हेरम्बमर्कप्रभम्।
दृप्तं दानमभीतिमोदकरदान् टङ्कंशिरोऽक्षात्मिकां
मालां मुद्गरमङ्कुशं त्रिशिखकं दोर्भिर्दधानं भजे॥

'हेरम्ब त्रिनयन हैं। मुक्ता, स्वर्ण, नील, कुन्दकुसुम और कुङ्कुमकी शोभासे युक्त पाँच मुखवाले हैं। ये सूर्यके समान दीप्तिमान् हैं। ये अपने दस हाथोंमे क्रमशः दान, अभय, मोदक, दन्त, प्रस्तरखण्डनकारी यन्त्र टङ्क, शिर, अक्षमाला, मुद्गर, अङ्कुश और त्रिशूल धारण किये हुए हैं।'

एक दूसरे ध्यानमे देखा जाता है कि हेरम्बके हाथमे पाश, अङ्कुश, कल्पलता और गजदन्त है। उनके शुण्डके ऊपर दाडिमफल है।

हरिद्रागणेश हरिद्रावर्ण, हरिद्रावस्त्र और हरिद्राभूषण हैं।

भारतके समाज-देवताके अनेक गण या दल हैं। मरुद्गण, रुद्रगण, दिक्पालगण, भैरवगण आदि अनेक गणोंमे भी गणपति विनायकका प्राधान्य स्वीकृत हुआ है। वैदिक यज्ञादिके स्थापनार्थ—'गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे' (यजुर्वेद २३।१८) मन्त्रमें उनका ही आवाहन है। वे निधिपति हैं। धन-सम्पत् उनके ही अनुग्रहसे प्राप्य हैं। व्यवसाय-क्षेत्रमें उनकी प्रधानता है—सिद्धिदाता स्वरूपमें। ज्ञानीके लिये वे ज्ञानदाता हैं।

इनके आविर्भावकी कथा इस प्रकार है—"श्रीकृष्ण वृद्ध ब्राह्मणका वेष धारण करके एक बार शैलसुता पार्वतीके समीप गये और बोले— 'देवि! तुम योगमाया हो। तुम्हारी कृपासे विष्णु-भक्तिकी प्राप्ति होती है। तुम्हें पूजा-व्रत आदिकी शिक्षा देनेके लिये श्रीकृष्ण कल्प-कल्पमें तुम्हारे पुत्रके रूपमें अवतीर्ण होते हैं।' इस प्रकारकी कुछ बाते कहकर वे वहीं अन्तर्हित हो गये। पार्वतीको वे श्रीकृष्ण ही एक पुत्ररत्नके रूपमे प्राप्त हुए। उसका रूप अपूर्व था, गुण अव्यक्त था। देवीने उस अभिनव बालकका अत्यन्त हर्षपूर्वक पालन-पोषण किया। वही बालक कामद सिद्धिदाता गणेश हैं, देवगणवन्दित तथा अग्रपूजाके अधिकारी हैं। उनमें असाधारण मातृभक्ति है।" (ब्रह्मवैवर्तपुराण)

वेदानुगत शास्त्रोंके द्वारा प्रतिपाद्य समस्त भारतीय धर्म-संस्कृतिके मूलमे है—पञ्चदेवोपासना। विष्णु, सूर्य, शिव, शक्ति और गणेश—ये पञ्चदेव हैं। यहाँ एकके अतिरिक्त शेष चार देवताओंकी उपेक्षा नहीं है। सूर्यमण्डलमे ही सब प्रकारसे अभिलषित परमाभीष्ट विष्णुभगवान्की उपासना होती है। अन्य देव-देवियोंके गायत्री-मन्त्रकी आराधना सूर्यमण्डलवर्ती भावनासे होती है। शिव और विष्णुमे भेदबुद्धिको शास्त्र निषिद्ध बतलाता है। शक्तिके बिना शिव या विष्णुकी उपासना निष्फल है। वैष्णवोंकी घोषणा है कि 'विष्णुपूजामें गणेशकी पूजा न करनेसे सेवापराध होता है। नव्य सम्प्रदायवादी कुछ लोग प्राचीन गुरुवर्गके द्वारा प्रदर्शित मार्गकी अवहेलना करके अपने सम्प्रदायकी प्रधानता स्थापित करते हैं तथा सुप्रसिद्ध स्वयंसिद्ध वेदानुमोदित पथसे भ्रष्ट होकर स्वेच्छाचारी हो रहे हैं। कुछ लोग गुरु-प्रदर्शित पथमे कण्टकरूप होकर आर्य-धर्मके पथमे बाधक बनते हैं। श्रीगणेशजी ऐसे लोगोंको शुभ-बुद्धि प्रदान करें।

श्रीशंकराचार्यकी परम्परामें भगवान् श्रीगणेश

(लेखक—श्री एस० लक्ष्मीनरसिंह शास्त्री)

अनादिकालीन सनातन-धर्मकी व्यवस्थामे भगवान् गणेश-की उपासनाका एक प्रमुख स्थान है । इस पवित्र धर्ममे जो नास्तिकताके कीटाणु प्रविष्ट हो गये थे, उन्हे भगवान् शंकराचार्यने अपने पवित्र एवं शास्त्रीय दृष्टिकोणद्वारा दूरकर बड़ी सावधानीसे इसकी पवित्रताको अक्षुण्णरूपसे प्रतिष्ठित रखा। 'शंकरमत'के नामसे कोई चर्चा करना अत्यन्त भ्रमपूर्ण है। उन महान् आचार्यने कभी भी किसी नये दर्शन या धर्मकी स्थापनाका दावा नहीं किया । उनका काम था—वैदिक दर्शन और वैदिक धर्मका सही-सही ऐसा प्रचार और विस्तार, जिसका प्राचीन परम्परासे कहीं विरोध न हो और वैदिक धर्ममे घुसे हुए नास्तिकताके पोषक मतोका, जिनमेसे अधिकांश बाहरसे आये, उन्मूलन हो जाय । शंकराचार्य वेदोकी प्राचीन परम्पराके संरक्षक, पोषक और अभिभावक अवश्य हैं, परंतु किसी नये धर्मके संस्थापक नहीं। इस लघु लेखका लक्ष्य है—भगवान् शंकराचार्यकी परम्पराके अनुयायी जनोके जीवनमे श्रीगणेशोपासनाके स्थान और महत्त्वका निर्धारण। यहाँ जो कुछ मूल्याङ्कन किया जायगा, उसका आधार है—स्वयं आचार्य शंकरकी रचनाएँ, उनकी जीवनियाँ और उनकी परम्पराके अनुयायियोके वचन।

पाठकोंको यह जानकर बड़ी निराशा होगी कि 'श्रीगणेश-पञ्चरत्न' और 'गणेश-भुजङ्गप्रयातस्तोत्र' को छोड़कर, जो कि आचार्यप्रवरके भक्तिमय उद्गारोंके एक अङ्गमात्र हैं, अपने प्रस्थानत्रय अथवा प्रकरण-ग्रन्थोमे कहीं भी उन्होने गणेशका उल्लेख नहीं किया। यदि कहीं किसी देवताका नाम आया भी है तो सदा विष्णुका ही नाम आया है; जैसे कि गीता और विष्णुसहस्रनाम आदिके भाष्योमे। जहाँ गणेशका उल्लेख हुआ है, उनकी ऐसी अन्य रचनाएँ देवी या शिवके स्तोत्र हैं। 'प्रपञ्चसार'तन्त्रमें भी गणेशका नाम मिलता है। उनकी रचनाओंमें विशिष्ट देवताओंका अनुल्लेख कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । परमतत्त्वकी व्याख्या करनेवाले दर्शनमे विशिष्ट देवी-देवताओंका वर्णन कैसे आ सकता है ? फिर भी इस परमतत्त्वके दर्शनके द्वारा ही ईश्वरकी सत्ताका प्रतिपादन हुआ है। जहाँ सब प्रपञ्च विलीन हो जाते हैं, उस पारमार्थिक धरातलपर जो केवल एक ही शेष बचता है, जो सबका आधारभूत है, उस परम-ब्रह्मका प्रपञ्चात्मक भाषामे कोई निरूपण नहीं हो सकता। देश-काल और कारणकी परिधिमे वही निर्गुण परमसत्ता जब ईश्वरका रूप धारण करती है, तब उसमे अचिन्त्य सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता और सर्वव्यापकता आ जाती है। जब उसका ऐश्वर्य क्रियाशील होता है, तब वह विश्वका सृजन, पालन, संहार और उसपर अनुग्रह-निग्रह करनेवाला बन जाता है। निर्गुण परब्रह्मके साथ-ही-साथ सगुण ईश्वरके रूपमे विराजित होनेमे कोई विरोध भी नहीं है । विद्युत्-शक्तिका हम न कोई स्वरूप बता सकते है और न उसको जान ही सकते है। उसके वास्तविक स्वरूपके विषयमें हम कुछ जाननेमे एकदम असमर्थ है। लेकिन भौतिकी (Physios) के द्वारा उसकी क्रियाओंसे उसका जो रूप प्रकट होता है, उसको हम अवश्य जान लेते हैं। वेदान्तका निर्गुण ब्रह्म इसी विद्युत्-शक्तिके समान है और सगुण ब्रह्म विद्युत्के क्रियात्मक रूपोके समान। निर्गुण ब्रह्मका बोध ज्ञानके द्वारा हो सकता है, परंतु सगुण ब्रह्म या ईश्वरको पानेके लिये हमको भक्तिकी शरण लेनी होगी, जिसके और भी कई नाम हैं, जैसे—चिन्तन, मनन, ध्यान-उपासना, आराधना आदि। पर शंकराचार्यके दर्शनमे वेदान्तके निर्गुण ब्रह्मके रूपमे मिलनेवाले परम ज्ञान या परमानन्दकी प्राप्तिके लिये इष्टदेवकी भक्ति या उपासनाकी अनिवार्यताका प्रतिपादन उचित ही है । परम ज्ञानकी उपलब्धि केवल भगवत्कृपासे सम्भव है । इसलिये शांकर-दर्शनमे भक्तिको अद्वैत-ज्ञानका एकमात्र आधार बताया गया है।

भगवान् शंकराचार्यद्वारा सुधार किये जाने तथा नवजीवन प्रदान किये जानेके उपरान्त अद्वैत-सम्प्रदायके अनुगामियोद्वारा धर्मके जिस रूपका आचरण किया गया, उसमे गणेशका क्या स्थान है, इसका अध्ययन करनेके पूर्व इस बातकी जानकारी अत्यधिक लाभकारिणी होगी कि ईश्वर और उसकी उपासनाके विषयमे शंकराचार्यका दृष्टिकोण क्या है ? वैदिक देव-समाजमे हमे नाना देवताओंके दर्शन होते हैं—जैसे, इन्द्र, वरुण, सविता, पूषा, उपेन्द्र, अग्नि, मित्र, अश्विनीकुमार और अन्य देवतागण । देखनेमे देवताओंका एक भँवर-जाल-सा लगता है। देवताओंका एक ऐसा जाल है, जिसके विषयमें ईसाई मिशनरी, मुसल्मानी धर्मगुरु और

झूठ-मूठका युक्तिवाद बघारनेवाले लोग यह कहते हैं कि 'इसने तो हिंदुओंके जीवनको ही बर्बाद कर दिया है।' किंतु यहूदी, ईसाई और मुसलमान लोग जिस एकेश्वरवादके ऊपर बड़ा गर्व करते हैं, उसकी कल्पना और उसका विवेचन वेदों और उपनिषदोंमें बहुत पहलेसे ही उपलब्ध है। ऋग्वेदके प्रथम मण्डलमें कहा गया है—'सत्ता एक ही है। विद्वान् लोग उसका नाना रूपोंमें वर्णन करते हैं—

'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।' (ऋक्० १।१६४।४६)

'महानारायण-उपनिषद्'के अनुवाक (३।१) में कहा गया है—'वही ब्रह्मा है, शिव है, हरि है, इन्द्र है, अक्षर है और है परम सत्ता—स ब्रह्मा स शिवः स हरिः स इन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्।' 'मैत्रायणी-उपनिषद्' इस सिद्धान्तका उल्लेख करती है कि 'सारे देवता निराकार ब्रह्मके ही विविध रूप हैं,—ब्रह्मणो वावैता अग्र्यास्तनवः परस्यामृतस्याशरीरस्य। ब्रह्म खल्विदं वाव सर्वम्।' (मै० ४। ६) 'वैराग्यशतक'में भर्तृहरिका यह प्रसिद्ध वचन विदित ही है कि 'ईश्वर एक ही है, चाहे उसे केशव कहो, चाहे शिव—एको देवः केशवो वा शिवो वा। एकेश्वरवादके इस महान् सत्यकी परछाईं केवल शंकराचार्यके लेखों और विचारोंमें ही नहीं दिखायी देती, वरं शांकर-सम्प्रदायके सभी अनुयायियोंमें उसका दर्शन होता है। परवर्तीकालके एक अद्वैतवादी गौड़ ब्रह्मानन्द सरस्वतीने बड़े भावविभोर स्वरमें कहा था—'कुछ लोग कहते हैं कि भगवान् शिवका ध्यान करना चाहिये; दूसरे लोग कहते हैं कि शक्ति, गणेश या आदित्यकी अर्चना करनी चाहिये; परंतु हे नारायण! यह तुम्हीं तो हो, जो इन सब विभिन्न रूपोंमें प्रकट हो गये हो। अतएव तुम्हीं मेरे एकमात्र शरण्य हो'—

ध्येयं वदन्ति शिवमेव हि केचिदन्ये
　　शक्तिं गणेशमपरे तु दिवाकरं वै।
रूपैस्तु तैरपि विभासि यतस्त्वमेव
　　तस्मात् त्वमेव शरणं मम शङ्खपाणे॥
　　　　　　　　(श्रीहरिशरणाष्टकम् १)

यह सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि, जो देवताओंकी विभिन्नरूपताके बीच एक सर्वव्यापी एकताका दर्शन कराती है तथा ऐसे दृष्टिकोणसे उत्पन्न होनेवाली सार्वभौमिकता और सहिष्णुता एक और श्लोकमें बड़े प्रखररूपसे व्यक्त हुई है। यह श्लोक अद्वैत-सम्प्रदायके अनुयायियोंमें बहुत प्रचलित है और इसका भाव है—'जिसकी शैव शिवके रूपमें, वेदान्ती ब्रह्मके रूपमें, बौद्ध बुद्धके रूपमें, प्रमाण पटु नैयायिक स्रष्टाके रूपमें, जैन-मतावलम्बी अर्हत्‌के रूपमें और मीमांसकगण कर्मके रूपमें उपासना करते हैं, वे ही त्रिलोकीनाथ श्रीहरि आपकी कामनाओंको फलीभूत करें'—

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो
　　बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः
　　सोऽयं वो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः॥
　　　　　　　　(हनुमन्नाटक १।३)

यह सचमुच उल्लासका विषय है कि ऐसी भावनाओंसे ओत-प्रोत शंकरमतानुयायी कट्टरपने, हठधर्मिता और अपने मतके प्रति दुराग्रहसे सर्वथा मुक्त हैं। वे अपने इष्ट-देवतासे भिन्न ईश्वर-रूपोंकी अवहेलना अथवा निन्दा नहीं करते। वास्तवमें तो शांकर-सम्प्रदायको इतना ही अभीष्ट है कि आप चाहे जिस-किसी देवविग्रहकी भी विशेषरूपसे पूजा करते हों, दैनिक पूजा-पद्धतिमें अन्य सब विग्रहोंको भी आपसे उतना ही आदर मिलना चाहिये, और ऐसी ही पूजाका नाम है—पञ्चायतन-पूजा। एक गम्भीर दृष्टिवाले अद्वैतीके विचारमें सभी मन्त्र, चाहे वह प्रणव हो, चाहे महागणपति-मन्त्र, चाहे पञ्चाक्षरी, षडक्षरी, अष्टाक्षरी, द्वादशाक्षरी, पञ्चदशाक्षरी, षोडशाक्षरी अथवा वेदमाता गायत्री हो, सभीका लक्ष्य एक ही 'ईश्वर' है। सभी यन्त्र—चाहे वह गणपतिका, सुब्रह्मण्यका, नारायणका अथवा ललितादेवीका (श्रीयन्त्र) हो, सबमें इसी एक रहस्यमय सत्ताका अभिनिवेश है। आचार्य शंकरकी महती प्रतिभा इस बातसे विशद रूपमें प्रकट होती है कि वैदिक बहुदेवता-वादका मन्थन करके उन्होंने ऐसे धर्मको जन्म दिया, जो किसी भी पंथ-विशेषके प्रति दुराग्रहसे तथा उसके परिणाम-स्वरूप विद्वेषसे सर्वथा मुक्त है और पञ्चायतनकी (तथा जहाँ कुमारको भी शामिल कर लिया गया है, वहाँ षडायतन या छः देवताओंकी) ऐसी पूजा-प्रणालीका उपदेश दिया, जिसमें अपने इष्टदेवताकी उपासनाके लिये विशेष स्थान है और अन्य देवताओंके प्रति भी यथेष्ट आदर है। शंकरने उपासनाके लिये जिन देवताओंको चुना था, वे हैं—आदित्य, अम्बिका, विष्णु, गणपति और महेश्वर (तथा स्कन्द)—

आदित्यमम्बिकां विष्णुं गणनाथं महेश्वरम्।
पञ्चयज्ञपरो नित्यं गृहस्थः पञ्च पूजयेत्॥

शांकर-परम्पराके एक परवर्ती मूर्धन्य विद्वान् स्वामी विद्यारण्यने शिव, विष्णु, शक्ति, सूर्य, विनायक और स्कन्दकी पूजाको भक्तिकी प्राप्तिके लिये छः दर्शन माने हैं—

शैवं च वैष्णवं शाक्तं सौरं वैनायकं तथा।
स्कान्दं च भक्तिमार्गस्य दर्शनानि षडेव हि॥

इस षडायतन अथवा पञ्चायतन-पूजामें एक विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि यहाँ उपासकको देवताके रूपमें अपने स्वरूपका और अपने स्वरूपमें आराध्य देवताका ध्यान करनेका आदेश दिया गया है—

'त्वं वा अहमस्मि भगवो देवते अहं वै त्वमसि।'

(वराहोपनिषद् २। ३४)

'बृहदारण्यक-उपनिषद्'में स्पष्ट शब्दोंमें उस उपासक या साधकको भारवाही पशुके समान बताया गया है, जो अपने उपास्य देवताको अपनेसे भिन्न मानकर पूजा-उपासना करता है—

'अथ योऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेव स देवानाम्।' (बृहदारण्यक १।४।१०)

शांकर-सम्प्रदायमें प्रचलित धार्मिक आचारोंकी पूर्व-पीठिकाके रूपमें पर्यवेक्षण करनेके उपरान्त अब हम इस बातपर विचार करेंगे कि शंकरके देवतावादमें गणेशका कौन-सा स्थान है?

अपने 'शंकर-विजय'में आनन्दगिरिने शंकराचार्यके उन उपदेशोंका साररूपमें उल्लेख किया है, जिनको आचार्यने पथभ्रष्ट गाणपत्योंके निमित्त कहा था। शंकरके अनुसार 'प्रत्येक उपासकके शरीरके भीतर चार दलोंवाले मूलाधारमें, छः दलोंवाले स्वाधिष्ठानमें, दशदलीय मणिपूरकमें, द्वादशदलीय अनाहतमें, षोडशदलीय विशुद्धिचक्रमें, द्विदलयुक्त आज्ञाचक्रमें तथा सहस्रदलसमन्वित सहस्रारमें गणपति, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, जीवात्मा, गुरु और परमात्माका निवास बताया गया है। इस प्रकार मूलाधारमें स्थित होनेके कारण इस सम्पूर्ण रहस्यमय षट्चक्र-संस्थानके आधार 'गणपति' ही हैं'—

'किं च मूलाधारस्वाधिष्ठानमणिपूरकानाहतविशुद्ध्याज्ञासहस्रारेषु चतुर्दलषड्दलदशदलद्वादशदलषोडशदलद्विदलसहस्रदलेषु स्थिता गणपतिब्रह्मविष्णुरुद्रजीवात्मगुरुपरमात्मानः सन्ति देहधारिणः। अतो गणपतेर्मूलाधारगतत्वं सर्वाधारत्वं वर्तते।'

(आनन्दगिरि, शंकराचार्य मद्रास-विश्वविद्यालय, फिलासफी सिरीज, पृष्ठ—८४)

किंतु शंकराचार्य इससे भी ऊँचे सत्यका उद्घाटन करते हुए कहते हैं कि 'परमात्मा सर्वव्यापी होनेपर भी आज्ञाचक्रमें निवास करके अपनेसे नीचेके चक्रोंमें स्थित जीवात्मा, रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा और गणपतिकी क्रियाओंको नियन्त्रित एवं प्रेरित करता है। साथ ही वह साक्षी, निर्गुण, सच्चिदानन्दमय, सर्वातीत एवं सर्वोत्कृष्ट (परात्पर परमोच्च प्रकृतिसे संयुक्त) रहता है, इस प्रकार उसका वेदोंमें सम्यक् प्रतिपादन हुआ है'—

'परमात्मा सर्वगतोऽप्याज्ञाचक्रवासी भूत्वा स्वाधःस्थजीवरुद्रविष्णुब्रह्मगणपतीन् तत्तद्वियोगेषु प्रेरयित्वा स्वयं साक्षी निर्गुण. सच्चिदानन्दमयः सर्वातीतः सर्वोत्कृष्ट इति सम्यग्वेदेषु प्रतिपादितः।' (वही)

इस बातका विरोध कभी नहीं किया जा सकता कि गणपति और परब्रह्म वस्तुतः एक ही हैं; क्योंकि जितने भी नाम हैं, उनसे ब्रह्मका ही निर्देश होता है। 'जब ब्रह्म सभी शब्दोंका वाच्यार्थ है, तब गणपति-शब्दने ही क्या अपराध किया है कि वह ब्रह्मवाचक न हो। (यदि अंशकी कल्पना की जाय तो) अंश कभी अंशीसे भिन्न नहीं होता—**'सर्वशब्दवाच्यस्य ब्रह्मणो गणपतिशब्देन किमपराद्धम्?··· अंशांशिनोरभेदात्।'** (वही ८६)

इसके अतिरिक्त ऐसा कहा जाता है कि शंकरने पथभ्रष्ट गाणपत्योंको ऐसा समझाया कि 'गणपति वही हैं, जो शिव हैं और शिव तथा परब्रह्ममें, जिसका प्रतीक प्रणव है, कोई अन्तर नहीं है।'—**'ओंकारातीतस्य परमशिवस्य गणपतिरूपत्वेन तदंशास्सर्वा देवता इति युक्तमुक्तम्।'** (वही ८८)

और अन्य सभी देवतागण एकमात्र गणपतिके ही विभिन्न रूप हैं। इस प्रकार शंकराचार्य इस परम सत्यकी स्थापना करते हैं कि 'गणेश, विष्णु, शिव, अम्बिका, आदित्य और कुमार केवल उसी परब्रह्मके भिन्न-भिन्न रूप हैं। उनमें किसी अन्तर्विरोधकी तनिक-सी छाया भी नहीं है।'

गणेशके इस प्रकारके असाम्प्रदायिक एवं परमात्ममूलक निरूपणके बाद इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि शंकराचार्यने गणेशके विषयमें पुराणोंमें जो विस्तार किया गया है और तन्त्रोंमें उनके लिये जिन पूजा-पद्धतियोंका विकास हुआ है, इन सबका उस सीमातक निराकरण नहीं किया है, जहाँतक

वे पूजापद्धतियाँ वैदिक-परम्पराके विपरीत नहीं गयी हैं। यह एक स्वीकृत तथ्य है कि समस्त वर्णमाला और वर्ण-विन्यासका उद्भव प्रणवसे ही हुआ है। और चूँकि गणेश और प्रणवमें अभेद है, इसलिये 'गणेशसहस्रनाम'में उनको 'अकारादिक्षकारान्त महासरस्वतीमय' कहा गया है। शाक्तमतके अनुसार शक्तिसे वर्णोकी उत्पत्तिकी मान्यताके समान ही यह सिद्धान्त भी है। वर्णमालाका प्रत्येक अक्षर गणपतिके किसी एक रूपका द्योतक है। इस प्रकार उनके कुल इकावन रूपोंका वर्णन किया गया है। परंतु मुद्गल-पुराणमें केवल बत्तीस गणेश मूर्तियोंका उल्लेख है और साधारणरूपसे 'षोडश-गणपति'-नामसे विदित केवल सोलह रूपोंकी ही उपासना होती है। इन सोलहमें भी भक्तोंकी अधिक संख्या केवल बाल, तरुण, भक्त, उच्छिष्ट, लक्ष्मी, हेरम्ब और महागणपतिको ही अधिक समादर देती है। विशेष करके महागणपतिमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव तथा इन तीनोंकी शक्तियाँ—सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वतीका समाहार माना गया है। इस मूर्तिकी बारह भुजाओंमें अपनी पत्नियोंसहित त्रिदेवोंके आयुधोंको देखकर यह बात स्पष्ट हो जाती है। यद्यपि श्रीगणेश निर्गुण ब्रह्म ही हैं, तथापि विभिन्न गणेश-मूर्तियोंकी बहुसंख्यक भुजाओंमें जो नाना प्रकारके आयुध और उपकरण देखनेको मिलते हैं, वे सब उस निर्गुण परब्रह्ममें आरोपित नाना गुणोंके प्रतीक हैं। विशेषतः उच्छिष्टगणपतिके हाथोंमें वे ही आयुध हैं, जो कि परदेवताके हाथोंमें हैं। जैसे—पाश, अङ्कुश, इक्षु, कोदण्ड और कुसुमशर (सुमनबाणेक्षुकोदण्डपाशाङ्कुशवरायुधः ।—उच्छिष्टगणपतिसहस्रनाम ८०)

इस उक्तिके द्वारा गणपति और शक्तिकी एकता प्रकट होती है। गणेशका शिवरूप रुद्र-मन्त्रमें देखनेको मिलता है—'गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमः।' यह शिव-शक्ति-स्वरूप 'ललितासहस्रनाम'में भी देखा जा सकता है—'कामेश्वरमुखालोककल्पितश्रीगणेश्वरा ।' विष्णु और गणेशकी एकता 'ब्रह्मवैवर्तपुराण'के इस श्लोकमें मिलती है—'श्रीकृष्णः कल्पे कल्पे तवात्मजः।' (गणपतिखण्ड १२ । ८२) इसी प्रकार ग्रहपति-नाम आदित्यके साथ उनकी एकताका द्योतक है—(गणेशाष्टोत्तरम्)।

इस प्रकार पुराणोंसे यह सिद्ध होता है कि श्रीगणेश आदित्य, अम्बिका, विष्णु और महेशके ही रूप हैं और सब-के-सब वस्तुतः एक निराकार ब्रह्मके ही नाना-रूप हैं। शांकर-सम्प्रदायके अनुयायियोंद्वारा अनन्यनिष्ठाके साथ अपनायी हुई इस विचारधाराका पोषण 'गणेशोत्तरतापिनी उपनिषद्' भी करती है—

'स विष्णुः स शिवः स ब्रह्मा सेन्द्रः सेन्दुः स सूर्यः स वायुः सोऽग्निः स ब्रह्म''ॐ ब्रह्म गणेशः।' (२ । १)। 'प्रपञ्चसार' तन्त्र के सोलहवें पटलमें गणपति-आवरणके वर्णनमें बताया गया है कि 'बिल्ववृक्षके नीचे लक्ष्मी और नारायण उनके सम्मुख स्थित हैं, वटवृक्षके नीचे पार्वती और परमेश्वर दाहिनी ओर, पीपलके नीचे रति एवं कामदेव उनके पीछे; और प्रियङ्गुके नीचे भूमि और वराह उनकी बायीं ओर विराजित हैं'—

अग्रेऽथ बिल्वमभितश्च रमारमेशौ
तद्दक्षिणे वटजुषौ गिरिजावृषाङ्कौ ।
पृष्ठेऽथ पिप्पलजुषौ रतिपुष्पबाणौ
सव्ये प्रियङ्गुमभितश्च महीवराहौ ।
(१६ । १०)

मध्यमें गणपति विराजमान हैं और उनके दसमेंसे आठ हाथोंमें सभी देवी और देवताओंके आयुध हैं। शेष दो हाथोंमेंसे एकमें अनारका फल है, दूसरेमें टूटा हुआ गजदन्त। उनकी गोदमें उनकी पत्नी 'वल्लभा' बैठी हुई हैं। उनके मोदक अथवा रत्नकलश अथवा अनारके फलद्वारा उनके आनन्दरूपकी अभिव्यञ्जना होती है। 'तैत्तिरीय उपनिषद्'के इस सूक्तका यह रूप समर्थन करता है—

'रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।'
(२ । ७)

संक्षेपतः श्रीगणेश आवरणके बिन्दु-स्थानपर हैं। अब यह सर्वविज्ञात तथ्य है कि किसी यन्त्रका बिन्दु-स्थान परात्पर परब्रह्मका वाचक है।

श्रीगणेश (तथा किसी अन्य देवता)के प्रति शंकराचार्यकी दृष्टि सगुणात्मक और निर्गुणात्मक दोनों ही है। अपने भक्तिपूरित उद्गारोंमें आचार्यप्रवर गणपतिके गज और मानव रूपका वर्णन करनेमें अत्यन्त काव्यात्मक ढंगसे कहते हैं—

समस्तलोकशंकरं निरस्तदैत्यकुञ्जरं
दरेतरोदरं वरं वरेभवक्त्रमक्षरम् ।
कृपाकरं क्षमाकरं मुदाकरं यशस्करं
मनस्करं नमस्कृतां नमस्करोमि भास्वरम् ॥
(गणेशपञ्चरत्न-३)

'जो समस्त लोकोंके कल्याणकारी और गजासुरका नाश करनेवाले हैं; जिनका उदर लंबा और मुख श्रेष्ठ गजके

समान है; जो कृपा-निधान, क्षमा-दान करनेवाले, आनन्दकी निधि, यशके विस्तारक तथा मनके प्रेरक हैं; उन नमस्कार करनेवालोंके लिये सूर्यरूप श्रीगणेशको मैं नमस्कार करता हूँ।'

किंतु दूसरे ही क्षण शंकर निर्गुण ब्रह्मके ऊँचे शिखरपर जा पहुँचते हैं और गणेशकी अभ्यर्थना करते हुए वे कहते हैं—

यमेकाक्षरं निर्मलं निर्विकल्पं गुणातीतमानन्दमाकारशून्यम्।
परं पारमोंकारमाम्नायगर्भं वदन्ति प्रगल्भं पुराणं तमीडे ॥

(गणेशभुजङ्गम्—७)

'जिन्हें ज्ञानीजन एकाक्षर (प्रणवरूप), निर्मल, निर्विकल्प, गुणातीत, आनन्दस्वरूप, निराकार, परमपार एवं वेदगर्भ ओंकार कहते हैं, उन प्रगल्भ पुराणस्वरूप गणेशका मैं स्तवन करता हूँ।'

गणेशतत्त्वका परम सार यही है कि गणेश ही ओंकारके व्यक्त रूप हैं। दूसरे शब्दोंमें वे ही परब्रह्म हैं; आदिस्वर तथा नाद हैं, जिससे विश्वके सारे नाम-रूपोंका सृजन हुआ है। उनका वक्रतुण्ड-आकार ओंकारको प्रदर्शित करता है। ऊपर जितनी बातें कही गयी हैं, उनसे यह स्पष्ट हो जाना चाहिये कि शांकर-सम्प्रदायके अनुयायियोंकी दृष्टिमें श्रीगणेश निर्गुण ब्रह्मके ही रूप हैं। शंकराचार्यजीने जिन मठोंकी स्थापना की है, उनमें गणेशकी पूजाका विधान है। इसका प्रमाण हमें 'उच्छिष्टगणपतिसहस्रनाम'के कुछ मन्त्रोंमें स्पष्टरूपसे मिलता है। जैसे—

कामकोटिपीठवासः शंकरार्चितपादुकः ।
ऋष्यशृङ्गपुरस्थः स सुरेशार्चितवैभवः ॥
द्वारकापीठसंवासः पद्मपादार्चिताङ्घ्रिकः ।
जगन्नाथपुरस्थस्तु तोटकाचार्यसेवितः ॥
ज्योतिर्मठालयस्थः स हस्तामलकपूजितः ॥

(७७६—७८०)

'जो कामकोटिपीठके अधिवासी हैं और उस रूपमें साक्षात् आचार्य शंकरने जिनके चरणोंकी पादुकाका पूजन किया है, जो ऋष्यशृङ्गपुर (शृङ्गेरी-मठ) में निवास करते हैं और वहाँ श्रीसुरेश्वराचार्यने जिनके वैभवकी अर्चना की है; जो द्वारकापीठमें निवास करनेवाले हैं और श्रीपद्मपादाचार्यने जिनके चरणारविन्दोंकी पूजा की है; जो जगन्नाथपुरीमें रहकर तोटकाचार्यसे सेवित हुए हैं तथा जो ज्योतिर्मठके अधिवासी होकर हस्तामलकाचार्यसे पूजित हुए हैं।'

इस प्रकार शांकर-सम्प्रदायके अनुयायियोंके लिये तथा आचार्यप्रवरके द्वारा स्थापित किये हुए विभिन्न पीठाधीशोंके लिये भी श्रीगणेशकी बाह्य-पूजा आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करनेका एक आवश्यक अङ्ग है। श्रीविद्याके कट्टर उपासक और 'ललितासहस्रनाम'की व्याख्याके लेखक श्रीभास्करराયने, जो अद्वैतमतानुयायी थे, अपने 'गणेशसहस्रनाम'की व्याख्याकी भूमिकामें लिखा है—'परमेश्वरके द्वारा नाना गुणोंसे युक्त नाना रूपोंका धारण किया जाना उनकी कृपाके ही कारण होता है। जो रूप वे धारण करते हैं, वे वे ही रूप होते हैं, जिनके प्रति उनके भक्तोंकी रुचि होती है'—

'बहिरङ्गानुष्ठानशीलानामेव त्वन्तरङ्गानुष्ठानेऽधिकारः। सगुणं तु रूपमुपासकानुग्रहार्थं कल्पितमेव इत्युपासकरुचिवैचित्र्येण नानाविधम्।'

'जो स्वभावतः बहिरङ्ग-अनुष्ठानमें संलग्न रहनेवाले हैं, उनका ही अन्तरङ्ग-अनुष्ठानमें अधिकार है। सगुणरूप तो उपासकोंपर अनुग्रह करनेके लिये कल्पित ही है; अतः उपासकोंकी विभिन्न रुचिके कारण वह अनेक प्रकारका है।'

अन्तमें यह बात बड़ी दृढताके साथ कही जा सकती है कि जहाँतक शांकर-सम्प्रदायके अनुयायियोंसे सम्बन्ध है, वहाँतक उनकी दृष्टिमें गणेश और अन्य किसी देवतामें कोई भेद नहीं है साथ ही वहाँपर असाम्प्रदायिकता, धर्मान्धता और तान्त्रिकताकी आड़में होनेवाले अनाचारोंके लिये कोई स्थान नहीं है। गणपति एक ही साथ सगुण ईश्वर भी हैं और निर्गुण ब्रह्म भी। श्रीगणपतिके प्रति शांकर-सम्प्रदायका अभिमत मत क्या है, यह श्रीराघवचैतन्यकृत 'महागणपति-स्तोत्र'के निम्नलिखित श्लोकसे बहुत अच्छी तरह व्यक्त होता है, जिसमें साम्प्रदायिकतासे रहित ईश्वरवादके उच्च स्तरकी आभा झलक रही है—

इत्थं विष्णुशिवादितत्त्वतनवे श्रीवक्रतुण्डाय हुं-
कारक्षिप्तसमस्तदैत्यपृतनाव्राताय दीप्तत्विषे ।
आनन्दैकरसावबोधलहरीविध्वस्तसर्वोर्मये
सर्वत्र प्रथमानमुग्धमहसे तस्मै परस्मै नमः ॥

(राघवचैतन्यकृत महागणपतिस्तोत्रम्—४)

'इस प्रकार विष्णु-शिव आदि तत्त्व जिनका शरीर है; जिन्होंने अपने हुंकारमात्रसे समस्त दैत्यसेनाके समूहको मार भगाया है; जिनकी दीप्ति अत्यन्त उद्दीप्त है, जिन्होंने आनन्दैकरसमयी ज्ञान-लहरीसे समस्त ऊर्मियोंको विध्वस्त कर डाला है तथा जिनका मुग्ध मनोहर तेज सर्वत्र व्याप्त है, उन परमात्मा वक्रतुण्डको नमस्कार है।'

वैदिक देवता ज्येष्ठराज गणेश

(लेखक—श्रीनीरजाकान्त चौधुरी देवशर्मा, एम्० ए०, एल-एल्०बी०, पी-एच०डी०)

'तत्कराटाय विद्महे हस्तिमुखाय धीमहि ।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥

(कृष्णयजुर्वेद, मैत्रायणी-संहिता २ । ९ । १)

गलद्दानगण्डं मिलद्भृङ्गखण्डं
चलच्चारुशुण्डं जगत्त्राणशौण्डम् ।
लसद्दन्तकाण्डं विपद्भङ्गचण्डं
शिवप्रेमपिण्डं भजे वक्रतुण्डम् ॥

(शंकराचार्यकृत शिवभुजङ्गप्रयातस्तोत्रम्)

'जिसके गण्डस्थलसे निरन्तर मदवारि स्रवित हो रहा है और उस मदगन्धसे भ्रमरोंके मिलित होनेपर जिनका सुन्दर शुण्ड बराबर चलायमान रहता है, जगत्के परित्राणके कार्यमें जो सुदक्ष हैं, जिनका एकदन्त सुशोभित हो रहा है, जो जगत्की विपत्तिका नाश करनेमें प्रचण्ड हैं तथा जो शिवजीके परम प्रेमास्पद हैं, उन वक्रतुण्ड गणेशजीको मैं भजता हूँ ।'

गणेशजी विघ्नोंका नाश करनेवाले, सिद्धिदाता तथा सर्वाग्रपूज्य हैं । इसी कारण इस स्तोत्रके आदिमें उनकी वन्दना की गयी है । चाहे सम्प्रदाय कोई भी क्यों न हो, प्रत्येक हिंदूको जिस-किसी देवताकी उपासना, अथवा जिस-किसी कार्यके प्रारम्भमें श्रीगणपतिकी पूजा करनी ही पड़ती है ।

पाश्चात्त्य मत—गणेश वैदिक देवता नहीं हैं

किंतु पाश्चात्त्य विचारक हमलोगोंको शिक्षा देते हैं कि 'गणेश एक अनार्य देवता हैं । वेदोंमें उनका कोई स्थान न था । गुप्तयुगके पूर्वतक हिंदूधर्ममें ये अज्ञात थे ।' कोई-कोई एतद्देशीय विद्वान् भी उनका ही अनुकरण करते हुए कहते हैं कि 'दक्षिण भारतके देशोंमें उनकी पूजा पहले-पहल दशम शताब्दीमें आरम्भ हुई थी ।' हमारी मान्यता है कि पार्वती-परमेश्वरके ज्येष्ठ पुत्र गणपतिका स्थान वेदमें सुप्रतिष्ठित है ।

सुप्रसिद्ध भारत-पुरातत्त्वविद् जर्मन विद्वान् मैक्स मूलर (Max Muller) को बहुत-से लोग 'वेदोंका उद्धारकर्ता' कहते हैं । परंतु उन्होंने प्रायः एक सौ वर्ष पूर्व एक व्याख्यानमें कोटि-कोटि हिंदुओंके अर्धनरपक्षी-वाहन, सर्पशायी चतुर्हस्त 'विष्णु,' त्रिनेत्र, नग्न, नृमुण्डमालाधारी, विकटाकार, वृषारूढ 'शिव', मयूरवाहन, षण्मुख 'कार्त्तिकेय', हस्तिमुख, चतुर्बाहु, मूषकवाहन, सिद्धिके देवता 'गणेश' तथा लोलजिह्वा, नृमुण्डमालिनी, मुक्तकेशी, रक्ताक्तमेखला 'काली' आदिकी मूर्तियोंकी उपासनाको लेकर भी भीषण व्यङ्ग्य किया था ।

उन्होंने अन्यत्र लिखा है कि 'वेदोंमें यूरोपीय दृष्टिसे देखनेपर अनुमोदनके योग्य कोई वस्तु नहीं है । परंतु इसमें संदेह नहीं कि उनमें शिव और कालीकी नृशंसता, कृष्णकी लम्पटता और विष्णुके मायावतार आदिका कुछ भी पता नहीं मिलता ।'

उनके मतसे 'हिंदुओंकी यह मूर्तिपूजा ग्रीक और रोमन लोगोंके जुपिटर, अपोलो, मिनर्वा आदिकी पूजाकी अपेक्षा भी असभ्य और नीचे स्तरकी थी । सभ्यताके आलोकका तथा स्वाधीन चिन्तनका प्रसार होनेपर ये सब विलुप्त हो जायँगे ।'* किंतु इस मतकी निस्सारता आगेकी पंक्तियोंके पढ़नेसे स्पष्ट हो जायगी ।

गणपति वैदिक देवता हैं

वास्तवमें इस समय सुविशाल वैदिक-साहित्यका कङ्कालमात्र अवशिष्ट है । तथापि जो कुछ भी है, उससे ज्ञात होता है कि गणेश अति प्राचीन वैदिक देवता हैं, अर्वाचीन नहीं ।

(१) ऋग्वेद शाकलसंहिता—

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे
कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम् ।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः
शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ॥

(ऋग्वेद- २ । २३ । १)

'हे अपने गणोंमें गणपति (देव), क्रान्तदर्शियोंमें (कवियोंमें) श्रेष्ठ कवि, शिवा-शिवके प्रिय ज्येष्ठ पुत्र, अतिशय भोग और सुख आदिके दाता, हम आपका इस कर्ममें आवाहन करते हैं । हमारी स्तुतियोंको सुनते हुए पालनकर्ताके रूपमें आप इस सदनमें आसीन हों ।'

यह मन्त्र गणपति-दैवत है, इसमें संदेह नहीं हो सकता । इसके द्रष्टा बृहस्पति हैं और देवता ब्रह्मणस्पति । यह 'तैत्तिरीयसंहिता (२ । ३ । ४ । ३)में भी आम्नात हुआ है ।

* द्रष्टव्य 'कल्याण', श्रीविष्णु-अङ्क, पृ०—३६८ ।

'श्रीमहागणपतिसहस्त्रनामस्तोत्र'मे गणेशके 'ज्येष्ठराज' 'ब्रह्मणस्पति', 'कवि कवीनाम्' आदि सारे नाम प्राप्त होते हैं—

विश्वकर्ता विश्वमुखो विश्वरूपो निधिर्घृणि. ।
कवि. कवीनामृषभो ब्रह्मण्यो ब्रह्मणस्पतिः ॥
ज्येष्ठराजो निधिपतिर्निधिप्रियपतिप्रिय. ।
हिरण्मयपुरान्तःस्थ सूर्यमण्डलमध्यगः ॥

(१४-१५)

'गणाना त्वा गणपति०' (१ । २३ । १)—यह ऋक्-मन्त्र तथा इसके अनुरूप और भी कतिपय मन्त्र सर्वत्र चिरकालसे गणेशकी उपासनामे विनियुक्त होते आ रहे हैं । वङ्गदेशमे ऋग्वेदीय ब्राह्मण वृषोत्सर्गश्राद्धमें गणेशपूजनके समय इस मन्त्रका पाठ करते हैं । बालम्भट्टने 'याज्ञवल्क्य स्मृति'की'मिताक्षरा' टीकाके लक्ष्मीभाष्यमे इसका गणेशपूजनपरक कहकर ही उल्लेख किया है ।

महाकवि भास कालिदास और कौटिल्यके भी पूर्ववर्ती हैं । उन्होंने भी आजसे लगभग ढाई हजार वर्ष (ई० पू० ४५०) पूर्व अपने सुप्रसिद्ध नाटक 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण'के नान्दी-श्लोकमे 'वत्सराज'-शब्दका द्व्यर्थक शब्दके रूपमें ही प्रयोग किया है । देवपक्षमे उसका अर्थ 'कार्तिकेय' है तथा दूसरा लौकिक अर्थ है—वत्सदेशका राजा उदयन ।

महामहोपाध्याय गणपतिशास्त्रीने इस श्लोककी अपनी व्याख्यामें निम्नलिखित वेदमन्त्रको उद्धृत करके अपना मन्तव्य इस प्रकार व्यक्त किया है—'वत्सराज. बालश्चासौ राजा च वत्सराज. । ××गणपतिर्हि अस्य ज्येष्ठो ज्येष्ठराज इति वेदे व्यपदिष्ट. । यत. कनिष्ठ औचित्याद् वत्सराज इति व्यपदिश्यते ।'

अतएव 'ज्येष्ठराज' या 'वत्सराज'—ये दो पद परस्परके परिपूरक हैं । इनका अर्थ यथाक्रम दो देवभ्राता—गणपति और कार्तिकेय हैं । वेदमें ज्येष्ठराज-नामका उल्लेख विशेष महत्त्वपूर्ण है । यह प्रथमतः गणेशको कनिष्ठ कार्तिकेयके ज्येष्ठ भ्राताके रूपमें निर्दिष्ट करता है । केवल इतना ही नहीं, इसमें उनके माता-पिता शिवा-शिवका उल्लेख भी सुस्पष्ट है; क्योंकि 'जेष्ठराज'के अर्थमे गणेश उनके ज्येष्ठ पुत्र भी हैं ।

अत. 'शाकल' और 'तैत्तिरीय'-संहितामें 'ज्येष्ठराज'-नाम गणेशके लिये आम्नात होनेसे सिद्ध होता है कि इतिहास-पुराणादिमें जगत्के माता-पिताकी जो पौराणिक गाथा है तथा उनके विविध लीलाप्रसङ्ग विस्तारपूर्वक वर्णित हैं, वे अर्वाचीन या अनार्योंकी देन नहीं, वेदोंमें इनका मूल सुनिबद्ध है ।

'ज्येष्ठराज' इस नामसे सिद्ध होता है कि गणेश ही नहीं, कार्तिकेय, शिव और पार्वती भी वैदिक देवता हैं । इससे पाश्चात्त्य ईसाई 'भारतबन्धुओं'के दुरभिसंधिमूलक मतवाद विध्वस्त हो जाते हैं ।

ध्यान देनेकी बात है कि तथाकथित वेद-विदग्ध मैक्स मूलरने घोषणा की है कि 'अथर्ववेदमें तीन आँखोंवाले नंगे दानव (Three-eyed naked monster) शिव, उसकी महाशक्ति नृशंस काली और उनके दो कुमार—हस्तिमुख गणेश और षण्मुख कार्तिकेयका अस्तित्व नहीं है ।' इस प्रकार उसने शिव-परिवारपर विशेषरूपसे आक्रमण किया है; किंतु,

तं सुष्टुत्या विवासे ज्येष्ठराज भरे कृत्नुम् ।
महो वाजिनं सनिभ्यः ।

(शौनकसं० २० । ४४ । १)

—इस मन्त्रमें भी गणपति 'ज्येष्ठराज'-रूपमें स्तुत हुए हैं । इस मन्त्रपर सायणभाष्य नहीं मिलता ।

यह ऋक्-मन्त्र 'शाकल-संहिता'में न होनेपर भी अन्य किसी संहितासे लिया गया है ।

(२) शुक्लयजुः-माध्यन्दिन-संहिता ।

(क) 'गणानां त्वा गणपतिँ हवामहे, प्रियाणां त्वा प्रियपतिँ हवामहे, निधीनां त्वा निधिपतिँ हवामहे । वसो मम ॥'　　(२३ । १९)

यह मन्त्र बहुत प्रसिद्ध है । इसमें गणेशके 'गणपति, प्रिय-प्रियपति, निधि-निधिपति' आदि नाम पाये जाते हैं । वङ्गदेशके यजुर्वेदी ब्राह्मण वृषोत्सर्ग-श्राद्धमें इस मन्त्रद्वारा गणेशका आवाहन करके उनकी पूजा करते हैं । यह मन्त्र अश्वमेधयज्ञमे भी विनियुक्त होता है ।

(ख) नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नम' ।　　(१६ । २५)

(ग) 'गणश्रियै स्वाहा, गणपतये स्वाहा ।' (२२ । ३०)

(३) कृष्णयजुर्वेद तैत्तिरीयसंहिता ।

(क) 'गणानां त्वा'—इत्यादि (२ । ३ । १४ । ३) मन्त्र ऊपर दिया गया है ।

(ख) 'तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि । तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ।'

(४) कृष्णयजुर्वेद—मैत्रायणीयसंहिता ।

'तत् कराटाय विद्महे' (२ । ९ । १)—इत्यादि मन्त्र ऊपर दिया जा चुका है । कृष्णयजुर्वेदमें ये दो गणेशके गायत्री-मन्त्र हैं । उनका हस्तितुण्ड, गजवदन, वक्रतुण्ड और बृहद्-दन्त ऋषियोंने प्रत्यक्ष किया था । मैक्स मूलरका गणेश-के हस्तिमुण्डको लेकर प्रलाप करना व्यर्थ और निरर्थक है । पाश्चात्त्य मतसे वेदमें हस्तीका उल्लेख नहीं है; किंतु यह कथन भी मिथ्या है । गणेशके गजवदनका विशद वर्णन वेदमें है । मिस्रदेशके बहुतेरे देवताओंका मुख पशुके समान था । उनके साथ वैदिक-देवता गणेशका कोई सम्पर्क नहीं है और न हो सकता है ।

(५) अथर्ववेद—शौनकी-संहिता ।

'एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि । तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥'

—यह मन्त्र अथर्ववेदीय 'गणपत्युपनिषद्' (८)में भी उपलब्ध होता है । पुराणोंमें विष्णुके अवतार भगवान् परशुरामके साथ युद्धमें गणेशका एकदन्त भग्न होनेकी कथाका मूल इस मन्त्रमें पाया जाता है ।

ब्राह्मण

(६) सामवेद (सामविधान ब्राह्मण)

विनायकसंहितामें उल्लेख है—'एतान् प्रयुञ्जन् विनायकान् प्रीणाति ।' यह स्पष्ट गणेशपूजाकी विधि है ।

आरण्यक

(७) कृष्णयजुः—'तैत्तिरीय आरण्यक' ।

'तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि ।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात्' ॥ इति

भावार्थ—'गणपतिदेवकी गायत्रीमें उनके हस्तिशुण्ड और दन्तका ध्यान करना होता है ।'

उपनिषद्

(८) अथर्ववेद—'गणेशपूर्वतापिनी उपनिषद्' ।

क) गणानां त्वा गणनाथं सुरेन्द्रं कविं कवीनामतिमेधविग्रहम् ।
ज्येष्ठराजं वृषभं केतुमेकं स न शृण्वन्नूतिभिः सीद शश्वत् ॥
(१ । ५)

भावार्थ—'गणपति गण-समूहके नाथ सुरेन्द्र हैं । वे क्रान्तदर्शियोंमें प्रधान हैं, अतिशय मेधावी हैं । इसी कारण वे मानो अतिमेधाके विग्रहस्वरूप हैं । वे उमा-महेश्वरके ज्येष्ठ पुत्र, तेजस्वी, एक और अद्वितीय केतु हैं । वे हमारी स्तुति अनवरत श्रवण करते हुए यज्ञशालामें अधिष्ठित होकर रहें ।'

यहाँ ध्यान देनेकी बात यह है कि इस अथर्व-मन्त्रमें भी 'ज्येष्ठराज' नाम व्यवहृत हुआ है ।

(ख)······वक्रतुण्डस्वरूपिणम् ।
पार्श्वाधःस्थितकामधेनुं शिवोमातनयं विभुम् ।
रक्तमाम्बरनिभाकारं रक्तवर्णं चतुर्भुजम् ॥
(२ । २)

भावार्थ—'गणेशजी चतुर्भुज हैं; उनका वर्ण लोहित है । वे गजवदन हैं । उनका शुण्ड वक्र है । वे भक्तोंके लिये कामधेनुस्वरूप परमेश्वर हैं । वे महादेव और उमाके पुत्र हैं ।'

(९) अथर्ववेद—'गणेशोत्तरतापिनी उपनिषद्' ।

गणानां त्वा गणपतिम् । सप्रियाणां त्वा प्रियपतिम् । सनिधीनां त्वा निधिपतिम् । तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि । तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥ (२)

भावार्थ—'मैं गणसमूहोंके पति गणपति, प्रियगणोंके प्रियपति, निधिसमूहोंके निधिपति उन परम पुरुषको जानता हूँ । उनके वक्र (हस्ति) शुण्डका ध्यान करता हूँ । वे बृहद् दन्तधारी देव हमारी बुद्धिको सत्पथमें प्रेरित करें ।'

ये दो उपनिषद् 'अथर्वशिरः'के अन्तर्गत हैं । महाभारतमें लिखा है तथा आचार्य शंकरने भी इनसे प्रमाण उद्धृत किये हैं । अतएव यहाँ इन्हें अर्वाचीन या क्षेपक कहकर तर्क करनेका अवसर नहीं प्राप्त हो सकता ।

(१०) अथर्ववेद—'बृहज्जाबाल उपनिषद्' ।

"शिवश्चन्द्रश्च रुद्रार्कौ विघ्नेशो विष्णुरेव च ॥
श्रीश्चैव हृदयेशश्च तथा नाभौ प्रजापतिः ।
(४ । २२ क)

—इस मन्त्रमें अन्यान्य महान् देव-देवियोंके साथ विघ्न-हन्ता गणेशकी भी स्तुति है । 'मुक्तिकोपनिषद्'की सूचीमें इस उपनिषद्का भी उल्लेख है । अतः इसे अप्रामाणिक कहना ठीक नहीं है ।

(११) अथर्ववेद—'गणपति उपनिषद्'।

(क) एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥' (८)

एकदन्तं चतुर्हस्तं पाशमङ्कुशधारिणम्।
अभयं वरदं हस्तैर्बिभ्राणं मूषकध्वजम् ॥
रक्तं लम्बोदरं शूर्पकर्णकं रक्तवाससम्।
रक्तगन्धानुलिप्ताङ्गं रक्तपुष्पैः सुपूजितम् ॥ (९)

भावार्थ—'हम एकदन्त गणेशको जानते हैं, गजवदनका ध्यान करते हैं। वह महादन्त देव हमारी बुद्धि को सत्पथमें प्रेरित करें।' 'गणेश एकदन्त एवं चतुर्भुज हैं; हाथोंमें पाश, अङ्कुश, अभय और वरद मुद्राके द्वारा शोभायमान हैं। वे रक्तवर्ण, लम्बोदर और मूषकध्वज हैं। उनके कर्ण शूर्प (सूप) के समान हैं। उनके परिधेय वस्त्र लोहितवर्णके हैं। रक्त चन्दनादि गन्धके द्वारा उनका देह अनुलिप्त है और रक्तवर्णके पुष्पोंद्वारा वे पूजित होते हैं।'

(ख) 'नमो व्रातपतये। नमो गणपतये। नमः प्रमथपतये। नमस्तेऽस्तु लम्बोदरायैकदन्ताय विघ्नविनाशिने शिवसुताय श्रीवरदमूर्तये नमो नमः'॥ (१०)

'मैं गणनाथको प्रणाम करता हूँ। गणपतिको प्रणाम करता हूँ। प्रमथपतिको प्रणाम करता हूँ। लम्बोदर, एकदन्त विघ्नविनाशक, शिवतनय श्रीवरदमूर्तिको बारंबार प्रणाम करता हूँ।'

(ग) यो दूर्वाङ्कुरैर्यजति स वैश्रवणोपमो भवति। यो मोदकसहस्रेण यजति स वाञ्छितफलमवाप्नोति।··· सूर्यग्रहे महानद्यां प्रतिमासंनिधौ वा जप्त्वा सिद्धमन्त्रो भवति। (१२)

'नव-दूर्वादलके द्वारा गणेशकी पूजा करनेसे भक्त कुबेरके समान हो जाता है। जो एक सहस्र मोदकोंका भोग लगाता है, उसको मनोवाञ्छित फल प्राप्त होता है। ··'सूर्यग्रहणके समय महानदीमें अथवा देवप्रतिमाकी संनिधिमें गणेशके इष्ट मन्त्रका जप करनेसे मन्त्रसिद्धि होती है।'

यह 'गणपत्यथर्वशीर्ष उपनिषद्' है तथा 'मुक्तिकोपनिषद्'में भी इसका उल्लेख है। अतएव इस उपनिषद्को अप्रमाणित कहनेका कोई हेतु नहीं है।

वेदाङ्ग

शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द, ज्यौतिष और व्याकरण—ये छः वेदाङ्ग हैं। ये वेदोंके साथ अङ्गाङ्गी-भावसे सम्बद्ध हैं। वेदाङ्गमें पारंगत हुए बिना श्रुतिके गूढ रहस्य और प्रकृत अर्थको हृदयंगम करना सम्भव नहीं। उपर्युक्त उदाहरणोंसे यह निस्संदेह सिद्ध हो गया कि 'ज्येष्ठराज'-गणेश स्मरणातीतकालसे वैदिक धर्ममें एक प्रधान देवताके रूपमें पूजित होते आ रहे हैं। इसके अतिरिक्त यह भी प्रमाणित हो गया कि हर-गौरी तथा उनके दो पुत्र, गणेश और कार्तिकेयकी लीला-कथा वैदिक साहित्यमें भी सुप्रसिद्ध है, केवल पौराणिक गल्प नहीं। यहाँतक कि परशुरामके साथ युद्धके फलस्वरूप एकदन्तके रूपमें गणेशका ध्यान भी वेद-संहितामें उपलब्ध होता है।

यहाँ केवल दो वेदाङ्गों, व्याकरण और कल्पमें गणेशकी उपासनाका कुछ उल्लेख किया जाता है।

(१) व्याकरण

पाणिनिमुनिकी 'अष्टाध्यायी' वर्तमान कालका प्राचीनतम व्याकरण है। इतना ही नहीं, यह पृथ्वीकी सारी भाषाओंके व्याकरणमें श्रेष्ठत्वका दावा रखता है। भविष्यमें भी इसका यह गौरव अक्षुण्ण रहेगा, इसमें संदेहका कोई कारण नहीं है।

'अष्टाध्यायी'के 'जीविकार्थे चापण्ये।' (५। ३। ९९) तथा 'इवे प्रतिकृतौ।' (५। ३। ९६) आदि सूत्रोंमें मूर्तिपूजाका प्रमाण मिलता है। 'पाणिनीय-शिक्षा' भी उपर्युक्त 'अष्टाध्यायी' का ही समकालीन ग्रन्थ है। बहुतोंके मतसे यह वेदके ब्राह्मणभागका समकालीन है, क्योंकि वेदमन्त्र और ब्राह्मणके समान शिक्षामें भी उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित आदिके समान संकेत-चिह्न दिये गये हैं।

इन दो सूत्रोंके भाष्यमें पतञ्जलिने मूर्तिपूजाका तथा कैयट (द्वितीय-तृतीय शताब्दि ई० पूर्व) ने शिव, स्कन्द, विशाख और गणपति-मूर्तियोंका उल्लेख किया है। उनके भाष्य निस्संदेह गुरु-शिष्यपरम्पराद्वारा जो ज्ञानका स्रोत प्रवाहित होता आ रहा है, उसके ही प्रकाशक हैं। अतएव स्वीकार करना पड़ता है कि उनसे बहुत पहले, यहाँतक कि पाणिनिसे बहुत पूर्वसे ही इन सब देवताओंकी मूर्तिपूजा वैदिक आराधनामें प्रचलित थी।

(२) कल्प

(क) मानवगृह्यसूत्र।

'अथातो विनायकान् व्याख्यास्याम'।' (२ । १४) सूत्रमें गणेशोपासनाका वर्णन मिलता है ।

(ख) बौधायन गृह्यपरिशिष्ट सूत्र—

'अथातो विनायककल्पान् व्याख्यास्याम ।'(३ । १०) देव-देवियोंके समान गणेशकी उपासना-विधि भी इसमें वर्णित हुई है ।

(ग) बौधायन-धर्म-सूत्र—

इसमें विनायक और स्कन्द, षण्मुख, जयन्त, महासेन तथा षष्ठी आदि देव-देवियोंकी उपासनाकी विधियाँ हैं ।

इन तीन 'कल्पसूत्रों'में गणेशकी उपासनाका उल्लेख है । ये पाणिनिकी अपेक्षा भी अत्यन्त प्राचीन हैं । वैदिक युगके समाजकी विधि-व्यवस्थाके विषयमें व्याकरण और कल्पसूत्रका जो साम्य प्राप्त होता है, उससे दृढ़रूपमें प्रमाणित हो जाता है कि हिंदूधर्ममें गणेशजीकी पूजा अति प्राचीन कालसे ही प्रचलित है ।

अतः 'गाणपत्य-सम्प्रदाय दसवीं शतीमें प्रादुर्भूत हुआ', 'गणेशका आदिस्थान दक्षिणभारतमें था' तथा 'गणेशकी उपासना आदि अति निम्नस्तर—की है ।' ये आधुनिक मत व्यर्थके बकवास-मात्र हैं, इनका कोई समुचित आधार नहीं ।

शङ्कराचार्य और गौडपादाचार्य गणेशको मानते थे । गम्भीर अनुसंधानके द्वारा कई विद्वानोंने श्रीशंकराचार्यका समय ६८८—७२० ई० स्थिर किया है । उनके परम गुरु 'माण्डूक्यकारिका' के प्रणेता श्रीगौडपादाचार्य अद्वैतवादके संस्थापक थे । उनका समय छठी शताब्दी (ईसवी) होना असङ्गत नहीं है । ये दोनों ही गणपतिके भक्त थे ।

शंकराचार्यने अपने 'प्रपञ्चसारतन्त्र'-नामक विशाल ग्रन्थके अष्टादश परिच्छेदमें गणपतिकी ध्यानमूर्तिका अङ्कन किया है । तदनुसार गणेशके एकदन्त और दस हाथ हैं । उनकी पत्नी और नौ शक्तियोंके साथ उनकी पूजा करनी चाहिये । श्री और विष्णु; दुर्गा और शिव, रति और मदन तथा मही और वराहका उनके पार्श्ववर्तीरूपमें ध्यान करना चाहिये ।

श्रीगौडपादाचार्यने सप्तशतीके भाष्य 'चिदानन्द-केलि-विलास' ग्रन्थके मङ्गलाचरणमें पहले ही 'श्रीगणेशाय नमः' के द्वारा प्रारम्भ किया है । उसके आगे यह श्लोक है—

गुरुं गणपतिं दुर्गां वाणीं महिषमर्दिनीम् ।
ध्यात्वा सप्तशतीटीकां व्याकुर्वे विदुषां मुदे ॥

पञ्चोपासना

सनातन-धर्ममें जो देवकार्य होते हैं, वे जगत्के मूल उपादान पञ्चमहाभूतके अधिष्ठाता पञ्चदेवताकी उपासनापर आधारित हैं । गणपति जलतत्त्वके अधिदेवता हैं, सगुण ब्रह्मस्वरूप हैं । अतएव वे एक मुख्य देवता हैं ।

पञ्चमहाभूतोंके अधिदेवता यथाक्रम इस प्रकार हैं—

(१) क्षिति—ईश (शिव) ।
(२) अप्—गणेश ।
(३) तेजः—महेश्वरी (दुर्गा) ।
(४) मरुत्—सूर्य ।
(५) व्योम—विष्णु ।

आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी ।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः ॥

ये पञ्चदेवता प्रत्येक साकार ब्रह्मके एक-एक रूप हैं—

'उपासनं पञ्चविधं ब्रह्मोपासनमेव तत् ॥'

जगत्के प्रत्येक पदार्थ और जीव इन पञ्च महाभूतोंके द्वारा रचित हैं । एक-एक व्यक्तिमें एक-एक तत्त्वकी अधिकता है; तदनुसार ही उनके तत्त्वके देवताका इष्ट होना स्वाभाविक है । सद्गुरु ऋतम्भरा-प्रज्ञा, स्वरोदय-शास्त्र एवं ज्योतिष आदिकी सहायतासे समझ लेते हैं कि किस शिष्यमें किस तत्त्वकी प्रधानता है और तदनुसार उस तत्त्वके अधिष्ठातृ देवताका मन्त्र उसको प्रदान करते हैं ।

अतएव पञ्चतत्त्वके अनुसार पञ्चदेवताकी उपासना केवल गम्भीर रहस्यमय दर्शन या योगका ही विषय नहीं है, बल्कि इसकी वैज्ञानिक भित्ति भी सुदृढ़ है । श्रीगौडपादाचार्य तथा श्रीशंकराचार्यने 'पञ्चीकरण' प्रभृतिकी खूब आलोचना की है । विस्तारके भयसे यहाँ इसका उल्लेखमात्र करके हम विरत होते हैं ।

सनातनधर्मके किसी भी देव या पितृकर्म करनेके पूर्व यजमानको पहले पञ्चदेवताकी पूजा करनी पड़ती है; वह चाहे शैव, शाक्त, वैष्णव, सौर या गाणपत्य-सम्प्रदायका ही क्यों न हो ।

इस प्रकार देखनेपर हिंदूधर्ममें कभी किसी प्रकारका सम्प्रदाय-विरोध नहीं दीखता । उधर पाश्चात्त्य देशोंमें ईसाई लोगोंके रोमन कैथलिक और प्रोटेस्टेंटमें जो कलह पैदा हुआ, उसके फलस्वरूप नृशंस हत्याकाण्ड, धर्मके लिये
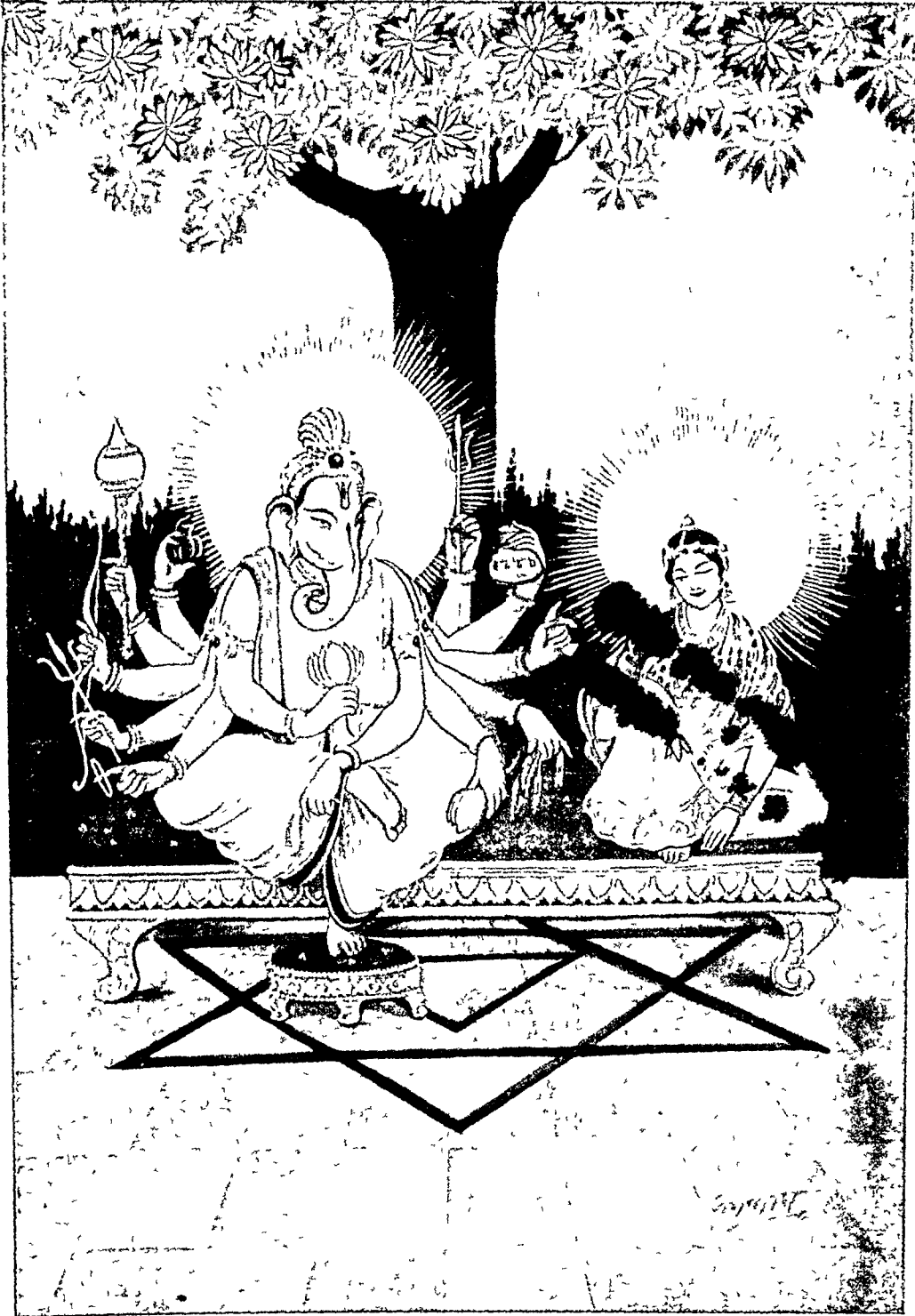
शक्तिसहित श्रीमहागणपति

प्राणदण्ड, इन्क्विजीशन (Inquisition)—जलाकर मार डालना आदि घटनाएँ खूब घटित हुईं। फ्रांसमें प्रोटेस्टेंट लोगोंके ऊपर राजा चतुर्दश लुईने चरम सीमातक अत्याचार किया। उसके पूर्व सेंट वार्थोलोम्यू (St. Bartholomew) के दिवसतक अत्याचार फैला रहा। इंग्लैंडमें पादरी लोगोंको— जैसे आर्क विशप क्रानमार (Cronmar)को १५५६ ई० में जलाकर मार डाला गया। प्रोटेस्टेंट लोगोंकी हत्या १५५९ ई०तक हुई।

आयरलैंडमें कैथलिक लोगोंके साथ प्रोटेस्टेंट लोगोंका संघर्ष आज भी चल रहा है। गत महायुद्धमें हिटलरने अमानुषिक रीतिसे लगभग ७५ लाख यहूदियोंका वध किया था।

मुस्लिम आक्रमणकारियों और शासकवृन्दने भारतमें हिंदुओंके ऊपर जो बर्बरतापूर्ण अत्याचार किये, उसकी तुलना कहीं नहीं है। पाकिस्तानमें हिंदुओंका उत्पीड़न भयानक रीतिसे हुआ और हो रहा है। शिया-सुन्नीके विरोधकी बातको सभी जानते हैं।

तथापि हिंदुओंमें साम्प्रदायिक विरोध तो क्या, परमत-असहिष्णुता भी नहीं देखी जाती; बौद्धोंको तलवारके द्वारा नहीं, युक्तिके द्वारा ही पराजित किया गया। जैनियोंके ऊपर यदि हिंदू राजाओंने अत्याचार किये होते तो वे यहाँ टिके न रह सकते। फलतः वर्णाश्रम-समाजमें आपाततः सम्प्रदाय-भेद देखे जानेपर भी वस्तुतः धर्मानुष्ठानमें सबकी एकता है। केवल प्रत्येकके तत्त्वानुसार इष्टका निश्चय होता है। पति और पत्नी, दोनोंके इष्ट-मन्त्रोंमें भी भेद हो सकता है।

आज भी कुम्भमेला हिंदुओंकी असाम्प्रदायिकताका एक समुज्ज्वल दृष्टान्त है। इतना विशाल धर्मसंघटन विश्वमें और कहीं नहीं है।

पञ्चदेवताकी लिङ्गपूजा

भगवान् श्रीशंकराचार्यने पाँचों देवताओंकी लिङ्गपूजाकी जो व्यवस्था कर दी है, दक्षिण भारतके ब्राह्मण लोग उसके अनुसार प्रतिदिन एक साथ ही पञ्चलिङ्गकी पूजा करते हैं। काशीमें भी पञ्चलिङ्ग पाये जाते हैं। कुछ वर्ष पूर्व उनका मूल्य लगभग २५ रुपया था। वे ये हैं—(१) शिवका वाणलिङ्ग, (२) विष्णुकी शालग्राम शिला, (३) सूर्यका स्फटिक-बिम्ब, (४) शक्तिका धातुयन्त्र और (५) गणपतिका चतुष्कोण रक्तवर्ण प्रस्तरविशेष।

जिसका जो देवता इष्ट होता है, उसी देवताके लिङ्गको केन्द्रस्थानमें रखकर तथा अन्य चार लिङ्गोंको चारों ओर रखकर आवरण-देवताके रूपमें पूजा करनी पड़ती है। लिङ्ग-पूजाके अश्लील होनेकी आधुनिक धारणा नितान्त भ्रमपूर्ण है।

गणेश-पूजा प्रथम

साराश यह है कि सनातनधर्ममें गणपतिकी उपासना एक दृष्टिसे देखनेपर सर्वापेक्षा प्रयोजनीय है, क्योंकि प्रारम्भमें उनकी पूजा बिना किये किसी कार्यमें अग्रसर होना असम्भव है। इस दृष्टिसे हममें प्रत्येक ही गाणपत्य-सम्प्रदायके अनुयायी हैं। प्रत्येक हिंदूके घर, दूकान एवं कार्यालयमें गणेशका चित्र या प्रतिमूर्ति रखी जाती है।

पुरातात्त्विक प्रमाण

विधर्मियोंके अत्याचारसे भारतके अधिकाश प्राचीन मन्दिर और देवता ध्वस्त हो गये हैं; किंतु आज गणेश-मन्दिर या मूर्ति कम देखनेमें आती है, अतएव अपेक्षाकृत आधुनिक युगमें उनकी मूर्तिपूजा प्रारम्भ हुई है, यह समझना भूल है।

(१) सुप्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ रायबहादुर दयाराम साहनीने जयपुर [illegible]ज्यमें साँभर झीलके तटवर्ती एक टीलेके निम्नस्तरमें खुदाईके [illegible]लस्वरूप द्विभुज गणेश, अग्नि और शिवकी पकी [illegible]ीकी मू[illegible] [illegible]ोज निकाली है। उसके साथ ग्रीक राजा अ[illegible]माकस नि[illegible]फर (Antimachos Nicophor) १३० ई० पूर्वकी मु[illegible] भी उपलब्ध हुई है। अतएव यह मूर्ति अति प्राचीन है त[illegible] ई० पूर्व द्वितीय शताब्दीसे परेकी नहीं है।

(२) वङ्गदेशमें चौबीस पर[illegible] जिलेमें चन्द्रकेतु-गढमें गणेश और शक्तिकी पकी मिट्टीकी मूर्ति (४ इंच आकारकी) पायी गयी है। विशेषज्ञोंके मतसे वह ई० पूर्व द्वितीय शताब्दीकी है।

गणेशजीकी जो प्राचीन पत्थरकी मूर्तियाँ देखनेमें आती हैं, उनमें अति सुन्दर शिल्पकला-विशिष्ट प्रतिमाओंकी कमी नहीं है। भुवनेश्वरमें, लिङ्गराज-मन्दिरके पार्श्वमें एक अति उत्कृष्ट गणेशकी मूर्ति है। जान पड़ता है कि वह मकरनद्वारा तैयार की गयी है।

वङ्गदेशमें शरद् और वसन्त-ऋतुमें दशभुजा महिष-मर्दिनीके साथ उनके पुत्रके रूपमें गणेश और कार्तिकेय तथा कन्याकी भावनासे लक्ष्मी-सरस्वतीकी एक साथ मृन्मयी विराट् प्रतिमाकी तीन दिनोंतक पूजा होती है।

उज्जैन, पिपलोदा और इंदौरमें भी विशाल मृन्मयी गणेशमूर्तियाँ हैं।

श्रीगणेशके आज भी दर्शन होते हैं

विघ्नविनाशक गणपति शंकरजीके समान आशुतोष, सदानन्द और करुणामय हैं। वे थोड़ेमें ही संतुष्ट हो जाते हैं, भक्तोंको उनके अब भी दर्शन होते हैं—

१—लेखकके परम मित्र रायबहादुर मनोमोहन कक्कड़ काश्मीरके गवर्नर थे। वे निष्ठावान् काश्मीरी ब्राह्मण थे। इंदौरमें रहते थे। उनको गणेशकी विशाल मूर्तिका दर्शन हुआ था। भगवान्ने मृदुहास्य करते हुए उन्हें दर्शन दिया था।

२—लेखकके निकट-आत्मीय एक सात वर्षके बालकने जगन्नाथजीके मन्दिर,पुरीके प्राङ्गणमें देवसभामें गणेश और कार्तिकेयके मल्लयुद्धका एक अलौकिक दृश्य देखा था। गणेशने शुण्डके द्वारा कार्तिकेयको फेंक दिया था। यह देखकर वह हँस पड़ा था। यह सन् १९३४ ई० की घटना है।

३—लेखकके सुपरिचित एक ब्राह्मणने ग्वागड़ा (मुर्शिदाबाद) में गङ्गास्नानके समय जलके भीतर देखनेपर थोड़ी दूरपर गणेशकी मूर्ति देखी थी। आश्चर्यकी बात है कि गणेश एक मत्स्यके ऊपर बैठे थे। वह कुछ-कुछ चन्दा मछलीसे मिलती थी। मत्स्यवाहन गणेशकी प्रतिमाकी कोई कल्पना भी नहीं करता। जान पड़ता है कि जल-तत्त्वके अधिपतिने इसी रूपमें उन्हें दर्शन दिया था। यह १९३४ ई० नवम्बर मासकी घटना है।

गणपति वैदिक देवता हैं, इस विषयमें शङ्कराचार्यको कुछ भी संदेह न था—

यमेकाक्षरं निर्मलं निर्विकल्पं गुणातीतमानन्दमाकारशून्यम्।
परं पारमोंकारमाम्नायगर्भं वदन्ति प्रगल्भं पुराणं तमीडे॥
(शङ्कराचार्यकृत श्रीगणेशभुजङ्गप्रयातस्तोत्रम् ७)

'जिसका एकाक्षर, निर्मल, विकल्परहित, त्रिगुणातीत, परमपार, आनन्दमय, निराकार और प्रणवस्वरूप, वेदगर्भ और पुराणपुरुष कहकर मुनिजन श्रद्धापूर्वक कीर्तन करते हैं, मैं उन ईशान-नन्दन गणपतिका स्तवन करता हूँ।'

उत्तम आदर्शोंके संस्थापक श्रीगणेश

(लेखक—पं० श्रीलक्ष्मीनारायणजी पुरोहित, साहित्याचार्य, कविकुलनिधि, वाचस्पति)

भारतवर्ष सदासे ही महान् आदर्शोंके निधानरूपमें रहता चला आया है। इसमें राम, कृष्ण, शंकर, बुद्ध आदि ऐसे महापुरुष हुए हैं, जिनके उदार चरित्रोंने न केवल भारतको ही, अपितु सारी ही वसुन्धराको अपने सुसौरभसे सतत सौरभित रखा है। श्रीगणेश भी एक वैसे ही महान् भारतीय आदर्श हैं। किंतु उनमें एक विशेषता यह भी है कि वे अपने चरित्रोंसे ही नहीं, अपने अङ्ग-उपाङ्ग, वसन-भूषण, मुद्रा-आयुध, परिकर-परिच्छद आदिकोंके द्वारा भी ऐसी प्रशस्त पद्धतिका संकेत करते हैं, जिसका आश्रयण करनेपर मानव-समाजके सभी समीहित हित संनिहित हो सकते हैं। अस्तु,

भगवान् गणेशने माताकी आज्ञाके अनुसार द्वारपालकर्ता-का कार्य भी कठोर तत्परताके साथ किया। पिताके कुपित हो जानेपर भी उन्हें माताकी आज्ञाके विरुद्ध स्नानागारमें प्रविष्ट न होने दिया। उन्होंने शरीरपातपर्यन्त अपने लिये प्राप्त कर्तव्य-का पालन किया। इस अनुकरणीय चरित्रके द्वारा श्रीगणेशने **'मातृदेवो भव'**, **'पितुर्दशगुणं माता गौरवेणातिरिच्यते'** इत्यादि श्रुति-स्मृति-वचनोंका यथावत् पालन करके एक उत्तम आदर्श उपस्थित किया। उन्होंने अपने अङ्गोपाङ्गादिके द्वारा जिन लोकहितकारी मङ्गलमय आदर्शोंकी ओर संकेत किया है, उन्हींको यहाँ विबुधजनमनोविनोदार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है—

गुणग्रामार्चितो नेता क्रियतां स्वो जनैरिति।
गणेशत्वेन शंसन्तं गुणाब्धिं तं मुहुर्नुमः॥

'गुणगणोंसे अलङ्कृत मनुष्यको ही लोग अपना नेता बनाते हैं, इसे गणनायकपनसे सूचित करते हुए सद्गुणगणोंके समुद्र भगवान् गणपतिकी मैं बारंबार स्तुति करता हूँ।'

यः स्वल्पमप्यञ्चति सद्गुणोदयं मूर्ध्नोचितं तस्य समर्हणं सताम्।
इत्याकलयन् भालकलाधरं दधत् स्याद् भूतये भालकलाधरो मम॥

"जो थोड़े-से भी सद्गुणोंका उदय प्राप्त कर रहा हो, उसका सज्जनोंको अपने मस्तकके द्वारा समादर करना चाहिये, उसे उच्चतम स्थान देना चाहिये, इसी भावको प्रकट करते हुए बालकलाधरको भालदेशमें स्थान देकर 'भालकलाधर' या 'भालचन्द्र' कहलानेवाले भगवान् गणपति हमारे लिये ऐश्वर्यप्रद हों।"

नेत्रद्वन्द्वं साधुने जीवनाय नाऽलं तस्माज्ज्ञाननेत्रं ध्रियेत।
इत्यक्ष्णा संसूचयन् भालगेन नागास्यो नः पातु धीवारिराशिः॥

'अच्छे जीवनके लिये स्थूल पदार्थोंको देखनेवाले केवल दो नेत्र ही पर्याप्त नहीं हैं। तीसरा ज्ञानरूपी नेत्र भी मनुष्यको धारण करना चाहिये,—इस भावको ललाटगत तृतीय नेत्रके द्वारा सूचित करते हुए ज्ञान-वारिधि भगवान् गजानन हमारी रक्षा करें।'

नेता विशालविमलप्रमुदाशयः सन्
स्यात् सर्वदैव सुमुखः स्वजने प्रवृत्तः ।
इत्युद्गिरन् प्रमुदितास्यतयाऽन्तराय-
ध्वान्तापहास्तु शरणं मम कोऽपि भास्वान् ॥

'नेताको मनुष्योंके साथ व्यवहार करते समय मुँह फुलाये नहीं रखना चाहिये, अपितु सदा ही विशाल, विमल और प्रमुदित हृदयवाला होकर प्रसन्नवदन ही रहना चाहिये—इस अभिप्रायको अपनी प्रसन्नमुखताद्वारा प्रकट करते हुए विघ्नरूप अन्धकारको मिटानेके लिये अनिर्वचनीय सूर्यरूप (भगवान् गणपति) मेरे शरणदाता हों।'

हसितविभूषितवदनो जनोऽस्तु सकलोऽपि मोदसम्पत्त्यै ।
इति रददर्शितहृदय स एकदन्तोऽस्तु मे शरणम् ॥

'पारस्परिक प्रमोद-सम्पत्तिके सवर्धनके लिये सभीको अपना मुख हास्यच्छटासे विभूषित ही रखना चाहिये—इस आशयको एकदन्तत्वसे प्रकट करनेवाले भगवान् गणपति मेरे शरणदाता हों।'

लोकाराधनकर्म दिग्गजमहामूर्धैव कर्तुं प्रभु-
र्घ्रातुं सर्वगभीरमानसमलं स्याद् दीर्घघोण पुमान् ।
भङ्ग्याऽऽस्यस्य तथा दधातु मतिमान् नीचेषु चोपेक्षण-
मित्याख्यान् करिवक्त्रवक्रिमरुचान्यात्तो गणेशो निजान् ॥

'दिग्गजके समान महामस्तक (बड़े माथावाला) पुरुष ही लोगोंको संतुष्ट रखनेका कार्य कर सकता है—यह बात गणेशजी अपने गज-तुल्य मस्तकसे सूचित करते हैं। सबके गम्भीर अन्तस्तलको सूँघने (जानने) में दीर्घ नासिका (विशाल बुद्धि) वाला मनुष्य ही समर्थ हो सकता है—यह भाव वे अपनी लंबी सूँड़द्वारा प्रकट करते हैं तथा वक्रतुण्डता (मुखकी वक्रता) से यह अभिप्राय व्यक्त करते हैं कि जैसे हाथी कुत्तोंके भूँकनेपर ध्यान नहीं देता, उसी प्रकार बुद्धिमान् पुरुषको नीच या दुष्टजनोंकी कुचेष्टाओंकी उपेक्षा कर देनी चाहिये। ऐसे भगवान् गणेश निज भक्तगणोंकी रक्षा करें।'

नेता समस्य शृणुयादपि कष्टवार्तां
रक्षन् सदा सहृदयो विपुलश्रवस्त्वम् ।
इत्युद्गिरन् स शरणं गजकर्णकत्व-
स्वीकारवर्यविधिनास्तु गजाननो नः ॥

'लोकनायकको सदैव सहृदय रहते हुए अपने कानोंको विशाल बनाये रखना चाहिये, जिससे वह लोगोंकी दुःख-गाथाओंको सुन सके—इस बातको हाथीके-से विशाल श्रवणों-को स्वीकार करनेकी श्रेष्ठ विधिसे सूचित करते हुए भगवान् गणपति हमारे लिये शरणप्रद हों।'

लोकः परोऽपि हृदि विप्रियमन्यदत्तं
तूष्णीं दधत् प्रकटयेत् स्वमहाशयत्वम् ।
इत्यादिशन्नुदधिशोभ्युदरादरेण
लम्बोदरः स भगवानवलम्बनं स्यात् ॥

'सज्जन पुरुष दूसरोंके द्वारा किये गये अपकारोंको चुपचाप मनमें रखे और इस प्रकार अपनी महाशयता प्रकट करे—इस भावको अपने उदधिके समान विशाल उदरके प्रति आदर रखकर सूचित करनेवाले भगवान् लम्बोदर हमारे अवलम्ब हों।'

रागमयं स्वावरणं रक्ष्यं सर्वै स्वकीयहितकामैः ।
इति रक्ताम्बरधृत्या ख्यान् गणपो नः कृपानिधिः पायात् ॥

'अपना हित चाहनेवाले सभी लोगोंको अपना वातावरण अनुरागमय बनाये रखना चाहिये, इस भावको रक्तवर्णवाले वस्त्रके धारणसे सूचित करते हुए कृपासिन्धु भगवान् गणपति हमारी रक्षा करते रहें।'

स्वकमिह धवलीकरोतु सर्वः
सुकृतभरैरवदातकान्तिवित्तैः ।
इति सितवसनत्विषां प्रसारै-
र्द्विपवदनोऽवतु वेदयन् निजान् नः ॥

'सुकृत-समूहकी उज्ज्वल प्रभाके वैभवसे सब लोग अपनेको स्वच्छ ही बनाये रखें—इस अभिप्रायको धवल वर्णवाले वस्त्रकी कान्तिके प्रसारसे प्रकट करते हुए भगवान् गजानन हम-जैसे निजजनोंकी रक्षा करते रहें।'

आरूढो जननायकस्य पदवीं लोकस्य सर्वापदां
नाशायाविरतं हिताय च भवेत् सक्तो मनीषी जनः ।
इत्याख्यानभयं वरं च करयोर्लोन्त्या सतोर्मुद्रया
दीनानुग्रहकातरः स भगवान् विघ्नेश्वरः पातु नः ॥

'मतिमान् मनुष्यको चाहिये कि लोकनायकके पदको प्राप्त होनेपर वह लोककी आपत्तियोंको दूर करने और हितोंके

साधनमें ही लगा रहे (भोग-विलासोंमें न फँस जाय)। अपने प्रशस्त हस्तोंकी अभय और वरद मुद्राओंसे यही भाव प्रकट करते हुए दीनजनोंके अनुग्रहके लिये कातर रहनेवाले भगवान् विघ्नेश्वर हमारी रक्षा करें।'

नेता नियन्त्रयितुमेव सदाखिलाना
बद्धादरो भवतु सेतुभिदां खलानाम्।
इत्यन्तरायसमुदायहरो भवेन्न:
संसूचयन् स मुदितोऽङ्कुशधारणेन ॥

'लोकनायकको चाहिये—मर्यादाओंको तोड़नेवाले दुर्जनोंके नियन्त्रणके लिये सदैव तत्पर रहे—इस अभिप्रायको अङ्कुश धारण करनेके द्वारा सूचित करते हुए विघ्न-वृन्दको मिटानेवाले वे भगवान् गणपति हमपर प्रसन्न हों।'

प्रेमाह्वं प्रथितगुणं प्रतत्य पाश
मोदन्तां वशमखिलं समे नयन्त:।
इत्याख्यान् करगतपाशरश्मिनासौ
विघ्नेशो जयतु समस्तकामपूर: ॥

'जिसमें गुण (सौहार्दादिरूप सूत्र) प्रसिद्ध हैं, ऐसे प्रेम-नामक पाशको फैलाकर सब लोग सबको अपने वशमें करते हुए आनन्दसे उल्लसित बने रहें—इस भावको अपने हस्तगत पाशरज्जुसे सूचित करते हुए सबके सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले भगवान् विघ्नेश्वरकी सदा जय हो।'

जन इह सकल: प्रसादक स्यात्
स जनतयाऽऽद्रियते विषादको न।
इति पिशुनयतीव मोदकानां
ग्रहविधिना बत कोऽपि न: शरण्य: ॥

'सभीके द्वारा मोदक (मोदजनक) पुरुषका ही आदर किया जाता है, खेद उत्पन्न करनेवालेका नहीं। अत: सभीको प्रसादक (लोकप्रिय) बनना चाहिये—इस भावको हमारे शरणदाता भगवान् गणपति मानो मोदक-ग्रहणके द्वारा प्रकट कर रहे हैं।'

या नार्य स्वीयभर्तॄन् सततमनुरता सेवया तोषयन्ति
पातिव्रत्यप्रसादादिह हि दधति ता ऋद्धितां सिद्धितां च।
दारेषु स्वेषु रक्त: सुसुखमनुभवन् स्याच्च ना हृष्टपुष्ट
इत्यन्योन्यस्निहा न: विपुरतु गणपस्तत्प्रिये चोद्दिरन्त: ॥

'जो नारियाँ पतिको सानुराग सेवाओंसे संतुष्ट रखती हैं, वे पातिव्रत्यके प्रभावसे स्वयं ऋद्धि-सिद्धिस्वरूपा बन जाती हैं। इसी प्रकार जो मनुष्य अपनी ही स्त्रीमें अनुरक्त है, वह लौकिक सुखोंका अच्छा उपभोग करता है और परम प्रसन्न एवं हृष्ट-पुष्ट बना रहता है—इस अभिप्रायको आनन्दमय भगवान् गणपति और मङ्गलमयी उनकी ऋद्धि-सिद्धि नामवाली प्रियतमाएँ अपने पारस्परिक प्रेमसे प्रकट करते हुए सदा हमारा पालन-पोषण करती रहें।'

कदाचिन्नो तुच्छेष्वपि परिवृढा यायुररुचिं
परं स्वीकुर्युस्तान् निजजनतया स्नेहसहितम्।
इति व्याख्यानाखुं वहनमुररीकृत्य विहृतै-
र्गणानामीश: स्वानवतु सततं विघ्नविसरात् ॥

'स्वामीको कभी भी तुच्छजनोंके विषयमें अरुचि नहीं प्रकट करनी चाहिये, अपितु उन्हें स्नेहसहित स्वजनके रूपमें स्वीकार करना चाहिये, इसीमें उनकी महिमा है—इसी भावको व्यक्त करते हुए मूषकको वाहनके रूपमें स्वीकार करके विचरनेवाले भगवान् गणपति अपने भक्तजनोंको सदा विघ्नवृन्दोंसे बचाते रहें।'

मातरि तथोपमातरि सूनुत्वेनैव वर्ततां सकल:।
इति गणपोऽवतु शंसन् गङ्गागौर्यो: सुतत्वमाम्रेन ॥

'भगवान् गणपति द्वैमातुर हैं, अर्थात् एक माता गौरी और दूसरी माता, उपमाता होते हुए भी माताके रूपमें सम्मानित गङ्गा, उन दोनोंहीमें पुत्ररूपसे गणपति समानरूपसे व्यवहार करते हैं, इसी तरह सभीको माता तथा उपमाता दोनोंके प्रति समानरूपसे आदरपूर्ण व्यवहार करना चाहिये—इस भावको अपने आचरणसे सूचित करते हुए भगवान् गणपति हमारी रक्षा करते रहें।'

नेता स्यादिह य: पुमान् स मतिमान् लोकस्य कल्याणकृत्
खेदच्छेदशुभाभिवर्धनविधेर्विघ्नान् विनिघ्नन् सदा।
वर्तेतेति स लोकनायकनयं विघ्नौघविध्वंसनै:
शंसन् न: सुषमाविभूषिततनु: पायाद् गणाधीश्वर: ॥

'जो पुरुष नेता बने वह निरन्तर लोककल्याणकारी कार्योंमें लगा रहे। लोगोंके खेदका निवारण तथा शुभका संवर्धन करता रहे; साथ ही इन कार्योंमें आनेवाले विघ्नोंका भी उच्छेद करता रहे। अपनेद्वारा किये जानेवाले विघ्न-विध्वंस-सम्बन्धी कार्योंसे यही सूचित करते हुए परमशोभासे सुशोभमान भगवान् गणाधीश्वर हमारी रक्षा करें।'

श्रीगणेश-मीमांसा

(लेखक—श्रीअनिरुद्धाचार्य वेंकटाचार्य, तर्कशिरोमणि)

यहाँ निगम, आगम एवं योगज प्रत्यक्षके आधारपर 'श्रीगणेश-तत्त्व'की मीमांसा की जा रही है। इसमें 'गणेश-तत्त्व'-का 'इदमिदम्, इदमित्थम्, इदमियत्' रूपसे प्रत्यक्षकल्प निर्णय किया गया है। 'गणेश'—यह समस्त पद है। यह 'गणानाम् ईशः गणेशः'—इस प्रकार षष्ठी तत्पुरुष समासके विधानसे निष्पन्न हुआ है। 'कोश'-ग्रन्थोंमें 'गण'-शब्द समूह-विशेषका वाचक माना गया है। 'गणेश'-पद-घटक 'गण'-शब्द वेदों एवं पुराण आदि आर्ष-ग्रन्थोंमें प्रसिद्ध सप्तविध मरुद्गणोंका वाचक है, अतः उन मरुद्गणोंका ईश होनेके कारण 'गणेश' 'नि षु सीद गणपते गणेषु' (ऋग्वेद १० । ११२ । ९) आदि वेद-ऋचाओंमें 'गणपति'-शब्दसे अभिहित हुआ है।

शिव-शक्ति-पुत्रता

निगम-आगममें 'गणेश'को शिव शक्तिका पुत्र माना गया है। वेदोंमें आग्नेय प्राण 'शिव' एवं सौम्य प्राण 'शक्ति'-शब्दसे अभिहित हैं। इन दोनोंके समन्वय (सयोग) से उत्पन्न सात प्रकारके यौगिक प्राण ही सप्तविध 'मरुद्गण' हैं। इस विज्ञानका विश्लेषण 'मरुतो रुद्रपुत्रासः'—इस ऋचामें किया गया है। ये सात प्रकारके मरुद्गण भौतिक 'वायु'के जनक हैं, जिसका स्पर्श हमको प्रत्यक्षरूपसे होता है। मरुद्गणोंसे उत्पन्न होनेके कारण यह भौतिक वायु 'मारुत' कहलाता है। वेदोंमें इसका एक नामान्तर 'वात' भी है। इस प्रकार वायुके जनक (पिता) मरुद्गण हैं। मरुद्गणोंके पिता 'रुद्र' एवं माता 'पार्वती' हैं। 'गणपति' भी मरुद्गणोंमें अन्यतम मरुत् हैं, अतः ये शिव-शक्ति-जन्य होनेसे उनके पुत्र हैं—'वन्दे शैलसुतासुतम्'।

गणेश एवं हनुमान्

पुराणोंमें विज्ञान है कि 'अदिति' (सूर्य-संयुक्ता पृथ्वी)के गर्भमें इन सात मरुद्गणोंकी प्रतिष्ठा हुई। वासव—इन्द्रका भी वहाँ निवास हुआ। वह इनमेंसे प्रत्येकके सात-सात विभाग कर देता है, अतः ये सात मरुद्गण उनचास संख्या (रूपों)में परिणत हो जाते हैं। इनमें पृथ्वीमें स्थित घनभावापन्न सर्वादि मरुत्प्राण 'गणपति' हैं। विरलभावापन्न सूर्यमें स्थित सर्वान्त मरुत्प्राण 'महावीर' (हनुमान्) हैं। इस प्रकार गणेश एवं हनुमान्—ये दोनों मरुद्गणोंके अन्तर्गत होनेसे 'मरुतो रुद्र-पुत्रास.'के आधारपर रुद्र-पुत्र हैं। यही कारण है कि 'वैखानसागम'में हनुमान्को आकाशसे अभिन्न माना गया है।

विघ्नहर्ता एवं कर्ता

उनचास मरुद्गणोंमेंसे पृथ्वीमें स्थित 'मूल-मरुत्-प्राण' गणेश हैं। इस मूल प्राणके धृति-बल, प्रतिष्ठा-बल एवं आधार-प्राण आदि अनेक पर्याय हैं। इस प्रतिष्ठाप्राणकी स्थितिमें विश्वकी स्थिति एवं प्रच्यवनमें विश्वका विनाश है। ये दोनों भाव क्रमशः उनके विघ्नहर्तृत्व एवं विघ्नकर्तृत्व-रूप दो पहलू हैं। विघ्नकर्तृत्वभावसे वे 'विघ्नराजो गणाधिपः' हैं तथा विघ्नहर्तृत्वभावसे 'सर्वविघ्नच्छिदे तस्मै गणाधिपतये नमः ॥' हैं।

सर्वाग्रपूजा

ब्रह्माण्डमें उत्पन्न होनेवाले अणु-बृहत्—सभी कार्यों एवं घटनाओंको अपनी सिद्धि एवं स्थितिके लिये आधार-रूपसे धृति-बलरूप गणेशका अवलम्बन (अर्चन) अनिवार्यरूपसे लेना पड़ता है, इस विश्वव्याप्त नियमके आधारपर ही आर्योंने कार्यमात्रके आरम्भमें 'गणेश'की अग्रपूजाको अनिवार्य माना है। आर्य इस प्राकृत नियमका पालन परम्परासे जागरूक होकर करते आये है, इसमें इतिहाससमर्थित यह कवि-सूक्ति प्रमाण है—

जेतुं यस्त्रिपुरं हरेण हरिणा व्याजाद्बलिं बध्नता
स्रष्टुं वारिभवोद्भवेन भुवनं शेषेण धर्तुं धराम्।
पार्वत्या महिषासुरप्रमथने सिद्धाधिपैः सिद्धये
ध्यातः पञ्चशरेण विश्वजितये पायात् स नागाननः ॥*

---

* त्रिपुरपर विजय प्राप्त करनेके लिये भगवान् शंकरने, छलसे बलिको बाँधनेके लिये भगवान् विष्णुने, चौदहों भुवनोंकी रचनाके लिये ब्रह्माजीने, पृथ्वीको अपने मस्तकपर धारण करनेके लिये भगवान् शेषने, महिषासुरके वधके लिये भगवती पार्वती (दुर्गा) ने, सिद्धि प्राप्त करनेके लिये सिद्धेश्वरोंने तथा विश्वविजय करनेके लिये कामदेवने जिनका ध्यान (स्मरण) किया, वे भगवान् गजानन हमारी रक्षा करें।

अध्यात्ममें ये 'गणपति' बस्तिगुहामें प्रतिष्ठित है। ये 'अपान' रूप हैं। पार्थिव-प्राण भी अधिदैवतमें अपान-रूप है। मूलमें स्थित 'मरुत्प्राण' गणेश हैं—ऐसा कहा गया है। इस मूल प्राणरूप गणपतिके रहनेके कारण ही 'वस्ति-गुहा' को 'मूलग्रन्थि' कहते है। महाराष्ट्रमें आज भी वृक्षकी मूल जड़को 'गणेशमूल' कहते हैं।

इन्द्रसे अभेद

वेद एवं पुराण आदिमें यह प्रसिद्ध है कि मरुद्गण इन्द्रके भ्राता एव उनके सैनिक हैं। ज्योतिर्मय इन्द्र अपने सैनिक मरुद्गणोंको आगे करके ही तमोमय असुरोंपर विजय पाते हैं। मघवा इन्द्र क्षत्र होनेसे मरुद्गणोके राजा हैं, ईश हैं। मरुद्गण उनकी दैवी प्रजा है। मरुद्गणोंके पति (ईश) होनेसे इन्द्र भी 'गणपति'-शब्दसे वेदोंमें अभिहित हुए है। गणदेवताओंको गणी देवताकी महिमारूप होनेके कारण उससे अभिन्न माना गया है। अतः पृथ्वीमें स्थित प्रथम मरुद्रूप 'गणपति' भी इन्द्रसे अभिन्न होनेके कारण **'नि षु सीद गणपते गणेषु'** आदि वेद-ऋचाओंमें 'गणपति'-शब्दसे अभिहित होते हैं।

देवासुर-संग्राम

ज्योतिर्मय इन्द्र मरुद्गणोंको आगे करके देवासुर-संग्राम-में तमोमय असुरोंपर आक्रमण करते हैं—यह कहा गया है। इस देवासुर-सग्रामका वेदके मन्त्रों एव ब्राह्मण-भागोंमें बहुधा वर्णन है। यह अधिदैवत, अध्यात्म एवं अधिभूत भेद-से तीन प्रकारका है। हम यहाँ अधिभूत 'देवासुर'-संग्रामका प्रत्यक्ष दर्शन कराते हैं—

वारुण—आप्य प्राणमय तमोमय आसुरभावके प्रवेशसे कोई भी वस्तु सड़ने लगती है। किसी भी वस्तुका सड़ना आसुर आक्रमणका फल है। जब उसमें वायव्य-सेनारूप मरुत्प्राणों-का आगमन होता है, तब उसका वह दुर्गन्धरूप आसुरभाव नष्ट हो जाता है। मरुद्गणोंके साथ इन्द्र भी वहाँ उपस्थित रहते हैं। यह अधिभूतमें 'देवासुर'-संग्रामका स्वरूप है। प्रकाश-अन्धकारका अधिदैवतमें एवं शारीरिक शम-दम आदि देवों और अहंकार-लोभ आदि असुरोंका अध्यात्ममें 'देवासुर'-संग्राम है। इन सब संग्रामोंमें मरुद्गण इन्द्रके सहायक होते हैं।

वाहन मूषक

निगम-आगममें यह प्रसिद्ध है कि गणपतिका वाहन 'मूषक' है। पार्थिव घनप्राण 'गणपति'-नामसे कहा गया है। इसका वाहन निविडघन यह पृथ्वी-पिण्ड ही है। वेदमें इस अत्यन्त घनप्राणका नाम 'मूषक' है। इस प्राणसे 'मूषक' प्राणीका निर्माण होता है। अतः यह प्राणी उस प्राणका निदान (संकेत) माना गया है। अर्थात् गणपतिके वाहन मूषकको भूपिण्ड मानना चाहिये। दूसरे शब्दोंमें 'गणेश'की प्रतिष्ठा भूपिण्ड है। यह गणपति प्राण उक्थरूपसे भूपिण्ड (मूषक) पर स्थित होकर त्रैलोक्यमें व्याप्त है। 'निरुक्त'में भगवान् यास्कका विज्ञान है कि स्वयं देवता ही अपने वाहन, आयुध एवं आभूषण आदि रूपोंमें परिणत होते हैं, अतः यह भूपिण्डरूप मूषक 'गणेश'से अभिन्न माना गया है। प्रतिष्ठा-बलरूप गणेश-का पीतमृत्तिका एवं पूगीफल (सुपारी) में अतितरां विकास है, अतः ये दोनों गणपतिकी भाव-प्रतिमा मानी गयी हैं।

ध्यान एवं निदान-भाव

आगम-पुराण आदिमें 'नैदान' भावोंसे कल्पित गणपतिके अनेक ध्यानोंका उल्लेख है। उनमेंसे तीन ध्यानोंका उल्लेख यहाँ किया जाता है—

१. खर्वं स्थूलतनुं गजेन्द्रवदनं लम्बोदरं सुन्दरं
प्रस्यन्दन्मधुगन्धलुब्धमधुपव्यालोलगण्डस्थलम्।
दन्ताघातविदारितारिरुधिरैः सिन्दूरशोभाकरं
वन्दे शैलसुतासुतं गणपतिं सिद्धिप्रदं कामदम्॥*

२. सिन्दूराभं त्रिनेत्रं पृथुतरजठरं हस्तपद्मैर्दधानं
दन्तं पाशाङ्कुशेष्टान्युरुकरविलसद्बीजपूराभिरामम्।
बालेन्दुद्योतमौलिं करिपतिवदनं दानपूरार्द्रगण्डं
भोगीन्द्राबद्धभूषं भजत गणपतिं रक्तवस्त्राङ्गरागम्॥†

---

* मैं सिद्धिप्रदाता, अभीष्टदायी, पार्वतीनन्दन भगवान् गणेशकी वन्दना करता हूँ, जो नाटे, स्थूलकाय, गजवदन एवं लम्बोदर होनेपर भी अप्रतिम कमनीय हैं, जिनकी कनपटियोंसे चूते हुए मदकी मधुर गन्धसे आकृष्ट भौंरोंके कारण वे कनपटियाँ चञ्चल प्रतीत होती हैं तथा अपने दाँतकी चोटसे विदीर्ण हुए शत्रुओंका रुधिर जिनके मुखपर सिन्दूरकी शोभा धारण करता है।

† जिनकी अङ्गकान्ति सिन्दूरके समान है, जिनके तीन नेत्र हैं, जिनका उदर विशाल है, जो अपने अनेक हाथोंमें क्रमशः दन्त, पाश, अङ्कुश, वर-मुद्रा और बिजौरा नीबू धारण किये अत्यन्त सुन्दर लगते हैं, जिनका मस्तक द्वितीयाके चन्द्रसे उद्भासित रहता है, गजवदन होनेके कारण जिनकी कनपटियाँ मदके प्रवाहसे भीगी रहती हैं, जो अपने शरीरपर वासुकि नागको अलङ्काररूपमें धारण किये रहते हैं और जो लाल ही वस्त्र और लाल ही अङ्गराग धारण करते हैं, उन भगवान् गणेशका भजन करो।

३. उद्यद्दिनेश्वररुचिं निजहस्तपद्मैः
पाशाङ्कुशाभयवरान् दधतं गजास्यम्।
रक्ताम्बरं सकलदुःखहरं गणेशं
ध्यायेत् प्रसन्नमखिलाभरणाभिरामम्॥*

निदान-भावोंके रहस्य

तन्त्रोंका विज्ञान है कि जिस प्राणदेवताका भाव-प्रतिमा अथवा नैदान-प्रतिमामें आवाहन अभीष्ट होता है, उस देवताके कल्पित नैदानस्वरूपको प्रथमतः अपने अन्तर्जगत्‌में खचित करना पड़ता है; अतः आवाहनसे प्रथम ध्यानका विधान है । तदनन्तर 'गणपतिमावाहयामि' इत्यादि रूपसे भाव-प्रतिमा अथवा नैदान-प्रतिमारूप मध्यस्थ भूतमें उस ध्यानात्माके स्वरूपका आवाहन किया जाता है । मध्यस्थ भूतमें भी 'गणपति' है; किंतु आवाहित 'गणपति'से भूतस्थ गणपति उद्बुद्ध होते हैं, यह आवाहनका रहस्य है ।

रहस्य

'निदान'-शास्त्रद्वारा कल्पित 'गणपति'के इन तीन ध्यानोंमें प्रयुक्त निदान-भावोंके रहस्य इस प्रकार हैं—

१ खर्वम्—'गणेश'के शरीरकी खर्वता (वामनत्व) खगोल एवं खगोलस्थ वृहत्तम सूर्य आदि पिण्डोंके सामने यह पार्थिव-पिण्ड अत्यन्त लघु (छोटा) है, इस रहस्यका निदान (संकेत) करती है ।

२ स्थूलतनुम्—यहाँ पार्थिव 'गणपति' प्राण पुष्टिभावका प्रवर्तक है, इस भावका संकेत है । 'पुष्टिर्वै पूषा'—इस वैदिक विज्ञानके आधारपर 'पूषा' प्राण पुष्टिभावका प्रवर्तक माना गया है; परंतु पार्थिव 'गणपति' प्राण पार्थिव 'पूषा'-प्राणका अनुगामी है, इस कारण यह भी पुष्टिभावका प्रवर्तक है ।

३ गजेन्द्रवदनम्—यह पार्थिव 'इरा'-रस मादक है, इस भावका द्योतक है । हस्ती पशुमें इस रसका अतितरां विकास है, अतः वह 'गज'-शब्दसे अभिहित हुआ है । 'गजति मदेन मत्तो भवति इति गजः'—यह 'गज' शब्दका निर्वचन है । पार्थिव 'गणपति'-तत्त्व भी इस इरा-रससे मत्त है, अतः उनको भी 'गजानन' मान लिया गया है। दूसरे शब्दोंमें 'गणपति'का गजानन-भाव पार्थिव इरा-रसकी मादकताका निदान है ।

४ लम्बोदरम्—यह उरु-अन्तरिक्षमें अनुगत मरुद्-भावका निदान है । अर्थात् यह विस्तीर्ण अन्तरिक्ष ही 'गणपति'का लंबा उदर है ।

५ दन्ताघातः—यह घन प्राणका निदान है । अर्थात् पार्थिव घन-प्राण 'गणपति' है । देवता ही आयुधरूपमें परिणत होते है—यह पहले कहा जा चुका है ।

६ सिन्दूरशोभाकरम्—यह सिन्दूरवर्णका द्योतक है । 'गणपति'के सिन्दूरवर्ण, रक्तकान्ति, रक्तवस्त्र, रक्त अङ्गराग आदि आग्नेय पार्थिव-प्राणके सूचक है । अर्थात् गणपति पार्थिव आग्नेय प्राणरूप हैं ।

७ नागेन्द्रावद्धभूषम्—यह आन्तरिक्ष्य नाक्षत्रिक सर्पप्राणोंका सूचक है । अर्थात् गणेशके भूषण नाग नाक्षत्रिक दिव्य सर्पप्राण हैं । इनके उदरका भूषण सर्प खगोलका विषुवद् वृत्त है ।

८ त्रिनेत्रम्—यह अग्नि-सोम-आदित्यरूप तीन भूत ज्योतियोंका निदान है । अर्थात् ये तीन ज्योतियाँ गणेशके तीन नेत्र हैं ।

९ हस्तपद्मैः—यह खगोलीय चतुःस्वस्तिकोंका निदान है । अर्थात् खगोलीय चार स्वस्तिक ही गणेशके चार हस्तपद्म हैं ।

१० दन्तं पाशाङ्कुशेष्टानि—ये 'गणपति'के हाथोंमें विद्यमान अनेक शक्तियोंके सूचक हैं। इनमें दन्त घनप्राण, पाश नियन्त्रण-शक्ति, अङ्कुश आकर्षण तथा वरमुद्रा अभीष्ट-कामपूरिका शक्तिके क्रमशः निदान हैं । शुण्डादण्डमें स्थित बीजपूर फल पार्थिव परमाणुओंका निदान है ।

११ बालेन्दुद्योतमौलिम्—यह ज्ञानैश्वर्यका निदान है । अर्थात् 'गणपति' ज्ञानघन हैं, सर्वज्ञ हैं । 'गणपति'की एक-दन्तता पार्थिव पूषा-प्राणके साथ अभेदकी सूचिका है । जिसमें पूषा-प्राणका प्राबल्य होता है, वह दन्तरहित होता है । 'अदन्तकः पूषा'—यह वेद-विज्ञान है ।

---

* उदयकालीन सूर्यके समान रक्तवर्ण जिनकी अङ्गकान्ति है, जो अपने कर-कमलोंमें क्रमशः पाश, अङ्कुश, अभय-मुद्रा एवं वर-मुद्रा धारण किये रहते हैं, जो गजवदन, रक्ताम्बरधारी, [illegible] करनेवाले, नित्यप्रसन्न तथा सब प्रकारके आभूषणोंसे भूषित रहते हैं, उन भगवान् गणनायकका ध्यान करे ।

श्रीगणेश-तत्त्व

(लेखक—शास्त्रार्थ-महारथी पं० श्रीमाधवाचार्यजी शास्त्री)

गणपतिके स्वरूपमे नर तथा गज—इन दोनोंका ही सामञ्जस्य पाया जाता है। यह मानो प्रत्यक्ष ही परस्पर-विरोधी प्रतीत होनेवाले 'तत्'-पदार्थ तथा 'त्वम्'-पदार्थके विशिष्ट प्रभेदको सूचित करता है; क्योंकि 'तत्'-पदार्थ सर्वजगत्कारण, सर्वशक्तिमान् परमात्मा होता है, 'त्वम्'-पदार्थ अल्पज्ञ, अल्पशक्तिमान् जीव होता है। इन दोनोंका सर्वांशमे ऐक्य स्थूलदृष्टिसे यद्यपि तर्क-विरुद्ध है, तथापि लक्षणासे सृष्टिकर्तृत्वादिविरुद्ध ईशद्वयका त्याग करके चैतन्यांशमे एकता सुसम्पन्न होती है, तद्वत् लोकमे यद्यपि नर और गजका ऐक्य असमञ्जस है, तथापि सकलविरुद्धधर्माश्रय भगवान्मे यह समञ्जस है, क्योंकि चित् और अचित्—दोनों ही ब्रह्मके शास्त्रसिद्ध विशेषण हैं।

पञ्चदेवोपासना

यह विश्व-प्रपञ्च पञ्चमहाभूतोंका विपरिणाम है। पञ्च-महाभूत सत्त्व, रज और तम प्रकृतिके इन तीन गुणोंसे समुद्भूत है। आकाशतत्त्व—विशुद्ध सत्त्वगुणप्रधान है, वायुतत्त्व—सत्त्व और रजके विमिश्रणका विपरिणाम है, अग्नितत्त्व—विशुद्ध रजोगुणप्रधान है, जलतत्त्व—रजोगुण और तमोगुणके विमिश्रणका विपरिणाम है तथा पृथ्वीतत्त्व—विशुद्ध तमोगुणप्रधान है। इस प्रकार प्रकृतिके तीन गुणोंसे पाँच विभिन्न तत्त्वोंका प्रादुर्भाव हुआ है, जिनमे आकाश, अग्नि और पृथ्वी—ये तीन तत्त्व क्रमशः सत्त्व, रज और तमोगुणके विशुद्ध विपरिणाम हैं, तथा वायु और जलतत्त्व क्रमशः सत्त्व-रज तथा रज-तमके विमिश्रणके विपरिणाम हैं। उक्त पञ्चतत्त्वोसे समुद्भूत ही समस्त जीवोके शरीर है। जिस शरीरमे जिस तत्त्वका आधिक्य होता है, तदनुसार ही उस जीवका तादृश जन्मजात स्वभाव होता है। वेद कहते हैं—

'अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवुः।'
(ऋग्वेद १० । ७१ । ७)

अर्थात् यद्यपि सभी शरीरधारी आँख, नाक, कान आदि अङ्गोंमे समानता रखते हैं, परंतु मानसिक संवेगोंमे वे एक-दूसरेसे सर्वथा विभिन्न ही होते हैं।

कहना न होगा कि यह स्वभाववैषम्य तत्तत्-शरीरवर्ती अमुक-अमुक तत्त्वके न्यूनाधिक्यके तारतम्यके कारण ही होता है। मनुष्योंमे भी कोई स्वभावतः सौम्य और दूसरे महाक्रोधी देखे जा सकते हैं। इस प्रकार सिद्ध है कि मनुष्यवर्ग पञ्च-विध प्रकृतिसम्पन्न है।

यद्यपि समस्त जीवोंके उपास्य एकमात्र श्रीमन्नारायण-भगवान् ही हैं, परंतु पञ्चविध प्रकृतिवाले जीव स्व-स्व प्रकृतिके अनुरूप ही उपासनामें प्रवृत्त होते हैं। श्रीभगवान्ने स्वय भगवद्गीतामे घोषणा की है—

'प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ॥'
(३ । ३३)

अर्थात् समस्त जीव अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुसार ही कार्यमें प्रवृत्त होते हैं—इसमे निग्रह सफल नहीं हो पाता।

लोकमें भी 'स्वभावो दुरतिक्रम.'—यह आभाणक सुप्रसिद्ध है। ऐसी स्थितिमें एक ही कृपालु भगवान् जीवोंके उद्धारके लिये उपासकोंकी भावनाके अनुसार अपने विभिन्न रूपोंकी कल्पना करते हैं। रामपूर्वतापनीय उपनिषद् ७ मे आया है—

'उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना।'

अर्थात् उपासना करनेवाले भक्तोंको अभीष्ट-सिद्धि प्रदान करनेके लिये ब्रह्मके बहुविध रूपोंकी कल्पना होती है।

तदनुसार आगम शास्त्रोंमे एक ही श्रीमन्नारायण पञ्च-तत्त्वोंके अधिष्ठाता-रूपमे पञ्चविध वर्णित हुए है।

यथा—

आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिप. ॥

अर्थात् आकाशतत्त्वके अधिष्ठाता विष्णु, अग्नितत्त्वकी अधिष्ठात्री देवी दुर्गा, वायुतत्त्वके अधिष्ठाता सूर्य, पृथ्वी-तत्त्वके शिव और जलतत्त्वके अधिष्ठाता गणेश हैं।

सुयोग्य वैद्य जैसे रोगीकी प्रकृतिका मनन करके तदनुसार ही उसकी शारीरिक व्याधिकी निवृत्तिके लिये औषध और पथ्यकी निर्धारणा करता है, इसी प्रकार सुयोग्य गुरु भी साधककी प्रकृतिका परीक्षण करके उसकी मानसिक आधि (काम-क्रोध आदि) के उपशमनके लिये उपासनारूप औषध और संयमरूप पथ्यका निर्देश करता है। वस्तुतः

मानसिक आधियोंकी प्राकृतिक चिकित्साका अपर नाम ही 'उपासना' है। अतः जलतत्त्व-प्रधान प्रकृतिवाले साधकोंके लिये इष्टदेवके रूपमें गणेशरूप श्रीमन्नारायणकी उपासना शास्त्र-सिद्ध है। इसी प्रकार तत्तत् तत्त्व-प्रधान प्रकृति-विशिष्ट साधकोंके लिये तत्तत् देवतारूप श्रीमन्नारायणकी उपासना उपादेय है। यही पञ्चदेवोपासनाका अन्तरङ्ग रहस्य है।

स्वरूप-विवेचन

श्रीगणेश 'गज-वदन' हैं, सो 'समाधिना योगिनो यत्र गच्छन्ति इति 'गः'। यस्माद् बिम्बप्रतिबिम्बवत्तया प्रणवात्मकं जगज्जायते इति 'जः'। अर्थात् समाधिसे योगी जिस तत्त्वको प्राप्त करते हैं, वह 'ग' है और जैसे बिम्बसे प्रतिबिम्ब उत्पन्न होता है, वैसे ही कार्य-कारणस्वरूप प्रणवात्मक प्रपञ्च जिससे उत्पन्न होता है, उसे 'ज' कहते हैं। 'जन्माद्यस्य यतः।' 'यस्मादोंकारसम्भूतिर्यतो वेदो यतो जगत्।' इत्यादि वचन भी इसके पोषक हैं। सोपाधिक 'त्वं'-पदार्थात्मक गणेशका पादादि कण्ठपर्यन्त नरदेह है। यह सोपाधिक होनेसे निरुपाधिककी अपेक्षा निकृष्ट है—अधोभूताङ्ग है। निरुपाधि सर्वोत्कृष्ट 'तत्'-पदार्थमय श्रीगणेशजीका कण्ठादि मस्तकपर्यन्त गजस्वरूप है; क्योंकि वह निरुपाधिक होनेसे उत्कृष्ट है। सम्पूर्ण पादादि मस्तकपर्यन्त गणेशका देह 'असि'-पदार्थ अखण्डैकरस है।

गणेशजी 'एकदन्त' हैं। 'एक' शब्द 'माया' का बोधक है और 'दन्त' शब्द 'मायिक' का बोधक है। यथा—

एकशब्दात्मिका माया तस्याः सर्वं समुद्भवम्।
× × ×
दन्तः सत्ताधरस्तत्र मायाचालक उच्यते॥
(मौद्गलपुराण)

गणेशजी माया और मायिकका योग होनेसे 'एकदन्त' हैं। वे 'वक्रतुण्ड' भी हैं—'वक्रमात्मस्वरूपं मुखं यस्य'। 'वक्र' टेढ़ेको कहते हैं। आत्मस्वरूप टेढ़ा है; क्योंकि सर्वजगत् मनोवचनका गोचर है, किंतु आत्मतत्त्व उसका (मन-वाणीका) अविषय है, जैसा कि कहा है—'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।' इसीलिये कहा गया है—

कण्ठाधो मायया युक्तं मस्तकं ब्रह्मवाचकम्।
वक्राख्यं येन विघ्नेशस्तेनायं वक्रतुण्डकः॥

'चतुर्भुज'—अर्थात् चारों वेद, चारों वर्ण और चारों आश्रमोंके संस्थापक और रक्षक हैं—

'चतुर्णां त्रिविधानां च स्थापकोऽयं चतुर्भुजः।'

'मूषकवाहन'—'आखुस्ते पशुः।' (यजुर्वेद ३। ५७) जैसे (मुष् स्तेये धातुसे निष्पन्न) मूषक प्राणियोंके सब भोग्यपदार्थोंको चुराकर भी पुण्य-पाप-वर्जित होता है, वैसे ही मायागूढ़ सर्वान्तर्यामी भी सर्वभोग्योंको भोगता हुआ भी पुण्य-पाप-वर्जित है—

ईश्वरः सर्वभोक्ता च चोरवत् तत्र संस्थितः।
स एव मूषकः प्रोक्तो मनुजानां प्रचालकः॥

'लम्बोदर'—यह समस्त विश्व-प्रपञ्च उनके उदरमें प्रतिष्ठित है—

'तस्योदरात्समुत्पन्नं नाना विश्वं न संशयः।'

गणेश गजमुख, लम्बकर्ण, एकदन्त और लम्बोदर क्यों हैं तथा उनका वाहन मूषक क्यों है?—इन सब बातोंका विज्ञानपूर्ण सप्रमाण और सयौक्तिक विस्तृत वर्णन इस लघु लेखमें सम्भव नहीं। एतदर्थ प्रस्तुत 'गणेशाङ्क'के अन्यान्य सभी निबन्धोंका भी ध्यानसे पठन मनन आवश्यक होगा।

'नमामि त्वां गणाधिप !'

गणाधिप नमस्तुभ्यं सर्वविघ्नप्रशान्तिद। उमानन्दप्रद प्राज्ञ त्राहि मां भवसागरात्॥
हरानन्दकर ध्यानज्ञानविज्ञानद प्रभो। विघ्नराज नमस्तुभ्यं सर्वदैत्यैकसूदन॥
सर्वप्रीतिप्रद श्रीद सर्वयज्ञैकरक्षक। सर्वाभीष्टप्रद प्रीत्या नमामि त्वां गणाधिप॥
(पद्मपुराण, सृष्टि० ६१। २६-२८)

श्रीगणेशजी! आपको नमस्कार है। आप सम्पूर्ण विघ्नोंकी शान्ति करनेवाले, उमाके लिये आनन्ददायक तथा परम बुद्धिमान् हैं, आप भवसागरसे मेरा उद्धार कीजिये। विघ्नराज! आप भगवान् शंकरको आनन्दित करनेवाले, अपना ध्यान करनेवालोंको ज्ञान और विज्ञानके प्रदाता तथा सम्पूर्ण दैत्योंके एकमात्र संहारक हैं, आपको नमस्कार है। गणपते! आप सबको प्रसन्नता और लक्ष्मी देनेवाले सम्पूर्ण यज्ञोंके एकमात्र रक्षक तथा सब प्रकारके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले हैं, मैं प्रेमपूर्वक आपको प्रणाम करता हूँ।

श्रीगणेश-चिन्तन

(लेखक—पं० श्रीदीनानाथजी शर्मा, शास्त्री, सारस्वत, विद्यावागीश, विद्यानिधि, विद्यावाचस्पति)

विघ्नध्वान्तनिवारणैकतरणिर्विघ्नाटवीहव्यवाड्
विघ्नव्यालकुलोपमर्दगरुडो विघ्नेभपञ्चाननः।
विघ्नोत्तुङ्गगिरीशभेदनपविर्विघ्नाम्बुधौ वाडवो
विघ्नाघौघघनप्रचण्डपवनो विघ्नेश्वरः पातु नः॥

'जो विघ्नरूपी महान्धकारका निवारण करनेके लिये एकमात्र सूर्य हैं, विघ्नरूपी महावनके लिये दावानलस्वरूप हैं, विघ्नरूपी सर्प कुलका उपमर्दन करनेके लिये गरुड हैं, विघ्नरूपी गजेन्द्रके लिये सिंह हैं, विघ्नरूपी गगनचुम्बी पर्वतोंको चूर-चूर कर देनेके लिये वज्र हैं, विघ्न-महासागरको (सुखा देनेके लिये) वडवानल हैं और विघ्नरूपी घने बादल-समूहको तितर-बितर कर देनेके लिये प्रचण्ड तूफान-सदृश हैं, वे विघ्नेश्वर गणेश हमलोगोंकी रक्षा करें।'

सनातन हिंदूधर्मके आचारानुसार सब कार्योंके आरम्भमें श्रीगणेशके लिये नमन तथा स्तवन किया जाता है, अतः कार्यारम्भको भी मुहावरेकी भाषामें 'श्रीगणेश' शब्दसे कहा जाता है। ऋग्वेद-संहितामें श्रीगणपतिकी स्तुति करते हुए कहा गया है—

'न ऋते त्वत् क्रियते किंचन' (१० । ११२ । ९)

'हे गणपते! तुम्हारे बिना कोई भी कर्म नहीं किया जाता।'

कृष्णयजुर्वेद, मैत्रायणी संहितामें गणेशको 'हस्तिमुख' और तैत्तिरीयारण्यकके मन्त्रमें उन्हें 'वक्रतुण्ड' कहा गया है। इस प्रकार गणेश 'वैदिक देवता' सिद्ध होते हैं।

'कलौ चण्डीविनायकौ' के अनुसार कलियुगमें गणेश-जीके अधिक प्रचारकी बात देख-सुनकर कोई यह न सोचे कि पूर्वके युगोंमें गणेशजीके पूजन या उनके अस्तित्वका अभाव था। यथार्थता यह है कि पूर्वकालमें भी सबसे पूर्व विधिपूर्वक गणेशपूजन करके तदनन्तर ग्रन्थादिका प्रणयन किया जाता था। फिर कहीं-कहीं शिष्य-शिक्षार्थ ग्रन्थके प्रारम्भमें भी गणेशजीके वन्दनापूर्वक मङ्गलाचरण-लेखनकी प्रक्रिया आरम्भ हुई।

यह ध्यान देनेकी बात है कि अथर्ववेदकी नौ संहिताओंमेंसे छः संहिताओंका विनियोग पाँच सूत्र-ग्रन्थोंमें किया गया है। वे हैं—

नक्षत्रकल्पो वैतानस्तृतीयः संहिताविधिः।
तुर्य आङ्गिरसः कल्पः शान्तिकल्पस्तु पञ्चमः॥

(वायुपुराण ६१ । ५४)

इनमें—१. 'नक्षत्रकल्प'में नक्षत्रोंकी पूजा तथा शान्तियाँ बतायी गयी हैं। २. 'वैतानसूत्र'में दार्श, पौर्णमास, अग्न्याधान आदिका विधान है। ३. 'संहिताविधि'का इस समय वास्तविक नाम कौशिक-सूत्र है। इसमें शत्रूच्चाटन, भूत, प्रेत, पिशाच, बालग्रह आदिके निवारण करनेवाले कर्म तथा दुःस्वप्न-निवारण, पापनक्षत्रोत्पत्ति-शान्ति, अपशकुन-शान्ति, अभिचार (जादू-टोना)-निवारण आदि वर्णित हैं। ४. 'आङ्गिरसकल्प'में अभिचारकर्मोंका स्वतन्त्रतासे निरूपण तथा उनका उपशमन भी बताया गया है। ५. 'शान्तिकल्प'में विनायक (गणेश)-पूजा, ग्रहपूजा और ग्रहयज्ञादिका निरूपण किया गया है। ये सारी बातें अथर्ववेद (शौनक-संहिता) की श्रीसायणाचार्यकृत भाष्य-भूमिकामें देखी जा सकती हैं।

प्रारम्भिक प्राचीन सूत्रग्रन्थोंमें जो गणेश, नवग्रह आदिकी पूजा नहीं दीखती, उसका कारण यह है कि प्रत्येक कर्मारम्भमें शान्तिकर्मकी आवश्यकता पड़ती है। प्रत्येक गृह्यसूत्र तथा प्रत्येक संस्कारमें शान्तिकर्मका प्रतिपादन करनेसे गौरव या बहुत विस्तार हो सकता है, इसलिये परिभाषारूपमें एक ही शान्ति-विधि नियत कर दी जाती है। अन्य ग्रन्थोंमें उसी गणेशादि-पूजनको आभ्युदयिक, स्वास्तिक, स्वस्तिवाचन आदि नामोंसे संकेतित कर दिया जाता है। 'कात्यायनीशान्ति' आदि उक्त सूत्रके आधारपर ही बनाये गये हैं। गृह्यसूत्रोंके प्रारम्भमें कुशकण्डिकाका कृत्य तथा सर्वयज्ञशेष एक बार ही उपदिष्ट कर दिया जाता है। फिर 'एष एव विधि., यत्र क्वचिद् होम.' (पारस्करगृह्यसूत्र १ । १ । २७) इस सूत्रके कथनानुसार वह विधि सभी स्थानोंपर निरूपित नहीं की जाती। इस प्रकार 'शान्तिकल्प'में गणेश-ग्रह-पूजा आदिका उल्लेख हो जानेसे प्रत्येक सूत्रादिमें उसका पृथक् उल्लेख अनावश्यक समझा गया।

गणेशजी—अनादिदेवता

अब गणेशपूजा आदिके सम्बन्धमें इस प्राचीन

ग्रन्थोंके प्रमाण उपस्थित करते है । याज्ञवल्क्यस्मृति, आचाराध्याय, गणपतिकल्पमे कहा गया है—

एवं विनायकं पूज्य ग्रहांश्चैव विधानतः ।
कर्मणां फलमाप्नोति श्रियं प्राप्नोत्यनुत्तमाम् ॥
(२९३)

यहाँपर विनायक (गणेश)-पूजा करनेसे गणेश-पूजन स्मार्त भी सिद्ध हुआ । यह याज्ञवल्क्यस्मृति शतपथ-ब्राह्मणके प्रवक्ता महर्षि श्रीयाज्ञवल्क्यद्वारा प्रोक्त है, अतः जहाँ यह प्राचीन है, वहीं परम प्रामाणिक भी ।

न्यायदर्शन (४ । १ । ६२) सूत्रके वात्स्यायनभाष्यमे कहा गया है—

'द्रष्टृप्रवक्तृसामान्याच्चानुपपत्तिः । य एव मन्त्र-ब्राह्मणस्य द्रष्टारः प्रवक्तारश्च ते खलु इतिहासपुराणस्य धर्मशास्त्रस्य चेति ।'

'वेद-इतिहास-पुराण और धर्मशास्त्रके द्रष्टा एवं प्रवक्ता समान हैं ।' इससे शतपथ-ब्राह्मणके तथा धर्मशास्त्र—याज्ञवल्क्यस्मृतिके द्रष्टा-प्रवक्ता याज्ञवल्क्य समान होनेसे दोनोंकी प्रमाणता स्पष्ट हुई । ब्राह्मण तथा स्मृतिके वक्ता समान होनेपर भी भाषा-भेदका कारण यह है कि शतपथब्राह्मण श्रीयाज्ञवल्क्यको सूर्यसे प्राप्त हुआ था, अतः वह अपौरुषेय रचना है (देखिये, इसपर महाभारत, शान्तिपर्व ३१८ । ६)। 'याज्ञवल्क्यस्मृति' उनकी पौरुषेय रचना है, अतः भाषा-भेद स्वाभाविक है । इसलिये संस्कृत भाषामे भाषाशैलीसे प्राचीनता एवं अर्वाचीनताका निश्चय करना आधुनिकोंकी कल्पना निराधार है ।

इसे केवल हम ही नहीं कहते, बल्कि आर्यसमाजके अनुसधाता श्रीभगवद्दत्तजी बी०ए० भी मानते हैं । वे अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'वैदिक वाङ्मयका इतिहास' (द्वितीय भाग) के पृष्ठ १६०पर लिखते हैं—'वे ही ऋषि ब्राह्मणोंका प्रवचन करते थे और वे ही धर्मशास्त्रों आदिका भी ।'

'भारतवर्षका बृहद् इतिहास' (भाग १, पृष्ठ ७२) में वे ही लिखते हैं—"पं० ईश्वरदत्तजी (दयानन्दोपदेश विद्यालय, लाहौरके भूतपूर्व दर्शनाध्यापक) ने 'ब्राह्मणग्रन्थोंके द्रष्टा और इतिहास-पुराण तथा धर्मशास्त्रके रचयिता ऋषियोंका अभेद' नामक एक बृहद् ग्रन्थ रचा है । इस ग्रन्थमे उन्होंने सिद्ध किया है कि "शतपथब्राह्मणकी भाषा वैदिक प्रवचनशैलीकी भाषा होने तथा 'ह, वै' आदिकी बहुलतापर भी याज्ञवल्क्यस्मृतिकी भाषासे पर्याप्त सादृश्य दीखता है । याज्ञवल्क्यस्मृतिके अनेक पाठ पाणिनीय-व्याकरण-के प्रभावसे उत्तरोत्तर बदले गये हैं । पहले वे पाठ पुरातन-लोकभाषामे थे ।"" (पृ० ७३)

उक्त ग्रन्थके ५४वें पृष्ठमे तो श्रीभगवद्दत्तजीने सर्वथा स्पष्ट कर दिया है । वे लिखते हैं—'याज्ञवल्क्यस्मृति वाजसनेय-ब्राह्मण (शतपथ)के प्रवक्ता श्रीयाज्ञवल्क्यने बनायी थी—इस विषयका विशद विवेचन पं० ईश्वरदत्तजीके ग्रन्थमे देखिये । याज्ञवल्क्यस्मृतिके १००से अधिक प्रयोग पाणिनिसे पूर्वके हैं ।'

श्रीभगवद्दत्तजी बी०ए०की यह बात समूल भी है । शतपथके अन्तमें कहा है—'आदित्यानि इमानि शुक्लानि यजूंषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येन आख्यायन्ते ।' (१४ । ९ । ४ । ३३) । यहाँपर श्रीयाज्ञवल्क्यने सूर्यके द्वारा अपनेको शतपथब्राह्मणकी प्राप्ति कही है । इसका स्पष्टीकरण 'महाभारत'के शान्तिपर्व (३१८ । १, १९)में है । इससे स्पष्ट है कि श्रीयाज्ञवल्क्य मिथिलामे राजा जनकके आश्रयमे रहा करते थे । यही 'याज्ञवल्क्यस्मृति'मे भी कहा है—

'मिथिलास्थः स योगीन्द्रः (याज्ञवल्क्यः) क्षणं ध्यात्वाब्रवीन्मुनीन् ।' (१ । २)

उसी स्मृतिमे श्रीयाज्ञवल्क्यने अपने 'बृहदारण्यक'के लिये, जो कि शतपथब्राह्मणका अन्तिम (१४वाँ काण्ड) है, कहा है—'ज्ञेयं चारण्यकमहं (याज्ञवल्क्यः) यदादित्यादु (सूर्याद्) अवाप्तवान् ।' (प्रायश्चित्ताध्याय ३ । ११०) यहाँ श्रीयाज्ञवल्क्यने अपनी स्मृतिमे अपनेद्वारा प्रवचन किये हुए 'बृहदारण्यक' (शतपथके १४वें काण्ड)-की सूर्यद्वारा प्राप्ति कही है । इससे स्पष्ट है कि शतपथब्राह्मण-के तथा याज्ञवल्क्य-स्मृतिके प्रवक्ता श्रीयाज्ञवल्क्य भिन्न-भिन्न नहीं, किंतु एक ही व्यक्ति हैं । जब ऐसी बात है, तब याज्ञ-वल्क्य-स्मृतिमे प्रोक्त गणेश-पूजनादि प्राचीन तथा प्रामाणिक सिद्ध हुए । याज्ञवल्क्य-स्मृति, आचाराध्याय(२७१) में—

विनायकः कर्मविघ्नसिद्ध्यर्थं विनियोजितः ।
गणानामाधिपत्ये च रुद्रेण ब्रह्मणा तथा ॥

—विनायक (गणेश) को विघ्नकारक कहा गया है। तब यदि उन गणेशकी पूजा न की जाय तो कर्मोंके विघ्न कैसे हटें ?

अब 'बृहत्पराशरस्मृति' भी देख लीजिये—उसमें (११ । ६–८ पद्योंमें) विविध विघ्न दिखलाये गये हैं। फिर उनके शान्त्यर्थ 'तस्मात् तदुपशान्त्यर्थं समभ्यर्च्य गणेश्वरम् ।' (११ । ९) 'एतेन सम्पूज्य गणाधिदेवं विघ्नोपशान्त्यै' (११ । ३१) यह गणेश-पूजा दिखलायी है। पराशरजीने 'गणानां त्वेति मन्त्रेण स्वाहाकारान्तमाहृतः ।' (४ । १७७), 'गणानां त्वा'—मन्त्रसे गणेशजीकी पूजा बतायी है। याज्ञवल्क्यस्मृतिकी मिताक्षरा टीका (२८६)-में 'तत्पुरुषाय विद्महे० ।'—यह गणेशजीका मन्त्र लिखा गया है।

'भविष्यपुराण'मे भी 'गजेन्द्रवदनं देवं⋯मूषकस्थं महाकायं—गणानां त्वेति मन्त्रेण' (मध्यमपर्व २० । १४१-१४२)मे गजानन एवं मूषकस्थित देवकी 'गणानां त्वा'—इस मन्त्रसे पूजा कही गयी है।

'बोधायनगृह्यशेषसूत्र'के विनायककल्पमें—

'अभ्युदयार्थं. सिद्धिकाम.⋯भगवतो विनायकस्य बलिं हरेत्।' (३ । १० । १)

'विघ्न ! विघ्नेश्वरागच्छ विघ्नेत्येव नमस्कृत । अविघ्नाय भवान् सम्यक् ।' (३ । १० । २)

यहाँपर भी विघ्नराजकी पूजा कही गयी है।

इसीलिये यजुर्वेद माध्यन्दिन-संहितामे 'नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च' (१६।२५) मन्त्रमे गणपतिको नमस्कार भी किया गया है। यहाँ गणपतिके लिये बहुवचनका प्रयोग सम्मानार्थ दिया गया है। यद्यपि यजुर्वेद-संहिताके उक्त सूक्तके रुद्रदेवता हैं, तथापि 'आत्मा वै पुत्रनामासि' (पारस्करगृ० १ । १६ । १४)के अनुसार पिता-पुत्रका अभेद-सम्बन्ध प्रसिद्ध होनेसे रुद्रका गणपतिरूपसे वर्णन आया है। यही बात एक गाणपत्यने स्वामी शंकराचार्यको कही थी—

> अंशांशिनोरभेदस्तु वेदे सम्यक् प्रकीर्तितः ।
> गणेभ्यो गणपेभ्यश्च नम इत्यादिना यते ॥
> रुद्रश्च गणपात्मैव न त्वन्यो मुनिपुंगव ।

(आनन्दाश्रम, पूनाके शंकरदिग्विजयके पृष्ठ ५०७ की टीकामें उद्धृत ३८४-८५ वें श्लोक)

इसलिये महाभारतमें 'महादेवप्रसादाच्च गाणपत्यं च विन्दति ॥' (वनपर्व) महादेवकी कृपासे गणपतित्वकी प्राप्ति भी कही गयी है। इसलिये वेदमें भी 'रुद्रस्य गाणपत्यं मयोभूरेहि ।' (यजुः, माध्यन्दिन-संहिता ११ । १५) रुद्रका गणपतित्व बताया गया है। आर्यसमाजी प्रेस वैदिक यन्त्रालयसे प्रकाशित यजुर्वेदकी प्रतिमें भी उक्त मन्त्रका देवता भी 'गणपति' लिखा गया है। इस प्रकार गणपति जब वैदिक देवता, रुद्रके अन्य रूप अथवा अंशावतार या पुत्र सिद्ध हुए, तब गणपतिको 'अवैदिक देव' कहना एक अक्षम्य अपराध है।

इसीलिये यजुर्वेद, माध्यन्दिन-संहितामें 'गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे, निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे' (२३ । १९)—इस वैदिक मन्त्रमें अश्वमेधके अश्वकी स्तुतिके लिये भी उसे गणपतिदेवरूपसे आहूत किया गया है। इसलिये 'गणेशपुराण'के उपासना-खण्डमे भी 'गणेशसहस्रनामों'में 'ज्येष्ठराजो निधिपतिर्निधि. प्रियपतिः प्रिय. ।' (४७ । १५) ये ही गणेशके नाम आये हैं। इसी प्रकार दोनोंकी अभिन्नता सिद्ध हुई।

आनन्दगिरिके 'शंकरविजय'के अनुसार एक गाणपत्यने आचार्य शंकरके सामने गणपतिका यही मन्त्र रखा था। आचार्यने इसका खण्डन न करके अनुमोदन ही किया। इसीलिये इस गणपतिको वेदमें कहीं नैवण्टुकरीति (अन्य देवताके मन्त्रमे अन्य देवताका वर्णन)से अश्वमेधके अश्वके रूपमे भी वर्णित किया गया है तो कहीं रुद्रके, कहीं इन्द्रके तो कहीं ब्रह्मणस्पतिके तथा बृहस्पतिके रूपमे।

गणपति ही ब्रह्मणस्पति

अब हम वेदद्वारा गणपतिका ब्रह्मणस्पति तथा इन्द्रके रूपमे वर्णन दिखलाते हैं—

> गणानां त्वा गणपतिं हवामहे,
> कविं कवीनामुपम श्रवस्तमम्।
> ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पते
> आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्॥
> (ऋक्सं० २ । २३ । १)

ब्रह्मणस्पतिके ये ही नाम 'गणेशपुराण'के सहस्रनामोंमें गजानन-गणेशके भी आये हैं—'कविः कवीनामृषभो ब्रह्मण्यो ब्रह्मणस्पति. । ज्येष्ठराजो निधिपति.' (४६ । १४)। अतः दोनोंका ऐक्य भी सिद्ध हो गया।

कहा जाता है कि उक्त मन्त्र 'ब्रह्मणस्पति'का है। ब्रह्मणस्पतिसे 'ब्रह्मणां पति.' बृहस्पतिका बोध होता है, गणेशका नहीं। इसके उत्तरमे यह जानना चाहिये कि देवताओके बहुत-से नाम एव रूप हुआ करते हैं—यह प्रसिद्ध है। इसलिये 'गणेशपुराण'मे गणेशसहस्रनामोमे 'ब्रह्मणस्पति'—यह नाम तथा उक्त मन्त्रके अन्य नाम भी आये है।

गणपतिका स्वस्तिकरूप

गणपति 'स्वस्तिक'-रूपमे भी प्रसिद्ध हैं। उसी वामावर्त स्वस्तिकमे चारों ओर गणपतिका बीजमन्त्र 'ग' विराजमान है—यह ध्यानसे देख लीजिये। दक्षिणावर्त स्वस्तिकमे वही बीजमन्त्र 'ग' उसके दूसरी ओर विराजमान है। यही बीजमन्त्र 'गं' उक्त ब्रह्मणस्पतिके मन्त्रके आदिम तथा अन्तिम अक्षरसे निष्पन्न है—यह बात 'त्रिपुरातापिनी उपनिषद्'मे स्पष्ट कही गयी है।

आकाशमे 'ख-स्वस्तिक' प्रसिद्ध है। **'स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा., स्वस्ति न. पूषा विश्ववेदा.। स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमि. स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥'** सामवेदसहिताके इस अन्तिम मन्त्रमे उल्लिखित इन्द्र, पूषा, तार्क्ष्य एवं बृहस्पति—ये चार देवता आकाशमे तारोंके रूपमे इस प्रकार विराजमान है कि उन चारोंके ऊपरसे नीचेको तथा दाहिने पार्श्वसे बायेंको रेखा कर दी जाय तो 'स्वस्तिक' बन जाता है। उक्त मन्त्रमे चार बार 'स्वस्ति'-शब्द आनेसे 'स्वस्तिक' बना है। श्रीपाणिनिने भी (६। ३। ११५ सूत्रमे) स्वस्तिकको स्मरण किया है।

अतः वेदमे जहाँ इन्द्रका कोई मन्त्र हो, या पूषा या तार्क्ष्य (गरुड) या बृहस्पतिका मन्त्र हो, उससे 'स्वस्तिक' (गणेश) का बोध हो जाता है। उक्त मन्त्रमे पहले गणपतिका इन्द्ररूपसे स्तवन है और सबसे पीछे बृहस्पतिरूपसे। इसका भाव यह हुआ कि वेदमे इन्द्र भी गणपतिरूपसे स्तुत होते हैं तथा बृहस्पति भी। तब इससे वेदमे 'गणपति'की स्थिति सिद्ध हुई; क्योंकि निरुक्तकार कहते हैं—

'एकस्य आत्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति।'
(७। ४। ९)

'एक देवतात्माके दूसरे देवता अङ्ग-प्रत्यङ्ग होते हैं।'

श्रीसायणाचार्यने भी ब्रह्मणस्पति-मन्त्रके अपने भाष्यमे **'देवादिगणानां सम्बन्धी गणपति.'**—यह अर्थ भी किया है। तब ब्रह्मणस्पतिका देवपतित्व या गणपतित्व भी सिद्ध हुआ। 'गणेशगीता'मे भी गणेशको 'ब्रह्मणस्पति' कहा गया है, इसलिये गणपतिको देवदेव महादेवका आत्मा (पुत्र) माना गया है। इसी कारण 'वाल्मीकि-रामायण'के एक स्थलमे महादेवको भी 'गणेश' कहा गया है।

इसके अतिरिक्त 'गणेश' बुद्धिके अधिष्ठाता भी प्रसिद्ध हैं। इसलिये ब्रह्मणस्पतिवाले मन्त्रमे गणपतिको 'कवि' भी कहा गया है। 'कवि'का अर्थ 'क्रान्तदर्शी' तथा 'बुद्धिमान्' है। महाभारतके लिखनेके अवसरमे गणपतिका कवित्व प्रसिद्ध है ही। अथवा 'ब्रह्मणस्पति'मे 'ब्रह्म'वेदका नाम है। **'स्तुता मया वरदा वेदमाता'** इस अथर्व-वेदसहिता (१९। ७१। १) के मन्त्रमे 'वेदमाता'से गायत्री ही अभिप्रेत है। यह गायत्री **'धियो यो न. प्रचोदयात्।'** (यजुर्वेद ३। ३५) बुद्धिरूपा है। गायत्री चारों वेदोकी सारस्वरूपा है। इस विषयमे मनुस्मृति (२। ७६-७७) देखिये। तब बुद्धिका अधिष्ठाता गणपति भी वेदका स्वामी होनेसे 'ब्रह्मणस्पति' है। इसलिये इसे 'बृहस्पति' भी कहा जाता है। **'बृहतीनां वेदवाचां पति. बृहस्पति.'**। **'कुक्कुटयादीनामण्डादिषु'** (पा० ६। ३। ४२ पर व्याकरण महाभाष्य)से यहाँ पुवद्भाव हो जाता है। तब 'बृहस्पति'-रूपसे वर्णन भी 'गणेश'का ठीक ही हुआ।

इसलिये 'गणेशपुराण'मे भी 'गणेश'को **'ब्रह्म ब्रह्मार्चितपदो ब्रह्मचारी बृहस्पतिः॥'** (४६। १०५) 'बृहस्पति'-शब्दसे भी कहा गया है।

कवि. कवीनामृषभो ब्रह्मण्यो ब्रह्मणस्पति.॥
ज्येष्ठराजो निधिपतिर्निधि· प्रियपति. प्रिय.।
(४६। १४-१५)

—यहाँ गणेशको ब्रह्मणस्पति तथा ज्येष्ठराज भी कहा है। तब यह ब्रह्मणस्पतिवाला 'गणानां त्वा०' मन्त्र भी गणेशजीका ही सिद्ध हुआ।

इस वेद-मन्त्रका इतिहास 'गणेशपुराण'मे इस प्रकार आया है—

कदाचित् सुमुहूर्ते तु पिता वाचक्नवि. सुतम्।
गणानां त्वेति ऋङ्मन्त्रं महान्तमुपदिष्टवान्।
उवाच च महामन्त्रो वैदिकोऽखिलसिद्धिदः॥
आगमोक्तेषु मन्त्रेषु सर्वेषु श्रेष्ठ एव च।
ध्यात्वा गजाननं देवं जपैनं स्थिरमानसः॥

परां सिद्धिं समाप्यैव ख्यातिं लोके गमिष्यसि ।
ततो गृत्समदो विप्रो मन्त्रं प्राप्य पितुर्मुखात् ॥
अनुष्ठानरतो भूत्वा जपध्यानपदोऽभवत् ।
(उपासना० ३६ । १८—२२)

"किसी शुभ मुहूर्तमें पिता वाचक्नविने अपने पुत्र (गृत्समद) को 'गणानां त्वा०' इत्यादि ऋग्वेदके मन्त्रका उपदेश दिया और यह बताया कि 'उपर्युक्त वैदिक महामन्त्र सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला और तन्त्रोक्त सम्पूर्ण मन्त्रोंमें भी श्रेष्ठ है । भगवान् गणपतिका ध्यान करके तू स्थिरचित्त हो इस मन्त्रका जप कर । इसके द्वारा तू मोक्षरूपा परमा सिद्धिको सुलभतासे प्राप्तकर संसारमें विख्यात भी हो जायगा ।' तदनन्तर विप्र गृत्समद पिताके मुखसे उपर्युक्त मन्त्रको प्राप्तकर अनुष्ठानमें लग गये और जप एवं ध्यान करने लगे ।"

यहाँपर 'गणानां त्वा०'—यह ऋग्वेदका मन्त्र गृत्समदको गजानन गणेशकी प्रसन्नता-प्राप्तिके लिये कहा गया है । इसी मन्त्रका ऋषि भी वैदिकयन्त्रालय, अजमेरसे मुद्रित ऋक्-संहितामें 'गृत्समद' दिया गया है । यही ऋङ्मन्त्र यजुर्वेद, तै० सं० (२।३।१४।३) में तथा यजुर्वेद, काठकसंहिता (१० । ४०) में भी आया है । इससे 'वेद-पुराणकी एकवाक्यता' भी सिद्ध हो गयी ।

वेदोंमें गणपतिका इन्द्ररूप

अब गणपतिका वेदमें 'इन्द्र'-रूपसे वर्णन भी 'कल्याण-पाठक' देखें—

नि षु सीद गणपते गणेषु
त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम् ।
न ऋते त्वत् क्रियते किं चनारे
महामर्कं मघवञ्चित्रमर्च ॥
(ऋक्सं० १० । ११२ । ९)

इस वेदके प्रमाणसे तथा गृह्यसूत्र, स्मृति, पुराणादिकी साक्षीसे गणपतिपूजा अनादि सिद्ध हुई । 'विप्रतम'-शब्दसे गणपति 'ब्राह्मणयोनिज विद्वान्' सिद्ध हुए । गणपतिकी विद्वत्ता 'महाभारत'के लेखनमें (आदिपर्व १ । ७७—८३में) देखी जा सकती है । इस प्रसङ्गमें गणेशके हेरम्ब, गणेशान, गणनायक, विघ्नेश एवं गणेश—ये नाम आये हैं, जो गजानन गणेशके हैं । श्रीव्यासजीने महाभारतमें ८८०० कूट (बहुत कठिन) श्लोक रखे । गणेशजी लिखते-लिखते ही उनका अर्थ जान लेते थे ।

उक्त मन्त्रमें इन्द्र गणपतिदेवरूपमें स्तुत हुए हैं—'गणपते ! मघवन्' । इसलिये 'गणपत्युपनिषद्'में श्रीगणेशको 'त्वमिन्द्रः' (१) भी कहा गया है । इसीलिये शतपथ ब्राह्मणमें कहा गया है—'इन्द्रः सर्वा देवताः' (२ । ४ । २ । २) । इसी प्रकार 'इन्द्राग्नी वै सर्वे देवाः' (६ । ३ । ३ । २१) में इन्द्र और अग्निको सब देवताओंके रूपमें स्तुति की जा सकती है—यह कहा गया है । इसलिये 'त्वमग्ने !''' द्विमाता' (ऋक्सं० १ । ३१ । २) में अग्निको 'द्वैमातुर' (गणपति) कहा गया है । 'आ तू न इन्द्र'''महाहस्ती''' (ऋक्सं० ८ । ८१ । १) में इसे 'महाहस्ती' गणरूप कहा गया है । 'सामविधानब्राह्मण'में भी 'आ तू न०' (साम० पू० २ । ३ । ३); 'सुहस्त्या०' (साम० पू० ६ । ३ । ७) में इति प्रथमषष्ठे च 'एषा वैनायकी नाम संहिता' इसको विनायक (गणेश) का मन्त्र कहा गया है । इसलिये 'हस्ती' से 'हस्तिमुख'का बोध हुआ । इसीलिये कृष्णयजुर्वेदकी मैत्रायणी-संहितामें भी गणेशजीके लिये 'तत् कराटाय''''हस्तिमुखाय धीमहि' (२ । ९ । १ । ६) में हस्तिमुख—गजाननको—'करं शुण्डादण्डं आटयति' सूँडको घुमानेवाला—'कराट' कहा गया है ।

यह भी नहीं कहा जा सकता कि गणपति-नामके किसी देवविशेषका वेदमें उल्लेख नहीं है—(वैदिकप्रेस, अजमेरकी छपी) यजुर्वेदकी माध्यन्दिन संहिता २३ । १९ में गणपतिको ही इस मन्त्रका देवता लिखा गया है । ११ । १५ मन्त्रके देवता-रूपमें भी 'गणपति'का ही उल्लेख किया गया है । 'गणेशाथर्वशीर्ष''उपनिषद्' में 'एकदन्ताय विद्महे-वक्रतुण्डाय धीमहि । तन्नो दन्ती प्रचोदयात्'में भी गणेशजीका वर्णन किया गया है । उपनिषदोंका ब्राह्मण-भागमें अन्तर्भाव होनेसे उन्हें 'वेद' माना जाता है—'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' । 'मुक्तिकोपनिषद्' के 'एकैकस्या हि शाखाया एकैकोपनिषन्मता' (१ । १४) में वेदकी सभी शाखाओंकी एक-एक उपनिषद् मानी गयी है ।

'यजुर्विधान' में 'गणानां त्वा०' मन्त्रको श्रीकात्यायन मुनिने 'वक्रतुण्डस्य एतानि०' के अन्तर्गत गजानन देवताको माना है । वेदमें गणपतिका उल्लेखमात्र ही नहीं है, अपितु उन्हें हवि देनेकी बात भी कही गयी है—'गणश्रियै स्वाहा, गणपतये स्वाहा' (यजु० २२ । ३०) । यजुर्वेदकी काण्वसंहिता (२४ । ४२) में भी 'गणपतये स्वाहा' है । यजुर्वेद, मैत्रायणीसंहिता (३ । १२ । १३) में भी ऐसा ही मन्त्र है ।

यजुर्वेदकी १०१ संहिताएँ हैं। इनमें कृष्णयजुर्वेदकी ८६ तथा शुक्ल यजुर्वेदकी १५ संहिताएँ होती हैं। ऐतिहासिक दृष्टिसे कृष्णयजुर्वेद शुक्ल यजुर्वेदकी अपेक्षा बड़ा, प्राचीन और सुव्यवस्थित भी है।

इसी प्रकार कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीयारण्यकमें भी गजानन गणेशका वर्णन मिलता है—'तत्पुरुषाय विद्महे, वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्।' (१०।१) इसीलिये सर्ववेदभाष्यकार श्रीसायणाचार्य भी अपने भाष्योंके आरम्भमें गजानन गणेशका ही मङ्गलाचरण करते हैं। यदि इसमें अवैदिकता होती तो वे यह नहीं करते।

त्रिपुरातापिनी उपनिषदकी तृतीयकण्डिकामें **'गणानां त्वा''सीद सादनम्'** मन्त्रके आदि-अन्तसे **'गं गणपतये नमः'**·······गणेशको नमस्कार कराया गया है। वहीं चतुर्थकण्डिकामें **'गणानां त्वारति त्रैष्टुभेन पूर्वेणाध्वना मनुनैकार्णेन गणाधिपमभ्यर्च्य गणेशत्वं प्राप्नोति'**—यह फल कहा गया है। ['गणानां त्वा'—इस त्रिष्टुम् छन्दके मन्त्रसे भगवान् गजाननकी पूजा करके पूजक गणेशके पद (सायुज्य) को प्राप्त करता है]।

'खिल'-मन्त्र भी 'वैदिक' ही है, प्रक्षिप्त नहीं। इसीलिये मनुस्मृति (३। २३२) में **'खिलानि च'** के द्वारा पितृकर्ममें खिलोंके पाठका भी विधान है। यजुर्वेदकी माध्यन्दिन-संहिता में २६वें अध्यायके बीचमें जो **'यथेमां वाचं०'** यह प्रसिद्ध मन्त्र है, वह 'खिल' माना जाता है। 'बृहत्पराशर-स्मृति'में 'आ तू न इन्द्र.'—इस मन्त्रको **'गणेश्वर'**-परक बताया गया है, यह हम पहले बतला चुके हैं।

> **शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा।**
> **शं नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः॥**
> (अथर्व० १९। ९। १०)

—इस मन्त्रके पूर्वार्धमें ग्रहोंसे प्रार्थना है और उत्तरार्धमें 'धूमकेतु'-शब्दसे **'धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षः'** गणेशकी प्रार्थना तथा चतुर्थ पादमें रुद्रदेवताओंसे प्रार्थना की गयी है।

'गणानां त्वा०' इस यजुर्वेदके मन्त्रके द्वारा अश्वमेध यज्ञमें अश्वकी भी गणपतिरूपसे स्तुति की गयी है। उसके भाष्यकार श्रीमहीधर भी **'प्रणम्य लक्ष्मीं च हरिं गणेशम्'**के रूपमें गणेशको भी वैदिक देवता मानकर उन्हें नमस्कार करते हैं।

यजुर्वेदकी माध्यन्दिन संहितामें **'आखुस्ते पशुः०'** (३। ५७) कहकर चूहेको गणपतिका वाहन माना गया है। यद्यपि इस मन्त्रका देवता रुद्र है, तथापि रुद्रसूक्तमें ही **'नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च०'** (१६। २५)के द्वारा रुद्रका गणपतिके रूपमें वर्णन किया गया है। **'रुद्रस्य गाणपत्यम्'** (यजु० ११। १५) में रुद्रका 'गणपतित्व' कहा गया है। यह **'पुत्र आत्मा मनुष्यस्य'** (महाभारत ३। ३१३। ७२)के अनुसार है। इसमें वैदिकता है। वैदिक यज्ञकी क्रियामें चूहेके बिलकी मिट्टी लायी जाती है (देखिये, शतपथ० २। १। ७); अतएव उसके अध्यक्ष गणपतिकी भी यज्ञमें पूजा होती है। **'गणानां त्वा०'** (यजु० २३। १९) मन्त्रसे अश्वमेध यज्ञमें यज्ञिय अश्वमें गणपतिका आवाहन किया जाता है। प्राकृतिक गणपति प्राणके च्युत होनेपर उसका प्रथम प्लेगरूप आघात चूहेपर होता है। उस प्लेगके उपशमनके लिये गणपति-याग ही शास्त्रोक्त उपाय है। जबतक गणपति चूहेपर चढ़े रहते हैं, तबतक प्लेग दबी रहती है।

गणेशका 'विघ्नेश्वर' नाम देखकर 'ये गणेश विघ्नविनाशक कैसे हो सकते हैं? अच्छे कार्योंमें विघ्न डालनेवाले होनेसे वे उपदेव वा अनार्यदेव हुए'—यह कइयोंका कहना भी अज्ञानातिशयके कारण है। 'मृगेन्द्र सिंह' मृगोंका स्वामी होता हुआ मृगोंका विनाशक भी होता है। 'जगदीश्वर' जहाँ जगत्का स्वामी है, वहाँ 'जगत्संहारक' भी है। एक ही देवको जब कर्ता, भर्ता और हर्ता भी माना जाता है, तब 'विघ्नेश्वर'-की 'विघ्नविनाशकता'के विषयमें शङ्काका अवकाश ही कहाँ? ईश्वरमें अनुग्रहके समान 'निग्रह'की भी शक्ति हुआ करती है। 'महेश्वर' क्या 'संहारक' नहीं?

गणपतिको उपनिषद्में 'सर्वेश्वर' भी माना जाता है। जो 'सर्वेश्वर' है, वह 'विघ्नेश्वर' भी है। विघ्नेश्वरके व्यापार—विघ्नोंकी भी हमें आवश्यकता पड़ती ही है। जिस व्यक्तिको लगातार दस्त आ रहे हों, उसमें यदि विघ्नेश्वर प्रतिबन्ध-स्वरूप विघ्न न डालें तो वह व्यक्ति समाप्त हो जाय।

एक बार किसी राजाकी एक उँगली कट गयी। इसे देखकर मन्त्रीने कहा—'जो विघ्नेश्वर करता है, ठीक ही करता है।' राजाने इससे क्रुद्ध होकर मन्त्रीको निकाल दिया। मन्त्रीने उस विघ्नको भी अच्छा समझा। एक बार राजा सेनासे अलग हो गया। जंगलमें उसे अकेला पाकर कापालिक लोगोंने देवीके आगे बलि देनेके लिये उसे पकड़ लिया। बलि देनेके समय उसे विकलाङ्ग देखकर उन लोगोंने

उसकी बलि नहीं दी, बल्कि वह छोड़ दिया गया। तब राजाको मन्त्रीकी बात ठीक ज्ञात हुई। उसने मन्त्रीको फिरसे बुला लिया। राजाने मन्त्रीसे कहा—'तुम्हारा मेरे द्वारा निकाला जाना तो तुम्हारे हकमें ठीक नहीं था; परंतु तुम उसे शुभ ही मानते हो, वह कैसे ?' इसपर मन्त्रीने कहा कि 'आप तो अङ्ग-भङ्ग होनेके कारण बलिदानसे बच गये; किंतु मैं यदि आपके साथ होता तो पूर्णाङ्ग होनेसे मेरी अवश्य बलि दे दी जाती। अतः आपद्वारा मेरा निकाला जाना मेरे लिये विघ्नस्वरूप होनेपर भी शुभ ही हुआ। इसलिये विघ्नेश्वरके विघ्नोंसे भी लाभ ही होता है।'

यदि विघ्नेश्वरके विघ्न न हों तो पुरुष अशुभ व्यवहारोंसे निवृत्त कैसे हो ? उन पाप-कार्योंमें विघ्न ही तो पुरुषकी उनसे रक्षा करते हैं। प्रतिबन्धस्वरूप विघ्न होनेसे ही हमें सुख तथा दुःख भी क्रमशः मिलते हैं। अप्रतिबन्धवश निरन्तर सुख मिले तो हम अभिमत्त होकर अपना पतन कर डालें और निरन्तर दुःख मिले तो हम निराश होकर मर जायँ। संसाररूपी गाड़ीको ही लीजिये। वह एक व्यवस्थासे चले, उसमें प्रतिबन्धस्वरूप विघ्न न हो तो गाड़ी किसी स्टेशनपर रुके ही नहीं। फिर यात्री उसपर कैसे चढ़ें या उतरें ? बिना लाइन-क्लियरके वह कहीं जा टकराये तो बड़ी हानि हो जाय। मोटर-साइकल लगातार दौड़ती चली जाय, उसमें यदि ब्रेक न हो तो वह कहीं रुके ही नहीं; उसके आगे नदी आ जाय तो वह उसमें जा डूबे।

राजा बलिके बढ़े हुए वैभवमें वामनावतारका छल-पूर्वक विघ्न डालना वैष्णववृत्ति थी, आर्य-वृत्ति थी, अनार्यवृत्ति नहीं। वामन अनार्यदेव नहीं थे। हमलोग भी कई ऐसे कार्य शीघ्रतावश करने लग जाते हैं, जो हमारी प्राणहानि भी कर सकते हैं ! यदि विघ्नेश्वर वहाँ न हों और उसमें विघ्न न डालें तो हम मर ही जायँ। यदि विघ्नेश्वर पापकर्मोंमें विघ्न न डालें तो पापकर्म कैसे रुकें ? हमारा मरण भी एक बड़ा विघ्न है, पर वह भी हमारा नया संस्करण करके हमारे लिये नवजीवनदाता बनता है।

अतः जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रलयकी अधिष्ठात्री देव-त्रिमूर्तिकी भाँति विघ्न-व्यापारके देवकी भी आवश्यकता रहती है। अद्वैतमें एक तत्त्व होनेपर भी व्यवहारमें सब नाम-रूप विभिन्न होते हैं। विघ्न होनेसे कई लाभ भी हो जाते हैं। कई बार शीघ्रता करनेसे कार्य साङ्गोपाङ्ग नहीं बनता; उसमें विघ्न पड़नेपर देरी हो जानेसे वह सुसम्पन्न हो जाता है। अतः विघ्नेश्वर गणेश 'अपदेव' कभी नहीं बन सकते।

विघ्नेश्वर गणेश विद्या एवं बुद्धिके ही अधिष्ठाता नहीं; अपितु ऋद्धि-सिद्धि एवं निधिके भी दाता होनेसे 'निधिपति' एवं प्रिय आख्यानोंके अधिष्ठाता होनेसे 'प्रियपति' भी हैं। अच्छे कार्योंमें आनेवाले विघ्नोंके भी विघातक एवं अभीप्सितार्थ-सिद्धिदायक होनेसे वे सुरासुर-पूजित भी हुए। तभी तो उनके लिये कहा जाता है—

> अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुरासुरैः।
> सर्वविघ्नच्छिदे तस्मै गणाधिपतये नमः॥

जो कहीं 'गणपति'को 'चोर-गणपति' कहा जाता है, वहाँ यह भाव समझना चाहिये कि वे सम्पूर्ण विघ्नोंके चोर हैं। उनको 'उच्छिष्टगणपति' भी कहा जाता है, वहाँ यही भाव है कि वे 'सर्वान्तेऽवशिष्टः—सबके अन्तमें शेष रहनेवाले' हैं। अथर्ववेदसंहिताके 'उच्छिष्टसूक्त' (११। ७)का भी यही तात्पर्य है। इस प्रकार गणपति ब्रह्म होनेसे—जैसा कि 'गणपति-उपनिषद्'में कहा गया है, वे 'उच्छिष्ट' भी सिद्ध हुए। गणपतिको 'पिचण्डिल' या 'लम्बोदर' भी कहा जाता है। जब गणपतिको 'ब्रह्म' कहा जाता है, तब 'लम्बोदर'का यह भाव हुआ—'जगन्ति यस्यां सविकासमासत'। अर्थात् सारा जगत् उनके पेटमें समाया हुआ है। अतः उनका पेट बहुत बड़ा है। यही भाव इस शब्दमें ओत-प्रोत है।

'गजमुख'से डर जाना भी ठीक नहीं। कदाचित् यह डर इसलिये हो कि 'वे गजमुखसे सार्थक भाषा बोल कैसे सकते हैं ? सिर कटनेपर गजमुखका संधान कैसे हुआ ? उनकी मृत्यु क्यों न हो गयी ?'—ये संदेह भी 'श्रद्धा'से समाहित हो जाते हैं। ब्राह्मणभागात्मक वेदको उठा लीजिये। शतपथ ब्राह्मण (१४। १। १। १९–२४)में वर्णन है कि अथर्वाके पुत्र दध्यङ्का सिर काटकर अश्विनीकुमारने उसपर घोड़ेका सिर जोड़ दिया। उस अश्व-सिरसे यज्ञपूर्तिकी विद्या अश्विनीकुमारने सीखी। सिर कटनेसे दध्यङ् मरे भी नहीं, घोड़ेके सिरका संधान भी हो गया। उससे बोलचाल तथा विद्या-प्राप्ति भी सम्भव हो गयी। कहीं यह बात ब्राह्मण-

भागकी होनेसे किसीको खटक न जाय, अतः उन्हें वेदसंहिता भी देख लेनी चाहिये—

'आथर्वणाय अश्विनौ दधीचेऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम्।'
(ऋक्सं० १ । ११७ । २२)

'युवं दधीचो मन आविवासथोऽथा शिरः प्रति वामश्व्यं (अश्विनौ) वदत् ॥' (ऋक्सं० १ । ११९ । ९)

इसमें प्रत्यक्षका अनुग्रह भी देख लीजिये—

एक कुत्तेका सिर दूसरे कुत्तेकी गर्दनपर जोड़ दिया गया।

मास्को २४ सितम्बर। 'मास्को ईवनिंग'के अनुसार रूसी वैज्ञानिक कल एक कुत्तेका सिर एक अन्य किसमके कुत्तेकी गर्दनपर लगानेमें सफल हो गये। पत्रने लिखा है—'दो सिरोंवाला कुत्ता सकुशल है और उसके दोनों सिर खाते-पीते है।' ('वीर अर्जुन', दिल्ली, २५ सितंबर १९५८)।

फलतः उक्त वैदिक कथाकी भाँति तथा प्रत्यक्ष वैज्ञानिक रूसी घटनाकी भाँति गजमुखका संधान तथा उससे भाषण-शक्ति भी सम्भव है। यह शङ्का तो व्यर्थ है कि 'हाथीका सिर बहुत बड़ा होता है, फिर वह छोटे पुरुषकी ग्रीवापर कैसे जुड़ सका?' इसका उत्तर यह है कि गणपतिको मनुष्यशरीर समझना भूल है। गणपति मनुष्य नहीं, किंतु देव हैं। देवताओंके शरीर मनुष्य-जितने नहीं, किंतु बहुत बड़े होते हैं। चाहे आप चित्रोंमें गणेशको ह्रस्व आकारवाला ही देखते हों, पर वहाँ वास्तविकता नहीं होती। पृथ्वीकी अपेक्षा १३ लाखगुना बड़ा सूर्यदेवता भी चित्रमें कितना छोटा होता है। हाथीको भी वहाँ दिव्य ही समझना चाहिये, इस लोकका प्राणी नहीं। तब 'गजेन्द्रवदनं देवम्' (भविष्यपुराण, प्रतिसर्गपर्व, द्वितीय भाग २०। १४०) 'मूषकस्थं महाकायम्' (वही, २०। १४२) इत्यादि वचनोंमें कोई विप्रतिपत्ति नहीं रह जाती। तब क्या अश्वके सिरवाले वैदिक ऋषि दध्यङ्को भी अनार्य ऋषि मान लिया जायगा? मनुष्य और सिंहकी संकीर्ण आकृतिवाले नृसिंहावतारको तथा मत्स्य, कूर्म, वराह और हयग्रीवकी आकृतिवाले विष्णुको भी क्या 'अनार्य देव' मान लिया जायगा? ऋक्संहिता ८। ८५। ७ के अनुसार रासभवाहनवाले अश्विनी-कुमारोंको तथा कृष्ण रंगवाले श्रीकृष्ण तथा श्रीजगन्नाथ-मूर्तिको भी क्या अनार्य देव मान लिया जायगा? वस्तुतः गणनायकका गजवाहन होना स्वाभाविक ही है।

३३ देवताओंमें श्रीगणेशके न आनेसे भी गणेशजी अवैदिक नहीं माने जा सकते; अन्यथा उनमें सरस्वती, ब्रह्मणस्पति आदि देवताओंके भी न आनेसे वे भी अवैदिक देव हो जायँगे। पर यह किसीको भी इष्ट नहीं है। गणेशजीका जब सर्वत्र देश-विदेशोंमें प्रचार है, तब स्पष्ट है कि भूमण्डलभरमें फैले हुए आर्योंके मान्य वेदादि-शास्त्रोंकी यह देन है। 'गजानन' शब्द भी चारों वेदोंके अन्तिम अक्षरोंको संकेतित करता है—'ऋग्' से 'ग', यजुः से 'ज', सामन्से 'न' और अथर्वन्से 'न'। तब वेदसे प्रकट हुआ यह गजानन देव अवैदिक एवं अनार्य कैसे हो सकता है?

'विघ्नराज क्षमस्व'—यो गणपति-पूजाके अन्तमें कहना 'आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम्। पूजां चैव न जानामि क्षमस्व परमेश्वर ॥' की भाँति आवाहनके अनन्तर विसर्जनके उद्देश्यसे है, गणेशकी अनावश्यकताका द्योतक नहीं।

गणेशकी एक मूर्ति 'ॐ' भी है। उसमें आरम्भिक भाग गजका शुण्डादण्ड है, ऊपरका अनुनासिक 'भालचन्द्र' है एवं दाहिनेमें गोलाकार मोदक (लड्डू) है। किन्हींके मतानुसार ॐ में प्लुतचिह्न मूषक है। इस प्रकार ॐ—यह गजानन गणेशकी प्रणवाकार मूर्ति है। इसे 'गणेशतापिनी उपनिषद्'में भी संकेतित किया गया है—'ततश्च ॐ इति ध्वनिरभूत्। स वै गजाकार.'। 'ॐकाररूपी भगवान् यो वेदादौ प्रतिष्ठितः।' (गणेशपुराण)।

श्रीगणपति-रहस्य

(लेखक—पं० श्रीबलदेवजी उपाध्याय, एम्० ए०, साहित्याचार्य)

सदात्मरूपं सकलादिभूतममायिनं सोऽहमचिन्त्यबोधम्।
अनादिमध्यान्तविहीनमेकं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥
अनन्तचिद्रूपमयं गणेशं ह्यभेदभेदादिविहीनमाद्यम्।
हृदि प्रकाशस्य धरं स्वधीस्थं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥*
(एकदन्तस्तोत्र ३-४)

आर्योंके प्रत्येक मङ्गल-कार्यके आरम्भमे भगवान् गणपतिकी पूजा होती है। यह पूजा थोड़ी मात्रामे हो या बड़ी मात्रामे, होती है अवश्य। आवाहनसे लेकर विसर्जनपर्यन्त पूजा विविध विधानोके अनुसार यथाशास्त्र विशेष प्रकारसे की जाती है; परंतु सामग्रियोके अभावमे केवल 'श्रीगणेशाय नमः', 'श्रीगणपतये नमः' कहकर ही हम कभी-कभी मङ्गलमूर्ति सिन्धुरवदनका स्मरण कर लिया करते हैं। यह पूजा भारतवर्षके प्रत्येक प्रान्तके धर्माभिमानी हिंदू सद्गृहस्थोंके घरमे की जाती है, चाहे वह किसी भी दूसरे सम्प्रदायका उपासक क्यों न हो। गणेश-पूजाका इतना लोकप्रचार—सार्वत्रिक परिचय होनेपर भी हम गणपतिके यथार्थ स्वरूपसे अनेक अंशोमे अपरिचित-से ही है। यही कारण है कि उन्हें शिवपुत्र जानते हुए शिव-गौरीके विवाहारम्भमे उनके पूजनकी कथा सुनकर हममेंसे बहुत लोग इन दोनो बातोंमे पारस्परिक विरोध मान बैठते हैं अथवा इस कथाको पौराणिक कल्पना कहनेमे आनाकानी नहीं करते। अतः गणपतिके वास्तविक स्वरूपका जानना हमारा परम कर्तव्य है। हमारे गणेशोपासना-सम्बन्धी संस्कृत-ग्रन्थोमे इस रहस्यका उद्घाटन बड़ी मार्मिकताके साथ किया गया है। 'कल्याण'के प्रेमी पाठकोंके सामने इस तत्त्वका थोड़ा-सा विवेचन प्रस्तुत करनेका उद्योग किया जा रहा है।

गणपति-तत्त्व-निरूपण करनेके पहले गणेशके वैदिकत्वके विषयमें सामान्य चर्चामात्र कर देना मैं आवश्यक समझता हूँ। यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि ऐतिहासिक दृष्टिसे विकास सिद्धान्तके अनुसार प्रायः सभी पौराणिक देवताओंका मूल रूप वेदोंमें मिलता है। धीरे-धीरे ये विकासको प्राप्त होकर कुछ नवीन रूपमें दृष्टिगोचर होते हैं। गणेशजी भी वैदिक देवता हैं, परंतु इनका नाम वेदोंमे 'गणेश' न होकर गणपति या 'ब्रह्मणस्पति' है। जो वेदमें 'ब्रह्मणस्पति'के नामसे अनेक सूक्तोंमे अभिहित किये गये हैं, उन्हीं देवताका नाम पुराणोंमें 'गणेश' मिलता है। ऋग्वेदके द्वितीय मण्डलका यह सुप्रसिद्ध मन्त्र गणपतिकी ही स्तुतिमें है—

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे
कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत
आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्॥
(ऋग्वेद २। २३। १)

इसमें आप 'ब्रह्मणस्पति' कहे गये हैं। 'ब्रह्मन्' शब्दका अर्थ वाक्, वाणी है—अतः 'ब्रह्मणस्पति'का अर्थ वाक्पति, वाचस्पति अथवा वाणीका स्वामी हुआ। बृहदारण्यक उपनिषद्मे (१। ३। २०-२१) 'ब्रह्मणस्पति'का यही अर्थ प्रदर्शित किया गया है—

एष एव उ एव बृहस्पतिर्वाग्वै बृहती तस्या एष पतिस्तस्मादु बृहस्पतिः। एष उ एव ब्रह्मणस्पतिर्वाग् वै ब्रह्म तस्या एव पतिस्तस्मादु ब्रह्मणस्पतिः।

'ज्येष्ठराज' शब्द भी, जिसका पीछे गणपतिके लिये प्रयोग मिलता है, इसी मन्त्रमे प्रयुक्त हुआ है। इसका अर्थ है—सबसे ज्येष्ठ—सबसे पहले उत्पन्न होनेवाले, देवताओंके राजा—शासनकर्ता। इन्द्र तो केवल देवोंके अधिपतिमात्र हैं, परंतु इन्द्रके भी प्रेरक होनेसे आपका नाम 'ज्येष्ठराज' है। इस मन्त्रमे गृत्समद ऋषि देवगणोंके अधिपति, क्रान्तदर्शी—अतीत-अनागतके भी द्रष्टा, कवियोके कवि, अनुपमेय कीर्ति-सम्पन्न, 'ज्येष्ठराज' ब्रह्मणस्पतिका आवाहन करते हैं और उनसे प्रार्थना करते हैं कि हमारे आवाहन-मन्त्रको सुनकर आप अपनी रक्षा-शक्तिके साथ हमारे गृहमे आकर निवास कीजिये।

* जो सत्पुरुषोंके आत्मरूप (अथवा सदा आत्मरूप), सबके आदि, मायाविवर्जित, 'वही (परमात्मा) मैं हूँ'—इस प्रकार जिनके अंदर अचिन्त्य ज्ञान है, जिनका न आदि है न मध्य और न अन्त ही है, उन द्वितीय-रहित भगवान् एकदन्तकी हम शरण ग्रहण करते हैं। हम उन एकदन्त भगवान् गणेशकी शरणमे जाते हैं, जिनका स्वरूप अनन्त एवं चिद्रूप है, जो सबके आदिभूत हैं, जो हृदयमे प्रकाशको धारण किये रहते हैं, अपनी बुद्धिमें विराजमान रहते हैं और भेद-अभेद आदिसे रहित हैं।

यह पूरा-का-पूरा सूक्त ब्रह्मणस्पति—गणपतिकी प्रशंसामें है । अन्य सूक्तोंमे भी आपकी स्तुति मिलती है, अतः गणेशजीके ब्रह्मणस्पतिके रूपमे वैदिक देवता होनेमे तनिक भी संदेह नही है । और भी एक बात है । गणेशके जिस विशिष्ट रूपका वर्णन पुराणोंमे उपलब्ध होता है, उसका भी आभास वैदिक ऋचाओमे मिलता है । निम्नलिखित मन्त्रोंमे गणपतिको 'महाहस्ती', 'एकदन्त', 'वक्रतुण्ड' तथा 'दन्ती' कहा गया है—

आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं संगृभाय ।
महाहस्ती दक्षिणेन ॥

(ऋग्वेद ८ । ८१ । १)

एकदन्ताय विद्महे, वक्रतुण्डाय धीमहि ।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥

(कृ० य०, मैत्रायणीसंहिता २ । ९ । १ । ६)

गणपतिके वैदिक स्वरूपके जिज्ञासुजन नीलकण्ठविरचित 'गणपतितत्त्वरत्नम्' के अध्ययन करनेका कष्ट उठाये । इस प्रकार गणपतिके वैदिक रूपका थोड़ा-सा आभास देकर हम अपने मुख्य विषयकी ओर आते हैं ।

'गणपति' शब्दका अर्थ है—गणोंका पति । इसी अर्थमे इन्हे 'गणेश' भी कहते हैं। यहाँ 'गण'-शब्दका अर्थ जानना आवश्यक है । 'गण समूहे'—समूह-वाचक 'गण्' धातुसे 'गण' शब्द बना है । अतः इसका सामान्यार्थ समूह—समुदाय होता है; परंतु यहाँपर इसका अर्थ देवताओंका गण, महत्तत्त्व-अहंकारादि तत्त्वोंका समुदाय तथा सगुण-निर्गुण ब्रह्म है; अतः 'गणपति'-शब्दसे वह सूचित होता है कि आप समस्त देवतावृन्दके रक्षक हैं; महत्तत्त्व आदि जितने सृष्टि-तत्त्व हैं, उनके भी आप स्वामी है, अर्थात् इस जगत्‌की उत्पत्ति आपसे ही हुई है । सगुण-निर्गुणके पति होनेसे गणपति ही इस जगत्‌मे सबसे श्रेष्ठ तथा माननीय देवाधिदेव हैं । 'गण'की दूसरी व्याख्यासे आपका जगत्कर्तृत्व और भी अधिकरूपसे स्पष्ट प्रतीत होता है । मनोवाणीमय सकल दृश्यादृश्य विश्वका वाचक 'ग' अक्षर है तथा 'ण' अक्षरके द्वारा जितना मनोवाणी-समन्वित तथा तद्विरहित जगत् है—सबका ज्ञान होता है । उसके पति या ईश होनेके कारण हमारे आराध्य गणेश सर्वतोमहान् देव है । 'गण'-शब्दकी यह व्याख्या मौद्गल-पुराणमें इस प्रकार निरूपित है—

मनोवाणीमयं सर्वं दृश्यादृश्यस्वरूपकम् ।
गकारात्मकमेवं तत् तत्र ब्रह्म गकारकः ॥
मनोवाणीविहीनं च संयोगायोगसंस्थितम् ।
णकारात्मकरूपं तत् णकारस्तत्र संस्थितः ॥

अब गणपतिके रूपपर तनिक दृष्टि डालिये । उनका मुख हाथीका-सा बतलाया जाता है । इसीसे आपको गजानन, गजास्य, सिन्धुरानन आदि नामोंसे अभिहित किया जाता है । चित्र-विचित्र रूपके लिये पुराणोंमे समुचित कथानक भी वर्णित हैं, परंतु इस रूपके द्वारा जिस अव्यक्त भावनाको व्यक्त रूप दिया गया है, वह नितान्त मनोरम है । गणपतिके अन्तर्निहित गूढ आध्यात्मिक तत्त्वको जिस ढंगसे इस रूपके द्वारा सर्वजनसंवेद्य बनानेकी चेष्टा की गयी है, वह वास्तवमे अत्यन्त सुन्दर है । गणपतिके बाह्य रूपको समझना क्या है, उनके आभ्यन्तर गुहास्थित सत्य रूपकी पहचान करना है । उनका रहस्य जाननेके लिये यह बड़ी भारी मूल्यवान् कुंजी है ।

गणेशजीके सारे अङ्ग एक प्रकारके नहीं हैं । मुख तो है गजका, परंतु कण्ठके नीचेका भाग है मनुष्यका । इनके देहमे नर तथा गजका अनुपम सम्मिलन है । 'गज' किसे कहते हैं ? 'गज' कहते है, साक्षात् ब्रह्मको । समाधिके द्वारा योगिराज जिसके पास जाते हैं—जिसे प्राप्त करते हैं वह हुआ 'ग' (समाधिना योगिनो यत्र गच्छन्तीति गः) तथा जिससे यह जगत् उत्पन्न होता है, वह हुआ 'ज' (यस्माद् बिम्बप्रतिबिम्बतया प्रणवात्मकं जगज्जायते इति जः) । विश्वकारण होनेसे वह ब्रह्म (गज) कहलाता है । गणेशका ऊपरी भाग गजका-सा है अर्थात् निरुपाधि ब्रह्मरूप है । ऊपरका भाग श्रेष्ठ अंश होता है—मस्तक देहका राजा है, अतः गणपतिका यह अंग भी श्रेष्ठ है; क्योंकि यह निरुपाधि—उपाधिरहित मायानवच्छिन्न ब्रह्मका द्योतक है । नरसे अभिप्राय मनुष्य, जीव अथवा सोपाधि ब्रह्मका है । अधोभाग ऊर्ध्वभागकी अपेक्षा निकृष्ट होता है । अतः सोपाधि अर्थात् मायावच्छिन्न चैतन्य—जीवका रूप होनेसे अधोभाग निकृष्ट है । अथवा 'तत्त्वमसि' महावाक्यकी दृष्टिसे हम कहेंगे कि गणेशजीका मस्तक 'तत्'-पदार्थका संकेत करता है तथा अधोभाग 'त्वम्'—पदार्थका । 'तत्'-पद मायान-वच्छिन्न शुद्ध चैतन्य निरुपाधि ब्रह्मका वाचक है; अतः गजाननके उत्तमाङ्गद्वारा उसका द्योतन नितान्त उचित है ।

'त्वम्'-पद उपाधि-विशिष्ट ब्रह्म अर्थात् जीवका द्योतक है, अतः गजाननके नराकार अधोभागद्वारा उसको अभिव्यक्त कराना समुचित ही है। इन दोनों पदार्थोंका 'असि'-पद-प्रतिपाद्य समन्वय गणपतिमें प्रत्यक्षरूपसे दिखायी पड़ता है। जिस 'तत्त्वमसि' महावाक्यके अर्थका परिशीलन सतत समाधिनिष्ठ ज्ञानीजन अनेक उपायोंसे किया करते हैं, उसीकी प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति हमारे-जैसे साधारण, उदरम्भरि पामरजनके लिये है श्रीगजाननजी महाराजकी मङ्गलमूर्ति। श्रीगणेशाथर्वशीर्षकी आदिम श्रुति—'त्वमेव प्रत्यक्षं तत्त्वमसि'के 'प्रत्यक्ष'-पदका सकल विद्वज्जन-मनोरम अभिप्राय यही है, जो ऊपर अभिव्यक्त किया गया है। इस सिद्धान्तकी पुष्टि गणेशपुराणके सुप्रसिद्ध 'गणपतिसहस्रनाम'के द्वारा होती है। वहाँ गणेशजीके सहस्रनामोंमें एक नाम है—'तत्त्वंपदनिरूपितः।' यथा—

तत्त्वानां परमं तत्त्वं तत्त्वंपदनिरूपितः।
तारकान्तरसंस्थानस्तारकस्तारकान्तकः ॥
(उपासना० ४६। ९६)

इस अभिधानके द्वारा गणपति-स्वरूपका जो जीव-ब्रह्मैक्यप्रतिपादनपरक श्रुतिसम्मत तात्पर्य निरूपण किया गया है, उसकी सुचारुरूपसे प्रतिपत्ति होती है।

गणपतिकी मनोज्ञ मूर्तिकी आध्यात्मिकतापर जितना विचार किया जाता है, उतनी ही उनके साक्षात् परब्रह्म होनेकी वास्तविकता प्रकट होने लगती है। गणेशजी 'एकदन्त' कहे जाते हैं। उनका दाहिना ही दाँत विद्यमान है। पुराणोंमें उनके बायें दाँतके भङ्ग होनेकी कथा मिलती है। अतः उन्हें 'भग्नवामरदः' कहा गया है। इस नामके यथार्थ ज्ञानसे उनके सत्य रूपका हमें पता चलता है। 'एक'-शब्द यहाँ मायाका बोधक है तथा 'दन्त'-शब्द सत्ताधारक मायाचालक ब्रह्मका द्योतक है; अतः इस नामसे प्रकट है कि गणपति सृष्टिके लिये मायाकी प्रेरणा करनेवाले, जगदाधार—समस्त सत्ताके आधारभूत परब्रह्मके ही अभिव्यक्त रूप हैं। मौद्गल-पुराणसे इसकी पुष्टि होती है—

एकशब्दात्मिका माया तस्याः सर्वं समुद्भवम्।
भ्रान्तिदं मोहदं पूर्णं नानाखेलात्मकं किल ॥
दन्तः सत्ताधरस्तत्र मायाचालक उच्यते।
बिम्बेन मोहयुक्तश्च स्वयं स्वानन्दगो भवेत् ॥
माया भ्रान्तिमती प्रोक्ता सत्ताचालक उच्यते।
तयोर्योगे गणेशोऽयमेकदन्तः प्रकीर्तितः ॥

गणेशका एक दूसरा नाम 'वक्रतुण्ड' है। इससे भी ऊपरके सिद्धान्तकी पुष्टि होती है। यह मनोवाणीमय जगत् सर्वजनसाधारण है। सबके लिये वह समानभावसे अनुभवगम्य है, परंतु आत्मा इस जगत्से—सतत गमन-शील वस्तुसे—सर्वथा भिन्न है, पृथक् है—टेढ़ा है। अतएव यहाँ 'वक्र'-शब्दसे मनोवाणीहीन, अविनश्वर—अपरिवर्तन-शील, चैतन्यात्मक आत्माका बोध होता है। वही आत्मा गणेशजीका मुख है—मस्तक है। 'तत्त्वमसि'के साक्षात् स्वरूपधारी गजाननके कण्ठके नीचेका भाग जगत् है और ऊपरका अंश आत्मा है। अतः उन्हें 'वक्रतुण्ड' कहना नितान्त उपयुक्त है—

कण्ठाधो मायया युक्तो मस्तकं ब्रह्मवाचकम्।
वक्राख्यं तत्र विघ्नेश तेनायं वक्रतुण्डकः ॥

भगवान् गणेशके चार भुजाएँ हैं। इन भुजाओंके द्वारा आप भिन्न-भिन्न लोकोंके जीवोंकी रक्षा अभयदान देकर किया करते हैं। एक भुजा स्वर्गके देवताओंकी रक्षा करती है तो दूसरी इस पृथ्वीतलके मानवोंकी, तीसरी असुरोंकी तथा चौथी नागोंकी। इन भुजाओंमें आपने भक्तोंके कल्याणके लिये चार चीजें धारण कर रखी हैं—पाश, अङ्कुश, रद और वर। पाश मोहनाशक है। उसे आपने अपने भक्तोंका मोह हटानेके लिये ले रखा है। अङ्कुशका काम नियन्त्रण करना है, अतः वह उस व्यापारके लिये उपयुक्त है। दन्त दुष्टनाशक है, अतः वह सब शत्रुओंका विनाश करनेवाला है। वर भक्तोंके अभीष्ट-पूरक ब्रह्मका रूप है, अतः गणेशजीने सकल मानवोंके कल्याण-साधन तथा विघ्नविनाशनके लिये अपने चारों हाथोंमें इन विभिन्न वस्तुओंको धारण कर रखा है। आदिमें जगत्के स्रष्टा तथा अन्तकालमें सब विश्वको अपने उदरमें वास कराने—प्रतिष्ठित करानेवाले जगन्नियन्ता गणेशका 'लम्बोदर' होना उपयुक्त ही है।

गणेशजी 'शूर्पकर्ण' हैं—उनके कान सूपकी तरह हैं। इस नामसे भी हमें आपके उच्च परमात्मस्वरूपका परिचय होता है। जबतक धान भूसेके साथ मिला रहता है, तबतक वह बेकाम होता है, मैला बना रहता

है; सूपसे उसे फटकनेपर उसके असली रूपका पता चलता है। धान भूसेसे अलग होकर चमकने लगता है—शुद्ध रूपको पा लेता है। इसी प्रकार ब्रह्म जीवरूपमें मायाके साथ मिलकर मलावरणसे इतना आच्छन्न हो गया है कि उसका असली प्रकाशमय रूप बिल्कुल आवृत हो जाता है। ऐसी अवस्थामें सद्गुरुके मुखसे निकला हुआ 'गणेश'-नाम कर्णकुहरके द्वारा मनुष्योंके हृद्गत होकर सूपकी तरह पाप-पुण्यको अलग कर देता है तथा भगवान् शूर्पकर्णकी उपासना मायाको बिल्कुल हटाकर चैतन्यात्मक ब्रह्मकी प्राप्ति कराती है। अतः आपके 'शूर्पकर्ण'-नामकी सार्थकता स्पष्टरूपसे प्रतिपादित होती है—

शूर्पकर्णं समाश्रित्य त्यक्त्वा मलविकारकम्।
ब्रह्मैव नरजातिस्थो भवेत्तेन तथा स्मृतः॥

गणेशजी मूषकवाहन—मूषकध्वज हैं। मूषक किस तत्त्व-को द्योतित करता है, इस विषयमें मतभेद है। मूषकका काम वस्तुको कुतर डालना है। जो वस्तु इसके सामने रखी जाती है, उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गका वह विश्लेषण कर देता है। इस कार्यसे वह मीमांसा करनेके उपयुक्त वस्तुस्वरूप—विश्लेषण-कारिणी बुद्धि (निश्चयात्मिका बुद्धि) का प्रतिनिधि प्रतीत होता है। गणेशजी बुद्धिके देवता हैं। अतः जिस तार्किक बुद्धिके द्वारा वस्तुतत्त्वका परिचय प्राप्त किया जाता है तथा उसके सार एवं असार अंशका पृथक्करण किया जाता है, उसका—गजाननका वाहन बनना अत्यन्त औचित्यपूर्ण है। दूसरी दिशासे विचार करनेपर 'मूषक' ईश्वर-तत्त्वका द्योतक भासमान होता है। ईश्वर अन्तर्यामी हैं, सब प्राणियोंके हृदयमें निवास करते हैं, सब प्राणियोंके द्वारा प्रस्तुत किये गये भोगोंका वे भोग करते हैं। किंतु अहंकारके कारण मोहयुक्त प्राणी इसे नहीं जानता; वह तो अपनेको ही भोक्ता समझता है। परंतु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। प्राणियोंका प्रेरक—अन्तर्यामी, हृत्पद्ममें निवास करने-वाला ईश्वर ही वास्तवमें सब भोगोंका भोक्ता है। इस अवस्थामें मूषककी कार्यपद्धति उसपर खूब घटती है। मूषक भी घरके भीतर पैठकर चीजें चुराया करता है, परंतु घरके मालिकको इसकी तनिक भी खबर नहीं होती। इसलिये मूषकके रूपमें ईश्वरकी ओर संकेत है। पुराणोंमें गणेशकी सेवा करनेके लिये ईश्वरके मूषकरूप बन जानेकी कथा भी मिलती है। उस परब्रह्मके लिये ईश्वरके सेवार्थ वाहनरूप स्वीकार करनेकी कथा आध्यात्मिक दृष्टिसे भी उपयुक्त है—

ईश्वरः सर्वभोक्ता च चोरवत्तत्र संस्थितः।
स एव मूषकः प्रोक्तो मनुजानां प्रचालकः।
मायया गूढरूपः स भोगान् भुङ्क्ते हि चोरवत्॥

अतः गणपतिजी चिन्मय हैं, आनन्दमय हैं, ब्रह्ममय हैं, सच्चिदानन्दरूप हैं। उन्हींसे इस जगत्की उत्पत्ति होती है, उन्हींके कारण इसकी स्थिति है और अन्तमें उन्हींमें इस विश्वका लय हो जाता है। ऐसे परमात्माका सकल कार्यके आरम्भमें स्मरण तथा पूजन करना उपयुक्त ही है। एक बात और भी है। गणेशकी मूर्ति साक्षात् 'ॐ'-सी प्रतीत होती है। मूर्तिपर दृष्टिपात करनेसे ही इसकी प्रतीति नहीं होती, प्रत्युत शास्त्रोंमें भी गणेशजी ओंकारात्मक माने गये हैं। लिखा है कि शिव-पार्वती दोनों चित्रलिखित प्रणव (ॐ)-पर ध्यानसे अपनी दृष्टि लगाकर देख रहे थे। अकस्मात् ओंकारकी भित्तिको तोड़कर साक्षात् गजानन प्रकट हो गये। इसे देख शिव-पार्वती अत्यन्त प्रसन्न हुए। इस पौराणिक कथाकी सूचना—

प्र त इन्द्र पूर्व्याणि प्र नूनं
वीर्या वोचं प्रथमा कृतानि।
सतीनमन्युरश्रथायो अद्रिं
सुवेदनामकृणोर्ब्रह्मणे गाम्॥
(ऋक्० १०। ११२। ८)

—मन्त्रमें बतलायी जाती है (इस मन्त्रके अर्थके लिये देखिये 'गणपतितत्त्वरत्नम्' का १३वाँ पृष्ठ)। अतः ओंकाररूप होनेके हेतु गणेशजीकी सब देवताओंसे प्रथम पूजा तथा सत्कार पाना ठीक ही है; क्योंकि प्रणव सब श्रुतियोंके आदिमें आविर्भूत माना जाता है—'प्रणवश्छन्दसामिव।'

गणेश शिवके ज्येष्ठ पुत्र बतलाये गये हैं। इनके शिवपुत्र होनेके विषयमें एक पौराणिक कथा भी है। कहते हैं कि गणेशने सब देवताओंकी सृष्टि की। शिव, ब्रह्मा आदि भी उन्हींसे उत्पन्न हुए। इन्होंने तपस्या करना शुरू किया। योगिराज शंकरने अपनी समाधि लगायी। उसमें ब्रह्मानुभूति होनेपर आपने अपने हृदयमें गणेशजीका साक्षात् दर्शन किया। दर्शनके अनन्तर उन्होंने गणेशजीकी स्तुति एवं प्रार्थना की कि 'आप हमारे पुत्र होइये, जिससे आपका पिता होनेके कारण मैं इस मायामोहमय संसारसे पार हो जाऊँ'—

ध्याने मनसि मे जात पुत्रत्वं पालय प्रभो।
मम पुत्र इति ख्यातो लोकेऽस्मिन् भगवान् भव॥

शंकरजीकी प्रार्थना सुनकर गणेशने उनका पुत्र होना

स्वीकार किया। उसी दिनसे आप इस नामसे प्रसिद्ध हुए। (इस कथाका गणेशाथर्वशीर्षके भाष्य, पृ० २५ में विनायकसंहिताके प्रमाणके साथ उल्लेख किया गया है।) अतः भक्तानुकम्पाके वशीभूत होकर उस परमात्माने शिवके घर अवतार धारण किया। ऐसी दशामें शिव-पार्वतीके विवाहोत्सवके आरम्भमें मङ्गलकामनाके लिये सच्चिदानन्दस्वरूप गजाननका पूजन किसी प्रकार भी कल्पित या विरुद्ध नहीं माना जा सकता। अतः इस मायाजालके कटनेके लिये, इस विस्तीर्ण भवसागरके पार जानेके लिये, इस हृत्पटपर घनीभूत होकर जमे हुए तमः-पटलके फटनेके लिये उन्हीं मायापति परब्रह्म श्रीमङ्गलमूर्ति विघ्नराज एकदन्त गजाननकी शरणमें जाते हुए हम भी स्वान्तःप्रबोधाय लिये गये इस अल्पकाय लेखको समाप्त करते हैं।

श्रीगणपतिभगवान्‌का स्वरूप और उनकी आराधना

(लेखक—राष्ट्रपति-पुरस्कृत डा० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज, शास्त्री, वेदान्ताचार्य, पुराणाचार्य, एम्०ए०, पी-एच्० डी०)

एक ईश्वरका अनेकशः निरूपण

विश्वके उद्गम एवं विकासके परम कारण, परब्रह्म परमात्माका निर्देश वैदिक कालसे ही विभिन्न रूपोंमें होता रहा है। दीर्घतमा औचथ्यने स्पष्ट शब्दोंमें कहा था—

'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।' (ऋग्वेद १। १६४। ४६)

अर्थात् सत्तत्त्व तो वस्तुतः एक ही है, किंतु विद्वान्‌लोग उसका निरूपण अनेक नामोंसे करते हैं। गणपति अथवा गणेश उन्हीं परमात्माका एक अन्यतम नाम है।

गुणी, गुणेश और गणेश

परमात्मा ज्ञान और आनन्द आदि अपने दिव्य, स्वगत गुणोंके कारण 'गुणी' हैं और प्रकृतिके सत्त्व, रज और तमके अधीश्वर होनेके कारण वे गुण+ईश=गुणेश भी हैं। 'गुणी' और 'गुणेश' विशेषणोंका युगपत् प्रयोग श्वेताश्वतरोपनिषद्‌के इस मन्त्रमें मननीय है—

स विश्वकृद् विश्वविदात्मयोनि-
र्ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः।
प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः
संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः ॥
(६। १६)

गाणपत्य-सम्प्रदायके अनुसार 'गण'का अर्थ है—सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणका संघात। उसका पति अथवा शासक होनेके कारण परमात्मा 'गणपति' या गणेश कहलाते हैं।

व्याख्या-भेद

'गुणी' और 'गुणेश'की उपर्युक्त व्याख्यासे भिन्न एक और व्याख्या इस प्रकार है—परमात्मा स्वगत गुणोंके कारण नहीं, अपितु प्राकृत गुणत्रयके साहचर्यके कारण 'गुणी' और उसपर आधिपत्यके कारण ही 'गुणेश' कहलाते हैं।

मत-द्वैविध्यकी प्राचीनता

परमात्माके निर्गुण और सगुण भावके इस प्रकारके व्याख्यानमें यह मत-द्वैविध्य बहुत प्राचीन है। एक मतके अनुसार परमात्मा परमार्थतः पूर्णरूपेण निर्गुण हैं और व्यवहारतः प्राकृत गुणोंके सम्पर्कसे वे सगुण हो जाते हैं।

दूसरे मतके अनुसार परमात्मा प्राकृतगुणरहित होनेके कारण निर्गुण हैं और ज्ञानानन्दादि स्वकीय गुणोंके सहित होनेके कारण सगुण हैं।

प्रथम मतवाले सगुण परमात्माके श्रीविग्रहको शुद्धसत्त्व (मायाका विलास) मानते हैं; किंतु द्वितीय मतवाले उसे सच्चिदानन्दघन मानते हैं।

अतः गणपति भगवान्‌का श्रीविग्रह भक्त-रुचि-वैविध्यके अनुसार माया-विलास भी है और चिद्घन भी।

श्रीविष्णु (कृष्ण)का गणेश-रूप

ब्रह्मवैवर्तपुराणके अनुसार सत्त्वाधिपति विष्णु (कृष्ण) ही पार्वती माताके 'पुण्यक'-नामक पुत्रप्रद व्रतके अनुष्ठानके फलस्वरूप उनके यहाँ एक अत्यन्त मनोरम बालकके रूपमें प्रकट हुए थे, जिनका नाम 'गणेश' रखा गया।

श्रीगणपति-जयन्ती

एक मान्यताके अनुसार गणेशजीका सर्वप्रथम आविर्भाव माता पार्वतीके यहाँ माघ-मासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी तिथिको हुआ था—

सर्वदेवमयः साक्षात् सर्वमङ्गलदायकः।
माघकृष्णचतुर्थ्यां तु प्रादुर्भूतो गणाधिपः॥

(शिवधर्म)

गणेशजी अपने आराधकोंके समस्त संकटोंको, कष्टोंको नष्ट कर देते हैं, अतः उनके प्रादुर्भावकी तिथि 'संकष्ट (हर) चतुर्थी' कहलाती है।

चतुर्थी तिथिको गणेशजीके प्रकट होनेके कारण उनके भक्त प्रतिमास इस तिथिके आनेपर उनका विशेष आराधन करते हैं और प्रत्येक मासके कृष्णपक्षकी चतुर्थीको 'गणेश-चतुर्थी' और शुक्लपक्षकी चतुर्थीको 'वैनायकी चतुर्थी' कहते हैं।

स्कन्दपुराणोक्त श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर-संवादके अनुसार भाद्रपद-मासके शुक्लपक्षकी चतुर्थीकी विशेष महिमा है। उस दिनकी आराधनासे गणपतिभगवान् अपने आराधकोंके समस्त कार्य-कलापोंमें सिद्धि प्रदान करते हैं, अतः उनका नाम 'सिद्धिविनायक' प्रसिद्ध हो गया है—

सिद्ध्यन्ति सर्वकार्याणि मनसा चिन्तितान्यपि।
तेन ख्यातिं गतो लोके नाम्ना सिद्धिविनायकः॥

उनकी कृपासे विद्यार्थीको विद्याकी, धनार्थीको धनकी, विजयार्थीको विजयकी और पुत्रार्थीको पुत्रकी प्राप्ति हो जाती है।

जलतत्त्वप्रधान व्यक्ति और गणपति

संसारके सभी जीव पाञ्चभौतिक शरीरोंसे सम्बद्ध हैं। किसीमें पृथ्वी-तत्त्व प्रधान होता है, किसीमें जलतत्त्व, किसीमें तेजस्तत्त्व, किसीमें वायुतत्त्व और किसीमें आकाशतत्त्व। इन पाँचों प्रकारके जीवोंकी साधनामें समीचीनताके सम्पादनार्थ गुरुजन परमात्माकी पञ्चधा उपासना बताते हैं। पृथ्वीतत्त्वकी प्रधानतावालोंके लिये भगवान् शंकरकी, जलतत्त्वकी प्रधानतावालोंके लिये भगवान् गणपतिकी, तेजस्तत्त्वकी प्रधानतावालोंके लिये भगवती दुर्गाकी, वायुतत्त्वकी प्रधानतावालोंके लिये भगवान् सूर्यकी और आकाशतत्त्वकी प्रधानतावालोंके लिये भगवान् विष्णुकी उपासना रुचिकर होती है—

आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः॥

(कापिलतन्त्र)

गणेशजीके साथ रूपान्तरोपासना

सभी कार्योंमें सिद्धि-प्राप्तिके लिये श्रीगणपतिके साथ श्रीसूर्य, श्रीदुर्गा, श्रीशिव और श्रीविष्णुकी पूजाका विधान है—

आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रं च केशवम्।
पञ्चदैवतमित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत्॥

केवल एक देवताकी मूर्तिकी पूजाका निषेध है। अतएव जो व्यक्ति अपनी कामनाओंकी सफलता चाहता हो, उसे अनेक देवताओंकी पूजा करनी चाहिये—

एका मूर्तिर्न पूज्येव गृहिणा स्वेष्टमिच्छता।
अनेकमूर्तिसम्पन्नः सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥

पूजा-क्रममें गणपति द्वितीय

यदि पञ्चायतन देवताओंमें प्रत्येकके प्रति समान रूपसे भक्ति हो तो साधकको सर्वप्रथम श्रीसूर्यकी, तत्पश्चात् क्रमसे श्रीगणपति, श्रीदुर्गा, श्रीशंकर और श्रीविष्णुकी पूजा करनी चाहिये—

रविर्विनायकश्चण्डी ईशो विष्णुस्तथैव च।
अनुक्रमेण पूज्यन्ते व्युत्क्रमे तु महद् भयम्॥

गणपतिके प्रतिमात्रयका निषेध

घरमें कभी-कभी एक देवताकी अनेक मूर्तियोंका संग्रह हो जाता है, अतएव आराधकको उनकी संख्याका औचित्य ध्यानमें रखना आवश्यक है। घरमें दो शिव-लिङ्गों, दो शङ्खों, दो सूर्य-प्रतिमाओं, दो शालग्रामों, दो गोमती-चक्रों, तीन गणपति-प्रतिमाओं एवं तीन देवी-प्रतिमाओंकी स्थापना नहीं करनी चाहिये—

गृहे लिङ्गद्वयं नार्च्यं गणेशत्रितयं तथा।
शङ्खद्वयं तथा सूर्यौ नार्च्यौ शक्तित्रयं तथा॥
द्वे चक्रे द्वारकायाश्च शालग्रामशिलाद्वयम्।
तेषां तु पूजनेनैव उद्वेगं प्राप्नुयाद् गृही॥

प्रतिष्ठा-समय-विचार

गणपतिभगवान्‌की प्रतिष्ठाके लिये चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, माघ अथवा फाल्गुन मासका शुक्लपक्ष शुभ है—

चैत्रे वा फाल्गुने वापि ज्येष्ठे वा माधवे तथा ।
माघे वा सर्वदेवानां प्रतिष्ठा शुभदा स्मृता ॥

(प्रतिष्ठा-मयूख)

भौमवारके अतिरिक्त अन्य वार ग्राह्य हैं तथा तिथियोंमें चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी वर्जित हैं—

'रिक्तान्यतिथिषु स्यात्सा वारे भौमान्यके तथा ।'

प्रतिष्ठाके लिये प्रशस्त नक्षत्र हैं—अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुष्य, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ, श्रवण, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद और रेवती ।

प्रतिमाका परिमाण

यद्यपि मन्दिरोंमें गणपति-मूर्तियाँ सभी आकारोंकी—छोटी और बड़ी—स्थापित की जाती हैं, वे पुरुषाकार भी होती हैं और कहीं-कहीं और भी अधिक परिमाणकी देखी गयी हैं; तथापि मत्स्यपुराणके अनुसार घरोंमें यजमानके अङ्गुष्ठ-पर्वसे लेकर वितस्तिपर्यन्त अर्थात् बारह अङ्गुल परिमाण तकके आकारवाली मूर्त्तिकी स्थापना प्रशस्त है—

अङ्गुष्ठपर्वादारभ्य वितस्तिं यावदेव तु ।
गृहेषु प्रतिमा कार्या नाधिका शस्यते बुधैः ॥

पश्चिमाभिमुखी प्रतिमा

गणपति आदि देवताओंका मन्दिर घरके ईशान-कोणमें होना चाहिये और उनकी स्थापना इस प्रकार करनी चाहिये कि उनके मुख पश्चिमकी ओर रहें—

(अ) ऐशान्यां देवमन्दिरम् ॥
(आ) देवानां हि मुखं कार्यं पश्चिमायां सदा बुधैः ॥

(नारदपुराण)

यदि साधकके इष्ट-देवता श्रीगणपतिभगवान् हैं तो उनकी स्थापना मध्यमें करके ईशान-कोणमें श्रीविष्णुकी, अग्निकोणमें श्रीशंकरकी, निर्ऋति-कोणमें श्रीसूर्यकी और वायुकोणमें श्रीदुर्गाकी स्थापना करनी चाहिये—

हेरम्बं तु यदा मध्ये ऐशान्यामच्युतं यजेत् ।
आग्नेय्यां पञ्चवक्त्रं तु नैर्ऋत्यां द्युमणिं यजेत् ।
वायव्यामम्बिकां चैव यजेन्नित्यमतन्द्रितः ॥

(ज्ञानमाला)

उपासनाके कतिपय ज्ञातव्य तत्त्व

गणपतिभगवान्‌की आराधना, अन्य देवताओंकी आराधनाके समान, यथाशक्ति पञ्चोपचार, दशोपचार, षोडशोपचार अथवा राजोपचारसे करनी चाहिये । यहाँ उपासनोपयोगी कतिपय ज्ञातव्य बातें लिखी जा रही हैं ।

'गणेशाथर्वशीर्ष'नामक गणपत्युपनिषद्‌में गणपति-भगवान्‌का ध्यान इस प्रकार बताया है—

एकदन्तं चतुर्हस्तं पाशमङ्कुशधारिणम् ।
अभयं वरदं हस्तैर्बिभ्राणं मूषकध्वजम् ॥
रक्तं लम्बोदरं शूर्पकर्णकं रक्तवाससम् ।
रक्तगन्धानुलिप्ताङ्गं रक्तपुष्पैः सुपूजितम् ॥
भक्तानुकम्पिनं देवं जगत्कारणमच्युतम् ।
आविर्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात् परम् ॥
एवं ध्यायति यो नित्यं स योगी योगिनां वरः ।

अर्थात् सृष्टिके प्रारम्भमें प्रकटित, जगत्‌के परम कारण, स्वरूपमें सदा प्रतिष्ठित, पुरुषप्रकृतिमय विश्वसे अतीत, भक्तवत्सल गणेशजीके चार भुजाएँ हैं; (वे गजवदन हैं, अतएव) उनके दोनों कान शूर्पाकार हैं; उनके केवल एक दाँत है; वे लम्बोदर हैं; उनका वर्ण लाल है; उन्हें लाल रंगके वस्त्र, चन्दन और पुष्प रुचिकर हैं; वे अपने दो हाथोंमें पाश और अङ्कुश लिये हुए हैं, तीसरेमें वरद-मुद्रा है और चौथेमें अभय-मुद्रा (के साथ मोदक) है; उनकी ध्वजापर उनके प्रिय वाहन मूषकराजका चिह्न अङ्कित है । इस प्रकार गणेशजीका नित्य ध्यान करनेवाला व्यक्ति ही सर्वोत्तम योगी है ।

आवाहन-मन्त्र

गणेशजीके आवाहनके लिये निम्नाङ्कित वैदिक मन्त्र बहुत लोकप्रिय हैं—

(अ) गणानां त्वा गणपतिं हवामहे
कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम् ।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत
आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ॥

(ऋग्वेद २ । २३ । १)
(तैत्तिरीयसंहिता २ । ३ । १४ । ३)

(आ) गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे
प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे ।
निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम
आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ॥

(शुक्लयजुर्वेद २३ । १९)

आसन-मन्त्र

नि षु सीद गणपते गणेषु त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम्।
न ऋते त्वत् क्रियते किं चनारे महामर्कं मघवञ्चित्रमर्च ॥
(ऋग्वेद १०। ११२। ९)

अर्थात् हे गणपते! आप यहाँ आनन्दपूर्वक विराजिये। सभी लोग आपको विद्या-विशारदोंमें सर्वोत्तम बताते हैं एवं आपकी आराधनाके बिना कोई भी कार्य प्रारम्भ नहीं किया जाता। (यजमानके प्रति आचार्यका वचन) हे धनी पुरुष! महान् और पूजनीय गणपति-भगवान्‌की चित्र-विचित्र अर्थात् विभिन्न द्रव्योंके द्वारा पूजा करो।

अभिषेक

ताम्रपात्रमें रखे हुए पवित्र जलसे गणपतिभगवान्‌का महाभिषेक करते समय 'गणेशाथर्वशीर्ष'की इक्कीस आवृत्ति करनेका विधान है।

दूर्वा

पाटल (लाल) वर्णवाली और सुरभित कुसुमावलीके साथ-साथ दूर्वाङ्कुर भी गणेशजीको अर्पण किये जाते हैं, किंतु उनकी पूजामें तुलसीदलका प्रयोग नहीं किया जाता—

'न तुलस्या गणाधिपम्।' (ज्ञानमाला)

नीराजन-मन्त्र

विघ्नारण्यहुताशं विहितानयनाशम्।
विपदवनीधरकुलिशं विधृताङ्कुशपाशम् ॥
विजयार्कज्वलिताशं विदलितभवपाशम्।
विनताः स्मो वयमनिशं विद्याविभवेशम् ॥

अर्थात् हम सभी आराधक नित्य-निरन्तर उन गणेशजीके सम्मुख विनयावनत हैं, जो समस्त विघ्नरूपी वनोंका दहन करनेके लिये प्रबल अनल हैं, जो अनीति और अन्यायका तत्काल विनाश कर देते हैं, जो विपत्तिके पर्वतोंको नष्ट-भ्रष्ट करनेके लिये वज्रोपम हैं, जिनके एक कर-कमलमें अङ्कुश और दूसरेमें पाश विराजमान हैं, जिन्होंने विघ्न-विजयरूपी सूर्यके प्रकाशसे दसों दिशाएँ प्रकाशित कर दी हैं, जो अपने उपासकोंके भव-बन्धनको शिथिल कर देते हैं और जो समस्त विद्याओंके वैभवके अधीश्वर हैं।

प्रणाम-मन्त्र

विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय
लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय।
नागाननाय श्रुतियज्ञविभूषिताय
गौरीसुताय गणनाथ नमो नमस्ते ॥

अर्थात् हे गणपते! आप विघ्नोंके शासक हैं, अतएव आराधकोंको उनके द्वारा उत्पीडित नहीं होने देते। आप अपने उपासकोंको उनके अभीष्ट वर देकर कृतार्थ कर देते हैं। सारे देवता आपको प्रिय हैं और आप सब देवताओंको प्रिय हैं। आप लम्बोदर हैं, चतुष्षष्टि कलाओंके निधान हैं और जगत्‌का मङ्गल करनेके लिये सदा तत्पर रहते हैं। आप गज-वदन हैं और श्रुत्युक्त यज्ञोंको अपने आभूषणोंके समान स्वीकार कर लेते हैं। आप पार्वती-नन्दन हैं। हम आपके चरणोंमें बारबार प्रणाम करते हैं।

गणेश-गायत्री

(१) एकदन्ताय विद्महे, वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्। (गणपत्युपनिषद्)

(२) तत्पुरुषाय विद्महे, वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्। (नारायणोपनिषद्)

अर्थात् हम एकदन्त परमपुरुष गणपति भगवान्‌को जानते हैं, मानते हैं और उन वक्रतुण्ड भगवान्‌का हम ध्यान करते हैं। वे हमारे विचारोंको सत्कार्यके लिये प्रेरित करें।

परिक्रमा

'बह्वृच-परिशिष्ट'के अनुसार गणेशजीकी एक परिक्रमा करनी चाहिये—

'एकां विनायके कुर्यात्'

किंतु ग्रन्थान्तरके—

'तिस्रः कार्या विनायके ॥'

—इस वचनके अनुसार तीन परिक्रमाओंका विकल्प भी आदरणीय है।

गणेशजीके पार्श्वक

गणपतिभगवान्‌को निवेदित किया हुआ नैवेद्य सर्वप्रथम उनके पार्श्वकों (सेवकों) को देना चाहिये। पार्श्वकोंके नाम हैं—गणेश, गालव, गार्ग्य, मङ्गल और सुधाकर—ये पाँच; एवं मतान्तरसे गणप, गालव, मुद्गल और सुधाकर—ये चार गणेशजीके सेवक हैं।

गणेशजीके बारह नाम

१. सुमुख—सुन्दर मुखवाले।

२. एकदन्त—एक दाँतवाले।

३. कपिल—जिनके श्रीविग्रहसे नीले और पीले वर्णकी आभाका प्रसार होता रहता है।

४. गजकर्णक—हाथीके कानवाले।

५. लम्बोदर—लंबे उदरवाले।

६. विकट—सर्वश्रेष्ठ (विकटं श्रेष्ठेऽपि निर्दिष्टम्, हलायुध कोश)।

७. विघ्ननाश—विघ्नोंका नाश करनेवाले।

८. विनायक—विशिष्ट नायक। उन्नत मार्गपर ले जानेवाले।

९. धूम्रकेतु—धुएँके-से वर्णकी ध्वजावाले।

१०. गणाध्यक्ष—गणोंके स्वामी।

११. भालचन्द्र—मस्तकपर चन्द्रकला धारण करनेवाले।

१२. गजानन—हाथीके मुखवाले।

इन बारह नामोंका पाठ अथवा श्रवण करनेसे विद्यारम्भ, विवाह, गृह-नगरमें प्रवेश, गृह-नगरसे निर्गम, संग्राम तथा किसी भी संकटके समय कोई विघ्न नहीं होता—

सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः।
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः॥
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः।
द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि॥
विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा।
संग्रामे संकटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते॥

भागवतमें गणपति-पूजन-विधान

सभी वैष्णवोंके परममान्य प्रमाण-ग्रन्थ श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धके सत्ताईसवें अध्यायमें श्रीभगवान् नन्दनन्दनने उद्धवजीको क्रियायोगका उपदेश दिया है। वहाँ स्पष्ट आदेश है कि 'मेरे पूजनके समय दुर्गादेवी, विनायक, व्यास, विष्वक्सेन, गुरुदेव एवं अन्यान्य देवताओंकी भी पूजा साधक भक्तको करनी चाहिये'—

दुर्गां विनायकं व्यासं विष्वक्सेनं गुरून् सुरान्।
स्वे स्वे स्थाने त्वभिमुखान् पूजयेत् प्रोक्षणादिभिः॥
(११। २७। २९)

सच्चिदानन्दरूप श्रीगणेशकी निर्गुण-सगुणोपासना

(लेखक—प० श्रीदामोदर प्रह्लाद पाठक शास्त्री, पूर्वोत्तरमीमांसक, व्युत्पत्तिचूडामणि, शिक्षाशास्त्री, काव्यतीर्थ, राष्ट्रभाषाकोविद)

समूचे संसारमें भारतीय संस्कृतिकी महत्ता अन्यान्य संस्कृतियोंकी अपेक्षा सविशेष एवं अद्वितीय मानी जाती है। संस्कृति-पदोद्भव अर्थोंकी और अङ्गोपाङ्गोंकी परिपूर्ति करनेके कारण हमारी भारतीय संस्कृति सार्थ और यथार्थ है। भारतीय संस्कृति वैदिक संस्कृति है। भारतीय संस्कृतिके मूल आधार वेद हैं। वेद ज्ञानरूप हैं, ज्ञानमय हैं, अज्ञानको दूर करनेवाले हैं। वे स्वयं ज्ञानमय होनेके कारण उनमें अज्ञानका अस्तित्व ही कहाँ ? वेद तो ज्ञानस्वरूप हैं ही, इसमें संदेह नहीं, किंतु ज्ञानका तात्त्विक विवेचन वेदोंके शीर्षस्वरूप उपनिषदोंमें भी आया है। वही तत्त्वज्ञान इस विश्वका मूल कारण बताता है। सभी उपनिषदोंमें आये हुए वाक्योंमें—'सदेव सोम्येदमग्र आसीत्। एकमेवाद्वितीयम्।' (छान्दोग्य० ६।२।१) 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत।' (छान्दोग्य० ३।१४।१) ये वचन विशेष हैं।

'सत्' ही सबसे पहले था। वह एकमेवाद्वितीय परब्रह्म है, सच्चिदानन्दस्वरूप है। वही सत् है, असत् नहीं। जो सत् है, वही चित् है, जो चित् है, वही आनन्दरूप है और जो आनन्दरूप है, वही सत् है। सत्का अर्थ है—सार्वकालिक, चित्का अर्थ है—चैतन्यरूप और आनन्दका अर्थ है—सदा सुखमय। सद्रूप, चिद्रूप और आनन्दरूप सत् इस विश्वका मूल कारण है। उसीमें स्फुरित हुआ 'एकोऽहं बहु स्यां प्रजायेय।—मैं एक हूँ, अनेक हो जाऊँ।' ऐसा स्फुरित होते ही वह एक सत् ही गणेश परब्रह्मरूपमें अभिव्यक्त हो गया—

'गणेशो वै सदजायत तद् वै परं ब्रह्म।'
(गणेशोत्तरतापिन्युपनिषद् ४। १)

'सोऽपश्यदात्मनाऽऽत्मानं गजरूपधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजं यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते यतो वाऽऽयन्ति यत्रैव यन्ति च। तदेतदक्षरं परं ब्रह्म। एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च। खं वायुरापो ज्योतिः पृथिवी विश्वस्य धारिणी। पुरुष एवेदं विश्वं तपो ब्रह्म परामृतमिति।'
(गणेशपूर्वतापिन्युपनिषद् १। २)

'उसी सत्ने अपनेको श्वेतवर्ण, गजमुख, चतुर्भुजरूपमें देखा; जिससे पञ्चमहाभूतोंकी उत्पत्ति होती है, जिससे सबकी

स्थिति होती है और जिसमे सभी लयको प्राप्त होते हैं, यही अक्षर परब्रह्म है। इसीसे प्राण, मन एवं इन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती है, इसीसे आकाश, वायु, जल, तेज और विश्वधारिणी पृथ्वी—सभी उत्पन्न होते है। यही पुरुष है, यही परब्रह्म है, यही गणेश सच्चिदानन्दरूप है।'

'ॐ तद् गणेशः। ॐ सद् गणेश.। ॐ परं गणेशः। ॐ ब्रह्म गणेशः।' (गणेशोत्तरतापिन्युपनिषद् २।१)

'वही तत्-गणेश है, वही सत्-गणेश है, वही पर गणेश है, वही ब्रह्म-गणेश है।'

'तच्चित्स्वरूपं निर्विकारं अद्वैत च।'
(गणेशोत्तरतापिन्युपनिषद् ४)

'वही चिद्रूप, निर्विकार और अद्वितीय है। वही सद्रूप गणेश आनन्दरूप है।'

'आनन्दो भवति स नित्यो भवति स शुद्धो भवति स मुक्तो भवति स स्वप्रकाशो भवति स ईश्वरो भवति स मुख्यो भवति स वैश्वानरो भवति स तैजसो भवति स प्राज्ञो भवति स साक्षी भवति स एव भवति स सर्वो भवति स सर्वो भवतीति।' (गणेशोत्तरतापिन्युपनिषद् ५)

'वही सद्रूप गणेश आनन्दरूप है, नित्य है, शुद्ध है, मुक्त है, स्वयंप्रकाश, ईश्वर और प्रमुख है। वही वैश्वानर और तैजस तथा प्राज्ञ है। वही सर्वसाक्षी है, वह वही है, वह सब है, वह सब कुछ है।'

'त्वं सच्चिदानन्दाद्वितीयोऽसि।'—(गणपत्यथर्वशीर्ष ४)

'श्रीगणेश सच्चिदानन्दरूप परब्रह्म हैं।' 'न रूपं न नाम न गुणम्।' 'स ब्रह्म गणेश'

'स निर्गुणः स निरंहकार. स निर्विकल्प. स निरीहः स निराकार आनन्दरूपस्तेजोरूपमनिर्वाच्यमप्रमेय. पुरातनो गणेशः निगद्यते।' (गणेशोत्तरतापिन्युपनिषद् २)

'उसका न कोई रूप है, न नाम है और न गुण है। वही गणेश ब्रह्म है। वह निर्गुण, निरहंकार, निर्विकल्प, निरीह, निराकार, आनन्दरूप, तेजोरूप, अनिर्वचनीय और अप्रमेय कालातीत गणेश है।'

उसी प्रकार एकाक्षर ओंकाररूप ब्रह्म भी वही है—

'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्मेदं सर्वम्। तस्योपव्याख्यानम्। सर्वं भूतं भव्यं भविष्यदिति सर्वमोंकार एव। एतच्चान्यच्च त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव। सर्वं ह्येतद्गणेशोऽयमात्मा ब्रह्मेति।' (गणेशोत्तरतापिन्युपनिषद् १)

'ॐ यह एकाक्षररूप ब्रह्म ही है। उसकी व्याख्या है। भूत, भविष्य, वर्तमान—सभी ओंकाररूप ही है। यह त्रिकालस्वरूप और त्रिकालातीत सब ओंकार ही है। वही ओंकाररूप ब्रह्म यह गणेश ही है। ओंकार ब्रह्मस्वरूप है ही, वह ओंकार स्वयं माङ्गलिक होकर उपासकोंका रक्षण करता है।'

'ओंकारश्चाथ शब्दश्च एतौ' 'माङ्गलिकावुभौ।'

ओंकारकी प्रक्रिया इसी प्रकारकी है—'अवत्यस्माद्-पासकम्। अवति ब्रह्म चेति विगृह्य अत्र रक्षणादौ। अवतेष्टिलोपश्च इति मन् प्रत्ययः। तस्य प्रत्ययस्यैव लोप., न प्रकृतेः। अन्यथा मडित्येव विदध्यात्। ज्वरत्वरेत्यादिना वकारस्योपधायाश्च ऊठौ। द्वयोरूठोः सवर्णदीर्घत्वे सार्वधातु-कार्धधातुकयोः इति गुणः। कृन्मेजन्तः इत्यव्ययमोम्॥'

अतः व्याकरणकी प्रक्रियासे यह सिद्ध हुआ कि यह ओंकार उपासकोंके लिये मङ्गलवाचक, रक्षार्थक और उपासना के लिये उपक्रमकारक है।

निर्गुण निराकार परब्रह्म गणेशकी यह केवल एकाक्षर नाम-स्वरूप उपासना है। यहाँ गणेश पदसे पार्वती-शिवसम्भूत गणपतिकी उपासना नहीं है। पार्वती-शिव-नन्दन गजानन परमात्मा भगवान् गणेशके अवतार हैं। भगवान् गणेश परब्रह्म परमात्मा हैं। वे निर्गुण, निराकार तथा सारे विश्वमें व्याप्त हैं—

जगद्रूपो गकारश्च णकारो ब्रह्मवाचकः।
तयोर्योगे गणेशाय नाम तुभ्यं नमो नमः॥
(मुद्गलपुराण, भक्तमनोरथसिद्धिप्रद गणेशस्तोत्र ४)

''गणेश' शब्दमे आया हुआ 'गकार' जगद्रूप है और 'णकार' ब्रह्मवाचक है। ऐसे सर्वव्यापक परब्रह्म श्रीगणेशको प्रणाम है।'' निर्गुण उपासना करनेवालोंको मोक्षकी प्राप्तिकी आवश्यकता होती है। उसकी परिपूर्ति साक्षात् गणेश हैं। निर्गुणोपासनामे ज्ञान साधन है तथा मोक्ष साध्य है। इस साधनरूप ज्ञान और साध्यरूप मोक्ष—दोनोंके स्वामी श्रीगणेशजी हैं—

ज्ञानार्थवाचको गश्च णश्च निर्वाणवाचकः।
तयोरीशं परं ब्रह्म गणेशं प्रणमाम्यहम्॥
(ब्रह्मवैवर्त; विष्णुपदिष्ट गणेशनामाष्टकस्तोत्र ३)

स्वयं निर्गुण-निराकार होकर भी परमात्मा श्रीगणेशने अपनेको त्रिधा व्यक्त किया और इस सृष्टिको उत्पन्न करके उसकी व्यवस्था भी बनायी; किंतु उस व्यवस्थाके संचालनके लिये उन्होंने स्वयं प्रकट होकर एक मन्त्रराज दिया। उस मन्त्रराजके चार पाद और छः विभाग हैं। वे चार पाद चार वेदोंके हैं—

'रायस्पोषस्य दाता'—यह प्रथम पाद ऋग्वेदका है।
'निधिदातान्नदो मतः'—यह द्वितीय पाद यजुर्वेदका है।
'रक्षोहणो वो वलगहनो'—यह तृतीय पाद सामवेदका है।
'वक्रतुण्डाय हुम्'—यह चतुर्थ पाद अथर्ववेदका है।

यह मन्त्रराज चतुष्पाद होकर षट्पद भी है। इस मन्त्रराजके प्रत्येक पादका फल भी भिन्न-भिन्न है। प्रथमपद 'रायस्पोषस्य दाता' इस मन्त्रसे उपासना करके अपना जीवन बितानेवाला यथेच्छ पृथ्वीका स्वामी होगा। दूसरे पद 'निधिदाता' इस मन्त्रसे उपासना करनेवाला यक्ष-गन्धर्वाप्सरो-गणसेवित अन्तरिक्षको जानकर दिक्पति, धनपति होगा। तीसरे पद 'अन्नदो' इस मन्त्रसे उपासना करनेवाला वसु-रुद्रा-दित्यादि सर्वदेवोंसे सेवित स्वर्गलोकको जानकर देवाधिपति और स्वर्गपति होगा। चतुर्थ पद 'रक्षोहणः' इस मन्त्रसे उपासना करनेवाला श्रुतियोंसे प्रतिपादित ब्रह्मलोकको जानकर उपासनाके फलस्वरूप देवाधिपत्य और ब्रह्माधिपत्यको प्राप्त होगा। पञ्चम पद 'वलगहन' इस मन्त्रसे उपासना करनेवाला वासुदेवादि चतुर्व्यूहसेवित विष्णुलोकको जानकर सर्वदेवाधिपत्य और विष्णुलोकाधिपत्य प्राप्त करेगा और अन्तमें 'वक्रतुण्डाय हुम्' इस पदसे उपासना करके उपासक ब्रह्मस्वरूप, निरञ्जन परमव्योमपदको जानकर अमृतत्व-स्वरूपताको प्राप्त होगा। उसे सत्यलोकाधिपत्यकी प्राप्ति होगी।

यह उपासना स्वय परमात्मा गणेशद्वारा कथित है। अपनी-अपनी क्षमताके अनुसार उन मन्त्रोंके आश्रयसे यथाविधि उपासना करनेसे उपासकोंको लक्ष्यकी प्राप्ति होती है। यह निर्गुणोपासना है। जिनसे निर्गुण उपासनाएँ नहीं हो पातीं, वे सगुणोपासना करते हैं। सगुणोपासक गणेशकी उपासना सगुण-विधिसे करते हैं। सगुणोपासकों-को भी उसी फलकी उपलब्धि होती है, जिसे निर्गुणोपासक प्राप्त करते हैं। केवल विधिमें अन्तर है।

परमात्मा श्रीगणेश इस सृष्टिकी रचना करके अनेकों रूपोंमें व्यक्त हो गये। आदिपुरुष, अक्षर, अनन्त, अव्यय और परम पुरुष यह भगवान् गणेशका शुद्ध स्वरूप है। उनके अन्तरंग क्षोभ होनेसे प्रकृति तथा महत्तत्त्व (बुद्धि) की उत्पत्ति हुई। तदुपरान्त अहंकार आदि पञ्च तन्मात्राएँ उत्पन्न हुईं। पञ्चतन्मात्राओंसे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—ये पाँच महाभूत प्रकट हुए। फिर पृथ्वीसे ओषधियाँ, ओषधियोंसे अन्न, अन्नसे शुक्र, शुक्रसे पुरुष और फिर पुरुषके द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् परिव्याप्त हो गया। यह भगवान् गणेशका ही विराट्स्वरूप है।

इस सृष्टिको देखकर राजस ब्रह्मा, सात्त्विक विष्णु और तामस शंकर परस्पर कहने लगे—'मैं ही सबका ईश हूँ' और सत्यका अनुसंधान करनेके लिये वे ऊपर गये। वहाँ कुछ भी न देखकर स्वयं ध्यानमग्न हुए। तब उनके समाहित चित्तमें भगवान् गणेशके विराट्स्वरूपका दर्शन हुआ। उसे देखकर उन्हें ज्ञात हुआ कि इस सृष्टिके सर्वोपरि परमात्मा गणेश हैं और यह सृष्टि परमात्मा गणेशका व्यक्त स्वरूप है। वे तीनों भी परमात्मा गणेशसे शक्ति पाकर जगत्के सृजन, संरक्षण और संहरणका कार्य करते हैं। इसमें आश्चर्यकी और संदेह करनेकी आवश्यकता भी नहीं है। भगवान् गणेश परमात्मा हैं, परमतत्त्व हैं। केवल अवतार नहीं, अवतारी हैं। उसके अवतार शंकरपुत्र गजानन, गुणेश, मयूरेश आदि अनेक हैं। वे सब अवतारी परमात्मा गणेशके अवतार हैं।

कई सज्जनोंको ऐसा संदेह होता है कि भगवान् श्रीगणेश शंकरके पुत्र होकर भी भगवान् शंकरको कैसे आज्ञा प्रदान करते हैं या शक्ति-सामर्थ्य देते हैं या कैसे पार्वती शंकरद्वारा पूजित होते हैं? वास्तविकताकी जानकारीके अभावमें ही इस प्रकारके संदेहका स्फुरण होता है। मूल सिद्धान्तको समझ लेना चाहिये कि इस सृष्टिका सृजन, संरक्षण और संहरण करनेवाला मूलाधार जो परमतत्त्व है, जो सच्चिदानन्दस्वरूप है, जो सृष्टि-रचनाके पूर्व भी स्थित और सर्वव्यापी था, वही अखण्ड परमतत्त्व गणेश, शक्ति, विष्णु, शंकर और सूर्य—इन पञ्चदेवोंके रूपमें प्रकट हुआ है। वही परमतत्त्व गणेश निर्गुण,

निराकार, सच्चिदानन्दरूप, अखण्ड, एकरस, शुद्ध-बुद्ध-मुक्त होनेके कारण पुत्र-पिता-सम्बन्धसे अतीत हैं। वे तो केवल परमात्मस्वरूप हैं। परमात्मा गणेश जब प्रसन्न होकर श्रीपार्वती-शंकरके यहाँ जन्म लेकर पुत्रके रूपमे प्रकट हुए, तब वे 'संकर-सुवन भवानी-नंदन' भी कहलाये। गजानन एकदन्त शंकरजीके पुत्र हैं। कृतयुगमे विनायक, त्रेतामे मयूरेश आदि परमात्मा गणेशके अवतार हैं।

परमात्मा गणेश सगुणरूपोंमें प्रकट हुए हैं और अनेक नाम-रूपोंमे दुष्ट-दैत्योंका संहार करनेके लिये, ज्ञान प्रदान करनेके लिये, लीलाओंका आदर्श प्रतिष्ठापित करनेके लिये, इस प्रकार अनेक महान् कार्योंका सम्पादन करनेके लिये सगुण-साकार रूपोंमें प्रकट हुए हैं। उनके मूल स्वरूपको जानकर उनके सगुण स्वरूपकी उपासना करनी चाहिये। विशेष निष्ठापूर्वक उपासना करनेवाले उपासक भी गण्य-मान्य और पूजनीय बन गये हैं, जिनमेंसे मुद्गल, गृत्समद, वरेण्य आदि गाणपत्य श्रेष्ठ है।

भगवान् गणेशकी सगुणोपासना अनेक प्रकारकी होती है। उपास्य गणेश-मूर्तिके प्रकार अलग-अलग होते हैं एवं अर्चनाका विधि-विधान भी अलग-अलग होता है। अनेक प्रकार और अनेक विधानोंसे गणेशोपासना की जाती है। द्विभुजसे अठारह हाथोंवाली मूर्तियाँ भी होती हैं। एकमुखसे दसमुखवाली मूर्तियोंका भी पूजन होता है। सिंह-मयूर-वाहनोंका उपयोजन मूषकवाहनके साथ कई उपासक करते हैं। विशेष वस्तु प्रदान करनेसे भी गणेशके कई नाम प्रसिद्ध हुए है। उनमे हरिद्रागणेश, दूर्वागणेश, शमीगणेश, गोमय-गणेश आदि नाम विशेष प्रसिद्ध हैं। काम्यकर्ममे किये जानेवाले उपास्य देवताओंके नाम उसी उपासनाके अनुसार प्रसिद्ध हुए हैं। जैसे—संतानगणेश, विद्यागणेश आदि। गणेशजीके अनेक व्रत है। उनमेंसे वरदचतुर्थीव्रत, इक्कीस-दिवसीय गणपतिव्रत, गणेश-पार्थिवपूजनव्रत, गणेश-चतुर्थीव्रत, तिलाचतुर्थीव्रत, सकष्टहरचतुर्थीव्रत, वैनायकी चतुर्थीव्रत आदि व्रतोंके नाम विशेष प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त विशिष्ट स्थान तथा पंथके भी मताचार अलग-अलग होते हैं। विशेष करके महाराष्ट्रके मोरगाँव-क्षेत्रमे और चिंचवड़-क्षेत्रमे गाणपत्योंकी उपासनाएँ और मताचार विशिष्ट एव विभिन्न रहे हैं। कुछ उपासक 'गणपत्यथर्वशीर्ष'का पठन करते हैं तो कोई 'ब्रह्मणस्पतिस्तोत्र'-का, कोई 'योगगीता'का तो कोई 'गणेशगीता'का पठन-चिन्तन-मनन करते हैं।

कर्ममार्गका अनुसरण करनेवाले 'गणेशयाग' करते हैं। गणेशभद्र, गणपतिभद्र आदिका निर्माण शास्त्रीय विधिसे करके और उनपर गणेशयन्त्रोंको स्थापितकर विधान-पूर्वक हविष्यान्नका हवन करते हैं। जिसकी जो इच्छा होती है, तदनुसार मोदक, दूर्वा, लाजा, तिल आदि हविष्यान्नका उपयोजन उपासक करते हैं। कई उपासक वाक्सिद्धि, कामनापूर्ति, विद्याप्राप्ति, यशोलाभ, पाप-नाश आदिके लिये जपानुष्ठान करते हैं तथा एकाक्षरसे लेकर अनेक अक्षरों-वाले सिद्ध-मन्त्रोंका जप करते है। उनमे जप, हवन, तर्पण, मार्जन, ब्राह्मण-भोजन आदिका विधान होता है। कई उपासक तान्त्रिक पद्धतिसे पूजा-उपासना करते हैं। सत्य-विनायक, सिद्धि-विनायक आदि अनेक प्रकारकी तान्त्रिक उपासनाओंका विधान है। कई जगहोंपर 'द्वार-यात्रा' चलती है। कई उपासक मन्त्र-कल्प करते है। 'गणेशगायत्री', 'गणेश-अष्टोत्तरशतनाम', 'गणेश-सहस्रनाम'से अपनी मनः-कामना सफल करनेवाले भी कई उपासक है।

इस प्रकार अनेकानेक उपासनाओंका सारे भारतमें यथाशक्ति, यथाविधि, यथासमय विस्तार हुआ है। इन सगुण उपासनाओंका ज्ञान देनेवाले अनेक ग्रन्थ संस्कृत और प्रादेशिक भाषाओंमे आज भी उपलब्ध हैं। केवल भारतमे ही नहीं, समूचे संसारमे गणेशकी प्रतिमाएँ मिलती हैं। कई जगहोंपर अपने-अपने ढगकी उपासनाएँ भी प्रचलित हैं।

श्रीगणेश-तत्त्व

(लेखक—आचार्य डॉ० श्रीसुवालालजी उपाध्याय 'शुकरत्न', एम्० ए०, पी-एच्० डी०,
साहित्याचार्य, शिक्षा-शास्त्री, तीर्थद्वय रत्नद्वय)

परम सत्ताको जान लेना ही इस जीवनका चरम शिखर है। 'यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति।' (ऋ० १। १६४। ३९)—अर्थात् जो उस परमात्माको नहीं जानता, वह ऋचासे क्या करेगा। वैदिक ऋषियोंकी खोज और शिक्षाका सर्वोच्च सार है—एक परम तत्त्वका रहस्य, 'एकं सत्' (ऋ० १। १६४। ४६) या 'तदेकम्' (ऋ० १०। १२९। २), जो उपनिषद्का महावाक्य बन गया। सब देव, प्रकाश और सत्यकी शक्तियाँ एक (देव) के ही नाम और शक्तियाँ हैं। प्रत्येक देव स्वयं सब देवता है और उन्हें अपनेमें रखे हुए है। वह परम सत्य एक है—'तत् सत्यम्' (ऋ० ३। ३९। ५; ४। ५४। ४ तथा ८। ४५। २७ इत्यादि)।

एक ही परमात्मा निखिल कल्याणगुणगणार्णव, अगणित शक्तियोंका केन्द्र और अनन्त लीलाओंका अथाह सागर है। 'अनाम' होते हुए भी उसके अनन्त नाम और 'अरूप' होते हुए भी उसके असंख्य रूप हैं। उपासककी भावना, कामना, लक्ष्य और सिद्धि आदिके भेदसे वह एक ही अनेक रूपोंमें पूजित होता है—

ऋतेन ऋतमपिहितं ध्रुवं वां सूर्यस्य यत्र विमुञ्चन्त्यश्वान्।
दश शता सह तस्थुस्तदेकं देवानां श्रेष्ठं वपुषामपश्यम्॥
(ऋ० ५। ६२। १)

निम्नाङ्कित प्रसिद्ध मन्त्रमें इसी सिद्धान्तकी स्पष्ट सूचना मिलती है—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥
(ऋ० १। १६४। ४६)

'गणपत्यथर्वशीर्ष'में परम तत्त्व और ब्रह्मके रूपमें श्रीगणेश-की यह स्तुति उनकी परदेवतासे अभिन्नता सूचित करती है—

'ॐ नमस्ते गणपते त्वमेव प्रत्यक्षं तत्त्वमसि। त्वमेव केवलं कर्तासि। त्वमेव केवलं धर्तासि। त्वमेव केवलं हर्तासि। त्वमेव सर्वं खल्विदं ब्रह्मासि।' (१)

तन्त्रराजके आरम्भमें विनायकके रूपमें गणेश-स्तुति इस प्रकार की गयी है—

अनाद्यन्तोऽपराधीनः स्वाधीनभुवनत्रयः।
जयत्यविरतो व्याप्तविश्वः कालो विनायकः॥

इसमें विनायक (गणेश)को आदि-अन्तरहित, स्वाधीन, नित्य कालस्वरूप माना है। वे व्याप्तविश्व हैं अर्थात् दिशाओंके बन्धनोंसे अनवच्छिन्न हैं। उनका त्रिभुवनके साथ तादात्म्य है। दूसरे शब्दोंमें यहाँ विनायकका परमात्मारूपमें वर्णन किया गया है।

यद्यपि वेदोंमें इन्द्र, अग्नि, वरुण, विष्णु, रुद्र आदिकी तरह श्रीगणेशका जो रूप पुराणोंमें है, उस रूपसे अलग सूक्त प्राप्त नहीं होते, किंतु कुछ मन्त्रोंमें स्पष्टरूपसे उनके पौराणिक स्वरूपके बीज मिलते हैं। श्रीगणेशजीका एक प्रसिद्ध नाम 'गणपति' है। वेदोंमें यह नाम अनेक स्थानोंपर प्राप्त होता है—

नि षु सीद गणपते गणेषु त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम्।
न ऋते त्वत् क्रियते किं चनारे महामर्कं मघवञ्चित्रमर्च॥
(ऋ० १०। ११२। ९)

'हे गणपते! आप स्तुति करनेवाले हमलोगोंके मध्यमें भली प्रकार स्थित होइये। आपको क्रान्तदर्शी कवियोंमें अतिशय बुद्धिमान्—सर्वज्ञ कहा जाता है। आपके बिना कोई भी शुभाशुभ कार्य आरम्भ नहीं किया जाता। (इसलिये) हे भगवन्! (मघवन्), ऋद्धि-सिद्धिके अधिष्ठाता देव! हमारी इस पूजनीय प्रार्थनाको स्वीकार कीजिये।'

शुक्लयजुर्वेदके १६वें अध्यायके २५वें मन्त्रमें भी 'गणपति'-शब्द आता है। '**ॐ नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमः**'—गणोंको और आप गणपतियोंको प्रणाम है।' गणपति-पूजनमें प्रयुक्त शुक्लयजुर्वेदके २३वें अध्यायका १९वाँ मन्त्र सर्वविदित है—

'गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे। वसो मम आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्।'

यद्यपि यह मन्त्र अश्वमेध यज्ञके प्रसङ्गमें आता है और मन्त्रका विनियोग अश्व-स्तवनमें है, तथापि केवल अश्वमें मन्त्रोक्त गुण अनुपपन्न होनेसे अश्वमुखेन गणपति-तत्त्वकी

ही स्तुति इस मन्त्रसे होती है। मीमांसा-शास्त्रके अनुसार एक ही मन्त्र प्रस्थान-भेदसे कई देवताओंके लिये प्रयुक्त हो सकता है। इसी आधारपर यह मन्त्र गणेशके लिये प्रयुक्त हुआ है। तैत्तिरीय-आरण्यकके १०वें प्रपाठकके प्रथम अनुवाकमें यह मन्त्र आया है, जो गणेश-गायत्रीके नामसे प्रसिद्ध है—

'तत्पुरुषाय विद्महे, वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्।'

—इसमें यह प्रार्थना की गयी है कि 'दन्ती हमको प्रेरित करें।' दन्तीका अर्थ हुआ—दाँतवाला। उनका विशेषण है—वक्रतुण्ड, टेढ़ी सूँड़वाला। दन्तीमें दाँतोंकी संख्याका निर्देश नहीं है; परंतु यह स्पष्ट है कि ऐसा नाम उसीको दिया जा सकता था, जिसके दाँतोंमें कोई विशेषता रही हो। ऐसी दशामें स्वभावतः गणेशजीके एकदन्त, एकरद-जैसे नामोंकी ओर ध्यान जाता है और यह स्पष्ट होता है कि 'दन्ती' गणेशजीका ही नाम है। 'वक्रतुण्ड' नाम इसी निष्कर्षकी पुष्टि करता है। तैत्तिरीय-आरण्यक कृष्ण-यजुर्वेदके अन्तर्गत है।

'गण'-शब्द समूहका वाचक है। समूहोंका पालन करनेवाले परमात्माको 'गणपति' कहते हैं। 'गण्यन्ते बुद्ध्यन्ते ते गणाः'—इस व्युत्पत्तिसे सम्पूर्ण दृश्यमात्र 'गण' है और उसका जो अधिष्ठान है, वही 'गणपति' है। गणेश भगवान् लम्बोदर हैं; क्योंकि उनके ही उदरमें समस्त प्रपञ्च प्रतिष्ठित हैं और वे किसीके उदरमें नहीं हैं। उनका वाहन मूषक है। मूषककी तरह ही सर्वान्तर्यामी सर्वप्राणियोंके हृदयरूप बिलमें रहनेवाले एवं जन्तुओंके भोगोंको भोगनेवाले ही श्रीगणपति हैं। चूहा विवेचक, विभाजक, भेदकारक, विस्तारक, विश्लेषक एवं बुद्धिका सूचक है। हाथीका सिर लगना संयोजक, समाहारक, समन्वयकारक, संश्लेषक बुद्धिका उदय होना है। ज्ञान और तन्मूलक व्यवहारके लिये विभाजक और समाहारकारक—दोनों प्रकारकी बुद्धि चाहिये, परंतु प्रधानता समन्वयबुद्धिकी ही है; इसीलिये गजवदनजी चूहेपर सवारी करते हैं। इस संश्लेषक बुद्धिके कारण ही गणेशजी 'बुद्धिसागर' माने जाते हैं। चूहा लौकिक बुद्धिवाले मोहावृत जीवका भी प्रतीक है—'आखुस्ते पशुः।' (यजु० ३ । ५७) चूहेकी चपलता और भोगलोलुपता प्रसिद्ध ही है। वह रातमें निकलता है और रातको मोह—अज्ञानकी उपमा दी जाती है। यह भी अज्ञानी जीवसे चूहेको समता दिलानेवाली बात है। श्रीगणेश विद्यात्मक ईश्वरतत्त्वके प्रतीक हैं। गणेशजीकी एकदन्तता उनकी अद्वैतप्रियताकी सूचक है। उनको मोदक प्रिय होना ही चाहिये। मोदकका अर्थ है—आनन्द देनेवाला। मोदक ब्रह्मानन्दका नाम है। इनके उपासकोंको सभी प्रकारकी ऋद्धि-सिद्धियाँ सुलभ हैं।

'गणेश'-नामका अर्थ इस प्रकार है—

ज्ञानार्थवाचको गश्च णश्च निर्वाणवाचकः।
तयोरीशं परं ब्रह्म गणेशं प्रणमाम्यहम्॥

अर्थात् 'ग' ज्ञानार्थवाचक और 'ण' निर्वाणवाचक है। इस प्रकार ज्ञान-निर्वाणवाचक गणके ईश परब्रह्म है, मैं उनको प्रणाम करता हूँ।

गणेश-पुराणके उपासना-खण्डमें दिये हुए 'गणेशाष्टक' (२) का यह श्लोक भी ध्यान देनेयोग्य है—

यतश्चाविरासीज्जगत्सर्वमेत-
त्तथाब्जासनो विश्वगो विश्वगोप्ता।
तथेन्द्रादयो देवसंघा मनुष्याः
सदा तं गणेशं नमामो भजामः॥

'हम सदा उन गणेशको प्रणाम करते और उनका भजन करते हैं, जिनमेंसे यह सारा जगत्, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र आदि देव-सङ्घ तथा मनुष्य आविर्भूत हुए हैं।'

इसी प्रकार 'एकदन्तस्तोत्र' (२-३)में कहा गया है—

सदात्मरूपं सकलादिभूतममायिनं सोऽहमचिन्त्यबोधम्।
अनादिमध्यान्तविहीनमेकं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥
विश्वादिभूतं हृदि योगिनां वै प्रत्यक्षरूपेण विभान्तमेकम्।
सदा निरालम्बसमाधिगम्यं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥

'जो सदा आत्मस्वरूप हैं, सबके आदिभूत हैं, मायासे परे हैं। 'सोऽहमस्मि'—वह परमात्मा मैं हूँ—इस अचिन्त्य बोधसे सम्पन्न हैं तथा जिनका आदि, मध्य और अन्त नहीं है, उन एकमात्र भगवान् एकदन्तकी हम शरण लेते हैं। जो विश्वके आदिकारण हैं, योगियोंके हृदयमें प्रत्यक्षरूपसे प्रकाशमान एक—अद्वितीय तत्त्व हैं। निरालम्ब समाधिके द्वारा ही जिनका सदा साक्षात्कार सम्भव है; उन भगवान् एकदन्त (गणेश) की हम शरण लेते हैं।'

अतः श्रीगणेश परतत्त्वके ही एक रूप हैं। गाणपत्य उपासक परमात्माको 'महागणाधिपति'के नामसे पुकारते हैं और गणपतितत्त्वको ब्रह्मसे अभिन्न मानते हैं। अपनी शुद्ध अवस्थामें अखण्ड, चिद्घन, एकरस, नेति-नेतिवाच्य ब्रह्म

ही उपासकोंकी भावनाके अनुसार विभिन्न रूपोंमे प्रतीत होता है। बहुत प्राचीनकालसे गणपति-उपासकोंका पृथक् सम्प्रदाय चला आ रहा है—'गाणपत्य-सम्प्रदाय'। 'शंकर-दिग्विजय'को देखनेसे पता चलता है कि शंकराचार्यका इस सम्प्रदायके अनुयायियोंसे शास्त्रार्थ भी हुआ था। उक्त सम्प्रदायके अनुसार भी श्रीगणेश इस चराचर-जगत्के निमित्त और उपादान कारण हैं। उनकी उपासना ही भोग और मोक्षका साधन है। अपनी समन्वयदृष्टिके कारण सर्वसामान्य सनातनधर्मी (हिंदू) भी पञ्चदेवोपासक होता है। पञ्चदेवोपासनामें विष्णु, शिव, शक्ति और सूर्यके साथ गणेशोपासनाका विधान है।

श्रीगणेशजीकी पूजा सारे भारतवर्षमें होती है। महाराष्ट्रमें विशेष समारोहके साथ गणेश-पूजन होता है। ऐहिक और आमुष्मिक—सभी प्रकारके काम्यकर्मोंमें गणेश-पूजा अनिवार्य है। श्रौतविधिमें सम्पन्न होनेवाले बहुत-से कृत्योंमें भी गणपति-पूजन किया जाता है। मङ्गलकार्योंमें दीवालोंपर उनके चित्र बनाये जाते हैं। श्रीगणेशजीकी पूजासे विघ्नोंकी शान्ति और सिद्धिकी प्राप्ति होती है। इतना ही नहीं, सभी कार्योंमें श्रीगणेश प्रथमपूज्य हैं। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि योग-शास्त्रीय साधनामें प्रसिद्ध षट्चक्रोंके भेदन-क्रममें भी प्रथमचक्रमें गणेशजीका स्थान माना गया है। मूलाधार-चक्रको 'गणेश-स्थान' भी कहते हैं। योगमें भी सिद्धि तभी होती है, जब पहले प्रथमचक्रमें श्रीगणेशका साक्षात्कार हो। गणेश प्रथमचक्रमें स्थित हैं—

> गणेश्वरो विधिर्विष्णुः शिवो जीवो गुरुस्तथा।
> षडेते हंसतामेत्य मूलाधारादिषु स्थिताः॥
>
> (शाक्तपद्धतिः)

संत गरीबदासने भी एक पदमें यह चर्चा की है—

> मूलचक्र गनेसबासा रक्तबरन जहँ जानिये।
> क्लिंग जाप कुलीन तज सब शब्द हमरा मानिये॥

तन्त्राचार्योंका भी आदेश है कि सभी मङ्गलकार्योंके आरम्भमें गणेशका पूजन किया जाना चाहिये। 'महानिर्वाण-तन्त्र'के दशमोल्लासमें गुरुदीक्षाके अवसरपर गणपति-पूजनका विधान बताया गया है। 'शारदातिलक'के त्रयोदश पटलमें भी बड़े विस्तारसे गणपति-पूजाका विधान है। महागणपति, संतानगणपति, स्वर्णगणपति और नवनीत गणपतिके साथ हरिद्रागणपति, उच्छिष्ट-गणपति, लक्ष्मी-गणपति और पिङ्गल-गणपति आदि अनेक रूप-भेदोंकी भी चर्चा है। 'प्राणतोषिणी'-तन्त्रमें गणपतिके पचास नाम और इन पचासों गणपतियोंकी शक्तियोंके नाम भी दिये हुए हैं।

गणपतिकी इस प्रथमपूज्यता और व्यापकताके कारण 'श्रीगणेश'-शब्दकी 'शक्ति' ही आरम्भार्थमें रूढ़ हो गयी है। जैसे—इस कार्यका 'श्रीगणेश' हुआ है, आदि। गणेशपूजनकी प्रथा इस देशमें ही नहीं, प्रत्युत संसारके प्रायः अधिकांश देशोंमें पायी जाती है। चीन, जापान, नेपाल, तिब्बत, बर्मा, स्याम, कंबोडिया, जावा, बोर्नियो, अमेरिका आदि देशोंमें विभिन्न रूपोंमें श्रीगणेशकी पूजा होती है। अनेक स्थानोंपर खुदाईमें श्रीगणेशकी विभिन्न प्रकारकी मूर्तियाँ मिली हैं। प्राचीन कालमें संसारके अधिकांश भागपर भारतीय संस्कृतिका प्रभाव था, अतः जहाँ-जहाँ भारतीय संस्कृतिका प्रभाव फैलता गया, वहाँ-वहाँ श्रीगणेश पहुँचते गये। बौद्ध और जैन-धर्ममें भी विविध रूपोंमें श्रीगणेशकी पूजा मिलती है।

पृथ्वीभरसे किसी दूसरे उपास्यके व्यक्तित्वसे गणेशजीकी तुलना नहीं की जा सकती। गणेशजीकी पूजा अत्यन्त व्यापक है। एक ओर वैदिकमतावलम्बी (हिंदू) उनको यवद्वीप, बोर्नियो और बालि आदि द्वीपोंकी ओर ले गये तो दूसरी ओर वे अपने बौद्ध अनुयायियोंके साथ तुर्किस्तान, तिब्बत, चीन और जापान पहुँचे। सर्वदेवाग्रगण्यका स्थान पाकर, विदेशोंमें पहुँचकर वैरोचन और अवलोकितेश्वर बोधिसत्त्वोंसे तादात्म्य प्राप्त करके योगके अनिर्वचनीय रहस्योंका प्रतीक बनना गणेशजीका ही काम है। उनके अप्रतिम व्यक्तित्वके सामने किसका सिर नहीं झुकेगा।

अन्तमें जगदधीश्वर सर्वदेवाग्रगण्य श्रीगणेशको हम विघ्नेश्वरके रूपमें प्रणाम करते हैं—

> विघ्नध्वान्तनिवारणैकतरणिर्विघ्नाटवीहव्यवाड्
> विघ्नव्यालकुलाभिमानगरुडो विघ्नेभपञ्चाननः।
> विघ्नोत्तुङ्गगिरिप्रभेदनपविर्विघ्नाम्बुधेर्वाडवः
> विघ्नाघौघघनप्रचण्डपवनो विघ्नेश्वरः पातु वः॥

श्रीगणेश

(लेखक—श्रीरायकृष्णदासजी)

गणेशकी वन्दना प्रायः सभी हिंदू प्रत्येक शुभ कार्यके आरम्भमे करते हैं। यहाँतक कि किसी कार्यारम्भके लिये 'श्रीगणेश करना' एक मुहावरा बन गया है। गणेशकी यह प्रथम वन्दना इसलिये की जाती है कि कार्य निर्विघ्न पूरा हो जाय। गणेशपूजा केवल भारतमे ही सीमित नहीं, बृहत्तर भारत अर्थात् नेपाल, चीनी-तुर्किस्तान, जावा, वाली, वोर्नियो, तिब्बत, वर्मा, स्याम, चीन, इंडो-चाइना तथा जापानतकमें गणेशकी उपासना फैली हुई थी, एवं है।

ब्रह्मवैवर्तपुराणके अनुसार जन्मके कुछ देर बाद शनैश्चर-की दृष्टि पड़नेसे उनका सिर कट गया था। इसपर विष्णुने एक हाथीका सिर काटकर उनके धड़पर संयोजित कर दिया, इसी कारण उनका नाम 'गजानन' पड़ा। इसी पुराणके अनुसार एक बार परशुरामजी शिव-पार्वतीके दर्शनके लिये कैलास गये। उस समय वे निद्रित थे और गणेशजी पहरा दे रहे थे; अतएव उन्होंने परशुरामजीको रोका। इसपर कलह हुआ और अन्ततः परशुरामजीने अपने परशुसे उनका एक दाँत काट डाला। इसी कारण वे 'एकदन्त' हैं। माघकाव्यके अनुसार उनका यह दाँत रावणने उखाड़ लिया था। गणेश-जन्मकी लोकमें एक यह कथा भी प्रचलित है कि एक बार पार्वती स्नान करने गयीं। वहाँ उनका मन ऊबने लगा और समय काटनेके लिये उन्होंने मिट्टीका (या उन्हें जो उबटन किया गया था, उसकी लीझीका) एक गजमुख बालक बना डाला और पीछेसे उस पिण्डमें जान डाल दी, जो गणेश हुए।

गणेश-सम्बन्धी कथाओंमे एक मुख्य कथा यह भी है कि उन्होंने महाभारतका लेखन-कार्य किया था। भगवान् वेदव्यास जब महाभारतकी रचनाका विचार कर चुके तो उन्हें उसे लिखवानेकी चिन्ता हुई। इसपर उन्हें ब्रह्माजीने गणेशजीसे यह कार्य लेनेका परामर्श दिया। गणेशजीने इस शर्तपर लिखना अङ्गीकार किया कि यदि व्यास कहीं रुकेंगे तो मैं लिखनेका कार्य बंद कर दूँगा। व्यासजीने इसे समझ-समझकर लिखनेके अनुरोधके साथ स्वीकार किया। जब उन्हें रुकना होता था तो वे कूट श्लोकोंकी रचना करके बोल देते थे। इनके अर्थ समझनेके लिये गणेशको रुकना पड़ता था। इस बीच व्यास अनेक श्लोकोंकी रचना कर डालते थे।

गणेशजी विद्या-बुद्धिविधायक हैं। इस रूपमें भी उनकी बहुत वन्दना की गयी है। वैदिक बृहस्पति भी बुद्धिके देवता हैं। गणेशजीके आयुधोंमे परशु प्रधान है तथा उनका नाम 'गणपति' है।

महायान बौद्ध-सम्प्रदायमे और तन्त्रोंमे भी गणेश-पूजनके विविध प्रकार और क्रिया-कलाप मिलते हैं और हठयोगमे शरीरके भीतर जो अनेक चक्रोंकी कल्पना की गयी है, उसमे मूलाधार (गुदा)-चक्रके देवता गणेश हैं।

बौद्धोंमे श्वेत हस्ती बहुत पवित्र और पूजनीय माना जाता है। उनके यहाँ कथा है कि बुद्ध-माता मायादेवीको स्वप्न हुआ था कि एक श्वेत गज स्वर्गसे उतरकर उनके मुखमे घुसा। पीछे बुद्ध गर्भस्थ हुए। फलतः श्वेत हाथी बुद्धका सूचक माना गया है। इसीसे कई स्थानोंकी अशोककी धर्म-लिपियोंमे श्वेत हस्तीकी मूर्तिको स्थान दिया गया है। अशोकके कालसीवाले प्रज्ञापनमे, लेखोंके ऊपर इस हाथीकी एक मूर्ति खुदी है, जिसके नीचे 'गजतमो' (सर्वश्रेष्ठ गज) लिखा है। इसी प्रकार धौलीके प्रज्ञापनमें सबसे पहले हाथीकी एक आधी मूर्ति उभारकर बनी है। इसी धर्म-लिपिमें छठे प्रज्ञापनके अन्तमें सेतो (श्वेतः) शब्द भी लिखा है। गिरनारवाली धर्म-लिपिमे तेरहवें प्रज्ञापनके नीचे 'श्वेतो हस्ती सर्वलोकसुखाहरो नाम' अर्थात् सब लोकोंको सुख ला देनेवाला श्वेत हस्ती, ये शब्द खुदे हैं। इसके सिवा उनकी धर्म-लिपियोंके चौथे प्रज्ञापनमे यह भी दिया है कि जनताको धार्मिक भावसे हाथियोंका दर्शन कराया जाता था। गणेशकी गजाकृतिकी चर्चा हम बौद्ध-धर्मकी उक्त हस्ति-पूजामें पाते हैं। यह बात इस तौरपर और दृढ़ होती है कि बुद्धके नाम भी 'विनायक' और 'गणश्रेष्ठ' हैं।

अन्ततः गणेशकी जो सबसे प्राचीन मूर्ति मिली है, वह भूमरा (नागोद राज्य, मध्यभारत) की है। यह मूर्ति द्विभुज है। जावाके हिंदू-मन्दिरोंमे भी गणेशकी सुन्दर प्रतिमाएँ मिली हैं। गणेशकी प्रतिमाओंमे एकदन्त हाथीका सूँड़, लंबा उदर, टेढ़ो (विकट) और नाटी (खर्व) देह और नाग-यज्ञोपवीत सार्वभौम रूपसे मिलते हैं। इसी प्रकार उनके आयुधोंमें अङ्कुश प्रायः सभी प्रतिमाओंमें पाया जाता है। उनका प्रिय आहार मोदक है। गणेशका ध्यान चार भुजासे लेकर आठ या इससे अधिक भुजाओंतक मिलता है। इन ध्यानोंमें या तो गणेश बैठे हुए होते हैं या

खड़े या नृत्य करते हुए। शिवके समान उनके इस लाड़ले पूत गणेशके सांध्य-नृत्यका वर्णन प्रायः मिलता है। यों तो उनका वाहन मूषक है, किंतु तन्त्रोंमें उनके और वाहन भी मिलते हैं। गणेशकी मूर्ति व्यापकरूपसे एकमुख ही मिलती है। भारतवर्षमें ग्यारहवीं-बारहवीं शतीकी उनकी एक पञ्चमुख-मूर्ति मुन्शीगंज, ढाकामें मिली है। दूसरी काशीमें ढुण्ढिराज गणेशके पास है। किंतु नेपालमें पञ्चमुख गणेशकी उपासना 'हेरम्ब' नामसे प्रचलित है। गणेशकी अनेक मूर्तियाँ तथा तान्त्रिक ध्यान शक्तिसहित मिलते हैं। कहीं-कहीं गणेशकी शक्तिकी मूर्ति अकेले भी मिली है। इसमें सारा आकार गणेशका, किंतु वक्षःस्थल स्त्रीका होता है। कहीं-कहीं पार्वतीकी गोदमें गणेश शिशुरूपमें भी मिलते हैं। राजपूत-शैलीके चित्रकार प्रायः सदैव गणेशको उनकी शक्ति सिद्धि और बुद्धिके सहित बनाते हैं, जो उनके अगल-बगलमें अङ्कित की जाती हैं।

नागरीप्रचारिणी-सभाके संग्रहालय, भारत-कला-भवनमें नृत्य करते हुए गणेशकी एक मध्यकालीन (प्रायः १०वीं, १२वीं शतीकी) मूर्ति है। यह चुनारके पत्थरकी है और अगतः कोरकर बनायी गयी है। यह २४$\frac{1}{2}$ इंच ऊँची, १४$\frac{1}{2}$ इंच चौड़ी तथा ४$\frac{1}{2}$ इंच मोटी है। इसमें गणेशका रूप भावपूर्ण है, नाचनेकी प्रसन्नता उनके मुँहसे झलक रही है और उनकी सारी आकृति मुद-मङ्गल-दाता है। उनका त्रिभङ्ग और तालपर पड़ते हुए उनके चरण सुन्दरतासे दिखाये गये हैं। यह मूर्ति अष्टभुज है और इसमें दक्षिणावर्त-क्रमसे हाथोंमें (१) व्रीहिका अग्रभाग (धानकी बाल); (२) परशु, (३) जपमाला, (४-५) नागपाश, ऊपरके दो हाथोंमें, (६) अपना टूटा हुआ दाँत, (७) मोदकका दोना तथा (८) व्रीहिका अग्रभाग है। ध्यानोंमें गणेशका वर्ण सिन्दूर-चर्चित होनेके कारण सिन्दूरिया ही मिलता है, किंतु उनके अन्य वर्णवाले ध्यान भी पाये जाते हैं।

श्रीभगवान् गणपति—एक दार्शनिक विश्लेषण

(लेखक—साहित्यमहोपाध्याय प्रो० श्रीजनार्दनजी मिश्र 'पङ्कज', एम्०ए०, शास्त्री, काव्यतीर्थ, व्याकरणाचार्य, साहित्याचार्य, न्यायाचार्य, साख्य-योग-दर्शनाचार्य, वेदान्ताचार्य, साहित्यरत्न)

वेदों, उपनिषदों, पुराणों तथा महाभारतमें भी, जिसे 'पञ्चम वेद' कहते हैं, श्रीगणपतिका व्यास-समासरूपसे वर्णन आया है। यजुर्वेदमें इस देवताको गणपति, प्रियपति एवं निधिपतिके रूपमें आहूत किया गया है। ये प्रथमपूज्य हैं, गणेश हैं, विघ्नेश हैं, साथ ही विद्या-वारिधि और बुद्धि-विधाता भी हैं।

पार्वतीनन्दन हेरम्ब एवं स्कन्द—दोनों ही क्रमशः गणपति एवं सेनापति हैं। ब्रह्मवैवर्तपुराणके गणपति-खण्डमें इन्हें साक्षात् श्रीकृष्णका ही स्वरूप प्रतिपादित किया गया है। तदनुसार इन्हें अयोनिज कहा गया है। इनके कई नाम हैं। एक नाम है—विनायक। विनायकका अर्थ है (वि=विशिष्ट तथा नायक=नेता)—विशिष्ट नेता। इनका जन्म योनिसे हुआ हो, ऐसा किसी भी प्रामाणिक ग्रन्थमें नहीं मिलता।

गणपति, प्रियपति तथा निधिपति कहनेमें वेदका तात्पर्य बड़ा ही गूढ प्रतीत होता है। इनका स्वरूप अतिशय विलक्षण है। 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति'—न्यायके अनुसार हमारे वेदोंने स्पष्ट कर दिया है कि मूल तत्त्व एक ही है। एक ही अग्नि निराकाररूपसे अखिल ब्रह्माण्डमें व्याप्त है; उसमें तत्त्वतः कोई अन्तर नहीं। वही अग्नि जब प्रज्वलित होती है, तब उसकी आधारभूत वस्तुओंका जैसा आकार होता है, आग भी उसी आकारमें दीखती है। जलती हुई खिड़की, जलते किंवाड़ तथा जलती रस्सीमें वही आग तत्तद्-वस्तुका आकार धारण कर लेती है—निराकारसे साकार हो जाती है। कहावत है—'रस्सी जल गयी, ऐंठन न गयी', उसी प्रकार समस्त जीवधारियोंका अन्तर्यामी परमेश्वर एक है। उसमें किसी प्रकारका कोई भेद नहीं, तथापि प्राणियोंके अनुरूप ही उसकी महिमा प्रकट होती है। वास्तवमें उस परमात्माकी महत्ता इतनी ही (अर्थात् सीमित) नहीं है, वह इससे भी बहुत अधिक और विलक्षण है।

जो सर्वशक्तिमान् पूर्णब्रह्म अग्निके भीतर है, जो जलमें है, जो सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरोंमें अन्तर्यामीरूपसे प्रविष्ट है, जो ओषधियोंमें है, वनस्पतियोंमें है, जो सर्वत्र परिपूर्ण है, जिसका नानाविध वर्णन हुआ है, श्रुति उसे नमस्कार कर रही है।

'गणपत्युपनिषद्'में लिखा है—

आविर्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात् परम्।
एवं ध्यायति यो नित्यं स योगी योगिनां वरः॥

'जो इस सृष्टिके आदिमें आविर्भूत हैं—प्रकट हुए हैं, जो प्रकृति-पुरुषसे परे है, इस प्रकारसे गणपतिका ध्यान करनेवाला योगी तो योगियोंमें श्रेष्ठ है।'

'गण' क्या है—

सत्, चित् और आनन्द—तीन गणोंके पति (रक्षक) होनेसे, उनसे विभूषित रहनेके कारण उस तत्त्वको 'गणपति' कहते हैं। इस प्रकार वह सत्ता, ज्ञान और सुखका पाता (रक्षक) है। जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति-जैसी अवस्थाओं-से परे (समाधिस्वरूप) होनेसे वह 'गणपति' है। वह जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति (प्रगाढ निद्रा)—तीनों अवस्थाओंका वेत्ता और द्रष्टा होनेसे 'गणपति' है। परा, पश्यन्ती और मध्यमा—तीनों जिसे दृष्टिगोचर होती रहती हैं, वह तुर्यावस्थामें स्थित ब्रह्म ही 'गणपति देव' है। त्रिभुवन—पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं स्वर्ग—इन तीनों गणोंका पति होनेके कारण वह 'गणपति' अथवा 'गणेश' है। ज्योतिषशास्त्रानुसार देवगण, मानवगण तथा राक्षसगण—तीनोंका स्वामी होनेके कारण वह गणपति आराध्य है।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥
(ऋग्वेद १। १६४। ४६)

अर्थात् सत् (सत्ता) एक ही है। उसीको मेधावीजन इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य, सुपर्ण, गरुत्मान्, यम एवं मातरिश्वा (पवन) कहते हैं। अनेकतामें एकता ही हमारे शास्त्र-पुराणोंका चरम लक्ष्य है। भागवतकारने कहा है—'ब्रह्माद्वयं शिष्यते' (१०। १४। १८) एक ब्रह्म ही उपक्रम है और वही पर्यवसान है।

प्रातःस्मरणीय गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने अपनी अमर रचनाओंमें गणपतिको 'जगवंदन' अर्थात् 'जगद्वन्द्य' कहा है। उन्होंने इन देवको 'विद्या-वारिधि' एवं 'बुद्धि-विधाता' कहकर अभिहित किया है। बालकाण्ड (मानस) के मङ्गलाचरणमें उन्होंने लिखा है—

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ॥

तदनुसार वे विनायक हैं, वर्णों, (स्वर-व्यञ्जनसे अभिव्यक्त) अर्थ-समूह, रस-समूहके कर्ता एवं मङ्गलकर्ता हैं। वाणीसे यहाँ परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी—चारों नाद ही अभिप्रेत हैं। छन्दःशास्त्रमें तो गण आठ है—भगण, जगण, सगण, यगण, रगण, तगण, मगण और नगण। इनके आठ विनायक है—'अष्टौ विनायकाः'। और ये गणपति है। 'रसानाम्'से काव्यशास्त्रके नौ रस स्पष्ट है। ये नौ रसोके, रसानुकूल अर्थोंके, अभिधा, लक्षणा, व्यञ्जना (त्रिशक्तियों) के रचयिता एवं मङ्गलकर्ता हैं, पति (रक्षक) है।

आचार्य यास्कने 'निरुक्त'के तृतीय दैवतकाण्डके ७ वें अध्यायमें इसे स्पष्ट कर दिया है—'महाभाग्याद्देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते।(१)—अत्यन्त ऐश्वर्यशाली विविध शक्तिसम्पन्न होनेसे एक ही परमात्मा विभिन्न गुणोंके कारण अनेक प्रकारसे स्तुत अर्थात् प्रशंसित हैं।' गुण-गण (सत्त्व, रजस् एवं तमस्) का एकमात्र अधिपति होनेके कारण वह परमात्मा ही 'गणपति' या 'गणाधिपति' कहलाता है। कठश्रुति (२। १५) का 'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति' कथन भी तो तभी उपपन्न होगा, जब चारों वेद उसी एक पद (ॐ-ओंकारस्वरूप) का आमनन अर्थात् बार-बार अभ्यास (उपदेश—कथन) करते हों।

वेदोंमें प्रायः समष्टिका ही निर्देश मिलता है। सर्वत्र बहुवचनका उल्लेख मिलता है। वैदिक धर्ममें व्यक्तिसे समष्टिको प्रधानता दी गयी है। वैदिक संहिताओंमें असख्य देव माने गये हैं। कर्म और गुणके अनुसार जैसे 'विष्णु-सहस्रनाम'में एक ही तत्त्व (श्रीविष्णु) हजार नामोसे अभिहित है, उसी प्रकार शिवसहस्रनाम, दुर्गाशतनाम-सहस्रनाम आदि ग्रन्थोंमें गुण-कर्मानुसार एकके ही हजार या हजारों नाम हैं।

शतकोटिरामायणान्तर्गत 'आनन्दरामायण'के विलास-काण्डमें वर्णन है—

शैवाः सौराश्च गाणेशा वैष्णवाः शक्तिपूजकाः।
तमेव प्राप्नुवन्तीह वर्षापः सागरं यथा॥
एकः स पञ्चधा जातः क्रियया नामभिः किल।
देवदत्तो यथा कश्चित्पुत्राद्याह्वाननामभिः॥
(८। ९-१०)

'इस संसारमें शैव (शिवोपासक), सौर (सूर्योपासक), गाणेश (गणेशोपासक), वैष्णव तथा शक्तिपूजक अर्थात्

पञ्चदेवोपासक उस ब्रह्मको उसी प्रकार प्राप्त कर लेते हैं, जैसे वर्षाका जल सागरमें समा जाता है। वह ब्रह्म एक है और वही नाम और कर्मके प्रभावसे पाँच रूपोंमें पञ्चदेवताके रूपमें विभक्त होता है। उदाहरणके लिये, देवदत्त एक मनुष्य है; वह किसीका पुत्र, किसीका भाई, किसीका बाप और किसीका चाचा कहलाता है, लेकिन तत्त्वतः वह एक है।'

देवता क्या है ? कितने हैं ?

ऋग्वेदमें एक ब्रह्मके बहुधाभावकी कल्पना एक दार्शनिक विषय है। 'एको देवः' लिखकर यह बतलाया गया है कि यह एक ब्रह्मविषयक सिद्धान्त है। दिव् (द्योतते दीव्यति वा) धातुसे व्युत्पन्न 'देव' शब्द तीन अर्थोंमें व्यवहृत हुआ है। देवता एक तद्धितीय शब्द है। 'देवानां समूहो देवता'—ऐसी व्याख्या भी मिलती है। आचार्य यास्कने अपने निरुक्तके दैवतकाण्डमें लिखा है—'देवो दानाद् वा दीपनाद् वा द्योतनाद् वा'—(२।७।४।१५) अर्थात् सारे भोग्य पदार्थ देनेवाले, प्रकाशित होनेवाले और समस्त लोकोंका ज्ञान करानेवालेको 'देवता' कहते हैं। और 'दिवु' धातु (दीव्यति) क्रीडार्थक है। 'दिवि दीव्यन्ति'—जो स्वर्गादि प्रकाशमान लोकोंमें क्रीड़ा करते हैं, वे देवता हैं। वेदोंमें गुण-कर्मानुसार अनेक नामोंसे अनेक देवताओंकी स्तुति की गयी है—'एको देवः सर्वभूतेषु गूढः'से श्रुतिका अभिप्राय है कि वह ब्रह्म या परमात्मा अथवा पराशक्ति एक ही है। 'तस्मात् सर्वैरपि परमेश्वर एव हूयते' अर्थात् अनेक नामोंसे—तत्तत्कर्मानुसार विभिन्न नामोंसे पुकारे जानेपर भी देव (ईश्वरीय शक्ति—महाशक्ति) एक ही है। एक ही मूल सत्ता है। सारे देवता उसीके विकास हैं। नियन्ता एक है। यास्कने 'ना राष्ट्रमिव' लिखकर भलीभाँति स्पष्ट कर दिया है कि व्यक्तिगतरूपमें भिन्न होते हुए भी जैसे असंख्य नर-नारी राष्ट्ररूपसे एक ही हैं, उसी प्रकार अनेक रूपोंमें प्रकट होनेपर भी, अनेक नामधारी होनेपर भी सभी देवोंमें परमात्म-तत्त्व एक ही है।

वेद वस्तुतः एक आध्यात्मिक ग्रन्थ है। उसमें अचेतन (चेतनाशून्य) पदार्थों, जैसे—जल, वायु, विद्युत्, पर्वत-पादप आदिकी भी स्तुतियाँ की गयी हैं। वेदोंमें ओषधियाँ वैद्योंसे बातें करती हैं। जल और वायु, चमस और स्रुवा—सब-के-सब चलते-फिरते हैं; वर-प्रदान करते हैं, धनादि अभीष्ट वस्तुएँ देते हैं। वहाँ तो चेतनवादकी प्रधानता है। साथ ही ऋग्वेदमें यह भी कहा गया है कि तपस्वियोंको छोड़कर ये देवता औरोंके मित्र नहीं होते। देवताओंके गुप्तचर अहर्निश विचरण करते रहते हैं—उनकी आँखें कभी बंद नहीं होतीं।

मीमांसाकार महर्षि जैमिनि देवत्वशक्तिको मन्त्रमें ही स्वीकार करते हैं। कहा भी गया है—'मन्त्राधीनाश्च देवताः' अर्थात् ये देवता मन्त्राधीन हैं। जिन मन्त्रोंमें जिन देवताओंका वर्णन और स्तवन है, उन मन्त्रोंमें उन देवताओंकी शक्ति सदामें निहित है। निरुक्तकार स्पष्ट कर देते हैं कि—'एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति।' अर्थात् एक ही परमात्माके ये सारे देवगण विभिन्न अंग हैं, प्रत्यङ्ग हैं। सभी देवताओंकी महती शक्ति अथवा पराशक्ति एक ही है।

देववादका प्रधान ग्रन्थ 'बृहद्देवता' है। तदनुसार प्रयत्न करके प्रत्येक देवताका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। अभिप्राय है कि 'देवो भूत्वा देवं यजेत्'। 'बृहद्देवता'के अनुसार तो शव (मुर्दे) की भी आँखें रहती हैं, पर वह इसलिये नहीं देख पाता कि उसका चेतनाधिष्ठान नहीं है। नेत्र तो जड हैं। जबतक उसका चेतनाधिष्ठाता देवता रहता है, तबतक वह अच्छी तरह देख पाता है। नद-नदी, अग्नि-जल तथा गगन-पवन—सभीके चेतनाधिष्ठाता हैं। जड पदार्थोंमें स्वयं कर्तृत्वशक्ति या भोक्तृत्वशक्ति नहीं है। इनमेंसे प्रत्येकका अपना चेतनाधिष्ठाता है। ये ही अनेक देवता हैं। गणपति, अग्नि, इन्द्र, वरुण, वायु, पूषा, अर्यमा, सरस्वती, आदित्यगण, रुद्रगण, विष्णु, मरुत्, सोम, अदिति, त्वष्टा, भग, बृहस्पति, यम, सूर्य, विश्वेदेव, अश्विनीकुमारादि सभी प्रसिद्ध वैदिक देवता हैं। इनके मूलमें एक पराशक्ति अथवा महाशक्ति है और वही परादेवता नाना रूपोंको धारण करती है। गणेशजी अनादि देवता हैं। नहीं तो शिव-पार्वतीके विवाहमें विघ्नराज, साथ ही मङ्गलके विधाता गणपतिकी अग्रपूजा क्यों और कैसे होती ?—

मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि।
कोउ सुनि संसय करै जनि सुर अनादि जियँ जानि॥

(मानस १।१००)

ओंकारस्वरूप भगवान् गणपतिका स्वरूप

संत ज्ञानेश्वरके मतानुसार भगवान् गणाध्यक्ष साक्षात् ओंकार-के स्वरूप हैं। यदि आप ध्यानसे उनका विग्रह देखें तो पता

चलेगा कि वस्तुतः उनका बहिरङ्ग रूप ओंकारका प्रतीक है। दक्षिण भारतके किसी भी गणपतिदेवकी आकृति शत-प्रतिशत ओंकारके चित्रसे मिलती-जुलती है। दार्शनिक दृष्टिसे भगवान् गणाधिपति बड़े ही विलक्षण देवता हैं।

ज्ञानेश्वर लिखते हैं—'(१) हे ओंकार! हे वेदोंसे ही वर्णनीय आदिरूप! आपको नमस्कार है। आप ही सकल अर्थ और बुद्धिको प्रकाशित करनेवाले गणेश हैं। (२) ये जो अखिल वेद हैं, वे ही आपकी सुन्दर मूर्ति हैं और वेदके अक्षर आपका निर्दोष शरीर है। (३) स्मृतियाँ आपके अवयव हैं। अर्थकी सुन्दरता आपके लावण्यकी द्युति है। (४) अठारहो पुराण आपके मणिभूषण हैं, प्रमेय रत्न हैं तथा पद-रचना उनका कुन्दन है। (५) उत्तम पद-लालित्य आपका रँगा शरीर है, जिसमे साहित्य-शास्त्रका ही उज्ज्वल ताना-बाना है। (६) काव्य और नाटक, जिनको देखते ही सानन्द आश्चर्य होता है, रुन-झुन करनेवाली आपकी कटिकी क्षुद्रघंटियाँ हैं और काव्य-नाटकोंका अर्थ उनकी—घंटियोंकी ध्वनि है। (७) अनेक प्रकारके तत्त्वार्थ और उनकी कुशलता, अच्छी तरह देखनेपर उन तत्त्वार्थोंके उत्तम पद काव्यादि घंटियोंके बीच चमकनेवाले रत्न हैं। (८) व्यास आदि ऋषियोंकी बुद्धि मेखला-सी सुहाती है और उसका तेज उस मेखलाके पल्लवका अग्रभाग-सा चमकता है। (९) देखिये, जो 'षड्दर्शन' कहलाते हैं, वे ही आपकी छः भुजाएँ हैं और जो भिन्न-भिन्न मत हैं, वे ही आपके शस्त्र हैं। (१०) तर्कशास्त्र परशु (फरसा) है, न्यायशास्त्र अङ्कुश है और वेदान्त सुरस मोदक है। (११) एक हाथमे जो आप-ही-आप टूटा हुआ दाँत है, वह वार्तिककारके व्याख्यानसे खण्डित किये हुए बौद्धमतका संकेत है। (१२) जो वरदायक कर-कमल है, वह सहज ही सत्कार्यवाद (सांख्योक्त सिद्धान्त)का सूचक है और धर्मकी प्रतिष्ठा आपका अभय कर है। (१३) अत्यन्त निर्मल विवेक ही आपकी लंबी सूँड़ है। (१४) उत्तम संवाद आपके सम एवं शुभ्रवर्ण दन्त हैं। हे विघ्नराज! ज्ञानदृष्टि आपके सूक्ष्म नेत्र हैं। (१५) दोनों (पूर्व और उत्तर)-मीमांसाएँ दोनो कानोंके स्थानमे दिखायी पड़ती हैं। (ये ही गजकर्ण हैं।) (१६) तत्त्वार्थ प्रकाशमान प्रवाल है, ज्ञानामृत ही मद है और ज्ञानवान् मुनि उसकी सेवा करनेवाले भ्रमर जान पड़ते हैं। द्वैत और अद्वैत दो निकुम्भ हैं और दोनोंका जिस स्थलपर एकीकरण (मिलन) होता है, वही आपका मस्तक है। (१७) वेद और उपनिषद्, जो उत्तम ज्ञानामृतसे युक्त हैं, वे आपके गजमस्तकपर रखे मुकुटमे पुष्पोंके समान शोभा दे रहे हैं। (१८) 'अकार' आपके दोनों चरण हैं, 'उकार' विशाल उदर है और 'मकार' मस्तकका महामण्डल है। (१९) ये तीनों (अ उ म्) जहाँ समाविष्ट होते हैं, वही आदिबीज ओंकार है। गजवदन गणेश ही प्रणवाकृति (ॐ) है।'

श्रीगणेश-गुणगान

वारण-वदन, विघ्न-वारण, अरुणवर्ण,
सुषमा-सदन, लोक-शोकके हरण हो।
शरण-विहीन दीन-हीनोंके शरण सच्चे,
तरुण तरणि-तेज-पुञ्जके धरण हो॥
आभाभरे अम्बर-विभूषण-विभा-समान,
भावुक उरोंमें भव्य भावोंके भरण हो।
मोदक-अशन, 'मित्र' मोदके प्रदाता सदा,
गणधीश! तुम महामङ्गल-करण हो॥
मन्जुल मुकुट शीश, सेंदुर-तिलक भाल,
कुण्डल-कलित कर्ण, गले मणिमाला है।
चारों चारु करोंमें सरोज आदि राज रहे,
दया-दृष्टि सृष्टि की बुझाती दुःख-ज्वाला है॥
परम पवित्र पाद-पङ्कज-पराग 'मित्र',
हटा मोह-तम देता ज्ञानका उजाला है।
गुण-गणसागर उजागर तुम्हारी भक्ति,
प्रेम पूरे भक्तोंको पिलाती प्रेम-प्याला है॥
मानस-प्रणेताने प्रथम वन्दनाको कर,
सफल-प्रयास हो विशिष्ट पद पाया है।
महाकवियोंमें महामान उनको है मिला,
चन्द्र-सा धवल यश विश्व-बीच छाया है॥
मानस-निमज्जन-निरत नर हुए 'मित्र'
'मोतियों' को उसके सभीने अपनाया है।
'रामनाम-मणि' का प्रकाश घर-घर हुआ,
श्रेय 'तुलसी' को यह तुमने दिलाया है॥
सचमुच यदि हो प्रधान करुणा-निधान,
हटा विश्वभरका समस्त पाप-भार दो।
धेनु-द्विज-देवोंकी पुनीत पूजा होने लगे,
धर्मका धरामें कर प्रचुर प्रचार दो॥
दास 'मित्र' को भी आत्म-तत्त्वका कराके ज्ञान,
इसका किसी प्रकार जीवन सुधार दो।
अविलम्ब अवलम्ब दे के जगदम्ब-पुत्र,
भव-पारावार-पार इसको उतार दो॥

—रामनारायण त्रिपाठी 'मित्र' नव्य-व्याकरणाचार्य

श्रीगणपतिका स्वरूप एवं उसका रहस्य

(लेखक—पं० श्रीगोविन्ददास 'संत' धर्मशास्त्री, पुराणतीर्थ)

प्रत्येक माङ्गलिक कार्यमें श्रीगणपतिका प्रथम पूजन होता है। पूजनकी थालीमें मङ्गलस्वरूप श्रीगणपतिका स्वस्तिक-चिह्न बनाकर उसके ओर-छोर अर्थात् अगल-बगलमें दो-दो खड़ी रेखाएँ बना देते हैं। स्वस्तिक-चिह्न श्रीगणपतिका स्वरूप है और दो-दो रेखाएँ श्रीगणपतिकी भार्यास्वरूपा सिद्धि-बुद्धि एवं पुत्रस्वरूप लाभ और क्षेम हैं। श्रीगणपतिका बीजमन्त्र है—अनुस्वारयुक्त 'ग', अर्थात् 'गं'। इसी 'गं' बीजमन्त्रकी चार संख्याको मिलाकर एक कर देनेसे स्वस्तिक चिह्न बन जाता है। इस चिह्नमें चार बीजमन्त्रोंका संयुक्त होना श्रीगणपतिकी जन्मतिथि चतुर्थीका द्योतक है। चतुर्थी तिथिमें जन्म लेनेका तात्पर्य यह है कि श्रीगणपति बुद्धिप्रदाता हैं; अतः जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय—इन चार अवस्थाओंमें चौथी अवस्था ही ज्ञानावस्था है। इस कारण बुद्धि (ज्ञान) प्रदान करनेवाले श्रीगणपतिका जन्म चतुर्थी तिथिमें होना युक्तिसंगत ही है। श्रीगणपतिका पूजन सिद्धि, बुद्धि, लाभ और क्षेम प्रदान करता है, यही भाव इस चिह्नके आस-पास दो-दो खड़ी रेखाओंका है।

इस प्रकार मङ्गलमूर्ति श्रीगणेशस्वरूपका प्रत्येक अङ्ग किसी-न-किसी विशेषता (रहस्य) को लिये हुए है। उनका बौना (ठिंगना) रूप इस बातका द्योतक है कि जो व्यक्ति अपने कार्यक्षेत्रमें श्रीगणपतिका पूजन कर कार्य प्रारम्भ करता है, उसे श्रीगणपतिके इस ठिंगने कदसे यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि समाजसेवी पुरुष सरलता, नम्रता आदि सद्गुणोंके साथ अपने-आपको छोटा (लघु) मानता हुआ चले, जिससे उसके अंदर अभिमानके अङ्कुर उत्पन्न न हों। ऐसा व्यक्ति ही अपने कार्यमें निर्विघ्नतापूर्वक सफलता प्राप्त कर सकता है।

श्रीगणपति 'गजेन्द्रवदन' हैं। भगवान् शंकरने कुपित होकर इनका मस्तक काट दिया और फिर प्रसन्न होनेपर हाथीका मस्तक जोड़ दिया, ऐसा ऐतिहासिक वर्णन है। हाथीका मस्तक लगानेका तात्पर्य यही है कि श्रीगणपति बुद्धिप्रद हैं। मस्तक ही बुद्धि (विचारशक्ति) का प्रधान केन्द्र है। हाथीमें बुद्धि, धैर्य एवं गाम्भीर्यका प्राधान्य है। वह अन्य पशुओंकी भाँति खाद्य-पदार्थको देख पूँछ हिलाकर अथवा खूँटा उखाड़कर नहीं टूट पड़ता; किंतु धीरता एवं गम्भीरताके साथ उसे ग्रहण करता है। उसके कान बड़े होते हैं। इसी प्रकार साधकको भी चाहिये कि वह सुन सबकी ले, पर उसके ऊपर धीरता एवं गम्भीरताके साथ विचार करे। ऐसे व्यक्ति ही कार्यक्षेत्रमें आगे बढ़कर सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

श्रीगणपति 'लम्बोदर' हैं। उनकी आराधनासे हमें यह शिक्षा मिलती है कि मानवका पेट मोटा होना चाहिये अर्थात् वह सबकी भली-बुरी सुनकर अपने पेटमें रख ले; इधर-उधर प्रकाशित न करे। समय आनेपर ही यदि आवश्यक हो तो उसका उपयोग करे।

श्रीगणपतिका 'एकदन्त' एकता (संगठन) का उपदेश दे रहा है। लोकमें ऐसी कहावत भी प्रसिद्ध है कि अमुक व्यक्तियोंमें बड़ी एकता है—'एक दाँतसे रोटी खाते हैं।' इस प्रकार श्रीगणपतिकी आराधना हमें एकताकी शिक्षा दे रही है। यही अभिप्राय उनको मोदक (लड्डू) के भोग लगानेका है। अलग-अलग बिखरी हुई बूँदीके समुदायको एकत्र करके मोदकके रूपमें भोग लगाया जाता है। व्यक्तियोंका सुसंगठित समाज जितना कार्य कर सकता है, उतना एक व्यक्तिसे नहीं हो पाता। श्रीगणपतिका मुख-मोदक हमें यही शिक्षा देता है।

श्रीगणपतिको सिन्दूर धारण करानेका यह अभिप्राय है कि सिन्दूर सौभाग्यसूचक एवं माङ्गलिक द्रव्य है। अतः मङ्गलमूर्ति श्रीगणेशको माङ्गलिक द्रव्य समर्पित करना युक्तिसंगत ही है। दूर्वाङ्कुर चढ़ानेका तात्पर्य यह है—गजको दूर्वा प्रिय है। दूसरे, दूर्वामें नम्रता एवं सरलता भी है। श्रीगुरु नानक साहब कहते हैं—

> नानक नन्हे बनि रहो, जैसी नन्ही दूब।
> सबै घास जरि जायगी, दूब खूब-की-खूब॥

श्रीगणपतिकी आराधना करनेवाले भक्तजनोंके कुलकी दूर्वाकी भाँति अभिवृद्धि होकर उन्हें स्थायी सुख-सौभाग्यकी सम्प्राप्ति होती है।

श्रीगणपतिके चूहेकी सवारी क्यों? इसका तात्पर्य यह है कि मूषकका स्वभाव है—वस्तुको काट देनेका। वह यह नहीं देखता

कि वस्तु नयी है या पुरानी—बिना कारण ही उन्हें काट डालता है। इसी प्रकार कुतर्की जन भी यह नहीं सोचते कि प्रसङ्ग कितना सुन्दर और हितकर है। वे स्वभाववश चूहेकी भाँति उसे काट डालनेकी चेष्टा करेंगे। प्रबल बुद्धिका साम्राज्य आते ही कुतर्क दब जाता है। श्रीगणपति बुद्धिप्रद हैं; अतः उन्होंने कुतर्करूपी मूषकको वाहनरूपसे अपने नीचे दबा रखा है। इस प्रकार हमें श्रीगणपतिके प्रत्येक श्रीअङ्गसे सुन्दर शिक्षा मिलती है।

भारतीय संस्कृतिमें श्रीगणेश

(लेखक—डा० श्रीसर्वानन्दजी पाठक, एम्०ए०, पी-एच्०डी० (द्वय), डी० लिट्०, काव्यतीर्थ, पुराणाचार्य)

प्राचीन भारतीय वाङ्मयमें पार्वतीनन्दनके आठ नामोंका निर्देश है—१–गणेश, २–एकदन्त, ३–हेरम्ब, ४–विघ्ननायक, ५–लम्बोदर, ६–शूर्पकर्ण, ७–गजवक्त्र और ८–गुहाग्रज—

गणेशमेकदन्तं च हेरम्बं विघ्ननायकम्।
लम्बोदरं शूर्पकर्णं गजवक्त्रं गुहाग्रजम्॥
(ब्रह्मवैवर्तपुराण ३। ४४। ८५)

ऐसे तो श्रीगणेशके आठसे बढ़ते-बढ़ते सहस्रनामतक निर्दिष्ट हैं, पर स्थान-समयाभावके कारण सहस्रनामोंतक न जाकर यहाँ केवल उपर्युक्त आठ नामोंका ही अनुसंधानात्मक विवेचन करना अभिप्रेत है। चुरादिगणीय 'गण संख्याने' धातुसे 'अच्' प्रत्यय करनेसे 'गण'-शब्द निष्पन्न होता है और तब यह 'गण'-शब्द शिवके प्रमथ-प्रभृति ३६ कोटि-मित गणोंका बोधक सिद्ध होता है। इसी प्रकार अदादिगणीय 'ईश् ऐश्वर्ये' धातुमें 'क' प्रत्ययके योगसे 'ईश'-शब्द व्युत्पन्न होता है और 'गण' तथा 'ईश'—ये दोनों शब्द परस्पर संहित होकर 'गणेश'-शब्दकी सिद्धि करते हैं। शब्दशास्त्रानुसार 'गणेश'का व्युत्पन्नार्थ हुआ गणोंका नेता अथवा शिवका सेनाध्यक्ष। पौराणिक प्रतिपादनानुसार 'गणेश'-शब्दगत प्रथम अक्षर 'ग' ज्ञानार्थवाचक है और द्वितीय अक्षर 'ण' निर्वाणवाचक है तथा अन्तिम 'ईश' शब्द है—स्वामिवाचक। इस प्रकार सम्पूर्ण गणेशका शब्दार्थ है—ज्ञान तथा निर्वाणका स्वामी ब्रह्म, परमात्मा, परमेश्वर या परमतत्त्व आदि[1]।

'एकदन्त'-शब्दमें 'एक'-शब्द प्रधानार्थक है तथा 'दन्त'-शब्द बलवाचक है। अतः बहुव्रीहि-समास-सम्पन्न 'एकदन्त'-शब्दका अर्थ होता है—सर्वोत्कृष्ट बलशाली[2]।

'हेरम्ब'-शब्दका प्रथम अक्षर 'हे' दैन्य या अभाववाचक तथा 'रम्ब'-शब्द पालनार्थक है। अतः षष्ठीतत्पुरुषान्त 'हेरम्ब'-का शब्दार्थ हुआ—दीन या भक्तजनोंका सर्वथा पालनकर्ता[3]।

विघ्ननायकका पूर्वार्ध 'विघ्न'-शब्द विपत्ति वा अमङ्गल वाचक है और उत्तरार्ध 'नायक'-शब्द—खण्डनार्थक या अपहरणार्थक है। अतएव सम्पूर्ण 'विघ्ननायक'-शब्दका अभिधेयार्थ है—अशेष विपत्ति या विघ्न-बाधाओंका संहारक[4]।

'लम्बोदर'-शब्द बहुव्रीहि-समासके द्वारा सिद्ध हुआ है। इसका विग्रह होता है—'लम्बम् उदरं यस्य सः लम्बोदर.' अर्थात् लंबा है उदर—पेट जिसका, वह। पूर्वकालमे भगवान् विष्णुके द्वारा दिये गये नैवेद्यों तथा पिताके द्वारा समर्पित विविध प्रकारके मिष्टान्नोंके खानेसे गणेशका उदर लंबा हो गया है। अतः गणेश 'लम्बोदर'-शब्दसे अभिहित हैं[5]।

'शूर्पकर्ण'-शब्दमे भी बहुव्रीहि-समास है और उसका अर्थ होता है—सूपके समान बड़े-बड़े कर्ण हैं जिनके, वे गणेश। अर्थात् जिस प्रकार सूपसे अन्नोंमेंसे दूषित तत्त्वोंको फटककर उन्हें परिष्कृत कर दिया जाता है, उसी प्रकार श्रीगणेश

---

१. ज्ञानार्थवाचको गश्च णश्च निर्वाणवाचकः।
तयोरीशं परं ब्रह्म गणेशं प्रणमाम्यहम्॥
(ब्रह्मवैवर्त पु० ३। ४४। ८७)

२. एकशब्दः प्रधानार्थो दन्तश्च बलवाचकः।
बलं प्रधानं सर्वस्मादेकदन्तं नमाम्यहम्॥

३. दीनार्थवाचको हेश्च रम्बः पालकवाचकः।
दीनानां पालकं तं च हेरम्बं प्रणमाम्यहम्॥

४. विपत्तिवाचको विघ्नो नायकः खण्डनार्थकः।
विपत्खण्डनकर्तारं नमामि विघ्ननायकम्॥

५. विष्णुदत्तैश्च नैवेद्यैर्यस्य लम्बोदरं पुरा।
पित्रा दत्तैश्च विविधैर्वन्दे लम्बोदरं च तम्॥

अपने शूर्पकर्णोसे भक्तजनोंके विघ्नोंका निवारण कर विविध ऐश्वर्य तथा ज्ञान प्रदान करते हैं[६]।

'गजवक्त्र'-शब्दार्थके प्रतिपादनमें कहा गया है कि जिनके मस्तकपर मुनिके द्वारा प्रदत्त विष्णुका प्रसादरूप पुष्प विराजमान है तथा जो गजेन्द्रके मुखसे युक्त हैं, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ[७]।

'गुहाग्रज'-शब्दमें षष्ठीतत्पुरुष-समासके योगमें इसका तात्पर्य है कि जो गुह—स्वामि कार्तिकेयसे पूर्व जन्म ग्रहणकर शिवके भवनमें आविर्भूत हुए तथा समस्त देवगणोंसे अग्रपूज्य हैं, उन गुहाग्रजदेवकी मैं वन्दना करता हूँ[८]। गुहाग्रज-शब्दमें 'गुहः अग्रजो यस्य सः' इस प्रकार बहुव्रीहि-समास करनेपर श्रीगणेश स्वामिकार्तिकेयके अनुज भी सिद्ध होते हैं।

अमरकोश (१ । १ । ४०४१) में उपर्युक्त आठ नामोंके अतिरिक्त 'विनायक' और 'द्वैमातुर'—इन दो विशिष्ट नामोंका विवरण उपलब्ध होता है।

गजानन और द्वैमातुर—ये दो विशिष्ट नाम रहस्यात्मक हैं। इनके रहस्योद्घाटनमें एक पौराणिक उपाख्यानको उल्लिखित करना उपयोगी प्रतीत होता है। एक बार देवराज इन्द्र 'पुष्पभद्रा' नदीके तटपर आये। गजश्रीसे समन्वित, मदोन्मत्त कामातुरके रूपमें वे इधर-उधर देख रहे थे। उस नदीके तीरपर एक अति मनोरम पुष्पोद्यान था और वहाँ थी पूर्ण एकान्त निर्जनता। उस समय महेन्द्रने चन्द्रलोकसे आती हुई परम सुन्दरी अप्सरा रम्भाको देखा। रम्भाकी स्वीकृति पाकर देवेन्द्र उसके साथ क्रीडा करने लगे। स्थलक्रीडाके अनन्तर दोनोंने जलक्रीडा की। इसी मध्य वहाँ अकस्मात् महर्षि दुर्वासा आ धमके। वे वैकुण्ठसे शिवलोकको जा रहे थे। महेन्द्रने उन्हें सादर प्रणाम किया और महर्षिसे आशीर्वचन पाये। मुनीन्द्र दुर्वासाने नारायणसे प्राप्त एक पारिजात-पुष्प महेन्द्रको देकर कहा—'यह पुष्प सम्पूर्ण विघ्नोंका हरण करता है। जो इसे सादर अपने मस्तकपर धारण करता है, वह सर्वथा तेजस्वी, बुद्धिमान्, विक्रमी, बलशाली, समस्त देवोंसे अधिक श्रीसम्पन्न तथा हरि-तुल्य पराक्रमी होता है और जो पामर अहंकारवश इस हरिप्रसादरूप पुष्पको सादर सिरपर धारण नहीं कर अपमानित करता है, वह अपनी श्री-सम्पत्तिसे भ्रष्ट होकर स्वजनोंसे च्युत हो जाता है[९]।' यह कहकर महर्षि दुर्वासा शिवलोकको चले गये। इन्द्रने अहंकारवश उस पुष्पको अपने सिरपर न धारण कर रम्भाके समक्ष ऐरावत हाथीके मस्तकपर रख दिया। इससे तुरत वे श्रीभ्रष्ट हो गये। इन्द्रको श्रीभ्रष्ट देखकर रम्भा उन्हें छोड़कर स्वर्ग चली गयी। गजराज इन्द्रको नीचे गिराकर अनन्त महारण्यमें चला गया और हथिनीके साथ विहार करने लगा। उस वनमें उसके बहुत से बच्चे हुए। इसी समय श्रीहरिने उस हाथीका मस्तक काटकर बालक गणेशकी शनैश्चरकी कुदृष्टिसे कटी गर्दनमें लगा दिया।

सम्भवतः इसी कारण श्रीगणेश 'द्वैमातुर' कहे गये 'द्वयोर्मात्रोरपत्यं पुमान् द्वैमातुरः।' अर्थात् उनकी एक माता जननी पार्वती और दूसरी माता वह हथिनी हुई, जिसके पुत्रका मस्तक गणेशमें योजित किया गया था। इसी समयसे वे 'गजानन'की संज्ञासे भी गौरवित हुए।

एकदन्तता रहस्यके प्रतिपादनमें भी इसी प्रकार एक पौराणिक उपाख्यान उद्धरणीय प्रतीत होता है। इस पृथ्वीको इक्कीस बार नृपशून्य कर और महावीर कार्तवीर्य तथा बलवान् सुचन्द्रको मार चुकनेके पश्चात् परशुराम अपने गुरु शंकर, माता पार्वती, भ्राता गणेश तथा कार्तिकेयके दर्शनको कैलासपर्वतपर पहुँचे।

---

६. शूर्पाकारौ च यत्कर्णौ विघ्नवारणकारणौ।
सम्पदौ ज्ञानरूपौ च शूर्पकर्णं नमाम्यहम्॥
(ब्रह्मवैवर्तपु० ३ । ४४ । ८८—९२)

७. विष्णुप्रसादपुष्पं च यन्मूर्ध्नि मुनिदत्तकम्।
तद् गजेन्द्रवक्त्रयुक्तं गजवक्त्रं नमाम्यहम्॥

८. गुहस्याग्रे च जातोऽयमाविर्भूतो हरालये।
वन्दे गुहाग्रजं देवं सर्वदेवाग्रपूजितम्॥
(ब्रह्मवैवर्त पु० ३ । ४४ । ९३-९४)

९. सर्वविघ्नहरं पुष्पं नारायणनिवेदितम्।
मूर्ध्नि यस्य देवेन्द्र जयस्तस्यैव सर्वतः॥
पुरः पूजा च सर्वेषां देवानामग्रणीर्भवेत्।
तच्छायेव महालक्ष्मीर्न जहाति कदापि तम्॥
ज्ञानेन तेजसा बुद्ध्या विक्रमेण बलेन च।
सर्वदेवाधिकः श्रीमान् हरितुल्यपराक्रमः॥
भक्त्या मूर्ध्नि न गृह्णाति योऽहंकारेण पामरः।
नैवेद्यं च हरेरेव स भ्रष्टश्रीः स्वजातिभिः॥
(ब्रह्मवैवर्त पु० ३ । २० । ५४—५७)

श्रीगणेशकी नृत्य-मुद्रा

सगुण रूपाची ठेव । माहा लावण्य लाघव ॥
नृत्य करितां सकल देव । तटस्त होती ॥ (समर्थ रामदास)

श्रीगणेशका सगुण रूप अत्यन्त सुन्दर और मोहक है । उनके नृत्य करते ही देवगण विभोर हो जाते हैं ।

वहाँपर परशुरामने अपने परम गुरु भगवान् शिवको प्रणाम करनेके लिये भीतर जानेकी इच्छा प्रकट की। इसपर द्वारपर स्थित गणेशने उन्हें रोककर कहा—'अभी भगवान् शंकर निद्रित हैं। उनके जग जानेपर उनसे आज्ञा लेकर मैं भी आपके साथ ही चलूँगा—कुछ समयतक आप प्रतीक्षा करें।' गणेशके रोकनेपर भी परशुराम रुकना नहीं चाहते थे। अब दोनोंमें वाग्युद्ध होने लगा। वाग्युद्धके बढते-बढते दोनों क्रोधाविष्ट हो गये। अब परशुराम गणेश-पर अपने फरसेसे आक्रमण करनेको पूर्णरूपसे प्रस्तुत हो गये; परंतु कार्त्तिकेयके मध्यमें पड़ जानेसे कुछ क्षणिक शान्ति आयी। क्षणोपरान्त पुनः परशुरामने गणेशको धक्का दिया और वे गिर पड़े। पुनः उठकर गणेशने परशुरामको फटकारा। इसपर परशुरामने कुठार उठा लिया। तब गणेश उन्हें अपनी सूँड़में परशुरामको लपेटकर घुमाने लगे और घुमाते-ही-घुमाते गणेशने उन्हें तीनों लोकोंका दर्शन कराकर गोलोकवासी भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन कराये। अब परशुरामने अपने अभीष्टदेव श्रीकृष्ण, अपने गुरु शम्भुके द्वारा प्रदत्त परम दुर्लभ कवच और स्तोत्रका स्मरण किया। तदनन्तर परशुरामने अपने उस अमोघ कुठारको, जिसकी प्रभा ग्रीष्म ऋतुके मध्याह्नकालिक सूर्य-प्रभासे सौगुनी थी और जो तेजमें शिव-तुल्य था, गणेशपर चला ही दिया। पिताके उस अमोघ अस्त्रको आते देखकर स्वयं गणपतिने उसे अपने वाम दन्तसे पकड़ लिया—उस अस्त्रको व्यर्थ नहीं होने दिया। तब महादेवके बलसे वह कुठार वेगपूर्वक गिरकर मूलसहित गणेशके दाँतको काटकर पुनः परशुरामके हाथमें लौट आया[10]। तबसे गणेश 'एकदन्त'के नामसे अभिहित होने लगे।

इस पौराणिक उपाख्यानसे गणेशका 'एकदन्तत्व' सिद्ध और चरितार्थ होता है।

१० संसारं कवचं स्तोत्रं गुरुदत्तं सुदुर्लभम्।
अभीष्टदेवं श्रीकृष्णं गुरुं शम्भुं जगद्गुरुम्॥
चिक्षेप पर्शुमव्यर्थं शिवतुल्यं च तेजसा।
ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभाशतगुणं मुने॥
पितुरव्यर्थमस्त्रं च दृष्ट्वा गणपतिः स्वयम्।
जग्राह वामदन्तेन नास्त्रं व्यर्थं चकार ह॥
निपत्य पर्शुर्वेगेन छित्त्वा दन्तं समूलकम्।
जगाम रामहस्तं च महादेवबलेन च॥
(ब्रह्मवैवर्तपु० ३। ४३। ३१—३४)

गणेशकी अग्रपूज्यता

गणेशदेवकी सर्वप्रथम पूजा केवल पञ्चदेवयजनमें ही नहीं, प्रत्युत अखिल—३३ कोटिमित देवोंके अर्चनमें भी होती है; क्योंकि 'पुण्यक'-नामक व्रताचरणके प्रभावसे स्वयं साक्षात् गोलोकनाथ—विष्णु आदि देवोंके भी देव भगवान् श्रीकृष्ण ही पार्वतीके पुत्ररूपमें अवतीर्ण हुए थे। अतः श्रीकृष्ण और गणेश—दोनों अभिन्न अर्थात् एक ही तत्त्व हैं। पौराणिक प्रतिपादनानुसार वामन, नरसिंह, रामादिके अवतार केवल अंशावतार हैं, परंतु श्री-कृष्ण तो सम्पूर्ण षोडश कलाओंसे परिपूर्ण साक्षात् भगवान्—परब्रह्म, परमात्मा वा परमतत्त्व ही हैं[11]। पुनः पार्वतीने व्रताचरणकालीन स्तुतिक्रममें श्रीकृष्णसे उनके समान ही अलौकिक सुन्दर पुत्रकी कामना की थी[12]। भगवान् श्रीकृष्ण बालकरूप धारणकर महलके भीतर स्थित पार्वतीकी शय्या पर जा शिवके वीर्यमें मिश्रित होकर पुत्रके रूपमें आविर्भूत हुए थे, अतः श्रीकृष्ण और गणेश दोनों अभिन्न तत्त्व हैं। एक स्थलपर विष्णुने कहा है कि मेरे वरदानसे गणेशकी पूजा सर्वप्रथम होगी। सम्पूर्ण देवोंकी पूजाके समय सबसे पहले गणेशकी पूजा करके ही मनुष्य निर्विघ्नतापूर्वक पूजाके फलको पा[illegible] है, अन्यथा उसकी पूजा व्यर्थ हो जाती है[13]। विष्णुने जब गणे[illegible] धड़पर गजका मस्तक योजित कर उस बालकको जीवित कर दिया, तब विष्णुने शुभ समय आनेपर देवों तथा मुनियोंके साथ [illegible]श्रेष्ठ उपहारोंसे उस बालकका पूजन किया और उससे कहा—'सर्वश्रेष्ठ।

११ 'एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्॥'
(भागवत १। ३। २८)

१२ 'त्वने भवद्विधं पुत्रं लब्धुमिच्छामि साम्प्रतम्।'
(ब्रह्मवैवर्तपु० ३। ७। १२५½)

१३ रेतःपतनकाले च स विष्णुर्विष्णुमायया।
विधाय विप्ररूपं तु आजगाम रतेर्गृहम्॥
(ब्रह्मवैवर्तपु० ३। ८। १९)

पूज्यश्च सर्वदेवानामस्माकं जगतां विभुः।
सर्वाग्रे पूजनं तस्य भविता मद्वरेण वै॥
पूजाशु सर्वदेवानामग्रे सम्पूज्य तं नरः।
पूजाफलमवाप्नोति निर्विघ्नेन वृथाऽन्यथा॥
(ब्रह्मवैवर्तपु० ३। ६। ९७-९८)

मैंने सर्वप्रथम तुम्हारी पूजा की है, अतः तुम सर्वश्रेष्ठ होओ।'[१४]

इन विवृतियोंसे ध्वनित होता है कि गणेश आदिकालसे निखिल देवाग्रपूज्य हैं।

ऋग्वेदके ब्रह्मणस्पतिको गणपति[१५] की उपाधि दी गयी है, जिससे ज्ञानदेवता बृहस्पतिका समकक्ष बननेमें गणपतिको पश्चात्कालीन धारणाओंमें सहायता मिली। रुद्रके वर्णनमें रुद्रके अनेक गण कहे गये हैं, उन गणोंके पतिका नाम गणपति है और गणपतिका ही द्वितीय नाम विनायक या गणेश है।

मानवगृह्यसूत्र (२ । १४) में शालकटङ्कट, कूष्माण्ड-राजपुत्र, उस्मित और देवयजन नामक चार विनायकोंका उल्लेख है। वे विविध विघ्नकर्ताओंके रूपमें विवृत किये गये हैं।

याज्ञवल्क्यस्मृतिमें[१६] वर्णन आया है कि रुद्र और ब्रह्मदेवने विनायकको गणोंका नायक बनाकर गन्धयज्ञोंमें विघ्न करनेको नियत किया। वहाँ एक ही विनायकका उल्लेख है, पर उनके छः नाम कथित हुए हैं—(१) मित, (२) सम्मित, (३) शाल, (४) कटङ्कट, (५) कूष्माण्ड और (६) राजपुत्र। विनायककी माताका नाम वहाँ अम्बिका है। विनायक स्वभावतः हानिकारक होनेपर भी उपासनासे हितकर माने गये हैं। याज्ञवल्क्य-स्मृतिका रचनाकाल षष्ठ शताब्दी स्वीकृत किया गया है। कुछ शिलाचित्रोंमें विनायकका मस्तक हाथीके सिरके समान मिलता है और 'मालतीमाधव' नाटककी आरम्भिक वन्दनामें भवभूतिने विनायकके ऐसे ही सिरका वर्णन किया है।

गुप्तकालीन लेखोंमें गणपतिकी चर्चा नहीं मिलती, पर एलोराके चित्रोंमें काल-कालीके समूहमें गणपतिका चित्र मिलता है, जो आठवीं शताब्दीका माना जाता है। जोधपुरसे २२ मील उत्तर-पश्चिम घटियाला नामक स्थानके एक शिलालेखसे गणपति-पूजा-प्रचारका प्रमाण उपलब्ध होता है। यह लेख ८६२ ई०का स्वीकृत किया गया है। इस प्रकार ईसाके पश्चात् षष्ठी शतीसे नवमी शतीतक गणपति-पूजा-प्रचारके प्रमाण मिलते हैं। आनन्दगिरिने 'शंकरविजय'में गाणपत्योंके छः सम्प्रदायोंका उल्लेख किया है। उच्छिष्टगणपतिकी उपासना वाममार्गियोंकी प्रथाके समान है। उच्छिष्ट-गाणपत्य न जाति-भेद मानते हैं, न विवाह-बन्धन, न भोजन-प्रतिबन्ध और न सुरापान-दोष। वे ललाटपर लाल तिलक लगाते हैं। साधारणतः हिंदुओंकी सभी पूजाओंमें पहले गणपतिकी पूजा होती है। महाराष्ट्रमें भाद्रपद मासकी चतुर्थीको गणपतिकी पार्थिव मूर्तिकी पूजा बड़े समारोहसे की जाती है। पूनाके निकट चिंचवडमें गणपति-पूजनकी विशेष व्यवस्था है। गणपतिको इतना सम्मान उनके रुद्रगणोंके स्वामी होनेके कारण विघ्नविनाशार्थ तथा मांगलिक कल्याणार्थ ही अर्पित किया जाता है[१७]।

शुक्लयजुर्वेद-संहितामें गणपतिका उल्लेख मिलता है। यथा—

'गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्॥'

(यजुर्वेद २३ । १९)

उपर्युक्त यजुर्वेदीय मन्त्र अश्वमेध यज्ञके प्रकरणमें आया है। इसके भाष्यमें उवट लिखते हैं—

'पत्न्यः त्रिः परियन्त्यश्वम्। गणानां त्वा स्त्रीगणानां मध्ये त्वां युगपत् गणपतिं हवामहे आह्वयामः। एवमेव

---

१४. अथ विष्णुः शुभे काले देवैश्च मुनिभिः सह।
पूजयामास तं बाल्मुपहारैरनुत्तमैः॥
सर्वाग्रे तव पूजा च मया दत्ता सुरोत्तम।
सर्वपूज्यश्च योगीन्द्रो भव वत्सेत्युवाच तम्॥
(ब्रह्मवैवर्तपु० ३ । १३ । १-२)

१५. गणानां त्वा गणपतिं हवामहे
कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत
आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्॥
(२ । २३ । १)

१६. विनायकः कर्मविघ्नसिद्ध्यर्थं विनियोजितः।
गणानामाधिपत्ये च रुद्रेण ब्रह्मणा तथा॥
मितश्च सम्मितश्चैव तथा शालकटङ्कटी।
कूष्माण्डो राजपुत्रश्चेत्यन्ते स्वाहासमन्वितैः॥
विनायकस्य जननीमुपतिष्ठेत्ततोऽम्बिकाम्।
(प्रकरण ११ । २७१, २८५ और २९०)

१७. द्र०—'भारतीय ईश्वरवाद', पृ० ४३५—४३७।

प्रियाणां मनुष्याणां मध्ये त्वामेव प्रियपतिं प्रियं भर्तारं हवामहे । एवमेव निधीनां सुखनिधीनां मध्ये त्वामेव निधिपतिं हवामहे । कथं कृत्वा हे वसो अश्व, मम त्वं पतिर्भूयाः इति । महिषी अश्वमुपसंविशति । आहमजानि । आकृष्य अहम् अजानि 'अज गतिक्षेपणयोः' । क्षिपामि । गर्भधं गर्भस्य धारयितृ रेतः । आत्वमजासि गर्भधम् । आकृष्य च त्वं हे अश्व, अजासि क्षिपसि गर्भधं रेतः ।'

उपर्युक्त भाष्यका अर्थ तो स्पष्ट ही है । अतः इसका अनुवाद अनावश्यक-सा लगता है । इस प्रसङ्गमे यह कथन प्रयोजनीय प्रतीत होता है कि धर्माधर्माचरण या पुण्यापुण्याचरण देश, काल और परिस्थितिके अनुसार व्यापृत होता है । सम्भव है, एक देशका धर्म तदितर देशके लिये अधर्म या अहितकर सिद्ध हो जाय; एक कालका अनुष्ठित सुकर्म कालान्तरमें कुकर्मका रूप धारण कर ले; एक परिस्थितिका असत्यभाषण दूसरी परिस्थितिमें धर्ममें परिगणित हो जाय; तथा च एक ही ओषधि किसी व्यक्तिके लिये हितकर है तो वही दूसरेके लिये घातक । इसी प्रकार उपर्युक्त मन्त्र वैदिक युगमें मेध्य अश्वके लिये प्रार्थनारूप था तो आज वही मन्त्र गणेशदेवके आवाहनमे प्रयुक्त होने लगा है ।

महाभारतमें भी एक स्थलपर श्रीगणेशका नामोल्लेख मिलता है । भगवान् सत्यवतीसुत व्यास जब अपने मनःकल्पित महाभारत-साहित्यको लिपिबद्ध करनेके लिये उद्यत हुए, तब उन्हें एक लेखककी अपेक्षा हुई—ऐसा लेखक अपेक्षित हुआ, जो व्यासके द्वारा बोले गये श्लोकोंको अतित्वरित गतिसे लिखता जाय । इस चिन्तनमें संलग्न व्यासजीकी स्मृतिमे पार्वतीनन्दन गणेश आ गये । स्मृतमात्र गणेश व्यासके समीप साक्षात् ही आ विराजमान हुए । व्यासजीने उनके समक्ष महाभारत-लेखन-सम्बन्धी अपना मन्तव्य निवेदित किया । गणेशने अपनी स्वीकृति देते हुए कहा—'आप भी ऐसी अविराम गतिसे मुझे लेखनीय श्लोक देते जायँ कि एक क्षणके लिये भी मेरी लेखनी न रुके । जहाँ मेरी लेखनी रुकी, उसी क्षण मैं लिखना बंद कर दूँगा ।' इसपर व्यासजीने तुरंत सोचकर कहा—'पार्वतीनन्दन ! आपको भी मेरे साहित्यको समझते हुए लिखना है ।' इसपर गणेश सहमत हो गये । व्यासदेव अविराम बोलते गये और गणेशजी भी समझते हुए अविराम लिखते गये । सम्पूर्ण महाभारत-साहित्यको उन्होंने लिपिबद्ध कर दिया[१८] ।

महाभारतमें गणदेवताके रूपमे 'विनायक'की भी विवृति उपलब्ध होती है । विनायकके नामका शुद्ध भावसे कीर्तन करनेसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है[१९] ।

गम्भीर एवं अभावुकतामय विचार करनेपर श्रीगणेशका दर्शन सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपोंमें व्यक्त होता है । सगुणात्मक शक्ति भी उनमें अलौकिक-सी प्रतीत होती है । गणेशजीने परशुरामको अपनी अत्यन्त लंबी सूँड़मे लपेटकर अपने योगप्रभावसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका दर्शन करा दिया था । गणेशने उन्हें सप्तद्वीप, सप्तसागर, सप्तपर्वत, भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, जनलोक, तपोलोक, ध्रुवलोक, गौरीलोक आदि कल्पनातीत स्थानोंका दर्शन कराकर गम्भीर समुद्रमें फेंक दिया । जब वे तैरने लगे, तब फिर पकड़कर उन्हें उठा लिया और घुमाते हुए वैकुण्ठ दिखलाकर फिर गोलोकमें साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन कराये[२०] । पुनः निर्गुणात्मक तत्त्वकी दृष्टिसे तो वे ब्रह्माभिन्नरूप साक्षात् श्रीकृष्ण ही थे; क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण ही तो अपने सम्पूर्ण अंशों अथवा कलाओंके साथ पार्वतीके पुत्रके रूपमें आविर्भूत हुए थे[२१] ।

---

१८. महाभारत, आदिपर्व १ । ७५–७९ ।

१९. महाभारत, अनुशासनपर्व १५० । २५–२९ ।

२०. ब्रह्मवैवर्तपु० ३, अध्याय ४३ ।

२१. ब्रह्मवैवर्तपु० ३, । अध्याय ८ ।

श्रीगणेशकी भगवत्ता एवं महत्ता

(लेखक—डॉ० श्रीभवानीशंकरजी पचारिया, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

अन्तरायतिमिरोपशान्तये शान्तपावनमचिन्त्यवैभवम्।
तन्नरं वपुषि कुञ्जरंमुखे मन्महे किमपि तुन्दिलं महः॥

'जो शान्त और पावन हैं, जिनका वैभव अचिन्त्य है, जो शरीरसे तो नर और मुखसे गजाकार हैं, उन किन्हीं अनिर्वचनीय तेजःपुञ्जका हम विघ्नरूपी अन्धकारका नाश करनेके लिये चिन्तन करते हैं।'

आजका वैज्ञानिक मानव अन्तरिक्ष जगत् और भौतिक जगत्के अनेकों रहस्योंका भेदन करते हुए अपनी नयी-नयी स्थापनाएँ कर रहा है। नवीन प्रयोगों और भौतिकताकी दिग्विजयने उसे निरा पदार्थवादी बना दिया है। अब वह अपनेको सृष्टिका नियन्ता सिद्ध करते हुए ईश्वरकी सत्ताको भी चुनौती देनेके लिये तत्पर है। धर्म उसके लिये अन्ध-विश्वास, श्रद्धा बुद्धिहीनता और विश्वास मूढताका प्रतीक है। जडपदार्थवादी फायरवाख कहा करता था—'मनुष्योंको भगवान्ने नहीं बनाया, अपितु भगवान्को मनुष्योंने बनाया है।' इसके विपरीत भारतीय महर्षियों-योगियोंने समाधि-अवस्थामें अपनी ऋतम्भरा प्रज्ञाद्वारा परमात्माके जिन-जिन दिव्य गुण-गणोंका अनुभव किया, विभिन्न शास्त्रोंने उन-उन गुणोंवाले नामोंका अनुसंधान किया है। वस्तुतः ईश्वर अद्वितीय है, अर्थात् परब्रह्म परमात्मा एक ही है, किंतु कोई उसे अव्यक्त मानता है और कोई व्यक्त। सृष्टिका सत्ताधीश तत्त्व एक ही है। उसे ही 'ब्रह्म', 'ईश्वर', 'परमात्मा' आदि अनेक नामोंसे जाना जाता है। यथा—

'ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते।'
(श्रीमद्भागवत १।२।११)

अर्थात्—'वह एक ही तत्त्व तत्तत्कारणोंके तारतम्यसे ब्रह्म, परमात्मा, भगवान् आदि नामोंसे व्यपदिष्ट होता है।'

श्रीगणेश-तत्त्व क्या है—यह जिज्ञासा प्रायः सभी गणेशो-पासकोंके हृदयोंको उद्वेलित किया करती है। महर्षि व्यासजीने 'श्रीमहागणपतिसहस्रनामस्तोत्र'में 'गणेश'के पर्यायवाची नामोंमें उन्हें प्रथमः १८९, प्रथमेश्वर. १९०, तत्त्वानां परमं तत्त्वम् ५०२, परमात्मा ५४१, ब्रह्म ५५९, भगवान् ५७३, ब्रह्मा ७४२, विष्णुः ७४३, शिवः ७४४, रुद्रः ७४५, ईशः ७४६, शक्तिः ७४७ आदि विशेषणोंसे व्यक्त किया है। अतः नामैक्यसे यह प्रतिपादित होता है कि श्रीगणेश और परमात्मा या परमतत्त्वमें अभिन्नता है।

'गणेशाथर्वशीर्ष' (१)में उन्हें प्रत्यक्ष परमात्मा निरूपित करते हुए कहा गया है—

'त्वमेव प्रत्यक्षं तत्त्वमसि। त्वमेव केवलं कर्तासि। त्वमेव केवलं धर्तासि। त्वमेव केवलं हर्तासि। त्वमेव सर्वं खल्विदं ब्रह्मासि।'

उपरि-लिखित वचनोंसे ऐसा प्रतीत होता है कि जो 'केवल' शब्द प्रयुक्त किया गया है, वह उसी 'परब्रह्म गणेश'का सूचक है—जो सृष्टिके आदिमें रहा है, जिससे यह नाम-रूपात्मक सारा जगत् उत्पन्न हुआ है; जिसके भीतर वह स्थित है तथा महाप्रलयके समय पुनः जिसके भीतर वह विलीन हो जाता है। इसी कारणसे श्रीगणेशको अनादि-देवताके रूपमें समादृत किया गया है। वे ही योगाधीश्वर, निधिपति, ज्ञान और बुद्धिके प्रदाता भी हैं। उन्हें ही वक्रतुण्ड, एकदन्त, शूर्पकर्ण, लम्बोदर, विघ्नेश्वर, गणपति, गजानन, विनायक, सिद्धिदाता कहा गया है। उन्हें वेद भी 'ऐसा नहीं है—नेति नेति' कहकर अव्यक्त निरूपित करता है, किंतु जो जगत्के लीलाविलास-हेतु अवतरित होकर व्यक्त बनकर सज्जनोंपर अनुग्रह और दुष्टोंका निग्रह करते हैं। अतएव श्रीगणेश ही ब्रह्म हैं। वे 'निर्गुण-सगुण', 'व्यक्ताव्यक्त' भी हैं।

गणेशपुराणके उपासनाखण्ड, अध्याय ४०के अनुशीलनसे ज्ञात होता है कि श्रीगणेश ही आदिदेव, परब्रह्म, जगत्के पालक, नियन्ता और प्रेरक तत्त्व हैं। श्रीव्यासजीने श्रीगणेश महत्त्व सूचक एक कथामें इस बातका उल्लेख किया है कि पूर्वकालमें त्रिपुरासुरने वरदानके प्रभावसे समस्त मृत्युलोक, ब्रह्म और वैकुण्ठलोकको अपने वशवर्ती कर अपनी अखण्ड-सत्ताकी स्थापना कर ली। समस्त देवता त्रिपुरासुरके अत्याचारोंसे संतप्त होकर नारदजीसे पूछते हैं—

'यह असुर हमारे मारनेपर भी नहीं मर रहा है। इसने हम सबको अधिकारहीन कर दिया है। कृपया बताइये, अब हम किसकी शरणमें जायँ?'

नारदजीने देवताओंसे प्रत्युत्तरमे कहा—'पूर्वकालमें त्रिपुरासुर आदिदेव श्रीगणेशको प्रसन्न कर आपलोगोंसे निर्भय होनेका वरदान प्राप्त कर चुका है। किंतु श्रीगणेशने बुद्धिमत्तासे उसकी मृत्युका केवल एक उपाय रख छोड़ा है। अतः आपलोग कठोर तप करते हुए अपनी मङ्गल-कामना-हेतु उन्हें प्रसन्न कर उनसे त्रिपुरासुर-वधका रहस्य जाननेका प्रयास करें।'

कहा जाता है कि देवताओं और ऋषियोंने नारदजीके बताये अनुसार एक सहस्र दिव्यवर्षतक श्रीगणेशका ध्यान एव स्तुति की। देवताओंने प्रार्थनामे श्रीगणेशका 'परमात्मा'के रूपमे स्मरण किया था, यह अधोलिखित श्लोकोंसे ध्वनित होता है—

नमो नमस्ते परमार्थरूप नमो नमस्तेऽखिलकारणाय।
नमो नमस्तेऽखिलकारकाय सर्वेन्द्रियाणामधिवासिनेऽपि॥
नमो नमो भूतमयाय तेऽस्तु नमो नमो भूतकृते सुरेश।
नमो नमः सर्वधियां प्रबोध नमो नमो विश्वलयोद्भवाय॥
नमो नमो विश्वभृतेऽखिलेश नमो नम. कारणकारणाय।
नमो नमो वेदविदामदृश्य नमो नमः सर्ववरप्रदाय॥
(श्रीगणेशपुराण, उपासना ४० । ४२—४४)

'हे सत्यस्वरूप! आपको बार-बार नमस्कार है। आप ही सब चराचर सृष्टिके कारण हैं, अतः आपको सादर प्रणाम। आप सृष्टिके नियन्ता एव सब इन्द्रियोके अधिष्ठाता हैं, आपको हम नमन करते हैं। हे सुरेश्वर! भूतमय और भूतोंको उत्पन्न करनेवाले आपको हम पुनः प्रणाम करते हैं। आप बुद्धिकी वृत्तियोंके ज्ञाता, सृष्टि-रचयिता, उसकी स्थिति और लयरूप हैं। आपको हमारा प्रणाम। हे सर्वेश्वर, विश्वपालक, सब कारणोंके परम कारण! हम आपको सिर झुकाकर प्रणाम करते हैं। आप वेदवेत्ताओंके लिये भी अदृश्य हैं; हम बार-बार सबको वर देनेवाले आपको सादर नमस्कार करते हैं।'

उपर्युक्त गणेशपुराणमें देवताओंकी वन्दना इस बातकी द्योतक है कि श्रीगणेश ही देववन्दित, सर्वपूज्य, जगत्के परम कारण एव उसकी स्थिति, उत्पत्ति और लयके एकमात्र हेतु हैं। कहा जाता है कि उन्हींके अनुग्रहसे देवताओंके समस्त सताप दूर हो सके। आज भी हम देखते हैं कि सनातन परम्परासे हिंदूशास्त्रोंमे कार्यारम्भके पूर्व मङ्गलमूर्ति विघ्नेशकी वन्दना मनोरथकी पूर्ति करती है। हमारे इस कथनकी पुष्टि निम्न शब्दोंसे भी होती है—

सर्वमङ्गलकार्येषु भवान् पूज्यो जनैः सदा।
मङ्गलं तु सदा तेषां त्वत्पादे च धृतात्मनाम्॥
(सत्योपाख्यान पू०, अ० २३)

अतः सनातन परम्परानुसार भी समस्त मङ्गलादि कार्योंके लिये श्रीगणेशजी सदा पूजनीय माने गये हैं। जो कार्यारम्भपर उनके चरणोंका ध्यान करता है, उसके समस्त कार्य निर्विघ्न सम्पन्न होते देखे जाते हैं। महात्मा गोस्वामी तुलसीदासजीने तो गणेशजीके स्मरणमात्रसे ही समस्त सिद्धियोंकी प्राप्तिका सकेत किया है। उनके कथनानुसार श्रीगणेश एकमात्र ऐसे देवता हैं, जो केवल स्मरणमात्रसे ही प्रसन्न हो जाया करते हैं। इसका यह कारण है कि श्रीगणेश ऋद्धि-सिद्धि और बुद्धिके दाता हैं। 'ॐ' स्वरूप उनकी मुखाकृति मङ्गलमयी और सिद्धिदात्री है।

श्रीगणेश ही सगुण और निर्गुण ब्रह्म

स्वरूपतः ब्रह्मको निर्गुण माना जाता है, जो कि उसका यथार्थ स्वरूप है; किंतु कहा जाता है कि वही मायाकी उपाधिसे सगुण-सा प्रतीत होने लगता है। अब यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि निर्गुण कभी सगुण नहीं हो सकता और न सगुणको ही निर्गुण कहा जा सकता है। फिर हम श्रीगणेशको ही निर्गुण और सगुण दोनों ही कैसे मान लें?

शास्त्रकारों और सतोंका इस सम्बन्धमे कथन है कि माया भी ब्रह्मकी ही शक्ति है। पुनश्च शक्ति और शक्तिमान् उसी तरह अभिन्न हैं, जैसे अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति अभिन्न होती है। अतएव मायासे परे होनेपर वह निर्गुण कहलाता है। वह नित्य-निर्गुण होते हुए भी नित्य-सगुण हुआ करता है। निर्गुण-सगुणका एक अर्थ यह भी लगाया जाता है कि चूँकि हम अपने चर्म-चक्षुओंसे उसके तेजस्वी स्वरूपको नहीं देख पाते, अतः उसे निराकार या निर्गुणके नामसे पुकारते हैं; किंतु उन्हींके जिस तेजस्वी स्वरूपको हम देख सकते हैं, उसे ही साकार या सगुणकी उपाधि प्रदान करते हैं। गणेशमे दोनों तत्त्व एक साथ विद्यमान होनेसे वे एक साथ निर्गुण-सगुण हैं।

'गणपत्यथर्वशीर्ष'मे कहा गया है—"आप ही प्रत्यक्ष तत्त्व 'परमात्मा' हैं—त्वमेव प्रत्यक्षं तत्त्वमसि।" (१)

‘गण’-शब्दमे ‘ग’का तात्पर्य दृश्यादृश्य जगत्मे रहनेवाला ‘ब्रह्म’ है तथा ‘ण’का आशय है—मन-वाणीसे रहित और सयोग एवं अयोगमे रहनेवाला। इस तरह ‘गकार’ और ‘णकार’ रूपसे गणेशको निर्गुण-सगुण कहा जाता है।

इसी तरह ‘त्वं’-शब्द नरात्मक है और ‘तत्’-शब्द गजात्मक तथा दोनोंके ही अभेदमे ‘असि’ क्रियापद है। निर्गुण और सगुणके मध्य प्रणव है। अतएव जिसे ‘गकार’ और ‘णकार’-से समन्वित कहा गया है, वही प्रत्यक्ष परमात्मा है।

श्रुति-वाक्यमे ‘गकार’ और ‘णकार’का यथार्थ रहस्य प्रतिपादित किया गया है। वस्तुतः समस्त जगत् क्या है? इसका प्रत्युत्तर हमे आगे लिखी हुई पंक्तियोंमे मिलता है—

मनोवाणीमयं सर्वं दृश्यादृश्यस्वरूपकम्।
गकारात्मकमेवं तत्तत्र ब्रह्म गवाचकः॥
मनोवाणीविहीनं च संयोगायोगसंस्थितम्।
णकारात्मकरूपं तण्णकारस्तत्र संस्थितः॥
विविधानि णकाराणि प्रसूतानि महामते।
ब्रह्माणि तानि कथ्यन्ते तत्त्वरूपाणि योगिभिः॥
निरोधात्मकरूपाणि कथितानि समन्ततः।
गकारस्य णकारस्य नास्ति गणपतेः स्थितौ॥
तदा जानीहि भो योगिन् ब्रह्माकारौ श्रुतेर्मुखात्।
तयोः स्वामी गणेशश्च योगरूपेण संस्थितः॥
तं भजस्व विधानेन शान्तिमार्गेण पुत्रक॥

कहनेका आशय यह है कि गकारात्मक ब्रह्म धारण करने-योग्य है—तथा वह मन और वाणी-मय है तथा दृश्यादृश्य, व्यक्ताव्यक्त, निर्गुण-सगुण स्वरूपवाला है। ‘गण’ शब्दमे णकारात्मक ‘ण’ मन और वाणीसे परे है अर्थात् निर्गुणस्वरूप है। जो सयोग और अयोगमे स्थित है अर्थात् मुक्ति और बन्धनका प्रतीक है। ‘गकार’ सगुण-प्रतिपादक है और ‘णकार’ निर्गुणवाचक। सगुणरूपी गकारके साथ निर्गुणका बोध हो, इसलिये ‘णकार’का योग ‘गकार’के साथ किया गया, जिससे ‘गण’-शब्दकी निष्पत्ति हुई और उससे निर्गुण-सगुणात्मक ‘ब्रह्म’ गणेशका बोध हुआ। इस गकार और णकारसे ही अनेक ब्रह्म और सृष्टिकी उत्पत्ति हुई है—ऐसा योगी लोगोंका कथन है।

‘गणेश’-शब्दकी स्थितिमे ‘गकार’ और ‘णकार’ दोनों स्थित हैं, जो ब्रह्माकार हैं अर्थात् ओंकारस्वरूप हैं, यह श्रुति-प्रतिपादित बात है। ‘ग’ और ‘ण’ अक्षरके देवता गणेश हैं। ‘गण’-शब्दमें गणपति योगरूपसे स्थित हैं। अतः गणेशकी उपासना शान्तिपूर्वक उभय—निर्गुण और सगुण रूपोमे की जा सकती है।

श्रुतिवाक्योंमे कहा गया है कि इस सृष्टिमें सर्वत्र ब्रह्म विद्यमान है:—

‘ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण।’
(मुण्डक उप० २।२।११)

अस्तु, इस सिद्धान्तानुसार ‘गणेश’ भी ‘निर्गुण-सगुण’-रूपसे सर्वत्र विद्यमान हैं।

‘गणेशोत्तरतापिनी उपनिषद्’में कहा गया है:—

‘अप्राप्यमप्राप्यं च अज्ञेयं चाज्ञेयं च। विकल्पासहिष्णु तच्छक्तिकं गजवक्त्रं गजाकारं जगदेवावरुन्धे।’ (३)

अर्थात्—‘जो मनोगतिशून्य है, अर्थात् जिसे मनसे न जाना जा सके, जो अज्ञेय है, अर्थात् जिसे वाणीके द्वारा भी व्यक्त न किया जा सके तथा जो निर्गुण होनेसे विकल्पशून्य है, वह निरुपाधिक मायासे युक्त है। उनका गजाकार स्थूल और गजवक्त्र महान् शक्तिका द्योतक है, जिसने जगत्को धारण कर रखा है।

श्रीव्यासजीने ब्रह्मसूत्रके अंदर जिसे जगत्की स्थिति, लय और उत्पत्तिका कारण माना है, वह ‘ईश्वर’ या ‘ब्रह्म’ है। गणेशजीको भी जगत्का परम कारण कहा गया है। ‘गणेशपुराण’मे कहा गया है—‘जिससे ओंकार उत्पन्न होता है—वह गणेश है और इसीसे वेद और जगत् भी आविर्भूत हुए हैं। ‘गणपत्यथर्वशीर्ष’में श्रीगणेशको ही केवल कर्ता माना गया है। यथा—

‘त्वमेव केवलं कर्तासि’ (१)

‘त्वं’-पदार्थ व्यवहारकी सत्ताको धारण करनेवाला है और ‘केवल’-शब्दसे अव्यक्तसे लगाकर स्थूल देहतक समस्त जगत्के निर्माता गणेश कहे जाते हैं।

वेद, शास्त्र और पुराणादिका मत है कि सारा विश्व निर्गुण-निराकार अर्थात् सत्-चित्-आनन्द—इन तीनोंसे ही व्याप्त है। उस परमात्माकी सत्तासे ही सब कुछ होता है। श्रीगणेशको भी ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र और ब्रह्म निरूपित किया गया है—

'त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णुस्त्वं रुद्रस्त्वमिन्द्रस्त्वमग्निस्त्वं वायुस्त्वं सूर्यस्त्वं चन्द्रमास्त्वं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् ॥'

(गणपत्यथर्वशीर्ष ६)

वस्तुतः श्रीगणेश हमारे अनूठे और अद्वितीय देवता हैं। उनकी आकृतिको देखकर बड़ा ही विस्मय होता है। वे ऊपरसे गजाकृति और शेष नराकृतिसे व्यक्त किये जाते हैं। यथा:—

ओंकारसंनिभमिभाननमिन्दुभालं
मुक्ताग्रबिन्दुममलद्युतिमेकदन्तम्।
लम्बोदरं कलचतुर्भुजमादिदेवं
ध्यायेन्महागणपतिं मतिसिद्धिकान्तम् ॥

अर्थात्—ओंकार-सदृश, हाथीके-से मुखवाले, जिनके ललाटपर चन्द्रमा और विन्दुतुल्य मुक्ता विराजमान है, जो बड़े तेजस्वी और एक दाँतवाले हैं, जिनका उदर लम्बायमान है, जिनकी चार सुन्दर भुजाएँ हैं, उन बुद्धि और सिद्धिके स्वामी आदिदेव गणेशजीका हम ध्यान करते हैं।

गणेश विद्या-बुद्धि और समस्त सिद्धिके दाता कहे जाते हैं, अतः उपासकोंको उनसे गणेशविद्याका ही वरदान माँगना चाहिये। गणेश-उपासकोंको प्रायः तीक्ष्ण बुद्धि तो मिल ही जाती है, किंतु तीक्ष्ण बुद्धिसे ही उस समयतक कोई लाभ नहीं हो पाता, जबतक कि चित्तकी शुद्धि प्राप्त न हो जाय। आज हम सर्वत्र देखते हैं कि शक्ति प्राप्तकर निर्बलों-को पीड़ित किया जाता है, धन प्राप्तकर मनुष्यत्वको विस्मृत कर दिया जाता है और विद्या प्राप्तकर विवादमात्र ही किया जाता है। अतः उपासनामें किसी पदार्थकी कामना न करते हुए चित्तकी शुद्धिकी ही याचना श्रेयस्कर मानी गयी है। इस सम्बन्धमें श्रीशंकराचार्यका मत अनुकरणीय है—

'चित्तस्य शुद्धये कर्म न तु वस्तूपलब्धये।'

अर्थात्—'कर्म करनेका उद्देश्य चित्तकी शुद्धि है न कि वस्तुकी प्राप्ति।'

चित्तकी पाँच वृत्तियाँ मानी गयी हैं—क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। जहाँ-जहाँ चित्त जाता है, उसमे वह तदाकार हो जाया करता है। जो अपनी चित्त-वृत्तियोंका निरोध करते हुए ध्येयके साथ तदाकार हो जाया करता है, उसे अखण्ड और अनुपम आनन्दका अनुभव होने लगता है। ऐसी स्थिति 'योगिस्थिति' कही जाती है। ऐसे योगियोंमें श्रीगणेशका ध्यान करनेवाला श्रेष्ठ योगी होता है। श्रीगणेश अपने भक्तको विद्या और अविद्या—इन दोनोंसे दूर करके निज स्वरूपका बोध कराते हैं। अतः गणेश-विद्याका हमारे लिये परम उपयोग होता है। उसकी प्राप्ति ही कल्याणकारी और मङ्गलदात्री कही गयी है।

गणेशजीका 'गणपत्यथर्वशीर्ष'मे श्रेष्ठ मन्त्र निरूपित किया गया है—'ॐ गं गणपतये नमः।' (७)

इस मन्त्रमे 'गकार' आया है, उसके बाद वर्णादि 'अकार' है और उससे परे सानुनासिक अनुस्वार है। साथ-मे प्रणव है। इस मन्त्रमे 'ग' बीज है और 'ओंकार' शक्ति। इसके सम्बन्धमे एकाक्षर 'गणपति-कवच'मे मन्त्रोद्धारमें कहा गया है:—

'गं बीजं शक्तिरोंकारः सर्वकामार्थसिद्धये।'

अतः 'ॐ गं गणपतये नमः'—इस मन्त्रमे गकार पूर्वरूप, मध्यम अकार और अन्त्यरूप अनुस्वार है। बिन्दु उत्तररूप है। इन भिन्न अक्षरोंके एकीकरणको साधन 'गं' नाद कहते हैं और उनके मिलनको 'संहिता' कहा गया है। यह गणेशविद्याकी प्राप्तिका सरल मन्त्र है।

अथर्वशीर्षके मध्यके मन्त्रोंमें गणेश-गायत्री भी दी हुई है, जो सुप्रसिद्ध है—

'एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्।'

(८)

अर्थात् 'हम एकदन्तको जानते हैं और वक्रतुण्डका ध्यान करते हैं—वह गणेश हमारी बुद्धिको सन्मार्गकी ओर प्रेरित करे।'

'एक'-शब्द यहाँ 'माया'-वाचक है और 'दन्त'-शब्द 'माया'-चालक अर्थात् सत्तात्मक है। मुद्गलपुराणमें इसका महत्त्व यों प्रतिपादित किया गया है—

एकशब्दात्मिका माया तस्याः सर्वं समुद्भवम्।
भ्रान्तिदं मोहदं पूर्णं नानाखेलात्मकं किल ॥
दन्तः सत्ताधरस्तत्र माया चालक उच्यते।
बिम्बेन मोहयुक्तश्च स्वयं स्वानन्दगो भवेत् ॥
माया भ्रान्तिमयी प्रोक्ता सत्ता चालक उच्यते।
तयोर्योगे गणेशोऽयमेकदन्तः प्रकीर्तितः ॥

''एक'-शब्द मायावाचक है और 'दन्त'-शब्द सत्तात्मक। 'गणेश' बोधक ब्रह्मके लिये प्रयुक्त है, जिससे सारी

सृष्टि उत्पन्न हुई है। उसीकी मायासे नाना प्रकारकी भ्रान्ति एवं मोह आदि उत्पन्न होते हैं। 'दन्त'-शब्द वहाँ सत्ताका आधार है। उसे मायाका सञ्चालक कहा जाता है। माया भ्रान्तिमयी है और सत्तात्मक ब्रह्म उसका चालक है। ब्रह्मको भी मायायुक्त कहा गया है; इसीसे सत्ताधीश और मायापति दोनों-का अधिष्ठाता गणेशजीको कहा जाता है।''

गणेशजीके ध्यानके लिये 'गणपत्यथर्वशीर्ष'(९)में अधोलिखित मन्त्र आया है; जो उनके यथार्थ स्वरूपका निरूपण करता है—

> एकदन्तं चतुर्हस्तं पाशमङ्कुशधारिणम्।
> रदं च वरदं हस्तैर्बिभ्राणं मूषकध्वजम्॥
> रक्तं लम्बोदरं शूर्पकर्णकं रक्तवाससम्।
> रक्तगन्धानुलिप्ताङ्गं रक्तपुष्पैः सुपूजितम्॥
> भक्तानुकम्पिनं देवं जगत्कारणमच्युतम्।
> आविर्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात् परम्॥
> एवं ध्यायति यो नित्यं स योगी योगिनां वरः।

अर्थात्—श्रीगणेश एकदन्त, चतुर्भुज, हाथोंमें पाश, अङ्कुश, अभय एवं वरदान मुद्रा धारण किये, मूषक-चिह्नकी ध्वजा लिये, रक्तवर्ण, लम्बोदर, विघ्नविनाशी, शूर्पकर्णवाले, जिनके शरीरमें लाल चन्दन लगा है और जिन्हें लाल सुन्दर पुष्प अर्पित किये जाते हैं, ऐसे हैं। वे अपने भक्तोंपर अनुग्रहकर्ता हैं, वे ही जगत्के आदिकारण हैं; जो सृष्टिके आदिमें प्रकट हुए प्रकृति और पुरुष, इन दोनोंसे परे हैं। जो योगी इस प्रकार उनका ध्यान करता है, वह परम योगी बन जाता है।'

आज विश्व अशान्त और संतप्त है। बड़े राष्ट्र छोटे राष्ट्रोंको निगल जाना चाहते हैं। एक ही देशके नागरिक अपने ही अन्य नागरिक बन्धुओंके द्वारा प्रताड़ित हैं। दूरकी बात जाने दीजिये, एक ही परिवारमें भाई-भाई, माता-पिता, पति-पत्नीतक आपसी व्यवहारोंसे संतुष्ट नहीं हैं। इसका मूल कारण क्या है— यदि हमें इस स्थितिसे त्राण पाना है तो कार्यारम्भके पूर्व विघ्नेश्वर और विघ्न-विनाशक आदिदेव श्रीगणेशका स्मरण करना श्रेयस्कर होगा। वे हमारे चित्तके गहन अन्धकारको अपनी मङ्गलमूर्तिमयी ज्योतिसे प्रकाशित करेंगे। वे अनाम, अरूप, अस्पर्श, अशब्द अर्थात् निर्गुण होते हुए भी नाम-रूप-शब्द-स्पर्श आदि व्यक्तरूपमें भी हैं। अतः उनकी उभयरूपमें उपासना की जा सकती है। उनकी सच्ची निष्काम उपासना उपासकको भौतिक वैभव, बौद्धिक ऐश्वर्य और आत्मिक बल प्रदान कर लौकिक और पारलौकिक अभ्युदयका मार्ग प्रशस्त करेगी।

हम अन्तमें उस वरदमूर्ति श्रीगणेशके चरण-कमलोंमें नमन करके सद्बुद्धिकी उनसे याचना करते हुए चित्त-शुद्धिकी प्रार्थना करते हैं—

'नमो व्रातपतये नमो गणपतये नमः प्रमथपतये नमस्तेऽस्तु लम्बोदरायैकदन्ताय विघ्ननाशिने शिवसुताय श्रीवरदमूर्तये नमः॥' (गणपत्यथर्वशीर्ष १०)

'गनपति-पगन मो मानस रम्यौ करै'

> मूषक-सवारी नित मोदक-असन-रुचि,
> दासन सदा जो ग्यान-बुद्धि सरस्यौ करै।
> दारिद बिदारै सुख-संपति भवन पूरि,
> अनिमादि-सिद्धि नव-निधिहू भरयौ करै॥
> बिघन-बिपिन-बह्नि, दायक बिमल ग्यान,
> हृदय-पटल सोई तुंदिभ बस्यौ करै।
> ध्येय तासु सुखद बिबुध-कुल-बंदनीय,
> गनपति-पगन मो मानस रम्यौ करै॥

—यशवन्तसिंह चौहान

गणपति और श्रीमहागणपति

(लेखक—वीतराग श्री १००८ नारायणाश्रमस्वामीजी)

भक्तानुकम्पिनं देवं जगत्कारणमच्युतम् ।
आविर्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात्परम् ॥

"श्रीगणपति प्रकृति और पुरुषसे परे विराजमान ब्रह्म हैं। वे कभी अपनी महिमासे च्युत न होनेके कारण 'अच्युत' कहे गये हैं। सम्पूर्ण जगत्के कारणतत्त्व वे ही हैं। भक्तजनोंपर अनुग्रह करनेके लिये वे गणपतिदेव सृष्टिके आदिकालमें स्वतः प्रादुर्भूत हुए थे। मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ।"

उपनिषदोंमें गणपतिको साक्षात् ब्रह्म (सर्वव्यापक) बतलाया है—'त्वमेव सर्वं खल्विदं ब्रह्मासि ।' (गणपत्यथर्वशीर्ष १)। जिस तरह ब्रह्म वाच्य-वाचक भेदसे 'ज्ञेय और उपास्य' दो प्रकारका है, उसी तरह श्रीगणेश भी उपासनाकी दृष्टिसे निर्गुण एवं सगुण दो प्रकारके हैं।

पहला श्रीगणपतिका वाच्यस्वरूप अचिन्त्य अप्रमेय ब्रह्म है, जिसकी केवल योगी षट्चक्रोंमे नादब्रह्मके स्वरूपमे उपासना (ध्यान) करते है। प्रत्येक मनुष्यके शरीरमें रीढकी हड्डीके मूलमें, गुदासे दो अंगुल ऊपर मूलाधारचक्र है। यह चक्र चार दलोवाला है। इसमे सम्पूर्ण जीवनकी शक्ति अव्यक्त-रूपमें रहती है। चक्रके मध्यमें चतुष्कोण आधारपीठ है। इसपर श्रीगणेश विराजमान हैं। जैसे—

'त्वं मूलाधारस्थितोऽसि नित्यम् । त्वं शक्तित्रयात्मकः ।
त्वां योगिनो ध्यायन्ति नित्यम् ।' (गणपत्यथर्वशीर्ष ६)

मूलाधार-चक्रके ऊपर त्रिगुणमयी पराशक्ति 'कुण्डलिनी' है। कुलदेवता श्रीगणपतिके चिन्मय स्वरूपका ध्यान करने मात्रसे ही कुण्डलिनी प्रबुद्ध होकर क्रमशः स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध एवं आज्ञाचक्रमे प्रविष्ट हो जाती है। तत्तच्चक्रकी लोकोत्तर सिद्धि प्रदान करती हुई सहस्रार-चक्रमे परमशिवके साथ जा मिलती है। षट्चक्रोंमे व्याप्त चिन्मयी नादशक्ति ही 'महागणपति' हैं। गाणपत्य-योगमे चिदानन्द-लहरीके स्वरूपमे महागणपतिका ध्यान षट्चक्रोंमें किया जाता है।

सर्वप्रथम अनादि (अचिन्त्य-अप्रमेय), अनन्तस्वरूप श्रीमहागणपतिके चिन्मय स्वरूपमेसे गाणपत्यधर्मका आविर्भाव हुआ। श्रीगणपतिने अपनी उपाधि गाणपत्यसे विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवता एवं शंकर, कार्तिकेय, नन्दीश्वर आदि रुद्रगणोंको विभूषित किया।

श्रीगणपतिका दूसरा वाचक (ओंकार) स्वरूप, सगुण-साकार एवं श्री-समृद्धिका प्रदायक है, जिसके ध्यानमात्रसे ही मनुष्य सम्पूर्ण विद्याका निधिपति बन सकता है—

रक्तो रक्ताङ्गरागांशुककुसुमयुतस्तुन्दिलश्चन्द्रमौलि-
र्नेत्रैर्युक्तस्त्रिभिर्वामनकरचरणो बीजपूरान्तनासः ।
हस्ताग्राक्लृप्तपाशाङ्कुशरदवरदो नागवक्त्रोऽहिभूषो
देवः पद्मासनो वो भवतु नतसुरो भूतये विघ्नराजः ॥
(प्रपञ्चसार १६ । ४९)

अनादिकालसे लेकर आजतकके देवता, ऋषि, मनुष्य, यक्ष, राक्षस, वैष्णव, सौर, शाक्त, गाणपत्य एवं पाशुपत-मतानुयायी भक्तजन, जिनकी पूजा-सपर्या सदा करते आये हैं, 'वे विघ्ननाशक श्रीगणपति शरीरसे रक्तवर्णके हैं। उन्होंने लाल रंगके ही अङ्गराग, वस्त्र और पुष्पहार धारण कर रखे हैं। वे लम्बोदर हैं; उनके मस्तकपर चन्द्राकार मुकुट है, उनके तीन नेत्र हैं और हाथ-पैर छोटे-छोटे हैं; उन्होंने शुण्डाग्रभागमे बीजपूर (बिजौरा नीबू) ले रखा है; उनके हस्ताग्रभागमे पाश, अङ्कुश, दन्त तथा वरद (मुद्रा) सुशोभित हैं; उनका मुख गजके समान है और सर्पमय आभूषण धारण किये हैं। वे कमलके आसनपर विराजमान हैं और समस्त देवता उनके चरणोंमे नतमस्तक हैं; ऐसे विघ्नराजदेव आपलोगोंके लिये कल्याणकारी हों।'

पञ्चायतन-पूजामें सर्वप्रथम गणपतिकी पूजा सपर्या की जाती है। वैष्णव, सौर, शाक्त तथा पाशुपत-धर्मानुयायी प्रथम गणपतिकी पूजा करके ही अपने इष्टदेवकी पूजा करते हैं।

अग्रपूजाका रहस्य

ब्रह्माण्डपुराणके अन्तर्गत श्रीललितोपाख्यानमें महागणपतिके प्रादुर्भावकी कथा प्रसिद्ध है। भगवती श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी ललिताके साथ भण्डासुर दैत्यका घमासान युद्ध छिड़ा हुआ था। भगवती बाला अम्बिका एवं दण्डनाथा नामकी दो शक्तियों द्वारा भण्डासुरके तीन सौ पुत्रोंका निधन हो चुका था।

श्रीभगवतीकी इस महान् विजयपर भण्डासुरका मन्त्री विशुक्र क्षुब्ध होकर एक बड़ी भारी शिलापर जयविघ्न-यन्त्र लिखकर उसकी पूजा करके रात्रिके समय श्रीललितादेवीकी सेनानगरी (शिविर) के एक कोनेमें रख आया ।

उस यन्त्रके प्रभावसे युद्धोद्यत सेनामें आलस्य, कृपणता, दीनता, निद्रा, तन्द्रा (शिथिलता), प्रमीलिका, क्लीवता, निरहंकारा या विस्मृति—ये आठ दोष उत्पन्न हुए । विघ्न-यन्त्रके प्रभावसे श्रीललितादेवीकी सेना उत्साहहीन एवं अचेत होकर शस्त्रोंका परित्याग कर अपने-अपने शिविरमें प्रवेश कर गयी । तब अवसर पाकर विशुक्र तुरंत ही शक्तिसेनापर आक्रमणकर दिव्य शस्त्र-अस्त्रोंका प्रहार करने लगा ।

उस समय श्रीललितादेवीकी सेनानायिका दण्डनाथा तथा मन्त्रिणी सचीकेशी दोनों सचेत हो अपने कार्यमें जागरूक थीं । विशुक्रको युद्धके लिये तत्पर देखकर दोनों महाराज्ञी श्रीललिताके महासांनिध्यमें पहुँचकर सेना-शिविरका समाचार सुनाने लगीं । वह वृत्तान्त सुनकर श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी ललिता स्मितपूर्वक श्रीमहाकामेश्वरके मुखमण्डलकी ओर निहारने लगीं—

तस्याः स्मितप्रभापुञ्जे कुञ्जराकृतिमान् मुखे ।
कटक्रोडगलद्दानः कश्चिद्देवो व्यजृम्भत ॥
जपापटलपाटल्यपाटच्चरवपुर्द्युतिः ।
बीजपूरं गदामिक्षुचापं शूलं सुदर्शनम् ॥
अब्जपाशोत्पलं व्रीहिमञ्जरीवरदाङ्कुशान् ।
रत्नकुम्भं च दशभिः स्वकैर्हस्तैः समुद्वहन् ॥
तुन्दिलश्चन्द्रचूडालो मदबृंहितनिस्वनः ।
सिद्धिलक्ष्म्या समाश्लिष्टः प्रणनाम महेश्वरीम् ॥
(ब्रह्माण्ड० पु०, ललितो०, अ० २७० । ६८—७१)

'श्रीत्रिपुरसुन्दरी ललिताके मन्दहास्यसे उद्भूत प्रभा-पुञ्जमेंसे कोई अनिर्वचनीय तेजस्वी देवता प्रकट हुआ, जिसका मुख हाथीके समान था । उसके गण्डस्थलसे मदकी धारा झर रही थी । उसकी अङ्गकान्ति जपा-कुसुम-समूहकी लालीको चुराये लेती थी । उसने अपने दस हाथो और शुण्डमें क्रमशः बीजपूर (बिजौरा), गदा, ईखका धनुष, सुन्दर शूल, शङ्ख, पाश, उत्पल, धानकी बाल, वरदमुद्रा, अङ्कुश तथा रत्नमय कलश धारण किये थे । वह लम्बोदर था और उसके मस्तकपर चन्द्राकार चूडामणि शोभा पाती थी । उसके मुखसे मदमत्तकी-सी गर्जन-ध्वनि निकल रही थी । वह सिद्धि-लक्ष्मीसे आलिङ्गित था । उस गजानन देवताने प्रकट होते ही महेश्वरी ललिताके चरणोंमें प्रणाम किया ।'

त्रिपुरसुन्दरी ललितासे आशीर्वाद लेकर वे गजानन वह्नि-प्राकारके भीतर सेना-शिविरमें पहुँचे । प्राकारके चारों ओर घूमते हुए श्रीमहागणपतिने एक कोनेपर स्थित विघ्न-यन्त्रको देखा । तुरंत ही उन्होंने अपने घोर दन्ता-घातसे उसे चूर्णकर आकाशमें उड़ा दिया । विघ्नयन्त्रके नष्ट होते ही शक्ति सेना सचेत हो युद्धके लिये उद्यत हो गयी ।

श्रीमहागणपति अपने मदवारिसे दैत्यसेनाको मूर्च्छित करते हुए आमोद, प्रमोद, दुर्मुख, सुमुख, अरिघ्न (विघ्न-हर्ता) और विघ्नकर्त्ता—इन षड् विघ्नविनायकों तथा तीव्रा, ज्वालिनी, नन्दा, सम्भोगदा, कामरूपिणी, उग्रा, तेजवती, सत्या और विघ्ननाशिनी—इन नौ शक्तियोंके साथ विशुक्रकी सेनामें पहुँचे । वहाँ उन्होंने सात अक्षौहिणी सेनाके साथ गजासुर नामक विपुल पराक्रमी दैत्यका संहार किया ।

गजासुरको मारकर श्रीगणपति अपनी माँ ललिताम्बाके महासांनिध्यमें उपस्थित हुए । इसपर प्रसन्न होकर महाराज्ञी श्रीदेवी ललिताने श्रीगणपतिको सब देवोंकी पूजामें सबसे प्रथम पूजे जानेका वर प्रदान किया । जैसा कि—

विततार महाराज्ञी प्रीयमाणा गणेशितुः ।
सर्वदैवतपूजायाः पूर्वपूज्यत्वमुत्तमम् ॥
(ब्रह्माण्ड पु०, ललितो० २७ । १०४)

'जबसे महाराज्ञी श्रीललिताका यह वर प्राप्त हुआ, तबसे महागणपति विष्णु, ब्रह्मा आदि सभी देवता, असुर, मुनि, मनुष्य एवं महर्षियोंमें प्रथम पूजित हुए ।' इसलिये पञ्चायतन-पूजामें सर्वप्रथम पूजा श्रीगणपतिकी ही होती है, उसके अनन्तर ही सर्वदेव-पूजाकी विधि है ।

गणपतिकी उपासना

यजुर्वेदमें 'गणानां त्वा गणपतिᳪ'—इस वाक्यसे ब्रह्मा-विष्णु आदि गणोंके अधिपति श्रीगणनायक ही परमात्मा कहे गये हैं और वैदिक यज्ञक्रियासे इनकी उपासना करना सर्वोत्तम माना गया है । भगवान् आद्यशंकराचार्य तन्त्रमार्गसे ही गणपतिकी उपासना करनेपर शीघ्र सिद्धि उपलब्ध होती है, ऐसा कहते हैं । जैसा कि प्रपञ्चसारमें—

आवाह्य विघ्नेश्वरमर्चयित्वा
प्रागुक्तया तन्त्रविधानक्लृप्तया ।
निवेदयित्वा सह भक्ष्यलेह्यैः
प्राज्यैश्च साज्यैरपि भोज्यजातैः ॥
(१६ । ३६)

—मन्त्रागमकी सपर्या गुरुगम्य मानी गयी है । जो साधक गुरु-परम्परासे गणपति-सपर्याकी विद्या उपलब्ध करते हैं, उन्हें ही उपासनामे प्रवेश करनेका अधिकार होता है । तन्त्रशास्त्रकी उपासनामे देश-काल एवं उपकरणोंकी अत्यधिक आवश्यकता पड़ती है । भगवान् परशुरामके मतानुसार तन्त्रागम-पूजामे सर्वप्रथम महागणपतिका ध्यान करना चाहिये । जैसा कि कहा गया है—

'देवं सिद्धलक्ष्मीसमाश्लिष्टपार्श्वम्, अर्धेन्दुशेखरमारक्तवर्णं मातुलुङ्गगदापुण्ड्रेक्षुकार्मुकशूलसुदर्शनशङ्खपाशोत्पलधान्यमञ्जरीनिजदन्ताञ्चलरत्नकलशपरिष्कृतपाण्येकादशकं प्रभिन्नकटमानन्दपूर्णमशेषविघ्नध्वंसनिघ्नं विघ्नेश्वरं ध्यात्वा ।'

(परशुरामकल्पसूत्र, ख० २ । ४)

'भगवान् महागणपतिका वाम पार्श्व सिद्धलक्ष्मीसे आलिङ्गित है । वे मणिमय रत्नसिंहासनपर विराजमान हैं । उनका शरीर करोड़ों सूर्योंके समान चमकीला रक्तवर्णवाला है । मस्तकपर अर्धेन्दु (चन्द्रमौलि) है । ग्यारह भुजाओंमें मातुलुङ्ग, गदा, इक्षु-कार्मुक, सुदर्शन, शूल, शङ्ख, पाश, कमल,धान्यमञ्जरी, अपना ही भग्नदन्त तथा रत्नकलश हैं । इस प्रकार परमानन्दपूर्ण गण्ड-स्थलसे मदकी धारा बहानेवाले सर्वविघ्नविध्वंसक महागणपतिका ध्यान करना चाहिये ।'

तत्पश्चात् सिद्धपीठ (त्रिकोण-षट्कोण-वृत्त-चतुरस्रादि) में गन्धाक्षत-पुष्प-पूजित शुद्ध जलपूर्ण कलशीसे अर्घ्य-स्थापना करनी चाहिये । उसी अर्घ्यामृत-जलसे अर्घ्यपात्र आदिका संस्कार करके महागणपतिकी पूजा-सपर्या पञ्चावरणसे करनी चाहिये । जैसा कि—मूलेन पञ्चावरणपूजां कुर्यात् ॥ ऐसा कहा गया है । (परशुरामकल्पसूत्र, खं० २ । ७)

पूजा-सपर्याके उपचारमें पाद्य-अर्घ्य-आचमन-स्नान-वस्त्र-भूषण-गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्य-नीराजन आदिका उपयोग होता है । जैसा कि—'देवं गणनाथं दशधोपतर्प्य, षोडशोपचारैरुपचर्य, गणपतिबुद्ध्या एकं बटुकं, सिद्धलक्ष्मीबुद्ध्या एकां शक्तिं चाहूय, गन्धपुष्पाक्षतैरभ्यर्च्य निर्विघ्नमन्त्रसिद्धिर्भूयादित्यनुग्रहं कारयित्वा नमस्कृत्य यथाशक्ति जपेत् ।' (परशुरामकल्पसूत्र, खं० २ । ९)

उपर्युक्त विशेषार्घ्यामृत-वारिसे सविधि उपचार-पूजा-सपर्या करके सर्वविघ्ननिवारणार्थ महागणपतिकी स्तुति करनी चाहिये । तत्पश्चात् महागणपतिमन्त्रका जप करनेपर शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है । यद्यपि तुरंत सिद्धि प्राप्त करनेके लिये उच्छिष्टगणपति, वरदगणेश, हरिद्रागणेश आदिकी उपासना अत्यन्त उत्तम समझी जाती है, तथापि ये सब सिद्धियाँ क्षणिक मानी गयी हैं । उपर्युक्त महागणपतिकी पूजा-सपर्यासे साधकको शाश्वती सिद्धि-समृद्धि उपलब्ध होती है और भोग-अपवर्ग दोनों प्राप्त होते हैं ।

जय गणपति !

जय गणपति, गणनायक जय हे ! जन-मन-मङ्गल, त्राता ।
एक-रदन, गज-वदन, विनायक, कृपासिन्धु सुखदाता ॥
जय लम्बोदर, मूषक-वाहन, विघ्न-विनाशन-कर्ता ।
जय जग-वन्दन, शंकर-नन्दन, कलुष-ताप-तम-हर्ता ॥
बुद्धिराशि, शुभ ज्ञान-प्रकाशक, मोदक-प्रियवर वर दो ।
भारत-माताके अञ्चलमें सुखद सम्पदा भर दो ॥

—वासुदेव गोस्वामी

गणपतिका वैदिक स्तवन

(लेखक—श्रीदेवीरत्नजी अवस्थी 'करील')

आजका वैज्ञानिक अध्ययन इस मतको निरन्तर अग्रसारित करता रहता है कि मनुष्यके ज्ञानका विकास उसी प्रकार धीरे-धीरे हुआ, जिस प्रकार हमारे घरोंमें हमारे बच्चोंका ज्ञान धीरे-धीरे विकसित होता है। पर हमारे इस युगका वैज्ञानिक अध्ययन जैसे-जैसे प्रगति करता जायगा, वैसे-ही-वैसे वह उस वैदिक सिद्धान्तके निकट पहुँचता जायगा, जिसमें कहा गया है—'वह पूर्ण है, यह पूर्ण है, पूर्णसे ही पूर्ण प्रकट होता है तथा पूर्णसे पूर्णको निकाल लेनेपर पूर्ण ही शेष रह जाता है।'

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
(बृहदारण्यकोपनिषद् ५।१।१)

तर्कसङ्गत प्रमाणोंसे यह सिद्ध किया जा सकता है कि अन्नके खाद्योजका जन्म अन्नके साथ ही हुआ है। गेहूँमें जो खाद्योज आज विद्यमान है, वह उसके जन्मके आदिकालमें भी था और भविष्यमें भी तबतक बना रहेगा, जबतक गेहूँका अस्तित्व है। सिंहने धीरे-धीरे हिंसा नहीं सीखी; वह जितना हिंसक आज है, उतना हिंसक अपनी सृष्टिके आदिमें भी था, अन्ततक वह आजकी ही भाँति हिंसक बना रहेगा। गायने धीरे-धीरे शाकाहार नहीं सीखा। वह आजकी ही भाँति अपनी सृष्टिके आदिकालमें भी शाकाहारिणी थी और अन्ततक वह शाकाहारिणी ही बनी रहेगी।

वनस्पति-जगत् और पशु-जगत्की प्रवृत्तियोंके सारे प्रमाण इस बातके पुष्ट आधार हैं कि मनुष्य मानवीय सृष्टिके आदिकालमें जिन दैवी और आसुरी सम्पदाओंको लेकर उत्पन्न हुआ था, वे आदिसे अन्ततक एक सी होकर उसके साथ ही रहेंगी। पाश्चात्त्य विद्वानोंके बहुमतकी यह मान्यता कि आदि-मानव बर्बर जीवके रूपमें उत्पन्न हुआ, और बहुत बड़ी कालावधिके उपरान्त उसने बोलना सीखा, तभी सत्य प्रमाणित हो सकता है, जब यह सिद्ध कर दिया जाय कि मृगने अपनी उत्पत्तिके बहुत दिनों बाद दौड़ना सीखा और कोयलकी कूकमें बहुत दिनों बाद माधुर्यका प्रवेश हुआ। पर ऐसा सिद्ध नहीं किया जा सकता।

पूर्णसे पूर्ण ही प्रकट होता है; इसलिये सम्पूर्ण जीव-जगत्, जिसमें मनुष्यका स्थान सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है, अपनी सृष्टिके कालमें पूर्णत्वसे युक्त होकर और दो शक्तियोंसे सम्पन्न होकर उत्पन्न हुआ—एक दैवी सम्पत्ति और दूसरी आसुरी सम्पत्ति। मानव-जीवनमें उसकी दैवी और आसुरी सम्पत्तियोंके बीच निरन्तर संग्राम होता रहता है और इस संग्राममें उसके अन्तस्तलमें व्याप्त ईश्वरीय सत्ताका अग्निस्वरूप निरन्तर आसुरी सम्पदाके प्रतिनिधि वृत्रका संहार करता रहता है। वेदकी घोषणा है कि 'यह अग्नि सत्यके सद्वीर्यका ईश्वर है; यह संसारके महान् सौभाग्यका ईश्वर है; यह विश्वकी संतान सत्ता और पशु-सत्ताका ईश्वर है; यह अग्नि उन सभीका ईश्वर है, जो वृत्रका संहार किया करते हैं।'

अयमग्निः सुवीर्यस्येशे महः सौभगस्य।
राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम्॥
(ऋग्वेद ३।१६।१)

वैदिक ऋषि पूर्णब्रह्मकी पूर्ण संतान थे। अपनी पूर्णताके कारण ही वे सारे ज्ञानके आदिद्रष्टा थे। उन्होंने अपने मानस-चक्षुओंसे जिस ज्ञानका दर्शन किया था, उस ज्ञानके वे लेखक और प्रकाशक नहीं बने, उन्होंने अपनेको केवल उस ज्ञानका द्रष्टा माना। इस अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बातसे भी उन ऋषियोंकी पूर्णता सिद्ध होती है। वैदिक ऋषियोंने अपने जाग्रत् विवेकके द्वारा संसारकी दैवी सम्पत्तिके संवर्धनके हेतु एवं आसुरी सम्पत्तिके उन्मूलनके निमित्त जगत्के स्रष्टाकी अनेक नामोंसे उपासना की है। वेदवाणीके ऋषियोंकी इस देवोपासनाके विवेचनात्मक अध्ययनकी आवश्यकता कभी समाप्त होनेकी नहीं। वेदोंका सतत और जाग्रत् अध्ययन ही संसारको प्रगतिके मार्गपर ले जायगा। जो विद्वान् वैदिक शब्दोंकी सूची बनाकर, अन्य प्राचीन भाषाओंके साथ उनका तुलनात्मक अध्ययन करनेमें परिश्रम करते हैं, उनके परिश्रमकी प्रशंसा करते हुए भी यह कहा जायगा कि उनके उस प्रयाससे वैदिक विज्ञानका बोध लोगोंको नहीं हो सकता। वेदका कथन है कि 'जो देवाधि-वासक ईश्वरको नहीं जान पाया, ऋचाओंके विश्लेषणसे उसको कुछ भी लाभ प्राप्त नहीं होगा।'

'यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति।'
(ऋग्वेद १।१६४।३९)

परमात्माके सत्य-चिन्तनके माध्यमसे मनुष्य असत्यसे सत्यकी ओर बढ़े, यही वैदिक ज्ञानयोग है; मनुष्य अन्धकारसे प्रकाशकी ओर बढ़े, यही वैदिक कर्मयोग है एवं मनुष्य मृत्युसे जीवनकी ओर बढ़े, यही वैदिक भक्तियोग है।

परमात्मा अनन्त है; उसकी शक्तियाँ अनन्त हैं। वेदोंकी देवोपासना अनन्त शक्तिवाले परमात्माकी ही उपासना है। वेद प्रबल स्वरमें इन सारे देवोंको एक और अकेली परमात्मशक्तिमें केन्द्रित करते हुए कहता है कि ज्ञानवान् विप्र एक ही सत्यको विभिन्न नामोंसे कहते हैं—

'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।'
(ऋग्वेद १। १६४। ४६)

ऊपर कहा जा चुका है कि दैवी सम्पत्तिके गुण और आसुरी सम्पत्तिके दोषको लेकर ही आदि-मानवका प्रादुर्भाव हुआ था। इसको अधिक सरल करनेके लिये यह कहा जा सकता है कि आदि-मानव, जो ज्ञान और मोहको लेकर ही उत्पन्न हुआ था, वह अन्ततक मनुष्योंके साथ ही रहेगा। ज्ञान प्रकाशकी बुद्धिमत्ता है और मोह अज्ञानके अन्धकारकी मूढ़ता। ध्यान दीजिये कि जो मनुष्य ज्ञानके आलोकके कारण चन्द्रलोकपर चढ़नेकी बुद्धिमत्ता प्रदर्शित करता है, वही मनुष्य आणविक आयुधोंका प्रक्षेपण करता हुआ लाखोंके विनाशकी मूढ़ता भी दिखलाता है। विद्युत्से दीप्तिमान् हमारे घर और नगर एवं हमारे अत्यधिक वैभवके साधन हमें इस मूढ़तासे, इस आसुरी सम्पदाके पाशसे मुक्त कर सकेंगे, ऐसा सोचना स्वयं एक मूढ़ता है।

हमारी यह आसुरी सम्पदा, हमारी यह मूढ़ता, हमारी दैवी सम्पदाकी बुद्धिमत्ताको पराजित न कर पाये—यही हमारे जीवनका लक्ष्य है। जीवनके इस परम लक्ष्यको पहचानकर ही हमारे वैदिक ऋषि मन्त्रद्रष्टा बने थे। उन्होंने परमात्माके ज्ञानमय स्वरूपका दर्शन अपने मानस-चक्षुओंद्वारा किया था और इस पूर्णदर्शनके उपरान्त ही उन्होंने गणाधिराज गणपतिको ज्ञानका स्वामी घोषित करते हुए उस परमेश्वरके गणपति-स्वरूपका आवाहन कर कहा था—'देवत्वकी कामना करनेवाले लोग तुमसे प्रार्थना करते हैं; अतः ज्ञानके स्वामिन्! उठो'—

'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे।'
(ऋग्वेद १। ४०। १)

जो वेद गणेशजीको 'गणपति' कहते हैं, वे ही उन्हें 'ब्रह्मणस्पति' और 'बृहस्पति' भी कहते हैं। देवताओंके गुरु-रूपमें गणेशजीके बृहस्पतित्वका बड़ा सरल परिचय हमें पुराणोंके माध्यमसे मिलता है। पर यह बात बहुत थोड़े लोग जानते हैं कि गणेशजी ही देवगुरु बृहस्पति हैं और उन्हींको वेद 'ब्रह्मणस्पति' भी कहते हैं।

वैदिकविज्ञानके अनुसार सारे देवता एक ही परमपिता परमात्माकी भिन्न-भिन्न शक्तियोंके प्रतीक हैं। उन सबको एक ही समझनेकी बात भारतके प्राचीन साहित्यमें बारबार दुहरायी गयी है। मनुष्यकी दैवी सम्पदा उसे श्रेयोमार्गपर बढ़ाती है; पर ठीक इसके विपरीत उसकी आसुरी सम्पदा उसे प्रेयोमार्गकी ओर प्रेरित करती रहती है। इस सघर्षके कारण मनुष्यके सामने सदैव यह भय उपस्थित रहता है कि वह श्रेयोमार्गको त्यागकर प्रेयोमार्गपर ही न दौड़ने लग जाय। वेदके मन्त्रद्रष्टा ऋषि मानवकी इस महती बाधाको भलीभाँति पहचानते थे और इसीलिये मानव-मात्रका सच्चा प्रतिनिधित्व करते हुए उन्होंने वेदके अपौरुषेय ज्ञानके द्रष्टा होकर लोककल्याणके निमित्त परमात्माकी विभिन्न शक्तियोंको लोकमें इसलिये उतारा कि वे मानवमात्रको श्रेयोमार्गपर चलनेकी प्रेरणा दें—

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे
कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत
आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्॥
(ऋग्वेद २। २३। १)

वेदमें शब्दको 'ब्रह्म' कहा गया है, जिसका तात्पर्य यह है कि वेदका प्रत्येक शब्द हमें परब्रह्म परमात्माके ज्ञानकी दिशाकी ओर बढ़ाता है। अतः वेदके ब्रह्ममय शब्दोंका चिन्तन और मनन मननशील मनुष्यको यावज्जीवन करते ही रहना चाहिये।

उपर्युक्त वेदमन्त्रका अन्वय नीचे दिया जा रहा है। इस अन्वयसे मूलमन्त्रके तात्पर्यको समझनेमें सहायता मिल सकती है। संस्कृतके सामान्य ज्ञानकी सहायतासे इसको समझनेका प्रयत्न करना सुखकर होगा। मन्त्रद्रष्टा महर्षि शौनक इस मन्त्रके माध्यमसे जो प्रार्थना गणेशजीसे करते हैं, उसका तात्पर्य इस अन्वयसे अधिक स्पष्ट होगा—

'ब्रह्मणस्पते! गणानां गणपतिं कवीनां कविम् उपम-

श्रवस्तमं ज्येष्ठराजं त्वा हवामहे नः शृण्वन् ऊतिभिः सादनम् आ सीद ।'

जिन गणेशजीका आवाहन महर्षि भृगुपुत्र शौनकने इस मन्त्रमे किया है, उन्हे पहले 'ब्रह्मणस्पते' कहकर सारे ज्ञान-विज्ञानसे युक्त बतलाया गया है। ज्ञान-विज्ञानसे युक्त गणेशजी जब लोकमे पधारेंगे तो मनुष्योंमे ज्ञान-विज्ञानका प्रसार करेंगे; पर इस ज्ञान-विज्ञानके ग्रहण करनेकी क्षमता तो मनुष्य ही अपनेमे उत्पन्न करेगा। इस मन्त्रका मानवमात्रके लिये सदेश है कि ब्रह्मणस्पति गणेशजीका योग्य सेवक बननेके लिये स्वय ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न बनो।

इसके उपरान्त गणेशजीको 'गणानां गणपतिम्' कहकर स्मरण किया गया है। हमे गणपतिभगवान्का ज्ञानालोक तभी प्राप्त होगा, जब हम अपने (रुद्र) गणोंको सँभाले। ये गण ग्यारह हैं; हमे इन गणोंको सँभालना है। इनको सँभाले बिना किसी मनुष्यको 'ब्रह्मणस्पति' कहलानेवाले गणेशजीका ज्ञानालोक नहीं प्राप्त हो सकता। दसों इन्द्रियाँ और उनके ऊपरका सत्ताधारी मन, इस प्रकार ग्यारह गणोंका नियन्त्रक मनुष्य भी है। जब मनुष्य वेदके माध्यमसे गणपति-भगवान्को अपने घरमें बुलाकर बैठानेका प्रयत्न करता है, तब उसके घरको इस योग्य भी तो होना चाहिये कि भगवान् उसमें विराज सकें। कहनेका तात्पर्य यह है कि गणपतिके आवाहकको गणपतिके समान ही सदाचारसम्पन्न होना चाहिये।

तीसरे विशेपणमे गणेशभगवान्को 'कवीनां कविम्' कहा गया है। भगवान् केवल कवि नहीं हैं, वे कवियोंके कवि हैं। जब भगवान् कवियोंके कवि हैं तो मनुष्यको अकवियोंका अकवि नहीं बनना है; कवियोंका कवि बनना है। कवि उसे ही नहीं कहते, जो कवि-सम्मेलनोंमे अपनी कविताद्वारा लोगोंको प्रसन्न करता है। कवि कहते हैं, ज्ञानके प्रत्येक छोरतक पहुँचनेवाले विद्वान्को। कविके आचरणके लिये बडी सरल भाषामे कहा जाता है—'जहाँ न जाये रवि, वहाँ जाये कवि'। मनुष्य ज्ञान-विज्ञानका द्रष्टा बननेका प्रयत्न करे और उसी प्रकारका आचरण करके गणेशजीको अपने हृदय-धाममें बुलानेकी क्षमता अपनेमें उत्पन्न करे, यही इस विशेपणका तात्पर्य है। जबतक मनुष्य अपनी दैवी सम्पदाके बलसे अपनी आसुरी सम्पदाओंपर विजय नहीं प्राप्त करता, तबतक उसे उन भगवान् गणपतिको अपने घरपर बुलानेका कोई अधिकार नहीं है। यदि मानव बिना अधिकारी बने उनको बुलायेगा तो केवल उसके कोरे मन्त्रपाठसे वे उसके हृदयधाममें आकर नहीं विराजेंगे; क्योंकि वेदने पहले ही बता रखा है—

'यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति'

(ऋग्वेद १ । १६४ । ३९)

इसके उपरान्त वेद गणेशजीको 'उपमश्रवस्तमम्' कहता है। इसका अर्थ हुआ—यशकी उपमामे सबसे अधिक यशस्वी। और सरलतासे समझिये—नामियोंमें नामी। जैसे हमारा देवता नामियोंमे नामी है, वैसे ही हम भी नामियोंमें नामी बननेका प्रयत्न करें। एक होता है विख्यात; सभी ओर उसकी बड़ाई होती है; और दूसरा होता है कुख्यात; सभी ओर उसकी निन्दा होती है। गणेशभक्त मानव अपने सदाचारके लिये विख्यात हो, दुराचारके लिये कुख्यात न हो, यही इस विशेपणका तात्पर्य है।

अब 'ज्येष्ठराजम्'पर विचार कीजिये। क्यों गणेशजीको केवल 'ज्येष्ठम्' कहकर नहीं बुलाया गया। इसलिये कि वे केवल सबसे जेठे ही नहीं है, प्रत्युत जितनी भी ज्येष्ठता विश्वमे व्याप्त है, उस ज्येष्ठताको वे अपना तेज प्रदान करते हैं। जिस 'राजा'—शब्दसे हम बहुत अधिक परिचित हैं, उसका अर्थ होता है—तेजस्वी। यदि बिजलीके प्रकाशमे हम अपनी आँखे न खोलें तो उस प्रकाशका कोई लाभ हमे नहीं हो सकता। इसी प्रकार यदि हम दिनमें अपनी आँखोंपर कपडा बाँध लें तो सड़कपर चलनेके लिये हमे दूसरेका सहारा लेना पडेगा। गणेशजी केवल ज्येष्ठभर नहीं हैं, वे ज्येष्ठोंमें भी तेजस्वी हैं और सारे ज्येष्ठ लोग उन्हींके तेजसे तेजस्वी बनते है। अतः उनके तेजका प्रकाश पानेके लिये मनुष्यको अपनी आँखोंकी पट्टी खोलनी चाहिये और भगवान्के तेजके आशीर्वादसे परमसुख प्राप्त करना चाहिये—यही इस 'ज्येष्ठराज' विशेपणका तात्पर्य है।

वेद लोकमें जिन गणेशजीका आह्वान करता है, वे केवल ज्ञानी ही नहीं हैं, ज्ञानभंडारके पति है। पतिका अर्थ होता है—रक्षक। जो देवता ब्रह्मणस्पति हैं, वह अपना ज्ञान अधिकारी व्यक्तिको ही देगा। यह अधिकारी वही हो सकता है, जिसने आसुरी सम्पदाओंके वृत्रोंका उन्मूलन कर दिया हो। जिसने अपने आचरणको ठीक वैसा बना लिया हो, जैसा गणपतिभगवान् चाहते है। तभी उसकी पुकारपर भगवान् गणपति उसके हृदयधाममे आकर बैठ सकते है। अधिकारी होनेकी मर्यादा इस लोकमे भी प्रचलित है। हमारे ससारमे एक भी ऐसा विश्वविद्यालय

नहीं है, जो दसवी श्रेणीके उत्तीर्ण विद्यार्थीको पंद्रहवीं श्रेणीमे प्रवेश दे दे। पंद्रहवीं श्रेणीमे प्रवेश पानेके लिये आवश्यक है कि विद्यार्थी चौदहवीं श्रेणीमे उत्तीर्ण हो चुका हो। ठीक उसी प्रकार गणपतिभगवान्‌का ज्ञानालोक प्राप्त करनेके लिये यह आवश्यक है कि हम स्वयं उनके द्वारा प्रसारित ज्ञानके प्रकाशको अपने आचरणमे उतार चुके हो।

वेदोमे गणेशजीकी स्तुतियोके अनेक मन्त्र है, जिनमेसे केवल एककी चर्चा इस लेखमे की गयी है। आशा है, इस चर्चासे विज्ञ पाठकोंका न केवल मनोरञ्जन होगा, प्रत्युत इसके द्वारा उनके हृदयमे उस वेदभक्तिका भी उदय होगा, जिसकी शक्तिसे मानव उस परमपिता परमात्माका अनुग्रह प्राप्त कर सकता है।

वेदोंमें गणपति

(लेखक—डॉ० श्रीशिवशङ्करजी अवस्थी)

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद् वदेम विदथे सुवीरा।[1]॥

(ऋग्वेद २। २३। १९; २। २४, १६; यजुर्वेद३४। ५८)

शतपथब्राह्मणके भाष्यकार हरिस्वामीके गुरु स्कन्दस्वामी, जो संवत् ६८७मे विद्यमान थे, अपने ऋग्वेद-भाष्यके प्रारम्भमे लिखते है—

विघ्नेश विधिमार्तण्डचन्द्रेन्द्रोपेन्द्रवन्दित।
नमो गणपते तुभ्यं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पते[2]॥

इससे स्पष्ट है कि वैदिक देवता ब्रह्मणस्पति ही विघ्नेश गणपति है। लौकिक साहित्यमे गणेशके दो मुख्य गुण वर्णित हैं—एक विद्या[3], बुद्धि एव धनका प्रदान और दूसरा विघ्न या दुष्टोका दमन। वेदमे ब्रह्मणस्पतिके सम्बन्धमे ऐसे ही उल्लेख मिलते है। यथा—

न तमंहो न दुरितं कुतश्चन नारातयस्तितिरुर्न द्वयाविनः।
विश्वा इदस्माद् ध्वरसो वि बाधसे यं सुगोपा रक्षसि ब्रह्मणस्पते॥

(ऋग्वेद २। २३। ५)

'हे ब्रह्मणस्पति! आप जिस जनकी रक्षा करते है, उसे कोई दुःख और तज्जनक पाप पीडित नहीं कर सकता; शत्रु कहीं भी उसकी हिंसा नहीं कर सकते, मनमे कुछ और तथा क्रियामे कुछ अन्य करनेवाले वञ्चक भी उसे बाधा नहीं दे पाते। अपने जनोंकी हिंसक समस्त सेनाओंको आप नष्ट कर देते है।'

तद्देवानां देवतमाय कर्त्वमश्रथ्नन् दृळ्हाव्रदन्त वीळिता।
उद् गा आजदभिनद् ब्रह्मणा वलमगूहत्तमो व्यचक्षयत्स्वः॥

(ऋग्वेद २। २४। ३)

'देवोमे श्रेष्ठ देव ब्रह्मणस्पतिके ये कर्म हैं—दृढ पर्वतादिकोंको ये अपने बलसे विशीर्ण कर देते है, कठोरको कोमल बना देते हैं, प्रकाश या ज्ञान प्रदान करते है, अपनी वाग्रूपिणी शक्तिसे आच्छादक असुरोंको ध्वस्त करते है, अज्ञान या अन्धकारको दूर करते हें एव स्वर्गात्मक सुख प्रदान करते हैं।'

ब्रह्मणस्पति, बृहस्पति और वाचस्पति—वेदमे ये एक ही गणपतिके भिन्न नाम मिलते हैं। भास्करराय़ने 'गणपति-सहस्र-

---

१. हे मन्त्रोंके अधिपति! तुम इस जगत्‌के नियामक हो, मेरे इस सूक्तको जानो और मेरी संतानको प्रसन्नता प्रदान करो, आप-जैसे देव जिसकी रक्षा करते हैं, उसका सर्वथा भला होता है। हमलोग इस जीवन-यज्ञमें सुन्दर पुत्र-पौत्रोंसे युक्त होकर आपकी स्तुति करें।

२. ब्रह्मा, सूर्य, चन्द्र, इन्द्र तथा विष्णुके द्वारा वन्दित हे विघ्नेश गणपति! मन्त्रोंके स्वामी ब्रह्मणस्पति! तुम्हें नमस्कार है।

३ (क) विद्या-बारिधि, बुद्धि-बिधाता—तुलसीदास

(ख) शुण्डाग्राकलितेन हेमकलशेनावर्जितेन क्षरन्नानारत्नचयेन साधकजनान् सम्भावयन् कोटिशः।
—श्रीराघवचैतन्य—महागणपतिस्तोत्र ८

(ग) विघ्नध्वान्तनिवारणैकतरणिर्विघ्नाटवीहव्यवाट्।

(घ) यतो बुद्धिरज्ञाननाशो मुमुक्षो-
र्यतः सम्पदो भक्तसंतोषिकाः स्युः।
यतो विघ्ननाशो यतः कार्यसिद्धिः
सदा तं गणेशं नमामो भजामः॥
—गणेशपुराण, उपासनाखण्ड, गणेशाष्टक ५

४ 'बृहस्पते ब्रह्मणस्पते'—तै० ब्रा० ३। ११। ४। २, 'एष (प्राण) उ एव ब्रह्मणस्पतिः। वाग्वै ब्रह्म तस्या एष पतिः तस्मादु ब्रह्मणस्पतिः'—शतपथब्राह्मण १४। ४। १। २३, 'एष वै ब्रह्मणस्पतिर्य एष (सूर्यः) तपति'—शतपथब्राह्मण १४। १। २। १५। 'बृहस्पतिरेव ब्रह्मणस्पतिः'—उवट।

नामःके 'खद्योत'-नामक भाष्यमें लिखा है कि 'शिव, विष्णु, देवी-विषयक उपनिषदोंके सदृश गणपति-सम्बन्धी उपनिषदें भी देखी जाती हैं। तीनों वेदोंमें 'गणानां त्वा गणपतिं'— यह मन्त्र पढ़ा गया है, अतः कर्मकाण्डमें भी गणपतिकी स्वीकृति स्पष्ट है'—

'शिवविष्णुदेवीविषयकाणामिव गणपतिविषयाणामुपनिषदामपि जागरूकत्वाच्च। कर्मकाण्डेऽपि अभ्यातानामत्र कदर्थनमपेक्ष्य स्पष्टतरस्य 'गणानां त्वा' इति मन्त्रस्य वेदत्रयेऽपि पठ्यमानस्य शरणीकर्तुं युक्तत्वाच्चेति दिक्।'
(पृष्ठ ३, निर्णयसागर संस्करण)

ऋग्वेद २। २३। १में गणपति-सम्बन्धी अधोलिखित मन्त्र आता है—

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्॥

—'ब्रह्म अर्थात् अन्न अथवा उत्तम कर्मोंके रक्षक, देवादि गणोंके गणपति, क्रान्तदर्शियोंमें श्रेष्ठ कवि, ज्येष्ठराज, मन्त्रोंके स्वामी मैं तुम्हारा आह्वान करता हूँ। हमारी स्तुतियोंको सुनते हुए रक्षार्थ हमारे यज्ञमें आप उपस्थित हों।'

लोकमें गणेशको देवीके तेजसे उत्पन्न—गौरीतेजोभू— (गणेशपुराण, गणेशसहस्रनाम ८६। २४) और 'आदिदेव' कहा जाता है। ऋग्वेदकी उक्ति है—

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन्।
सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत्तमांसि॥
(४। ५०। ४)

'बृहती वाक् अथवा संसारके स्वामी बृहस्पति, परमव्योमरूप महाशक्तिके महान् तेजसे सर्वप्रथम उत्पन्न होकर सात

'According to Maxmuller, बृहः and ब्रह्मणः are derived from the some root बृह् to speak; So बृहस्पति, ब्रह्मणस्पति and वाचस्पति mean the same god. 'Lord of Prayer'—Griffith. Root बृह् (शब्दे) मनिन्; तस्य पतिः षष्ठ्याः पति० (Pāṇ. VIII. iii. 53) इति विसर्गस्य सः। or from the root- बृह वृद्धौ—द्र० टि०, सामवेद, आग्नेयपर्व २। ५६—विभूतिभूषण भट्टाचार्य।

५. (क) 'गणेशसहस्रनाम' १४-१५में भी लिखा है—

कवि: कवीनामृषभो ब्रह्मण्यो ब्रह्मणस्पतिः।
ज्येष्ठराजो निधिपतिः निधिप्रियपतिप्रियः।

खद्योत भाष्य—कार्यत्वात्काव्यकर्तृत्वात्कविरेष तथा कविम्—।
कवीनामुपमश्रुत्या कवीनामृषभोऽप्ययम्॥ ५५॥
ब्रह्मण्यो ब्राह्मणे वेदे साधुस्तपसि धातरि।
वाग्वै ब्रह्म पतिस्तस्या इत्येष ब्रह्मणस्पतिः॥ ५६॥
ज्येष्ठराज इति ख्यातो ज्येष्ठार्ये साम्नि राजनात्।
एष नाम्ना निधिपतिर्निधीनां परिपालनात्॥ ५७॥
'निधीनां त्वा निधिपतिं हवामह' इति श्रुतेः।
निधिप्रिया ये पतयो राजराजाद्यो नृपाः॥ ५८॥
तैरप्युपास्य इत्येष निधिप्रियपतिप्रियः।

(ख) गणेशपु० उ० १। ५में भी आता है—
'गणानां त्वा गणनाथं सुरेन्द्रं कविं कवीनाम्।'

६. 'आदि' शब्दसे 'असुरगणके रक्षक'—यह अर्थ भी लेना चाहिये। एलिस गेटी (Alice Getty) नामक विदेशी महिलाने अपनी 'गणेश'-नामक पुस्तकके पहले अध्यायमें लिखा है—

'Prabodh Chandra Bagchi suggests that Gaṇeśa was associated with writing because of a confusion in regard to the word 'Siddhi'. From very ancient times, the Hindu alphabet was called 'Siddham' and the enumeration of the alphabet began with the word 'Siddhi'. As one of the epithets of Gaṇeśa is 'सिद्धिदाता—giver of Success', he believes it to be probable that his association with the word gave rise to the legends depicting him as a scribe.'

७. शैवी चित्-शक्ति ही 'परमव्योम'के नामसे प्रसिद्ध है—
मन्त्राश्छन्दांसि यज्ञाः क्रतव इति परव्योम्नि व्याम्य जन्म,
स्रष्टृत्वं केवलं च प्रथयति तदधिष्ठातुरेणाङ्कमौलेः॥
(आनन्दलहरी १२)

'श्वेताश्वतर-उपनिषद्'का 'छन्दांसि यज्ञाः क्रतवः।' (४। ९) यह मन्त्र, 'परमव्योममें ही इस जगत्का जन्म होता है और उस परमव्योम या चिदाकाशके अधिष्ठाता शशाङ्कमौलि भगवान् शंकर ही एकमात्र इसके स्रष्टा हैं'—यह स्पष्ट करता है।

'ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्' इति तत्पूर्वमन्त्रप्रकृत्या परमव्योमशब्देन शैवी शक्तिं परामृश्य पञ्चम्यास्तस्याः समस्तजगदुपादानत्वप्रतिपादनात्'— (आनन्दलहरीचन्द्रिका)

८. सप्तास्यः—(१) सर्पणशीलमुख—क्या इससे शुण्डादण्डरूप अर्थ नहीं लिया जा सकता? (२) सात स्वररूप मुख।

छन्दरूप मुखवाले और सात किरणों अथवा सात वर्ण-वर्गवाले गणपति विविध रूप धारण करके नादके द्वारा अन्धकार अथवा अज्ञानको दूर करते हैं।'

गणेशको 'एकदन्त' कहा जाता है। ऋग्वेदमे एक मन्त्र आता है—

चत्तो इतश्चत्तामुतः सर्वा भ्रूणान्यारुषी।
अराय्यं ब्रह्मणस्पते तीक्ष्णशृङ्गोदृषन्निहि ॥
(१०।१५५।२)

'वह अलक्ष्मी इस लोकसे तथा उस लोकसे भी विनष्ट हो जाय, जो समस्त भ्रूणो या ओषधियोंके अङ्कुरोंको नष्ट कर देती हैं। हे तीक्ष्णदन्त ब्रह्मणस्पति! आप उस दान-विरोधिनी अलक्ष्मी या दुर्भिक्षाधिदेवताको दूर करते हुए जायँ।'

'शृङ्ग'का अर्थ दाँत भी होता है। सायणाचार्यने 'तीक्ष्ण-तेजस्क' ऐसा अर्थ किया है।

लोकमें गणेश और सरस्वतीकी एक साथ वन्दना भी देखी जाती है। वेदोमे भी ऐसा उल्लेख मिलता है—

'प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता' ॥ (ऋग्वेद १।४०।३; सामवेद, आग्नेयपर्व ७।५६; यजुर्वेद ३३।८९)

'हमारे यज्ञमे ब्रह्मणस्पति देव आवें, वाग्देवता सरस्वती भी पधारें।'

ब्रह्मणस्पति ऋग्वेदमे महत्त्वपूर्ण देवताके रूपमे वर्णित है। ग्यारह सूक्तोमे इनकी स्तुति मिलती है। पुराणोंमे आकर इनका रूप और विशद हुआ है। प्रत्येक लेखनकार्य या अन्य शुभ कर्ममें वे अग्रणी रहते है। बालकोके अक्षरारम्भ-मे वे स्मृत होते हैं। जो लोग सोचते है कि गणेशजीका लेखन-कार्यसे सम्बन्ध 'सिद्धि'-शब्दके गड़बड़-झालेके कारण हुआ है, वे भ्रान्त है। उनका यह कहना कि 'सिद्धि'-शब्द प्राचीनकालसे ही वर्णमालाका बोधक रहा है और गणेशको 'सिद्धिदाता' कहा जाता है, अतः उक्त शब्द ही गणेशको लेखकके रूपमे वर्णन करनेवाले उपाख्यानका जन्मदाता है—असगत है। पतञ्जलिने 'सिद्ध'-शब्दको मङ्गलार्थक और नित्यार्थक माना है। 'कातन्त्र-व्याकरण'का पहला सूत्र है—'सिद्धो वर्णसमाम्नाय।' इसका अर्थ है—'वर्णमाला नित्य है।' 'ॐ नमः सिद्धम्' इसका भी प्रयोग यत्र-तत्र मिलता है। इसमे पठित तीनों शब्द मङ्गलार्थक एवं परमात्मवाचक है। 'तैत्तिरीयसंहिता'के सुप्रसिद्ध भाष्यकार कौशिक भट्टभास्करने रुद्रभाष्यमे लिखा है—

'ॐ, स्वाहा, स्वधा, वषट्, नमः इति पञ्च ब्रह्मणो नामानि।' 'मङ्गलार्थम्'—सिद्ध-शब्द मङ्गलार्थक है। महाभाष्यके इस प्रतीकको लेकर भर्तृहरि लिखते हैं—

"निरपकृष्टाभिमतार्थसिद्धिर्मङ्गलम्। तदर्थं च यदुपादीयते तदपि तदर्थत्वान्मङ्गलमित्याख्यायते।—बिना किसी त्रुटिके अभिप्रेत अर्थकी सिद्धिको 'मङ्गल' कहते हैं और मङ्गलार्थ जिस शब्दका ग्रहण किया जाता है, वह भी तदर्थ होनेके कारण 'मङ्गल' कहलाता है।" इस प्रकार सिद्ध-शब्दका अर्थ मङ्गलमूर्ति या गणपति तो हो सकता है, वर्णमालाका बोधक नहीं। वैदिक बृहस्पति[११] ही लौकिक गणेश हैं, इसमे संदेह नहीं। वेदमे गणपति और इन्द्रकी एकताके भी वचन मिलते है। यथा—

नि षु सीद गणपते गणेषु त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम्।
न ऋते त्वत् क्रियते किं चनारे महामर्कं मघवञ्चित्रमर्च ॥
(ऋग्वेद १०।११२।९)

---

९. सप्तरश्मि'—अ, क, च, ट, त, प, य—यही सात रश्मियाँ या वर्ण है, जिनसे अज्ञान दूर होता है—

अकारादिक्षपर्यन्ता कलास्ताः शब्दकारणम्।
मातरः शक्तयो देव्यो रश्मयश्च कलाः स्मृता ॥
(भट्टभास्कर)

१०. 'नित्य-पर्यायवाची सिद्धं शब्दः।' 'मङ्गलार्थम्' माङ्गलिक आचार्यो महतः शास्त्रौघस्य मङ्गलार्थं सिद्धशब्दमादितः प्रयुङ्क्ते।'
(पस्पशाह्निक)

११. भण्डारकरको भी इस सम्बन्धमें भ्रम हुआ। हाँ, गोपीनाथ रावने अवश्य बृहस्पति और गणेशकी एकताका प्रतिपादन अपने 'एलिमेंट्स आफ हिंदू आइकोनोग्राफी' नामक ग्रन्थके Vol I, Part 1, P. 45 में किया है—

'Bhandarkar is of the opinion that this reputation for wisdom was born of a confusion between Gaṇeśa and the Vedic god of wisdom, Bṛhaspati, while Rao identifies him with the celestial Guru Bṛhaspati himself. It is interesting to note here that Bṛhaspati, an important god in the Rig Veda is described as carrying the axe or 'golden hatchet', an attribute particularly ascribed to Gaṇeśa, and that he also was referred to as Gaṇapati'—'गणेश' [Alice Getty.]

'हे गणपति! मनुष्यगणोंमें आप जागरूक होकर उपस्थित हों। विज्ञोंका कहना है कि तुम लेखकगणों अथवा कल्पकोंकी प्रज्ञा या लेखन-सामर्थ्य हो। अरे! तुम्हारे बिना कोई कार्य नहीं किया जा सकता। अतः हे मघवन्! आप महान् श्रेष्ठ और विविध कर्म (जनोंके हृदयमें उपस्थित होकर) करें।'

वस्तुतः गणपतिका अर्थ है—'अक्षर[12]-गणके पालक।' यही ब्रह्मणस्पतिका भी अर्थ है। यास्क 'निरुक्त'मे लिखते हैं—'ब्रह्मणस्पतिः—ब्रह्मणः पाता वा पालयिता वा।' दुर्गाचार्यने इसपर लिखा है—'ब्रह्म'का अर्थ अन्न और ऋगादि वेद हैं। वर्षाके द्वारा ओषधियोंका निष्पादन करते हुए यह दोनोंका रक्षक बन जाता है।' 'ब्रह्म'को वेद कहते हैं। वेद त्रिधा विभक्त हैं—ओंकारात्मक, वर्णमालात्मक और संहितात्मक। भर्तृहरि कहते हैं—'प्रणवो हि वेदः', स हि सर्वशब्दार्थप्रकृतिः।—प्रणव ही वेद है, वही समग्र शब्दों और अर्थोंका मूल है।' पतञ्जलिकी उक्ति है—'सोऽयमक्षर-समाम्नायो वेदितव्यो ब्रह्मराशिः। 'महाभाष्य' —वर्णमाला ब्रह्मराशि है।'

'ब्रह्म'का अर्थ स्तुति या मन्त्र भी होता है। गणपति मन्त्रोंके उद्भावक हैं। इन्हें अग्निका ही एक रूप माना जाता है। मनुस्मृतिके टीकाकार मेधातिथि भी इसी मतको मानते हैं। वेदमें ओंकार और लोकमें स्वस्तिकका या श्रीगणेश-का लेखन-स्मरण प्रसिद्ध है। 'गणेशपुराण'का कथन है—

ओंकाररूपी भगवान् यो वेदादौ प्रतिष्ठितः।
यं सदा मुनयो देवाः स्मरन्तीन्द्रादयो हृदि॥
ओंकाररूपी भगवानुक्तस्तु गणनायकः।
यथा सर्वेषु कर्मसु पूज्यतेऽसौ विनायकः॥

शुक्लयजुर्वेद, अध्याय २३। १९में गणपतिसे सम्बद्ध अधोलिखित बहुचर्चित मन्त्र आता है—

'गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्।'

इसका वास्तविक अर्थ निम्नाङ्कित है—यजमान और यजमान-पत्नी प्रातः ब्रह्मणस्पति या सूर्यकी[13] स्तुति करते हुए कहते हैं—

'हे मेरे जीवनरक्षक सर्वव्यापी ईश्वर (मम वसो) मनुष्यादि गणोंमें गणपति हम आपका आह्वान करते हैं। प्रियोंमें प्रियपति हम आपका आह्वान करते हैं। निधियोंमें निधिपति हम आपका आह्वान करते हैं। तुम समस्त स्थावर-जङ्गमात्मक प्रजारूप गर्भ 'प्रजा वै पशवो गर्भः' (श० ब्रा० १३। २। ८) का पोषण करनेवाले हो (त्वं गर्भधम् आ अजासि)। मैं भी प्रजारूप गर्भका पोषक पालक हो जाऊँ (अहं गर्भधम् आ अजानि)।'

शुक्लयजुःसंहितामें भी वाचस्पति, बृहस्पति और ब्रह्मण-स्पति-सम्बन्धी अनेक कण्डिकाएँ मिलती हैं। तीनोंकी एकता भी भाष्यकारोंने प्रतिपादित की है। बृहस्पति या ब्रह्मणस्पति समस्त देवोंमें श्रेष्ठ, उनके पुरोहित अर्थात् अग्रगण्य हैं—

'त्रयो देवा एकादश त्रयस्त्रिꣳशाः सुराधसः। बृहस्पति-पुरोहिता देवस्य सवितुः सवे। देवा देवैरवन्तु मा॥' (२०। ११)

'त्रिगुण एकादश अर्थात् तैंतीस सुसम्पन्न देव, जिनमें बृहस्पति अग्रगण्य हैं, सविता या परमात्माकी आज्ञामें वर्तमान होकर अन्य देवोंके साथ हमारी रक्षा करें।'

'रक्षा णो ब्रह्मणस्पते।' (यजुर्वेद ३। ३०)

'हे ब्रह्मणस्पति! हमारी रक्षा करो।'

अथर्ववेदमें एक स्थानपर जातवेदस् ब्रह्मणस्पतिसे प्रार्थना की गयी है कि 'बच्चेके दो दाँत, जो पिता-माताको व्याघ्रके समान मारनेके लिये उद्यत हैं, आप उन्हें कल्याणकारक बना दें।'

यौ व्याघ्राववरूढौ जिघत्सतः पितरं मातरं च।
तौ दन्तौ ब्रह्मणस्पते शिवौ कृणु जातवेदः॥
(अथर्ववेद ६। १४०। १)

---

12. Coomarswamy attributes his reputation as 'Patron of Letters' to the double meaning of the word, Gaṇa, which, besides being the name of the followers of Śiva, is also the 'technical designation of early lists or collections of related works.—['गणेश' in 'Bulletin of the Boston Museum of Fine arts'. Vol. XXVI, P. 30, April 1928.—('गणेश' Alice Getty)।

१३. नेपालमें गणेशकी एक मूर्ति पायी जाती है, जिसका नाम 'सूर्य-गणपति' है।

अन्यत्र विविध प्रकारके राक्षसोंके नाशकी भी प्रार्थना की गयी है—

'येषां पश्चात्प्रपदानि पुरः पार्ष्णी. पुरोमुखा । खलजा. शकधूमजा उरुण्डा ये च मट्मटाः कुम्भमुष्का अयाशवः । तानस्या ब्रह्मणस्पते प्रतीबोधेन नाशय ॥' (अथर्व० ८ । ६ । १५)

बृहस्पति या गणपतिको वेदोंमे 'देवपुरोहित' कहा गया है । पुरोहित अग्निस्वरूप ही होता है । इसमे पॉच विघ्न-कारक शक्तियॉ विद्यमान रहती है । एक वाणीमे, एक पैरोंमे, एक त्वचामे, एक हृदयमे तथा एक उपस्थेन्द्रियमे । कुपित अग्निरूप पुरोहित राजाका निग्रह करता है और शान्त होने-पर अनुग्रह । सूनृतावाक्के द्वारा यजमान पुरोहितकी वाणीमे स्थित विघ्नको शान्त करता है, पादोदकसे पैरोंके विघ्नको । अलंकारोंसे त्वचामे विद्यमान, तर्पणसे हृदयमे स्थित और अनारुद्ध सुन्दर गृहप्रदान करके उपस्थके विघ्नको शान्त करता है । इस प्रकार शान्त हुआ अग्निरूप पुरोहित जैसे समुद्रभूमिको सुरक्षित रखता है, वैसे राजाका कल्याण करता है ।

'अग्निर्वा एष वैश्वानर. पञ्चमेनिर्यत् पुरोहित., तस्य वाच्येवैका मेनिर्भवति पादयोरेका त्वच्येका हृदय एकोपस्थ एका ··· · ·· ।' ऐतरेयब्राह्मण, ८ पञ्चिका, अध्या० ५ । २४—२७)

'बृहस्पतिर्हि वै देवानां पुरोहितः ।—बृहस्पति या अग्नि-स्वरूप गणपति देवोंके पुरोहित हैं ।' वे अशान्ततनु होकर कोई विघ्न न करे, अतः पञ्चोपचार-पूजनद्वारा हम उन्हें शान्ततनु बनावे—

'स एनं शान्ततनुरभिहुतोऽभिप्रीत. स्वर्गंलोकमभिवहति क्षत्रं च बलं च राष्ट्रं च विशं च ।' (ऐतरेय ब्राह्मण)

श्रीगणेशकी उत्पत्ति, स्वरूप एवं सम्प्रदाय

(लेखक—डॉ० श्रीश्यामाकान्तजी द्विवेदी, एम्० ए० [हिंदी, सस्कृत, दर्शन], बी० एड्०, व्याकरणाचार्य, पी-एच्० डी०)

गणेशजीकी उत्पत्तिके सम्बन्धमे अनेकों मत उपलब्ध होते है । संक्षेपमे यहॉ उन सभीका दिग्दर्शन कराया जा रहा है ।

(१) वैखानसागममे गणेशोत्पत्तिकी दार्शनिक व्याख्या की गयी है । इसके अनुसार 'अहकार-तत्त्व'से आकाशकी उत्पत्ति होती है और यह आकाश-तत्त्व ही 'गणेश' है । आकाश सर्वाधार है, अतः गणेशजी भी सर्वाधार हैं। आकाश या उसकी शब्द-तन्मात्रा ही 'गणेश' है । आकाश-तत्त्वसे ही सभी तत्त्व समुत्पन्न होते हैं और अन्ततः सभी उसीमे विलीन हो जाते हैं, अतः आकाशमे रूप-तन्मात्रा एव अग्नि-तत्त्व, रस-तन्मात्रा एव जल-तत्त्व, स्पर्श-तन्मात्रा एवं वायु-तत्त्व, गन्ध-तन्मात्रा एव पृथ्वी-तत्त्व—विश्वके समस्त मूलभूत उपादान निहित रहते है । इसीलिये आकाश सर्वाधार है । आकाश-तत्त्व गणेश-तत्त्व है, अतः गणेश-तत्त्वमे विश्वोपादानके सभी तत्त्व एवं उनकी समस्त सूक्ष्म तन्मात्राएँ भी सूक्ष्मरूपमे अवस्थित हैं । गणेश ही अनन्त ब्रह्माण्डोंके अधिष्ठाता देवता हैं ।

उपनिषदोंमे 'खं ब्रह्म' (आकाश ब्रह्म है) कहकर आकाशकी ब्रह्मरूपता सिद्ध की गयी है; अतः आकाशस्वरूप होनेसे गणेशजी भी निष्कल, निरञ्जन, निर्गुण, निराकार, अनवद्य, अद्वैत, अज, अखण्ड एवं अभेद परब्रह्म है ।

वैखानसागममे ही दूसरे स्थलपर आकाशको 'गणाधिपति' कहा गया है और यह भी उपर्युक्त तथ्योंकी सम्पुष्टि करता है ।

सांख्य-शास्त्रके अनुसार पुरुष एव प्रकृति (शिव एव पार्वती) (मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् । श्वेताश्वतर ४ । १०) के सयोगसे ही 'महत्तत्त्व'की उत्पत्ति होती है और 'अहकार-तत्त्व'से आकाशादिक तत्त्वोंकी ।

(२) तान्त्रिक विद्वानोंकी दृष्टिमे मूलाधारमे अवस्थित शक्ति (कुल-कुण्डलिनीके अतिरिक्त)का नाम 'गणेश' है । वे मूलाधार-शक्तिको ही गणेश-तत्त्व भी मानते हैं ।

(३) मत्स्यपुराणमे एक उपाख्यान है कि पार्वतीजीने अपने शरीरके अङ्गलेपसे एक क्रीडनक निर्मित किया । इसके सिरकी आकृति गजके सदृश थी । उन्होने उसे लाकर गङ्गाजलसे जैसेही उसका अभिषेक किया, वैसे ही वह प्राणवान् हो गया । उसे पार्वती एव गङ्गा—दोनोंने अपना पुत्र माना । यही पुत्र 'गणेश'के नामसे विख्यात हुआ ।

(४) लिङ्गपुराणके अनुसार देवोंने भगवान् शिवसे अनुरोध किया कि 'आप किसी एक ऐसी शक्तिका प्रादुर्भाव करें, जो कि सभी प्रकारके विघ्नोंका निवारण किया करे।' देवोंकी इस प्रार्थनाके अनुसार भगवान् शिवने स्वय ही 'गणेश'के रूपमे जन्म ग्रहण किया।

इस पुराणमे गणेशजीका भगवान् शिवके साथ तादात्म्य दिखाते हुए उनकी समस्त उपाधियाँ, विशेषताओ, अभिधानों एवं विशिष्ट सामान्य लक्षणोंका प्रयोग भी गणेशजीके लिये किया गया है। इसके साथ-ही-साथ शिव तथा गणेश—दोनोंमे अभिन्नता सिद्ध करनेके लिये भगवान् शिवमे गणेशजीकी भी विशेषताओं एवं लक्षणोको आरोपित किया गया है। 'वायुपुराण'मे भगवान् शिवको **'गजेन्द्रकर्ण', 'लम्बोदर', 'दंष्ट्रिन्'** (वा० पु० २४। १४७ ३०। १८३) आदि कहकर इसी तथ्यकी पुष्टि की गयी है। 'ब्रह्मपुराण'मे भी गणेशजीकी उपाधियोंका भगवान् शिवके लिये उपयोग करके दोनोंमे पूर्ण अभिन्नताका प्रतिपादन किया गया है।

(५) 'तैत्तिरीय ब्राह्मण'मे गणेशजीके वाहनको भगवान् शिवका भी वाहन कहकर तथा 'सौरपुराण'मे गणेशजीको साक्षात् शिव ही कहकर यह सिद्ध करनेकी चेष्टा की गयी है कि श्रीगणेशजी एवं भगवान् शिव दोनो एक ही है।

(६) 'ब्रह्मवैवर्तपुराण'के मतानुसार गणेशजीका श्रीविष्णुके साथ तादात्म्य है। भगवान् विष्णु शिवजीसे कहते है कि 'पार्वतीजीसे एक पुत्र होगा, जो समस्त विघ्नोंका नाश करेगा।' इतना कहकर भगवान् विष्णु एक बालकका रूप धारण करके शिवके आश्रममे गये। वे पार्वतीजीकी शय्यापर बालक-रूपमे लेट गये। पार्वतीजीने उन्हे अपना पुत्र माना। यही पुत्र 'गणेशजी'के नामसे लोकविश्रुत हुआ।

(७) 'शिवपुराण'के अनुसार पार्वतीजीने अपने शरीरके अनुलेपसे एक मानवाकृति निर्मित की और उसे आज्ञापित किया कि 'मैं स्नान करने जा रही हूँ। जबतक मैं नहीं कहूँ, तबतक तुम घरके अंदर किसीको मत आने देना। तुम गृहद्वारपर पहरा दो।'

यही गृहद्वार-रक्षक शक्ति 'गणेश'के नामसे अभिहित हुई और इन्हींके साथ भगवान् शिवका संग्राम हुआ।

(८) गणेश-सम्प्रदाय एव गणेशपुराणमे भगवान् गणपतिको 'महाविष्णु' एवं 'सदाशिव' कहा गया है और उन्हें साक्षात् परात्पर ब्रह्म माना गया है। वे ही प्रपञ्चकी सृष्टि, और स्थिति-संहारके आदिकारण हैं। उन्हींसे ब्रह्मा-विष्णु-महेशका प्रादुर्भाव हुआ है।

गणेशजीके स्वरूपका रहस्य

गणेशजीके पिता—गणेशके पिता हैं—'शिव'। 'शिव'का अर्थ है—कल्याण। पिता कल्याण है और पुत्र विघ्नान्तक और कल्याणका उपस्थापक। इसका रहस्य यह है कि शिवतत्त्वकी प्राप्तिके अनन्तर साधकके साधन-मार्गकी समस्त विघ्न-बाधाएँ स्वतः ही नष्ट हो जायँगी और विघ्न-बाधाओंके नष्ट होते ही साधकको अनन्त ऋद्धियाँ एवं सिद्धियाँ प्राप्त हो जायँगी। शिवत्व प्राप्त होनेपर मायिक बन्धनरूपी विघ्नोंके महाध्वंसरूप गणेशका प्रादुर्भाव होगा।

शिव— { गणेश=विघ्नोंकी अपसारणा
(ऋद्धि-सिद्धि) मङ्गलकी प्राप्ति।

दूसरा रहस्य यह है कि शिवतत्त्वको प्राप्त किये बिना (१) मायिक एवं प्रापञ्चिक बन्धनरूपी विघ्नोंसे मुक्ति, (२) मङ्गल-प्राप्ति, एव (३) साधनामे सिद्धि-प्राप्ति—ये असम्भाव्य हैं; क्योंकि पिताके बिना पुत्रका जन्म असम्भव है।

गणेशजीकी माता—पार्वतीजी गणेशजीकी माता है। पार्वती=पर्ववती। पर्व=१—ज्ञान, २—इच्छा, ३—क्रिया=त्रिपर्व। ज्ञान-इच्छा-क्रियारूप पर्वत्रयका रहस्य यह है कि पर्वत्रयमे सामरस्यकी प्रतिमूर्ति पार्वतीजी है। इन पार्वतीजीकी भाँति साधकोंके भी ज्ञान, इच्छा एवं क्रियारूप पर्वत्रयमे सामरस्यकी स्थिति आनेपर (आध्यात्मिक जगत्के सभी मायिक बन्धन-रूपी समस्त विघ्न-बाधाओंके ध्वंसरूप) गणेशका जन्म होगा। अर्थात् पर्वत्रयमें सामरस्य आनेपर समस्त विघ्न-बाधाएँ विनष्ट हो जायँगी। (पार्वतीजीद्वारा गणेशजीके जन्मका आध्यात्मिक रहस्य यही है।)

गणेशके भ्राता—षडानन गणेशजीके भ्राता हैं, शिवके पुत्र है। स्कन्द भौतिक तत्त्वसे (रेतसूसे) उत्पन्न हुए है; किंतु गणेश शक्तिके मानस-संकल्पसे (अभौतिक तत्त्वसे) प्रकट हुए हैं। इसी कारण अग्रज होनेपर भी 'स्कन्द' गणेशजीसे पराजित हो गये। इसमे भी रहस्य है। भौतिकवाद कितना भी अग्रज क्यो न हो; किंतु अध्यात्मवादरूपी अनुजसे जीत नहीं सकता। स्कन्द देवताओंकी सेनाके सेनापति (भौतिक शक्ति=

शारीरिक शक्ति=क्षत्रियबलके स्वामी) हैं; किंतु गणेश आध्यात्मिक शक्ति, अध्यात्मबल, बुद्धिबलके स्वामी हैं। वे बुद्धिके देवता हैं, देवोंके अध्यक्ष हैं। दोनोंमें संघर्ष कराकर एव गणेशकी स्कन्दपर विजय दिखलाकर पुराणकारने यह रहस्यार्थ प्रतिपादित किया है कि परात्पर ब्रह्म शिवके दो पुत्र है—(१) स्थूल एवं (२) सूक्ष्म। एकमे जडताका प्राधान्य है तो दूसरेमे चेतनताका। एकमे शारीरिक बलकी विशिष्टता है तो दूसरेमे आत्मबलकी। एक विश्वकी विजय (भू-परिक्रमाका उपाख्यान देखिये) अपने शारीरिक पुरुषार्थसे करनेमे निष्ठा रखता है तो दूसरा श्रद्धा-भक्तिसे। एक शरीरप्रधान है तो दूसरा आत्मप्रधान। ये दोनो एक ही पिताकी दो सताने है, किंतु इनमें दूसरी सतान ही सदा विजयिनी होगी। ठीक ही कहा गया है—

'धिग्बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजोबलं बलम्॥'
(वा० रा० १। ५६। २३)

षडानन—अर्थात् पाँच इन्द्रियाँ और एक मन। भौतिक जगत् षडाननतक ही सीमित है और उसकी अन्तिम शक्ति—सेना एवं सेनापति (शारीरिक शक्ति=भौतिक शक्ति) में प्रतिष्ठित है। देवता भोगी होते हैं, तपस्वी नहीं, अतः 'षडानन'से परे नहीं जा सकते। 'षडानन' (५+१) देवोंके सुरक्षा-प्रहरी है। देवताओंमे षडानन (५+१) से परे जा सकनेकी क्षमता नहीं, किंतु गणेश षडाननसे परे हैं। वे देवोंके सेनापति (भौतिक शक्तिके संरक्षक-प्रहरी) नहीं हैं, प्रत्युत उनके अग्रगण्य है।

गणेशकी पत्नियाँ—गणेशजीकी पत्नियोंके नाम हैं—(१) ऋद्धि-सिद्धि एव (२) बुद्धि। इसका रहस्य यह है कि साधना-क्षेत्रमे शिवत्वकी प्राप्तिके अनन्तर विघ्नोंके नाशक (गणेश) बननेकी क्षमता आ जाती है और तब सभी ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ साधकके लिये स्वपत्नीवत् स्ववशवर्तिनी हो जाती हैं। गणेशजीकी पत्नियाँ विश्वरूपकी कन्याएँ है। इसका रहस्यार्थ निम्न है—गणेश विश्वकी समस्त नाम-रूपोत्पन्न मायात्मिका मोहिका शक्तियोंके स्वामी हैं। अर्थात् साधक जबतक नाम-रूपात्मक जगत् एव उसकी मायात्मिका शक्तियोंपर अधिकार नहीं कर लेता, तबतक वह 'ऋद्धि-सिद्धि-बुद्धि' का स्वामी तथा 'क्षेम' और 'लाभ'का पिता (स्वामी) नहीं बन सकता।

गणेशके पुत्र—गणेशके पुत्रोंके नाम हैं—'क्षेम' एवं 'लाभ'। इसका रहस्य यह है कि साधना-क्षेत्रमे सनातन क्षेम एवं सनातन लाभ प्राप्त करनेके लिये गणेश अर्थात् शिवपुत्र (शिवत्व-प्राप्त) बनना ही पड़ेगा; अन्यथा 'क्षेम' एव 'लाभ'की प्राप्ति सम्भव नहीं है।

गणेशकी पराजय—

शिव-गणेश-सग्राममे गणेशजीकी पराजयका रहस्यार्थ यह है कि अकेली 'शक्ति' या उसका एक-एक तेजोंश शिवसे पृथक् रहकर पूर्ण विजयी नहीं हो सकता। शक्ति शिवसे रहित होनेपर निराधार हो जाती है। शिवपुत्रकी मृत्यु एवं शिवका पश्चात्ताप यह द्योतित करता है कि शिव भी शक्तिसे रहित होकर जो कार्य करेंगे, वह अपूर्ण एवं अनर्थकारी होगा। (अर्थात् शक्तिसे रहित शिव भी अपूर्ण हैं।) मत्स्येन्द्रनाथने ठीक ही कहा है—

'न शिवेन विना शक्तिर्न शक्तिरहितः शिवः[1]।'
'शिवोऽपि शवतां याति कुण्डलिन्या विवर्जितः[2]॥'
'शिवोऽपि शक्तिरहितः कर्तुं शक्तो न किंचन[3]॥'

गाणपत्य सम्प्रदाय—

हिंदुओंके अनेक सम्प्रदाय हैं। उसीमे एक गाणपत्य सम्प्रदाय भी है। गाणपत्य सम्प्रदायके छः भेद हैं—(१) महागणपति-सम्प्रदाय, (२) हरिद्रागणपति-सम्प्रदाय, (३) उच्छिष्टगणपति-सम्प्रदाय, (४) नवनीतगणपति-सम्प्रदाय, (५) स्वर्णगणपति-सम्प्रदाय एव (६) संतान-गणपति-सम्प्रदाय।

इस सम्प्रदायका प्रधान ग्रन्थ 'गणेशपुराण' है। गणेशजीसे सम्बद्ध अनेकों उपनिषदें भी प्राप्त होती हैं और पुराणोंमे भी उनका माहात्म्य प्रतिपादित है।

'कपिल-तन्त्र'मे कहा गया है कि 'विष्णु, महेश्वरी, सूर्य एव शिव क्रमशः आकाश, अग्नि, वायु एव पृथ्वीके स्वामी हैं; किंतु गणेशजी तो साक्षात् जीवनके स्वामी हैं'—

आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः॥

अतएव सभी देवोके पूर्व गणेशजीकी पूजा की जाती है।

---

१. मत्स्येन्द्रनाथ—कौलज्ञान-निर्णय।
२. देवीभागवतपुराण।
३. सिद्धसिद्धान्तसग्रह।

भगवान् ब्रह्मणस्पति

(लेखक—श्रीरामलाल)

वेद विश्वका आदि वाङ्मय है। वेदोंमें गणपतिका 'ब्रह्मणस्पति'-रूपमें निरूपण उपलब्ध होता है। समस्त मङ्गलोंके परम निधान श्रीगणपति ब्रह्मणस्पति-रूपमें सर्वज्ञाननिधि हैं, सर्वश्रेष्ठ देव हैं, समस्त वाङ्मयके अधिष्ठाता कवि हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद आदि तथा ऐतरेय ब्राह्मण और गणपत्युपनिषद् आदिमें ब्रह्मणस्पति गणेशका विशद तत्त्वाङ्कन मिलता है। श्रीब्रह्मणस्पतिके वैदिक तत्त्वाङ्कनका निदर्शन पुराणोंमें भी किया गया है। मुद्गलपुराणके अष्टम खण्डके धूम्रवर्ण-चरित्रके प्रसङ्गमें भगवान् शिवने सर्वपूज्य, माङ्गल्येश, विघ्नेश्वर, सिद्धिबुद्धि-पति ब्रह्मणस्पतिकी वन्दना की है—

सिद्धिबुद्धिपतिं वन्दे ब्रह्मणस्पतिसंज्ञितम्।
माङ्गल्येशं सर्वपूज्यं विघ्नानां नायकं परम्॥

* * *

मातापितायं जगतां परेषां
तस्यापि माता जनकादिकं न।
श्रेष्ठं वदन्ते निगमाः परेशं
तं ज्येष्ठराजं प्रणमामि नित्यम्॥

(मुद्गलपुराण, खण्ड ८२। ४९। १७, ३०)

'ये गणेशजी जगत्में अन्य सभी लोगोंके माता-पिता हैं, किंतु इनका कोई माता-पिता नहीं है। वेद इन परमेश्वरको सबमें श्रेष्ठ कहते हैं। मैं इन ज्येष्ठराज गणेशको नित्य प्रणाम करता हूँ।'

श्रीगणेशजी परब्रह्म परमात्मा हैं। श्रीविष्णुने पार्वतीजीके प्रति भगवान् गणेशकी ज्ञाननिर्वाणरूपता एवं परब्रह्मरूपताका वर्णन करते हुए उनकी वन्दना की है—

ज्ञानार्थवाचको गश्च णश्च निर्वाणवाचकः।
तयोरीशं परं ब्रह्म गणेशं प्रणमाम्यहम्॥

(ब्रह्मवैवर्त, गणपति० ४४। ८७)

गणेश-आगममें सात करोड़ मन्त्र कहे जाते हैं। इसका रहस्य भगवान् शिव और कुछ-कुछ ब्रह्माजीको विदित है। श्रीब्रह्माजीकी व्यासजीके प्रति स्वीकृति है—

'सप्तकोटिमहामन्त्रा गणेशस्यागमे स्थिताः।'

(गणेशपुराण, उपासना० ११। ३)

यद्यपि वेदोंमें भगवान् ब्रह्मणस्पतिके मन्त्र आदि वर्णित हैं तथा उनके स्वरूपका अभिव्यञ्जन प्राप्त होता है, तथापि वेदज्ञ भी उनका तत्त्व नहीं समझ पाते। देवताओंने उनकी स्तुतिमें अपना मत इस प्रकार अभिव्यक्त किया है—

नमो नमो विश्वभृतेऽखिलेश
नमो नमः कारणकारणाय।
नमो नमो वेदविदामदृश्य
नमो नमः सर्ववरप्रदाय॥

(गणेशपुराण, उपासना० ४०। ४४)

'अखिलेश्वर! आप विश्वका भरण-पोषण करनेवाले हैं; आपको बारंबार नमस्कार है; आप कारणोंके भी कारण हैं; आपको अनेक बार नमस्कार है। वेदवेत्ताओंकी भी दृष्टि आपतक नहीं पहुँच पाती है; आपको नमस्कार है, नमस्कार है। सबको वर देनेवाले गणेश! आपको बारंबार नमस्कार है।'

वेदज्ञ उनके तत्त्वका दर्शन नहीं कर पाते हैं; उनका तात्त्विक साक्षात्कार उन्हींकी कृपापर निर्भर है। महात्मा श्रीविनायककी महिमा बड़ी भारी है; वे महान् पुरुषोंमें भी सबसे बड़े महात्मा हैं—इसका स्पष्टीकरण भगवती पार्वतीके प्रति कहे गये भगवान् श्रीकृष्णके वचनसे हो जाता है।

शृणु देवि महाभागे वेदोक्तं वचनं मम।
यच्छ्रुत्वा हर्षिता नूनं भविष्यसि न संशयः॥
विनायकस्ते तनयो महात्मा महतां महान्॥

(ब्रह्माण्डपुराण, मध्य० तृतीय उपोद्घात ४२। ३०)

'गणपत्युपनिषद्'में अपने परब्रह्मस्वरूपकी व्यापकतापर स्वयं गणेशजीने प्रकाश डाला है कि 'जिनका नमन कर मुनिलोग निर्विघ्नतासे उस पदको प्राप्त होते हैं और जो 'गणेशोपनिषद्'से जाना जाता है, मैं वही सर्वव्यापी ब्रह्म हूँ'—

यं नत्वा मुनयः सर्वे निर्विघ्नं यान्ति तत्पदम्।
गणेशोपनिषद्वेद्यं तद् ब्रह्मैवास्मि सर्वगम्॥

(गणपत्युपनिषद्)

श्रुतिप्रतिपाद्य भगवान् गणपति—ब्रह्मणस्पति आदि-अन्तसे रहित, स्वाधीन और नित्य कालस्वरूप हैं। वे

दिग्बन्धनसे अनवच्छिन्न सर्वव्यापक सम्पूर्ण परमात्मा है। भगवान् गणपति प्रत्यक्ष तत्त्व हैं, कर्ता, धर्ता और हर्ता हैं। सब रूपोंमे विद्यमान ब्रह्म है, आत्मा है। उनका औपनिषद स्तवन इस प्रकार है—

'ॐ नमस्ते गणपतये। त्वमेव प्रत्यक्षं तत्त्वमसि। त्वमेव केवलं कर्त्तासि। त्वमेव केवलं धर्तासि। त्वमेव केवलं हर्तासि। त्वमेव सर्वं खल्विदं ब्रह्मासि। त्वं साक्षादात्मासि नित्यम्।'

(गणपत्यथर्वशीर्ष उप० १)

श्रीगणेशजी अव्यय हैं, अविनाशी और अगम हैं, वे निर्गुण-निराकार है, मन और वाणीसे परे सच्चिदानन्द-स्वरूप परब्रह्म हैं, अपने स्वजनों—उपासकोंपर कृपा करनेके लिये वे साकार हो जाते हैं। ब्रह्मा-शिव आदि भी उन्हें तत्त्वतः नही जानते है, और न शेष ही उनकी महिमाका पूर्णरूपसे वर्णन कर पाते हैं—

यस्य स्वरूपं न विदुर्ब्रह्मेशानादयः सुराः।
सहस्रवदनो यस्य महिमानं न च क्षमः॥
यावद्विशेषविदपि प्रवक्तुं राजसत्तम॥

(गणेशपुराण, उपासना खण्ड ९। ३१-३२)

श्रीगणेशके उपासक भी उनको 'निर्गुण' ही कहते हैं। उनका स्वरूप वर्णन करनेमे कोई भी समर्थ नहीं कहा जा सकता है—

गणेशस्य स्वरूपं न वक्तुं केनापि शक्यते।
तथाप्युपासनासक्तैर्निर्गुणं तन्निरूप्यते॥

(गणेशपुराण, उपासना० १। १३)

भगवान् गणपति परमानन्द हैं, वे ही परम गति हैं। वेद-शास्त्रार्थदर्शी उन्हे 'परब्रह्म' कहते हैं। ब्रह्माके वचन हैं—

यमाहुः परमानन्दं यमाहुः परमां गतिम्।
यमाहुः परमं ब्रह्म वेदशास्त्रार्थदर्शिनः॥

(गणेशपुराण, उपासना० १०। २७)

भगवान् गणनायक ब्रह्मणस्पति, सत्, असत्, व्यक्त और अव्यक्त—सब कुछ हैं। वे अजन्मा और निर्विकल्प हैं, लौकिक आनन्दसे परे, अद्वैत एवं परमानन्दपूर्ण है; निराकार, सर्वश्रेष्ठ, निर्गुण और इच्छारहित परब्रह्मस्वरूप है—

अजं निर्विकल्पं निराकारमेकं
निरानन्दमद्वैतमानन्दपूर्णम्।
परं निर्गुणं निर्विशेषं निरीहं
परब्रह्मरूपं गणेशं भजेम॥

(गणेशपु०, उपा० १३। ३)

भगवान् वामनने श्रीगणेशजीकी महिमाका वर्णन करते समय उनके तात्त्विक स्वरूपका अभिव्यञ्जन करते हुए उन्हें 'वेदवन्दित' कहा है। श्रीवामनके मन्त्रजपके प्रभावसे भगवान् ब्रह्मणस्पति श्रीगणेशजीने उन्हे साक्षात् दर्शन दिया था। श्रीवामनने उनकी स्तुति की—

अव्यक्तं व्यक्तहेतुं निगमनुततनुं सर्वदेवाधिदेवं
ब्रह्माण्डानामधीशं जगदुदयकरं सर्ववेदान्तवेद्यम्।
मायातीतं स्ववेद्यं स्थितिविलयकरं सर्वविद्यानिधानं
सर्वेशं सर्वरूपं सकलभयहरं कामदं कान्तरूपम्॥

(श्रीगणेशपुराण, क्रीडा० ३१। १४)

'जो अव्यक्तस्वरूप तथा व्यक्त जगत्के हेतु है; जिनका श्रीविग्रह वेदवन्दित है; जो सम्पूर्ण देवताओंके भी अधिदेव हैं; जो अखिल ब्रह्माण्डोंके नायक, जगत्के स्रष्टा, सर्ववेदान्तवेद्य, मायातीत, स्वसवेद्य, सृष्टि, स्थिति और संहारके कर्ता हैं; जो समस्त विद्याओंकी निधि, सर्वेश्वर, सर्वरूप, सर्वभयहारी, मनो-वाञ्छित वस्तु देनेवाले तथा कमनीयरूपधारी हैं; उन श्रीगणेशजीकी मैं वन्दना करता हूँ।'

श्रीब्रह्मणस्पति समस्त स्तुतियोंके आश्रय हैं। वेदमे उनका निरूपण—तत्त्वाङ्कन विद्यमान रहनेपर भी वे वेदोंकी पहुँचके बाहर हैं—वेदातीत है—

'पदं स्तुतीनामपदं श्रुतीनाम्'

(शारदातिलक १३। १४२)

भगवान् ब्रह्मणस्पति गणेशजी प्रत्यक्ष ब्रह्म हैं, वे ज्ञान-विज्ञानमय हैं। स्कन्दपुराणके काशीखण्डमे उनकी स्तुति है—'हे परमकारण! आप कारणोंके भी कारण हैं, वेदके विद्वानोंद्वारा सदा एकमात्र आप ही जाननेयोग्य हैं। आप ही वेद-वाणीमें अनुसंधान करनेयोग्य, अनिर्वचनीय तत्त्व हैं। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् आपके दिव्य स्वरूपका एक अंश है तथा आप वाणीके अविषय हैं'—

त्वं कारणं परमकारण कारणानां
वेद्योऽसि वेदविदुषां सततं त्वमेकः।
त्वं मार्गणीयमसि किंचन मूलवाचां
वाचामगोचर चराचर दिव्यमूर्ते॥

(स्कन्दपुराण, काशीखण्ड ५७। ३०)

श्रीशुकदेवजीने श्रीमद्भागवतमें ब्रह्मतेजके इच्छुक उपासकोंके लिये ब्रह्मणस्पतिकी उपासना युक्तिसंगत बतायी है। ब्रह्मणस्पति वेदपति बृहस्पति हैं—गणपति हैं—

'ब्रह्मवर्चसकामस्तु यजेत ब्रह्मणस्पतिम्।'
(श्रीमद्भागवत २।३।२)

परब्रह्म श्रीगणेशजी ब्रह्मणस्पतिरूपमें ऋक्-यजुः-साम—तीनों वेदोंके सार हैं—

'त्रयीवेदसारं परब्रह्मपारम्।'
(गणेशपुराण, उपासना० १३।९)

ब्रह्माजीका गणेशके प्रति कथन है कि "आपका नाम वेदोंका मूलभूत ओंकाररूप है और आप गणोंके स्वामी हैं, इसलिये आपका नाम 'गणेश' होगा।"

त्वन्नाम बीजं प्रथमं ··
ओंकाररूपं श्रुतिमूलभूतम्।
यतो गणानां त्वमसीह ईशो
गणेश इत्येव तवास्तु नाम॥
(गणेशपुराण, उपा० ४५।८)

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेदमें ब्रह्मणस्पतिके सम्बन्धमें जो उल्लेख मिलता है, उससे उनके गणपतिरूपका तात्पर्य स्पष्ट हो जाता है—

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिःसीद सादनम्॥
(ऋग्वेद २।२३।१)

उपर्युक्त मन्त्रके देवता ब्रह्मणस्पति हैं। ये ब्रह्मणस्पति वेदज्ञानके पालक परब्रह्म परमेश्वर हैं, गणोंमें प्रमुख हैं, उनके स्वामी हैं, कवियोंमें सर्वश्रेष्ठ कवि हैं, परम यशस्वी तथा कीर्तनीय हैं; ये प्रत्येक स्थानमें विद्यमान हैं। महामति सायणने उपर्युक्त मन्त्रके भाष्यमें ब्रह्मणस्पति देवताका रूप इस प्रकार व्यक्त किया है—

'हे ब्रह्मणस्पते ब्रह्मणोऽन्नस्य परिवृढस्य कर्मणो वा पते पालयितः गणानां देवादिगणानां सम्बन्धिनं गणपतिं स्वीयानां पतिं कवीनां क्रान्तदर्शिनां कविम् उपमश्रवस्तमम् उपमीयतेऽनयेत्युपमा सर्वेषामन्नानामुपमान श्रवोऽन्नं यस्य स तथोक्तः अतिशयेनोपमश्रवाः उपमश्रवस्तमः ········ज्येष्ठराजं ज्येष्ठाः प्रशस्यतमाः तेषां मध्ये राजन्तं ब्रह्मणां मन्त्राणां स्वामिनं त्वा त्वां हवामहे अस्मिन् कर्मण्याह्वयामः किंच नोऽस्माकं स्तुतीः आशृण्वन् त्वम् ऊतिभिः पालनैर्हेतुभूतैः सादनं सीदन्त्यस्मिन्निति सदनं यज्ञगृहमासीदोपविश।'

अभिप्राय यह है कि 'हे ब्रह्मणस्पति! आप देवोंमें गणपति और कवियों—क्रान्तदर्शी विद्वानोंमें सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। आपका अन्न सर्वश्रेष्ठ और उपमानभूत है। आप ज्येष्ठराज—प्रशंसनीय लोगोंमें राजमान और मन्त्रोंके स्वामी हैं। हम आपको बुलाते हैं। आप हमारी स्तुति सुनकर आश्रय प्रदान करनेके लिये यज्ञगृहमें आसन ग्रहण कीजिये।'

'ऐतरेयब्राह्मण'में इसी अभिप्रायका मन्त्र उपलब्ध होता है—

'गणानां त्वा गणपतिं हवामह इति ब्राह्मणस्पत्यं ब्रह्म वै बृहस्पतिर्ब्रह्मणैवैनं तद्भिषज्यति।'
(४।४।२१)

भगवान् ब्रह्मणस्पति ही इस मन्त्रके प्रकाशमें गणपति हैं, बृहस्पति हैं।

ब्रह्मणस्पति सुगोपा—उत्तम संरक्षक हैं; जिसकी वे रक्षा करते हैं, वह किसीके भी द्वारा उत्पीड़ित और संतापित नहीं हो सकता—

न तमंहो न दुरितं कुतश्चन नारातयस्तितिरुर्न द्वयाविनः।
विश्वा इदस्माद् ध्वरसो वि बाधसे यं सुगोपा रक्षसि ब्रह्मणस्पते॥
(ऋग्वेद २।२३।५)

'हे सुरक्षक ब्रह्मणस्पति! जिसकी आप रक्षा करते हैं, उसे कोई दुःख-कष्ट नहीं दे सकता, पाप उसे पीड़ित नहीं कर सकते, शत्रु उसे मार नहीं सकते, वञ्चक उसे सता नहीं सकते। हे देव! उसके लिये आप समस्त हिंसकोंको दूर भगा देते हैं।'

ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके अठारहवें सूक्तके देवता ब्रह्मणस्पति हैं। इस सूक्तका दूसरा मन्त्र भगवान् गणपतिके सिद्धिदाता और पुष्टिप्रदान करनेवाले गुणका द्योतन करता है। इसमें श्रीगणेशका माङ्गलिक रूप स्पष्ट हो जाता है—

यो रेवान् यो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्धनः। स नः सिषक्तु यस्तुरः॥ (ऋग्वेद १।१८।२)

उपर्युक्त मन्त्रका भाष्य सायणाचार्यद्वारा प्रस्तुत है—

'यो ब्रह्मणस्पतिः रेवान् धनवान् यश्चामीवहा रोगाणां हन्ता वसुवित् धनस्य लब्धा पुष्टिवर्धनः पुष्टेर्वर्धयिता यश्च तुरः त्वरोपेतः शीघ्रफलदः स ब्रह्मणस्पतिर्नोऽस्मान् सिषक्तु सेवतां परिगृह्यानुगृह्णात्वित्यर्थः ।'

अभिप्राय यह है कि जो सम्पत्तिशाली, रोगापसारक, धनदाता, पुष्टिवर्धक और शीघ्र फलदाता है, वे ही ब्रह्मणस्पति हमलोगोंपर अनुग्रह करें ।

शुक्लयजुर्वेदका निम्न उद्धृत मन्त्र भगवान् गणेशकी पूजामें विद्वानों तथा शास्त्रज्ञोंद्वारा प्रयुक्त होता है—

'गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳहवामहे वसो मम । आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ॥'

(२३ । १९)

उपर्युक्त मन्त्रद्वारा आवाहित तथा पूजित गणेश—भगवान् ब्रह्मणस्पति गणपति, प्रियपति—स्वामी अथवा सर्वनियन्ता परमेश्वर और निधिपतिरूपमें स्वीकृत हैं। किसी-किसी भाष्यकारके मतसे उपर्युक्त मन्त्रका यह अर्थ विदित होता है कि 'हे परमदेव गणेशजी ! आपको हम समस्त गणोंका पति स्वीकार करते हैं, आपको प्रिय पदार्थों—प्राणियोंका पालक और समस्त सुखनिधियोंका निधिपति स्वीकार करते हैं । आप सृष्टिको उत्पन्न करनेवाले हैं, हम—जीवात्मा हिरण्यगर्भको धारण करनेवाले—संसारको अपने-आपमें धारण करनेवाली प्रकृतिके भी स्वामी आपको प्राप्त हों।'

'सामवेद'के एक मन्त्रमें भगवान् ब्रह्मणस्पतिका उल्लेख उपलब्ध होता है, जिसमें उपासकद्वारा उनकी प्राप्तिकी प्रार्थना की गयी है—

'प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।'

(५६)

मन्त्रका आशय है कि ब्रह्माण्डके पालक ईश्वर ब्रह्मणस्पति और वाग्देवता—भगवती वाणी हमें प्राप्त हों। यही मन्त्र ऋग्वेद १ । ४० । ३ में भी मिलता है ।

भगवान् ब्रह्मणस्पतिकी स्तुति ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शेष, वेद तथा वेदज्ञोंके वशकी बात नहीं है। साक्षात् श्रीविष्णुके वचन हैं—'ईश ! मैं सनातन ब्रह्मज्योतिःस्वरूप आपका स्तवन करना चाहता हूँ, पर आपके अनुरूप निरूपण करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ । शेष अपने सहस्रों मुखोंसे भी आपकी स्तुति करनेमें असमर्थ हैं । आपके स्तवनमें न पञ्चमुख महेश्वर समर्थ हैं न चतुर्मुख ब्रह्मा; न सरस्वतीकी शक्ति है और न मैं ही समर्थ हूँ । आपका स्तवन करनेमें चारों वेद भी समर्थ नहीं हैं, फिर उन वेदवादियोंकी क्या गणना है ?'

ईश त्वां स्तोतुमिच्छामि ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ।
निरूपितुमशक्तोऽहमनुरूपमनीहकम् ॥
त्वां स्तोतुमक्षमोऽनन्तः सहस्रवदनेन च ।
न क्षमः पञ्चवक्त्रश्च न क्षमश्चतुराननः ॥
सरस्वती न शक्ता च न शक्तोऽहं तव स्तुतौ ।
न शक्ताश्च चतुर्वेदाः के वा ते वेदवादिनः ॥

(ब्रह्मवैवर्त० गणपति० १३ । ४१, ४९-५०)

आद्यदेव वेदप्रतिपाद्य ब्रह्मणस्पति भगवान् गणपतिका ज्ञान केवल स्वानुभवसे होता है तो हो जाता है। बड़े-बड़े स्वानुभवी संत-महात्माओं, ऋषि-मुनियों और आत्मवादियोंने स्वानुभवमें उनके स्वरूपका साक्षात्कार किया है । वे ओंकारस्वरूप परमात्मा हैं । महात्मा ज्ञानेश्वरने श्रीमद्भगवद्-गीताकी टीका 'ज्ञानेश्वरी'में श्रीगणेशजीके माङ्गलिक स्वरूपको स्मरण करते हुए उनकी स्तुति की है ।—

'ॐ नमो श्रीआद्या । वेद प्रतिपाद्या । जय जय स्वसंवेद्या आत्मरूपा । देवा तूंचि गणेशु । सकलमति प्रकाशु ।'

(१ । १-२)

आशय यह है कि 'हे ओंकारस्वरूप परमात्मा ! वेद ही आपका प्रतिपादन कर सकते हैं । मैं आपको नमस्कार करता हूँ । आप ऐसे आत्मस्वरूप हैं, जिनका ज्ञान केवल स्वानुभवसे ही हो सकता है । मैं आपका जय-जयकार करता हूँ ।'

भगवान् ब्रह्मणस्पति श्रीगणपति—सिद्धि-बुद्धिके स्वामी वेदप्रतिपाद्य श्रीगणेश अचिन्त्य, अनन्त और अव्यक्त होकर भी अपने उपासकोंपर कृपा करनेके लिये उनके ध्यान, चिन्तन एवं उपासनामें साकार हो जाते हैं ।

भगवान् श्रीकृष्ण ही गणेशरूपमें

(लेखक—श्रीदेवदत्तजी मिश्र, काव्य-व्याकरण-सांख्य-स्मृतितीर्थ)

इस संसारमें परब्रह्मस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णके अतिरिक्त किसी वस्तुका अस्तित्व नहीं है । भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें स्वयं कहा है—

मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनंजय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥
(७ । ७)

अर्थात्—'मेरे सिवा जगत्में किसी भी वस्तुकी सत्ता नहीं है । सूतमें गुँथी हुई मालाके मणियोंकी तरह सभी वस्तुएँ मुझमें गुँथी हुई हैं ।' तात्पर्य यह है कि जैसे सूत मणियोंसे ढक जानेके कारण दृष्टिगोचर नहीं होता, उसी तरह मायासे ढके रहनेके कारण मैं किसीके दृष्टिगोचर नहीं होता ।

'मनुष्य अपनी श्रद्धाके अनुसार मेरे जिस-जिस स्वरूपकी उपासना करता है, उसी-उसी स्वरूपमें उसकी श्रद्धाको मैं बढ़ा देता हूँ और वह अपनी श्रद्धाके अनुसार मेरेद्वारा विहित फलको प्राप्त करता है ।' यथा—

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥
स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान् मयैव विहितान् हि तान् ॥
(गीता ७ । २१-२२)

'विष्णुसहस्रनाम'में भीष्मपितामहने भी कहा है—

नमः समस्तभूतानामादिभूताय भूभृते ।
अनेकरूपरूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे ॥

अर्थात् 'मैं समस्त प्राणियोंके आदिभूत, इस पृथ्वीके आधारभूत, अनेक रूपोंको धारण करनेवाले तथा सर्वसमर्थ भगवान् विष्णुको नमस्कार करता हूँ ।' इसलिये यह समझना चाहिये कि सब देवताओंके रूपमें भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं । इससे यह भी स्पष्ट ज्ञात होता है कि श्रीकृष्ण ही श्रीगणेशके रूपमें हैं ।

इनके आविर्भावके विषयमें ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके गणपति-खण्डमें विस्तृत कथा मिलती है । जैसे भगवान् श्रीकृष्ण परब्रह्मस्वरूप होनेसे अनादि और अनन्त हैं, वैसे ही अनादि शक्ति जगन्माता दुर्गा हैं; क्योंकि ये भी प्रकृतिस्वरूपा हैं । पर्वतराज हिमालयकी पुत्रीरूपसे प्रकट होनेके कारण इनका नाम 'पार्वती' हुआ । अतः महर्षि नारदकी प्रेरणासे पर्वतराज हिमालयने अपनी पुत्री पार्वतीका दाम्पत्य-सम्बन्ध परब्रह्मके अंशस्वरूप भगवान् शंकरके साथ स्थापित किया ।

भगवान् विष्णुकी शक्ति महालक्ष्मी, ब्रह्माकी शक्ति सरस्वती और शिवकी शक्ति पार्वती—ये तीनों शक्तियाँ प्रकृतिस्वरूपा हैं, इसलिये इनकी संतानोंका जन्म (गर्भसे प्राकृतिक रूपमें) नहीं होता; बल्कि इनका आविर्भाव होता है ।

पार्वतीके साथ शंकरका विवाह होनेके पश्चात् बहुत दिन बीत जानेपर भी जब कोई संतति नहीं हुई, तब स्त्री-स्वभावके कारण पार्वतीके मनमें बहुत दुःख हुआ । इन्होंने अपने दुःखका कारण भगवान् शंकरसे कहा—

त्रैलोक्यकान्तं कान्तं त्वां लब्ध्वापि न च मे सुतः ।
या स्त्री पुत्रविहीना च जीवनं तन्निरर्थकम् ॥
जन्मान्तरसुखं पुण्यं तपोदानसमुद्भवम् ।
सद्वंशजातः पुत्रश्च परत्रेह सुखप्रदः ॥
सुपुत्रः स्वामिनोऽशश्च स्वामितुल्यसुखप्रदः ।
कुपुत्रश्च कुलाङ्गारो मनस्तापाय केवलम् ॥
(ब्रह्मवै०, गणपतिखण्ड २ । २४—२६)

'आप-जैसे त्रिलोक-सुन्दर पतिके प्राप्त होनेपर भी मुझे पुत्र प्राप्त नहीं हुआ । जिस स्त्रीको पुत्र नहीं होता, उसका जीवन निरर्थक हो जाता है । तपस्या और दानजनित पुण्य जन्मान्तरमें सुख देनेवाले होते हैं । अच्छे वंशमें उत्पन्न हुआ पुत्र इस लोक और परलोकमें भी सुख-शान्ति देनेवाला होता है । सच्चरित्र पुत्र पतिका अंशस्वरूप होता है, इसलिये वह पतिके समान ही सुख देता है । यदि दुश्चरित्र पुत्र होता है तो वह कुलाङ्गार केवल मानसिक दुःख ही देता है ।'

पार्वतीने अपने दुःखका कारण बतलाया और उदास मनसे वे शिवजीके सामने मौन होकर बैठ गयीं । करुणा-वरुणालय शंकरने पार्वतीको उदास देखकर कहा—

शृणु पार्वति वक्ष्यामि तव भद्रं भविष्यति ॥
उपायतः कार्यसिद्धिर्भवत्येव जगत्त्रये ।

हरेराराधानं कृत्वा व्रतं कुरु वरानने ॥
व्रतं च पुण्यकं नाम वर्षमेकं करिष्यसि ।
(ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपति० ३ । १, ३)

'हे पर्वतराज हिमवान्की पुत्री ! मेरे वचनको ध्यान देकर सुनो, तुम्हारा कल्याण होगा । मैं तुमको उपाय बतलाता हूँ; क्योंकि तीनों लोकोंमें उपायसे ही कार्यमें सफलता प्राप्त होती है । ''वरानने ! भगवान् श्रीहरिकी आराधना करके पुण्यक-नामक श्रेष्ठ व्रतका एक वर्षतक पालन करो ।' 'इस व्रतको विधिपूर्वक करनेसे भगवान् गोपाङ्गनेश्वर श्रीकृष्ण ही तुमको पुत्ररूपमें प्राप्त होंगे । यद्यपि वे सब प्राणियोंके अधीश्वर हैं, फिर भी वे इस व्रतके अनुष्ठानसे तुमपर प्रसन्न हो तुम्हारे पुत्र बनकर तुम्हारे पास आयेंगे ।' यथा—

व्रतस्यास्य प्रभावेण स्वयं गोपाङ्गनेश्वरः ।
ईश्वरः सर्वभूतानां तव पुत्रो भविष्यति ॥
(ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपति० ५ । २७)

शिवजीके इस वचनको सुनकर सतीशिरोमणि भगवती पार्वतीने शास्त्रोक्त विधिके साथ श्रीकृष्णभगवान्की पूजा की और 'पुण्यक' नामक व्रत करना आरम्भ किया । व्रत निर्विघ्न समाप्त हो गया । समाप्तिके दिन उत्सव मनाया गया । पुरोहितको बुलाकर हवन कराया गया । लाखों ब्राह्मणों-को निमन्त्रित किया गया । भगवान् शंकरने सभी देवगण तथा सूर्यादि ग्रहोंको दूत भेजकर बुलाया । सबके उपस्थित होनेपर देवीने बहुत उत्साहके साथ ब्राह्मणों, देवताओं और सूर्यादि ग्रहों एवं प्रमथगणोंको भोजन कराया । देवताओंके साथ सर्वेश्वर नारायण, ब्रह्मा एवं महेश्वरने भी आनन्दके साथ भोजन किया ।

भगवती शिव-सहधर्मिणी पार्वतीने ब्राह्मणोंको प्रचुर-मात्रामें दक्षिणा दी । वे ब्राह्मण भी अत्यन्त संतुष्ट हो गये और उन लोगोंने प्रसन्न-मनसे पार्वतीको मनोरथ पूर्ण होनेका आशीर्वाद दिया । अन्तमें जब पुरोहितको यज्ञान्त-दक्षिणा देनेका समय आया, तब पुरोहित सनत्कुमारजीने पार्वतीसे कहा—'हे देवि शंकरप्रिये ! आपने सभी ब्राह्मणोंको मुँह-माँगी दक्षिणा दी है; अतः मुझे आप मेरी अभीष्ट दक्षिणा दीजिये ।' देवी पार्वतीने पूछा—'आपकी अभीष्ट दक्षिणा क्या है ?' सनत्कुमारजीने कहा—'हे देवि ! दक्षिणा भगवान् शंकर है । कृपया उन्हींको मुझे दीजिये । अन्य विनाशी पदार्थोंको लेकर मैं पुरोहितको अभीष्ट दक्षिणा देनेसे आपका मनोरथ शीघ्र पूर्ण होगा ।'

भगवान् श्रीकृष्णकी योगमायाके प्रभावसे श्रीशंकरकी अर्द्धाङ्गिनी पार्वतीकी बुद्धि भी मोहित हो गयी । अतः पुरोहितके वचनको सुनते ही वे विलाप करने लगीं एवं रोते-रोते मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं ।

देवसभामें विष्णु, ब्रह्मा और शंकरजी अभी बैठे ही थे कि ऋषियोंने जाकर पार्वतीके मूर्च्छित होनेका समाचार कहा । शंकरजी उस समय सभी देवताओंके स्वागतमें व्यस्त थे, इसलिये ऋषियोंकी बातपर उनका ध्यान नहीं गया । पश्चात् विष्णुभगवान् और ब्रह्माने इस समाचारको सुना और उन दोनोंने शिवजीको प्रेरित करके पार्वतीके पास भेजा ।

शंकरजीने जाकर जगदम्बा पार्वतीको मूर्च्छित अवस्थामें देखा और हृदयसे लगाकर अपने अमृतमय करतल-स्पर्शसे उन्हें सचेत किया । फिर शंकरजीने सुना कि पुरोहित सनत्कुमार-ने यज्ञान्त-दक्षिणाके रूपमें भगवान् शंकरको ही माँगा है, इसीलिये इनको मूर्च्छा आ गयी है । इस बातको सुनकर सर्वान्तर्यामी भगवान् शंकरने अपनी प्रियतमा पत्नी पार्वतीसे कहा—'प्रिये ! तुम तो त्यागरूपा हो; सनत्कुमारजीको उनकी अभीष्ट दक्षिणा अवश्य दे दो ।' पार्वतीकी मूर्च्छाका समाचार सुनकर अपनी शक्तियोंके साथ भगवान् नारायण और ब्रह्मा भी शंकरजीके पास ही आ गये । श्रीमन्नारायणने जब दक्षिणामें शिवजीके माँगनेकी बात सुनी, तब उन्होंने कहा—'देवि ! तुम तो उदारहृदया हो, तुम्हारे लिये अदेय क्या है, पुरोहितने तुमसे जो दक्षिणा माँगी है, तुम उसे उन्हें दे दो, तुम्हारा कल्याण ही होगा ।' भगवान् नारायणके कहनेसे पार्वतीजीने अपने प्रिय पति भगवान् महेश्वरको उन्हें दक्षिणामें दे दिया ।

पुरोहित सनत्कुमारजी महादेवजीको लेकर चलनेके लिये उद्यत हुए । तब पार्वतीके दुःखको देखकर नारायणने कहा—

विष्णुदेहा यथा गावो विष्णुदेहस्तथा शिवः ।
द्विजाय दत्त्वा गोमूल्यं गृहाण स्वामिनं शुभे ॥
(ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपति० ७ । ८०)

श्रीमन्नारायणके वचनको सुनकर देवी पार्वतीके मनमें कुछ साहस हुआ और उन्होंने कातरस्वरसे अपने पुरोहित सनत्कुमारजीसे कहा—

गोमूल्यं मत्पतिसममिति वेदे निरूपितम्।
गवां लक्षं प्रयच्छामि देहि मत्स्वामिनं द्विज ॥
(ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपति० ७। ८५)

'एक गौका मूल्य मेरे स्वामीके समान है। मैं आपको एक लाख गौएँ देती हूँ। एक ही गौका मूल्य, भगवान् विष्णु और शिवके समान है। फिर आपको एक लाख गौ लेकर मेरे पतिको देनेमे क्या हानि है? कृपया मेरे पतिको लौटाकर आप एक लाख गायोंको ग्रहण कीजिये।'

परंतु पुरोहित सनत्कुमारने पार्वतीके इस प्रस्तावको स्वीकार नहीं किया। उन्होने कहा—'देवि! आपने मुझे अमूल्य रत्न दक्षिणामे दिया है, फिर मैं उसके बदले एक लाख गौ कैसे ले सकता हूँ? इन गायोंको लेकर तो मैं और भी झंझटमे फँस जाऊँगा।' तब भगवती माहेश्वरीको बड़ा दुःख हुआ और वे कहने लगीं—'मैंने कैसी मूर्खता की कि पुत्रके लिये मैंने एक वर्षतक 'पुण्यक'-व्रत किया, उसके नियम-पालन करनेमे बहुत कष्ट भोगा; किंतु फल क्या मिला? पुत्र तो मिला ही नहीं, पतिको भी मैं खो बैठी। अब पतिके बिना पुत्र कैसे प्राप्त होगा?'

इसी बीचमे सभी देवताओंने तथा पार्वतीने आकाशसे उतरते हुए एक तेजःपुञ्जको देखा। उसमे इतनी चमक थी कि सबकी आँखे बंद हो गयीं। किंतु पार्वतीजीने उस तेजःपुञ्जके मध्यमे अत्यन्त सुन्दर पीताम्बरधारी भगवान् श्रीकृष्णको विद्यमान देखा। उनके दर्शनसे भगवती पार्वती-का हृदय प्रेमसे भर गया और उन्होंने स्तुति करना आरम्भ किया—

कृष्ण जानासि मां भद्र नाहं त्वां ज्ञातुमीश्वरी।
के वा जानन्ति वेदज्ञा वेदा वा वेदकारकाः॥
(ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपति० ७। १०९)

'हे कल्याणनिधे श्रीकृष्ण! आप तो मुझको जानते है; परंतु मैं आपको जाननेमे समर्थ नहीं हूँ। केवल मैं ही नहीं, बल्कि वेदको जाननेवाले, अथवा स्वयं वेद भी, अथवा वेदके निर्माता भी आपको जाननेमे समर्थ नहीं है।' इस तरह स्तुति करके पार्वतीजीने कहा—

स्तौमि त्वामेव तेनेश पुत्रदुःखेन दुःखिता।
व्रते भवद्विधं पुत्रं लब्धुमिच्छामि साम्प्रतम्॥
(ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपति० ७। १२५-१२६)

'प्रभो! इसलिये मैं आपकी स्तुति करती हूँ। मैं पुत्राभावके दुःखसे दुःखित हूँ। इस व्रतसे मैं आपके ही समान पुत्र चाहती हूँ।' उनकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान् श्रीकृष्णने सर्वसाधारणके लिये अत्यन्त दुर्लभ, मनोहर रूपमें उन्हें दर्शन दिया और अभीष्ट-सिद्धिका वरदान देकर वे अन्तर्हित हो गये।

इधर शंकर और भगवती पार्वती—दोनों अपने आश्रम-मे आकर विश्राम करने लगे। भगवान् चन्द्रदेव जब अस्तोन्मुख हो रहे थे, उसी समय किसीने शंकरजीका द्वार खटखटाया और पुकारा—'जगत्पितः महादेव! जगन्मातः देवि पार्वति! आपलोग उठिये। मैंने सात रात्रिके उपवासका व्रत किया था, इसलिये मैं बहुत भूखा हूँ। आप-जैसे माता-पिताके रहते हुए भी मैं भूखसे व्याकुल हो रहा हूँ। कृपया शीघ्र आइये और मुझे भोजन देकर मेरी रक्षा कीजिये।'

उसके दीन वचन सुनकर दोनों ही द्वारपर आये और उन दोनोने अत्यन्त वृद्ध, क्षीणकाय, फटे-मैले वस्त्र पहने हुए एक ब्राह्मणको देखा। देवी पार्वतीने पूछा—'आप क्या भोजन करना चाहते हैं?'

ब्राह्मणने कहा—'सुना है; आपने बहुत अच्छे-अच्छे पदार्थ महोत्सवमें ब्राह्मणोंको खिलाये हैं; मुझे आप दूध, रबड़ी, तिलके लड्डु, मेवा, मिष्टान्न, हविष्य, पूड़ी-पूआ आदि और इस ऋतुमे होनेवाले फल प्रचुरमात्रामे खिलाइये, जिससे यह पीठमे सटा हुआ मेरा पेट बाहर निकल आये और मैं लम्बोदर हो जाऊँ।' इन वचनोंको कहते-ही-कहते वे ब्राह्मण अन्तर्हित हो गये। उसी समय आकाशवाणी हुई कि 'हे पार्वति! जिसको तुम खोज रही हो, वह तुम्हारे घरमे आ गया है'—

गणेशरूपः श्रीकृष्णः कल्पे कल्पे तवात्मजः।
त्वत्क्रोडमागतः क्षिप्रमित्युक्त्वान्तरधीयत॥
कृत्वान्तर्धानमीशश्च बालरूपं विधाय सः।
जगाम पार्वतीतल्पं मन्दिराभ्यन्तरस्थितम्॥
तल्पस्थे शिववीर्ये च मिश्रितः स बभूव ह।
ददर्श गेहशिखरं प्रसूतो बालको यथा॥
(ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपति० ८। ८२—८४)

"उस ब्राह्मणरूपधारी भगवान् श्रीकृष्णने अन्तर्धाना-

वस्थामें कहा—'गणेशरूपमें श्रीकृष्ण प्रत्येक कल्पमें आपके पुत्र बनकर आते हैं। आप शीघ्र भीतर जाकर देखिये।' भगवान् श्रीकृष्ण इतना कहकर बालकका रूप धारणकर आश्रमके भीतर बिछी हुई शय्यापर लेट गये। लेटते ही उस शय्यापर पड़े हुए शिवजीके तेजमें लिप्त हो गये और उत्पन्न हुए बालकके समान उस घरके शिखरकी ओर देखने लगे।''

फिर पार्वतीने उस अत्यन्त सुन्दर बालकको शय्यापर हाथ-पैर पटक-पटककर खेलते हुए देखा और प्रेमसे अपनी गोदमें उठा लिया तथा दूधसे भरे हुए अपने स्तनोंको पिलाया। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके इन प्रमाणोंसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि श्रीगणेशके रूपमें श्रीकृष्ण ही आविर्भूत हुए है।

भगवान् शङ्करने इनके बल-पराक्रम और बुद्धिमत्ताको देखकर इन्हें अपने प्रमथादिगणोंका आधिपत्य दे दिया और इनका नाम उन्होंने 'गणेश' रखा।

गणेशजीकी पूजा करनेसे विघ्नोंका नाश हो जाता है—

गणेशपूजने विघ्नं निर्मूलं जगतां भवेत्।
निर्व्याधि सूर्यपूजायां शुचिः श्रीविष्णुपूजने॥

(ब्रह्मवैवर्त्त० गणपति० ६। १००)

'किसी कार्यके आरम्भमें भगवान् गणेशजीकी पूजा करनेसे संसारके विघ्न जड़-मूलसे नष्ट हो जाते हैं, सूर्यकी पूजासे शरीरके रोग दूर हो जाते हैं तथा भगवान् विष्णुकी पूजासे बाह्य और आभ्यन्तर पवित्रता आती है।'

किसी कार्यमें प्रथम गणेशकी पूजा न करनेसे कार्य-सिद्धिमें विघ्न अवश्य होता है। श्रीमद्भागवतमें लिखा है कि समुद्रमन्थनमें गणेशजीकी पूजा पहले नहीं हुई थी, इससे जब दैत्य और देवगण मन्दराचलको ला रहे थे, तब उसके भारसे वे लोग दबकर हताहत हो गये थे; तब विष्णुने अपने अमृतमय करतल-स्पर्शसे उनको पुनरुज्जीवित किया था। पश्चात् जब वह पर्वत समुद्रमें डाल दिया गया, तब उसमें डूब गया। इससे दैत्य और देवता दोनों हताश हो गये और दोनोंने समझा कि सब किया-कराया चौपट हो गया। इस बातको देखकर भगवान् विष्णुने समझ लिया कि विघ्नराज गणेशजीकी पूजा न करनेसे अप्रसन्न होकर उन्होंने ही विघ्न उपस्थित किया है—

विलोक्य विघ्नेशविधिं तदेश्वरो
दुरन्तवीर्योऽवितथाभिसंधिः।
कृत्वा वपुः कच्छपमद्भुतं महत्
प्रविश्य तोयं गिरिमुज्जहार॥

(८। ७। ८)

'उस समय भगवान्‌ने देखा कि यह तो विघ्नराजकी करतूत है, इसलिये उन्होंने उसके निवारणका उपाय सोचकर अत्यन्त विशाल एवं विचित्र कच्छपका रूप धारण किया और समुद्रके जलमें प्रवेश करके मन्दराचलको ऊपर उठा दिया।' भगवान्‌की शक्ति अनन्त है। वे सत्यसंकल्प हैं। उनके लिये यह कौन-सी बड़ी बात थी।

जैसे भगवान् श्रीकृष्णके नामोच्चारणमात्रसे सभी सङ्कट दूर हो जाते हैं, वैसे ही श्रीगणेशके नामोच्चारणसे सभी बाधाएँ दूर हो जाती है।

श्रीगणेश और 'जेनस'

(लेखक—बा० श्रीविष्णुदयालजी, मारिशश)

वेद-मन्त्रका उच्चारण करनेके पूर्व 'ॐ'का उच्चारण किया जाना अपेक्षित है। इसी भाँति धार्मिक ग्रन्थों और कृत्योंके आरम्भमें श्रीगणेशजीका नाम-स्मरण करनेकी प्रथा है। 'गणेशपुराण'का कथन सही है कि 'गणेशजी ओंकारस्वरूप है।' जब मुहावरेदार भाषाका प्रयोग किया जाता है और किसी कार्यका 'श्रीगणेश' करनेकी चर्चा होती है, तब यही समझा जाता है कि उस कार्यका आरम्भ होनेवाला है।

पश्चिममें 'रोमनों'के देवता 'जेनस'का नाम 'गणेश'-नामके समकक्ष है। विश्वकोशोंमें बताया गया है कि जब कभी इटालवी या रोमन लोग पूजा करते थे, इसी जेनस-देवताविशेषका नाम सर्वप्रथम लिया करते थे। हमारी कथा यूरोपमें पहुँची और वहाँ भी श्रीगणेश सर्वप्रथम रहे। आजकल वर्षके प्रथम मासको अंग्रेजीमें 'जनवरी' जेनसकी स्मृतिमें कहा जाता है। अठारहवीं शतीके संस्कृतज्ञ विलियम जोन्सने लिखा है कि 'जितनी विशेषताएँ श्रीगणेशमें पायी जाती हैं, वे सब जेनसमें भी दिखायी देती हैं।'

गणेशमूर्तिमें निर्गुणब्रह्मोपासना

(लेखक—श्रीरेवानन्दजी गौड़, एम्०ए०, व्याकरणाचार्य, साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ)

दोर्घोतद्दन्तखण्डः सकलसुरगणाडम्बरेषु प्रचण्डः
सिन्दूराकीर्णगण्डः प्रकटितविलसच्चारुचान्द्रीयखण्डः ।
गण्डस्थानान्तघण्टः स्मरहरतनयः कुण्डलीभूतशुण्डः
विघ्नानां कालदण्डः प्रभवतु भवतां भूतये वक्रतुण्डः[1] ॥

सृष्टिके आरम्भसे ही मानव-आत्मा परमात्माके रहस्यका अन्वेषी रहा है । इसी रहस्यको सुलझानेमें विश्वकी समस्त संस्कृतियाँ और धार्मिक वाङ्मय अपनी सार्थकता समझते हैं । भारतीय संस्कृति अनेकरूपा है, तथापि उसके मूलमें एकरूपता है । अपनी संस्कृतिमें जहाँ आचारनिष्ठा, साधना, पथ-सम्प्रदाय अनन्त हैं, वहाँ देवी-देवताओंके स्वरूप भी अनन्त हैं । प्रायः सभी विशिष्ट मानव अपनी-अपनी रुचिके अनुसार किसी एक अभीष्ट देवके उपासक हैं । जिसका जहाँ विश्वास है, आस्था है, श्रद्धा है, वही उसका सम्प्रदाय है । सम्प्रदाय फिरकापरस्ती या दकियानूसीका विषय नहीं है; अपितु "शिष्टानुशिष्ट उपदिष्टो मन्त्रः सम्प्रदायः ।—शिष्ट आचार्यके समीप संयमपूर्ण विधिवत् प्राप्त मन्त्रका नाम 'सम्प्रदाय' है ।" वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर, गाणपत्य, निर्गुण, सगुण—सभी सम्प्रदायान्तर्गत माने जाते हैं । 'गाणपत्य' वह सम्प्रदाय है, जिसमें गणपति (गणेश) देवताकी पूजा-अर्चना तथा स्तुति-उपासना की जाती है ।

भारतमें गणेशजीकी पूजाका विधान सर्वप्रथम है । ये भगवदवतार नहीं हैं, अपितु स्वयं भगवान् हैं और निर्गुण ब्रह्मके सगुण स्वरूप हैं । ये ब्रह्मा-विष्णु-महेश-प्रभृति सभी देवोंद्वारा पूजित हैं । इनमें भगवान्के षड्गुण—ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, वैराग्य एवं ज्ञान चरम सीमामें विद्यमान हैं । ये स्वयं परब्रह्म हैं । जैसा कि श्रुति कहती है—'एकमेवाद्वितीयम्' । गणेशजीका सार्वभौम, सुप्रसिद्ध ध्यान-स्तवन इस प्रकार है—

गजाननं भूतगणादिसेवितं कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम् ।
उमासुतं शोकविनाशकारकं नमामि विघ्नेश्वरपादपङ्कजम् ॥
लम्बोदरं परमसुन्दरमेकदन्तं पीताम्बरं त्रिनयनं परमं पवित्रम् ।
उद्यद्दिवाकरनिभोज्ज्वलकान्तिकान्तं विघ्नेश्वरं सकलविघ्नहरं नमामि ॥

'भूत-गण आदि जिनकी सेवामें संलग्न रहते हैं, जो कैथ और जामुनके फलोंका बड़े सुन्दर ढंगसे चर्वण करते हैं तथा शोकका विनाश कर देनेवाले हैं, उन गिरिजानन्दन गजमुख गणेशको मैं मस्तक नवाता हूँ, विघ्नेश्वरके चरण-कमलोंको प्रणाम करता हूँ । जो लम्बोदर होते हुए भी परमसुन्दर हैं, जिनके एक ही दाँत है, जो पीताम्बरधारी, तीन नेत्रवाले एवं परम पवित्र हैं और जिनकी कमनीय कान्ति उदयकालके सूर्यकी भाँति अरुणोज्ज्वल दिखायी देती है, उन सर्वविघ्नहारी विघ्नेश्वर गणेशको मैं नमस्कार करता हूँ ।'

श्रीगणेशजीका श्रीविग्रह बड़ा ही दिव्य तथा विलक्षण है । गणेश-पूजा स्थूलात्मक है । वह बुद्धिगम्य तथा अनुभवसिद्ध भी है; परंतु गणेश-पूजन जहाँ प्रतीकात्मक है, वहाँ निर्गुण-ब्रह्म-उपासनाकी प्रधानता है । पीली मिट्टी-की एक डली, जिसपर लाल-पीला-श्वेत कलावा आवृत हो, साक्षात् ब्रह्मका प्रतीक है । न उसमें कोई लिङ्ग है न चिह्न, न अङ्ग है, न प्रत्यङ्ग । अण्डाकार मृत्तिकामें समस्त ब्रह्माण्ड है और इस ब्रह्माण्डमें अलक्षितरूपेण विद्यमान ब्रह्म परिलक्षित होता है । मिट्टीकी गोलाकार डली अखिल ब्रह्माण्डका प्रतीक है और यह सूत्र ब्रह्मका प्रतीक है । वस्तुतः यह दृश्यमान समस्त जगत् भगवान् ईशसे व्याप्त है । जगतीके कण-कणमें वह रमा हुआ है । श्रुति कहती है—

'ईशावास्यमिदꣳ सर्वं यत् किंच जगत्यां जगत् ॥'
(ईशावास्योपनिषद्)

---

[1] १. जिनके हाथमें टूटे हुए अपने ही दाँतका एक खण्ड दीप्तिमान् दिखायी देता है, जो समस्त देवसमुदायमें सबसे प्रचण्ड शक्तिशाली हैं, जिनका गण्डस्थल (कपोल) सिन्दूरसे व्याप्त है, जिनके भालदेशमें मनोहर अर्धचन्द्र प्रकटरूपसे चमक रहा है, जिनके गण्डस्थलके अन्तमें—ग्रीवाभागमें घण्टा बँधा है, जो मदनदहन शिवके सुपुत्र हैं, जिन्होंने अपने शुण्डदण्डको कुण्डलाकार मोड़ लिया है, जो विघ्नसमूहका विध्वंस करनेके लिये कालदण्डस्वरूप हैं, वे वक्रतुण्ड भगवान् गणेश आपलोगोंका कल्याण करें ।

सृष्टिसे पूर्व केवल—

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥
(ऋग्वेद १०।१२१।१)

वेद-मन्त्रानुसार चराचरके अधिपति, आकाश-पृथिवीके स्रष्टा, धर्ता एक ही अद्वैत 'ब्रह्म' है। उसके लिये 'गण'-शब्दका प्रयोग सम्भव नहीं। अतः जब इस अद्वैतमें द्वित्व-त्रित्वकी भावना 'एकोऽहं बहु स्याम्' जाग्रत् हो गयी, तब सृष्टिमें अनेकरूपता आयी और व्यष्टि-समष्टि बनने लगी। समूह—समाजका निर्माण हुआ। अनेक समाजोंके समन्वितरूप गणपरगण पनपने लगे। इन सब गणोंको समन्वित तथा अनुशासित रखनेके लिये एक गणाधिपति गणाध्यक्षकी आवश्यकता अनिवार्य हो गयी। वही शक्ति गणाधिपति 'गणेश'-पदपर विराजमान हो सकती है, जिसमें विशिष्ट गुणोंका समन्वय हो और जो छिन्न-भिन्न विभ्रष्ट गणोंमें समन्वय करा सके, जो व्यष्टिके स्वार्थसे समष्टिके स्वार्थको महत्त्व देता हो। जो सर्वतन्त्र गणतन्त्रकी भावनासे ओत-प्रोत हो, जो सभी शक्तियोंको सूत्ररूपमें आत्मसात् कर सके, वही गणेश, गणपति, गणाध्यक्ष, गणनायक बन सकता है। गणपतिमें प्रियपति तथा निधिपतिका भाव-साम्य होना भी अनिवार्य है। अर्थात् 'गणानां पतिः, प्रियाणां पतिः, निधीनां पतिः' ब्रह्मस्वरूप 'गणेश' सदा-सर्वदा पूज्य हैं। गणपति-पूजनका सर्वप्रसिद्ध यजुर्वेदका मन्त्र भी यही भाव पुष्ट करता है कि गणेशमूर्ति निर्गुण ब्रह्म-उपासनाका प्रतीक है—

'ॐ गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे। निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधामा त्वमजासि गर्भधम्॥'
(२३।१९)

'सर्वेश! तुम मेरे वसु (परम धन) हो; तुम ही समस्त अभीष्ट शक्तियोंके दाता हो; सम्पूर्ण ऋद्धि-सिद्धि-ऐश्वर्यादि गुणोंके अधिपति हो; सभी आपत्तियोंको, विघ्न-बाधाओंको नष्ट करनेकी शक्ति तुममें है; अतः तुम प्रिय ही नहीं, प्रियपति हो; हम सब गण आपका आवाहन-पूजन करते हैं।' इस मन्त्रमें 'हवामहे' बहुवचनकी क्रिया है, जो गणात्मक भावका प्रतीक है। इसमें सभी गण अपने गणनायकका आवाहन करते हैं। मैं जन्म-मरणके चक्रमें हूँ और तुम (मा त्वमजासि गर्भधम्) जन्मरहित हो, अर्थात् अजन्मा, अजर, अमर, अनादि, अनन्त, व्यापक परब्रह्म तुम ही हो। तुम सबके बीजरूप हो, तुम सभी रहस्योंके ज्ञाता हो, तुम्हारा मङ्गलकरण विघ्नहरण स्वरूप सर्वोपरि है। तुम्हें बारबार शतशः नमस्कार है—

नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो
नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमः।
नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो
नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः॥
(यजुर्वेद १६।२५)

गणेशजीको 'भूतगणादिसेवितम्' कहा गया है। इसकी व्याख्यामें शिव-गण—भूत-प्रेत, पिशाच, वेताल, कूष्माण्ड, भैरव आदि ही गण-शब्दसे ग्राह्य नहीं है, बल्कि व्यापक दृष्टिकोणसे अध्यात्मगण (मन-बुद्धि-चित्त-अहङ्कारादि), अधिदैवतगण (सूर्य-चन्द्र-अग्नि-वरुण-वाय्वादि) और अधिभूतगण (पृथिवी-जल-तेज-वायु-आकाशादि) भी ग्राह्य हैं। गणेशरूपमें उपास्य देवतामें सत्त्वगुणकी ही प्रधानता है। सत्त्व-गुणोदय होनेपर कर्तृत्व-अभिमान सर्वथा लुप्त हो जाता है। ऐसी दशामें विघ्न-बाधाओंका नाश ही नहीं होता, बल्कि उनका अत्यन्ताभाव भी हो जाता है। जब हृदयमें सत्त्वभावका उद्रेक होता है, तब अन्तर्यामी देवाधिदेव ही सब कुछ कर्ता-धर्ता है, वह ही मन-बुद्धिमें बैठकर सकल्प-विकल्प एवं निश्चयात्मक क्रिया-कलाप चला रहा है। वही कर्मेन्द्रिय एवं ज्ञानेन्द्रियमें गतिदाता है। हमारा अपना कर्तृत्व तो आटेमें नमकके बराबर भी नहीं है। भाव जागता है—

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥
तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते॥
(गीता ३।२७-२८)

"वस्तुतः सम्पूर्ण कर्म प्रकृतिके गुणोंद्वारा किये जाते हैं; परंतु अहंकारी विमूढात्मा 'मैं ही हूँ'—ऐसा मान लेता है। इसके विपरीत विद्वान् पुरुष 'मैं कुछ नहीं करता'—ऐसा मानकर आसक्त नहीं होता।" ऐसे हृदय-

गुणी वातावरणमें सुख, शान्ति, सतोष, प्रेम, सहानुभूति, अष्ट-सिद्धि (अणिमादि), नवनिधि सदा विराजमान रहती हैं और सभी अनभीष्ट विघ्न-बाधाएँ दूर भाग जाती हैं।

जहाँ कर्तृत्व-अभिमान है, जहाँ रजोगुण है, वहाँ राग-द्वेष, मद-मात्सर्य आदि दुःखदायी सामग्री हृदयको आक्रान्त रखती है। दुःख-शोकादि-शमनके लिये सत्त्वगुणप्रधान 'गणपति'-पूजन आरम्भमें किया जाता है।

'रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत॥'
(गीता १४ । १०)

वस्तुतः गणेश-पूजन एक साकार, परिमित, परिच्छिन्न शक्तिका प्रतीक न होकर निर्गुण परब्रह्म-उपासनाका प्रतीक है। वे अपने उपासक भक्तोंके लिये कल्पवृक्ष हैं, अमन्दानन्द-संदोह हैं। मानव जीवनमें उनकी उपासना सर्वोपरि है—

वन्दे वन्दारुमन्दारमिन्दुभूषणनन्दनम्।
अमन्दानन्दसंदोहबन्धुरं सिन्धुराननम्॥

अग्रपूज्य श्रीगणेश

(लेखक—डा० श्रीप्रभाकरजी द्विवेदी, एम्० ए०, डी० लिट्०)

हिंदू-धर्मकी कुछ ऐसी विलक्षणता है कि जहाँ उसका ज्ञानकाण्ड 'एकमेवाद्वितीयम्'—ससारमें एक ही सत्ता ब्रह्म-ईश्वरकी है, उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है—'एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा। (श्वेताश्वतरोपनिषद् ५ । १०)—एक ही देवता सभी जीवोंमें छिपा हुआ है। वह सर्वव्यापी तथा सभी जीवोंका अन्तरात्मा है।' आदि अद्वैतवादी सिद्धान्तोंका उद्घोष करता है, वहीं उसका कर्मकाण्ड अनेक देवताओंके अस्तित्व, उनकी पूजा एवं अर्चनाकी अवश्यकर्तव्यताके विश्वासपर आधारित है।

यदि अनेक देवी-देवताओंके अस्तित्वपर विश्वास होगा तथा उनकी पूजा-अर्चा भी करणीय होगी तो स्वभावतः यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि उनमें सर्वप्रथम किसकी पूजा की जाय। एक बार देवताओंमें स्वतः इस बातपर विवाद उत्पन्न हुआ कि हम सब लोगोंमें अग्रपूजाका अधिकारी कौन है? जब पारस्परिक वार्तालापसे इस प्रश्नका निर्णय न हो सका, तब सर्वसम्मतिसे सभी देवता भगवान् शंकरके पास गये तथा उनसे प्रार्थना की कि 'भगवन्! आप ही इस बातका निर्णय कर दीजिये कि हमलोगोंमें अग्रपूजाका अधिकारी अर्थात् सर्वश्रेष्ठ कौन है?' भगवान् शंकरने यदि यादृच्छिक रूपसे इस प्रश्नका सीधा उत्तर दे दिया होता तो सम्भव है कि किसी-किसीको अपनी योग्यता एवं शक्तिका अधिक मूल्याङ्कन करनेके कारण उनपर पक्षपातका दोष प्रतीत होता। ऐसे लोग भगवान् शंकरके निर्णयसे सतुष्ट न होते। अतः उन्होंने एक ऐसा उपाय निकाला, जिससे देवताओंको स्वतः इस बातका बोध हो जाय कि उनमें सर्वश्रेष्ठ कौन है? उन्होंने कहा—'आप सब लोग अपने-अपने वाहनोंपर यहाँसे एक साथ दौड़िये तथा पूरे विश्वकी परिक्रमा करके मेरे पास लौट आइये। जो मेरे पास सबसे पहले पहुँचेगा, वही अग्रपूजाका अधिकारी समझा जायगा।' बस क्या था, भगवान् शंकरके ऐसा कहते ही इन्द्र अपने ऐरावतपर, कार्तिकेय अपने मयूरपर तथा अन्य सभी देवता अपने-अपने वाहनोंपर विश्वकी परिक्रमा करने दौड़ पड़े।

श्रीगणेशजीका वाहन चूहा माना गया है। उन्होंने सोचा—"ऐसे वाहनके बलपर इस प्रतियोगितामें प्रवेश करना तथा उसमें सफलता प्राप्त करना तो असम्भव है, किंतु भगवान् शंकर परमात्मा हैं। वे विश्वात्मा हैं। सारा ससार उन्हींका शरीर है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (त्रिपाद्विभूति महानारायणोपनिषद्) अर्थात् यह सब कुछ ब्रह्म ही है', 'पादोऽस्य विश्वा भूतानि' (यजुर्वेद ३१ । २) अर्थात् उस ब्रह्म या परमात्माके एक ही चरण-में यह सारा ससार है।' 'मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति'—(गीता ७ । ७)' अर्थात् मेरे (भगवान्‌के) अतिरिक्त संसारमें और कुछ नहीं है' इत्यादि; अतः भगवान् शंकरकी परिक्रमा कर लेनेसे ही विश्वकी परिक्रमा हो जायगी"—ऐसा सोचकर उन्होंने अपने मूषकवाहनसे ही भगवान् शंकरकी परिक्रमा कर ली तथा निश्चिन्त होकर बैठे। बहुत देर बाद धीरे-धीरे अन्य देवताओंका भी प्रत्यावर्तन प्रारम्भ हुआ। किंतु तबतक इधर खेल समाप्त हो चुका था। भगवान् शंकरके निर्णयके अनुसार विजयश्री गणेशजीके हाथ लगी। तबसे वे अग्रपूजाके अधिकारी मान लिये गये।

मातृ-पितृ-भक्त

'राम'-नाम-शक्त

इस उपाख्यानसे यह भी निर्विवाद सिद्ध होता है कि अन्ततः विजय बुद्धिमान्की ही होती है, केवल शक्तिशाली एवं साधन-सम्पन्नकी नहीं। इसीलिये गोस्वामी तुलसीदासने गणेशजी-के स्तवनमें विनयपत्रिकामें उन्हें 'मोदक-प्रिय मुद मंगल-दाता। बिद्या-बारिधि बुद्धि-बिधाता॥' कहा है। उपर्युक्त उपाख्यानसे गणेशजीकी बुद्धिमत्ता एवं विद्वत्ता तो सिद्ध हो ही जाती है, विद्वान् एवं बुद्धिमान् व्यक्ति ही सफल होता है तथा सफलता प्रसन्नता (मुद) एवं मङ्गलमयताका कारण होती है। मोदक इन दोनों (प्रसन्नता एवं मङ्गलमयता) का प्रतीक है।

हिंदू-धर्मकी यह एक प्राचीन आस्था है कि जैसा इस शरीरमें है, वैसा ही समस्त विश्वमें है—'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' अर्थात् जिन तत्त्वोंके समावेशसे इस शरीर एवं उसमें रहनेवाली आध्यात्मिक सत्ताओंका निर्माण हुआ है, उन्हीं तत्त्वोंसे इस समस्त विश्वका भी निर्माण हुआ है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि समस्त विश्वकी जो तार्किक बनावट है, वही बनावट इस शरीरकी भी है।

हिंदू-धर्मकी उपर्युक्त आस्थाका एक परिणाम यह होता है कि अनेक पौराणिक उपाख्यानों, भौतिक घटनाओं आदिकी व्याख्या सामान्य दृष्टिसे भी सम्भव है तथा आध्यात्मिक दृष्टिसे भी। उदाहरणार्थ, पुराणोंके अनुसार त्रिवेणी-संगमपर स्नान करनेवालेका पुनर्जन्म नहीं होता। सामान्यतः इस संगमका अर्थ 'प्रयागमें स्थित गङ्गा, यमुना एवं सरस्वतीके संगमसे ही है।' किंतु कुछ योगसिद्ध महात्माओंका यह कथन है कि जिस संगमपर स्नान करनेसे, अर्थात् उसमें लाक्षणिक अर्थमें अवगाहन करनेसे पुनर्जन्म नहीं होता, वह आज्ञाचक्रपर स्थित इडा, पिंगला एवं सुषुम्णाका संगम है। मैं यह नहीं कहता कि उपर्युक्त दोनों व्याख्याओंमेंसे कोई एक सत्यसे निकट तथा दूसरी उससे दूर है। मेरे कहनेका अभिप्राय इतना ही है कि कुछ पौराणिक एवं भौतिक कथनोंकी सामान्य एवं आध्यात्मिक दोनों ही व्याख्याएँ सम्भव हैं—

इस प्रकार श्रीगणेशजीकी अग्रपूजाके रहस्यके सम्बन्धमें भी उपर्युक्त पौराणिक आख्यानके अतिरिक्त निम्नलिखित दो आध्यात्मिक व्याख्याएँ सम्भव हैं—

(१) 'गणेश'-शब्दका अर्थ होता है—'समुदाय अथवा समुदायोंका स्वामी—'गणस्य ईशो गणानामीशो वा।' प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि गणेशजी किस समुदायके स्वामी हैं ? पौराणिक व्याख्याके अनुसार वे भगवान् शंकरके भृत्योंके स्वामी माने गये हैं। प्रथम—आध्यात्मिक व्याख्याके अनुसार मैं गणेशजीको राग-द्वेषादिरहित शुद्ध मनका प्रतीक मानता हूँ। यह मत प्रायः सभी भारतीय दर्शनोंके अनुसार पाँच ज्ञानेन्द्रिय एवं पाँच कर्मेन्द्रिय—इन दस इन्द्रियोंके समुदायका स्वामी माना जाता है। अतः इस व्याख्याके अनुसार गणेशका अर्थ हुआ—दस इन्द्रियोंके समुदायका स्वामी। ऐसे गणेशजीकी अग्रपूजा अर्थात् उपासनाका महत्त्व वेदोंमें भी स्वीकार किया गया है 'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु' (यजुर्वेद, अ० ३४), 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः (ब्रह्मबिन्दु उप० २)।'

पूर्व उपासनाद्वारा मनके शुद्ध एवं समाहित हुए बिना शुद्ध-बुद्धिस्वरूपा पार्वती देवी (अर्थात् ब्रह्मविद्या) का आविर्भाव नहीं हो सकता (केनोप० ३। १२) इससे जगज्जननी माता पार्वतीको ब्रह्मविद्यास्वरूपिणी स्वीकार करनेका स्वारस्य स्पष्ट हो जाता है, यदि हम नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वरूप आत्मा—ब्रह्म एवं शंकरमें कोई भेद न मानें। उपनिषदों एवं गीता आदिमें भी इनमें कोई तात्त्विक भेद स्वीकार नहीं किया गया है।

माता पार्वतीको ब्रह्मविद्याका प्रतीक केनोपनिषद्के यक्षोपाख्यानकी व्याख्यामें स्वामी शंकराचार्यने भी माना है।

इस प्रकार भगवान् शंकररूपी ब्रह्मका ज्ञान प्राप्तकर जीवनका चरम लक्ष्य—मोक्ष प्राप्त करनेके लिये ब्रह्मविद्या-स्वरूपिणी उमा, पार्वती (केनोपनिषद्की भाषामें 'हैमवती')-का आविर्भाव आवश्यक है तथा उसके लिये शिवसंकल्प, राग-द्वेषादिरहित शुद्ध मनःस्वरूपी गणेशजीकी अग्रपूजा अर्थात् उपासनाकी आवश्यकता पड़ती है।

(२) दूसरी आध्यात्मिक व्याख्या योगपरक है। तन्त्रशास्त्रकी मान्यताके अनुसार मेरुदण्डके भीतर सुषुम्णा-नामकी एक अत्यन्त सूक्ष्म नाड़ी है, जो गुदा एवं उपस्थके बीच कुछ ऊपरसे होती हुई ब्रह्मरन्ध्रतक चली गयी है। इस नाड़ीके बायें-दायेंसे होती हुई इडा एवं पिंगला नामकी दो नाड़ियाँ एक दूसरेसे विपरीत दिशामें चलती हुई कुछ स्थानोंपर एक दूसरेका अतिक्रमण करती हैं। इन स्थानोंको 'चक्र' कहते हैं। ये चक्र नीचेसे ऊपरतक सात हैं, जिनके नाम हैं—(१) मूलाधार, (२) स्वाधिष्ठान, (३) मणिपूर,

(४) अनाहत, (५) विशुद्ध, (६) आज्ञा एवं (७) सहस्रार। इन चक्रोंपर ध्यान करते-करते योगियोंको विलक्षण रंग-रूपके विकसित कमल दीख पड़ते हैं। इन कमलोंके दलोंकी संख्या तथा उनका रंग आदि भिन्न-भिन्न होते हैं तथा प्रत्येक दलपर किसी-न-किसी बीजाक्षरका तथा उस चक्रपर उसके अधिष्ठातृ-देवताका जीवन्त दर्शन होता है। उदाहरणार्थ, मूलाधारचक्रका रंग पीला, दलोंकी संख्या चार तथा उसके अधिष्ठाता देवता स्वयं गणेशजी हैं।

जिस तरह श्रीरामचन्द्रजीके मन्दिरमें द्वारपर स्थित श्रीहनुमान्-विग्रहके दर्शन-वन्दनके उपरान्त ही श्रीराम-विग्रहका दर्शन-वन्दन करना चाहिये, अन्यथा श्रीहनुमान्‌जीके अतिक्रमण अपमानके दोषका भागी बनना पड़ेगा; इसी तरह पहले मूलाधार चक्रपर श्रीगणेशजीका दर्शन-नमस्कार आदि करनेके उपरान्त ही आगे बढ़नेका अधिकार प्राप्त होगा। क्रमशः आगे बढ़ते हुए आपको विभिन्न चक्रोंपर विभिन्न देवताओंके दर्शन होंगे। इस व्याख्याके अनुसार सर्वप्रथम श्रीगणेशजीका दर्शन एवं नमस्कार आदिके रूपमें अग्रपूजा अनिवार्य हो जाती है।

श्रीगणेशजीकी अग्रपूजाका रहस्य

(लेखक—श्रीश्रीराम माधव चिंगले एम० ए०)

'शुभे शुभे वैदिकलौकिके वा त्वमर्चनीयः प्रथमं प्रयत्नात्।'

पुण्यभू भारतवर्षमें अनादिकालसे अनेक देवी-देवताओंकी उपासना चली आ रही है। एकत्वमें अनेकत्व और अनेकत्वमें एकत्व-दर्शन यह भारतीय संस्कृतिकी विशेषता रही है। 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति'—यह ऋग्वेद-वचन (१।१६४।४६) इस विषयमें प्रमाण है। एक ही परात्पर परब्रह्म अनन्त नामरूपात्मक सृष्टिकी रचनामें अनेकानेक रूप धारण कर लेते हैं। इनमेंसे अनेक रूप सृष्टिकी नियामक शक्तियोंके रूपमें प्रकट होते हैं। इन्हींको 'देवता' कहा जाता है। यद्यपि इनका निरुपाधिक तात्त्विक स्वरूप एक ही है, तथापि त्रिगुणात्मक उपाधिभेदसे इनके सृष्टिकालीन व्यावहारिक रूप और अधिकार भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। इन बातोंको ध्यानमें रखते हुए हमें प्रस्तुत स्थलमें श्रीगणेशजीका स्वरूप, उनका विशिष्ट अधिकार और उनकी अग्रपूजाका रहस्य समझना है।

श्रीगणेशजी अन्य देवताओंकी अपेक्षा अपनी ऐसी अनोखी विशेषता रखते हैं, जो अन्य देवी-देवताओंमें नहीं पायी जाती। ध्यान रहे, हमारा उद्देश्य अन्य देवताओंका महत्त्व कम बतलानेका न होकर केवल श्रीगणेशजीकी उक्त विशेषताका रहस्य प्रकट करनेका है। श्रीगणेशजीकी यह विशेषता है—उनकी अग्रपूजाका अधिकार। सभी लौकिक तथा धार्मिक कार्योंका प्रारम्भ श्रीगणेशजीके स्मरण तथा पूजनपूर्वक होता है। विशेषता तो यह है कि देव-दानव, मनुष्य-गन्धर्व तथा शैव-वैष्णव आदि सभीसे उन्हें यह सम्मान प्राप्त है। प्राचीन परम्पराके अनुसार बालककी शिक्षाका प्रारम्भ 'श्रीगणेशाय नमः'—इन श्रीगणेश वन्दनात्मक पदोंसे होता है। इसी प्रकार पत्र-लेखादिका प्रारम्भ 'श्री'-पूर्वक होता है। श्रीविहीन पत्र अमङ्गलका द्योतक समझा जाता है। यह 'श्री' 'श्रीगणेशाय नमः' का ही सङ्क्षिप्त रूप है। ये सब बातें प्रायः परम्पराका अनुसरण करके की जाती हैं। किंतु जो बात आन्तरिक शास्त्रीय रहस्य समझकर की जाती है, वह अधिक फलदायिनी होती है और उसीमें सच्ची एवं स्थायी श्रद्धा उत्पन्न होती है। इसी आशयसे छान्दोग्य श्रुति (१।१।१०) कहती है—'यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवति।' यही रहस्य हमें यहाँ विशद रूपसे बताना है।

श्रीगणेशजीकी अग्रपूजाके मूलमें गहन गाम्भीर रहस्य है। इसका अनुभव हम अपने दैनन्दिन जीवनमें कर सकते हैं। किसी भी कार्यसिद्धिके लिये समुचित कारण सामग्री जुटानी पड़ती है। किंतु कई बार अनुभवमें यह आता है कि लौकिक प्रयत्नोंकी पराकाष्ठा होनेपर भी ऐन मौकेपर कोई-न-कोई विघ्न-बाधा उपस्थित हो जाती है और बना-बनाया काम बिगड़ जाता है; सारे प्रयत्नोंपर पानी फिरकर सब गुड़ गोबर हो जाता है। इस विघ्न-बाधाको शास्त्रीय परिभाषामें 'प्रतिबन्धक' कहा गया है। कार्य-सिद्धिके हेतु कारण-सामग्रीमें किसी भी प्रकारके प्रतिबन्धकका न होना—प्रतिबन्धकाभाव होना एक महत्त्वका घटक माना गया है। इसी आशयसे न्यायशास्त्र कहता है—

'सामान्यत. कार्यत्वावच्छिन्नं प्रति प्रतिबन्धकसंसर्गाभावत्वावच्छिन्नस्य कारणत्वमिति नियमः।'

इस प्रकारका प्रतिबन्धकाभाव होनेपर हम कहते हैं कि 'अमुक कार्य निर्विघ्नरूपसे पूर्ण हो गया।' इसके साथ एक और बात भी है। किसी कार्यमें प्रतिबन्धक उत्पन्न न होकर उसका निर्विघ्नरूपसे जैसे-तैसे पूरा होना एक बात है, किंतु उज्ज्वल यश और पूर्ण सफलताके साथ उस कामका पूरा होना दूसरी बात है। पहली बात दोषाभावरूप है तो दूसरी गुणाधानरूप। किसी भी कार्यके करते समय मनुष्य यह दोहरी अभिलाषा रखता है कि उसका अङ्गीकृत कार्य निर्विघ्नरूपसे सम्पन्न हो, साथ ही वह भलीभाँति सफल होकर यशःप्रदायक भी हो। मनुष्यकी यह इच्छा स्वाभाविक है। अतएव वह इसकी पूर्तिमें कोई कसर नहीं उठा रखता। किंतु मानवके ये प्रयत्न अनेक कारणोंसे ज्ञात-अज्ञात, लौकिक-अलौकिक, दृष्ट-अदृष्ट अनेक प्रकारकी मर्यादाओंसे ग्रस्त होते हैं। कार्यारम्भसे पूर्व इनका आकलन मनुष्यकी शक्तिके बाहरकी बात होती है। इसके अतीन्द्रिय एवं अलौकिक ज्ञानका विषय होनेके कारण मानवीय मन और वचन यहाँ कुण्ठित हो जाते हैं। अतएव अपनी अभीष्ट-सिद्धिके लिये वह शास्त्रैकशरण होकर दैवी सहारा ढूँढ़ता है। प्रातिभ आर्षज्ञानसे सम्पन्न होनेके कारण हमारे त्रिकालज्ञ ऋषि-मुनियोंने जनसाधारणके कल्याणार्थ स्मृतियों, पुराणों तथा शास्त्रोंमें इन बातोंका रहस्य प्रकट किया है। इनमें दैवत-काण्ड एक महत्त्वका विषय है। सृष्टिके सदर्भमें परब्रह्म परमात्माकी अनेक शक्तियाँ अनेक रूपोंमें कार्यकारी होती हैं। यथा—सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति तथा लय—ये क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु तथा महेशद्वारा होते हैं। इन देवताओंमें श्रीगणेशजी भी एक हैं। सृष्टिकी सुचारु व्यवस्थाके लिये विघ्नोंका विभाग आपके हिस्सेमें आया है। आप विघ्नाधिपति, विघ्नेश तथा विघ्ननायक हैं। विघ्न करना, उन्हें हरण करना तथा मङ्गल करना—ये सब काम आपके जिम्मे हैं। परपीड़क, पाप-परायण एवं आसुरी सम्पत्तिसे युक्त अभक्तोंके कार्योंमें अनेक प्रकारके विघ्न उपस्थित करके आप उनके कुत्सित मनोरथ विफल कर देते हैं। परहितरत, सत्प्रवृत्त एवं पुण्यात्मा भक्तोंके कार्य आप निर्विघ्न पूर्ण कर देते हैं और ऋद्धि-सिद्धिके भी दाता होनेके कारण आप उनका सब तरहसे मङ्गल करते हैं। इनके कारण आप 'सर्वविघ्नैकहरण', 'सर्वकामफलप्रद', 'अनन्तानन्तसुखद' और 'सुमङ्गलमङ्गल' कहे गये हैं। 'श्रीगणेशसहस्रनाम'में आपके स्वरूपवाचक इन नामोंका उल्लेख है। आपका नाम विघ्न-सागरके शोषणके लिये अगस्त्यके समान है—

'यस्यागस्त्यायते नाम विघ्नसागरशोषणे।'

आपके चरण-कमलोंके स्मरणमात्रसे विघ्न-समुदाय इस प्रकार नष्ट होते हैं, जिस प्रकार सूर्यके सामने घनान्धकार—

स जयति सिन्धुरवदनो देवो यत्पादपङ्कजस्मरणम्।
वासरमणिरिव तमसां राशीन्नाशयति विघ्नानाम्॥

समस्त मङ्गलोंके निधान, प्रत्यक्ष मङ्गलमूर्ति होनेके कारण आपमें स्वभक्तोंका मङ्गल करनेकी भी महान् शक्ति विद्यमान है—

यन्मङ्गलं सर्वजनेषु देव सयक्षविद्याधरपन्नगेषु।
तस्येश्वरो मङ्गलमूर्तितां त्वं गतो यतो मङ्गलकृत् स्वभक्ते॥

कोई आश्चर्य नहीं कि आपके इस विशिष्ट महत्त्वपूर्ण अधिकारके कारण आपने देवासुर-मानवोंद्वारा अग्रपूजाका सम्मान प्राप्त किया हो—

अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुरासुरैः।
सर्वविघ्नच्छिदे तस्मै गणाधिपतये नमः॥

यद्यपि सभी देवता अनेक शक्तियोंसे सम्पन्न हैं, तथापि विशिष्ट कार्यके लिये उन्हें विशिष्ट अधिकार और शक्तिसे सम्पन्न देवताओंका स्मरण और पूजन करना पड़ता है। इस कारण इन्हें कोई न्यूनत्व नहीं प्राप्त होता; क्योंकि यह बात सृष्टिकी सुचारु व्यवस्थाके लिये आवश्यक है। उदाहरणार्थ, किसी भी देशके राजा, अध्यक्ष या प्रधान मन्त्रीका शासनमें सर्वोपरि महत्त्व होता है, तथापि वह स्वयं सीधे खजानेमेंसे चाहे जब और चाहे जितना द्रव्य नहीं ले सकता। उसे नियमानुसार अर्थमन्त्री तथा कोषाध्यक्षके द्वारा ही यह काम कराना पड़ता है। देशकी रक्षाके लिये उसे सेनापतिसे ही परामर्श करना पड़ता है। यही कारण है कि श्रीराम-कृष्ण आदि अवतारकोटिके महापुरुष भी संध्या-वन्दनादि नित्यकर्म करते हुए पाये जाते हैं। भगवत्पूज्यपाद श्रीशंकराचार्य-जैसे अवतारकोटिके महापुरुषको भी हम एक निर्धन भक्तकी आर्थिक सहायताके लिये 'कनकधारास्तोत्र'द्वारा श्रीलक्ष्मीजीकी स्तुति करते हुए पाते हैं। इसी न्यायसे असुर, देव एवं मानव—सभी प्रारम्भित कार्यकी निर्विघ्न तथा सुमङ्गलयुक्त समाप्तिके लिये विघ्नहर्ता, मङ्गलकर्ता श्रीगणेशजीका विधिवत् स्मरण-पूजन करें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

भारतीय देवताकाण्डकी उक्त विशेषता एक आपाततः विनोदपूर्ण उदाहरणसे देखी जा सकती है। भगवान् श्रीशंकर-

जीका श्रीपार्वतीजीके साथ मङ्गल-विवाहका प्रसङ्ग है। इस मङ्गल-कार्यका प्रारम्भ भी गणेशजीके पूजनसे होता है। इसका अर्थ होता है कि पिताके विवाहमें पुत्रका पूजन ! यहाँ सम्भाव्य दो दोष हैं—एक तो कालक्रमका विपर्यय और दूसरा मर्यादाभङ्गरूप अनौचित्य। श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीने अपने रामचरितमानसमें इन शङ्काओंको उत्थापित करके उनका सूत्ररूपसे समाधान भी किया है। इससे पता चलता है कि आप भारतीय संस्कृतिके कितने मर्मज्ञ थे। विशेषता यह कि एक ही दोहेमें यह सब करके आपने कमाल कर दिया है और अपनी अपार बुद्धिमत्ता प्रदर्शित की है। वह दोहा इस प्रकार है—

मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि।
कोउ सुनि संसय करै जनि सुर अनादि जियँ जानि॥
(मानस १। १। १००)

'मुनियोंकी आज्ञासे श्रीशिवजी और पार्वतीजीने श्रीगणेशजीका विधिवत् पूजन किया। देवताओंको अनादि समझकर कोई इस बातको सुनकर मनमें किसी प्रकारकी शङ्का न करे (कि श्रीगणेशजी तो श्रीशिवजी-पार्वतीजीकी संतान हैं, तब विवाहसे पूर्व वे कहाँसे आ गये ?)।'

परब्रह्म परमात्मा अनादि हैं। उनकी सृष्टि भी उतनी ही अनादि है। इस सृष्टिके नियामक देवता भी उतने ही अनादि हैं। प्रत्येक कल्पमें वे हैं ही। पुनश्च, सत्कार्यवादके सिद्धान्तानुसार उत्पत्तिका अर्थ आविर्भावमात्र है। श्रीगणेशजी अनादि होनेके कारण पहलेसे विद्यमान हैं ही, भक्तकार्यके लिये वे समय-समयपर अव्यक्त रूपमेंसे व्यक्त रूप धारण करते हैं। इसे ही उनका 'अवतार' कहा जाता है। श्रीशिवजी तथा पार्वतीजीके यहाँ जन्म लेकर उन्होंने इसी प्रकारका एक अवतार धारण किया था। इस विवेचनसे कालक्रम-विपर्ययरूप दोषकी सम्भाव्य शङ्काका निराकरण हो जाता है। दूसरी सम्भाव्य शङ्काका समाधान यह है कि श्रीशिवजी-पार्वतीजीद्वारा श्रीगणेशजीके पूजनसे मर्यादा-भङ्गरूप अनौचित्य न होकर मर्यादापालनरूप औचित्यका निर्वाह ही होता है। विघ्नोंका आधिपत्य तथा मङ्गलकर्तृत्व—यह सृष्टिके सदर्भमें श्रीगणेशजीका विशेष अधिकार है; अतएव उन्हींकी अग्रपूजाका विधान है। इसलिये इसके अनुसार कार्य करनेमें ही मर्यादाका निर्वाहरूप औचित्य है। ध्यान रहे, यह 'गणपति-पूजनका अनुशासन' श्रीनारदजी तथा सप्तर्षियों-जैसे वेद-वेदान्तज्ञ, धर्म-शास्त्रविशारदोंने दिया था। साथ ही इसका पालन करनेवाले देवाधिदेव श्रीमहादेव और जगज्जननी श्रीपार्वतीजी थीं।

श्रीगणेशजीकी अग्रपूजाका कारण उनके उपर्युक्त विशिष्ट अधिकारमें है। इस विशिष्ट अधिकारका भी एक महत्त्वपूर्ण कारण है। वह यह कि श्रीगणेशजी परम मङ्गल ओंकार परब्रह्म हैं। ओंकारका उच्चारण मङ्गलप्रद है—

ओंकारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा।
कण्ठं भित्त्वा विनिर्यातौ तस्मान्माङ्गलिकावुभौ॥
(नारदपु०, पूर्व० ५१। १०)

ओंकार सृष्टिका आदिबीज और अव्यक्त परब्रह्मका प्रथम व्यक्त स्वरूप है। ओंकार और परब्रह्मका वाच्य-वाचक सम्बन्ध है। भगवान् पतञ्जलि कहते हैं: 'तस्य वाचकः प्रणवः।' ओंकार—यह परब्रह्मका वाचक तथा स्तावक भी है। 'नु' धातुका अर्थ स्तुति करना है। इसमें 'प्र' उपसर्ग जोड़कर 'प्रणव' बना है। इसका अर्थ प्रकर्षपूर्वक की गयी स्तुति या उत्तम स्तोत्र है। यह प्रणव ही परब्रह्मकी सर्वोत्तम स्तुति है। उपनिषदोंमें ॐकारको उद्गीथ भी कहा गया है। छान्दोग्योपनिषद्में लिखा है कि देवताओंने ओंकारका आश्रय लेकर ही मृत्युपर विजय प्राप्त की। माण्डूक्योपनिषद् (१) में बतलाया गया है कि 'चराचर सृष्टिका रहस्य ओंकारमें ही समाया हुआ है'—

'हरिः ओम्। ओमित्येतदक्षरमिदꣳ सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोंकार एव। यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव।'

इसी आशयका निम्न श्लोक है—

ओंकारप्रभवा देवा ओंकारप्रभवाः स्वराः।
ओंकारप्रभवं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥

श्रीगणेशजीके श्रीविग्रहका एक भाग—गजमुख-एकाक्षर परब्रह्मरूप ओंकारका ही प्रतीक है। केवल इस बाह्य रूपको देखकर कुछ विद्वान् भी भ्रममें पड़ गये और श्रीगणेशजीको अनार्योंके देव मान बैठे। वैदिक सनातनधर्ममें रूढ़ प्रतीकोपासनाका रहस्य यथार्थरूपसे समझनेसे इस भ्रान्त धारणाका निरास हो जाता है। 'गणेशोत्तरतापिनी उपनिषद्' (४) में यह रहस्य सम्यक्तया प्रकट किया गया है—

'ततश्चोमिति ध्वनिरभूत्। स वै गजाकारोऽनिर्वचनीया सैव माया जगद्बीजमित्याह। सैव प्रकृतिरिति गणेश इति प्रधानमिति च मायाशबलमिति च।'

इसी प्रकार गणेशपुराणमें भी हम श्रीगजाननके ओंकारस्वरूपका वर्णन पाते हैं। 'श्रीगणपत्यथर्वशीर्ष'में भी

श्रीगणेशजीको ओंकारका व्यक्त स्वरूप कहा गया है। श्रीगणेशभक्त चतुर्थीका व्रत करते हैं। यह व्रत श्रीगणेशजीके विशुद्ध तुर्यरूपकी ओर संकेत करता है। श्रीगणेशजीके पवित्र श्रीविग्रहके अङ्ग-प्रत्यङ्ग, उनका मूषक वाहन, उनकी उपासनाके विभिन्न उपकरणादि प्रतीकरूप हैं। उनमें गहरा तात्त्विक अर्थ भरा हुआ है।

खेदकी बात तो यह है कि पाश्चात्त्य देशोंके विधर्मी लोग इस प्रतीकोपासनाके रहस्यको यथार्थरूपमें समझते हैं; किंतु स्वयं हमारे देशवासी इस विषयमें अनेक भ्रान्त धारणाएँ बना लेते हैं। एलिस गेटीने श्रीगणेशजीपर एक पुस्तक लिखी है। प्रस्तुत संदर्भमें उसका निम्न अवतरण द्रष्टव्य है—"That we are incapable of Judging the conception of an eastern mind, seems proved when a writer looks upon the representation of the Elephant-faced god with amusement rather than with comprehension."—('Parmentier guoted by Alice Getty in 'Gaṇeśa', p. 87)

इसका अर्थ यह है कि 'प्राच्य बुद्धिकी कल्पनाको समझनेमें हम असमर्थ हैं। इसका प्रमाण यह है कि श्रीगजाननदेवके बाह्य स्वरूपका हम सम्यक् आकलन न करके उसे मनोविनोदका विषय बना लेते हैं।'

श्रीगणेशजी ओंकारस्वरूप परब्रह्म होनेके साथ ही बुद्धिके अधिष्ठाता देव भी हैं। स्वयं असाधारण युक्ति-बुद्धिसे सम्पन्न होनेके कारण वे अपने भक्तोंको सद्बुद्धि प्रदान करते हैं। मानवकी बुद्धि अनादि अज्ञानके कारण रज-तम आदि दोषोंसे मलिन होती है। भगवदुपासनासे उसके ये दोष दूर होकर उसे सद्विचारोंकी प्रेरणा मिलती है। भगवान्से विमुख पापपरायण लोगोंकी बुद्धि उन्हें विनाशकी ओर ले जाती है—'बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।' (गीता २। ६३) श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—'राम बिमुख सपनेहुँ सुख नाहीं॥' बुद्धिगत दोषोंके कारण मनुष्यकी स्वाभाविक शक्तियाँ भी कुण्ठित हो जाती हैं। भगवदुपासनासे ये दोष दूर होनेपर वे ज्ञानसम्पन्न तथा वीर्ययुक्त हो जाती हैं—

शक्तयः कुण्ठिताः सर्वाः स्मरणेन त्वया प्रभो।
ज्ञानयुक्ताः सवीर्याश्च कृता विघ्नेश ते नमः॥

'बुद्ध्यधीनं जगत्सर्वम्' अर्थात् सारा जगत् बुद्धिके अधीन है, इसी आशयसे 'न्यायशास्त्र' कहता है—

'सर्वव्यवहारहेतुर्गुणो बुद्धिर्ज्ञानम्।'

'हमारे सारे भले-बुरे व्यवहार हमारी बुद्धि यानी ज्ञानके ही अधीन होते हैं।' हमारी सारी इच्छाएँ, भावनाएँ, क्रियाएँ और मूल्य ज्ञानाधीन ही होते हैं। जैसा जिसका ज्ञान, वैसा ही उसका व्यवहार होता है और इस ज्ञानके बदलते ही मनुष्यके सम्पूर्ण व्यवहार बदल जाते हैं। इसके साथ ही स्वयं मनुष्य भी आमूलाग्र बदल जाता है। नारदजीके यथार्थ ज्ञानोपदेशसे सदोषज्ञानयुक्त कुख्यात महाभयकर लुटेरेका हृदय-परिवर्तन होकर उसका जगद्वन्द्य महर्षि वाल्मीकिमें रूपान्तर हो गया—

'उलटा नामु जपत जगु जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना॥'

(मानस २। १९४। ४)

ज्ञान या बुद्धि एक महान् शक्ति है—

'बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम्।'

इसी अर्थका अंग्रेजी वचन है—'Knowledge is Power.' ग्रीसदेशीय दार्शनिक सुकरात कहा करता था कि 'ज्ञान ही सद्गुण है—Knowledge is virtue'. समस्त दुर्गुण अज्ञानमें ही पनपते हैं। अज्ञान ही मनुष्यका सबसे बड़ा शत्रु है—'एकः शत्रुर्न द्वितीयोऽस्ति शत्रुरज्ञानतुल्यः पुरुषस्य राजन्।' इन्हीं सारी बातोंको ध्यानमें रखते हुए हमारे परमर्षियोंने श्रीभगवान्से अज्ञान दूर करनेके लिये, बुद्धि शुद्ध करनेके लिये तथा उसे शुभ प्रेरणा देनेके लिये अनेक मन्त्रों तथा प्रार्थनाओंका विधान किया है। इसीलिये कार्यारम्भसे पूर्व सद्बुद्धिदाता श्रीगणेशजीके स्मरण तथा पूजनका विधान महत्त्वपूर्ण है। हमारे शास्त्रकारोंने ठीक ही कहा है कि 'देवता पशुपालकी भाँति मनुष्योंके पीछे डंडा लेकर नहीं घूमते; वे मनुष्यके कर्मानुसार उसे विशिष्ट बुद्धिसे युक्त कर देते हैं। इसलिये उन्हें वैषम्य-नैर्घृण्यके दोष नहीं लग पाते।'

ध्यान रहे, मानवी बुद्धि अनेक प्रकारकी मर्यादाओंसे ग्रस्त है। मनुष्यका ज्ञान इतना सीमित होता है कि उसे एक साधारण-सी दीवारकी ओटमें क्या है अथवा अगले क्षण क्या होगा, इसका पता नहीं होता। किंतु उसका अहंकार इतना प्रबल होता है कि वह अपने-आपको जरा-से ज्ञानके बलपर सर्वज्ञ समझने लगता है और बड़ी-बड़ी डींगें हाँकने लगता है। यह अहंकार

मनुष्यका प्रबल शत्रु है, जिसे अमृत-तत्त्वरूप निवृत्ति चूर्ण किये बिना नहीं रहती। इसके वैदिक तथा लौकिक अनेक उदाहरण प्रसिद्ध हैं। केनोपनिषद्में इस विषयमें एक सुन्दर कथा है। परात्पर परब्रह्मकी शक्ति पाकर देवताओंने दानवोंपर विजय प्राप्त की। इस विजयसे वे फूल उठे और परब्रह्मकी कृपाको भूलकर अहंकारसे ग्रस्त होकर अपनी ही शक्तिको इस विजयका कारण समझने लगे। इस अहंकारमें देवताओंके विनाशका बीज देखकर परब्रह्मने उनके इस अहंकारको दूर करनेका निश्चय किया। उन्होंने देवताओंके सामने प्रकट होकर उनके सामर्थ्यकी परीक्षा ली और उन्हें दिखला दिया कि वे अपना पूर्ण बल आजमानेपर भी एक जगसे तिनकेको न तो जला सकते हैं और न उसे चला-सरका सकते हैं। इतिहास-पुराणादिमें भी इस प्रकारके अनेक उदाहरण पाये जाते हैं।

मानवीय इतिहासमें इस अहंकारके चूर्ण होनेका सुप्रसिद्ध उदाहरण अंग्रेजोंद्वारा निर्मित टिटैनिक (Titanic) नामक जहाजका है। अपने समयका यह सबसे बड़ा जहाज था और सब प्रकारकी सुविधाओंमें तथा आमोद-प्रमोदके साधनोंसे युक्त था। इसके निर्माताओंका दावा था कि बड़े-से-बड़ा तूफान भी इसका कुछ बिगाड़ नहीं सकता; किंतु हा हन्त! इसकी पहली यात्रामें ही १५ अप्रैल, सन् १९१२ की कालरात्रिमें, जब कि उसके बड़े-बड़े शाही मुसाफिर आमोद-प्रमोद आदिमें मग्न थे, वह एक प्रचण्ड हिमशिलासे टकराया और लगभग डेढ़ हजार गण्य-मान्य व्यक्तियोंके साथ टाइटैनिक डूब गया और अपने साथ ही ले डूबा इसके निर्माताओंका अहंकार !!

इससे अधिक मार्मिक घटना है, अमेरिकाके अन्तरिक्ष-यानकी। कुछ ही वर्ष पूर्व जब यह अंतरिक्षमें [illegible] तब इसकी सुरक्षाके लिये [illegible] की गयी। इसके फलस्वरूप वह [illegible] आ गया। इसी प्रकारसे [illegible] जड़वादके समर्थक निर्माताओंका [illegible] हुए। ये दोनों घटनाएँ [illegible] और [illegible] हैं।

इन्हीं सारी बातोंका विचार करके हमारे विचारक परमर्षियोंने [illegible] और [illegible] के लिये और सब प्रकारकी मङ्गल-सिद्धिके लिये विघ्नविनाशक मङ्गलमूर्ति बुद्धिदाता, सिद्धि-सिद्धिदाता श्रीगणेशजीकी अग्रपूजाका विधान किया है। श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी इसी आशयसे कहते हैं—

गाइये गनपति जगबंदन।
संकर-सुवन भवानी-नन्दन ॥ १ ॥
सिद्धि-सदन, गज-बदन बिनायक।
कृपा-सिंधु, सुंदर सब लायक ॥ २ ॥
मोदकप्रिय मुद मंगलदाता।
बिद्या-बारिधि, बुद्धि-बिधाता ॥ ३ ॥
माँगत तुलसिदास कर जोरे।
बसहिं राम-सिय मानस मोरे ॥ ४ ॥
(विनयपत्रिका १)

वन्दना

पिता पञ्च-आनन हैं, अग्रज षडानन हैं,
स्वयं गज-आनन हैं, संकट निवारते।
गिरिजा के नन्दन हैं, पूज्य जग-वन्दन हैं,
भक्त-उर-चन्दन हैं, ऋद्धि-सिद्धि वारते ॥
मङ्गल-विधायक हैं, बुद्धि के प्रदायक हैं,
महागण-नायक हैं, विघ्न-व्यूह टारते।
मोद को बढ़ाते, भक्त मोदक चढ़ाते
शुण्ड-दण्ड से उठाते, मुख-मण्डल में धारते ॥

—गोपीनाथ उपाध्याय

श्रीगणेशके रूपकी विशेषता तथा उपासनाके कुछ विशेषांश

(लेखक—श्रीयुत् चल्लपल्लि भास्कर रामकृष्णमाचार्युलु, बी० ए०, बी०एड्०)

ज्ञानानन्दमयं देवं निर्मलं स्फटिकाकृतिम्।
आधारं सर्वविद्यानां हयग्रीवमुपास्महे॥
ओंकारमाद्यं प्रवदन्ति संतो वाच. श्रुतीनामपि यं गृणन्ति।
गजाननं देवगणानताङ्घ्रिं भजेऽहमर्द्धेन्दुकृतावतंसम्॥

'जो ज्ञान तथा आनन्दके स्वरूप है, विनिर्मल स्फटिक-तुल्य जिनकी आकृति है, जो समस्त विद्याओंके परमाधार हैं, उन श्रीहयग्रीवजीकी मै उपासना करता हूँ। जिनको संतलोग आद्य-ओंकार कहते हैं, वेदकी ऋचाएँ भी जिनकी स्तुति करती है, जिनके सिरपर अर्धचन्द्र शोभा पाता है तथा सभी देवतागण जिनके चरणोपर नतमस्तक होते है, उन गजमुख श्रीगणेशजीकी मै वन्दना करता हूँ।'

श्रीगणेशजीकी आराधना अनादिकालसे भारतमे प्रचलित है। कुछ आधुनिकलोग पाश्चात्त्य मतोंसे प्रभावित होकर इस भ्रान्तिमे पड़ते हैं कि गणेशजीकी उपासना वैदिक नहीं है, अपितु इसका स्वरूप अर्वाचीन कालमे प्रचलित हुआ। लेकिन वेद तथा आरण्यकोंमे गणपति-मन्त्र तथा गणपति-गायत्रीकी उपलब्धि होती है, जिनके अध्ययनसे ज्ञात होता है कि गणपति-उपासना वेदविहित है।

'गणेश' या 'गणपति'-नामकी विवेचना

१—मनद्वारा ग्राह्य तथा वाक्‌द्वारा वर्णनीय सम्पूर्ण भौतिक जगत्‌को तो 'ग'कारसे उत्पन्न हुआ जाने तथा मन और वाक्‌से अतीत ब्रह्मविद्यास्वरूप परमात्माको 'ण'कार समझे। 'अध्यात्मविद्या परमात्माका स्वरूप है—'अध्यात्म-विद्या विद्यानाम्' (गीता १० । ३२)। परमात्माके चिन्तन तथा वर्णनमे मन तथा वाणी समर्थ नहीं है—

'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।'
(तैत्तिरीय० २ । ४)

'न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा॥'
(मुण्डकोपनिषद् ३ । ८)

इस भौतिक जगत् तथा अध्यात्मविद्याके स्वामी 'गणेश' कहलाते हैं—

मनोवाणीमयं सर्वं गकाराक्षरसम्भवम्।
मनोवाणीविहीनं च णकारं विद्धि मानद।
तयोः स्वामी गणेशोऽयं योगरूप. प्रकीर्तितः॥
सम्प्रज्ञातसमाधिस्थो गकारः कथ्यते बुधैः।
असम्प्रज्ञातरूपं वै णकारं विद्धि···॥
तयोः स्वामी गणेशोऽयं शान्तियोगमयस्सदा॥

'ग'कार सम्प्रज्ञात समाधिके तथा 'ण'कार असम्प्रज्ञात समाधिके स्वरूप है। इन दोनोके स्वामी 'गणेश' कहलाते हैं।

गकार. कण्ठोर्ध्वगजमुखसमो मर्त्यसदृगो
णकार· कण्ठाधो जठरसदृशाकार इति च॥
अधोभाग· कट्यां चरण इति हीशोऽस्य च तनुः।
(गणेशमहिम्नःस्तोत्र ९)

'ग'-कार कण्ठके ऊर्ध्वभाग गजमुखका तथा 'ण'-कार कण्ठसे उदरतकके भागका तथा 'ईश' कटि तथा चरणका संकेत देते हैं।

गजानन होनेका रहस्य—

यस्माज्जातमिदं यत्र ह्यन्ते गच्छति महामते।
तद्वेदे गजशब्दाख्यं शिरस्तत्र गजानन.॥
(मुद्गलपुराण)

''गकार' से गमन (लय) और 'जकार' से जन्य (उत्पत्ति) की ओर संकेत किया गया है। ये ही दोनो अक्षर वेदमे 'गज' नामसे प्रसिद्ध है। इसीके कारण गणेशजी 'गजानन' कहे गये हैं।'' गणेशजीका गजवदन सम्पूर्ण जगत्‌के सृजन, पालन तथा लयकी सूचना देता है—

'सर्वं जगदिदं त्वत्तो जायते। सर्वं जगदिदं त्वत्तस्तिष्ठति। सर्वं जगदिदं त्वयि लयमेष्यति।' (गणपत्यथर्वशीर्ष० ५)

एकदन्तका रहस्य—

एकशब्दात्मिका माया देहरूपा विलासिनी।
दन्तस्सत्तात्मकः प्रोक्त. ·········॥
मायाया धारकोऽयं वै सत्तामात्रेण संस्थितः।

''एक'-शब्द बाह्यशरीररूपी मायाका तथा 'दन्त'-शब्द सत्तारूप परमात्माका संकेत करते हैं। 'एकदन्त'-शब्द मायाका आलम्बन किये हुए सगुणरूपी गणेशका बोधक होता है।''

चतुर्भुजका संकेत—

गणपति जलतत्त्वके अधिपति हैं। जलके चार गुण होते

है—शब्द, स्पर्श, रूप तथा रस। सृष्टि चार प्रकारकी होती है—स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज तथा जरायुज। जीवहितके पुरुषार्थ चार होते हैं—धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—

चतुर्विधं जगत्सर्वं ब्रह्म तत्र तदात्मकम्।
हस्ताश्चत्वार एवं ते··················॥
स्वर्गेषु देवताश्चायं पृथ्व्यां नरांस्तथातले।
असुरान्नागमुख्यांश्च स्थापयिष्यति बालकः॥
·················तस्मान्नाम्ना चतुर्भुजः॥

जगच्चालक गणेशने देवता, मानव, नाग तथा असुर—इन चारोंको स्वर्ग, पृथ्वी तथा पातालमें स्थापित किया, इसका संकेत 'चतुर्भुज' देते हैं।

गीताके अनुसार भगवान्के भक्त चार प्रकारके होते हैं—'आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च॥' (७। १६) भगवत्प्राप्तिके भी चार तरहके साधन 'परमगुह्यरूप'में गीतामें प्रतिपादित हैं—

'मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।'
(गीता १८। ६५)

'मनसे भगवच्चिन्तन करते हुए मनको भगवन्मय बनाना, भगवान्में भक्ति रखना, भगवान्की अर्चा करना, भगवान्को नमस्कार करना।' ऐसा करनेसे क्या फल होता है?

'मामेवैष्यसि सत्यं ·········॥'

'वह मुझे ही प्राप्त होता है।'

उक्त चार प्रकारके साधनोंका भी संकेत चार भुजाओंसे मिलता है। इस तरह विनायकके चार हाथ चतुर्विध सृष्टि, चतुर्विध पुरुषार्थ, चतुर्विध भक्त तथा चतुर्विध परम उपासनाका संकेत करते हैं।

गणेशजीके आयुध—

साधारणतया गणेशजीके चार आयुध होते हैं—पाश, अङ्कुश, वरदहस्त तथा अभयहस्त। कहा जाता है कि पाश रागका तथा अङ्कुश क्रोधका संकेत है। अथवा यह भी समझ सकते हैं कि श्रीगणेश पाशके द्वारा भक्तोंके पाप-समूहों तथा सम्पूर्ण प्रारब्धका आकर्षण करके अङ्कुशसे उनका नाश कर देते हैं। उनका वरदहस्त भक्तोंकी कामना-पूर्तिका तथा अभयहस्त सम्पूर्ण भयोंसे रक्षाका सूचक है।

वक्रतुण्ड—

समस्त प्राणियोंको भ्रान्तिमें डालनेवाली भगवान्की माया वक्र अर्थात् दुस्तर है। उस मायाका अपने तुण्डसे हनन करनेके कारण श्रीगणेशजी 'वक्रतुण्ड' कहलाते हैं—

माया भ्रान्तिकरी जन्तूनां संकथिता मुने।
तुण्डेन तां निहन्तीति तेनायं वक्रतुण्डकः॥

गीतामें भी कहा गया है कि भगवान्की माया दुस्तर है। इसलिये जो भगवान्की शरण ग्रहण करते हैं, वे ही उस मायाको पार कर पाते हैं—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥
(७। १४)

भगवान् ही समस्त प्राणियोंको मायाके द्वारा भ्रमण कराते हैं—

'भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥'
(गीता १८। ६१)

इस दुस्तर मायासे छुटकारा पानेकी इच्छावाले शरणागत भक्तोंको मायासे छुटकारा दिलाकर परमपद देनेसे ही वे भगवान् 'वक्रतुण्ड' कहलाते हैं। इस प्रकार देखें तो वक्रतुण्डको श्रीकृष्णरूप समझनेमें कोई बाधा नहीं है।

गणेशजीका स्वरूप 'वक्र' अर्थात् दुर्जेय है। विघ्न वक्र—दुष्प्रतिनिवारण रहनेके कारण होते हैं। इन वक्ररूप विघ्नोंका अधिपति होनेके कारण वे भगवान् वक्रतुण्ड 'विघ्नेश' कहलाते हैं—

कण्ठाधो मायया युक्तं मस्तकं ब्रह्मवाचकम्।
वक्राख्यं येन विघ्नेशस्तेनायं वक्रतुण्डकः॥

भगवत्स्वरूपकी दुर्ज्ञेयताकी सूचना गीतामें भी देख सकते हैं—

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
मूढोऽयं नाभिजानाति··············॥
(७। २५)

'अवजानन्ति मां मूढाः··············॥'
(९। ११)

जो भगवान्का भजन नहीं करता, उसे निराश होना, अपने कर्मोंका वाञ्छित फल न पाना आदि विघ्न प्राप्त होते हैं। वे ही 'विघ्न' पदसे सूचित हैं।

'मोघाशा मोघकर्माणो ··············॥'
(गीता ९। १२)

इन वक्ररूप विघ्नोंका निवारण करके भक्तोंको भोग-मोक्ष प्रदान करनेके कारण ये 'वक्रतुण्ड' कहलाते हैं, जिसकी

सूचना गीतामे भी 'अनन्याश्चिन्तयन्तो ····योगक्षेमं वहाम्यहम्' (९ । २२) आदि वाक्योद्वारा मिलती है।

शूर्पकर्ण--

शूर्प जैसे चावलको घास-फूस आदिसे शुद्ध करके भोजन करनेयोग्य बनाता है, उसी प्रकार भगवान् गणेशजी भी अपने उपासकोंके अज्ञानरूप धूलिको उड़ाकर ज्ञान-दान करते हैं। 'अज्ञानेनावृतं ज्ञानम्' (गीता ५ । १५)। मायासे आवृत परब्रह्म साधकको नहीं मिलता। इसलिये मायाको हटाकर ब्रह्म-साक्षात्कार करानेका संकेत 'शूर्पकर्ण' देते हैं—

रजोयुक्तं यथा धान्यं रजोहीनं करोति च।
शूर्पं सर्वनराणां वै योग्यं भोजनकाम्यया॥
तथा मायाविकारेण युतं ब्रह्म न लभ्यते।
त्यक्तोपासनकं तस्य शूर्पकर्णस्य सुन्दरि॥
शूर्पकर्णं समाश्रित्य त्यक्त्वा मलविकारकम्।
ब्रह्मैव नरजातिस्थो भवेत्तेन तथा स्मृतः॥

नाग-यज्ञोपवीत तथा सिरपर चन्द्रमा--

नाग-यज्ञोपवीत कुण्डलिनीका संकेत है तथा सिरपर चन्द्रमा सहस्रारके ऊपर स्थित अमृतवर्षक चन्द्रमाका प्रतीक है।

मूषकवाहन--

भक्तोंके हृदयोंमें चोरकी तरह छिपे रहकर सभी मनुष्योंको चलानेका संकेत मूषकसे प्राप्त होता है—

द्वन्द्वं चरसि भक्तानां तेषां हृदि समास्थितः।
चोरवत्तेन तेऽभूद्वै ··· ··········· ··· ॥
मूष स्तेये तथा धातुः················· ।
ईश्वरः सर्वभोक्ता च चोरवत्तत्र संस्थितः॥
स एव मूषकः प्रोक्तो मनुजानां प्रचालकः।

ईश्वरके समस्त भूतोंके हृदयोंमे छिपे रहनेकी बात प्रसिद्ध है, जो गीतोक्त भी है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥
(१८ । ६१)

इससे भी सिद्ध होता है कि गणेशजी श्रीकृष्णसे अभिन्न है।

श्रीगणेशजीके अवतार—

श्रीगणेशजीके अवतार असंख्य होनेपर भी उनमे आठ बहुत प्रसिद्ध है। स्थानाभावके कारण उनका केवल उल्लेखमात्र किया जाता है—

(१) **वक्रतुण्ड**—जो सिंहवाहन तथा मत्स्यासुरके हन्ता है।

(२) **एकदन्त**--जो मूषकवाहन तथा मदासुरके हन्ता हैं।

(३) **महोदर**—जो मूषकवाहन, ज्ञानदाता तथा मोहासुरके नाशक है।

(४) **गजानन**--जो मूषकवाहन; साख्योंको सिद्धि देनेवाले एवं लोभासुरके हन्ता हैं।

(५) **लम्बोदर**--जो मूषकवाहन तथा क्रोधासुरके हन्ता है।

(६) **विकट**--जो मयूरवाहन तथा कामासुरके हन्ता है।

(७) **विघ्नराज**--जो शेषवाहन और ममासुरके प्रहर्ता है।

(८) **धूम्रवर्ण**--जो मूषकवाहन और अहतासुरके हन्ता हैं।

इन अवतारो तथा इनके द्वारा मारे गये असुरोंके बारेमे विवेचन करके देखे तो मत्स्यको छोड़कर बाकी सब मद, मोह, लोभ, क्रोध, काम, ममता तथा अहंतारूप अन्तरशत्रुओंका ही संकेत करते हैं। साधकके अरिष्टनाश करके परमपद-प्राप्ति करनेका संकेत उनकी अवतार-लीलाओंसे ज्ञात होता है।

युगभेदसे गणेशके विभिन्न रूपोंका ध्यान—

कृतयुगमें-सिंहारूढ, दशबाहु, तेजोरूप तथा कश्यपके सुत श्रीगणेशजीका ध्यान करना चाहिये।

त्रेतायुगमें-मयूरवाहन, षड्भुज, शशिवर्ण तथा शिवपुत्र श्रीगणेशजीका ध्यान करे।

द्वापरमें-मूषकारूढ़, चतुर्भुज, रक्तवर्ण तथा वरेण्य सुतके रूपमे श्रीगणेशजीका ध्यान करे।

कलियुगमें-धूम्रवर्ण, द्विबाहु तथा सर्वभावनके रूपमे श्रीगणपतिका ध्यान करके उनकी उपासना विहित है। यही बात गणेशपुराणके निम्नलिखित ध्यानमे सूचित है—

ध्यायेत् सिंहगतं विनायकममुं दिग्बाहुमाद्ये युगे
त्रेतायां तु मयूरवाहनममुं षड्बाहुकं सिद्धिदम्।
द्वापरे तु गजाननं युगभुजं रक्ताङ्गरागं विभुं
तुर्ये तु द्विभुजं सिताङ्गरुचिरं सर्वार्थदं सर्वदा॥

बारह महीनोंमें गणेशजीकी उपासना—

चैत्र मासमें 'वासुदेव'-रूपी गणेशजीकी उपासना करके सुवर्ण दक्षिणा देनी चाहिये। वैशाख मासमें 'संकर्षण'-रूपी गणेशजीकी उपासना करके शङ्ख-दान देना चाहिये। ज्येष्ठ मासमें 'प्रद्युम्न'-रूपी गणेशजीकी पूजा करके फल-मूल-दान देना चाहिये। ज्येष्ठ मासमें गणेशजीकी अर्चा 'सतीव्रत' के नामपर की जाती है; जिससे साधक गणेशमाता पार्वतीजीका लोक प्राप्त कर लेता है। आषाढ़ मासमें 'अनिरुद्ध'-रूपी गणेशजीकी अर्चा करके संन्यासियोंको तूँबी-पात्रका दान करना चाहिये। आषाढ मासमें गणपतिकी अर्चा करके देवदुर्लभ फल पाता है। श्रावण मासमें 'बहुला' गणेशजीकी पूजाका विधान है। भाद्रपद मासमें 'सिद्धि-विनायक'की पूजाका विधान है। आश्विनमें 'कपर्दीश' गणेशजीकी पूजा पुरुषसूक्तोंसे करनी चाहिये। कार्तिक मासमें 'करकचतुर्थी' व्रत करनेका विधान है। मार्गशीर्ष मासमें चार संवत्सरपर्यन्त पालनीय व्रतकी विधि है। पौष मासमें 'विघ्न-नायक' गणेशकी और माघ मासमें 'संकष्टव्रत' लेकर उनकी पूजा करनेका विधान है। फाल्गुन मासमें 'ढुण्ढिराज'व्रत करनेका विधान है। मङ्गलवारपर चतुर्थी आये तो उसे 'अङ्गारक-चतुर्थी' कहते हैं, जो विशेष फलदायक होती है। रविवारके दिन चतुर्थी आये तो विशेष फलप्राप्तिका हेतु होती है।

इक्कीस पत्रोंसे पूजा—

श्रीगणेशजीको समर्पण किये जानेवाले सभी इक्कीस पत्र भी आयुर्वेदकी दृष्टिसे बड़े महत्त्वके हैं। उनमें एक-एक ओषधि आरोग्य-वर्धक, रोग-निवारक सिद्ध हुई है। विशेषकर दूर्वा तो पुष्टिदायक, सन्तोषप्रद, सवर्ण-कारक, सर्वदोषहर कहलाती है, जो विशेषरूपसे गणपतिकी पूजामें प्रयुक्त होती है। अभी समाचारपत्रोंमें आया है कि 'दूर्वामें प्रोटीन बहुत अधिक है। एक हेक्टरमें उपजनेवाले धानके अतिरिक्त, घाससे कम-से-कम पाँच गुना प्रोटीन आदि अधिक होते हैं।' मद्रासके समीप घाससे बिस्कुट, रोटी बनानेवाला कर्मागार भी काम करता है। अन्य पत्रोंका वैज्ञानिक विवेचन स्थानाभावके कारण नहीं किया जा रहा है।

जन्तुमुखवाले कुछ प्रधान देवता—

पहले सर्वाङ्गपूर्ण पुरुषरूपसे प्रकट होकर, कारण-विशेषसे सिर कट जानेपर अन्य किसी जन्तुका सिर लगाये जानेसे प्रसिद्ध हुए देवताओंमें भगवान् हयग्रीव तथा गणपति प्रधान हैं। दक्षप्रजापतिको भी मेषका सिर लगाया गया था, तो भी उनकी आराधना प्रचलित नहीं दीखती। विष्णुके नरसिंह, वराह अवतार तो जन्तु-सिरके साथ ही प्रकट हुए थे। इनमें विद्या, ऐश्वर्य तथा मोक्ष-प्राप्तिके लिये गणपति तथा हयग्रीवकी आराधना विशेषरूपमें प्रचलित है।

अन्य देवताओंमें गणेशजीका अंश—

श्रीगणेशजीके अंश एकादशमुख हनुमान् तथा अष्टमुख गंडभेरुण्ड ज्वालानारसिंहमें दिखायी देते हैं। इससे यह अनुमान किया जाता है कि गणेशजीकी पूजासे परोक्षरूपसे भगवान् नारसिंहजीकी तथा हनुमान्‌जीकी भी अर्चा हो जाती है।

विष्णुपालनके अङ्गके रूपमें गणेशोपासना—

गणेशजीकी अर्चा विष्णुजीके द्वितीयावरणके द्वारपालके रूपमें (वैखानस-सम्प्रदायके अनुसार) की जाती है। वहाँ उनका ध्यान निम्नप्रकारसे किया जाता है, जो सर्व-साधारणमें प्रचलित नहीं है—

'द्वितीयवरणद्वारदक्षिणे चोत्तराभिमुखः, प्रवालाभः, एकदन्तः, कण्ठादूर्ध्वं गजाकारो वामनः, कुशध्वजो वेणुकृतयाहनशङ्खधरश्चतुर्भुजः, कदलीफलहस्तः आर्द्रापतिश्चविघ्नजो वक्रतुण्डः।'

(मरीचि-विमानार्चनकल्प, पटल—७०)

श्रीविष्णुके आलयोंमें उत्सवके प्रारम्भमें किये जानेवाले 'अङ्कुरारोपण' में भी गणेशजीकी पूजा होती है।

गणेशजीकी पूजा विभिन्न प्रतीकोंमें—

साधारणतया गणेशजीकी पूजा हरिद्राकी (गोली) मूर्तिपर की जाती है। हरिद्रामें मङ्गलकारिणी शक्ति है तथा वह लक्ष्मीका प्रतीक भी है। नारदपुराणमें तो गणेशजीकी सुवर्णमयी प्रतिमा बनानेका आदेश देकर, उसके अभावमें हरिद्रासे उसे बना लेनेकी छूट दी गयी है। गोमयमें लक्ष्मीका स्थान होनेके कारण लक्ष्मी-प्राप्तिके लिये गणेशजीकी उपासना गोमय-मूर्तिपर की जाती है।

गणेशजीकी विशेष कृपा शीघ्र पानेके लिये श्वेत अर्ककी जड़को पुष्य-नक्षत्रयुक्त रविवारके दिन मन्त्रोच्चारणपूर्वक उखाड़कर उस जड़से अँगूठेके बराबरकी गणेशजीकी मूर्ति बनाकर पञ्चामृतसे उसका अभिषेक करके पूजामें रख ले, जो बहुतोंद्वारा अनुभूत है तथा इसका संकेत अग्निपुराणके ३०१वें अध्यायमें भी मिलता है। अगर

पुष्ययुक्त रविवार अलभ्य हो तो केवल पुष्य-नक्षत्रके दिन भी उक्त श्वेत आककी जड़को उखाड़कर पूजाके लिये उसका उपयोग कर सकते हैं।

श्रीगणेशजीकी लकड़ीकी मूर्ति बनाकर घरके बहिर्द्वारके ऊर्ध्वभागमें उसकी स्थापना करनेपर गृह मङ्गलयुक्त हो जाता है—'प्रभावात्तन्मूर्त्या भवति सदनं मङ्गलकरम्।' अब गणेशजीकी विभिन्न गायत्रियोंके स्मरणके साथ लेख समाप्त किया जाता है।

विभिन्न गणेशगायत्री—

(१) लम्बोदराय विद्महे महोदराय धीमहि।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥
(अग्निपुराण ७१ अध्याय)

(२) महोत्कटाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥
(अग्निपुराण, १७९ अध्याय)

(३) एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥
(गणपत्यथर्वशीर्ष)

(४) तत्कराटाय विद्महे हस्तिमुखाय धीमहि।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥
(मैत्रायणीयसंहिता)

(५) तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥
(तैत्तिरीयारण्यक—नारायणोपनिषद्)

'कलौ चण्डीविनायकौ'

(लेखक—पं० श्रीपट्टाभिराम शास्त्री, मीमांसाचार्य)

चिरकालसे पवित्र हमारा भारतदेश आध्यात्मिक शक्ति-सम्पन्न रहा है, क्योंकि हमारे पूर्वजोंने ऐसे अनेक पर्वोंको प्रवर्तित किया है, जिनमें सेतुसे लेकर हिमाचलपर्यन्त एक ही रीतिसे उत्सव मनाये जाते हैं। इतिकर्तव्यतामें भेद हो सकता है, किंतु प्रधानमें कोई भेद नहीं है। उन पर्वोंमें भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी विशेष महत्त्वपूर्ण है। प्रान्तके भेदसे कोई इसको 'विनायक-चतुर्थी' कहते हैं तथा कोई 'गणेश-चतुर्थी'।

विनायक-रहस्य

कलिमें 'चण्डी' और 'विनायक' शीघ्र फलप्रद देवता माने गये हैं। सभी कार्योंके आरम्भमें विनायककी पूजा अवश्य होती है। इसको 'गणेशपूजन' कहते हैं। विनायक-शब्दके—विशिष्ट नायक, विगत है नायक—नियन्ता जिसका, अथवा विशेषरूपसे ले जानेवाला अर्थ होते हैं। वैदिक मतमें सभी कार्योंके आरम्भमें जिस देवताका पूजन होता है, वह 'विनायक' है। विनायककी पूजा प्रान्त-भेदसे सुपारी, पत्थर, मिट्टी, हल्दीकी बुकनी, गोमय, दूर्वा आदिमें आवाहनादिके द्वारा होती है। इससे पता लगता है कि इन सभी पार्थिव वस्तुओंमें यह देवता व्याप्त है। इस देवताके अनेक नाम हैं; उनमें 'विनायक'-शब्द एक विलक्षण अर्थका प्रत्यायक है। विनायक-चतुर्थीका व्रत या उत्सव सिंहस्थ सूर्य, भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी और हस्त-नक्षत्रके योगमें होता है। यह योग यदि बुधवारमें पड़ जाय तो इसका विशेष महत्त्व माना जाता है। इस तत्त्वको 'विनायक'-शब्द अवगत कराता है। क ट प आदि संख्या शास्त्र-के अनुसार वि ४, ना० य १, क १—इन संख्याओंका योग ६ होता है। यह 'वक्रतुण्ड षडक्षरी' मूल तन्त्रका परिचायक है। 'अङ्कानां वामतो गतिः' इस शास्त्रीय नियमसे ११०४ संख्या प्राप्त होती है। यह संख्या सिंहस्थ सूर्य, भाद्रपद मास, शुक्ल पक्ष, चतुर्थी तिथि और हस्त-नक्षत्रका परिचय कराती है। चान्द्रमानके अनुसार भाद्रपद छठा मास है। इन संख्याओं-का योग ६ है। संख्या ४ और १ के योगसे ५ संख्या निकलती है। यह सिंहस्थ सूर्यका द्योतक है। सिंह पाँचवीं राशि है। बची हुई १ संख्या शुक्ल पक्षका परिचायक है; क्योंकि शुक्ल पहला और कृष्ण दूसरा पक्ष है। प्रथम दो संख्या ११ है। यह ग्यारहवें नक्षत्र हस्तका परिचायक है। विंशोत्तरी दशाका गणन कृत्तिका-नक्षत्रसे किया जाता है। वेदोंमें भी इसका प्रमाण मिलता है। कृत्तिकासे ग्यारहवाँ नक्षत्र हस्त है। ४ संख्या चतुर्थी तिथि और बुध-वारका द्योतक है। शून्य अङ्क शिवतत्त्वका द्योतक है। इसी कारणसे हमारे पूर्वज- शिवशक्त्यभिन्न गणपतिको कार्यारम्भमें पूजते आये हैं। विनायक-शब्द इतने अर्थोंका बोधक है।

शिवः खमनिलश्शक्ती रविरग्निर्जलं हरिः।
महो गणेशः सम्प्रोक्तः विश्वमेतद्द्वयं नुमः॥

विनायक भूतत्त्व

इस उक्तिसे विनायक भूतत्त्वरूपी मालूम पडता है । 'मही मूलाधारे'-इस प्रमाणसे मूलाधार भूतत्त्व है । अर्थात् मूलाधारमें भूतत्त्वरूपी गणेश विराजमान हैं और गणपतिके 'ग्लो' बीजका विचार करनेसे यह अवगत होता है कि—'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाश. सम्भूतः, आकाशाद्वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्य. पृथिवी'—इस सृष्टि-क्रमके अनुसार 'गकार' खबीज और 'लकार' भूबीज—इनके योगसे पञ्चभूतात्मक गणेश हैं। इस भाद्रपद शुक्ल चतुर्थीके पूजनके लिये हमारे पूर्वज मिट्टीसे ही गणपति-बिम्ब बनाकर पूजा करते थे। आज भी वह आचार भारतमे प्रचलित है । शोणभद्र-शिला या अन्य चाँदी-सोनेसे बने हुए बिम्बको पूजामे नहीं रखते हैं, मिट्टीका ही ग्रहण करते है । इससे भी अवगत होता है कि गणपति भूतत्त्व है ।

दूर्वा, शमीपत्र और मोदक क्यों ?

इस पूजामे दूर्वा, शमीके पत्ते और मोदक मुख्यतः ग्रहण किये जाते हैं; क्योंकि ये गणेशजीके प्रिय माने जाते है । पूजाके अवसरपर दूर्वा-युग्म अर्थात् दो दूर्वा तथा होमके अवसरपर तीन दूर्वाओके ग्रहणका विधान तन्त्रशास्त्रमे मिलता है । इसका तात्पय यह है कि क ट प आदि सख्या-शास्त्रसे दू ८, र्वा ४, 'अङ्कानां वामतो गतिः' न्यायसे ४८ संख्या उपलब्ध होती है। इसी प्रकार 'जीव' (जी ८, व ४)से ४८ सख्या निकलती है। इस संख्या-साम्यसे 'दूर्वा'का अर्थ जीव होता है। जीव सुख और दुःखको भोगनेके लिये जन्म लेता है । इस सुख और दुःखरूप द्वन्द्वको दूर्वा-युग्मसे समर्पण किया जाता है। जिस प्रकार जीव जन्म-जन्मान्तरोंमे अर्जित पुण्य और पापोंके फलस्वरूप बार-बार जन्म लेता है, उसी प्रकार दूर्वा अपनी अनेक जड़ोंसे जन्म लेती है। अतः जीव और दूर्वाका न केवल संख्यासे ही साम्य है, किंतु क्रियासे भी समानता है । भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थीके पूजनमे इक्कीस दूर्वा-युग्मोंसे पूजन विहित है । यह २१ दुःख-ध्वंसका द्योतक है । शास्त्रकारोंका मत है कि 'एकविंशतिदु.खध्वंसद्वारा मोक्षः' यह द्वैत-सिद्धान्तका परिचय कराता है । इस पूजनमे 'युग्म'से सुख और दुःखके ध्वंसके द्वारा आनन्दात्मक मोक्षका संकेत मिलता है । होमके अवसरपर तीन दूर्वाओका ग्रहण इस तात्पर्यका अवगमक है—आणव, कार्मण और मायिकरूपी तीन मलोंको भस्मीभूत करना । गीतामे 'ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्म सात्कुरुतेऽर्जुन' (४ । ३७) कहा है । 'ज्ञानाग्नि.' इस पदने क-ट-प आदि शास्त्रके द्वारा शून्य० संख्या निकलती है—ज्ञा-०ना-०ग्नि-० । भस्म सत्त्वगुणका परिचायक है । जीवका जन्म-जन्मार्जित सभी मल भस्मीभूत होनेपर सत्त्वगुणसम्पन्न होकर वह मोक्षको प्राप्त करता है । यही तीन दूर्वाओंसे होम करनेका तात्पर्य है ।

शमी-वृक्षको 'वह्निवृक्ष' भी कहते हैं । वह्निपत्र गणपतिके लिये प्रिय वस्तु है। क-ट-प आदि शास्त्रसे व संख्या ४ ह्नि:० । शिक्षा-ग्रन्थोंमे 'ह्नि' अक्षरको ह्नि. न के रूपमे उच्चारणके लिये व्यवस्था मिलती है । अतः 'ह्नि:'का० शून्य अङ्क है । यह शिवका द्योतक है । 'चत्वारि वाक्परिमितापदानि'—परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरीकी ४ संख्याका परिचायक है। शिक्षा-ग्रन्थोंमे शब्दके मूलाधारसे निकलकर मूर्धा, कण्ठ और ताल्वादिकोंसे सम्बद्ध होकर मुखसे निकलनेका प्रकार लिखा है । पहले कहा जा चुका है कि भूतत्त्वरूपी गणेशका मूलाधार स्थान है । इस प्रकार जानकर वह्निपत्रसे विनायकको पूजनेसे जीव ब्रह्मभावको प्राप्त कर सकता है ।

अब 'मोदक' क्या वस्तु है, जो गणेशको परमप्रिय है । मोद—आनन्द ही मोदक है—'आनन्दो मोद. प्रमोद.' श्रुति है । इसका परिचायक है—'मोदक' । मोदकका निर्माण दो-तीन प्रकारसे होता है। कई लोग बेसनको भूँजकर चीनीका चासनी बनाकर लड्डू बनाते है। इसको 'मोदक' कहते हैं । यह मूँगके आटेसे भी बनाया जाता है । कतिपय लोग गरी या नारियलके चूर्णको गुड-पाककर, गेहूँ, जौ या चावलसे आटेको सानकर कवच बनाकर, उसमें सिद्ध गुड़पाकको थोड़ा रखकर घीमे तल लेते है या वाष्पसे पकाते हैं । आटेके कवचमे जिस गुड़पाकको रखते है, उसका 'पूर्णम्' नाम है । 'पूर्णम्'से ५१ सख्या निकलती है । यह संख्या अकारादि ५१ अक्षरोंकी परिचायिका है । यही तन्त्रशास्त्रमे 'मातृका' कहलाती है । 'न क्षरतीति अक्षरम्'—नाशरहित परिपूर्ण सच्चिदानन्द ब्रह्म-शक्तिका यह द्योतक है । पूर्ण ब्रह्मतत्त्व मायासे आच्छादित होनेसे वह दीखता नहीं, यह हमे 'मोदक' सिखलाता है । गुड़पाक आनन्दप्रद है । उसको आटेका कवच छिपाता है । वह आस्वादसे ही गम्य है, इसी प्रकार ब्रह्मतत्त्व स्वानुभवैक-गम्य है । विनायकभगवान्के हाथमे इस मोदकको रखते है तो वे स्वाधीनमाय, स्वाधीनप्रपञ्च आदि शब्दोमे व्यवहृत होते है । यही दूर्वा-वह्नि-मोदकका तात्पर्य है ।

सांस्कृतिक तत्त्व

इस पञ्चभूतात्मक प्रपञ्चको जब पञ्चभूतोके रूपमे देखते

हैं, तब ब्रह्मतत्त्वका ज्ञान नहीं है और जब हम पञ्चभूतोंको ब्रह्मके रूपसे देखते हैं तो पञ्चभूत नहीं हैं। दृष्टिका ही यह भेद है, वस्तु एक है, वह परिपूर्ण है। यही तत्त्व 'विनायक' है। यही हमारी सस्कृति है।

श्रीविद्याके उपासक सर्वप्रथम 'गणेश'की पूजा करते हैं। लेकिन इस पूजाका वे गणेश-पूजा या विनायक-पूजाके नामसे व्यवहार नहीं करते। किंतु 'महागणपति-सपर्या'-शब्दसे व्यवहार करते हैं। इस प्रकारके व्यवहारसे एक महान् तात्पर्य है। 'अष्टाविंशतिवर्णविशिष्टो महाहेरम्बस्य मनुः'—यह गौड़पादका सूत्र है। यह मनु (मन्त्र) दो प्रकारका है—एक सम्बोधनान्त 'गणपते'-पदसे और दूसरा चतुर्थ्यन्त 'गणपते'-पदसे घटित है। श्रीविद्याके उपासक सम्बोधनान्त मन्त्रका जप करते हैं। जो मोक्षेच्छु हैं, वे चतुर्थ्यन्त मन्त्रको जपते हैं—

सम्बुद्ध्यन्तमहामन्त्रो शाक्तमार्गप्रबोधकः।
चतुर्थ्यन्तमहामन्त्रो मोक्षमार्गैकहेतुकः॥

—ऐसा प्रमाण मिलता है। क-ट-प आदि रीतिसे महागणपति शब्दमें म—५, हा—८, ग—३, ण—५, प—१, ति—६—इन संख्याओंके योगसे २८ संख्या लब्ध होती है। यह महाषोडशीका परिचायक है। इसी प्रकार ग—३, ण—५, प—१, ति—६—इनके योगसे १५ संख्या निकलती है। यह पञ्चदशाक्षरीका द्योतक है। अतएव श्रीविद्याके साथ महागणपतिका दृढ़तर सम्बन्ध व्यक्त होता है। जो श्रीविद्याके उपासक नहीं हैं, उनके लिये विनायक-पूजन भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थीमें विहित है। आचारमें श्रीविद्याके उपासक भी भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थी-व्रतको करनेवाले मिलते हैं।

इस प्रकारके रहस्यको ध्यानमें रखते हुए हमारे चिरन्तन महात्मा पूजन आदिसे आध्यात्मिक शक्तिका उपार्जन करते थे। हमारी हिंदू जनताका न केवल यह प्रतीक है, किंतु एकताके लिये महान् साधन है। हम सभी इस दृष्टिसे भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थीमे विनायकके पूजनसे एकताको प्राप्त कर भारतवर्षके उन्नयनमें भागीदार बनें।

गणेशरूपकी मान्त्रिक व्याख्या

(लेखक—श्रीगोविन्दजी शास्त्री)

गणेशका नाम लेते ही एक मूर्ति उभरती है—स्थूलकाय, तेजोदीप्त, वक्रतुण्ड महाप्राण देवताकी। ये ही हैं गणाधिप, सिद्धि-बुद्धिके स्वामी विघ्नविनायक। सम्पूर्ण शरीर मानवका, किंतु मस्तक हाथीका। आजके हृदय-प्रतिरोपणतक पहुँचे शल्य-विज्ञानके लिये यह रूप असम्भवकी सीमातक अकल्पनीय, अतएव अविश्वसनीय है; किंतु नृसिंह, हयग्रीव, दत्तात्रेय और सहस्रबाहुके देशमे न यह असम्भव है न अविश्वसनीय। वास्तवमे अविश्वसनीय देशकाल-सापेक्ष है। इसके लिये कोई गारंटी नहीं दी जा सकती कि आजका अविश्वसनीय कलका यथार्थ नहीं होगा? भाव-जगत्मे इस तरहकी अविश्वसनीय घटनाएँ एक सामान्य बात हैं, पश्यन्तीके क्षेत्रमे और इच्छाशक्तिकी वास्तविक अविकार-सीमामें यह सब सम्भव है। स्थूल जगत्में यह चमत्कार है।

गणेशके जन्मके सम्बन्धसे एक कथा प्रचलित है कि पराम्बा पार्वतीने अपनी रक्षाके लिये एक पुतलेमे प्राण-प्रतिष्ठा कर दी और उसे प्रहरी बनाकर स्थापित कर दिया। थोड़ी देरमें भगवान् शकर आये, पार्वतीके पास गर्भ-गृहमें जाने लगे तो प्रहरीने मना कर दिया। शिव और शिवाके संयोगमें बाधक कौन हो सकता है? शकरने रुद्ररूप धारण किया और प्रहरीका नाश कर दिया। उमाने शकरको आया देख अपनी सृष्टि—कल्पित पुत्रके लिये जानना चाहा तो ज्ञात हुआ कि उसका शव पड़ा हुआ है। जगज्जननी रुष्ट हो गयीं। शंकर ठहरे आशुतोष। वे भावोंसे प्रसन्न होनेवाले हैं, अभिव्यक्तिसे नहीं। भक्त उन्हें गाली देकर प्रसन्न कर सकता है, रुष्ट होकर प्रसन्न कर सकता है, हठ करके उनका प्रसाद प्राप्त कर सकता है, फिर पराम्बा तो उनकी अभिन्न सहचरी ठहरीं। उनके रोषके आगे वे विनत हैं। उन्होने झटसे हाथीका मस्तक उस शवपर लगा दिया।

यह है गणपतिके सम्बन्धमे प्रचलित कथा। यह कथा एक रूपक है अथवा पौराणिक सत्य—यह विवेच्य विषय नहीं है। इस निबन्धका प्रतिपाद्य है—इस कथाका भारतीय वैज्ञानिक दृष्टिसे रहस्य-विश्लेषण। प्रस्तुत है—गणपति-जन्मका तान्त्रिक एवं मान्त्रिक दृष्टिसे प्रमाणसम्मत विवरण।

सबसे पहला प्रश्न इस कथाके प्रारम्भमें उठता है कि 'पराम्बा पार्वती अपनी शक्तिसे स्वरक्षित हैं, उनको अपनी

दिया जाता; क्योंकि उनमें सीधे शिवाकी अर्चना की जाती है; किंतु वैष्णवी उपासनामें गणेशकी पूजा अनिवार्य है। आज भी यदि कोई प्रणव-मन्त्रका जप करता है तो उसपर अनिष्ट नहीं आ सकते; वह स्वरक्षित है, प्रणवके कारण सुरक्षित है, उसका कल्याण होगा ही। गणेशकी अर्चनाका भी यही फल है।

शंकरने प्रणव-मन्त्रकी महत्ता गणेशके प्रतीकसे उपस्थित की। आज भी प्रणव-मन्त्र सभी मन्त्रोंके प्रारम्भमें लगा दिया जाता है। यह उसी तथ्यकी ओर इङ्गित करता है, जिसके अनुसार गणपति सभी अनुष्ठानोंमें प्रथम पूजनीय बनते हैं। गणपतिकी पूजाका प्रचार सारे भारतमें है। मिट्टीसे लेकर पीतल, ताँबा, चाँदी, सोने आदि सभी वस्तुओंसे गणेशकी मूर्ति बनायी जाती है; वे सर्वव्याप्त हैं। अन्य कुछ भी नहीं तो मिट्टीकी डलीके मोली लपेटकर ही गणेशकी मूर्ति कल्पित कर ली जाती है।

गणेशका प्रिय भोज्य है—मोदक। मोदककी गोल आकृति महाशून्यका प्रतीक है। यह समस्त वस्तुजात, जो दृष्टिकी सीमामें है अथवा उससे परे है, शून्यसे उत्पन्न होता है और शून्यमें ही लीन हो जाता है। शून्यकी यह विशालता पूर्णत्व है, जो प्रत्येक स्थितिमें पूर्ण है। और यह पूर्णता प्रणव-मन्त्रका गुण है। 'गणेश' प्रणवके प्रतीक हैं अथवा प्रणवरूप हैं; बात एक ही है। परमार्थतः देवता मन्त्रके स्वरूप हैं, अन्यथा शक्तिका कोई आकार—रूप नहीं होता। चतुर्मुख, अष्टभुज, त्रिनेत्र आदि रूप एक मानवीय कल्पना है, जिससे व्यक्तिकी सामान्य बुद्धि सहज भावसे ग्रहण कर लेती है; अन्यथा यह विचित्रता तत्तन्मन्त्रका स्वरूप है, जिसे हम देवताके रूपमें मानते हैं, पूजते हैं।

भगवान् श्रीगणेशके प्रमुख द्वादश नाम और उनका रहस्य

(लेखक—डा० श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० एस-सी०)

भारतीय आर्य हिंदू-परम्परामें पञ्चदेव और उनमें भी भगवान् श्रीगणेशका जो अप्रतिम महत्त्व है, वह किसीसे छिपा नहीं है। हिंदू-समाज, विशेषतः सनातन-धर्मानुयायी समाजका कोई भी कार्य भगवान् श्रीगणेशके अग्रपूजनके बिना न आरम्भ होता है और न इसके बिना उसकी सफलताकी, पूर्णताकी आशा ही की जाती है। प्रत्येक कृत्यको मङ्गलमय एवं परिपूर्ण बनानेके उद्देश्यसे आरम्भमें ही श्रीगणेशके द्वादश नामोंका संकीर्तन इस रूपमें किया जाता है—

> सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः।
> लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः॥
> धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः।
> द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि॥
> विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा।
> संग्रामे संकटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते॥

इन श्लोकोंका भाव यह है कि जो व्यक्ति विद्यारम्भके अवसरपर, विवाहके समय, नगरमें अथवा नवनिर्मित भवन (गृहादि) में प्रवेश करते समय, यात्रादिमें कहीं बाहर जाते समय, संग्रामके अवसरपर अथवा किसी भी प्रकारकी विपत्तिके समय यदि श्रीगणेशके बारह नामोंका स्मरण करता है तो उसके उद्देश्य अथवा मार्गमें किसी प्रकारका विघ्न नहीं आता। श्रीगणेशके ये बारह नाम निम्नलिखित हैं—१–सुमुख, २–एकदन्त, ३–कपिल, ४–गजकर्ण, ५–लम्बोदर, ६–विकट, ७–विघ्ननाशन, ८–विनायक, ९–धूम्रकेतु, १०–गणाध्यक्ष, ११–भालचन्द्र और १२–गजानन।

सामान्य दृष्टिसे इन नामोंके अर्थ हैं—सुन्दर मुखवाले, एक दाँतवाले, कपिलवर्णके, हाथीके-से कानवाले, लंबे पेटवाले, भयंकर, विघ्ननाशन, विशिष्ट-नायकोचित गुणसम्पन्न, धूम्रकेतु (धुएँके रंगकी पताकावाले), गणोंके अध्यक्ष, मस्तकमें चन्द्रको धारण करनेवाले और हाथीके समान मुखवाले। परंतु संस्कृत-साहित्यानुरागी-जन इस तथ्यसे सुपरिचित हैं कि संस्कृत-शब्दनिर्माता [illegible] अर्थगाम्भीर्यरहित नहीं रहे हैं। उन्होंने अपूर्व सूक्ष्म [illegible] परिचय देते हुए गागरमें सागरकी भाँति एक-एक शब्दके पीछे एक-एक इतिहासको इस कुशलताके साथ [illegible] किया है कि जब व्यक्ति एकाग्रभावसे इनका अनुसंधान करता है, तब गह्वरस्थ रत्नोंकी भाँति [illegible] आ-आकर उसे [illegible] अनिर्वचनीय [illegible] भूमिमें पहुँचाकर इस प्रकार विभोर कर देते हैं कि

वह व्यक्ति फिर उसी स्थितिकी ही सतत कामना करने लगता है। श्रीगणेशके द्वादश नामोंमें भी एक अपूर्व ऐतिहासिक तथ्योंकी शृङ्खला अभिनिविष्ट है।

श्रीगणेशके द्वादश नामोंमें प्रथम नाम है—'सुमुख'। व्युत्पत्तिकी दृष्टिसे इसका अर्थ है—सुन्दर मुखवाला अथवा अच्छा या शोभन है मुख जिसका। अब इस नामकी सार्थकता जाननेसे पूर्व हमें यह जान लेना चाहिये कि 'सुन्दर' कहते किसे हैं? आजकलकी परिभाषाके अनुसार गोरी चमड़ीवालेको 'सुन्दर' कहते हैं। भगवान् शिवके लिये, जो श्रीगणेशके जनक हैं, 'कर्पूरगौरम्' विशेषण मिलता है और माता पार्वतीका भी एक नाम 'गौरी' है और ये दोनों ही गौरवर्णके थे। यह इसलिये भी सुनिश्चित है कि जहाँ पार्वती नगाधिराजतनया होनेके कारण इस सहज विशेषतासे युक्त हैं, वहाँ भगवान् शिव भी कैलासवासी होनेके कारण गौरवर्णके ही हैं। यह विशेषता सभी पर्वतीय क्षेत्रवासियोंकी स्वाभाविक है और आज भी प्रायः यथापूर्व अक्षुण्ण है। परंतु श्रीगणेशका वर्ण 'कपिल' कहा गया है। अतः स्वाभाविकरूपमें यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि 'जब वस्तुस्थिति लोकमान्यताके अनुरूप नहीं है,' तब 'सुमुख'-जैसा विशेषण श्रीगणेशको क्यों दिया गया? इसके उत्तरमें हम महाकवि माघका यह कथन प्रस्तुत कर सकते हैं—

'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।'

(शिशुपालवध ४। १७)

इसके अतिरिक्त—'भिन्नरुचिर्हि लोकः' (रघुवंश ६। ३०) के अनुसार भी मनुष्य अपने भावनानुसार अपने पूज्यको 'सुन्दर' कह सकता है। परंतु श्रीगणेशके 'सुमुख'-विशेषण या नामकी विशेषता शास्त्रीय दृष्टिसे इस प्रकार प्रतिपादित की गयी है—'भगवान् शिवके खड्गप्रहारसे श्रीगणेशकी देहका तेज सूर्यके मण्डलके समान बनकर निकला और गोल होकर मोदकके समान उछलकर चन्द्रमण्डलमें जा मिला'—

तद्देहरश्मिसहो दिनेशाम्बुजाकारं भवक्षितयौ
वृत्तीभूय गतं तदाकलनो प्रोत्प्लुत्य मण्डलम् ॥

(गणपतिसम्भव ४। ८४)

शास्त्रोंमें अभिरुचि रखनेवाले विद्वान् इस तथ्यसे सुपरिचित ही हैं कि चन्द्रको सौन्दर्यका आगार माना गया है और इसी कथनकी पुष्टिके लिये वेदोंने 'चन्द्रमा मनसो जातः' (यजुर्वेद ३१। १२) आदि वाक्य कहकर विश्वरसाक्षी शुचिता, मनोहारिताका अन्तर्भाव उसमें दिखाया है। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि चन्द्रमण्डलमें विलीन उनका तेज जब उन्हें पुनर्जीवित करनेके अवसरपर लौटा, तब वह अपने साथ चन्द्रकी सम्पूर्ण विशेषताएँ भी लेता आया और श्रीगणेशको 'सुमुख' नाम दिलानेमें सफल रहा। इसके साथ ही, क्योंकि श्रीगणेशका पूजन सर्वप्रथम किया जाता है, अतः कदापि कथमपि कुरूपका परिगणक नामोच्चारण उचित नहीं हो सकता। अतः उनके मुखकी सम्पूर्ण शोभाका एकत्र आकलन कर, उन्हें मूर्तिमान् मङ्गलके प्रतीक-रूपमें स्वीकार कर 'सुमुख' नामसे सम्बोधित किया गया है।

यहाँ कोई प्रश्न पूछ सकता है कि "हाथीकी सूँड़, छोटी-छोटी आँखें, लंबे-लंबे सूप-जैसे कान आदिसे युक्त मुखको क्या 'सुमुख' कहा जा सकता है?" उत्तरमें निवेदन है कि जिनकी दृष्टिमें चर्मके रंग-रूपका ही सर्वोपरि महत्त्व है, उनकी दृष्टिमें तो सत्य ही ऐसी रूप-रेखावाला कुरूप ही कहलायेगा; परंतु जो चर्मसे गुणोंको अधिक महत्त्व देते हैं, वे उसे सुरूप ही नहीं, श्रेष्ठ भी कहेंगे। छोटी आँखें गम्भीरताकी एवं दीर्घ नासिका बुद्धिमत्ताकी सूचक होती हैं और दीर्घकर्ण बहुश्रुतताको प्रकट करनेवाले होते हैं। आधुनिक आकृति-ज्ञानके विद्वान् (Profile Readers) भी इस कथनको सर्वांशमें तथ्यपूर्ण स्वीकार करते हैं; अतः सत्य ही श्रीगणेशका 'सुमुख'-नाम अन्वर्थक है; विशेषतः इसलिये कि वे अपनी सूँड़द्वारा ब्रह्मा-विष्णु-महेशके समन्वित-रूप अ, उ, म् अर्थात् ॐ को बना-बनाकर अपने माता-पिताका मनोरञ्जन किया करते थे और जो भी अङ्ग-विशेष भगवान्‌के श्रवण-स्मरण आदि परिचर्यालीन हो, वह 'सु' उपसर्गका उचित अधिकारी है ही; अतः श्रीगणेशका सुमुख-नाम अन्वर्थक है—

योऽङ्केऽलीढिः शुण्डकुण्डलविधेरोमक्षरं व्यक्षरं
व्याहृत्या गुणवृद्धिसंज्ञकलया विख्यातवर्णावलीम्।
नाधारो न च देहली न च मखी व्योमन्देव शुण्डमो
नत्यौ शत्यम्बुशिरपक्वदमनपरस्तात्य मातुः पुरः ॥

(गणपतिसं० ५। ५१)

इसके अतिरिक्त 'गणशाधनोत्कर्ष' नामक नवें सर्गमें श्रीगणेशकी छोटी आँखोंकी प्रशंसा करते हुए कहा गया है—

सन्त्येव परोक्षनयनाः लोकप्रशंसो गताः
श्रीदिव्याक्ष सरस्वती च कमला प्रज्ञा स्थिरो वा स्थिरा।

देवोऽयं लघुचक्षुषोरपि धर. स्वे शासने निहतो
नाक्ष्णोरस्ति महत्त्वमक्षिमहसां यादृक् महत्त्वं मतम् ॥
सूक्ष्मैरक्षिभिरेव वीक्षणचणो राजा प्रशस्यो सतो
मन्ये तेन सदैव सूक्ष्मनयने एष द्विपास्योऽधरत् ।
लक्ष्यं भेत्तुमिमे जगन्मृगयवोऽक्ष्णां कोणमामील्य यत्
सिध्यन्तीति गणेशसूक्ष्मनयने शिष्टो निजं शासनम् ॥

(गणपतिस० ९ । २७-२८)

'अर्थात्—सर्वत्र कमलके समान नयनोंकी प्रशंसा होती है, जैसे—विष्णु, लक्ष्मी, सरस्वती, ब्रह्मा, शिव एवं गौरी आदि; किंतु यह गणेश छोटी-छोटी आँख धारण करता हुआ भी अपने गणशासनमे छिपा हुआ है । जितना महत्त्व आँखोंके प्रकाशका होता है, उतना आँखोंका नहीं । सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेवाला ही राजा प्रशंसनीय होता है । अतएव उसी विशेषताको धारण करनेके लिये गणेशने छोटी आँखें स्वीकार की हैं; क्योंकि विश्वके सभी शिकारी निशानेके समय आँखोंके कोणोंको सिकोड़कर ही सफल होते हैं, अतः गणेश अपने सूक्ष्म नयनोंसे यही सिखाते हैं ।'

नेत्रोंके साथ-साथ लंबे कानोंके सम्बन्धमें यह उल्लेख मिलता है—

संशृणवीत समं परं न विदधीतोच्चैर्विवेकं विने-
त्येतच्छिक्षणवाञ्छयेव गणपः कर्णौ विशालावधात् ।
धर्तुं शश्वदुत एव यौ बहुविधालंकारलोहाङ्कुशौ
तौ दुर्वर्णकलोकवर्णनिचयं किं नो धरेतां चिरम् ॥

(गणपतिस० ९ । २९)

अर्थात्—'मनुष्यको चाहिये कि वह सुन तो ले सब कुछ, परंतु कोई भी कार्य ऊँचे लोगोंके साथ बिना विचार किये करे नहीं, यह सिखानेकी इच्छासे ही गणपतिने बड़े-बड़े कान धारण किये हैं । जो (गणेशके कान) अनेक प्रकारके अलंकार एवं लोहेके अङ्कुश अपनेमें लटका सकते हैं, क्या वे चुगलखोरोंके कुछ अक्षरोंको चिरकालतक नहीं लटका सकते ।'

इस प्रकार सूक्ष्मनेत्र, दीर्घकर्ण होते हुए भी तद्गत विशेषताओंको परिलक्षित कर श्रीगणेशको 'सुमुख' नाम दिया गया है ।

श्रीगणेशका दूसरा नाम है—'एकदन्त' । इसके पीछे परशुरामके संघर्षकी घटना है । भगवती पार्वती एक बार जब स्नान कर रही थीं और गणेश द्वारपर रहकर किसीको भी भीतर जानेसे रोक रहे थे, तभी सहसा परशुराम वहाँ आये और भीतर जानेके लिये हठ करने लगे । बात बढ़ चली और दोनोंमें ठन गयी । यद्यपि गणेशकी छोटी अवस्थाके कारण परशुराम पहले प्रहार करना नहीं चाहते थे, परंतु गणेशके तीव्र वाक्-प्रहारोंसे चिढ़कर उन्हें प्रथम प्रहार करना पड़ा और उसके फलस्वरूप गणेशका एक दाँत टूट गया । इस प्रसङ्गका वर्णन इस रूपमें प्राप्त होता है—

तीक्ष्णाग्रं वृषसूर्यरश्मिसदृशं बाहौ च पर्शुं जहौ
तत्कृष्टः स पपात दन्तमुसले विद्युत्प्रचण्डस्वनः ।
पेतुः सूक्ष्मतमाः स्फुलिङ्गततयस्तीर्णा उदीर्णास्ततः
क्रोधे लक्ष्यसमीक्षणेन नयने तिष्ठासतो दार्ढ्यतः ॥
दन्तान्तोऽपि कृतान्तवत् प्रचलितस्तान्ती चिकीर्षुर्भृगुं
दिष्ट्या कीकसलग्नसग्गनकरोऽधावद् गणः शाम्भव. ।
योऽन्यास्थीनि चिनोति गृध्रप्रवरहो कापालमालाकरः
सोऽयं किं निजनाथपुत्ररदनं यान्तं सहेत स्ववित् ॥
हा ! हा ! हेति जगाद देवनिवहो यो व्योमगोऽभूत्तदा
हेरम्बस्य हतो रदोऽपि समदैस्तैः संस्तुत. स्पर्धया ।
भूमिः कम्पनमापिता भयमिता क्ष्मध्रुर्दरं कन्दरा-
च्छिद्रद्वारं व्यदधुर्गजा. शिखिगणा गावो महिष्यो हयाः ॥

(गणपतिस० ६ । ५८-६०)

अर्थात् परशुरामने तीव्रधारवाले अपने कुठारसे उनकी भुजापर प्रहार किया, किंतु वह फिसलकर गणेशके दाँतपर जा गिरा और उससे प्रचण्ड शब्द निकला । वह टूटा हुआ दाँत भी यमराजके समान परशुरामको नष्ट करनेके लिये चला; परंतु उनके सौभाग्यसे अस्थियोंसे अपना शृङ्गार करनेके लिये कपालकी माला बनानेवाले शिवके गणोंने उसे रोक लिया, क्योंकि वे अपने स्वामीके पुत्रके दाँतको अन्यत्र जाते हुए कैसे देख सकते थे । श्रीगणेशके दन्तपातको देखकर देवगण हाहाकार करने लगे और फिर गणेशकी प्रसन्नताके लिये उस भग्न-दन्तकी भी उन्होंने होड़ लगाकर स्तुति की । उस समय उस दन्तकी वक्रगति देखकर पृथ्वी डरकर काँप उठी, विभिन्न पशु चिग्घाड़ने लगे और सर्वत्र भय व्याप्त हो गया ।

यह तो हुई ऐतिहासिक बात; अब इसके तात्त्विक पक्षको लीजिये । दो वस्तुएँ सदैव द्वैतकी परिचायक होती हैं । जब तक गणेशके मुखमें दो दाँत थे, वे अद्वैत-विधायक न थे । अतः जब और जैसे ही गणपतिका एक दाँत टूटा, वे अद्वैतके

प्रतीक बन गये । इस कथनका समर्थन इस रूपमें प्राप्त होता है—

> प्राग् द्वैतभ्रम एव भाति नितरामद्वैतमेवान्ततः
> एतद्बोधयते रदो गणपतेरेकत्वमेवाश्रयन् ॥
> (गणपतिस० ९ । ५२)

अर्थात् पहले निरन्तर द्वैत-भ्रम ही भासित होता रहता है, फिर अन्तमें 'अद्वैत' हो जाता है । गणेशका दाँत भी एक होकर यही ज्ञान कराता है । इसके साथ ही एक-दन्त इस बातका भी द्योतक है कि जीवनमें सफल वही होता है, जिसका लक्ष्य एक हो । श्रीगणेश अपने एकदन्तरूपी लक्ष्य-के कारण ही जीवनमें न केवल सफल रहे, अपितु अग्र-पूजाके अधिकारी भी बने, अतः उस एकदन्तको कल्पवृक्षकी समता देते हुए कहा गया है—

> संयोज्येव सकेतकं परिहसन् दन्तान्तरं दर्शय-
> श्चक्रे कृत्रिमदन्तधारणविधेरुद्घाटनास्योत्सवम् ।
> मन्ये सान्त्वयतेऽद्य तः स जरतो बालांश्च वा नीरदा-
> नेकेनैव रदेन सर्ववरदः पायाद् गणेशः श्रियम् ॥
> (गणपति स० ६ । ८५)

अर्थात् जो केवड़ेके फूलको हँसते हुए मुखमें जोड़कर दूसरा दाँत-सा दिखाते हुए कृत्रिम दन्तधारणका उद्घाटन-सा करता हो, या मानो वृद्ध एवं बालकोंको सान्त्वना-सी देता हो, वही गणेशका एकदन्त अपने भक्तोंकी श्री-सम्पत्तिकी रक्षा करता रहे ।

मौद्गलके अनुसार 'एक'-शब्द 'माया'का बोधक है और 'दन्त'-शब्द 'मायिक'का । श्रीगणेशमें माया और मायिकका योग होनेसे वे 'एकदन्त' कहलाते हैं—

> एकशब्दात्मिका माया तस्याः सर्वंसमुद्भवम् ।
> दन्तः सत्ताधरस्तत्र मायाचालक उच्यते ॥

इस प्रकार श्रीगणेशका अद्वैत-विधायक द्वितीय नाम 'एकदन्त' भी सार्थक और एकलक्ष्यार्थप्रेरक है ।

श्रीगणेशका तृतीय नाम है—'कपिल' । यह विशेषण-शब्द है, जिसका हिंदीमें अर्थ है—भूरा, सामला, मटमैला । अंग्रेजीमें इसे 'ब्राउन Brown' कहते हैं । यदि इस शब्दको आकारान्त बना दिया जाय तो इसका रूप बनेगा—'कपिला', अर्थ होगा—गौ । अतः भाव स्पष्ट हो जाता है कि जैसे गौ धूसरवर्णकी होती हुई भी दूध, घी, दही आदि पोषक पदार्थ एवं गोमय-गोमूत्र आदि रोगनिवारक पदार्थ प्रदानकर मानवका हित साधन करती है, उसी प्रकार कपिलवर्णके श्रीगणेश भी बुद्धिरूपी दधि, ज्ञानरूपी घृत, समुज्ज्वल भावरूपी दुग्धद्वारा मानवको पुष्ट बनाते हैं, अथवा उसके बौद्धिक पक्षको पुष्ट बनानेवाले पदार्थ प्रदान करते हैं तथा अमङ्गलनाश, विघ्नहरण आदि दिव्य पदार्थ प्रदानकर उसके त्रिविध तापोंका शमन करते हैं । अतः यह तृतीय नाम भी सार्थक है ।

श्रीगणेशका चतुर्थ नाम है—'गजकर्ण', अर्थात् हाथीके समान कानवाला । विज्ञ पाठक जानते हैं कि श्रीगणेशको भारतीय आर्यपरम्परानुयायी बुद्धिका अधिष्ठातृ-देवता मानते हैं और इसीलिये अपने आराध्यको उन्होंने लंबे कानों-वाला प्रतिपादित किया है कि जिससे उनका बहुश्रुतत्व अथवा उनकी एतद्विषयक अभिरुचिका यथावत् परिज्ञान करा सकें । इससे पूर्व भी हम अन्यत्र इसी लेखमें लिख आये हैं कि 'मनुष्यको चाहिये कि सुन तो ले सब कुछ, परंतु कोई भी कार्य ऊँचे लोगोंके साथ बिना विचार किये करे नहीं', यह सिखानेकी इच्छासे ही गणपतिने हाथीके समान लंबे कान धारण किये हैं । इसके अतिरिक्त एक यह भी रहस्य श्रीगणेशके लंबे कानोंमें छिपा है कि क्षुद्र कानोंवाला व्यक्ति सदैव व्यर्थकी बातोंको सुनकर अपना ही अहित करने लगता है । अतः हाथी-जैसे लंबे कानोंद्वारा श्रीगणेश हमें यह शिक्षा देते हैं कि व्यक्तिको अपने कान ओछे न रखकर इतने विस्तृत बना लेने चाहिये कि उनमें सहस्रों निन्दकोंकी सभी भली-बुरी बातें इस प्रकार समा जायँ कि वे फिर कभी जिह्वाग्रपर आनेका प्रयासतक न कर सकें । पुराणोंमें श्रीगणेशके गजकर्णत्व अथवा शूर्पकर्णत्वका कारण बताते हुए कहा है—'श्रीगणेश योगीन्द्र-मुखसे वर्ण्यमान तथा श्रेष्ठ जिज्ञासुओंसे श्रूयमाण विषयको ग्रहणकर सूर्यके समान पाप-पुण्यरूप रजको दूर करके ब्रह्मप्राप्ति सम्पादित कर देते हैं, अतः उन्हें इसी नामसे व्यवहृत किया जाता है ।

> रजोयुक्तं यथा धान्यं रजोहीनं करोति च ।
> शूर्पं सर्वनराणां वै योग्यं भोजनकाम्यया ॥
> तथा मायाविकारेण युक्तं ब्रह्म न लभ्यते ।
> एकोपासनया तस्य शूर्पकर्णस्य सुन्दरि ।
> शूर्पकर्णं समाश्रित्य त्यक्त्वा मलविकारकम् ॥
> ब्रह्मैव नरजातिस्थो भवेत् तेन यथा स्मृतः ॥

इस दृष्टिसे श्रीगणेशका यह चतुर्थ नाम भी सार्थक सिद्ध हो जाता है ।

श्रीगणेशका पाँचवाँ नाम है—'लम्बोदर'। इसका अर्थ है—लंबे अर्थात् विशाल पेटवाला। गणेश-गायत्रीमें श्रीगणेशका स्मरण इस प्रकार किया गया है—

'लम्बोदराय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि ।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥'

इस नामका उद्देश्य सांसारिक जनोंको शिक्षा देना एवं उन्हें निर्विघ्न जीवन-यापनमें सक्षम बनाना है। इस संसारमें द्विविध पुरुष पाये जाते हैं—एक वे, जो प्रत्येक प्रकारकी भली-बुरी बात सुनकर उसे उदरस्थ कर लेते हैं तथा दूसरे वे, जो किसी भी बातको पचा नहीं पाते, उगल देते हैं और अपनी इस क्रिया अथवा चेष्टाद्वारा सम्पूर्ण वातावरणको विषाक्त बना देते हैं। अतः उक्त नाम तादृश शिक्षाविधायक होनेके कारण न केवल अन्वर्थक, अपितु अनुकरणीय भी है।

'गणपतिसम्भव'के अनुसार 'भगवान् शंकरद्वारा गम्भीरतापूर्वक बजाये हुए डमरूकी ध्वनिसे श्रीगणेशने सम्पूर्ण वेदोंको ग्रहण किया, माता पार्वतीके चरणद्वयमें झंकृत होनेवाले नूपुरोंसे संगीत सीखा, प्रतिदिन ताण्डव नृत्य देखने और उसके अभ्यासके बलसे नृत्य सीखा और इस प्रकार विभिन्न ज्ञानोंको आत्मसात् (उदरस्थ) करनेके कारण उनका उदर लम्बायमान हो विविध विद्याओंके कोष-रूपमें परिणत हुआ'—

आम्नायं डमरुध्वनेर्भगवता दत्तध्वन्यसानादुघनं
संगीतं जननीपदाम्बुजरणत्कारैरतान्नूपुरात् ।
नृत्यं ताण्डवदर्शनात् प्रतिदिनं स्वाभ्यासबुद्धेर्बलात्
सर्वज्ञाननिधानमेवमभवन् मन्ये ततस्तुन्दिलः ॥
(५ । ५५)

इसके अनन्तर श्रीगणेशका छठा नाम सामने आता है और वह है—'विकट'। 'विकट'का अर्थ होता है—भयंकर। श्रीगणेशका धड़ (कण्ठसे पैरतकका भाग) है—नरका और ऊर्ध्वाङ्ग अर्थात् मुख है—हाथीका। अतः ऐसा विकट प्राणी विकट होगा ही—यह निर्विवाद है। श्रीगणेशके नामके रूपमें इसका भाव यह है कि श्रीगणेश अपने नामको सार्थक बनाते हुए सभी प्रकारके विघ्नोंकी निवृत्तिके लिये विघ्नोंके मार्गमें 'विकट' बनकर उपस्थित रहते हैं; क्योंकि वे जानते हैं—'शठे शाठ्यं समाचरेत्' अर्थात् बुरे और दुष्ट व्यक्तियोंको सौम्यतासे नहीं, अपितु तद्वत् बनकर ही दबाया जा सकता है। अतः यह नाम भी सार्थक ही है। स्वयं श्रीगणेश हमारे कथनके प्रतिपादनमें भगवान् परशुरामसे युद्धके अवसरपर कहते हैं—

द्रक्ष्यत्यद्य भवद्गुरुर्मम पिता साम्बो निजैरम्बकैः
पुत्रस्यापि नवं महश्चिरतनं शौर्यं च तेजश्चयम् ।
आसं चापि यदा नरो न रणतो भीतोऽभवं किं पुन-
र्धृत्वा द्व्याकृतिमद्य संगरमयं यायां स्वदेकाकृते ॥
(गणपतिसं० ६ । ५०)

अर्थात् आज तुम्हारे गुरु और मेरे जनक मेरी माताके साथ अपनी आँखोंके सामने पुत्रके नये तेज और शिष्यके पुराने तेजःपुञ्जको देखेंगे। जब मैं केवल नर था, तब भी कभी युद्धसे नहीं डरा, तब भला, अब दो प्रकारकी आकृति धारण करके एक आकारवाले तुमसे कैसे डरूँगा ?

इस स्थितिमें यह स्पष्ट हो जाता है कि गणेशका 'विकट' नाम सांसारिक जनोंके लिये इस दृष्टिसे प्रेरणा-स्रोत है कि वे भी यथावसर रूप धारणकर अभीष्ट सिद्ध करें।

श्रीगणेशका सप्तम नाम है—विघ्ननाश। भगवान् श्रीगणेश सम्पूर्ण विघ्नोंके विनाशक हैं। 'गणपत्यथर्वशीर्ष'के नवम मन्त्रमें श्रीगणेशके लिये लिखा है—'विघ्ननाशिने शिवसुताय वरदमूर्तये नमः।' इसका भाव है—'हम विघ्नोंको नष्ट करनेवाले, शिवके पुत्र, वरप्रदायी मूर्तिरूपमें प्रकटित श्रीगणेशको नमस्कार करते हैं।' सुप्रसिद्ध भाष्यकार श्रीसायणाचार्यने 'विघ्ननाशिने' का भाष्य इस प्रकार प्रस्तुत किया है—'विघ्ननाशिने कालात्मकभयहारिणे, अमृतात्मकपदप्रदत्वात्' अर्थात् श्रीगणेश कालात्मक भयको हरण करनेवाले हैं; क्योंकि वे अमृतात्मक पदके प्रदाता हैं। 'स्कन्दपुराण'के अनुसार इन्द्रने निज-भागशून्य यज्ञके विध्वंसके लिये जब कालका आह्वान किया, तब वह विघ्नासुरके रूपमें प्रकटित हो, अभिनन्दन राजाको मार सत्कर्मोंका लोप करने लगा। तब महर्षियोंने ब्रह्माजीकी प्रेरणासे श्रीगणेशकी स्तुति कर उनके द्वारा विघ्नासुरका उपद्रव दूर करवाया। उसी समयसे गणेश-पूजन-स्मरणादिविरहित कार्यमें विघ्नका प्रादुर्भाव अवश्य होता है—यह मान्यता स्वीकार कर कार्यारम्भमें श्रीगणेश-पूजन अनिवार्य प्रतिपादित किया गया है। विघ्न भी सामान्य नहीं है। यह कालस्वरूप होनेसे भगवत्स्वरूप, अतएव अतीव महिमान्वित है। इसके स्वरूपका निदर्शन इस प्रकार प्राप्त होता है—''विशेषेण जगत्सामर्थ्यं हन्तीति विघ्न—ब्रह्मादिककी भी जगत्सर्जनादि सामर्थ्यका हरण करनेवाले तत्त्व, किंवा उसको 'विघ्न' कहते हैं।'' इसपर यदि किसीका शासन चलता है तो श्रीगणेशका

ही, अतः गणेशका 'विघ्नेश' नाम न केवल सार्थक, अपितु उनकी लोकोत्तर महिमाका भी स्यापक है।

गणेशकी इस नामावलीका अष्टम नाम है—'विनायक'। इसका अर्थ है—विशिष्ट नायक या विशिष्ट स्वामी। कतिपय विद्वानोंने 'वि' उपसर्गको विघ्नका लघुस्वरूप स्वीकारकर 'विनायक'का अर्थ विघ्नोंका नायक भी स्वीकार किया है। यह अर्थ पूर्णतः श्रीगणेशपर चरितार्थ होता है; क्योंकि ब्रह्मादि देवता अपने-अपने कार्यमें विघ्न-पराभूत होनेके कारण स्वेच्छाचारी नहीं हो सकते; परंतु गणेशके अनुग्रहसे ही विघ्नरहित होकर कार्य-सम्पादनमें समर्थ होते हैं और यही कारण है कि पुण्याहवाचनके अवसरपर 'भगवन्तौ विघ्न-विनायकौ प्रीयेताम्' कहकर विघ्न और उसके पराभवकर्ता श्रीगणेश दोनोंका स्मरण किया जाता है। इससे वि—विघ्न, नायक—स्वामी—विनायक शब्दकी सार्थकता सिद्ध हो जाती है। इसी प्रकार यदि इस शब्द (विनायक) का अर्थ 'विशिष्ट नायक' लिया जाय तो भी वह अन्वर्थक ही सिद्ध होता है; क्योंकि श्रुतिमें श्रीगणेशको 'ज्येष्ठराज'-शब्दद्वारा सम्बोधित कर उनके महत्त्वका प्रतिपादन किया गया है। 'गणेशतापिनी'में पूर्ण ब्रह्म परमात्माको ही निर्गुण एवं विघ्नविनाशकत्वादि-गुणगण-विशिष्ट गजवदनादि-अवयववर गणेशरूपमें प्रतिपादित किया गया है—

'ॐ गणेशो वै ब्रह्म तद्विद्यात्, यदिदं किं च, सर्वं भूतं भव्यं सर्वमित्याचक्षते।'

इसके अतिरिक्त गणेशकी एक अन्य विशेषता भी उन्हें विशिष्ट नायकत्व ही नहीं, श्रीमन्नारायणकी समानता प्रदान कर इस विशेषण या नामको अन्वर्थक बनाती है। वह विशेषता है—मुक्तिप्रदायिनी क्षमता। सभी विद्वान् जानते हैं कि मोक्षप्रदानका एकमात्र अधिकार सत्त्वमूर्ति भगवान् नारायणने अपने अधीन रखा है। श्रीमद्भागवत (५।६।१८) में उनके इस वैशिष्ट्यका निदर्शन इस प्रकार हुआ है—'मुक्तिं ददाति कर्हिचित्स्म न तु भक्तियोगम्' अर्थात् भगवान् नारायण मुक्ति तो कदाचित् दे भी देते हैं, परंतु भक्तियोग सहज ही किसीको नहीं देते। इसके विपरीत 'गणेश-गीता' श्रीगणेशको भी मोक्षप्रद प्रतिपादित करते हुए कहती है—

> स स्मृत्वा त्यजति प्राणमन्ते मां श्रद्धयान्वितः।
> स [illegible] भूयः॥

शिवपुराण, ब्रह्मसंहिताके अनुसार श्रीगणेशके विनायक नामकरणका कारण भगवान् शंकरने इस प्रकार बताया है—"हे पार्वती! यह कुमार मुझ नायकके बिना ही उत्पन्न होकर पुत्र बना है, अतः इसका अन्वर्थक नाम 'वि—नायक' (नायकविरहित) ही संसारमें विख्यात होगा"—

> नायकेन विना देवि मया भूतोऽपि पुत्रकः।
> * * *
> यस्माज्जातस्ततो नाम्ना भविष्यति विनायकः॥
> (शिवपु० ३३। ७२-७३)

इस प्रकार सभी दृष्टियोंसे गणेशका 'विनायक' नाम भी उनकी विशेषताओंका परिचायक एवं अन्वर्थक है।

अब लीजिये नवम नामको, वह है—'धूम्रकेतु'। धूम्रकेतुका सामान्य अर्थ है—अग्नि और शब्दार्थ है—धूएँके ध्वजवाला। श्रीगणेशके संदर्भमें—इसके दो भाव प्रकट होते हैं—१. सकल्प-विकल्पात्मक धूम-धूसर अस्पष्ट कल्पनाओंको साकार बनानेवाले तथा उन्हें मूर्तरूप दे ध्वजवत् नभोमण्डलमें फहरानेवाले होनेके कारण गणेशका 'धूम्रकेतु' नाम अन्वर्थक है। २. इसी प्रकार अग्निके समान मानवकी आध्यात्मिक अथवा आधिभौतिक प्रगतिके मार्गमें आनेवाले विघ्नोंको भस्मसात् कर मानवको चरमोत्कर्षकी दिशामें उन्मुख बनानेकी क्षमतासे परिपूर्ण होनेके कारण भी गणेशका 'धूम्रकेतु' नाम सार्थक ही प्रतीत होता है।

'गणाध्यक्ष' श्रीगणेशका दशम नाम है। इसके दो अर्थ हैं—१. संख्यामें परिगणित हो सकने योग्य सभी पदार्थोंके स्वामी तथा २. प्रमथादि गणोंके स्वामी। विचार करनेपर उक्त दोनों ही नाम अन्वर्थक जान पड़ते हैं। विश्वके परिगणनीय जितने भी पदार्थ हैं—श्रीगणेश उन सबके स्वामी हैं। जैसा कि निम्न श्लोकसे स्पष्ट है कि 'श्रीगणेश देवता, नर, असुर और नाग—इन चारोंके संस्थापक एवं चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) तथा चतुर्वेदादिके भी स्थापक हैं'—

> स्वर्गेषु देवताश्चायं पृथ्व्यां नरांस्तथाऽतले।
> सनुगनागासुरांश्च स्थापयिष्यति बालकः॥
> तत्त्वानि चालयन् विप्रान्तसाक्षात्मा चतुर्भुजः।
> चतुर्णां द्विविधानां च स्थापकोऽयं प्रकीर्तितः॥

गणोंके स्वामी तो श्रीगणेश हैं ही। इस पदपर वे स्वयं भगवान् शंकरद्वारा प्रतिष्ठित किये गये या गणोंद्वारा, इस सम्बन्धमें दोनों ही प्रकारके विवरण प्राप्त होते हैं। 'गणपति-खण्ड'के अनुसार जब भगवान् शंकरने गजका मस्तक

जोड़कर श्रीगणेशको पुनर्जीवित कर दिया, तब सभी शिवगण समवेत होकर नाचते हुए अपने ऊपर उनको वरीयता देने लगे तथा 'गणपति' कहकर सम्बोधन करते हुए उनका जय-जयकार मनाने लगे—

नृत्यन्तश्च गणा. समेत्य सकला. स्वेष्वाधिपत्यं ददुः
स्पर्शं स्पर्शमहो सुशुण्डमिति ते स्वात्मानमामोदयन्।
वक्रै. स्वै. सरलैस्त्रयोर्ध्वनयनैर्वक्त्रैर्हसन्तो मुहुः
प्रोचुः श्रीगणराजदिव्यविजयं दीर्घैः स्वरैर्वा प्लुतैः॥

(गणपतिस० ५ । ६१)

भारतके मूर्धन्य सनातनधर्मी विद्वानोंने सर्वजगन्नियन्ता पूर्ण परमतत्त्वको ही 'गणपति-तत्त्व'के रूपमे स्वीकार और प्रतिपादित किया है। उनका यह दृष्टिकोण पूर्णतः शास्त्रसम्मत है। संस्कृतमे 'गण'-शब्द समूहका वाचक माना गया है—'गणशब्द. समूहस्य वाचकः परिकीर्तितः।' अतः गणपति-का अर्थ है—'समूहोको पालन करनेवाला परमात्मा।' 'गणानां पतिः गणपति.'। देवादिकोके पतिको भी 'गणपति' कहते हैं। इसके अतिरिक्त और भी कई रूपोमे गणपतिका निर्वचन प्राप्त होता है। यथा—'महत्तत्त्वादि-तत्त्वगणानां पतिः गणपतिः', 'निर्गुण-सगुणब्रह्म-गणानां पति. गणपति' एवं सर्वविध गणोको सत्ता-स्फूर्ति देनेवाला परमात्मा ही 'गणपति' है। अभिप्राय यह है कि 'आकाशस्तल्लिङ्गात्' (ब्रह्मसूत्र १ । १ । २२)—इस न्यायसे जिसमे ब्रह्मतत्त्वके जगदुत्पत्ति-स्थिति-लय-लीलत्व, जगन्नियन्तृत्व, सर्वपालकत्वादि गुण पाये जायँ वही 'ब्रह्म' होता है।" जैसे आकाशका जगदुत्पत्ति-स्थिति-कारणत्व—'सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्ते ।' (छान्दोग्य उप० १ । ९ । १)—इस श्रुतिसे जाना जाता है एवं इसीके आधारपर वह भी आकाशपदवाच्य परमात्मा माना जाता है। इस दृष्टिसे निष्कर्षरूपमे कहा जा सकता है—क्योकि गणपति-तत्त्वकी अवगतिमे शास्त्र ही प्रमाण हैं, अतः उनके अनुसार तथा 'गण'-शब्दकी व्युत्पत्ति—'गण्यन्ते बुध्यन्ते ते गणाः' के अनुसार 'गणपति' शब्दका अर्थ यही लेना चाहिये। गण-शब्दसे व्यवहृत सर्वदृश्यमात्रका अधिष्ठान ही 'गणपति' है; क्योकि शास्त्र श्रीगणेशको पूर्ण ब्रह्म प्रतिपादित करते ही हैं, अतः गणोके अधिपति तथा गण-शब्दसे व्यवहृत सर्वदृश्यमात्रके अधिष्ठानभूत होनेके कारण श्रीगणेशका यह नाम भी अन्वर्थक ही है।

श्रीगणेशका ग्यारहवाँ नाम है—'भालचन्द्र'। इसका भाव है—जिसके मस्तक (भाल) पर चन्द्र हो। भगवान् शंकरके मस्तकमे विराजमान चन्द्रमाका ही यह संक्षिप्त संस्करण है। चन्द्रकी उत्पत्ति विराट्के मनसे मानी जाती है और उस चन्द्र-तत्त्वसे सब प्राणियोके मन अनुप्राणित माने जाते हैं। अतः श्रीगणेशके संदर्भमे इसका भाव यही है कि 'वे भालपर चन्द्रको धारण कर उसकी शीतल-निर्मल कान्तिसे विश्वके सभी प्राणियोको आप्यायित किया करते हैं।' इसके साथ ही 'भालचन्द्र' से यह भी विदित होता है कि 'व्यक्तिका मस्तक जितना शान्त होगा, उतनी ही कुशलताके साथ वह अपना दायित्व निभा सकेगा। श्रीगणेश गणपति अर्थात् प्रत्येक गणनीय वस्तुके पति हैं, अतः अपने भालपर सुधाकर अथवा हिमांशुको धारणकर उन्होंने अपने मस्तिष्कको सुशान्त बनाये रखनेके प्रयासमे सफलता पाकर, तत्परक नाम धारण कर सफलताकामियोंके लिये एक समुज्ज्वल मार्ग प्रशस्त किया है और बताया है कि यदि वे अपने मस्तकमे चन्द्रकी-सी शीतलता लेकर कार्यरत होंगे तो सफलता निश्चय ही उनके पग चूमेगी।'

कुछ विद्वानोने यह भी उत्प्रेक्षा की है कि भगवान् शकरने भी अपने मस्तकपर चन्द्रको धारण किया है और गणेशने भी; इसी कारण वे 'शशिशेखर' कहलाते हैं और ये भालचन्द्र। इस चन्द्र-धारणका उद्देश्य जहाँ शिवके पक्षसे इतना ही है कि उनके ललाटकी ऊष्मा, जो त्रिलोकीको भस्मसात् करनेमें सक्षम है, उन्हें पीड़ित न करे, इसी हेतुसे भगवान् शिवने अपने सिरपर गङ्गा और चन्द्र दोनोंको धारण कर रखा है; वहीं गणेशके पक्षमें इसका भाव है कि शिव-परिवारके वाहनोंके सहज वैरके सम्भावित परिणामको दृष्टिगत रख गणेशने अपने मस्तकमें चन्द्रको धारण किया है। किंवा स्वयंको चन्द्र-जैसे भालसे मण्डित कर तद्वत विशेषताओंसे अपने परिवारको विद्वेषकी ज्वालाओंसे बचानेमें सफलता प्राप्त की है।

देवमोदकोपहार-प्रसङ्गमे भालचन्द्रको लेकर कविने अच्छा मनोरञ्जन किया है। जब गणेश और कार्तिकेय परस्पर मोदकोंसे प्रहार कर रहे थे, तब इधर गणेश और उधर शिवके गलेके सर्प फूत्कार करने लगे, जिससे उनके शरीरपर रमायी हुई भस्म उड़ने लगी और देखते-ही-देखते अन्धकारपूर्ण रात्रिका साम्राज्य चतुर्दिग्में व्याप्त हो

गया। इन दोनोके फूत्कारोंसे भालस्थ अग्नि होलीकी आग-सी प्रदीप्त हो उठी। उसकी ऊष्मासे चन्द्र पिघलकर ऊपरसे अमृत टपकाने लगा, जिससे शिवके आसनपर बिछा हुआ शेरका चर्म जीवित हो दहाड़ने लगा और यह सुनते ही नन्दीश्वर डरकर भाग खड़े हुए, जिससे पार्वतीको अनायास हँसी आ गयी—

फूत्कारानकरोदयं शिवगलस्थोऽहिर्द्वयोः फूत्कृतै-
र्भस्मोद्धूलनतो बभूव तमसो विस्तारिणी यामिनी।
किं चाग्निः शिवभालजोऽपि पवनाभ्यामुद्दिदीपे ह्यसौ
रात्रावग्निरतिप्रकाशततिदो होलीहविर्भुग् यथा॥
तस्यौष्ण्येन च चन्द्रमा द्रवमितोऽमुञ्चत् सुधामूर्ध्वतः
पञ्चास्यस्य शुभासने स्रुतिमधात् पञ्चास्यचर्मापि तत्।
प्राणन्नेकपदे जगर्ज वृषभो भीतस्ततः प्राद्रवद्
बिव्रीडापि जहास चापि गिरिजा ह्यद्भाभिनीति नवाम्॥
(गणपतिसं० ८। ५५-५६)

इसके साथ ही भालचन्द्रसे यह भी प्रतीत होता है कि चन्द्रमा है ब्राह्मणोंका राजा—'सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा'। और ब्राह्मण कहते हैं ब्रह्मको जाननेवालेको—'ब्रह्म जानातीति ब्राह्मण.' और ब्रह्मवेत्ता सर्वोत्कृष्ट पदका अधिकारी होता ही है। अतः ब्राह्मणोंके राजाको अपने भालमें स्थापित कर भगवान् गणेशने सम्पूर्ण ब्रह्मज्ञानको अपने मस्तकमें संचित-संस्थापित किया है और उसीके कारण वे अग्रपूजाके अधिकारी बने हैं; अतः यह नाम भी अन्वर्थक है, इसमें संदेह नहीं।

इस द्वादश नामावलीका अन्तिम नाम है—'गजानन' अर्थात् हाथीके मुखवाला। गणेशके कण्ठसे ऊपरका भाग हाथीका है, इस तथ्यसे सभी सुपरिचित हैं। नराकृति अर्धाङ्गके साथ हाथीके मस्तकका मेल एक जीवित आश्चर्य ही कहा जा सकता है; परंतु जब गजाननके सभी अवयवोंपर दृष्टिपात कर हम एक निष्कर्षपर पहुँचते हैं, तब आश्चर्य-चकित हो जाना पड़ता है। मुखभागमें निम्न अवयव विशेषतः परिगणित होते हैं—जिह्वा, दन्त, नासिका, कान और आँख। जिह्वा सब विघ्नोंकी जड़ है। यह बहिर्मुखी होनेके कारण परदोषगणनमें विशेष रुचि लेती है; परंतु यदि मन जिह्वाके नुकीले भागको दूसरोंकी ओरसे हटाकर अपनी ओर कर ले, अर्थात् अपने दोषोंका परिगणन करने लगे तो अनेकानेक झंझटोंसे मुक्त हो जाय। प्रकृतिने अन्य सभी प्राणियोंके विपरीत हाथीकी जिह्वाको दन्तमूलकी ओरसे कण्ठकी ओर लपलपाती हुई लगाया है; अतः यह निर्विघ्नता-विधायक विशेषता गणेशमें विद्यमान रहकर उन्हें विघ्न-विनाशकका अन्वर्थक आश्रय बनाती है।

दन्तके सम्बन्धमें यह कहावत प्रसिद्ध ही है कि 'हाथीके दाँत खानेके और तथा दिखानेके और होते हैं'। गणेशके दाँत भी इस बातके परिचायक हैं कि बुद्धिमान् व्यक्तिको ऊपरी दिखावा आन्तरिक भावोंसे सर्वथा भिन्न रखना चाहिये; विशेषतः उस स्थितिमें, जब कि उसका सामना किसी सबलसे हो। परंतु यह नीति केवल महाभारतके शब्दोंमें 'माया-चारी मायया बाधितव्य.' के अनुसार एक सीमातक ही आचरणीय है, सर्वथा एवं सर्वदा अनुकरणीय नहीं। इसीलिये हाथीका मुख होते हुए भी दिखावेका दाँत केवल एक ही गणेशके साथ सम्पृक्त कर उन्हें 'एकदन्त'-पदसे व्यवहृत किया जाता है।

'नाक' प्रतिष्ठाकी द्योतक है। लंबी नाक, नाक कट जाना, नाक बचाना आदि वाक्य प्रतिष्ठाके रक्षणादिसे ही सम्बद्ध हैं। इसी नाककी प्रतिष्ठाके लिये ही व्यक्ति अनेकानेक उपाय करता है और उन कार्योंसे बचता है जिससे उसकी नाक कट जाय। इस प्रकार गणेशकी दीर्घनासिका मानवको नाककी सुदीर्घ प्रतिष्ठाकी रक्षाका संदेश देकर उसे प्रतिष्ठित कार्यव्यापारकी ओर अग्रसर बनाती हुई स्वयं अपनी महत्ताका स्थापन कर देती है।

लंबे-चौड़े कान सार-सँभार-ग्रहणक्षमता एवं निन्दा-पाचनकी क्षमताके परिचायक हैं।

हाथीके नेत्र प्रकृतिने कुछ इस प्रकार बनाये हैं कि उसे छोटी वस्तु भी बड़ी दिखायी देती है। श्रीगणेशकी आँखें हाथीकी होनेके कारण हमें बताती हैं कि मानवका दृष्टिकोण उदार होना चाहिये। उसे अपने गुणोंकी अपेक्षा अन्यके गुणोंको अधिक विकसितरूपमें देखना चाहिये, तभी वह एक आदर्शकी स्थापनामें सफल हो सकेगा। इसके साथ ही गणेशके लघु नेत्र यह भी संदेश देते हैं कि वे आँखें छोटी होती हुई भी विशाल और श्रेष्ठ हैं, जो लघु प्राणीको भी बृहद् या महान्के रूपमें देखती, आत्मसात् करती और समादृत करती हैं।

इस प्रकार अनेकानेक विशेषताओंसे परिपूर्ण होनेके कारण श्रीगणेशको 'गजानन'-शब्दसे अभिहित किया गया है, जो सर्वांशमें सार्थक है। परंतु यह होते हुए भी गणेशके कण्ठसे पादतकके शरीरको नराकृति प्रतिपादित किया गया है और यह इसलिये कि प्रकृतिमें केवल मनुष्य ही ऐसा प्राणी है, जो स्पष्टवक्ता, उदारमना, विभिन्न कार्यसम्पादक एवं भुक्ति-मुक्ति-साधक कहा जा सकता है। अतः श्रीगणेशके मानव-शरीरद्वारा भी तत्तद् विशेषताओंका दिग्दर्शन करानेके लिये उनका आकण्ठ-शरीर नरका प्रतिपादित किया गया है।

इसके साथ ही श्रीगणेशका शरीर परस्पर-विरोधीसे प्रतीयमान तत्-पदार्थ तथा त्वं-पदार्थके अभेदका परिचायक है। 'त्वं'-पदार्थ नरस्वरूप है तथा 'तत्'-पदार्थ गजस्वरूप है एवं अखण्डैकरस गणपतिरूप 'असि'-पदार्थमें इन दोनोंका सामञ्जस्य है। शास्त्रोंमें 'गज'-शब्दका अर्थ अतीव चामत्कारिक दिया गया है—"समाधिना योगिनो गच्छन्ति यत्र इति 'गः', यस्माद् बिम्बप्रतिबिम्बवत्तया प्रणवात्मकं जगज्जायत इति 'जः'। अर्थात्—समाधिसे योगीजन जिस परम तत्त्वको प्राप्त करते हैं, वह 'ग' है तथा जैसे बिम्बसे प्रतिबिम्ब उत्पन्न होता है, वैसे ही कार्य-कारणस्वरूप प्रणवात्मक प्रपञ्च जिससे उत्पन्न होता है, उसे 'ज' कहते हैं। 'जन्माद्यस्य यतः' आदि वचनोंसे उक्त कथनकी पुष्टि हो ही जाती है। सोपाधिक 'त्वं'-पदार्थात्मक गणेशका पादादि-कण्ठपर्यन्त नरदेह है। यह सोपाधिक होनेसे निकृष्ट, अतएव अधोभूताङ्ग है। निरुपाधि सर्वोत्कृष्ट 'तत्'-पदार्थमय गणेशजीका कण्ठादि मस्तकपर्यन्त गजस्वरूप है और वह निरुपाधिक होनेसे उत्कृष्ट है। अतः गजाननका भाव भी स्पष्ट हो जाता है।

'गणपतिसम्भव'मे गज-मनुज-योजनका उद्देश्य भगवान् शंकरने इस प्रकार बताया है—'हे उमे! हाथी और मनुष्यकी आयु १२० वर्षकी अर्थात् समान निश्चित की गयी है, उसीको समझानेके लिये तुम्हारे पुत्रके शरीरने नर एवं गजका मिश्रित रूप धारण किया है। अतः मानवको यत्नपूर्वक वह आयु प्राप्त करनी चाहिये। लोकमे हाथीकी पूजा करनेवाला पुरुष मान्य और धन्य होता है और जिसे हाथी स्वयं अपनी सूँडसे सिरपर चढाये, उसकी धन्यता तो असंदिग्ध है ही। मानव और गजके पारस्परिक सम्बन्धको प्रकट करनेके लिये ही हमारे पुत्रने यह नर-गजात्मक रूप धारण किया है। जैसे इसके शुण्डके हिंडोलेमें लक्ष्मी झूलती हैं, वैसे ही नरकी दोनों भुजाओंमें भी झूलें। जैसे श्वेतवसना सरस्वती हाथीके दाँतोंमें द्विगुणरूपसे अपनी छटा दिखाती हैं, वैसे ही नरके दन्ताग्रपर भी प्रकट करें। जैसे हाथी खूब खाता है और बँधे हुए पुरीषपिण्ड देता है, वैसे ही मानव भी उक्त दोनों क्रियाएँ करता हुआ स्वस्थ रहे। इसी भावको साकार बनानेके लिये उभयात्मक रूप धारण कर यह हमारे पुत्रके रूपमें आया है'—

आयुर्हस्तिमनुष्ययोः समतमं विंशोत्तरं यच्छतं
तद् विख्यापयितुं तवात्मजवपुर्मर्त्येभरूपं दधे।
तस्मान्मानवमात्रकेण यतनैरास्वादनीयं च तद्
विघ्नांस्तत्र भवान् निहन्तु मनसा शीघ्रावधेयं ततः॥
लोके यो गजराजपूजनकरो मान्यः स धन्यो नरो
यं स्वे मूर्धनि धारयेत् स करतो धन्यस्तदन्यश्च कः?
अन्योन्यं कृतबन्धनौ नरगजौ व्यङ्क्ते जगत्यामिदं।
मत्वत्स्नेहसुदेहलेहनरसो मर्त्येभरूपः सुतः॥
लक्ष्मीः खेलतु शुण्डयोरिव सदा मर्त्यस्य बाह्वोर्द्वयो-
र्दन्ताग्रे वसताच्च सा द्विगुणिता शुक्ला च वागीश्वरी।
कुर्याद् भोजनमप्युरु प्रजहतात् पौरीषपिण्डं च त-
न्मर्त्येभद्वयरूपतः प्रकटकस्त्वन्मद्द्वयाऽऽज्ञासुतः॥

(गणपतिस० ५। ५०–५२)

इस प्रकार अमितौजा भगवान् गणेशके द्वादश प्रमुख नामोंकी यथामति-यथागति व्याख्या करनेके उपरान्त हम विघ्नहरणके चरणकमलोंमे सादर साञ्जलि प्रणाम, इन शब्दोंके साथ समर्पित करते हैं—

सिन्दूरपूरपरिशोभितपूर्णशुण्डं
श्रीकुण्डतुल्ययुगकुण्डलमण्डिगण्डम्।
तुण्डेन विघ्नभयकाननभङ्गचण्डं
वन्दे महेशगिरिजामहिमांशुपिण्डम्॥

गणेशोपासनाकी प्राचीनता

(लेखक—श्रीसोमचैतन्यजी श्रीवास्तव, शास्त्री, एम्०ए०, एम्०ओ०एल्०)

हिंदुओंका उपासना-विज्ञान इतिहासके विकास, समाजकी माँग तथा परिस्थितिकी आवश्यकताके अनुसार अपना बाह्य-रूप बदलता रहा है। पर इसका मूलतत्त्व अधिक समन्वयात्मक, परिष्कृत एवं परिवर्धित रूपमे देव-प्रतिमाकी उपासनाके रूपमें सुरक्षित है। देवोपासनामें व्यक्ति और समाजकी रुचि, संस्कार, क्षेत्र-विशेषकी परम्परा और समयकी आवश्यकताके अनुसार परब्रह्मके किसी एक साकार देवरूपको किसी क्षेत्र-विशेषमें प्रधानता मिली है तो कभी किसी दूसरे साकार देवरूपको दूसरे क्षेत्र-विशेषमें। वर्तमान समयमें बंगालमें शक्तिपूजाकी प्रधानता है तो उत्तर भारतमें श्रीराम एवं श्रीकृष्ण विशेषरूपसे उपास्य हैं। मूलरूपमें ये सभी देवी-देवता एक अखण्ड ब्रह्म-चेतनाके प्रतीक हैं तथा इन रूपों-द्वारा वस्तुतः एक परब्रह्मकी ही उपासना की जाती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीगणपतिकी उपासना वैदिक वर्ग-की किसी शाखामे अवश्य प्रचलित रही होगी। वैदिकशाखा-ग्रन्थोंके लुप्त होनेके साथ गणपति-उपासना-विषयक साहित्य भी लुप्त हो गया होगा। इस लोप होनेके कारणके पीछे अथर्व-वेदविषयक आथर्वणशाखा-ग्रन्थोंका लोप भी कारण रहा होगा। लोकमें शान्ति-पौष्टिक-कर्मोंकी सिद्धि आथर्वण-विद्यासे सम्बन्धित मानी जाती थी। 'श्रीगणपत्युपनिषद्' एवं 'अथर्व-शीर्ष उपनिषद्'से ज्ञात होता है कि गणपति-विद्याका सम्बन्ध अथर्ववेदीय शाखासे था। कालान्तरमे अथर्ववेदका सम्बन्ध वाममार्गी तन्त्रविद्यासे जुड़ गया। यह तन्त्रविद्या लोकमें निषिद्ध आचारका सेवन करनेके कारण जब निन्दित हुई एवं लुप्त हो गयी, तब अथर्ववेदीय विद्याओ तथा शास्त्रोंका भी लोप हो गया। यहाँतक कि पौराणिक कालमे रचित गणपति-साहित्य भी अब उपलब्ध नही होता। नारदपुराणमे दी हुई सूचीके अनुसार वामनपुराणके उत्तरार्धमे सहस्रश्लोकी गाणेश्वरी-संहिताके होनेका उल्लेख है। पर आजकल वामन-पुराणका यह उत्तरार्ध उपलब्ध नहीं है। गाणपत्योंकी ग्रन्थोंको गोपनीय रखनेकी प्रवृत्ति भी इसमें हेतु हो सकती है।

कतिपय विद्वान् यह मानते हैं कि सूत्र-ग्रन्थोंमें उपलब्ध गृहधर्म एव लोकधर्मकी परम्परा संहिताकालसे भी पुरानी है। आरण्यक-ग्रन्थों एवं सूत्र-ग्रन्थोंमें श्रीविनायक गणपति-सम्बन्धी उल्लेख ऐसा संकेत देते हैं कि श्रीगणेशकी उपासना वैदिकयुग एवं पूर्व-वैदिकयुगमें भी लगभग वर्तमानरूपमें ही प्रचलित थी। तैत्तिरीयारण्यक (१० । १)में महादेव, दुर्गा, गणपति, कार्तिकेय और नन्दीका पृथक्-पृथक् गायत्री-मन्त्र मिलता है, जिससे इनमेंसे प्रत्येकका स्वतन्त्र देवताके रूपमें लोकमें उपास्य होनेका प्रमाण प्राप्त होता है। तैत्तिरीयारण्यकमें एवं नारायणोपनिषद्में श्रीगणपतिके गायत्री-मन्त्रका रूप यों है—

'तत्पुरुषाय विद्महे, वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥'

इस मन्त्रमे 'वक्रतुण्ड'-नाम उनके गजानन, गजकर्ण होनेका तथा 'दन्ती'-नाम उनके 'एकदन्त' होनेका स्पष्ट संकेत करता है। मैत्रायणीयसंहिता (२ । ९ । ६)में उपलब्ध गणेश-गायत्रीका रूप भिन्न है—

'तत्कराटाय विद्महे, हस्तिमुखाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥'

इन 'वक्रतुण्ड' और 'हस्तिमुख', 'कराट' और 'दन्ती'-नामोंसे यह भी संकेत मिलता है कि गणपतिकी प्रतिमा गजानन-रूपमे उस समय भी बनायी जाती रही तथा उसकी पूजा की जाती रही। दो प्रकारकी गणपति-गायत्री भी यह संकेत करती है कि संहिताकालमे ही गणपतिके भिन्न-भिन्न रूपोंकी उपासना प्रचलित रही एवं गणपति-उपासकोंके भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय भी रहे।

श्रीवरदमूर्तये नमः

(लेखक—श्री कें० वा० भातखण्डे, बी० ए०, बी० टी०)

'गणानां त्वा गणपतिꣳहवामहे ।'

(ऋग्वेद २ । २३ । १)

नमस्तस्मै गणेशाय ब्रह्मविद्याप्रदायिने ।
यस्यागस्त्यायते नाम विघ्नसागरशोषणे ॥

(गणेशपुराण, उपासना० १ । १)

'जो ब्रह्मविद्या प्रदान करनेवाले हैं तथा जिनका नाम विघ्नसागरको सुखानेके लिये अगस्त्यके समान है, उन श्रीगणेशजीको नमस्कार है ।'

अखिल श्रीगणेश-साहित्यमें तथा श्रीगणेशोपासनामें प्रसिद्ध सूक्त 'श्रीगणपत्यथर्वशीर्ष' सबप्रधान माना जाता है। 'त्वमेव सर्वं खल्विदं ब्रह्मासि । त्वं साक्षादात्मासि नित्यम् ।' (१) 'भक्तानुकम्पिनं देवम् ।' (९) कहकर श्रीगणेशजीका मधुर वर्णन करनेवाले इस अथर्वशीर्षके अन्तमें श्रीगणेशके आठ शुभ नामोका उल्लेख है । वे इस प्रकार हैं—'नमो व्रातपतये, नमो गणपतये, नमः प्रमथपतये, नमस्ते अस्तु लम्बोदराय, एकदन्ताय, विघ्ननाशिने, शिवसुताय, वरदमूर्तये नमः ।' (१०) इस नाममालामे 'वरदमूर्तये नमः'—यह अन्तिम नाम सब नामोमे मधुरतम है । हम वैदिक धर्मावलम्बियोमे कार्यका आरम्भ करते समय श्रीगणेश-चिन्तन करनेका पवित्र विधान है । श्रीगणराजसे 'निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा ॥'—इस प्रकार प्रार्थना न करनेसे कार्य विघ्नरहित नहीं हो पाता । 'विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा' आदि विविध कार्योंमे गणराजका स्मरण-चिन्तन हमको निर्विघ्नता प्रदान करता है । विघ्नेश्वर श्रीगणेशजी भक्तोंके और सज्जनोके मार्गमे होनेवाले सब विघ्नोको दूर करते हैं और उनको विद्या, धन, सुख एव भक्ति आदिका वरदान देते हैं । सारे विघ्नोको दूर करने तथा सम्पूर्ण कामनाओको पूर्ण करनेमें समर्थ होनेके कारण ही श्रीगणेशजी 'विघ्नेश्वर' और 'वरदमूर्ति' कहलाते हैं । इसीलिये वे अग्रपूजनीय भी हुए । श्रीगणेशराजको अग्रपूजाका अधिकार तथा वरदातृत्वका महान् गुण कैसे प्राप्त हुआ—इस विषयमे पुराणोमे अनेको रम्य कथाएँ वर्णित है । सम्पूर्ण पृथ्वीकी प्रदक्षिणाकी होड़मे सारे देवताओंको श्रीगणेशजी अपने बुद्धि-कौशलसे ही परास्त कर सके । इसी प्रसङ्गमे श्रीगणेशजीके मातृ-पितृ-भक्ति, भगवन्नाम-निष्ठा, शक्ति-शिव-तत्त्व-ज्ञातृत्व आदि दिव्य गुणोंका भी परिचय मिलता है ।

मातृ-पितृ-भक्ति और भगवन्नामोसे सुरभित वैष्णवत्व आदि महान् गुण ही श्रीगणराजके अमोघ वरदातृत्वका रहस्य है । श्रीगणराजके इस अमोघ वरदायित्वका लाभ बड़े-बड़े ऋषि-मुनियो और देवताओको उन्मुक्त रूपसे प्राप्त हुआ है । श्रीवेदव्यासजीने जब पुराणोंकी रचना आरम्भ की, उस समय गणेश-स्मरण न करनेके कारण उनको सब कुछ विस्मरण हो गया । श्रीब्रह्माजीके कथनानुसार जब गणेशोपासना करनेसे वरदाता श्रीगणेशजी प्रसन्न हुए, तब श्रीवेदव्यासजीको उपपुराणसहित अठारहों पुराणोकी रचनाका श्रेय मिला । मधु-कैटभ राक्षसोंको मारनेके लिये महाविष्णुने श्रीगणेशमन्त्रका स्मरण किया और श्रीगणेशके वरदायित्वका अनुभव किया । श्रीगणेशजीके वरसे सृष्टि-रचनाके महान् कार्यको श्रीब्रह्माजी कर सके । त्रिपुरासुरका वध करनेके लिये श्रीनारदजीके उपदेशानुसार श्रीशंकरजीने गणेशकी आराधना की, तब श्रीगणेशजीने प्रसन्न होकर श्रीशकरजीको 'गणेशसहस्रनाम' प्रदान किया और त्रिपुरासुर-सहारमे यशःप्राप्तिका वर दिया । ऐसा है वरदमूर्ति श्रीगणेशजीका अमोघ और उदार वरदायित्व ।

हमारा जीवन विघ्न-बाधा-रहित हो तथा हमें चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति सुगम हो—इसके लिये हमे विधिवत् गणेश-उपासना करनी चाहिये । पाश, अङ्कुश, रद, वरदसे युक्त चतुर्भुज मूर्तिका ध्यान, दूर्वाङ्कुर, मोदक, शमीपत्र, रक्तपुष्प आदिसे पूजन, ब्रह्मणस्पतिसूक्त या अथर्वशीर्षमन्त्रोसे अभिषेक, विनायक, गणपति, गजानन—इन महानामोका चिन्तन या कीर्तन आदि विविध प्रकारोंसे भक्तगण गणेशोपासना किया करते हैं । भावपूर्वक गणेशनाम-कीर्तन करना सबसे सुलभतम साधन है ।

श्रीवरदमूर्ति गणेशजी विपुल विद्या, अतुल धन, सुदीर्घ आयु आदि अनेक वरदान तो सभी भक्तोंको देते हैं, किंतु हरिभक्तिका वरदान वे केवल अन्तरङ्ग भक्तोको ही देते हैं । श्रीगणेशजी बड़े हरिनाम-परायण हैं । रामनाम-रससे युक्त हरिभक्तिका रसायन श्रीगणपतिके पास सहज ही सुलभ है, जो

रामनामानुरागी माता-पिता श्रीगौरी-शिवकी संनिधिसे प्रतिक्षण वर्धित होता रहता है। ऐसे महावैष्णव श्रीगणपतिको हरि-कीर्तनकी बड़ी लगन है। 'नामामृत गोडी वैष्णवा लावली'— श्रीज्ञानदेवके ये वचन ही गणेशजीमें यथार्थ घटित होते हैं। श्रीनिम्बराज नामके एक बड़े हरिभक्त थे। एक रात जब वे पूर्णरूपसे निद्राधीन थे, तब स्वप्नमें श्रीगणेशजीने इन्हें एक ऐसा मधुर बीड़ा खिलाया कि उस बीड़ेसे श्रीनिम्बराजको हरिकीर्तनकी महान् स्फूर्ति प्राप्त हुई। श्रीगणेशजीके इस वर-प्रसादसे श्रीनिम्बराज हरिकीर्तनके प्रेममें सदा मग्न रहने लगे, जिससे उनका जीवन सफल हो गया। इस हरिकीर्तन-प्रेमका वरदान हम सबको गणेशजी अवश्य दें, यही उन वरदमूर्तिसे प्रार्थना है।

गणेश देवता

(लेखक—पं० श्रीगौरीशंकरजी द्विवेदी)

आर्य-संस्कृतिमें देवताकी भावनाका आविर्भाव कब और कैसे हुआ, इसका ऐतिहासिक उद्भव खोज निकालना बहुत ही कठिन है। वैदिक युग देव-प्रधान युग था। उसमें देवता परम आदर्श और परमाराध्य थे। देवत्वकी प्राप्ति जीवनका चरम ध्येय था। गुरुकुलसे लौटते हुए स्नातकको यह शिक्षा दी जाती थी—

'मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव।'

(तैत्तिरीय-उपनिषद् १। ११। २)

'माता, पिता, आचार्य और अतिथिको देवता मानकर उनकी सेवा करो।'

सारांश यह है कि आर्य-जीवनमें देवताका प्राधान्य है। देवताका आर्य-जीवनके साथ अविनाभाव-सम्बन्ध है। जहाँ देवभावका अभाव है, वहाँ असुरभाव उपस्थित हो जाता है। असुरभावसे त्राण पानेके लिये देवताकी शरण लेनेके अतिरिक्त कोई चारा नहीं है। अतएव देवाराधनके द्वारा देवत्वकी वृद्धि करके असुरभावका विनाश करना जीवनका परम कर्तव्य है। मानव-जीवनका चरम लक्ष्य देवत्वकी प्राप्ति है और असुरभाव उसमें प्रधान और प्रबल विघ्न है। गणेशजी विघ्नेश्वर हैं। उनकी कृपादृष्टि होनेसे विघ्नोंका पर्वत अपने-आप विगलित होकर क्षणमात्रमें विनष्ट हो जाता है, असुरसमूह उनके नाममात्रसे विद्रावित होते हैं। इसी कारण सब प्रकारके मङ्गल-कार्योंमें, सब प्रकारकी देवपूजाओंमें गणेशजीकी प्रथम पूजा होती है—

आलम्बे जगदालम्बं हेरम्बचरणाम्बुजम्।
शुष्यन्ति यद्रज:स्पर्शात् सद्यः प्रत्यूहवार्धयः॥

'जगत्‌को आश्रय देनेवाले श्रीगणेशजीके चरण-कमलका मैं आश्रय लेता हूँ, जिसकी रजके स्पर्शसे विघ्नोंके समुद्र तत्काल सूख जाते हैं।'

प्रतिमा बनाकर आवाहनादि षोडशोपचारसे पूजा करना अथवा गोबरके गणेश या मृत्तिकाके गणेशकी रचना करके गणेश-पूजा करना सर्वसाधारणमें पाया जाता है। यह पूजा केवल निर्विघ्न कार्यसिद्धिके उद्देश्यसे की जाती है। मङ्गल-उत्सव आदि आनन्दप्रद समारोहोंके अवसरपर गणेशजीका स्मरण किया जाता है। गणेशजी पार्वतीनन्दन हैं, विश्वजननी महामायाके वरद पुत्र हैं, आनन्दमूर्ति हैं, मोदकप्रिय हैं, मुद-मङ्गल-दाता हैं। विद्या और कलाके अधिदेवताके रूपमें सरस्वतीके साथ गणेशजीका भी नाम लिया जाता है। कहते हैं कि शिवजी जब ताण्डव-नृत्य करने लगते हैं तो आनन्दमें मग्न होकर गणेशजी अपने कण्ठसे मेघकी तरह मृदङ्ग-ध्वनि करते हैं—

नमस्तस्मै गणेशाय यत्कण्ठः पुष्करायते।
मदाभोगघनध्वानो नीलकण्ठस्य ताण्डवे॥

(दश रूपक १। १)

देवताका दूसरा रूप है—आधिदैविक। पुराणोंमें जो देवताओंका स्वरूप वर्णित है, जो देवासुर-सग्रामके वर्णन आते हैं, वे उनकी आधिदैविक लीलाओंको अभिव्यक्त करते हैं। वैदिक मन्त्रोंके भी जो अग्नि आदि देवता हैं, वे मन्त्रमय हैं।

निरुक्तकार यास्क कहते हैं—

'यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्दैवत: स मन्त्रो भवति।'

'जिस कामनासे ऋषि उस कामनाको पूर्ण करनेवाले जिस देवताकी स्तुति करता है, उस देवताका वह मन्त्र होता है।'

यह मन्त्रमय देवताका लक्षण है। वेद-मन्त्रोंमें जो देवता उपलक्षित होते है, वे क्या हैं?—इस प्रश्नका उत्तर यास्क नहीं देते और न उनके निरुक्तके दैवतकाण्डमे वैदिक देवताओंकी सूचीमे गणेशका नाम है। इससे कुछ लोग भ्रममे पड़ते हैं कि गणेशजी वैदिक देवता नहीं हैं और बादमे उनकी सृष्टि की गयी है। छान्दोग्य-उपनिषद् (७। १। २) मे नारदजी सनत्कुमारसे कहते हैं—

'ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्'—इत्यादि।

इस उद्धरणमे नारदजीने इतिहास और पुराणको वेदोंमें 'वेद' कहा है। अर्थात् पौराणिक धर्म पाँचवाँ, पौराणिक देवता वेदोसे भी पूर्व विद्यमान है। इतिहास और पुराणके बिना वेदका एकमात्र प्रामाण्य अव्यवहृत है। इसी कारण प्रसिद्ध है—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्॥
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति।
(महाभारत १। १। २६७½)

इतिहास और पुराणके प्रकाशमे वेदोंका व्याख्यान करनेपर गणेशजी अनादिकालीन देवता सिद्ध होते हैं। पुराणोंके तत्त्व अति प्राचीन हैं।

अस्तु, आकाशमे—द्युलोक (प्रकाशमय लोक) मे देवताओंके पृथक्-पृथक् लोक है। ज्योतिर्विज्ञानकी दृष्टिसे पृथक्-पृथक् तारामण्डलके अधिपति पृथक्-पृथक् नक्षत्ररूपी देवता हैं। उन नक्षत्रोंमे करिवदन-नक्षत्रकी स्थिति सप्तर्षिमण्डलकी कक्षासे बाहर है। द्युलोकमे देवताओकी स्थिति होनेपर भी जैसे मन क्षणमात्रमे अनन्त कोटि दूर पहुँच सकता है, वैसे ही देवता भी स्मरण करते ही पास उपस्थित हो जाते है। अर्थात् उनकी स्मृति ही उनकी उपस्थिति है। ऊपर जो कहा गया है कि 'देवता मन्त्ररूप हैं', उसका यही अभिप्राय है। नाम और नामीका इसी कारण अभेदभाव माना जाता है। सिद्धान्ततः नाम और मन्त्र—दोनो ही देवतास्वरूप हैं। मन्दिरोंमे प्राणप्रतिष्ठा की गयी देवमूर्ति दिव्यलोकके देवताकी प्रतिमा है। उस प्रतिमा और देवतामे अभेदभाव होता है। परंतु उपासक तभी लाभान्वित हो सकता है, जब देवभावसे प्रतिमाके सम्मुख उपस्थित हो। कहा है 'देवो भूत्वा देवं यजेत्।' ऐसा न करनेसे प्रत्यवाय लगता है, लेनेके देने पड़ जाते हैं। इसी कारण संतोंने सर्वसाधारणके लिये नाम-जपकी साधना प्रचलित की है। गणेशजीके इन द्वादश नामोंका पाठ करनेसे विघ्नोंका भय दूर हो जाता है और सर्वसिद्धि प्राप्त होती है—

प्रथमं वक्रतुण्डं च एकदन्तं द्वितीयकम्।
तृतीयं कृष्णपिङ्गाक्षं गजवक्त्रं चतुर्थकम्॥
लम्बोदरं पञ्चमं च षष्ठं विकटमेव च।
सप्तमं विघ्नराजं च धूम्रवर्णं तथाष्टमम्॥
नवमं भालचन्द्रं च दशमं तु विनायकम्।
एकादशं गणपतिं द्वादशं तु गजाननम्॥
द्वादशैतानि नामानि त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः।
न च विघ्नभयं तस्य सर्वसिद्धिः प्रजायते॥

'वक्रतुण्डसे लेकर गजाननतकके बारह नामोका जो तीनों संध्याओंके समय पाठ करते हैं, उन्हें विघ्नका भय नहीं होता और सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।'

देवताके आधिदैविक रूपसे सम्बन्ध जोड़नेपर साधनाका द्वार खुल जाता है। उस साधनाका पर्यवसान देवताके आध्यात्मिकरूपके परिज्ञानसे होता है। आधिदैविक जगत्में भावानुसार पृथक्-पृथक् देवता हैं; किंतु आध्यात्मिक भावमें नानात्व नहीं, एकत्व है। एक ही नानारूपमे भासमान होता है। अध्यात्म-जगत्मे अद्वैतनिष्ठा विराजती है। यह अद्वैतनिष्ठा जितनी बढ़ती जाती है, उतनी ही द्वैतकी माया क्षीण होती जाती है और साधकको जीवनकी कृतार्थताका रसास्वादन होने लगता है। आध्यात्मिक स्वरूपमे गणेशजी अज हैं, अनादि और अनन्त हैं, निर्गुण हैं, निर्विशेष हैं, निराकार हैं, परब्रह्मस्वरूप हैं। वे ही एक होकर सर्वरूप हो रहे हैं। वे त्रिनेत्र और चतुर्भुजके स्थानमे असंख्य नेत्र, असंख्य मुख, असंख्य भुज और असख्य पाद हैं। इस प्रकार वे असख्य रूप हैं और इस असंख्य रूपके परे अमृतस्वरूपमे भी स्थित हैं। वे सर्व हैं, शर्व हैं, शिव हैं, विष्णु हैं, शक्ति हैं। गणेशजीका परम भक्त स्तुति करता है—

अजं निर्विकल्पं निराकारमेकं
निरानन्दमद्वैतमानन्दपूर्णम्।
परं निर्गुणं निर्विशेषं निरीहं
परब्रह्मरूपं गणेशं भजेम॥
(गणेशपुराण, उपासना० १३। ३)

भगवान् गणेश

(लेखक—श्रीमोरेश्वर नरहर धुलेकर)

हिंदू-धर्मका कोई भी धार्मिक कार्य हो, उसका प्रारम्भ श्रीगणेश-नमनसे ही होता है। यज्ञोपवीत-संस्कार, विवाह-संस्कार आदि कोई भी संस्कार हो, 'श्रीगणेशाय नमः'—इसीसे संस्कारका पूजन प्रारम्भ होता है। हिंदू-धर्ममें तैंतीस कोटि देवता हैं, किंतु प्रत्येक देवताकी पूजामें अग्रस्थान श्रीगणेशदेवताका ही है। श्रीगणेश तो देवताओंको भी वरदान देनेवाले देवता हैं। महर्षि व्यासने अपने कई पुराणोंमें श्रीगणेशका वर्णन किया है।

प्रत्येक मन्त्रका प्रारम्भ 'ॐ' से होता है और स्वयं श्रीगणेश ॐकारस्वरूप हैं। विवेचनद्वारा स्पष्ट किया जा सकता है कि 'ॐ'की एवं श्रीगणेशजीकी आकृतिमें बहुत कुछ साम्य है। वस्तुतः श्रीगणेश प्रणवरूप हैं। 'ॐ'की महिमा पुराणमें कही गयी है—

ओंकारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा।
कण्ठं भित्त्वा विनिर्यातौ तस्मान्माङ्गलिकावुभौ॥

(नारदपुराण, पूर्वभाग ५१। १०)

"जगदुत्पत्तिके पहले ब्रह्मदेवके कण्ठका भेदन करके 'ॐकार' तथा 'अथ' शब्द बाहर निकले; अतः ये अत्यन्त मङ्गलप्रद हैं।" प्रत्येक ग्रन्थमें 'अथ अमुकग्रन्थ आरम्भः' लिखनेका कारण भी यही है। वटबीज-न्यायसे ॐकारसे केवल ब्रह्मा ही नहीं, साक्षात् श्रीविष्णु तथा महेश और चारों वेद भी प्रकट हुए हैं। श्रीगणेशजीके प्रणवरूप होनेके कारण प्रणवको वन्दन करनेका अर्थ है—श्रीगणपतिका ही वन्दन करना।

महाराष्ट्रके संत श्रीएकनाथजी श्रीगणेशकी प्रार्थना यों करते हैं—"प्रभो! हे प्रणवरूप गजानन! आप एक होते हुए भी अनेक रूपोंसे इस जगत्‌में व्याप्त हैं; अतः आपका एकात्मक रूप स्पष्ट नहीं होता। जैसे स्वर्णके विविध नाम-रूप-धारी अनेक अलंकार बननेसे वह विविध रूपोंमें शोभा देता है, फिर भी स्वर्णरूपसे वह एक ही है, उसमें कोई अन्तर नहीं, इसी प्रकार आप ही अखिल विश्वके आधारभूत हैं। हे हेरम्ब! आपके विशाल उदरमें सारा ब्रह्माण्ड भरा हुआ है, इसीलिये आपको 'लम्बोदर' कहते हैं। आप साक्षात् ओंकारस्वरूप हैं।"

त्वं मूलाधारस्थितोऽसि नित्यम्। त्वं शक्तित्रयात्मकः।
त्वां योगिनो ध्यायन्ति नित्यम्॥ (गणपत्यथर्वशीर्ष ६)

यं सदा मुनयो देवाः स्मरन्तीन्द्रादयो हृदि।
यं पूजयन्ति सततं ब्रह्मेशानेन्द्रविष्णवः॥

(गणेशस्तव)

'बड़े-बड़े नारदादि ऋषि, इन्द्रादि देव अपने हृदयमें जिनका ध्यान करते हैं, इसीलिये जो सकल देवताओंके देवता और ब्रह्मा, विष्णु एवं महेशके भी पूज्य हैं।'

यदाज्ञया सृष्टिकरो विधाता
यदाज्ञया पालक एव विष्णुः।
यदाज्ञया संहरको हरोऽपि
ओंकाररूपी स गणेश ईरितः॥

(गणेशस्तव)

'जिनकी आज्ञासे ब्रह्मा सृष्टि-रचना करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और महादेव संहार करते हैं, इन तीनों देवताओंकी उत्पत्ति श्रीगणेशस्वरूप प्रणवके अ, उ, म्—इन तीन अक्षरोंसे हुई है।'

अकारो वासुदेवः स्यादुकारो विधिरुच्यते।
मकारस्तु महादेवः प्रणवाय नमोऽस्तु ते॥

(श्रीगणेशस्तव)

"'अ' सत्त्वगुणप्रधान विष्णु, 'उ' रजोगुणप्रधान ब्रह्मा और 'म' तमोगुणप्रधान महादेव—ये तीनों देवता जिससे प्रकट हुए हैं, वह प्रणव सभी देवताओं तथा वेदोंसे भी सनातन है। उस प्रणवरूप आप (गणेश) को नमस्कार है।"

वेदमें इन्द्र, अग्नि, सूर्य, वायु एवं वरुण आदि देवोंकी स्तुति की गयी है; परंतु वह स्तुति उन देवताओंकी नहीं, किंतु प्रकारान्तरसे श्रीगणेशजीकी ही है। 'गणपत्यथर्वशीर्ष'में आया है—

'त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णुस्त्वं रुद्रस्त्वमिन्द्रस्त्वमग्निस्त्वं वायुस्त्वं सूर्यस्त्वं चन्द्रमाः।' (६)

'ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा—सभी आप श्रीगणेश ही हैं।'

'सर्वं जगदिदं त्वत्तो जायते। सर्वं जगदिदं त्वत्तस्तिष्ठति।

सर्वं जगदिदं त्वयि लयमेष्यति । सर्वं जगदिदं त्वयि प्रत्येति । त्वं भूमिरापोऽनलोऽनिलो नभः ।'

(गणपत्यथर्वशीर्ष उप० ५)

'हे भगवान् श्रीगणेश ! यह सारा जगत् आपसे ही उत्पन्न होता है । आपसे ही इस सारे जगत्‌का अस्तित्व है । इस सारे जगत्‌का लय भी आपमें ही होगा । आप सत्यस्वरूप हैं; आपमें प्रतिष्ठित होनेके कारण यह असत्य जगत् सत्य-सा प्रतीत होता है । आप ही पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश है ।' जगत्‌की उत्पत्तिके पूर्व आप ही थे, जगत्‌के स्थिति-कालमें आप ही हैं और जगत्‌के प्रलयके बाद आप ही शेष रहेंगे । इसलिये जगत्‌से अतीत सनातन सत्य केवल आप ही हैं । ऐसे संसारातीत प्रणवस्वरूप परमतत्त्व श्रीगणेशजी भक्त-हितार्थ युग-युगमें अवतरित होते रहते हैं । चारों युगोंके श्रीगणेशजीके नाम, आकार, वर्ण, वाहन आदि भिन्न-भिन्न है । श्रीगणेशजीकी स्तुतिका और एक श्लोक है—

गणेशो वः पायात् प्रणमत गणेशं जगदिदं
गणेशेन त्रातं नम इह गणेशाय महते ।
गणेशान्नास्त्यन्यत् त्रिजगति गणेशस्य महिमा
गणेशे मच्चित्तं निवसतु गणेश त्वमव माम् ॥

'गणेशजी तुमलोगोंकी रक्षा करें । तुमलोग गणेशजीको नमस्कार करो । गणेशजीने ही इस जगत्‌की रक्षा की है; उन महिमाशाली गणेशजीको नमस्कार है । गणेशजीसे बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है । त्रिलोकीमें गणेशजीकी महिमा व्याप्त है । गणेशजीमें मेरा चित्त सदा निवास करे । गणेश ! आप मेरी रक्षा कीजिये ।' (कारककी सभी विभक्तियोंका उदाहरण इस एक ही श्लोकमें प्रदर्शित किया गया है ।)

इस श्लोकको सुनकर करवीर-संकेश्वरपीठके ब्रह्मलीन सिद्ध श्री १०८ स्वामी गिरोलकर शंकराचार्यजी महाराज बड़े गद्गद और पुलकित हो जाया करते थे तथा उनकी आँखोंसे अश्रु प्रवाहित होने लगता था । भाद्रपद-शुक्ला चतुर्थी श्रीगणेशजीका पावन जन्मदिवस है । उस दिन घर-घरमें श्रीगणेशजीकी पार्थिव पूजा होती है । भाद्रपद-शुक्ला चतुर्थीसे भाद्रपद-शुक्ला चतुर्दशीतक श्रीगणेश-जन्मोत्सव मनाया जाता है । स्वनाम-धन्य श्रीलोकमान्य तिलकजीने राष्ट्रको जाग्रत् करनेके लिये सामुदायिकरूपसे इस धार्मिक उत्सवका मनाना प्रारम्भ किया और उनको अपने उद्देश्यमें सफलता भी मिली । सर्वातीत सर्वसमर्थ भगवान् श्रीगणेशजीका अर्चन-वन्दन व्यक्ति और समाज—सभीको सुख-समृद्धि प्रदान करता है ।

गणेशजीका सार्वभौम ऐश्वर्य

(लेखक—श्रीभालचन्द्रजी देशपाण्डेय, बी०ए०, बी०एड०)

भारतीय संस्कृतिमें श्रीगणेशजीका स्थान सर्वोपरि है । किसी भी कार्यके आरम्भमें सर्वप्रथम श्रीगणेशजीका पूजन करना चाहिये । इतना ही क्यों, किसी भी देवताकी पूजाके प्रारम्भमें गणेशजीकी अग्रपूजा करना आवश्यक माना जाता है । जो कोई इसका पालन नहीं करता, उसके कार्यमें निश्चित विघ्न पड़ता है । श्रीशिवजी गणेशजीकी पूजा किये बिना ही त्रिपुरासुरको मारने गये, किंतु उन्हें स्वयं ही पराजित होना पड़ा । जब-जब शिव-विष्णु-सूर्यादि देवताओंने गणेशजीकी अग्रपूजा नहीं की, तब-तब उन्हें अपने कार्यमें विफल होना पड़ा । गणेशजीकी शरण लेनेके पश्चात् ही उन्हें सिद्धि तथा कीर्तिकी प्राप्ति हुई । इस बारेमें प्रमाणभूत क्षेत्र आज भी विद्यमान है ।

पूना जिलेमें स्थित 'राजनगाँव'-क्षेत्रमें श्रीशंकरजीने त्रिपुरासुर-वधके लिये गणेशाराधना की । 'थेऊर'-क्षेत्रमें श्रीब्रह्माजीने सृष्टि-कार्यमें सिद्धि-प्राप्तिके लिये श्रीगणेशजीकी उपासना की । महाविष्णुने मधुकैटभ-वधके लिये 'सिद्धिटेक'-क्षेत्रमें श्रीगणेशजीकी अर्चना की । यमराजने 'नामल' (मराठवाड़ा)-क्षेत्रमें श्रीगणेशजीको प्रसन्न किया । शिवपुत्र श्रीस्कन्दने 'वेरूल' क्षेत्रमें आकर गणेशजीके लिये तपश्चर्या की, तब कहीं वे तारकासुरको मार सके । आदि शक्ति देवीने 'विन्ध्याचल' क्षेत्रमें आकर गणेशजीकी प्रसन्नताके लिये तपश्चर्या की, तब कहीं वे महिषासुरको नष्ट कर सकीं । ऐसे तप और ऐसी तपःस्थलियोंके अनेक उदाहरण हैं, जो भगवान् श्रीगणेशकी गरिमाको प्रकाशित एवं प्रतिष्ठापित करते हैं ।

सद्गुणसदन श्रीगजवदन

(लेखक—श्रीव्योमकेश भट्टाचार्य)

सर्वविघ्नविनाशाय सर्वकल्याणहेतवे ।
पार्वतीप्रियपुत्राय गणेशाय नमो नमः ॥

'सारे विघ्नोंके विनाशके लिये, समस्त कल्याणके हेतु-भूत, पार्वतीजीके प्रिय पुत्र गणेशजीको अनेक नमस्कार ।'

सर्व-जनगणके देवता गणेश गणपति हैं। पुराणोक्त कथामें पाया जाता है कि भगवती पार्वतीने अपने अङ्गके अनुलेपसे एक चतुर्भुज मूर्ति बनाकर अपने पति देवाधिदेव महादेवसे प्रार्थना की कि 'उसमें प्राण-संचार कर उसे अपने पुत्ररूपमें प्रसिद्ध करके जगत्पूज्य बना दें।' भगवान् शंकरने वेदोक्त जीवसूक्त और तुष्टिसूक्तद्वारा उस कृत्रिम पुत्रमें प्राण-संचार करके कहा—"हे देवि! यह पुत्र जगत्में यशस्वी और जनगणका अधिपति होकर 'गणेश' नामसे विख्यात होगा।"

उस शिशु-पुत्रके आविर्भावसे कैलासमें महोत्सव मनाया जाने लगा। सुर-मुनि-गण शिशुका दर्शन करके आशीर्वाद देनेके लिये एकत्र हुए। केवल सूर्यतनय शनिदेवके सम्पर्कसे उसमें व्यतिक्रम हो गया। शनिकी पत्नीने उनको शाप दे रखा था कि 'जिसके ऊपर उनकी दृष्टि पडेगी; उसका शिरश्छेद तत्काल हो जायगा।' विशेष अनुरोधपर शनि जब शिशुके समीप आये तो जगज्जननी पार्वतीजी बोलीं—'किसकी सामर्थ्य है जो मेरी संतानका अनिष्ट साधन कर सके?' विधिका विधान कौन जानता है? शिशुके ऊपर शनिकी दृष्टि पड़ते ही शिशुका सिर कटकर विष्णुके तेजमें विलीन हो गया। जननी पार्वती शोकातुर हो उठीं। लज्जासे शनिने मुख नीचा कर लिया। कैलासमें तहलका मच गया। गोलोकसे विष्णुने आकर उत्तराभिमुख सोये एक गजका मस्तक काटकर शिशुके कंधेपर जोड दिया और उसमें प्राण-संचार कर दिया। तभीसे वह शिशु 'गजानन' नामसे विख्यात हुआ। स्कन्दपुराण, नागरखण्डके अनुसार पार्वतीने गजाननरूपमें ही पुत्रकी सृष्टि की थी। बाल्यकालमें एक दिन गणेशने एक बिल्लीको क्षत-विक्षत करके माताके समीप आकर देखा कि माताका शरीर क्षत-विक्षत और रक्तरञ्जित है। माता बोली—'हे वत्स! जगत्के सब प्राणियोंमें मेरा वास है। सब स्त्रियाँ मेरा अंश है। इस बिल्लीके ऊपर हुआ आघात मेरे ऊपर पड़ा है'—

'या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता ।'

समस्त नारीमूर्तिको अपनी जननीके अंशस्वरूप मानकर गणेशजी सदाके लिये मातृ-भक्त हो गये।

एक दिन पार्वतीने अपने पुत्र कार्तिकेय और गणेशको बुलाकर कहा—'हे वत्स! दोनोंमें जो पहले त्रिभुवनकी परिक्रमा करके मेरे पास आवेगा; उसे यह कण्ठहार उपहारमें दूँगी।' मयूरवाहन कार्तिकेय द्रुतगतिसे त्रिभुवनकी परिक्रमाके लिये बाहर निकले। स्थूलशरीर, लम्बोदर, मूषक-वाहन श्रीगणेशजी बड़ी कठिनाईमें पड़े। गणेशजी त्रिभुवनकी परिक्रमाके लिये बाहर न जाकर धीरे-धीरे माताकी परिक्रमा करके बोले—'माँ! त्रिभुवन तुम्हारा ही विकसित रूप है, तुम्हारी परिक्रमा करनेसे त्रिभुवनकी परिक्रमा हो जाती है।' माताने पुत्रके वचनसे संतुष्ट होकर उनको कण्ठहार पहना दिया। इस प्रकारकी मातृभक्तिका दृष्टान्त जगत्में बहुत कम देखनेमें आता है।

देवासुर-संग्राममें गणेशने दानवोंका संहार करके देवताओंकी रक्षा की थी। देवराज इन्द्रने प्रसन्न होकर गणेशजीसे कहा था—"आप सब देवताओंके पूज्य हैं। कार्यके आरम्भमें आपकी पूजा करनेसे सारे कार्य सिद्ध होंगे। आप 'विघ्नविनाशन' नामसे प्रसिद्ध होंगे।"

शिवके शिष्य परशुराम इक्कीस बार पृथ्वीको निःक्षत्रिय करके श्रीगुरुके चरणारविन्दके दर्शनार्थ कैलासमें पहुँचे। वहाँ हर-पार्वती निद्रामें पड़े थे और द्वारपर गजानन पहरा दे रहे थे। उन्होंने परशुरामको भीतर प्रवेश करनेसे रोका तो उन्होंने गुरुके द्वारा प्राप्त परशु-अस्त्रसे गणेशके एक दन्तको चूर्ण-चूर्ण कर दिया। तबसे गणेश एकदन्त-नामसे विख्यात हुए।

ऊर्ध्वरेता गणेशजी एक समय गङ्गाजीके तटपर ध्यान-मग्न बैठे थे। एक देवी कामातुरा होकर वहाँ पहुँची। तप्त-काञ्चनके समान गणेशके रूपको देखकर वह मोहित हो उठी। उनके ध्यानको भङ्ग करनेमें असमर्थ होकर

उस रमणीने गङ्गाजलसे सिञ्चन करके शिवनन्दनके ध्यानको भङ्ग कर दिया । कठोर तपस्वी जितेन्द्रिय गणेशजी चकित होकर बोले—'देवि ! तुमने यह क्या किया ? तुम दूसरेकी कामना करो; मैं ऊर्ध्वरेता हूँ । विश्वकी सारी स्त्रियाँ मेरी जननी हैं ।'

ऐसे सद्गुणसदन गजवदन, जो एकदन्त हैं, चैतन्यस्वरूप हैं, जगतके आदिकारण हैं, परब्रह्म हैं, वे सतत वन्दनीय और भजनीय हैं—

अनेकमेकं गजमेकदन्तं चैतन्यरूपं जगदादिबीजम् ।
ब्रह्मेति यं ब्रह्मविदो वदन्ति तं शम्भुसूनुं सततं भजामि ॥

'गणपति जग-वंदन !'

युग रीते, पर राह न रीती ।
चलनेवाले चला किये, मंजिलतक पहुँचे ।
वहाँ उन्हें मंजिल आगे फिर
उतनी ही लंबी-सी दीखी ।
इसीलिये गण-पति गणेशने,
लीक छोड़, मान्यता नयी गढ़,
परोक्षको प्रतिनिधित्व देकर
सब अदृश्यका, मनस्तुष्टिका,
सृजन-सृष्टिको सर्वोपरि रख,
निकट केन्द्रको चरम लक्ष्य कह,
एकनिष्ठ, दृढ़ आस्थाके बल
सारी दुनिया ही समेट ली
कुछ कदमोंमें,
उत्पादककी परिक्रमा कर ।
और—बेचारे स्वामिकार्तिक !
लीक-लीक चल, जग-चक्कर भर
जब वे लौटे विजय-दर्प-सँग,
जीती बाजी हार चुके थे ।
नयी मान्यता जीत चुकी थी
नेति-पराक्रमपर इतिके बल,
पाकर शिव-कल्याणी-स्वीकृति,
उत्पादककी परिक्रमा कर ।

—बालकृष्ण नन्दुवा, बी० ए०, एल्-एल्० बी०

स्तवन

विघ्नहरं प्रकृतेः परतत्त्वं
मोदकधारिणमीश्वरपुत्रम् ।
भक्तभयाऽपहमीशमनीशं
श्रीगणनाथमहं प्रणतोऽस्मि ॥

जो विघ्नहरण करनेवाले, प्रकृतिसे परे परमतत्त्वरूप, शिवके पुत्र तथा हाथमें मोदक (लड्डू) लिये रहनेवाले हैं; जो भक्तजनोंके भयका नाश करनेवाले एवं सबके ईश्वर हैं; जिनका कोई दूसरा ईश्वर नहीं है; उन श्रीगणनाथको मैं नित्य प्रणाम करता हूँ ।

अतिप्रवीणैः कमलान्यपास्य
श्रितं मदाऽऽढ्यं भ्रमरैर्यदास्यम् ।
व्रजाम्यहं तस्य सदैव दास्यं
हृत्तस्य भक्त्या विमलं ममाऽस्तु ॥

भ्रमरावली बड़ी चतुर है । उसने कमलोंको त्यागकर जिनकी मदपूर्ण गण्डस्थलीका आश्रय ले लिया है, मैं ऐसे भगवान् गणपतिका दास्य स्वीकार कर रहा हूँ । उनकी भक्तिसे मेरा हृदय निर्मल हो जाय ।

कपर्दसर्पाद् भयमादधानं
प्रचण्डदर्पाल्लघुसत्त्ववन्तम् ।
भैषीर्वृथा मा परिरक्षकोऽहं
जल्पन्नयेद् वाहनमेकदन्तः ॥

(भगवान् शंकरकी) जटामें लिपटे हुए प्रचण्ड दर्पवाले सर्पसे डरते हुए अपने स्वल्पकाय वाहन मूषकसे गणेशजी यह कह देते हैं कि 'अब मैं तेरा रक्षक हूँ, तब तू व्यर्थ मत डरा कर ।'—ऐसे वाहनवाले भगवान् एकदन्त गणपतिकी सदा विजय हो ।

—[illegible]

श्रीगणेशजीके परिधान, आभूषण, आयुध, परिवार, पार्षद और वाहन आदि

(लेखक—श्रीरामलाल)

श्रीगणेशजी आद्य पूज्य देव हैं। उनका स्वरूप नितान्त अव्यक्त, अचिन्त्य और अपार है। उनका रूप परम आराध्य, असामान्य और ध्येय है। वे देवपूज्य, निरुपम और मङ्गलात्मा हैं। उनकी सूँड़ सिद्धिप्रदा है। उनका मुख छोटे हाथीके शिशुके मुखके समान बड़ा ही लावण्यमय है। वे सर्वदा प्रणम्य हैं—

नमो नमः सुरवरपूजिताङ्घ्रये
नमो नमो निरुपममङ्गलात्मने।
नमो नमो विपुलकरैकसिद्धये
नमो नमः करिकलभाननाय ते॥

(गणेशपुराण, उपा० ४६। २२०)

स्वरूपतः श्रीगणेशजीमे ही समस्त जगत्की प्रतीति होती है। समस्त जगत् उन्हींसे उत्पन्न होता है, उन्हींमे स्थित है और उन्हींमे लीन होता है। वे सत्त्व-रज-तम—तीनो गुणोंसे परे परब्रह्म परमात्मा है, निर्गुण है। वे स्थूल, सूक्ष्म और कारण—तीनों शरीरोसे परे निराकार है। उनके स्वरूपकी विज्ञप्ति है—

'त्वं प्रत्यक्षं ब्रह्मासि।' 'सर्वं जगदिदं त्वत्तो जायते। सर्वं जगदिदं त्वत्तस्तिष्ठति। सर्वं जगदिदं त्वयि लयमेष्यति। सर्वं जगदिदं त्वयि प्रत्येति।' 'त्वं गुणत्रयातीतः।'

(गणपत्यथर्वशीर्ष उपनिषद् ४—६)

स्वरूपसे उनका रूप अभिव्यक्त होता है। रूप-अभिव्यक्तिके सम्बन्धमे पुराणोमे अनेको कथाएँ उपलब्ध होती है, पर वे सब-की-सब समानरूपसे उनके 'गजमुख'-रूपका ही प्रतिपादन करती हैं। श्रीगणेशजीका सम्पूर्ण शरीर मनुष्याकार है, पर मुख हाथीकी मुखाकृतिका है—यही उनके रूपकी असाधारण विचित्रता है। श्रीगणेशपुराणमे उल्लेख है कि 'एक बार दैवयोगसे प्रलय हो गया। हवाके प्रचण्ड वेगसे पहाड़ टूट-टूटकर गिरने लगे। ससारके नष्ट हो जानेपर गणेशजी, जो सूक्ष्मरूपमे स्थित थे, प्रकट हो गये। ब्रह्मा, विष्णु और महेशने उनकी स्तुति की। उन्होंने करुणाके वशीभूत होकर उन त्रिदेवोके सम्मुख अपना रूप प्रकट किया'—

ततोऽतिकरुणाविष्टो लोकाध्यक्षोऽखिलार्थवित्॥
दर्शयामास तान् रूपं मनोनयननन्दनम्।
पादाङ्गुलीनखश्रीभिर्जितरक्ताब्जकेसरम्॥
रक्ताम्बरप्रभावात्तु जितसंध्यार्कमण्डलम्।
कटिसूत्रप्रभाजालैर्जितहेमाद्रिशेखरम्॥
खड्गखेटधनुःशक्तिशोभिचारुचतुर्भुजम्।
सुनासं पूर्णिमाचन्द्रजितकान्तिमुखाम्बुजम्॥
अहर्निशं प्रभायुक्तं पद्मचारुसुलोचनम्।
अनेकसूर्यशोभाजिन्मुकुटभ्राजिमस्तकम्॥
नानाताराङ्कितव्योमकान्तिजिदुत्तरीयकम्।
वराहदंष्ट्राशोभाजिदेकदन्तविराजितम्॥
ऐरावतादिदिक्पालभयकारिसुपुष्करम्।

(गणेशपुराण, उपा० १२। ३२—३८)

'श्रीगणेशजीका रूप ब्रह्मा, विष्णु और महेशके मन और नेत्रोंको आनन्दित करनेवाला था। उनके चरणोकी अङ्गुलियोंके नखोमे ऐसा अरुणिम प्रकाश था कि उसके आगे लाल कमलका केसर नितान्त महत्त्वहीन जान पड़ता था। उनके शरीरपर लाल रंगका वस्त्र ऐसा सुशोभित हो रहा था कि उसकी उपमामे संध्याकालीन रक्तवर्णका सूर्यमण्डल प्रभावहीन था। उनके कटिसूत्रकी प्रभाने सुमेरुगिरिके शिखरकी सुषमा जीत ली थी। उनके चारों सुन्दर हाथोमे खड्ग, खेट, धनुष और शक्ति सुशोभित हो रहे थे; उनकी नासिका सुन्दर थी; उनके मुख-कमलकी प्रभाने पूर्णिमाके चन्द्रमाकी कान्तिको निरर्थक कर दिया था। उनके मनोहर नेत्र-कमल रात-दिन विकसित रहते थे। उनका मस्तक अनेकों सूर्योंकी प्रभाको व्यर्थ कर देनेवाले चमकीले मुकुटसे उद्दीप्त हो रहा था। उनके उत्तरीयकी उपमामे असंख्य ताराओंसे शोभित आकाशकी सुषमा नहींके बराबर थी। उनके एक दाँतके सामने वराहभगवान्की दाढ़की कोई गणना ही नहीं थी। उनकी सूँड़ ऐरावत आदि दिग्गजोंके मनमे भय पैदा करनेवाली थी।'

श्रीगणेशका उपर्युक्त पौराणिक रूप 'गणपत्यथर्वशीर्ष'-द्वारा भी प्रतिपादित है—'वे एकदन्त हैं, चतुर्भुज हैं। उनके चारों हाथोंमे पाश, अङ्कुश, अभय और वरदमुद्रा है। वे मूषक-चिह्नकी ध्वजावाले हैं। उनका वर्ण रक्त है। वे लम्बोदर,

रक्तवस्त्रधारी और सूप-जैसे बड़े-बड़े कानोवाले हैं। उनके शरीरपर लाल चन्दनका लेप है। वे लाल-लाल पुष्पोंद्वारा पूजित हैं, भक्तोंपर कृपा करते हैं, जगत्‌के कारण और अच्युत हैं। वे सृष्टिके पहलेसे आविर्भूत है तथा प्रकृति और पुरुषसे परे हैं। उनका ध्यान करनेवाला योगी सब योगियोंमे श्रेष्ठ होता है—'

एकदन्तं चतुर्हस्तं पाशमङ्कुशधारिणम्।
अभयं वरदं हस्तैर्बिभ्राणं मूषकध्वजम्॥
रक्तं लम्बोदरं शूर्पकर्णकं रक्तवाससम्।
रक्तगन्धानुलिप्ताङ्गं रक्तपुष्पैः सुपूजितम्॥
भक्तानुकम्पिनं देवं जगत्कारणमच्युतम्।
आविर्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात् परम्॥
एवं ध्यायति यो नित्यं स योगी योगिनां वरः।

(गणपत्यथर्वशीर्ष उप० ९)

यह निर्विवाद और स्पष्ट है कि 'गणपत्यथर्वशीर्ष उपनिषद्'ने उनके स्वरूप और रूप—दोनोका प्रतिपादन किया है। इस औपनिषद रूपकी समन्वयात्मक अभिव्यक्तिका 'वराह-पुराण'मे बड़ा सुन्दर वर्णन मिलता है। देवता कैलास-पर्वतपर शकरजीके पास गये और उन्होने शिवजीसे निवेदन किया कि 'असत् कार्य करनेवालोके लिये आप विघ्न उपस्थित करनेमे समर्थ हैं।' शकरजी भगवती उमाकी ओर देखने लगे। उन्होने आकाशमे एक स्वरूप देखा और वे हँस पड़े। भगवती उमा उस रूपको अपलक देखती रहीं। नेत्रोको मोहित करनेवाले सुन्दर गणेशको देखकर रुद्रने शाप दे दिया—'कुमार! तुम्हारा मुख हाथीके मुखके समान होगा, उदर लंबा होगा और तुम सर्पका यज्ञोपवीत धारण करोगे।'

ततः शशाप तं देवो गणेशं परमेश्वरः।
कुमार गजवक्त्रस्त्वं प्रलम्बजठरस्तथा।
भविष्यसि तथा सर्पैरुपवीतगतिर्ध्रुवम्॥

(वराहपुराण २३। १८)

श्रीगणेशजीके रूप-सौन्दर्यका महत्त्वाङ्कन असाधारण बुद्धिसम्पन्न प्राणीके ही वशकी बात है। राजा वरेण्यने उनके रूपका दर्शन किया था। वे कहते हैं—

अनाद्यनन्तं लोकादिमनन्तभुजशीर्षकम्।
प्रदीप्तानलसंकाशमप्रमेयं पुरातनम्॥
किरीटकुण्डलधरं दुर्निरीक्ष्यं मुदावहम्।
एतादृशं निरीक्षे त्वां विशालवक्षसं प्रभुम्॥

(गणेशगीता ८। ११-१२)

'हे देव! आप अनादि, अनन्त, लोकोके आदिकारण, अनन्त भुजाओ और सिरोसे युक्त, जलती हुई अग्निके समान प्रकाशयुक्त, अप्रमेय और पुरातन पुरुष हैं। आपने किरीट और कुण्डल धारण कर रखे है, आपका रूप-दर्शन सहज-सुलभ नहीं है। आप आनन्द प्रदान करनेवाले हैं, आपका वक्षःस्थल विशाल है; ऐसे स्वरूपवाले आप स्वामीको मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ।'

प्रमुख पुराणोके रचयिता महर्षि व्यासजीने चार श्लोकोमे भगवान् गणेशके रूप-सौन्दर्यका अमित मनोमोहक चित्रण प्रस्तुत किया है। यह उनके पौराणिक रूपका भव्य वर्णन है। महर्षि व्यासकी उक्ति है कि 'मैं विशालकाय, तपाये हुए स्वर्ण-सरीखे प्रकाशवाले, लम्बोदर, बड़ी-बड़ी आँखोवाले श्रीएकदन्त गणनायककी वन्दना करता हूँ। जिन्होने मौञ्जी-मेखला, कृष्ण-मृगचर्म तथा नाग-यज्ञोपवीत धारण कर रखे हैं, जिनके मौलिदेशमे बालचन्द्र सुशोभित हो रहा है, मैं उन गणनायककी वन्दना करता हूँ। 'जिन्होने अपने शरीरको विविध रत्नोसे अलकृत किया है, अद्भुत माला धारण की है, जो स्वेच्छासे अनेक रूपोमे अभिव्यक्त होते हैं, उन गणनायककी मै वन्दना करता हूँ। जिनका मुख हाथीके मुखके समान है, जो सर्वदेवोमे श्रेष्ठ हैं, सुन्दर कानोसे विभूषित हैं, उन पाश और अङ्कुश धारण करनेवाले श्रीगणपतिदेवकी मै वन्दना करता हूँ।'

एकदन्तं महाकायं तप्तकाञ्चनसंनिभम्।
लम्बोदरं विशालाक्षं वन्देऽहं गणनायकम्॥
मुञ्जकृष्णाजिनधरं नागयज्ञोपवीतिनम्।
बालेन्दुकलिकामौलिं वन्देऽहं गणनायकम्॥
चित्ररत्नविचित्राङ्गं चित्रमालाविभूषणम्।
कामरूपधरं देवं वन्देऽहं गणनायकम्॥
गजवक्त्रं सुरश्रेष्ठं चारुकर्णविभूषितम्।
पाशाङ्कुशधरं देवं वन्देऽहं गणनायकम्॥

(पद्मपुराण, सृष्टि० ६६। २-३, ६-७)

श्रीगणेशके श्रीविग्रहका ध्यान परम माङ्गलिक और विघ्नहर है। उनका ध्यान करते ही, उनके सम्मुख होते ही समस्त विघ्न दूर हो जाते हैं। महाकवि केशवदासने उनके माङ्गलिक रूपका वर्णन यो किया है—

गजमुख सनमुख होत ही विघन विमुख ह्वै जात।
ज्यों पग परत पयाग-मग पाप-पहार बिलात॥
(कविप्रिया १ । १)

श्रीगणेशजीके रूपका ध्यान करते ही उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग, परिधान, अङ्गराग, अलंकार और आभूषण आदि विचारके स्तरपर चित्रित हो उठते हैं।

अङ्ग-प्रत्यङ्ग, वस्त्र, अङ्गराग, अलंकार-आभूषण

श्रीगणेशजीके अनेक विग्रह उपलब्ध होते हैं। वे बालगणपति, तरुणगणपति, भक्तिविघ्नेश्वर, लक्ष्मीगणपति, महागणपति, उच्छिष्टगणपति, हेरम्बगणपति, प्रसन्नगणपति, ध्वजगणपति, हरिद्रागणपति, एकदन्त, केवलगणपति आदि अनेकों रूपोंमें अभिव्यक्त निरूपित किये गये हैं। कहीं वे चतुर्भुज हैं तो कहीं द्विभुज, षोडशभुज, अष्टभुज एवं षड्भुज रूपमें चित्रित हैं। उनके शरीरका वर्ण कहीं अरुणोदयकालीन सूर्यके रंगका बताया गया है तो कहीं वे शारदीय चन्द्रमाके समान श्वेत वर्णवाले अङ्कित हैं। कहीं वे स्वर्णपिङ्गल हैं तो कहीं श्वेत और रक्तवर्णवाले चित्रित किये गये हैं। हेरम्बगणपति सिंहपर स्थित एवं पाँच मुखवाले अङ्कित किये गये हैं।

'सिंहोपरि स्थितं देवं पञ्चवक्त्रं गजाननम्।'
(शिल्परत्न २० वाँ अध्याय)

श्रीतत्त्वनिधि, मन्त्रमहोदधि, मन्त्ररत्नाकर, रूपमण्डन, शिल्परत्न, मन्त्रमहार्णव, अंशुमदभेदागम, उत्तरकामिकागम, सुप्रभेदागम आदि अनेक ग्रन्थोंमें श्रीगणेशजीके विभिन्न रूपोंके ध्यानका वर्णन प्राप्त होता है। 'वे प्रकृतिस्वरूप हैं, महत्तत्त्वरूप हैं, पृथ्वी और जलके रूपमें अभिव्यक्त हैं, दिगीशादि-रूपमें प्रकट हैं; असत् और सत्—दोनों ही उनके स्वरूप हैं; वे जगत्‌के कारण हैं; सदा विश्वरूप—सर्वत्र व्यापक गणेशजीको हम सब नमस्कार करते हैं।' यथा—

प्रधानस्वरूपं महत्तत्त्वरूपं धरावारिरूपं दिगीशादिरूपम्।
असत्सत्स्वरूपं जगद्धेतुभूतं सदा विश्वरूपं गणेशं नताः स्मः॥
(गणेशपुराण, उपा० १३ । १०)

सृष्टिकर्ता ब्रह्माने श्रीगणेशके सर्वाङ्गका बड़ा मनोरम ध्यान किया है—'मोतियों और रत्नोंसे उनका मुकुट जटित है, सम्पूर्ण शरीर लाल चन्दनसे चर्चित है, उनके मस्तकपर सिन्दूर शोभित है, गलेमें मोतियोंकी माला है, वक्षःस्थलपर सर्प-यज्ञोपवीत है, बाहुओंमें बहुमूल्य रत्नजटित बाजूबंद हैं; उनकी अंगुलियोंमें रत्नमणिजटित अँगूठी है; उनके पेटमें उदरकी नाभि चारों ओरसे नागोंसे वेष्टित है, रत्नजटित करधनी है, स्वर्णमुकुटमणि लाल वस्त्र है, भालपर चन्द्रमा है, दाँत सुन्दर हैं और उनके हाथ शोभामय हैं।'
(द्रष्टव्य—गणेशपुराण, उपा० १८ । २१-२९)

भगवान् गणेशके रूपका पार नहीं पाया जा सकता। गणेशमहिम्नःस्तोत्रके रचयिता महामति पुष्पदन्तको भी अन्तमें केवल इतना ही कहकर संतोष करना पड़ता है कि वे अनेक रूपोंमें अभिव्यक्त हैं—

'तथा नानारूपो विविधवदनः श्रीगणपतिः।'
(गणेशमहिम्नःस्तोत्र ५)

श्रीगणेशजी एकदन्त एवं महाकाय—विशाल शरीरवाले हैं। उनका रूप तप्तकाञ्चनकी प्रभाके समान प्रकाशित है—

'एकदन्तं महाकायं तप्तकाञ्चनसंनिभम्।'
(पद्मपुराण, सृष्टि० ६६ । ७)

उनके शरीरपर नवकुंकुमका अङ्गराग शोभित है—

'कृताङ्गरागं नवकुङ्कुमेन……।'
(शारदातिलक १३ । १३०)

'शिवपुराणमें उन्हें विशालकाय, सर्वाभरणभूषित और रक्तवर्णका चित्रित किया गया है—

'रक्तवर्णं महाकायं सर्वाभरणभूषितम्।'
(कैलाससंहिता ७ । १६)

उनका वस्त्र रक्तवर्णका बताया गया है तथा कञ्चुक पीला कहा गया है। वे किरीट-मुकुटसे जाज्वल्यमान हैं।

रक्तवस्त्रधरं चाथ श्यामाभं कनकप्रभम्।
पीतकञ्चुकसंछन्नं किरीटमुकुटोज्ज्वलम्॥
(उत्तरकामिकागम, पञ्चनवतितम पटल)

उनका वस्त्र पीले रंगका और रेशमी है—

'पीतकौशेयवसनो हाटकाङ्गदभूषण।'
(गणेशपुराण, उपा० २० । ३२)

'ब्रह्मवैवर्तपुराण'के गणपति-खण्डमें वर्णन उपलब्ध होता है कि 'गणेशजीको वह्निशुद्ध वस्त्र अग्निसे मिला था'—

'वह्निशुद्धं च वसनं ददौ तस्मै हुताशनः।'
(१३ । ९)

श्रीगणेशजीके अङ्गपर शोभित उत्तरीय अनेक तारागणोसे युक्त व्योमकी शोभासे भी श्रेष्ठ कहा गया है—

'नानाताराङ्कितव्योमकान्तिजिदुत्तरीयकम् ।'
(गणेशपुराण, उपा० १२ । ३७)

श्रीगणेशजी मुञ्ज और काले मृगका चर्म भी धारण करते हैं—

'मुञ्जकृष्णाजिनधरं' (पद्मपुराण, सृष्टि० ६६ । ३)

श्रीगणेशजीके समस्त अङ्ग-प्रत्यङ्ग तथा अलंकार-आभूषण आदि उन्हींके स्वरूप होनेके नाते अपने-आपमे सम्पूर्ण हैं, उन्हींके अभिव्यक्त पूर्ण विग्रह हैं । उन्हे अलकार-आभूषणोकी प्राप्ति सूर्य, चन्द्र, वायु, लक्ष्मी, सावित्री और भारती आदिसे हुई है, ऐसा विवरण ब्रह्मवैवर्तपुराणके गणपति-खण्डके तेरहवे अध्यायके ८ वेंसे ११ वें तकके श्लोकोमे मिलता है । उनके आभूषण स्वर्णनिर्मित चित्रित किये गये है । वे हेमभूषणो तथा सुनहरे रगके वस्त्रोसे अलंकृत होकर उदयकालके सूर्यके समान दीप्तिमान् दीख पड़ते हैं ।

'.....हेमभूषाम्बराढ्यं
गणेशं समुद्यद्दिनेशाभमीडे ।'
(मन्त्रमहोदधि)

श्रीगणेशजीके समस्त अङ्ग-प्रत्यङ्ग सर्वाभरणभूषित है—

'चिंतामणिमयजटित हेमभूषण गण वजत ।'
(महाकवि गुमानमिश्रकृत नैषध-काव्य—भाषा १ । १)

उनके चरण-कमलकी महिमाका वर्णन उन्हींकी कृपासे सम्भव है । उनकी चरणधूलि, जो इन्द्रके मस्तकके मन्दार-पुष्पके मकरन्दकणोके सम्मिश्रणसे अरुणवर्णकी हो गयी है, समस्त विघ्नोका नाश कर देती है । यथा—

देवेन्द्रमौलिमन्दारमकरन्दकणारुणाः ।
विघ्नान् हरन्ते हेरम्बचरणाम्बुजरेणवः ॥
(वंगला 'स्तवकवचमाला')

श्रीगणेशजीके चरणोकी महिमाको व्यक्त करते हुए प्रार्थना की गयी है कि 'हे देव ! आपके दोनो चरणोमे मन लगाकर मनुष्य विघ्न और पीड़ासे उसी तरह संतप्त नहीं होता, जिस तरह प्रकाशित सूर्य-बिम्बमे स्थित प्राणी कभी अन्धकार-बाधासे ग्रस्त नहीं होता ।'

त्वदीये मनः स्थापयेदङ्घ्रियुग्मे
जनो विघ्नसंघान्न पीडां लभेत ।
लसत्सूर्यबिम्बे विशाले स्थितोऽयं
जनो ध्वान्तबाधां कथं वा लभेत ॥
(गणेशपु०, उपा० १३ । १३)

श्रीगणेशजीने चरणोमे शोभित मञ्जीरको पद्मालया लक्ष्मीसे प्राप्त किया—

'मञ्जीरं चापि केयूरं ददौ पद्मालया मुने ।'
(ब्रह्मवैवर्त०, गणपति० १३ । १०)

उनके चरण बजते नूपुरोसे सदा शोभित रहते है—

'किङ्किणीगणरणितस्तव चरण. ।'
(गणेशपु०, उपा० ४६ । २२३)

उनके चरणोमे ध्वजा, अङ्कुश, ऊर्ध्वरेखा, कमल आदि चिह्नित रहते हैं । भगवती पार्वतीको उपर्युक्त चिह्नोसे युक्त श्रीगणेशजीके चरण-कमलका दर्शन प्राप्त हुआ था—

'ध्वजाङ्कुशोर्ध्वरेखाब्जचिह्नितं पादपङ्कजम् ।'
(गणेशपु०, क्रीडा० ८१ । ३४)

श्रीगणेशजीके चरण और उनमे शोभित तथा बजते नूपुरोका वर्णन करना बडा ही कठिन है; क्योंकि वे अनन्त हैं, असख्य है । साक्षात् शिवजीका उनके सम्बन्धमे कथन है—

'योऽनन्तशीर्षानन्तश्रीरनन्तचरण. स्वराट् ।'
(गणेशपु०, क्रीडा० ७९ । २७)

श्रीगणेशजीके चरण और उनमे अलंकृत आभूषणोंका वर्णन उनकी कृपासे ही सम्भव है । ऋषि-मुनि और संत-महात्मा तथा रससिद्ध कवीश्वर ही चरण और उनमे शोभित आभूषणोकी तत्त्वानुभूति कर पाते हैं । ज्ञानेश्वर महाराजने श्रीमद्भगवद्गीताकी स्वरचित टीका—'ज्ञानेश्वरी'के पहले अध्यायमे श्रीगणेशजीके रूपके माङ्गलिक ध्यानमें सम्पूर्ण साहित्यको उनकी मनोहर मूर्ति स्वीकार किया है । महाराजकी उक्ति है—

'हे शब्दब्रह्म अशेष । ते चि मूर्ति सुवेष ॥'
(ज्ञानेश्वरी १ । ३)

महाराजने शब्दब्रह्म—साहित्यस्वरूप श्रीगणेशके ओंकार-रूपका विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए उनके दोनो चरणोंको 'अकार' बताया है, उनका विशाल उदर 'उकार' है तथा

उनके मस्तकका 'महामण्डल' 'मकार' है। अकार, उकार और मकारके योगसे ॐकार सिद्ध होता है, जिसमें समस्त साहित्य-संसार समाविष्ट है—

अकार चरण युगुल । उकार उदर विशाल ॥
मकार महामण्डल । मस्तकाकारें ॥
हे तिन्ही एक वटले । तें थे शब्दब्रह्म कवळलें ॥
(ज्ञानेश्वरी १ । १९-२०)

संत समर्थ रामदासजीने 'दासबोध'-ग्रन्थमें श्रीगणेशजीके सगुण रूपका चिन्तन करते हुए उनके चरण और उनमें शोभित नूपुरों और घुँघुरुओंका बड़ा भव्य चित्रण किया है—

रुणझुणी वाजती नेपुरें । वांकी बोभाटती गजरें ॥
घागरियासहित मनोहरें । पाउलें दोनी ॥
(दासबोध १ । २ । २३)

आशय यह है कि 'श्रीगणेशके चरणोंमें नूपुर रुनझुन बज रहे हैं और पैंजनीकी झनकार हो रही है। घुँघुरुओंसे दोनों चरण सुशोभित हैं।'

श्रीगणेशजीका कटिदेश बड़ा रमणीय है। कमरमें पीताम्बर शोभित है। 'दासबोध'में उनके कटिदेश, उदर, नाभि-कमल तथा आभरणकी मनोरम झाँकी मिलती है। तोंदपर साँपका पट्टा पड़ा है, वह थलथलाती है। साँपका फन फड़कता है और वह फुफकारता है, फन हिलाता है, जीभ लपलपाता है, नाभि-कमलपर कुण्डलित है तथा एकटक देखता है। अनेक प्रकारके फूलोंकी माला गलेसे उस नागतक लटकती है तथा हृदय-कमलपर रत्नजटित पदक है—

चतुर्भुज लम्बोदर । कांसे कासिला पीतांबर ॥
फडके दोंदिचा फणीवर । धुधुकार टाकी ॥
डोलवी मस्तक जिव्हा लाली । धाल्हनि बैसला वेंटाली ॥
उभारोनि नाभिकमली । टकमकां पाहे ॥
नाना याति कुसुममाला । व्यालपरियंत रुलती गळां ॥
रत्नजडित हृदय कमला । वरी पदक शोभे ॥
(दासबोध १ । २ । १७—१९)

श्रीज्ञानेश्वरने साहित्यमूर्ति गणेशजीके रूप-वर्णनमें कहा है कि 'व्यास आदि कवियोंका प्रतिभारूपी गुण ही जरीदार पटका अथवा कमरबंद है और इस पटकेपर घुँघुरुओंकी झालर झलकती है'—

तेथ व्यासादिकांचि या मती । तेचि मेखला मिरवती ॥
चोखालपणें झलकती । पल्लव सडका ॥
(ज्ञानेश्वरी १ । ९)

श्रीगणेशजीके बड़े उदरकी नाभिके चारों ओर सर्प आवृत है तथा विविध रत्नजटित कटिसूत्रसे उनकी शोभा समलंकृत है—

नागविभूषितकुक्षिशोभि महोदरम् ॥
विविधरत्नजटितकटिसूत्रविभूषितम् ।
(गणेशपुराण, उपा० १४ । २३-२४)

श्रीगणेशजीका कटिसूत्र स्वर्णनिर्मित है—

'कटिसूत्रं कनकमयम् ।' (गणेशपु०, उत्त० ८० । ३३)

गणेशपुराणके क्रीडाखण्डमें वर्णन मिलता है कि देवताओंकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर गणेशजीने उनको दर्शन दिया था। उनके उदरमें व्याल आवृत था—

'व्यालबद्धोदरं विभुम् ।' (गणेशपु०, क्रीडा० ७८ । ३१)

श्रीगणेशजीका सर्पवेष्टित तथा उनके लम्बोदर होनेके अनेक प्रसङ्ग पुराणोंमें उपलब्ध होते हैं। ब्रह्मपुराणमें वर्णन मिलता है कि शिवजीने गणेशका नाम 'लम्बोदर' रख दिया था। यद्यपि गणेशजी पूर्ण तृप्त थे, तथापि अधिक देरतक माताके स्तनोंका दूध इसलिये पीते रहे कि कहीं भैया कार्तिकेय भी आकर न पीने लगें। उनकी बुद्धिमें बालस्वभावके कारण भाईके प्रति ईर्ष्या भर गयी थी। यह देखकर भगवान् शंकरने विनोदमें कहा—"विघ्नराज ! तुम बहुत दूध पीते हो। इसलिये 'लम्बोदर' हो जाओ।" ऐसा कहकर उन्होंने श्रीगणेशजीका नाम 'लम्बोदर' रख दिया।"

पपौ स्तनं मातुरथापि तृप्तो यो भ्रातृमात्सर्यकषायबुद्धिः ।
लम्बोदरस्त्वं भव विघ्नराज लम्बोदरं नाम चकार शम्भुः ॥
(ब्रह्मपुराण ११४ । ११)

महर्षि व्यासने लम्बोदर एवं विशालाक्षरूपमें श्रीगणेशजीकी स्तुति की है—

'लम्बोदरं विशालाक्षं वन्देऽहं गणनायकम् ।'
(पद्मपुराण, सृष्टि० ६६ । २)

श्रीगणेशजीका वक्षःस्थल स्थूल-विशाल है। पार्वतीजीके पूजनसे प्रसन्न होकर गणेशजी प्रकट हो गये। पार्वतीने उनके स्थूल वक्षका दर्शन किया—

.........'स्थूलवक्षसमीश्वरम् ।' (गणेशपुराण, उत्तर० ८१ । ३३)

उनके वक्षःस्थलपर नागयज्ञोपवीत शोभित रहता है—

'सर्पयज्ञोपवीतिनम् ।' (गणेशपुराण, उपा० १४ । २२)

श्रीगणेशजीके शुक्ल यज्ञोपवीतका वर्णन 'उत्तर-कामिकागम'मे उपलब्ध होता है—

'शुक्लयज्ञोपवीतं च सर्वाभरणभूषितम् ।'

(पञ्चचत्वारिंशत्तम पटल)

उनके कण्ठमें रत्न और मणिजटित मालाएँ तथा पुष्पोंकी मालाएँ शोभित है। उन्हें कण्ठभूषण सावित्रीसे मिला तथा हारकी प्राप्ति भारतीसे हुई—

'कण्ठभूषां च सावित्री भारती हारमुज्ज्वलम् ।'

(ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपति० १३ । ११)

ब्रह्माने मोतियोंकी मालासे विलसित श्रीगणेशके कण्ठका ध्यान किया था—

'मुक्तादामसलसत्कण्ठम् ।' (गणेशपुराण, उपा० १४ । २२)

समर्थ रामदासजीने गणेशजीके गलेमे शोभित पुष्पमाला-का वर्णन किया है—

'नाना याति कुसुममाला''''रुलती गलां ।'

(दासबोध १ । २ । १९)

श्रीगणेशजी अपने कण्ठमे माणिक्यमाला धारण करते हैं। इसको उन्होंने चन्द्रमासे प्राप्त किया था—

'माणिक्यमालां चन्द्रश्च'

(ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपति० १३ । ८)

वे मुण्डोंकी माला भी धारण करते हैं। ऐसा वर्णन मिलता है कि श्रीनारदकी सम्मतिसे त्रिपुरासुरको हरानेके लिये शिवजीने दण्डकवनमे घोर तप किया था। उनके मुखसे एक श्रेष्ठ पुरुष निकलकर प्रकट हो गया। शिवजीने देखा कि उसके पाँच मुख है, दस हाथ हैं, ललाटमे चन्द्रमा है, वह चन्द्रमाके समान प्रभासे युक्त है, उसने मुण्डोंकी माला पहन रक्खी है, उसके सर्पोंके गहने हैं एव वह मुकुट तथा बाजूबंदसे भूषित है। वे पञ्चमुखविनायक थे—

ततस्तस्य मुखाम्भोजाद्विनिर्गतस्तु पुमान् परः ॥
पञ्चवक्त्रो दशभुजो ललाटेन्दुः शशिप्रभ. ।
मुण्डमालः सर्पभूषो मुकुटाङ्गदभूषणः ॥

(गणेशपु०, उपा० ४४ । २५-२६)

श्रीव्यासजीने 'चित्रमालाविभूषणम्' कहकर उनकी वन्दना की है। आशय यह है कि वे अनेक प्रकारकी मालाएँ पहनते हैं—

चित्ररत्नविचित्राङ्गं चित्रमालाविभूषणम् ।
कामरूपधरं देवं वन्देऽहं गणनायकम् ॥

(पद्मपुराण, सृष्टि० ६१ । ६)

महाकवि चन्दबरदाईने अपने 'पृथ्वीराजरासो'मे श्रीगणेशस्तवनके प्रसङ्गमे उनको गुञ्जाहार धारण करनेवालेके रूपमे चित्रित किया है—

सीस जा मद गंध राग रुचियं, अलि भूव आच्छादिता ।
गुंजाहार गुनंजयाय गुन जा, रुञ्झा पया भासिता ॥
अग्रे जा श्रुति कुंडलं करि कर !, थुंदीर उद्धारयं ।
सोऽयं पातु गणेस-सेस सफलं प्रिथराज काव्यं कृते ॥

(१ । १४)

'भ्रमरोने जिनके मद-गन्धयुक्त भालस्थल और भ्रुकुटीको अनुराग और रुचिसे आच्छादित किया है, जिनके गलेमें गुञ्जाहार शोभित है, जो अपने गुणोंसे गुणियोंको वशमे कर लेते हैं, जिनके पैरोमे रुञ्झा—एक प्रकारका आभूषण शोभित है, कानोंमे कुण्डल है, हाथीकी सूँड़के समान जिनकी उन्नत सूँड़ है, ऐसे प्रलयकालमे भी स्थित रहनेवाले श्रीगणेश पृथ्वीराज-काव्यकी रचनामे मेरे सहायक बनें।'

गणेशजीके अनन्त चरण है, अनन्त सिर हैं तो अनन्त कर भी हैं, उनके ये कर—हाथ उपयुक्त आभरणों, अलकारों और आयुधो तथा मुद्राओंसे विभूषित हैं—

'पाशाङ्कुशेष्टदशनान् दधानं करपङ्कजै. ॥'

(शिवपुराण, कैलाससहिता ७ । १६)

उनके हस्तके सम्बन्धमे ध्यान करनेके लिये अनेक प्रकारके विवरण 'श्रीतत्त्वनिधि' आदि ग्रन्थोमे उपलब्ध होते हैं। श्रीतरुणगणपतिके ध्यानमे उल्लेख है—

पाशाङ्कुशापूपकपित्थजम्बू-
स्वदन्तशालीक्षुमपि स्वहस्तै. ।
धत्ते सदा यस्तरुणारुणाभः
पायात् स युष्मांस्तरुणो गणेशः ॥

(श्रीतत्त्वनिधि)

हेरम्ब-गणपतिके ध्यानमें अभय और वरद मुद्रायुक्त हस्तका वर्णन मिलता है—

अभयवरदहस्तः पाशदन्ताक्षमाला-
सृणिपरशु दधानो मुद्गरं मोदकं च ।
फलमधिगतसिंहः पञ्चमातङ्गवक्त्रो
गणपतिरतिगौरः पातु हेरम्बनामा ॥

(श्रीतत्त्वनिधि)

बोधरूपी मद-रसका पान करते हैं। तत्त्वार्थरूपी प्रवाल-से चमकनेवाले द्वैत और अद्वैत दोनों गण्डस्थल हैं। ये दोनों बहुत ही सनिकट होनेके कारण मिलकर प्रायः एक-से हो गये हैं। ज्ञानरूपी मकरन्दसे ओतप्रोत दसों प्रमुख उपनिषदें ही मधुर सुगन्धवाले फूलोंके मुकुटके समान मस्तकपर शोभित हैं'—

देखा विवेकवंतु सुविमळु तोचि शुंडादंडु सरळु ॥
जेथ परमानन्दु केवळु ब्रह्मसुखाचा ॥
तरी संवादु तोचि दशनु जो समता शुभ्रवर्णु ॥
देवो उन्मेष सूक्ष्मेक्षणु विघ्नराजु ॥
मज अवगमलिया दोनी मीमांसा श्रवणस्थानीं ॥
बोधमदामृत मुनी अलीसेविती ॥
प्रमेय प्रवाळ सुप्रभ द्वैताद्वैत तेचि निकुंभ ॥
सरिसे एकवटत इभ मस्तकावरी ॥
उपरि दशोपनिषदें जियें उदारें ज्ञान मकरन्दें ॥
तियें कुसुमें मुगटीं सुगंधें शोभती भलीं ॥

(१ । १४–१८)

मतङ्गानन श्रीगणेशजीकी सूँड़ और उनके दाँतकी महिमा अकथनीय है। महाकवि गुमानमिश्रने अपने नैषधकाव्य (भाषा)मे भगवान् मतङ्गाननका स्तवन किया है—

गान सरस अलि करत परस मद मोद रंग रचि।
उघटत ताल रसाल करन चल चाल चोप सचि॥
चिंतामणिमय जटित हेम भूषण गण बज्जत।
चलत लोलगति मृदुल अंग नव तुंड बलज्जत॥

लखि प्रणति समय सुख तात को विहँसि मातु लिय लाय उर।
जय जय मतंग-आनन अमल जय जय जय तिहुँ लोक गुर॥

(१ । १)

श्रीगणेशजीकी सूँड ऐरावत आदि दिक्पालोंके मनमें भी भय पैदा कर देती है—

'ऐरावतादिदिक्पालभयकारिसुपुष्करम्।'

(गणेशपु०, उपा० १२ । ३८)

श्रीगणेशजी अपनी सूँड़से विनोद करके ब्रह्मा आदिके मनमे आनन्दका सृजन करते हैं। श्रीब्रह्माजीको स्वप्नमें प्रलयका दर्शन हुआ। उन्होंने जलमें वटवृक्ष देखा। उसके पत्तेपर बालगणेश दीख पड़े; उन्होंने अपनी सूँड़से ब्रह्माजीपर जल फेंका; वे गणेशजीके इस विनोदसे चिन्तित तथा आनन्दित होकर जोर-जोरसे हँस उठे। ब्रह्माकी उक्ति है—

एकदन्तं नरवपुर्गजास्यं तेजसा ज्वलत्।
दृष्ट्वैवं तर्कयामास बालकं कथमत्र वै॥
पुष्करेण च बालोऽसौ जलं मन्मस्तकेऽक्षिपत्।
ततोऽहमाजहासोच्चैश्चिन्तानन्दसमन्वितः॥

(गणेशपुराण, उपा० १५ । ६-७)

श्रीगणेशजीकी सूँड़ कमल-मालासे अलंकृत कही गयी है। इन्द्रके तपसे प्रसन्न होकर निखिलदेवमूर्ति सिन्दूर-शोभित गणेशजीने उनके समक्ष अपना रूप प्रकट किया। उनका शुण्ड-दण्ड बहुत मोटा और लंबा था। उनके नेत्र कमलके समान थे। भालदेश कमलकी मालासे सुशोभित था—

यः पुष्कराक्षः पृथुपुष्करोऽपि
बृहत्करः पुष्करमालिभालः।
आविर्बभूवाखिलदेवमूर्तिः
सिन्दूरशाली पुरतो मघोनः॥

(गणेशपु०, उपा० ३४ । ५)

अक्षरगणपतिके रूपके ध्यानमें उनकी सूँड़ मोदकसे युक्त निरूपित की गयी है—

'पुष्करैर्मोदकं चैव धारयन्तमनुस्मरेत्।'

(श्रीतत्त्वनिधि)

महाकवि रत्नाकरने श्रीगणेशजीकी सूँड़का कार्य निरूपित करते हुए कहा है कि 'उनकी सूँड़के संचालनसे दुःख-दारिद्र्य विनष्ट हो जाते हैं, पाप और दुर्भाग्य डरकर मार्गमे अलग हट जाते हैं। अपने भक्तोंको आनन्दित करनेके लिये गणेश अपनी माँकी गोदसे मचलकर उतर पड़ते हैं'—

केते दुख दारिद बिलात सुंड-चालन मैं,
कसमस हालन मैं केते पिचले परैं।
कहै रतनाकर दुरित दुरभाग भागि,
मग तैं बिलग बेगि त्रासनि चले परैं॥
देखि गननाथ जू अनाथनि कौं जोरे हाथ,
थपकत माथहूँ न नैंकु निचले परैं।
मोदक कै मोद देन काज जब भक्तनि कौं
गोद तैं अम्बा के मचलाइ बिचले परैं॥

(गणेशाष्टक ७)

श्रीगणेशजीको 'वक्रतुण्ड' कहा जाता है। 'वक्र' मायारूप स्वीकृत है और 'तुण्ड' ब्रह्मवाचक। उनके 'वक्रतुण्ड' कहे जानेके कारणका उल्लेख 'मुद्गलपुराण'में हुआ है—

> मायासुखं मोहयुतं तस्माद् वक्रमिति स्मृतम्।
> तुण्डं ब्रह्म तयोर्योगे वक्रतुण्डोऽयमुच्यते॥
> कण्ठाधो मायया युक्तो मस्तकं ब्रह्मवाचकम्।
> वक्राख्यं तस्य विघ्नेश तेनायं वक्रतुण्डकः॥

"मायामय सुख मोहयुक्त है; अतः वह 'वक्र' कहा जाता है, 'तुण्ड'-शब्द ब्रह्मका बोधक है। उन दोनोंका योग होनेसे ये गणेश 'वक्रतुण्ड' कहलाते हैं। उनके कण्ठके नीचेका भाग मायायुक्त—'वक्र' है और तुण्ड (मस्तक) ब्रह्मवाचक है; इस कारण ये 'वक्रतुण्ड' हैं।"

भगवान् गजाननकी सूँड़ दाहिने तथा बायें—दोनों ओर मुड़ी हुई निरूपित की जाती है। विशेषतः यह बायें ओर ही मुड़ी रहती है। श्रीगोपीनाथ रावने अपनी पुस्तक 'एलीमेंट्स् ऑफ हिंदू आइकोनोग्राफी' के प्रथम खण्डमे स्वीकार किया है कि श्रीगणेशजीकी सूँड़ जब दक्षिण ओर मुड़ी रहती है, तब उन्हें तमिल भाषामें 'वलम्बुरि' कहा जाता है और बायीं ओर मुड़ी रहनेपर वे 'इडम्बुरि विनायक' कहे जाते हैं। 'वलम्'को दक्षिण और 'इडम्'को बायाँ कहा जाता है।

श्रीगणेशजी 'एकदन्त' कहे जाते हैं। उनका मुख एक ही दाँतसे अलंकृत है। एकदन्त-गणपति प्रकृति-पुरुषकी एकताके प्रतीक अथवा द्योतक हैं। उनके एकदन्त होनेका तात्त्विक निरूपण मुद्गलपुराणमें उपलब्ध होता है। 'एक' मायाका प्रतीक है और 'दन्त' मायाचालक सत्ताका सूचक है।

महाकवि रत्नाकरने अपने एक कवित्तमें श्रीगणपतिके एकदन्तकी महिमाका वर्णन करते हुए कहा है कि 'एक दाँत सारे पापोंका नाश करता है, दूसरे दाँतकी सत्ताकी आवश्यकता ही नहीं रह जाती'—

> एकै दंत सकल दुरंतनि कौ अंत करै,
> 　　दंत दूसरे की तंत तनक रही नहीं॥
> 　　　　(गणेशाष्टक ५)

महाकवि केशवदासने श्रीशिवजीके पुत्र गणेशजीके दाँतकी कीर्तिका वर्णन किया है और उसके विघ्नविनाशक रूपपर प्रकाश डाला है—

> सत्त्व सत्त्व गुन को कि सत्य ही की सत्ता सुभ,
> 　　सिद्धि की प्रसिद्धि की सुबुद्धि-वृद्धि मानिये।
> ज्ञान ही की गरिमा कि महिमा विवेक की कि
> 　　दरसन ही को दरसन उर आनिये॥
> पुन्य को प्रकास वेद-विद्याको विलास किधौं,
> 　　जसको निवास 'केसोदास' जग जानियै।
> मदन-कदन-सुत-बदन-रदन किधौं,
> 　　बिघन-बिनासनकी बिधि पहिचानियै॥
> 　　　　(कविप्रिया १।३)

श्रीगणेशजीके एकदन्त होनेकी अनेक कथाएँ उपलब्ध होती हैं। उनमेंसे दो कथाएँ दी जाती हैं। एक कथामें यह बताया गया है कि गणेशजीसे गजासुर दैत्यका युद्ध हुआ; इसमें उनका दाहिना दाँत टूट गया। उन्होंने उससे गजासुरपर प्रहार किया और वह मूषक बनकर भागने लगा। गणेशजीने उसको पकड़कर अपना वाहन बना लिया। दूसरी प्रमुख कथा परशुरामजीसे सम्बन्धित है। ब्रह्मवैवर्त और ब्रह्माण्डपुराणमें इसका वर्णन मिलता है। श्रीविष्णुने भगवान् शंकरसे कहा कि "परशुरामजीके फरसेसे जब इनका (श्रीगणेशजीका) एक दाँत टूट जायगा, तब ये अवश्य ही 'एकदन्त' नामवाले होंगे।"

> परशुना परशुरामस्य यदैकदन्तखण्डनम्।
> भविष्यति निश्चयेन चैकदन्ताभिधः शिशुः॥
> 　　　　(ब्रह्मवैवर्त०, गणपति० ६।९६)

ब्रह्मवैवर्तपुराणके गणपति-खण्डमें वर्णन है कि परशुरामने शिवजीके परशुसे कार्तवीर्यका वध किया और उन्हें प्रणाम करनेके लिये वे कैलास गये। उस समय शंकरजी पार्वतीके साथ अन्तःपुरमें थे, अतः गणेशजीने उन्हें भीतर जानेसे रोक दिया। परशुरामजीने उनपर फरसा उठा लिया। गणेशजीने परशुरामके शिवजीद्वारा प्रदत्त अस्त्रको अमोघ करनेके लिये अपने बायें दाँतसे पकड़ लिया। तब महादेवजीके बलसे वह फरसा गणेशजीके दाँतको समूल काटकर परशुरामजीके हाथमें लौट आया। वह दाँत रक्तसे सनकर शब्द करता हुआ भूमिपर गिर पड़ा। ऐसा लगता था, मानो गेरुसे युक्त स्फटिक-पर्वत गिर पड़ा हो—

> पितुरस्त्रं व्यर्थमङ्गं च दृष्ट्वा गणपतिः स्वयम्।
> जग्राह वामदन्तेन नास्त्रं व्यर्थं चकार ह॥

पपात भूमौ दन्तश्च सरक्तः शब्दमुच्चरन् ।
यथा गैरिकयुक्तश्च महास्फटिकपर्वतः ॥
(ब्रह्मवैवर्त०, गणपति० ४३ । ३३, ३६)

उपर्युक्त कथा ब्रह्माण्डपुराणके मध्यभागके तृतीय उपोद्घातके बयालीसवें अध्यायमें भी वर्णित है । गणेशजी 'एकदन्त'-संज्ञासे विभूषित हो गये । विष्णुने पार्वतीसे कहा कि "आपके पुत्रका 'एकदन्त' नाम वेदोंमें विख्यात है, सभी देवता उन्हें नमस्कार करते हैं ।'

पुत्राभिधानं वेदेषु पश्य वत्से वरानने ।
एकदन्त इति ख्यातं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥
(ब्रह्मवैवर्त०, गणपति० ४४ । ८३)

श्रीशंकराचार्यने अत्यन्त रमणीय दन्तकी शोभासे युक्त श्रीएकदन्तका चिन्तन किया है—

नितान्तकान्तदन्तकान्तिमन्तकान्तकात्मज-
मचिन्त्यरूपमन्तहीनमन्तरायकृन्तनम् ।
हृदन्तरे निरन्तरं वसन्तमेव योगिनां
तमेकदन्तमेव तं विचिन्तयामि संततम् ॥
(श्रीगणेशपञ्चरत्न–५)

आचार्यका स्तवन है कि 'जिनकी दन्तकान्ति अत्यन्त रमणीय है, जिनका रूप अचिन्त्य है, जिनका अन्त नहीं है, जो योगियोंके हृदयमें सदा अधिष्ठित हैं, मैं उन मृत्युंजयनन्दन, विघ्नेश्वर, एकदन्तका चिन्तन करता हूँ ।'

श्रीगणेशजीके गण्डस्थल—कनपटीकी अद्भुत शोभा है । उसपर विलसित मद-गन्धसे लुब्ध मधुपोंका दल रमणशील है । एक श्लोकमें उनके गण्डस्थलके सौन्दर्यका इस प्रकार वर्णन है—

खर्वं स्थूलतनुं गजेन्द्रवदनं लम्बोदरं सुन्दरं
प्रस्यन्दन्मदगन्धलुब्धमधुपव्यालोलगण्डस्थलम् ।
दन्ताघातविदारितारिरुधिरैः सिन्दूरशोभाकरं
वन्दे शैलसुतासुतं गणपतिं सिद्धिप्रदं कामदम् ॥
(बँगला स्तवकवचमाला)

श्रीगणेशजीकी नाक बड़ी शोभामयी है । उसका वर्णन यों मिलता है—

'सुनासं शुभ्रवदनं स्थूलवक्षसमीश्वरम् ।'
(गणेशपुराण, क्रीडा० ८१ । ३३)

वे तीन नेत्रोंसे विभूषित कहे गये हैं । इसका भी उपर्युक्त संदर्भगत श्लोकमें ही वर्णन है—

'षड्भुजं चन्द्रसुभगं लोचनत्रयभूषितम् ।'
(गणेशपुराण, क्रीडा० ८१ । ३३)

ऐसे तो गणेशजी अनन्त श्रुति और नेत्रोंसे सम्पन्न हैं, पर वर्णन तीन नेत्र और दो ही कानोंका उपलब्ध होता है—

'अनन्तश्रुतिनेत्रश्च' (गणेशपुराण, क्रीडा० ७९ । २८)

श्रीव्यासजीने उन्हें 'चारुकर्णविभूषित' कहा है । उन्होंने श्रीगणेशजीकी वन्दना की है—

गजाननं सुरश्रेष्ठं चारुकर्णविभूषितम् ।
पाशाङ्कुशधरं देवं वन्देऽहं गणनायकम् ॥
(पद्मपुराण, सृष्टि० ६६ । ७)

'उनके कर्ण-कुण्डलोंसे तेज झरता रहता है । ऐसा लगता है, मानो वे दो सूर्यबिम्ब हों'—

'कुण्डले प्रावहच्छ्रुत्योः सूर्यबिम्बे इवापरे ॥'
(गणेशपुराण, उपा० २१ । ३३)

मणिकुण्डलोंकी प्राप्ति गणेशजीको सूर्यसे हुई थी—

'सूर्यश्च मणिकुण्डले ।' (ब्रह्मवैवर्तपु०, गणपति० १३ । ८)

श्रीगणेशजीका मस्तक सिन्दूरसे अरुण तथा मुकुटसे विभूषित रहता है—

मुकुटेन विराजन्तं मुक्तारत्नयुजा शुभम् ।
रक्तचन्दनलिप्ताङ्गं सिन्दूरारुणमस्तकम् ॥
(गणेशपुराण, उपा० १४ । २१)

उनके मस्तकपर कस्तूरीका भव्य तिलक शोभित रहता है । देवताओंकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर गणेशजीके प्रकट होनेके प्रसङ्गमें इसकी पुष्टि होती है—

'क्षुद्रघण्टाक्वणत्पादं कस्तूरीतिलकोज्ज्वलम् ।'
(गणेशपुराण, क्रीडा० ७८ । ३१)

श्रीगणेशजी अपने विराट् रूपमें अनन्तशीर्षयुक्त हैं—

यो देवः सर्वभूतेषु गूढश्चरति विश्वकृत् ।
योऽनन्तशीर्षानन्तश्रीरनन्तचरणः स्वराट् ॥
(गणेशपुराण, क्रीडा० ७९ । २७)

श्रीगणेशजीके मस्तकका अलंकार चन्द्रमा है, जिसका वर्णन यों उपलब्ध होता है—

'बालचन्द्रं लसद्दन्तं शोभाराजत्करं परम्।'

(गणेशपुराण, उपा० १४ । २५)

श्रीव्यासजीने बालचन्द्रमासे शोभित मस्तकवाले श्रीगणेशकी वन्दना की है—

'बालेन्दुकलिकामौलिं वन्देऽहं गणनायकम्।'

(पद्मपुराण, सृष्टि० ६६ । ३)

रहीम खानखानाने शिशु-शशिसे अलंकृत मस्तकवाले ऋद्धि और सिद्धिके विधायक, निर्मल-बुद्धिके प्रकाशक तथा विघ्नोंके नाशक श्रीगणेशजीकी वन्दना की है—

बन्दहुँ बिघन-बिनासन, रिधि-सिधि ईस।
निर्मल बुद्धि-प्रकासन, सिसु-ससि-सीस॥

(रहीमरत्नावली)

श्रीगणेशजीके मस्तकका आभूषण रत्नजटित मुकुट है। उसका वर्णन यों मिलता है—

'रत्नकाञ्चनमुक्तायन्मुकुटभ्राजिमस्तकः।'

(गणेशपुराण, उपा० २० । ३२)

उन्हें किरीटकी प्राप्ति कुबेरसे हुई थी। जैसा कि उल्लेख है—

'कुबेरश्च किरीटकम्।' (ब्रह्मवैवर्तपु०, गणपति० १३ । ८)

श्रीगणेशजीके आभरणोंका वर्णन पूर्णरूपसे करना बहुत ही कठिन है। यहाँ जितना वर्णन सम्भव हो सका है, उतनेहीसे संतोष करना पड़ता है।

आयुध आदि

श्रीगणेशजी विघ्नोंके नाशक हैं। उनके असंख्य आयुध हैं; जिनका उपयोग निस्संदेह विघ्नोंको नष्ट करनेके लिये निरन्तर होता रहता है। प्रधान रूपसे आयुध दस कहे गये हैं। वे वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अङ्कुश, गदा, त्रिशूल, पद्म और चक्र हैं। शक्ति और गदाकी गणना स्त्रीलिङ्गमे है। चक्र और पद्म नपुंसकलिङ्गमे परिगणित हैं तथा शेष छः आयुध पुँल्लिङ्गमे गणित हैं—

दशायुधप्रतिष्ठां तु वक्ष्ये लक्षणपूर्वकम्।
वज्रं शक्तिं च दण्डं च खड्गं पाशं तथाङ्कुशम्॥
गदां त्रिशूलं पद्मं च चक्रं चेति दशायुधम्।

❀ ❀ ❀

जाये शक्तिगदे ज्ञेये चक्रपद्मे नपुंसके।
शेषाः पुमांसो विज्ञेयास्त्वष्टतालविनिर्मिताः॥

([illegible])

त्रिपुरासुरको पराजित करनेके लिये नारदके उपदेशसे तपद्वारा शिवजीने गणेशजीको प्रसन्न कर लिया। वे उनके सामने प्रकट हो गये। वे पञ्चमुख विनायक थे। वे दस भुजाओं और आयुधोंसे युक्त थे—

पञ्चवक्त्रो दशभुजो ललाटेन्दुः शशिप्रभः।
मुण्डमालः सर्पभूषो मुकुटाङ्गदभूषणः॥
धनुःपरशुधारिणो भाभिर्दिशस्तु इन्द्रतायुधः।

(गणेशपुराण, उपा० ४४ । २६-२७)

समर्थ रामदासने उनके हाथोंमें सुशोभित परशु, कमल और अङ्कुशकी शोभाका वर्णन किया है—

'शोभे फरश कमळ। अंकुश तीक्ष्ण तेजाळ।'

(दासबोध १ । २ । २०)

श्रीगणेशजीके हाथ उपर्युक्त दस आयुधोंसे विभूषित होनेके साथ-ही-साथ ध्वजा, बाण, धनुष, कमण्डलु, इक्षुदण्ड, दन्त, मुद्गर आदिसे भी युक्त हैं तथा वे श्रीगणपति अनेक श्रीविग्रहोंमें वर्णित हैं। श्रीगणेशजीके प्रायः सभी श्रीविग्रहोंके हाथमें अङ्कुश रहता है। श्रीव्यासजीने अङ्कुशधारी गणेशकी वन्दना की है—

'पाशाङ्कुशधरं देवं वन्देऽहं गणनायकम्॥'

(पद्मपुराण, सृष्टि० ६६ । ७)

श्रीगणेशजी अङ्कुश अपने पिछले दाहिने हाथमें धारण करते हैं। 'श्रीतत्त्वनिधि'में श्रीसंकष्टहरणगणपतिके ध्यानमें कहा है—दक्षेऽङ्कुशवरदानं वामे पाशं च पायसं पात्रम्। 'एलीमेन्ट्स् ऑफ हिंदू आइकोनोग्राफी'के प्रथम खण्डमें उल्लेख है कि कालडीमें श्रीशारदादेवीके मन्दिरमे स्थापित श्रीगणेश-विग्रहके पिछले दाहिने हाथमे अङ्कुश शोभित है। यह उन्मत्त उच्छिष्टगणपतिका विग्रह है। अङ्कुशकी गणना पुँल्लिङ्ग आयुधोंमे है। श्रीगणेशका तान्त्रिक ध्यान है—

सिन्दूराभं त्रिनेत्रं पृथुतरजठरं हस्तपद्मैर्दधानं
दन्तं पाशाङ्कुशेष्टान्युरुकरविलसद्बीजपूराभिरामम्॥
बालेन्दुद्योतिमौलिं करिपतिवदनं दानपूरार्द्रगण्डं
भोगीन्द्राबद्धभूषं भजत गणपतिं रक्तवस्त्राङ्गरागम्।

(शारदातिलक १३ । ३-४)

उपर्युक्त श्लोकके भाष्यमे राघवभट्टने ऊर्ध्वस्थ वाम करमे अङ्कुश और दक्षिण करमे पाशकी स्थिति निरूपित की है—

'ऊर्ध्वस्थवामदक्षयोरङ्कुशपाशौ।'

इसी तरह शारदातिलकके तेरहवें पटलके ७० वें श्लोकके

भाष्यमें राघवभट्टने उपर्युक्त कथनकी पुष्टि की है। पुष्कर गणेशके ध्यानमें उन्होंने चित्रण किया है—'ध्याने तु दक्षे पाशः वामे अङ्कुशः......।' गणपत्यथर्वशीर्षउपनिषद्में श्रीगणेशजीद्वारा पाश और अङ्कुश धारण करनेका उल्लेख है—

'पाशमङ्कुशधारिणम्।'

श्रीगणेशके शब्दब्रह्म—साहित्य रूपका वर्णन करते हुए संत ज्ञानेश्वरने न्यायशास्त्रको उनका अङ्कुश स्वीकार किया है—

'नीतिभेदु अंकुशु।' (ज्ञानेश्वरी १।११)

श्रीगणेशजीके हाथमें शोभित दूसरा प्रधान आयुध पाश है। उपर्युक्त कालडीस्थित शारदादेवीके मन्दिरमें विद्यमान गणेश-विग्रहके पिछले बायें हाथमें पाशका निरूपण किया गया है। रूपमण्डनमें मूषकारूढ हेरम्ब-गणेशके बायें हाथमें पाशका वर्णन मिलता है—

'वामे कपालं वाणाक्षपाशं कौमोदकीं तथा।'

पाशको सात फणोंसे युक्त नरसर्पाकार एवं पुच्छयुक्त बताया गया है—

'पाशस्सप्तफणस्सर्पपुरुषः पुच्छसंयुतः।'
(विष्णुधर्मोत्तरपुराण)

पद्म धारण करनेवाले श्रीगणेशका ध्यान है—

'हस्तैः स्वीयैर्दधतमरविन्दाङ्कुशौ रत्नकुम्भम्।'
(शारदातिलक १३।७९)

श्रीगणेशजी परशु-आयुधसे भी विभूषित कहे गये हैं। सर्वकामद गजाननका ध्यान है—

दन्तं च परशुं पद्मं मोदकांश्च गजाननः।
गणेशो मूषकारूढो बिभ्राणः सर्वकामदः॥

श्रीज्ञानेश्वर महाराजने शब्दब्रह्म गणेशके ध्यानमें तर्क-शास्त्रको 'परशु' माना है—

'तरी तर्कु तोचि फरशु।' (ज्ञानेश्वरी १।११)

श्रीगणेशजीका हाथ वेतालसे शोभित रहता है। वीर विघ्नेशके १६ हाथोंमेंसे एकमें वेताल है—

वेतालमङ्कुशशरकार्मुकखेटखड्ग-
खट्वाङ्गमुद्गरगदाङ्कुशनागपाशान्।
(क्रियाक्रमद्योति)

'गदा' दस आयुधोंमेंसे एक है। गदाकी गणना स्त्रीलिङ्ग आयुधोंमें है। इसका वर्ण 'पीत' कहा गया है—

'गदा पीतप्रभा कन्या सुपीनजघनस्थला।'
(विष्णुधर्मोत्तरपुराण)

'एलिमेंट्स् ऑफ हिंदू आइकोनोग्राफी'के प्रथम खण्डमें उल्लेख है कि वराहपुराणमें गदाको अधर्मका नाश करनेवाली कहा गया है।

महागणपतिका गदायुक्त ध्यान है—

बीजापूरगदेक्षुकार्मुकलसच्चक्राब्जपाशोत्पल-
व्रीह्यग्रस्वविषाणरत्नकलशान् हस्तैर्वहन्तं भजे।
(श्रीतत्त्वनिधि)

श्रीगणेशजीके हाथको शूल तथा त्रिशूलसे भूषित निरूपित किया जाता है। त्रिशूल शब्द नपुंसक लिङ्ग होनेपर भी उसकी गणना पुरुष आयुधोंमें है। इसका शरीर श्याम रंगका होता है—

'त्रिशूलं पुरुषो दिव्यस्तुङ्गश्यामकलेवरः।'
(विष्णुधर्मोत्तरपुराण)

'एलिमेंट्स् ऑफ हिंदू आइकोनोग्राफी'के प्रथम खण्डमें लक्ष्मीगणपतिकी प्रस्तर-प्रतिमाका उल्लेख है। यह विग्रह तेनकाशीके विश्वनाथस्वामी-मन्दिरमें स्थापित है। इस मन्दिरका निर्माण १४४६ ई०में पाण्ड्य-शासक आरिकेसरि पराक्रम पाण्ड्यदेवने कराया था। मूर्तिके दस हाथोंमेंसे कुछ हाथोंमें चक्र, शङ्ख, शूल आदिका वर्णन मिलता है। 'कारिकागम'के मतसे त्रिशूल प्रकृतिके तीनों गुण—सत्त्व, रज और तमका वाचक है, ऐसा उपर्युक्त संदर्भ-ग्रन्थमें उल्लेख है। विनायक-की प्रतिमाके निर्माण-प्रसङ्गमें शूलका वर्णन मिलता है—

विनायकस्तु कर्तव्यो गजवक्त्रश्चतुर्भुजः।
शूलकं चाक्षमालां च तस्य दक्षिणहस्तयोः॥
(विष्णुधर्मोत्तरपुराण ३।७१।१३)

लिङ्गपुराणमें वर्णन मिलता है कि भगवती अम्बिकासे त्रिशूल और पाश धारण करनेवाले, हाथीके मुखके समान मुखवाले मङ्गलमूर्ति गजाननका जन्म हुआ—

इभाननाञ्चितं वरं त्रिशूलपाशधारिणम्।
ससर्ज लोकसम्भवं गजाननं तदाम्बिका॥
(पूर्वार्ध १०५।९)

श्रीगणेशजीका हाथ कुन्तसे विभूषित है। वीर-

विघ्नेशके हाथमे कुन्त विलसित है,- ऐसा उनका ध्यान उपलब्ध होता है—

'शूलं च कुन्तपरशुध्वजमुद्वहन्तं
वीरं गणेशमरुणं सततं स्मरामि ॥'
(क्रियाक्रमद्योति)

उपर्युक्त श्लोकमे श्रीगणेशके ध्वजाविभूषित हाथका स्पष्ट वर्णन है। ध्वज पीतवर्णका पुरुष है, महाबलवान् और व्यावृत मुखवाला है। 'व्यावृतास्य'का आशय है—खुले मुखवाला।

'ध्वजस्तु पुरुषः पीतो व्यावृतास्यो महाबलः।'
(विष्णुधर्मोत्तरपुराण)

श्रीगणेशजीकी ध्वजा मूषक-चिह्नवाली है। गणपत्यथर्वशीर्ष-उपनिषद्मे उनकी ध्वजाका वर्णन है—

'अभयं वरदं हस्तैर्बिभ्राणं मूषकध्वजम् ॥'

श्रीगणेशजीके हाथमे शोभित बाण पुरुष आयुध है, इसका शरीर लाल वर्णका है तथा यह दिव्य नेत्रोवाला है—

'शरस्स्यात् पुरुषो दिव्यो रक्ताङ्गो दिव्यलोचनः।'
(विष्णुधर्मोत्तरपुराण)

'एलिमेंट्स् ऑफ हिंदू आइकोनोग्राफी'के प्रथम खण्डमें उल्लेख है कि 'वैखानस-आगममे बाणको नपुंसक आयुध कहा गया है। इसका रंग श्याम है, परिधान श्वेत है तथा इसके तीन नेत्र हैं। समुद्र-गर्जनके समान इसकी आवाज है। इसका वाहन वायु है। पंख इसका ध्वज है। यह अपने सिरपर बाण धारण करता है। माघ मासके शतभिषा नक्षत्रमे इसकी उत्पत्ति बतायी जाती है। इसका बीजाक्षर 'स' है। ऊर्ध्वगणपतिके ध्यानमे बाणका उल्लेख है—

कह्लारशालिकमलेक्षुकचापबाण-
दन्तप्ररोहकगदी कनकोज्ज्वलाङ्गः ।
आलिङ्गनोद्यतकरो हरिताङ्गयष्ट्या
देव्या करोतु शुभमूर्ध्वगणाधिपो मे ॥
(श्रीतत्त्वनिधि)

'धनुष' स्त्रीलिङ्गमें गणित है। इसका आकार स्त्रीका है। इसके सिरपर प्रत्यञ्चा-खिन्ना धनुष है। इसका वर्ण लाल कमलके समान होता है—

'धनुस्स्त्री पद्मरक्ताभा मूर्ध्नि पूरितचापभृत्'।
(विष्णुधर्मोत्तरपुराण)

विघ्नेश्वर गणपतिका हाथ चापविभूषित है—

शङ्खेक्षुचापकुसुमेषुकुठारपाश-
चक्रस्वदन्तसृणिमञ्जरिकाशराद्यैः ।
पाणिश्रितैः परिसमीहितभूषणश्री-
र्विघ्नेश्वरो विजयते तपनीयगौरः ॥
(श्रीतत्त्वनिधि)

गणेशजीके हाथमें अक्षमाला शोभित रहती है। हेरम्ब-गणपतिके वर्णनके प्रसङ्गमे अक्षमालाका उल्लेख है—

अभयवरदहस्तः पाशदन्ताक्षमाला-
सृणिपरशुदधानो मुद्गरं मोदकं च ।
फलमधिगतसिंहः पञ्चमातङ्गवक्त्रो
गणपतिरतिगौरः पातु हेरम्बनामा ॥
(श्रीतत्त्वनिधि)

शक्ति स्त्री-आयुध है—

'नारी शक्तिगदे विद्यात्'
(पूर्वकारणागम, चतुर्दश पटल)

शक्तिका वर्ण लाल होता है और वृक उसका वाहन है—

'शक्तिस्तु योषिदाकारा लोहिताङ्गी वृकाश्रिता।'
(विष्णुधर्मोत्तरपुराण)

वीरगणपतिके ध्यानमे शक्ति धारण करनेका उल्लेख है—

वेतालशक्तिशरकार्मुकचक्रखड्ग-
खट्वाङ्गमुद्गरगदाङ्कुशनागपाशान् ।
शूलं च कुन्तपरशुध्वजमुद्वहन्तं
वीरं गणेशमरुणं सततं स्मरामि ॥
(श्रीतत्त्वनिधि)

गणेशजीके चारों हाथोंमे खड्ग, खेट, धनुष और शक्ति होनेका उल्लेख गणेशपुराणमे उपलब्ध होता है—

'खड्गखेटधनु.' शक्तिशोभिचारुचतुर्भुजम् ।
(उपा० १२। ३५)

'वज्र' पुरुष आयुध है। 'एलिमेंट्स् ऑफ हिंदू आइकोनोग्राफी'के प्रथम खण्डमे उल्लेख है कि विघ्नेश्वर-प्रतिष्ठा-विधिमे शक्तिगणपतिका जो ध्यान वर्णित है, उसके अनुसार उनका रंग अस्तकालीन सूर्यके समान होता है तथा उनके हाथ पाश और वज्रसे विभूषित होते हैं। वज्र दस आयुधोंमेंसे एक है। पुराणोंमे गणेशजीको दस आयुधोंसे विभूषित कहा गया है। सिंहारूढ़ विनायक-मूर्तिका वर्णन है—

'सिंहारूढा दशभुजा दशायुधविराजिता ।'

(गणेशपुराण, क्रीडा० ६८ । १९)

गणेशजीके हाथमें कमण्डलु शोभित रहता है। ध्वजगणपतिके ध्यानमें कमण्डलुका उल्लेख है । ध्वजगणपतिके हाथमें पुस्तक भी शोभित है—

य. पुस्तकाक्षगुणदण्डकमण्डलुश्री-
निर्वर्त्यमानकरभूषणमिन्दुवर्णम् ।

त घोरमाननचतुर्भुजशोभमान
त्वां संस्मरेद् ध्वजगणाधिपते स धन्यः ॥

(क्रियाक्रमद्योति)

उपर्युक्त श्लोकमें ही वर्णन है कि श्रीगणेशजीका हाथ दण्डसे विभूपित है। दण्ड पुरुष आयुध है। यह पुरुषके आकारका है, इसका कृष्ण—काला वर्ण है तथा इसके नेत्र लाल हैं—

'दण्डोऽपि पुरुष' कृष्णो घोरो लोहितलोचन ।'

(विष्णुधर्मोत्तरपुराण)

श्रीगणेशजीके हाथमें चक्र शोभित रहता है । चक्र नपुसक आयुध है। 'उत्तरकामिकागम'के अष्टषष्टितम पटलमें चक्रको नपुंसक आयुध ही कहा गया है—

'जाये शक्तिगदे ज्ञेये चक्रपद्मे नपुंसके ।'

'एलीमेंट्स् हिंदू ऑफ आइकोनोग्राफी'के प्रथम खण्डमें चक्रको पुरुप आयुध स्वीकार किया गया है। उसके नेत्र गोल होते हैं तथा वह अनेक आभूपणोसे अलंकृत होता है। उसके हाथमें चामर रहता है। तेनकाशीके विश्वनाथस्वामी-मन्दिरमे स्थापित लक्ष्मीगणपतिके हाथमें चक्र स्थित है। विघ्नेश्वर गणपतिके हाथमे चक्र रहता है—

'शङ्खेक्षुचापकुसुमेपुकुठारपाश-
चक्रस्वदन्तसृणिमञ्जरिकाशराद्यैः ।'

(श्रीतत्त्वनिधि)

'शङ्ख' पुरुष आयुध है । यह दिव्य पुरुषाकार है तथा शुक्ल वर्णका है। इसके नेत्र देखनेमें सुन्दर हैं—

'शङ्खोऽपि पुरुषो दिव्यश्शुक्लाङ्गश्शुभलोचन. ।'

(विष्णुधर्मोत्तरपुराण)

भुवनेशगणपतिके हाथमें शङ्ख विभूपित रहता है। इसे अविद्याका नाशक कहा गया है। 'एलीमेंट्स् ऑफ हिंदू आइकोनोग्राफी'में उल्लेख है कि वराहपुराणमें शङ्खका अविद्यानाशकके रूपमें वर्णन है ।

खड्ग पुरुष आयुध है। इसका शरीर श्याम-वर्णका है तथा इसके नेत्र क्रोधयुक्त हैं—

'खड्गश्च पुरुष. श्यामशरीरः क्रुद्धलोचनः ।'

(विष्णुधर्मोत्तरपुराण)

'खड्ग' अज्ञानका नाश करता है । उपर्युक्त सदर्भगत वराहपुराणमें ऐसी स्वीकृति है। वीरविघ्नेश्वरको खड्गयुक्त निरूपित किया गया है—

'वेतालशक्तिशरकार्मुकखेटखड्ग-
खट्वाङ्गमुद्गरगदाङ्कुशनागपाशान् ।'

(क्रियाक्रमद्योति)

उपयुक्त श्लोकमें गणेशजीके हाथोंको खेट, खट्वाङ्ग और मुद्गर आदिसे विभूषित कहा गया है।

हेरम्बगणपतिका ध्यान है—

सिन्दूराभं त्रिनेत्रं च अभयं मोदकं तथा ।
टङ्कं शाराक्षमाले च मुद्गरं चाङ्कुशं तथा ।
त्रिशूलं चेति हस्तेपु दधानं कुन्दवत् सितम् ॥

(देवतामूर्तिप्रकरण ८ । २७)

श्रीगणेशजीका हाथ दन्तविभूषित है। दाँत उनके आगेके दाहिने हाथमे शोभित है। कालडीके शारदा-देवी-मन्दिरमें स्थापित गणेश-विग्रहके दाहिने हाथमें दाँत भूषित है । 'रूपमण्डन'में वर्णन है—

वरं तथाङ्कुशं दन्तं दक्षिणे च परश्वधम् ।
वामे कपालं बाणाक्षपाशान् कौमोदकीं तथा ॥
धारयन्तं करैरेभि. पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् ।
हेरम्बं मूषकारूढं कुर्यात् सर्वार्थकामदम् ॥

अक्षरगणपतिके ध्यानमें वर्णन है कि दाँत उनके दाहिने हाथमें शोभित है—

गजेन्द्रवदनं साक्षाच्चलत्कर्णसुचामरम् ।
हेमवर्णं चतुर्बाहुं पाशाङ्कुशधरं वरम् ॥
स्वदन्तं दक्षिणे हस्ते सव्ये त्वाम्रफलं तथा ।
पुष्करैर्मोदकं चैव धारयन्तमनुस्मरेत् ॥

(श्रीतत्त्वनिधि)

दाहिने हाथमें दाँत होनेकी पुष्टि 'अंशुमद्भेदागम'में भी उपलब्ध होती है। उसमे उल्लेख है—

'स्वदन्तं दक्षिणे हस्ते वामहस्ते कपित्थकम् ।'

बालगणपतिके हाथ केला, आम, कटहल, इक्षु,

कपित्थ (कैथ) से विभूषित हैं। 'क्रियाक्रमद्योति'में बाल गणपतिका ध्यान है—

करस्थकदलीचूतपनसेक्षुकपित्थकम्।
बालसूर्यप्रभाकारं वन्दे बालगणाधिपम्॥

श्रीगणेशजीके हाथ कल्पलता, नारियल, पायसपात्र, वीणा, कह्लारपुष्प, धानकी बाल आदिसे शोभित हैं। इस कथनकी पुष्टि श्रीतत्त्वनिधिमें वर्णित उनके विभिन्न रूपोंके ध्यानसे हो जाती है।

श्रीगणेशजीको 'मोदकप्रिय' कहा जाता है। वे अपने एक हाथमें मोदकपूर्ण पात्र रखते हैं। 'मन्त्रमहार्णव'में उन्मत्त उच्छिष्टगणपतिका वर्णन है—

चतुर्भुजं रक्ततनुं त्रिनेत्रं पाशाङ्कुशौ मोदकपात्रदन्तौ।
करैर्दधानं सरसीरुहस्थमुन्मत्तमुच्छिष्टगणेशमीडे॥

'मन्त्रमहार्णव'में एक ध्यानमें श्रीगणेशकी सूँड़के अग्रभागपर मोदक सूचित है—

विषाणाङ्कुशावक्षसूत्रं च पाशं दधानं करैर्मोदकं पुष्करेण।
स्वपत्न्या युतं हेमभूषाम्बराढ्यं गणेशं समुद्यद्दिनेशाभमीडे॥

मोदकको महाबुद्धिका प्रतीक बताया गया है। 'एलिमेंट्स ऑफ हिंदू आइकोनोग्राफी'मे उल्लेख है कि त्रिवेन्द्रम्‌में स्थापित केवल गणपतिमूर्तिके हाथोंमे अङ्कुश, पाश, मोदक और दाँत शोभित हैं। मोदक आगेके बायें हाथमें सुशोभित है। मोदकधारी गणेशका चित्रण है—

..........................रूपमादधे।
चतुर्भुजं महाकायं मुकुटाटोपमस्तकम्।
परशुं कमलं मालां मोदकानावहत् करैः॥
(गणेशपु०, उपा० २१। १२)

हिमाचलने भगवती पार्वतीको श्रीगणेशका ध्यान करनेकी जो विधि बतायी है, उसमें उन्होंने मोदकका उल्लेख किया है—

एकदन्तं शूर्पकर्णं गजवक्त्रं चतुर्भुजम्॥
पाशाङ्कुशधरं देवं मोदकान् बिभ्रतं करैः।
(गणेशपु०, उपा० ४९। २१-२२)

पद्मपुराणके सृष्टिखण्डमें उल्लेख है कि मोदकका निर्माण अमृतसे हुआ है। पार्वतीने कुमार और गणेशको जन्म दिया। दोनों सभी देवोंके हितकारी हैं। देवताओंने बड़ी श्रद्धासे अमृतनिर्मित एक दिव्य मोदक पार्वतीको दिया।

—दोनों पुत्रोंने पार्वतीजीसे मोदक माँगा। भगवतीने कहा कि 'इस मोदकके सूँघनेमात्रसे अमरत्व प्राप्त हो जाता है। इसको सूँघने या खानेवाला सम्पूर्ण शास्त्रोंका मर्मज्ञ, सब तन्त्रोंमें प्रवीण, लेखक, चित्रकार, विद्वान्, ज्ञान-विज्ञानका तत्त्वज्ञ और सर्वज्ञ हो जाता है'—

तौ दृष्ट्वा तु सुराः सर्वे श्रद्धया परयान्विताः।
सुधयोत्पादितं दिव्यं तस्यै प्रादुस्तु मोदकम्॥
* * *
अस्यैवाघ्राणमात्रेण अमरत्वं लभेद् ध्रुवम्॥
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः सर्वशस्त्रास्त्रकोविदः।
निपुणः सर्वतन्त्रेषु लेखकश्चित्रकृत् सुधीः॥
ज्ञानविज्ञानतत्त्वज्ञ सर्वज्ञो नात्र संशयः।
(६५। ३, ९-११)

जगदम्बाने कहा कि 'तुम दोनोंमेंसे जो धर्माचरणमें श्रेष्ठता प्राप्त करके पहले आयेगा, उसीको यह मोदक दूँगी।' स्कन्द तो तीर्थयात्राके लिये मयूरपर चल पड़े और गणेशजीने माता-पिताकी केवल परिक्रमा कर ली। माताने दोनोंको समझाया कि 'माता-पिताके पूजनके समान दूसरा कोई भी अनुष्ठान नहीं है। मैं देवनिर्मित मोदक गणेशको ही प्रदान करती हूँ।'

'अतो ददामि हेरम्बे मोदकं देवनिर्मितम्।'
(पद्म०, सृष्टि० ६५। १९)

उपर्युक्त पौराणिक आख्यानसे गणेशजीकी मोदकप्रियताकी पुष्टि होती है। देवताओंने लड्डुओंसे विघ्नराज गणेशकी पूजा की थी—

'लड्डुकैश्च ततो देवैर्विघ्ननाथस्समर्चितः॥'
(स्कन्दपु०, अवन्ती० ३६। १)

गणपत्युपनिषद्‌में उल्लेख है कि जो सहस्र लड्डुओंके द्वारा गणेशजीका यजन करता है, वह वाञ्छित फल पाता है—

'यो मोदकसहस्रेण यजति स वाञ्छितफलमवाप्नोति।'

श्रीज्ञानेश्वरमहाराजने शब्दब्रह्म गणेशके रूप-वर्णनमें उनके हाथमें शोभित मोदकको परममधुर अद्वैत वेदान्तका रूपक बताया है—

'वेदान्तु तो महारसु। मोदकु मिरवे।'
(ज्ञानेश्वरी १। ११)

संत समर्थ रामदासने 'दासबोध'में उनके मोदक-प्रेमके सम्बन्धमें कहा है कि 'आपके एक हाथमें गोल मोदक है, जिसपर आपकी बड़ी प्रीति है'—

'ये के करीं मोदक गोल। तयावरी अति प्रीति॥'

(१। २। २०)

मोदकविलसित हाथवाले गणेशकी वन्दनामें शंकराचार्यका निवेदन है—

मुदा करात्तमोदकं सदा विमुक्तिसाधकं
कलाधरावतंसकं विलासिलोकरक्षकम्।
अनायकैकनायकं विनाशितेभदैत्यकं
नताशुभाशुनाशकं नमामि तं विनायकम्॥

(श्रीगणेशपञ्चरत्न १)

'जो सानन्द अपने हाथमें मोदक ग्रहण कर अवस्थित हैं, जो सदा मुक्ति प्रदान करनेके लिये प्रस्तुत हैं, चन्द्रमा जिनके सिरका भूषण है, जो भावुक भक्तोंके रक्षक हैं, जिनका कोई स्वामी नहीं है, जो सबके एकमात्र प्रभु हैं, जो गजासुरके विनाशक हैं, जो प्रणतजनोंके अशुभको शीघ्र ही नष्ट कर देते हैं, मैं उन विनायकको नमस्कार करता हूँ।'

परिवार तथा पार्षद

श्रीगणेशजी ब्रह्मा, विष्णु और महेश—त्रिदेवोंके उपास्य तथा परम आराध्य हैं। गणेशजीकी पूजासे समस्त विघ्न नष्ट होते हैं—

'गणेशं पूजयेद्यस्तु विघ्नस्तस्य न जायते।'

(पद्म०, सृष्टि० ५१। ६६)

श्रीगणेशजीके साथ-ही-साथ उन्हींकी प्रसन्नता और पूजाके लिये उनके परिवार—पत्नी और पुत्रोंका चिन्तन निस्संदेह परम मङ्गलास्पद है। इससे सर्वसिद्धियोंका फल मिलता है, अज्ञान और भ्रान्तिका नाश होता है तथा समस्त मङ्गल अपने-आप उपस्थित हो जाते हैं। सर्वपूज्य मङ्गलनिधि सिद्धि-बुद्धिके पति श्रीगणेशजीकी शिवजीद्वारा संस्तुति है—

सिद्धिबुद्धिपतिं वन्दे ब्रह्मणस्पतिसंज्ञितम्।
माङ्गल्येशं सर्वपूज्यं विघ्नानां नायकं परम्॥

(मुद्गलपुराण, अष्टम खण्ड, गणेशहृदयस्तोत्र १७)

गणेशजी सिद्धि और बुद्धिके द्वारा सेवित उनके पति हैं। साथ-ही-साथ वे अपने उपासकोंको सिद्धि और बुद्धि भी प्रदान करते रहते हैं। 'जो उनकी उपासना करते हैं, वे अपने कार्यमें सिद्धि—पूर्णता प्राप्त करते हैं, साथ ही बुद्धि—ज्ञानशक्तिसे सम्पन्न होते हैं।' श्रीगणेशजीद्वारा सिद्धि-बुद्धि प्रदान करनेका आशय यह है—

भक्तानां वरदं सिद्धिबुद्धिभ्यां सेवितं सदा।
सिद्धिबुद्धिप्रदं नृणां धर्मार्थकाममोक्षदम्॥
ब्रह्मरुद्रहरीन्द्राद्यैः संस्तुतं परमर्षिभिः॥

(गणेशपु०, उपा० ४९। २१)

गृत्समद मुनिके तपसे प्रसन्न होकर श्रीगणेशजीने उन्हें दर्शन देकर प्रसन्न किया। उस समय वे सिंहारूढ थे और अपनी दोनों पत्नियों—सिद्धि-बुद्धिसे युक्त थे—

सिद्धिबुद्धियुतः श्रीमान् कोटिसूर्याधिकद्युतिः।
अनिर्वाच्यस्वरूपोऽपि लीलयाऽऽसीत् पुरो मुनेः॥

(गणेशपु०, उपा० ३७। १३)

सिद्धि और बुद्धिके साथ योगनाथ श्रीगणेश सदा-सर्वदा आनन्द-क्रीडामें तत्पर रहते हैं। 'बुद्धि विश्वात्मिका है, ब्रह्ममयी है, सिद्धि उसको विमोहित करनेवाली है। उन दोनोंके साथ मङ्गलमय गणेशकी मङ्गलमयी लीला चलती रहती है। सिद्धि-बुद्धिके स्वामीको नमस्कार है'—

विश्वात्मिका ब्रह्ममयी हि बुद्धि-
स्तस्या विमोहप्रदिका च सिद्धिः।
ताभ्यां सदा खेलति योगनाथ-
स्तं सिद्धिबुद्धीशमथो नमामि॥

(मुद्गलपुराण, अष्टम खण्ड, गणेशहृदयस्तोत्र ३६)

सिद्धि-बुद्धिके अतिरिक्त पुष्टिको भी उनकी पत्नी कहा गया है। श्रीगणेशजीके वाम भागमें सिद्धि और दक्षिण भागमें बुद्धिकी संस्थिति बतायी जाती है।

शिवपुराणकी रुद्रसंहिताके कुमारखण्डमें श्रीगणेशजीके सिद्धि-बुद्धिके साथ विवाहका प्रसङ्ग वर्णित है। एक समय प्रेममें मग्न भवानी और शंकरने विचार किया कि हमारे दोनों पुत्र गणेश और स्कन्द विवाहके योग्य हो गये हैं। उन्होंने दोनोंको बुलाकर कहा कि 'तुम दोनोंमें जो पहले पृथ्वीकी परिक्रमा करके लौटेगा, उसका ही विवाह पहले होगा।' कुमार स्कन्द मन्दराचलसे पृथ्वीकी परिक्रमा करने चल पड़े और बुद्धिमान् गणेशजीने भगवान् शंकर और भगवती अम्बिकाको आसनपर बिठाकर उनकी सात बार परिक्रमा की। उन्होंने यह वेदप्रतिपादित वचन कहा—

पित्रोश्च पूजनं कृत्वा प्रक्रान्तिं च करोति यः ।
तस्य वै पृथिवीजन्यफलं भवति निश्चितम् ॥
(शिवपु०, रुद्रसं०, कुमार० १९ । ३९)

आशय यह है कि 'जो माता-पिताकी पूजा करके उनकी प्रदक्षिणा करता है; उसको पृथ्वीकी परिक्रमा करनेका फल मिलता है।' इस तरह श्रीगणेशजीने अपने विवाहित होनेकी योग्यता प्रमाणित की। प्रजापति विश्वरूपको जब इसका पता चला तो उनको बड़ी प्रसन्नता हुई। उनके सिद्धि और बुद्धि नामकी दो कन्याएँ थीं, जो दिव्य रूपसे सम्पन्न तथा सर्वाङ्गशोभना थीं—

विश्वरूपप्रजेशस्य दिव्यरूपे सुते उभे ।
सिद्धिबुद्धिरिति ख्याते शुभे सर्वाङ्गशोभने ॥
(शिवपु०, रुद्रसं०, कुमार० २० । २)

सिद्धि-बुद्धि—दोनोंसे गणेशजीका विवाह सम्पन्न हो गया। गणेशकी पत्नी सिद्धिसे क्षेम और बुद्धिसे लाभ नामके शोभासम्पन्न दो पुत्र हुए—

सिद्धेर्गणेशपत्न्यास्तु क्षेमनामा सुतोऽभवत् ।
बुद्धेर्लाभाभिधः पुत्र आसीत् परमशोभनः ॥
(शिवपुराण, रुद्रसं०, कुमार० २० । ८)

गणेशपुराणके उपासनाखण्डमें उल्लेख है कि 'ब्रह्माजीने गणेशका पूजन किया। श्रीगणेशजीकी कृपासे उनकी पूजाकी सम्पन्नताके लिये दक्षिणाके समय दो कन्याएँ आयीं। उनके नेत्र सुन्दर थे, मुख प्रसन्न था; वे रत्नजटित आभूषणोंसे शोभित थीं, दिव्य गन्धसे युक्त थीं; उनके वस्त्र दिव्य थे। वे मालाएँ पहने थीं। ब्रह्माजीने उन दोनोंको दक्षिणामें भेंट करनेकी इच्छा की। गणेशजीकी कर्पूरसे आरती की; उनको पुष्पाञ्जलि समर्पित की; उनकी सहस्रनामोंसे स्तुति की तथा प्रदक्षिणा की। ब्रह्माद्वारा पूजित गणेश सिद्धि-बुद्धिको स्वीकार कर अन्तर्धान हो गये—

पूजार्थं देवदेवस्य गणेशाख्य प्रसादतः ।
दक्षिणावसरे द्वे तु कन्यके समुपस्थिते ॥
चारुप्रसन्ननयनवदनैः सुविराजिते ।
अनेकरत्नखचितनानालंकारशोभिते ॥
दिव्यगन्धयुते दिव्यवस्त्रमालाविभूषिते ।
ते तस्मै दक्षिणार्थं स कल्पयामास पद्मभूः ॥
कर्पूरगर्भेण नीराज्यं दिव्यपुष्पाञ्जलिं ददौ ।
सहस्रनामभिः स्तुत्वा प्रदक्षिणमथाकरोत् ॥
नमस्य प्रार्थयामास दीनानां शंकरो भव ।
एवं सम्पूजितस्तेन ब्रह्मणा परमेष्ठिना ॥
ततः प्रसन्नो भगवान् विघ्नहर्ता गजाननः ।
सिद्धिबुद्धी गृहीत्वा ते अन्तर्धानमगाद्विभुः ॥
(गणेशपु०, उपा० १५ । ३४-३९)

नारदपुराणमें गणेशजीका ध्यान है। उसमें उन्हें एक पत्नी (सिद्धि) द्वारा आश्लिष्ट निरूपित किया गया है। श्रीगणेशजीने अपनी चारों भुजाओंमे पाश, अङ्कुश, अभय और वर-मुद्राएँ धारण कर रखी हैं। उनकी पत्नी हाथमें कमल धारण कर उनसे सटकर बैठी हैं, उनका शरीर रक्तवर्णका है, उनके तीन नेत्र हैं—

पाशाङ्कुशाभयवरान् दधानं कञ्जहस्तया ।
पत्न्याश्लिष्टं रक्ततनुं त्रिनेत्रं गणपं भजेत् ॥
(नारदपु०, पूर्व०, तृ० ६६ । १३९)

गोस्वामी तुलसीदासजीने विवाहके बाद श्रीसीताजीके जनकपुरसे अयोध्या-गमनके अवसरपर सिद्धिगणेशका स्मरण चित्रित किया है—

प्रेमबिबस परिवारु सब जानि सुलगन नरेस ।
कुँअरि चढ़ाईं पालकिन्ह सुमिरे सिद्धि-गनेस ॥
(रामचरितमा०, बाल० ३३८)

श्रीगणेशजीके परिवारके स्मरण-चिन्तनसे सिद्धि-बुद्धि, क्षेम और लाभकी सहज प्राप्ति होती है।

रूपमण्डनमें 'गणेशायतन'—गणेश-मन्दिरके प्रसङ्गमें श्रीगणेशजीके पार्षद अथवा प्रतीहारोंका विवरण उपलब्ध होता है। वे द्वारकी रक्षा करते हैं, द्वारपालका कार्य करते हैं। उनकी संख्या आठ है। एक-एक द्वारपर दो-दो प्रतीहार रहते हैं। उनके यथाक्रम नाम हैं—अविघ्न और विघ्नराज, सुवक्त्र और बलवान्, गजकर्ण और गोकर्ण तथा सुसौम्य और शुभदायक।

उल्लेख है कि श्रीगणेशजीके मन्दिरमें उनके विग्रहके बायें गजकर्ण, दायें सिद्धि, उत्तरमें गौरी, पूर्वमें बुद्धि, दक्षिण-पूर्वमें बालचन्द्रमा, दक्षिणमें सरस्वती, पश्चिममें कुबेर और पीछे धूम्रकके विग्रहोंकी स्थापना होनी चाहिये—

वामाङ्गे गजकर्णं तु सिद्धिं दद्याच्च दक्षिणे ।
पृष्ठकर्णे तथा द्वौ च धूम्रको बालचन्द्रमाः ॥

उत्तरे तु सदा गौरी याम्ये चैव सरस्वती ।
पश्चिमे यक्षराजश्च बुद्धिः पूर्वे व्यवस्थिता ॥

(रूपमण्डन ५ । १९-२०)

श्रीगणेशके आठों द्वारपाल वामनाकार हैं । वे सौम्य स्वभावके और कठोर मुखवाले होते हैं । आठोंके दो-दो हाथ तो तर्जनी-मुद्रा और दण्डसे विभूषित रहते हैं तथा पूर्वद्वारपर स्थित अविघ्न और विघ्नराजके दो हाथोंमें परशु और पद्म रहते हैं, दक्षिण-द्वारपर स्थित सुवक्त्र और बलवान्‌के दो हाथोंमें खड्ग और खेटक रहते हैं, पश्चिम-द्वारपर स्थित गजकर्ण और गोकर्णके दो हाथोंमें धनुष-बाण होते हैं और उत्तरद्वारपर स्थित सुसौम्य और शुभदायकके दो हाथ पद्म तथा अङ्कुशसे भूषित रहते हैं—

सर्वे च वामनाकारास्सौम्याश्च परुषाननाः ।
तर्जनीपरशु पद्ममविघ्नो दण्डहस्तकः ॥
तर्जनीदण्डापसव्ये स भवेद् विघ्नराजकः ।
तर्जनीखड्गखेटं तु दण्डहस्तस्सुवक्त्रक ॥
तर्जनीदण्डापसव्ये दक्षिणे बलवान् भवेत् ।
तर्जनीबाणचापं च दण्डं च गजकर्णकः ॥
तर्जनीदण्डापसव्ये गोकर्णः पश्चिमे स्मृतः ।
तर्जनीपद्माङ्कुशं च दण्डहस्त सुसौम्यक ॥
तर्जनीदण्डापसव्ये स चैव शुभदायकः ।
पूर्वद्वारादिके सर्वे प्राच्यादिष्वष्ट संस्थिताः ॥

(रूपमण्डन ५ । २१–२५)

वक्रतुण्ड श्रीगणेशकी महिमाका पार पाना कठिन है । महाकवि पुरुषोत्तमका उद्गार है—

अतिसुदृढमगातां हर्षमङ्गैकभावा-
दधिकतमसुमेशौ यं तथात्मैक्ययोगात ।
तदधिकमिव यातौ यं सुतं वीक्षमाणौ
सफलयतु स देवो न. क्रतुं वक्रतुण्ड. ॥

(विष्णुभक्तिकल्पलता १ । १)

'भवानी-शंकर दोनों देहैक्यभावसे अत्यन्त प्रगाढ हर्षका अनुभव करते हैं । उस एकात्मभावसे कहीं अधिक हर्ष वे अपने दोनों पुत्रोंको देखकर पाते हैं । माता-पिताको हर्षित करनेवाले वक्रतुण्ड देव हमारे संकल्पको सफल करें ।' जिनके माता-पिता भवानी-शंकर हैं, पत्नी सिद्धि-बुद्धि हैं और पुत्र क्षेम-लाभ हैं, उन भाग्यशाली आद्यपूज्य श्रीगणेशके पारिवारिक सुखका रसास्वादन बड़े ही सौभाग्यका पुण्यविषय है ।

वाहन आदि

हमारे शास्त्र और पुराणोंमें सिंह, मयूर और मूषकको श्रीगणेशजीका वाहन कहा गया है । गणेशपुराणके क्रीडाखण्डमें उल्लेख है कि "कृतयुगमें गणेशजीका वाहन सिंह है; वे दसभुजावाले, तेजःस्वरूप और विशालकाय तथा सबको वर देनेवाले हैं, उनका नाम 'विनायक' है । त्रेतामें उनका वाहन मयूर है; वे छः भुजावाले हैं, उनका वर्ण श्वेत है, वे तीनों लोकोंमें विख्यात 'मयूरेश्वर' नामवाले हैं; द्वापरमें उनका वर्ण लाल है, वे आखु—मूषकवाहन हैं, उनके चार भुजाएँ हैं, वे देवता और मनुष्योंके द्वारा पूजित हैं, उनका नाम 'गजानन' है । एवं कलियुगमें उनका धूम्रवर्ण है, वे घोड़ेपर आरूढ़ रहते हैं, उनके दो हाथ हैं, उनका नाम 'धूम्रकेतु' है, वे म्लेच्छवाहिनीका विनाश करते हैं ।'

सिंहारूढो दशभुजः कृते नाम्ना विनायकः ।
तेजोरूपी महाकायः सर्वेषां वरदो वशी ॥
त्रेतायुगे बर्हिरूढः षड्भुजोऽप्यर्जुनच्छविः ।
मयूरेश्वरनाम्ना च विख्यातो भुवनत्रये ॥
द्वापरे रक्तवर्णोऽसावाखुरूढश्चतुर्भुजः ।
गजानन इति ख्यात पूजित सुरमानवैः ॥
कलौ तु धूम्रवर्णोऽसावश्वारूढो द्विहस्तवान् ।
धूम्रकेतुरिति ख्यातो म्लेच्छानीकविनाशकृत् ॥

(१ । १८–२१)

सिंहपर स्थित पञ्चवक्त्र गजाननका वर्णन है—

सिंहोपरि स्थितं देवं पञ्चवक्त्रं गजाननम् ।
दशबाहुं त्रिनेत्रं च जाम्बूनदसमप्रभम् ॥
प्रसादाभयदातारं पात्रं पूरितमोदकम् ।
स्वदन्तं सव्यहस्तेन बिभ्रतं चापि सुव्रते ॥

(शिल्परत्न २५ ॥ ३०)

'सिंहपर विराजमान गजाननदेव पञ्चमुख, दसबाहु, त्रिनेत्र, जाम्बूनद सुवर्णके समान कान्तिमान् तथा प्रसाद और अभयके दाता हैं, बायें हाथमें लड्डुओंसे भरा पात्र लेकर दाहिने हाथसे उनका आस्वादन कर रहे हैं ।'

श्रीगणेशजीने सिंहारूढ हो गृत्समदमुनिके तपसे प्रसन्न होकर उनको दर्शन दिया । वे सहस्र सूर्योंके प्रकाश-सरीखे तेजसे संसारको प्रकाशित कर रहे थे; उनके कर्णोंसे फट-फट की आवाज हो रही थी; उनके भालदेशमें चन्द्रमा शोभित था, गलेमें कमलकी माला थी; उनके दस भुजाएँ थीं, सर्पका यज्ञोपवीत था; वे सिद्धि-बुद्धिसे युक्त थे । उनका स्वरूप अनिर्वाच्य है—

सिंहारूढो दशभुजो व्यालयज्ञोपवीतवान् ।
कुङ्कुमागुरुकस्तूरीचारुचन्दनचर्चितः ॥

सिद्धिबुद्धियुतः श्रीमान् कोटिसूर्याधिकद्युतिः ।
अनिर्वाच्यस्वरूपोऽपि लीलयाऽऽसीत् पुरो मुनेः ॥
(गणेशपुराण, उपा० ३७ । १२-१३)

देवताओंकी स्तुतिसे प्रसन्न हो श्रीगणेशने सिंहारूढ़ होकर उन्हें अपने दर्शनसे कृतार्थ किया था—

'ततस्ते ददृशुर्देवं सिंहारूढं विनायकम् ।'
(गणेशपुराण, क्रीडा ७८ । २१)

वर्णन मिलता है कि वामनने कश्यपके आदेशसे षडक्षर-मन्त्रका जप करके गणेशजीको प्रसन्न किया । तब वे प्रकट हो गये । उस समय वे मयूरवाहन थे—

..............'आविरासीत् सिद्धिबुद्धियुक् ॥
मयूरवाहनो देवः शुण्डादण्डविराजितः ।
(गणेशपुराण, क्रीडा० ३१ । ९-१०)

श्रीगणेशजीका सर्वप्रसिद्ध वाहन 'मूषक' है । 'गणेशसहस्र-नामस्तोत्र'के ६६ वें श्लोकमें उन्हें 'आखुवाहनः—आखुवाहन' कहा गया है ।

'रूपमण्डन'में उन्हें मूषकारूढ-विशेषणसे भूषित किया गया है—

दन्तं च परशुं पशं मोदकांश्च गजाननः ।
गणेशो मूषकारूढो बिभ्राणस्त्वर्कसन्निभः ॥

आखुवाहनके रूपमें श्रीगणेशजीके अनेक ध्यान उपलब्ध होते हैं । एक ध्यानमें निरूपण है कि 'हाथोंमें पाशाङ्कुश धारण करनेवाले, आम्रफल खानेवाले, मूषकपर सवार रक्त-वर्णके श्रीगणेशजी हमारे समस्त विघ्नोंको नष्ट कर दें'—

पाशाङ्कुशास्वदन्ताम्रफलवानाखुवाहनः ।
विघ्नं निहन्तु नः सर्वं रक्तवर्णो विनायकः ॥
(शारदातिलक)

उन्होंने वाहनरूपमें मूषककी प्राप्ति भगवती वसुंधरासे की थी । उल्लेख है—

'वसुंधरा ददौ तस्मै वाहनाय च मूषकम् ।'
(ब्रह्मवैवर्तपु०, गणपति० १३ । १२)

उनके मूषकको वाहनरूपमें प्राप्त करनेका एक विवरण बाबू सम्पूर्णानन्दने अपनी पुस्तक 'गणेश'में यों दिया है—'गणेश-का गजमुखासुर दैत्यसे युद्ध हुआ था । उसमें उनका एक दाँत टूट गया था । उन्होंने टूटे दाँतसे उसपर ऐसा प्रहार किया कि वह घबराकर चूहा बनकर भागा; पर गणेशजीने उसे पकड़ लिया । उसी समयसे वह दैत्य उनका वाहन बन गया ।'

श्रीव्यासजीने मूषकारूढ गणेशकी वन्दना की है—

मूषकोत्तममारुह्य देवासुरमहाहवे ।
योद्धुकामं महावाहुं वन्देऽहं गणनायकम् ॥
(पद्मपुराण, सृष्टि० ६६ । ४)

श्रीगणेशजीका स्वरूप मानवीय बुद्धिद्वारा अग्राह्य है । उनका रूप उनकी कृपासे ही ग्राह्य अथवा ज्ञेय है । सिंहासन-पर सिद्धि-बुद्धिसे युक्त तथा समस्त अलंकारों और आभूषणोंसे भूषित गजेन्द्रवदन सिन्दूराभ गणपतिका सौन्दर्य वर्णनातीत होते हुए भी पुण्यवानोंके द्वारा आस्वाद्य है । वे गणाधीश्वर हैं, गणराजराजेश्वर हैं । उनकी पूजामें साक्षात् जगज्जननी अम्बिका परमेश्वरी उन्हें स्वर्णसिंहासन प्रदान करती हैं । हिमवान्‌द्वारा पार्वतीजीको गणेश-मूर्तिके पूजन-विधानमें भगवतीद्वारा उन्हें सम्बोधित करनेके प्रसङ्गमें निरूपण है—

स्वर्णसिंहासनं दिव्यं नानारत्नसमन्वितम् ।
मत्समर्पितं मया देव तत्र त्वं समुपाविश ॥
(गणेशपु०, उपा० ४९ । २५)

सौन्दर्यमण्डित तथा अनन्तानन्दसुख-समन्वित श्रीगणेशके सिंहासनकी महिमाका चिन्तन अत्यन्त मङ्गलप्रद और सिद्धि-प्रदायक है । सिंहासनकी प्राप्ति उन्हें शक्रसे हुई थी—

'रत्नसिंहासनं शक्रः'
(ब्रह्मवैवर्तपु०, गणपति० १३ । ८)

महामति पुष्पदन्तने 'गणेशमहिम्नःस्तोत्र'के १७वें श्लोकमें सिंहासनस्थ गणपतिका सौन्दर्य वर्णन किया है । बड़ा ही ललित ध्यान है—

अनर्घ्यालंकारैररुणवसनैर्भूषिततनु'
करीन्द्रास्यः सिंहासनमुपगतो भाति बुधराट् ।
स्मितास्यात्तन्मध्येऽप्युदितरविबिम्बोपमरुचिः
स्थिता सिद्धिर्वामे मतिरितरगा चामरकरा ॥

श्रीगणेशजीके दिव्य रत्नसिंहासनका समलंकरण दिव्य रत्नछत्रसे सम्पन्न होता है । उन्हें रत्नछत्रकी प्राप्ति वरुण देवतासे हुई थी । ब्रह्मवैवर्तपुराणमें उल्लेख है—

'रत्नच्छत्रं च वरुणः' (गणपति० १३ । ९)

श्रीगणेशजीकी वेष-भूषा, अलंकार, पार्षद तथा आयुध और वाहन आदि—सब-के-सब दिव्य हैं । इनके चिन्तन-मात्रसे मनुष्यका हृदय स्वानन्दलोकके अधिपति श्रीगणेश-जीकी सहज भक्तिका अधिकारी होकर समस्त सिद्धियोंसे सम्पन्न हो जाता है ।

मूषक-वाहन

(लेखक—श्रीसोमचैतन्यजी श्रीवास्तव, एम्० ए०, एम्० ओ० एल्०)

ब्रह्मके तीन रूप हैं—स्थूल, सूक्ष्म एवं पर। स्थूल रूप प्रपञ्चात्मक विश्वके रूपमें अभिव्यक्त वैराजरूप है, जिसके स्थूल प्रतीक हैं—अग्नि, विद्युत्, सूर्य एवं चन्द्र। सूक्ष्म रूप हिरण्यगर्भरूप है, जो सूत्रात्मा या अव्यक्तरूपसे सम्पूर्ण विश्वका धारण, संचालन एवं नियन्त्रण करता है। यह स्थूल जगत्के आधाररूपमें स्थित सूक्ष्म जगत्का अधीश्वर है। पिण्डदेहगत सूक्ष्म शरीरमें हृदयचक्र, भ्रूमध्य एवं ब्रह्मरन्ध्रमें नादब्रह्म अथवा ज्योतिब्रह्मके रूपमें इसका साक्षात्कार होता है। ब्रह्मका पर रूप सबका साक्षी, अविकारी, अच्युत, सच्चिदानन्दात्मक परतत्त्व है। नानाविध देवता इस ब्रह्मके ही अङ्ग-प्रत्यङ्गरूप विशिष्ट शक्तियाँ हैं, जो स्वतन्त्र देवरूपकी भाँति प्रतीत होते हुए विश्व-प्रशासनके एक-एक विशिष्ट क्षेत्रका अधिपतित्व करते हैं। इन देवोंके भी दो रूप हैं—अमूर्त्त और मूर्त्त। पञ्चभूतात्मक जगत्में ये अमूर्त्तरूपसे निवास करते हैं एवं अपने-अपने सूक्ष्म देवलोकमें अपने मूर्त्तरूपमें स्थित होते हैं। दिव्य मूर्त्तरूपमें देवोंके अपने-अपने वाहन, रथ, आयुध आदि देवोंका अपना-अपना तेज या शक्ति ही होती है—यह बात निरुक्तमें स्पष्टरूपसे बता दी गयी है। प्रत्येक देवताके वाहन-आयुधादि देवताका तेजरूप ही होता है, उससे भिन्न नहीं; अतएव देवपूजामें देवताके वाहन-आयुधादिकी देवरूपमें ही पूजा होती है, यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये।

गणपत्यथर्वशीर्ष उपनिषद्के अनुसार श्रीगणपति परब्रह्मकी ज्ञानमयी एवं वाङ्मयी शक्तिका प्रतिनिधित्व करते हैं, अतः उन्हें प्रत्यक्ष वाङ्मयरूप चिन्मय ब्रह्म कहा गया है। सूक्ष्म शरीरमें मूलाधारचक्र परावाक्का केन्द्र है। ज्ञानकी अभिव्यक्ति वाणीद्वारा ही होती है, अतः उन्हें वाणीका नियन्ता देवता होनेके कारण मूलाधारमें स्थित माना गया है। वाक् या नाद आकाशका गुण है, अतः गणेश आकाशतत्त्वके अधिपति भी हैं। यों सूक्ष्मरूपमें गणपति भूमितत्त्व एवं आकाशतत्त्व—दो तत्त्वोंके स्वामी हैं। भूमितत्त्वके स्वामी होनेके कारण वे भौतिक जीवनसे सम्बन्धित सभी सिद्धियोंके दाता एवं विघ्नहर हैं तथा आकाशतत्त्वके स्वामी होनेके कारण बुद्धि एवं वाणीके अधिष्ठाता होनेसे अविद्यारूप महाविघ्नका नाश करके ब्रह्मज्ञानरूपी महासिद्धि देकर मोक्ष प्रदान करते हैं। इसीलिये वे ज्ञानियों एवं योगियोंके उपास्य हैं तथा गुरुके भी गुरु हैं। वराहपुराण इस तथ्यकी पुष्टि करता है कि गणेश पृथ्वीतत्त्व एवं आकाशतत्त्व—दोनोंके अधिपति हैं;[1] अतएव सभी देवोंमें उनकी महिमा अधिक है। पृथ्वीतत्त्वसे सम्बन्धित रूप ही उनका स्थूल रूप है, जो विघ्नकर, विघ्नहर एवं मङ्गलदायक है।

निदानतः शास्त्रकी परिभाषाके अनुसार देवताका वाहन उसका अपना तेज ही होता है। देवताको उसके तेजके अतिरिक्त अन्य कौन उसे धारण एवं वहन कर सकता है। पर यह बात भी ध्यानमें रखनेकी है कि एक ही देवतत्त्व सत्त्व, रज, तम—इन तीनों गुणोंके तारतम्यसे, परस्पर न्यून-सम-अधिकतम मात्रारूपमें मिश्रणसे तथा इनका पञ्चतत्त्वोंके साथ संयोग होनेके कारण नाना रूप धारण कर लेता है। सत्त्वगुणके रूपमें स्थित ज्ञान और प्रकाश ही तमोगुणके क्षेत्रमें आकर नानाविध अविद्या और अन्धकारका रूप धारण कर लेते हैं। इसी प्रकार भौतिक जीवनके निम्न धरातलमें देवताका वाहन उन अज्ञान और अन्धकारकी शक्तियोंका भी प्रतीक बन जाता है, जिसका नियन्त्रण वह देवता करता है।

परमात्मा सभी प्राणियोंके हृदयमें अन्तर्यामी-रूपसे निवास करता हुआ उनके पिण्ड-विश्वका धारण, पोषण, संचालन एवं विनाश कर रहा है। प्रत्येक प्राणी (चाहे वह मूषक-समान अति लघुकाय हो या हस्ति-सदृश अति विशालकाय) का देह ही देववाहन है। यह सूक्ष्म रहस्य भी नाना पशु-पक्षियोंकी देववाहनके रूपमें कल्पना करके बताया गया है। श्रीगणपति विशालकाय हैं एवं उनका वाहन मूषक अति लघुकाय है। सरसरी तौरपर देखनेसे यह बात असम्भव एवं हास्यास्पद प्रतीत होती है, पर थोड़ा बुद्धिपूर्वक विचार करें तो यह संकेत मिलता है कि

1. पृथिव्यादिगुणस्त्वेष गजवक्त्रो भविष्यति।
(वराहपु० १७। ६२)
ततो गणपतिर्वाक्यमाकाशाख्योऽब्रवीत्तदा।
(वराहपु० १७। ३४)

आत्मतत्त्व न तो भारी है और न हल्का । वह अणुसे भी अणु है एवं महान्‌से भी महान् है । उसका सभी शरीरोंमें वास है । जल या अग्निकी भाँति चिन्मय आत्मा जिस शरीरको आश्रयरूपमें ग्रहण करता है, वह तद्रूप ही हो जाता है । इससे आत्माकी सर्वव्यापकता, सूक्ष्मरूपता एव चिन्मयतामें अन्तर नहीं आता । मूषकपर स्थित गणपतिका रूप आत्मस्वरूपके इस तथ्यकी ओर भी मनन करनेके लिये संकेत करता है ।

श्रीगणपतिके वाहनरूपमें स्थित मूषक 'बृहदारण्यक उपनिषद्'में वर्णित अन्तर्यामी ब्रह्मका प्रतीक है । मूषक घरके भीतर घुसकर चीजोंको मूसा करता है, पर घरके लोग न उसे जानते हैं और न उसे बिलमें होनेके कारण देख पाते हैं; अन्तर्यामी ब्रह्म भी सृष्टिके सभी पदार्थोंमें अन्तर्यामी रूपसे स्थित है, वही सबके हृदयमें निवास कर सबको गति दे रहा है तथा वही वस्तुतः सृष्टिके भोगोंका भोक्ता है । वह सभीके शरीरमें स्थित रहते हुए अपनी मायासे गूढ होकर मूषकवत् चोरकी भाँति चुपचाप भोगोंको भोगा करता है, परंतु मोह, अविद्या एव अज्ञानसे युक्त प्राणी उसे नहीं जानते—

ईश्वरः सर्वभोक्ता च चोरवत्तत्र संस्थितः ।
स एव मूषकः प्रोक्तो मनुजानां प्रचालकः ।
मायया गूढरूपः सन् भोगान् भुङ्क्ते हि चोरवत् ॥

(मुद्गलपुराण)

लोग भोक्ता होनेका अभिमान त्यागकर मूषकवत् हृदय बिलमें स्थित सर्वान्तर्यामी ब्रह्मको जानें और उसकी उपासना करें—यह मूषक-वाहनका प्रथम तात्पर्य है ।

उपासक 'शुनि चैव श्वपाके च'—इस गीतावाक्यके अनुसार मूषक आदि सभी जन्तुओंमें समभावसे व्याप्त ब्रह्मका अनुभव करें—यह भी संकेतित है ।

बुद्धि और विद्याके अधिष्ठाता गणेशका वाहन मूषक सारासारविवेचनी, तत्त्वनिरूपिणी, विवेकमयी बुद्धि, प्रतिभा एव मेधाका प्रतीक है । मूषकका काम किसी भी वस्तुको खण्ड-खण्डरूपमें कुतर डालना है, अर्थात् उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गका विश्लेषण कर देना है, अतः यह वस्तुस्वरूपका विश्लेषण करनेवाली मीमांसाकारिणी बुद्धिका प्रतीक है । ऐसी मीमांसिका बुद्धिके होनेपर ही ज्ञान-क्षेत्रमें प्रगति, सत्-असत्‌का ज्ञान, प्रतिभा एव मेधाका विकास तथा सत्य एव नित्य ज्ञानकी प्राप्ति होती है । जो लोग विद्याप्राप्तिके हेतु गणपतिकी उपासना करते हैं, उन्हें अपनी बुद्धिको पवित्र एव शुभ विचारोंसे युक्त अर्थात् विवेकयुक्त करके विविध विद्याओंके अध्ययन, मनन और निदिध्यासनद्वारा विकसित करना चाहिये ।

बुद्धि और मेधाकी प्राप्तिके लिये ब्रह्मचर्य-पालन अत्यन्त आवश्यक है । ब्रह्मचर्यकी सिद्धिसे ही वीर्यलाभ होता है अर्थात् शरीर, प्राण, मन एव बुद्धिकी शक्तियोंका अपूर्व विकास होता है । बिना वीर्यलाभके शक्तिलाभ नहीं हो सकता और शक्तिलाभके बिना विघ्न-बाधाओंको दूरकर जीवन-सग्राममें विजयप्राप्ति एव सिद्धि नहीं हो सकती । श्रीगणेश स्वयं ब्रह्मचारी हैं । मूलाधार-चक्र कामशक्तिका केन्द्र भी है, जहाँ गणपतिका वास है । यह भी संकेत करता है कि शक्ति एवं सिद्धि पानेके लिये कामशक्तिरूपी मूषकको वाहन बनाना होगा, उसपर पूर्ण नियन्त्रण करना होगा ।

ऋग्वेदके एक मन्त्रमें उल्लेख है कि एक ऋषि मूषक-बाधासे पीड़ित हैं, चूहे उनके जननेन्द्रियको कुतर रहे हैं और वे उनसे त्राण पानेके लिये देवोंसे प्रार्थना करते हैं । इससे यह संकेत मिलता है कि मूषक काम-भावना, कामावेग और कामातिचारका भी प्रतीक है । काम देववृत्ति नहीं है, यह निम्न प्राण-लोककी, पाशविक स्तरकी आसुरी वृत्ति है । काम-कलुषित चित्तमें देवताका वास नहीं होता । देव-सांनिध्य पानेके लिये तथा अध्यात्म-जीवनमें प्रवेश करनेके लिये काम-विमुख हो काम-भावनापर पूर्ण नियन्त्रण तथा पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन प्रथम शर्त है । साधकका आचार-विहार देवताके अनुकूल ही होता है । अतः श्रीगणपतिके उपासकके लिये मूषकवत् अवचेतनामें स्थित सभी छिपी हुई कामवृत्तियोंपर नियन्त्रण पाना अत्यन्त आवश्यक है ।

मूषक बिलमें छिपकर रहनेवाला अन्धकारका प्राणी है । इस रूपमें वह उन सभी अन्धकारमें रहनेवाली अज्ञानमयी शक्तियोंका प्रतीक है, जो ज्ञान और प्रकाशसे डरती हैं तथा अँधेरेमें छिपकर हानि पहुँचाती हैं । जो गणपति बनना चाहता है, उसे इन सब अन्धकारमें छिपकर रहनेवाली व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और मानवताकी घातक शक्तियोंका नियन्त्रण एव जीवनके सभी क्षेत्रको ज्ञानके प्रकाशसे पूर्ण करना होगा । साधकको निरन्तर सावधान

एवं जागरूक रहकर देखना होगा कि उसके शरीर, प्राण, मन और बुद्धिके क्षेत्रमें कहीं कोई कोना ऐसा तो नहीं है, जहाँ अन्धकारकी इन शक्तियोंका गुप्त वास है तथा जो असावधानीके क्षणोंमें उसपर आक्रमण कर उसकी अध्यात्म-साधनाकी बहुमूल्य सम्पत्तिको कुतर-कुतरकर नष्ट कर रही हैं। मूषकवाहन निरन्तर जागरूक रहने एवं सर्वत्र सर्वदा ज्ञानप्रकाशपूर्ण रहनेका संदेश देता है।

भौतिक जीवन अन्नकी बहुलता एवं सम्पन्नतापर अवलम्बित है। अध्यात्म-साधनाका प्रारम्भ अन्नमय कोषकी उपासनासे प्रारम्भ होता है। अतएव तैत्तिरीय उपनिषद् ३।९का ब्रह्मसाधकके लिये आदेश है—'अन्नं बहु कुर्वीत। पर्याप्त अन्न उपजाओ और अन्नका संग्रह कर अतिथि आदिका पोषण करो।' पृथ्वीको धान्यसे सम्पन्न करना अन्न-ब्रह्मकी उपासना है। धान्योत्पत्ति एवं कृषिका सबसे बड़ा शत्रु मूषक है। पृथ्वीतत्त्वके अधिपति एवं जीवोंकी मङ्गल-सिद्धिके देवता श्रीगणेशका मूषक-वाहनत्व यह संकेत देता है कि जीवनमें प्रचुर पौष्टिक धान्यकी उपलब्धिके लिये मूषक-जैसे कृषि-विनाशक जन्तुओंका पूर्ण नियन्त्रण आवश्यक है।

इस प्रकार श्रीगणपतिका वाहन मूषक भौतिक जीवनसे लेकर अध्यात्म-जीवनतकके लिये नाना अभिप्रायोंके सार्थक एवं गम्भीर संकेत देता है। देवोपासकोंको इन संकेत-रहस्योंको समझकर उनके अनुसार आचरण करना चाहिये।

'परब्रह्मरूपं गणेशं भजेम'

ऋषिरुवाच

अजं निर्विकल्पं निराकारमेकं निरानन्दमानन्दमद्वैतपूर्णम्। परं निर्गुणं निर्विशेषं निरीहं परब्रह्मरूपं गणेशं भजेम॥
गुणातीतमानं चिदानन्दरूपं चिदाभासकं सर्वगं ज्ञानगम्यम्। मुनिध्येयमाकाशरूपं परेशं परब्रह्मरूपं गणेशं भजेम॥
जगत्कारणं कारणज्ञानरूपं सुरादिं सुखादिं युगादिं गणेशम्। जगद्व्यापिनं विश्ववन्द्यं सुरेशं परब्रह्मरूपं गणेशं भजेम॥
रजोयोगतो ब्रह्मरूपं श्रुतिज्ञं सदा कार्यसक्तं हृदाऽचिन्त्यरूपम्। जगत्कारणं सर्वविद्यानिदानं परब्रह्मरूपं गणेशं नताः स्म॥
सदा सत्त्वयोगं मुदा क्रीडमानं सुरारीन् हरन्तं जगत्पालयन्तम्। अनेकावतारं निजज्ञानहारं सदा विश्वरूपं गणेशं नमामः॥
तमोयोगिनं रुद्ररूपं त्रिनेत्रं जगद्धारकं तारकं ज्ञानहेतुम्। अनेकागमैः स्वं जनं बोधयन्तं सदा सर्वरूपं गणेशं नमामः॥
तमस्तोमहारं जनाज्ञानहारं त्रयीवेदसारं परब्रह्मसारम्। मुनिज्ञानकारं विदूरेविकारं सदा ब्रह्मरूपं गणेशं नमामः॥
निजैरोषधीस्तर्पयन्तं कराद्यैः सुरौघान् कलाभिः सुधास्राविणीभिः। दिनेशांशुसंतापहारं द्विजेशं शशाङ्कस्वरूपं गणेशं नमामः॥
प्रकाशस्वरूपं नभोवायुरूपं विकारादिहेतुं कलाधारभूतम्। अनेकक्रियानेकशक्तिस्वरूपं सदा शक्तिरूपं गणेशं नमामः॥
प्रधानस्वरूपं महत्तत्त्वरूपं धराचारिरूपं दिगीशादिरूपम्। असत्सत्स्वरूपं जगद्धेतुरूपं सदा विश्वरूपं गणेशं नताः स्मः॥
त्वदीये मनः स्थापयेदङ्घ्रियुग्मे जनो विघ्नसंघातपीडां लभेत। लसत्सूर्यबिम्बे विशाले स्थितोऽयं जनो ध्वान्तपीडां कथं वा लभेत॥
वयं भ्रामिताः सर्वथाज्ञानयोगादलब्धास्तवाङ्घ्रिं बहून् वर्षपूगान्। इदानीमवाप्तास्तवैव प्रसादात्प्रपन्नान् सदा पाहि विश्वम्भराद्य॥
इदं यः पठेत्प्रातरुत्थाय धीमान् त्रिसंध्यं सदा भक्तियुक्तो विशुद्धः। सुपुत्रान् श्रियं सर्वकामांल्लभेत परब्रह्मरूपो भवेदन्तकाले॥
एवं स्तुतो गणेशस्तु संतुष्टोऽभून्महामुने। कृपया परयोपेतोऽभिधातुमुपचक्रमे॥

इति ऋषिकृतो श्रीगणपतिस्तवः सम्पूर्णः।

ऋषि बोले—जो अजन्मा, विकल्परहित, निराकार, अद्वितीय, लौकिक आनन्दसे शून्य, आत्मानन्दस्वरूप, अद्वैतभावसे पूर्ण, सर्वोत्कृष्ट, निर्गुण, निर्विशेष, निरीह एवं परब्रह्मस्वरूप हैं, उन गणेशका हम भजन करें। जिनका मान (स्वरूप निरूपण) तीनों गुणोंसे अतीत है, जो चिदानन्दस्वरूप, चिदाभासक, सर्वव्यापी, ज्ञानगम्य, मुनियोंके ध्येय, आकाशस्वरूप एवं परमेश्वर हैं, उन परब्रह्मरूप गणेशका हम भजन करें। जो जगत्के कारण हैं, कारणज्ञान जिनका स्वरूप है, जो देवताओं, सुखों और युगोंके आदिकारण हैं, जो प्रमथगणोंके स्वामी, विश्वव्यापी, जगद्वन्द्य तथा देवेश्वर हैं, उन परब्रह्मरूप गणेशका हम भजन करें। जो रजोगुणके योगसे ब्रह्माका रूप धारण करते हैं, वेदोंके ज्ञाता हैं और सदा सृष्टिकार्यमें संलग्न रहते हैं, जिनका पारमार्थिक रूप मनसे अचिन्त्य है, जो जगत्की उत्पत्तिके हेतु तथा सम्पूर्ण विद्याओंके आदिकारण हैं, उन परब्रह्मरूप गणेशको हम नमस्कार करते हैं। जो सदा सत्त्वगुणसे युक्त विष्णुरूप हैं, आनन्दसे खेलते रहते हैं, असुरोंका नाश करते और जगत्की रक्षामें संलग्न रहते हैं, जिनके अनेक अवतार हैं

तथा आत्मज्ञान ही जिनका कण्ठहार है, उन विश्वरूप गणेशको हम सदा नमस्कार करते हैं। जो तमोगुणके सम्पर्कसे रुद्ररूप धारण करते हैं, जिनके तीन नेत्र हैं, जो जगत्‌के कर्ता, धारक और नाशके हेतु हैं तथा जो अनेक आगमोंके वचनोंद्वारा अपने भक्तजनोंको सदा तत्त्वज्ञानोपदेश दिया करते हैं, उन सर्वरूप गणेशको हम नमस्कार करते हैं। जो अज्ञानान्धकारराशिके नाशक, भक्तजनोंके अज्ञानके निवारक, तीनों लोकोंके गुरुस्वरूप, दयासागर, मुनियोंको ज्ञान देनेवाले तथा मनोविकारोंसे सदा दूर रहनेवाले हैं, उन ज्ञानरूप गणेशको हम नमस्कार करते हैं। जो अपनी किरण आदिसे ओषधियोंको तृप्त एवं पुष्ट करते हैं, अमृतवर्षिणी कलाओंद्वारा देवसमुदायको तृप्त किया करते हैं, सूर्य-किरणोंसे उत्पन्न संतापको हर लेते हैं और द्विजोंके राजा हैं, उन चन्द्रस्वरूप गणेशको हम नमस्कार करते हैं। जो प्रकाशस्वरूप, आकाश एवं वायुरूप, विकार आदिके हेतु और कलाओंके भारको वहन करनेवाले हैं, अनेक क्रियाओंकी अनेकानेक शक्तियाँ जिनकी स्वरूपभूता हैं, उन सर्वाकार गणेशको हम सदा नमस्कार करते हैं। प्रधान, महत्तत्त्व, भूतलचारी प्राणी तथा दिक्पाल आदि जिनके स्वरूप हैं, जो सदसत्स्वरूप एवं जगत्‌के कारणरूप हैं, उन विश्वरूप गणेशको हम सदा नमस्कार करते हैं। गणनाथ! जो आपके युगल चरणोंमें मन लगाये, वह मनुष्य भी यदि विघ्नसमूहजनित पीडा प्राप्त करे तो आश्चर्य है! शोभाशाली, विशाल सूर्यमण्डलके प्रकाशमें स्थित हुआ मानव अन्धकारजनित क्लेश कैसे प्राप्त कर सकता है! विश्वम्भर! हम अज्ञानयोगसे बहुत वर्षोंतक आपके चरणारविन्दोंको न प्राप्त कर सकनेके कारण सर्वथा भटकते रहे हैं। अब आपकी ही कृपासे आपके चरणोंकी शरणमें आ गये हैं। अतः हे आदिदेव! आप सदा हमारी रक्षा करें।

जो बुद्धिमान् मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर भक्तियुक्त विशुद्धभावसे सदा तीनों समय इस स्तोत्रका पाठ करे, वह उत्तम पुत्र, लक्ष्मी तथा सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त कर ले और अन्तकालमें परमात्मरूप हो जाय।

महामुने! इस प्रकार ऋषियोंके स्तुति करनेपर भगवान् गणेश बहुत सन्तुष्ट हुए और बड़ी कृपा करके कुछ कहना आरम्भ किया।

इस प्रकार ऋषिकृत गणपतिस्तव सम्पूर्ण हुआ।

तुम कौन ?

जन-जनके मानस-पटलपर अपने महिमामय चरणोंकी छाप छोड़नेवाले तुम कौन हो ?

क्या नर, क्या सुर, सभीकी विघ्न-बाधाओंको विनष्टकर सफलताके मार्गको प्रशस्त करनेवाले तुम कौन हो ?

प्रारब्धके कुअङ्कपर भी अपना अङ्कुश रखकर सुख और समृद्धिका सतत वितरण करनेवाले तुम कौन हो ?

काल और कर्मको अपने पाशसे आबद्धकर यत्र-तत्र-सर्वत्र निज भक्तोंको जय और कीर्तिका उन्मुक्त दान करनेवाले तुम कौन हो ?

अपनी मङ्गल मुसकानसे सर्वदा सर्वत्र सभीको अनन्त मोदकता प्रदान करनेवाले तुम कौन हो ?

पोथियोंकी पङ्क्तियोंने और संतोंकी सूक्तियोंने तुम्हारे अर्चनकी प्रेरणा दी। श्रद्धापूर्ण हृदयसे मैंने तुम्हारी अर्चना आरम्भ की। उस अर्चनाका समारम्भ भी तुम्हारे स्मरणसे ही हुआ।

श्रीतुलसीदासजीने तुम्हारा स्मरण किया तो तुमने उनका रामचरितमानस लिखवा दिया। श्रीवेदव्यासजीने तुम्हारा स्मरण किया तो तुमने उनका महाभारत ही लिख दिया। तुमने दोनोंका कार्य सम्पन्न कर दिया, फिर मेरी अर्चना सम्पन्न क्यों नहीं करते ?

हे महिमामय गणपति! अर्चनारम्भके पूर्व मैंने तुम्हारा स्मरण किया है। हे विघ्नविनाशक! मैं बार-बार तुमको वन्दन करती हूँ। हे मङ्गलमूर्ति! तुम मेरे मङ्गलका विधान करो। हे अमोघ दानी! मैं तुम्हारी शरण हूँ। हे गजानन! क्या तुम्हारा स्मरण विफल जायगा ?

मेरी अर्चनाकी सम्पन्नता और अभीष्टकी उपलब्धि ही तो वास्तविक परिचय देगी कि 'तुम कौन हो'।

—उर्मिला पोद्दार

श्रीगणेश-लीला

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

[भगवान्‌के लीला-अवतारोंके चरित विभिन्न पुराणों-शास्त्रोंमें विभिन्न रूपोंमें उपलब्ध होते हैं। भगवान् लीलाविहारी सर्वसमर्थ हैं एवं कल्पभेदसे उनके अनन्त अवतार हुए हैं; अतएव उनके चरित भी अनन्त हैं। 'हरि अनन्त हरिकथा अनन्ता' से संतशिरोमणि श्रीतुलसीदासजीने इसी भावको स्पष्ट किया है। वस्तुतः भगवान्‌के सभी चरित यथार्थ हैं एवं भक्तोंके प्राण हैं। प्रस्तुत प्रसङ्गका अध्ययन करते समय इस तथ्यको निरन्तर स्मृतिमें रखना चाहिये; तभी भगवान् श्रीगणेशकी लीलाओंके आस्वादनका वास्तविक आनन्द एवं फल प्राप्त हो सकेगा—सम्पादक]

प्रस्तावना

ॐ श्री ह्रीं क्लीं गणेश्वराय ब्रह्मस्वरूपाय चारवे। सर्वसिद्धिप्रदेशाय विघ्नेशाय नमो नमः[1] ॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, गणपतिखण्ड १३ । ३२)

सिद्धि-सदन श्रीगणेश सर्वात्मा शिव और धर्ममध्यनिवासिनी पार्वतीके प्राणप्रिय पुत्र तथा परम तेजस्वी, परम पराक्रमी षडाननके अग्रज हैं। कहीं-कहीं ये स्वयं उनके अनुज माने जाते हैं। ये खर्व (छोटे कदवाले), अरुणवर्ण, एकदन्त, गजमुख, शूर्पकर्ण, लम्बोदर, अरुण-वस्त्र, त्रिपुण्ड्रतिलक, मूषकवाहन, पार्वती-पुत्र, विद्या-वारिधि एवं मङ्गलकी मूर्ति हैं। भगवान् गणपति बुद्धिके अधिष्ठाता हैं। वे साक्षात् प्रणवरूप हैं। जिन्हें भौतिक सिद्धि चाहिये, वे इस युगमें गणेशजीको शीघ्र प्रसन्न कर पाते हैं[3]। पार्वतीनन्दन अत्यल्प श्रमसे ही मुदित और द्रवित हो जाते हैं। इन मङ्गलवपुके नाम-स्मरण, ध्यान, जप, आराधना एवं प्रार्थनासे मेधाशक्ति तीव्र होती है। समस्त कामनाओंकी पूर्ति और विघ्नोंका निवारण हो जाता है। त्रयतापका शमन एवं धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष करतलगत हो जाते हैं। मोदक-प्रिय गजमुखकी प्रसन्नतासे निरन्तर आनन्द-मङ्गलकी वृद्धि होती ही रहती है।

वेदविहित समस्त कर्मोंमें प्रथमपूज्य अम्बिकानन्दन गणेश नित्य देवता हैं, किंतु भिन्न-भिन्न कालों एवं अवसरोंपर जगत्‌के मङ्गलके लिये इनका मङ्गलमय लीला-प्राकट्य होता है। इनकी लीला और इनके कर्म अद्भुत और अलौकिक होते हैं। करुणामूर्ति गणेश सदा ही अधर्म, अनीति, अनाचार एवं पाप-तापका सर्वनाश कर साधु-परित्राण एवं सद्धर्मकी स्थापना कर उसका संवर्द्धन करते हैं।

---

१ इस मन्त्रका परिचय और माहात्म्य इस प्रकार है—

द्वात्रिंशदक्षरो मालामन्त्रोऽयं सर्वकामदः। धर्मार्थकाममोक्षाणां फलदः सर्वसिद्धिदः ॥
पञ्चलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिस्तु मन्त्रिणः। मन्त्रसिद्धिर्भवेद्यस्य स च विष्णुश्च भारते ॥
विघ्नानि च पलायन्ते तन्नामस्मरणेन च। महावाग्मी महासिद्धः सर्वसिद्धिसमन्वितः ॥
वाक्पतिर्जगतां यानि तस्य साक्षात् सुनिश्चितम्। महाकवीन्द्रो गुणवान् विदुषां च गुरोर्गुरुः ॥

(ब्रह्मवैवर्त०, गणपतिखं० १३ । ३४–३७)

'श्रीगणेशजीके इस मन्त्रमें बत्तीस अक्षर हैं। यह सम्पूर्ण कामनाओंका दाता, धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षका फल देनेवाला और सर्वसिद्धिप्रद है। इसके पाँच लाख जपसे ही साधकको मन्त्रसिद्धि प्राप्त हो जाती है। भारतवर्षमें जिसे मन्त्रसिद्धि हो जाती है, वह विष्णु-तुल्य हो जाता है। उसके नाम-स्मरणसे सारे विघ्न भाग जाते हैं। निश्चय ही वह महान् वक्ता, महासिद्ध, सम्पूर्ण सिद्धियोंसे सम्पन्न, श्रेष्ठ कवियोंमें भी श्रेष्ठ, गुणवान्, विद्वानोंके गुरुका गुरु तथा जगत्‌के लिये साक्षात् वाक्पति हो जाता है।'

२. सिद्धियोंके विवरणके लिये श्रीमद्भागवतके ११वें स्कन्धके १५वें अध्यायमें श्लोक ३से ८तक देखने चाहिये।

३. 'कलौ चण्डीविनायकौ।'

बुद्धि-विधाता गणपतिका प्राकट्य, उनका मङ्गलमय विग्रह एवं उनकी लीला—सभी अद्भुत एवं अलौकिक हैं। सभी आनन्दमयी एवं मङ्गलप्रदायिनी हैं। भक्तप्राणधन वृषभध्वजके पुत्र गजमुखकी विभिन्न अवसरोंकी विभिन्न लीला-कथाएँ अनुपम, आदर्श एवं मनोहर हैं। उन कथाओंमें शङ्का उचित नहीं।[1]

> संदेहो नात्र कर्तव्यः शंकरः सृष्टिकृन्मुने। स हि सर्वाधिपः शम्भुर्निर्गुणः सगुणोऽपि हि ॥
> तल्लीलयाखिलं विश्वं सृज्यते पाल्यते तथा। विनाश्यते .... ॥
>
> (शिवपु०, रुद्र सं०, कु० खं० १३। ७८)

यह कल्याणकारिणी मनोहर कथा सुनाते हुए लोकपितामह ब्रह्माने महामुनि नारदसे कहा—'मुने! इस विषयमें तुम्हें संदेह नहीं करना चाहिये; क्योंकि भगवान् शम्भु कल्याणकारी, सृष्टिकर्ता और सबके स्वामी हैं। वे ही सगुण और निर्गुण भी हैं। उन्हींकी लीलासे सारे विश्वकी सृष्टि, रक्षा और विनाश होता है।'

भगवान् श्रीगणेशकी लीला-कथा आरम्भ करनेके पूर्व उनके भ्राता कुमार कार्तिकेयके चरितका संक्षेपमें परिचय दे देना उपयुक्त होगा।

कुमार कार्तिकेय

प्रातःस्मरणीया भगवती सती अपने प्राणाधार पति देव-देव महादेवजीका अपमान नहीं सह सकीं। अत्यन्त व्याकुल होकर उन्होंने अपने पिता दक्षके यज्ञमें ही योगाग्निके द्वारा अपना शरीर भस्म कर दिया। फिर वे हिमगिरि-पत्नी मेनाकी पुत्रीके रूपमें प्रकट हुईं। उन्होंने अपने जीवनसर्वस्व कर्पूर-गौर शिवकी प्राप्तिके लिये अत्यन्त कठोर तप किया। फलतः समयपर जगद्वन्द्य शिवके साथ उनका मङ्गल-परिणय हुआ। विवाहोपरान्त भगवान् शंकर वन्दनीया पार्वतीके साथ कैलासपर्वतपर लौट आये।

हिमगिरिनन्दिनी पार्वतीके प्रति त्रैलोक्यवन्दित आशुतोष शिवके हृदयमें अत्यधिक प्रीति थी। वे रमणीय उद्यानों और एकान्त वनोंमें शिवाके साथ विहार करने लगे। भगवती पार्वती अपने प्राणाराध्य पतिके साथ अत्यन्त प्रसन्न थीं।

एक बारकी बात है, शिवप्रिया माता पार्वती एक सरोवरके तटपर गयीं। सरोवरका जल अत्यन्त निर्मल और स्वच्छ था। उसमें स्वर्ण-वर्णके कमल खिले थे। भगवती उमाने पहले तो जल-विहार किया, फिर उसके रमणीय तटपर उन्होंने स्वच्छ एवं सुमिष्ट जल पीनेकी इच्छा की। उसी समय उन्होंने देखा कि पद्मपत्रमें जल लेकर छः कृत्तिकाएँ अपने घर जानेवाली ही हैं।

'देवियो! पद्मपत्रमें रखा हुआ जल मैं भी देखना चाहती हूँ।' गिरिजाने कृत्तिकाओंसे अत्यन्त मधुर वाणीमें कहा।

'भुवनपावनी देवि! हम तुम्हें एक शर्तपर यह जल दे सकती हैं।' कृत्तिकाओंने स्नेहसिक्त स्वरमें माता पार्वतीसे निवेदन किया—'तुम्हारे गर्भसे उत्पन्न होनेवाला पुत्र हममें भी मातृभाव रखे और हमारा भी पुत्र माना जाय। वह त्रैलोक्यविख्यात पुत्र हमारा रक्षक हो।'

'अच्छा, ऐसा ही हो।' शिवाने तत्क्षण वचन दे दिया।

कृत्तिकाएँ अत्यन्त प्रसन्न हुईं। उन्होंने कमलपत्रमें रखा हुआ स्वच्छ सलिल थोड़ा उमाको भी दिया। भगवती पार्वतीने कृत्तिकाओंके साथ उक्त मधुर जलका पान किया।

त्रिनेत्रकी प्राणवल्लभा पार्वतीके जल पीते ही तुरंत उनकी दाहिनी कोखसे एक रोग-शोक-निवारक परम तेजस्वी बालक उत्पन्न हुआ। तिमिरारिके तुल्य उसके शरीरसे प्रभापुञ्जका प्रसार हो रहा था। वह अग्नितुल्य तेजस्वी बालक स्वर्णके समान गौरवर्णका था। उसके मनोहर कर-कमलोंमें तीक्ष्ण शक्ति, शूल और अङ्कुश सुशोभित थे।

वह बालक कुत्सित दैत्योंके संहारके लिये प्रकट हुआ था, इस कारण 'कुमार' उसकी संज्ञा हुई। वह कृत्तिका-प्रदत्त जलसे शाखाओंसहित प्रकट हुआ था; वे कल्याणमयी शाखाएँ छहों मुखोंके रूपमें विस्तृत थीं; इन्हीं कारणोंसे वह विशाख, षण्मुख, स्कन्द, षडानन और कार्तिकेय आदि नामोंसे प्रख्यात हुआ।

> स गर्भो दिव्यसंस्थानो दीप्तिमान् पावकप्रभः।
> दिव्यं शरवणं प्राप्य ववृधे प्रियदर्शनः ॥

---

१. मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि। कोउ सुनि संसय करै जनि सुर अनादि जियँ जानि॥
(रामचरितमानस १। १००)

श्रीशिव-परिवारमें श्रीगणेश

ददृशुः कृत्तिकास्तं तु बालमर्कसमद्युतिम्।
जातस्नेहाश्च सौहार्दात् पुपुषुः स्तन्यविस्रवैः॥
अभवत् कार्त्तिकेयः स त्रैलोक्ये सचराचरे।
स्कन्नत्वात् स्कन्दतां प्राप्तो गुहावासाद् गुहोऽभवत्॥
(महा०, अनु० ८६ । १२-१४)

''वह कान्तिमान् शिशु अग्निके समान प्रकाशित हो रहा था। उसके शरीरकी आकृति दिव्य थी। वह देखनेमें बहुत ही प्रिय जान पड़ता था। वह दिव्य सरकण्डेके वनमें जन्म ग्रहण करके दिनों-दिन बढ़ने लगा। कृत्तिकाओंने देखा कि यह बालक अपनी कान्तिसे सूर्यके समान प्रकाशित हो रहा है, इससे उनके हृदयमें स्नेह उमड़ आया और वे सौहार्दवश अपने स्तनोंका दूध पिलाकर उसका पोषण करने लगीं। इसीसे चराचर प्राणियोंसहित त्रिलोकीमें वह कार्त्तिकेयके नामसे प्रसिद्ध हुआ। स्कन्दन (स्खलन) के कारण वह 'स्कन्द' कहलाया और गुहामें वास करनेसे 'गुह'-नामसे विख्यात हुआ।''

लोकपितामह ब्रह्मा, क्षीरोदधिशायी विष्णु, शचीपति इन्द्र और भगवान् भुवनभास्कर आदि समस्त देवताओंने चन्दन, माला, सुन्दर धूप, खिलौने, छत्र, चँवर, भूषण और अङ्गराग आदिके द्वारा कुमार षड्वदनका सेनापतिके पदपर अभिषेक किया। भगवान् श्रीविष्णुने उन्हें सब प्रकारके आयुध प्रदान किये। धनाधिपति कुबेर, अग्नि और वायुने उन्हें क्रमशः दस लाख यक्षोंकी सेना, तेज और वाहन अर्पित किये। सुर-समुदायने कुमार कार्त्तिकेयको अनन्त पदार्थ समर्पित किये। तदनन्तर देवताओंने घुटने टेककर स्कन्दकी स्तुति-प्रार्थना की*।

'देवताओ! आपलोग शान्त होकर बताइये कि मैं आपकी कौन-सी इच्छा पूरी करूँ?' देवताओंकी स्तुतिसे संतुष्ट होकर कुमारने उनसे कहा—'यदि आपके मनमें चिरकालसे कोई असाध्य कार्य भी करनेकी इच्छा हो तो कहिये।'

'कुमार! तारक-नामक प्रख्यात असुरराज सुर-समुदायका सर्वनाश कर रहा है।' देवताओंने अत्यन्त मधुर वाणीमें निवेदन किया—'वह अत्यन्त बलवान्, अजेय, क्रूर, दुराचारी एवं क्रोधी भी है। हमलोग उस असुरसे भयभीत और त्रस्त हैं। अतएव आप उक्त दुर्दमनीय तारकासुरका वध कीजिये। यही एक कार्य शेष रह गया है।'

'तथास्तु!' दुःखी देवताओंके वचन सुनते ही षडाननने कह दिया और भू-कण्टक तारकासुरका वध करनेके लिये वे देवताओंके पीछे-पीछे चल पड़े।

कार्तिकेयका आश्रय प्राप्त हो जानेपर सुरेन्द्रने अपना एक दूत भयानक आकृतिवाले अजेय तारक असुरके पास भेजा।

'असुरराज! देवराज इन्द्रने संदेश दिया है।' दूतने तारकासुरके पास जाकर कहा—'वे देवगण तुमसे युद्ध करने आ रहे हैं, तुम अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये जो भी प्रयत्न करना चाहो, कर लो।'

'निश्चय ही सुरेन्द्रको कोई आश्रय प्राप्त हो गया है।' दूतके चले जानेपर असुरराजने विचार किया—'अन्यथा वे ऐसी बात नहीं कह सकते थे।'

'ऐसा कौन वीर पुरुष है, जिसे मैंने अबतक परास्त नहीं किया है।' तारकासुर पुनः विचार कर ही रहा था कि उसे वन्दियोंके द्वारा बालक विशाखका स्तवन सुनायी पड़ा।

'तुम्हारा वध बालकके द्वारा होगा।' दैत्यराज तारकको पितामहका वर स्मरण हो आया। वह भयभीत हो गया, तथापि उसने शस्त्र धारण किया और अपनी दुर्दमनीय सेनाके साथ कुमारके सम्मुख डट गया।

'बालक! तू युद्ध क्यों चाहता है?' तारकासुरने अनुपम रूप-लावण्य-सम्पन्न सुकोमल कुमारको देखकर कहा—'जा, कन्दुक खेल। तू निरा बच्चा है। युद्ध बलात् तेरे सिरपर लाद दिया गया है। यह तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय हुआ है। अभी तुझे समझ नहीं है। जा, घर चला जा।'

'तारक! यहाँ शास्त्रार्थ नहीं करना है।' कुमारने स्पष्ट शब्दोंमें तारकासुरसे कहा—'भयंकर संग्राममें शस्त्रोंके द्वारा ही अर्थकी सिद्धि होती है। तुम मुझे शिशु समझकर मेरी अवहेलना न करो। विषधरका नन्हा बच्चा भी मार डालनेमें समर्थ होता है; बालसूर्यकी ओर भी दृष्टिपात करना कठिन होता है; अत्यन्त छोटे मन्त्रमें भी अद्भुत शक्ति होती है; इसी प्रकार मैं भी दुर्जय हूँ। तुम मुझे पराजित नहीं कर सकोगे।'

---

* कुमार कार्त्तिकेयके प्राकट्यकी पावन कथा महाभारत, शिवपुराण, स्कन्दपुराण, पद्मपुराण एवं ब्रह्मवैवर्त्त आदि पुराणोंमें विस्तारपूर्वक वर्णित है। कल्पभेदसे सभी कथाएँ सत्य हैं। यह अत्यन्त संक्षिप्त कथा पद्मपुराणके आधारपर लिखी गयी है।

कार्तिकेयका कथन पूर्ण भी नहीं हो पाया था कि धर्म-विध्वंसी असुरने उनके ऊपर वज्रतुल्य मुद्गरका प्रहार किया; किंतु कुमारने उसे अपने अमोघ तेजवाले चक्रसे बीचमें ही नष्ट कर दिया। असुरने अपने जिन-जिन भयंकर अस्त्रोंका प्रहार किया, वे सभी कुमारके द्वारा नष्ट हो गये। फिर पार्वतीकुमारने दैत्यपर अपनी भयानक गदा फेंकी। उसकी चोटसे पर्वताकार दैत्य तिलमिला उठा।

'निश्चय ही यह बालक असाधारण एवं दुर्जय शूरवीर है।' गदाघातसे व्याकुल तारकने मन-ही-मन सोचा—'अब निस्संदेह मेरी मृत्यु समीप आ गयी है।'

मृत्यु-भयसे भीत अजेय तारक काँप उठा। उसके ललाटपर स्वेद-कण झलकने लगे। उसकी यह दशा देखकर कालनेमि आदि दैत्यपतियोंने अत्यन्त वेगसे कुमारपर आक्रमण कर दिया; किंतु अमिततेजस्वी एवं परम पराक्रमी कार्तिकेय तनिक भी विचलित नहीं हुए। दैत्योंके भयानक प्रहार और विभीषिकाएँ उन्हें स्पर्शतक नहीं कर सकीं। उन्होंने दैत्यपतियोंके समस्त अस्त्र-शस्त्रोंको विदीर्ण कर दिया, किंतु दैत्य उनके भयानक प्रहारका निवारण करनेमें सर्वथा असमर्थ थे। कार्तिकेयके अस्त्रोंकी निरन्तर वर्षासे दैत्य-सेना क्षत-विक्षत हो गयी; धरतीपर जैसे रक्त-की सरिता प्रवाहित हो गयी और सर्वत्र दैत्य-वीरोंके रुण्ड-मुण्ड दीखने लगे। बड़ा भयानक दृश्य था।

रुद्रपुत्र कार्तिकेयके अस्त्रोंकी अनवरत वर्षासे दैत्य-दल विचलित ही नहीं, व्याकुल हो गया। अधीर होकर कालनेमि आदि भयानक देवशत्रु युद्ध छोड़कर पलायित हुए।

दैत्य-वाहिनी चतुर्दिक् भागी जा रही थी और किंनर-गण परम पराक्रमी कुमारके विजय-गीत गाने लगे। यह देखकर महाशूर तारक क्रोधसे उन्मत्त हो गया। उसने स्वर्ण-कान्तिसे सुशोभित अद्भुत गदासे कुमारपर भीषण प्रहार किया और इतने तीक्ष्ण शरोंकी वर्षा की कि कार्तिकेय-वाहन मयूर रक्तसे लथपथ हो भाग खड़ा हुआ।

'दुष्ट दैत्य; खड़ा रह' कुमारने अत्यन्त कुपित होकर तारकसे कहा। 'अब मैं तेरी जीवन-लीला समाप्त कर रहा हूँ। तू कुछ देर और अपने नेत्रोंसे इस संसारको देख ले।'

कुमारने क्रुद्ध होकर महान् तारकासुरपर अपनी शक्तिका प्रहार किया। शक्तिमूर्ति पार्वतीपुत्र कार्तिकेयकी वह अमोघ शक्ति केयूरकी खनखनाहटके साथ चली और सुर-शत्रु तारकके वज्र-तुल्य वक्षमें बड़े वेगसे प्रविष्ट हो गयी। तारकका हृदय विदीर्ण हो गया। उस अमित बलशाली अजेय दैत्यका विशाल निर्जीव शरीर धरतीपर गिर पड़ा।

तारक-वधसे धरतीका पातक कट गया। सभी सुखी हुए। देवगण विपत्तिनिवारक परमोपकारी महेश्वर-पुत्र कार्तिकेयका स्तवन करने लगे। उनकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। वे आनन्द-मग्न होकर हँसते हुए उछलने-कूदने तथा नृत्य करने लगे। उन्होंने अमिततेजस्वी कुमारकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और उन्हें अनेक वर प्रदान किये।

इस प्रकार हर्षित और पुलकित देवगण सर्वथा निश्चिन्त होकर अपने-अपने लोकोंके लिये प्रस्थित हुए।*

विभिन्न पुराणोंमें श्रीगणेशकी प्राकट्य-कथा एवं लीलाएँ

(क) पद्मपुराणमें

हिमगिरिनन्दिनी पार्वतीका पाणिग्रहण करनेके बाद भगवान् शंकर रमणीय उद्यानों और एकान्त वनोंमें उनके साथ विहार करने लगे। परमानन्द-प्रदायिनी भवानीके प्रति शुद्धात्मा शिवके हृदयमें अत्यधिक अनुराग था। एक बारकी बात है—शंकरेच्छानुवर्तिनी पार्वतीने सुगन्धित तैल और चूर्णसे अपने शरीरमें उबटन लगवाया और उससे जो मैल गिरा, उसे हाथमें उठाकर उन्होंने एक पुरुषकी आकृति बनायी, जिसका मुँह हाथीके समान था। क्रीडा करते हुए उन्होंने उस गजमुख पुरुषाकृतिको पुण्यसलिला गङ्गाजीके जलमें डाल दिया। त्रैलोक्यतारिणी गङ्गाजी त्रैलोक्यसुन्दरी पार्वतीको अपनी सहेली मानती थीं। उनके

* यः पठेत् स्कन्दसम्बद्धां कथामेतां महामतिः। शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि स भवेत् कीर्तिमान्नरः॥
बह्वायुः सुभगः श्रीमान् कान्तिमाञ्छुभदर्शनः। भूतेभ्यो निर्भयश्चापि सर्वदुःखविवर्जितः॥
(पद्मपु०, सृष्टिखं० ४६। २१७-२१८)

देवताओंने कहा—'जो परम बुद्धिमान् मनुष्य कार्तिकेयजीसे सम्बन्ध रखनेवाली इस कथाको पढ़ेगा, सुनेगा अथवा सुनायेगा, वह यशस्वी होगा। उसकी आयु बढ़ेगी; वह सौभाग्यशाली, श्रीसम्पन्न, कान्तिमान्, सुन्दर, समस्त प्राणियोंसे निर्भय तथा सब दुःखोंसे मुक्त होगा।'

पुण्यमय जलमें पड़ते ही वह पुरुषाकृति विशालकाय हो गयी। शंकरार्धशरीरिणी माता पार्वतीने उसे 'पुत्र' कहकर पुकारा। फिर सुरसरिने भी उसे 'पुत्र' कहकर सम्बोधित किया। देव-समुदायने उसे 'गाङ्गेय' कहकर सम्मान प्रदान किया। इस प्रकार गजवदन देवताओंके द्वारा पूजित हुए। कमलोद्भव ब्रह्माजीने उन्हें गणोंका आधिपत्य प्रदान किया।

पद्मपुराणके सृष्टिखण्डमें वर्णित श्रीगणेश-प्राकट्यकी मधुर, मनोहर एवं मङ्गलमयी कथाका यह सार है।

(ख) लिङ्गपुराणमें

लिङ्गपुराणके पूर्वार्द्धमें सर्वपूज्य गणेशजीके प्राकट्यकी कथा इस प्रकार है—

एक बारकी बात है। देवताओंने परस्पर विचार किया कि 'प्रायः सभी असुर सृष्टिस्थित्यन्तकारी वृषभध्वज एवं चतुर्मुखकी आराधना कर उनसे इच्छित वर प्राप्त कर लेते हैं। इस कारण युद्धमें हम उनसे सदा पराजित होते रहते हैं। दैत्योंके कारण हमें अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं। इस कारण हमलोग अपनी विजय एवं दैत्योंके कार्यमें विघ्न उपस्थित करने तथा सर्वसिद्धि-प्राप्तिके लिये आशुतोष शिवसे प्रार्थना करें।'

सुर-समुदाय पार्वतीवल्लभ शिवके समीप पहुँचकर उनकी स्तुति करने लगा। वृषभध्वज प्रसन्न हुए और उन्होंने देवताओंसे कहा—'अभीष्ट वर माँगो।'

'करुणामूर्ति प्रभो!' देवताओंकी ओरसे बृहस्पतिने निवेदन किया—'देव-शत्रु दानवोंकी उपासनासे संतुष्ट होकर आप उन्हें वर-प्रदान कर देते हैं और वे समर्थ होकर हमें अत्यन्त कष्ट पहुँचाते हैं। उन सुरद्रोही दनुजोंके कर्ममें विघ्न उपस्थित हुआ करे, हमारी यही कामना है।'

'तथास्तु!' परम संतुष्ट वरद आशुतोषने सुर-समुदायको आश्वस्त किया।

कुछ ही समय बाद सर्वलोकमहेश्वर शिवकी सती पत्नी पार्वतीके सम्मुख परब्रह्मस्वरूप स्कन्दाग्रजका प्राकट्य हुआ। उक्त परम तेजस्वी बालकका मुख हाथीका था। उसके एक हाथमें त्रिशूल तथा दूसरे हाथमें पाश था।

सर्वविघ्नेश मोदक-प्रियके धरतीपर अवतरित होते ही देवताओंने प्रसन्नतापूर्वक सुमन-वृष्टि करते हुए गजाननके चरणोंमें बार-बार प्रणाम किया। गजमुख अपने कृपाविग्रह माता-पिताके सम्मुख आनन्दमग्न होकर नृत्य करने लगे।

त्रैलोक्यतारिणी दयामयी हिमगिरिनन्दिनी पार्वतीने अपने समस्त मङ्गलालय पुत्रको अत्यन्त सुन्दर एवं विचित्र वस्त्राभरण पहनाये। देवाधिदेव महादेवने प्रसन्नतापूर्वक अपने प्राणप्रिय पुत्रका जातकर्मादि संस्कार करवाया। तदुपरान्त उन्होंने अपने पुत्रको प्रेमपूर्वक गोदमें उठाकर वक्षसे सटा लिया। फिर सर्वदुरितापहारी कल्याणमूर्ति शिवने अपने पुत्रसे कहा—

तवावतारो दैत्यानां विनाशाय ममात्मज।
देवानामुपकारार्थं द्विजानां ब्रह्मवादिनाम्॥
यज्ञश्च दक्षिणाहीनः कृतो येन महीतले।
तस्य धर्मस्य विघ्नं च कुरु स्वर्गपथे स्थितः॥
अध्यापनं चाध्ययनं व्याख्यानं कर्म एव च।
योऽन्यायतः करोत्यस्मिंस्तस्य प्राणान् सदा हर॥
वर्णाच्च्युतानां नारीणां नराणां नरपुंगव।
स्वधर्मरहितानां च प्राणानपहर प्रभो॥
याः स्त्रियस्त्वां सदाकालं पुरुषाश्च विनायक।
यजन्ति तासां तेषां च त्वत्साम्यं दातुमर्हसि॥
त्वं भक्तान् सर्वयत्नेन रक्ष बाल गणेश्वर।
यौवनस्थांश्च वृद्धांश्च इहामुत्र च पूजित॥
जगत्त्रयेऽत्र सर्वत्र त्वं हि विघ्नगणेश्वर।
सम्पूज्यो वन्दनीयश्च भविष्यसि न संशयः॥
मां च नारायणं वापि ब्रह्माणमपि पुत्रक।
यजन्ति यज्ञैर्वा विप्रैरग्रे पूज्यो भविष्यसि॥
त्वामनभ्यर्च्य कल्याणं श्रौतं स्मार्तं च लौकिकम्।
कुरुते तस्य कल्याणमकल्याणं भविष्यति॥
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चैव गजानन।
सम्पूज्य सर्वसिद्ध्यर्थं भक्ष्यभोज्यादिभिः शुभैः॥
त्वां गन्धपुष्पधूपाद्यैरनभ्यर्च्य जगत्त्रये।
देवैरपि तथान्यैश्च लब्धव्यं नास्ति कुत्रचित्॥
अभ्यर्चयन्ति ये लोका मानवास्तु विनायकम्।
ते चार्चनीयाः शक्राद्यैर्भविष्यन्ति न संशयः॥
अजं हरिं च मां वापि शक्रमन्यान् सुरानपि।
विघ्नैर्बाधयसि त्वां चेन्नार्चयन्ति फलार्थिनः॥

(लिङ्गपु० १०५।१५—२७)

'मेरे पुत्र गणेश! यह तुम्हारा अवतार दैत्योंका नाश करने तथा देवता, ब्राह्मण एवं ब्रह्मवादियोंका उपकार करनेके लिये हुआ है। देखो, यदि पृथ्वीपर कोई दक्षिणाहीन यज्ञ करे,

तो तुम स्वर्गके मार्गमें स्थित हो उसके धर्मकार्यमें विघ्न उत्पन्न करो; अर्थात् ऐसे यज्ञकर्ताको स्वर्ग मत जाने दो । जो इस जगत्‌में अनुचित ढंगसे अन्यायपूर्वक अध्ययन, अध्यापन, व्याख्यान और दूसरा कार्य करता हो, उसके प्राणोंका तुम सदा ही हरण करते रहो। नरपुङ्गव प्रभो! वर्णधर्मसे च्युत स्त्री-पुरुषों तथा स्वधर्मरहित व्यक्तियोंके भी प्राणोंका तुम अपहरण करो। विनायक ! जो स्त्री-पुरुष ठीक समयपर सदा तुम्हारी पूजा करते हों, उनको तुम अपनी समता प्रदान करो । हे बाल गणेश्वर ! तुम पूजित होकर अपने युवा एवं बूढ़े भक्तोंकी भी सब प्रकारसे इस लोकमें तथा परलोकमें भी रक्षा करना। तुम विघ्नगणोंके स्वामी होनेके कारण तीनों लोकोंमें तथा सर्वत्र ही पूज्य एवं वन्दनीय होओगे, इसमें संदेह नहीं। जो लोग मेरी, भगवान् विष्णुकी अथवा ब्रह्माजीकी भी यज्ञोंद्वारा अथवा ब्राह्मणोंके माध्यमसे पूजा करते हैं, उन सबके द्वारा तुम पहले पूजित होओगे । जो तुम्हारी पूजा किये बिना श्रौत, स्मार्त या लौकिक कल्याणकारक कर्मोंका अनुष्ठान करेगा, उसका मङ्गल भी अमङ्गलमें परिणत हो जायगा। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रोंद्वारा भी तुम सभी कार्योंकी सिद्धिके लिये भक्ष्य-भोज्य आदि शुभ पदार्थोंसे पूजित होओगे । तीनों लोकोंमें जो चन्दन, पुष्प, धूप-दीप आदिके द्वारा तुम्हारी पूजा किये बिना ही कुछ पानेकी चेष्टा करेंगे, वे देवता हों अथवा और कोई, उन्हें कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। जो लोग या मनुष्य तुझ विनायककी पूजा करेंगे, वे निश्चय ही इन्द्रादि देवताओंद्वारा भी पूजित होंगे। जो लोग फलकी कामनासे ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र अथवा अन्य देवताओंकी भी पूजा करेंगे, किंतु तुम्हारी पूजा नहीं करेंगे, उन्हें तुम विघ्नोंद्वारा बाधा पहुँचाओगे।'

सर्वात्मा प्रभु शिवका आशीर्वाद प्राप्तकर भगवान् गणपतिने विघ्नगणोंको उत्पन्न किया और उन गणोंके साथ उन्होंने भगवान् शंकरके मङ्गलमय चरणोंमें अत्यन्त श्रद्धा और प्रीतिपूर्वक प्रणाम किया। फिर वे त्रैलोक्यपति पशुपति-के सम्मुख खड़े हो गये। तबसे लोकमें श्रीगणपतिकी अग्र पूजा होती है। इसके बाद श्रीगणेशजीने दैत्योंके धर्मकार्यमें विघ्न* पहुँचाना आरम्भ कर दिया।

(ग) ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें

शिवकी शिवाको सोदाहरण पुण्यक-व्रत करनेकी प्रेरणा

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके अनुसार शिव-प्राणवल्लभा पार्वतीके मङ्गलमय अङ्कमें श्रीकृष्णरूपी परमतत्त्व ही व्यक्त हुआ था, वह पाप-संतापहारिणी एवं निखिलानन्दवर्द्धिनी कथा भगवान् श्रीनारायणने देवर्षि नारदको इस प्रकार सुनायी थी—

वैराग्यज्ञाननिरता शैलपुत्री पार्वतीके साथ सर्वसाक्षी वृषभध्वजके मङ्गल-परिणयके अनन्तर चराचरात्मा शिव उन्हें साथ लेकर निर्जन वनमें चले गये। वहाँ दीर्घकालतक देवाधि-देव महादेवका विहार चलता रहा। एक दिन धर्मज्ञा पार्वतीने भगवान् शंकरसे निवेदन किया—'प्रभो। मैं एक श्रेष्ठ पुत्र चाहती हूँ।'

'प्रिये ! मैं तुम्हें सम्पूर्ण व्रतोंमें एक श्रेष्ठ व्रत बताता हूँ, जो सम्पूर्ण अभीष्टसिद्धिका बीजरूप, परम मङ्गलदायक तथा हर्ष प्रदान करनेवाला है।' सर्वभूतपति भगवान् त्रिपुरारिने त्रैलोक्यसुन्दरी पार्वतीसे मुदित मनसे कहा—''उस परम शुभद व्रतका नाम 'पुण्यक' है। तुम श्रीहरिका स्मरण कर यह व्रत प्रारम्भ करो। इसके अनुष्ठानकी पूर्ति एक वर्षमें होती है।''

'धर्मात्मा मनुकी सती पत्नी पुत्रके बिना दुःखी थीं।' कालनाशन नीलकण्ठने आगे कहा। 'वे ब्रह्मलोकमें ब्रह्माके समीप पहुँचीं।

'प्रभो ! आप सृष्टिकर्ता और जगत्‌के कारणोंके भी कारण हैं।' सती शतरूपाने सर्वलोकपितामहसे विनयपूर्वक कहा—''पुत्रके बिना गार्हस्थ्य-जीवन सर्वथा नीरस और व्यर्थ होता है। पुत्रके बिना स्त्री-पुरुषका जन्म, ऐश्वर्य और धन सब निष्फल ही होता है। तप एवं दानका पुण्य जन्मान्तरमें सुखदायक सिद्ध होता है, परंतु पुत्र पिताको (इसी जन्ममें) सुख, मोक्ष और हर्ष प्रदान करता है। पुत्र 'पुत्' नामक नरकसे रक्षा करनेका हेतु होता है। अतएव वन्ध्याको किस प्रकार पुत्रकी प्राप्ति होती है, आप कृपापूर्वक बतानेका कष्ट कीजिये।''

* समस्त जगत्‌की दैनन्दिन युग-कल्प आदि गणनासे व्यष्टि किंवा समष्टिकी सृष्टि-स्थिति-संहारात्मक जगद्व्यापारको कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथा वा कर्तुम् विघ्नोंकी भी कहीं-कहीं आवश्यकता है। अच्छी भी कोई बात रुक-रुककर चलती रहे या किसी एक विशिष्ट व्यवस्थासे चले, किंवा रूपान्तरसे चले, इसके लिये प्रतिबन्धकोंकी योजना रहती है। —'श्रीगणेश-मीमांसा'

'प्रभो ! मैं पुत्रके विना दुःखी हूँ । आप मुझे पुत्र-प्राप्तिका उपाय बताइये ।' फिर दुःखी मनसे शतरूपाने विधातासे कहा—'अन्यथा मैं पतिके साथ वनमें चली जाऊँगी । आप पृथ्वी, धन, कीर्ति और राज्य आदि ग्रहण कीजिये; क्योंकि पुत्रके विना हमारे लिये इनकी क्या उपयोगिता है ?'

दुःखके आवेगसे परम सती शतरूपा फूट-फूटकर रोने लगीं ।

'वत्से ! मैं तुम्हें एक व्रत बताता हूँ, जो सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला, समस्त सत्कीर्तिप्रदायक तथा परम शुभद है । उसका अनुष्ठान करनेसे तुम निश्चय ही विष्णुके समान पराक्रमी श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त करोगी ।' रुदन करती हुई देवी शतरूपाको आश्वस्त करते हुए दयामय विधाताने कहा—'माघ मासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी तिथिके पवित्र कालमें समस्त भुक्ति-मुक्ति-प्रदायक परब्रह्म परमेश्वर श्रीकृष्णकी श्रद्धा और विधिपूर्वक आराधना कर इस व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये । यह व्रत सर्वाभीष्ट सिद्धियोंको प्रदान करनेवाला और सम्पूर्ण विघ्नोंका निवारण करनेवाला है । व्रतकालमें वेदोक्त द्रव्योंका दान करते हुए एक वर्षतक यह व्रत करना चाहिये ।'

लोकपितामहकी प्रेरणासे सती शतरूपाने इस परम शुभद पुण्यक-व्रतका सविधि अनुष्ठान किया । इस व्रतके प्रभावसे उनके प्रियव्रत और उत्तानपाद-नामक दो सुन्दर एवं यशस्वी पुत्र उत्पन्न हुए । महाभागा देवहूतिने भी इस पुण्यप्रद पुण्यक-व्रतका अनुष्ठान किया था, जिसके प्रभावसे उन्हें सिद्धोंमें सर्वश्रेष्ठ एवं श्रीहरिके अंश भगवान् कपिल पुत्ररूपमें प्राप्त हुए । परम सती अरुन्धतीने इस व्रतके प्रभावसे शक्तिको पुत्ररूपमें प्राप्त किया । देवमाता अदितिने भी इस पुण्यमय व्रतका पालन किया, जिसके फलस्वरूप उनके मङ्गलमय अङ्कमें भगवान् वामन प्रकट हुए । इसी व्रतके प्रभावसे इन्द्राणीने जयन्तको, राजा उत्तानपादकी पत्नीने अनन्य भगवद्भक्त ध्रुवको, धनपति कुबेरकी प्राणप्रियाने नलकूबरको, सूर्यपत्नीने मनुको तथा अत्रिप्रियाने चन्द्रमाको पुत्ररूपमें प्राप्त किया था । इसी महिमामय व्रतके प्रभावसे अङ्गिरा-पत्नीने देवताओंके आचार्य-पदपर प्रतिष्ठित बृहस्पति-जैसा अन्यतम सात्त्विक बुद्धि-विशारद पुत्र प्राप्त कर लिया था । भाग्यवती भृगुपत्नीने इसी व्रतका पालन किया था, जिसके फलस्वरूप उन्हें भगवान् नारायणके अंश परम तेजस्वी दैत्यगुरु शुक्र-जैसे महान् पुत्रकी उपलब्धि हुई । यह परम पुण्यमय व्रत राजेन्द्रपत्नियों और देवियोंके लिये सुखसाध्य एवं आनन्दप्रद है । साध्वी स्त्रियोंके लिये तो यह व्रत प्राणाधिक प्रिय है ।'

पुण्यक-व्रतकी संक्षिप्त विधि

सर्वधर्ममयी पार्वती अपने प्राणवल्लभ जगद्गुरु कर्पूरगौरके वचन अत्यन्त ध्यानपूर्वक सुन रही थीं और कृपासिन्धु वृषवाहन कहते जा रहे थे—'माघ-मासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशीके दिन इस व्रतका आरम्भ किया जाता है । उत्तम व्रतीको व्रतारम्भके पहले दिन उपवास करना चाहिये और दूसरे दिन ब्राह्ममुहूर्त्तमें शय्या त्यागकर शौचादिसे निवृत्त हो वह निर्मल जलमें स्नान करे । फिर आचमनादिके अनन्तर सर्वव्यापी श्रीहरिको अर्घ्य प्रदान कर शीघ्र ही घर लौट आये । घरपर नित्यकर्म पूर्ण कर लेनेके बाद सुयोग्य पुरोहितका वरण कर स्वस्तिवाचनपूर्वक कलश-स्थापन करे । फिर संकल्पके द्वारा यह महान् व्रतानुष्ठान आरम्भ करे ।'

फिर सौन्दर्य, नेत्रदीप्ति, विविध अङ्गोंके सौन्दर्य, पति-सौभाग्य आदिके लिये विभिन्न वस्तुओंके संख्यासहित समर्पण करनेका उपदेश करते हुए दयामय शिवने कहा—'देवि ! पुत्र-प्राप्तिके लिये कूष्माण्ड, नारियल, जम्बीर तथा श्रीफल—इन फलोंको श्रीहरिकी सेवामें समर्पित करना चाहिये । व्रत-कालमें नाना प्रकारके संगीत और वाद्योंसे परम प्रभुको प्रसन्न करनेका प्रयत्न करना उचित है । हरिभक्तिकी विशेष उपलब्धिके लिये सुगन्धित पुष्पोंकी (बिना टूटी हुई) एक लक्ष माला भक्तिपूर्वक प्रभुको चढ़ानी चाहिये । उनकी तुष्टिके लिये विविध प्रकारके मधुर एवं स्वादिष्ट व्यञ्जनोंका भोग लगाना आवश्यक है । तुलसीदलमिश्रित अनेक प्रकारके सद्गन्धपूरित पुष्प समर्पित करनेसे श्रीहरिकी अत्यधिक प्रसन्नता प्राप्त होती है । जन्म-जन्मान्तरमें धन-धान्यकी वृद्धिके लिये व्रतकालमें व्रतीको प्रतिदिन एक सहस्र ब्राह्मणोंको तृप्तिकर भोजन कराना चाहिये ।'

शिवने आगे बताया—'सुव्रते ! प्रतिदिन पूजाके समय सुगन्धित सुमनोंसे भरी सौ अञ्जलियाँ समर्पितकर निखिलपावन प्रभुके चरणोंमें सौ बार प्रणाम करना उचित है । व्रतकालमें छः महीनेतक हविष्यान्न,* पाँच मासतक फलाहार और एक पक्षतक

* अगहनी धान, मूँग, तिल, जौ, मटर, तिन्नी, साठी, दूध, दही, घी, शक्कर, घृतपक्व पक्वान्न, लवङ्ग, जीरा, पीपल, सेंधा नमक, समुद्री नमक, बथुआ, मूली, आम, इमली, कटहल, नारंगी, केला, हर्रें और आँवला आदि हविष्यान्नके अन्तर्गत आते हैं ।

हविका आहार करे तथा एक पक्षतक केवल जलपर रहना चाहिये। रात्रिमें कुशासनपर नित्य जागरण करना श्रेष्ठ है। व्रतीके लिये अष्टविध मैथुनका * सर्वथा त्याग नितान्त आवश्यक है।'

'इस विधिसे व्रत सम्पन्न होनेपर व्रतोद्यापन करना उचित है। उस समय मनोहर वस्त्रोंसे आच्छादित उत्तम उपहारोंसे सज्जित तीन सौ साठ डलियाँ, भोजनके पदार्थ और यशोपवीतका दान करना चाहिये। एक हजार तीन सौ साठ ब्राह्मणोंको भोजन तथा एक हजार तीन सौ साठ घृताहुतियाँ देनी चाहिये। व्रत समाप्त होनेपर दक्षिणामें एक हजार तीन सौ साठ स्वर्णमुद्राएँ देनेका विधान है। इसके अतिरिक्त व्रत-समाप्तिके दिन दूसरी दक्षिणा देनी चाहिये।'

'इस व्रतके फलस्वरूप श्रीहरिके चरणोंमें सुदृढ़ भक्ति हो जाती है और भुवन-विख्यात पुत्र, सौन्दर्य, पति-सौभाग्य, ऐश्वर्य एवं अपरिमित धनकी प्राप्ति होती है। यह महान् व्रत प्रत्येक जन्ममें वाञ्छित सिद्धियोंका बीज है।'

इस प्रकार पुण्यक-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य सुनानेके अनन्तर परम करुणामय चन्द्रशेखरने अपनी परम सती सहधर्मिणी पार्वतीसे आगे कहा—'प्रिये! इस व्रतके लिये मैं पुष्प और फल लानेके लिये सौ शुद्ध ब्राह्मणोंको, सामग्री एकत्र करनेके लिये सौ भृत्योंको एवं अत्यधिक दास-दासियोंको नियुक्त कर देता हूँ। साथ ही समस्त व्रत-विधियोंके ज्ञाता, वेद-वेदाङ्गके पारंगत विद्वान्, सर्वश्रेष्ठ हरिभक्त, सर्वज्ञ एवं परम ज्ञानी सनत्कुमारको पुरोहितके पदपर नियत करता हूँ। तुम इस व्रतका श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पालन करो। तुम्हें निश्चय ही परम दुर्लभ पुत्र-रत्नकी उपलब्धि होगी।'

पाप-संतापहारिणी भगवती पार्वती अपने सर्वलोक-महेश्वर पतिके अमृतमय वचनोंसे आनन्द-विभोर हो गयीं और तपके विधाता भगवान् चन्द्रमौलि पार्वतीको सदुपदेश देकर चले गये।

पार्वतीद्वारा पुण्यक-व्रतका अनुष्ठान

हिमगिरिनन्दिनी उमाने अपने पतिके आज्ञानुसार प्रसन्नतापूर्वक महान् पुण्यक-व्रतके अनुष्ठानका सुदृढ़ निश्चय कर पुष्प और फल आदि व्रतोपयोगी उपकरणोंको एकत्र करनेके लिये ब्राह्मणों तथा भृत्योंको प्रेरित किया। सभी वस्तुओंके एकत्र हो जानेपर वेदविद्याप्रकाशिनी भगवती पार्वतीने शुभ-मुहूर्तमें व्रतारम्भ किया।

उसी समय परम तेजस्वी ब्रह्मपुत्र सनत्कुमार वहाँ पहुँच गये। सपत्नीक ब्रह्मा भी वहाँ आये। भगवान् महेश्वर भी उपस्थित हुए। विविध रत्नाभरणोंसे सुशोभित, वनमालाधारी, चतुर्भुज, नवनीरदवपु, क्षीराब्धिशायी विष्णु भी अपनी प्रियतमा लक्ष्मी एवं अपने पार्षदोंसहित अत्यधिक सामग्रियाँ लेकर रत्नजटित विमानपर आरूढ़ हो वहाँ पधारे। इसके पश्चात् सनक, सनन्दन, सनातन, कपिल, धर्मपुत्र नर-नारायण एवं सभी प्रख्यात ऋषिगण अपने शिष्योंसहित पराम्बाके व्रतानुष्ठानके अवसरपर उपस्थित हुए। शम्भुवामा उमाके उस व्रतके अवसरपर दिक्पाल, देवता, यक्ष, किंनर और गणोंसहित समस्त गिरि-समुदाय भी एकत्र हुआ। पर्वतराज हिमालय भी अपनी पुत्रीके व्रतमें रत्नाभरणोंसे अलंकृत हो, पत्नी, पुत्रगण और अनुयायियों-सहित नाना प्रकारके द्रव्योंसे संयुक्त बहुत बड़ी सामग्री और व्रतोपयोगी मणि-माणिक्य-रत्न लेकर हर्षातिरेकसे सम्मिलित हुए। उनके साथ धरतीमें दुर्लभ वस्तुएँ थीं। एक लक्ष गज-रत्न, तीन लक्ष अश्व-रत्न, दस लक्ष गो-रत्न, एक करोड़ स्वर्णमुद्राएँ, चार लक्ष मुक्ता, एक सहस्र कौस्तुभमणि और अत्यन्त स्वादिष्ठ एवं सुमिष्ट पदार्थोंके एक लक्ष भार भी थे।

श्रद्धामूर्ति हिमगिरितनयाके उक्त पावनतम महान् व्रतमें ब्राह्मण, मनु, नाग एवं विद्याधरोंके समुदाय तथा संन्यासी, भिक्षुक एवं वन्दीगण भी पहुँचे।

उस समय कैलासपर्वतकी अपूर्व शोभा थी। राजमार्गपर चन्दनका छिड़काव हुआ था। पद्मरागमणि-निर्मित शिव-मन्दिरमें आम्रपल्लवोंकी वंदनवारें बँधी थीं। कदली-स्तम्भों-का सौन्दर्य अद्भुत था। वह दूर्वा, धान्य, खील, फल और पुष्पोंसे अनोखे ढंगसे सजा था। वहाँका अलौकिक दृश्य देखकर उपस्थित देव, ऋषि, यक्ष, किंनर, गन्धर्व एवं मनुष्य आदि सभी लोग आश्चर्यचकित हो मन-ही-मन प्रसन्न हो रहे थे। सर्वत्र हर्ष व्याप्त था। सर्वत्र सात्त्विक आनन्द जैसे नृत्य कर रहा था। परम करुणामयी सृष्टि-स्थिति-संहारकारिणी जगदम्बा जो पावनतम व्रतमें दीक्षित होने जा रही थीं।

* स्मरण, कीर्तन, केलि, प्रेक्षण, गुह्यभाषण, संकल्प, अध्यवसाय तथा क्रियानिष्पत्ति—ये अष्टविध मैथुन हैं।

भगवान् शशाङ्कशेखरने समस्त अभ्यागतोंका सादर अभिनन्दन करते हुए उनके अनुरूप स्वच्छ, सुन्दर एवं सुखद निवास तथा भोजन आदिकी व्यवस्था की । उस सुप्रबन्धका क्या कहना, जहाँ त्रैलोक्यपति शिव एव सर्वदारिद्र्यदमनी जगज्जननीका निवास हो ।

करुणामूर्ति जगदीश्वरीके उक्त व्रतानुष्ठानके अवसरपर शचीपति इन्द्र दानाध्यक्ष, धनपति कुबेर कोषाध्यक्ष और स्वयं भगवान् सूर्य आदेश प्रदान करनेवाले थे । वरुण परोसनेका कार्य कर रहे थे ।

संसार-सागरसे पार उतारनेवाली सती-शिरोमणि शिव-प्रियाके व्रतानुष्ठानके अवसरपर दूध, दही, घी, तेल, मधु, गुड़ और चीनी आदिकी लक्षाधिक सरिताएँ प्रवाहित होने लगी थीं । इसी प्रकार गेहूँ, चावल, जौ और चिउरे आदिके पर्वत-तुल्य असंख्य ढेर लग गये थे । उक्त दिव्य कैलासपर्वतपर स्वर्ण, रजत, मूँगा और मणियोंकी राशि पर्वतके समान दीख रही थी ।

निखिलसृष्टिनियामिका गिरिजाके श्रेष्ठतम व्रतोत्सवपर सिन्धुतनया लक्ष्मीने विविध प्रकारके सुन्दर, सुमिष्ट एव सुस्वादु व्यञ्जन तैयार किये थे । उस समय एक लाख ब्राह्मण परोसनेका काम कर रहे थे । देवताओं और ऋषियोंके साथ स्वय नारायणने वहाँ भोजन किया ।

भोजनोपरान्त जब भगवान् नारायण रत्नसिंहासनपर विराजित हुए, तब चतुर ब्राह्मणोंने सुगन्धित ताम्बूल अर्पित किया । परमप्रभु नारायण देवता और ऋषियोंसे घिरे थे । तेजस्वी पार्षद उनपर श्वेत चँवर डुला रहे थे । ऋषि तथा सिद्ध प्रभुका स्तवन कर रहे थे । गन्धर्वगण श्रुतिमधुर गीत गा रहे थे ।

'भक्तवाञ्छाकल्पतरु प्रभो ! मेरी एक प्रार्थना सुनिये ।' पितामहकी प्रेरणासे अहिभूषणने बद्धाञ्जलि हो अत्यन्त विनयपूर्वक प्रभुकी स्तुति करते हुए निवेदन किया—'शैलजा उत्तम व्रतके द्वारा श्रेष्ठतम पुत्र एवं पति-सौभाग्यकी कामना करती हैं । आप सर्वज्ञ एवं सर्वान्तर्यामी हैं । आप परिणाममें मङ्गलदायिनी आज्ञा प्रदान करें ।'

पशुपतिने पुनः क्षीरसागरशायी प्रभुकी स्तुति की और फिर विधाताके मुखकी ओर देखकर मौन हो गये ।

'उमानाथ ! आपकी सहधर्मिणी संतान-प्राप्तिके लिये जिस पुण्यक-व्रतका अनुष्ठान करना चाहती हैं, वह व्रतोंका सारतत्त्व, दुराराध्य, सम्पूर्ण अभीष्ट फलको देनेवाला, सुखदायक एव मोक्षप्रद है ।' स्वर्गापवर्गदाता सर्वभूतपति शिवके वचन सुनकर श्रीहरि ठठाकर हँस पड़े । फिर उन्होंने महादेवजीसे कहा—'साध्वी शिवा पुण्यक-व्रतका अनुष्ठान करें । इस व्रताचरणसे सहस्रों राजसूय यज्ञोंका पुण्य प्राप्त होता है ।'

'त्रिनेत्र !' श्रीनारायणने आगे कहा—"इस व्रतमें सहस्रों राजसूय यज्ञोंके समान धनका व्यय होता है, अतः यह व्रत सभी साध्वी महिलाओंद्वारा साध्य नहीं है । इस पुण्यमय पुण्यक-व्रतके प्रभावसे स्वय परब्रह्म गोलोकनाथ श्रीकृष्ण पार्वतीके अङ्कमें क्रीड़ा करेंगे । उनका नाम 'गणेश' होगा; उनके स्मरणसे ही विघ्नोंका नाश हो जाया करेगा ।"

श्रीनारायणके वचन सुनकर त्रैलोक्यपावन त्रिलोचन हर्षसे गद्गद हो गये । उन्होंने वह माङ्गलिक वार्तालाप अपनी प्राणप्रिया पार्वतीको सुनाया तो उनकी प्रसन्नताकी सीमा न रही । मुदितमन पार्वती व्रतारम्भके लिये प्रस्तुत हुईं, उसी समय भगवान् शंकरकी प्रेरणासे विविध प्रकारके देववाद्य बज उठे ।

सत्यस्वरूपा उमाने स्नान करके शुद्ध वस्त्र धारण करनेके अनन्तर चावलपर सविधि रत्नकलश स्थापित किया । फिर रत्नसिंहासनोंपर समासीन श्रेष्ठ मुनियों एव रत्नसिंहासनासीन पुरोहितकी विधिपूर्वक पूजा की । इसके साथ ही त्रैलोक्यतारिणी गिरिजाने अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति पूर्वक ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरकी अर्चना की ।

इस प्रकार भगवती शैलजाने स्वस्तिवाचनपूर्वक व्रतारम्भ किया । तदनन्तर उन्होंने मङ्गल-कलशपर श्रीकृष्णका आवाहन कर उनका भक्तिपूर्वक षोडशोपचारसे पूजन किया । व्रतके विधानानुसार देवी उमाने त्रैलोक्यदुर्लभ पदार्थोंको अत्यन्त प्रीतिपूर्वक समर्पित किया । फिर उन्होंने तिल और घीकी तीन लाख आहुतियोंसे हवन कराया और देवताओं, अतिथियों एव ब्राह्मणोंको बहुमूल्य व्यञ्जनोंके भोजनसे तृप्त किया । इस प्रकार परम सरला साध्वी शिवप्रिया पुण्यक-व्रतके पालनीय प्रत्येक नियमोंका वर्षपर्यन्त श्रद्धा एव विश्वासके साथ सोल्लास पालन करती रहीं ।

अस्वाभाविक दक्षिणा

'सुव्रते ! मुझे दक्षिणा चाहिये ।' व्रत-समाप्तिपर पुरोहितने देवी पार्वतीसे कहा ।

'मैं मुँहमाँगी दक्षिणा दूँगी।' परम तपस्विनी अम्बिकाने पुरोहितसे कहा—'आप कौन-सा दुर्लभ पदार्थ चाहते हैं ?'

'देवि ! इस व्रतमें दक्षिणास्वरूप मुझे अपने पतिको दे दो।' पुरोहितने अस्वाभाविक दक्षिणाकी याचना की।

सर्वथा अकल्पित, अनभ्र वज्रपात-जैसी निष्ठुर वाणी सुनकर देवी उमा व्याकुल होकर विलाप करती हुई वहीं मूर्च्छित हो गयीं।

निखिलसृष्टिनियामिका मोहनाशिनी भगवती पराम्बाको मूर्च्छित देखकर लोकपितामह, विष्णु एवं मुनियोंको हँसी आ गयी। तब उन्होंने उमापति महादेवको पार्वतीको समझानेके लिये भेजा।

'धर्मिष्ठे ! उठो; निश्चय ही तुम्हारा मङ्गल होगा।' पार्वतीको होशमें लानेके लिये उन्हें समझाते हुए आशुतोषने अनेक धर्ममय वचन कहे। उनकी चेतना लौट आनेपर देवदेव महादेवने कहा—'देवकार्य, पितृकार्य अथवा नित्य-नैमित्तिक जो भी कर्म दक्षिणासे रहित होता है, वह सब निष्फल हो जाता है; और उस कर्मसे दाता निश्चय ही कालसूत्र-नामक नरकमें गिरता है। उसके बाद वह दीन होकर शत्रुओंसे पीड़ित होता है। ब्राह्मणको संकल्प की हुई दक्षिणा उसी समय न देनेसे वह बढ़कर कई-गुनी हो जाती है।'

क्षीरोदधिशायी विष्णु और कमलासनने भी पार्वतीसे धर्म-रक्षाके लिये अनुरोध किया। स्वयं धर्मने कहा—'साध्वि ! पुरोहितकी अभीष्ट दक्षिणा देकर मेरी रक्षा करो। महासाध्वि ! मेरे सुरक्षित रहनेपर प्रत्येक रीतिसे मङ्गल होगा।' देवताओंने भी यही बात कही। मुनियोंने भी हवन पूरा करके दक्षिणा देनेकी प्रेरणा देते हुए कहा—'धर्मज्ञे ! हमलोगोंके यहाँ रहते तुम्हारा अकल्याण सम्भव नहीं।'

'शिवे ! या तो तुम मुझे दक्षिणामें अपने सर्वेश्वर पतिको प्रदान करो या अपने दीर्घकालीन कठोर तपका फल भी त्याग दो।' ब्रह्माके पुत्र तेजस्वी सनत्कुमारने देवी पार्वतीसे सुस्पष्ट कहा—'साध्वि ! इस प्रकार इस महान् कर्मकी दक्षिणा न मिलनेपर मैं इस दुर्लभ कठोर व्रतका फल ही नहीं, यजमानके (तुम्हारे) समस्त कर्मोंका फल भी प्राप्त कर लूँगा।'

'देवाधिपो ! पतिसे वञ्चित हो जानेवाले कर्मसे क्या लाभ ?' सत्यस्वरूपा परम सती पार्वतीने अत्यन्त व्याकुल हो देवताओंसे कहा—'दक्षिणा देने, धर्म और पुत्रकी प्राप्तिसे मेरा क्या हित होगा ? पृथ्वीदेवीकी उपेक्षा कर वृक्षकी पूजासे क्या प्राप्त हो सकेगा ? यदि बहुमूल्य प्राण ही विसर्जित हो जायँ तो शरीरकी रक्षा किसलिये होगी ?'

अत्यधिक दुःखसे शिवप्रियाने आगे कहा—'देवेश्वरो ! साध्वी स्त्रियोंके लिये पति सौ पुत्रोंके समान होता है। ऐसी स्थितिमें यदि व्रतमें अपने पतिकी ही दक्षिणा दे दी जाय तो पुत्रसे क्या लाभ होगा ? पुत्र पतिका ही वंश होता है, किंतु उसका एकमात्र मूल तो पति ही होता है। मूलधनके नष्ट होनेपर तो समस्त व्यापार ही विनष्ट हो जायगा।'

उसी समय अन्तरिक्षमें देवताओं और ऋषियोंने एक बहुमूल्य रत्ननिर्मित रथ देखा। वह घननील पार्षदोंसे घिरा था। सभी पार्षद वनमालाधारी और रत्नाभरणोंसे विभूषित थे। उस रथसे चतुर्भुज वैकुण्ठवासी श्रीनारायण उतरकर देवताओंके सम्मुख उपस्थित हुए। उन परम तेजस्वी, भक्त-प्राणधन, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी श्रीनारायणको ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवताओंने एक श्रेष्ठ रत्नसिंहासनपर बैठाकर उनके पाप-तापहारी अभयद चरण-कमलोंमें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और हाथ जोड़कर गद्गद कण्ठसे उनकी स्तुति की।

'देवताओ !' वहाँका सारा वृत्तान्त जानकर भक्त-भयहारी श्रीनारायणने अपने स्वरूप-तत्त्वकी विस्तृत व्याख्या करते हुए देवगणों और मुनियोंसे कहा—'शिवप्रिया पार्वतीका यह व्रत लोकशिक्षाके लिये है, अपने लिये कदापि नहीं; क्योंकि ये तो स्वयं समस्त व्रतों एवं तपस्याओंका फलप्रदान करनेवाली हैं, इनकी मायासे चराचर जगत् मोहित है।'

फिर परमप्रभु श्रीनारायणने त्रैलोक्यवन्दिता उमासे कहा—'शिवे ! तुम अपने पति महादेवको दक्षिणामें देकर अपना व्रत पूर्ण कर लो। फिर समुचित मूल्य देकर अपने जीवनधनको वापस ले लेना। गौओंकी भाँति शिव भी विष्णुके शरीर हैं; अतः तुम ब्राह्मणको गोमूल्य प्रदान कर अपने पतिको लौटा लेना।'

इतना कहकर महामहिम त्रैलोक्यपावन श्रीनारायण वहीं अन्तर्धान हो गये। सृष्टिनायक श्रीनारायणके मुखारविन्दसे ये मङ्गलमय वचन सुनकर समस्त सुर-मुनि-समुदाय हर्षोत्फुल्ल हो गया। कलिकल्मषहन्त्री शिवा भी प्रसन्नमनसे अपने प्राण-सर्वस्वको दक्षिणामें देनेके लिये प्रस्तुत हो गयीं।

भगवती पार्वतीने हवनकी पूर्णाहुति की और अपने जीवननाथ शिवको दक्षिणा-रूपमें दे दिया।

'स्वस्ति!' कहते हुए सनत्कुमारने दक्षिणा ग्रहण कर ली। उस समय भयवश परम कोमलाङ्गी पार्वतीके कण्ठोष्ठ-तालु सूख गये।

'विप्रवर! गौका मूल्य मेरे पतिके बराबर है।' अम्बिकाने दुःखी हृदयसे ब्राह्मणसे अत्यन्त मधुर एवं विनीत वाणीमें निवेदन किया—'मैं आपको अत्यन्त सुन्दर एक लाख गायें प्रदान करूँगी; इसके बदले आप मेरे जीवन-सर्वस्वको लौटा दें। अभी तो मैं आत्मासे रहित किसी भी कर्ममें सर्वथा असमर्थ हूँ; प्राणनाथके मिल जानेपर मैं पुनः ब्राह्मणोंको विपुल दक्षिणाएँ प्रदान करूँगी।'

'देवि! मैं ब्राह्मण हूँ।' सनत्कुमारने सतीशिरोमणि पार्वतीसे कहा—'मुझे एक लाख गौओंका क्या करना है? और इस दुर्लभ रत्नके सम्मुख गौओंसे क्या लाभ होगा? मैं इन दिगम्बरको अपने साथ लेकर इन्हें आगे रखकर त्रिलोकीमें भ्रमण करूँगा। उस समय बालक-बालिकाएँ इन्हें देखकर प्रसन्नतापूर्वक ताली बजा-बजाकर अट्टहास करेंगी।'

इतना कहकर सनत्कुमारने उमानाथको अपने समीप बैठा लिया।

पार्वतीकी व्याकुलता और विश्वविमोहनके दर्शन

'आह!' सुकोमलहृदया गिरिजा जलहीन मीनकी भाँति छटपटाने लगीं। मन-ही-मन वे सोचने लगीं—'कैसा दुर्भाग्य है कि मुझे न तो अभीष्ट देवका दर्शन प्राप्त हुआ और न व्रतका फल ही प्राप्त हो सका।' अधीर होकर परमसती हिमगिरितनया शरीर-त्यागके लिये प्रस्तुत हो गयीं।

उसी समय पार्वतीसहित देवता और ऋषियोंने शून्यमें कोटि-कोटि सूर्योंके प्रकाशसे भी परमोत्कृष्ट तेजसमूह देखा। उस प्रभा-पुञ्जसे समस्त दिशाएँ एवं विस्तृत कैलास देदीप्यमान हो गया था। उसकी मण्डलाकृति असीम एवं अनन्त थी। प्रभुके उस महान् तेजःपुञ्जको देखकर देवगण उनकी स्तुति करने लगे—

'अनिर्वचनीय महाविराट् प्रभो! आपका यथार्थ स्तवन सम्भव नहीं।' उन महामहिमामय परमप्रभुकी विभिन्न प्रकारसे स्तुति करते हुए विष्णु, ब्रह्मा, महादेव, धर्म, देव-समुदाय, मुनिगण, सरस्वती, सावित्री, लक्ष्मी और हिमगिरिने कहा—'आप अकथनीय, स्वेच्छामय और ज्ञानसे परे हैं, फिर वेदोंके कारणस्वरूप आपकी स्तुति कैसे की जाय? आप मन और वाणीके अगोचर हैं। हमलोग तो आपके कलाश हैं।'

देवता और ऋषिगण चुप हो गये। उस समय कैलास-गिरिनिवासिनी पार्वतीका तेजोमय शरीर प्रज्वलित अग्निकी ज्वालाकी तरह प्रकाशित हो रहा था। तेजकी मूर्ति-सी प्रतीत होनेवाली उमाके सुन्दरतम पावन अङ्गपर परमोज्ज्वल वस्त्र सुशोभित था और सिरपर जटाका भार उनके कठोर तपकी सूचना दे रहा था।

'सर्वसमर्थ, सर्वान्तर्यामी एवं अणु-परमाणुमें व्याप्त महिमामय श्रीकृष्ण! आप तो मुझे जानते हैं, किंतु मैं आपको जाननेमें समर्थ नहीं हूँ।' जगन्माता पार्वतीने भगवान् शिव-की प्रेरणासे व्रतके आराध्यदेव परमात्माके स्वरूपका गुणगान करते हुए कहा—'परमात्मन्! मैं पुत्र-दुःखसे दुःखी होकर आपकी स्तुति कर रही हूँ और इस समय आपके सदृश पुत्र प्राप्त करना चाहती हूँ; परंतु अङ्गोंसहित वेदके विधानानुसार इस व्रतमें अपने पतिकी दक्षिणा दी जाती है, यह अत्यन्त दारुण कार्य है। दयामय! यह सब समझकर आप मुझपर दया कीजिये।'

भगवती पार्वती श्रीकृष्णके ध्यानमें तल्लीन थीं, उस समय उस असीम एवं महान् तेजराशिके मध्य उन्होंने अद्भुत रूप-लावण्य-सम्पन्न विश्वविमोहन श्रीकृष्ण-स्वरूपका दर्शन किया। वह हीरकजटित बहुमूल्य रत्ननिर्मित आसनपर आसीन एवं मणियोंकी मालासे सुशोभित था। नवनीरदवपुपर अद्भुत पीताम्बरकी अवर्णनीय शोभा थी। रत्नाभरणोंसे अलङ्कृत उस अनुपम विग्रहके कर-कमलोंमें पीयूषवर्षिणी मुरली विद्यमान थी। उनके ललाटपर चन्दनकी खौर और मस्तकपर मनको मोहित करनेवाला सुन्दर मयूरपिच्छ था। उस अनुपम सौन्दर्यकी तुलना कहीं सम्भव नहीं थी।

ऐसे भुवनमोहन अनूप रूपको देखकर भगवती पार्वती उसीके सदृश पुत्रकी कामना करने लगीं और उसी क्षण उन्हें वह वर प्राप्त भी हो गया। इतना ही नहीं, उस समय शिवाने जो-जो कामनाएँ कीं, वे सब पूरी हुईं। देवताओंके भी अभीष्टकी पूर्ति हुई। तदनन्तर वह तेज वहीं तिरोहित हो गया।

तब सुर-समुदायने ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारको समझाया और उन्होंने दिगम्बर शिवको उनकी प्राणेश्वरी शिवाको लौटा दिया।

फिर तो भगवती पार्वतीकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। जगज्जननीने ब्राह्मणोंको बहुमूल्य रत्नप्रदान किये। वन्दियों एवं भिक्षुओंको स्वर्ण-राशि देकर ब्राह्मणों, देवताओं एवं पर्वतीयोंको परम सुस्वादु व्यञ्जनोंका भोजन कराया।

महिमामयी भवानीने अलौकिक उपहारोंसे अत्यन्त प्रीतिपूर्वक अपने प्राणनाथ देवदेव महादेवकी पूजा की। देववाद्य बजने लगे। अनेक माङ्गलिक कार्योंके साथ-साथ श्रीहरिसे सम्बन्धित गाये गये माङ्गलिक गीतोंसे वह शुभस्थान ध्वनित हो उठा। सर्वत्र आनन्द और उल्लासका साम्राज्य व्याप्त हो गया।

इस प्रकार सनातनी उमाका पवित्रतम पुण्यक-व्रत सम्पन्न हुआ। पराम्बाने विपुल रत्नराशिका दान कर सबको भोजन कराया। तदनन्तर उन्होंने अपने जीवनधन धर्माध्यक्ष शिवके साथ स्वय भी भोजन किया। फिर सबको कर्पूरादिसे सुवासित ताम्बूल देकर उन्होंने भगवान् शिवके साथ स्वयं भी उसे ग्रहण किया। इसके अनन्तर जगदम्बा प्रसन्नतापूर्वक अपने पतिके साथ एकान्तमे चली गयीं।

परब्रह्मका प्राकट्य

'महादेव! मैं क्षुधा और तृषाधिक्यसे व्याकुल अत्यन्त दीन और दुर्बल ब्राह्मण भोजनकी इच्छासे बड़ी दूरसे चलकर आपकी शरणमे आया हूँ।' उसी समय एक दीन-हीन एवं कुत्सित ब्राह्मण सर्वसम्पत्समन्विता पार्वतीके द्वारपर आया। उसके वस्त्र मैले-कुचैले और सिरके बाल रूखे थे। उस कृशकाय कुत्सितमूर्ति ब्राह्मणके दाँत स्वच्छ थे और उसके ललाटपर उज्ज्वल तिलक लगा हुआ था। उसने डंडेके सहारे खड़े होकर क्षुधा-निवारणार्थ भोजनकी याचना करते हुए कहा—'शिव! आप क्या कर रहे हैं? जगन्माता पार्वती शीघ्र आओ। माताके रहते पुत्र भूखा कैसे रह सकता है?'

भगवान् शंकर और पार्वती द्वारपर आये। अत्यधिक दुर्बल ब्राह्मण किसी प्रकार उनके चरणोंमे प्रणाम कर स्तुति करने लगा। उसके मधुरातिमधुर वचन सुनकर आशुतोष प्रसन्न हो गये।

'विप्रवर! आप कहाँसे पधारे हैं?' भगवान् शंकरने अशक्त वृद्ध ब्राह्मणसे पूछा—'कृपया बताइये आपका शुभ नाम क्या है?

'वेदज्ञ ब्राह्मण! आपका आगमन कहाँसे हुआ है?' धर्ममयी पार्वतीने भी बड़े प्रेमसे कहा—'मेरा परम सौभाग्य है, जो आपने अतिथिके रूपमे मेरे द्वारपर पधारनेका कष्ट स्वीकार किया। अभीष्ट अतिथिकी सेवाकी अमित महिमा है।'

'वेदविद्याप्रकाशिनी माता! आप वेदोक्त विधिसे मेरी पूजा कीजिये।' वृद्ध ब्राह्मणने काँपते हुए कहा—'उपवास-व्रती, रोगग्रस्त एव क्षुधार्त व्यक्ति स्वेच्छानुसार भोजन करना चाहता है। मैं तृषा-क्षुधासे आकुल हूँ।'

'द्विजसत्तम! आप क्या भोजन करना चाहते हैं?' साक्षात् अन्नपूर्णाने कहा—'आपका त्रैलोक्यदुर्लभ अभीष्ट पदार्थ मैं आपकी सेवामें उपस्थित कर दूँगी। आप मुझे आज्ञा देकर कृतार्थ कीजिये।'

'माता! मैं आप पुत्रहीनाका अनाथ पुत्र हूँ।' ब्राह्मणने रुक-रुककर धीरे-धीरे कहा—'मैंने सुना है, आपने महान् पुण्यक-व्रत सम्पन्न किया है। उसके लिये दुर्लभ सामग्रियाँ एकत्र हुई होंगी। उन अद्भुत पक्वान्नों एवं मिष्टान्नोंसे आप मेरी पूजा कीजिये। इसके अनन्तर सुवासित निर्मल तथा स्वादिष्ठ जल और सुवासित श्रेष्ठ ताम्बूल प्रदान कीजिये। ये दुर्लभ पदार्थ इतना खिलाइये, जिससे मेरी तोंद सुन्दर हो जाय, मैं लम्बोदर हो जाऊँ।'

'आपके आशुतोष पति सृष्टिकर्ता एवं सम्पूर्ण सम्पत्तियोंको प्रदान करनेवाले हैं और आप सम्पूर्ण सत्कीर्तियोंको प्रदान करनेवाली महालक्ष्मीस्वरूपा हैं। अतः आप मुझे रमणीय रत्नसिंहासन, बहुमूल्य रत्नाभरण, अग्निशुद्ध सुन्दर वस्त्र, अत्यन्त दुर्लभ श्रीहरिका मन्त्र, श्रीहरिमे सुदृढ़ भक्ति, मृत्युंजय-नामक ज्ञान, सुखदायिनी दानशक्ति और सर्वसिद्धि दीजिये।'

'सती माता! पुत्रके लिये आपको क्या अदेय है?' वृद्ध ब्राह्मण धीरे-धीरे कहते जा रहे थे—'मैं तप एवं उत्तम धर्मका पालन करते हुए समस्त कर्मोंका पालन करूँगा; किंतु जन्म-जरा-व्याधि और मृत्युके हेतुभूत कर्मोंका स्पर्श भी नहीं करूँगा।'

इस प्रकार संसारकी असारता एवं भगवद्भक्तिका माहात्म्य-गान करते हुए ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध, तेजस्वी कृशकाय ब्राह्मणने अन्तमे कहा—'समस्त कर्मोंका फल प्रदान करनेवाली माता! आप नित्यस्वरूपा सनातनी देवी होकर भी लोकशिक्षाके लिये पूजा और तपश्चरण करती हैं। प्रत्येक

कल्पमें गोलोकवासी श्रीकृष्ण गणेशके रूपमें आपके अङ्कमें प्रकट होकर क्रीड़ा करते हैं।'

इतना कहते-कहते अशक्त वृद्ध ब्राह्मण वहीं अन्तर्धान हो गये। वे परमेश्वर इस प्रकार अन्तर्हित होकर परम साध्वी, परम मङ्गलमयी एवं परम धन्या माता पार्वतीकी शय्यापर नवजात शिशुके रूपमें लेटकर छतकी ओर देखने लगे—

शुद्धचम्पकवर्णाभः कोटिचन्द्रसमप्रभः।
सुखदृश्यः सर्वजनैश्चक्षूरश्मिविवर्द्धकः॥
अतीव सुन्दरतनुः कामदेवविमोहनः।
मुखं निरुपमं बिभ्रच्छारदेन्दुविनिन्दकम्॥
सुन्दरे लोचने बिभ्रच्चारुपद्मविनिन्दके।
ओष्ठाधारपुटं बिभ्रत् पक्वबिम्बविनिन्दकम्॥
कपालं च कपोलं च परमं सुमनोहरम्।
नासाग्रं रुचिरं बिभ्रत् खगेन्द्रचञ्चुनिन्दकम्॥
त्रैलोक्येषु निरुपमं सर्वाङ्गं बिभ्रदुत्तमम्।
शयानः शयने रम्ये प्रेरयन् हस्तपादकम्॥

(ब्रह्मवैवर्त०, गणपतिखं० ८। ८५—८९)

'उस बालकके शरीरकी आभा शुद्ध चम्पकके समान थी। उसका प्रकाश करोड़ों चन्द्रमाओंकी भाँति उद्दीप्त था। सबलोग सुखपूर्वक उसकी ओर देख सकते थे। वह नेत्रोंकी ज्योतिको बढ़ानेवाला था। उसका अत्यन्त सुन्दर शरीर कामदेवको विमोहित करनेवाला था। उसका अनुपम मुख शारदीय पूर्णिमाके चन्द्रका उपहास कर रहा था। उसके सुन्दर नेत्र मनोहर कमलको तिरस्कृत करनेवाले थे। ओष्ठ और अधरपुट ऐसे लाल थे कि उसे देखकर पका हुआ बिम्बफल भी लज्जित हो जाता था। कपाल और कपोल परम मनोहर थे। रुचिर नासिका गरुड़की चोंचको भी तिरस्कृत करनेवाली थी। उसके सभी अङ्ग उत्तम थे। त्रिलोकीमें कहीं उसकी उपमा नहीं थी। इस प्रकार वह रमणीय शय्यापर सोया हुआ शिशु हाथ-पैर उछाल रहा था।'

किंतु अत्यन्त कृशकाय वृद्ध ब्राह्मणवेषधारी अतिथिके अकस्मात् अन्तर्हित हो जानेपर परमादर्श गृहिणी पार्वती व्याकुल हो गयीं। उन्होंने अपने प्राणपति शिवजीको उन्हें ढूँढनेके लिये कहा और स्वयं दुःखी होकर कहने लगीं—'तृषा-क्षुधासे आकुल ब्रह्मन्! आप कहाँ चले गये? भूखसे पीड़ित अतिथिके द्वारसे चले जानेपर गृहस्थका जीवन व्यर्थ चला जाता है।'

'जगज्जननी! शान्त हो जाओ।' अतिथिदेवके अचानक अन्तर्हित हो जानेपर छटपटाती हुई अम्बिकाने आकाशवाणी सुनी—'और मन्दिरमें जाकर अपने पुत्रको देखो। पुण्यक-व्रतके फलस्वरूप परिपूर्णतम परात्पर श्रीकृष्ण ही तुम्हारे पुत्रके रूपमें प्रकट हुए हैं।'

यत्तेजो योगिनः शश्वद् ध्यायन्ते सततं मुदा॥
ध्यायन्ते वैष्णवा देवा ब्रह्मविष्णुशिवादयः।
यस्य पूज्यस्य सर्वाग्रे कल्पे कल्पे च पूजनम्॥
यस्य स्मरणमात्रेण सर्वविघ्नो विनश्यति।
पुण्यराशिस्वरूपं च स्वसुतं पश्य मन्दिरे॥
कल्पे कल्पे ध्यायसे यं ज्योतीरूपं सनातनम्।
पश्य त्वं मुक्तिदं पुत्रं भक्तानुग्रहविग्रहम्॥
तव वाञ्छापूर्णबीजं तपःकल्पतरोः फलम्।
सुन्दरं स्वसुतं पश्य कोटिकन्दर्पनिन्दकम्॥

(ब्रह्मवैवर्त०, गणपतिख० ९। ९—१३)

'योगीलोग जिस अविनाशी तेजका प्रसन्न मनसे निरन्तर ध्यान करते हैं, वैष्णवगण तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवता जिसके ध्यानमें लीन रहते हैं, प्रत्येक कल्पमें जिस पूजनीयकी सर्वप्रथम पूजा होती है, जिसके स्मरणमात्रसे समस्त विघ्न नष्ट हो जाते हैं तथा जो पुण्यराशिस्वरूप है, मन्दिरमें विराजमान अपने उस पुत्रकी ओर तो दृष्टि डालो। प्रत्येक कल्पमें तुम जिस सनातन ज्योतिरूपका ध्यान करती हो, वही तुम्हारा पुत्र है। यह मुक्तिदाता तथा भक्तोंके अनुग्रहका मूर्तरूप है। जरा उसकी ओर तो निहारो। जो तुम्हारी कामनापूर्तिका बीज, तपरूपी कल्पवृक्षका फल और सुन्दरतामें करोड़ों कामदेवोंको तिरस्कृत करनेवाला है, अपने उस लावण्यमूर्ति पुत्रको तो देखो।'

आकाशवाणीने आगे अम्बिकाका भ्रम निवारण करते हुए कहा—'वे क्षुधार्त्त अतिथि वृद्ध ब्राह्मण नहीं थे, उस वेषमें तुम्हारे सम्मुख साक्षात् जनार्दन ही उपस्थित हुए थे।'

'तुम प्रसन्नचित्त हो अपने देवाग्रगण्य सुन्दरतम पुत्रको देखो'—आकाशवाणीके द्वारा इस प्रकारकी प्रेरणा प्राप्त होते ही माता पार्वती शीघ्रतासे अपने महलमें पहुँचीं। वहाँ उन्होंने अत्यन्त अद्भुत, परम सुन्दर, पद्मपत्राक्ष शिशुको अपनी शय्यापर लेटे देखा। वह त्रैलोक्यसुन्दर तेजस्वी शिशु छतकी ओर निहार रहा था। उसके दिव्य अङ्गोंसे

प्रणाम किया। जगदम्बाने उन्हें आशिष् देकर उनसे कुशल-समाचार पूछा।

'ग्रहेश्वर! आपके नेत्र कुछ मुँदे हैं और आपने सिर झुका रखा है', सम्पूर्ण बाधाओं एवं कलाओंके अधिपतिकी जननी पार्वतीने पीताम्बरधारी शनैश्चरसे पूछा—'आप मेरी ओर और मेरे पुत्रकी ओर देख नहीं रहे हैं। इसका क्या हेतु है?'

'माता! सम्पूर्ण प्राणी अपने कर्मका ही फल भोगते हैं।' शनैश्चरदेवने सिर झुकाये कहा—'वे अपने शुभाशुभ कर्मोंसे ही सुख-दुःख प्राप्त करते हैं। मेरी कथा गोपनीय है और माताके सम्मुख कहनेयोग्य नहीं है, तथापि आपकी आज्ञासे मैं उसे प्रकट कर दे रहा हूँ।'

'शंकरवल्लभे!' शनैश्चरदेवने आगे कहा—'बाल्यकालसे ही मेरे मनमें श्रीकृष्ण-पद-पद्मानुरक्ति थी। मैं प्रायः उन्हींके अत्यन्त सुखद ध्यानमें तल्लीन रहता था। सर्वथा विरक्त एवं तप-निरत था, किंतु मेरे पिताने चित्ररथकी पुत्रीसे मेरा परिणय करा दिया। मेरी पत्नी साध्वी, तेजस्विनी एवं तपस्विनी थी।

'एक दिनकी बात है, मेरी सहधर्मिणी ऋतुस्नानके अनन्तर उस समय मेरे समीप आयी, जब मैं भगवच्चरणोंके ध्यानमें तल्लीन सर्वथा बाह्यज्ञानशून्य था।

''तुम जिसकी ओर दृष्टिपात करोगे, वही नष्ट हो जायगा।'' ऋतुकालके विफल होनेपर उसने दुःखी मनसे मुझे शाप दे दिया।

'यद्यपि ध्यानसे विरत होनेपर मैंने उसे संतुष्ट किया, किंतु वह पश्चात्ताप करनेपर भी शाप लौटानेमें समर्थ नहीं थी। इसी कारण मैं जीवहिंसाके भयसे अपने नेत्रोंसे किसीकी ओर नहीं देखता और सहज ही सदा सिर झुकाये रहता हूँ।'

शनैश्चरदेवकी बात सुनकर नर्तकियों और किंनरियोंके समुदायके साथ अनन्तानन्तसुखदायिनी जगदम्बा हँसने लगीं।

'सम्पूर्ण विश्व ईश्वरेच्छाके अधीन है।' सर्वकामफल-प्रदायिनी जगदीश्वरीने ऐसा कहते हुए शनैश्चरदेवसे कहा—'तुम मेरी तथा मेरे शिशुकी ओर देखो।'

'मैं पार्वतीनन्दनकी ओर देखूँ या नहीं?' शनैश्चर देव मन-ही-मन सोचने लगे। 'यदि मैं इस दुर्लभ बालककी ओर देखूँगा तो निश्चय ही इसका अनिष्ट हो जायगा; किंतु सर्वेश्वरी जननीकी आज्ञा कैसे टाली जाय?'

इस प्रकार सोचते हुए धर्मात्मा शनैश्चरदेवने धर्मको साक्षी देकर गिरिजाकी ओर तो नहीं, किंतु उनके पाप-संताप-हरण पुत्रकी ओर देखनेका निश्चय किया।

पहलेसे ही खिन्न शनैश्चरके कण्ठोष्ठतालु शुष्क हो गये थे। फिर भी उन्होंने वामनेत्रके कोनेसे पार्वतीनन्दनकी ओर दृष्टिपात किया। शनैश्चरदेवकी शापग्रस्त दृष्टि पड़ते ही भगवान् शिव एवं भगवती उमाके प्राणप्रिय पुत्रका मस्तक धड़से पृथक् होकर गोलोकमें जाकर अपने अभीष्ट परात्पर श्रीकृष्णमें प्रविष्ट हो गया। अत्यन्त दुःखी शनैश्चरने अपनी आँख फेर ली और सिर झुकाकर खड़े हो गये।

अपने अङ्कमें दुर्लभतम कम्बुकण्ठ शिशुका रक्तसे लथपथ शरीर देखकर माता पार्वती चीत्कार कर उठीं। वे बालकका वह वक्षसे सटाये रोती-कलपती और विलाप करती उन्मत्तकी तरह इधर-उधर घूमती हुई मूर्च्छित होकर धरतीपर गिर पड़ीं। यह आश्चर्यजनक दृश्य देखकर वहाँ उपस्थित सभी देवता, देवियाँ, पर्वत, गन्धर्व, शिव तथा समस्त कैलासवासी अवसन्न हो गये। वे सभी निष्प्राण-से प्रतीत होने लगे।

पार्वती-पुत्र गजमुख हुए

मस्तकहीन रक्तस्नात पार्वतीनन्दनपर दृष्टिपात कर श्रीहरि-ने सबको मूर्च्छित देखा तो तुरंत गरुडपर विराजमान हो तीव्रगतिसे उत्तर दिशाकी ओर चल पड़े। वहाँ उन्होंने पुष्पभद्रा नदीके तटपर एकान्त वनमें अपनी हथिनी और बच्चोंके साथ एक गजेन्द्रको सोते हुए देखा। उसका सिर उत्तर दिशाकी ओर था। सर्वमङ्गलकर श्रीहरिने तुरंत अपने सहस्रारसे उसका मस्तक उतारकर गरुडपर रख लिया।

गजके कटे अङ्गके गिरनेसे हथिनीकी नींद टूट गयी। अपने स्वामीकी निर्जीव देह देखकर वह चीत्कार करने लगी। उसके बच्चे भी अपनी माताके रुदनसे जगकर व्याकुलतासे क्रन्दन करने लगे। हथिनीने गरुडासनपर विराजमान सम्पूर्ण निषेक (कर्मफलयोग) का खण्डन करनेमें समर्थ शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधर नवजलधरवपु श्रीहरिकी अचिन्त्य सौन्दर्यमयी मूर्तिको देखा तो वह परमप्रभुका स्तवन करने लगी।

हथिनीकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर सर्वसमर्थ प्रभुने दूसरे गजका मस्तक उतार उसके शरीरसे जोड़ दिया और फिर अपने ब्रह्मज्ञानसे उसे जीवित कर दिया।

'भाग्यवान् गज ! तू सकुटुम्ब कल्पपर्यन्त जीवित रह।' अपने मङ्गलमय चरणोंसे उसके सर्वाङ्गका स्पर्श करते हुए परमप्रभुने उसके परम मङ्गलके लिये वरदान प्रदान किया। तदनन्तर गरुड़ वायुवेगसे उड़कर तुरंत कैलासपर पहुँच गये।

श्रीहरिने पार्वती-पुत्रको उठाकर अपने वक्षसे सटा लिया और गज-मुखको सुन्दर बनाकर शिवनन्दनके धड़से जोड़ दिया।

'हुं !' परम प्रभुके इस उच्चारणसे ही वह बालक जीवित हो गया। फिर तो उन्होंने मोहनिवारिणी अम्बिकाको सचेत कर उनका पुत्र उनके अङ्कमें रख दिया।

'बुद्धिस्वरूपा शिवे ! तुम अच्छी प्रकार जानती हो कि ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त सम्पूर्ण जगत् अपने-अपने कर्मानुसार फल पाता है।' श्रीहरिने शोकमग्न उमाको समझाते हुए कहा। 'प्राणियोंके स्वकर्मार्जित भोग सैकड़ों कल्पोंतक प्रत्येक योनिमें भोगने पड़ते हैं। सुख-दुःख, भय-शोक, आनन्द—ये कर्मके ही फल हैं। इसमें सुख और हर्ष उत्तम कर्मके और अन्य पापकर्मके परिणाम हैं।* स्वयं परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्ण कर्मके फलदाता, सृजन, पालन एवं संहार करनेवाले हैं। तुम्हारे गजकर्ण पुत्र उन्हीं परमात्मामें स्थित हैं।'

श्रीहरिकी वाणी सुनकर वात्सल्यमयी जननी पार्वती संतुष्ट हो गयीं और उन परम प्रभुके अरुणोत्पल-चरणोंमें प्रणाम कर अपने शिशुको गोदमें उठा उसे स्तनपान कराने लगीं। फिर उन्होंने अपने प्राणवल्लभ शिवकी प्रेरणासे हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक श्रीहरिकी स्तुति-प्रार्थना की।

परम तपस्विनी उमाके स्तवनसे प्रसन्न होकर लक्ष्मीपति विष्णुने अपना कौस्तुभ उस लम्बोष्ठ बालकके गलेमें डालते हुए उसे तथा जगदीश्वरी पार्वतीको शुभाशीर्वाद प्रदान किया।

लम्बकर्ण पार्वती-पुत्रके जीवित हो जानेपर हर्षातिरेकसे लोकस्रष्टाने उसे अपना किरीट और धर्मने रत्नाभूषण प्रदान किया। इसके अनन्तर देवियों, उपस्थित सभी देवताओं, मुनियों, पर्वतों, गन्धर्वों और एकत्र समस्त स्त्रियोंने प्रसन्न मनसे बहुमूल्य रत्नादि उस शम्भुकुमारको प्रदान किये।

* सुखं दुःखं भयं शोकमानन्दं कर्मणः फलम्।
शुभकर्मणः सुखं हर्षमितरे पापकर्मणः॥
(ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपतिखं० १२। २७)

अपने सुमङ्गलमङ्गल बालकके जीवित होनेकी प्रसन्नतामें सर्वलोकमहेश्वर शिव एवं निखिलसृष्टि-संचालिका पार्वतीने असंख्य रत्नोंका दान किया। हिमगिरिने वन्दियोंको सौ गज तथा एक सहस्र अश्व प्रदान किये। देवताओंने सभी ब्राह्मणोंको दान दिया और स्त्रियोंने भी अपने दानोंसे वन्दियोंको संतुष्ट कर दिया।

क्षीरोदधिशायी लक्ष्मीपतिने समस्त माङ्गलिक कार्योंके साथ वेदों और पुराणोंका पाठ करवाया तथा समस्त ब्राह्मणोंको अत्यन्त आदरपूर्वक दुर्लभ सुमिष्ट पक्वान्नोंके भोजनसे पूर्ण तृप्त कर दिया।

'तुम अङ्गरहित हो जाओ।' उक्त सभाके बीच लज्जावश शनैश्चरको सिर झुकाये देखकर माता पार्वतीने क्रुद्ध होकर उन्हें शाप दे दिया।

गजमुखको प्रथमपूज्यताका आशीर्वाद

कुछ समय व्यतीत हुआ। क्षीराब्धिशायी लक्ष्मीपति विष्णु शुभ मुहूर्तमें देवताओं और मुनियोंके साथ भगवान् शंकरके सदनमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने श्रेष्ठतम उपहारोंसे पद्मप्रसन्ननयन गजाननकी पूजा की और आशीः प्रदान की—

सर्वाग्रे तव पूजा च मया दत्ता सुरोत्तम।
सर्वपूज्यश्च योगीन्द्रो भव वत्सेत्युवाच तम्॥
(ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपतिखं० १३। २)

'सुरश्रेष्ठ! मैंने सबसे पहले तुम्हारी पूजा की है, अतः वत्स! तुम सर्वपूज्य तथा योगीन्द्र होओ।'

प्रसन्न कमलनयन विष्णुने रुद्रप्रिय बालकके कण्ठमें वनमाला पहनायी और मोक्षदायक ब्रह्मज्ञान तथा सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्रदान कर उसे अपने समान बना दिया। फिर षोडशोपचारकी सामग्रियाँ देकर देवताओं और मुनियोंके साथ उसका नामकरण किया—

विघ्नेशश्च गणेशश्च हेरम्बश्च गजाननः।
लम्बोदरश्चैकदन्तः शूर्पकर्णो विनायकः॥
(ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपतिखं० १३। ५)

'विघ्नेश, गणेश, हेरम्ब, गजानन, लम्बोदर, एकदन्त, शूर्पकर्ण और विनायक—ये उस बालकके नाम रखे गये।'

फिर दयामय श्रीहरिने पुनः मुनियोंको बुलवाकर हेरम्बको आशीर्वाद दिलवाया। इसके अनन्तर सभी देव-

देवियों एवं मुनियों आदिने मुक्तिदाता शिवपुत्रको विविध प्रकारके उपहार प्रदान किये और बार-बार श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनका पूजन किया।

फिर सर्वव्यापिनी जननीने अपने अघनाशन पुत्रको रत्नसिंहासनपर बैठाकर समस्त तीर्थोंके जलपूरित सौ कलशोंसे स्नान कराया। उस समय मुनिगण वेदके मन्त्रोंका उच्चारण कर रहे थे। इसके अनन्तर उन्होंने अपने दुःख-भञ्जनकारक पुत्रको अग्निशुद्ध दो वस्त्र दिये। फिर जननीने पुण्यतोया गोदावरीके जलसे पाद्य, पापनाशिनी गङ्गाजीके जलसे अर्घ्य एवं दूर्वा, अक्षत, पुष्प और चन्दनमिश्रित पवित्र तीर्थ पुष्करके जलसे आचमन कराया। फिर माता पार्वतीने गणेशको रत्नपात्रमें रखा हुआ मधुपर्क एवं शर्करायुक्त द्रव प्रदान किये।

इसके अनन्तर स्वर्गलोकके वैद्य अश्विनीकुमारद्वारा निर्मित स्नानोपयोगी विष्णु-तैल, बहुमूल्य-रत्नाभरण, विविध प्रकारके सुगन्धित पुष्प, पारिजातकी पुष्पमालाएँ, अनेक प्रकारके सुगन्धित चन्दन तथा दिव्य सुगन्धमय धूप-दीप प्रदान किये। फिर पशुपाशविमोचन गणाधिराजको उनका प्रिय लड्डू तथा उनको प्रिय लगनेवाले विविध प्रकारके व्यञ्जन अर्पित किये। उन पुष्कल व्यञ्जनोंका पर्वत-तुल्य ढेर लग गया। तदनन्तर ढेर-के-ढेर अनार, बेलके फल, भाँति-भाँतिके खजूर, कैथ, जामुन, कटहल, आम, केला और नारियलके फल दिये। फिर आचमन और सुवासित ताम्बूल समर्पित करके जननीने सुन्दर पानके बीडे और वायनपूरित सैकड़ों स्वर्णपात्र लड्डुकप्रिय गणेशको अर्पित किये।

इसके अनन्तर मेनका, हिमालय, हिमालयके पुत्र, वहाँ उपस्थित ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवताओंने—

ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं गणेश्वराय ब्रह्मस्वरूपाय चारवे।
सर्वसिद्धिप्रदेशाय विघ्नेशाय नमो नमः॥
(ब्रह्मवैवर्त०, गणपतिख० १३। ३०)

—इस मन्त्रसे प्रणतान्धकारमोचन गिरिजापुत्रकी पूजा की और उन्हें भाँति-भाँतिकी दुर्लभ वस्तुएँ प्रदान कर वे आनन्दमें निमग्न हो गये।

श्रीविष्णुद्वारा गणेश-स्तुति

फिर क्षीरोदधिशायी विष्णु शिवप्रिया पार्वतीके अजगमर, स्वराचरपति, भुवनपति, इच्छाशक्तिधर, सर्वात्मा, सर्वदेवतात्मा पुत्रका सविधि पूजन कर भक्तिभावसे उनकी स्तुति करने लगे—

ईश त्वां स्तोतुमिच्छामि ब्रह्मज्योतिः सनातनम्।
निरूपितुमशक्तोऽहमनुरूपमनीहकम्॥
प्रवरं सर्वदेवानां सिद्धानां योगिनां गुरुम्।
सर्वस्वरूपं सर्वेशं ज्ञानराशिस्वरूपिणम्॥
अव्यक्तमक्षरं नित्यं सत्यमात्मस्वरूपिणम्।
वायुतुल्यातिनिर्लिप्तं चाक्षतं सर्वसाक्षिणम्॥
संसारार्णवपारे च मायापोते सुदुर्लभे।
कर्णधारस्वरूपं च भक्तानुग्रहकारकम्॥
वरं वरेण्यं वरदं वरदानामपीश्वरम्।
सिद्धं सिद्धिस्वरूपं च सिद्धिदं सिद्धिसाधनम्॥
ध्यानातिरिक्तं ध्येयं च ध्यानासाध्यं च धार्मिकम्।
धर्मस्वरूपं धर्मज्ञं धर्माधर्मफलप्रदम्॥
बीजं संसारवृक्षाणामङ्कुरं च तदाश्रयम्।
स्त्रीपुंनपुंसकानां च रूपमेतदतीन्द्रियम्॥
सर्वाद्यमग्रपूज्यं च सर्वपूज्यं गुणार्णवम्।
स्वेच्छया सगुणं ब्रह्म निर्गुणं चापि स्वेच्छया॥
स्वयं प्रकृतिरूपं च प्राकृतं प्रकृतेः परम्।
त्वां स्तोतुमक्षमोऽनन्तः सहस्रवदनेन च॥
न क्षमः पञ्चवक्त्रश्च न क्षमश्चतुराननः।
सरस्वती न शक्ता च न शक्तोऽहं तव स्तुतौ॥
न शक्ताश्च चतुर्वेदाः के वा ते वेदवादिनः॥
(ब्रह्मवैवर्त०, गणपतिख० १३। ४१–५०)

'ईश! मैं सनातन ब्रह्मज्योतिःस्वरूप आपका स्तवन करना चाहता हूँ; परंतु आपके अनुरूप निरूपण करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ; क्योंकि आप इच्छारहित, सम्पूर्ण देवोंमें श्रेष्ठ, सिद्धों और योगियोंके गुरु, सर्वस्वरूप, सर्वेश्वर, ज्ञानराशिस्वरूप, अव्यक्त, अविनाशी, नित्य, सत्य, आत्मस्वरूप, वायुके समान अत्यन्त निर्लेप, क्षतरहित, सबके साक्षी, संसार-सागरसे पार होनेके लिये परम दुर्लभ मायारूपी नौकाके कर्णधारस्वरूप, भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले, श्रेष्ठ, वरणीय, वरदाता, वरदानियोंके भी ईश्वर, सिद्ध, सिद्धिस्वरूप, सिद्धिदाता, सिद्धिके साधन, ध्यानातीत, ध्येय, ध्यानद्वारा असाध्य, धार्मिक, धर्मस्वरूप, धर्मके ज्ञाता, धर्म और अधर्मका फल प्रदान करनेवाले, संसार-वृक्षके बीज, अङ्कुर और उसके आश्रय, स्त्री, पुरुष और नपुंसकके

स्वरूपमें विराजमान तथा उनकी इन्द्रियोंसे परे, सबके आदि, अग्रपूज्य, सर्वपूज्य, गुणके सागर, स्वेच्छासे निर्गुण ब्रह्म तथा स्वेच्छासे ही सगुण ब्रह्मका रूप धारण करनेवाले, स्वयं प्रकृतिरूप और प्रकृतिसे परे प्राकृतरूप हैं। शेष अपने सहस्रों मुखोंसे भी आपकी स्तुति करनेमें असमर्थ हैं। आपके स्तवनमें न पञ्चमुख महेश्वर समर्थ हैं न चतुर्मुख ब्रह्मा ही, न सरस्वतीकी शक्ति है न मैं ही आपका स्तवन कर सकता हूँ। और जब चारों वेदोंकी ही शक्ति नहीं है, तो फिर उन वेदवादियोंकी तो क्या गणना।' उपर्युक्त स्तुतिकी ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें बड़ी महिमा बतायी गयी है।*

'करुणामय प्रभो! मायाशक्तिने मुझे शाप दे दिया है।' सुर-समुदायमें विघ्ननिघ्न रुद्रपुत्रकी पूजा हो जानेपर शनैश्चरने अत्यन्त विनीत वाणीमें लक्ष्मीपति विष्णुसे निवेदन किया। 'अतएव आप कृपापूर्वक सम्पूर्ण विघ्नोंके शमन और दुःखकी पूर्ण निवृत्तिके लिये गणेश-कवचका वर्णन करनेका अनुग्रह कीजिये; मैं उसे धारण करना चाहता हूँ।'

गणेश-कवच और उसकी महिमा

'रविनन्दन! इस कवचकी बड़ी महिमा है।' शनैश्चर-देवके विनयपूर्ण वचन सुनकर सजल जलधरवपु श्रीविष्णुने कहा—'दस लाख जप करनेसे कवच सिद्ध हो जाता है। कवच सिद्ध कर लेनेपर मनुष्य मृत्युपर विजय प्राप्त करनेमें समर्थ हो जाता है। यह सिद्ध-कवच धारण करनेपर मनुष्य वाग्मी, चिरजीवी, सर्वत्र विजयी और पूज्य हो जाता है। इस मालामन्त्र तथा कवचके प्रभावसे मनुष्यके सारे पातकोप पातक ध्वस्त हो जाते हैं। इस कवचके शब्द-श्रवणमात्रसे ही भूत-प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, डाकिनी, योगिनी, वेताल आदि बालग्रह, ग्रह तथा क्षेत्रपाल आदि दूर भाग जाते हैं। कवचधारी पुरुषको आधि (मानसिक रोग), व्याधि (शारीरिक रोग) और भयप्रद शोक स्पर्श नहीं कर पाते।'

इस प्रकार सर्वविघ्नैकहरण गणेश-कवचका माहात्म्य गान करके लक्ष्मीपति विष्णुने सूर्यपुत्र शनैश्चरको कवचका उपदेश देते हुए कहा—

संसारमोहनस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः।
ऋषिश्छन्दश्च बृहती देवो लम्बोदरः स्वयम्॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः।
सर्वेषां कवचानां च सारभूतमिदं मुने॥
ॐ गं हुं श्रीगणेशाय स्वाहा मे पातु मस्तकम्।
द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रो ललाटं मे सदावतु॥
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं गमिति च संततं पातु लोचनम्।
तालुकं पातु विघ्नेशः संततं धरणीतले॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीमिति परं संततं पातु नासिकाम्।
ॐ गौं गं शूर्पकर्णाय स्वाहा पात्वधरं मम॥
दन्तांश्च तालुकां जिह्वां पातु मे षोडशाक्षरः॥
ॐ लं श्रीं लम्बोदरायेति स्वाहा गण्डं सदावतु।
ॐ क्लीं ह्रीं विघ्ननाशाय स्वाहा कर्णं सदावतु॥
ॐ श्रीं गं गजाननायेति स्वाहा स्कन्धं सदावतु।
ॐ ह्रीं विनायकायेति स्वाहा पृष्ठं सदावतु॥
ॐ क्लीं ह्रीमिति कङ्कालं पातु वक्षःस्थलं च गम्।
करौ पादौ सदा पातु सर्वाङ्गं विघ्ननिघ्नकृत्॥
प्राच्यां लम्बोदरः पातु चाग्नेय्यां विघ्ननायकः।
दक्षिणे पातु विघ्नेशो नैर्ऋत्यां तु गजाननः॥
पश्चिमे पार्वतीपुत्रो वायव्यां शंकरात्मजः।
कृष्णस्यांशश्चोत्तरे च परिपूर्णतमस्य च॥
ऐशान्यामेकदन्तश्च हेरम्बः पातु चोर्ध्वतः।
अधो गणाधिपः पातु सर्वपूज्यश्च सर्वतः॥
स्वप्ने जागरणे चैव पातु मां योगिनां गुरुः।
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम्।

---

* इदं विष्णुकृतं स्तोत्रं गणेशस्य च यः पठेत्।
सायं प्रातश्च मध्याह्ने भक्तियुक्तः समाहितः॥
तद्विघ्ननिघ्नं कुरुते विघ्नेशः सततं मुने।
वर्द्धते सर्वकल्याणं कल्याणजनकः सदा॥
* * *
स्थिरा भवेद् गृहे लक्ष्मीः पुत्रपौत्रविवर्धिनी।
सर्वैश्वर्यमिह प्राप्य ह्यन्ते विष्णुपदं लभेत्॥
फलं चापि च तीर्थानां यज्ञानां यद्भवेद् ध्रुवम्।
महतां सर्वदानानां श्रीगणेशप्रसादतः॥

(ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपतिख० १३। ५२-५३, ५७-५८)

'जो मनुष्य एकाग्रचित्त हो भक्तिभावसे प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल इस विष्णुकृत गणेशस्तोत्रका सतत पाठ करता है, विघ्नेश्वर उसके समस्त विघ्नोंका विनाश कर देते हैं, सदा उसके सब कल्याणोंकी वृद्धि होती है और वह स्वयं कल्याणजनक हो जाता है। उसके घरमें पुत्र-पौत्रको बढ़ानेवाली लक्ष्मी स्थिररूपसे वास करती हैं और वह इस लोकमें सम्पूर्ण ऐश्वर्योंका भागी होकर अन्तमें विष्णु-पदको प्राप्त हो जाता है। तीर्थों, यज्ञों और सम्पूर्ण महादानोंसे जो फल मिलता है, वह उसे श्रीगणेशकी कृपासे प्राप्त हो जाता है—यह ध्रुव सत्य है।'

संसारमोहनं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥
श्रीकृष्णेन पुरा दत्तं गोलोके रासमण्डले ।
वृन्दावने विनीताय मह्यं दिनकरात्मज ॥
मया दत्तं च तुभ्यं च यस्मै कस्मै न दास्यसि ।
परं वरं सर्वपूज्यं सर्वसंकटतारणम् ॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवत् कवचं धारयेत्तु यः ।
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ सोऽपि विष्णुर्न संशयः ॥
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।
ग्रहेन्द्र कवचस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥
इदं कवचमज्ञात्वा यो भजेच्छंकरात्मजम् ।
शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥

(ब्रह्मवैवर्त०, गणपतिखण्ड १३ । ७९–९४)

"शनैश्चर ! इस 'संसारमोहन'-नामक कवचके प्रजापति ऋषि हैं, बृहती छन्द है और स्वयं लम्बोदर गणेश देवता हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षमें इसका विनियोग कहा गया है। मुने ! यह सम्पूर्ण कवचोंका सारभूत है। 'ॐ गं हुं श्रीगणेशाय स्वाहा'—यह मेरे मस्तककी रक्षा करे। बत्तीस अक्षरोंवाला मन्त्र सदा मेरे ललाटको बचावे। 'ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं गम्'—यह निरन्तर मेरे नेत्रोंकी रक्षा करे। विघ्नेश भूतलपर सदा मेरे तालुकी रक्षा करें। 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं'—यह निरन्तर मेरी नासिकाकी रक्षा करे तथा 'ॐ गौं गं शूर्पकर्णाय स्वाहा'—यह मेरे ओठको सुरक्षित रक्खे। षोडशाक्षर-मन्त्र मेरे दाँत, तालु और जीभको बचावे। 'ॐ लं श्रीं लम्बोदराय स्वाहा' सदा गण्डस्थलकी रक्षा करे। 'ॐ क्लीं ह्रीं विघ्ननाशाय स्वाहा' सदा कानोंकी रक्षा करे। 'ॐ श्रीं गं गजाननाय स्वाहा' सदा कंधोंकी रक्षा करे। 'ॐ ह्रीं विनायकाय स्वाहा' सदा पृष्ठभागकी रक्षा करे। 'ॐ क्लीं ह्रीं' कंकालकी और 'गं' वक्षःस्थलकी रक्षा करें। विघ्ननिहन्ता हाथ, पैर तथा सर्वाङ्गको सुरक्षित रखें। पूर्वदिशामें लम्बोदर और अग्निकोणमें विघ्ननायक रक्षा करें। दक्षिणमें विघ्नेश और नैर्ऋत्यकोणमें गजानन रक्षा करें। पश्चिममें पार्वतीपुत्र, वायव्यकोणमें शंकरात्मज, उत्तरमें परिपूर्णतम श्रीकृष्णका अंश, ईशानकोणमें एकदन्त और ऊर्ध्वभागमें हेरम्ब रक्षा करें। अधोभागमें सर्वपूज्य गणाधिप सब ओरसे मेरी रक्षा करें। शयन और जागरणकालमें योगियोंके गुरु मेरा पालन करें।

"वत्स ! इस प्रकार जो सम्पूर्ण मन्त्र-समूहोंका विग्रहस्वरूप है, उस परम अद्भुत संसारमोहन-नामक कवचका तुमसे वर्णन कर दिया। सूर्यनन्दन ! इसका उपदेश प्राचीन कालमें गोलोकके वृन्दावनमें रासमण्डलके अन्तर्गत श्रीकृष्णने मुझ विनीतको दिया था; वही मैंने तुम्हें प्रदान किया है। तुम इसे जिस-किसीको मत दे डालना। यह परम श्रेष्ठ, सर्वपूज्य और सम्पूर्ण संकटोंसे उबारनेवाला है। जो मनुष्य विधिपूर्वक गुरुकी अभ्यर्चना करके इस कवचको गलेमें अथवा दक्षिण भुजापर धारण करता है, वह निस्संदेह विष्णु ही है। ग्रहेन्द्र ! हजारों अश्वमेध और सैकड़ों वाजपेय यज्ञ इस कवचकी सोलहवीं कलाकी भी समानता नहीं कर सकते। जो मनुष्य इस कवचको जाने बिना शंकर-सुवन गणेशकी भक्ति करता है, उसके लिये सौ लाख जपनेपर भी मन्त्र सिद्धिदायक नहीं होता।"

कुमार कार्तिकेयका आगमन

इस ब्रह्मवैवर्तपुराणके अनुसार दुर्निमित्तहन्ता गणेशके प्राकट्यके अनन्तर अविनाशी शिव-पार्वतीको उनके प्राणप्रिय पुत्र कार्तिकेयकी उत्पत्तिका संवाद प्राप्त हुआ था। वहाँ कार्तिकेय गणेशके अनुज बताये गये हैं और गणेशका एक नाम 'गुहाग्रज' आया है। वह कथा संक्षेपमें इस प्रकार है—पूर्णकाम शिवके शय्यासे उठनेपर उनका अमोघ शुक्र भूतलपर गिर पड़ा था, किंतु पृथ्वीदेवी उसका भार वहन करनेमें समर्थ नहीं थीं। इस कारण उन्होंने उसे अग्निमें डाल दिया। अग्नि भी उस अमोघ शुक्रको धारण करनेमें असमर्थ थे, अतएव उन्होंने उसे स्वर्णरेखा नदीके तटपर सरकंडोंके वनमें फेंक दिया। वह शुक्र तुरंत ही अत्यन्त सुन्दर बालकके रूपमें परिणत हो गया।

उसी समय कृत्तिकाओंका समुदाय बदरिकाश्रमसे आ रहा था। उन्होंने उस अलौकिक बालकका रुदन सुना तो कौतूहलवश उसके समीप चली गयीं। कृत्तिकाओंने उस देवोपम सुन्दर शिशुको उठाकर अपने अङ्कमें ले लिया और प्रसन्नतापूर्वक अपने घर चली गयीं। उन्होंने उस सूर्याधिक तेजस्वी बालकको अपने स्तनोंका दूध पिलाकर उसका पालन किया और उसका नाम 'कार्तिकेय' रखा।

वे कृत्तिकाएँ अपने पोष्यपुत्र कार्तिकेयको अपने प्राणोंसे भी अधिक प्यार करती थीं। वे उस तेजस्वी बालकको त्रैलोक्यदुर्लभ वस्तुएँ खिलातीं और उसे क्षणभरके लिये भी अपनी दृष्टिसे दूर नहीं जाने देती थीं।

जब माता पार्वतीने श्रीहरिके द्वारा यह समाचार सुना तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुईं। उन्होंने अपने पुत्रका सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर हर्षातिरेकसे ब्राह्मणोंको करोड़ों रत्न, अपरिमित धन एवं विविध प्रकारके बहुमूल्य वस्त्रोंका दान दिया। विष्णु आदि समस्त देवताओं एवं लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री आदि देवियोंने भी हर्षातिरेकसे ब्राह्मणोंको धन दिया।

फिर माता पार्वतीसहित विष्णु, देवगण एवं मुनियोंकी प्रेरणासे समदर्शी भूतनाथने अपने पुत्रको ले आनेके लिये नन्दिकेश्वरके साथ अपने सहस्रों गणोंको भेजा। नन्दिकेश्वरकी प्रार्थनासे जब कार्तिकेय अपने माता-पिताके समीप चलनेके लिये प्रस्तुत हुए तो कृत्तिकाएँ विकल-विह्वल हो गयीं। शिव-पुत्र कार्तिकेयने सम्पूर्ण सिद्धियोंकी ज्ञाता, परमैश्वर्य-सम्पन्ना एवं त्रैलोक्यपूज्या कृत्तिकाओंको अत्यन्त प्रीतिपूर्वक समझाया और उनके चरणोंमें प्रणाम कर; उन्हें साथ ले रत्ननिर्मित अलौकिक रथमें बैठ गये। उस समय सर्वत्र शुभ शकुन होने लगे।

कुमार कार्तिकेय अपनी माताओं एवं पार्षदोंसहित कैलास पहुँचे। वे अपने माता-पिताके निवासका अद्भुत, अलौकिक एवं अप्रतिम सौन्दर्य देखकर मुग्ध हो ही रहे थे कि महिमामयी देवियोंके साथ माता पार्वती वहाँ पहुँच गयीं। देवता, मुनि, पर्वत, गन्धर्व तथा किंनर आदि भी आनन्दातिरेकसे कुमारका सादर अभिनन्दन करने वहाँ जा पहुँचे। सर्वसाक्षी लोकपावन भगवान् शिव भी नाना प्रकारके बाजों, रुद्रगणों, पार्षदों, भैरवों तथा क्षेत्रपालोंसहित वहाँ पधारे।

परमपावन कार्तिकेयने अपनी ब्रह्मस्वरूपा जननी पार्वती-को देखा तो हर्ष-गद्गद होकर रथसे उतर पड़े और उन्होंने उनके निखिलसृष्टिपावन चरणोंमें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। भगवती पार्वतीने स्नेहाधिक्यसे अपने परमसुन्दर पुत्रको गोदमें उठा लिया और उसका चुम्बन लेने लगीं। फिर तो भानुकोटिशतप्रभ नीलकण्ठ, देवगण, पर्वत, पर्वतोंकी पत्नियों; पार्वती, देवियों तथा मुनियोंने कुमारको अपने अन्तर्हृदयका शुभाशीर्वाद प्रदान किया। इसके अनन्तर कुमार शिव-सदन पहुँचे।

वहाँ उन्होंने सुर-समुदाय एवं मुनियोंके मध्य रत्नसिंहासनासीन रत्नालंकारविभूषित श्रीहरिका दर्शन किया तो उनके सर्वाङ्गमें रोमाञ्च हो आया। उन्होंने श्रद्धा-भक्तिपूर्ण हृदयसे श्रीहरिके पाप-तापसंहारक, भक्तप्राणधन, परमपावन पादपद्मोंमें प्रणाम किया। इसके अनन्तर उन्होंने चतुर्मुख, धर्म, देवताओं एवं तपस्वी मुनियोंके चरणोंमें बारी-बारीसे प्रणाम किया और सबने उन्हें मङ्गलमय आशीर्वाद प्रदान किया। फिर कुमारने प्रत्येक देवता और मुनिसे उनका कुशल-समाचार पूछा और फिर वे एक रत्नसिंहासन-पर बैठ गये। अपने अनुपम योग्यतम पुत्रको देखकर कलिकल्मषहन्त्री पार्वती एवं अनुग्रहस्वरूप महादेवने ब्राह्मणों-को हृदय खोलकर दान दिया।

फिर एक दिन क्षीरोदधिशायी विष्णुने शुभ मुहूर्त्तमें कुमारको रत्नसिंहासनपर बैठाकर उनका मङ्गलमय अभिषेक करवाया। उस समय अद्भुत वाद्य बज रहे थे। फिर हर्षित मनसे विष्णु, ब्रह्मा; धर्म एवं शिव आदि देवताओं एवं परमानन्दमें निमग्न माता पार्वती तथा सभी देवियोंने उन्हें दुर्लभ उपहार प्रदान किये। कुमारका वेद-मन्त्रोच्चारणपूर्वक मङ्गलाभिषेक कर सभी देवता, मुनिगण और गन्धर्वादि प्रसन्न मन हो अपने-अपने घरके लिये प्रस्थित हुए। भगवान् शंकरने गिरिराज हिमालयका बड़ा सत्कार किया। वे भी अपने गणोंसहित प्रसन्न मनसे अपने भवन पधारे। इस प्रकार पुलकित-तन-मन-प्राण सभी आगन्तुक प्रेमपूर्वक विदा हुए।"

सर्वात्मा शिव एवं त्रैलोक्यवन्दनीया पार्वतीके दोनों परम सुन्दर अद्भुत बालक प्रतिदिन अलौकिक, मधुर एवं मनोहर बाल-लीलाएँ करते, जिन्हें देखकर शिव-पार्वती मन-ही-मन हँसते और मुदित होते रहते थे।

परशुरामका कैलास-दर्शन

एक दिनकी बात है, जब जमदग्निनन्दन परशुरामने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार पृथ्वीको क्षत्रियोंसे रहित कर दिया, तब वे अपने गुरु भूतनाथके चरणोंमें प्रणाम करने और गुरुपत्नी अम्बा शिवा तथा उनके नारायण-तुल्य दोनों गुरुपुत्र कार्तिकेय और गणनायकको देखनेकी लालसासे कैलास पहुँचे।

वहाँ उन्होंने अत्यन्त अद्भुत कैलासपुरीका दर्शन किया। उक्त परम रमणीय पुरीकी सुविस्तृत सड़कें सोनेकी बनी थीं और उनपर शुद्ध स्फटिक-तुल्य मणियाँ जड़ी थीं। उक्त पुरीमें चतुर्दिक् सिन्दूरी रंगकी मणियोंकी वेदियाँ निर्मित थीं।

वह राशि-की-राशि मुक्ताओंसे संयुक्त और मणियोंके मण्डपोंसे परिपूर्ण थी।

सर्वभूतपति नीलकण्ठके नगरमें रत्नों और काञ्चनोंसे परिपूर्ण यक्षेन्द्रगणोंसे परिवेष्टित एक अरब दिव्य भवन थे, जिनके किवाड़, खंभे और सीढ़ियाँ मणियोंसे निर्मित थीं। उस शिवपुरीके दिव्य कलश सोनेके बने थे। वहाँ रजतके श्वेत चवँर थे, जो रत्नाभूषणोंसे विभूषित थे। वहाँ स्वर्गङ्गाके तटपर उगे हुए पारिजात-वृक्षोंकी भरमार थी। वहाँकी सड़कोंपर अनुपम सुन्दर बालक स्वच्छन्द क्रीड़ा करते एवं परस्पर हँस-हँसकर वार्तालाप कर रहे थे।

उस परम रमणीय नगरमें सिद्धेन्द्रोंकी लाखों अट्टालिकाएँ थीं, जो मणियों एवं रत्नोंसे निर्मित थीं। वहाँ निर्मल जलपूरित सहस्रों सरोवर, सुगन्धित पुष्पोंके सहस्रों पुष्पोद्यान एवं सुन्दरतम अविनाशी वटवृक्ष थे, जिनपर विभिन्न प्रकारके मनोहर पक्षी कलरव करते थे। सुगन्धित-शीतल-मन्द पवन बह रहा था।

अपने गुरुदेवकी उस दिव्य पुरीके दर्शन कर रेणुकानन्दन आनन्द-विभोर हो गये। फिर उन्होंने जगद्धाता शिवका पंद्रह योजन ऊँचा और चार योजन विस्तृत अत्यन्त सुन्दर आश्रम देखा। उसका निर्माण विश्वकर्माने बहुमूल्य सुनहली मणियोंके द्वारा किया था। आश्रम हीरक-जटित था। उसके चतुर्दिक् अत्यन्त सुहावना, सुडौल परकोटा बना था। कालनाशन शिवका आश्रम मणिनिर्मित वेदियों एवं मणिस्तम्भोंसे सुशोभित था। द्वारका किवाड़ रत्न-जटित चित्रोंसे बरबस मनको हर लेता था।

भृगुनन्दनने प्रधान द्वारके दाहिने भागमें वृषेन्द्रको देखा और जब उनकी दृष्टि द्वारके वामभागकी ओर गयी तो वहाँ उन्होंने सिंह तथा नन्दीश्वर, महाकाल, भयंकर पिङ्गलाक्ष, बाण, महाबली विरूपाक्ष, विकटाक्ष, भास्कराक्ष, रक्ताक्ष, विकटोदर, संहारभैरव, भयंकर कालभैरव, रुरुभैरव, ईशकी-सी आभावाले महाभैरव, कृष्णाङ्गभैरव, दृढपराक्रमी क्रोधभैरव, कपालभैरव, रुद्रभैरव तथा सिद्धेन्द्रों, रुद्रगणों, विद्याधरों, गुह्यकों, भूतों, प्रेतों, पिशाचों, कूष्माण्डों, ब्रह्मराक्षसों, वेतालों, दानवों, जटाधारी योगेन्द्रों, यक्षों, किम्पुरुषों और किंनरोंको देखा। परशुराम सबसे मिले और उन्होंने सबसे बात की। इसके अनन्तर वे नन्दिकेश्वरसे आज्ञा प्राप्तकर प्रसन्नतापूर्वक आश्रमके भीतर प्रविष्ट हुए।

कुछ ही आगे जानेपर महातपस्वी परशुरामने बहुमूल्य रत्नोंसे निर्मित सैकड़ों मन्दिर देखे। उनपर अमूल्य रत्न-कलशोंकी अद्भुत छटा थी। उनमें हीरक-जटित रत्ननिर्मित किवाड़ थे, जिनमें मुक्ता एवं निर्मल शीशे लगे थे। उन मन्दिरोंमें गोरोचना-नामक मणियोंके सहस्रों स्तम्भोंकी अद्भुत शोभा थी। उनकी सीढ़ियाँ भी आभामयी मणियोंसे ही बनी थीं। रेणुकानन्दनने वहाँका भीतरी द्वार देखा, जो नाना प्रकारकी चित्रकारीसे चित्रित तथा हीरे-मोतियोंकी गुँथी हुई मालाओंसे अत्यन्त शोभायमान था।

परशुरामका गजाननसे युद्ध

महर्षि जमदग्निके परम पराक्रमी पुत्र परशुरामने उक्त द्वारके बायें अपने गुरुपुत्र कार्तिकेयको देखा और दाहिनी ओर पार्वतीनन्दन गणेश तथा शिव-सदृश पराक्रमशील विशालकाय वीरभद्रका अवलोकन किया। वे वहाँ रत्नाभरणभूषित बहुमूल्य रत्नोंसे बने सिंहासनोंपर आसीन थे।

'भाई! क्षणभर रुको।' परम पराक्रमी एवं महामनस्वी कुठारपाणि परशुराम सबसे मिलते और प्रेमपूर्ण बात करते प्रसन्नचित्त आगे बढ़े ही थे कि अक्षमालाधर गणेशने उन्हें देखकर कहा—'शूलपाणि इस समय शयन कर रहे हैं। मैं उन परमप्रभुकी आज्ञा प्राप्तकर तत्काल तुम्हें साथ ले चलूँगा। बस, इतनी देर रुक जाओ।'

'बन्धुवर! मैं परमानुग्रहमूर्ति, भक्तवत्सल, समदर्शी अपने गुरुके दर्शन करना चाहता हूँ।' वीरवर परशुरामने मुद्गरायुध गणेशके सम्मुख खड़े-खड़े उत्तर दिया—'मैं उन जगदीश्वर एवं त्रयतापहारिणी पराम्बा पार्वतीके अभयद चरण-कमलोंमें प्रणाम कर अभी लौट आऊँगा।'

'इस समय भूतेश्वर शिव एवं माता पार्वती अन्तःपुरमें हैं।' अमोघसिद्ध गणेशने उन्हें अनेक प्रकारसे समझाते हुए कहा—'अतएव अभी आपको वहाँ नहीं जाना चाहिये।'

'परम गुरुदेव शिव एवं पुत्रवत्सला माता पार्वतीके चरण-कमलोंके दर्शनका मेरा सहज अधिकार है।'—भृगुनन्दन अपने आग्रहपर दृढ थे, किंतु गिरिजापुत्र गणेश उन्हें अत्यन्त विनयपूर्वक समझाते गये।

'मैं तो परमपिता शिव एवं दयामयी माँके दर्शनार्थ जाऊँगा ही।' बलपूर्वक रेणुकानन्दन आगे बढ़ना ही चाहते थे कि विघ्नराजने उन्हें रोक दिया।

इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियोंसे रहित करनेवाले भृगुनन्दन कुपित हो गये और उनका गणाधिराजसे विवाद ही नहीं हाथापाई होने लगी। कुमार कार्तिकेयने उन्हें समझानेका प्रयत्न किया; किंतु क्रुद्ध क्षत्रियद्रोही परशुरामने परम विनयी बुद्धिविशारद ईशानपुत्रको धक्का दे दिया, जिससे वे गिर गये।

शिवपुत्र गणेशने उठकर परशुरामकी उद्दण्डताके लिये उनकी भर्त्सना की तो क्रुद्ध परशुरामने अपना तीक्ष्ण परशु उठा लिया। तब अजरामर गौरीतेज गणेशने अपनी सूँड़ बढ़ाकर परशुरामको उसमे लपेट लिया और उन्हें घुमाने लगे। योगाधिप गणेशकी महान् सूँड़मे लिपटे परशुराम सर्वथा असहाय और निरुपाय थे। धरणीधर गणेशके योगबलसे परशुराम स्तम्भित हो गये थे।

अनन्त शक्तिशाली गणेशने जमदग्निनन्दन परम वीर परशुरामको सप्तद्वीप, सप्त-पर्वत, सप्तसागर, भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, जनलोक, तपोलोक, ध्रुवलोक, गौरीलोक और शम्भुलोक दिखाते हुए गम्भीर समुद्रमे फेंक दिया।

परशुराम तैरने लगे तो निरामय गणनाथने उन्हें पुनः अपनी सूँड़में उठा लिया और घुमाते हुए वैकुण्ठधाम दिखाकर गोलोकधामका दर्शन करा दिया। वहाँ परशुरामने मन्द-मन्द मुस्कराते हुए वंशीविभूषित नव-नीरद श्रीकृष्णके साथ रासरासेश्वरी श्रीराधाका दर्शन किया तो वे बार-बार उनके मङ्गलमय चरण-कमलोंमे प्रणाम करने लगे।

पापजनित यातना कर्मभोगसे ही समाप्त होती है, किंतु ओषधिपति गणेशने परशुरामको सम्पूर्ण पापोंका पूर्णतया नाश करनेवाले श्रीकृष्णका दर्शन कराकर उनका भ्रूणहत्याजनित पाप थोड़ेमे ही नष्ट कर दिया।

गजमुख एकदन्त हुए

कुछ ही देर बाद परशुराम सचेत होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। उस समय उनका प्रतिवादिमुखस्तम्भक गणेशजी द्वारा किया हुआ स्तम्भन भी दूर हो गया। तब उन्होंने अपने अभीष्ट देवता श्रीकृष्णके जगद्गुरु शिवद्वारा प्रदत्त परम दुर्लभ स्तोत्र एवं कवचका स्मरण किया और सम्पूर्ण शक्तिसे ग्रीष्मकालीन मध्याह्न सूर्यकी प्रभाके तुल्य तीक्ष्णतम अपने परशुसे प्रणतार्तिनिवारक गौरीनन्दनपर प्रहार कर दिया। गणाधिराजने अपने परमपूज्य पिताके अमोघ अस्त्रका सम्मान करनेके लिये उसे अपने बायें दाँतसे पकड़ लिया। शिव-शक्तिके प्रभावसे वह तेजस्वी परशु गणेशके बायें दाँतको समूल काटकर पुनः रेणुकापुत्र परशुरामके हाथमें लौट आया।

सिद्धि-बुद्धि-प्रदायक गणेशका दाँत टूटते समय भयानक शब्द हुआ और सत्यसंकल्प गिरिजानन्दनके रक्तका फव्वारा छूट पड़ा। मुँहसे निकलकर रक्तसे सना दाँत भूतलपर गिर पड़ा। उस समय धरित्री काँप उठी। यह दृश्य देखकर वीरभद्र, कार्तिकेय, क्षेत्रपाल आदि पार्षद तथा शून्यमे देवगण अत्यन्त भयाक्रान्त हो हाय-हाय करने लगे। कैलासवासी डरसे मूर्च्छित हो गये। निद्रापति शुद्धात्मा शिवकी निद्रा भङ्ग हो गयी।

'बेटा! यह क्या हुआ?' दौड़ी हुई परमाद्या भगवती पार्वती आयीं तो उन्होंने अपने प्राणप्रिय पुत्र गणेशके टूटे दाँत तथा रक्तमें डूबे हुए मुँहको देखा और देखा कि उनके हृदयखण्ड गणेश क्रोधशून्य, परमशान्त, लज्जासे सिर झुकाये खड़े हैं। अत्यन्त व्याकुल होकर उन्होंने स्कन्दसे पूछा—'क्या बात है? यह कैसे हुआ?'

स्कन्दके द्वारा सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर महामोहशमनी सती पार्वती अत्यन्त क्रुद्ध हुईं और अपने प्राणाधिक प्रिय सुकुमार पुत्र गणेशको अङ्कमें लेकर क्रन्दन करने लगीं।

'समदर्शी प्रभो!' दुःख और शोकसे अभिभूत देवी पार्वतीने डरते-डरते अपने पति दयासिन्धु शूलपाणिसे कहा—'मेरे पुत्र गणेश और आपके शिष्य परशुराममें किसका दोष है, आप ही निर्णय करें। उत्तम कुलमें पैदा हुई स्त्री अपने निन्दित, पतित, मूर्ख, दरिद्र, रोगी और जड पतिको भी सदा विष्णुके समान समझती है। समस्त तेजस्वियोंमे श्रेष्ठ अग्नि अथवा सूर्य पतिव्रताके तेजकी सोलहवीं कलाकी समानता भी नहीं कर सकते। महादान, पुण्यप्रद व्रतोपवास और तप—ये पति-सेवाके सोलहवें अंशकी समता करनेयोग्य नहीं हैं।*

* कुत्सितं पतितं मूढं दरिद्रं रोगिणं जडम्।
कुलजा विष्णुतुल्यं च कान्तं पश्यति सन्ततम्॥
हुताशनो वा सूर्यो वा सर्वतेजस्विनां वरः।
पतिव्रतातेजसश्च कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥
महादानानि पुण्यानि व्रतान्यनशनानि च।
तपांसि पतिसेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥
(ब्रह्मवैवर्तपु०, गणपतिख० ४४। १३–१५)

आपके तुल्य मेरे लिये कहीं कोई नहीं है । पर आप कृपापूर्वक इसका निर्णय करें ।'

'महाभाग राम ! तुम महर्षि जमदग्नि और लक्ष्मीके अंशसे उत्तम कुलोत्पन्न सती-साध्वी देवी रेणुकाके पुत्र, राजा रेणुकके दौहित्र तथा अत्यन्त साधु शूर-वीर राजा विष्णुयशाके भानजे हो ।' अपने पूर्णकाम पति आशुतोषसे मनोव्यथा निवेदन कर सर्वरोगप्रशमनी भगवती पार्वतीने अपने सम्मुख परशुरामको शम्भुके परमोद्धारक चरण-कमलोंकी निर्भयतापूर्वक सेवा करते हुए देखकर कहा—'और योगियोंके गुरु देवाधिदेव महादेवके शिष्य हो । तुम शुद्ध मनवाले हो; तुम्हारी अशुद्धताका कारण मेरी समझमे नहीं आ रहा है । तुमने करुणामय गुरुसे अमोघ परशु प्राप्त कर पहले तो उसकी क्षत्रिय-जातिपर परीक्षा की और अब गुरुपुत्रपर परीक्षा की है । श्रुति गुरु-दक्षिणा देनेका निर्देश करती है और तुमने अत्यन्त निर्दयतापूर्वक गुरुपुत्रका समूल एक दाँत ही नष्ट कर दिया । अब इसका सिर भी काट डालो । चराचरात्मा शिवका अमोघ परशु प्राप्त कर तो क्षुद्र शृगाल भी वनराजको मार सकता है ।'

फिर अत्यन्त दुःखसे व्याकुल पुत्रवत्सला पार्वतीने गणेशकी महिमाका बखान करते हुए परशुरामसे कहा—

त्वद्विधं लक्षकोटिं च हन्तुं शक्तो गणेश्वरः ।
जितेन्द्रियाणां प्रवरो नहि हन्ति च मक्षिकाम् ॥
तेजसा कृष्णतुल्योऽयं कृष्णांशश्च गणेश्वरः ।
देवाश्चान्ये कृष्णकलाः पूजास्य पुरतस्ततः ॥
(ब्रह्मवैवर्तपु०, गणपतिखं० ४४ । २६-२७)

'जितेन्द्रिय पुरुषोमे श्रेष्ठ गणेश तुम्हारे-जैसे लाखों-करोड़ों जन्तुओंको मार डालनेकी शक्ति रखता है; परंतु वह मक्खीपर भी हाथ नहीं उठाता। श्रीकृष्णके अंशसे उत्पन्न हुआ वह गणेश तेजमे श्रीकृष्णके ही समान है । अन्य देवता श्रीकृष्णकी कलाएँ हैं । इसीसे इसकी अग्रपूजा होती है ।'

इतना कहकर क्रोधाभिभूत गिरिराजकिशोरी परशुरामको मारनेके लिये प्रस्तुत हो गयीं । भयवश रेणुक-दौहित्र परशुरामने मन-ही-मन करुणासागर गुरुको प्रणाम कर अपने इष्टदेव गोलोकनाथ श्रीकृष्णका स्मरण किया ।

तत्क्षण उमाने अपने सम्मुख भानुकोटिसमप्रभ एक बौने ब्राह्मण-बालकको देखा । उसके दाँत स्वच्छ थे । उसके वस्त्र, यज्ञोपवीत, दण्ड, छत्र और ललाटपर तिलक भी उज्ज्वल थे । उसके कण्ठमें तुलसीकी माला सुशोभित थी । उसके मस्तकपर परमोज्ज्वल रत्नमुकुट एवं कानोंमें रत्नोंके कुण्डल झलमला रहे थे । वह रत्नाभरणोंसे अलंकृत परम मनोहर बालक मन्द-मन्द मुस्करा रहा था । उस परम तेजस्वी ब्राह्मण-बालकके बायें हाथमें स्थिरमुद्रा और दाहिने हाथमें अभयमुद्राके दर्शन हो रहे थे । उस ब्राह्मण-बालकमें अपनी ओर आकृष्ट करनेकी अद्भुत क्षमता थी; इस कारण कैलासवासी बालक और बालिकाओंका समूह हँसता-खेलता उसके साथ लग गया था और युवक तथा वृद्ध स्त्री-पुरुष भी बड़ी ललकसे उसकी ओर देख रहे थे ।

उस परमतेजस्वी ब्राह्मण-बालकको देखकर आतुरतासे भृत्योंसहित भगवान् शंकरने भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाकर प्रणाम किया । उसके बाद माता पार्वतीने भी उसे साष्टाङ्ग प्रणाम किया । परमतेजस्वी ब्राह्मण-बालकने भृत्यों, शिव एवं पार्वतीको शुभाशीर्वाद प्रदान किया ।

यह दृश्य देखकर कैलासवासी बालक-बालिकाएँ भीत एवं चकित हो गयीं । फिर भगवान् शंकरने षोडशोपचारसे उनका पूजन एवं स्तवन किया । वे वामनभगवान् रत्नसिंहासनपर विराजमान थे । उनका उत्कृष्ट तेज सर्वत्र फैल रहा था ।

'आज मेरा परम सौभाग्य है, जो आपने कृपापूर्वक मेरे यहाँ पधारकर मुझे सेवाका अवसर प्रदान किया है ।' भगवान् शंकरने मधुर शब्दोंमे कहा—'अतिथि-सत्कार करनेवालेके द्वारा स्वतः समस्त देवताओंकी पूजा सम्पन्न हो जाती है; क्योंकि अतिथिके संतुष्ट होनेसे स्वयं श्रीहरि संतुष्ट हो जाते हैं ।'

'आपलोगोंकी वर्तमान परिस्थिति जानकर मैं श्वेतद्वीपसे आ रहा हूँ ।' आशुतोष शिवकी मधुरवाणीसे प्रसन्न होकर ब्राह्मण-बालकरूपी स्वयं श्रीहरिने गम्भीर स्वरमें कहा—''मेरे भक्तोंका कभी अमङ्गल नहीं होता । मेरा सहस्रार उनके रक्षार्थ प्रतिक्षण प्रस्तुत रहता है; किंतु गुरुके रुष्ट होनेपर मैं विवश हो जाता हूँ । गुरुकी अवहेलना बलवती होती है । विद्या और मन्त्र प्रदान करनेवाला गुरु अभीष्टदेवसे सौ-गुना श्रेष्ठ है । गुरुसे बढ़कर कोई देवता नहीं है और 'न पार्वतीपरा साध्वी न गणेशात् परो वशी । (गणपतिखं० ४४ । ७५)—पार्वतीसे बढ़कर कोई पतिव्रता नहीं है तथा गणेशसे उत्तम कोई जितेन्द्रिय नहीं है । भृगुनन्दनने

गुरु-पत्नी एवं गुरुपुत्रकी अवहेलना कर दी है; उसीका मार्जन करनेके लिये मैं यहाँ उपस्थित हुआ हूँ।''

'हिमगिरिनन्दिनि!' श्रीहरिने भगवान् शंकरके बाद भगवती पार्वतीसे कहा—''तुम जगज्जननी हो। तुम्हारे लिये गणेश, कार्तिकेय और परशुराम भी पुत्र-तुल्य हैं। इन परशुरामके स्नेहके प्रति शिव और तुम्हारे मनमे भेद नहीं है। अतएव जो उचित समझो, करो। दैव बड़ा प्रबल होता है। बालकोंका यह विवाद तो दैव-दोषसे ही घटित हुआ है। तुम्हारे इस प्रिय पुत्रका 'एकदन्त'-नाम वेदोंमे प्रसिद्ध है। सामवेदमें तुम्हारे पुत्रके आठ नाम बताये गये हैं—

गणेशमेकदन्तं च हेरम्बं विघ्ननायकम्।
लम्बोदरं शूर्पकर्णं गजवक्त्रं गुहाग्रजम्॥
(ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपतिखं० ४४। ८५)

'गणेश, एकदन्त, हेरम्ब, विघ्ननायक, लम्बोदर, शूर्पकर्ण, गजवक्त्र और गुहाग्रज।'' शम्भुवामा पार्वतीको समझाते हुए करुणावरुणालय श्रीहरिने एकदन्तका 'नामाष्टक-स्तोत्र' और उसका अर्थ इस प्रकार बतलाया—

ज्ञानार्थवाचको गश्च णश्च निर्वाणवाचकः।
तयोरीशं परं ब्रह्म गणेशं प्रणमाम्यहम्॥
एकशब्दः प्रधानार्थो दन्तश्च बलवाचकः।
बलं प्रधानं सर्वस्मादेकदन्तं नमाम्यहम्॥
दीनार्थवाचको हेश्च रम्बः पालकवाचकः।
दीनानां परिपालकं हेरम्बं प्रणमाम्यहम्॥
विपत्तिवाचको विघ्नो नायकः खण्डनार्थकः।
विपत्खण्डनकारकं नमामि विघ्ननायकम्॥
विष्णुदत्तैश्च नैवेद्यैर्यस्य लम्बोदरं पुरा।
पित्रा दत्तैश्च विविधैर्वन्दे लम्बोदरं च तम्॥
शूर्पाकारौ च यत्कर्णौ विघ्नवारणकारणौ।
सम्पदौ ज्ञानरूपौ च शूर्पकर्णं नमाम्यहम्॥
विष्णुप्रसादपुष्पं च यन्मूर्ध्नि मुनिदत्तकम्।
तद्गजेन्द्रवक्त्रयुक्तं गजवक्त्रं नमाम्यहम्॥
गुहस्याग्रे च जातोऽयमाविर्भूतो हरालये।
वन्दे गुहाग्रजं देवं सर्वदेवाग्रपूजितम्॥
एतन्नामाष्टकं दुर्गे नामभिः संयुतं परम्।
पुत्रस्य पश्य वेदे च तदा कोपं यथा कुरु॥
एतन्नामाष्टकं स्तोत्रं नानार्थसंयुतं शुभम्।
त्रिसंध्यं यः पठेन्नित्यं स सुखी सर्वतो जयी॥
ततो विघ्नाः पलायन्ते वैनतेयाद् यथोरगाः।
गणेश्वरप्रसादेन महाज्ञानी भवेद् ध्रुवम्॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रं भार्यार्थी विपुलां स्त्रियम्।
महाजडः कवीन्द्रश्च विद्यावांश्च भवेद् ध्रुवम्॥
(ब्रह्मवैवर्त्त०, गणपतिखं० ४४। ८७—९८)

''ग' ज्ञानार्थवाचक और 'ण' निर्वाणवाचक है। इन दोनों (ग + ण)के जो ईश हैं, उन परब्रह्म 'गणेश'-को मैं प्रणाम करता हूँ। 'एक'-शब्द प्रधानार्थक है और 'दन्त' बलवाचक है; अतः जिनका बल सबसे बढ़कर है, उन 'एकदन्त'को मैं नमस्कार करता हूँ। 'हे' दीनार्थवाचक और 'रम्ब' पालकका वाचक है; अतः दीनोंका पालन करनेवाले 'हेरम्ब'को मैं शीश नवाता हूँ। 'विघ्न' विपत्तिवाचक और 'नायक' खण्डनार्थक है; इस प्रकार जो विपत्तिके विनाशक हैं, उन 'विघ्ननायक'को मैं अभिवादन करता हूँ। पूर्वकालमें विष्णुद्वारा दिये गये नैवेद्यों तथा पिताद्वारा समर्पित अनेकों प्रकारके मिष्टान्नोंके खानेसे जिनका उदर लंबा हो गया है, उन 'लम्बोदर'की मैं वन्दना करता हूँ। जिनके कर्ण शूर्पाकार, विघ्न-निवारणके हेतु, सम्पदाके दाता और ज्ञानरूप हैं, उन 'शूर्पकर्ण'को मैं सिर झुकाता हूँ। जिनके मस्तकपर मुनिद्वारा दिया गया विष्णुका प्रसादरूप पुष्प वर्तमान है और जो गजेन्द्रके मुखसे युक्त हैं, उन 'गजवक्त्र'को मैं नमस्कार करता हूँ। जो गुह (स्कन्द) से पहले जन्म लेकर शिव-भवनमें आविर्भूत हुए हैं तथा समस्त देवगणोंमे जिनकी अग्रपूजा होती है, उन 'गुहाग्रज'की मैं वन्दना करता हूँ।

''दुर्गे! अपने पुत्रके नामोंसे संयुक्त इस उत्तम 'नामाष्टकस्तोत्र'को पहले वेदमे देख लो, तब ऐसा क्रोध करो। इस 'नामाष्टकस्तोत्र'का, जो नाना अर्थोंसे संयुक्त एवं शुभकारक है, जो नित्य तीनों संध्याओंके समय पाठ करता है, वह सुखी और सर्वत्र विजयी होता है। उसके पाससे विघ्न उसी प्रकार भाग जाते हैं, जैसे गरुड़के निकटसे साँप। गणेश्वरकी कृपासे वह निश्चय ही महान् ज्ञानी हो जाता है। पुत्रार्थीको पुत्र और भार्याकी कामना-वालेको उत्तम स्त्री मिल जाती है तथा महामूर्ख निश्चय ही विद्वान् और श्रेष्ठ कवि हो जाता है।''

'राम! तुमने क्रोधवश शिवा-पुत्र गणेशका दाँत तोड़कर अनुचित किया है।' फिर श्रीहरिने जमदग्निनन्दन

परशुरामसे कहा—'इस कारण तुम निश्चय ही अपराधी हो। ये सर्वशक्तिस्वरूपा पार्वती प्रकृतिसे परे और निर्गुण हैं। श्रीकृष्ण भी इन्हींकी शक्तिसे शक्तिशाली हुए हैं। ये समस्त देवताओंकी जननी हैं। तुम इनकी स्तुति कर इन्हें संतुष्ट करो।'

इतना कहकर श्रीहरि वैकुण्ठके लिये प्रस्थित हुए और परशुरामने स्नान कर शुद्ध वस्त्र धारण किये। फिर वे हाथ जोड़ गुरुदेवके चरणोंमें प्रणाम कर सिर झुकाये जगज्जननी गौरीका स्तवन करने लगे। भक्तवर परशुरामके सम्पूर्ण अङ्ग पुलकित थे और उनके नेत्रोंसे आनन्दाश्रु प्रवाहित हो रहे थे। इस प्रकार करुण प्रार्थना करते हुए अन्तमें परशुरामने कहा—

रक्ष रक्ष जगन्मातरपराधं क्षमस्व मे।
शिशूनामपराधेन कुतो माता हि कुप्यति॥
(ब्रह्मवैवर्तपु० गणपतिखं० ४५। ५७)

'जगज्जननी! रक्षा करो, रक्षा करो, मेरे अपराधको क्षमा कर दो। भला, कहीं बच्चेके अपराध करनेसे माता कुपित होती है?'

स्तुति करनेके बाद परशुरामने माता पार्वतीके चरणोंमें प्रणाम किया और अत्यन्त दुःखी होकर रोने लगे।

'वत्स! तुम अमर हो जाओ!' परशुरामकी करुण प्रार्थनासे करुणामयी भक्तवत्सला जननी पार्वतीका हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने प्रीतिपूर्वक परशुरामको अभय-दान देते हुए कहा—'बेटा! अब शान्त हो जाओ। आशुतोषके अनुग्रहसे तुम्हारी सर्वत्र विजय हो। सर्वान्तरात्मा श्रीहरि तुमपर सदा प्रसन्न रहें। गुरुदेव शिवमें तुम्हारी भक्ति सुदृढ़ रहे।'

इस प्रकार सर्वशक्तिसमन्विता दयामयी पार्वतीने परशुरामको आशीर्वाद दिया और फिर वे अपने अन्तःपुरमें चली गयीं।

उस समय वहाँ श्रीभगवान्‌के मङ्गलमय नामका उच्चघोष होने लगा। परशुरामके हर्षकी सीमा न रही।

फिर रेणुकानन्दनने एकदन्त गणेशका स्तवन किया और गन्ध, पुष्प, धूप, दीप एवं तुलसीरहित नैवेद्य आदिसे लम्बोदरकी प्रीतिपूर्वक पूजा की। परशुरामने भक्तिभावसे भाई गणेशको संतुष्ट कर जगन्माता पार्वती एवं कृपासिन्धु त्रिलोचनके चरणोंमें प्रणाम किया। तदनन्तर उन्होंने गुरुकी आज्ञा प्राप्तकर प्रसन्नतापूर्वक तपश्चरणके लिये प्रस्थान किया।

गणेशका तुलसीको शाप

ब्रह्मकल्पकी बात है। नवयौवनसम्पन्ना परम लावण्यवती तुलसीदेवी भगवान् नारायणका स्मरण करती हुई तीर्थोंमें भ्रमण कर रही थीं। इस प्रकार वे पतितपावनी श्रीगङ्गाजीके पावनतम तटपर पहुँचीं।

'अत्यन्त अद्भुत और अलौकिक रूप है आपका!' वहाँ तुलसीदेवीने अत्यन्त सुन्दर और शुद्ध पीताम्बर धारण किये नवयौवनसम्पन्न परमसुन्दर कृष्णपादाब्जका ध्यान करते हुए निधिपति गणेशको देखा। उनके सम्पूर्ण शरीरमें चन्दनकी खौर लगी थी और वे रत्नाभरणोंसे विभूषित थे। सर्वथा निष्काम एवं जितेन्द्रिय पार्वतीनन्दनको देखकर तुलसीदेवीका मन उनकी ओर बरबस आकृष्ट हो गया। विनोदके स्वरमें उन्होंने योगाधिप लम्बेन्दुशेखरसे कहा—'गजवक्त्र! शूर्पकर्ण! एकदन्त! घटोदर! सारे आश्चर्य आपके ही शुभ विग्रहमें एकत्र हो गये हैं। किस तपस्याका फल है यह?'

'वत्से! तुम कौन हो और किसकी पुत्री हो? यहाँ किस हेतुसे आयी हो?' उमानन्दन एकदन्तने शान्त स्वरमें कहा—'माता! तपश्चरणमें विघ्न डालना उचित नहीं। यह सर्वथा अकल्याणका हेतु होता है। मङ्गलमय प्रभु तुम्हारा मङ्गल करें।'

'मैं धर्मात्मजकी नवयुवती पुत्री हूँ।' तुलसीदेवीने उपहास छोड़कर मधुरवाणीमें परम जितेन्द्रिय शम्भुकुमारसे निवेदन किया—'मैं मनोनुकूल पतिकी प्राप्तिके लिये तपस्यामें संलग्न हूँ। आप मुझे पत्नीके रूपमें स्वीकार कर लीजिये।'

'माता! विवाह बड़ा दुःखदायी होता है।' घबराते हुए लम्बोदरने उत्तर दिया—'उससे सुख सम्भव नहीं। विवाह तत्त्वज्ञानका उच्छेदक और संशयोंका उद्गम-स्थान है। तुम मेरी ओरसे अपना मन हटाकर किसी अन्य पुरुषको पतिके रूपमें वरण कर लो। मुझे क्षमा करो।'

'तुम्हारा विवाह अवश्य होगा।' कुपित होकर तुलसीदेवीने लम्बोदरको शाप दे दिया।

मङ्गल ध्यान

वाम संभु, दायीं उमा, षडमुख रहैं कृपाल ।
सहित ललित मन में मुदित कीजै गनपति-ध्यान ॥

'देवि ! तुम्हें भी असुर पति प्राप्त होगा ।' एकदन्त गणेशने भी तुरंत तुलसीको शाप दिया—'उसके अनन्तर महापुरुषोंके शापसे तुम वृक्ष हो जाओगी ।'

पार्वतीनन्दनके अमोघ शापके भयसे तुलसीदेवी सर्वाग्रपूज्य हेरम्बका स्तवन करने लगीं ।

'देवी ! तुम पुष्पोंकी सारभूता एवं कलांशसे नारायण-प्रिया बनोगी !' भक्तसुलभ मूषक-वाहनने तुलसीकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर उनसे कहा—'यों तो सभी देवता तुमसे संतुष्ट होंगे, किंतु श्रीहरिके लिये तुम विशेष प्रिय होओगी । तुम्हारेद्वारा श्रीहरिकी अर्चना कर मनुष्य मुक्ति प्राप्त करेंगे; किंतु मेरे लिये तुम सर्वदा त्याज्य रहोगी । इतना कहकर भालचन्द्र गणनाथ तपश्चरणार्थ बदरीनाथके संनिकट चले गये ।*

(घ) शिवपुराणसे

श्वेतकल्पकी गणेशोत्पत्तिकी कथा

श्वेतकल्पमे गणेशोत्पत्तिकी मङ्गलमयी कथा इससे सर्वथा भिन्न है । उस कल्पमें स्वयं भगवान् शंकरने ही अपने पुत्र गणेशजीका मस्तक काट दिया था । वह पापनाशिनी कथा 'शिवपुराण'मे इस प्रकार वर्णित है—

भगवती पार्वती अपने प्राणपति भगवान् शंकरके साथ आनन्दोल्लासपूर्वक जीवन व्यतीत कर रही थीं । उनकी अत्यन्त रूपवती, गुणवती एवं मधुरहासिनी जया और विजया—ये दो सखियाँ थीं ।

'सखी ! सभी गण रुद्रके ही हैं ।' एक दिन उन दोनों सखियोंने भगवती उमाके समीप आकर कहा—'नन्दी, भृङ्गी आदि जो हमारे हैं, वे भी भगवान् शंकरकी ही आज्ञामें तत्पर रहते हैं । असंख्य प्रमथगणोंमें भी हमारा कोई नहीं है । वे शिवकी अनन्यताके कारण ही द्वारपर खड़े रहते हैं । यद्यपि वे सभी हमारे भी हैं, तथापि आप कृपापूर्वक हमलोगोंके लिये भी एक गणकी रचना कर दीजिये ।'

माता पार्वती उन सहचरियोंकी बात ध्यानपूर्वक सुनकर विचार करने लगीं ।

एक दिनकी बात है । भगवती उमा स्नानागारमें थीं । लीलावपु भगवान् कामारि अपनी प्राणप्रियाके द्वारपर पहुँचे ।

'माता स्नान कर रही हैं ।' नन्दीने महेश्वरसे निवेदन किया ।

किंतु भगवान् भूतभावनने नन्दीके निवेदनकी उपेक्षा कर दी । वे सीधे स्नानागारमें पहुँचे ।

परम प्रभु शिवको देखकर स्नान करती हुई माता पार्वती लज्जित होकर खड़ी हो गयीं । वे चकित थीं ।

'जया-विजया ठीक ही कह रही थीं ।' शिवप्रियाने मन-ही-मन विचार किया—'द्वारपर यदि मेरा कोई गण होता तो मेरे प्राणनाथ सहसा स्नानागारमें कैसे आ जाते ? निश्चय ही इन गणोंपर मेरा पूर्ण अधिकार नहीं है । मेरा भी कोई ऐसा सेवक होना चाहिये, जो परम शुभ, कार्यकुशल एवं मेरी आज्ञाका सतत पालन करनेमें कभी विचलित न हो ।'

इस प्रकार सोचकर त्रिभुवनेश्वरी उमाने अपने मङ्गलमय पावनतम शरीरके मैलसे एक चेतन पुरुषका निर्माण किया—

विचार्येति च सा देवी वपुषो मलसम्भवम् ।
पुरुषं निर्ममौ सा तु सर्वलक्षणसंयुतम् ॥
सर्वावयवनिर्दोषं सर्वावयवसुन्दरम् ।
विशालं सर्वशोभाढ्यं महाबलपराक्रमम् ॥
वस्त्राणि च तदा तस्मै दत्त्वा सा विविधानि हि ।
नानालंकरणं चैव बह्वाशिषमनुत्तमाम् ॥
मत्पुत्रस्त्वं मदीयोऽसि नान्य: कश्चिदिहास्ति मे ।

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० ख० १३ । २०–२३)

"वह शुभ लक्षणोंसे संयुक्त था । उसके सभी अङ्ग दोषरहित एवं सुन्दर थे । उसका वह शरीर विशाल, परम शोभायमान और महान् बलपराक्रमसे सम्पन्न था । देवीने उसे अनेक प्रकारके वस्त्र, नाना प्रकारके आभूषण और बहुत-से उत्तम आशीर्वाद देकर कहा—'तुम मेरे पुत्र हो । मेरे अपने ही हो । तुम्हारे समान प्यारा मेरा यहाँ कोई दूसरा नहीं है ।'"

परम सुन्दर, परम बुद्धिमान् और परम पराक्रमी उस पुरुषने आदिशक्ति माता पार्वतीके चरणोंमें अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिके साथ प्रणाम करके अत्यन्त विनयपूर्वक कहा—'माता ! आपका प्रत्येक आदेश शिरोधार्य है । आप क्या चाहती हैं, आज्ञा प्रदान करें । मैं आपका बताया प्रत्येक कार्य अवश्य करूँगा ।'

'तुम मेरे पुत्र हो, सर्वथा मेरे हो ।' महाशक्ति देवी

* कालान्तरमें तुलसीदेवी वृन्दाके नामसे दानवराज शङ्खचूड़की पत्नी हुईं । शङ्खचूड़ भगवान् शंकरके त्रिशूलसे मारा गया और उसके बाद नारायण-प्रिया तुलसी कलांशसे वृक्षभावको प्राप्त हो गयीं । यह कथा पुराणोंमें विस्तारसे आयी है ।

पार्वतीने कहा—'तुम मेरे द्वारपाल हो जाओ। चाहे कोई हो, कहींसे भी आया हो, मेरी आज्ञाके बिना मेरे अन्तःपुरमें प्रवेश न कर सके, इसका ध्यान रखना।'

गणेशका शिवगणोंसे अद्भुत युद्ध

शिवप्रियाने अपने पुत्र गणेशके हाथमें एक सुदृढ़ छड़ी दे दी। फिर उन्होंने अपने यष्टि-धारी पुत्रका सौन्दर्य देखा तो आनन्दमग्न हो गयीं। उन्होंने अपने परम प्रिय एवं सर्वाङ्गसुन्दर पुत्रको अङ्कमें लेकर उसके मुखका चुम्बन किया। इसके अनन्तर दयामयी माता पार्वतीने अपने प्राण-प्रिय दण्डधारी गणराजको द्वारपर नियुक्त कर दिया और स्वयं अपनी सखियोंके साथ स्नान करने चली गयीं।

'देव! आप कहाँ जाना चाहते हैं?' कुछ ही देरमें स्वयं कर्पूरगौर शशाङ्कशेखर वहाँ पहुँचे। वे शिवाके प्राणप्रिय पुत्रसे सर्वथा अपरिचित थे। चन्द्रमौलि अन्तःपुरमें प्रविष्ट होना ही चाहते थे कि उन्हें रोकते हुए दण्डधारी गणराजने उनसे कहा—'आप माताकी आज्ञाके बिना भीतर नहीं जा सकते। जननी स्नान कर रही हैं। इस समय आप यहाँसे चले जाइये।'

'मूर्ख! तू किसे रोक रहा है?' दण्डधारी गणराजके द्वारा अनपेक्षित व्यवधान देखकर करुणामय त्रिनयनने कहा—'तुझे पता नहीं कि मैं कौन हूँ? मैं प्रत्यक्ष शिव ही यहाँ आया हूँ।'

'आप चाहे जो कोई हों, किंतु मेरी माताकी आज्ञाके बिना इस समय भीतर नहीं जा सकते।' मातृभक्त वीर बालक गणेशने अपनी सुदृढ़ यष्टि आगे कर दी।

'अरे! तू बड़ा मूर्ख है।' आश्चर्यचकित होकर पार्वती-वल्लभने गणेशसे कहा—'मैं उसका पति हूँ। तू मेरे ही घरमें मुझे क्यों नहीं जाने देता?'

भक्तवत्सल कर्पूरगौर शिवने पुनः आगे जानेका उपक्रम किया ही था कि जगदम्बापुत्रने पुनः अपनी यष्टि आगे कर उनका मार्ग अवरुद्ध कर दिया।

'यह कौन है, और मेरा मार्गावरोध क्यों कर रहा है?' लीलानायक, सर्वान्तर्यामी, विनोदी शिवने अपने गणोंको आज्ञा दी और स्वयं वहाँसे कुछ दूर हटकर द्वारके समीप ही खड़े हो गये।

'तुम कौन हो? कहाँसे आये हो? और तुम्हें क्या अभीष्ट है?' महेश्वरके गणोंने पार्वतीनन्दनके समीप जाकर उससे कहा—'यदि तुम अपनी प्राण रक्षा चाहते हो तो यहाँसे शीघ्र ही अन्यत्र चले जाओ।'

'तुम लोग कौन हो और कहाँसे आये हो?' अत्यन्त धीर-वीर गिरिजानन्दनने निर्भय होकर शिवगणोंसे कहा—'देखनेमें तो बड़े सुन्दर हो, किंतु अकारण मुझे क्यों छेड़ रहे हो? यहाँ खड़े क्यों हो? चले क्यों नहीं जाते?'

'हम मुख्य शिवगण और द्वारपाल हैं।' शिवगण आदिदेव गणेशकी बात सुनकर हँसने लगे और उन्होंने सरोष बुद्धिविधाता गणेशसे कहा—'हम सर्वान्तर्यामी एवं सर्वसमर्थ श्रीपार्वतीवल्लभके आदेशसे तुम्हें यहाँसे हटाने आये हैं। तुम्हें भी गण समझकर हमलोगोंने कुछ नहीं कहा है। अब कुशल इसीमें है कि तुम यहाँसे स्वतः हट जाओ; अन्यथा व्यर्थ ही मृत्यु-मुखमें चले जाओगे।'

'मैं माता पार्वतीका पुत्र हूँ। माताने मुझे किसीको भी भीतर प्रवेश करनेकी आज्ञा नहीं दी है।' महाशक्तिके शक्तिमान् पुत्र गणेशने शिवगणोंसे कहा—'यदि तुम्हें अपने स्वामी शिवकी आज्ञाका पालन करना आवश्यक है तो यहीं खड़े रहो; पर द्वारके भीतर नहीं जा सकते। तुम्हारा दुराग्रह सफल नहीं होगा। मैं तो माताकी आज्ञाका पालन करूँगा ही।'

'प्रभो! वह बालक माता पार्वतीका पुत्र है और अपने स्थानसे विचलित नहीं हो रहा है।' शिवगणोंने महेश्वरके समीप जाकर उनकी स्तुति करते हुए अत्यन्त विनीत स्वरमें निवेदन किया—'वह शक्तिसम्पन्न तेजस्वी बालक द्वारसे किसी प्रकार नहीं हटता और युद्धके लिये प्रस्तुत है।'

'एक बालकके सम्मुख तुमलोग सर्वथा अवश हो गये।' लीलाविहारी कर्पूरगौर श्रीपार्वतीवल्लभने सरोष मुद्रामें अपने गणोंसे कहा—'कुछ नहीं कर सके? वह निरा बालक और एकाकी है। यदि तुम्हें युद्ध भी करना हो तो अवश्य करो। शत्रुकी भाँति तकनेवाले बालकको द्वारसे शीघ्र भगा दो।'

शिवगणोंने महेश्वरके चरणोंमें प्रणाम किया और अपने-अपने शस्त्र ले पार्वतीनन्दनकी ओर चले। शिवगणोंकी सशस्त्र वाहिनीको अपनी ओर आती देख परमपराक्रमी षडानन-अनुज दण्डपाणिने अत्यन्त निर्भीकतापूर्वक उनसे कहा—

आयान्तु गणपाः सर्वे शिवाज्ञापरिपालकाः ।
अहमेकश्च बालश्च शिवाज्ञापरिपालकः ॥
तथापि पश्यतां देवी पार्वती स्वसुतं बलम् ।
शिवश्च स्वगणानां तु बलं पश्येत्तु वै पुनः ॥
बलवद् बालयुद्धं च भवानीशिवपक्षयोः ।
भवद्भिश्च कृतं युद्धं पूर्वं युद्धविशारदैः ॥
मया पूर्वं कृतं नैव बालोऽस्मि क्रियतेऽधुना ।
तथापि भवतां लज्जा गिरिजाशिवयोरिह ॥

(शिवपु०, रुद्र स०, कु० खं० १५ । ३-६)

'शिवकी आज्ञा पालन करनेवाले गणो ! आओ । मैं अकेला बालक ही शिवाकी आज्ञाका पालन करनेवाला हूँ, तथापि देवी पार्वती अपने पुत्रका और त्रिपुरारि अपने गणोंका बल देखें । अब भवानी और शिवका पक्ष लेकर बलवानोंका बालकसे युद्ध होगा । आपने तो पहले भी युद्ध किया है, अतएव आप युद्धकुशल हैं और मैंने पहले कभी युद्ध नहीं किया है, अभी बच्चा ही हूँ; (फिर भी युद्ध करूँगा ।) तथापि गिरिजा और शिवके विवादमें पराजित होनेपर तुम्हें ही लज्जित होना पड़ेगा । (बालक होनेके कारण मेरे लिये लज्जाका कोई प्रश्न ही नहीं है) ।'

सर्वेश्वरी-तनयने आगे कहा—'विजय और पराजय हमारी-तुम्हारी नहीं होगी । यह तो माता अम्बिका और पशुपतिकी होगी । तुमलोग अपने स्वामीकी ओर देखकर अपने शस्त्रोंका प्रयोग करो, मैं अपनी माताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये युद्धके लिये प्रस्तुत हूँ ।'

बालक गणपतिके तीक्ष्ण वाक्-शरोंसे क्रुद्ध होकर नन्दी, भृङ्गी आदि गणोंने उनपर आक्रमण कर दिया । तब कुपित होकर गणेशजीने भी उनपर कठोर प्रहार करना प्रारम्भ किया । गणेशजीके भीषण प्रत्याक्रमणसे शिवगण अत्यन्त व्याकुल हो गये । वे शक्ति-पुत्रके असह्य प्रहारसे प्राण बचाकर यत्र-तत्र भाग खड़े हुए ।

कल्पान्तकरणे कालो दृश्यते च भयंकरः ।
यथा तथैव दृष्टः स सर्वेषां प्रलयंकरः ॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १५ । २०)

'जैसे कल्पके अन्तमें भयंकर काल दिखायी देता है; उसी प्रकार गणेशजी उस समय सबको प्रलयंकर दिखायी देने लगे ।'

'प्रभो ! इस समय आप कैसी लीला कर रहे हैं ।' देवर्षि नारदके द्वारा यह संवाद पाकर ब्रह्मा और विष्णु आदि देवताओंने चराचरात्मा भगवान् शिवके समीप पहुँचकर उनकी स्तुति करते हुए कहा—'हमें आज्ञा प्रदान कीजिये; हम क्या करें ?'

'ब्रह्मन् ! मेरे द्वारपर एक अजेय दण्डपाणि बालक बैठा हुआ है ।' अपने गणोंको भागते देख और सुर-समुदायकी प्रार्थना सुन सर्वेश्वर शिवने मन-ही-मन हँसते हुए उनसे कहा—'वह मुझे घरमें प्रवेश नहीं करने दे रहा है । उस पराक्रमी बालकके तीव्रतम प्रहारसे मेरे सभी पार्षद और गण व्याकुल होकर भाग रहे हैं । उस एक बालकने मेरे सभी सेवकोंको पराजित कर दिया; आप नीतिपूर्वक उचित कार्य कीजिये ।'

ऋषियोंसहित भगवान् कमलासन शौर्यमूर्ति गणेशके समीप पहुँचे ही थे कि परमपराक्रमी रुद्राणीनन्दनने अपना परिघ उठा लिया ।

'मैं शान्त ब्राह्मण युद्धके लिये नहीं आया हूँ ।' प्राण रक्षाके लिये उलटे पैर भागते हुए विधाताने कहा—'मुझपर तो आपको अनुग्रह ही करना चाहिये ।'

उस समय जगन्माता पार्वतीके अप्रतिम शूर पुत्रके कठोर प्रहारसे कितने ही शिवगणोंका अङ्ग-भङ्ग हो गया । कुछ गण वहीं धराशायी हो गये । उनके शरीरसे रुधिर बह रहा था ।

'मायाप्रपञ्चशमनीके प्रबल पराक्रमी पुत्रके सम्मुख हम नहीं टिक सकते ।' कुछ गणोंने तुरंत भगवान् भूतभावनके चरणोंमें प्रणाम कर विनयपूर्वक निवेदन किया । 'उस बालकका प्रलयाग्नि-तुल्य क्रोध हमें दग्ध-सा किये देता है ।'

'मेरे द्वारपर एक वीरपुंगव शिशुने भयानक उत्पात मचा रखा है ।' अपने गणोंके मुखसे उनके संहार एवं पराजयका संवाद प्राप्त कर लीला-विशारद सर्वदेवमय महादेव क्रुद्ध हुए । उन्होंने इन्द्रादि देवताओं, षडानन आदि श्रेष्ठ गणों एवं भूत-प्रेत-पिशाचोंको बुलाकर उनसे कहा—'उसे पराजित करो । मेरे ही द्वारपर बालकका यह उपद्रव मुझे असह्य हो रहा है ।'

सुरेन्द्रादि देव, वीरवर तारकारि कार्तिकेय आदि गण एवं समस्त प्रेत-पिशाचोंने अपने-अपने आयुध उठाये और निर्विकार कामारिके आदेशानुसार योगक्षेमकर्त्री माहेश्वरीके किशोर कुमार गणेशको चारों ओरसे घेर लिया ।

चतुर्दिक् अप्रतिम सशस्त्र देवता, गण एवं भूत-प्रेत। उनके मध्य सर्वथा एकाकी दण्डपाणि पार्वती-पुत्र गणेश। सबने एक साथ बुद्धिविशारद गणेशपर भयानक आक्रमण कर दिया, किंतु महाशक्तिके पुत्र कुमार गणेश अप्रतिम शौर्य-वीर्यसम्पन्न एवं प्रबलपराक्रमी थे। उन्होंने शत्रु-पक्षके तीक्ष्णतम प्रहारको शिरीष-सुमनके तुल्य समझा और स्वयं वे शिवप्रेषित वाहिनीका वीरतापूर्वक संहार करने लगे। देव-समुदाय, शिवगण एवं भूत-प्रेतादि भयभीत और आश्चर्यचकित विस्फारित नेत्रोंसे उनकी ओर देख रहे थे। कुमार गणेश घूमकर जिधर प्रहार करते, वीरोंका समुदाय भू-लुण्ठित हो जाता। उनके शरीरसे रुधिर-धारा बहने लगती और उनमें हाहाकार मच जाता। शत्रु प्राण लेकर भागते।

शचीपति एवं अजेय तारक असुरका संहार करनेवाले षडाननके भी आयुध निष्फल हो गये। शक्तिपुत्रकी शक्तिके सम्मुख सबकी शक्ति व्यर्थ हो गयी थी। त्रैलोक्यमें हाहाकार मच गया। समस्त देवगण आश्चर्यचकित थे।

सर्वशक्तिप्रदायिनी ज्ञानरूपिणी शिवाको यह वृत्तान्त विदित हुआ तो वे अत्यन्त क्रुद्ध हुईं। एकाकी प्राणप्रिय कुमारपर असंख्य शस्त्र-प्रहार किये जायँ, यह वात्सल्यमयी जननी कैसे सह सकती थीं। अपने एकाकी पुत्रकी सहायताके लिये उन्होंने तत्क्षण दो महान् शक्तियोंकी रचना की।

एक शक्ति कज्जलगिरि-तुल्य थी। उसने अपना भयानक मुख-विवर खोल दिया। दूसरी विद्युत्-तुल्य थी। उसके अनेक हाथ थे। देव-समुदाय एवं शिवगण कुपित होकर अपने जिन-जिन आयुधोंसे प्रहार करते, पहली शक्ति उन्हें अपने मुखमें ले लेती और उनपर भीषण अस्त्र-वर्षा करती। दूसरी भयंकर महादेवी प्रतिपक्षके शूरोंको भयानक यन्त्रणा देने लगी। इन देवियोंके आयुध भी सटीक प्रहार करनेवाले, अद्भुत, अलौकिक एवं अमोघ थे।

उस महासमरमें माहेश्वरीरचित दोनों देवियोंने अद्भुत लीला की। शिवपक्षके शूरोंके अस्त्र-शस्त्र तो कहीं दीखते नहीं थे, किंतु परिघ बार-बार दीख जाता था। इस प्रकार केवल एक पार्वतीकुमार शिवकी विशाल वाहिनीको रौंदने लगे।

> एको बालोऽखिलं सैन्यं लोडयामास दुस्तरम्।
> यथा गिरिवरेणैव लोडितः सागरः पुरा॥
> एकेन निहताः सर्वे शक्राद्या निर्जरास्तथा।
> शंकरस्य गणाश्चैव व्याकुला अभवंस्तदा॥
> (शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १५। ५०-५१)

'जैसे मन्दरगिरिने सागरका मन्थन किया था, उसी प्रकार एक बालकने दुस्तर सैन्य-समुदायका मन्थन कर डाला। एकने ही इन्द्रादिक समस्त देवताओंको क्षत-विक्षत कर दिया, तब शिवजीके गण भी व्याकुल हो गये।'

शर्वाणी-सुत गणेशके प्रहारसे अधीर होकर देव-गण आदि परस्पर कहने लगे—

> किं कर्तव्यं क्व गन्तव्यं न ज्ञायन्ते दिशो दृश।
> परिघं भ्रामयत्येष सव्यापसव्यमेव च॥
> (शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १५। ५३)

'क्या करें? कहाँ जायँ? दिशाएँ दीखती नहीं, यह बालक दायें-बायें दोनों ओर परिघ घुमाता है।'

उस समय नारद आदि ऋषि तथा श्रेष्ठ अप्सराएँ हाथमें पुष्प और चन्दन लेकर उक्त भयानक महासमरको देख रही थीं। युद्धके दर्शनार्थियोंसे आकाश आच्छादित हो गया था। चकित होकर सभी परस्पर कहते—'ऐसा भीषण संग्राम तो हमने कभी नहीं देखा।' सर्वेश्वरीकुमार गणेशके असह्य प्रहारसे सभी देवता और शिवगण अपनी जीवन-रक्षाके लिये भाग गये। वहाँ केवल महावीर कार्तिकेय ही अडिग रहकर युद्ध कर रहे थे; किंतु उनके प्रत्येक प्रहार विफल होते जा रहे थे। पार्वतीकी शक्तियोंने सबके आयुध नष्ट कर दिये।

'प्रभो! यह कौन-सा श्रेष्ठ गण है?' युद्धसे भागे हुए देवता और गणोंने नीलकण्ठके चरणोंमें बारंबार प्रणाम कर निवेदन किया। 'हमने अनेक युद्ध देखे हैं, पर ऐसा समर न कभी सुना न देखा है। इस दुर्धर्ष उग्र बालकपर विजय प्राप्त करना कठिन प्रतीत होता है। आप कृपापूर्वक कोई यत्न कीजिये।'

शिवके त्रिशूलसे दण्डपाणि गणेशका मस्तक कटा

इस संवादसे परम क्रोधी रुद्र अत्यधिक कुपित हुए। वे अपने गणोंके साथ मायासंहार-रूपिणी उमाके अन्यतम वीर पुत्र गणेशके सम्मुख पहुँचे। यह देख सम्पूर्ण देवसेना क्षीराब्धिशायी विष्णुके साथ हर्षोल्लासपूर्वक शिवके समीप पहुँच गयी।

रुद्रदेवको बालक गणेशके साथ युद्धके लिये उद्यत देखकर देवताओंने उनके त्रैलोक्यपावन चरणोंका स्पर्श किया और फिर सोत्साह रणाङ्गणमें कूद पड़े। महादिव्य आयुध-धारी महाशक्तिशाली श्रीहरि भी गणेशसे युद्ध करने लगे।

महाशक्ति-पुत्र गणेशने देवताओंपर भीषण दण्ड-प्रहार किया। उनके दण्ड-प्रहारसे श्रीहरि भी घबरा गये। भगवान् त्रिलोचन भी दीर्घकालतक भीषण संग्राममें अपने सैन्यदलका निर्मम दलन होते देखकर चकित हो गये। उन्होंने मन-ही-मन विचार किया—'छलेनैव च हन्तव्यो नान्यथा हन्यते पुनः। (शिवपु०, रुद्रसं०, कु० ख० १६। ८)—इसे छलसे ही मारा जा सकता है, अन्य किसी रीतिसे इसे मारना सम्भव नहीं।'

इस निश्चयके साथ ही त्रिनेत्र विशाल वाहिनीके मध्य खड़े हो गये। सर्वाधार श्रीहरि भी वहाँ आ गये। शिवके गण हर्षोल्लासपूर्वक नृत्य करने लगे। उस समय धर्म-परायणा पार्वतीके पुत्रने अपने दण्डसे श्रीविष्णुकी पूजा की।

'विभो! मैं इसे मोहित करता हूँ।' श्रीहरिने धीरेसे वृषभध्वजसे कहा—'उस समय आप इसे मार डालें। यह बालक छलके बिना नहीं मारा जा सकता।'

भगवान् शिवने अनुमति दे दी। त्रैलोक्यपति श्रीविष्णु-के विचारसे अवगत होते ही धर्ममयी पार्वतीकी दोनों शक्तियोंने गणेशको अपना बल दे दिया और स्वयं अन्तर्धान हो गयीं। श्रीहरिने आशुतोष शिवका स्मरण किया और गणेशको ठगनेका प्रयत्न करने लगे।

भगवान् शिवने कुपित होकर अपना तीक्ष्णतम त्रिशूल उठाया। शिवापुत्र गणेशने शिवको अपने लिये त्रिशूल उठाते देख सर्वशक्तिप्रदायिनी माताके चरणोंका स्मरण कर शिवके हाथमें शक्ति मारी। गणेशके भयानक प्रहारसे शिवका त्रिशूल उनके हाथसे छूट गया।

रुद्र अत्यन्त कुपित हुए। उन्होंने अपना पिनाक-नामक धनुष उठाया। वीरवर गणेशने परिघ प्रहारसे उसे भी धरतीपर गिरा दिया। उनके पाँचों हाथ भी घायल हो गये। तब उन्होंने दूसरे पाँच हाथोंमें शूल लिये।

महाशक्तिका शक्तिमान् पुत्र अपने परिघके प्रहारसे देवसैन्यको व्यथित और विचलित कर रहा था। यह देखकर त्रिपुरारिने मन-ही-मन कहा—'अरे! जब इस युद्धमें मेरी यह दशा है; तब मेरे गणोंको कितना कष्ट हुआ होगा!'

अद्भुत पराक्रमशील पार्वतीपुत्रके परिघ-प्रहारसे देवता और गण खड़े नहीं रह सके। वे अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये जिधर मार्ग दीखा, उधर ही भागने लगे—

विष्णुस्तं च गणं दृष्ट्वा धन्योऽयमिति चाब्रवीत्।
महाबलो महावीरो महाशूरो रणप्रियः॥
बहवो देवताश्चैव मया दृष्टास्तथा पुनः।
दानवा बहवो दैत्या यक्षगन्धर्वराक्षसाः॥
नैतेन गणनाथेन समतां यान्ति केऽपि च।
त्रैलोक्येऽप्यखिले तेजोरूपशौर्यगुणादिभिः॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० ख० १६। २५-२७)

"गणेशको देखकर आश्चर्यचकित श्रीविष्णुने कहा—'ये धन्य हैं। शौर्य-वीर्य-सम्पन्न, महाबली, महाशूर तथा युद्धप्रिय हैं। हमने बहुत-से देवता, दानव, दैत्य, यक्ष, गन्धर्व और राक्षस देखे हैं, पर इन गणेश्वरकी तो कोई भी समता नहीं कर सकता। ये त्रैलोक्यमें तेज, रूप, शौर्य और गुणोंसे युक्त हैं।'"

उसी समय गणपतिने परिघसे विष्णुपर प्रहार किया; किंतु श्रीहरिने अपने तीक्ष्णतम चक्रसे परिघके दो टुकड़े कर दिये। गजमुखने उस खण्डित परिघको ही उठाकर विष्णुपर फेंका; किंतु विष्णु-वाहन गरुड़ने उसे विफल कर दिया।

इस प्रकार शक्तिपुत्र गणपति और श्रीहरिमें युद्ध हो रहा था। गणपतिने अपनी जननीका स्मरण कर अनुपम यष्टिसे विष्णुपर आक्रमण किया। उक्त घातक आक्रमणसे विष्णु धरतीपर गिर पड़े, किंतु फिर उठकर वे पार्वतीनन्दनसे युद्ध करने लगे।

पार्वती-पुत्र गणेशको विष्णुसे युद्धमें संलग्न देख भगवान् शिवने उत्तर दिशासे अपना तीक्ष्णतम शूल उनपर फेंका और फिर बालक गणेशका मस्तक कटकर दूर जा गिरा।

देवताओं और गणोंने संतोषकी साँस ही नहीं ली, हर्षोल्लासपूर्वक वे मृदङ्ग और नगाड़े भी बजाने लगे।

शिवाकी व्यथा और उनका कोप

'मेरे पुत्रका शिरश्छेद कर देव-समुदाय और शिवगण विजय-महोत्सव मना रहे हैं'—यह विदित होते ही शंकरार्धशरीरिणी रुद्राणी विकल—विह्वल हो गयीं।

'मैं क्या करूँ ! कहाँ जाऊँ ?' छटपटाती हुई जननी कह रही थीं—'देवताओं और गणोंने मिलकर मेरे नन्हे बच्चेको मार डाला। यह दुःख मुझसे सहा नहीं जा रहा है। मैं भी सबको मृत्यु-मुखमें झोंक दूँगी। प्रलय मचा दूँगी।'

योगेश्वर-प्राणनाथा उमाने कुपित होकर सहस्रों तेजस्विनी शक्तियोंकी रचना की। वे सभी शक्तियाँ परम्शक्तिसम्पन्न एवं सर्वसमर्थ थीं। उन्होंने जगदम्बाके चरणोंमें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और अत्यन्त विनयपूर्वक पूछा—'माता ! हमें क्या आज्ञा है ?'

'शक्तियो ! मेरी आज्ञासे तुमलोग किसी प्रकारका विचार किये बिना प्रलय मचाओ।' अत्यन्त शोकाकुल जगज्जननीने क्रुद्ध होकर शक्तियोंको आज्ञा प्रदान की—'तुम लोग देव, ऋषि, यक्ष, राक्षस तथा स्वजन परिजन—जिनको जहाँ पाओ, वहीं भक्षण करो।'

फिर क्या था ? कराली, कुब्जका (कुबड़ी), खञ्जा (लँगड़ी), लम्बशीर्षा आदि अनेक रूपोंकी महाभयानक देवियाँ कुपित होकर देवता आदि जिन्हें जहाँ पातीं, वहीं उन्हें पकड़कर अपने भयानक मुँहमें डाल लेतीं। उन शक्तियोंका वह जाज्वल्यमान तेज सभी दिशाओंको दग्ध-सा कर रहा था। सर्वत्र हाहाकार मच गया। इन्द्रादि देवगण तथा ऋषियोंके मनमें असमयमें ही संहारका विश्वास होने लगा। सभी अपने जीवनसे निराश होने लगे।

'यदि भगवती गिरिजा संतुष्ट हों, तभी यह आपत्ति टल सकती है।' सबने मन्त्रणा की। सुख-शान्तिका अन्य कोई पथ नहीं दीखता।'

पर स्वजन-परजन, देव-दानव, गण-दिक्पाल, यक्ष-किंनर, ऋषि-मुनि और ब्रह्मा-विष्णु तथा स्वयं महेश भी उन क्रोध-मूर्ति रुद्राणीके तेजसे सहमकर वहाँसे दूर हट गये।

'क्रुद्धा नित्यसिद्धा पार्वतीके समीप कौन जाय ?' देवताओंकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी। 'पुत्रका वध कर माताके सम्मुख जानेका साहस कौन करे ?'

उसी समय देवर्षि नारद वहाँ पहुँचे। विपत्तिग्रस्त देवताओंने उन्हें अपनी व्यथा-कथा सुनायी और कहा—'परमेश्वरी गिरिजाकी प्रसन्नताके बिना हमारा कल्याण सम्भव नहीं।'

माता पार्वतीकी स्तुति

नारदजीके साथ समस्त देवता और ऋषिगण शोकाकुल माता पार्वतीके समीप पहुँचकर उन्हें प्रणाम करके वे उनकी स्तुति करने लगे—'जगदम्बे ! आपको नमस्कार है। शिवपत्नि ! आपको प्रणाम है। चण्डिके ! आपको हमारा अभिवादन प्राप्त हो। कल्याणि ! आपको सादर प्रणाम है। अम्बे ! आप ही आदिशक्ति हैं। आप ही सारी सृष्टिकी निर्मात्री, पालनकर्त्री और संहार करनेवाली हैं। देवेशि ! आपके कोपसे सारी त्रिलोकी विकल हो गयी है, अतः आप प्रसन्न हों, शान्त हों और कोपको शान्त कीजिये। देवि ! हम लोग आपके चरणोंमें मस्तक झुकाते हैं।'

उनके स्तवनसे भी जगदम्बाका क्रोध शान्त नहीं हुआ। पर्वतनन्दिनीने उनकी ओर अत्यन्त क्रुद्ध दृष्टिसे देखा, किंतु वे मौन थीं। तब ऋषिगण भक्तिविह्वल हो गिरिजा माताके चरणोंमें प्रणाम कर पुनः स्तुति करने लगे—

> क्षम्यतां क्षम्यतां देवि संहारो जायतेऽधुना।
> तव स्वामी स्थितश्चास्ति पश्य पश्य समन्विके॥
> वयं के च इमे देवा विष्णुब्रह्मादयस्तथा।
> प्रजाश्च भवदीयाश्च कृताञ्जलिपुटाः स्थिताः॥
> क्षन्तव्यश्चापराधो वै सर्वेषां परमेश्वरि।
> सर्वे हि विकलास्तत्र शान्तिं तेषां शिवे कुरु॥
>
> (शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १७। ३०–३२)

'देवि ! अभी संहार होना चाहता है, अतः क्षमा कीजिये, क्षमा कीजिये। अम्बिके ! आपके स्वामी फिर भी तो यहीं स्थित हैं, तनिक उनकी ओर तो दृष्टिपात कीजिये। हमलोग, ये ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता तथा सारी प्रजा—सब आपके ही हैं और व्याकुल होकर अञ्जलि बाँधे आपके सामने खड़े हैं। परमेश्वरि ! इन सबका अपराध क्षमा कीजिये। शिवे ! अब इन्हें शान्ति प्रदान कीजिये।'

इस प्रकार प्रार्थना करते हुए ऋषिगण हाथ जोड़कर जगदीश्वरीके सम्मुख खड़े हो गये। ऋषियोंकी स्तुति एवं उनका दैन्य देखकर दयामयी सर्वलोकेश्वरी जननीका हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने ऋषियोंसे कहा—

> मत्पुत्रो यदि जीवेत तदा संहरणं न हि।
> यथा हि भवतां मध्ये पूज्योऽयं च भविष्यति॥

सर्वाध्यक्षो भवेदस्य यूयं कुरुत तद्यदि ।
तदा शान्तिर्भवेल्लोके नान्यथा सुखमाप्स्यथ ॥
(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १७ । ४२-४३)

"ऋषियो ! यदि मेरा पुत्र जीवित हो जाय और वह आपलोगोंके मध्य पूजनीय मान लिया जाय तो संहार नहीं होगा । जब आपलोग उसे 'सर्वाध्यक्ष'का पद प्रदान कर देंगे, तभी लोकमें शान्ति हो सकती है, अन्यथा आपलोगोंको सुख नहीं प्राप्त हो सकता ।"

दण्डपाणि गजमुख हुए

'ठीक है, जिस प्रकार त्रैलोक्य सुखी हो, वही करना चाहिये ।' ऋषियोंने निखिलसृष्टिनियामिका जननीका कथन इन्द्रादि देवताओंको सुनाया । वे सभी उदास और दुःखी मनसे अहिभूषणके समीप पहुँचे । उन्होंने श्रद्धा-भक्तिपूर्वक त्रैलोक्यपति शिवके चरणोंमें प्रणाम कर माताकी बात कही । तब सर्वान्तर्यामी कर्पूरगौरने देवताओंसे कहा—'अब उत्तर दिशाकी ओर जाना चाहिये और जो जीव पहले मिले, उसका सिर काटकर उस बालकके शरीरपर जोड़ देना चाहिये ।'

महेश्वरकी आज्ञासे उन देवताओंने तत्काल सर्वपापविमोचनी पार्वतीके शिशु गणेशका कबन्ध (मस्तकरहित शरीर) धो-पोंछकर विधिपूर्वक उसकी पूजा की और फिर उत्तर दिशाकी ओर चल पड़े ।

वहाँ मार्गमें सर्वप्रथम एक गज मिला, जिसके एक ही दाँत था । देवताओंने उसका सिर लाकर गणेशके शरीरपर जोड़ दिया ।

'हमने अपना काम पूरा कर लिया ।' देवताओंने ब्रह्मा, विष्णु और महेश—त्रिदेवोंके चरणोंमें प्रणाम कर निवेदन किया—'अब शेष करणीय आपलोग करें ।'

महामहेश्वरकी आज्ञा-पूर्ति हो गयी—इस संवादसे देवता और पार्षद सभी आनन्दित हुए । फिर ब्रह्मा, विष्णु तथा अन्य देवताओंने निर्विकार नीलकण्ठके चरणोंमें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और कहने लगे—'प्रभो ! आपके जिस तेजसे हम सब प्रकट हुए हैं, आपका वही तेज वेदमन्त्रोंके योगसे इस शिशुमें प्रवेश करे ।'

इस प्रकार समस्त देवताओंने वेद-मन्त्रोंसे उस जलको अभिमन्त्रित किया । फिर सर्वात्मा शिवका स्मरण कर उक्त जल उस बालकपर छिड़क दिया । उस अभिमन्त्रित जलका स्पर्श होते ही सर्वदेवमय शिवकी इच्छासे उस बालककी चेतना लौट आयी । वह जीवित हो गया और इस प्रकार उठ बैठा, जैसे निद्रा त्यागकर उठा हो—

सुभगः सुन्दरतरो गजवक्त्रः सुरक्तकः ।
प्रसन्नवदनश्चाति सुप्रभो ललिताकृतिः ॥
(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १७ । ५७)

'वह सौभाग्यशाली बालक अत्यन्त सुन्दर था । उसका मुख हाथीका-सा था । उसके शरीरका रंग लाल था, चेहरेपर अत्यन्त प्रसन्नता खेल रही थी । उसकी कमनीय आकृतिसे सुन्दर प्रभा फैल रही थी ।'

उस परमतेजस्वी एवं सुन्दर पार्वती-पुत्रको जीवित देखकर उपस्थित सुर-समुदाय एवं शिवगण आनन्द-विभोर हो गये । सबका दुःख दूर हो गया । सबने यह सुखद संवाद हिमगिरिनन्दिनी पार्वतीको सुनाया । जननी दौड़ी आयीं और अपने योग्यतम शिशुको जीवित देखा तो जैसे सब कुछ भूल गयीं । उनकी प्रसन्नताकी सीमा न रही ।

सर्वमाङ्गल्यप्रदायिनी शिवाके अश्रुतपूर्व एवं अभूतपूर्व वीर मातृभक्त पुत्रके जीवित हो जानेपर वहाँ अद्भुत आनन्दोत्सव मनाया जाने लगा । समस्त देवताओं और गणाध्यक्षोंने गजाननका अभिषेक किया ।

आनन्दोत्सव और गजमुखको वर-प्रदान

जननीने तो हर्षविह्वल होकर अपने प्राणप्रिय पुत्रको दोनों हाथोंसे उठाकर अपनी गोदमें लेकर छातीसे सटा लिया । पुत्रके पुनर्जीवित हो जानेसे उनका प्रज्वलित हृदय शीतल हो रहा था । हर्षातिरेकसे जगदीश्वरीके नेत्र मुँद-से गये थे । कुछ देर बाद योगमार्गप्रदर्शिनी माता पार्वतीने प्रसन्न होकर अपने प्राणाधिक पुत्र गजमुखको अनेक प्रकारके वस्त्र और आभूषण प्रदान किये ।

सिद्धियोंने उनकी विधिपूर्वक पूजा की तथा क्लेशनाशिनी करुणामूर्ति जगदम्बाने अपने सर्वदुःखहारी कर-कमलोंसे उनके अङ्गोंका स्पर्श किया । अत्यधिक स्नेहके कारण जननी अपने पुत्र गजाननका मुख बारबार चूमने लगीं ।

'बेटा ! इस समय तुम्हें बड़ा कष्ट उठाना पड़ा ।' फिर अत्यन्त प्रेमपूर्वक शिवज्ञानस्वरूपिणी शिवप्रियाने अपने

अद्वितीय पुत्रको वर प्रदान करते हुए कहा—'किंतु अब तू कृतकृत्य हो गया है। तू धन्य है। अबसे सम्पूर्ण देवताओंमें तेरी अग्रपूजा होती रहेगी और तुझे कभी दुःखका सामना नहीं करना पड़ेगा।'

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि पूर्वपूज्यो भवाधुना।
सर्वेषाममराणां वै सर्वदा दुःखवर्जितः॥
(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० ख० १८। ८)

संसारतारिणी दयामयी जननीने अपने आत्मज गजवक्त्रको अमोघ वर प्रदान करते हुए आगे कहा—

आनने तव सिन्दूरं दृश्यते साम्प्रतं यदि।
तस्मात्त्वं पूजनीयोऽसि सिन्दूरेण सदा नरैः॥
पुष्पैर्वा चन्दनैर्वापि गन्धेनैव शुभेन च।
नैवेद्येन सुरम्येण नीराजेन विधानतः॥
ताम्बूलैरथ दानैश्च तथा प्रक्रमणैरपि।
नमस्कारविधानेन पूजां यस्ते विधास्यति॥
तस्य वै सकला सिद्धिर्भविष्यति न संशयः।
विघ्नान्यनेकरूपाणि क्षयं यास्यन्त्यसंशयम्॥
(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १८। ९—१२)

'इस समय तेरे मुखपर सिन्दूर दीख रहा है, इसलिये मनुष्योंको सदा सिन्दूरसे तेरी पूजा करनी चाहिये। जो मनुष्य पुष्प, चन्दन, सुन्दर गन्ध, नैवेद्य, रमणीय आरती, ताम्बूल और दानसे तथा परिक्रमा और नमस्कार करके विधिपूर्वक तेरी पूजा करेगा, उसे सारी सिद्धियाँ प्राप्त हो जायँगी और उसके सभी प्रकारके विघ्न नष्ट हो जायँगे—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है।'

इसके अनन्तर भुक्ति-मुक्ति-प्रदायिनी सर्वेश्वरीने अनेक प्रकारकी वस्तुएँ देकर फिर उनका सत्कार किया। तब सर्वथा निश्चिन्त होकर इन्द्रादि देवगण पार्वतीके प्रिय पुत्र गजमुखको लेकर आशुतोष शिवके पास पहुँचे और उन्हें परमपिता शिवकी गोदमें बैठा दिया। तब सर्वपावन भगवान् वृषभध्वजने भी उनके मस्तकपर अपना वरद कर-कमल रखते हुए कहा—'पुत्रोऽयमिति मे परः—यह मेरा दूसरा पुत्र है।'

अरुणवर्ण गणेशने भी उठकर अपने पिता नीलकण्ठके अभयद पद-पङ्कजमें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। फिर उन्होंने अपनी मोक्षप्रदायिनी माता पार्वतीसहित ब्रह्मा, विष्णु तथा नारदादि समस्त ऋषियोंके चरणोंमें प्रणाम कर कहा—

'क्षन्तव्यश्चापराधो मे मानश्चैवेदृशो नृणाम्।'
(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० ख० १८। १९)

'यों अभिमान करना मनुष्योंका स्वभाव ही है, अतः आपलोग मेरा अपराध क्षमा करें।' तब ब्रह्मा, विष्णु और शिव—त्रिदेवोंने प्रसन्न होकर गिरापुत्र गणेशको एक साथ वर प्रदान किया—

त्रयो वयं सुरवरा यथा पूज्या जगत्त्रये।
तथायं गणनाथश्च सकलैः प्रतिपूज्यताम्॥
एतत्पूजां पुरा कृत्वा पश्चात्पूज्या वयं नरैः।
वयं च पूजिताः सर्वे नायं च पूजितो यदा॥
अस्मिन्नपूजिते देवाः परपूजा कृता यदि।
तदा तत्फलहानिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा॥
(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १८। २१, २३-२४)

'अमरवरो! जैसे त्रैलोक्यमें हम तीनों देवोंकी पूजा होती है, उसी तरह तुम सबको इन गणेशका भी पूजन करना चाहिये।' 'मनुष्योंको चाहिये कि पहले इनकी पूजा कर लें; तत्पश्चात् हमलोगोंका पूजन करें। ऐसा करनेसे हमलोगोंकी पूजा सम्पन्न हो जायगी। देवगणो! यदि कहीं इनकी पूजा पहले न करके अन्य देवोंका पूजन किया गया तो उस पूजनका फल नष्ट हो जायगा—इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।'

इतना ही नहीं, अमित महिमाशालिनी पार्वतीको प्रसन्न करनेके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि सभी सुरोंने वहीं उनके पुत्र शूर्पकर्णको 'सर्वाध्यक्ष' घोषित कर दिया। उसी समय लोकपावन वृषवाहनने अत्यन्त प्रसन्न होकर सर्वामराध्यक्ष गणेशको सतत सुख-प्रदायक अनेकों वर प्रदान किये—

हे गिरीन्द्रसुतापुत्र संतुष्टोऽहं न संशयः।
मयि तुष्टे जगत्तुष्टं विरुद्धः कोऽपि नो भवेत्॥
बालरूपोऽपि यस्मात्त्वं महाविक्रमकारकः।
शक्तिपुत्रः सुतेजस्वी तस्माद्भव सदा सुखी॥
त्वन्नाम विघ्नहन्तृत्वे श्रेष्ठं चैव भवत्विति।
मम सर्वगणाध्यक्षः सम्पूज्यस्त्वं भवाधुना॥
(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १८। २९—३१)

'गिरिजानन्दन! निस्संदेह मैं तुमसे अत्यधिक प्रसन्न हूँ। मेरे प्रसन्न हो जानेपर अब तू सारे जगत्को ही प्रसन्न हुआ समझ। अब कोई भी तेरा विरोध नहीं कर सकता। तू शक्तिका पुत्र है, अतः अत्यन्त तेजस्वी है। बालक होनेपर

भी तूने महान् पराक्रम प्रकट किया है; इसलिये तू सदा सुखी रहेगा। विघ्ननाशके कार्यमें तेरा नाम सर्वश्रेष्ठ होगा। तू सबका पूज्य है; अतः अब मेरे सम्पूर्ण गणोंका अध्यक्ष हो जा।'

'गणनाथ!' अत्यधिक हर्षोत्फुल्ल होनेके कारण भवाब्धिपोत धूर्जटिने आगे कहा—'तू भाद्रपद-मासके कृष्ण-पक्षकी चतुर्थी तिथिको शुभ चन्द्रोदय होनेपर उत्पन्न हुआ है। गिरिजाके सुन्दर चित्तसे रात्रिके प्रथम प्रहरमें तेरा रूप प्रकट हुआ है। इसलिये उसी तिथिमें तेरा उत्तम व्रत करना चाहिये*।'

फिर सर्वसिद्धिप्रद उत्तम चतुर्थी-व्रतकी विधि बताते हुए करुणामय सर्वभूतपति कर्पूरगौरने कहा—

सर्वैर्वर्णैः प्रकर्तव्या स्त्रीभिश्चैव विशेषतः।
उदयाभिमुखैश्चैव राजभिश्च विशेषतः॥
यं यं कामयते यो वै तं तमाप्नोति निश्चितम्।
अतः कामयमानेन तेन सेव्यः सदा भवान्॥
(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० ख० १८। ५९-६०)

'सभी वर्णके लोगोंको, विशेषकर स्त्रियोंको यह पूजा अवश्य करनी चाहिये तथा अभ्युदयकी कामना करनेवाले राजाओंके लिये भी यह व्रत अवश्यकर्तव्य है। व्रती मनुष्य जिस-जिस वस्तुकी कामना करता है, उसे निश्चय ही वह वस्तु प्राप्त हो जाती है; अतः जिसे किसी वस्तुकी अभिलाषा हो, उसे अवश्य तुम्हारी सेवा करनी चाहिये।'

'तथास्तु!' स्वर्गापवर्गदाता उमानाथके प्रसन्नतापूर्वक वर प्रदान करनेपर सम्पूर्ण देवताओं, ऋषियों और गणोंने उसका अनुमोदन करते हुए अनेक विधि-विधानोंसे गणाध्यक्षकी पूजा की। शिवगणोंने विशेषरूपसे वक्रतुण्डकी अर्चना एवं वन्दना की। अपने प्राणप्रिय पुत्र गजमुखकी श्रेष्ठ प्रतिष्ठा देखकर योगेश्वरेश्वरी भवानी अत्यन्त मुदित हुईं।

देव-दुन्दुभियाँ बज उठीं। अप्सराएँ सोल्लास नृत्य करने लगीं। गन्धर्वगण गीत गाने लगे और अन्तरिक्षसे स्वर्गीय सुमनोंकी वृष्टि होने लगी। सर्वत्र विविध प्रकारके सुखद मङ्गल होने लगे। उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि शिवज्ञानस्वरूपिणी गिरिजाके विद्या-बुद्धि वारिधि, परम सुन्दर, मङ्गल-मोद-निधान शिशु विघ्नेश्वरके उत्पन्न होनेपर स्वयं आनन्द और मङ्गल असंख्य रूपोंमें मूर्त्त होकर चतुर्दिक् हर्षोल्लासपूर्ण नृत्य-गान आदिके द्वारा प्राकट्योत्सव मनाते हुए थक नहीं रहे हैं। वे विश्राम नहीं कर रहे हैं। विश्राम करें भी कैसे? तापत्रयनिवारिणी जगज्जननीके यहाँ अद्भुत लीलावपुधारी परम तत्त्व पुत्रके रूपमें प्रकट जो हुआ था।

सबका दुःख निवारण हुआ। सर्वत्र सुख-शान्तिकी स्थापना हुई। त्रैलोक्यपावन शिवा-शिव भी आनन्दित हुए। देवगण सर्वात्मा चन्द्रशेखरके साथ सर्वपूज्य शूर्पकर्ण गणेश और अतुल महिमामयी शिवाकी बारबार स्तुति-प्रार्थना करके अपने-अपने स्थानको चले गये। ऋषिगण भी शिवा-शिव और गणेशका स्तवन और उनके चरणोंमें प्रणाम कर प्रस्थित हुए।

सर्वदेवमय कर्पूरगौर और योगमार्गप्रदर्शिनी अम्बिकाको परस्पर पूर्ववत् सुखद कार्य करते देखकर लोकपितामह ब्रह्मा और क्षीराब्धिशायी विष्णु शिवा-शिवके समीप पहुँचे और उनका आदेश प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्नतासे अपने-अपने धाम पधारे।†

बाल-लीला

उमा-महेश्वरके अलौकिक पुत्रद्वय स्कन्द और गणेश अद्भुत बाल-लीला करते थे। उन्हें देखकर माता-पिता अत्यन्त सुखी होते और उनका अतिशय स्नेहसे पालन करते थे। गणेशकी परम मनोहारिणी बाल-लीलाओंका ग्रन्थोंमें बड़ा सुन्दर वर्णन मिलता है। एक स्थानपर उल्लेख है—

* चतुर्थ्यां त्वं समुत्पन्नो भाद्रे मासि गणेश्वर।
असिते च तथा पक्षे चन्द्रस्योदयने शुभे॥
प्रथमे च तथा यामे गिरिजायाः सुचेतसः।
आविर्बभूव ते रूपं यस्मात्ते व्रतमुत्तमम्॥
(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० ख० १८। ३५-३६)

† इदं सुमङ्गलाख्यानं यः शृणोति सुसंयतः।
सर्वमङ्गलसंयुक्तः स भवेन्मङ्गलालयः॥
* * *
सर्वाभीष्टं स लभते श्रीगणेशप्रसादतः॥
(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० ख० १८। ७५, ७९)

'जो मनुष्य जितेन्द्रिय होकर इस परम माङ्गलिक आख्यानको श्रवण करता है, वह सम्पूर्ण मङ्गलोंका भागी होकर मङ्गल-भवन हो जाता है। 'वह श्रीगणेशजीकी कृपासे सम्पूर्ण अभीष्ट फल प्राप्त कर लेता है।'

क्रोडं तातस्य गच्छन् विशदबिसधिया शावकं शीतभानो-
राकर्षन् भालवैश्वानरनिशितशिखारोचिषा तप्यमानः ।
गङ्गाम्भः पातुमिच्छन् भुजगपतिफणाफूत्कृतैर्दूयमानो
मात्रा सम्बोध्य नीतो दुरितमपनयेद् बालवेषो गणेशः ॥

'बालक गणेशजी अपने पिता शंकरजीके मस्तकपर सुशोभित बाल चन्द्रकलाको कमलनाल समझकर उसे खींच लानेके लिये उनकी गोदमें चढ़कर ऊपर लपके; लेकिन तृतीय नेत्रसे निकली लपटोंकी आँच लगी, तब जटाजूटमें बहनेवाली गङ्गाका जल पीनेको बढ़े तो सर्प फुफकार उठा। इस फुफकारसे घबराये हुए गणेशको माता पार्वती बहला-फुसलाकर अपने साथ ले गयीं। ऐसे बाल गणेश हमारे सब पाप-तापका निवारण करें।'

स्कन्द और गणेशमें भी बड़ी प्रीति थी। वे सदा मिल-जुलकर साथ-साथ बाल-क्रीडा किया करते थे और एक दूसरे-के बिना रह नहीं सकते थे। वे दोनों शिशु अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिपूर्वक माता-पिताकी सेवा भी करते थे। इस कारण उन बालकोंपर माता-पिताका स्नेह उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा था।

विवाहकी स्पर्धा

धीरे-धीरे दोनों बालक विवाहयोग्य हुए। माता-पिता उनकी वय देखकर विवाह-सम्बन्धी परामर्श भी करने लगे। स्कन्द और गणेश—दोनों शिव और शिवाको समानरूपसे प्राणप्रिय थे। वे सोच रहे थे, इन बालकोंका मङ्गल-परिणय किस प्रकार करें?

'पहले मेरा विवाह होगा।' माता-पिताके विचार समझकर एकदन्तने उन लोगोंसे निवेदन किया।

'नहीं, पहले मैं विवाह करूँगा।' स्कन्दने शिवा-शिवसे कहा।

बालकोंकी इन बातोंको सुनकर जगदाधार महादेव और संसारस्वामिनी गिरिजा चकित हुईं। फिर एक दिन शिव और शिवाने अपने दोनों पुत्रोंको बुलाकर कहा—

'बालको! हमें तुम दोनों प्राणप्रिय हो। हमने तुम्हारे विवाहके लिये एक शर्त रखी है। तुम दोनोंमें जो कोई सम्पूर्ण पृथ्वीकी परिक्रमा कर पहले लौट आयेगा, उसीका विवाह पहले होगा।'

माता-पिताके वचन सुनकर मयूरवाहन कार्तिकेय सम्पूर्ण धरित्रीकी यथाशीघ्र परिक्रमा करनेके लिये तत्क्षण मन्दरगिरिसे द्रुतगतिसे चल पड़े।

'मैं क्या करूँ; कहाँ जाऊँ?' परम बुद्धिमान, मूषकवाहन, लम्बोदर वहीं खड़े-खड़े सोचने लगे—'मैं तो एक योजन भी नहीं चल सकता, फिर इस विशालतम पृथ्वीकी परिक्रमा कर पहले कैसे लौट पाऊँगा?'

फिर सचिन्त मनसे विचार करनेके अनन्तर विशालतुण्ड-ने अपना कर्तव्य निश्चित किया। सर्पयज्ञोपवीतधारी गणेशजीने स्नान कर शुद्ध वस्त्र धारण किये।

'परमपूज्य पिता एवं माताजी! मैंने आपलोगोंके लिये दो सुन्दर और पवित्र आसन बिछा दिये हैं।' सर्वविघ्नेशने चन्द्रार्धभूषण शिव एवं करुणामयी माता पार्वतीसे मधुर वाणीमें प्रार्थना की—'आपलोग कृपापूर्वक उसपर बैठकर मेरा मनोरथ पूर्ण करें।'

आशुतोष एवं सद्यःफलदायिनी जननी उक्त आसनपर विराजमान हुईं। मूषकवाहन गणेशने उन लोगोंकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजा की और उनके मङ्गलालय चरण-कमलोंमें बार-बार दण्डवत्-प्रणाम किया। फिर वे अपने सर्वाधार एवं सर्वसमर्थ माता-पिताकी भक्ति-विभोर भावसे परिक्रमा करने लगे। खण्डरद गणेश बार-बार शिव और शिवाके चरण-युगलमें प्रणाम करते और उनकी परिक्रमा करते जाते। इस प्रकार उन्होंने सर्वेश्वर महादेव एवं सर्वज्ञा माता पार्वतीकी सात प्रदक्षिणाएँ पूरी कीं और हाथ जोड़कर उनका स्तवन किया। फिर कहा—'अब आपलोग कृपापूर्वक मेरा मङ्गल-परिणय शीघ्र कर दीजिये।'

'गजानन!' महाबुद्धिमान् गणेशकी प्रार्थना सुनकर धर्माध्यक्ष वामदेवने उत्तर दिया—'तेरा भाई स्कन्द सरिताओं, समुद्रों, पर्वतों एवं काननोंसहित पृथ्वीकी परिक्रमा करने गया है। तू भी जा और पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करके कार्तिकेयसे पहले लौट आ, तब तेरा विवाह पहले हो जायगा।'

'पवित्रतम धर्ममूर्ति माताजी और पिताजी!' नियम-परायण लम्बोदरने कुपित होकर कहा—'मैंने सम्पूर्ण भूमण्डलकी एक नहीं, सात प्रदक्षिणाएँ कर ली हैं।'

'अरे!' लीलाधारी शिवा-शिवने लौकिक रीतिसे आश्चर्य व्यक्त करते हुए अपने परम बुद्धिमान् पुत्र गणेशसे कहा—'तूने सप्तद्वीपवती विशाल वसुंधराकी परिक्रमा कब पूरी कर ली?'

'धर्माध्यक्ष पिता एवं परम पावनी माता ! मैंने आपलोगोंकी सात परिक्रमा पूरी करके निश्चय ही गिरि-काननों-सहित सप्तद्वीपमयी सम्पूर्ण वसुंधराकी परिक्रमा कर ली है।' परम बुद्धिमान् एवं ज्ञानमूर्ति महोदरने निवेदन किया—'धर्मके संग्रहभूत वेदों और शास्त्रोंके ये वचन सत्य हैं या असत्य ?—

पित्रोश्च पूजनं कृत्वा प्रक्रान्तिं च करोति यः।
तस्य वै पृथिवीजन्यफलं भवति निश्चितम्॥
अपहाय गृहे यो वै पितरौ तीर्थमाव्रजेत्।
तस्य पापं तथा प्रोक्तं हनने च तयोर्यथा॥
पुत्रस्य च महत्तीर्थं पित्रोश्चरणपङ्कजम्।
अन्यतीर्थं तु दूरे वै गत्वा सम्प्राप्यते पुनः॥
इदं संनिहितं तीर्थं सुलभं धर्मसाधनम्।
पुत्रस्य च स्त्रियाश्चैव तीर्थं गेहे सुशोभनम्॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १९। ३९–४२)

'जो पुत्र माता-पिताकी पूजा करके उनकी प्रदक्षिणा करता है, उसे पृथ्वी-परिक्रमाजनित फल सुलभ हो जाता है। जो माता-पिताको घरपर छोड़कर तीर्थयात्राके लिये जाता है; वह माता-पिताकी हत्यासे मिलनेवाले पापका भागी होता है; क्योंकि पुत्रके लिये माता-पिताके चरण-सरोज ही महान् तीर्थ हैं। अन्य तीर्थ तो दूर जानेपर प्राप्त होते हैं, परंतु धर्मका साधनभूत यह तीर्थ तो पासमें ही सुलभ है। पुत्रके लिये (माता-पिता) और स्त्रीके लिये (पति) सुन्दर तीर्थ घरमें ही वर्तमान हैं।'

बुद्धिराशि विघ्ननायकने आगे कहा—'वेद-शास्त्रोंके द्वारा निरन्तर उद्घोषित वचन असत्य सिद्ध होनेपर आपलोगोंका वेदवर्णित स्वरूप भी मिथ्या समझा जायगा; अतएव आप या तो वेद-वचन असत्य कीजिये, अन्यथा शीघ्र ही मेरा विवाह कर दीजिये। आपलोग धर्म-विग्रह हैं; अतः सर्वोत्तम निर्णय कीजिये।'

यथार्थभाषी एवं प्रतिभाशाली विलक्षण पार्वतीनन्दनके वचन सुनकर शिवा-शिव अत्यन्त चकित हुए। फिर उन्होंने भालचन्द्र गणेशकी प्रशंसा करते हुए कहा—

पुत्र ते विमला बुद्धिः समुत्पन्ना महात्मनः।
त्वयोक्तं यद्वचश्चैव तत्तथैव न चान्यथा॥
समुत्पन्ने च दुःखे च यस्य बुद्धिर्विशिष्यते।
तस्य दुःखं विनश्येत सूर्ये दृष्टे यथा तमः॥
वेदशास्त्रपुराणेषु बालकस्य यथोदितम्।
त्वया कृतं तु तत्सर्वं धर्मस्य परिपालनम्॥
सम्यक्कृतं त्वया यच्च तत्केनापि भवेदिह।
आवाभ्यां मानितं तच्च नान्यथा क्रियतेऽधुना॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १९। ५०-५१, ५३-५४)

'बेटा ! तू महान् आत्मबलसे सम्पन्न है, इसीसे तुझमें निर्मल बुद्धि उत्पन्न हुई है। तुमने जो बात कही है, वह बिल्कुल सत्य है, अन्यथा नहीं। दुःखका अवसर आनेपर जिसकी बुद्धि विशिष्ट हो जाती है, उसका दुःख उसी प्रकार विनष्ट हो जाता है, जैसे सूर्यके उदय होनेसे अन्धकार।' 'वेद-शास्त्र और पुराणोंमें बालकके लिये धर्मपालनकी जैसी बात कही गयी है, वह सब तूने पूरी कर ली। तूने जो बात की है, वह दूसरा कौन कर सकता है ? हमने तेरी बात मान ली; अब इसके विपरीत नहीं करेंगे।'

इस प्रकारके वचन कहकर शिवा-शिवने बुद्धिसिन्धु गजवक्त्रको सान्त्वना दी और फिर वे गणेश-विवाहके लिये विचार करने लगे।

गजवक्त्रका परिणय

यह संवाद प्रजापति विश्वरूपको विदित हुआ तो उनकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। उनके दिव्य-रूप-यौवन-सम्पन्ना, परम लावण्यवती, सुशीला और सद्गुणवती 'सिद्धि' और 'बुद्धि'-नामक दो कन्याएँ थीं। वे सर्वलोकपति शिवके भवन पहुँचे और उन्होंने शिवा और शिवसे अपनी पुत्रियोंका सर्वपूज्य गणेशके साथ विवाह करनेका अनुरोध किया। भगवान् शंकर और जगद्धात्री माता पार्वतीने उनका प्रस्ताव हर्षपूर्वक स्वीकार कर लिया।

फिर शुभ मुहूर्तमें विश्वकर्माने कर्पूरगौर शिव और परम सती पार्वतीकी इच्छाके अनुसार सविधि विवाह सम्पन्न कराया। उस समय समस्त देव-समुदाय एकत्र हुआ। देवताओंकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। सर्वत्र हर्ष व्याप्त था। देववाद्य बज रहे थे। नृत्य हो रहा था। मङ्गल-गीत गाये जा रहे थे। भगवान् शंकर और माता पार्वती—दोनों अपने परम प्रिय बुद्धिराशि शुभगुण-सदन पुत्र गणेशका विवाह करके परम प्रसन्न हुए।*

---

* ब्रह्मवैवर्तपुराणके अनुसार भगवान् शंकरने सुर-समुदायकी संनिधिमें 'पुष्टि'-नामक परम गुणवती अनिन्द्यसुन्दरी कन्याके साथ गणेशका विवाह किया था।

अपने मङ्गल-परिणयसे सर्वानन्दप्रदाता गजमुख भी बड़े आनन्दित हुए। अत्यन्त सुशीला एवं मधुरभाषिणी पत्नियोंके साथ उनका जीवन बड़ा सुखद था। समयपर गणेश-पत्नी सिद्धिकी कोखसे 'क्षेम' और बुद्धिके उदरसे 'लाभ' नामक अतिशय सुन्दर दिव्य बालकोंने जन्म लिया। इस प्रकार सर्वकारणकारण गणाध्यक्ष सानन्द निवास करने लगे।

खिन्न कार्तिकेय

उधर सम्पूर्ण धरित्रीकी परिक्रमा करके गजानन-भ्राता कार्तिकेय लौटे तो देवर्षि नारदके द्वारा गजवदनके विवाहका समाचार पाकर अत्यन्त खिन्न हुए। उन्होंने दुःखी मनसे अपने परम पूज्य पिताके चरणोंमें प्रणाम कर शिव-सदन त्याग देनेका निश्चय कर लिया। शिवा और शिवने उन्हें बहुत समझाया, किंतु वे अपने निश्चयसे विचलित नहीं हुए; क्रौञ्च-पर्वतपर चले गये।

तद्दिनं हि समारभ्य कार्तिकेयस्य तस्य वै।
शिवपुत्रस्य देवर्षे कुमारत्वं प्रतिष्ठितम्॥
तन्नाम शुभदं लोके प्रसिद्धं भुवनत्रये।
सर्वपापहरं पुण्यं ब्रह्मचर्यप्रदं परम्॥
(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० ख० २०। २७-२८)

'उसी दिनसे शिव-पुत्र स्वामिकार्तिकका कुमारत्व (कुँआरपना) प्रतिष्ठित हुआ।* उनका 'कुमार'-नाम त्रैलोक्यमें विख्यात हो गया। वह नाम शुभदायक, सर्वपापहारी, पुण्यमय और उत्कृष्ट ब्रह्मचर्यकी शक्ति प्रदान करनेवाला है।'

प्रत्येक कार्तिक पूर्णिमाके पावन पर्वपर देवता, ऋषि, तीर्थ और मुनीश्वर स्वामिकार्तिकेयके दर्शनार्थ क्रौञ्च-पर्वतपर जाया करते हैं। कार्तिक-पूर्णिमाके दिन कृत्तिकानक्षत्रका योग होनेपर कुमार कार्तिकेयका दर्शन करनेसे मनुष्यके सारे पातक धुल जाते हैं और उसकी समस्त कामनाओंकी पूर्ति होती है।

अपने प्राणप्रिय, सुन्दरतम, मयूरवाहन पुत्र कार्तिकेयके बिना पुत्रवत्सला माता पार्वती अत्यन्त दुःखी रहने लगीं। एक दिन अत्यन्त व्याकुल होकर उन्होंने अपने प्राण-सर्वस्व शिवसे दीन वाणीमें कहा—'स्वामिन्! जहाँ कार्तिकेय गया है, वहीं मुझे भी ले चलिये।'

भगवान् शिव अपनी प्राणाधिका पत्नी पार्वतीको संतुष्ट करनेके लिये अपने अंशसे पार्वतीके साथ क्रौञ्च-पर्वतपर पहुँचे और वहाँ सर्व-सुखद मल्लिकार्जुन-नामक ज्योतिर्लिङ्गके रूपमें प्रतिष्ठित हो गये। सत्पुरुषोंकी गति और भक्तवाञ्छाकल्पतरु परमप्रभु शिव आज भी अपनी प्राण-प्रियाके साथ वहाँ विद्यमान हैं।

उधर कुमार कार्तिकेयने अपने माता-पिताके आनेका समाचार सुना तो वहाँसे चल देनेका विचार किया; किंतु वे तीन योजन दूर हो गये थे कि देवताओं और ऋषियोंने उनसे रुक जानेकी प्रार्थना की। इस कारण दयामय कुमार आगे न जाकर वहीं रुक गये।

अपने प्राणप्रिय पुत्र कार्तिकेयके स्नेहसे विह्वल शिवा-शिव प्रत्येक पर्वपर उन्हें देखने जाते हैं। अमावस्याके दिन करुणामूर्ति कर्पूरगौर और पूर्णिमाके दिन पवित्रतम प्रेममूर्ति माता पार्वती वहाँ पधारती हैं।*

सर्वपूज्य बुद्धिसिन्धु गणेशके परम ज्ञान एवं बुद्धिकी परिचायिका इसी प्रकारकी कथा पद्मपुराणमें इस प्रकार आती है—

महिमामय मोदक-प्राप्ति

एक बारकी बात है। अत्यन्त सुन्दर, अद्भुत, अलौकिक एवं तेजस्वी गजानन और षडाननके दर्शन करके देवगण अत्यन्त प्रसन्न हुए। माता पार्वतीके चरणोंमें उनकी अगाध श्रद्धा हुई। उन्होंने सुधासिञ्चित एक दिव्य मोदक माता पार्वतीके हाथमें दिया। उक्त दिव्य मोदकको माताके हाथमें देखकर दोनों बालक उसे माँगने लगे।

* ब्रह्मवैवर्तपुराणमें आया है कि प्रजापतिने अपनी रत्नाभरणभूषिता परम सुन्दरी एवं शीलवती कन्या 'देवसेना' (जिसे विद्वान् शिशुओंकी रक्षा करनेवाली 'महाषष्ठी' कहते हैं) को वैवाहिक विधिके अनुसार वेद-मन्त्रोच्चारणपूर्वक कार्तिकेयको समर्पित किया था।

* एतच्छ्रुत्वा नरो धीमान् सर्वपापैः प्रमुच्यते।
शोभनाँल्लभते कामानीप्सितान् सकलान् सदा॥
यः पठेत् पाठयेद्वापि शृणुयाच्छ्रावयेत्तथा।
सर्वान् कामानवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥
(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० ख० २०। ३९-४०)
'इसे सुनकर बुद्धिमान् मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है और उसकी सभी शुभ कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। जो मनुष्य इस चरित्रको पढ़ता अथवा पढ़ाता है एवं सुनता अथवा सुनाता है, निस्संदेह उसके सभी मनोरथ सिद्ध होते हैं।'

'पहले इस मोदक (लड्डू) का गुण सुनो।' माताने दोनों पुत्रोंसे कहा—'इस मोदककी गन्धसे ही अमरत्वकी प्राप्ति होती है। निस्संदेह इसे सूँघने या खानेवाला सम्पूर्ण शास्त्रोंका मर्मज्ञ, सब तन्त्रोंमे प्रवीण, लेखक, चित्रकार, विद्वान्, ज्ञान-विज्ञान-विशारद और सर्वज्ञ हो जाता है।'

माता पार्वतीने आगे कहा—'मेरे साथ तुम्हारे पिताकी भी सहमति है कि तुम दोनोंमिसे जो धर्माचरणके द्वारा अपनी श्रेष्ठता सिद्ध कर देगा, वही इस मोदकका अधिकारी होगा।'

माताकी आज्ञा प्राप्त होते ही चतुर कार्तिकेय अपने तीव्रगामी वाहन मयूरपर आरूढ़ हो त्रैलोक्यके तीर्थोंकी यात्राके लिये चल पड़े और मुहूर्तभरमे ही उन्होंने समस्त तीर्थोंमे स्नान कर लिया। इधर मूषकवाहन लम्बोदरने अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिपूर्वक माता-पिताकी परिक्रमा की और हाथ जोड़कर उनके सम्मुख खड़े हो गये।

'मोदक मुझे दीजिये।' कुछ ही देर बाद स्कन्दने पिताके सम्मुख उपस्थित होकर निवेदन किया।

'समस्त तीर्थोंमे किया हुआ स्नान, सम्पूर्ण देवताओंको किया हुआ नमस्कार, सब यज्ञोंका अनुष्ठान तथा सब प्रकारके व्रत, मन्त्र, योग और संयमका पालन—ये सभी साधन माता-पिताके पूजनके सोलहवें अंशके बराबर भी नहीं हो सकते।' माता पार्वतीने दोनों पुत्रोंकी ओर देखकर कहा—'अतएव यह गजानन सैकड़ों पुत्रों और सैकड़ों गणोंसे भी बढ़कर है। इस कारण यह देवनिर्मित अमृतमय मोदक मैं गणेशको ही देती हूँ। माता-पिताकी भक्तिके कारण यह यज्ञादिमे सर्वत्र अग्रपूज्य होगा।'

'इस गणेशकी अग्रपूजासे ही समस्त देवगण प्रसन्न हों।' पिता कर्पूरगौर शिवने भी कह दिया।

माता पार्वतीने सर्वगुणदायक पवित्र मोदक गणेशजीको ही दिया और अत्यन्त प्रसन्नतासे उन्होंने समस्त देवताओंके सम्मुख ही उन्हें गणोके अध्यक्ष पदपर प्रतिष्ठित कर दिया।

कुशाग्रबुद्धि

दूसरे स्थलपर इसी प्रकारकी एक कथा और मिलती है, जिससे गुणगण-निलय गणेशकी पितृभक्ति एवं असीम कुशाग्रबुद्धिताका परिचय प्राप्त होता है। वह कथा संक्षेपमें इस प्रकार है—

एक बारकी बात है। चन्द्रार्धभूषण भगवान् शंकरने एक यज्ञ करनेका निश्चय किया। उक्त पावन यज्ञमें उन्हें समस्त देवताओंको निमन्त्रण देना आवश्यक था। उन्होंने यह भार अपने पुत्र कार्तिकेयको दिया; किंतु निश्चित अवधिके भीतर प्रत्येक देवताके समीप जाकर उन्हें आमन्त्रण दे देना सम्भव नहीं था। तब पार्वतीश्वरने यह भार महाकाय गजाननको दिया। वे अपने वाहन क्षुद्र मूषकपर सर्वत्र कैसे पहुँचते ? पर उन्होंने उपाय ढूँढ़ निकाला, वे विद्या-बुद्धि-वारिधि जो ठहरे।

'मेरे परम पिता महादेवके पावनतम अङ्गमें समस्त देवता निवास करते हैं।'—यह सोचकर उन्होंने सर्वदेवमय पशुपतिकी तीन बार प्रदक्षिणा की और वहीं प्रत्येक देवताको यज्ञमें पधारनेका निमन्त्रण दे दिया। फलतः समस्त देवताओंको सर्वलोकमहेश्वर शिवके यज्ञकी सूचना प्राप्त हो गयी और सभी देवता यज्ञमें सम्मिलित होनेके लिये ठीक समयपर पहुँच गये।

सर्वहितकारी

एक बारकी बात है। मनु-कुलोत्पन्न राजर्षिश्रेष्ठ राजा रिपुंजयने अविमुक्त-क्षेत्रमें कठोर तप प्रारम्भ किया। उन्होंने अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें कर लिया था। उस वीर एवं क्षत्रियधर्मके मूर्तिमान् विग्रह रिपुंजयनरेशके तपश्चरणसे संतुष्ट हो प्रजापति ब्रह्माने उनके सम्मुख प्रकट होकर कहा—'बुद्धिमान् नरेश ! तुम वनों, पर्वतों एवं समुद्रोंसहित सम्पूर्ण वसुंधराका पालन करो। तुम्हारे धर्मनिष्ठ राज्यसे प्रसन्न होकर देवगण सदा तुम्हें स्वर्गीय रत्न और पुष्प प्रदान करते रहेंगे। मैं तुम्हें दिव्य सामर्थ्य प्रदान करूँगा।'

लोकस्रष्टाने अत्यन्त स्नेहपूर्वक तपस्वी रिपुंजयसे आगे कहा—''नागराज वासुकि अपनी अनुपम लावण्यवती नागकन्या अनङ्गमोहिनी तुम्हें अर्पित करेंगे। तुम उसे सहधर्मिणीके रूपमें स्वीकार कर लेना और उसके साथ धर्मपूर्वक धराका शासन करना। 'दिवो दास्यन्ति'—इस व्युत्पत्तिके अनुसार तुम्हारा नाम 'दिवोदास' होगा।''

'पितामह ! इस विशाल धरणीपर अनेक नरेश हैं।' अत्यन्त विनयपूर्वक रिपुंजयनरेशने विधातासे निवेदन किया—'फिर प्रजापालनका आदेश मुझे ही क्यों दिया जा रहा है ?'

'तुम धर्माचरण-सम्पन्न आदर्श वीर पुरुष हो।' पितामहने उन्हें प्रेमपूर्वक समझाया—'तुम्हारा राज्य धर्मपर आधृत होगा; इस कारण तुमपर संतुष्ट होकर देवराज इन्द्र सुवृष्टि करेंगे; सुवृष्टि होगी तो प्रजा धन-धान्य-से सम्पन्न रहेगी एवं धर्मप्राण प्रजासे देवता, पितर एवं सम्पूर्ण प्राणी सुखी रहेंगे। किसी अन्य धर्मविहीन नरेशके द्वारा अनावृष्टि आदिके कारण सर्वत्र दुःख-दारिद्र्यका साम्राज्य फैल जायगा।'

'महामान्य पितामह! त्रैलोक्यकी रक्षा करनेमें आप स्वयं समर्थ हैं।' रिपुंजयनरेशने विधाताकी स्तुति करते हुए कहा—'किंतु आप कृपापूर्वक मुझे यश प्रदान कर रहे हैं; अतएव आपका आदेश मैं सहर्ष स्वीकार करता हूँ। पर यदि आप मेरा एक निवेदन स्वीकार कर लें तो सोत्साह आपके आज्ञा-पालनमें मुझे सुविधा रहेगी।'

'राजन्! तुम्हें जो कहना हो, अवश्य कहो।' पद्मोद्भवने तुरंत कहा—'मैं तुम्हारी प्रत्येक इच्छाकी पूर्ति करना चाहता हूँ।'

'परमपूज्य पितामह! यदि मैं धरतीका शासन-सूत्र ग्रहण करूँ तो सुर-समुदाय स्वर्गमें ही निवास करे; पृथ्वीपर न आये।' राजा रिपुंजयने अपने मनकी बात स्पष्ट शब्दोंमें व्यक्त कर दी—'इस प्रकार मैं धरणीका निष्कण्टक राज्य कर सकूँगा।'

'तथास्तु!' सृष्टिकर्ताने तत्क्षण वचन दिया और वहीं अन्तर्धान हो गये।

'मनुष्योंके स्वस्थ और सुखी रहनेके लिये आवश्यक है कि देवगण इस पृथ्वीको छोड़कर अमरावती पधारें और वहीं रहें। वे कृपापूर्वक इस धरतीपर न आयें।' राजा दिवोदासके आदेशसे दुन्दुभि बजा-बजाकर चतुर्दिक् घोषणा कर दी गयी। 'नागगण भी यहाँ पधारनेका कष्ट न करें। मेरे शासनकालमें सुर-समुदाय स्वर्गमें और मनुष्य धरातलपर सानन्द निर्वाह करें।'

भगवान् शंकर मन्दरगिरिके तपसे संतुष्ट थे। इस कारण सृष्टिकर्ताके वचनोंकी रक्षाके लिये वे गिरिराज मन्दरपर चले गये। सम्पूर्ण देवता भी करुणामूर्ति उमापतिके साथ वहीं गये। लक्ष्मीपति श्रीविष्णुने भूमण्डलके समस्त वैष्णव-तीर्थोंका त्याग कर दिया और वे भी अपने प्राणप्रिय महादेवजीके पास मन्दरगिरिपर जा पहुँचे।

पृथ्वीसे देवताओंके चले जानेपर परम पराक्रमी राजा दिवोदासने यहाँ निर्द्वन्द्व राज्य किया। उन्होंने काशीपुरीको अपनी राजधानी बनाया और धर्मपूर्वक शासन करने लगे। उनके शासनकालमें प्रजा धन-धान्य एवं सुख-समृद्धिसे पूर्ण हो गयी। प्रत्येक दिशामें देश उन्नतिशील था। उनके राज्यमें अपराधका कहीं नाम भी नहीं था। असुर भी मनुष्यके वेषमें राजा दिवोदासकी सेवामें उपस्थित होते एवं उनकी आज्ञाके पालनमें सतत तत्पर रहते थे। धर्मपरायण नरेश दिवोदासके राज्यमें सभी नगर एवं ग्राम ईति-[१]भीतिसे रहित थे। सर्वत्र धर्मकी प्रधानता थी, अधर्मका कहीं नाम भी नहीं था। इस प्रकार राजा दिवोदासको शासन करते अस्सी सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये।

देवताओंका छिद्रान्वेषण

राजा दिवोदासकी इस व्यवस्थासे कि देवता लोग भूमि छोड़ अपने-अपने स्थानमें जाकर रहें; काशीका विछोह हो जानेके कारण भगवान् शंकर तथा अन्य देवगण दुःखी थे और राजाका छिद्र इसलिये ढूँढ़ रहे थे कि इनका शासन समाप्त कर दिया जाय। उक्त धर्मप्राण नरेशका छिद्र ढूँढ़नेके लिये देवताओंने बड़ा प्रयत्न किया; किंतु वे सफल न हो सके। इन्द्रादि देवताओंने तपस्वी नरेश दिवोदासका शासन विफल करनेके लिये अनेक बाधाएँ उपस्थित कीं; किंतु नरेशके तपोबलके सम्मुख वे सफलमनोरथ न हो सके। इसके अनन्तर भगवान् शंकरने मन्दरगिरिसे चौंसठ योगिनियोंको राजाके छिद्रान्वेषणके लिये भेजा। वे योगिनियाँ काशीमें बारह मासतक रहकर निरन्तर प्रयत्न करनेपर भी पुण्यात्मा राजामें कोई छिद्र (दोष) नहीं पा सकीं। राजापर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वे वहीं रह गयीं।

'सप्ताश्ववाहन! तुम यथाशीघ्र मङ्गलमयी काशीपुरीमें जाओ, जहाँ धर्मात्मा राजा दिवोदास विद्यमान है।' भगवान् वृषध्वजने श्रीसूर्यदेवको बुलाकर कहा—'राजाके धर्मविरोधसे जिस प्रकार वह क्षेत्र उजाड़ हो जाय, वैसा करो। किंतु उस राजाका अनादर न करना; क्योंकि वह परम धर्मात्मा एवं तपस्वी है।'

[१] ईतियाँ ये हैं—अतिवृष्टि, अनावृष्टि, चूहों, टिड्डियों और पक्षियोंद्वारा फसलका खाया जाना, अन्य नरपालका आक्रमण, सङ्क्रामक रोग, कलह और प्रवास।

आशुतोष शिवकी आज्ञा शिरोधार्य करके सूर्यदेव परमपावनी काशीपुरीमें गये। वहाँ बाहर-भीतर विचरते हुए उन्होंने राजामें तनिक भी धर्मका व्यतिक्रम नहीं देखा। भगवान् सूर्यने कभी, कहीं, किसी मनुष्यमें भी कोई छिद्र नहीं देखा। इस प्रकार तिमिरारि लोकचक्षु सूर्यदेव बारह रूपोंमें व्यक्त होकर महिमामयी काशीपुरीमें स्थित हो गये। इनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—लोलार्क, उत्तरार्क, साम्बादित्य, द्रौपदादित्य, मयूखादित्य, खखोल्कादित्य, अरुणादित्य, वृद्धादित्य, केशवादित्य, विमलादित्य, गङ्गादित्य और यमादित्य।

'कमलोद्भव! मैंने काशीका समाचार जाननेके लिये पहले योगिनियोंको और फिर सूर्यदेवको भेजा, पर वे अभीतक नहीं लौटे।' काशीको अत्यन्त प्रिय समझनेवाले भगवान् कर्पूरगौरने ब्रह्माजीसे कहा—'अतः अब आप जाइये। आपका मङ्गल हो।'

भगवान् पार्वतीवल्लभके आदेशानुसार लोकपितामह वृद्ध ब्राह्मणके वेषमें काशी पहुँचे तो उस मनोहर पुरीका दर्शन कर उनका हृदय हर्षोल्लाससे भर गया। वृद्ध ब्राह्मणरूपधारी ब्रह्मा राजा दिवोदासके समीप पहुँचे। राजाने उनके चरणोंमें प्रणाम कर प्रत्येक रीतिसे उनकी पूजा की और उनके शुभागमनका कारण पूछा।

'राजन्! इस समय मैं यहाँ यज्ञ करना चाहता हूँ।' ब्रह्माने राजा दिवोदासके धर्मपूर्ण शासन एवं काशीकी महिमाका गान करते हुए कहा—'और इस कार्यमें तुम्हें सहायक बनाना चाहता हूँ।'

'यज्ञेच्छु श्रेष्ठ ब्राह्मण! मैं आपका दास हूँ।' धर्ममूर्ति दिवोदासने विनयपूर्वक निवेदन किया—'आप मेरे कोषागारसे समस्त यज्ञ-सामग्रियोंको ले जायँ और एकाग्रचित्त होकर यज्ञ करें।'

धर्मपरायण राजा दिवोदासके श्रद्धा-भक्तिपूर्ण विनीत उत्तरसे लोकस्रष्टा अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने दिवोदासकी सहायतासे यज्ञ-सामग्रियोंका संग्रह करके दस अश्वमेध नामक महायज्ञोंद्वारा भगवान्‌का यजन किया और तभीसे वाराणसीमें मङ्गलदायक 'रुद्रसरोवर'-नामक तीर्थ दशाश्वमेधके नामसे प्रख्यात हुआ। तदनन्तर पुण्यसलिला गङ्गाके पधारनेपर वह तीर्थ और अधिक पुण्यजनक हो गया। ब्रह्माजी वहाँ दशाश्वमेधेश्वर लिङ्गकी स्थापना कर स्थित हो गये। चतुर्मुख ब्रह्मा धर्मानुरागी राजा दिवोदासमें कोई छिद्र नहीं पा सके; फिर वे भगवान् शंकरके समीप जाकर क्या कहते। उन्होंने उक्त क्षेत्रका प्रभाव समझकर वहीं ब्रह्मेश्वरलिङ्गकी स्थापना की और भगवान् विश्वनाथका ध्यान करते हुए परम-पावनी काशीपुरीमें ही रह गये।

मङ्गलमूर्ति ज्योतिषी बने

इसके अनन्तर आशुतोषकी आज्ञा प्राप्तकर मङ्गलमूर्ति गणेशजी मन्दरगिरिसे काशीपुरीके लिये प्रस्थित हुए। श्रीगणेशजीने काशीमें प्रविष्ट होते समय वृद्ध ब्राह्मणका वेष धारण कर लिया। वे वृद्ध ज्योतिषीके रूपमें अविमुक्त-क्षेत्रके निवासियोंके घरोंमें जा-जाकर उन्हें प्रसन्न करते। वृद्ध ज्योतिषीके वेषमें श्रीगणेशजीकी वाणी अत्यन्त मधुर थी। उनके प्रत्येक वचन सत्य सिद्ध होते थे। इस प्रकार कुछ ही समयमें उनकी सर्वत्र ख्याति फैल गयी। ख्यातिप्राप्त वृद्ध ज्योतिषी राजाके अन्तःपुरमें बुलाये गये। सर्वान्तर्यामी वयोवृद्ध ज्योतिषीने सर्वथा सत्य घटनाओंका उल्लेख किया। उसने रानियोंके प्रत्येक प्रश्नका प्रत्यक्ष द्रष्टाकी तरह उत्तर दिया। इस प्रकार वे सभी स्त्रियोंके विश्वास-भाजन ही नहीं, श्रद्धाके केन्द्र भी हो गये।

'राजन्! एक अद्भुत विद्वान् एवं वेदोंकी मूर्तिमान् निधि वृद्ध ब्राह्मण-ज्योतिषी पधारे हैं।' एक दिन राजा दिवोदासकी पत्नी लीलावतीने अपने पतिसे निवेदन किया—'वे सद्गुणसम्पन्न, अत्यन्त बुद्धिमान् ब्राह्मण सुवक्ता हैं। आप भी उनका दर्शन कीजिये।'

दूसरे दिन धर्मात्मा नरेश दिवोदासने उक्त परम गुणज्ञ वृद्ध ज्योतिषीको अत्यन्त आदरपूर्वक बुलवाया। राजाने वृद्ध ब्राह्मणवेषधारी पार्वतीनन्दनका यथावत् सत्कार किया।

'मेरी दृष्टिमें आप तत्त्वज्ञान-सम्पन्न श्रेष्ठ द्विज हैं।' एकान्तमें राजा दिवोदासने अत्यन्त विनयपूर्वक वृद्ध ब्राह्मण-ज्योतिषीसे निवेदन किया—'इस समय मेरा मन जागतिक पदार्थों एवं सभी कर्मोंसे विरक्त हो रहा है। अतएव आप भलीभाँति विचारकर मेरे शुभ भविष्यका वर्णन कीजिये।'

'धर्ममूर्ति नरेश! आजके अठारहवें दिन उत्तर दिशासे एक तेजस्वी ब्राह्मण पधारेंगे।' वृद्ध ज्योतिषीने राजासे कहा—'यदि तुम श्रद्धापूर्वक उनसे प्रार्थना करोगे तो वे निश्चय ही तुम्हें उपदेश देंगे। तुम यदि उनकी

प्रत्येक आज्ञाका पालन करोगे तो निश्चय ही तुम्हारे सभी मनोरथ सिद्ध हो जायँगे।'

राजा दिवोदासने अत्यन्त प्रसन्न होकर ज्योतिषीजीकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजा की। ज्योतिषी महाराज धर्मात्मा नरेशकी अनुमति लेकर अपने आश्रमपर पहुँचे। इस प्रकार बुद्धिराशि, शुभगुण-सदन गणेशजीने सम्पूर्ण काशीनगरीको अपने वशमें कर लिया। दिवोदासके राज्य पद ग्रहणके पूर्व काशीमें गणेशजीके जो-जो स्थान थे, उन-उन स्थानोंको गणेशजीने अनेक रूप धारण करके पुनः सुशोभित किया।

धर्मात्मा नरेश दिवोदाससे दूर रहकर भी गणेशजीने उनके चित्तको राज्यकी ओरसे विरक्त कर दिया। फिर अठारहवें दिन क्षीरोदधिशायी श्रीविष्णुने परम तेजस्वी ब्राह्मणके वेषमें पधारकर दिवोदासको सदुपदेश दिया। श्रीविष्णुके आदेशसे राजा दिवोदासने अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक दिवोदासेश्वरलिङ्गकी स्थापना कर उसकी सविधि पूजा की। राजा दिवोदासने शूलपाणि विश्वनाथके अनुग्रहसे सशरीर शिवधामकी परम शुभ यात्रा की।

शिवा-शिवका पुनः काशी-आगमन

इसके अनन्तर भगवान् शंकर अपनी धर्मपत्नी पार्वतीके साथ काशी पधारे। उस समय भगवान् शिवने गणेशजीकी बड़ी प्रशंसा की। उन्होंने हर्षित होकर कहा—

यदहं प्राप्तवानस्मि पुरीं वाराणसीं शुभाम्।
मयाप्यतीव दुष्प्राप्यां स प्रसादोऽस्य वै शिशोः॥
यद्दुष्प्रसाध्यं हि पितुरपि त्रिजगतीतले।
तत्सूनुना सुसाध्यं स्यादत्र दृष्टान्तता मयि॥
पुत्रवानहमेवास्मि यस्य मे चिरचिन्तितम्।
स्वपौरुषेण कृतवानभिरूपं करस्थितम्॥
(स्कन्द० काशी० ५७। १२, १३, १४)

'यह वाराणसीपुरी मेरे लिये भी दुष्प्राप्य है। इसको जो मैंने प्राप्त किया है, वह इस बच्चेका प्रसाद है। जिसे हमें जो काम पिताके लिये भी दुःसाध्य होता है, उसे पुत्र सिद्ध कर देता है; इसका दृष्टान्त मुझपर ही चरित हो रहा है। मैं ही पुत्रवान् हूँ; क्योंकि जो मेरी चिरचिन्तित अभिलाषा थी, उसको इसने अपने पौरुषसे करस्थित बना दिया।'

(ङ)—महाभारतमें

महाभारत-लेखन

'इस महान् पुण्यमय ग्रन्थका अध्ययन शिष्योंको किस प्रकार कराऊँ?' पञ्चम वेद महाभारतकी रचना कर पराशरनन्दन ब्रह्मर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन विचार करने लगे—'इस ग्रन्थरत्नका प्रचार कैसे हो?'

सत्यवतीनन्दन भगवान् व्यासका विचार जानकर उनकी प्रसन्नता एवं लोककल्याणकी दृष्टिसे स्वयं चतुरानन उनके आश्रमपर उपस्थित हुए।

सहसा वेदगर्भ ब्रह्माके दर्शन कर महर्षि व्यास अत्यन्त चकित हो गये। उन्होंने अञ्जलि बाँध प्रीतिपूर्वक विधाताके चरणोंमें प्रणाम कर उन्हें बैठनेके लिये पवित्र आसन दिया। वे लोकस्रष्टाकी ओर हाथ जोड़कर उनके सम्मुख खड़े हो गये। महर्षि व्यास मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न हो रहे थे।

स्रष्टाकी आज्ञासे निग्रहानुग्रहसमर्थ व्यासजी उनके सम्मुख दूसरे आसनपर बैठ गये। फिर अत्यन्त विनयपूर्वक उन्होंने निवेदन किया—

कृतं मयेदं भगवन् काव्यं परमपूजितम्॥
ब्रह्मन् वेदरहस्यं च यच्चान्यत् स्थापितं मया।
साङ्गोपनिषदां चैव वेदानां विस्तरक्रिया॥
* * *
यद्यपि सर्वं वस्तु तच्चैव प्रतिपादितम्।
परं न लेखकः कश्चिदेतस्य भुवि विद्यते॥
(महा०, आदि० १। ६१-६२, ७०)

'भगवन्! मैंने यह सम्पूर्ण लोकोंसे अत्यन्त पूजित एक महाकाव्यकी रचना की है। ब्रह्मन्! मैंने इस महाकाव्यमें सम्पूर्ण वेदोंका गुह्यतम रहस्य तथा अन्य सब शास्त्रोंका सार-सार संकलित करके रख दिया है। केवल वेदोंका ही नहीं, उनके अङ्ग एवं उपनिषदोंका भी इसमें विस्तारसे निरूपण किया है।...और भी जितने लोकोपयोगी पदार्थ हो सकते हैं, उन सबका इसमें प्रतिपादन किया गया है; परंतु मुझे इस बातकी चिन्ता है कि पृथ्वीपर इस ग्रन्थको लिख सके, ऐसा कोई नहीं है।'

लोकपितामहने महर्षि व्यासविरचित महाकाव्यकी प्रशंसा करते हुए कहा—'मुनिवर! अपने इस काव्यको लिखवानेके लिये तुम गणेशजीका स्मरण करो।'

'काव्यस्य लेखनार्थाय गणेशः स्मर्यतां मुने।'
(महा०, आदि० १। ७४)

लोकस्रष्टा ब्रह्म-सदनके लिये प्रस्थित हुए। तदनन्तर सत्यवतीनन्दन व्यासने सिद्धि-सदन एकदन्त गणेशजीका स्मरण

किया। स्मरण करते ही भक्तवाञ्छाकल्पतरु श्रीगणेशजी महाराज व्यासजीके सम्मुख उपस्थित हो गये। महर्षि व्यासने अत्यन्त आदर और प्रेमपूर्वक उनका अभिनन्दन किया। फिर पार्वतीनन्दन श्रीगणेशजीके बैठनेपर उन्होंने उनसे अत्यन्त आदरपूर्वक निवेदन किया—

लेखको भारतस्यास्य भव त्वं गणनायक।
मयैव प्रोच्यमानस्य मनसा कल्पितस्य च॥

(महा०, आदि० १। ७७)

'गणनायक! आप मेरेद्वारा निर्मित इस महाभारत-ग्रन्थके लेखक बन जाइये; मैं इसे बोलकर लिखाता जाऊँगा। मैंने मन-ही-मन इसकी रचना कर ली है।'

महर्षि व्यासकी बात सुनकर बुद्धिराशि श्रीगणेशजीने उत्तर दिया—'व्यासजी! यदि लिखते समय क्षणभरके लिये भी मेरी लेखनी न रुके तो मैं इस ग्रन्थका लेखक बन सकता हूँ।'

……………यदि मे लेखनी क्षणम्।
लिखतो नावतिष्ठेत तदा स्यां लेखको ह्यहम्॥

(महा०, आदि० १। ७८)

'आप किसी भी प्रसङ्गको बिना समझे एक अक्षर भी मत लिखियेगा।' व्यासजीने कहा—

'ॐ'—कहकर बुद्धिराशि, शुभगुण-सदन अरुणवर्ण श्रीगणेशजीने इसे लिखना स्वीकार कर लिया और उनके अनुग्रह-से महाभारत-जैसा लोकपावन ग्रन्थ-रत्न जगत्को प्राप्त हुआ।

(च)—गणेशपुराणमें

ब्रह्माद्वारा गणेश-पूजा

गणेशपुराणके उपासना-खण्डमें आता है कि एक बार चतुर्मुख ब्रह्माके मनमें सृष्टिकर्तापनका अभिमान हो गया। इससे उनके सम्मुख इतनी आपदाएँ उपस्थित हुईं कि वे किंकर्तव्यविमूढ हो गये। अन्ततः उन्होंने एकदन्तधारी गणेशकी आराधना की। विधाताके तपसे संतुष्ट होकर दौर्भाग्यनाशन महामना गणेश उनके सम्मुख उपस्थित हुए। चतुराननने सृष्टिके आदिप्रवर्तक, परम तेजस्वी, सिन्दूरा-रुण गजकर्णकी भक्तिपूर्ण स्तुति की। सुराग्रजने प्रसन्न होकर उन्हें इच्छित वर प्रदान किया। मूषकारोही गणेशके उस वरके प्रभावसे पद्मयोनिने पुनः सृष्टि-रचना प्रारम्भ की।

विष्णुकी गणेशोपासना

वेदगर्भ ब्रह्मा जब जगत्की सृष्टिमें तल्लीन थे, तब क्षीरोदधिशायी विष्णुके कानोंसे मधु और कैटभ-नामक दो शूर-वीर असुर उत्पन्न हुए। उन प्रबल पराक्रमी असुरोंके उपद्रवोंसे ऋषि-मुनि एवं देवगण अत्यन्त व्याकुल हो गये। विधाताने व्याकुल होकर योगमायासे प्रार्थना की। योगमायाकी प्रेरणासे लक्ष्मीपति विष्णुकी निद्रा भङ्ग हुई।

मधु-कैटभके उपद्रवको शान्त करनेके लिये अद्भुत किरीट-कुण्डल एवं शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी, नवघनश्यामवपु विष्णुने शङ्खध्वनि की। पाञ्चजन्यकी भयानक ध्वनिसे त्रैलोक्य काँप उठा। वीरवर मधु और कैटभ एक साथ ही मायापति विष्णुपर टूट पड़े। पाँच सहस्र वर्षोंतक सुरत्राता विष्णु उन दोनों असुरोंसे युद्ध करते रहे, पर उन्हें पराजित न कर सके।

तब श्रीविष्णुने संगीतज्ञ गन्धर्वका अत्यन्त सुन्दर रूप धारण कर लिया और दूसरे वनमें जाकर वीणाकी मधुर तान छेड़ दी तथा लोकोत्तर श्रुतिमधुर गीत गाने लगे। भगवान् लक्ष्मीपतिका वह गीत सुनकर मृग, पशु-पक्षी, देव-गन्धर्व और राक्षस—सभी मुग्ध हो गये। क्षीराब्धिशायीका वह भुवनमोहन आलाप कैलासमें बार-बार सुनायी देने लगा। उस संगीतसे मुदित होकर भगवान् चन्द्रशेखरने उक्त गायकको बुला लानेके लिये भेजा।

निकुम्भ और पुष्पदन्त उक्त स्वर-लहरीके सहारे गन्धर्व-वेषधारी विष्णुके समीप पहुँचे और उन्होंने उनसे सदाशिवके समीप चलनेका अनुरोध किया। श्रीविष्णु प्रसन्नतापूर्वक कैलासके लिये प्रस्थित हुए। कैलासमें पहुँचकर गन्धर्वने प्रणतार्तिविनाशन कर्पूरगौरके चरण-कमलोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। भगवान् पार्वतीकान्तने अधोक्षजको अपने कर-कमलोंसे उठाकर हृदयसे लगा लिया और फिर उन्हें सुन्दर आसनपर बैठाकर उनकी पूजा की। शेषशायीने अत्यन्त मुदित होकर देवाधिदेव महादेवसे कहा—'आज धर्म-काम-अर्थ-मोक्ष प्रदान करनेवाले परम प्रभुका दर्शन कर मैं धन्य हो गया।'

फिर जनसुखदायक विष्णुने जब वीणाके तारोंका स्पर्श किया तो उसकी मधुर ध्वनिसे वृषभध्वज, माता पार्वती, गजमुख, स्वामिकार्तिक और सभी देवता मुग्ध हो गये। आनन्दघन विष्णुके गीत सुनकर पार्वतीवल्लभ आत्मविभोर हो गये। उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-

धारी नवघनसुन्दर श्रीहरिको अपने हृदयसे लगा लिया। परमसंतुष्ट महादेवने कहा—'आपने मुझे प्रसन्न कर लिया है। आप क्या चाहते हैं?'

'आप मधु-कैटभके वधका उपाय बताइये।' मधु-कैटभ असुरद्वयकी उत्पत्ति, उनके उपद्रव एवं उनके साथ अपने युद्धका वृत्तान्त विस्तारपूर्वक बताते हुए विष्णुने शिवसे निवेदन किया—'मैं उन्हें पराजित नहीं कर पा रहा हूँ।'

'आपने मधु-कैटभसे युद्ध करनेके पूर्व विनायककी पूजा नहीं की, इसी कारण शक्तिहीन रहे और क्लेश सहना पड़ा।' पार्वतीपतिने श्रीहरिसे कहा—'आप गणेशकी अर्चना कर उन पराक्रमी असुरोंसे युद्ध करने जाइये। वे असुरोंको अपनी मायासे मोहित कर आपके वशमें कर देंगे। फिर मेरे प्रसादसे आप निश्चय ही उन दुष्टोंका संहार करेंगे।'*

श्रीहरिके पूछनेपर आशुतोषने उन्हें गणेशका सर्वसिद्धिप्रद महामन्त्र प्रदान किया। तब श्रीविष्णुने अत्यन्त प्रसन्न होकर देवेश शिवके चरणोंमें प्रणाम किया और प्रख्यात सिद्धक्षेत्रमें पहुँचे।

वहाँ क्षीरोदधिशायीने स्नानादिसे निवृत्त होकर मङ्गलमूर्ति पाशाङ्कुशधारी श्रीगणेशका ध्यान कर नाना प्रकारके मनोमय द्रव्योंद्वारा षोडशोपचारसे उनका पूजन किया। फिर संयतेन्द्रिय होकर उन्नतानन आदिदेवका ध्यान करते हुए वे उनके महामन्त्रका जप करने लगे।

इस प्रकार लोकपालक विष्णुके सौ वर्षोंतक कठोर आराधना करनेपर करिकलभानन प्रसन्न हो गये। फिर कोटि सूर्याग्नि-तुल्य परम तेजस्वी इच्छाशक्तिश्वर गणेशने श्रीविष्णुके सम्मुख प्रकट होकर कहा—'मैं तुम्हारे तपसे संतुष्ट हूँ। तुम जो कुछ चाहते हो, माँग लो। मैं सब कुछ दूँगा। यदि तुमने पहले ही मेरी पूजा की होती तो निश्चय ही तुम्हारी विजय हो गयी होती।'†

'मधु-कैटभसे युद्ध करते-करते थककर मैं आपकी शरण आया हूँ।' श्रीहरिने सर्वसंहारकर्ता गणेशकी स्तुति कर निज-कर्णमलोद्भूत मधु-कैटभकी दुष्टता एवं अपने युद्धका हाल बताकर उनसे प्रार्थना की—'अब जिस प्रकार उनका वध हो, वही कीजिये। मैं मधु-कैटभका वध कर यश प्राप्त करना चाहता हूँ। इसके साथ ही आप मुझे अपनी दुर्लभ भक्ति भी प्रदान करें।'

'तुमने जो कुछ कहा है, वह सब कुछ तुम्हें निश्चय ही प्राप्त होगा।' कर्माकर्मफलप्रद आदिदेवने श्रीविष्णुसे कहा—'तुम यश, बल एवं महान् कीर्ति प्राप्त करोगे और कोई विघ्न नहीं होगा।'

यद्यत्ते प्रार्थितो विष्णो तत्तत्ते भविता ध्रुवम् ॥
यशो बलं परा कीर्तिरविघ्नश्च भविष्यति ।
(गणेशपु० १ । १८ । १८-१९)

इतना कहकर सिन्दूरप्रिय अन्तर्धान हो गये।

श्रीहरिने मधु-कैटभसे युद्ध किया और वे दोनों असुर मारे गये। फिर श्रीविष्णुने प्रसन्न होकर सिद्धक्षेत्रमें विनायकका अद्भुत मन्दिर बनवाया और वहाँ सिद्धिविनायककी प्रतिमा स्थापित की। उस क्षेत्रमें सर्वप्रथम श्रीहरिने सिद्धि प्राप्त की, इस कारण उस पवित्र स्थलका नाम 'सिद्धक्षेत्र' प्रख्यात हुआ।

इसी प्रकार कामारि शिवने भी सर्वद्रष्टा गणेशकी उपासना की थी। यह कथा अत्यन्त संक्षेपमें इस प्रकार है—

गृत्समदकी गणेशोपासना

वाचक्नवि मुनिकी पत्नी मुकुन्दाने कुपित होकर अपने पुत्र गृत्समदको शाप दे दिया—'तुझे भयानक पुत्र होगा। वह अत्यन्त शक्तिसम्पन्न भयंकर दैत्य होगा। उसके आचरणसे त्रैलोक्य काँप उठेगा।'

खिन्नमन गृत्समद अत्यन्त रमणीय पुष्पकवनमें पहुँचे। वहाँ वीतराग वयोवृद्ध ऋषि रहते थे और जल-फल वहाँ सुविधानुसार प्राप्त थे। ऋषियोंकी आज्ञा प्राप्त कर गृत्समद वहीं रहने लगे।

गृत्समदने ज्ञान-गुन-अयन, औदार्यनिधि विनायकको प्रसन्न करनेके लिये बड़ी कठोर तपस्या प्रारम्भ की। स्नानादिके उपरान्त वे पैरके अँगूठेके बलपर खड़े होकर

---

* गणेशं पूजयित्वैव व्रज युद्धाय मारिष ।
स च तौ माययाऽऽमोह्य वशतां प्रापयिष्यति ॥
मत्प्रसादेन दुष्टौ तौ वधिष्यसि न संशयः ।
(गणेशपु० १ । १७ । ३७-३७½)

× × ×

† यानस्त्वं वरान् मत्तो यांस्त्वं कामयसे हरे ॥
ददामि तानहं सर्वांस्तपसानेन तोषितः ।
पूर्वमेवार्चितः स्यां चेद्विजयस्ते ध्रुवं भवेत् ॥
(गणेशपु० १ । १८ । ९-१०)

दीनवत्सल गणनाथका ध्यान करने लगे। अत्यन्त संयतेन्द्रिय गृत्समदने प्रथमेश्वर गणेशका जप करते हुए केवल वायुके आधारपर एक सहस्र दिव्य वर्षतक घोर तपश्चरण किया। तदनन्तर उन्होंने एक जीर्ण पत्ता खाकर पंद्रह हजार वर्षतक कठोर तपस्या की।

जैसे गाय अपने बछड़ेका रँभाना सुनकर दौड़ती चली आती है, उसी प्रकार गृत्समदके अत्यन्त कठोर तपसे संतुष्ट होकर अनुग्रहमूर्ति गणेशजी अत्यन्त शीघ्रतासे उनके समीप पहुँचे। उस समय उनका तेज सहस्रों सूर्योंके समान था, जिससे वे सम्पूर्ण विश्वको उद्भासित कर रहे थे। तालपत्रके समान उनके कान हिल रहे थे। वे विशाल गजराजकी-सी लीला कर रहे थे और आकर्षक क्रीडामें सानन्द आसक्त थे। उनके मस्तकपर चन्द्रमा शोभायमान था, गलेमें विशाल कमल-माला सुशोभित थी। उनके एक हाथमें सनाल कमल था और वे सिंहपर आरूढ थे। उनके दस भुजाएँ थीं। वे सर्पका यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे। उनके विग्रहपर केसर, अगर, कस्तूरी और शुभ्र चन्दनका लेप था। उन जगत्कारण प्रभुकी दोनों पत्नियाँ सिद्धि और बुद्धि उनके साथ थीं। उनका स्वरूप अनिर्देश्य था और वे लीलासे ही मुनि (गृत्समद) के सम्मुख प्रकट हो गये। बुद्धिसिन्धु गणनाथने अत्यन्त स्नेहपूर्ण स्वरसे कहा—'तुम्हारे कठोर तपसे मैं प्रसन्न हूँ, तुम अपनी इच्छा व्यक्त करो; मैं उसे पूर्ण करूँगा।'

'सर्वशक्तिसम्पन्न प्रभो! आप मुझे अपनी सुदृढ भक्ति दीजिये और यथार्थ ज्ञान प्रदान कीजिये।' गृत्समदने भयापह गजदन्तके चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम कर करबद्ध याचना की—''सर्वकल्याणकारी मङ्गलमय प्रभो! यह 'पुष्पकवन' गणेशपुरके नामसे प्रख्यात हो और आप यहाँ रहकर भक्तोंकी वाञ्छा पूर्ण करते रहें।''

'तुम मेरे नैष्ठिक भक्त होओगे और तुम्हारी समस्त कामनाएँ पूरी होंगी।' भक्तवत्सल वरदमूर्तिने वर प्रदान करते हुए कहा—'तुम्हें त्रैलोक्यविख्यात अत्यन्त शक्तिशाली पुत्रकी प्राप्ति होगी। उसे केवल कालकाल शिव ही पराजित कर सकेंगे। कृतयुग, त्रेता, द्वापर एवं कलियुगमें इस क्षेत्रके नाम क्रमशः पुष्पक, मणिपुर, मानक और भद्रक होंगे। यहाँ स्नान-दानसे मनुष्यकी समस्त कामनाएँ पूरी होंगी।'

यों कहकर सर्पयज्ञोपवीतधारी गजानन अन्तर्धान हो गये।

गृत्समदमुनिने अत्यन्त हर्षित होकर वहाँ एक सुन्दर मन्दिरका निर्माण करवाया और उसमें अपने आराध्य प्रथमेश्वर गजमुखकी प्रतिमा स्थापित की। उसका नाम 'वरद' प्रसिद्ध हुआ।

ब्राह्मणों एवं ऋषियोंसे सम्मानित गृत्समदमुनि अपने आराध्यके ही ध्यान, पूजन एवं भजन-स्मरणमें अपना समय व्यतीत करने लगे। एक दिनकी बात है, उनके सम्मुख एक अत्यन्त तेजस्वी वस्त्रालंकारभूषित बालक प्रकट हुआ।

त्रिपुरकी गणेशोपासना

आश्चर्यचकित मुनिके प्रश्न करनेपर उस बालकने कहा—'मैं आपका पुत्र हूँ। आपकी छींकसे मेरी उत्पत्ति हुई है। आप कृपापूर्वक मेरा कुछ दिन पालन करें। मैं अपने पौरुषसे इन्द्रादि देवताओंसहित त्रैलोक्यपर विजय प्राप्त करूँगा।'

उस तेजस्वी बालककी वाणीसे भयभीत मुनिने उसे अपने इष्टदेवकी उपासना करनेकी प्रेरणा दी। देवत्राता गणेशका मन्त्र भी उन्होंने उसे बता दिया।

पिताकी प्रेरणासे वह बालक एकान्त शान्त वनमें चला गया और वहाँ वह एक अँगूठेपर खड़े होकर अज, अनादि और अनन्त विनायकका ध्यान करते हुए उनके मन्त्रका जप करने लगा। इस प्रकार उसे निराहार रहकर कठोर तप करते हुए पंद्रह सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये।

भक्तवत्सल गजमुख प्रसन्न हुए। दयाधाम एकदन्तने तपस्वी बालकके सम्मुख प्रकट होकर भयानक शब्द किया।

मुनिपुत्रने देखा—सम्मुख नाना प्रकारके वस्त्राभरणोंसे अलंकृत, चतुर्भुज महाकाय इष्टदेव खड़े हैं। उनके कर-कमलोंमें परशु, कमलमाला एवं मोदक सुशोभित हैं—

> चतुर्भुजं महाकायं नानाभूषाविभूषितम्॥
> परशुं कमलं मालां मोदकान् बिभ्रतं करैः।
>
> (गणेशपु० १। ३८। २५-२६)

'प्रभो! आपके अपरिमित तेजसे मैं भयभीत हो रहा हूँ। आप कृपापूर्वक प्रसन्न होकर मेरी कामना-पूर्ति कीजिये।' चरणोंमें प्रणाम कर मुनिपुत्रने डरते हुए सर्वव्यापी, सर्वात्मा, समस्त जीव-जगत्के स्वामी गजाननसे प्रार्थना की।

'मैं तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट हूँ। तुम इच्छित वर माँगो।' सिन्दूराङ्गने अपना तेज समेटकर अत्यन्त मधुर वाणीमें कहा।

'मैं बालक हूँ। स्तुति करना नहीं जानता।' गृत्समदके पुत्रने इच्छाशक्तिधर गणपतिसे वरकी याचना की—"आप प्रसन्न होकर त्रैलोक्यको आकृष्ट करनेकी विशिष्ट शक्ति मुझे प्रदान कीजिये। देव, दानव, गन्धर्व, मनुष्य, राक्षस और सर्पादिकोंको मैं अपने वशमें कर लूँ। इन्द्रादि लोकपाल सदा मेरी सेवा करें और मेरी इच्छित सभी वस्तुएँ मुझे प्राप्त होती रहें। इस जीवनमें सम्पूर्ण सुखोंका उपभोग कर मैं मृत्युके समय मोक्ष प्राप्त कर लूँ। मेरी यह तपोभूमि पवित्र 'गणेशपुर'के नामसे प्रसिद्ध हो।"

'तुम सतत निर्भय एवं त्रैलोक्यविजयी होओगे।' रक्ताम्बरधर गजदन्तने वर प्रदान करते हुए कहा—"लौह, रजत एवं स्वर्णके तीन नगर मैं तुम्हें देता हूँ। भगवान् शूलपाणिके अतिरिक्त अन्य कोई इन्हें नष्ट नहीं कर सकेगा। तुम्हारा नाम 'त्रिपुर' होगा। जब भूतभावन महादेव अपने एक ही शरसे इन तीनों पुरोंको ध्वस्त करेंगे, तब तुम्हें मोक्षकी प्राप्ति हो जायगी। मेरी कृपासे तुम्हारी समस्त कामनाएँ पूरी होंगी।'

ऐसा कहकर मूषकारोही अन्तर्धान हो गये। त्रिपुरासुरकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। उसने वहाँ मूषकध्वजका अत्यन्त भव्य मन्दिर बनवाया और फिर आदिदेव गणेशकी प्रतिमा स्थापित कर उसकी श्रद्धा और विधिपूर्वक षोडशोपचारसे पूजा की। उसने गद्गद कण्ठसे धन-धान्यपति सिद्धि-सदनकी स्तुति कर उनके चरणोंमें दण्डकी भाँति लोटकर बार-बार प्रणाम किया। फिर उसने गजमुखसे क्षमा-याचना कर ब्राह्मणोंको दान दिया। तदनन्तर वह त्रैलोक्य-विजयके लिये निकल पड़ा।

वरप्राप्त महान् त्रिपुरके सम्मुख पृथ्वी, स्वर्ग और पातालके देव, दनुज और नाग आदि शूर-वीर नहीं टिक सके। सभी पराजित हुए। अमरावतीपर त्रिपुरका अधिकार हो गया। देव-समुदाय प्राण-भयसे यत्र-तत्र पलायित हुआ। गृत्समदके पुत्र त्रिपुरके भयसे चतुर्मुख नाभि-कमलमें प्रविष्ट हो गये। लक्ष्मीपति क्षीराब्धिके लिये प्रस्थित हुए। अत्यन्त शक्तिशाली त्रिपुरने अपने पुत्र चण्डको वैकुण्ठका और प्रचण्डको ब्रह्मलोकका अधिकार प्रदान किया।

इसके अनन्तर अत्यन्त उद्धत त्रिपुर युद्धकी कामनासे कैलास पहुँचा। उसने कैलासको झकझोर दिया। वरदमूर्ति गणेशके वरसे त्रिपुरकी शक्तिका अनुमान करके पार्वतीवल्लभने उसके सम्मुख जाकर कहा—'मैं संतुष्ट हूँ, वर माँगो।'

'यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो कैलास मुझे देकर स्वयं मन्दरगिरिपर चले जायँ।' यही उसने निस्संकोच माँगा।

मदमत्त असुरसे बचनेके लिये देवाधिदेव महादेवने कैलास छोड़ दिया और मन्दरगिरिके लिये प्रस्थित हुए।

अमित शक्ति-सम्पन्न त्रिपुरने परम विरक्त तपस्वी ऋषि-मुनियोंको बंदी बनाकर उनके शान्ति-निकेतन आश्रमोंको ध्वस्त कर डाला। इतना ही नहीं, उसके भयसे यज्ञादि कर्म एवं श्रुतियोंका उद्घोष शान्त हो गया। त्रैलोक्यमें सर्वत्र असुरताका साम्राज्य व्याप्त था।

देवताओंद्वारा गणेशाराधन

स्वर्गसे निर्वासित गिरि-कन्दराओंमें छिपे देवगण चिन्तित एवं दुःखी थे। 'असुर कैसे पराजित हो ?'—यही सोचा करते; किंतु वे सर्वथा असहाय एवं निरुपाय थे। उनकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी।

एक दिन उनके समीप ब्रह्मपुत्र देवर्षि नारद पहुँचे। उन्होंने सुरोंको बताया—'त्रिपुरकी अजेयताका मुख्य हेतु सर्वसमर्थ विनायकका वर है। आपलोग भी उन आदिदेव सिन्दूरपूर-परिपूरिताङ्ग गजमुखको संतुष्ट कर लें, तब उस असुरका वध हो सकेगा।'

देवर्षिने देवताओंको सर्वव्यापी गणेशका मन्त्र बताया और वे अपनी वीणापर हरि-गुण-गान करते हुए प्रस्थित हुए।

देव-समुदाय आदिदेव गणेशकी तुष्टिके लिये उनकी आराधनामें प्रवृत्त हुआ। सुरोंकी निष्ठा देखकर करुणामय गजानन उनके सम्मुख उपस्थित हुए। देवताओंने हर्षातिरेकसे करि-कलभाननके चरण-कमलोंमें प्रणाम किया और फिर वे भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति करने लगे—

नमो नमस्ते परमार्थरूप नमो नमस्तेऽखिलकारणाय।
नमो नमस्तेऽखिलकारकाय सर्वेन्द्रियाणामधिवासिनेऽपि॥
नमो नमो भूतमयाय तेऽस्तु नमो नमो भूतकृते सुरेश।
नमो नमः सर्वधियां प्रबोध नमो नमो विश्वलयोद्भवाय॥
नमो नमो विश्वभृतेऽखिलेश नमो नमः कारणकारणाय।
नमो नमो वेदविदामदृश्य नमो नमः सर्ववरप्रदाय॥
नमो नमो वागविचारभूत नमो नमो विघ्ननिवारणाय।
नमो नमोऽभक्तमनोरथघ्ने नमो नमो भक्तमनोरथज्ञ॥
नमो नमो भक्तमनोरथेश नमो नमो विश्वविधानदक्ष।
नमो नमो दैत्यविनाशहेतो नमो नमः संकटनाशकाय॥

नमो नमः कारुणिकोत्तमाय नमो नमो ज्ञानमयाय तेऽस्तु ।
नमो नमोऽज्ञानविनाशनाय नमो नमो भक्तविभूतिदाय ॥
नमो नमोऽभक्तविभूतिहन्त्रे नमो नमो भक्तविमोचनाय ।
नमो नमोऽभक्तविबन्धनाय नमो नमस्ते प्रविभक्तमूर्ते ॥
नमो नमस्तत्त्वविबोधकाय नमो नमस्तत्त्वविदुत्तमाय ।
नमो नमस्तेऽखिलकर्मसाक्षिणे नमो नमस्ते गुणनायकाय ॥

(गणेशपु० १ । ४० । ४२-४९)

'हे परमार्थस्वरूप ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आप सबके कारण हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आप सबके कर्ता हैं; आपको नमस्कार है । आप सब इन्द्रियोंमें निवास करते हैं; आपको नमस्कार है । आप समस्त प्राणिमय हैं, आपको नमस्कार है, नमस्कार है । सुरेश ! आप भूत-सृष्टिके कर्ता (और संहारक) हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आप समस्त बुद्धियोंके प्रबोधरूप हैं, संसारकी उत्पत्ति और लय करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है । हे अखिलेश ! आप विश्वके पालक हैं, कारणोंके भी कारण हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आप वेदज्ञोंके लिये भी अदृश्य हैं, आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आप सबको वर देनेवाले हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आप वाणीके विचारसे परे हैं—वाणीसे आपके स्वरूपका कथन नहीं किया जा सकता; आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आप विघ्नोंका निवारण करते हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आप अभक्तके मनोरथको नष्ट करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आप भक्तोंके मनोरथों-को जाननेवाले हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आप भक्तोंके मनोरथोंके स्वामी हैं (उनके मनोरथोंको सिद्ध करनेवाले हैं); आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आप विश्वकी सृष्टि करनेमें कुशल है, आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आप दैत्योंके विनाशके कारण हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आप सङ्कटोंको नष्ट करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आप करुणा करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं, आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आपका स्वरूप ज्ञानमय है; आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आप अज्ञानको नष्ट करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आप भक्तोंको ऐश्वर्य प्रदान करते हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आप अभक्तोंका ऐश्वर्य नष्ट करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आप भक्तोंको मुक्ति देनेवाले हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आप अभक्तोंको बन्धनमें डालनेवाले हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आप पृथक्-पृथक् मूर्तिमें व्याप्त हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आप तत्त्व-बोध करानेवाले हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आप तत्त्वज्ञोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आप समस्त कर्मोंके साक्षी हैं, आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आप गुणोंके स्वामी हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है ।'

'देवताओ ! मैं तुम्हारी तपस्या एवं स्तुतिसे प्रसन्न हूँ ।' करुणामय वरदाता गजकर्णने सुर-समुदायको आनन्द प्रदान करते हुए कहा—'तुम वर माँगो । मैं तुम्हारी समस्त कामनाएँ पूरी करूँगा ।'

'सर्वेश्वर !' देवताओंने अपनी व्यथा-कथा सुनाते हुए निवेदन किया—'अमित शक्तिसम्पन्न त्रिपुरके भयसे हम गिरि-गुहामें रहनेके लिये विवश हैं । अमरावतीका उपभोग दुर्दान्त दानव कर रहा है । आप उद्दण्ड त्रिपुरका वध करके हमारी विपत्ति दूर करें ।'

'मैं निश्चय ही क्रूरकर्मा त्रिपुरसे आपलोगोंकी रक्षा करूँगा ।' द्विरदाननने सुरोंको आश्वस्त करते हुए कहा—"आपलोगोंके द्वारा किया हुआ यह 'संकटनाशनस्तोत्र' सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला होगा ।" *

यह कहकर गजानन अन्तर्धान हो गये । वे बुद्धिराशि प्रभु ब्राह्मणके वेषमें त्रिपुरासुरके समीप पहुँचे और परिचय देते हुए बोले—

'कलाधर मेरा नाम है ।' त्रिपुरासुरने उनके चरणोंमें प्रणाम करके उनकी पूजा की । उसके पूछनेपर सर्वथा निःस्पृह ब्राह्मण-वेषधारी गणनाथने उसके वैभवकी प्रशंसा करते हुए कहा—'भगवान् शिवद्वारा पूजित सर्वकामप्रद अद्वितीय गणेश-प्रतिमा कैलासमें है; मैं उक्त त्रैलोक्यदुर्लभ मूर्तिकी कामनासे तुम्हारे पास आया हूँ ।'

'मैं निश्चय ही वह मूर्ति आपको दूँगा ।' त्रिपुरने ब्राह्मणको गणेश-प्रतिमा प्रदान करनेके लिये वचन देनेके साथ उन्हें वस्त्रा-

* भवत्कृतमिदं स्तोत्रमतिप्रीतिकरं मम ।
सङ्कष्टनाशनमिति विख्यातं च भविष्यति ॥
पठतां शृण्वतां चैव सर्वकामप्रदं नृणाम् ।
त्रिसंध्यं यः पठेदेतत् संकष्टं नाप्नुयात् क्वचित् ॥

(गणेश पु० १।४०।५५-५६)

भूषण, बहुमूल्य रत्न, मृगचर्म, सुरभि तथा अश्व, गज और रथ आदि भी प्रदान किये।

त्रिपुर-दूत मन्दरगिरि पहुँचे। वहाँ उन्होंने पार्वती-वल्लभसे उक्त गणेश-मूर्ति देनेके लिये कहा। शिवजी कुपित हो गये। उनके संरक्षणमे देवताओंका दैत्योंसे भयानक संग्राम छिड़ा। दैत्योंका बड़ा विनाश हुआ, किंतु उनकी अपरिसीम सैन्य-शक्तिसे देवगण व्याकुल होकर भागने लगे।

शिवकी गणेशोपासना

देवताओंको युद्धक्षेत्रसे पलायन करते देखकर त्रिपुरासुर जगज्जननी पार्वतीको एकाकी जान कैलासकी ओर दौड़ा। इस संवादसे जननी काँप उठीं, पर हिमगिरिने उन्हें एक अत्यन्त सुरक्षित दुर्गम गिरिगह्वरमें पहुँचा दिया।

हिमगिरिनन्दिनीकी अनुपस्थितिमे त्रिपुरने कैलासमे ढूँढ़कर 'चिन्तामणि'की शुभमूर्ति प्राप्त कर ली। उक्त सर्ववाञ्छा-कल्पतरु, दुर्लभ, सुन्दरतम गणेश-प्रतिमाको लेकर त्रिपुर स्वधामके लिये प्रस्थित हुआ। वन्दीजन उसका स्तवन कर रहे थे, किंतु मार्गमें विनायककी वह मङ्गलमयी मूर्ति त्रिपुरके हाथसे छूटकर अदृश्य हो गयी। यह अपशकुन देखकर त्रिपुरासुर खिन्न-चित्त हो लौटा।

सदाशिव चिन्तित थे। उद्धत असुर अत्यन्त पराक्रमशील था और धरतीपर अनीति, अनाचार एवं कुकर्मोंका ताण्डव हो रहा था। धर्मसंस्थापक मुञ्जकेश विरूपाक्ष उद्विग्न-से हो रहे थे। उसी समय देवर्षि नारद उनके समीप पहुँचे। पार्वतीकान्तने उन्हें आदरपूर्वक आसन देकर उनकी पूजा की।

'दैत्योंके पराक्रमसे त्रैलोक्यमे अधर्म फैल गया है।' दुःखी मनसे शूलपाणिने नारदजीको बताया—'युद्धमे देवता टिक नहीं सके; वे प्राण लेकर भाग खड़े हुए। महाबली असुरने मेरे अस्त्रोंको भी विफल कर दिया।'

'सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वज्ञ एवं सर्वान्तर्यामी महेश्वर!' साश्चर्य देवर्षिने महादेवसे कहा—'आप सर्वसमर्थ एवं सृष्टिस्थित्यन्तकारी होकर भी अद्भुत लीला कर रहे हैं।'

कुछ क्षण ध्यान करके उन्होंने भुजगेन्द्रहारको बताया—'वह्निनेत्र! युद्धके लिये प्रस्थित होते समय आपने विघ्नेश्वरकी पूजा नहीं की, इसी कारण आपकी पराजय हुई। आप अपने पुत्र गणेशकी पूजा कर उन्हें प्रसन्न कर लीजिये; फिर आपकी विजय सुनिश्चित है।'

'भगवान्! आपका कथन यथार्थ है।' कम्बुकुन्देन्दु-कर्पूरगौरने देवर्षिसे कहा—'उन्होंने पहले ही मुझे विघ्ननिवारक मन्त्र दिये हैं, किंतु युद्धमें मुझे उनके जपकी विस्मृति हो गयी।'

देवर्षि चले गये। शोक-शूल-निर्मूलन वृषभध्वजने दण्डक-वनमें जाकर पद्मासन लगाया और वे, विनायकको प्रसन्न करनेके लिये कठोर तप करने लगे।

सौ वर्ष बीते। तपश्चरणनिरत व्याघ्रचर्माम्बरधर शिवके मुखसे एक परम तेजस्वी श्रेष्ठ पुरुष निकले। उनके पाँच मुख और दस हाथ थे, ललाटपर चन्द्रमा सुशोभित था, उनकी शरीर-कान्ति चन्द्रमाको मात कर रही थी, कण्ठमें मुण्डमाला थी, सर्पोंके आभूषण थे एवं मुकुट और बाजूबंदकी निराली छटा थी। वे अपनी प्रभासे अग्नि, सूर्य और चन्द्रमाको तिरस्कृत कर रहे थे। उन्होंने अपनी दसों भुजाओंमें दस आयुध धारण कर रखे थे।*

'क्या मेरे ही दो रूप हो गये?' नीलकण्ठ शिव आश्चर्यचकित हो सोचने लगे—'या यह त्रिपुरासुरकी माया तो नहीं है? स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ या मैं जिन आदिदेव विनायकका अहर्निश ध्यान करता हूँ, उन्होंने ही कृपापूर्वक मुझे दर्शन दिया है?'

'आप अपने मनमें जिनका विचार करते हैं, मैं वही विघ्नविनाशक हूँ।' सर्वकर्ता सुमुखने आशुतोषसे कहा—'मेरे यथार्थ स्वरूपको देवता, ऋषि और विधाता भी नहीं जानते। वेद और उपनिषद् भी नहीं जानते, फिर षट्शास्त्रोंके ज्ञाता तो कैसे जान सकते हैं? मैं अनन्त लोकोंका स्रष्टा, पालक एवं संहारक हूँ। मैं चराचर जगत् एवं ब्रह्म तथा तीनों गुणोंका स्वामी हूँ। आपके तपसे संतुष्ट होकर मैं यहाँ वर प्रदान करने आया हूँ। महादेव! आप इच्छानुसार वर माँग लीजिये।'

> अन्तर्यस्तर्कितो देवः सोऽहं विघ्नहरो विभुः।
> न मे स्वरूपं जानन्ति देवर्षिचतुराननाः॥
> न वेदाः सोपनिषदः कुतः षट्शास्त्रवेदिनः।
> अशेषभुवनस्याहं कर्ता पातापहारकः॥

---

* ततस्तस्य मुखाम्भोजान्निर्गतस्तु पुमान् परः॥
पञ्चवक्त्रो दशभुजो ललाटेन्दुः शशिप्रभः।
मुण्डमालः सर्पभूषो मुकुटाङ्गदभूषणः॥
अग्न्यर्कशशिनो भाभिस्तिरस्कुर्वन् दशायुधः।
(गणेशपु० १।४४।२५—२७)

ब्रह्मादिस्थावरचरत्रिगुणानामहं प्रभुः ।
तपसानेन तुष्टोऽहं वरं दातुमिहागतः ॥
वरान् वृणु महादेव यावतो मत्त इच्छसि ॥
(गणेशपु० १ । ४४ । ३२-३५)

वरद विनायकके वचन सुन महेश्वर अपना स्वरूप भूलकर हर्ष-गद्गद वाणीसे उनकी स्तुति करने लगे—

दशापि नेत्राणि ममाद्य धन्यान्यथो भुजाः पूजनतस्तवाद्य ।
तवानतेः पञ्च शिरांसि धन्यान्यथ स्तुतेः पञ्चमुखानि देव ॥
पृथ्वी जलं वायुरथो दिशश्च तेजश्च कालः कलनात्मकोऽपि ।
नभो रसो रूपमथापि गन्धः स्पर्शश्च शब्दो मन इन्द्रियाणि ॥
गन्धर्वयक्षाः पितरो मनुष्या देवर्षयो देवगणाश्च सर्वे ।
ब्रह्मेन्द्ररुद्रा वसवोऽथ साध्यास्त्वत्तः प्रसूताः सचराचराश्च ॥
सृजस्यदो विश्वमनन्यबुद्धे रजोगुणात् पासि समस्तमेतत् ।
तमोगुणात् संहरसे गुणेश नित्यो निरीहोऽखिलकर्मसाक्षी ॥
(गणेशपु० १ । ४५ । ३-६)

'हे देव ! आज आपकी पूजा करनेसे मेरे दसों नेत्र और दसों भुजाएँ धन्य हैं । आपको प्रणाम करनेसे मेरे पाँचों सिर और आपका स्तवन करनेसे मेरे पाँचों मुख भी धन्य हो गये । पृथ्वी, जल, वायु, दिशाएँ, तेज, कलनात्मक काल, आकाश, रस, रूप, गन्ध, स्पर्श, शब्द, मन, इन्द्रियाँ, गन्धर्व, यक्ष, पितर, मनुष्य, देवर्षि, देवगण, ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वसु, साध्य तथा आपसे उत्पन्न सभी चराचर धन्य हैं । आप रजोगुणसे सम्पूर्ण सृष्टिकी रचना और सत्त्वगुणसे पालन करते हैं, तथा हे गुणेश्वर ! आप तमोगुणके द्वारा उनका संहार करते हैं । आप नित्य, निरपेक्ष एवं समस्त कर्मोंके साक्षी हैं ।'

'आपके स्मरण करते ही मैं आपके समीप आ जाऊँगा और आपका कार्य पूरा हो जायगा ।' देवाधिदेव महादेवके स्तवनसे संतुष्ट होकर गुणाधीशने उनसे कहा—'आप मेरे बीज-मन्त्र (गं)का उच्चारण करके पुरत्रयपर एक बार छोड़ेंगे तो वह ध्वस्त हो जायगा ।'[1]

इसके अनन्तर शिवपर प्रसन्न हुए गम्भीरलोचन गजमुखने उन्हें अपने सहस्रनामका[2] उपदेश दिया और बोले—'तीनों संध्याओंमें इसके पाठसे मनुष्यकी कामनाएँ पूरी होंगी । युद्धके पूर्व आप इसका पाठ कर लें तो असुरोंका शीघ्र नाश हो जायगा ।'

द्विरदाननके वरसे प्रसन्न होकर काम-मद-मोचन शिवने विधिपूर्वक उनकी पूजा की[3] और वहाँ एक अत्यन्त सुन्दर एवं विशाल मन्दिर बनवाकर उसमें उनकी प्रतिष्ठा की । फिर देवता, मुनि और सिद्धोंको तृप्तकर ब्राह्मणोंको दान दिया । इसके अनन्तर तामरसलोचन वृषभध्वजने पुनः गुरुमन्त्रफलप्रद गणेशकी प्रीतिपूर्वक पूजा करके उनके चरणोंमें प्रणाम किया । देवगण गङ्गाधरप्रिय गजमुखका स्तवन कर रहे थे । उसी समय पशुपतिने कहा—"इन गणेशजीका यह स्थान सम्पूर्ण लोकोंमें 'मणिपुर'के नामसे विख्यात हो ।"

गम्भीर-गुणसम्पन्न गणेश अन्तर्धान हो गये । ज्ञानद गणेशके दर्शनसे प्रसन्न देवता, मुनि, सिद्ध एवं ब्राह्मण भी अपने-अपने भाग्यकी प्रशंसा करते हुए प्रस्थित हुए । स्वर्गापवर्गदाता गङ्गाधर भी प्रसन्नतापूर्वक उठे । त्रिपुरासुर मारा गया । त्रैलोक्य तृप्त हुआ । सबने सुख-संतोषकी साँस ली । सर्वत्र हर्षकी लहर दौड़ गयी ।

शिवपुराणमें कथा आती है कि असुरोंसे पूर्ण त्रिपुरको भस्म करनेके लिये कामारि शम्भुने शर-संधान किया । धनुषको दृढ़तासे धारण किये रणकर्कश शिव लक्ष्यपर दृष्टि गड़ाये एक लाख वर्षतक अडिग खड़े रहे, किंतु त्रिपुरपर[4] लक्ष्य स्थिर नहीं हुआ । उस समय देवत्राता शिवने आकाशवाणी सुनी—

---

1. यदा यदा मे स्मरणं विदध्यास्तदान्तिकं तेऽहमिहागमिष्ये ॥
ममात्मबीजेन निमन्त्र्य चैकं बाणं तु देवैव पुरत्रयं दह ।
त्रिपातनादात्ममहत्त्वा महेश तदा ते ... ॥
(गणेशपु० १ । ४५ । १५-१६)

2. गणेशपुराण उपासना-खण्डमें द्रष्टव्य ।

3. कोउ मुनि संसय करै जनि सुर अनादि जियँ जानि ॥
(रामचरितमानस १ । १००)

4. शिवपुराणके अनुसार तारकासुरके तुल्यबल तीन महाबली पुत्र थे—तारकाक्ष, विद्युन्माली और कमलाक्ष । इन तीनोंने कठोर तपसे विधाताको संतुष्ट करके अपने-अपने लिये क्रमशः सुवर्ण, रजत एवं वज्रतुल्य लौह पुरोंको प्राप्त किया था । वे तीनों पुर एक हजार वर्षोंके बाद मध्याह्नमें अभिजित् मुहूर्तमें एक स्थानपर स्थित होते थे ।

भो भो न यावद्भगवन्नर्चितोऽसौ विनायकः ।
पुराणि जगदीशेश साम्प्रतं न हनिष्यति ॥
(शिवपु०, रुद्रसं०, यु०ख० १० । ६)

'हे जगदीश ! हे भगवन् ! जबतक आप विनायककी पूजा नहीं करेंगे, तबतक इन तीनों पुरोंको नष्ट नहीं कर सकेंगे ।'

तब अन्धकासुरसंहारी त्रिलोचनने भद्रकालीको बुलाकर गणेशजीकी पूजा की, भगवान् पशुपतिकी हर्षपूरित पूजासे विनायक संतुष्ट हुए, तब लोकनाथ हरने महात्मा तारकपुत्रोंके तीनो पुरोंको देखा ।* तब उन्होंने अभिजित् मुहूर्तमें अपने अद्भुत धनुषकी प्रत्यञ्चाको खींचा । उससे अत्यन्त भयानक शब्द हुआ । देवदेव शिवने असुरोंको अपना नाम सुनाते हुए कोटिसूर्यसमप्रभ उग्र शर छोड़ दिया ।† उक्त परम तेजस्वी अग्नितुल्य दहकते हुए तीक्ष्ण शरके स्पर्शसे समस्त दैत्योंसहित त्रिपुर भस्म हो गया ।

शिवप्राणवल्लभा भगवती उमाने भी गुडलड्डुभोजी गजाननकी श्रद्धा और भक्तिसे पूजा की थी । रेणुकानन्दन परशुराम भी इन गङ्गाजलरसास्वादचतुर गजमुखकी उपासनासे शक्ति अर्जित करनेमें समर्थ हुए ।

त्रैलोक्यपावनी रासरासेश्वरी राधाने भी अत्यन्त भक्तिपूर्वक गौरीहृदयनन्दनकी विधिपूर्वक अर्चना की थी । ब्रह्मवैवर्त-पुराणकी वह मङ्गल-मोद-प्रदायिनी कथा संक्षेपमें इस प्रकार है—

श्रीराधाकी गणेशोपासना

पुण्यमय शुभ क्षेत्र सिद्धाश्रमकी बड़ी महिमा है । सनत्कुमारने वहीं सिद्धि प्राप्त की थी । स्वयं लोक-पितामहने भी वहीं तपश्चरण किया था और सिद्ध हुए थे । महात्मा कपिल और महेन्द्रने भी वहीं सिद्धि प्राप्त की थी । इसी कारण उस दुर्लभ पावन क्षेत्रका नाम 'सिद्धाश्रम' प्रसिद्ध हुआ । उस पुण्यमय क्षेत्रमें नित्यदेवता गजानन नित्य निवास करते हैं ।

वहाँ वैशाखी पूर्णिमाके अवसरपर सभी देवता, नाग, मनुष्य, दैत्य, गन्धर्व, राक्षस, सिद्धेन्द्र, मुनीन्द्र, योगीन्द्र और सनकादि भी वरद गणपतिकी पूजा करते हैं ।

एक बारकी बात है । पवित्र वैशाखकी पूर्णिमा थी । उस पुनीत अवसरपर हिमगिरिनन्दिनी पार्वतीके साथ कल्याणकारी जगत्पति शिव, गणोंसहित षडानन और स्वयं पद्मयोनि भी सिद्धाश्रम पहुँचे । भगवान् गणेशकी पूजा करनेके लिये सभी देवता, मनु, मुनिगण और नरेश भी वहाँ उपस्थित हुए । द्वारकापुरीके निवासियोंके साथ भगवान् श्रीकृष्ण और गोकुलवासियोंके साथ नन्द भी वहाँ पधारे । सौ वर्ष व्यतीत हो जानेपर श्रीकृष्ण-प्राणवल्लभा रासरासेश्वरी श्रीराधारानीका भी गोलोकवासिनी गोपकुमारी सखियोंके साथ वहाँ शुभागमन हुआ । भक्तानुग्रहमूर्ति श्रीराधारानीने वहाँ स्नान करके शुद्ध साड़ी और कञ्चुकी धारण की । फिर त्रैलोक्यपावनी कृष्णप्रियाने अपने चरणोंको अच्छी प्रकार धोया । इसके अनन्तर उन्होंने निराहार एवं संयतेन्द्रिय हो मणि-मण्डपमें प्रवेश किया ।

वहाँ गोलोकविहारिणी श्रीकृष्णप्रियाने अपने प्राणधन श्रीकृष्णकी प्राप्तिकी कामनासे विधिवत् संकल्प किया । तदनन्तर उन्होंने परमपावनी सुरसरिके निर्मल जलसे भालचन्द्र गजाननको स्नान कराया । फिर सत्कीर्तिसम्पन्ना भगवती राधा अपने कर-कमलोंमें श्वेत पुष्प लेकर सामवेदोक्त प्रकारसे लम्बोदरका ध्यान करने लगीं—

खर्वं लम्बोदरं स्थूलं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ।
गजवक्त्रं वह्निवर्णमेकदन्तमनन्तकम् ॥
सिद्धानां योगिनामेव ज्ञानिनां च गुरोर्गुरुम् ।
ध्यातं मुनीन्द्रैर्देवेन्द्रैर्ब्रह्मेशशेषसंज्ञकैः ॥
सिद्धेन्द्रैर्मुनिभिः सद्भिर्भगवन्तं सनातनम् ।
ब्रह्मस्वरूपं परमं मङ्गलं मङ्गलालयम् ॥
सर्वविघ्नहरं शान्तं दातारं सर्वसम्पदाम् ।
भवाब्धिमायापोतेन कर्णधारं च कर्मिणाम् ॥
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणम् ।
ध्यायेद् ध्यानात्मकं साध्यं भक्तेशं भक्तवत्सलम् ॥
(ब्रह्मवैवर्तपु०, श्रीकृ० ज० खं० १२१ । ७८—८४)

---

* एतच्छ्रुत्वा तु वचनं गजवक्त्रमपूजयत् ।
भद्रकालीं समाहूय ततोऽन्धकनिषूदनः ॥
तस्मिन् सम्पूजिते हर्षात् परितुष्टे पुरस्सरे ।
विनायके ततो व्योम्नि ददर्श भगवान् हरः ॥
पुराणि त्रीणि दैत्यानां तारकाणां महात्मनाम् ।
(शिवपु०, रुद्रसं०, यु०खं० १० । ७—९)

† अभिजिन्नाममुहूर्ते तु विकृष्य धनुरद्भुतम् ।
कृत्वा ज्यातलनिर्घोषं नादमत्यन्तदुस्सहम् ॥
आत्मनो नाम विश्राव्य समाभाष्य महासुरान् ।
मार्तण्डकोटिवपुषं काण्डमुग्रं मुमोच ह ॥
(शिवपु०, रुद्रसं०, यु०खं० १० । २५-२६)

'जो खर्व (छोटे कदवाले), लम्बोदर, स्थूलकाय, ब्रह्मतेजसे उद्भासित, गजमुख, अग्नितुल्य कान्तिमान्, एकदन्त और अनन्त हैं; जो सिद्धों, योगियों और ज्ञानियों-के गुरुके गुरु हैं; ब्रह्मा, शिव और शेष आदि देवेन्द्र, मुनीन्द्र, सिद्धेन्द्र, मुनिगण तथा संतलोग जिनका ध्यान करते हैं; जो ऐश्वर्यशाली, सनातन, ब्रह्मस्वरूप, परम मङ्गल, मङ्गलके स्थान, सम्पूर्ण विघ्नोंको हरनेवाले, शान्त, सम्पूर्ण सम्पत्तियोंके दाता, कर्मयोगियोंके लिये भव-सागरमें मायारूपी जहाजके कर्णधारस्वरूप, शरणागत-दीन-दुःखीकी रक्षामें तत्पर, ध्यान-रूप, साधना करनेयोग्य, भक्तोंके स्वामी और भक्तवत्सल हैं, उन गणेशका ध्यान करना चाहिये।'

इस प्रकार ध्यान करनेके अनन्तर परमसती राधाने उक्त पुष्पका अपने मस्तकसे स्पर्श कराकर फिर सर्वाङ्गशुद्धिके लिये वेदोक्त न्यास किया। तदनन्तर ब्रह्मस्वरूपा राधारानीने पुनः उपर्युक्त कल्याणकर ध्यानके द्वारा उक्त पुष्प शूर्पकर्णके चरणोंमें अर्पित कर दिया। फिर परम महिमामयी श्रीकृष्ण-प्राणवल्लभा श्रीराधाने सुगन्धित सुशीतल तीर्थजल, दूर्वा, चावल, सुगन्धित श्वेत पुष्प, सुगन्धित चन्दनयुक्त अर्घ्य, पारिजात-पुष्पोंकी माला, कस्तूरी-केसरयुक्त चन्दन, उत्तम धूप, घृतदीप, सुस्वादु रमणीय नैवेद्य, चतुर्विध अन्न, फल, विविध प्रकारके मोदक और व्यञ्जन, अमूल्य रत्ननिर्मित सिंहासन, दो सुन्दर वस्त्र, मधुपर्क, सुवासित सुशीतल पवित्र तीर्थजल, ताम्बूल, अमूल्य श्वेत चँवर, मणि-मुक्ता-हीरासे सुसज्जित सुन्दर सूक्ष्मवस्त्रद्वारा सुशोभित शय्या, सवत्सा कामधेनु गौ और पुष्पाञ्जलि अर्पित कर अत्यन्त श्रद्धा और विधिपूर्वक शिवप्रिया पार्वतीके प्राणप्रिय पुत्रकी षोडशोपचारसे पूजा की। इसके बाद श्रीकृष्णहृदयाधिकारिणी श्रीराधाने गणेशके इस षोडशाक्षर मन्त्रका एक सहस्र जप किया।

'ॐ गं गौं गणपतये विघ्नविनाशिने स्वाहा[1] ॥'

(ब्रह्मवैवर्तपु०, कृ० ज० खं० १२१। १००)

जपके अनन्तर परात्मा भगवती राधाके कमल-सरीखे नेत्रोंमें आँसू भर आये। वे सिर झुकाये पुलकित होकर गद्गद-कण्ठसे गणेशजीका स्तवन करने लगीं—

परं धाम परं ब्रह्म परेशं परमीश्वरम्।
विघ्ननिघ्नकरं शान्तं पुष्टं कान्तमनन्तकम्॥
सुरासुरेन्द्रैः सिद्धेन्द्रैः स्तुतं स्तौमि परात्परम्।
सुरपद्मदिनेशं च गणेशं मङ्गलायनम्[2] ॥

(ब्रह्मवैवर्तपु०, श्रीकृ० ज० ख० १२१। १०३-१०४)

'जो परमधाम, परब्रह्म, परेश, परम ईश्वर, विघ्नोंके विनाशक, शान्त, पुष्ट, मनोहर और अनन्त हैं, प्रधान-प्रधान सुर-असुर तथा सिद्धेन्द्र जिनका स्तवन करते हैं, जो देवरूपी कमलके लिये सूर्य और मङ्गलोंके आश्रयस्थान हैं, परात्पर गणेशकी मैं स्तुति करती हूँ।'

सर्वेश्वरी श्रीराधाने विधिवत् गणेशकी पूजा एवं भक्तिपूर्वक उनकी वन्दना की। उनके मङ्गलमय सर्वाङ्गमें धारण करनेयोग्य बहुमूल्य रत्नोंके आभूषण प्रदान किये।

'जगज्जननी! तुम्हारा यह अर्चन-वन्दन जगत्को शिक्षा देनेके लिये है।' सत्यस्वरूपा श्रीराधाकी श्रद्धा-भक्ति एवं पूजोपकरणोंसे संतुष्ट होकर वरद गणेशने कहा—'तुम स्वयं ब्रह्मस्वरूपा एवं श्रीकृष्ण-वक्षःस्थलपर वास करनेवाली हो।'

महामहिमामयी श्रीराधाकी कल-कीर्तिका गान करते हुए परम प्रसन्न गणपतिने कहा—'मातः! तुमने मुझे जिन-जिन वस्तुओंको समर्पित किया है, उन सबको सार्थक कर डालो, अर्थात् अब मेरी प्रसन्नताके लिये उन्हें ब्राह्मणोंको दे दो। तब मैं उसका भोग लगाऊँगा; क्योंकि देवताओंको देनेयोग्य दान या दक्षिणा ब्राह्मणको दे देनेसे अनन्त हो जाती है। राधे! ब्राह्मणोंका मुख ही देवताओंका प्रधान मुख है; क्योंकि ब्राह्मण जिस पदार्थको खाते हैं, वह देवताओंको मिलता ही है[3] ।'

तब गोलोकवासिनी श्रीराधाने वह सारा पदार्थ ब्राह्मणोंको खिला दिया। इससे मङ्गलमूर्ति गणेश तत्क्षण परम प्रसन्न हो गये।

इस प्रकार अभीष्ट-पूर्त्यर्थ प्रायः देवताओंने समय-समय-पर इन विघ्नविनाशन मोदकप्रिय आदिदेवकी पूजा-अर्चा की।

---

१. श्रीगणेशकीका यह मन्त्र श्रेष्ठ कल्पतरुके समान है। (१२१। १०१)

इस स्तोत्रका माहात्म्य यों है—

२. इदं स्तोत्रं महापुण्यं विघ्नशोकहरं परम्।
यः पठेत् प्रातरुत्थाय सर्वविघ्नात् प्रमुच्यते॥

(ब्रह्मवैवर्तपु०, श्रीकृ० ज० खं० १२१। १०५)

'जो प्रातःकाल उठकर इसका पाठ करता है, वह सम्पूर्ण विघ्नोंसे विमुक्त हो जाता है।'

३. ब्राह्मणानां मुखं राधे देवानां मुखमुख्यकम्।
विप्रभुक्तं च यद् द्रव्यं प्राप्नुवन्त्येव देवताः॥

(ब्रह्मवैवर्तपु०, श्रीकृ० ज० खं० १२२। ३१)

देवताओंद्वारा गणेश-वन्दना

एक बारकी बात है। पवित्र गौतमीके उत्तर तटपर देवताओंने यज्ञ प्रारम्भ किया, किंतु उसमें अनेक विघ्न पड़ने लगे। यज्ञ सम्पन्न नहीं हो सका। उदास होकर देवताओंने ब्रह्मा और विष्णुसे इसका कारण पूछा। दयामय चतुराननने ध्यानस्थ होकर इसके कारणका पता लगाया और फिर उन्होंने सुर-समुदायसे कहा—'इस यज्ञमें श्रीगणेशजी विघ्न उपस्थित कर रहे हैं। इसी कारण यज्ञ सविधि सम्पन्न नहीं हो पा रहा है। आपलोग आदिदेव विनायकको प्रसन्न कर लें, तब यज्ञ पूर्ण हो जायगा।'

विधाताके परामर्शसे देवताओंने गौतमीके निर्मल जलमें स्नान किया और फिर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक वे अम्बिकानन्दन श्रीगणेशजीकी स्तुति करने लगे—

देवा ऊचुः

यः सर्वकार्येषु सदा सुराणामपीशविष्ण्वम्बुजसम्भवानाम्।
पूज्यो नमस्यः परिचिन्तनीयस्तं विघ्नराजं शरणं व्रजामः॥
न विघ्नराजेन समोऽस्ति कश्चिद्देवो मनोवाञ्छितसम्प्रदाता।
निश्चित्य चैतत्त्रिपुरान्तकोऽपि तं पूजयामास वधे पुराणाम्॥
करोतु सोऽस्माकमविघ्नमस्मिन् महाक्रतौ सत्वरमाम्बिकेयः।
ध्यातेन येनाखिलदेहभाजां पूर्णा भविष्यन्ति मनोऽभिलाषाः॥
महोत्सवोऽभूदखिलस्य देव्या जातः सुतश्चिन्तितमात्र एव।
अतोऽवदन् सुरसंघाः कृतार्थाः सद्योजातं विघ्नराजं नमन्तः॥
यो मातुरुत्सङ्गगतोऽथ मात्रा निवार्यमाणोऽपि बलाच्च चन्द्रम्।
संगोपयामास पितुर्जटासु गणाधिनाथस्य विनोद एषः॥
पपौ स्तनं मातुरथापि तृप्तो यो भ्रातृमात्सर्यकषायबुद्धिः।
लम्बोदरस्त्वं भव विघ्नराज लम्बोदरं नाम चकार शम्भुः॥
संवेष्टितो देवगणैर्महेशः प्रवर्ततां नृत्यमितीत्युवाच।
संतोषितो नूपुररावमात्राद् गणेश्वरत्वेऽभिषिषेच पुत्रम्॥
यो विघ्नपाशं च करेण बिभ्रत् स्कन्धे कुठारं च तथा परेण।
अपूजितो विघ्नमयोऽपि मातुः करोति को विघ्नपतेः समोऽन्यः॥
धर्मार्थकामादिषु पूर्वपूज्यो देवासुरैः पूज्यत एव नित्यम्।
यस्यार्चनं नैव विनाशमेति तं पूर्वपूज्यं प्रथमं नमामि॥
यस्यार्चनात्प्रार्थनयानुरूपां दृष्ट्वा तु सर्वस्य फलस्य सिद्धिम्।
स्वतन्त्रसामर्थ्यकृतातिगर्वं भ्रातृप्रियं त्वाखुरथं तमीडे॥
यो मातरं सरसैर्नृत्यगीतैस्तथाभिलाषैरखिलैर्विनोदैः।
संतोषयामास तदातितुष्टं तं श्रीगणेशं शरणं प्रपद्ये॥
सुरोपकारैरसुरैश्च दुष्टैः क्षोभैर्नमस्कारपरैश्च सन्तैः।
विघ्नप्रसादेन सदा प्रहृष्टं तं श्रीगणेशं शरणं प्रपद्ये॥
जये पुराणामकरोत् प्रतीपं पित्रापि दर्पात् प्रतिपूजितो यः।
निर्विघ्नतां चापि पुनश्चकार तस्मै गणेशाय नमस्करोमि॥

(ब्रह्मपुराण ११४। ६-१८)

"सदा सब कार्योंमें सम्पूर्ण देवता तथा शिव, विष्णु और ब्रह्माजी भी जिनका पूजन, नमस्कार और चिन्तन करते हैं, उन विघ्नराज गणेशकी हम शरण ग्रहण करते हैं। विघ्नराज गणेशके समान मनोवाञ्छित फल देनेवाला कोई देवता नहीं है, ऐसा निश्चय करके त्रिपुरारि महादेवजीने भी त्रिपुरवधके समय पहले उनका पूजन किया था। जिनका ध्यान करनेसे सम्पूर्ण देहधारियोंके मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं, वे अम्बिकानन्दन गणेश इस महायज्ञमें शीघ्र ही हमारे विघ्नोंका निवारण करें। देवी पार्वतीके चिन्तन-मात्रसे ही गणेशजी-जैसा पुत्र उत्पन्न हो गया, इससे सम्पूर्ण जगत्में महान् उत्सव छा गया है।'—यह बात उन देवताओंने अपने मुखसे कही थी, जो नवजात शिशुके रूपमें गणेशजीको नमस्कार करके कृतार्थ हुए थे। माताकी गोदमें बैठे हुए और माताके मना करनेपर भी जिन्होंने पिताके ललाटमें स्थित चन्द्रमाको बलपूर्वक पकड़कर उनकी जटाओंमें छिपा दिया, यह गणेशजीका बालविनोद था। यद्यपि वे पूर्ण तृप्त थे, तब भी अधिक देरतक माताके स्तनोंका दूध इसलिये पीते रहे कि कहीं बड़े भैया कार्तिकेय भी आकर न पीने लगें। उनकी बुद्धिमें बालस्वभाववश भाईके प्रति ईर्ष्या भर गयी थी। यह देखकर भगवान् शंकरने विनोदवश कहा—'विघ्नराज! तुम बहुत दूध पीते हो, इसलिये लम्बोदर हो जाओ।' यों कहकर उन्होंने उनका नाम 'लम्बोदर' रख दिया। देवसमुदायसे घिरे हुए महेश्वरने कहा—'बेटा! तुम्हारा नृत्य होना चाहिये।' यह सुनकर उन्होंने अपने घुँघुरूकी आवाजसे ही शंकरजीको संतुष्ट कर दिया। इससे प्रसन्न होकर शिवने अपने पुत्रको गणेशके पदपर अभिषिक्त कर दिया। जो एक हाथमें विघ्नपाश और दूसरे हाथसे कंधेपर कुठार लिये रहते हैं तथा पूजा न पानेपर अपनी माताके कार्यमें भी विघ्न डाल देते हैं, उन विघ्नराजके समान दूसरा कौन है। जो धर्म, अर्थ और काम आदिमें सबसे पहले पूजनीय हैं तथा देवता और असुर भी प्रतिदिन जिनकी पूजा करते हैं, जिनके पूजनका फल कभी नष्ट नहीं होता, उन प्रथम पूजनीय गणेशको हम पहले मस्तक नवाते हैं। जिनकी पूजासे सबको प्रार्थनाके अनुरूप सब प्रकारके फलकी सिद्धि दृष्टिगोचर होती है, जिन्हें अपने स्वतन्त्र सामर्थ्यपर अत्यन्त गर्व है; उन भ्रातृप्रिय मूषक-वाहन

गणेशजीकी हम स्तुति करते हैं। जिन्होंने अपने सरस संगीत, नृत्य, समस्त मनोरथोंकी सिद्धि तथा विनोदके द्वारा माता पार्वतीको पूर्ण संतुष्ट किया है, उन अत्यन्त संतुष्ट हृदयवाले श्रीगणेशकी हम शरण लेते हैं।"

'देवताओ! अब तुम्हारा यज्ञ निर्विघ्न सम्पन्न हो जायगा।' सुर-समुदायके स्तवनसे संतुष्ट होकर भगवान् गजाननने प्रकट होकर कहा—'जो लोग इस स्तोत्रसे मेरा स्तवन करेंगे, वे दरिद्रता और दुःखसे बचे रहेंगे। इस तीर्थमें सोत्साह सविधि स्नान-दान करनेवालेके कार्यमें भी विघ्न उपस्थित नहीं होगा। आपलोग भी इसका समर्थन करें।'*

भगवान् लम्बोदरके वचनसे प्रसन्न होकर देवताओंने उक्त पावन अविघ्न तीर्थके सम्बन्धमें तुरत एक स्वरसे कहा—'ऐसा ही होगा।'

फिर देवताओंने उल्लासपूर्वक यज्ञ पूर्ण कर लिया।

* * * *

अभिशप्त चन्द्र

एक समय गणेशजीके द्वारा चन्द्रमाको शाप प्राप्त हुआ था। गणेशपुराणकी वह कथा संक्षेपमें इस प्रकार है—

एक बारकी बात है, कैलासके शिव-सदनमें लोक-पितामह ब्रह्मा कर्पूरगौर शिवके समीप बैठे थे। उसी समय वहाँ देवर्षि नारद पहुँचे। उनके पास एक अतिशय सुन्दर और स्वादिष्ठ अपूर्व फल था। उक्त फल देवर्षिने करुणामय उमानाथके कर-कमलोंमें अर्पित कर दिया।

उक्त अद्भुत और सुन्दर फल पिताके हाथमें देखकर गणेश और कुमार दोनों बालक उसे आग्रहपूर्वक माँगने लगे। तब शिवने ब्रह्मासे पूछा—'ब्रह्मन्! देवर्षि-प्रदत्त यह अपूर्व फल एक ही है और इसे गणेश एवं कुमार दोनों चाहते हैं; आप बतायें, इसे किसे दूँ?'

चतुर्मुखने उत्तर दिया—'प्रभो! छोटे होनेके कारण इस एकमात्र फलके अधिकारी तो षडानन ही हैं।'

गङ्गाधरने फल कुमारको दे दिया। किंतु पार्वतीनन्दन गणेश सृष्टिकर्ता ब्रह्मापर कुपित हो गये।

लोक-पितामहने अपने भवन पहुँचकर सृष्टि-रचनाका प्रयत्न किया तो गजवक्त्रने अद्भुत विघ्न उत्पन्न कर दिया। वे अत्यन्त उग्ररूपमें विधाताके सम्मुख प्रकट हुए। विघ्नेश्वरके भयानकतम स्वरूपको देखकर विधाता भयभीत होकर काँपने लगे।

गजाननकी विकट मूर्ति एवं ब्रह्माका भय और कम्प देखकर चन्द्रदेव अपने गणोंके साथ हँस पड़े।

चन्द्रमाको हँसते देख गजमुखको बड़ा क्रोध आया। उन्होंने चन्द्रदेवको तुरंत शाप दे दिया—'चन्द्र! अब तुम किसीके देखनेयोग्य नहीं रह जाओगे और यदि किसीने तुम्हें देख लिया तो वह पापका भागी होगा।'**

गजकर्ण वहाँसे चले गये। चन्द्रमा श्रीहत, मलिन एवं दीन होकर अत्यन्त चिन्तापूर्वक मन-ही-मन कहने लगे—'अणिमादि गुणोंसे युक्त, जगत्-कारण-कारण परमेश्वरके साथ मैंने मूर्खकी भाँति दुराचरण कैसे किया? मैं सबके लिये अदर्शनीय, वर्णहीन और अत्यन्त मलिन हो गया। अब मैं पुनः कलाओंसे युक्त, सुन्दर, वन्द्य एवं देवताओंके लिये सुखद कैसे हो सकूँगा?'

सुधाकरके अदर्शनसे देवगण भी दुःखित हुए। अग्नि और इन्द्र आदि देवगण देवदेव गजाननके समीप पहुँचकर उनकी भक्तिपूर्वक स्तुति करने लगे।

देवताओंके स्तवनसे प्रसन्न होकर गजमुखने कहा—'देवताओ! मैं तुम्हारी स्तुतिसे संतुष्ट हूँ। वर माँगो, मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगा।'

देवता बोले—'प्रभो! आप चन्द्रमापर अनुग्रह करें, हमारी यही कामना है।'

गणेशने कहा—'एक वर्ष, छः मास या तीन मासके लिये चन्द्रमा अदर्शनीय हों या तुम्हें और कुछ अभीष्ट है?'

प्रभु गजाननकी वाणी सुनते ही देवगण उनके चरण-कमलोंमें दण्डवत् प्रणाम करने लगे।

'देवताओ! मैं अपना वचन मिथ्या कैसे कर दूँ? पर शरणागतका त्याग भी सम्भव नहीं।' महाप्रभु विकटने विकट परिस्थितिमें देवताओंसे कहा—'सुमेरु अपना स्थान त्याग दे, सूर्य गिर पड़े, अग्नि शीतल हो जाय और सागर अपनी मर्यादा छोड़ दे, पर मेरा वचन असत्य नहीं हो सकता। तथापि तुमलोग मेरी बात सुनो—

भाद्रशुक्लचतुर्थ्यां यो ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा ॥
अभिशापी भवेच्चन्द्रदर्शनाद् भृशदुःखभाग्।

(गणेशपु० १। ६१। २५-२६)

---

* स्तोत्रेणानेन ये भक्त्या मां स्तोष्यन्ति यतव्रताः।
तेषां दारिद्र्यदुःखानि न भवेयुः कदाचन ॥
अत्र ये भक्तितः स्नानं दानं कुर्युरतन्द्रिताः।
तेषां सर्वाणि कार्याणि भवेयुरिति मन्यताम् ॥

(ब्रह्मपुराण ११४। २२-२३)

** अदर्शनीयस्त्रैलोक्ये मद्वाक्याच्च भविष्यसि ॥
कदाचित्केन दृष्टः स महापातकवान् भवेत्।

(गणेशपु० १। ६१। ७-८)

'जो जानकर या अनजानमे ही भाद्र-शुक्ल-चतुर्थीको चन्द्रका दर्शन करेगा, वह अभिशप्त होगा। उसे अधिक दुःख उठाना पड़ेगा।'

परमप्रभु द्विरदाननके वचन सुन देवगण अत्यन्त मुदित हुए। उन्होने पुनः प्रभु-चरणोंमें प्रणाम किया। तदनन्तर वे चन्द्रमाके पास पहुँचे।

देवताओंने चन्द्रमासे कहा—'चन्द्र! गजमुखपर हँसकर तुमने अपनी मूढ़ताका ही परिचय दिया है। तुमने परम प्रभुकाअपराध किया और त्रैलोक्य संकटग्रस्त हो गया। हमलोगोंने त्रैलोक्यनायक परब्रह्मस्वरूप सर्वगुरु गजानन प्रभुको बड़े यत्नसे संतुष्ट किया। इस कारण उन दयामयने तुम्हे वर्षमें केवल एक दिन भाद्र-शुक्ल-चतुर्थीको अदर्शनीय रहनेका वचन देकर अपना शाप अत्यन्त सीमित कर दिया। तुम भी उन करुणामयकी शरण लो और उनकी कृपासे शुद्ध होकर यश प्राप्त करो।'

देवेन्द्रने सुधांशुको गजाननके एकाक्षरी[1] मन्त्रका उपदेश किया और फिर देवगण वहाँसे चले गये।

सुधाकर शुद्ध हृदयसे परम प्रभु गजमुखकी शरण हुए। वे पुण्यतोया जाह्नवीके दक्षिण तटपर उन सर्वसुखदायक प्रभु गजाननका ध्यान करते हुए उनके एकाक्षरीमन्त्रका जप करने लगे। इस प्रकार चन्द्रदेवने गणेशको संतुष्ट करनेके लिये बारह वर्षतक कठोर तप किया। इससे आदिदेव गजानन प्रसन्न हुए।

सिन्दूरारुण, रक्तमाल्याम्बरधर, रक्तचन्दनचर्चित, चतुर्भुज, महाकाय, कोटिसूर्याधिक दीप्तिमान् देवदेव गजानन चन्द्रमाके सम्मुख प्रकट हो गये। निशानाथने परम प्रभुके महान् स्वरूपको देखा तो वे आश्चर्यचकित ही नहीं हुए, भयसे काँपने लगे। किंतु फिर उन्होंने मन-ही-मन विचार किया—'मेरे सम्मुख दयामय आदिदेव गजानन ही मुझे कृतार्थ करनेके लिये प्रकट हुए हैं।' तब वे हाथ जोड़कर गद्गद-कण्ठसे उनकी स्तुति करने लगे—

नमामि देवं द्विरदाननं तं यः सर्वविघ्नं हरते जनानाम्।
धर्मार्थकामांस्तनुतेऽखिलानां तस्मै नमो विघ्नविनाशनाय॥
कृपानिधे ब्रह्ममयाय देव विश्वात्मने विश्वविधानदक्ष।
विश्वस्य बीजाय जगन्मयाय त्रैलोक्यसंहारकृते नमस्ते॥
त्रयीमयायाखिलबुद्धिदात्रे बुद्धिप्रदीपाय सुराधिपाय।
नित्याय सत्याय च नित्यबुद्धे नित्यं निरीहाय नमोऽस्तु नित्यम्॥
(गणेशपु० १।६१।४१—४३)

'मैं उन गजानन देवको नमस्कार करता हूँ, जो लोगोंके समस्त विघ्नोंका अपहरण करते हैं। जो सबके लिये धर्म, अर्थ और कामका विस्तार करते हैं, उन विघ्न-विनाशन गणेशको नमस्कार है। कृपानिधे! देव!! आप विश्वकी रचना करनेमें कुशल हैं, विश्वरूप तथा ब्रह्ममय हैं। इस विश्वके बीज (आदि कारण) हैं। जगत् आपका स्वरूप है। आप ही तीनों लोकोंका संहार करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है। तीनों वेद आपके ही स्वरूप—आपके ही तत्त्वके प्रतिपादक हैं। आप सम्पूर्ण बुद्धियोंके दाता, बुद्धिके प्रकाशक और देवताओंके अधिपति हैं। नित्य-बोधस्वरूप गणेश! आप नित्य, सत्य और निरीह हैं; आपको सदा-सर्वदा नमस्कार है।'

इस प्रकार स्तवन करते हुए सुधांशुने अन्तमें कहा—
अज्ञानदोषेण कृतोऽपराधस्तं क्षन्तुमर्होऽसि दयाकर त्वम्।
तवापि दोषः शरणागतस्य त्यागे महात्मन् कुरु मेऽनुकम्पाम्॥
(गणेशपु० १।६१।४४)

'दयानिधान! मैंने अज्ञान-दोषके कारण आपके प्रति अपराध किया है; उसके लिये आप क्षमा-प्रदान करें। महात्मन्! मैं आपकी शरणमे आया हूँ। यदि आप शरणागतका त्याग कर देंगे तो यह आपके लिये भी दोषकी बात होगी; अतः मुझपर कृपा कीजिये।'

चन्द्रमाके गद्गद-कण्ठसे किये गये स्तवन और दण्डवत्-प्रणामसे संतुष्ट होकर परम प्रभु गणेशने कहा—'चन्द्रदेव! पहले तुम्हारा जैसा रूप था, वैसा ही हो जायगा; किंतु जो मनुष्य भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थीको तुम्हे देख लेगा, वह निश्चय ही अभिशापका भागी होगा। उसे पाप, हानि एवं मूढ़ताका सामना करना पड़ेगा। उस तिथिको तुम अदर्शनीय रहोगे।* कृष्णपक्षकी चतुर्थीको जो लोगोंद्वारा व्रत किया जाता है, उसमे तुम्हारा उदय होनेपर यत्नपूर्वक मेरी और तुम्हारी पूजा होनी चाहिये। उस दिन लोगोंको तुम्हारा दर्शन अवश्य करना चाहिये; अन्यथा व्रतका फल नहीं मिलेगा। तुम एक अंशसे मेरे ललाटमे स्थित रहो, इससे मुझे प्रसन्नता होगी। प्रत्येक मासकी द्वितीया तिथिको लोग तुम्हें नमस्कार करेंगे।'

परम प्रभु गजाननके वर-प्रभावसे सुधांशु पूर्ववत् तेजस्वी, सुन्दर एवं वन्द्य हो गये।

१—'गं', 'ग्लौं' एवं 'गौं' यह एकाक्षरी मन्त्र है। (शारदातिलक, श्रीविद्यार्णव तन्त्र)

* भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थीको चन्द्र-दर्शनजनित दोष दूर करनेके लिये श्रीमद्भागवत, दशम स्कन्धके ५७वें अध्यायमें वर्णित स्यमन्तक-हरणका प्रसङ्ग पढ़ना या सुनना चाहिये।

भगवान् श्रीगणेश

श्रीगणेशके विभिन्न अवतार

(श्रीगणेशपुराणके आधारपर)

जब-जब आसुरी शक्तियोंके प्रबल होनेसे जन-जीवन कण्टकाकीर्ण हो जाता है, निर्दय दैत्य सत्त्वगुण-सम्पन्न सुर-समुदायका सर्वस्व हरणकर निरन्तर उन्हें पीड़ित करते हैं, धराधामपर सर्वत्र अनीति, अनाचार और दुराचारका साम्राज्य स्थापित हो जाता है, धर्मका ह्रास एवं अधर्मकी वृद्धि होने लगती है, तब-तब मङ्गल-मोद-निधान श्रीगणेशजी भू-भार-हरणार्थ अवतार ग्रहण करते हैं। वे गुणतत्त्वविवेचक आदिदेव गजमुख दैत्योंका विनाश कर देवताओंका अपहृत अधिकार उन्हें लौटाते हैं तथा प्रत्येक रीतिसे सद्धर्मकी स्थापना करते हैं, जिससे समस्त प्राणियोंको सुख-शान्तिकी अनुभूति होती है।

प्रत्येक युगमें उन महामहिम प्रभुके नाम, वाहन, गुण, लीला और कर्म आदि पृथक्-पृथक् होते हैं तथा उनके द्वारा जिन दैत्योंका संहार होता है, वे भी भिन्न-भिन्न ही होते हैं।

कृतयुगमें ये परमप्रभु गजानन सिंहारूढ 'महोत्कट विनायक'के नामसे प्रख्यात हुए, उन महा-तेजस्वी प्रभुके दस भुजाएँ थीं; त्रेतामें ये मङ्गल-मोद-प्रदाता गणेश मयूरारूढ 'मयूरेश्वर'के नामसे प्रसिद्ध हुए; उनकी कान्ति शुभ्र और भुजाएँ छः थीं; द्वापरमें मूषकवाहन शिवपुत्रकी 'गजानन' या 'गौरीपुत्र'के नामसे ख्याति हुई; उनकी अङ्ग-कान्ति अरुण थी एवं उनके चार भुजाएँ थीं, तथा कलिके अन्तमें ये धर्मरक्षक गजानन अश्वारोही 'धूम्रकेतु'के नामसे प्रसिद्ध होंगे, उनके दो भुजाएँ होंगी तथा उनकी अङ्ग-कान्ति धूम्रवर्णकी होगी।

(१) महोत्कट विनायक

असुर देवान्तक और नरान्तकका जन्म

अङ्गदेशके एक प्रसिद्ध नगरमें* रुद्रकेतु-नामक एक वेदज्ञ ब्राह्मण निवास करते थे। वे अग्निहोत्री, सर्वागम-विशारद, सुर-गो-द्विज-पूजक एवं ईश्वरोपासक थे। उनकी अनुपम रूप-लावण्य-सम्पन्ना सदाचारिणी पत्नीका नाम शारदा था। कुछ दिनों बाद शारदोत्पललोचना सती शारदा गर्भवती हुई। पत्नीमें अत्यधिक प्रीतिके कारण उसके विद्या-बुद्धि-सम्पन्न पति (द्विजवर रुद्रकेतु) ने उसका प्रत्येक दोहद (मनोरथ) पूर्ण किया।

इस प्रकार पतिपरायणा शारदाके गर्भसे नवें मासमें अत्यन्त कान्तिमान् दो यमज पुत्र उत्पन्न हुए। विशाल नेत्रवाले आजानुबाहु सुन्दर पुत्रोंको देखकर रुद्रकेतु अत्यन्त हर्षित हुए। उन्होंने मन-ही-मन कहा—'मेरा मनुष्य-जीवन और मेरी तपस्या धन्य है। आज मेरा वंश धन्य हो गया, जो मुझे अलौकिक दो पुत्र-रत्नोंकी प्राप्ति हुई है।'

रुद्रकेतुने अर्घ्यादिके द्वारा ब्राह्मणोंका सत्कार किया। उन्होंने आदिदेव मङ्गलमूर्ति गणेशकी पूजा तथा स्वस्ति-वाचन करवाया। ब्राह्मणोंके द्वारा मातृका-पूजन, भक्तिपूर्वक आभ्युदयिक श्राद्ध एवं जातकर्मादि संस्कार करवाये। तदनन्तर उन्होंने अत्यन्त भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंकी पूजा की और उन्हें धन एवं रत्नोंका दान दिया। अनेक प्रकारके सुखद वाद्य बजवाये और घर-घर शर्करा वितरण कराया।

श्रेष्ठ द्विज रुद्रकेतुके आमन्त्रणपर ज्योतिषी आये। रुद्रकेतुने अर्घ्यादिके द्वारा उनका सत्कार किया। दैवज्ञोंने बालकोंका नाम देवान्तक और नरान्तक रखते हुए कहा—'निस्संदेह ये बालक परम पराक्रमी सिद्ध होंगे।'

देवान्तक और नरान्तक परम सुन्दर एवं तेजस्वी बालक थे। उनकी मनोहारिणी बाल-क्रीड़ासे माता-पिता मन-ही-मन मुदित होकर अपने भाग्यकी सराहना करते। माता-पिता ही नहीं, उन दोनों बालकोंकी सुन्दर मुखाकृति, सुन्दर देहयष्टि एवं मनोहर मुसकान देखकर सभी उनकी ओर आकृष्ट हो जाते थे। उनकी बाल-क्रीड़ाएँ मनोहर ही नहीं, साहसपूर्ण भी होतीं। यह देखकर सभी चकित होते और मन-ही-मन कहते—'ये दोनों बालक निश्चय ही महान् पराक्रमी, साहसी और यशस्वी होंगे।' शारदाके पुत्रद्वयकी प्रशंसा

* कहते हैं, वह नगर बंगालमें पुण्यतोया जाह्नवीके तटपर अवस्थित था।

सुनकर उन्हें देखनेके लिये कितने ही लोग रुद्रकेतुके घर जाया करते थे।

तपस्वी रुद्रकेतुके पुत्रोंकी प्रशंसा सुनकर महामुनि नारद उनके यहाँ पधारे। मुनिवर रुद्रकेतु एवं उनकी सती पत्नी शारदाने ब्रह्मपुत्र देवर्षिके चरणोंमें अत्यन्त श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर उन्हें आसन दिया। उन्होंने अर्घ्यादिसे उनकी विधिवत् पूजा की। फिर अपने दोनों पुत्रोंको बुलाकर उन्हें प्रणाम करवाया।

देवर्षिने उन बालकोंको ध्यानपूर्वक देखा और फिर विप्रवर रुद्रकेतुसे कहा—'मैं आपके इन पुत्रोंकी प्रशंसा सुनकर ही इन्हें देखने आया हूँ। ये बालक वीर, धीर, पराक्रमी, त्रैलोक्यविजयी एवं यशस्वी होंगे। आप भाग्य-शाली हैं, जो आपके यहाँ ऐसे पुत्र उत्पन्न हुए।'

ब्रह्मपुत्रके वचन सुनकर सपत्नीक रुद्रकेतु अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने विनयपूर्वक देवर्षिसे कहा—'मुनिवर! आप इन बच्चोंपर अनुग्रह करें। ये बालक बल-वीर्य एवं ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न दीर्घजीवी हों। ये शत्रुओंको परा-जित करनेवाले हों तथा त्रैलोक्यव्यापिनी कीर्ति अर्जित करें।'

मुनिवर रुद्रकेतु एव उनकी साध्वी पत्नी शारदाके श्रद्धा-विश्वासपूर्ण वचन सुनकर देवर्षिने उन बालकोंके मस्तकपर अपना वरदहस्त फेरकर कहा—'ये देवान्तक और नरान्तक तपश्चरणके द्वारा देवाधिदेव महादेवको संतुष्ट करें।' महामुनि नारदने उन्हें पञ्चाक्षरी मन्त्र (नमः शिवाय)का उपदेश भी कर दिया। फिर वे अपनी वीणापर मधुर हरि-नामका कीर्तन करते हुए ब्रह्मलोकके लिये प्रस्थित हुए।

बन्धुद्वयका तप और वर-प्राप्ति

देवान्तक और नरान्तकने माता-पिताके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर उनकी अनुमति प्राप्तकर भगवान् शंकरको प्रसन्न करनेके लिये तपश्चरणार्थ एकान्त वनमें पहुँचे। वहाँ विशाल गिरि-कन्दराएँ थीं; पत्र-पुष्प और लता-जालसे मण्डित अत्यन्त शान्त वन-प्रदेश था; समीपस्थ निर्झरसे सदा जल झरता रहता था। दोनो मुनि-कुमारोंने वहीं शिवकी आराधना करनेका निश्चय किया।

मुनिवर रुद्रकेतुके पुत्र देवान्तक और नरान्तक एक पैरके अँगूठेपर स्थिरभावसे खड़े हो गये। वे पार्वती-वल्लभ शिवका ध्यान करते हुए देवर्षि-प्रदत्त महिमामय पञ्चाक्षरी मन्त्रका जप करने लगे। इस प्रकार भगवान् शशाङ्कशेखरका ध्यान एवं उनके मन्त्रका जप करते हुए उन दोनों भाइयोंने दो सहस्र वर्षोंतक केवल वायुका ही आहार किया। फिर एक हजार वर्षतक केवल सूखे पत्ते खाकर वे तपमें लगे रहे। इस प्रकार उन अद्भुत मुनिकुमारोंने दस सहस्र वर्षोंतक असह्य कष्ट सहते हुए उमानाथ शिवके पावनतम मन्त्रका जप किया। फलस्वरूप उनका पाञ्चभौतिक कलेवर दीप्तिमान् हो उठा। उनके तेजके सम्मुख प्रभाकरकी प्रभा मन्द पड़ने लगी।

उनकी तपस्यासे भक्तवत्सल करुणामूर्ति आशुतोष तुष्ट हुए। वृषारूढ, व्याघ्राजिनधर, कर्पूरगौर, नीलकण्ठ, पञ्चमुख, त्रिलोचन, दशबाहु, गङ्गाधर प्रकट हुए। उनके मङ्गलमय कण्ठमे फणिहार, मुण्डमाला एवं दाहिने करकमलमें डमरू सुशोभित था। देवाधिदेव चन्द्रशेखरके मङ्गलकर अङ्गोंपर नाना प्रकारके अलंकार शोभा पा रहे थे।

देवान्तक और नरान्तकने जब गिरिजा-मन-मानस-मरालका दर्शन किया, तब वे आनन्दातिरेकसे नृत्य करने लगे। सफल-मनोरथ मुनिकुमारोंने नृत्यके बाद पृथ्वीपर लेटकर त्रिपुरारिके वाञ्छाकल्पतरु चरण-कमलोंमे प्रणाम किया। फिर उन्होंने बद्धाञ्जलि हो विषम विलोचन शिवकी स्तुति करते हुए कहा—

'देवाधिदेव प्रभो! हम आपकी मन-वाणीसे अगोचर देवदुर्लभ मञ्जुल-मूर्तिके दर्शन कर रहे हैं, अतएव हमारे पितर, वंश, जीवन, जन्म, देह, नेत्र और तप—सभी सफल हुए—सभी धन्य हुए। सनकादि मुनि एवं सहस्रवदन शेष भी आपकी स्तुति करनेमें समर्थ नहीं हैं। आप सर्वथा दीन-हीनको सर्वाङ्गसुन्दर, धनाढ्य और अत्यन्त दरिद्रको राजा बना सकते हैं। आप मृतकको जीवित और जीवितको मृतक-तुल्य करनेमे समर्थ हैं। सर्वसमर्थ महामहिमामय करुणावरुणालय! आपके लिये कुछ भी असम्भव नहीं। आप हमपर कृपा करें।'

'मैं तुम्हारे तप और स्तवनसे संतुष्ट हूँ।' प्रसन्न होकर सर्वसौभाग्यमूल वृषभध्वजने मुनि रुद्रकेतुके पुत्रोसे कहा—'तुम अभीष्ट वर माँगो।'

'देवाधिदेव! सर्वेश्वर! जगदीश्वर! यदि आप हमारे तपसे संतुष्ट हैं तो कृपापूर्वक हमें वर प्रदान कीजिये।' देवान्तक और नरान्तकने हर्ष-गद्गद वाणीमे वर-याचना की—'देव, देवेन्द्र, असुर, मनुष्य, यक्ष, राक्षस, पिशाच,

गन्धर्व, अप्सरा और किंनरोंसे, सभी शस्त्रोंसे, पशु, ग्रह, नक्षत्र, भूत, सर्प, कृमि, कीट (विधातारचित सृष्टिमें किसी भी प्राणीसे) एवं वन या ग्राममें हमारी मृत्यु न हो। देवेश्वर! आप हमें त्रैलोक्यका राज्य एवं अपने चरणोंकी सुदृढ भक्ति प्रदान करें।'

भगवान् भूतनाथने अपना पाणिपङ्कज देवान्तक और नरान्तकके मस्तकपर फेरते हुए कहा—'तुम्हारी सारी कामनाएँ पूरी होंगी। तुमलोग त्रिलोकीपर शासन करते हुए सृष्टिके सभी प्राणियोंसे निर्भय रहोगे।'

यह वरदान दे आशुतोष अन्तर्धान हो गये। सफल-मनोरथ देवान्तक और नरान्तक घर लौटे। उन्होंने अपने माता-पिताके चरणोंमें प्रणाम कर उन्हें अपने तप, शिव-दर्शन एवं वर-प्राप्तिका विवरण सुनाया।

'तुमलोगोंने अपने जीवनको पवित्र एवं कुलको यशस्वी किया।' पुत्रोंके मस्तक सूँघकर पिताने उन्हें अपने अङ्कमें भर लिया।

हर्षविह्वल मुनि रुद्रकेतु एवं उनकी पतिपरायणा सहधर्मिणी शारदाने ब्राह्मणों एवं तपस्वियोंको आदरपूर्वक आमन्त्रित कर उनकी पूजा की। उन्हें सुन्दर-सुस्वादु भोजन कराकर अनेक प्रकारकी बहुमूल्य दक्षिणा प्रदान की। ब्राह्मणोंने प्रसन्न होकर रुद्रकेतुके यशस्वी पुत्रोंको आशीर्वाद दिया और ब्राह्मण-दम्पतिकी प्रशंसा करते हुए वे अपने-अपने आश्रमोंके लिये प्रस्थित हुए।

भुजगेन्द्रहार शिवके वर-प्रभावसे त्रैलोक्य-विजयी देवान्तक और नरान्तक अत्यन्त शक्तिशाली और पराक्रमी हो गये। एक दिन देवान्तकने भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंकी पूजा की। उन्हें पुष्कल दक्षिणासे संतुष्ट कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। फिर उसने अपने भाई नरान्तकसे कहा—'भगवान् शंकरके वरदानसे मैं स्वर्गपर विजय प्राप्त करने जाता हूँ; तुम मृत्युलोक और पातालको अपने अधीन कर लो।'

देवान्तक शुभ दिन और शुभ मुहूर्त्त देखकर अमरावती-पर जा चढ़ा। वहाँ वह नन्दनवनको नष्ट करने लगा। देवताओंने उससे युद्ध किया, पर वे सभी पराजित हो गये। स्वयं वज्रायुध शचीपतिने उसका सामना किया, किंतु देवान्तकके पौरुषके सम्मुख वे टिक नहीं सके। उनका कठोर वज्र खण्डित हो गया। सुरेन्द्रने यत्नपूर्वक प्राण-रक्षा की। देवताओंने भागकर सुमेरु-गिरि-गह्वरमें शरण ली। वे कन्द-मूलका आहार करते हुए दुःखपूर्वक जीवन व्यतीत करनेको विवश हुए*।

पृथ्वीसे असंख्य असुर स्वर्ग पहुँचे। उन असुरों एवं अधीनस्थ सुरोंको देवान्तकने धन और अलंकार प्रदान किये। अनेक तीर्थोंसे जल आये। शङ्ख, भेरी, दुन्दुभि और मृदङ्गादि वाद्य बजने लगे। ऋषियोंने मन्त्रपाठ करते हुए वीरवर देवान्तकको स्वर्गाधिप-पदपर अभिषिक्त किया।

इधर असुर-सैन्य लेकर नरान्तकने पृथ्वीके नृपतियोंपर आक्रमण किया। कितने नरेश पराक्रमी असुरके हाथों मारे गये और कितने राजाओंने उसकी शरण ग्रहण की। प्रबल असुरके आतङ्कसे कितने नरपाल अपना राज्य छोड़कर यत्र-तत्र पलायित हो गये। समुद्रपर्यन्त सम्पूर्ण भूमण्डल नरान्तकके अधीन हो गया। ऋषि-मुनियोंने यज्ञ और स्वाध्याय छोड़कर पर्वतोंकी-गुफाओंमें आश्रय लिया।

तदनन्तर नागलोकपर विजय प्राप्त करनेके लिये नरान्तक-ने असुरोंकी युद्ध-कुशल वीर वाहिनी और कूटनीतिमें दक्ष एवं परमधूर्त कपटशिरोमणि असुरोंको भेजा। असुरोंने गरुड़का वेष धारण किया और नागलोकमें उपद्रव प्रारम्भ कर दिया। असंख्य वीर नाग काल-कवलित हुए। नागलोक त्रस्त हो गया। नागपत्नियाँ क्रन्दन करने लगीं। इससे विवश होकर नागलोकने नरान्तककी अधीनता स्वीकार की। सहस्र फणधारी शेषनागने नरान्तकको वार्षिक कर देना स्वीकार किया।

नरान्तकने एक वीर दैत्यको नागलोकका अधिपति बनाया। उसने सम्पूर्ण पातालमें घोषणा की—'असुर-शासनमें सभी नाग शान्तिपूर्वक रहें। किसी भी नागके द्वारा नियमोल्लङ्घन होनेपर सम्पूर्ण नागजाति दण्डित होगी।'

भूतल और रसातलमें नरान्तकके शासनका संवाद प्राप्तकर देवान्तक अत्यन्त पुलकित हुआ और अपने भाईके स्वर्गाधिप होनेके समाचारसे नरान्तककी प्रसन्नताकी भी सीमा न रही। असुर भ्रातृद्वय त्रैलोक्यका निष्कण्टक राज्य करने लगे। देवान्तक स्वर्गकी दुर्लभ बहुमूल्य वस्तुओंका प्रेमोपहार पृथ्वीपर अपने भाईके पास भेजता और नरान्तक भूतल एवं रसातलकी उत्तमोत्तम सामग्रियाँ अपने स्वर्गाधिप बन्धुके पास भेजता रहता। इस प्रकार देवान्तक और नरान्तकका सर्वत्र

* सर्वे सुरा गता हैमगिरिगह्वरमुत्तमम्।
कन्दमूलफलान्यादन्निन्युर्दुःखेन वासरान्॥
(गणेशपु० २। ३। ३९)

एकच्छत्र साम्राज्य स्थापित हो गया। देवता, तपस्वी, ऋषि-मुनि एवं सदाचारी ब्राह्मण यत्र-तत्र अत्यन्त कष्टपूर्वक जीवन-निर्वाह कर रहे थे।

* * *

महोत्कटका प्राकट्य

महामुनि कश्यप स्रष्टाके मानसपुत्र थे। वे अत्यन्त बुद्धिमान्, पुण्यात्मा, धर्मशील, तपस्वी, संयतेन्द्रिय, कारुणिक, दुःखशोकावमर्दन, भूत-भविष्य और वर्तमानके ज्ञाता, वेद-वेदान्त-शास्त्रोंमें निष्णात, सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ एवं मनोनिग्रही थे। उनकी परम पतिव्रता पत्नी अदिति समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न एवं अदीना थीं। अद्भुत शीलवती होनेके कारण वे महर्षि कश्यपकी विशेष कृपाभाजन थीं। उन्हीं अनुपमगुणगणसम्पन्ना अदितिकी कोखसे इन्द्रादि देव उत्पन्न हुए थे। माता अदिति अपने देवपुत्रोंके पराभव एवं यातनासे मन-ही-मन चिन्तित-दुःखी रहने लगीं।

एक बारकी बात है, महर्षि कश्यप अग्निहोत्र कर चुके थे। सुगन्धित यज्ञ-धूम आकाशमें फैला हुआ था। इसी समय पुण्यमयी अदिति पतिके समीप पहुँचीं। परम तपस्वी पति कश्यपके चरणोंमें प्रणाम कर उन्होंने निवेदन किया—'स्वामिन्! साध्वी स्त्रियोंके लिये पतिके बिना कोई गति नहीं। अतएव मैं कुछ निवेदन करना चाहती हूँ। यदि आप आज्ञा प्रदान करें तो प्रार्थना करूँ?'

'कल्याणि! तुम्हारे मनमें जो कुछ हो, निस्संकोच कहो।' महर्षि कश्यपने स्नेहसिक्त वाणीमें उत्तर दिया।

'इन्द्रादि देवगणोंको तो मैंने पुत्ररूपमें प्राप्त किया है।' साध्वी अदितिने अपने पति महर्षि कश्यपसे विनयपूर्वक कहा—'किंतु पूर्ण परात्पर, सच्चिदानन्द परमात्मा मेरे पुत्ररूपसे प्राप्त हों और मैं उनकी सेवा करूँ, यह कामना मेरे मनमें बार-बार उदित हो रही है। वे परम प्रभु किस प्रकार मेरे पुत्र होकर मुझे कृतकृत्य करेंगे, आप कृपापूर्वक बतलानेका कष्ट कीजिये।'*

'प्रिये! ब्रह्मादि देवताओं और मुनियोंके लिये भी अगोचर, निर्गुण, निरहंकार, निष्काम, निर्विकल्प, मायाके आधार, मायातीत, मायाविस्तारक, कार्यकारणकारण, करुणामय प्रभु कठोर तपश्चरणके बिना साकार-विग्रह कैसे धारण करेंगे?' अपनी पतिव्रता पत्नीकी सर्वोत्तम कामनासे अतिशय प्रसन्न होकर महर्षि कश्यपने उत्तर दिया।

'देव! यह पवित्रतम अनुष्ठान मैं किस प्रकार करूँ?' सती अदितिने सोल्लास पूछा—'किसका ध्यान और किस मन्त्रका जप करूँ?'

महर्षि कश्यपने अपनी प्रिय पत्नी अदितिको विनायकका ध्यान, उनका मन्त्र और न्याससहित पुरश्चरणकी पूरी विधि विस्तारपूर्वक बता दी और उन्हें इस उपासनाके लिये प्रोत्साहित भी किया।

महाभागा अदिति अत्यन्त प्रसन्न हुईं। उन्होंने अपने परम पवित्र तपस्वी पतिके चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम कर अत्यन्त आदरपूर्वक उनकी पूजा की। फिर उनकी आज्ञा प्राप्त कर कठोर तप करनेके लिये प्रस्थित हुईं।

देवमाता अदिति एकान्त शान्त अरण्यमें पहुँचीं। वहाँ उन्होंने स्नान कर शुद्ध वस्त्र धारण किये। पवित्र आसनपर बैठकर उन्होंने अपने मन और इन्द्रियोंका निरोध कर लिया। फिर सविधि न्यास कर देवाधिदेव विनायकका ध्यान करती हुई प्रीतिपूर्वक उनके मन्त्रका जप करने लगीं।

भगवती अदिति देवदेव विनायकके ध्यान और जपमें अत्यन्त तन्मय हो गयीं। वे जप-ध्यानपरायणा देवमाता अदिति सर्वथा निराहार रहती थीं; केवल वायुपर उनका शरीर टिका हुआ था। उनकी उस कठिन तपस्याके प्रभावसे वनके समस्त प्राणी अपना स्वाभाविक वैरभाव त्यागकर निर्वैर हो गये।

'पता नहीं, माता अदिति क्या चाहती हैं?' सोचकर देवता भयभीत होने लगे। इस प्रकार उन्हें कठोर तपश्चरणका दुस्सह कष्ट सहते हुए सौ वर्ष व्यतीत हो गये।

भगवती अदितिकी सुदृढ़ प्रीति एवं कठोर तपसे कोटि-कोटि भुवनभास्करकी प्रभासे भी अधिक परमतेजस्वी, कामदेवसे भी अधिक सुन्दर देवदेव गजानन विनायक उनके सम्मुख प्रकट हो गये। उनके दस भुजाएँ थीं। कानोंमें अनुपम कुण्डल झिलमिला रहे थे। उनकी दोनों पत्नियाँ

---

* परमात्मा चिदानन्द ईश्वरो यः परात्परः।
यदा स्वपुत्रतामेष्येत्तदा मे स्यात् स्थिरं मनः॥
तस्य सेवां कर्तुमीहे उपायं तत्र मे वद।
येन स पुत्रतामेष्येत् कृतकृत्य मनो भवेत्॥
(गणेशपु० २।५।११-१२)

सिद्धि और बुद्धि उनके साथ थीं। उनके मङ्गल कण्ठमें मोतियोंकी माला सुशोभित थी। उन्होंने परशु और कमल धारण किये थे। उनकी कटिमें स्वर्णिम कटिसूत्र एवं उनके ललाटमें कस्तूरीका तिलक लगा था। उन्होंने नाभिपर सर्प धारण कर रखा था। उन मङ्गल-विधायक प्रभुके मङ्गल-विग्रहपर दिव्याम्बर शोभा दे रहे थे।*

परशुधर दशभुज विनायकके इस परम तेजस्वी रूपका दर्शन करते ही महिमामयी तपस्विनी अदिति भयभीत होकर काँपने लगीं। उनके नेत्र मुँद गये और वे मूर्च्छित होकर धरतीपर गिर पड़ीं।

'तुम दिवारात्रि जिनका ध्यान एवं जप करती हो, मैं वही हूँ।' माता अदितिको चेतना एवं धैर्य प्रदान करते हुए परमप्रभु विनायकने कहा—'मैं तुम्हारे अत्यन्त घोर तपसे संतुष्ट होकर तुम्हें वर प्रदान करने आया हूँ। तुम इच्छित वर माँगो। मैं तुम्हारी कामना अवश्य पूरी करूँगा।'

'प्रभो! आप ही जगत्के स्रष्टा, पालक और संहारकर्ता हैं।' अपने इष्टको सम्मुख देखकर देवमाता अदितिने उनके चरण-कमलोंमें प्रणाम किया और फिर दोनों हाथ जोड़कर प्रेमगद्गद वाणीमें कहने लगीं—'आप सर्वेश्वर, नित्य, निरञ्जन, प्रकाशस्वरूप, निर्गुण, निरहंकार, नाना रूप धारण करनेवाले और सर्वस्व प्रदान करनेवाले हैं। सौम्यरूप प्रभो! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और मेरी आकाङ्क्षाकी पूर्ति करना चाहते हैं तो कृपापूर्वक मेरे पुत्ररूपमें प्रकट होकर मुझे कृतार्थ करें। आपके द्वारा दुष्टोंका विनाश एवं साधु-परित्राण हो और सामान्य-जन कृतकृत्य हो जायँ।'†

* तेजोराशिः पुरस्तस्याः सूर्यकोटिसमप्रभः।
गजाननो दशभुजः कुण्डलाभ्यां विराजितः॥
कामातिसुन्दरतनुः सिद्धिबुद्धिसमायुतः।
मुक्तामालां च परशुं बिभ्रद्यो मेघपुष्पजम्॥
काञ्चनं कटिसूत्रं च तिलकं मृगनाभिजम्।
उरगं नाभिदेशे तु दिव्याम्बरविराजितम्॥
(गणेशपु० २।५।२९-३१)

† यदि तुष्टोऽसि देवेश यदि देयो वरो मम।
तदा मे पुत्रतां याहि ततो मे कृतकृत्यता॥
ततस्ते सेवनं यास्ये साधूनां पालनं भवेत्।
दुष्टानां निधनं देव लोकानां कृतकृत्यता॥
(गणेशपु० २।५।४१-४२)

'मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा।' वाञ्छाकल्पतरु विनायकने तुरंत कहा—'साधुजनोंका रक्षण, पृथ्वीके कण्टकरूप दुष्टोंका विनाश एवं तुम्हारी इच्छाकी पूर्ति करूँगा।'‡

इतना कहकर देवदेव विनायक अन्तर्धान हो गये।

देवमाता अदिति अपने आश्रमपर लौटीं। उन्होंने अपने पतिके चरणोंमें प्रणाम कर उन्हें सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया। महर्षि कश्यप आनन्दमग्न हो गये।

* * *

देवान्तक और नरान्तकके कठोरतम क्रूर शासनमें समस्त देव-समुदाय और ब्राह्मण अत्यन्त भयाक्रान्त हो कष्ट पा रहे थे। वे अधीर और अशान्त हो गये थे। दुष्ट दैत्योंके भारसे पीड़ित व्याकुल धरित्री कमलासनके समीप पहुँची। हाथ जोड़े साश्रुनयना धराने चतुर्मुखसे निवेदन किया—'समस्त देवताओंसहित सहस्राक्ष एवं ऋषिगण गिरि-गुफाओंमें छिपकर यन्त्रणा पा रहे हैं। यज्ञ-व्रतादि स्थगित हो गये। दानवकुलके असह्य भारसे व्यथित होकर मैं आपकी शरणमें आयी हूँ। आप दुष्ट दैत्योंके विनाश-का यत्न कीजिये, अन्यथा मैं वनों, पर्वतों और सृष्टिके सम्पूर्ण प्राणियोंसहित रसातलमें चली जाऊँगी।'

'स्वयं मैं, समस्त लोकपाल, इन्द्रादि देवगण और ऋषिगण स्वधा-स्वाहारहित हो अतिशय दुःख पा रहे हैं।' विधाताने धरित्रीकी वाणी सुनकर कहा—'देवि! हम सभी स्थान, मन्त्र और आचारसे भ्रष्टप्राय हो गये हैं; अतएव इस विपत्तिसे त्राण पानेके लिये हम सभी करुणामय देवदेव विनायककी प्रार्थना करें।'

ब्रह्माके वचन सुन आदिदेव विनायकको संतुष्ट करनेके लिये उनके साथ पृथ्वी, देवता और ऋषिगण हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे—

नमो नमस्तेऽखिललोकनाथ नमो नमस्तेऽखिललोकधामन्।
नमो नमस्तेऽखिललोककारिन्नमो नमस्तेऽखिललोकहारिन्॥
नमो नमस्ते सुरशत्रुनाश नमो नमस्ते हृतभक्तपाश।
नमो नमस्ते निजभक्तपोष नमो नमस्ते लघुभक्तितोष॥
निराकृते नित्यनिरस्तमाय परात्पर ब्रह्ममयस्वरूप।
अक्षराक्षरातीतगुणैर्विहीन दीनानुकम्पिन् भगवन्नमस्ते॥

‡ अहं ते पुत्रतां यास्ये पास्ये साधूंश्च कण्टकान्।
हनिष्ये सकलां वाञ्छां पूरयिष्ये तवापि च॥
(गणेशपु० २।५।४३)

निरामयायाखिलकामपूर निरञ्जनायाखिलदैत्यदारिन् ।
नित्याय सत्याय परोपकारिन् समाय सर्वत्र नमो नमस्ते ॥
(गणेशपु० २ । ६ । १०–१३)

'हे सर्वलोकेश्वर ! आपको नमस्कार है । हे सर्वलोकाधार प्रभो ! आपको बार-बार नमस्कार है । हे निखिल सृष्टिके कर्ता एवं निखिल सृष्टिके संहारक ! आपको नमस्कार है । देव-शत्रुओंके विनाशक एवं भक्तोंका पाश नष्ट करनेवाले प्रभो ! आपको नमस्कार है । आप अपने भक्तोंका पोषण करते एवं उनकी थोड़ी-सी भक्तिसे संतुष्ट हो जाते हैं; आपको नमस्कार है । आप निराकार एवं परात्पर ब्रह्मस्वरूप, क्षर-अक्षरसे अतीत, सत्त्वगुणादिसे रहित एवं दीनजनोंपर अनुकम्पा करनेवाले हैं; आपको बार-बार नमस्कार है । आप निरामय, सम्पूर्ण कामनाओंसे पूर्ण, निरञ्जन, सम्पूर्ण दैत्योंका दलन करनेवाले, नित्य, सत्य, परोपकारी और सर्वत्र समरूपसे निवास करते हैं; आपको हमारा बार-बार नमस्कार है ।'

इस प्रकार स्तवन करते हुए देवता और मुनियोंने दुःखसे अत्यन्त व्याकुल होकर पुनः विनायककी स्तुति करते हुए कहा—

हाहाभूतं जगत्सर्वं स्वधास्वाहाविवर्जितम् ।
वयं मेरुगुहां याता आरण्याः पशवो यथा ॥
अतोऽमुं त्वं महादैत्यं जहि विश्वम्भराधुना ।
(गणेशपु० २ । ६ । १५-१५½)

'देव ! सम्पूर्ण जगत् हाहाकारसे व्याप्त एवं स्वधा और स्वाहासे रहित हो गया है । हम सब पशुओंकी तरह सुमेरु-पर्वतकी कन्दराओंमें रह रहे हैं । अतएव हे विश्वम्भर ! आप इन महादैत्योंका विनाश करें ।'

इस प्रकार करुण प्रार्थना करनेपर देवताओं और ऋषियोंने आकाशवाणी सुनी—

कश्यपस्य गृहे देवोऽवतरिष्यति साम्प्रतम् ।
करिष्यत्यद्भुतं कर्म पदानि वः प्रदास्यति ॥
दुष्टानां निधनं चैव साधूनां पालनं तथा ।
(गणेशपु० २ । ६ । १७-१७½)

'सम्प्रति देवदेव गणेश महर्षि कश्यपके घरमें अवतार लेंगे और अद्भुत कर्म करेंगे । वे ही आपलोगोंको पूर्वपद भी प्रदान करेंगे । वे दुष्टोंका संहार एवं साधुओंका पालन करेंगे ।'

'देवि ! तुम धैर्य धारण करो ।' आकाशवाणीसे आश्वस्त होकर पद्मयोनिने मेदिनीसे कहा—'समस्त देवता पृथ्वीपर जायँगे और निस्संदेह महाप्रभु विनायक अवतार ग्रहणकर तुम्हारा कष्ट निवारण करेंगे ।'

पृथ्वी, देवता तथा मुनिगण विधाताके वचनसे प्रसन्न होकर अपने-अपने स्थानोंको चले गये ।

* * *

कुछ समय बाद सती कश्यप-पत्नी अदितिने गर्भ धारण किया । उनके शरीरका तेज उत्तरोत्तर बढ़ने लगा । इस प्रकार नौ मास पूरे हुए । शुभ मुहूर्त, मङ्गलमयी वेलामें महाभागा अदितिके सम्मुख अद्भुत, अलौकिक, परमतत्त्व प्रकट हुआ ।

दशभुजो बहुबलः कर्णकुण्डलमण्डितः ।
कस्तूरीविलसद्भालो मुकुटभ्राजिमस्तकः ॥
सिद्धिबुद्धियुतः कण्ठे रत्नमालाविभूषितः ।
चिन्तामणिलसद्वक्षा जपापुष्पारुणाधरः ॥
उन्नसो भ्रुकुटीचारुललाटो दन्तदीप्तिमान् ।
देहकान्त्या हततमा दिव्याम्बरयुतः शुभः ॥
(गणेशपु० २ । ६ । २३–२५)

'वह अत्यन्त बलवान् था । उसके दस भुजाएँ थीं । कानोंमें कुण्डल, ललाटपर कस्तूरीका शोभाप्रद तिलक और मस्तकपर मुकुट सुशोभित था । सिद्धि-बुद्धि साथ थीं और कण्ठमें रत्नोंकी माला शोभा देती थी । वक्षपर चिन्तामणिकी अद्भुत सुषमा थी और अधरोष्ठ जपापुष्प-तुल्य अरुण थे । नासिका ऊँची थी और सुन्दर भ्रुकुटिके संयोगसे ललाटकी सुन्दरता बढ़ गयी थी । वह दाँतसे दीप्तिमान् था । उसकी अपूर्व देह-कान्ति अन्धकारको नष्ट करनेवाली थी । उस शुभ बालकने दिव्य वस्त्र धारण कर रखा था ।'

महिमामयी अदिति उस अलौकिक सौन्दर्यको देखकर चकित और आनन्द-विह्वल हो रही थीं । उस समय परम तेजस्वी अद्भुत बालकने कहा—'माता ! तुम्हारी तपस्याके फलस्वरूप मैं तुम्हारे यहाँ पुत्ररूपसे आया हूँ । मैं दुष्ट दैत्यों-का संहार कर साधुपुरुषोंका हित एवं तुम्हारी कामनाओंकी पूर्ति करूँगा ।'

'आज मेरे अद्भुत पुण्य उदित हुए हैं, जो साक्षात् गजानन मेरे यहाँ अवतरित हुए ।' हर्ष-विह्वल माता अदिति-ने विनायकदेवसे कहा—'यह मेरा परम सौभाग्य है; जो

चराचरमें व्याप्त, निराकार, नित्यानन्दमय, सत्यस्वरूप परब्रह्म परमेश्वर गजानन मेरे पुत्रके रूपमें प्रकट हुए। किंतु अब आप इस अलौकिक एवं परम दिव्य रूपका उपसंहार कर प्राकृत बालककी भाँति क्रीड़ा करते हुए मुझे पुत्र-सुख प्रदान करें।*

तत्क्षण अदितिके सम्मुख अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट सशक्त बालक धरतीपर तीव्र क्रन्दन करने लगा। उसके रुदनकी ध्वनि आकाश, पाताल और धरतीपर दसों दिशाओंमें व्याप्त हो गयी। उस अद्भुत बालकके रोदनसे धरती काँपने लगी। वन्ध्या स्त्रियाँ गर्भवती हो गयीं। नीरस वृक्ष सरस हो गये। देव-समुदायसहित इन्द्र आनन्दित और दैत्यगण भयभीत हो गये।

महर्षि कश्यपकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। उन्होंने हर्षोल्लासपूर्वक शास्त्र-विधिसे बालकका जातकर्म-संस्कार करवाया; नालच्छेदन आदि कराये। उन्होंने ब्राह्मणों और मुनियोंको विविध प्रकारके तुष्टिकर दान दिये और घर-घर मधुर वायन भिजवाये।

महर्षि कश्यपकी पत्नी अदितिके अङ्कमें बालक आया जानकर ऋषि-मुनि एवं ब्रह्मचारी आदि आश्रमवासी तथा देवगण सभी प्रसन्न थे। बालक अद्भुत और तेजस्वी तो था ही, वह अत्यन्त बलवान् था। उसकी मांसपेशियाँ सुदृढ़ थीं एवं उसका दीप्तिमय मुख प्रभावशाली था। बालकके स्वरूपके अनुसार पिता कश्यपने उसका नामकरण किया—'महोत्कट।'

तेजस्वी महोत्कटकी ख्याति सुनकर उनके दर्शनार्थ वसिष्ठ-वामदेव आदि परमर्षि भी महर्षि कश्यपके आश्रमपर पहुँचे। मुनि कश्यपने उनकी आसन, पाद्य और अर्घ्यके द्वारा प्रीतिपूर्वक पूजा की। उन्हें गायें प्रदान कीं; फिर हाथ जोड़कर श्रद्धापूरित शब्दोंमें कहा—'मेरा परम सौभाग्य है, जो आप-जैसे तपोधनोंने यहाँ पधारनेका अनुग्रह किया। मुझे आज्ञा प्रदान करें कि मैं आपका क्या कार्य करूँ।'

'मुनिवर! देवर्षि नारदके द्वारा आपके अद्भुत, अलौकिक, परम तेजस्वी और लोकोद्धारक पुत्र महोत्कटके जन्मका समाचार पाकर हम उसे देखने आये हैं।' वसिष्ठने कहा—'यहाँ आनेका यही प्रयोजन है।'

* इदं रूपं परं दिव्यमुपसंहर साम्प्रतम्।
प्राकृतं रूपमास्थाय क्रीडस्व कुहको यथा॥
(गणेशपु० २। ६। ३५)

माता अदिति तुरंत अपने प्राणप्रिय पुत्र महोत्कटको ले आयीं। वसिष्ठने बालकके भाल, कर-कमल एवं पाद-पङ्कजोंको ध्यानपूर्वक देखा और वे बोले—'इस बालकमें शुभ बत्तीस गुण विद्यमान हैं। यह महोत्कट जगत्‌के मङ्गलके लिये अत्यन्त भयानक कर्म करेगा। इस परम तेजस्वी एवं बल-पौरुष-सम्पन्न पराक्रमी बालकके रूपमें आदि-मध्यान्तहीन साक्षात् विनायक ही अवतरित हुए हैं। इस बालकके जीवनमें रह-रहकर अनेक आपदाएँ आयेंगी; किंतु वे सभी शान्त हो जायँगी। आपलोग सावधानतापूर्वक इसकी रक्षा करें।'

महर्षि वसिष्ठने कश्यपनन्दन महोत्कटके ध्वज-वज्राङ्कुश-शोभित अरुण चरण-कमलोंकी पूजा की; फिर उन्होंने महोत्कटकी स्तुति करते हुए कहा—'हे देव! असुरोंके अनाचारसे त्रैलोक्य पीड़ित है। आप कृपापूर्वक दुष्ट दानव-कुलका दलन कर साधु-परित्राण करें और भूतलका भार उतारें*।'

समागत मुनियोंने पुनः-पुनः अदितिनन्दन महोत्कटके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर अपने-अपने आश्रमोंके लिये लौट गये।

प्रख्यात महर्षि वसिष्ठ-वामदेवादिके आगमन एवं उनके शुभ वचनसे कश्यपाश्रमके समीप रहनेवाले सभी ब्रह्मचारियों, ऋषियों एवं उनकी पत्नियोंके मनमें यह दृढ़ विश्वास हो गया कि निश्चय ही भाग्यवती अदितिके अङ्कमें चराचरनायक आदिदेव विनायक ही महोत्कटके रूपमें क्रीड़ा कर रहे हैं और इनके द्वारा अनीति-अधर्मके मूलभूत असुरोंका उच्छेद होगा। उनका कुटिल-क्रूर शासन समाप्त हो जायगा और त्रैलोक्यमें सुख-शान्ति स्थापित होगी। पुनः वेदपाठ और यज्ञादि कर्म निर्विघ्न होने लगेंगे।

महोत्कटकी बाल-लीला

इतना ही नहीं, यह संवाद कश्यपाश्रमसे देश-देशान्तरोंमें फैल गया। असुरोंके मनमें अदितिके कठोर तपके समय ही शङ्का हुई थी; किंतु इस समाचारसे तो उनके मनमें दृढ़ निश्चय हो गया कि 'यह ऋषिपुत्र दनुज-कुलका शत्रु सिद्ध होगा। यह महोत्कट देवताओंद्वारा हमारे राज्यपर आक्रमण करनेका माध्यम बन सकता है।' इस कारण असुरोंने परामर्श कर यह निर्णय किया कि 'घातक तरुका अङ्कुर बढ़कर विशाल वृक्ष हो, इसके पूर्व ही उसे नष्ट कर दिया जाय।'

* प्रार्थयामास सर्वस्तं भूभारहरणं कुरु।
साधूनां पालनं देव दुष्टदानवघातनम्॥
(गणेशपु० २। ७। १०)

असुरराजने महोत्कटको मार डालनेके लिये 'विरजा'-नामकी एक क्रूर राक्षसीको भेजा। वह अत्यन्त शक्तिशालिनी, परम धूर्त्ता एवं कुटिला थी। राक्षस वंशके मङ्गलके लिये उसने कश्यपाश्रममें प्रवेश किया। महोत्कटका तो कुछ नहीं बिगड़ा, किंतु विरजाको ही मृत्यु-मुखमें प्रवेश करना पड़ा। उन्होंने उसे निजधाम प्रदान किया।

शक्तिशालिनी विरजाकी मृत्युसे असुर चिन्तित हुए। उन्होंने 'उद्धत' और 'धुन्धुर' नामक दो क्रूर राक्षसोंको महोत्कट-की हत्याके लिये भेजा। उन दोनों असुरोंने अत्यन्त मनोहर शुकका रूप ग्रहण किया। उनके विषाक्त चञ्चुपुट अत्यन्त तीक्ष्ण थे। वे महर्षि कश्यपके आश्रममें वहाँ पहुँचे, जहाँ माता अदिति महोत्कट विनायकको स्तन-पान करा रही थीं।

'मुझे खेलनेके लिये वे शुक दे।' सुन्दर शुकोंको देखते ही महोत्कटने दुग्धपान छोड़कर अपनी माँ अदितिसे कहा।

वह बोली—'ये शुक आकाशमें उड़नेवाले पक्षी हैं; केवल भूमिपर चल सकनेवाली कोई स्त्री इन्हें कैसे पकड़ सकती है?'

बालकको इस उत्तरसे संतोष नहीं हुआ। उसने माताकी गोदसे उतर बाजकी तरह झपटा मारकर दोनों पक्षियोंको पकड़ लिया। यह देख उन दोनोंने पंखों और चोंचोंसे मार-मारकर महोत्कटको अत्यन्त घायल कर दिया। तब मुनिकुमारने उन शुकोंको बलपूर्वक धरतीपर दे मारा। वे शुक अपने असुररूपको प्रकट करके प्राणशून्य हो गये। माताने असुरके विशाल शवपर स्थित हुए अपने बालकको शीघ्रतापूर्वक उठा लिया। कश्यपमुनिने बालकके अभ्युदयके लिये शान्तिकर्म किया। बालकका अलौकिक पराक्रम देख उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने अदितिको उपालम्भ देते हुए कहा—'तुमने बच्चेको अकेला कैसे छोड़ दिया। जगदीश्वरने आज इसकी रक्षा की है। यह निशाचरोंके रहनेका स्थान है, यहाँ मेरा शिशु कैसे जीवित रह सकेगा।'

यों बात-चीत करके मुनि-दम्पतिने बालकको नहलाया और स्वयं भी स्नान करके वे आश्रममें जा विश्राम करने लगे।

महोत्कट चार वर्षके हुए। अपने बुद्धि-कौशल एवं अलौकिक कर्मोंसे वे आश्रमवासियोंके प्राणप्रिय और सम्पूर्ण आशाओंके केन्द्र बन गये।

आश्रमके निकट ही तमाल, देवदारु, जम्बू, आम्र और कटहलके सघन वृक्ष थे। उनके मध्य एक सरोवर था। सरोवरका जल अत्यन्त निर्मल और मधुर था, किंतु उसमें बहुत-से मत्स्य और मगर रहते थे। उनसे आश्रम-वासियोंको बड़ा कष्ट होता था। नक्रके भयसे आश्रमवासी उसमें स्वच्छन्द स्नान तो कर ही नहीं सकते थे, उसके तटपर संध्या वन्दन करने एवं जल भरनेमें भी डरते थे।

एक दिनकी बात है। सोमवती अमावास्या थी और व्यतीपातका योग। इस उत्तम पर्वपर अदितिदेवी सरोवरमें स्नान करनेके लिये आयीं। माताके साथ शिशु महोत्कट भी वहाँ आया था। माँने उसे जलाशयके तटपर बिठा दिया और वे स्वयं आकण्ठ-जलमें स्नान करनेके लिये उतर गयीं। तब बालकने भी उछलकर माताके पास जानेकी चेष्टा की, परंतु वह पानीमें गिर पड़ा और उसीमें खेलने लगा। इतनेमें ही एक नक्रने आकर उसे पकड़ लिया। जलके भीतर खड़ी हुई माताने जब बालककी यह दशा देखी, तब वे घबरा गयीं और तुरंत उसकी रक्षाके लिये लोगोंको पुकारने लगीं—'दौड़ो, दौड़ो, बचाओ।'

अदिति स्वयं भी बच्चेको पकड़नेके लिये शीघ्रतापूर्वक उसके पास गयीं, पर वे उसे पकड़ न सकीं। नक्र उनकी पकड़से बाहर रखते हुए ही महोत्कटको पानीके भीतर खींचे लिये जा रहा था। माता भी दूरतक उसके साथ खिंचती चली गयीं।

महोत्कट और उसकी माताको सरोवरमें आकण्ठ-मग्न देख मुनिके शिष्य उछल-उछलकर जलमें कूद पड़े; किंतु वे भी उस बलवान् नक्रकी पकड़से बालकको छुड़ा न सके। तब बालकने असीम बलका परिचय दिया। उसने खेल-खेलमें ही नक्रको जलसे बाहर पृथ्वीपर फेंक दिया। उसका शरीर चूर-चूर होकर गिर पड़ा; वह निश्चेष्ट हो गया और उसके प्राण-पखेरू उड़ गये।

बालककी माता और आश्रमके सभी लोग आश्चर्यचकित थे। महोत्कटके सम्मुख एक वस्त्राभरणभूषित तेजस्वी पुरुष हाथ जोड़े कह रहा था—'प्रभो! पहले मैं चित्रगन्धर्वनामक गन्धर्वोंका राजा था। मेरे विवाहके अवसरपर सभी गन्धर्व उपस्थित हुए। मैंने सबका स्वागत-सत्कार किया; किंतु उपस्थित महामुनि भृगुकी मैंने पूजा नहीं की।'

'तुम सरोवरके नक्र होओगे।' भृगुमुनिके शापकी कल्पना कर

मैं भयसे काँपने लगा। मेरी करुण-प्रार्थना सुनकर दयालु मुनिने पुनः कहा—'कश्यपनन्दन! गजाननके स्पर्शसे तुम उक्त जलचर-योनिसे मुक्त हो जाओगे।'

इतना कहकर उक्त गन्धर्व देवदेव गजाननकी स्तुति करने लगा।* फिर उसने बालरूपी गजाननके चरणोंमें प्रणाम कर बार-बार उनकी प्रदक्षिणा की। तदनन्तर वह चित्रगन्धर्व अपने लोकको चला गया।

महोत्कट-जननीके आश्चर्यकी सीमा न थी। उन्होंने बड़े ही प्यारसे अपने पुत्रको गोदमें लेकर उसके मुखमें अपना स्तनाग्र लगा दिया। बालक विनायक प्रेमपूर्वक दुग्धपान करने लगे।

* * *

एक बारकी बात है। संगीतविशारद हाहा, हूहू और तुम्बुरु-नामक गन्धर्व पीताम्बर धारण किये, गोपीचन्दनका तिलक लगाये, वीणापर मधुर स्वरोंमें हरिगुण गाते कैलासकी यात्रा करते हुए महर्षि कश्यपके आश्रमपर पहुँचे। मुनिने उनका स्वागत किया और उनसे भोजन ग्रहण करनेकी प्रार्थना की।

तीनों अतिथियोंने स्नान कर देवी पार्वती, शिव, विष्णु, विनायक और सूर्यकी पूजा की और फिर अपने इष्टका ध्यान करने लगे। उसी समय महोत्कट बाहरसे खेलकर आये। उनकी दृष्टि पञ्चदेवोंके विग्रहपर पड़ी तो उसने धीरेसे उन्हें उठाकर फेंक दिया। नेत्र खुलनेपर देवताओंकी प्रतिमा न देख गन्धर्व व्याकुल हो गये। उन्होंने यह बात महर्षि कश्यपसे कही।

महर्षि कश्यप चकित और चिन्तित थे। सम्मानित अतिथियोंकी देव-प्रतिमाएँ ढूँढनेके लिये वे चारों ओर दौड़-धूप कर रहे थे। उन्हें अपने चञ्चल पुत्र महोत्कटपर संदेह हुआ। उन्होंने हाथमें छड़ी लेकर क्रोधसे काँपते हुए विनायकसे पूछा—'अतिथियोंकी प्रतिमाएँ क्या हुईं?'

'मैं तो बाहर बालकोंके साथ खेल रहा था।' भयभीत-सा महोत्कटने भयकी मुद्रामें उत्तर दिया।

'तू शीघ्र ही मूर्ति ला दे, नहीं तो तुझे बुरी तरह पीटूँगा।' कुपित कश्यपने पुनः कहा।

'मैंने मूर्ति नहीं ली है।' महोत्कट रोने लगा। रोते-रोते वह पृथ्वीपर लेट गया। माता अदिति भी वहाँ पहुँच गयीं।

'यदि मैंने मूर्ति खा ली है तो मेरे मुँहमें देख लो।' महोत्कटने अपना मुखारविन्द खोल दिया। अत्यन्त आश्चर्य! माता अदिति मूर्च्छित हो गयीं। महर्षि कश्यप और हरिभक्तिपरायण गन्धर्वत्रयने आश्चर्यचकित होकर देखा—बालक महोत्कटके छोटेसे मुखाब्जमें कैलास, शिव, वैकुण्ठसहित विष्णु, सत्यलोक, अमरावतीसहित सहस्राक्ष, पर्वतों, वनों, समुद्रों, सरिताओं, यक्षों, पन्नगों एवं वृक्षोंसहित सम्पूर्ण पृथ्वी, चौदह भुवन, समस्त लोकपाल, पाताल, दसों दिशाएँ तथा अद्भुत सृष्टि दीख रही थी।

सचेत होनेपर माता अदितिने तुरंत बालक महोत्कटको अङ्कमें उठा लिया और उसे स्तनपान कराने लगीं। महर्षि कश्यपने मन-ही-मन कहा—'अरे! यह तो अखिलेश्वर प्रभुने ही मेरे पुत्ररूपमें जन्म लिया है। मैंने इन्हें दण्ड देनेका विचार कर बड़ी भूल की।'

'मैं तो इस बालकको दण्ड दे नहीं सकता। अब आप लोग जैसा उचित समझें, वैसा करें।' कश्यपने गन्धर्वोंसे स्पष्ट कह दिया।

'देव-प्रतिमाओंके मिले बिना हमलोग आपका अन्न, फल और कन्द-मूल आदि कुछ भी ग्रहण नहीं करेंगे।' अत्यन्त दुःखी होकर गन्धर्वोंने महर्षि कश्यपसे इतना कहा ही था कि उन्होंने महोत्कटके स्थानपर देवी पार्वती, शिव, विष्णु, विनायक और सूर्यका प्रत्यक्ष दर्शन किया। वही बालक क्षण-क्षणमें पञ्चदेवके रूपमें दीख रहा था।

फिर तो हाहा, हूहू और तुम्बुरुने महोत्कटके चरणोंमें प्रणाम किया और वे महर्षि कश्यप-प्रदत्त अन्नादिको प्रेमपूर्वक ग्रहण करने लगे। उस समय उन्होंने महोत्कटमें अनेक रूपोंके दर्शन किये। वह एक क्षण महोत्कट एवं दूसरे ही क्षण पञ्चदेवोंके रूपमें दीखने लगता। क्षणमें अत्यन्त भयानक दीखता तो दूसरे क्षण विश्वरूपमें उसका दर्शन

---

* त्वमेव जगतां नाथः कर्ता पापापहारकः।
निर्गुणो निरहंकारः सदसत्कारणं परम्॥
नानावतारैर्भक्तानां पालको दुष्टनाशनः।
सर्वव्यापी पूर्णकामोऽनेकब्रह्माण्डनायकः॥
मुनीनामप्यगम्यस्त्वं मनोवागनिरूपितः।
(गणेशपु० २।८।३२—३४)

होता ।* इस प्रकार परमप्रभुके अचिन्त्य, अकथनीय स्वरूपोंका दर्शन कर गन्धर्वोंने अपना जीवन जन्म एवं कश्यपाश्रममे आगमन सफल समझा ।

गन्धर्वोंको महोत्कट विनायकके तत्त्वका साक्षात्कार हो गया । उन्होंने परमप्रभु विनायककी श्रद्धा-भक्तिपूर्ण हृदयसे स्तुति की और बार-बार उनके चरणोंमें प्रणाम कर उनका स्मरण करते हुए कैलासके लिये प्रस्थान किया ।

उपनयन-संस्कार

प्रतिभाशाली महोत्कट पाँच वर्षके हुए । महर्षि कश्यपने शुभ मुहूर्त और शुभ लग्नमे उनके व्रत-बन्धका निश्चय किया । शान्त तपस्वी महर्षि कश्यप सुर-असुर, चारों वर्णों और सभी श्रेणीके स्त्री-पुरुषोंके श्रद्धेय थे । इस कारण उनके पुत्रके यज्ञोपवीत-संस्कारके अवसरपर निस्स्पृह वेदज्ञ ब्राह्मण तो पधारे ही, समस्त सुर, राक्षस, ऋषि-मुनि, यक्ष, नाग, राजर्षि, व्यापारी वैश्य तथा शूद्र प्रभृति—सभी लोग आये ।

सशक्त असुर स्पष्ट तो कुछ नहीं कहते थे, किंतु कश्यपनन्दनसे अपनी क्षतिकी सम्भावनासे वे उन्हें छल-कपट तथा अन्य कौशलसे मार डालनेके लिये प्रयत्नशील थे । यज्ञोपवीतके अवसरपर विघात, पिङ्गाक्ष, विशाल, पिङ्गल और चपल-नामक पाँच बलवान् असुर भी शुद्ध वस्त्र, भालपर त्रिपुण्ड्र एवं गलेमे रुद्राक्षकी माला पहने ब्राह्मणके वेषमे वहाँ पहुँचे । उन्होंने अपने कमण्डलुमे छोटे-छोटे अस्त्र छिपा रखे थे । वे ब्राह्मणवेषधारी असुर उपस्थित मुनियों और ब्राह्मणोंके बीच ऐसे स्थानपर बैठ गये, जहाँसे अदितिनन्दन विनायकपर सुविधापूर्वक सटीक प्रहार किया जा सके ।

अनेक प्रकारके बाजे बज रहे थे । मण्डपमे गणेश-पूजन और स्वस्तिवाचन हुआ । इसके अनन्तर व्रतबन्धकी विधियाँ होने लगीं । होमके अनन्तर महर्षि कश्यपने ब्राह्मणोंकी पूजा की । अग्निस्थापनके बाद जब सुवासिनी स्त्रियाँ और ब्राह्मण मङ्गलाशीर्वादके साथ विनायकपर अक्षत छोड़ रहे थे, तब ब्राह्मणवेषधारी असुरोंने धीरेसे कमण्डलुसे अस्त्र निकाले और विनायकपर प्रहारका उपक्रम किया । विनायकने तत्क्षण उनकी दुरभिसन्धि समझकर थोड़ेसे अभिमन्त्रित चावल उनपर फेंके और तत्काल दुष्ट असुरोंका निर्जीव शरीर पृथ्वीपर गिर पड़ा ।

असुरोंके भयानक शवको देखकर उपस्थित देवता, ऋषि-मुनि, ब्राह्मण और सभी जन अत्यन्त चकित हुए । पञ्चवर्षीय बालक हृष्ट-पुष्ट और शक्तिसम्पन्न तो था ही, वह मन्त्रसिद्ध भी है, यह जानकर सब परस्पर कहने लगे—'पाँच छली राक्षसोंको क्षणभरमें ही इस बालकने कैसे मार डाला, यह बात समझमें नहीं आयी । क्या भूभार-हरण करनेके लिये परमात्माने ही अवतार ग्रहण किया है !'* ब्रह्मादि देवगण परमप्रभु विनायकदेवकी लीला समझकर उनपर सुगन्धित सुमनोंकी वृष्टि करने लगे ।

तदनन्तर महोत्कटका उपनयन हुआ । महर्षि कश्यपने स्वयं उन्हें गायत्री-मन्त्र दिया । सर्वप्रथम महातपस्विनी माता अदितिने उन्हें भिक्षा प्रदान की । उसके बाद वहाँ उपस्थित लोगोंने भिक्षाके साथ उन्हें शास्त्रीय सदाचारका विस्तृत उपदेश दिया । परमप्रिय पुत्र महोत्कटकी प्राण-रक्षासे प्रसन्न होकर महर्षि कश्यपने पुनः भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंकी पूजा की और उन्हें विविध प्रकारके वस्त्र, स्वर्ण एवं गायें प्रदान कीं ।

इसके बाद एकत्र बृहत् समुदायके बीच महर्षि वसिष्ठ अत्यन्त स्नेहपूर्वक विनायकका हाथ पकड़ उन्हें ब्रह्माके पास ले गये ।

ब्रह्माजीने अपने कमण्डलुके जलसे उनका तीर्थ ग्रहण किया और सदा खिला रहनेवाला पद्मपुष्प उन्हें प्रदान किया । उस समय उन्होंने विनायकका नाम 'ब्रह्मणस्पति' रखा । फिर बृहस्पतिने भी विनायककी पूजा करके उन्हें 'भारभूति'-नाम प्रदान किया ।

कुबेरने विनायककी पूजा करके उनका नाम 'सुरानन्द' रखा और उन्हें अपने कण्ठकी रत्नमाला प्रदान की । वरुणने अपना पाश प्रदान कर उन्हें 'सर्वप्रिय' नाम दिया । भगवान् शंकरने भी सब देवताओंके सुनते हुए अदितिनन्दनको त्रिशूल

---

* क्षणं वै ददृशुर्बालं क्षणं पञ्चस्वरूपिणम् ॥
क्षणं महाभीतिकरं क्षणं तं विश्वरूपिणम् ।
(गणेशपु० २ । ९ । ३९-४०)

* कथं व्यापादिताः पञ्च राक्षसाः कूटरूपिणः ।
क्षणेनानेन बालेन न जानीमोऽखिला अमुम् ॥
अवतीर्णो भुवो भारं हर्तुं किं परमेश्वरः ।
(गणेशपु० २ । १० । १५-१६)

और डमरू देकर उन्हें 'विरूपाक्ष' कहा और फिर उन्हें 'भालचन्द्र' नामसे सम्बोधित करते हुए चन्द्रकला दे दी।

'परशुहस्त!' कहती हुई परशुराम-जननी सती रेणुकाने अपनी सखी अदितिके बालकको परशु प्रदान किया और 'परशुहस्त' नाम रखा। फिर उनकी पूजा करके उन्होंने वाहनके लिये सिंह देकर उन्हें 'सिंहवाहन' नाम दिया। तदनन्तर उन्होंने महोत्कट विनायकको उपदेश दिया—'विनायक! तुम शीघ्र ही दुष्टोंका संहार करो।*

द्विजवेषधारी समुद्रने विनायककी पूजा कर उन्हें मुक्तामाल प्रदान करते हुए 'मालाधर' कहा। शेषनागने उनके आसनके लिये अपना शरीर समर्पण कर दिया और बड़ी प्रसन्नतासे उन्हें 'फणिराजासन' कहा। 'धनंजय' नाम देते हुए अग्निदेवने उन्हें अपनी दाहिका-शक्ति प्रदान की और 'प्रभञ्जन' नामसे सम्बोधित कर वायुदेवने अपनी शक्ति समर्पित कर दी।†

इस प्रकार सभी लोगोंने अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार महोत्कटको उत्तमोत्तम वस्तुएँ प्रदान कीं; किंतु सहस्राक्ष इन्द्रने न कुछ दिया और न उन्हें प्रणाम ही किया। सुरेन्द्रने सोचा—'मुझ देवाधिपके सम्मुख सभी नतमस्तक होते हैं; मैं इस छोटे-से बालकके सामने मस्तक क्यों झुकाऊँ?'

'मेरे घरमे किसी महान् अवतारी पुरुषने जन्म लिया है।' महात्मा कश्यपने इन्द्रको समझाया। 'अनिर्वचनीय गुणसम्पन्न पुरुषको छोटा समझकर तिरस्कार करना उचित नहीं। इस छोटे-से तेजस्वी बालक महोत्कटने इसी आयुमें कितने अद्भुत कर्म कर डाले। इसने विरजा-नामकी भयानक राक्षसीको खेलमे ही मार डाला। शुकरूपधारी प्रचण्ड उद्धत और धुन्धुर राक्षसोंको इसीने मारा। सरोवरका शापग्रस्त चित्रगन्धर्व इसीके स्पर्शसे मुक्त हुआ। हाहा-हूहू और तुम्बुरु गन्धर्वोंने इसीके दिव्य कलेवरमे पञ्चदेवोंका दर्शन प्राप्त किया। आप सबके सम्मुख भयानक पाँचो राक्षसोंको इसने मारा ही है।'

'मैंने तो प्रत्यक्ष कुछ देखा नहीं।' मदविमोहित सुरेन्द्रने कहा ही था कि महोत्कटके संकेतपर प्रचण्ड प्रलयंकर झंझावात उठा। सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच गयी। व्याकुल सुरेन्द्रने महोत्कटकी ओर देखा तो उनके नेत्रोंसे अग्नि-ज्वाला निकल रही थी। सहस्राधिक मस्तक, नेत्र, नासिका, कान, कर और चरण थे उनके। सूर्य और चन्द्र उनके नेत्रोंमें दीख रहे थे। महोत्कटके रोम-रोममें अनन्त ब्रह्माण्ड एवं उनके विराट् रूपका दर्शन कर इन्द्रने व्याकुल हो उनकी स्तुति की और उनसे बार-बार क्षमाकी याचना की।

प्रबल प्रभञ्जन शान्त हुआ। इन्द्रने अचिन्त्य-गुणगणनिलय महोत्कटकी स्तुति कर बार-बार उनके चरणोंमें प्रणाम किया। फिर उनकी जय-जयकार करते हुए उन्हें अपना अङ्कुश और कल्पवृक्ष प्रदान कर उन्होंने अत्यन्त भक्तिपूर्वक कहा—'विनायक'।

फिर सब लोग प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने धामको पधारे।

अत्यन्त मेधावी और प्रतिभा-सम्पन्न विनायककी शिक्षा प्रारम्भ हुई। विद्या-बुद्धि-विशारद विनायक अत्यल्पकालमे ही सारे वेद-वेदाङ्ग, व्याकरण, गणित, ज्योतिष आदि शास्त्रोंके साथ अस्त्र-शस्त्रोंका सम्यक् ज्ञान प्राप्तकर उसमे निष्णात हो गये। शास्त्रीय सिद्धान्तोंपर विचक्षणबुद्धि महोत्कटकी अद्भुत व्याख्या सुनकर महान् शास्त्रज्ञ भी चकित होकर कहने लगे—'निश्चय ही विनायक कश्यपनन्दनके रूपमें अवतरित हुए हैं।'

महोत्कटने सातवें वर्षमे प्रवेश किया। अब वे बल, बुद्धि, विद्या आदिमें पूर्ण पारंगत होकर अपने पिताके कार्योंमें सहयोग देने लगे थे। अवसर प्राप्त होते ही वे उपनयनके

* उपादिशद् दुष्टनाशं कुरु शीघ्रं विनायक।
(गणेशपु० २।१०।३०)

† 'ऋषियोंद्वारा उपनयनके समय दिया हुआ आशीर्वाद भी 'यह बालक शत्रुओंका नाश करनेवाला होवे'—ऐसा तेजस्वी होता था। ब्रह्मचारीको 'शस्त्रोंका उपयोग न कर'—ऐसा न कहकर मौञ्जीबन्धनके समय शस्त्र देकर उनका प्रयोग कैसे किया जाय, यह भी बताया जाता था और वह भी ब्राह्मण-बालकको—यह विशेष बात है। क्षत्रियके बालकको कहा जाय तो उसमें कोई आश्चर्य नहीं। परंतु दमनशील कश्यपऋषिके बालकको मौञ्जीबन्धनके समय भिक्षामें शस्त्र मिलते हैं और उन्हें प्रयोग करनेकी विद्या भी सिखायी जाती है तथा आशीर्वादसे भी 'अपने राष्ट्रको स्वतन्त्र कर'—ऐसा अभिप्राय सूचित किया जाता है; वह भी एक अतिवृद्ध स्त्रीद्वारा, यह सब ध्यानमें रखनेयोग्य है। ऋषिकालमें ब्राह्मणोंका यज्ञोपवीत-संस्कार भी ऐसा तेजोवर्धक होता था'—प० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

अवसरपर प्राप्त सिंहपर आरूढ हो जाते। सर्वभयापह अङ्कुश, परशु, अम्लान पद्म और पाश धारण कर लेते। दण्ड, अजिन, रत्नजटित स्वर्णनिर्मित कुण्डल, कमण्डलु, दर्भ, उत्तम पीताम्बर, ललाटमें कस्तूरी तिलक और चन्द्रकला, गलेमें मुक्तामाला और नाभिपर शेषको धारणकर आश्रमके चारों ओर दूर-दूरतक घूमते। जब वे मेघतुल्य गर्जन करते तो पृथ्वी हिल जाती और आकाश कम्पित होने लगता था। भयवश असुर उधर आनेका साहस भी नहीं कर पाते थे। उनके इस अद्भुत वीर वेष एवं उनकी व्यवस्थासे आश्रममें पूर्णतया सुख-शान्ति देखकर कश्यप और अदिति आनन्द-विह्वल होकर मन-ही-मन कहते—'हमारे पूर्वज और हम धन्य हैं।' सबके दुःख-निवारणके लिये निरन्तर प्रयत्नशील महोत्कटको देखकर सभी उन्हें अपना प्राणप्रिय समझते; सभी उनको आदर और सम्मान प्रदान करते।

एक दिन कश्यपके आश्रमपर काशीनरेश पधारे। उन्होंने महर्षि कश्यपके चरणोंमें प्रणाम किया तो स्नेहातिरेकसे महर्षिने उन्हें गले लगा लिया। भोजनादिके उपरान्त विश्राम कर लेनेपर महर्षिने उनसे उनके आगमनका हेतु पूछा।

'आप मेरे कुल-पुरोहित हैं, मुझे आपकी सेवामें पहले ही उपस्थित होना चाहिये था।' काशीनरेशने विनयपूर्वक उत्तर दिया—'किंतु राज-कार्यमें व्यस्त रहनेके कारण मैं समय नहीं निकाल सका। मैंने अपने पुत्रके विवाहका निश्चय किया है। अतएव आपको ले जानेके लिये मैं यहाँ आया हूँ। आप कृपापूर्वक शीघ्र ही काशी चलकर युवराजका विवाह सम्पन्न करायें।'

'राजन्! मैं तो चातुर्मास्य-व्रतके अनुष्ठानमें लगा हूँ।' महामुनिने काशीनरेशसे कहा—'किंतु मेरा पुत्र महोत्कट सर्वशास्त्र-मर्मज्ञ तो है ही, कर्मकाण्डका भी अश्रुतपूर्व विद्वान् है। यद्यपि अभी यह बालक है तथा मैं, इसकी माता और समस्त आश्रमवासी इसे प्राणाधिक प्यार करते हैं; अतः इसकी अनुपस्थिति अत्यन्त कष्टकर है; तथापि आप इसे ले जायँ। यह आपका सम्पूर्ण वैवाहिक कार्य दक्षतापूर्वक सविधि सम्पन्न करा देगा।'

महामुनि कश्यपने महोत्कटको बुलाकर कहा—'बेटा विनायक! यद्यपि हमारे लिये तुम्हारा वियोग दुःखद है, किंतु तुम काशीनरेशके साथ जाकर इनके पुत्रका विवाह सम्पन्न कराकर लौट आओ।'

महर्षिकी आज्ञा प्राप्तकर नरेशने रथ प्रस्तुत किया। महोत्कटने श्रद्धा-भक्तिपूर्वक अपने माता-पिताके चरणोंमें प्रणाम किया और अस्त्र-शस्त्रोंसहित रथमें जा बैठे।

अपने प्राणाधिक पुत्रको सुदूर देशकी यात्राके लिये प्रस्थान करते देखकर माता अदिति अधीर हो गयीं। उनके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे। उन्होंने नरेशके पास जाकर अत्यन्त दीन वाणीमें कहा—'राजन्! मेरा महोत्कट निरा बालक और अतिशय चञ्चल है। इसने कभी प्रवास नहीं किया है। कुटिल असुरोंकी कुदृष्टि इसपर सदा बनी रहती है। अतएव आप इसकी निरन्तर रक्षा करेंगे और जिस प्रकार इसे अपने साथ ले जा रहे हैं, उसी प्रकार सकुशल इसे इस आश्रममें पहुँचा भी देंगे।'

'मैं अपना प्राण देकर भी इस परम तपस्वी पुरोहित-पुत्रकी प्राण-रक्षा करूँगा। आप सर्वथा निश्चिन्त रहें।' काशीनरेशने माता अदितिके चरणोंमें प्रणाम किया और रथ वायुवेगसे चल पड़ा। जबतक महोत्कटके रथकी ध्वजा दीखती थी, तबतक रोती हुई माता अदिति वहाँ खड़ी रहीं।

धूम्राक्ष-वध

काशिराजका रथ गहन वनमें पहुँचा। वहाँ रुद्रकेतुका बलवान् भाई धूम्राक्ष (नरान्तकका चाचा) भगवान् सहस्रांशुकी प्रसन्नताके लिये दस हजार वर्षसे अत्यन्त दारुण तप कर रहा था। त्रैलोक्यपर निरापद शासनके लिये सर्वसंहारक श्रेष्ठ शस्त्रास्त्र उसे अभीष्ट थे। उसने अपने दोनों पैर वृक्षकी शाखामें बाँध रखे थे। अधोमुख धूम्राक्ष केवल धूम्रपानपर जीवित था।

सूर्यदेव प्रसन्न हुए। उन्होंने धूम्राक्षके लिये प्रभापुञ्जमय शस्त्र भेजा। उसकी प्रभासे अन्तरिक्ष उद्दीप्त हुआ ही था कि गरुड़ जैसे सर्पको पकड़ लेता है, उसी प्रकार महोत्कटने उछलकर उस परम तेजस्वी शस्त्रको ग्रहण कर लिया।

यह दृश्य देखकर काशिराज अत्यन्त विस्मित हुए। शस्त्र-परीक्षणार्थ महोत्कटने उसे धूम्राक्षकी ओर फेंका ही था कि भीषण गर्जनके साथ धूम्राक्षके दो टुकड़े दूर जा गिरे।

धूम्राक्षकी विशाल देहके गिरनेसे कई वृक्ष धराशायी हो गये।

धूम्राक्षके प्रख्यात वीर पुत्र जवन और मनुने यह दृश्य

देखा तो उनके क्रोधकी सीमा न रही । काल-तुल्य तप्ताङ्गारलोचन सशस्त्र जवन और मनुने कुछ ही देरमें काशिराजका रथ घेर लिया और अत्यन्त क्रोधपूर्वक उन्होंने काशीनरेशसे कहा—'राजन्! तूने ब्राह्मण-पुत्रको लाकर हमारे तपस्वी पिताकी हत्या कैसे करवायी। कृतघ्न! पहले असुरराज नरान्तकके कोपसे हमारे पिताने ही तुम्हारी रक्षा की थी। उन्हींकी कृपासे तू काशीनरेश बना हुआ है । हमारे पिताको मारकर तू जीवित कैसे रह सकता है?'

अत्यन्त शक्तिशाली धूम्राक्ष-पुत्रोंकी क्रुद्ध वाणी सुनकर काशिराज काँप उठे। उन्होंने मन-ही-मन सोचा—'अपस्मार रोगकी तरह मैं कहाँसे इस पुरोहित-कुमारको ले आया? यदि नरान्तक कुपित हुआ तो क्षणार्द्धमें ही मेरा राज्य ध्वस्त हो जायगा।'

भयाक्रान्त काशिराजने ब्राह्मण और ईश्वरकी शपथ लेते हुए कहा—'मैं सर्वथा निर्दोष हूँ। मैं तो इस मुनि-कुमारको अपने पुत्रका विवाह करानेके लिये ले जा रहा हूँ। आप कृपापूर्वक मेरे शुभकार्यमें व्यवधान उपस्थित न करें। आप इस पुरोहित-पुत्रको ले जायँ। मुझे छोड़ दें।'

'राजन्! मुझ छोटे बच्चेको गहन वनमें लाकर आप शत्रुके हाथों कैसे दे रहे हैं?' महोत्कटने चकित होकर काशिराजसे कहा—'आपने मेरी माताको क्या वचन दिया था? क्या क्षत्रिय-धर्म यही है? यदि मेरे पिताने यह बात सुनी तो निश्चय ही वे आपको शाप दे देंगे और आप राज्यसहित भस्म हो जायँगे।'

इस प्रकार महोत्कट राजासे कह ही रहे थे कि जवन और मनुने उनपर आक्रमण कर दिया। क्रुद्ध हुए महोत्कटने भयानक गर्जना की। विनायकके निःश्वास-योगसे पृथ्वीपर जैसे भूकम्प आ गया। उक्त भीषण ध्वनि एवं वायुवेगके प्रभावसे जवन और मनु अन्तरिक्षमें चक्कर खाते हुए नरान्तकके नगरमें शिलाखण्डकी तरह गिर पड़े। उनके प्रत्येक अङ्ग क्षत-विक्षत हो गये।

'यह कैसे, क्या हुआ?' सम्पूर्ण नरान्तक-नगरमें जैसे कोलाहल व्याप्त हो गया था और प्रमुख असुरोंके साथ नरान्तक विचार कर ही रहा था कि दौड़ता हुआ दूत आ पहुँचा। हाँफते-काँपते उसने कहा—'कश्यपपुत्रके हाथोंसे धूम्राक्ष वध हुआ और जब जवन और मनुने उनपर आक्रमण करना चाहा तो उनकी यह दुर्गति हुई। यह काश्यपेय काशिराजके साथ उनके पुत्रका विवाह कराने जा रहा है।'

'ब्राह्मणपुत्र और काशिराजको तुरंत पकड़ो।' अत्यन्त कुपित होकर क्रूरतम नरान्तकने अपने सैनिकोंको आज्ञा दी। 'यदि वे युद्ध करें तो उन्हें मार डालो।'

शस्त्रसज्ज वीर असुर-वाहिनी द्रुतगतिसे दौड़ पड़ी। काशिराजने असुर-सेनाको देखा तो वे काँपने लगे, किंतु योगसिद्ध महोत्कटने विकट गर्जना की। पविपात-तुल्य उस भयंकर एवं प्रचण्ड रवसे कितने ही असुर-वीर मृत्यु-मुखमें चले गये। कुछ सैनिकोंके शरीर महोत्कटके तीक्ष्ण शरों एवं आयुधोंसे कट-कटकर गिर पड़े। महोत्कटकी अद्भुत शस्त्र-वर्षासे असुरोंको कुछ सूझ नहीं रहा था। कुछ ही देरमें असुरोंके रुण्ड-मुण्डसे वहाँकी धरती पट गयी। कुछ प्राण लेकर भागते हुए असुर नरान्तकके समीप पहुँचे और उसे सारा समाचार सुनाया।

'काशिराजके कुछ ही अङ्गरक्षकोंके साथ कश्यपकुमारने हमारे वीर सैनिकोंका संहार कैसे कर दिया?' क्रोधोन्मत्त नरान्तक सोच रहा था कि 'कुटिल काशिराजको दण्डित करना ही चाहिये।' यह निश्चय कर उसने काशीनरेशको पराजित करनेके लिये एक वीर असुरके सेनापतित्वमें पराक्रमी असुरों-का सुशिक्षित सशस्त्र सैन्यदल प्रेषित किया। नरान्तकने अपने सेनापतिको काश्यपेयसहित काशिराजको जीवित या मृत पकड़ लेनेकी कठोर आज्ञा प्रदान कर दी थी। असुर-वाहिनी काशीके लिये प्रस्थित हुई।

ईश्वर विनायकने काशिराजके साथ उनकी राजधानीमें प्रवेश किया। काश्यपेयकी सहायतासे ही नरेश निर्विघ्न सकुशल लौटे हैं, इस कारण विनायकका सोल्लास स्वागत किया गया। नगर सुन्दर ध्वजाओं पताकाओं एवं विविध प्रकारकी पुष्पमालाओंसे सुसज्ज था। दुन्दुभि आदि अनेक वाद्य बज रहे थे। विविध प्रकारकी पूजन-सामग्रियोंके साथ अमात्यों एवं सम्भ्रान्त नागरिकोंने विनायककी पूजा की। विनायकका रथ आगे बढ़ा तो नगरकी स्त्रियाँ छतोंसे सुमधुर गीत गाती हुई उनपर विविध प्रकारके सुमनोंकी वृष्टि करने लगीं। देवदेव विनायकको ब्राह्मणोंने अपने परमात्मा, क्षत्रियोंने रणोत्सुक महावीर, वैश्योंने सर्वसंहारक रुद्र एवं शूद्रोंने श्रीहरिरूप या नरेशके रूपमें देखा। जैसे शुद्ध स्फटिकमें अरुण और पीत रंग उसी

रूपमे दीखता है, उसी प्रकार जिसकी जैसी भावना थी, उसीके अनुसार उन्हें महाप्रभु विनायकके दर्शन हो रहे थे।*

नगरके मध्य विघण्ट और दन्तुर-नामक दो असुरोने बाल-वेषमे उन्हे अपने समीप खेलनेके लिये सादर बुलाया। विनायकने समीप पहुँचते ही उनकी चेष्टाओंसे उनका दुरुद्देश्य समझ लिया। फिर क्या था ? विनायकने आलिङ्गन करते हुए हाथके पुष्पकी तरह उन्हें मसलकर फेंक दिया। निष्प्राण विशाल असुर अपने असली रूपमे दूर जा गिरे। यह दृश्य देखकर काशिराज तथा अन्य नगर-निवासी चकित हो गये। अन्तरिक्षसे देवगण विनायकपर सुमनवृष्टि करते हुए धन्य ! धन्य ! एवं जय-जयकार करने लगे।†

रथ आगे बढा। कुछ ही दूर जानेपर पतग और विघुल-नामक दो असुर झंझावातके रूपमे आये। उनके वेगमे वृक्ष गिरने लगे, नागरिकोंके वस्त्र आकाशमे उड़ गये एवं जन-समुदाय व्याकुल हो उठा। विनायकका रथ भी ऊपर उठने लगा, तब विनायकने स्तम्भन किया। एक असुर अशक्त होकर पृथ्वीपर गिरा ही था कि विनायकने उसे पकड़कर वज्र-तुल्य मुष्टिप्रहारसे अधमरा कर दिया। फिर उसे घुमाकर इतने जोरसे पटका कि उसके प्राणपखेरू उड़ गये। राक्षसकी निष्प्राण विशाल देह देखकर जन-समुदाय आश्चर्यचकित हो गया। सब लोग मन-ही-मन कह रहे थे—'यह कश्यपकुमार कौन शक्तिशाली देवता है, जिसने इन अजेय असुरोका देखते-ही-देखते वध कर दिया ?'

चकित काशिराजने विनायकके चरणोमे प्रणाम कर रथ आगे बढाया ही था कि बालक विनायकने पाषाणरूपी असुरको देखा। विनायकने तुरंत रथसे कूदकर उसपर अपने तीक्ष्ण परशुका प्रहार किया। उक्त विशाल पाषाण शतधा छिन्न हो गया। फिर तो उस शिलाखण्डसे अत्यन्त भयानक पिङ्गलवर्ण विशालकाय कूट-नामक असुर निकला। उसके मुख-दाँत, श्मश्रुजाल एवं नेत्र अत्यन्त भयावह थे। उसे देखकर नगरनिवासी भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे; किंतु अमित साहसी कश्यपकुमारने उसे तुरंत पकड़ लिया और मुष्टि-प्रहारसे ही उसे मार डाला। यह दृश्य देखकर काशीवासियोके मनमे दृढ़ निश्चय हो गया कि 'यह लोकोत्तर बालक अवश्य ही असुरोका सर्वनाश करनेमे समर्थ सिद्ध होगा।'

काशिराज विनायकको सम्मान-प्रदान करनेके लिये रथसे उतर पड़े। वे विनायकको राजभवनमे ले गये। उनकी षोडशोपचारसे पूजा एवं स्तुति की। उन्हें बहुमूल्य वस्त्र एवं अलंकरण प्रदान किये। अत्यन्त आदरपूर्वक विविध प्रकारके सुस्वादु व्यञ्जनोका भोजन कराकर उन्हे एक श्रेष्ठ कक्षमे सुन्दरतम पर्यङ्कपर शयन कराया। दिनभरके थके विनायक रात्रिमे सो गये।

प्रातःकाल विनायकने शय्या त्यागकर स्नानादि किया। वे अग्निहोत्रादिसे निवृत्त हुए ही थे कि धर्मदत्त-नामक एक ब्राह्मणदेवता उन्हें अपने घर लिवा जानेके लिये आये। विनायक उनके साथ जा ही रहे थे कि मार्गमे नरान्तकके भेजे हुए काम और क्रोध-नामक दो राक्षस उन्हें मारनेके लिये आ गये। वे गर्दभरूपधारी राक्षस परस्पर लड़ते हुए विनायकके ऊपर गिर पड़े। विनायक उन दोनोको मारकर ज्यो ही आगे बढ़े, त्यो ही उन्होने सामने एक मदमत्त गजराजको देखा, जो नगरमे सर्वनाश करनेपर तुला हुआ था। नगरकी कुछ जनता घरोमे छिप गयी थी और कुछ यत्र-तत्र प्राण लेकर भाग रही थी। उस गजको वशमें करनेका कोई उपाय नहीं था। विनायक दौड़े। गजके समीप पहुँचते ही उन्होंने विद्युत्-गतिसे उसकी सूँड़ काट दी। फिर व्याकुल गजके गण्डस्थलपर इतना तीव्र प्रहार किया कि वह चिग्घाड़ता हुआ धरतीपर जा गिरा। तब लोगोने प्रत्यक्ष देखा, वह क्रूरतम महाबली कुण्ड राक्षस था। नगर-निवासी निश्चिन्त हुए।

जृम्भा-वध

धूम्राक्षकी पत्नीका नाम था—जृम्भा। राक्षसी जृम्भाने अपने पतिके संहारकसे प्रतिशोध लेनेका निश्चय

---

* ब्राह्मणाः परमात्मानं पश्यन्ति स्म विनायकम्।
क्षत्रियास्तं महावीरं पश्यन्ति स्म रणोत्सुकम्॥
वैश्यास्तं ददृशुः सर्वे रुद्रं संहारकारकम्।
शूद्रास्तु हरिरूपेण नृपरूपेण चालुकन्॥
यस्य यस्य यथा भावस्तादृशं सोऽन्ववीक्षत।
यथा रक्ते सिते पीते स्फटिकस्तादृशाकृतिः॥
(गणेशपु० २। १३। १९—२१)

† मुमुचुः पुष्पवर्षाणि देवास्तस्मिन्नभोगताः।
साधु साध्विति शब्दैश्च जयशब्दैश्च केचन॥
(गणेशपु० २। १३। २६)

कर लिया था। वह पीताम्बर, कङ्कण तथा आकर्षक वस्त्रालंकार धारणकर विनायकके समीप पहुँची और उनसे कहा—'तुम्हारे माता-पिता धन्य हैं, जो तुम्हारे-जैसा शूरवीर पुत्र उन्हे प्राप्त हुआ। तुमने कितने ही राक्षसोंका वध कर कितना शुभ किया। यह श्रम-निवारक सुगन्धित तैल मैं तुम्हारे लिये लायी हूँ। आओ, इसे स्वीकार करो।'

देवीरूपिणी जृम्भाकी मधुर वाणीसे मुस्कराते हुए विनायकने तेल लगवाना स्वीकार कर लिया; किंतु तेलका स्पर्श होते ही उनके शरीरमे दाह उत्पन्न होने लगा। चतुर विनायकने तुरंत पासमें पड़ा हुआ नारिकेल उठाकर उस राक्षसीके सिरपर दे मारा। राक्षसीका सिर फट गया। तड़प-तड़पकर प्राण-त्याग करते समय उसका असली स्वरूप प्रकट हो गया। तब लोगोंकी समझमें आया कि यह धूम्राक्ष-पत्नी सुन्दर नारीके वेषमे विषमिश्रित तैलके द्वारा विनायकका जीवन नष्ट करने आयी थी।

दूसरे दिन काशिराज जन-प्रतिनिधियों, विनायक, मित्रों और अमात्योंके साथ सभामें पहुँचे। वे युवराजके विवाहके लिये पुरोहित-पुत्र विनायकको किस प्रकार ले आये तथा विनायकने किस-किस असुरका किस प्रकारका विनाश किया, इसका भी विस्तृत वर्णन करते हुए उन्होंने विनायककी शूर-वीरता एवं विलक्षण बुद्धिकी भूरि-भूरि प्रशसा की। फिर उन्होंने युवराजके विवाहका मुहूर्त्त निश्चित करनेकी अपनी इच्छा व्यक्त की।

राजाकी बात सुनकर एक वरिष्ठ अमात्यने निवेदन किया—'राजन्! जबसे यहाँ विनायकका आगमन हुआ है, तभीसे असुरोंके नये-नये उपद्रव हो रहे हैं और मेरे विचारसे इनके यहाँ रहते यहाँ शान्ति भी नहीं होगी। अतएव विवाह एकाध मासके लिये टाल देना अधिक उचित होगा।'

नरेशने इसका कोई विरोध नहीं किया। वे लौट आये। विनायकके साथ भोजन किया। फिर दोनों शयन करने चले गये।

अनेक दैत्योंका वध

नीरव निशीथ! काशीनरेश, विनायक एवं समस्त प्रजा सो रही थी; किंतु क्रूर नरान्तकके अत्यन्त क्रूर सेनापति ज्वालामुख, व्याघ्रमुख और दारुण अपने विशाल सैन्यके साथ काशीको घेरकर उसका ध्वंस करनेकी योजना बना रहे थे।

भयंकर ज्वालामुखने दारुणके सहयोगसे काशीके चारों ओर आग लगा दी। नगर धायँ-धायँ जल उठा। काशी-नरेशकी प्रजा व्याकुल होकर इधर-उधर भागने लगी, पर उसे कोई मार्ग नहीं मिल रहा था। जो नगर-निवासी बाहर निकलते, व्याघ्रमुख उन्हें समाप्त कर देता। काशीमे हाहाकार व्याप्त हो गया।

नरेशने राज्यमें सर्वत्र घूमकर देखा, नगरकी सम्पूर्ण सीमा अग्निकी भयानक लपटोंमे जल रही थी। बाहर निकलनेका कोई मार्ग नहीं था। अत्यन्त व्याकुल होकर उन्होंने कहा—'सम्पूर्ण विपत्तियोंके मूल इस विनायकको मैं क्यों ले आया?* अब मेरा सर्वस्व नष्ट हो जायगा।'

फिर आकुलचित्त नरेशने अपने दुर्गपर चढ़कर नगरकी ओर दृष्टिपात किया तो उनकी बुद्धि निष्क्रिय हो गयी। वे विनायकको ढूँढने लगे। राजा और सम्पूर्ण प्रजा विनायकको पुकार रही थी।

उसी समय पूर्व क्षितिजपर रक्तबिम्ब उदित हुआ। अमित शक्तिसम्पन्न परम तेजस्वी और परम शान्त विनायकने नगरकी दारुण दशा और नरेशकी अधीरता देखी तो उन्होंने योगमायाका आश्रय लिया। वे दौड़े और परम शूर-वीर, परम निष्ठुर, क्रूर व्याघ्रमुखको पकड़ लिया और उसे वहीं मार डाला। उसके शरीरके टुकडे कर उसे आकाशमें दूर फेंक दिया।

फिर क्रोधानलकी प्रतिमा विनायक ज्वालामुखके समीप पहुँचे। उसका विशाल सैन्य-दल कुछ समझ नहीं पा रहा था कि कहाँ क्या हो रहा है? महोत्कटने ज्वालामुखका शरीर चीरकर रख दिया। भयानक दारुण भी उनके हाथों मारा गया।

असुर-सैन्यमे हाहाकार मचा। सिंहारूढ़ विनायककी अद्भुत शस्त्र-वर्षासे असुरोंकी सारी सेना गाजर-मूलीकी तरह कट मरी। कुछ ही असुर प्राण बचाकर भाग सके।

---

* कथं मया बाल एष सर्वारिष्टप्रवर्तक।
सर्वस्वहारको मौढ्याद् दुर्निमित्तस्य कारणम्॥
(गणेशपु० २। १५। २८)

विनायकने गर्जना की। उसे सुनकर सारी प्रजा प्रसन्न हुई। विनायक नरेशके समीप पहुँचे। उन्होंने नागरिकों एवं काशिराजके सैनिकोंके सहयोग एवं अपनी अद्भुत शक्तिसे ध्वस्त नगरका पुनः निर्माण करा दिया। उन्होंने काशिराजके सैनिकोंको सावधान किया। उन्हें अनेक प्रकारके आयुधोंका सञ्चालन एवं प्रक्षेपण भी सिखा दिया।

काशीमें नवजीवन एवं नवोल्लासकी लहर दौड़ पड़ी। नरान्तकके विशाल सैन्यके त्वरित पराजयसे महामहिम विनायकके साथ काशिराजकी भी कीर्ति और ख्याति सुदूर देशतक फैल गयी। गिरि-कन्दराओंमें निवास करनेवाले राजाओं, देवताओं एवं ऋषि-मुनियोंका मन प्रसन्न होने लगा। वे सभी असुर-विनाशकी विनायक-योजनामें सहयोग देनेका विचार करते हुए आशा और विश्वासके साथ विनायककी महिमाका गान करने लगे।

काशिराजने प्रसन्न होकर विनायककी पूजा की तथा ब्राह्मणोंको विविध प्रकारके दान दिये। विनायकने भी ब्राह्मणोंको तृप्तिकर उपहार भेंट किये। काशिराजकी राजधानीमें सर्वत्र आनन्द और उल्लास छा गया। नरेश प्रसन्न रहने लगे, किंतु परम बुद्धिमान् विनायक नरान्तक और देवान्तककी अपरिमित शक्ति, उनकी कुटिलता और उनकी पराक्रमी वीर वाहिनीसे प्रतिक्षण सचिन्त और सशङ्क थे।

* * *

दूसरे दिन नित्यकर्मसे निवृत्त होकर विनायक बालकोंके साथ खेलने चले गये और नरेश राजसिंहासनपर पहुँचे। उसी समय वहाँ एक दीर्घश्मश्रुधर ज्योतिषी पहुँचा। उसने रेशमी वस्त्र धारण किये थे और सिरपर विशाल पगड़ी बाँध रखी थी। उसके बायें हाथमें पुस्तक और दाहिने हाथमें रुद्राक्षकी माला थी। ललाटपर गोपीचन्दनका तिलक था।

राजाने उसे प्रणाम किया; फिर समीपस्थ आसनपर बैठाकर उसका परिचय एवं उसके आगमनका हेतु पूछा।

'राजन्! मेरा नाम हेमज्योतिर्विद् है और मैं गन्धर्वलोकसे आ रहा हूँ।' काशिराजको आशीर्वाद देकर गणकने कहा—'मैं भूत, वर्तमान और भविष्यका ज्ञाता हूँ। आपकी कल्याण-कामनासे यहाँ आया हूँ। आप अकण्टक राज्य कर रहे थे, किंतु अब नित्य नूतन उपद्रव हो रहे हैं और भविष्यमें और भी अधिक हानि होगी। आपके यहाँ कश्यप-पुत्र महोत्कटका आगमन आपके राज्यके लिये शुभ नहीं है। कुछ नहीं तो बलवान् महोत्कट ही आपको बंदी बनाकर राज्यपर अधिकार कर लेगा। नीतिकी दृष्टिसे भी आप महोत्कटको यहाँसे शीघ्र हटा दें, यही वाञ्छनीय है।'

'आपके वचन सुनकर तो मुझे आपका ज्योतिष-ज्ञान संदिग्ध प्रतीत होता है।' काशिराजने गणकसे स्पष्ट कहा—'काशी पधारनेके पूर्वसे ही महोत्कटने कितने उत्कट असुरोंका संहार किया है और सम्पूर्ण प्रजा कितनी सुखी है, यह तो प्रत्यक्ष ही है। आप विनायकसे सर्वथा अपरिचित हैं, अन्यथा ऐसा नहीं कहते। वे छोटा राज्य तो क्या, दूसरे ब्रह्मा, विष्णु, शिव और निखिल ब्रह्माण्डकी रचना करनेमें समर्थ हैं। वे इन्द्रको अनिन्द्र, असमर्थको समर्थ, छोटेको बड़ा, बड़ेको छोटा, नीचको उच्च और ईश्वरको अनीश्वर कर सकते हैं।* जब इन्होंने दुष्टता करनेवाले भयानक असुरोंको मार डाला, तब दूसरे द्वेष करनेवालोंको किस प्रकार छोड़ देंगे। आपको ऐसा वचन नहीं कहना चाहिये।'

राजाकी वाणी सुनकर ज्योतिषीका मुख कुछ विकृत हो गया। उसने क्रोधके आवेशमें फिर कहा—'राजन्! मैं तुम्हारे हितकी बात कहता हूँ; किंतु सुनिश्चित भविष्य टल भी कैसे सकता है? तुम जरा उस बालकको बुलाओ। मैं उसकी भी रेखाएँ देखकर फल बता देता हूँ।'

उसी समय बाल-समुदायके साथ विनायक वहाँ पहुँच गये। वे गणकको प्रणामकर राजाके समीप जा बैठे। अत्यन्त बलवान् कश्यपनन्दनको देखकर ज्योतिषी सहम गया। उसकी मुखाकृति म्लान हो गयी। 'इस बालककी दृष्टिमें आकर कोई भी राक्षस अबतक जीवित नहीं लौट पाया'—यह सोचते ही उसके भालपर स्वेद-बिन्दु निकल आये।

अदितिकुमारकी ओर देखकर फल बताते हुए जैसे वह प्रलाप करने लगा—'तू चार दिनमें कुएँमें गिर जायगा; यदि उससे बच गया तो समुद्रमें डूब जायगा। इससे भी

---

* ब्रह्माणं कमलाकान्तमपरं शूलिनं हरम्।
जनयिष्यति वाञ्छा चेद् ब्रह्माण्डानि बहूनि स॥
करोतीन्द्रमनिन्द्रं वाशक्तं शक्तं लघुं गुरुम्।
उच्चं नीचं तथा नीचमुच्चमीशमनीश्वरम्॥
(गणेशपु० २। १८। २५, २९)

बच सका तो तुझपर पहाड़ टूट पड़ेगा। तुझे कालपुरुष खा जायगा। यह सब निश्चय ही होगा, इसमें संदेह नहीं। यदि तू इन विपत्तियोंसे बचना चाहता है तो चार दिनोंके लिये मेरे साथ वनमें चल। मैं तुझे फिर यहाँ पहुँचा दूँगा।'

ज्योतिषीकी व्याकुलता तथा उसकी कम्पादि भाव-भङ्गिमा देखकर विनायकने उसके सुविस्तृत वज्र-तुल्य वक्षपर मुद्रिकास्त्रका प्रयोग किया। उसका वक्ष विदीर्ण हो गया और उससे रक्तका फव्वारा छूट पड़ा। चीत्कार करता हुआ नरान्तकका वह वीर असुर पृथ्वीपर रक्त फेंकता मृत्युमुखमें चला गया।

यह दृश्य देखकर सभी आश्चर्यचकित हो गये। देव-गण प्रसन्न होकर दिव्य पुष्पोंकी वृष्टि करने लगे। काशीनरेशने महोत्कटकी पूजा एवं उनके चरणोंकी वन्दना की। उन्होंने विघ्न-शान्त्यर्थ अनेक प्रकारके दान दिये।

* * *

ब्राह्मणवेषधारी असुरके मारे जानेपर नरान्तकने असुरोंका प्रतिशोध लेनेके लिये कूपक और कन्दर-नामक दो प्रचण्ड दैत्योंको अनेक प्रकारके रत्नालंकार प्रदान कर भेजा। उन प्रबल कूपक और कन्दरके साथ विशाल असुर-सेना तथा सभी सैन्य-सामग्रियाँ थीं।

कूपक काशिराजके आँगनमें कूप बना और कन्दरने बालकका वेष बनाकर बालकोंको एकत्र किया। खेलके मिस वे दैत्यद्वय विनायकका प्राण-हरण करना चाहते थे; किंतु विनायकके सम्मुख उनकी एक न चली। दोनों महादैत्य मारे गये। फिर विनायककी कूटनीतिसे कूपक और कन्दरकी सेनाएँ परस्पर युद्ध करके मर मिटीं।

* * *

कूपक और कन्दर-जैसे प्रबल दैत्योंके निधनसे क्षुब्ध होकर नरान्तकने अन्धक, अम्भकासुर और तुङ्ग—तीन प्रचण्ड असुरोंको महोत्कटका विनाश करनेके लिये भेजा। इन असुरोंका नाम सुनकर ही भयवश ब्रह्मादि देवगण पलायित हो गये थे। इन असुरोंने त्रैलोक्यके प्रख्यात वीरोंका मान-मर्दन कर दिया था।

इन प्रसिद्ध तीनों असुरोंने यह प्रतिज्ञा की थी—'हम काशी-राज्यका ध्वंस कर उसे जलमें डुबो देंगे। निश्चय ही महोत्कट मारा जायगा; बस, वह दृष्टिमें पड़ जाय। शत्रु-संहारके बिना हम जीवित घर नहीं लौटेंगे।'

तीनों मायावी प्रबल दैत्योंने अपनी शस्त्र-वर्षासे काशी-राज्यको आच्छादित कर देनेका निर्णय कर लिया। यह दृढ़ निश्चय लेकर अपनी महान् सेनाओंके साथ वे तीनों असुर काशीके समीप पहुँचे। उनके गर्जनसे त्रैलोक्य कम्पित हो रहा था।

अन्धकासुरने अपनी मायासे भगवान् भुवनभास्करको आच्छादित कर लिया। सर्वत्र गहन अन्धकार व्याप्त हो गया। जो द्विज स्नान, संध्या-वन्दन, जप-तप, वेद-पाठ, पुराण-पाठ, कथा-कीर्तन और पूजन आदि कर्ममें तल्लीन थे, वे सहसा घोर अन्धकारसे चकित हो गये। गृहिणियाँ दुग्ध गर्म करने आदि घरके कार्य प्रारम्भ ही करने जा रही थीं कि अचानक प्रगाढ़ तमसे व्याकुल हो गयीं। इसी प्रकार चारों वर्णोंके बालक-युवा-वृद्ध नर-नारी—सबके कार्य रुक गये। दिनमें ही घरोंके भीतर दीप जला दिये गये।

'यह कैसे क्या हो गया? प्रकृतिका अविचल नियम सहसा कैसे परिवर्तित हो गया? विन्ध्यगिरिने क्या पुनः सूर्यमण्डलको अवरुद्ध कर दिया है?'—इस प्रकारकी चिन्तासे काशीकी प्रजा चिन्तित हो रही थी।

सहसा अम्भकासुरके क्रोधसे प्रबल झंझावात उठा। गिरि-शिखर भू-लुण्ठित होने लगे। वृक्ष समूल उखड़कर पृथ्वीपर गिर पड़े। तमसाच्छन्न नगरमें भयानक अंधड़से और विपत्ति आ गयी। इतना ही नहीं, आकाशमें दल-के-दल भयानक मेघोंका गर्जन होने लगा। चपला चमकने लगी और कुछ ही क्षणोंमें मूसलाधार वृष्टि प्रारम्भ हो गयी।

प्रगाढ़ तम, प्रबल प्रभञ्जन और प्रलयकालीन वृष्टि। काशीकी प्रजाके कष्टकी सीमा नहीं थी। वन-उपवन और वाटिकाएँ ध्वस्त हो रही थीं। भयानक वृष्टिसे त्राण पानेके लिये समस्त स्त्री-पुरुष घरोंमें चले गये, पर गृहोंके धराशायी होनेसे कितनी प्रजा मृत्युमुखमें चली गयी। वृष्टि उत्तरोत्तर तीव्र होती गयी और सब कुछ तीव्र गतिसे जलमग्न होता जा रहा था। सभी लोग त्रस्त थे, सभी भयसे काँप रहे थे, सभी अधीर, अशान्त और किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गये थे तथा सबकी बुद्धि निष्क्रिय हो गयी थी।

निर्मम दैत्योंकी प्रलयंकर मायासे पीड़ित पुरवासियोंका कष्ट देखते ही आर्त्तत्राणपरायण विनायकने अपनी मायासे लता-गुल्म-सुशोभित एक अत्युच्च वटका निर्माण किया। उसकी शाखाएँ सौ योजनतक फैली हुई थीं। उस समय विनायक

विशालतम अद्भुत पक्षीके रूपमें प्रकट हुए। उस पक्षीके सुपुष्ट पंख दूरतक फैले हुए थे। उसका मस्तक आकाशको स्पर्श कर रहा था। उन पक्षीरूपी विनायकने असुरकी माया दूर की और सूर्य प्रकाशित हुए।

फिर उस अलौकिक पक्षीने जलमें डुबकी लगायी और कुछ ही देरमें सम्पूर्ण जल सूख गया। मायावी अन्धक एवं अम्भकासुरकी माया नष्ट हुई। द्विजातियों एवं नगर-निवासियोंका जीवनक्रम पूर्ववत् प्रारम्भ हुआ।

अन्धक और अम्भकके सर्वथा अशक्त हो जानेपर तुङ्गने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उस महान् पक्षीपर मूसलाधार वृष्टि प्रारम्भ कर दी। प्रचण्ड तुङ्ग भयानक गर्जन करता हुआ ब्राह्मणोंके आश्रमोंको जलधारा एवं शिला-वर्षणसे नष्ट करता जा रहा था और वह उस अद्भुत शक्तिशाली पक्षीको मार डालना चाहता था।

महान् पक्षिराजने अपने विशाल पंख पसारे और आकाशमें उड़ते हुए तीव्रगतिसे चारों ओर घूमने लगे। उन्होंने सहसा पर्वत-तुल्य तुङ्गको अपने तीक्ष्णतम कठोर चञ्चुपुटमें ले लिया और फिर आकाशमें उड़ने लगे। प्रख्यात असुर-योद्धा सर्वथा असहाय और निरुपाय हो गया।

तुङ्गासुरको अपनी चोंचमें लिये पक्षिराज तीव्रगतिसे धरतीकी ओर लपके। वे अपने एक पैरमें अन्धक और दूसरे पैरमें अम्भकको लेकर विस्तीर्ण नीलाकाशमें अत्यन्त ऊँचे जाकर चारों ओर चक्कर काटने लगे। असुरत्रय तीव्र भ्रमण एवं सूर्यकी अग्निमयी किरणोंसे झुलसकर मूर्च्छित हो गया था। पक्षिराजने शून्यमें अत्यधिक ऊपर जाकर उन तीनों असुरोंको अपनी चोंच एवं पैरोंसे मुक्त कर दिया। पृथ्वीपर गिरते ही उनका शरीर चूर्ण-विचूर्ण हो गया। आकाशसे पुष्प-वृष्टि होने लगी।

करुणाकर विनायककी कृपासे काशिराज और उनकी प्रजाकी विपत्ति दूर हुई। सबने हर्ष-विभोर होकर विनायककी जय-जयकार की, किंतु प्रयत्न करनेपर भी उन्हें उक्त मायामय विशाल वट एवं पक्षीके पुनः दर्शन नहीं हुए।

काशिराजने विनायककी पूजा एवं स्तुति कर ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारके दान दिये। उन्होंने शान्ति-होम कराकर गोदान किया और सबके चले जानेके बाद वे विनायकके साथ भोजन करने बैठे।

* * *

अम्भकासुरका मस्तक उड़कर उसके भवनमें गिरा। उस समय उस महादैत्यकी माता भ्रमरी स्वर्णशय्यापर शयन कर रही थी। अम्भकका छिन्न मस्तक भ्रमरीकी एक सखीने देखा। अत्यन्त आश्चर्यसे उसने वह मस्तक भ्रमरीको दिखाया तो भ्रमरी मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी।

होशमें आनेपर वह अपने अन्यतम वीर पुत्रका सिर गोदमें लेकर विलाप करने लगी—'मेरे जिस वीर पुत्रसे पृथ्वी और स्वर्ग दोनों त्रस्त थे, जिसकी वक्र भृकुटिसे सहस्रफणधारी शेष काँप उठता था, जिसने देवान्तक और नरान्तकको त्रैलोक्यके राजसिंहासनपर अभिषिक्त किया था, जिसके रोषमात्रसे भयभीत होकर धरती और आकाश कम्पित होते थे और जिसे देखकर साक्षात् काल काँपने लगता था, उसे किसने, कब, कैसे, कहाँ मारा?' *

अत्यन्त दुःखसे भ्रमरीको विलाप करते देख उसकी सखीने समझाया—'प्रत्येक प्राणीकी अन्तमें यही गति होती है, पर मृत प्राणीके लिये रुदनसे गिरे हुए अश्रु उसके मुखमें तप्त ज्वालाकी तरह पड़कर उसे कष्ट देते हैं। अतएव तुम क्रन्दन छोड़कर शत्रुसे प्रतिशोध लेनेका प्रयत्न करो।'

'मेरे पुत्रका मस्तक तेलमें सुरक्षित रखो।' आँसू पोंछती हुई भ्रमरीने सखीसे कहा—'मैं काशी जाती हूँ। वहाँसे शीघ्र ही अदितिके पुत्रका सिर लाकर ही उसके साथ इसका दाह-संस्कार करूँगी।'

क्रुद्ध सर्पिणी-तुल्य फूत्कार करती हुई भ्रमरीने देवमाता अदितिका रूप बनाया और काशी पहुँची। उस समय विनायक बालकोंके साथ खेलने चले गये थे।

सर्वश्रद्धास्पद महोत्कटकी जननीके वेषमें आनेपर भ्रमरीका

---

* येनेयं पृथिवी सर्वा त्रासिता सामरावती ॥
मूर्ध्नां सहस्रं शेषस्य भ्रूकटाक्षेण कम्पितम्।
येन राज्येऽभिषिक्तौ तौ देवान्तकनरान्तकौ ॥
यस्य क्ष्वेडितमात्रेण रोदसी कम्पिते भृशम्।
स कथं पतितः कुत्र निहतः केन वा सुतः ॥
य दृष्ट्वा कम्पितः काल स कथं निधनं गतः।

(गणेशपु० २।२१।७—१०)

अम्भकासुरकी माता भ्रमरीके इस विलापसे स्पष्ट होता है कि विनायकने इस असुरका वध कर देवान्तक और नरान्तकका प्रमुख प्रबल स्तम्भ नष्ट कर दिया। असुरोंकी अजेय शक्ति क्षीण हो चली।

बड़ा स्वागत हुआ। काशिराजकी सहधर्मिणीने अत्यन्त श्रद्धा-पूर्वक उसके चरणोंमें प्रणाम कर उसकी पूजा की। उसे बहु-मूल्य वस्त्रालंकार प्रदान किये। फिर प्रेमगद्गद वाणीमें उन्होंने कहा—'आज बड़े भाग्यसे आप-जैसी महिमामयी देवीका दर्शन प्राप्त हुआ। यदि यहाँ विनायक नहीं होते तो यह कैसे सम्भव था?'

अदितिरूपिणी भ्रमरीने अन्तर्व्यथाको छिपाकर कहा—'आप स्त्री-हृदयसे परिचित हैं। इतने अधिक दिन बीत जानेसे मैं महोत्कटके बिना व्याकुल होकर यहाँ आ गयी। वह कहाँ है? उसे शीघ्र बुलाइये। उसे गोदमें बैठानेके लिये मैं तरस रही हूँ।'

रानीने तुरंत विनायकको ढूँढनेकी आज्ञा दी। अदितिके आगमनका समाचार काशीनरेशको मिला तो वे हर्षातिरेकसे दौड़ते आये। उन्होंने अत्यन्त भक्तिपूर्वक अदितिरूपिणी भ्रमरीके चरणोंमें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर बोले—'आज जगज्जननी, साक्षात् शक्ति देवमाताके यहाँ पधारनेसे मेरे पितर, मेरा तप, मेरा जन्म और राज्य सभी धन्य हो गये। आपकी महिमाका गान करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। आपके पुत्र विनायक सहस्राक्षसे भी अधिक पराक्रमी हैं। उन्होंने कुछ ही दिनोंमें कितने ही दुष्ट दैत्योंका संहार कर दिया। अभी-अभी अन्धक, तुङ्ग और महाशक्तिसम्पन्न क्रूरतम अम्भकका विनाश महोत्कटने ही किया है।'

अपने पुत्रका वध सुनकर भ्रमरी क्रोधोन्मत्त हो गयी। उसके अधर फड़कने लगे; किंतु अदितिरूपकी रक्षाके लिये उसने बलपूर्वक अपने मनपर नियन्त्रण किया। राजा कहते जा रहे थे—'विनायक यहाँ सुखपूर्वक रह रहे हैं। उनसे हम सभी प्रसन्न हैं। यह मेरा सौभाग्य है। आप कृपापूर्वक कुछ दिन यहाँ रहें। युवराजका विवाह होते ही मैं आप दोनोंको आश्रमपर पहुँचा दूँगा।'

'राजन्! आप कैसी बात करते हैं?' भ्रमरीने उत्तर दिया—'आप मातृ-वियोग क्या जानें? महोत्कट यहाँ कैसे सुखी रह सकता है?'

उसी समय बालकोंसे अपनी माताके आनेका संवाद पाकर देवदेव विनायक वहाँ पहुँच गये। भ्रमरीने उन्हें तुरत अपने वक्षसे लगाया और साश्रुनयन कहने लगी—'अरे निष्ठुर विनायक! तूने कितने दिनोंसे अपनी माताको छोड़ दिया है। मैंने तेरे लिये अपने प्राणोंपर खेलकर तपस्या की थी और कितने कष्ट सहकर तुझे प्राप्त किया था। तेरे बिना मुझे एक-एक दिन कल्प-तुल्य बीत रहा था, इस कारण मैं यहाँ चली आयी।'

इस प्रकार कहती हुई भ्रमरीने उन्हें गोदमें लेकर मोदक दिया। विनायकने उक्त मोदक खा लिया, पर अपनी माताके स्वभावसे परिचित होनेके कारण उन्हें उसके छलका विश्वास हो गया। उन्होंने दूसरा मोदक माँगा। भ्रमरीने तुरंत दूसरा मोदक दे दिया। अत्यन्त चतुर विनायकको गन्धमात्रसे सहज ही भान हो गया कि यह मोदक भयानक गरलमिश्रित है।

'आप चलकर विनायकके साथ भोजन कर लें।' राजरानीने अत्यन्त प्रीतिपूर्वक अदितिरूपा भ्रमरीसे प्रार्थना की, किंतु हाथमें मोदक लिये विनायक भ्रमरीके अङ्कमें पर्वतकी तरह अत्यन्त भारी हो गये।

'छोड़, छोड़! अरे मुझे छोड़!' भ्रमरी विकल-विह्वल होकर बोल उठी। किंतु पुत्रस्नेहका प्रदर्शन करते हुए महोत्कट उसके वक्षसे और अधिक चिपट गये।

'अरे, क्या तू मुझे मार डालेगा?' भ्रमरी चिल्लाने लगी; किंतु महोत्कट बाल-क्रीड़ाके मिस उसे उत्तरोत्तर पीड़ित करने लगे। वह छटपटाती जा रही थी।

राक्षसीके श्वासोच्छ्वास चलने लगे। उसके नेत्र विकृत होने लगे। यह दृश्य देखकर विनायकके मित्र बालकोंने उन्हें खींचते हुए कहा—'अरे! उठो, नहीं तो तुम्हारी माँ मर जायगी। यह तुम क्या कर रहे हो; तुम अपने पितासे क्या कहोगे?'

किंतु महोत्कट गिरीन्द्र-तुल्य उसके अङ्कमें बैठकर उसे अनेक प्रकारसे यातना दे रहे थे। भ्रमरी अधिक न सह सकी। उसके हाथ-पैर फैलकर कड़े हो गये, नेत्र निकल आये और उसका निष्प्राण कलेवर धरतीपर लुढ़क गया।

महोत्कट चुपचाप खड़े हो गये। तब राजा, रानी और बालकोंको विदित हुआ कि यह बालघातिनी महाराक्षसी अम्भकासुरकी माता भ्रमरी अदितिके वेषमें विनायकका प्राण-हरण करने आयी थी।

विनायकके अत्यन्त अद्भुत ज्ञानमय सामर्थ्यको देखकर काशिराज, ऋषि तथा लोकपाल आदि उनकी स्तुति

करने लगे। वह स्तुति 'उत्पातनाशनस्तोत्र'के नामसे प्रख्यात हुई।*

फिर सब लोगोंने विशाल राक्षसीके शरीरके टुकड़े-टुकड़े कर नगरके बाहर फेंक दिये।

※ ※ ※

विनायक-अभिनन्दन

अत्यन्त छल-कपटसे भरे कुटिलतम, अन्यायी असुरोंके साथ अम्भक-जैसे इन्द्रविजयी महादैत्यके वध करने तथा काशीको महान् सौभाग्य एवं कीर्ति प्रदान करनेके कारण नगरनिवासियोंके मनमें यह दृढ़ निश्चय हो गया कि विनायक धरतीके महापुरुष ही नहीं, अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक हैं; वे परमात्मा गजानन ही मेदिनीको असुरविहीन कर सद्धर्मकी स्थापनाके लिये पृथ्वीतलपर अवतीर्ण हुए हैं, इस विश्वासके साथ प्रातःकाल ही समस्त नागरिक नरेशके समीप पहुँचे। उस समय महोत्कट प्रातःसंध्या-वन्दनादिसे निवृत्त होकर बालकोंके साथ क्रीड़ा करने चले गये थे।

'आपलोग प्रातःकाल ही किस उद्देश्यसे यहाँ उपस्थित हुए हैं?' काशिराजने प्रजाजनोंसे पूछा।

'हमलोगोंका परम सौभाग्य है कि आप कश्यपनन्दनको यहाँ ले आये।' प्रजा-प्रतिनिधिने महाराजसे निवेदन किया—'उनके आगमनसे हमारी आपदाएँ टलीं, हम सुखी और यशस्वी हुए, किंतु वे सदा राज-भवनमें रहते हैं। आपको प्रतिदिन उनकी सेवा-पूजाका अवसर सुलभ है, किंतु हम सबकी कामना है कि प्रभु विनायक हमारे यहाँ भी पधारें और हमारी पूजा स्वीकार कर हमारा जीवन एवं जन्म सफल करें।'

'आप सर्वथा उचित कहते हैं।' काशिराजने प्रजाजनोंसे कहा—'विनायककी सेवा-पूजा कर उनकी प्रीति प्राप्त करनेका अधिकार मेरी ही भाँति आप सबको भी है। सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंके अनुसार मनुष्योंके तीन प्रकार हैं। जो अत्यन्त दुष्ट प्रकृतिके हैं, वे इनकी परीक्षा करने लगते हैं; किंतु पुण्यवान् पुरुष इनकी भक्ति करते हैं। कोई इनकी निन्दा करता है और कोई प्रशंसा। अपने स्वभावानुसार ही मनुष्य इन्हें जानते हैं। अतएव यदि इन मुनिकुमारके प्रति आपके मनमें श्रद्धा-भक्ति है और आप प्रीतिपूर्वक इनको प्रसन्न करना चाहते हैं तो इन्हें ले जाइये और इनकी पूजा कीजिये। इन्हें नैवेद्य अर्पित कीजिये; किंतु मातृ-पितृस्वरूप इन विनायकदेवकी परीक्षा मत कीजियेगा।'

'प्रजावत्सल! आपकी आज्ञासे हम सभी प्रसन्न हुए।' नागरिकोंके प्रतिनिधिने पुनः निवेदन किया—'आप ही हमलोगोंकी कामना-पूर्ति करें। आप अदितिनन्दनको हमारे यहाँ भेज दें, जिससे हम सब अपनी-अपनी शक्ति-सामर्थ्यके अनुसार उनका सत्कार कर सकें।'

उस समय जगद्गुरु बालक विनायक वहाँ आकर बैठ गये थे। नगर-प्रतिनिधिकी प्रार्थना सुनकर उन्होंने कहा—'आप-लोग काशिराजसे किस लिये प्रार्थना करते हैं? मैं सामान्य

---

* नाथस्त्वमसि देवानां मनुष्योरगरक्षसाम्॥
यक्षगन्धर्वविप्राणां गजाश्वरथपक्षिणाम्।
भूतभव्यभविष्यस्य बुद्धीन्द्रियगणस्य च॥
हर्षस्य शोकदुःखस्य सुखस्य ज्ञानमोहयोः।
अर्थस्य कार्यजातस्य लाभहान्योस्तथैव च॥
स्वर्गपाताललोकानां पृथिव्या जलधेरपि।
नक्षत्राणां ग्रहाणां च पिशाचानां च वीरुधाम्॥
वृक्षाणां सरितां पुंसां स्त्रीणां बालजनस्य च।
उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणे ते नमो नमः॥
पशूनां पतये तुभ्यं तत्त्वज्ञानप्रदायिने।
नमो विष्णुस्वरूपाय नमस्ते रुद्ररूपिणे॥
नमस्ते ब्रह्मरूपाय नमोऽनन्तस्वरूपिणे।
मोक्षहेतो नमस्तुभ्यं नमो विघ्नहराय ते॥
नमोऽभक्तविनाशाय नमो भक्तप्रियाय च।
अधिदैवाधिभूतात्मसंतापत्रयहराय ते॥
सर्वोत्पातविघाताय नमो लीलास्वरूपिणे।
सर्वान्तर्यामिणे तुभ्यं सर्वाध्यक्षाय ते नमः॥
अदित्या जठरोत्पन्न विनायक नमोऽस्तु ते।
परब्रह्मस्वरूपाय नमः कश्यपसूनवे॥
अमेयमायान्वितविक्रमाय मायाविने मायिकमोहनाय।
अमेयमायाहरणाय मायामहाश्रयायास्तु नमो नमस्ते॥

* * *

य इदं पठते स्तोत्रं त्रिसंध्योत्पातनाशनम्।
न भवन्ति महोत्पाता विघ्ना भूतभयानि च॥
त्रिसंध्यं यः पठेत् स्तोत्रं सर्वान् कामानवाप्नुयात्।
विनायकः सदा तस्य रक्षणं कुरुतेऽनघ॥

(गणेशपु० २। २१। ६०—७०; ७२-७३)

ऋषिपुत्र हूँ ? युवराजका व्रतबन्ध, विवाह और यज्ञादिक कर्म कराकर अपने आश्रमको लौट जाऊँगा। मेरी समझमें नहीं आता, आपलोग यह व्ययसाध्य आयोजन क्यों कर रहे हैं ? सहस्रों नागरिकोंके यहाँ मैं एक बालक कैसे जाऊँगा और मुझ बालकसे वाञ्छितार्थ-प्राप्तिकी कामना आपलोग कैसे कर रहे हैं ?'

'आप कृपापूर्वक हमारे हृदयमें भ्रम उत्पन्न मत कीजिये।' नगरप्रमुखने अत्यन्त विनम्रतापूर्वक निवेदन किया—'आप सृष्टि, पालन एवं संहार करनेवाले, कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुंसमर्थ, समस्त प्राणियोंकी चित्तवृत्तिसे परिचित एवं सर्वान्तर्यामी चिदानन्दस्वरूप परमप्रभु हैं। आपकी पूजा हमारे लिये नितान्त उपयोगी है। भक्तिप्रिय देव ! आप शास्त्र-वचनोंको अन्यथा न कर दयापूर्वक हमारी कामना-पूर्ति कर दें।'

'आपलोगोंकी प्रीति और राजाज्ञाके सम्मुख मैं नतमस्तक हूँ।' भक्तवाञ्छाकल्पतरु देवदेव विनायकने अपनी स्वीकृति दे दी।

'महाप्रभु विनायककी जय !' हर्षोल्लासपूर्वक समस्त नागरिक अपने-अपने घर लौटे।

फिर तो काशी-नगरीमें घर-घर अद्भुत, आकर्षक मण्डप बनने लगे। तोरण, वन्दनवार और पुष्पमालाओंसे प्रत्येक भवन सजाये गये। बहुमूल्य वस्त्र, आभरण, मनोहर पात्र, मधुर फल एवं पञ्चामृतयुक्त विविध पक्वान्न प्रस्तुत होने लगे। प्रत्येक घरमें विनायककी मूर्ति प्रतिष्ठित हुई। चन्दन, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य आदिसे उसकी पूजा की गयी। सारा नगर स्वच्छ करके सजा दिया गया। घर-घर विनायकका ध्वज लहराने लगा। सर्वत्र महोत्कटके गुणोंका कीर्तन होने लगा और मधुर वाद्य बजने लगे। इस प्रकार विनायकके सादर अभिनन्दनके लिये काशीमें अभूतपूर्व और अश्रुतपूर्व आयोजन किया गया। सभी लोग विनायकके पथमें पलक-पाँवड़े बिछाये उनके आगमनकी उत्सुकतासे प्रतीक्षा कर रहे थे।

काशीमें अत्यन्त सात्त्विक जीवन व्यतीत करनेवाले वेद-शास्त्रोंके ज्ञाता शुक्ल-नामक एक ब्राह्मण निवास करते थे। वे श्रौत-स्मार्त-कर्मोंके ज्ञाता, ब्रह्मनिष्ठ, अतिथियोंकी सेवा करनेवाले, शान्त, दान्त और क्षमादि गुणोंसे विभूषित थे। उनकी साध्वी धर्मपत्नीका नाम विद्रुमा था। विद्रुमा अत्यन्त निःस्पृहा, ज्ञानसम्पन्ना, अनुपम रूपवती एवं अद्भुत पतिपरायणा थी।

विप्रवर शुक्ल दरिद्र थे। उनका घर इतना टूटा-फूटा और जीर्ण था कि आकाशके नक्षत्र उससे सहज ही दीखते रहते थे। उनके घरमें सोने, चाँदी और ताँबेके पात्र कहाँसे आते, जब कि उनकी गौरवर्णा लावण्यमयी पत्नी वल्कल धारण कर अपने दिन काटती थी; किंतु वह साध्वी अपनी उसी गम्भीर दीनावस्थामें भी संतुष्ट रहकर अत्यन्त विनयावनत पतिकी सेवा करती रहती थी।

धनहीन शुक्ल भिक्षाटनके लिये निकले। उन्होंने देखा—नगर सुसज्जित हो रहा है और प्रत्येक व्यक्तिके मनमें विनायक-पूजाका उल्लास छाया है। शुक्लने भी महोत्कट-पूजनकी इच्छा व्यक्त की तो लोग हँस पड़े—'अरे ! आप क्यों व्यर्थ प्रयास करेंगे ? आप महामहिम महोत्कटका स्वागत किस प्रकार करेंगे ? आपके घरमें है भी कुछ ?'

भिक्षामें जो कुछ प्राप्त हुआ, लेकर शुक्ल शीघ्रतासे घर पहुँचे। उन्होंने अपनी सहधर्मिणीसे कहा—'जो देवदेव विनायक भूभार-हरणार्थ महर्षि कश्यपके घर अवतीर्ण हुए हैं, वे आज प्रत्येक घरमें पधारेंगे। उनके अभिनन्दनके लिये प्रत्येक घरमें अद्भुत आयोजन किये जा रहे हैं। हम भी उनकी पूजा करके अपना जीवन सफल कर लें।'

विद्रुमाने उदास होकर कहा—'मुने ! पहले तो हमारे-जैसे दरिद्रतम व्यक्तिके घर विनायक कैसे पधारेंगे और कदाचित् वे कृपापूर्वक आ ही गये तो उनके सत्कारके लिये गन्ध, पुष्प, पक्वान्न तथा विविध मधुर फलादि हमारे पास कहाँ हैं ? हमारे यहाँ आनेसे उनका कौन प्रयोजन सिद्ध होगा ?'

ब्राह्मण बोले—'प्रिये ! वे प्रभु दीन और अनाथोंके नाथ हैं। उन्हें प्रेमी भक्त प्राणाधिक प्रिय होते हैं। वे दम्भपूर्ण अर्पित किये गये सुवर्णादिसे भी संतुष्ट नहीं होते; वे लोभशून्य दयामय प्रभु तो प्रीतिपूर्वक समर्पित पत्र-पुष्पसे ही अत्यन्त प्रसन्न हो जाते हैं।'

शुक्लपत्नी विद्रुमाने कहा—'तो फिर हमारे पास जो कुछ है, उसे ही प्रभुको निवेदन करें।'

विद्रुमा प्रायः भिक्षामें प्राप्त अनेक प्रकारके अन्न एक-द्वीमें पीसकर रोटी बना लेती और थोड़े-से चावलमें अधिक पानी मिलाकर भात। पतिदेवको भोजन कराकर पीछे स्वयं

खाती। कभी-कभी तो उसे जलपर ही रहना पड़ता। उस दिन शुक्लशर्माने उस अन्नको देकर विनायक-पूजनके लिये गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, वन्यफल, वल्कल और मुखशुद्ध्यर्थ सूखा आँवला आदि वस्तुएँ ले लीं।

विनायकके चरणोंमें अमित श्रद्धा-भक्ति रखनेवाली उनकी सहधर्मिणी विद्रुमाने अपने छोटे-से घरको झाड़-पोंछकर स्वच्छ किया। सुन्दर चौक पूरा और दर्भ बिछाकर उसपर पूजोपकरण रख लिया। पत्तोंका तोरण द्वारपर बाँधा और पत्तोंका ही ध्वज खड़ा कर लिया। फिर अत्यधिक जलमें उपलब्ध थोड़े-से चावलका भात बनाया। सर्वलोकमहेश्वर विनायकको अर्पित करनेके लिये उस श्रद्धामयी विद्रुमा और भक्तहृदय शुक्लशर्माके घर वही पतले माँड़से भरा थोड़ा-सा भात था।

पहले शुक्लशर्माने नैवेद्य और वैश्वदेव किया। फिर घरमें धूप जलाकर सहधर्मिणीके साथ विनायकका ध्यान करते हुए द्वारपर बैठ गये। परम प्रभु विनायकका नाम-जप करते हुए दम्पतिके नेत्रोंसे अविरल प्रेमाश्रु प्रवाहित होता जा रहा था।

अदितिनन्दन विनायक बालकोंके साथ मणिकर्णिकापर स्नान कर रहे थे। वे जलसे निकले, नवीन वस्त्र धारण किये और बालकोंके साथ सीधे शुक्लशर्माके द्वारपर पहुँचे।

'विनायक हमारे द्वारपर पधारे!'—ब्राह्मण-दम्पतिके आनन्दकी सीमा न रही। हर्षविभोर होकर वे नृत्य करने लगे। विद्रुमा आश्चर्यचकित हाथ जोड़े विनायकको अपलक दृष्टिसे देख रही थी। उसके नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बह रहे थे।

किसी प्रकार शुक्लशर्माका नृत्य बंद हुआ तो उनकी वाणी जैसे अवरुद्ध हो गयी। जगद्वन्द्य त्रैलोक्यनायक विनायककी अभ्यर्चनाके लिये क्या करूँ, क्या न करूँ? कुछ समझमें नहीं आ रहा था उनकी।

फिर भी उन्होंने प्रभुको आसनपर बिठाकर धीरे-धीरे उनके चरण-कमलोंको दबा-दबाकर धोया। प्रभु-पद-पद्मका धोवन उन्होंने अपने माथेपर चढ़ाया, विद्रुमाके मस्तकपर छिड़का और शेष जल दोनों पी गये।

'आज मेरा जन्म, तप, ज्ञान, वश, वय आदि सभी सफल हुए, जो पापोंका नाश करनेवाले दीनानाथ मुझ अकिंचनकी कुटियापर पधारे!'—शुक्लशर्माने हाथ जोड़कर कहा और गन्ध, अक्षत, पुष्पमाला, धूप, दीप, दूर्वाङ्कुर, शमीपत्र, उत्तम तैल आदि विनायकको अर्पित किये। फिर उनके सम्मुख वन्यफल रखकर, पुष्पाञ्जलि समर्पण करके चरणोंमें प्रणाम किया।

भक्त शुक्लशर्मा अत्यन्त पतला माँड़मिश्रित भात परसनेमें लज्जित हो रहे थे; इस कारण वे प्रभुके सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े हो गये।

सर्वान्तर्यामी विनायकदेवने अत्यन्त प्रीतिपूर्वक विद्रुमासे कहा—'माता! तुमने क्या भोजन बनाया है? जो कुछ तुम्हारे पास तैयार हो, मुझे वही निस्संकोच अर्पित करो। भक्तिपूर्वक प्रदत्त कदन्न भी मुझे अमृतसे अधिक सुस्वादु और तृप्तिकर प्रतीत होता है, श्रद्धाहीन बहुमूल्य पक्वान्न भी मेरे लिये विष-तुल्य है।'

'माता!' विद्रुमा तो निहाल हो गयी। दयाधाम विनायकने मुझे 'माता' कह दिया। बालक तो दरिद्रा माताका दिया सब कुछ खायेगा ही। फिर माँड़-भात क्यों नहीं खायेगा? सफलमनोरथ विद्रुमा भातका पूर्णपात्र ही उठा लायी। कुछ बालक विनायकके साथ वन्यफल खा रहे थे; किंतु कुछ विनायककी यह लीला देखकर ठहाका मारकर हँसने लगे।

शुक्लशर्माने अनेक अन्नोंकी पीठी परोसी। विनायक उक्त अन्नकी भूरि-भूरि प्रशंसा करके बड़े चावसे आरोग रहे थे। बीच-बीचमें जल भी ग्रहण करते जाते। फिर शुक्लशर्माने माँड़-भात परोसना आरम्भ किया।

'घुटनेभर पानीमें भात बनाया है क्या, पंडितजी!' दरिद्र ब्राह्मणका अन्न न खानेवाले बालकोंने व्यङ्ग्य किया और हँस पड़े।

'आजतक मैंने इतना सुस्वादु भोजन कभी नहीं किया!' अत्यन्त प्रसन्न होकर उल्लासपूर्वक महोत्कटने ब्राह्मण-दम्पतिसे कहा—'माँड़-भात और दीजिये।'

ब्राह्मणने पूरा पात्र पत्तलपर उलट दिया। भात बिखर गया और माँड़ बहने लगा। बालक विनायक उसे अपने नन्हे दो हाथोंसे नहीं रोक सके; अतएव वे तुरत दशभुज हो गये और अपने दसों हाथोंसे माँड़-भात खाने लगे।* भक्तिप्रिय विनायकको अपना वर्तमान स्वरूप विस्मृत हो गया।

---

* तज्जलं चलितं दिक्षु बालो रोद्धुं न चाशकत्॥
ततोऽभवद्दशभुजो बुभुजे चौदनं च तैः।
(गणेशपु० २। २३। ४१-४२)

यह दृश्य उपस्थित जन चकित होकर देख रहे थे। जिन बालकोंने विनायकके साथ उस भक्त ब्राह्मणका अन्न ग्रहण किया, वे सभी देवस्वरूप हो गये। यह देखकर उपहास करनेवाले बालक मन-ही-मन पश्चात्ताप करने लगे।

उधर सम्पूर्ण नगरवासी उत्सुकतापूर्वक परस्पर पूछ रहे थे कि 'विनायक कहाँ हैं?' और जब उन्हें विदित हुआ कि महामहिम विनायक दरिद्र ब्राह्मण शुक्लशर्माके यहाँ दस हाथोंसे उसका माँड़-भात खा रहे हैं तो उनके आश्चर्यकी सीमा न रही।

भोजनोपरान्त करुणामयने शुक्लशर्माके दिये जलसे हाथ धोया और मुखशुद्धि ली। तब अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्होंने शुक्लशर्मासे कहा—'अनघ! आपकी अद्भुत प्रीतिसे मैं पूर्ण प्रसन्न हूँ। महाभाग्यवान्! आप इच्छित वर माँगें!'

हर्षातिरेकसे शुक्ल-दम्पतिकी वाणी अवरुद्ध थी। उनसे बोला नहीं जा रहा था। देवी विद्रुमा हाथ जोड़े खड़ी थीं। उनके नेत्र सजल थे। बद्धाञ्जलि शुक्लशर्माने किसी प्रकार कहा—'प्रभो! आपने सम्पन्न लोगोंकी उपेक्षा कर सर्वप्रथम मुझे अपना दुर्लभ दर्शन दिया और मुझ दरिद्र ब्राह्मणका कदन्न हर्षपूर्वक स्वीकार किया, यह निश्चय ही मेरा परम सौभाग्य है।'

शुक्लशर्माकी हिचकी बँध जाती थी। सँभलकर उन्होंने प्रार्थना की—'मैं आपकी सुदृढ़ भक्तिकी याचना करता हूँ। आपके बिना मेरा मन संसारके सुखोंमें कभी न लगे। अन्तमें आप हमें मोक्ष प्रदान कर दें, जिससे हमें पुनः जन्म-मृत्युकी यातना न सहनी पड़े।'

'एवमस्तु' कहते हुए विनायक पुनः द्विभुज बालक हो गये और उन्होंने शुक्ल-दम्पतिको अत्युत्तम स्वरूप, ज्ञान और सम्पत्ति प्रदान की। फिर ब्राह्मण-दम्पतिकी स्वीकृतिसे बालकोंसहित अन्यत्र चले गये।

इधर गृह-गृहमें और राज-भवनमें विनायक ढूँढ़े जा रहे थे। कुछ लोगोंको जब विदित हुआ कि विनायक बालकोंसहित शुक्लशर्माके घर भोजन कर आये तो उन्होंने कहा—'वह पिशाचकी तरह बालकोंके साथ दरिद्रके घर भोजन कर आया; सम्पन्न व्यक्तियोंका उसे कुछ पता नहीं।' इस प्रकार कुछ लोग उन जगद्गुरु विनायककी निन्दा करने लगे।

इस प्रकार दम्भ करनेवाले भावरहित दुष्ट व्यक्तियोंने जब विनायकसे अपने घर भोजन करनेके लिये आग्रह किया तो सर्वान्तर्यामी विनायकदेवने अपने उदरपर हाथ फेरकर डकार लेते हुए उत्तर दिया—'परम सात्त्विक ब्राह्मण शुक्लशर्माके अत्यन्त सुस्वादु पवित्रतम नैवेद्यसे मेरा पेट इतना भर गया है कि मुझसे चला भी नहीं जा रहा है। अब तो मैं एक ग्रास भी नहीं ले सकूँगा।'

यह सुनकर भ्रष्ट-संकल्प दाम्भिक अत्यन्त निराश हो गये और कुपित होकर उन्होंने स्वयं भोजन कर लिया*; किंतु जिन विनायकके सच्चे भक्तोंने अनेक प्रयत्नसे कष्ट सहकर पवित्रतापूर्वक नैवेद्य तैयार किया था तथा जो उपवास करते हुए विनायकका ध्यान कर रहे थे, उन सबके लिये एक विनायकने अनेक रूप धारणकर† सबकी कामना पूर्ण की।

सर्वज्ञानसम्पन्न, विद्या-बुद्धि-वारिधि विनायकने अपने प्रत्येक भक्तकी रुचिके अनुसार उसे तृप्त किया। वे भक्त-भावानुसार किसीके पर्यङ्कपर बैठे, किसीके घर जप करने लगे, कहीं विद्यार्थियोंको वेद-पाठ कराने लगे, कहीं शास्त्रार्थ करते तो कहीं स्वय अध्ययन करते थे। कहीं भोजनके लिये अत्यन्त उत्सुक प्रतीत होते थे। इस प्रकार नाना रूपोंमें वे भक्तोंके घर उनका जीवन सफल करने लगे।‡

विनायकके चरणोंमें प्रीति रखनेवाले सभी भक्त, समझ रहे थे कि 'सर्वसंतापहारी सर्वप्रथम मेरे ही घर पधारे हैं। विनायक तो प्रत्येक रीतिसे मेरे परिवारको अपना ही समझते है। उनके मनमें मेरे प्रति कितना आदर, कितना प्रेम और कितनी सद्भावना है?' सभी लोगोंने परमदेव विनायकके दिव्य अङ्गपर तेल और उद्वर्तन लगाया। उन्हें स्नान कराकर सुन्दर वस्त्र पहननेको दिये। फिर विविध प्रकारसे उनकी पूजा की।

---

* बुभुजुस्तान् स्वयं दुष्टा दाम्भिका भक्तिवर्जिताः ॥
(गणेशपु० २ । २४ । १४)

† एको नानास्वरूपोऽभूद्...।' (गणेशपु० २ । २४ । १६)

‡ क्वचित्पाठयते शिष्यान् साङ्गं वेदं सहार्थकम् ।
क्वचिद् व्याकुरुते शास्त्रं क्वचिच्च पठति स्वयम् ॥
एवं नानास्वरूपैः स नानागृहगतो बभौ ।
(गणेशपु० २ । २४ । १८-१९)

उसी समय सनक और सनन्दन विनायकके दर्शनार्थ राजाके समीप आये थे। राजाने उनकी श्रद्धापूर्वक पूजा की। फिर जब उन्हें विदित हुआ कि विनायक नागरिकोंका आतिथ्य स्वीकार करने गये हैं तो वे नगरमें आये। उन्होंने एक ही परब्रह्म परमेश्वर विनायकको सर्वत्र देखा।

सनक-सनन्दनने प्रत्यक्ष देखा, एक ही देवदेव विनायक कहीं शिविकारूढ, कहीं गजारूढ़ और कहीं हयारूढ़ होकर भोजन करने जा रहे हैं। इस प्रकार सभी लोग बालक विनायककी पूजामें व्यग्र थे। सनक-सनन्दन जहाँ-जहाँ गये, वहीं उन्होंने विनायकको उपस्थित देखा। विनायकदेव कहीं नैवेद्य आरोग रहे थे तो किसी घरमें हाथ धो रहे थे; किसी घरमें फल खा रहे थे तो किसीमें ताम्बूल ग्रहण कर रहे थे और किसीमें सुकोमल पर्यङ्कपर विश्राम करते हुए भक्तकी लालसा पूरी कर रहे थे। इस प्रकार अनेक घरोंमें जाकर उन पूज्य ऋषियोंने विनायकदेवकी अद्भुत विभूतिका दर्शन किया। उन्होंने धरतीपर, गृहोंके भीतर-बाहर, दसों दिशाओं और अनन्त अन्तरिक्षमें सर्वत्र विनायकको प्रत्यक्ष देखा।

ऋषियोंने भीतर-बाहर सर्वत्र विनायकको ही देखा। उन्हें सिद्धि-बुद्धिसहित दशभुजाधारी चन्द्रभालके दिव्य रूपका प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त हुआ। वे गद्गद कण्ठसे महाप्रभु विनायककी स्तुति करने लगे—

"निष्पाप परमेश्वर! आप समस्त कारणोंके भी कारण हैं, साथ ही सारे कारणोंसे अतीत हैं। आप ब्रह्मस्वरूप, ब्रह्माण्डके कारण तथा व्यापक परमात्मा हैं। आप ही इस जगत्‌का पालन, सर्जन तथा संहार करते हैं। आप रूपरहित होते हुए भी नाना रूपोंसे युक्त हैं। नाना प्रकारकी माया-शक्तिसे सम्पन्न हैं। आप ही पञ्चभूत, यक्ष, गन्धर्व तथा राक्षस हैं। सम्पूर्ण चराचर विश्व आपका स्वरूप है; आपकी स्तुति करनेमें कौन समर्थ हो सकता है? आपके स्वरूपको न जाननेके कारण ही श्रुति 'नेति-नेति' कहकर मौन हो जाती है। हम दोनों मोहित हैं, आपके उत्तम रूपको नहीं जान सके हैं। विभो! आपके अनेक रूप हैं; हम आपकी महिमाको नहीं जानते। प्रभो! इस समय आपके चरणारविन्दोंके दर्शनसे ही हम कृतकृत्य हो गये हैं।"*

सनक-सनन्दनके स्तवनसे संतुष्ट होकर परमदेव विनायकने उन्हें वर प्रदान किया—'मेरे प्रसादसे तुम तत्त्वज्ञ और सर्वज्ञ होओगे।'

तदनन्तर प्रभु विनायक वहीं अन्तर्धान हो गये। सनक-सनन्दनने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक वहाँ स्वर्ण और रत्नोंका एक विशाल मन्दिर निर्माण कराया। उसमें विनायककी सुन्दर मूर्ति स्थापित की। मन्दिरके समीप ही गणेशकुण्ड-नामक एक सुन्दर सरोवर बनवाया। मूर्तिका नाम 'वरदगणपति' रखा। उन्होंने स्वयं वरद-गणपतिकी पूजा की और उक्त कुण्डमें स्नानकर विनायककी वरद-मूर्तिके पूजनका माहात्म्य-गान करते हुए कहा—'इस मूर्तिके पूजक स्त्री-पुरुष निस्संदेह पुत्र-पौत्र-सम्पन्न हो दीर्घायु प्राप्त करेंगे। उन्हें यश, धन, धान्य, कीर्ति एवं शाश्वत तत्त्वज्ञान उपलब्ध होगा। मृत्युके अनन्तर वे परम सुखद विनायक-धाम प्राप्त कर लेंगे।'

वहाँ देवता, गन्धर्व, यक्ष तथा अप्सराओंके समुदायने वरद-विनायकका दर्शन कर उनकी विविध प्रकारसे पूजा की। उनके चले जानेपर सनक-सनन्दनने वरद-विनायकके चरणोंमें प्रणाम किया और वे अमरावतीके लिये प्रस्थित हो गये।

इधर नागरिकोंका आतिथ्य स्वीकार करनेके लिये देवदेव विनायकको गये अधिक देर हो गयी। उनके लौट आनेपर राजा उनके साथ भोजन करना चाहते थे। प्रतीक्षा असह्य हो गयी तो स्वयं काशिराज अश्वपर आरूढ़ होकर उन्हें ढूँढ़ने निकले।

'विनायक भोजन करने कहाँ गये?' काशिराज घर-घर यही प्रश्न कर रहे थे और उन्हें सर्वत्र एक ही उत्तर मिलता था—'बाल विनायक तो भोजन कर आपके ही

---

* सर्वेषां कारणानां त्वं कारणं कारणातिगः।
ब्रह्मस्वरूपो ब्रह्माण्डकारणं व्यापकः परः॥
पासीदं सृजसे विश्वं त्वमेव हरसेऽनघ।
नानारूपैररूपस्त्वं नानामायाबलान्वितः॥
त्वमेव पञ्चभूतानि यक्षगन्धर्वराक्षसाः।
कस्त्वां स्तोतुं समर्थः स्याच्चराचरस्वरूपकम्॥
नेति नेति ब्रवीति स त्वद्रूपाज्ञानतः श्रुतिः।
आवां विमोहितौ ज्ञातु नेशावे रूपमुत्तमम्॥
महिमानं न जानीवोऽनेकरूपस्य ते विभो।
कृतकृत्यौ भवत्पाददर्शनात् स्वः प्रभोऽधुना॥
(गणेशपु० २।२५।१-५)

साथ बालकोंमें क्रीड़ा करने गये हैं। राजा चकित थे। उनकी समझमें कुछ नहीं आ रहा था। अन्तमें उन्हें पता चला कि महोत्कट दरिद्र शुक्लशर्माके घर गये हैं। काशिराज शुक्लशर्माके घर पहुँचे तो वहाँ देखा, 'बाल विनायक शिव-तुल्य वृषभपर आरूढ़ होकर हँसते हुए खेल रहे हैं।'

राजाने विनायकको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और बोले—'शिशुओंमें क्या आपका साधु-स्वभाव, ज्ञान और प्रेम नष्ट हो गया? आपने मुझे छोड़कर अकेले ही मिष्टान्नका भोग कहाँ लगा लिया?'

हँसते हुए बालक महोत्कटने तुरंत उत्तर दिया—'महाराज! बच्चोंकी तरह मिथ्या-भाषण नहीं करना चाहिये। आप किसीसे पूछ लें, मैंने जहाँ-जहाँ भोजन किया, वहाँ-वहाँ आप मेरे साथ थे।'

वहाँ उपस्थित लोगोंने भी राजासे कहा—'वयोवृद्ध धर्मज्ञ महाराज! आपको असत्य शोभा नहीं देता। आपने हमारे सामने घर-घर विनायकके साथ बैठकर भोजन किया है।'

आश्चर्यचकित राजाने कहा—'प्रभो! आपकी परम दुर्विज्ञेय मायासे योगिराज भी मोहित हो जाते हैं। समस्त रूपोंमें सर्वत्र मान्य आप धन्य हैं।'

राजाके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। उन्होंने ध्यानपूर्वक देखा तो उन्हें भय-तापहारी विनायकके दर्शन हुए। जल और उसकी वीचियोंकी तरह उन्हें सम्पूर्ण सृष्टि एवं विनायकमें सर्वथा अभेदका दर्शन हुआ। फिर मायाके प्रभावसे उन्हें बालक विनायक दीखने लगे।

राजाने विनायकको शिविकामें बैठाया। अनेक प्रकारके वाद्य बज रहे थे। नृत्य और गान हो रहा था। इस प्रकार देवदेव विनायक राज-भवनकी ओर चले। दीन-हीन शुक्ल-दम्पति भी उनके पीछे धीरे-धीरे चल रहे थे। विनायक राज-भवन पहुँचे।

उन्होंने बालकोंको घर लौटा दिया और जब उन्होंने अपनी ओर अपलक दृष्टिसे निहारते शुक्ल-दम्पतिको देखा तो वे लज्जित हो गये। 'मैंने इन श्रद्धा-भक्तिकी दिव्य युगल-मूर्तियोंको कुछ नहीं दिया। इन प्रीति-प्रतिमाओंको मैं क्या दूँ? यद्यपि इनके लिये कुछ भी अदेय नहीं, किंतु इनके पवित्र प्रेमके सम्मुख त्रैलोक्यकी अनन्त सम्पदा भी तुच्छ है, हेय है।'

कुछ क्षण बाद विनायकने उन्हें अपनी उत्तम सम्पत्ति तो दे ही दी, धनपति कुबेरसे भी श्रेष्ठ धन-वैभव प्रदान कर दिया।

शुक्लशर्मा और उनकी धर्मपत्नी विद्रुमाको प्रत्यक्ष तो कुछ मिला नहीं, पर वे सर्वथा निस्स्पृह ब्राह्मण प्रसन्न-मन विनायकका स्मरण करते हुए अपने घर लौटे।

ब्राह्मण-दम्पतिके आश्चर्यकी सीमा नहीं थी। उनके जीर्ण घरका अस्तित्व ही नहीं रह गया था; वहाँ उसके स्थानपर अमरावतीके इन्द्र-भवनसे भी श्रेष्ठ भवन प्रस्तुत था। ब्राह्मण-दम्पति अत्यन्त चिन्तित हुए ही थे कि भवनसे सुन्दर वस्त्राभरणभूषित सेवक निकले।

वे ब्राह्मण-दम्पतिको भवनके भीतर ले जाकर तैल-मर्दन करने लगे। उन्हें स्नान कराया। उनके सुनहले वस्त्र और आभूषण पहनाये। इसी प्रकार स्त्री-सेविकाओंने विद्रुमाको स्नानादिके उपरान्त वस्त्राभूषणसे भूषित किया। उन्हें विविध पक्वान्न परोसा और प्रत्येक रीतिसे वे प्रतिक्षण उनके सेवार्थ प्रस्तुत रहे।

सहसा सर्वथा अकल्पित, अकथनीय, दुर्लभ सम्पत्ति प्राप्तकर ब्राह्मण-दम्पति चकित थे। ब्राह्मणका वह भवन विशाल एवं समस्त सुविधाओंसे भरपूर था। उक्त भवनकी दीवारें सोनेकी थीं। उसमें अनेक प्रकारके बैठनेयोग्य रत्नोंके सुन्दरतम मञ्च बने थे। उनके घरमें सभी पात्र सोनेके थे और विविध प्रकारकी अक्षय, दुर्लभ खाद्य-सामग्रियाँ वहाँ एकत्र थीं।

'मेरी यह क्षुद्र कुटिया सहसा इन्द्र-भवनकी तरह कैसे हो गयी?' चकित होकर विद्रुमाने अपने पतिसे पूछा तो उन्होंने विनायकका स्मरण करते हुए कहा—'भाग्यवती! निश्चय ही यह भक्तवत्सल करुणामूर्ति विनायकका कृपा-प्रसाद है। उन सर्वज्ञ प्रभुने हमें सामने तो कुछ नहीं दिया, किंतु तुम्हारे माँड़-भातसे ही संतुष्ट होकर परोक्षरूपसे सब कुछ दे दिया। वे दयामय प्रभु अपने भक्तकी दी हुई स्वल्प वस्तुको भी अत्यधिक मानकर उसे महान् वस्तु प्रदान कर देते हैं और अपनी दी हुई महान् वस्तुको भी स्वल्प ही समझते हैं। इस कारण कल्याणेच्छुको चाहिये कि भय, स्नेह, काम अथवा शत्रुभावसे भी उनका सदा स्मरण करता रहे। भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करे,

स्तुति करे और उनके कल्याणमय चरण-कमलोंमे बारंवार प्रणाम निवेदन करता रहे ।'*

नरान्तकका आक्रमण

देवरिपु नरान्तकके शूर और चपल-नामक दो गुप्तचर अधिक समयसे काशीमे रहते हुए नागरिकोंमे इतने घुल-मिल गये थे कि उनपर संदेह करना सम्भव नहीं था । वे दोनों देवद्रोही असुर अत्यन्त बलवान् थे और काशीकी प्रत्येक घटनाकी सूचना राक्षसराज नरान्तकके पास भेजते तथा महोत्कटको मार डालनेके लिये अवसरकी ताकमे लगे रहते थे ।

एक दिनकी बात है । महोत्कट शिविकामे बैठकर राज-भवनकी ओर लौट रहे थे कि उन महावीर शूर और चपल-नामक असुरोंने उन्हें घेरकर घोर गर्जना की । उस गर्जनासे शिविका ले जानेवाले कर्मचारी कॉप उठे, किंतु विनायक तुरंत शिविकासे उतर पड़े ।

राक्षसोका दुष्टतापूर्ण उद्देश्य समझते ही विनायकने तुरंत उन्हें अपने सबल हाथोंसे उठा लिया और घुमाते हुए पृथ्वीपर पटककर अपने कठोर पाशमे बॉध लिया । अत्यन्त बलवान् असुरोंके मनमें बालक विनायककी इस शक्ति और स्फूर्तिकी कल्पना भी नहीं थी । वे भयवश कॉँपने लगे और वीरवर विनायककी स्तुति करते हुए उनसे अपने प्राणोंकी भीख मॉँगने लगे ।

विनायकने उनसे कहा—'तुमलोग कौन हो और यहाँ किसलिये रहते हो ? यदि सच-सच बता दोगे तो तुम्हारे प्राण छोड़ दूँगा, अन्यथा मृत्यु निश्चित है ।'

'प्रभो ! आप करुणासागर, दीनोंके नाथ एवं हमारे पिता हैं ।' असुरोंने हाथ जोड़े विनायकसे निवेदन किया—'क्योंकि गर्भाधान करनेवाले, उपनयन करानेवाले, विद्या-दाता, अभयदाता और अन्नदाता—ये पॉँच प्रकारके पिता कहे गये हैं ।* हमे कृपापूर्वक क्षमा करें । हम असुरराज नरान्तकके गुप्तचर हैं । यहॉँकी घटनाओंका संदेश तो उन्हे दिया ही करते हैं, आपको किसी भी विधिसे मार डालना भी हमारा उद्देश्य था । हम प्रत्येक रीतिसे काशीमे विघ्न उत्पन्न करते रहते थे ।'

विनायकपर आक्रमणका संवाद सर्वत्र विद्युत्-गतिसे फैल गया । अतएव शीघ्र ही नगरनिवासियोंकी भीड़ वहॉँ एकत्र हो गयी । नागरिकोंने विनायकसे कहा—'सर्पोंको दुग्धपान करानेसे उनका विष ही बढ़ता है । आप इनका अविलम्ब वध करें ।'

'मैंने इन्हे अभयदान दे दिया है ।' विनायकने असुरोंको तुरंत काशीसे चले जानेकी आज्ञा दी और स्वयं शिविकारूढ़ होकर राज-भवन पहुँचे ।

शूर और चपल राक्षसराज नरान्तकके समीप पहुँचे । नरान्तक मणिमय सिंहासनपर आसीन था । उसके अमात्य उसके समीप ही सावधानीसे बैठे थे । दूतोंने नरान्तकके सम्मुख मस्तक झुकाकर उसका अभिवादन किया । फिर डरते हुए उन्होंने कहा—'राजन् ! आपके आदेशानुसार हम काशीकी प्रजामे उनके स्वजन और आत्मीय बनकर रहते हुए प्रत्येक रीतिसे व्यवधान उत्पन्न करनेका प्रयत्न करते थे, किंतु ऋषिपुत्रकी कुशाग्र बुद्धि, दूरदर्शिता, सावधानी, सजगता एवं अद्भुत शक्तिके सम्मुख विवश हो जाते थे । आपके भेजे हुए एक-से-एक वीर योद्धा उसके हाथों मारे गये । कोई भी बचकर नहीं आ सका । हमलोगोंने भी अवसर देखकर उसपर आक्रमण किया; किंतु जिस चपलतासे उस ब्राह्मण-बालकने हमे पटककर अपने पाशमें जकड़ लिया, उसे देखकर हमारी बुद्धि निष्क्रिय हो गयी । हम किसी प्रकार अपने प्राण बचा पाये हैं । स्वामी ! हमने तो ऐसी शूरता, ऐसी शक्ति एवं ऐसा दूरदर्शी पुरुष न कहीं देखा और न सुना है । अब आप जैसा उचित समझें, वैसा करे । हमारी दृष्टिमे तो उसे पराजित करनेवाला त्रैलोक्यमें कहीं कोई नहीं दीखता ।' †

---

* सर्वं जानीहि सुभगे न समक्षं महाविभुः ।
ददाति तु परोक्षेऽसावल्पमात्रेण तोषयन् ॥
स्वयदत्त बहुतरमल्पमेव हि मन्यते ।
भक्त्योपपादितं स्वल्पं मन्यते बहुलं विभुः ॥
तस्माद् भयेन कामेन स्नेहेन रिपुभावतः ।
स्मर्तंभ्यो नमनीयश्च स्तव्यः पूज्यो हिताय च ॥
(गणेशपु० २ । ५५ । २९—२९)

* सेककृन्चोपनेता च विद्यादोऽभयदोऽपरः ॥
अन्नदः पञ्च पितरो विख्याता भुवनत्रये ।
(गणेशपु० २ । ५५ । ४०-४१)

† स्वामिन्नेतादृशी शक्तिः क्वापि दृष्टा न च श्रुता ।
× × ×
जानीवहे न जेतास्य त्रैलोक्ये विद्यते पुमान् ।
(गणेशपु० २ । ५६ । २६-२७)

दूतोंके मुखसे यह संवाद सुनकर नरान्तकने क्रुद्ध होकर कहा—'वृक्षोंपर कूदनेवाला बंदर वनराजका कुछ नहीं बिगाड़ पाता; शरीर निगल जानेवाला अजगर वसुधापर ही रहता है; जुगनूका प्रकाश चन्द्रोदयके अनन्तर नहीं दीखता; सूर्यका तेज राहुके पहुँचते ही मन्द पड़ जाता है; अतएव काशिराजका मान-मर्दन करने मैं स्वयं चलूँगा। सशस्त्र वाहिनी एकत्र हो।'

राक्षसराजका आदेश पाते ही विशाल सशस्त्र सेना कुछ ही देरमें तैयार हो गयी। मदमत्त गज एवं अश्वपर आरूढ़ योद्धाओं तथा असंख्य पैदल-सैनिकोंने ढाल, तलवार, खट्वाङ्ग, शक्ति, परशु, गदा, मुद्गर, चक्र, तोमर, धनुष-बाण, पाश और अङ्कुश आदि विविध प्रकारके घातक अस्त्र धारण कर रखे थे। इस प्रकारकी शस्त्र-सज्ज चतुरङ्गिणी सेनाके साथ पृथ्वीको कम्पित करता हुआ नरान्तक काशीकी ओर चला। उसके साथ वीरोंको प्रोत्साहित करनेवाले दिगन्तव्यापी वाद्य बज रहे थे।

महान् दैत्य नरान्तककी झूमती विशाल सेना काशीके पूर्व-भागमें पहुँची। आकाश धूलिसे आच्छादित हो गया था और रण-दुन्दुभियाँ बज रही थीं। यह देखकर एक दूत काशिराजके पास दौड़ा आया। उस समय काशिराज भोजनके परोसे थालके सम्मुख बैठे ही थे कि दूतने कहा—'महाराज! दैत्यराज नरान्तक अपनी चतुरङ्गिणी सेनाके साथ हमारी सीमाके पूर्वभागमें आ गया है।'

महाराज भोजनको स्पर्शकर खड़े हो गये। उन्होंने अपने सैनिकोंको तत्काल शस्त्रसज्ज होनेकी आज्ञा दी और वे स्वयं शिरस्त्राण एवं कवच आदि धारणकर वीर-वेषमें विनायकके समीप पहुँचे तथा उनकी पूजा की। तदनन्तर बोले—'जय विनायक!'

नरेशकी सेना कुछ ही क्षणोंमें अस्त्र-शस्त्र धारण करके एकत्र हो गयी। दुन्दुभियाँ बजने लगीं। महाराजने विनायकके चरणोंमें प्रणाम किया और अपने अश्वपर जा बैठे। सेनाके विभिन्न अङ्गोंके सेनापति अश्व, रथ और गजपर आरूढ़ हो पहलेसे ही तैयार थे।

काशीनरेशकी सेना पैशाचिक आक्रमण करनेवाली असुर-सेनाका दर्प-दलन करने अत्यन्त उत्साहसे प्रस्थित हुई। काशीकी पूर्वी सीमापर पहुँचकर नरेशने सेनापतियों एवं सैनिकोंको पुरस्कृत कर उन्हें अपनी पवित्र मातृभूमिकी रक्षाके लिये प्रोत्साहित करते हुए कहा—'अनेक असुर-योद्धाओंने हमपर क्रूरतम आक्रमण किया, किंतु विनायककी कृपासे वे सभी मारे गये। विनायकके यहाँ रहते हमें चिन्तित होनेकी आवश्यकता नहीं; हमारी विजय निश्चित है।'

काशिराजने इतना कहा ही था कि समुद्रकी लहरोंकी तरह आती हुई असुरराज नरान्तककी सेनापर उनकी दृष्टि पड़ी। नरेश काँप उठे। अपने सैनिकोंको उत्साह प्रदान करनेके स्थानपर वे कहने लगे—'किंतु असुर-शक्ति असीम है। उनके साधन अपरिमित हैं। उन्होंने अपने पराक्रमसे त्रैलोक्यपर अधिकार कर लिया है। उनके विशाल सैन्यके सम्मुख हमारी संख्या नगण्य है। प्रचण्ड सूर्यके सम्मुख खद्योतकी क्या गणना? अतएव यदि वे राक्षसराज अनुग्रह करें, तभी हम जीवित रह सकते हैं। उनके सम्मुख हमसे अपराध भी बहुत हुए हैं। केवल विनायकके बलसे हम इनको कैसे परास्त कर सकते हैं? अतएव आपलोग हितकर विचार करें।'

भयविह्वल राजाकी बात सुनकर महामात्यने कहा—"हमारे चार प्रतिनिधि संधिके लिये असुरराज नरान्तकके पास जायँ। अपने हितके लिये नीच पुरुषके भी समीप जानेमें आपत्ति नहीं। आचार्य बृहस्पतिने नीति-वचन कहा है—'प्रबल शत्रुको अनुकूल बनानेके लिये कन्यादान, सहभोजन, प्रेम, सम्भाषण, वस्त्रदान, नमस्कार तथा उसकी स्तुति भी कर लेनी चाहिये।' यदि असुरराज विनायकको भी माँगें तो उन्हें दे देना चाहिये। तात्पर्य यह कि जैसे भी हो, अपना हित-साधन करना चाहिये।" *

'यही उत्तम है।' सब लोगोंने कहा—'प्रबलतम असुरराजसे वैर समाप्त हो जाय, यही अच्छा है।'

इस प्रकार राजा परामर्श कर ही रहे थे कि टिड्डी-दलकी तरह नरान्तकके सैनिकोंने काशीपर तीव्रतम आक्रमण कर दिया। उन्होंने चारों ओर आग लगा दी। आकाश धूम्राच्छन्न हो गया। जो स्त्री-पुरुष प्राण रक्षाके लिये घरसे बाहर निकलते, क्रूर राक्षस उन्हें मार डालते थे। उन्हें स्त्रियोंके सतीत्वपर आक्रमण करते देखकर पतिव्रता स्त्रियाँ छतोंसे कूदकर और कुछ विष-पानकर मृत्यु-मुखमें

---

* स चेद् विनायकं याचेद्दत्त्वा राज्यस्य रक्षणम्।
कर्तव्यमिति मे भाति त्वदिदं तद् विचिन्त्यताम्॥
(गणेशपु० २। ५७। १८)

प्रवेश करने लगीं। राक्षस अत्यन्त रूप-यौवन-सम्पन्ना देवियों-को पकड़कर असुरराजके पास भेज देते थे।

इस प्रकार अपनी प्रजाकी दुर्दशा देखकर काशिराजको अपने दायित्वका भान हुआ। उन्होंने क्रोधसे काँपते हुए प्रत्याक्रमणकी आज्ञा दी।

राजाने स्वयं शर-संधान किया और शत्रुओंपर बाण-वृष्टि करने लगे। अपनी मातृभूमि एवं अपनी माँ-बहनोंकी लज्जा-की रक्षाके लिये काशिराजके वीर योद्धा प्राणोंपर खेल गये; राक्षस कटने लगे। उन्हें अकल्पित प्रत्याक्रमणसे विचलित होना पड़ा, किंतु राक्षसराजके भयसे वे युद्ध कर रहे थे। राक्षसोंके रुण्ड-मुण्ड धरतीपर बिछते जा रहे थे और दोनों ओरकी सेनाएँ विजयश्रीकी तीव्र कामनासे युद्धरत थीं। अश्वसे अश्व, गजसे गज, रथसे रथ और पैदलसे पैदल सेनाका भयंकर संग्राम हो रहा था।

नरान्तककी बुद्धि काम नहीं कर रही थी। वह आश्चर्य-चकित था। काशिराजके नगण्य सैनिक उसकी अजेय वाहिनीको त्रस्त, भीत और कम्पित कर देंगे, वह स्वप्नमें भी नहीं सोच सकता था। पर सत्य यही था। असुरराजकी सेना सिरपर पैर रखे प्राण लिये पीछे भागी जा रही थी। काशिराजने हर्षोन्मत्त होकर गर्जना की। त्रैलोक्यविजयी असुरराज नरान्तकको सर्वप्रथम पराजित करनेका श्रेय काशिराजको प्राप्त हुआ। वे प्रसन्नताके आवेगमें निश्चिन्त हुए ही थे कि सहसा असुरोंके शत-शत सैनिक उनके व्यूहमें प्रविष्ट हो गये। काशिराजके साथ उनके अमात्यके दोनों पुत्रोंको असुरोंने पकड़ लिया और उन्हें बंदी बनाकर नरान्तकके समीप ले गये। काशिराजके सैनिकोंका तीव्रतम प्रतिरोध विफल सिद्ध हुआ। नरेशके उदास सैनिक लौट पड़े।

अमात्य-पुत्रोंसहित काशिराजको बंदी बनाकर नरान्तक अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने नगरमें अग्निकाण्ड रोक दिया। बोला—'वीरो! हम जिस उद्देश्यसे यहाँ आये थे, वह पूरा हो गया। काशिराज और अमात्यपुत्रोंकी पराजय-का अर्थ काशीपर विजय है। काशिराजके आश्रयके बिना अब वह ब्राह्मण-बालक क्या कर सकेगा? अब मैं निस्सदेह उसे जीत लूँगा।'

विजय-दुन्दुभि बज उठी। नरान्तकने प्रसन्न होकर बंदियों और ब्राह्मणोंको दान दिया।

तदनन्तर असुरराज नरान्तकने काशीके राज-भवनमें प्रवेश करनेका निश्चय किया। असंख्य सैनिक उसके साथ थे। दैत्यराज बंदी नरेश और अमात्य-पुत्रोंको साथ लेकर आगे-आगे चला। वाद्य बज रहे थे। असुर-सैन्य विजय-गर्वसे मत्त था। प्रजामें अपनी धाक और आतङ्क फैलाते हुए नरान्तक धीरे-धीरे काशीमें प्रवेश करके राज-पथकी ओर बढ़ा।

इधर काशीमें असुरोंके अमानुषिक उपद्रव, अग्निकाण्ड, हत्या एवं बलात्कार आदिसे प्रजा अत्यन्त क्षुब्ध थी। राजा और अमात्य-पुत्रोंको बंदी बनाकर दैत्यराजके राज-भवनमें प्रवेश करनेके समाचारने तो प्रज्वलित अग्निमें घृताहुतिका काम किया। काशीके तरुण शेष सैनिकोंके साथ नरान्तकपर भीषण प्रत्याक्रमण करनेकी योजना बनाने लगे।

उधर जब राजरानी अम्बाने अपने पतिको बंदी बनाये जानेका समाचार सुना तो वे जल-हीन मीनकी भाँति छटपटाती हुई विलाप करने लगीं—'रिपुओंका मान-मर्दन करनेवाले पतिदेव! आप असुरोंसे कैसे पराजित हो गये? मैं आपको कहाँ पाऊँगी? आपके बिना मैं जीवित ही कैसे रह सकती हूँ? भगवान् शंकर मुझपर कैसे असंतुष्ट हो गये? मैं आपको मुक्त करानेके लिये किस देवताकी शरण लूँ? इस कश्यप-पुत्रने युद्धमें कितने ही असुरोंको मारा, किंतु एक बालकपर निर्भर कर आपने बुद्धिसे काम नहीं लिया। आपने उसके वचनका विश्वास कर अजेय असुरसे शत्रुता मोल ले ली। उस महादैत्यपर भला कौन विजय प्राप्त कर सकता है? मैं विधवा बनकर किस प्रकार जीवित रहूँ?'

बंदी नरान्तक

महारानी अम्बाका करुण विलाप सुनकर महोत्कट अत्यन्त क्रुद्ध हुए। उन्होंने भयानक गर्जना की। वे पुनः-पुनः गर्जन करने लगे। उनके उक्त महान् गर्जनसे अन्तरिक्ष और दिशाएँ प्रतिध्वनित हो उठीं; पर्वतों और वनोंसहित पृथ्वी काँपने लगी; पक्षियोंकी मृत्यु हो गयी और समस्त प्राणी भयभीत हो गये।

क्रोधव्याकुललोचन विनायकके स्मरणसे ही सिद्धि उपस्थित हो गयीं। विनायकने पूछा—'युद्धके अवसरपर तू कहाँ चली गयी थी?'

सिद्धिने देवदेव विनायकका मन्तव्य समझकर तुरंत अनेक प्रकारकी युद्ध करनेवाली भयानक सेना प्रस्तुत कर

दी। उसके सैनिक अत्यन्त शूर-वीर और भयानक थे। उनके अत्यन्त भयानक मुख, हल-तुल्य दाँत, सर्प-तुल्य जिह्वा एवं पर्वत-तुल्य मस्तक थे। उनके नेत्रोंसे अग्निकी भयानक ज्वाला निकल रही थी और उनके विकट नासारन्ध्रमें महागज प्रवेश कर सकते थे। उनके क्रूर नायकने विनायकके समीप जाकर विनयपूर्वक प्रार्थना की—'प्रभो! हमें क्या आज्ञा है? हम बुभुक्षित हैं। कृपया भक्ष्य प्रदानकर हमें तृप्त करें।'

विनायक बोले—'तू महादैत्य नरान्तककी विशाल वाहिनीका भक्षण कर। समस्त सैनिकोंको उदरस्थ करके नरान्तकका मस्तक मेरे समीप ले आ। इतनेपर भी तेरी तृप्ति न हो तो मैं तुझे अन्य भक्ष्य बताऊँगा।'

विनायककी अनुज्ञा प्राप्तकर उक्त महाभयानक सेनानायकने उनके चरण-कमलोंमें प्रणाम कर भयानक गर्जन किया। उक्त गर्जन सुनकर दैत्यराज नरान्तकका हृदय काँप उठा।

काशीका युवक-वर्ग और सैनिक विजयोन्मत्त नरान्तकके नगरके मध्यमें पहुँचनेकी प्रतीक्षा कर ही रहे थे कि विनायककी भयानक सेना उसपर टूट पड़ी। वे अतुलित बलशाली योद्धा भयानक गर्जन करते हुए नरान्तकके सैनिकोंको पकड़कर अपने विशाल मुखमें फेंकने लगे। आकाशमें इतनी धूल भर गयी कि सर्वत्र अन्धकार-सा व्याप्त हो गया; किसीको कुछ दीख नहीं रहा था।

उस घनान्धकारमें वे घोर पुरुष असुर-सैन्यका निर्ममतापूर्वक मर्दन करते हुए सैनिकोंको भक्षण करते जा रहे थे। वे किसी असुरको पैरोंसे मसल देते, किसीको आकाशमें गेंदकी तरह उछाल देते और किसीको पटककर पुनः अपने करालगालमें डाल लेते।

दैत्य-सेना प्राण लेकर भागना चाहती थी, किंतु इन घोर शूरोंसे बचकर भागना शक्य नहीं था। वे असुरोंको जितना ही चबाते, जितना ही खाते, उतनी ही उनकी क्षुधा तीव्र होती जा रही थी। इस कारण वे गजसहित गजारोहीको और अश्वसमेत अश्वारोहीको अपने मुँहमे डाल लेते। इस प्रकार कुछ ही देरमे उस निर्मम घोर पुरुषने असुर-सैन्यको प्रायः नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

प्रलयाग्नि-तुल्य घोर पुरुषके द्वारा अपने सैन्य-दलका विनाश देखकर नरान्तक घबरा गया। अवशिष्ट सैनिकोंको भक्षण करते देखकर वह अपना धनुष लेकर तीक्ष्णतम शरोंकी वर्षा करने लगा। नरान्तकके असंख्य शर उस घोर पुरुषके शरीरमें प्रविष्ट होकर बाहर निकल गये। उनसे रुधिर बहने लगा, पर जैसे उस पुरुषको कुछ उनका पता ही नहीं था। वह तो अपने सैनिकोंके साथ निरन्तर असुरोंको भक्षण करनेमें व्यस्त था।

नरान्तकके सारे अस्त्र निष्फल सिद्ध हुए। जब एक भी शर नहीं बचा, तब अपनी शक्तिके सर्वथा नष्ट हो जानेपर वह प्राण लेकर भागा, किंतु वह कालपुरुष भी उसके पीछे दौड़ा। नरान्तक पृथ्वीपर द्रुतगतिसे भागता हुआ जहाँ-जहाँ गया, वहाँ-वहाँ वह कालपुरुष उसके पीछे दीख पड़ा। भयाक्रान्त नरान्तक भागकर स्वर्ग पहुँचा तो वहाँ भी उसे पीछे लगा कालपुरुष दिखायी दिया। नरान्तक फिर पृथ्वीपर लौटा, किंतु वहाँ भी कालपुरुष उसे निगल जाना चाहता था। तब अत्यन्त भयभीत दैत्यराज पातालमें प्रविष्ट हुआ तो वहाँ भी जैसे भागते हुए सर्पको गरुड़ सरलतापूर्वक दबोच लेता है, उसी प्रकार कालपुरुषने नरान्तकके केश पकड़ लिये और कहा—'दुष्ट! मेरी दृष्टिमें पड़कर तू कहाँ भाग सकता है? महाखल! तूने परमात्मासे वर प्राप्तकर देवताओं और ऋषियोंको बहुत पीड़ित किया; कितने ही निर्दोष मनुष्योंका सर्वनाश कर दिया; अब तेरा संहार करनेके लिये विनायक अवतरित हुए हैं। तू अहंकार छोड़कर उनके चरणोंकी शरण ग्रहण कर ले। उन देवदेव विनायकके पद-पङ्कज तेरे पापोंको मिटा देंगे।'

इस प्रकार कहते हुए कालपुरुष नरान्तकको विनायकके पास ले आया। फिर विनायकके चरणोंमे प्रणाम कर उसने अत्यन्त विनीत भावसे निवेदन किया—'स्वामिन्! मैंने आपके आज्ञानुसार इसकी समस्त सेनाका भक्षण कर लिया और इसे भी बड़ी कठिनाईसे पकड़ लिया। हे प्रभो! श्रम-निवारणार्थ आप मुझे सोनेके लिये स्थान दें और सर्वानन्दप्रदाता दयामय! इसे मुक्ति प्रदान करें।'

'तुम मेरे मुँहमें इच्छानुसार विश्राम करो।' परम प्रभु विनायकने अपना मुँह खोल दिया और जिस प्रकार पृथ्वीसे उत्पन्न गन्ध पृथ्वीमें ही विलीन हो जाती है, उसी प्रकार वह प्रलयंकर कालपुरुष उन देवदेवके मुखमें प्रवेशकर उन्हींके स्वरूपमें मिल गया।

* * *

काशीनरेश विनायकके चरणोंपर गिर पड़े। कश्यपात्मजकी स्तुति करनेके अनन्तर उन्होंने हाथ जोड़कर पूछा—'प्रभो!

नरान्तक जब मुझे बंदी बनाकर सोत्साह और सोल्लास नगरमे प्रवेश करने जा रहा था, उस समय सहसा उसकी विशाल सेनाको भक्षण करनेवाला विकराल कालपुरुष कौन था और उन सबके साथ मैंने भी आपके उदरमे जाकर अनन्त सृष्टिका अवर्णनीय अद्भुत दृश्य देखा। मेरे व्याकुल होनेपर मुझे वहाँसे किसने बाहर किया? मुझे मतिभ्रम हो गया है। आप कृपया मेरा समाधान करें।'

परशुधरने नरेशके मस्तकपर अपना कर-कमल फेर दिया, फिर तो दिव्य-ज्ञानप्राप्त नरेशके नेत्रोंसे आनन्दके अश्रु बहने लगे। वे गद्गद-कण्ठसे सर्वाधार, सर्वसमर्थ, सर्वज्ञ, सर्वव्याप्त एवं सर्वान्तर्यामी महाप्रभु विनायककी स्तुति करने लगे—'देवेश! कश्यपनन्दन! आप ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश और सूर्य हैं। आप ही पृथ्वी, वायु, आकाश, दिशाएँ तथा पर्वतोंसहित वृक्ष हैं। सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, मुनि, मनुष्य तथा समस्त स्थावर-जङ्गम जगत् भी आप ही हैं। सारा जड-चेतन-समुदाय आपका ही स्वरूप है। जन्मान्तरके पुण्यसे ही मुझे आपके दर्शन हुए हैं।'*

इस स्तुतिके कुछ ही देर बाद वे फिर मोहित हो गये।

राजाने देवदेव विनायककी पूजा कर अनेक प्रकारके दान दिये। फिर वे अपनी माताके चरणोंमे प्रणामकर पत्नीसे मिले। राज-परिवारकी चिन्ता मिटी। अचिन्त्य शक्तिसम्पन्न विनायककी लीला देख राजपरिवारके प्रत्येक सदस्यने पुनः-पुनः विनायककी पूजा, स्तुति एव उनके चरणोंकी वन्दना की।

महामान्य विनायकके अनुग्रहसे अमात्य-पुत्रोंसहित काशिराज मुक्त होकर सुरक्षित राज-भवनमे पहुँच गये। दैत्य-सेनाका संहार हुआ और परम पराक्रमी अजेय नरान्तक पकड़कर राज-भवनमे लाया गया है—यह सवाद प्राप्त होते ही प्रत्येक भवनपर ध्वज लहराने लगे। काशीकी प्रजा हर्षसे नृत्य करने लगी, बाजे बजने लगे एवं गीत-गाये जाने लगे। नगरमे विजयोत्सव मनाया जाने लगा। सर्वत्र रह-रहकर समवेत कण्ठकी ध्वनि आकाशमे गूँज रही थी—'विनायककी जय!'

* * *

नरान्तक-वध

दैत्यराज नरान्तक मन-ही-मन सोच रहा था—'इस लोकोत्तर बालकने ऐसा कालपुरुष उत्पन्न किया, जिसने मेरे अगणित सैनिकोंका भक्षण कर मुझे यहाँ आनेके लिये विवश कर दिया। निश्चय ही मुझे इसके समीप भुक्ति और मुक्ति दोनो प्राप्त होंगी। इस कारण मैं इसे युद्धमे पराजित कर दूँ या इसके हाथ मारा जाऊँ—प्रत्येक दृष्टिसे मेरा लाभ है।'

इस प्रकार विचारकर उसने विनायकसे कहा—'तुमने अनेक ऐन्द्रजालिक क्रियाएँ कीं; किंतु तुम्हें पता नहीं कि दैत्य स्वाभाविक ही मायावी होते हैं। जिस वीरपुंगवके निश्श्वाससे पर्वत हिल जाते हैं, जिसके भ्रूक्षेप-मात्रसे ब्रह्माण्ड काँप उठते हैं और जिसके कराघातसे धरती खण्ड-खण्ड हो सकती है, उसके साथ तू अबोध बालक युद्ध कैसे कर सकता है? मेरे-जैसे भयानक व्याघ्रके सम्मुख तू सुखपूर्वक कैसे रह सकेगा?'

नरान्तकके सामर्ष वचन सुनकर विनायकने उत्तर दिया—'अरे मूर्ख! तू व्यर्थ ही क्या बकता है? युद्धके समय तुम्हारी शक्ति कहाँ चली गयी थी? वीर पुरुष जल्पना नहीं करते, वे तो अपनी वीरता और पौरुष प्रकट करते हैं। प्रगाढ अन्धकारको एक लघु दीप नष्ट कर देता है और मदमत्त गज सिंह-शावकके भयसे प्राण बचाये भागता फिरता है।'

निर्भय बाल विनायकके वचन सुन क्रोधसे काँपते हुए नरान्तकने भीषण गर्जना की। महान् असुर बालक ब्राह्मण पुत्र विनायककी ओर झपटा ही था कि काशिराजने अपना धनुष्-बाण लेकर उससे कहा—'निर्लज्ज! तू अपना दुर्लभ जीवन क्यों नष्ट कर रहा है? सुखपूर्वक रह। दीपक-ज्योतिपर पतगकी तरह क्यों मरने जाता है?'

अत्यन्त कुपित नरान्तकने काशिराजका तिरस्कार करते हुए कहा—''तेरे-जैसे नरोंका भक्षण करते रहनेके कारण ही मेरा 'नरान्तक' नाम प्रख्यात है। तू मेरे विरुद्ध इस विप्र-बालककी शरण लेकर जीवित कैसे रहेगा?''

---

* त्वमेव ब्रह्मा विष्णुश्च महेशो भानुरेव च ॥
त्वमेव पृथिवी वायुरन्तरिक्षं दिशो द्रुमाः।
पर्वतैः सहिता. सिद्धा गन्धर्वा यक्षराक्षसाः ॥
मुनयो मानवाश्चापि स्थावरं जङ्गमं जगत्।
त्वमेव सर्वं देवेश सचेतनमचेतनम् ॥
जन्मान्तरीयपुण्येन दृष्टोऽसि कश्यपात्मज।
(गणेशपु० २। ५९। ३१–३४)

'मूढ़ ! विनाशकालमें बुद्धि विपरीत हो जाती है और मित्र भी शत्रु हो जाया करते हैं। अब तेरे-जैसे महान् पापीका संहार कर पृथ्वीका भार हल्का करनेके लिये ही परमात्मा विनायकके रूपमें अवतरित हुए हैं और तेरे कुकर्मोंके कारण तेरे देवप्राप्त वर एवं पुण्य समाप्त हो चुके हैं।' राजाने इतना कहा ही था कि अपने गर्जनसे पृथ्वीको कम्पित करते हुए नरान्तकने काशिराजका धनुष-बाण छीनकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये और फिर स्वयं उन्हें पकड़कर धरतीपर पटक दिया। पर्वताकार नरान्तक काशिराजके वक्षपर चढ़कर उन्हें मार डालनेका प्रयत्न कर रहा था।

प्रबलतम दैत्यके सम्मुख नरेशकी दयनीय दशा देखकर विनायक परशु लेकर दौड़े। उनकी गर्जनासे धरती, आकाश और समस्त दिशाएँ काँपने लगीं। सर्वशक्तिसम्पन्न विनायकने सबकी दृष्टिशक्ति क्षीण करनेवाले तेजसे धधकते हुए अपने परशुका दैत्यराजके विशाल मस्तकपर प्रहार किया। दैत्यराज आहत होकर क्षणभरके लिये मूर्च्छित हो गया।

किंतु दूसरे ही क्षण क्रुद्ध दैत्य उठकर विनायकपर वृक्षों और पर्वतोंसे प्रहार करने लगा। वह अत्यन्त चकित था कि वे पर्वत और वृक्ष विनायकके शरीरको स्पर्श करनेके पूर्व ही उनके दिव्य परशुकी प्रखर धारपर सुमन-सरीखे चूर्ण-विचूर्ण होकर बिखर जाते हैं। विनायककी वज्रदेहपर उनका किंचित् भी प्रभाव नहीं पड़ रहा है।

महादैत्यने अनेक प्रकारके रूप धारणकर युद्ध करना प्रारम्भ किया; किंतु वह जो-जो रूप धारण करता, योगिराज विनायक भी उसी रूपमें युद्ध कर उसका दर्प-दलन करते जा रहे थे। उन्होंने नरान्तकके अस्त्रोंका अस्त्रोंसे, शस्त्रोंका शस्त्रोंसे निवारण किया। निराश होकर महासुर मल्लयुद्ध करने लगा; पर उसमें भी उसका वश नहीं चला तो उसने पुनः पर्वतों एवं वृक्षोंकी वृष्टि प्रारम्भ कर दी। विनायक उन सबका पद्म, पाश, अङ्कुश और परशुके प्रहारसे निवारण करते जा रहे थे, किंतु उनके मनमें चिन्ता हुई—'इस नरान्तकका अन्त आवश्यक है, किंतु मैं जिन देवतादिकोंकी अधिकार-रक्षा एवं उनके निरापद सुखमय जीवनके लिये युद्धरत हूँ, वे कहाँ गये ?'

देवदेव विनायकके चिन्तित होते ही उनके कर-कमलोंमें कालदण्डोपम शरपूरित तूणीर और सुवर्णमय पिनाक आ गया। उसके तेजसे समस्त दिशाएँ प्रकाशित हो गयीं। प्रसन्नमन विनायकने उस धनुषका टङ्कार किया तो त्रैलोक्य काँपने लगा।

उस समय देवदेव विनायक साक्षात् काल-तुल्य प्रतीत हो रहे थे। उन्होंने नरान्तकपर शर-वर्षा प्रारम्भ की। नरान्तकके दोनों हाथ कटकर दूर जा गिरे और मस्तक उसके पिता रुद्रकेतुके सम्मुख गिरा। किंतु अत्यन्त आश्चर्यकी बात यह हुई कि उस वर-प्राप्त असुरकी नयी भुजाएँ और नया मस्तक पुनः निकल आया।

असुरने क्रुद्ध होकर पुनः पर्वतोंकी वृष्टि प्रारम्भ कर दी। वृक्षोंकी वर्षासे अन्धकार फैल गया। विनायकने धनुषकी प्रत्यञ्चा कानतक खींचकर तीक्ष्ण शर छोड़ा। असुरके दोनों पैर कट गये। वे पैर आकाशमें उड़ते हुए देवान्तकके समीप गिरे। नरान्तक बिना पैरके ही दौड़ा, किंतु उस मायावीके दोनों पैर पुनः निकल आये। क्रोधोन्मत्त असुरने विनायकसे कहा—'तुमने मेरा अङ्ग-भङ्गकर अपना पौरुष दिखला दिया; अब मैं तुमपर आक्रमण करता हूँ; मेरा पराक्रम देखो !'

क्रुद्ध नरान्तकने असंख्य बाण-वृष्टि की; किंतु धनुर्वेद-विशारद बालकने भी अद्भुत कौशलका परिचय दिया। उस असुरके सारे अग्निमुखी बाण बीचमें ही कट गये। फिर विनायकने एक बाणसे उसका मस्तक काट दिया। वह मस्तक चीत्कार करता हुआ पुनः उसके पिता रुद्रकेतुके सम्मुख गिरा। वहाँ उसे फिर नया सिर प्राप्त हो गया। इस प्रकार सहस्राधिक बार विनायकने उसका शिरश्छेद किया, किंतु पुनः-पुनः नये-नये सिर निकलते आये।

यह देखकर विनायक चिन्तित हुए। 'वर-प्राप्त असुर कैसे मरे ?'—वे सोचने लगे। अन्ततः उन्होंने उसे मोहित किया। मोहग्रस्त नरान्तकको 'स्व' और 'पर'का भेद नहीं रहा। उसे दिन-रातमें भी अन्तर नहीं दीखता था। एक क्षण वह समझता था कि दिन है, किंतु दूसरे ही क्षण उसे रात्रि प्रतीत होती। वह क्षणभर स्वर्गमें तो क्षणभर पातालमें, क्षणभर जाग्रत् तो क्षणभर सुषुप्तिका अनुभव करता। विनायक स्त्री हैं या पुरुष, अपने हैं या पराये, निर्जीव हैं या सजीव—नरान्तकको कुछ भी जान नहीं पड़ता था; उसे मतिविभ्रम हो गया।

उसने मन-ही-मन कहा—'शूलपाणि शिवने वर-प्रदान करते हुए कहा था कि ऐसे ही समय तुम्हारी मृत्यु होगी।'*

उसी समय विराट्रूपधारी विनायकने उस महादैत्य नरान्तकको अपने हाथोंसे सुकोमल पुष्पकी तरह मसलकर फेंक दिया।

'विनायककी जय हो! जय हो!! जय हो!!!'—पुष्प-वृष्टिके साथ देवगण विनायकके चरणोंमें प्रणामकर उनका स्तवन करने लगे।

तदनन्तर काशिराजने पुनः देवदेव विनायककी पूजा की और अत्यन्त विनयपूर्वक स्तवन करते हुए कहने लगे—'प्रभो! मेरे अत्यधिक पुण्य उदित हुए हैं, जिससे मैंने आपके मन और वाणीसे अगोचर विराट्रूपका दर्शन प्राप्त किया। आपने तैंतीस कोटि देवताओंको पराजित करनेवाले महान् नरान्तकका अन्त कर जगत्का बड़ा उपकार किया। प्रभो! आप मुझे अपनी भक्ति प्रदान करें और मैं आपसे कभी पृथक् न होने पाऊँ।'

'विनायककी जय!' बोलते हुए काशिराजने प्रसन्न होकर ब्राह्मणोंको दान दिया। फिर उन्होंने पृथ्वी और नागलोकके राजा-महाराजाओंको अपने-अपने राज्योंकी सुव्यवस्था करनेकी प्रेरणा प्रदान कर दी। इस प्रकार धरती और नागलोक क्रूरतम असुरसे मुक्त हुए। वसुधाका आधा भार उतर गया।

* * * *

मुनिवर रुद्रकेतु और उनकी साध्वी सहधर्मिणी, दोनो तपस्वी और धर्माचरण-सम्पन्न थे। उन्हे पहले तो अपने पुत्रोंका आचरण अच्छा नहीं प्रतीत हुआ, किंतु जब उनके दोनों पुत्रोंने त्रैलोक्यपर विजय प्राप्त कर ली, अपार धन एवं त्रैलोक्यव्यापी कीर्ति अर्जितकर माता-पिताके लिये अपरिमित सुख-सामग्री और साधन एकत्र कर दिये, तब वे बड़े प्रसन्न हुए। फिर देवान्तक और नरान्तकके दैत्याचरण उन्हे अप्रिय नहीं लगते थे। वे सुखमय जीवन व्यतीत करनेके अभ्यस्त हो गये थे।

इस कारण जब शारदा और रुद्रकेतुने पृथ्वी और पातालपर शासन करनेवाले अपने प्राणप्रिय पुत्र नरान्तकका निस्तेज छिन्न मस्तक देखा तो दोनों ही मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। कुछ देर बाद जब उनकी मूर्च्छा दूर हुई तो मृतवत्सा गौकी तरह व्याकुल होकर शारदा नरान्तकका मस्तक गोदमें लेकर विलाप करने लगी। वह नरान्तकके वीरत्व और वैभवपूर्ण राज्यका गुणगान करती हुई रो रही थी; सिर धुन रही थी।

रुद्रकेतु भी व्याकुल होकर रोने लगे। वे नरान्तकके गुणोंका बखान करते हुए कह रहे थे—'बेटा! तू माता-पिताको छोड़कर कहाँ चला गया? तुम्हारे नामसे समस्त वन, पर्वत और शत्रु थर-थर काँपा करते थे; ऐसा प्रबल पराक्रमी तू भू-लुण्ठित क्यों है? सचमुच क्रूर कालकी गति अत्यन्त वक्र होती है—दैवं हि बलवल्लोके पौरुषं तु निरर्थकम्—हाय! मेरे वंश और पृथ्वीका भूषण कहाँ चला गया?'

अत्यन्त दुःखी रुद्रकेतु अपनी पत्नी शारदाके साथ स्वर्गमें देवान्तकके पास पहुँचे। वहाँ अपने पुत्रका सिर लिये शारदा क्रन्दन करने लगी। अनुजका मस्तक देखकर देवान्तकका हृदय काँप उठा। वरप्राप्त अजेय नरान्तककी मृत्यु सहज नहीं; पर विश्वास हो जानेपर वह अनुजका सिर हाथमें लेकर स्वयं रोदन करने लगा। 'हम दोनों साथ ही उत्पन्न हुए, साथ ही खेले, साथ ही सयाने हुए, साथ ही हमने तप किया, साथ ही जप किया और साथ ही त्रैलोक्यपर विजय प्राप्त की। मेरे लिये सदैव प्राण देनेके लिये प्रस्तुत अब तू अचानक मुझे छोड़कर एकाकी कैसे चला गया?'

इस प्रकार भ्रातृ-स्नेहसे व्याकुल देवान्तकको रुदन करते देख वीर सैनिकोंने उससे कहा—'स्वर्गाधिप! वीर पुरुष युद्धमें शरीर-त्याग करनेकी चिन्ता नहीं करते। मृत्यु तो सुनिश्चित होती है। प्रत्येक जीवधारीको आज नहीं तो सौ वर्षों बाद मरना ही पड़ेगा। हमे शत्रुसे प्रतिशोध लेना चाहिये। प्रतिशोध!!'

यह सुनकर देवान्तकने अपने माता-पितासे कहा—'आपलोग चिन्ता छोड़कर विश्राम करें। मैं अनुजके हत्यारेका वध कर डालूँगा या स्वयं मर मिटूँगा। मेरी वक्र भ्रुकुटि देखकर त्रैलोक्य काँप उठता है, फिर मेरे कुपित होनेपर उस क्षुद्र नरेश और विप्र-बालककी रक्षा कौन कर सकता है?'

* चिन्तां च परमामाप तर्कयामास चेतसि।
एवं मे तु वरा दत्ताः शिवेन शूलधारिणा॥
अय च समयः प्राप्तः प्रायो मृत्युर्भविष्यति।
(गणेशपु० २।६१।२९-३०)

रुद्रकेतु और शारदा आश्वस्त हुए। देवान्तकने पृथ्वीको कम्पित करनेवाली गर्जना की। उसने माता-पिताके चरणोंमें प्रणामकर तत्काल सशस्त्र वाहिनी प्रस्तुत करनेके लिये सेनापतिको आज्ञा दी। देवान्तककी सेना समस्त आयुधोंसे सज्जित होकर काशीके लिये प्रस्थित हुई। देवान्तक क्रोधसे दाँत पीस रहा था। उसकी भुजाएँ शत्रुका सर्वनाश करनेके लिये फड़क रही थीं। इस प्रकार परम वीर रुद्रकेतु-पुत्र देवान्तक अपने असंख्य सैन्यसहित पृथ्वीके सहिष्णु एवं शान्त गाँवों और नगरोंको जलाता, लूटता तथा रक्तसे खेलता काशीके समीप पहुँचा।

देवान्तककी पराजय

प्रबलतम असुर नरान्तककी पराजय और वधसे पृथ्वी और पाताल-लोकमें नवजीवनका संचार हो गया था, नयी चेतना उत्पन्न हो गयी थी। काशिराजकी प्रजामें तो अपरिमित आत्मबल उदित हुआ था। पृथ्वीके पराजित और पीड़ित नरपति तथा देवगण विनायकके चरणोंमें एकत्र होने लगे थे। वे त्रैलोक्य-त्राता विनायकके संकेतपर प्राणार्पण करनेके लिये प्रतिक्षण प्रस्तुत हो गये। नरान्तककी मृत्युका संवाद पाते ही उसका भाई देवान्तक काशिराजपर भीषण आक्रमण करेगा, यह पहलेसे ही निश्चय था। इस कारण काशीमें सर्वत्र सावधानी थी। युद्धभूमिमें देवान्तकको पराजित कर देनेके लिये सभी प्रस्तुत थे। विनायकके आदेशानुसार यथाशीघ्र समुचित व्यवस्था कर ली गयी थी।

इस कारण असुर-सैन्यद्वारा काशीको घेर लेनेके संवादसे कोई आश्चर्य नहीं हुआ; किंतु काशिराज देवान्तकके प्रतापकी स्मृतिसे काँप उठे। वे तुरंत वहाँ पहुँचे, जहाँ बाल विनायक बालकोंके साथ खेल रहे थे। राजाने हाथ जोड़कर निवेदन किया—'लीलारूपधारी जगदीश्वर! आपके चरणोंमें प्रणाम है। अनेक प्रकारकी मधुर मनोहर लीला करनेवाले चराचर-गुरु! आपके चरणोंमें बारंबार नमस्कार है। आपने बालरूपमें ही अनेक अवसरोंपर हमारी रक्षा की है; अब महादैत्य देवान्तकसे भी हमें बचाइये। उसने लक्ष-लक्ष सैनिकोंके साथ राज्यको घेर लिया है।'

राजाकी प्रार्थना सुनते ही बाल विनायकने परम तेजस्वी विशाल स्वरूप धारण कर लिया। वे सिंहारूढ़ थे। उनके हाथोंमें धनुष-बाण, तलवार और परशु आदि आयुध थे। सिद्धि, बुद्धि उनके साथ थीं। उनके तेजके सम्मुख सूर्य म्लान हो रहे थे। उनके नेत्रोंसे अंगारे बरस रहे थे। उनकी भयंकर ध्वनिसे दिशाएँ थर्रा उठीं।

महोत्कट विनायकने अगणित सैनिकोंके साथ नगरपर घेरा डाले देवान्तकके विशाल सैन्यको देखा तो उन्होंने सिद्धिदेवीसे कहा—'तुम इनके विनाशके लिये विशाल सेनाकी व्यवस्था करो।'

सिद्धिदेवीने विनायकके चरण-कमलोंमें प्रणाम किया और उन्होंने तुरंत देवान्तककी सेनाके समीप जाकर भयानक गर्जना की। उनके गर्जनकी जो भयावनी प्रतिध्वनि हुई, उससे पर्वत और वृक्ष काँप उठे। उनके स्मरण करते ही अणिमा, गरिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, वशित्व और ईशित्व-नामवाली आठ महादेवियाँ उपस्थित हो गयीं। वे सभी गज, अश्व, रथ और पैदल नाना प्रकारके सशस्त्र स्त्री-सैनिकोंके साथ थीं।

उन आठों देवियोंने अपनी-अपनी सेनाओंका अद्भुत व्यूह निर्माणकर अत्यन्त भयानक गर्जना की। वीर रमणियोंकी विचित्र व्यूह-रचना एवं उन्हें युद्धके लिये प्रस्तुत देखकर देवान्तकने सिर थाम लिया। उसने सोचा—'कहाँ तो मैं काशिराज और महोत्कटको मिट्टीमें मिला देनेके लिये आया था और कहाँ मुझे सर्वप्रथम नारी-जातिके प्रतिरोधका सामना करना पड़ रहा है। बाल विनायककी चकित कर देनेवाली अत्यन्त विलक्षण नीति है। ये नारियाँ हमें समाप्त कर देने या मर मिटनेके लिये प्रस्तुत हैं। यदि मैंने इन्हें पराजित भी कर दिया तो यश तो मिलनेसे रहा, किंतु यदि इनके पराक्रमसे मैं विजय नहीं प्राप्त कर सका, तब कितना अयश होगा!'

इस प्रकार देवान्तक अपने मनमें विचार कर ही रहा था कि उसके एक सेनापतिने कहा—'स्वामिन्! आप सेनाके पीछे चले जायँ, वहाँकी व्यवस्थापर दृष्टि रखें; यहाँ हम इन्हें यथाशीघ्र परास्त करते हैं।'

सेनापतिके वचनसे प्रसन्न होकर देवान्तकने अपने सैनिकोंको प्रोत्साहित किया—'वीरो! तुम अपने साम्राज्यकी रक्षाके लिये युद्ध करने आये हो। यह तुम्हारा पुण्यकर्म है। निश्चय ही विजयश्री तुम्हें वरण करेगी।'

देवान्तकके कर्दम, दीर्घदन्त, तालजङ्घ, यक्ष्म, घण्टासुर, रक्तकेश, कालान्तक और दुर्जय-नामक असुर दुर्जय योद्धा

थे। उन्होंने देवान्तकको नमस्कार किया और आठों महान् देवियोंके व्यूहके सम्मुख डट गये।

देवियों और असुरोंमें भयानक संग्राम छिड़ा। नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रों एवं तीक्ष्ण शरोंकी वर्षा होने लगी। शत्रुओंके मस्तक, भुजाएँ और पैर कट-कटकर पृथ्वीपर गिरने लगे। अश्व और गज भी घायल होकर पृथ्वीपर छटपटाते हुए प्राण त्याग रहे थे। पृथ्वी रुण्ड-मुण्डसे पटती जा रही थी।

देवियाँ और असुर दोनों अपनी-अपनी विजयके लिये प्राणपणसे प्रयत्न कर रहे थे, किंतु कभी असुरगण विजयी होते तो कभी अष्टसिद्धियोंका सैन्य विजयी होता। इस प्रकार असुरों और देवियोंमें अत्यन्त भयंकर संग्राम चल रहा था।

क्रुद्ध कालान्तक शस्त्रोंको छोड़कर प्राकाम्यसे द्वन्द्व युद्ध करने लगा। उसकी शक्तिके सम्मुख देवी प्राकाम्यको शिथिल होते देख वशित्वने तत्काल उनकी सहायता की। उन्होंने तत्क्षण कालान्तकका मस्तक काट दिया। चीत्कार करता और रक्तका फव्वारा छोड़ता कालान्तकका सिर पर्वत-शिखरपर जा गिरा। उसका कबन्ध नाचता हुआ धराशायी हो गया। यह देखकर दैत्य-सेनामें हाहाकार मच गया।

फिर तो अत्यन्त कुपित होकर दैत्यनायक मुसल और मल्ल दो असुर योद्धा महिमा आदिको मार डालनेके लिये भयकर युद्ध करने लगे। उन्होंने प्राकाम्यपर भीषण शस्त्र-वर्षा की। यह देखकर ईशिता, वशिता और विभूति आदि वीर देवियाँ उनके सम्मुख आ गयीं। उन्होंने दैत्योंपर बड़े वेगसे चार पर्वत उठाकर फेंके; वीर असुर भीषण प्रहार नहीं सह सके; वे वहीं चूर्ण हो गये।

उधर परम शक्तिशालिनी अणिमाने बलात् कर्दमकी शिखा पकड़ ली और उसे घुमाकर पृथ्वीपर इतने जोरसे दे मारा कि उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। उसके शरीरका रक्त चारों ओर फैल गया। महिमा, गरिमा और लघिमाने वृक्षोंके प्रहारसे यक्ष्म, तालजङ्घ और दीर्घदन्तको मार डाला। महाबलवान् दुर्जय दैत्य घण्टासुर और रक्तकेशको पकड़कर वशिता और सिद्धि-बुद्धिने उनके मस्तकपर वज्रमुष्टिका इतना भयानक प्रहार किया कि वे असुर रक्त-वमन करते हुए मृत्यु-मुखमें चले गये। अन्य असुर भी इसी प्रकार स्त्री-सैनिकों-द्वारा मार डाले गये।

इस प्रकार परम तेजस्विनी देवियों और असुरोंमें तीन दिन और तीन रात्रियोंतक निरन्तर भयानक संग्राम होता रहा। राक्षसी-सेना तीव्र गतिसे समाप्त हो चली थी।

यह देखकर देवान्तक अत्यन्त चिन्तित हुआ। वह अपने मनमें तर्क करने लगा—'मैंने अपने प्रभावसे देवताओंपर विजय प्राप्त कर ली थी, किंतु इस ब्राह्मण-पुत्रकी माया समझमें नहीं आ रही है। उसने केवल स्त्रियोंसे हमारी अगणित सेनाका संहार करवा दिया; युद्ध-सामग्रियाँ नष्ट कर दीं। अब मैं स्वयं अष्टसिद्धियोंको मार विनायकको पकड़कर स्वर्ग ले चलूँ।'

स्वयं देवान्तक अपने हाथमें तीक्ष्ण तलवार लेकर दौड़ा। उसके गर्जनसे देव-समुदाय काँप उठा। उसने देव-सैन्यपर इतना भीषण प्रहार किया कि रक्तकी सरिता प्रवाहित हो गयी। देवगण त्राहि-त्राहि करते प्राण लेकर भागने लगे। देवी गरिमाने उसके ऊपर भयानक वृक्षों और पर्वतोंकी वर्षा की, किंतु देवान्तकने उसे खड्गसे ही चूर्ण कर दिया। महिमाने उड़कर क्रूर दानवराजके मस्तकपर खड्ग-प्रहार किया। देवान्तकने उस खड्गको सिरसे निकालकर फेंक दिया। महिमाने झटकेसे उसका खड्ग उड़ा दिया। अत्यन्त कुपित होकर चकित देवान्तकने धनुष उठाया और बाणोंकी वर्षा की। वह महान् असुर एक-एक देवीको पाँच-पाँच, सात-सात और दस-दस तीक्ष्णतम शरोंसे वेध रहा था। इस कारण अष्टसिद्धियाँ व्याकुल होकर वहीं मूर्च्छित हो गयीं। असुरने प्रलयंकरी गर्जना की।

अष्टसिद्धियोंके मूर्च्छित होते ही देवगण युद्धमें डट गये। यह संवाद पाकर बुद्धि-विधाता विनायकने बुद्धिदेवीको रणाङ्गणमें भेज दिया। उन्होंने समर-भूमिमें इतनी भयानक गर्जना की कि दैत्य-दल काँपने लगा। उनके मुखसे एक अत्यन्त शक्तिशालिनी वीर स्त्री प्रकट हुई। उनके केश धरतीपर फैले हुए थे, विशाल मुख भक्षण करनेके लिये प्रस्तुत था और नेत्रोंसे अग्निकी भयानक ज्वाला निकल रही थी।

वे दैत्य-सेनाकी ओर चलीं। उनकी महाभयावनी मूर्ति देखकर असुर भागने लगे। उन्हें प्राण-रक्षाकी कोई युक्ति नहीं दीखती थी। वे दैत्योंके समूह-के-समूहको उठाकर अपने मुँहमें डाल लेती थीं। वे राक्षसोंको अपने पैरों और हाथोंसे मसलती हुई आगे बढ़ रही थीं। सम्पूर्ण असुर-सैन्यका विनाश कर उन्हें साक्षात् मृत्युकी तरह अपनी ओर आती देख

देवान्तक उनपर भयानक बाण-वर्षा करने लगा। शर-वर्षणमें वह अद्भुत हस्तलाघवका परिचय दे रहा था। अनवरत तीक्ष्ण शर उक्त भयानक देवीके शरीरसे टकराकर गिर जाते। शरोंका उनकी वज्रदेहपर कोई प्रभाव ही नहीं पड़ रहा था। देवान्तकके समस्त शर समाप्त हो गये, किंतु उन अद्भुत देवीपर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

'तू भी मेरे उदरमें चला आ!' कहती हुई देवी देवान्तककी ओर बढ़ीं। देवान्तकने देखा, दैत्य-सेनाका कहीं पता नहीं। सभी मार डाले गये और यदि कुछ बचे तो प्राण-भयसे भाग गये और यह साक्षात् मृत्यु सिरपर चढ़ी आ रही है। सर्वथा निराश, उदास और हतप्रभ देवान्तक प्राण-भयसे सिरपर पैर रखकर समर-भूमिसे भाग खड़ा हुआ।

बुद्धिदेवीने विनायकके चरणोंमें प्रणामकर निवेदन किया—'प्रभो! मैंने दैत्य-दलका भक्षण कर लिया है। अब मुझे विश्राम करनेके लिये स्थान दीजिये।'

'दैत्यनाशिनी देवि!' देवदेव विनायकने बुद्धिदेवीसे कहा—'तुमने इन्द्रसे भी अधिक पौरुष दिखाया है। अब तुम विश्रामके लिये मेरे मुखमें चली आओ।'

परमप्रभु विनायककी आज्ञा पाते ही बुद्धिदेवी अत्यन्त प्रसन्न हुईं और जैसे बालक अपनी माताकी गोदमें सुखपूर्वक शयन करता है, उसी प्रकार वे विश्राम करनेके लिये सर्वलोकाश्रय विनायकके उदरमें चली गयीं।

* * *

वीर विनायक समर-क्षेत्रमें

शारदा और रुद्रकेतुने रात्रिमें देखा कि म्लानमुख देवान्तक मुँह ढककर सो रहा है। रुद्रकेतुने अत्यन्त स्नेह-पूर्वक पूछा—'बेटा! तू अत्यन्त उदास हो मुँह छिपाकर क्यों सोया है? बता, क्या हुआ? मैं तुम्हारे हितके लिये सभी प्रयत्न करूँगा।'

पिताकी मधुर वाणी सुनकर लज्जित देवान्तकने उत्तर दिया—'पिताजी! आपके आज्ञानुसार मैं अपनी चतुरङ्गिणी सेनाके साथ विनायकसे युद्ध करने गया। किंतु वहाँ मेरे सम्मुख आठ महादेवियाँ अपने सैनिकोंके साथ डट गयीं। मेरी सेनाने कितने ही देवताओंको मार डाला, किंतु उन देवियोंने मेरे मुख्य-मुख्य सेनाधिपोंको चुन-चुनकर यम-सदन भेज दिया। अन्तमें अत्यन्त विकट, वीभत्सरूपा कृत्या आयी। उसने मेरे असुर-वीरोंके समूह-का-समूह भक्षण करना आरम्भ किया। उसे मारनेमें मैंने कोई प्रयत्न नहीं छोड़ा; किंतु उसके वज्रशरीरपर मेरे तीखे शर तथा अन्य शस्त्रास्त्र सुकोमल सुमनकी तरह टूट-टूटकर बिखर जाते थे। मेरी सारी सेना समाप्त हो गयी और मैं नहीं भागता तो मेरे प्राण भी नहीं बचते। अब मैं क्या करूँ, कुछ समझमें नहीं आता।'

'बेटा! तुम चिन्ता मत करो। मैं तुम्हें एक उपाय बताता हूँ।' रुद्रकेतुने देवान्तकको समझाते हुए कहा—'तुम सबीज अघोर मन्त्रका अनुष्ठान करो। शिवका ध्यान और उनकी पूजा कर यह उत्तम अनुष्ठान करना चाहिये। इसके अनन्तर जपका दशांश होम, होमका दशांश तर्पण और तर्पणका दशांश ब्राह्मण-भोजन कराओ। शंकरके प्रसादसे हवनकुण्डसे एक अश्व निकलेगा। तुम उसपर आरूढ होकर युद्धभूमिमें जाओ; तुम्हें निश्चित विजय प्राप्त होगी।'

देवान्तक प्रसन्न हुआ। उसने स्नानोपरान्त लाल वस्त्र धारण किये और लाल पुष्पोंसे शिवकी पूजा की। इस प्रकार वह दीर्घकालतक आदरपूर्वक अनुष्ठान करता रहा। इसके अनन्तर उसने कुण्डमें विधिवत् अग्निकी स्थापना की, फिर आहुति देकर अग्निदेवको तृप्त किया। इस प्रकार बलि आदि घोर तामसिक विधियोंसे उसने अनुष्ठानकी पूर्ति की।

अरुणोदयके समय उसके सम्मुख अत्यन्त बलवान् स्निग्धाङ्ग काला घोड़ा उपस्थित हुआ। उस चपल अश्वकी ध्वनि बड़ी भयानक थी। देवान्तकने प्रसन्न होकर उस अश्वकी पूजा की और फिर उसे मणि-मुक्तामय अलंकारोंसे सजाया। उसने ब्राह्मणोंको नमस्कार किया, माता-पिताके चरणोंमें मस्तक झुकाया और फिर उस वेगशाली अश्वपर आरूढ़ हुआ।

उसने अपने लक्ष-लक्ष सैनिकोंको तुरंत युद्धके लिये संनद्ध होनेका आदेश दिया। उसका सम्पूर्ण असुर-सैन्य शस्त्रास्त्रसे सजकर प्रस्तुत हो गया। अश्वारूढ़ देवान्तककी अमित बलशाली सशस्त्र सेनाके चलते ही वाद्य बज उठे, देवगण अपने भयानक अनिष्टकी कल्पनासे काँपने लगे।

असुर-सैनिक विनायकसहित काशिराजको धूलमें मिला देनेके जोशमें बढ़ते जा रहे थे। देवान्तक क्रोधोन्मत्त था। वह यथाशीघ्र काशीकी सीमाके समीप पहुँचनेके

लिये आतुर हो रहा था। इस प्रकार असुर-वाहिनी काशीके समीप पहुँची।

इस बार देवान्तकने अपने सम्पूर्ण सैन्यके साथ काशीपर भीषण आक्रमण किया। सिद्धिदेवी अपने सैनिकोंके साथ प्रत्याक्रमण कर बैठीं। भयानक युद्ध हुआ। असुर प्रबल थे, देवान्तकने नयी शक्ति अर्जित कर ली थी, इस कारण सिद्धिदेवीकी सेना व्याकुल हो गयी। सिद्धिदेवीने असुरोंका अत्यधिक विनाश तो किया, पर वे शिथिल होने लगीं। उनकी सेना पीछे हटने लगी।

देवान्तककी मुक्ति

यह समाचार सुनते ही देवदेव विनायक देव-सेना एवं काशिराजकी सुरक्षित सेना असुरोंपर प्रहार करनेके लिये भेजकर स्वयं सिंहारूढ़ हुए। उन्होंने धनुष-बाण, पाश और परशु आदि अपने अस्त्र धारण किये और समरभूमिमें देवान्तकके सम्मुख जा डटे। विनायकने भयानक गर्जना की। समस्त सैनिकोंसहित देवान्तकका हृदय हिल गया।

अपने प्रबलतम शत्रु विनायकको देखकर देवान्तकने कहा—'अरे बालक! तू रणाङ्गणमें कैसे आ गया? जा, अपनी माताका दुग्धपान कर। मेरी दृष्टिमात्रसे काल भी भयभीत हो जाता है, तू यहाँ क्यों मरने चला आया? तुम्हारा अत्यन्त कोमल शरीर तो मेरा एक ग्रासमात्र ही है।'

दैत्यके वचन सुन क्रोधारुणलोचन विनायकने उत्तर दिया—'अरे मूढ़! तू मद्यपों और संनिपातके रोगियोंकी तरह असम्बद्ध प्रलाप क्यों कर रहा है? एक अग्निकण ही विशाल नगरको ध्वस्त करनेके लिये पर्याप्त होता है। सम्पूर्ण जगत्को पीड़ित करनेवाले अधम असुर! तू मुझे नहीं जानता। तेरे जीवनकी अवधि समाप्त हो गयी है और तेरा वध करनेके लिये ही मैंने मनुष्यशरीर धारण किया है। अधिक कहनेसे क्या लाभ; तू अपना पौरुष दिखा।'

इतना कहकर अदितिनन्दनने अपने धनुषकी प्रत्यञ्चा खींची। उसके भीषण रवसे त्रिभुवन संत्रस्त हो गया। विनायक शर-वर्षण करने लगे। देवान्तकने भी भयानक युद्ध किया।

विनायकके विविध प्रकारके अस्त्रोंसे देवान्तककी सेना गाजर-मूलीकी भाँति कटती जा रही थी। यह देखकर क्रुद्ध देवान्तकने मायाका आश्रय लिया। वह पृथ्वीपर और आकाशमें जहाँ जिस रूपमें जाता, विनायक वहीं उसपर प्रचण्ड प्रहार करते। देवान्तक घायल हो चला था और देवदेव विनायकके भी मङ्गलमय अङ्गोंपर जपा-पुष्पकी भाँति अरुण रक्त दीख रहा था। अन्ततः देवान्तकने मोहास्त्रका प्रयोग किया। बस, देवताओं और काशिराजके सैनिकोंके साथ विनायक वहीं रणाङ्गणमें निद्रित हो गये।

देवान्तकने भयानक गर्जन किया और उसने निद्रित देव-सैनिकोंके चारों ओर सशस्त्र वीर प्रहरी नियुक्त कर दिये।

तदनन्तर उसने चक्रके मध्य त्रिकोणाकार कुण्ड निर्मित किया। फिर उसने पद्मासनपर बैठकर अभिचार-कर्म प्रारम्भ किया। वह मन्त्रोच्चारणके साथ मांसका हवन कर रहा था।

उसी समय जब काशिराजको निद्रास्त्रसे मोहित सैन्यका पता चला तो वे व्याकुल होकर लुकते-छिपते किसी प्रकार विनायकके पास पहुँचे। उन्होंने विनायकको सावधान करते हुए कहा—'त्रिकालज्ञ देव! आप असुरके मोहास्त्रसे कैसे निद्रित हो रहे हैं? दैत्यराज देवान्तकका अभिचार-कर्म पूर्ण हो चला है। अब वह समस्त देव-सैन्यका वध कर डालेगा? आप कृपापूर्वक सावधान हो जाइये।'

नरेशके वचन सुन विनायक सावधान हो गये। उन्हें असुरकी माया विदित हुई तो उन्होंने तत्काल अपने दो बाण बाहर निकाले और उन्हें घण्टास्त्र एवं खगास्त्रसे अभिमन्त्रितकर धनुषपर रखा। फिर प्रत्यञ्चाको कानतक खींचकर उन दोनों बाणोंको आकाशकी ओर छोड़ दिया।

विनायकके हाथोंसे उन बाणोंके छूटते ही उनसे मेघ-गर्जन-जैसा शब्द हुआ। घण्टास्त्रसे भयानक घण्टानाद होने लगा, जिससे देवताओंके सैनिकोंकी निद्रा भङ्ग हो गयी। उन्होंने तुरंत उठकर अपने-अपने शस्त्रास्त्र ले लिये और राक्षसोंसे युद्ध करने लगे। दूसरे बाणसे आकाशमें असंख्य भयानक पक्षी उत्पन्न हुए। उनकी पाँखोंसे सर्वत्र अन्धकार व्याप्त हो गया। उन्होंने असुरके गन्धर्वास्त्रको नष्ट कर दिया और उसके सैनिकोंको चुन-चुनकर खाने लगे। दैत्योंमें भयानक हाहाकार मच गया।

[पृष्ठ २२१-२२२

पत्नी-पुत्र-सहित श्रीगणेश

(पत्नियाँ—सिद्धि और बुद्धि, पुत्र—क्षेम एवं लाभ)

तब तो कुपित होकर देवान्तकने भीषण संग्राम किया; किंतु विनायकके सम्मुख उसकी एक नहीं चल पाती थी। असुर मृत्यु-मुखमें प्रवेश करते जा रहे थे और देवान्तककी व्याकुलता बढ़ती जा रही थी। उस मायावी असुरने अनेक प्रकारसे मायामय युद्ध किया, किंतु मायापति विनायकने उन्हें भी विफल कर दिया।

'इस विलक्षण बालकसे पार पाना कठिन प्रतीत होता है।' यह सोचकर उस मायावीने अपनी मायासे विनायक-जननी अदितिकी रचना की। वे विलाप कर रही थीं और असुर अदितिको अपमानित कर रहे थे। यह देखकर विनायक अत्यधिक अशान्त और विकल-विह्वल हुए ही थे कि आकाशवाणी हुई—'देव! यह दुष्टबुद्धि असुरोंकी मायामयी रचना है। आप सावधान होकर दुष्ट दैत्यके संहारकी ओर ध्यान दें।'

आकाशवाणी सुनते ही विनायक निश्चिन्त होकर युद्ध करनेके लिये प्रस्तुत हो गये। भीषण युद्ध हुआ, पर असुर विचलित नहीं होता था। अचानक उसे कई विनायक दीखने लगे। वह जिधर मुड़ता, उधर ही उसका संहार करनेके लिये क्रुद्ध विनायक अपने प्रचण्ड अस्त्रोंका प्रहार करते दिखायी देते। देवान्तकको दायें-बायें, आगे-पीछे सर्वत्र विनायक ही दीखते। किसे मारूँ, किससे युद्ध करूँ, उसकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी।

पुनः देवान्तकने प्रभुके अत्यन्त पराक्रमी स्वरूपका दर्शन किया। देवदेव गजमुख विनायकने उत्तम वस्त्र धारण कर रखे थे। उनके माथेपर अद्भुत अलौकिक मुकुट चमक रहा था और कानोंमें तेजपूर्ण कुण्डल सुशोभित थे। उनके नेत्रोंसे अग्नि-वर्षा हो रही थी और दन्त-पंक्तियाँ विद्युल्लता-सी चमक रही थीं। उनके मङ्गलमय कण्ठमें मोतियोंकी माला शोभा दे रही थी। उन परम तेजस्वी प्रभुका मस्तक अन्तरिक्षको स्पर्श कर रहा था।

'अत्यन्त आश्चर्य! आधा मनुष्य और आधा गजकाय, यह कौन है?' इस प्रकार मनमें कहता हुआ देवान्तक भयाक्रान्त हो गया। देवान्तककी यह मनःस्थिति देखकर विनायक पूर्ववत् बालक हो गये। वे पद्मासन लगाकर बैठ गये। फिर उन्होंने देवान्तकसे कहा—'असुरराज! तुम अपने शुभ वरको स्मरण करो।'

देवान्तकने कुपित होकर विनायकके दोनों दाँत पकड़ लिये। वह अपनी पूरी शक्तिसे दाँतोंको उखाड़ फेंकना चाहता था। वह कभी विनायकको पीछे ढकेलता और कभी विनायक उसे पीछे ढकेल देते। इस प्रकार देवान्तक बार-बार करुणासिन्धु विनायकके दाँतोंको तोड़ डालनेके लिये अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे झटका देता।

अचानक एक टूटे दाँतके साथ देवान्तक धरतीपर गिर पड़ा। तब विनायकने कुपित होकर तुरंत अपने दाँतसे उसके मस्तकपर भयानक प्रहार किया। व्याकुल देवान्तकने वज्र-कर्कश ध्वनिमें गर्जना की। उस गर्जनसे पृथ्वी, आकाश, पाताल और दसों दिशाएँ काँपने लगीं। किंतु तत्क्षण देवता, ऋषि और मनुष्य-जातिके उत्पीड़क त्रैलोक्यविजयी देवान्तकका सिर शतधा विदीर्ण हो गया। देवान्तकके पृथ्वीपर गिरते हुए शरीरसे एक ज्योति निकली और वह समस्त देवताओंके समक्ष परम प्रभु विनायकके स्वरूपमें विलीन हो गयी।

महान् दैत्य देवान्तककी मृत्यु देखते ही अवशिष्ट असुर-सेना यत्र-तत्र पलायन कर गयी।

देव-दुन्दुभियाँ बज उठीं। अन्तरिक्षसे सुगन्धित सुमनोंकी वृष्टि होने लगी। धरतीपर काशिराजकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं। दिशाएँ निर्मल हो गयीं। सुखद समीर चलने लगा। अग्निका तेज सबको मुदित करनेवाला हो गया। प्रतिकूल प्रवाहित होनेवाली सरिताएँ अनुकूल पथमें बहने लगीं।

इन्द्रादि देवगण तथा मुनियोंने प्रसन्नमन परम प्रभु विनायककी अत्यन्त भक्तिपूर्वक पूजा की और फिर उनकी स्तुति करने लगे—"प्रभो! आपने हमें देवान्तकके बन्धनसे मुक्त कर दिया। आपने देव-कार्यके लिये उपेन्द्रकी तरह पराक्रम किया है, इस कारण जगत्में आपका 'उपेन्द्र' नाम प्रख्यात होगा। अब हमलोग निर्भय होकर अपने-अपने अधिकारका उपभोग कर सकेंगे और 'स्वाहा' तथा 'वषट्कार'के स्वर पूर्ववत् घर-घरमें सुनायी देंगे।"*

---

* ... ... देवदेव विनायकम्।
विमोचिता वयं बन्धाद्देवान्तककृताद् विभो॥
उपेन्द्र इव देवेन्द्र कार्यं यस्मात् कृतं त्वया।
उपेन्द्र इति नाम्ना त्वं ख्यातिं लोके गमिष्यसि॥
वयं स्वस्वाधिकारेषु निरातङ्का वसामहे।
स्वाहास्वधावषट्कारा भविष्यन्ति गृहे गृहे॥
(गणेशपु० २। ७०। १४–१६)

इस प्रकार स्तुति करके देवताओंने विनायककी प्रदक्षिणा की, उनके चरणोंमें प्रणाम किया और उनकी आज्ञा लेकर प्रसन्नमन अपने-अपने स्थानके लिये प्रस्थित हुए। हृषीकेश-नामक प्रसिद्ध मुनि उन परमप्रभुके चरणोंमें प्रणामकर सानन्द अपने आश्रमको चले गये।

फिर पृथ्वीके राजाओंने प्रभु विनायककी पूजा की और उन्हें प्रणाम करके कहा—"प्रभो! आपने दैत्योंके भारसे आक्रान्त धरणीका उद्धार किया है। इस कारण आपका नाम 'धरणीधर' प्रसिद्ध होगा।" इस प्रकार विनायकका गुणगान कर वे अपने-अपने राज्यमें चले गये।

तत्पश्चात् सिंहारूढ़ विनायकको बालकोंके साथ क्रीड़ा करते देखकर काशिराजने अश्रुपूरित नेत्रोंसे उन्हें अपने वक्षसे लगा लिया। विनायक और नरेश दोनों आनन्दमग्न थे। नरेशके नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। उन्होंने हाथ जोड़कर गद्गद कण्ठसे कहा—'प्रभो! मेरा परम सौभाग्य है। मेरे परम पुण्य उदित हुए हैं, जो मैं ब्रह्मादिके लिये भी दुर्लभ सनातन परब्रह्मका अपने नेत्रोंसे प्रत्यक्ष दर्शन कर रहा हूँ। जो नित्य, विश्वके कारणोंके कारण, कारण-शून्य, वेदान्तवेद्य, सद्रूप, स्वयम्प्रकाश, ज्योतिकी ज्योति, नाना रूपमय, सर्वथा अरूप, पृथ्वीका भार हरण करनेवाला है, वही मनोहर तत्त्व बालरूप धारणकर मेरे आँगनमें स्वेच्छा-पूर्वक क्रीड़ा करता है। मैं अपने सौभाग्यकी प्रशंसा किस प्रकार करूँ?*'

काशिराजकी इस प्रकारकी भक्ति-गद्गद वाणी सुनकर देवदेव विनायकने उनके आँसू पोंछे और कहा—'मैं तुम्हें छोड़कर क्षणार्द्धके लिये भी अन्यत्र नहीं जाऊँगा।'

प्रभुके वचन सुन अत्यन्त आनन्दित काशिराजने अनेक उपचारोंसे उनकी भक्तिपूर्वक पूजा और बार-बार स्तुति की। वाद्य बजने लगे। देवान्तक-वधसे समस्त सैनिक आह्लादित थे। नरेशने सबको वस्त्रालंकार और ताम्बूलादि देकर प्रसन्न किया। सब अपने-अपने स्थानके लिये प्रस्थित हुए। तदनन्तर हर्षोत्फुल्ल काशिराज परमप्रभुके साथ राज-भवन पहुँचे।

त्रैलोक्यको कम्पित करनेवाले असुरोंके पराभवसे काशीमें सर्वत्र आनन्दोल्लास व्याप्त था। इस कारण वहाँ कई दिनोंतक अत्यन्त हर्षोल्लासपूर्ण हृदयसे अद्भुत महोत्सव होता रहा। सर्वत्र निरन्तर एक ही सामूहिक स्वर सुनायी देता था—'जय सिद्धिविनायक!'

दूसरे दिन काशिराजने अमात्यों, वीरों, वृद्धों एवं विद्वान् ब्राह्मणोंको बुलाकर उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम किया; फिर उनसे अपने मनकी बात कही—'महर्षि कश्यपके आश्रमसे मैं देवदेव विनायकको अपने पुत्रके विवाहके लिये ले आया था; किंतु असुरोंके उपद्रवसे यह शुभ वैवाहिक-कार्य उत्तरोत्तर टलता गया। अब प्रभुने त्रैलोक्यका भार हटा दिया है; सर्वत्र सुख-शान्ति और सुव्यवस्था होने जा रही है; अतएव अब युवराजके विवाहके सम्बन्धमें आपलोगोंके क्या विचार हैं?'

'आप सर्वथा उचित कहते हैं। विलम्ब विघ्नका कारण होता है।' अमात्यने विनयपूर्वक निवेदन किया—'भगवान् विनायकके अनुग्रहसे दुष्टोंका संहार होकर सर्वत्र शान्ति स्थापित हो गयी है; अतएव अब विवाह-कार्य अविलम्ब होना चाहिये।'

समागत वीरों, वृद्धों एवं ब्राह्मणोंने भी युवराजके शीघ्र विवाहका अनुमोदन किया। सर्वत्र लग्न-पत्रिका भेजी गयी। अभ्यागतोंके अभिनन्दनार्थ व्यापक सुव्यवस्थाके साथ मङ्गलोत्सव मनाया जाने लगा।

मगधनरेश अपनी कन्यासहित पधारे। देवदेव विनायक-की उपस्थितिमें युवराजका सविधि परिणय हुआ। काशिराज-ने ब्राह्मणोंको अत्यधिक दान दिया और सभी अभ्यागतोंको यथायोग्य रीतिसे सम्मानित किया। सभी लोग हर्षपूर्वक अपने-अपने देश चले गये। काशिराजने विविध उपचारोंसे विनायककी बार-बार पूजा की, स्तवन, परिक्रमा और प्रणाम किया एवं उन्हें अनेक प्रकारके वस्त्र, आभरण आदि बहुमूल्य वस्तुएँ अर्पित कीं।

तदनन्तर नरेशने प्रभु विनायकके आदेशानुसार साश्रुनयन उन्हें सुसज्जित रथपर बैठाया। महान् विपत्तियोंसे त्राण देनेवाले,

---

* ··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· देवं महद्भाग्यं ममोदितम्।
ब्रह्मादीनामगम्यं यत् परं ब्रह्म सनातनम्॥
तन्मे दृग्गोचरं नित्यं पूर्वपुण्यफलोदयात्।
विश्वस्य कारणानां च कारणं तद्विवर्जितम्॥
वेदान्तवेद्यं सज्ज्योतिर्ज्योतिषामपि भास्वरम्।
नानारूपमरूपं यद् बालरूपेण मे गृहे॥
क्रीडते स्वेच्छया पृथ्वीभारहारि मनोहरम्॥
(गणेशपु० २। ७०। २३—२६)

प्राणप्रिय विनायकके कश्यपाश्रम-गमनका संवाद क्षणभरमें ही विद्युत्-गतिसे सर्वत्र फैल गया। बालक, युवा, वृद्ध,—सभी स्त्री-पुरुषोंने रोते हुए उनके रथको घेरकर कहा—'देवदेव विनायक! हमें कल्पना भी नहीं थी कि आप इस प्रकार सहसा हमें त्यागकर चले जायँगे। आप हमारा मन चुराकर अब हमें जलहीन मीनकी तरह तड़पानेका कार्य क्यों करने जा रहे हैं? आपके बिना हम जीवित नहीं रह सकते।'

विनायकके साथ अनेक प्रकारकी क्रीड़ा करनेवाले बालक उनके चरणोंको पकड़कर रोने लगे।

विविध वस्त्रालंकारभूषित करुणामय विनायकके नेत्र भी सजल हो गये। रथसे उतरकर उन्होंने अत्यन्त मधुर वाणीमें सबसे कहा—'मैं यहाँ युवराजके विवाहके लिये दस-पाँच दिनोंके लिये ही आया था। वहाँ मेरे माता-पिता उदास मनसे चिन्ता करते हुए मेरी प्रतीक्षा करते होंगे। यहाँ रहकर मैं आपलोगोंका आत्मीय हो गया। आपलोगोंकी स्मृति मुझे सदा बनी रहेगी। आपलोगोंके सम्मुख मुझसे जो भी अपराध हुए हों, कृपापूर्वक मुझे अपना समझकर क्षमा करेंगे।'

समस्त बालक, युवा, वृद्ध स्त्री-पुरुषोंका समुदाय शान्त था। विनायकके एक-एक शब्द जैसे उनके तन-मन-प्राणमें ही नहीं, रोम-रोममें समाये जा रहे थे। उनके नेत्रोंसे अनवरत अश्रु-धारा बहती जा रही थी। आनन्दस्वरूप सर्वान्तर्यामी विनायकने उन प्रेममूर्तियोंसे आगे कहा—'यदि मेरी स्मृतिसे आपलोगोंकी तुष्टि न हो तो आपलोग, घर-घर मेरी मिट्टीकी प्रतिमा स्थापितकर उसकी पूजा करें।* जब भी आपपर कोई आपत्ति आयेगी, सूचना प्राप्त होते ही मैं यहाँ तुरत आ जाऊँगा; आप विश्वास करें।'

'जय विनायक!' आनन्दपूरित गगन-स्पर्शी स्वर गूँजा। परमप्रभु विनायक रथारूढ हुए। काशिराज भी उनके साथ रथपर बैठे। समस्त उपस्थित जनोंने रथकी अनेक बार परिक्रमा की।

'जय विनायक!' दिगन्तव्यापी स्वर पुनः गूँज उठा। रथ धीरे-धीरे चल रहा था और इस स्वरसे आकाश गूँजता ही जा रहा था। प्राणधन विनायकका रथ अदृश्य हुआ तो लुटे वणिक्की भाँति रोते-बिलखते, अपने आँसू पोंछते आबाल-वृद्ध नर-नारी अपने-अपने घर लौटे।

विनायक अपने माता-पिताके दर्शनकी तीव्र लालसासे आतुर हो रहे थे। रथ वायुवेगसे भागा जा रहा था। इस प्रकार वे काशिराजके साथ शीघ्र ही अपने आश्रमपर पहुँच गये। उन्होंने अपनी जननी अदितिके चरणोंमें प्रणाम किया तो उनके नेत्रोंसे अनवरत अश्रु-प्रवाह चल पड़ा। उन्होंने सिसकते हुए अपने बिछुड़े बच्चेको गले लगा लिया।

फिर विनायक दौड़कर अपने पिता महामुनि कश्यपके चरणोंपर गिर पड़े। पिताने स्नेह-गद्गद-कण्ठसे अपने आत्मजको शुभाशीर्वाद प्रदान किया। फिर विनायक समस्त आश्रमवासियोंके समीप पहुँचे। कश्यपाश्रममें सर्वत्र आनन्द छा गया।

जब काशिराजने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक भगवती अदिति और महामुनि कश्यपके चरणोंमें प्रणाम किया तो उन्होंने आशिष् प्रदान करते हुए उनसे कहा—'काशिराज! आप कुछ ही दिनोंके लिये विनायकको ले गये थे, किंतु उसे इतने दिनोंतक रखकर आपने हमें बच्चेके वियोगका अधिक कष्ट प्रदान किया। हमलोगोंका जलता हृदय आज शान्त हुआ है।'

नरेशने अत्यन्त विनयपूर्वक उत्तर दिया—'पूज्यवर! विनायकको मेरे यहाँ अवश्य देर हो गयी, पर मेरी विवशताके लिये आपलोग मुझे कृपापूर्वक क्षमा-प्रदान करें। मैं विनायकको युवराजके विवाहके लिये ही ले गया था, किंतु ये सम्पूर्ण नगरवासियोंको उत्तरोत्तर प्रेमामृत प्रदान करते थे और प्रबल असुर अनुदिन उपद्रव मचाते जा रहे थे। इन्होंने असंख्य अजेय असुर-सैनिकोंका सर्वनाश कर सर्वत्र सुख-शान्ति और सद्धर्मकी स्थापना की है। देवगण हर्षित हुए और इनकी अमित कीर्ति सर्वत्र स्थापित हुई। फिर आप्तकाम विनायक शीघ्र ही युवराजका विवाह सम्पन्न कराकर यहाँ उपस्थित हो गये।'

अपने पुत्रके पराक्रम और उसके सद्गुणोंकी प्रशंसा सुनकर कश्यप और अदिति अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने काशिराजको विविध प्रकारके भोजन और फलोंसे संतुष्टकर विश्राम करनेकी आज्ञा दी।

प्रातःकाल नरेशने कश्यप और अदितिके चरणोंमें प्रणाम कर काशी लौटनेकी आज्ञा माँगी। मुनि-दम्पतिने उन्हें आशीर्वाद दिये। राजाने पुनः-पुनः विनायकसहित कश्यप

---

* न चित्तस्य समाधानं भवेद् वै चिन्तनेन मे।
मम मूर्तिं मृदा कृत्वा पूजयन्तु गृहे गृहे॥
(गणेशपु० २।७१।३५)

और अदितिकी परिक्रमा कर उन्हे प्रणाम किया और विनायकके गुणों और प्रीतिका स्मरण करते, अश्रु पोछते वे राजधानी लौटे।

काशिराजके आगमनका स्वागत-वाद्य सुनकर नगर-निवासी दौड़ पड़े, पर जब उन्होने रथपर एकाकी नरेशको बैठे देखा तो वे विनायककी स्मृतिसे रोने लगे। उन्होंने काशिराजसे निवेदन किया—'राजन्! आप अपने साथ प्राण-प्रिय विनायकको क्यों नहीं ले आये? आप उन्हें छोड़कर अत्यन्त निष्ठुरतापूर्वक यहाँ कैसे चले आये?'

उत्तर देते समय नरेशका गला रुँध गया। अश्रु पोंछते हुए उन्होंने प्रजाजनोंसे कहा—"यहाँ आनेके पूर्व मैंने उनसे बार-बार प्रार्थना की; किंतु उन मुनि-पुत्रने कहा कि 'तुम सब मेरी मूर्ति स्थापित कर उसकी सेवा करो। मुझ सर्वान्तर्यामीसे तुम्हारा कभी वियोग नहीं होगा*।'"

तदनन्तर काशिराजने गजमुख विनायककी धातुमयी एक सुन्दर मूर्ति बनवायी, जिसके तीन नेत्र और चार भुजाएँ थीं। शूर्पाकार कर्ण थे। सर्वभूषणभूषित उक्त मूर्तिके प्रत्येक अवयव अप्रतिम, आकर्षक और मनोहर थे।

राजाने ब्राह्मणोंके द्वारा उक्त पावनतम मूर्तिकी अत्यन्त आदरपूर्वक स्थापना करायी। उस मूर्तिका नामकरण हुआ—'ढुण्ढिराज।'

अनेक प्रकारके उत्तम प्रसादसे उनकी पूजा होने लगी। ढुण्ढिराज विनायकके सर्वकामद विग्रहकी जिसने जिस कामनासे पूजा की, उसकी वही कामना पूरी हुई। इस प्रकार नाना रूप ग्रहण करनेवाले देवदेव विनायक वहाँ शोभा देने लगे।

* * *

देवदेव विनायकको आश्रमपर पधारे कुछ दिन भी नहीं बीते कि उन्होंने अपने माता-पिता अदिति और कश्यपसे कहा—'आपने पहले जिस उद्देश्यसे तपश्चर्या की थी, मैंने वह सब कार्य पूरा कर दिया। त्रैलोक्यको पीड़ित करनेवाले असुर मारे गये, देवताओं और साधुजनोंकी रक्षा हुई, उन्होंने अपना स्थान प्राप्त कर लिया। पृथ्वीका बोझ उतरा। अब मैं अपने धाम जाऊँगा।'

अलौकिक षोडशवर्षीय बालक विनायकके दृढ़तायुक्त वचन सुनते ही माता-पिताके कण्ठोष्ठतालु सूख गये। अत्यन्त दुःखी अदितिने पूछा—'देव! आपका दर्शन पुनः कब प्राप्त होगा?'

'माता! मेरा दर्शन पुनः भवानीके मन्दिरमें होगा, यह सर्वथा सत्य है।' कहते हुए परमप्रभु विनायक वहीं अन्तर्धान हो गये।

परमखिन्ना अदिति और महर्षि कश्यपने वहाँ धातुकी विनायककी श्रेष्ठ प्रतिमा स्थापित की। गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप और दीप आदिसे पूजा कर उन्हे विविध प्रकारके व्यञ्जनों और फलोंका भोग लगाया। उस प्रतिमाका नाम प्रसिद्ध हुआ—'विनायक!' उस मूर्तिके ध्यानमात्रसे परमप्रभु विनायक नित्य दर्शन देते हैं।†

* * *

परमदेव विनायकका यह पावनतम चरित्र समस्त सिद्धियोंको प्रदान करनेवाला है। इसके श्रवणसे धन, यश एवं आयुकी प्राप्ति होती है तथा इससे समस्त उपद्रवोंका नाश हो जाता है। यह मङ्गलमूर्ति विनायककी परम पुण्यमयी लीला-कथा सम्पूर्ण कामनाओंको प्रदान करनेवाली और समस्त संचित पापोंका नाश करनेवाली है।‡

जय सिद्धिविनायक!

---

* मन्मूर्तिस्थापनं कृत्वा सेवध्वं सर्व एव माम्॥
वियोगो न च सर्वान्तर्यामिणा वः कथंचन। (गणेशपु० २।७२।२७-२८)

† तस्यां मूर्तौ ध्यानमात्रेण नित्यं दर्शयते विभुः। (गणेशपु० २।७२।४१)

‡ ....चरितं ....शुभम्।
विनायकस्य देवस्य श्रवणात् सर्वसिद्धिदम्॥
धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वोपद्रवनाशनम्।
सर्वकामप्रदं सर्वपापसंचयनाशनम्॥ (गणेशपु० २।७२।४२-४३)

(२)

श्रीमयूरेश्वर

सिन्धुका जन्म

त्रेतायुगकी बात है। मैथिल देशमें गण्डकी-नामसे प्रसिद्ध एक नगर था। वहाँ चक्रपाणि-नामक सद्धर्मपरायण नरेश राज्य करते थे। वे नरेश रूप-गुणसे सम्पन्न तथा परम पराक्रमी थे। राजा परम बुद्धिमान् एवं धन-वैभवसे सम्पन्न तो थे ही, रथों, गजों, अश्वों एव पैदल वीर सैनिकोंकी अजेय वाहिनी उनके पास थी। सम्पूर्ण पृथ्वी उनके वशमें थी और सभी राजा सदा उनकी सेवाके लिये प्रस्तुत रहते थे। गौओं और गोविन्दके अनन्य भक्त नरेश प्रतिदिन नियमितरूपसे भक्तिपूर्वक पुराण-श्रवण करते थे।

उनके अत्यन्त बुद्धिमान् एव परमनीतिज्ञ दो अमात्य थे, जिनके नाम थे—साम्ब और सुबोधन। वे नरेशकी सेवाके सम्मुख अपना बहुमूल्य जीवन तृण-तुल्य समझते थे। राजा चक्रपाणिकी साध्वी पत्नीका नाम उग्रा था। उग्रा अनिन्द्य रूपवती,सरला, पतिपरायणा, सुशीला एवं बुद्धिमती थी। उसकी जीवन-चर्या सतत पतिके मनोनुकूल थी।

इस प्रकार नरेश चक्रपाणि प्रत्येक दृष्टिसे सुखी थे, किंतु एक दुःखसे वे रात-दिन दुःखी भी रहते थे। उनके कोई पुत्र नहीं था। एतदर्थ उन्होंने अनेक यज्ञ और व्रत किये, ब्राह्मणोंको श्रद्धापूर्वक पुष्कल दान दिया, किंतु इन सत्कर्मोंका कोई परिणाम नहीं निकला। सतति होती, पर काल-कवलित हो जाती। इस कारण सर्वसुख-सम्पन्न दम्पतिका हृदय अत्यन्त अशान्त और व्याकुल रहा करता था।

'पुत्रके विना राज्य व्यर्थ है।' एक दिन अत्यन्त दुःखी हो नरेशने राज्य छोड़कर वनमें चले जानेका विचार किया, किंतु उसी समय वहाँ त्रैलोक्यविश्रुत वेद-वेदाङ्ग-शास्त्रोंके वक्ता महामुनि शौनक पधारे। राजाने उनके चरणोंमें भक्तिपूर्वक प्रणाम कर उन्हें सुखद आसनपर बैठाया। फिर पाद्य-अर्घ्यादिसे महामुनिकी पूजा की और हाथ जोड़कर कहा—'आज मेरे किस महान् पुण्यका उदय हुआ है, जिससे मुझे पातकी पुरुषोंके लिये दुर्लभ, सर्वपापहर, सर्व-कामद और परम शुभद आपके चरण-कमलोंका दर्शन प्राप्त हो गया।'

'मैं तुम्हारी भक्तिसे संतुष्ट हूँ।' महामुनि शौनकने नरेशसे कहा—'राजन ! तुम निश्चिन्त हो जाओ और वन-गमनका विचार त्याग दो। मैं सत्य कहता हूँ कि निश्चय ही तुम्हें पुत्रकी प्राप्ति होगी।'

परम तपस्वी शौनक ऋषिकी अमृतमयी वाणीसे प्रसन्न होकर चक्रपाणि नरेशने ऋषि-चरणोंमें बहुमूल्य रत्न, स्वर्ण एव वस्त्रादि समर्पित किये, किंतु परम निःस्पृह महामुनिने उन्हें लौटाते हुए राजासे कहा—'समस्त प्राणियोंका यथार्थ हित चाहनेवाले वल्कलधारी विरक्त ऋषियोंको भोग-सामग्रियोंकी अपेक्षा नहीं होती। मैं तो तीर्थयात्रा करते हुए तुम्हारे यहाँ आ गया था। सच्चे मुनियोंके मनमें तो साधु-दर्शनकी लालसा तीव्र होती है। उनकी दृष्टिमें मिट्टीका ढेला और सोना समान होता है।'

महामुनिने पत्नीसहित राजा चक्रपाणिसे आगे कहा—'तुम सूर्यदेवकी उपासना करो। एक महीनेका व्रत है। व्रतारम्भ सूर्य-सप्तमीसे होता है। आभ्युदयिक श्राद्ध और मातृका-पूजनपूर्वक विघ्नेश्वर गणेशकी पूजा कर ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराना चाहिये। फिर स्वर्ण-कलशपर स्वर्णका ही सूर्य-मण्डल स्थापित कर भक्तिपूर्ण हृदयसे षोडशोपचारसे पूजा करनी चाहिये। रक्तचन्दनमिश्रित तन्दुल, रक्त पुष्प, नाना प्रकारके रत्न, विविध फल और बारह अर्घ्य प्रदान कर नमस्कार और प्रदक्षिणा करना उचित है। फिर भगवान् सूर्यदेवकी भक्तिपूर्ण हृदयसे स्तुति-प्रार्थना करनी चाहिये।

'तदनन्तर भगवान् सूर्यके चरणोंमें एक लाख बार नमस्कार स्वयं करे और दूसरोंको भी नमस्कार करनेकी प्रेरणा दे। प्रतिदिन अत्यन्त आदरपूर्वक एक लाख ब्राह्मणोंको भोजन कराकर वेदज्ञ, कुटुम्बी ब्राह्मणको प्रतिदिन एक दुधारू गाय देनी चाहिये। पत्नीसहित ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए दीन, दरिद्र, नेत्रहीन और असहाय स्त्री-पुरुषोंकी अन्नादिसे सेवा करनी चाहिये। इस प्रकार एक मासका व्रत सम्पन्न हो जानेपर तुम्हें प्रख्यात सूर्यभक्त एवं पवित्र पुत्र प्राप्त होगा।'

महामुनि शौनक विदा हुए और सहधर्मिणीसहित राजा चक्रपाणिने सूर्यदेवकी आराधना प्रारम्भ की। व्रतका सविधि पालन हो रहा था। चक्रपाणि-पत्नी उग्रा निरन्तर सूर्य-मन्त्रका जप कर रही थी। किंतु एक दिन उसने स्वप्नमें सूर्यदेवको अत्यन्त मनोहर अपने पतिके रूपमें देखा। उग्राका ब्रह्मचर्य स्खलित हो गया।

अपनी पत्नीके मुखसे उसके ब्रह्मचर्य-भङ्गका संवाद सुनकर कठोर व्रती चक्रपाणि अत्यन्त चकित हुए। उन्होंने

कहा—'मैं तो अपना प्रत्येक क्षण सूर्यदेवकी उपासनामें व्यतीत कर रहा हूँ; पर भगवान् सूर्यके अनुग्रहसे तुम्हें उत्तम पुत्र प्राप्त होगा।'

गर्भ बड़ा तेजस्वी था; उसकी वृद्धिके साथ उग्राका कष्ट बढ़ता जा रहा था। वह ताप-शमनके लिये चन्दन और कर्पूर आदि शीतल पदार्थोंका सेवन करती, किंतु जलन कम नहीं होती थी। वह प्रायः शीतल वायुका सेवन करती और अपने शरीरपर आर्द्र वस्त्र रखती, फिर भी उसकी ज्वाला दूर नहीं हो पाती थी। जलन बढ़ती ही गयी। विवश हो उसने सखियोंके साथ अपने नगरसे दूर सिन्धुके तटपर जाकर असमयमें ही गर्भको त्याग दिया और फिर उग्रा अपने भवन लौट आयी। इस समाचारको जानकर राजा उदास हो गये।

उग्रा-पुत्र अत्यन्त बलवान्, तेजस्वी और भयकर मुखवाला था। उसका भाल विशाल था और उसके तीन नेत्र थे। रक्तवर्णके केशवाले उस बालकके हाथमें त्रिशूल था। उक्त नवजात शिशुके रोदनसे त्रिभुवन काँप उठा। उस आजानुबाहु बालकसे जलजन्तु क्षुब्ध होने लगे। इस कारण समुद्रने उस बालकको राजा चक्रपाणिके यहाँ पहुँचा दिया। समुद्रने नरेशसे कहा—'राजन्! आपकी धर्मपत्नी इस तेजस्वी बालकका भार सहन नहीं कर सकीं; इस कारण उन्होंने अपना गर्भ असमयमें ही मेरे तटपर त्याग दिया। यह आपका वही तेजस्वी बालक है, जिसकी ओर देखना भी कठिन है। इसके रुदनमात्रसे त्रैलोक्य काँप उठा था।'

अपने अत्यन्त शक्तिशाली पुत्रको पुनः प्राप्तकर नरेश चक्रपाणि अत्यन्त प्रसन्न हुए। उग्राने हर्षपूर्वक बच्चेको अपनी गोदमें उठा लिया और उसे स्तन-पान कराने लगी।

आनन्दविभोर नरेशने ज्योतिषियों और ब्राह्मणोंको बुलाकर जातकर्म-संस्कार करवाया। उन्होंने ब्राह्मणोको दान देकर संतुष्ट किया। नगरमें सर्वत्र नरेशके पुत्रका उत्सव मनाया जाने लगा। सिन्धु-तटपर उत्पन्न होनेके कारण चक्रपाणि-पुत्रका नामकरण हुआ—'सिन्धु'। अमात्यने कहा—''उग्रमुद्राधारी इस उग्रा-पुत्रका नाम प्रख्यात होगा—'उग्रेक्षण''। नगरनिवासियोंने बालकको 'विप्रप्रसादन' नाम दिया।

सिन्धु तीव्रतासे बढ़ने लगा। उग्रेक्षण कुछ ही दिनोंमें इतना शक्तिशाली हो गया कि क्रीड़ा करते हुए तरुओंको उखाड़कर अपने बायें हाथसे मसल डालता था। वह अरण्यमें जाकर विशाल पर्वतों और वृक्षोंको पटककर चूर्ण कर देता था। एक बार उसने प्रवाहको अवरुद्धकर खड़े मदमत्त गजके गण्डस्थलको अपने मुष्टि-प्रहारसे ही फोड़ दिया। चीत्कार करता हुआ गज मृत्युमुखमें चला गया। उक्त अतिमानवको देखकर नगर-निवासी चकित-विस्मित हो जाते, पर राजा और रानीकी प्रसन्नताकी सीमा न रही।

सिन्धुका तप और वर-प्राप्ति

अत्यन्त शक्तिशाली विप्रप्रसादन अभी पूर्ण युवक भी नहीं हुआ था कि उसने अपने माता-पितासे कहा—'मैं वनमें तपस्या कर पृथ्वी, स्वर्ग और रसातलपर अधिकार करना चाहता हूँ। यहाँ मेरा समय व्यर्थ जा रहा है। आपलोग मुझे आज्ञा प्रदान करें।'

नरेश-दम्पतिने पुत्रोत्कर्षकी कामनासे व्रत और दान आदि पुण्यकर्म करके सिन्धुको आज्ञा दे दी। माता-पिताके चरणोंमें प्रणामकर सिन्धु अरण्यमें पहुँचा। वहाँ उसने विकसित कमलोंसे भरा और निर्मल जलसे पूरित एक सुन्दर सरोवर देखा।

सिन्धुने वहीं स्नानकर एक अंगूठेपर खड़े हो सूर्यदेवकी आराधना प्रारम्भ की। वह तेजोराशि सूर्यदेवको अर्घ्य देकर शीत, वात, उष्ण और जल-वृष्टिका असह्य कष्ट सहते हुए केवल वायुके आहारपर निरन्तर उनका मन्त्र जपता रहा। उसका अस्थिपञ्जरमात्र अवशिष्ट रह गया, तथापि वह महामानव मन्त्र-जप करता ही रहा।

इस प्रकार दो सहस्र वर्ष बीते। सहस्रांशु प्रसन्न हुए। उन्होंने उग्रेक्षणके सम्मुख प्रकट होकर कहा—'मैं तुमपर प्रसन्न हूँ; अभीष्ट वर माँग लो।'

सिन्धुने अपने सामने जगत्पति सूर्यको देखा तो वह उनके चरणोंपर गिर पड़ा। उसने गद्गद-कण्ठसे बद्धाञ्जलि स्तुति की और कहा—'प्रभो! मेरी मृत्यु न हो। आपके प्रसादसे मैं समस्त देवगणोंपर विजय प्राप्त कर लूँ। यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे यही वर प्रदान करें।'

'तुम यह अमृतपात्र ग्रहण करो।' अत्यन्त प्रसन्न हुए सूर्यदेवने सिन्धुसे कहा—'जबतक यह अमृतपात्र तुम्हारे कण्ठमें रहेगा, तबतक तुम्हें देवता, नाग, मनुष्य, पशु आदि तिर्यक्-योनिमें किसीसे दिन, रात, प्रातः या सायं किसी भी समय मृत्युका भय नहीं रहेगा। इसके निकलनेपर ही तुम्हारी

मृत्यु होगी । जिस अवतारी पुरुषके अङ्गुष्ठके नखाग्रपर कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड निवास करते होंगे, तुम उसीके द्वारा मारे जाओगे; अन्यत्र तुम्हें सर्वत्र अभय है । मेरे प्रसादसे तुम त्रिभुवन-विजयी होओगे ।'

इस प्रकार वर प्रदान कर सूर्यदेव अन्तर्धान हो गये ।

उग्रेक्षणने विधिवत् अमृत-पात्र कण्ठमें धारण किया । फिर राजभवनमें पहुँचकर जब उसने अपने माता-पिताके चरणोंमें प्रणाम किया तो उन्होंने उसे वक्षसे लगा लिया और जब उन्होंने सुना कि 'मेरे पुत्रने भगवान् अंशुमालीका साक्षात्कार-कर उनसे त्रैलोक्य-विजय और अमरणका वर प्राप्त कर लिया है', तब तो उनके आनन्दकी सीमा न रही ।

'मेरा पुत्र सिन्धु वीर, धीर, पराक्रमी, बुद्धिमान् और सूर्यप्रदत्त अद्भुत वरसे पूर्णतया समर्थ है, इस कारण अब अपना शेष जीवन वनमें तपश्चरण करते हुए व्यतीत करना ही उत्तम है ।'—इस प्रकार विचारकर नरेश चक्रपाणिने अमात्योंसे परामर्श किया और फिर उग्रेक्षणका राज्याभिषेक कर उसे सम्पूर्ण सेनाका आधिपत्य प्रदान कर दिया । इसके बाद राजा चक्रपाणि अपनी पत्नी उग्राके साथ राज्य त्यागकर अरण्यमें चले गये ।

सिन्धुका आक्रमण

अद्भुत शक्तिशाली युवक सिन्धु राजा हुआ । उसे सूर्यदेवका अमोघ वर प्राप्त तो था ही, अगणित सशस्त्र सैनिक भी उसके अधीन थे । उसने राज्य-संचालनका दायित्व अमात्योंको सौंपा और स्वयं शस्त्रसज्ज सैनिकोंके साथ दिग्विजयके लिये निकला ।

दर्पोन्मत्त उग्रेक्षण जिधर जाता, उधर ही हाहाकार मच जाता । राजे-महाराजे उसके चरणोंमें शीश झुकाते और सहर्ष अधीनता स्वीकार कर लेते थे । नियमितरूपसे समयपर कर देते रहनेका वचन देकर वे उसे बहुमूल्य उपहार प्रदान करते थे ।

धीरे-धीरे सिन्धुकी सेनामें असुरों और दैत्योंका बाहुल्य हो गया । उग्रा-पुत्र उग्रेक्षणका जीवन असुर-तुल्य था । न्याय और धर्म उसकी बुद्धिको स्पर्शतक नहीं कर पाते थे । इस कारण शक्ति-मद-मत्त सिन्धु जनपदोंको ध्वस्त करते, आबाल-वृद्ध नर-नारियोंकी हत्या करते और पृथ्वीपर रक्तकी सरिता बहाते हुए सर्वत्र अधिकार प्राप्तकर स्वर्गपर जा चढ़ा ।

वज्रायुध सुरेन्द्रने ऐरावतपर चढ़कर उग्रेक्षणका सामना किया, किंतु असुरकी वज्र-मुष्टिके प्रहारसे ऐरावतका गण्डस्थल विदीर्ण हो गया । वह रक्त-वमन करता हुआ पृथ्वीपर लोट गया । शचीपति मूर्च्छित हो गये । वे किसी प्रकार प्राण बचाकर भागे । यह दृश्य देखकर समस्त देवगण तीव्रतम गतिसे पलायित हुए ।

श्रीविष्णु बन्दी हुए

पराजित शचीपति वैकुण्ठ पहुँचे । उन्होंने श्रीविष्णुके चरणोंमें मस्तक झुकाकर निवेदन किया—'गोविन्द ! प्रबलतम राक्षस सिन्धुने अमरावतीपर अधिकार कर लिया और अनाश्रित सुर-समुदाय यत्र-तत्र छिप गया । हमारे लिये कहीं स्थान नहीं रहा । आप कृपापूर्वक असुरका मान-मर्दन कर देवताओंको उनका पद प्रदान कीजिये ।'

शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी श्रीहरि गरुड़पर विराजमान हुए । सशस्त्र देव-सैन्यके साथ गरुड़ध्वज स्वर्ग पहुँचे । उनका असुरोंसे भयानक संग्राम हुआ । देवताओंको शिथिल होते देख स्वयं श्रीविष्णु असुरपति उग्रेक्षणसे युद्ध करने लगे । माधवने अपने चक्रका प्रहार किया ही था कि दैत्यने सहस्रारपर वज्र-मुष्टिसे आघात किया । चक्र पृथ्वीपर दूर जा गिरा, तब विष्णुने असुरके मस्तकपर वज्र-तुल्य कौमोदकी गदासे प्रहार किया । महाबलशाली सिन्धुने कौमोदकी गदा पकड़ ली और उसे टुकड़े-टुकड़े करके दूर फेंक दिया ।

अत्यन्त चकित होकर नीतिज्ञ श्रीविष्णुने सिन्धुसे कहा—'दैत्यराज ! मैंने तुम-जैसा पराक्रमी असुर नहीं देखा; अतएव तुम मुझसे कोई वर माँगो ।'

आनन्द-मग्न दैत्यराजने कहा—'देवाधिदेव ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो सकुटुम्ब मेरे गण्डकी-नगरमें निरन्तर निवास करें । मुझे अन्य किसी वरकी अपेक्षा नहीं है ।'

विष्णु बोले—'अपने वचनके अनुसार मैं तुम्हारे नगरमें निवास करूँगा ।'

तदनन्तर सिन्धुने कैलास और वैकुण्ठके पदपर अपने श्रेष्ठ असुरोंको आसीन किया और स्वयं शचीपतिके सिंहासनपर आरूढ़ हुआ । फिर अमरावतीमें भी दूसरे असुरको नियुक्तकर वह महान् असुर सिन्धु रमापतिके साथ अपनी राजधानी गण्डकी-नगर लौट आया । वहाँ विविध वाद्यों और जयघोषके साथ उसका सादर अभिनन्दन हुआ ।

सिन्धुने श्रीहरिको सर्वोत्तम भवनमें ले जाकर कहा—'आप यहाँ देवताओंसहित सुखपूर्वक स्वच्छन्द विहार करें।'

इसके अनन्तर इन्द्र, वरुण, कुबेर तथा अन्य प्रमुख देवताओंने प्रभुके समीप जाकर निवेदन किया—'गरुडध्वज! यह क्या हुआ? आपका अमित पराक्रम कहाँ गया? आप मर्त्यधामके कारागारमें कैसे आ गये? जगदीश्वर! हम लोगोंकी दुर्दशा कैसे दूर होगी?'

'कालका उल्लङ्घन किसीके लिये शक्य नहीं।' लक्ष्मीपतिने देवताओंको आश्वस्त करते हुए कहा—'कालके प्रभावसे ही समस्त प्राणी उत्पन्न होते, बढते और नष्ट हो जाते हैं। तुमलोग कालकी प्रतीक्षा करो। वही काल इसे निगल जायगा।'*

सर्वाधारप्रभुके अभयद चरण-कमलोंमें प्रणाम कर देवगण चले गये। उधर हर्षमग्न विप्रप्रसादन वनमें अपने माता-पिताके समीप पहुँचा। उसने तपस्वी चक्रपाणि और उग्राके चरणोंमें प्रणाम कर उन्हें वैकुण्ठ, स्वर्ग एवं कैलाससहित सम्पूर्ण धरित्रीके विजयका विस्तृत संवाद सुनाया। पुत्रके अद्भुत पराक्रमसे अत्यन्त आनन्दित होकर माता-पिताने उसे शुभाशीर्वाद प्रदान किया।

उग्रेक्षणका शासन अत्यन्त उग्र था। अपनी इच्छाके तनिक भी विपरीत उसे कुछ भी सह्य नहीं था। वैभव-सम्पन्न सर्वथा निरङ्कुश सिन्धु उद्दण्ड तो बाल्यकालसे ही था, अब अमितशक्ति-सम्पन्न होकर उन्मत्त-सा हो गया। धर्मात्मा पिता एवं साध्वी मातासे असमयमें उत्पन्न दुष्टबुद्धि पुत्रने धर्म-विरुद्ध घोषणा कर दी—'यज्ञ, दान, स्वधा, स्वाहा और वषट्कार त्याग दिये जायँ। देवता, ब्राह्मण और गुरुओंकी कहीं पूजा न की जाय। प्रत्येक उपासना-गृहसे देव-प्रतिमाएँ हटाकर अगाध जलमें डुबा दी जायँ और उनके स्थानपर मेरी मूर्ति स्थापित कर उसे देवताओंकी तरह पूजी जाय।'

बाह्य मनसे ही सही, दुष्टतम सिन्धुका अनुमोदन करनेवाले ब्राह्मणोंके अतिरिक्त सभी ब्राह्मण† और ऋषि भागकर सुमेरुपर्वत तथा अरण्योंमें चले गये। असुरोंने तुरंत देव-प्रतिमाएँ जलमें फेंककर मन्दिरोंमें असुरराजकी मूर्ति स्थापित कर दी। त्रैलोक्यमें प्रबल दैत्यराजके शासन-कालमें समस्त धार्मिक कृत्य स्थगित हो गये। असुर-शासनमें सर्वत्र आसुरी क्रियाकी ही प्रधानता हो गयी।

देवताओंद्वारा संकष्ट-व्रत तथा वर-प्राप्ति

चिन्तित देवगण सिन्धु-वधका उपाय करनेके लिये एकत्र हुए। सहस्राक्षने कहा—'पापपरायण सिन्धुसे त्राण पानेके लिये क्या किया जाय; आपलोग अपना-अपना मत व्यक्त करें।' ब्रह्मा बोले—'सर्वसमर्थ परमात्मा ही कल्याण करेंगे; अतएव हमलोग उन्हें ही प्रसन्न करें। वे ही सर्वात्मा प्रभु असुरका वध कर हम सबको पूर्व-पद प्रदान करेंगे।' वहाँ उपस्थित देवगुरु बृहस्पतिने कहा—'वे परम प्रभु स्वल्प-पूजासे ही शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं।‡ अतएव उन असुर-संहारक परमेश्वरकी हमलोग शीघ्र स्तुति-प्रार्थना करें।'

'हमलोग अपने पदकी प्राप्तिके लिये किस देवताकी स्तुति करें?' देवताओंके इस प्रश्नका उत्तर बृहस्पतिने इस प्रकार दिया—'जो प्रभु सृष्टि, पालन एवं संहार करते हैं, जो अनादि, बीजरूप, नित्य, ब्रह्ममय, ज्योतिःस्वरूप, शास्त्रों एवं मन-वाणी आदिसे सर्वथा अगोचर, निर्गुण, अनन्तरूप-मय एवं एकरूप हैं और जिनके नाम-स्मरणमात्रसे मनुष्यकी कामना-पूर्ति हो जाती है, वे परम प्रभु विनायक पूजा करनेसे ही संतुष्ट होकर दुःख-निवारण कर देते हैं। अतएव आपलोग अपनी सिद्धिके लिये उन्हींकी आराधना करें।'

बृहस्पतिने सुर-समुदायसे आगे कहा—'माघ मासका कृष्णपक्ष प्रारम्भ हो चुका है। इस पक्षकी मङ्गलवारयुक्त

---

* कालो हि दुरतिक्रमः।
कालेन जायते सर्वं ह्रसते वर्धतेऽपि वा॥
तस्मात् कालं प्रतीक्षध्वं काल एनं ग्रसिष्यति।
(गणेशपु० २।७७।२१-२२)

† यहाँ एक विचारणीय प्रश्न है कि 'साम्राज्यवादी असुर ब्राह्मणोंका वर्चस्व कम करनेकी खटपट क्यों करते हैं?' ब्राह्मण ज्ञानसम्पन्न होनेके कारण अनेक प्रयत्नोंसे ऐसे दुष्ट राजाको गद्दीसे उतरवा देते हैं, जनतामें क्रान्तिके विचार फैलाते हैं और अत्याचार सहन करके चुप नहीं बैठते हैं; इसीलिये अत्याचारी सम्राट् ब्राह्मणोंको नहीं चाहता। इन्हीं नियमोंका अनुसरण करके सम्राट् सिन्धु ब्राह्मणोंको सताने लगा। —पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

‡ स्वल्पया पूजया सद्यः प्रसन्नो जायते विभुः।
(गणेशपु० २।७८।५)

चतुर्थी तिथि उन विघ्नेश्वरको अत्यधिक प्रिय और विघ्नोंका निवारण करनेवाली है। अतएव आपलोग उन सिंहवाहन दशभुज विनायककी पूजा-प्रार्थना करें। वे करुणासिन्धु अवतरित होकर असुरका वध करेंगे। इससे धराका भार उतरेगा और आपलोगोंके पद भी पुनः प्राप्त हो जायँगे।'

देवगुरुके वचन सुन इन्द्र, वरुण, कुबेर, मधुसूदन, गुरु, मङ्गल, चन्द्रमा, यम, अग्नि, वायु आदि सभी देवता पञ्चामृत, गन्ध, पुष्प, शमी, दूर्वा, पल्लव, वन्यफल तथा अन्य नाना प्रकारके फल और मृत्तिका लेकर गण्डकी नदीके तटपर पहुँचे। वहाँ उन्होंने वृक्षोंको तोड़कर मण्डपका निर्माण किया। कदली-स्तम्भ एव लताओंसे आच्छादित वह भव्य मण्डप अत्यन्त शीतल था।

देवताओंने स्नानादिसे निवृत्त होकर सिद्धि-बुद्धियुक्त सिंहारूढ दशायुधधारी दशभुज, गजमुख, किरीट-कुण्डल-मण्डित एव वस्त्रालंकारविभूषित विनायककी मूर्ति मण्डपमें विधिपूर्वक स्थापित की और अत्यन्त भक्तिपूर्वक पञ्चामृत, शुद्ध जल, वस्त्र, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नाना प्रकारके नैवेद्य, विविध प्रकारके फल और मङ्गल-आरती आदिसे उनकी षोडशोपचार-पूजा की।

तदनन्तर देवगण विघ्नविनाशन प्रभुकी तुष्टिके लिये उनके मन्त्रका जप करने लगे। सूर्यास्तके समय उन्होंने सन्ध्या की; फिर इस प्रकार उन परम प्रभुकी स्तुति-प्रार्थना की—

दीननाथ दयासिन्धो योगिहृत्पद्मसंस्थित।
अनादिमध्यरहितस्वरूपाय नमो नमः॥
जगद्भास चिदाभास ज्ञानगम्य नमो नमः।
मुनिमानसविष्टाय नमो दैत्यविघातिने॥
त्रिलोकेश गुणातीत गुणक्षोभ नमो नमः।
त्रैलोक्यपालन विभो विश्वव्यापिन् नमो नमः॥
मायातीताय भक्तानां कामपूराय ते नमः।
सोमसूर्याग्निनेत्राय नमो विश्वम्भराय ते॥
अमेयशक्तये तुभ्यं नमस्ते चन्द्रमौलये।
चन्द्रगौराय शुद्धाय शुद्धज्ञानकृते नमः॥

(गणेशपु० २। ७८। २३-२७)

'हे दीननाथ! हे दयासिन्धो! हे योगियोंके हृत्कमलपर निवास करनेवाले प्रभो! आदि, मध्य और अन्तसे रहित स्वरूपवाले आपको नमस्कार है। जगत्प्रकाशक! चिदाभास और ज्ञानगम्य प्रभु आपको नमस्कार है। मुनियोंके मनमें प्रविष्ट, दैत्योंका विनाश करनेवाले देव! आपको नमस्कार है। हे त्रैलोक्यके स्वामी! हे गुणातीत! हे गुण-क्षोभक! आपको नमस्कार है। हे त्रिभुवन-पालक! हे विश्वव्यापिन् विभो! आपको नमस्कार है। हे मायातीत! हे भक्तोंकी कामना-पूर्ति करनेवाले प्रभो! आपको नमस्कार है। चन्द्र, सूर्य और अग्नि जिनके नेत्र हैं और जो विश्वका भरण करनेवाले हैं, उन्हें नमस्कार है। अमित-शक्तिसम्पन्न आप चन्द्रमौलिको नमस्कार है। चन्द्रोपम गौर, शुद्ध स्वरूप एवं शुद्ध ज्ञान प्रदाता आपको नमस्कार है।'

देवगण भक्तिपूर्वक स्तवन कर ही रहे थे कि उनके समक्ष एक दिव्यतम तेज प्रकट हुआ। उस तेजके प्रभावसे सुरोंकी आँखे चौंधिया गयीं। वे अत्यन्त विस्मित हुए ही थे कि उनके सम्मुख सौम्य तेजयुक्त करुणामय सिंहवाहन विनायक प्रकट हो गये। वे अद्भुत वस्त्राभूषणोंसे विभूषित थे। देवताओंने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहने लगे—'गुरुके कथनानुसार हम जिस मन-वाणीसे अगोचर प्रभुकी पूजा कर प्रार्थना कर रहे थे, उन दयामय विनायकने प्रत्यक्ष दर्शन देकर हमें कृतार्थ कर दिया। हम निश्चय ही सौभाग्यशाली हैं।'

परम प्रभु विनायक बोले—"देवताओ! तुमलोगोंके सकष्टी-व्रतसे मैं संतुष्ट हुआ। तुम्हारा स्तवन 'सकष्टहर' नामसे प्रसिद्ध होगा। जो पवित्र होकर प्रतिदिन इसका पाठ करेंगे वे निर्विघ्न सांसारिक सुखोंका उपभोग करते हुए अन्त-समयमें मोक्ष प्राप्त कर लेंगे।'

देवदेव विनायकने देवताओंसे आगे कहा—"जिस प्रकार मैंने महामुनि कश्यपकी परम साध्वी पत्नी अदितिके गर्भसे जन्म लिया था, उसी प्रकार पुनः धराधामपर अवतरित होकर सिन्धुदैत्यका वध और तुम सबका अपना-अपना पद प्रदान करूँगा। इस अवतारमें मेरा नाम 'मयूरेश्वर' प्रसिद्ध होगा।"

इतना कहकर परम प्रभु विनायक अन्तर्धान हो गये। देवगण आनन्दमग्न थे।

मयूरेश्वर—शिवप्रियाके अङ्कमें

'प्रबलतम सिन्धुने देवताओंपर विजय प्राप्त कर ली।'—यह संवाद सुनते ही भूतभावन भगवान् शंकर अपनी सहधर्मिणी पार्वती और सात करोड़ गणोंके साथ त्रिसंध्या-क्षेत्रमें चले गये। वहाँ भयाक्रान्त गौतमादि ऋषिगण

अपने यज्ञादि कर्म त्यागकर निवास कर रहे थे। अत्यन्त खिन्न ऋषियोंने भुजगेन्द्रहार शिवका दर्शन किया तो अत्यधिक प्रसन्न हुए और उन्होंने भक्तिपूर्वक त्रिपुरारिकी पूजा एवं स्तुति की। फिर उन्होंने सघन फलद वृक्षोंके मध्य एक निर्मल जलपूरित सरोवरके तटपर उनके लिये परम मनोहर, सुखद आश्रमका निर्माण किया और कहा—'सर्वसमर्थ करुणामय आशुतोष! आप यहाँ निवासकर हमें सेवाका अवसर प्रदान करते हुए हमारी रक्षा करें।'

देवदेव महादेव गङ्गा, गौरी और गणोंके साथ वहाँ रहने लगे।* चराचरपति त्रिनयनकी उपस्थितिमें गौतमादि ऋषिगण निश्चिन्त होकर तप करने लगे। गङ्गा और गौरीकी सहायतासे चन्द्रमौलि भी तपश्चरण-निरत हुए।

'प्रभो! आप तो स्वयं सृष्टिके पालन एवं संहारकर्ता तथा अनन्तानन्त-कोटि-ब्रह्माण्डोंके नायक हैं; फिर आप किसे प्रसन्न करनेके लिये तप करते हैं?' शिवप्रियाने एक दिन अवसर देखकर अपने प्राणपतिसे प्रश्न किया।

"निष्पापे! मैं उन अनन्त महाप्रभुकी प्रसन्नताके लिये तप करता हूँ, जिनकी शक्ति, गुण और कर्म, सभी अनन्त हैं। अनन्तानन्त ब्रह्माण्ड उनके प्रत्येक रोममें निवास करते हैं। वे परम प्रभु समस्त गुणोंके ईश्वर होनेके कारण 'गुणेश' कहे जाते हैं। मैं उन्हीं गुणेशका निरन्तर ध्यान करता रहता हूँ" ।—शूलपाणिने उत्तर दिया।

'प्रभो! आप कृपापूर्वक यह बतानेका कष्ट करें कि वे प्रभु मुझपर कैसे प्रसन्न होंगे? मुझे उनका प्रत्यक्ष दर्शन किस प्रकार हो सकेगा?' गौरीने जिज्ञासा की।

'निष्ठापूर्वक आराधना एवं तपश्चरणके बिना उनका दर्शन कैसे हो सकेगा?'—कहते हुए भगवान् शम्भुने शिवाको गणेशके एकाक्षरी-मन्त्र (गं) का उपदेश दिया और फिर तप करनेकी विधि बताकर बोले—'इस प्रकार बारह वर्ष तपश्चरण करनेपर निश्चय ही तुम्हें देवदेव गुणेशका साक्षात्कार हो जायगा।'

गौरीने प्रसन्न मनसे अपने जीवन-धन शूलपाणिके चरणोंमें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और उनकी आज्ञा प्राप्तकर तपश्चरणार्थ जीर्णापुरसे उत्तर मनोहर लेखनाद्रिपर चली गयीं।

वहाँ एक रमणीय स्थानपर भगवती पार्वती पद्मासन लगाकर बैठ गयीं और फिर गणेशका ध्यान करते हुए उनके एकाक्षरी मन्त्रका जप करने लगीं। वे जल, फल, मूल, कन्द और पर्ण तो लेती ही नहीं थीं, वायुका भी आहार नहीं करती थीं। इस प्रकार गौरी शुष्ककाष्ठ-तुल्य हो बारह वर्षतक कठोर तप करती रहीं। गुणवल्लभ गुणेश प्रसन्न होकर उनके समक्ष प्रकट हुए।

वे मनोहर किरीट और कुण्डल धारण किये थे। उन दशभुज प्रभुके मस्तकऊपर चन्द्रमा सुशोभित था। उनके गलेमें मोतियोंकी माला अत्यन्त सुन्दर प्रतीत हो रही थी। उन्होंने अक्षमाला, कमल और कस्तूरी-तिलक धारण कर रखे थे। उनके मध्य-भागमें नारायण-मुख, दक्षिण-भागमें शिव-मुख एवं वाम-भागमें ब्रह्ममुखके दर्शन होते थे। कुन्द और कर्पूर-तुल्य गौर प्रभु शेषनागपर पद्मासन लगाये बैठे थे। उन्होंने परम तपस्विनी शिव-प्रियासे कहा—'जगदीश्वरी! मैं तुम्हारे अद्भुत तपसे अतिशय प्रसन्न हूँ। तुम अभीष्ट वर माँगो। तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है।'

त्रिमूर्ति गुणेशके दर्शन कर उमाने अत्यन्त प्रसन्न हो उनके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर वे बोलीं—'आपके दर्शनसे मेरा तप सफल हुआ। आपकी तुष्टिके अतिरिक्त मुझे अन्य कुछ भी अभीष्ट नहीं; तथापि आपकी आज्ञाका पालन करनेके लिये मैं वरकी याचना करती हूँ कि आप मेरे पुत्ररूपमें प्रकट हों, जिससे मुझे निरन्तर आपके दर्शन, सेवन और पूजनका फल प्राप्त होता रहे।'

'निश्चय ही मैं आपके पुत्ररूपमें प्रकट होकर आपकी तथा जगत्की कामना पूर्ण करूँगा।' इतना कहकर देवदेव गणेश अन्तर्धान हो गये।

'क्या मैंने क्षणभर अत्यन्त सुखद स्वप्न देखा है?' त्रिभुवनपति गणेशके अद्भुत मनोरम दर्शनसे वञ्चित पार्वती व्याकुल हो गयीं। वहाँ उन्होंने एक सुन्दर मन्दिरका निर्माण कराया। उसमें चार द्वार थे। उस मन्दिरमें उन्होंने गणेशकी सुन्दरतम प्रतिमा स्थापित कर उनकी पूजा की। प्रतिमाका नामकरण किया—'गिरिजात्मज।'

'यह पवित्र स्थल सिद्धिक्षेत्रके नामसे प्रख्यात होगा और यहाँ अनुष्ठान करनेसे निस्संदेह सिद्धि प्राप्त होगी।' सर्वेश्वरीने कहा—और फिर वे गणेशकी पुनः पूजा, प्रदक्षिणा और प्रणाम कर अपने प्राणधन शिवके समीप लौट आयीं।

---

* तत्रावसन्महादेवो गङ्गागौरीगणैर्युतः।
(गणेशपु० २। ७९। १६)

प्राणप्रियाके वचन सुन प्रोत्फुल्लनयन शिवने प्रसन्नतापूर्वक कहा—'देवि ! तुमने जिनका दर्शन किया है, वे गुणेश तुम्हारे यहाँ अवतरित होंगे। वे महादैत्यका वध कर पृथ्वीका भार उतारेंगे और इन्द्रादि लोकपालोंको उनका अधिकार प्रदान कर देंगे।*

भगवान् शंकर तो प्रसन्न थे ही, जगज्जननी शिवा भी अत्यन्त आह्लादित हुईं। 'शिवप्रिया भगवती पार्वतीकी कोखसे धर्माभ्युत्थानार्थ अनन्त ब्रह्माण्डपति साक्षात् गणेश अवतरित होंगे।'—यह समाचार तुरंत ऋषि-मुनियोंके सहस्रों आश्रमोंमें पहुँच गया। देवता, ऋषि एवं ब्राह्मण-प्रभृति सद्धर्मपरायण नर-नारी अत्यन्त प्रसन्न होकर देवदेव गणेशकी पूजा-प्रार्थना करते हुए निरन्तर उनके नामका जप करने लगे और यही क्रम भगवती पार्वतीका भी था। उनके नेत्रोंमें निरन्तर गणेशकी दिव्य मञ्जुल मूर्ति नाचती रहती थी। इस प्रकार गणेशके ध्यान एवं उनके आराधनमें कुछ समय व्यतीत हुआ।

भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थी आयी। उसमें चन्द्रवार, स्वाती-नक्षत्र एवं सिंहलग्नका योग। पाँच शुभग्रह एकत्र थे। महिमामयी देवी पार्वतीने गणेशकी षोडशोपचारसे पूजा की। वे भक्तिपूर्वक प्रार्थना कर ही रही थीं कि उनके सम्मुख परम तेजस्वी, असंख्य मुख, असंख्य नेत्र, असंख्य कर्ण, असंख्य नासिका और असंख्य हस्त-पदयुक्त महामहिम सच्चिदानन्दघन प्रकट हुए।

'शुभे! आपने जिसके लिये कठोर तप किया था और जिसकी निरन्तर आराधना कर रही हैं, मैं वही गणेश आपके घर अवतरित हुआ हूँ।'

परम प्रभुकी अमृतमयी वाणीसे आप्यायित होकर महाभाग्यशालिनी गौरीने निवेदन किया—'प्रभो! आप अपने इस विराट् रूपको त्यागकर मुझे पुत्रका सुख प्रदान करें।'

पार्वतीके सम्मुख स्फटिकमणि-तुल्य षड्भुज त्रिनयन शिशु क्रीड़ा करने लगा। उसकी नासिका सुन्दर थी। उसके मुखारविन्दकी शोभा अवर्णनीय थी और उसका वक्षःस्थल विशाल था। उसके चरण-कमलोंमें ध्वज, अङ्कुश, और ऊर्ध्वरेखायुक्त कमल आदि परम शुभ चिह्न थे। उसका मङ्गल-वपु कोटि-कोटि शशिके तुल्य था।

पार्वतीनन्दनके प्रथम शब्दसे ही प्रकृति मनोरम हो गयी। शुष्क वृक्ष हरित-पत्रयुक्त हो गये। दुन्दुभि बज उठी। आकाशसे सुमन-वृष्टि होने लगी। ऋषियोंके आश्रमोंमें हर्षकी लहर दौड़ गयी।

उधर गणोंसे संवाद पाकर प्रसन्न शिव पार्वतीके समीप पहुँचे। वे स्फटिक-सदृश, कुन्दधवल, कञ्जलोचन बालकका अनिर्वचनीय सौन्दर्य देखकर चकित हो गये। कुछ क्षण बाद उन्होंने गिरिजासे कहा—'यह बालक नहीं, यह तो अनादिसिद्ध, जरा-जन्मशून्य, लीलापूर्वक शरीर धारण करनेवाला, स्वप्रकाश, गुणातीत, शुद्धसत्त्वस्वरूप, समस्त प्राणियोंका स्वामी, अखिल भुवनपति, मुनियोंका ध्येय, सर्वाधार, सर्वभूतमय और सब कुछ प्रदान करनेवाला परमात्मा है।'

पार्वतीवल्लभने शिशुको अङ्कमें ले लिया और उसे आशीर्वाद प्रदान करते हुए पार्वतीकी गोदमें देकर पुनः उन्होंने कहा—'देवि! तुमने कठोर तपसे जिस प्रभुका साक्षात्कार किया था, वे ही गुणातीत परमात्मा गणेश तुम्हारे पुत्ररूपमें प्रकट हुए हैं।'*

कैलासपतिने बालकका सविधि जातकर्मादि संस्कार करवाया। उसके निमित्त अनेक प्रकारके दान दिये। माता पार्वतीने शिशुके मुखमें स्तनाग्र लगा दिया। अनादिसिद्ध बालक जगज्जननीके पवित्रतम अङ्कमें सुखपूर्वक लेटकर दुग्धपान करने लगा।

ज्योतिषियोंने बालकके जन्म-कालके अनुसार अद्भुत फल बतलाया—'यह अत्यन्त पराक्रमी बालक अपने भक्तों एवं सम्पूर्ण जगत्को सुख प्रदान करनेवाला होगा।'

भगवान् शंकर, माता पार्वती एवं शिवगणोंमें ही प्रसन्नता नहीं थी, ऋषियों, ऋषि-पत्नियों एवं उनके बालकोंके मनमें आनन्दकी लहर दौड़ रही थी। सम्पूर्ण दण्डकारण्यमें सुगन्धित पवनके साथ जैसे मदमत्त आनन्द डोल रहा था—उन्मुक्त नर्तन कर रहा था।

---

* साक्षाद्दृष्टो गुणेशस्ते गृहे सोऽवतरिष्यति ॥
हनिष्यति महादैत्यं भूभारं च हरिष्यति ।
इन्द्रादिलोकपालानां स्वपदानि प्रदास्यति ॥
(गणेशपु० २ । ८० । ११-१२)

* परमात्मा गुणातीतः पुत्रतां ते समागतः ।
पराऽनुष्ठानतो देवि साक्षाद्दृष्टो विभुस्त्वया ॥
(गणेशपु० २ । ८२ । ८)

पार्वतीके मङ्गलमय दिव्य पुत्र-जन्मके अवसरपर दस दिनोंतक शिवके आश्रममें ही नहीं, समस्त ऋषियोंके यहाँ मङ्गल-महोत्सव मनाया गया। सर्वत्र विनायककी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजा-स्तुति हुई और निरन्तर नाम-जप होता रहा। शिव और शिवा प्रतिदिन सहस्रों ब्राह्मणोंको भोजन कराते और उन्हें विविध प्रकारके दान देते रहे।

ग्यारहवें दिन समस्त गणक और ऋषि-समुदाय एकत्र हुआ। बालकका नामकरण हुआ—"यह बालक सर्वेश्वर एवं समस्त गुणोंका आगार है। यह समस्त विघ्नोंका हरण करनेवाला, सर्वारम्भमें प्रथम-पूज्य होगा, इस कारण इसका नाम 'गुणेश' होना चाहिये।"

शम्भुने सर्वविधि सत्कार कर सबको संतुष्ट किया। ऋषिवृन्द बालकको शुभाशिष् प्रदान करते हुए प्रसन्न मनसे अपने-अपने स्थानके लिये प्रस्थित हुए।

चिन्तित सिन्धु

गुप्तचरोंने सिन्धुके समीप पहुँचकर निवेदन किया—'दैत्यराज! दण्डकारण्यके त्रिसन्ध्या-क्षेत्रमें शिव अपने कोटि-कोटि गणोंके साथ निवास करते हैं। वहाँ शिवप्रिया पार्वतीने कठोर तपके द्वारा एक अलौकिक शक्तिशाली पुत्र प्रसव किया है। सहस्रों ऋषियोंका विश्वास है कि वह बालक असुरोंका संहार करनेमें समर्थ होगा। शिवगणों और ऋषियोंका आत्मबल अत्यधिक बढ़ गया है। वे बालककी रक्षामें प्राणपणसे तत्पर हैं।'

उसी समय आकाशवाणी हुई—'असुरराज! तेरा वध करनेवालेने जन्म ले लिया है। तू सावधान हो जा।'

'यह क्रूर वचन कौन बोल रहा है?' कहते हुए सिन्धु मूर्च्छित हो गया। कुछ देर बाद सचेत होकर उसने कहा—'सामान्य मशक विशाल गजका वध कैसे कर सकता है? मैंने करोड़ों देवताओंको क्षणार्द्धमें ही पराजित कर विष्णुको बंदी बना लिया है, यह क्षुद्र बालक तो सर्वथा नगण्य है।'

किंतु सिन्धु मन-ही-मन भयाक्रान्त हो गया था। उसके वीर असुरोंने कहा—'असुरराज! आप अमरण-वरप्राप्त सर्वथा अजेय हैं। आपकी मृत्यु कैसे हो सकती है! आप हमें आज्ञा प्रदान करें। हम उक्त आश्रममें जाकर अवसर देखते ही बालकको यम सदन भेज देंगे।'

सिन्धुकी चिन्ता कम हुई। उसने असुरोंकी प्रशंसा कर उन्हें पुरस्कृत किया। फिर उसने शिवा-पुत्रका संहार कर देनेके लिये वीराग्रणी असुर गुप्तचरोंको आज्ञा दी। सिन्धुके गुप्तचर मुनियोंके वेषमें त्रिसंध्या-क्षेत्रमें यत्र-तत्र निवास कर अवसरकी प्रतीक्षा करने लगे।

हिमगिरिका आगमन और उनकी सम्मति

बालक गुणेश उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। दौहित्र-जन्मका संवाद प्राप्तकर प्रसन्नमन हिमगिरि शिवके आश्रम पहुँचे। उन्होंने बालकको गोदमें लेकर उसे बहुमूल्य रत्नाभरण आदि उपहार दिये और बालकका नाम रखा—'हेरम्ब'। उसके लक्षणोंको देखकर उन्होंने अपनी प्राणप्रिया पुत्रीको समझाया—'बेटी! यह असाधारण बालक सर्वसमर्थ है। यह निश्चय ही असुरोंका विनाश करके देव-जगत्‌का हित-साधन करेगा; धरणीका बोझ हल्का करेगा, किंतु इसपर कुटिलतम असुरोंकी क्रूर दृष्टि है। खूब सावधानीसे पालन करते हुए इसकी सुरक्षाका ध्यान रखना।'

हिमगिरि शिव और पार्वतीको आशीर्वाद देते हुए उनकी अनुमतिसे प्रसन्नतापूर्वक चले गये।

गुणेशका मुक्ति-वितरण

एक दिनकी बात है। समस्त ऋषियोंके अन्यतम प्रीति-भाजन हेरम्ब बाहर क्रीड़ा कर रहे थे कि सहसा गृध्ररूपधारी एक भयानक असुरने उन्हें अपनी चोंचमें पकड़ लिया और आकाशमें अत्यन्त ऊँचे उड़ चला। जब पार्वतीने पुत्रको नहीं देखा तो वे व्याकुल होकर उसे इधर-उधर ढूँढ़ने लगीं।

प्राणप्रिय हेरम्बको कहीं न देखकर पार्वती अत्यन्त दुःखी थीं और जब उन्होंने आकाशमें विशाल गृध्रके मुखमें अपने बालकको देखा तो वे सिर धुन-धुनकर करुण-विलाप करने लगीं।

सर्वात्मा हेरम्बने माताकी व्याकुलता देखकर मुष्टि प्रहारमात्रसे ही गृध्रासुरका वध कर दिया। चीत्कार करता हुआ विशाल असुर पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग क्षत-विक्षत हो गये। हेरम्ब सर्वथा सुरक्षित थे। उन्हें खरोंचतक नहीं लगी थी।

माता पार्वतीने दौड़कर बच्चेको उठा लिया और देवताओंको मनाती हुई उसे दुग्धपान कराने लगी।

* * *

संध्याकाल था। माता पार्वती हेरम्बको पालनेमें लिटाकर लोरी सुना रही थीं। उसी समय क्षेम और कुशल-नामक दो महाभयानक असुर पार्वतीके आश्रममें प्रवेश कर गये। उन्होंने बालकको मारनेका प्रयत्न किया तो पार्वती चिल्ला उठीं; किंतु तबतक बालकके पदाघातसे ही उन असुरोंका हृदय विदीर्ण हो गया। वे रक्त-वमन करते हुए भागे, किंतु कुछ ही दूर जाकर गिर पड़े। फिर उठ नहीं सके। गणेशने उन्हें मोक्ष प्रदान किया।

* * *

एक दिन माता पार्वती सखियोंके साथ मन्दिरमें पूजा करने गयीं। हेरम्ब मन्दिरके बाहर क्रीड़ा कर रहे थे। उसी समय क्रूर-नामक महाबलवान् असुर ऋषि-पुत्रके वेषमें आकर उनके साथ खेलने लगा। वह हेरम्बको मार डालनेके लिये कभी उनके केश पकड़कर धरतीपर पटकना चाहता तो कभी गला दबानेका प्रयत्न करता। सर्वज्ञ हेरम्ब उसका कण्ठ पकड़कर दबाने लगे।

'अरे! मुनिपुत्र मरा तो पाप लगेगा।' माता पार्वतीकी दृष्टि पड़ी तो वे दौड़ीं। तबतक असुर मुक्त हो चुका था। उसके नेत्र बाहर निकल आये थे। असुरकी विशाल मृतदेह देखकर काँपती हुई पार्वतीने बालकको अङ्कमें उठा लिया।

* * *

गौतमादि ऋषिगण, शिवगण, ऋषि-पत्नियाँ और पार्वतीकी सहचरियोंके साथ मयूरेशके उपवेशन-संस्कारका आयोजन किया गया था। गणेश-पूजन और पुण्याहवाचन हुआ। मयूरेशको दिव्य वस्त्र और अलंकार पहनाये गये थे। देवताओंने विविध प्रकारके रत्न प्रदान कर मयूरेशकी पूजा की। देवताओं और ऋषियोंके साथ ब्राह्मणोंने उन्हें आशीर्वाद दिया।

इसी बीच सिन्धु-दैत्यका कुटिलतम प्रचण्ड असुर व्योम आश्रमके सम्मुख वृक्षपर बैठकर उसे हिलाने लगा। प्रबल झंझावातमें किसीको कुछ सूझ नहीं रहा था; पर जब उपद्रव शान्त हुआ तो पार्वतीसहित सबने रक्त-पङ्कमें पड़े हुए महान् व्योमासुरका शव देखा। व्याकुल पार्वती सिद्धिदाताको अङ्कमें लेकर उनके मस्तकपर प्रेमपूर्वक हाथ फेरती हुई स्तन-पान कराने लगीं।

मरीचिके वचनोंका स्मरण कर देवदेव महादेवने कहा—"जिसकी रक्षा ईश्वर करता है, उसे मारनेका प्रयत्न करनेवाला दीपकपर दौड़े पतंगके तुल्य स्वतः जल मरता है।"

तदनन्तर देवता, मुनि और मुनि पत्नियाँ अपने आश्रमको गयीं। कुछ लोगोंने बालकके प्रति शुभकामना व्यक्त करते हुए शिव-प्रियासे कहा—'माता! तू धन्य है! इस बालककी असुरोंसे रक्षा करती रहना। निश्चय ही दुष्टोंका नाश होता है; साधुजनोंकी हानि नहीं होती।'

* * *

व्योमासुरके एक अत्यन्त दुष्टा, विकटानना भगिनी थी। उसके केश, नासिका, ओष्ठ, दाँत, मुख और स्तनादि सभी भयानक थे। वह क्षुधार्त होनेपर महाबलवानोंको भी भक्षण कर जाती थी। उस भयावनी व्योमासुर-भगिनीका नाम था—'शतमाहिषा।'

शतमाहिषा अपने भाईकी मृत्युसे अत्यन्त दुःखी हुई। वह क्रोधसे काँपने लगी। उस मायाविनीने षोडशवर्षीया अनुपम लावण्यवती स्त्रीका वेष बनाया। वह सीधे पार्वतीके पास पहुँचकर उनके चरणोंपर गिर पड़ी और उनकी प्रशंसा करने लगी।

परम सरला जननी पार्वतीने उसे भोजनादिसे संतुष्ट किया और रात्रिमें अपने ही समीप पर्यङ्कपर सुलाया। सर्वज्ञ हेरम्ब मायाविनी राक्षसीकी प्रत्येक गति-विधि जानते थे। शतमाहिषाने उन्हें स्पर्श किया ही था कि केवल पाँच मासके हेरम्बने अपने नन्हे हाथोंसे उसकी नासिका और कान पकड़ लिये।

राक्षसीके लिये बालक पर्वत-तुल्य और उसके सुकोमल हाथ वज्र-सदृश प्रतीत हुए। वह छटपटाती हुई चिल्लाने लगी। शतमाहिषा बालकको जितना छुड़ानेका प्रयत्न करती, बालकके वज्रहस्त उसे और अधिक जकड़ते जा रहे थे।

पार्वती और उनकी सखियाँ दौड़ीं। राक्षसीकी नासिका और कान बालकसे छुड़ानेका उनका प्रयत्न भी विफल रहा। अन्ततः चीत्कार करती हुई राक्षसी उछलकर धरतीपर गिर पड़ी। सहचरियोंने मृत देहकी ओर ध्यानपूर्वक देखा तो घबरा गयीं। निश्चय ही यह मायाविनी भयानक राक्षसी गुणेशका प्राण-हरण करना चाहती थी।

शिवगण उक्त राक्षसीका शव ले जाकर दूर फेंक आये।

इस प्रकार असुरराज सिन्धुके भेजे हुए कमठ, तल्प, दुन्दुभि, अजगर, शलभ, नूपुर, कूट, मत्स्य, शैल, कर्दम,

खड्ग, छाय और चंचल आदि अनेक बलशाली तथा मायावी असुर मयूरेशको मारने त्रिसंध्या-क्षेत्र पहुँचे। उन्होंने एक-से-एक माया रची और बालकको मार डालनेका भरपूर प्रयत्न किया; किंतु मायापति मयूरेशके सम्मुख उनकी एक न चली। उनका भौतिक कलेवर तो नष्ट हो गया, पर वे परमोदार मुक्तिदाता प्रभु मयूरेशके कर-कमलोंका स्पर्श पाकर जन्म-जरा-मृत्युसे सदाके लिये मुक्त हो गये।

मयूरेशने पाँचवें शरच्चन्द्रका दर्शन किया।

मयूरेशकी बाल-लीला

मयूरेश ऋषि-पुत्रोंके साथ विविध प्रकारकी बाल-क्रीड़ाएँ करते। उन भाग्यवान् बालकोंके साथ वे नाचते, गाते और अनेक प्रकारके खेल खेलते थे।

एक दिनकी बात है, गुणेश शिशुओंके साथ क्रीड़ा करते हुए दूर निकल गये। निश्चिन्त शिशु क्रीड़ामें संलग्न थे। मध्याह्न हो गया। उन्हें भूख लगी। ईशानन्दन सोचने लगे—'आहार कैसे प्राप्त हो?'

सिद्धिदाता समीपस्थ महर्षि गौतमकी कुटीपर पहुँचे। महर्षि ध्यानस्थ थे और ऋषिपत्नी भोजन बना रही थीं। वे कुछ ही देरके लिये बाहर निकलीं कि चपल चन्द्रभाल पाकशालामें प्रविष्ट हो गये और प्रस्तुत अन्न-पात्र लेकर शीघ्रतासे बाहर निकल आये। उक्त आहार उन्होंने शिशुओंमें वितरण कर कहा—'खेलमें हमलोगोंको देर हो गयी। अब यह प्रसाद पाकर खेला जायगा।' शेषांश हेरम्बने स्वयं भोग लगाया।

'बलिवैश्वादि हुआ नहीं और भोजन-पात्रका पता नहीं।' सहधर्मिणीकी चिन्ता जानकर महर्षि उठे। पाकशालामें गये, सचमुच वहाँ भोजन नहीं था। चकित महर्षिने आश्रमके बाहर जाकर देखा तो उनकी पत्नीकी बनायी रसोई बाल-मण्डली आनन्दपूर्वक भोग लगा रही है।

महर्षि गौतम कुपित हुए। उन्होंने बुद्धीशके समीप जाकर कहा—'शिवा और शिवका पुत्र होकर तू ऐसी अनीति कैसे कर रहा है? हम तुम्हें परब्रह्मस्वरूप परात्पर देव समझते थे; तुम्हें शिशुओंके साथ इस प्रकारके कार्य करनेमें लज्जा नहीं आ रही है?'

गिरिजानन्दनकी भीत मुखाकृति देखकर भी महर्षि गौतमने उसका हाथ पकड़ लिया। वे रिक्त अन्न-पात्रके साथ मयूरेशका हाथ पकड़े माता पार्वतीके पास पहुँचे। उन्होंने हेरम्बका हाथ माता पार्वतीके कर-कमलोंमें देते हुए उन्हें रिक्त अन्न-पात्र दिखाकर कहा—'माता! तुम्हारा पुत्र इसी प्रकार सदा उपद्रव करता है। आज मैंने तुम्हें प्रत्यक्ष दिखा दिया। मैं क्या करूँ? तुम्हीं बताओ? कहो तो मैं दण्डकारण्य त्यागकर अन्यत्र चला जाऊँ?'

अत्यन्त क्षुब्ध महर्षि गौतमके उपालम्भसे जगज्जननी कुपित हो गयीं। उनके नेत्रोंसे चिनगारियाँ निकलने लगीं। उन्होंने विनम्रतापूर्वक महर्षिसे कहा—'मुनिवर! जन्मसे ही इसने मुझे तंग कर रखा है। इसने धरतीपर पैर रखा और उधर क्रूर असुरोंने उपद्रव प्रारम्भ कर दिये। इसकी निरन्तर चिन्तासे मेरा चित्त कभी स्थिर नहीं हुआ। अब इसने तपस्वियोंका भोजन चुराना भी प्रारम्भ कर दिया। यह बड़ा दुष्ट है। किंतु मुनिनाथ! यह मेरा पुत्र है, इस कारण आप कृपापूर्वक इसे कोई शाप मत दे दीजियेगा।'

इतना कहकर सर्वाभयदायिनी माता दृढ़ रज्जुसे हेरम्बका हाथ-पैर बाँधने लगीं।

'बालकको बाँधो मत! इसे मत बाँधो।' महर्षि कहते ही रहे, पर जगदीश्वरीने निखिल ब्रह्माण्डनायकको कसकर बाँध दिया और फिर उन्हें एक घरमें ले जाकर बाहरसे साँकल लगा दी।

महर्षि चुपचाप अपने आश्रमपर चले गये।

स्नेहमयी जननी उमा क्रोधावेशमें बाहर निकलीं तो उन्हें भान हुआ कि गुणेश मेरे वाम कटिपर अङ्कमें बैठा हुआ है। उन्होंने ध्यानपूर्वक देखा तो अपना भ्रम समझा, किंतु आँगनमें दृष्टि पड़ी तो देखा मयूरेश वहाँ खेल रहा है।

'मैंने तो उसका हाथ-पैर बाँधकर घरमें बंद कर दिया था!' चकित भ्रमित माताने किवाड़ खोलकर देखा तो शिशुके हाथ-पैर बँधे थे। उसके नेत्रोंसे अश्रुप्रवाह चल रहा था और वह अपनी दयामयी जननीकी ओर करुण दृष्टिसे निहार रहा था।

वात्सल्यमयी जननी यह दृश्य सह नहीं सकीं। वे अधीर हो गयीं। अपने प्राणप्रिय शिशुको गोदमें लेनेके लिये व्याकुल हुईं। उनके नेत्र भर आये, पर उन्होंने मुँह फेरकर द्वार बंद कर दिया। चपल बालकको डराना जो था।

माता समीपस्थ ऋषि-पत्नीके यहाँ चली गयीं। वे बात

तो कर रही थीं मुनिपत्नीसे, पर उनके प्राण हेरम्बमें समाये थे। उनके नेत्रोंके सम्मुख जगदुद्धारक अलौकिक पुत्रकी ही मूर्ति थी। 'मैंने कितने कठोर तपसे इस नवनीतोपम बालकको प्राप्त किया है। देवताओं, ऋषियों और गणकोंने ही नहीं, स्वयं सत्यमूर्ति त्रिनयनने कहा है कि ये विश्वत्राता अखिलेश्वर हैं।'

माताके नेत्र बरस पड़े। वे वहाँ और नहीं बैठ सकीं। जगदीश्वरी अपने सुकोमल मयूरेशके बन्धन खोल उसे सहलाती हुई अङ्कमें लिटाकर स्तन-पान करानेके लिये अत्यधिक आतुर हो उठीं और वे निजाश्रमके लिये शीघ्रतासे चलीं।

मार्गमें मुनि-पुत्र खेल रहे थे। जननीने देखा, उनके मध्य मयूरेश भी क्रीड़ा कर रहा है। 'मैंने हेरम्बको हाथ-पैर बाँधकर घरमें बंद कर दिया है'—स्नेहातिरेकमें स्मरण नहीं रहा। पुकार बैठीं—'आओ बेटा! स्तन-पान कर लो।'

'माता! यहाँ हेरम्ब कहाँ? तूने तो अपने पुत्रको बाँधकर घरमें बंद कर दिया है।'

बालकने उत्तर दिया तो माँने ध्यानपूर्वक देखा, सचमुच हेरम्ब नहीं था। वे द्रुतगतिसे अपने आश्रममें प्रविष्ट हुईं। द्वार खोला तो देखा, अबोध शिशु अनाथकी तरह रोते-रोते सो गया था। अपने शिशुकी यह स्थिति स्नेहमूर्ति पार्वती कैसे सह पातीं? वे सिसकने लगीं और उनके नेत्रोंसे अजस्र अश्रु-प्रवाह चलने लगा।

माताने तुरत शिशुका बन्धन खोलकर उसे अङ्कमें उठा लिया। रज्जु-बन्धनसे शिशुके हाथ-पैरमें लाल-लाल चिह्न बन गये थे। माता फूट पड़ीं। वे मन-ही-मन अपनी निर्दयतापर पश्चात्ताप करती हुई प्रेमपूर्वक बच्चेके हाथ-पैर सहलाने लगीं। उन्होंने उस निखिल सृष्टिपति शिशुके अधरोंसे अपने स्तनका स्पर्श कराया। हेरम्ब सर्वेश्वरीका अमृतमय दुग्ध पान करने लगे।

उधर जब महर्षि गौतमने अपने आश्रमपर पहुँचकर अर्चना प्रारम्भ की तो उन्हें सभी देवता गणेशके रूपमें दर्शन देने लगे। महामुनिने अत्यन्त विस्मित होकर पश्चात्ताप करते हुए अपनी सहधर्मिणीसे कहा—'मैं कैसा दुर्बुद्धि हूँ कि मैंने रिक्त अन्न-पात्र उमाको दिखाकर उपालम्भ दिया। उन्होंने परात्पर देवको डाँटा और उन्हें कठोर रज्जुसे बाँध दिया। जो परम प्रभु थोड़ेसे पत्र-पुष्पसे तृप्त हो जाते हैं, उन्होंने स्वयं अपनी शिशुमण्डलीसहित मेरा अन्न-पात्र लेकर भोजन किया; मेरा कितना बड़ा भाग्य है! पर मैं उनकी मायासे मोहित हो गया; पहले नहीं समझा। मुझ मतिभ्रष्टपर वे दयानिधान दया करें।'

पश्चात्ताप करती हुई अहल्या पुनः भोजन बनाने लगीं और महर्षि गौतम ध्यानमग्न हो गये।

* * *

वृकासुर-वध

मयूरेशने छठे वर्षमें पदार्पण किया। उनकी बाल-सुलभ मधुर-मनोहर क्रीड़ासे शिव, पार्वती, समस्त शिवगण, ऋषि-महर्षि, उनकी पत्नियाँ एवं शिशुगण—सभी आनन्दित होते। सभी हेरम्बको अतिशय प्यार करते।

एक दिनकी बात है। मयूरेश बालकोंके साथ क्रीड़ा करने चले गये थे। इसी बीच विश्वकर्मा शिव-सदन पहुँचे। उन्होंने माता पार्वतीके चरणोंमें प्रणाम करके उनकी स्तुति की। जगन्माताने उन्हें परम भक्तिका वर प्रदान किया।

फिर माता पार्वतीने उन्हें अजेय सिन्धुके उपद्रव, देवताओंकी पराजय, विष्णुका बंदी-जीवन व्यतीत करना आदि समाचार बताकर कहा कि 'हमलोग भी उसी उद्दण्ड असुरके भयसे यहाँ अरण्यमें निवास कर रहे हैं। बहुत दिनोंके बाद आपको देखकर प्रसन्नता हुई।'

उसी समय सर्वारुणावयव प्रसन्न-वदन तेजस्वी मयूरेश आ गये। उनके सुदृढ अलौकिक स्वरूपके दर्शन करके विश्वकर्मा मन-ही-मन मुदित हुए। उन्होंने विनायकके चरणोंमें प्रणामकर उनकी पूजा और स्तुति की। तदनन्तर उन्होंने कहा—'प्रभो! आपके प्राकट्यका संवाद पाकर मैं आपके मङ्गलकारी दर्शन करने यहाँ आया हूँ।'

गणेश बोले—'इतनी दूरसे तुम मेरा दर्शन करने तो आये हो, पर मुझे संतुष्ट करनेके लिये कौन-सा बहुमूल्य उपहार ले आये हो?'

'सम्पूर्ण प्राणियोंकी इच्छापूर्ति करनेवाले, सच्चिदानन्दघन, चराचरपतिको भला मैं क्या उपहार दे सकता हूँ?'—अत्यन्त दीनवाणीमें विश्वकर्माने उत्तर दिया।

'फिर भी तुम अपने सामर्थ्यानुसार मेरे लिये क्या उपहार ले आये हो?' गणेशने फिर पूछा।

'प्रभो! आपके लिये मैं समस्त शत्रुओंका संहार करनेवाला तीक्ष्ण अङ्कुश, परशु, पाश और पद्म ले आया हूँ।' विश्वकर्माने शस्त्रास्त्र मयूरेशके सम्मुख रख दिये।

'अत्यन्त सुन्दर ! नितान्त उपयोगी !!' मयूरेशने उन्हें उठाते हुए कहा—'इस समय असुर निरन्तर उपद्रव कर रहे हैं। देवगण त्रस्त हैं और श्रीहरि गण्डकी-नगरसे बाहर नहीं जा सकते।'

विश्वकर्माने उनको उन अस्त्रोंके प्रयोग भी सिखा दिये। वे भगवान् शंकर, माता पार्वती और मयूरेशके चरणोंमें प्रणाम कर उनकी आज्ञासे प्रस्थित हुए।

मयूरेशने शीघ्र ही उक्त शस्त्रोंके संचालनका अभ्यास कर लिया। अब वे प्रायः शस्त्रसज्ज होकर ही बाहर निकलते।

एक दिन वे बालकोंके साथ क्रीड़ा कर रहे थे कि उसी समय वृक-नामक महाबलवान् और अत्यन्त दुष्ट असुर वहाँ आया। उस भयानक असुरको देखते ही मुनि-पुत्र भागने लगे, किंतु मयूरेश सर्वथा निर्भीक भावसे खड़े रहे। वृकासुर अपने मुख्य लक्ष्य गुणेशपर झपटा ही था कि उन्होंने अपने तीक्ष्णतम अङ्कुशसे उसपर भयानक प्रहार किया। दैत्य चीत्कारके साथ रक्त-वमन करता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा और छटपटाता हुआ मृत्यु-मुखमें चला गया।

वृक-वधसे ऋषिवृन्द अत्यन्त प्रसन्न हुए और सभी गुणेशकी प्रशंसा करने लगे।

उपनयन

मयूरेशका सातवाँ वर्ष प्रारम्भ हुआ। माता पार्वतीने अपने प्राणवल्लभ शिवको बालकके उपनयन-संस्कारकी प्रेरणा दी। भगवान् शंकरने गौतमादि ऋषियोंको सादर आमन्त्रित करके उनसे परामर्श किया। मयूरेशके यज्ञोपवीतकी तैयारी प्रारम्भ हुई।

समस्त देवता, अट्ठासी हजार ऋषि, यक्ष, किंनर और चारण आदि सभी सोल्लास त्रिसंध्या-क्षेत्रमें शिव-सदन पधारे। शम्भुने सबकी अभ्यर्थना की। सर्वत्र आनन्दोल्लास था। सुविस्तृत भव्य मण्डप निर्मित किया गया; वाद्य बजने लगे; मङ्गल-गीत गाये जाने लगे। मयूरेशका चौलकर्म हुआ। उन्हें चार ब्राह्मणोंके साथ भोजन कराया गया।

प्रातःकाल बटुने स्नान कर सर्वोत्तम वस्त्र धारण किये। मुनिगण मन्त्र-पाठ करने लगे। इसी समय कृतान्त और काल-नामक दो भयानक असुर मदमत्त गजके रूपमें पहुँचकर उपद्रव करने लगे। शिवगणोंने उन्हें रोकना चाहा, पर गज-बलके सम्मुख वे टिक नहीं सके। दोनों मत्त गज सर्वसंहार करते उपनयन-मण्डपके समीप पहुँचकर मण्डप-स्तम्भ आदि गिराने लगे। उन्हें देखकर देवता, ऋषि-पत्नियाँ एवं ऋषिकुमार जान बचाकर भागे।

सभी प्राण लेकर भाग रहे थे और दोनों मत्त गयन्द सर्वनाश करनेपर तुले थे। यह दृश्य देखकर बटु गुणेश उठे। उन्होंने अत्यन्त चपलतासे एक गजकी सूँड़ उमेठकर उस-पर तीव्रतम मुष्टि-प्रहार किया; जैसे उसपर वज्रपात हो गया हो। हाथी चिग्घाड़ता हुआ दूसरी ओर मुड़ा ही था कि दूसरे गजसे उलझ गया। मयूरेशने तुरंत दूसरे गजके गण्डस्थलपर मुष्टि-प्रहार किया। उसके चीत्कारसे पृथ्वी, आकाश, देवता, ऋषि तथा स्त्री-बालक—सबके हृदय काँप उठे।

चपल गुणेश उन दोनों हाथियोंको उलझाकर उनपर प्रहार करते ही जा रहे थे; फलतः कुछ ही देरमें वे दोनों असुर छटपटाते हुए पृथ्वीपर गिर पड़े। अब वे गुणेशके वज्र-तुल्य मुष्टि-प्रहार एवं कठोर पदाघातसे छटपटा भी न सके। उनका प्राणान्त हो गया। गुणेशने उनके अङ्ग खण्ड-खण्डकर दूर फिंकवा दिये।

सबके प्राण लौटे। सबने परमपराक्रमी बालककी प्रशंसा की। उत्सव पुनः प्रारम्भ हुआ, बाजे बजने लगे, मङ्गल-गान गूँज उठा।

मयूरेशको मेखला, अजिन और यज्ञोपवीत दिये गये। उनसे सविधि हवन करवाकर उन्हें विधिपूर्वक सावित्री-मन्त्र प्रदान किया गया।

सर्वप्रथम माता पार्वतीने अपने पुत्र गुणेशको भिक्षा प्रदान की। भिक्षामें उन्होंने दो वस्त्र, भूषण, उत्तरीय, मोतियों-सहित रत्न और मोदक आदि भक्ष्य पदार्थ प्रदान किये। भगवान् शंकरने उन्हें त्रिशूल और चन्द्र देकर कहा—'शूलपाणि ! भालचन्द्र !!' श्रीहरिने चक्र देकर उन्हें सम्बोधित किया—'शोचिष्केश !'

शचीपति इन्द्रने मयूरेशकी पूजा कर सर्वार्थप्रदायक चिन्तामणि उनके गलेमें पहनाकर उनका नामकरण किया—'चिन्तामणि'। ब्रह्मदेवने गुणेशकी पूजा कर उन्हें कमल प्रदान करते हुए कहा—'विधाता'। तदनन्तर समस्त देवताओंने मयूरेशकी पूजा की और उन्हें अपनी-अपनी इच्छाके अनुसार नाम प्रदान किया।

इसके अनन्तर अदिति और कश्यपने उनकी पूजा की। परमप्रभु विनायकने उन्हें सिंहवाहन दशभुज विनायकके

रूपमे दर्शन दिये। माता अदितिने विनयपूर्वक कहा—'बेटा! मैं तुम्हारे वियोगमे अत्यन्त कृश हो गयी हूँ। तू मुझे इतना दुःख क्यों दे रहा है ?'

'माँ! सर्वान्तर्यामीसे कभी वियोग नहीं होता।' गुणेशने स्नेहस्निग्ध स्वरमे उत्तर दिया। तू विश्वास कर, मैं तो सदा तुम्हारे पास ही रहता हूँ; फिर दुःखका कोई कारण नहीं।'

समस्त देवता, ऋषि, यक्ष, किंनर और चारण आदि सबने मयूरेशकी वन्दना की और शिव-पार्वतीकी आज्ञा प्राप्तकर सब लोग प्रस्थित हुए। अदिति और कश्यप भी विनायककी पूजा कर प्रसन्नतापूर्वक अपने आश्रमको चले गये।

मयूरेश! मयूरेश!! मयूरेश!!!

अत्यन्त प्रतिभाशाली गुणेशने वेदाध्ययन प्रारम्भ किया। कुशाग्रबुद्धि गुणेश जब वेदका सस्वर गायन प्रारम्भ करते, तब देवता, ऋषि, हरिन, सिंह, व्याघ्र, भुजङ्ग और गगनचर आदि भी गानमें तल्लीन हो जाते। उनके नेत्रोंसे अजस्र वारि-धारा प्रवाहित होने लगती। गुणेशका वेद-पाठ श्रवण करनेके लिये सहस्रों ऋषि-मुनि तत्पर रहते और प्रमथादि गणोंसहित शिवादि देवगण आनन्दमग्न हो जाते।

इसी प्रकार एक दिन गुणेशका चराचरको मुग्ध कर देनेवाला वेद-गान हो रहा था। प्राणिमात्र आनन्दसिन्धुमें निमज्जित था। उस अमृतमय वातावरणमे अत्यन्त क्षुब्धकर श्वापद-रूपमें नूतन-नामक दैत्य कूद पड़ा। उसके कर्कश स्वरसे गिरिगुहाएँ विदीर्ण होने लगीं।

उस भयानक असुरके तीन मुख, चार सींग, पाँच नेत्र, चार कान, आठ पैर और दो पूँछें थीं। उक्त दैत्य गुणेशके सम्मुख नृत्य करने लगा। वह आकाशमें उड़ा और दूसरे ही क्षण पृथ्वीमे अदृश्य हो गया। इसी प्रकार वह क्षण-प्रतिक्षण दृश्य-अदृश्य होने लगा। उसकी अत्यन्त भयानक आकृति और ढंग देखकर सभी डरने लगे।

असुरारि गुणेश उठे और असुरके पीछे दौड़े। छल-कपटसे भरा दैत्य वनमे भागा। दैत्यारि भी उसके पीछे-पीछे दौड़ते गये। इस प्रकार वह गुणेशको गहन वनमे ले गया। वह जब मेघ-गर्जन करता, तब सिंह, व्याघ्र, गज, शूकर और वानर आदि पशु भू-लुण्ठित हो जाते थे।

गुणेशने उसे पकड़ना चाहा तो वह विकट असुर पृथ्वीको रौंदता हुआ आकाशमें उड़ गया। गुणेशके नेत्र अरुण हुए। कुपित होकर उन्होंने उसे लक्ष्य करते हुए अपना पाश फेंका। पृथ्वी काँप उठी और अन्तरिक्षमे मेघ बिखर गये। आकाशके नक्षत्र टूट-टूटकर गिरने लगे।

पाशके सम्मुख असुरकी माया नहीं चली। क्षणभरमे ही पाशबद्ध महादैत्य गुणेशके समक्ष धरतीपर गिर पड़ा। असुरके विशाल हाथ-पैर टूट गये और उसका श्वास अवरुद्ध हो गया। वहाँ मयूरेशके पीछे दौड़कर एकत्र हुए मुनि-बालकोंके सम्मुख नेत्रोंके द्वारा उसका प्राण निकल गया। मुनि-पुत्रोंने उसके शवकी बड़ी दुर्दशा की।

वहाँ आम्र-कानन था। आम्रवृक्ष फलोंसे लदे थे। अत्यधिक फलोंके बोझसे उन वृक्षोंकी डालियाँ झुक गयी थीं। अधिक दौड़ने और देर हो जानेसे मुनि-पुत्रोंकी क्षुधा जाग्रत् हो गयी थी। वे मुनि-पुत्र गुणेशकी अनुमतिसे फलोंसे लदे आम्रवृक्षोंसे आम्र-फल तोड़-तोड़कर खाने लगे। कुछ बालक फल खाते और कुछ विनोद करते हुए उसे दूर फेंक देते। एक मुनि-पुत्रका फेंका हुआ फल उस स्त्रीके मस्तकपर जोरसे लगा, जो बहुत दिनोंसे एक अण्डेकी रक्षा कर रही थी।

कुपित स्त्री दौड़ी। उसके क्रोधारुण नेत्र देखकर बालक सहम गये। उसने कठोर स्वरमें पूछा—'जिस बालकने इस श्वापदका वध कर मुझे आम्र-फलसे मारा है, वह कहाँ है ?'

कुपित नारीको देखते ही गुणेश वृक्ष-कोटरमें छिप गये। वहाँ उन्होंने शशि-मण्डलतुल्य एक श्वेत अण्डा देखा। गुणेशने उसे अपने सशक्त हाथोंमें उठाया ही था कि वह अण्डा फूट गया।

उस अण्डेसे एक विशाल पक्षी निकला, जिसका कण्ठ नीला था। उसके नेत्र और पंख विशाल थे। उसके मुखसे अनल-ज्वाला निकल रही थी। उसने अपना पंख हिलाया ही था कि धरती काँपने लगी। उसकी ध्वनिसे समुद्र मर्यादाका अतिक्रमण करने लगा, सूर्य-मण्डल चञ्चल हो गया। उस महान् पक्षीने भागते हुए मुनि-पुत्रोंपर अपने पंखोंसे प्रहार कर उनका मार्ग अवरुद्ध कर दिया।

'यह विशाल पक्षी मुनि-पुत्रोंको मार डालेगा'—यह सोचते ही गुणेश वृक्ष-कोटरसे कूदे और शीघ्रतापूर्वक उक्त महान् पक्षीका पंख जोरसे पकड़ लिया। पक्षी और गुणेशमें भयानक युद्ध छिड़ा। पक्षीके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये थे। वह अपनी तीक्ष्णतम चोंच और पंखसे गुणेशपर

प्रहार करता और गुणेश घूमकर उसपर अपनी वज्र-मुष्टिसे आघात करते।

विशाल पक्षीकी अतिशय शक्ति देखकर गुणेशने उसपर एक साथ अपने चारों आयुधोंसे प्रहार किया। पक्षी तुरंत धरतीपर गिरा। चपल गुणेशने तत्क्षण उसे अस्त्र-मुक्त किया और उछलकर वे उस अण्डजपर आरूढ़ हो गये। उन्होंने बलपूर्वक विशालतम पक्षीको स्ववश कर लिया।

यह दृश्य देखकर तेजस्विनी स्त्री गुणेशकी स्तुति करने लगी—'प्रभो! आप रजोगुणके योगसे सृष्टिकर्ता ब्रह्मदेव, सत्त्वगुणके योगसे पालक विष्णु और तमोगुणके योगसे संहारक रुद्र भी हैं। आपका सगुण-तत्त्व देवता और ऋषि नहीं जानते, फिर चराचर-गुरु आपके निर्गुण-तत्त्वको कौन जाननेवाला है?'*

स्तुतिके अनन्तर अपना परिचय देती हुई साध्वी नारीने कहा—"प्रभो! मैं परम तपस्वी महर्षि कश्यपकी पत्नी हूँ। मेरा नाम विनता है। यह शिखण्डी (मयूर) उन्हीं महामुनिका पुत्र है। आप इसे अपने सेवकके रूपमें स्वीकार करें। उन मुनिराजने पहले ही कहा था कि 'इस अण्डेको फोड़नेवाला इसका स्वामी होगा, इसमें तनिक भी संदेह नहीं।' दीर्घकालतक प्रतीक्षा करनेके अनन्तर मुझे आज आपका दर्शन प्राप्त हुआ है।"

पुनः अत्यन्त दीनभावसे विनताने प्रार्थना की—'प्रभो! मेरे जटायु, श्येन और सम्पाति—इन तीन पुत्रोंको कद्रूपुत्रोंने नागलोकमें बंदी बना रखा है। दयामय! आप शीघ्र ही उनको मुक्त कर मुझे शान्ति प्रदान करें।'

'माता! तुम चिन्ता मत करो। मैं तुम्हारे पुत्रोंको शीघ्र ही मुक्त करके तुम्हारे समीप ले आऊँगा।' गुणेशने परम पुण्यमयी विनताको आश्वासन दिया। फिर उन्होंने मयूरसे वर माँगनेके लिये कहा।

मयूरने वरकी याचना की—'यदि आप मुझपर प्रसन्न होकर मुझे वर देना चाहते हैं तो भूमण्डलपर आपके नामके पूर्व मेरा नाम प्रसिद्ध हो जाय। सर्वेश्वर! इसके साथ ही आप मुझे अपनी सुदृढ़ भक्ति प्रदान करें।'†

'अत्यन्त शुभ! लोभशून्य अन्तःकरणसे तुमने शुभ वरकी याचना की है।' देवदेव गुणेशने अपने वाहन मयूरसे कहा—'मयूरेश्वर!'—मेरे नामके पूर्व तुम्हारा नाम त्रिभुवनमें विख्यात होगा और तुम्हारे मनमें मेरे प्रति दृढ़ भक्ति भी रहेगी।'

गुणेश मयूरपर आरूढ़ होकर अपने आश्रम पहुँचे। ऋषिपुत्रोंने माता पार्वतीको सूचित करनेके लिये एक साथ उच्चस्वरसे घोष किया—'मयूरेश! मयूरेश!! मयूरेश!!!'

सारा वृत्तान्त सुनकर माता पार्वती प्रमुदित हुईं और ऋषिपुत्र मयूरेशका गुणगान करते हुए अपने-अपने घर गये।

* * *

जल-क्रीड़ा

मयूरेशका नवाँ वर्ष प्रारम्भ हुआ। अबतक उन्होंने वेदादि शास्त्रोंका गहन अध्ययन कर लिया था। वे धनुर्वेद और विभिन्न प्रकारके शस्त्रास्त्र-संचालनमें दक्ष हो चुके थे। जैसे-जैसे सयाने होते जाते, वैसे ही सिन्धु-प्रेषित असुर चिन्तित होकर उन्हें मार डालनेका नित्य नवीन कुचक्र रचते जाते। उन्हें सफलता तो मिलती नहीं, उलटे जो भी दैत्य आता, गण्डकी-नगर लौट नहीं पाता था; यम-सदन पहुँच जाता था। इस कारण दैत्यराज सिन्धु और अधिक सशङ्क एवं सावधान रहने लगा।

एक दिनकी बात है—आम्र-काननके सरोवर-तटपर मयूरेश मुनि-पुत्रोंके साथ क्रीड़ा कर रहे थे। बालक आम्र-वृक्षपर चढ़ते, कुछ फल खाते, कुछ खट्टे-अधपके फलोंको दूर फेंक देते एवं कुछ आम्र-फल मुँहमें दबाये डालियोंसे सरोवरमें कूद जाते; तैरते और एक-दूसरेपर जल उछालते हुए विविध प्रकारके खेल खेलते।

उसी समय सिन्धु-प्रेषित एक प्रचण्ड दैत्य अश्वके रूपमें वहाँ पहुँच गया। उसके उपद्रवसे कुछ मुनि-पुत्र सरोवरमें कूद पड़े, कुछ पेड़ोंपर चढ़ गये; कुछ घायल होकर गिर पड़े और कुछ प्राण लेकर भागे।

---

* त्वं सृष्टिकर्ता रजसा ब्रह्मा सत्त्वेन पालकः॥
विष्णुस्त्वमसि तमसा संहरञ्शंकरोऽपि च।
न देवा ऋषयस्तत्त्वं विदुस्ते सगुणस्य ह॥
निर्गुणस्य तु को वेद चराचरगुरोरपि॥
(गणेशपु० २। ९८। ३९-४१)

† यदि मे त्वं प्रसन्नोऽसि यदि देयो वरो मम।
सदा मन्नामपूर्वं ते नामाख्यातं भवेद् भुवि॥
प्रसन्मे देहि सर्वेश स्व भक्तिं दृढां तथा।
(गणेशपु० २। ९८। ४७-४८)

मयूरेशने असुरका दुरुद्देश्य समझ लिया; अतः वे तत्काल उसपर मुष्टि-प्रहार कर बैठे। करारी चोट पड़नेसे छटपटाता हुआ वह अश्वरूपी असुर सरोवरमें कूद पड़ा। मयूरेशने भी उसके पीछे सरोवरमें छलाँग लगायी। उन्होंने उस मदोन्मत्त अश्वको पानीमें डुबाकर मार डाला और फिर उसका मृत-शरीर सरोवरसे निकालकर बाहर बहुत दूर फेंक दिया।

यह देखकर मुनि-पुत्र अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे पुनः फल खाने और जल-क्रीड़ा करने लगे। एक बार सभी बालक एक साथ मिलकर गुणेशपर जल उछालने लगे, तब मयूरेशने सहस्र हाथोंसे उनपर जल उलीचना प्रारम्भ कर दिया। चकित होकर एक बालकने पूछा—'अरे, यह मयूरेश तो षड्भुज है न ?'

'हाँ! षड्भुज तो है ही।'

'फिर यह सहस्रभुज कैसे हो गया ?'

'सचमुच बड़े आश्चर्यकी बात है।'

फिर बालकोंने देखा कि उनके चारों ओर अनेक मयूरेश खड़े होकर उनपर जल उलीच रहे हैं। वे सभी चकित-विस्मित थे।

इस प्रकार परात्पर परब्रह्म मयूरेश परम पुण्यात्मा मुनि-पुत्रोंको क्रीड़ाका अद्भुत अलौकिक आनन्द प्रदान कर ही रहे थे कि वहाँ कुछ नाग-कन्याएँ आकर क्रीड़ा करने लगीं। उनकी दृष्टि जब मयूरेशपर पड़ी तो वे लज्जित हो गयीं। उन्होंने अपने नेत्र नीचे कर लिये। वे मयूरेशके अलौकिक सौन्दर्यपर मुग्ध हो गयी थीं।

सहचरियोंके परामर्शसे एक नागकन्याने मयूरेशके समीप जाकर अत्यन्त मधुर वाणीमें विनयपूर्वक निवेदन किया—'आप कौन हैं, कहाँसे आये हैं ? हमलोग आपका दर्शन करके विह्वल हो गयी हैं; आप कृपया हमारा चित्त शान्त कीजिये।'

'मैं शिवा-शिवका पुत्र हूँ। मयूरेश मेरा नाम है। मैं मुनि-पुत्रोंके साथ क्रीडार्थ यहाँ आ गया, इसी कारण आप लोगोंके दर्शन हो गये।'

'आप कृपापूर्वक एक क्षणके लिये ही सही, हमलोगोंके घरपर पधारकर विश्राम कर लें।'

'अधिक विलम्ब होनेके कारण माता पार्वती सचिन्त मनसे मेरी प्रतीक्षा कर रही होंगी; अतएव मैं अपने आश्रमको जाना चाहता हूँ। आपलोग अपने भवन पधारिये।'

नाग-कन्याएँ साग्रह मयूरेशको अपने साथ ले गयीं। प्राणप्रिय मयूरेशको न देख मुनि-पुत्र अत्यन्त दुःखी हुए, पर कुछ ही देर बाद उन्हें अनुभव हुआ कि 'मयूरेश हमारे साथ हैं।' मार्गमें भगासुर-नामक असुरने मुनि-बालकोंके साथ छल किया, किंतु सर्वज्ञ मयूरेशने उनकी रक्षा कर ली, असुर मारा गया।

जिस प्रकार मुनि-पुत्रोंने मयूरेशको अपने साथ अनुभव किया, उसी प्रकार मुनि-बालकोंके घर पहुँचनेपर माता पार्वतीने भी समझा कि 'मयूरेश घर आ गया है।' जननीने उन्हें भोजन कराया और स्तन-पान कराकर सुला दिया।

नागलोकपर विजय

लावण्यवती नाग-कन्याएँ प्रसन्नवदन मयूरेशको पाताल-लोकके अपने भव्य भवनमें ले गयीं। वहाँ उन्होंने चित्ता-कर्षक देवदेव मयूरेशको सुगन्धित तेल और उद्वर्तन लगाकर उष्ण जलसे स्नान कराया। उन्हें दिव्य वस्त्रालंकारोंसे विभूषित कर उनको चन्दन लगाया और धूप, दीप, नैवेद्य तथा ताम्बूलादिसे उनकी पूजा की। तदनन्तर उन्होंने मयूरेशकी स्तुति करते हुए कहा—'ब्रह्मादि देवगण जिनके दर्शनके लिये नित्य आकाङ्क्षा रखते हैं, वे ही प्रभु हमारा अभीष्ट प्रदान करनेके हेतु यहाँ पधारे हैं। हम चाहती हैं कि आप यहाँ कुछ दिन निवास करनेके अनन्तर ही अपने आश्रमको जायँ।'

पार्वतीनन्दनने कहा—'वहाँ मेरी माता मेरे वियोगमें दुःखी होकर अन्न-जल भी नहीं ग्रहण करती होंगी। क्या पूछ सकता हूँ कि मैं यहाँ किनकी पुत्रियोंके दर्शन कर रहा हूँ ?'

'जिनके यहाँ ब्रह्मादि देवगण आते रहते हैं और जिनके विषकी ज्वालासे त्रिभुवन भस्म हो सकता है, हम उन्हीं नागराज वासुकिकी कन्याएँ हैं।' इस प्रकार अपना परिचय देकर नाग-कन्याएँ मयूरेशको अपने पिताके समीप ले गयीं।

अतिशय शक्तिशाली वासुकि अनेक तेजस्वी नागोंके साथ देदीप्यमान रत्नसिंहासनपर आसीन थे। उनके मस्तकपर चतुर्दिक् किरणें बिखेरता रत्नमुकुट और कण्ठमें रत्नहार सुशोभित थे।

वासुकिको देखते ही देवदेव मयूरेश तत्काल कूदकर उनके फणपर चढ़ गये। उनके फणमें घनान्धकारनिवारक अद्भुत मणि थी। उनके मस्तकके हिलनेसे त्रैलोक्य हिल उठा। मयूरेशने परम तेजस्वी वासुकिको दण्ड देकर उन्हें अपने कण्ठमें धारण कर लिया। इस कारण उन परमप्रभु मयूरेशका नाम प्रख्यात हुआ—'सर्पभूषण!' सर्पभूषणने सोल्लास गर्जन किया।

'मेरे भाई वासुकिको पराजित करनेवाला कौन है?'—ऐसा कहकर सहस्रफणधारी शेष भयानक विष उगलते हुए दौड़े। उन्होंने पार्वतीनन्दनपर आक्रमण कर दिया।

सर्पभूषणके स्मरण करते ही उनके वाहन मयूरने उपस्थित होकर चरणोंमें नमस्कार किया। गुणेश मयूरपर बैठे। भयानक युद्ध हुआ। मयूरने असंख्य नागोंको अपने विशाल पंखोंके प्रबल प्रहारसे मार डाला। कितने ही विषधर उसके उदरमें पड़ गये; किंतु शेषके भयानकतम विषकी असह्य ज्वाला वह मयूर नहीं सह सका; मूर्च्छित हो गया।

अपने वाहन मयूरके धरतीपर गिरते ही मयूरेश अत्यन्त कुपित हुए और कूदकर शेषके फनपर चढ़ गये। उन विराट् प्रभुका भार शेषके लिये असह्य हो उठा। वे रक्त वमन करने लगे। उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग शिथिल हो गये। शेषकी सहायताके लिये अन्य नाग दौड़े, किंतु वे तो मयूरेशका हुंकार भी नहीं सह सके।

क्रीड़ा-रत बालक जैसे कटिमें रस्सी लपेट लेता है, उसी प्रकार मयूरेशने शेषको अपनी कटिमें लपेट लिया। चकित-थकित शेष मयूरेशकी स्तुति करने लगे। तब मयूरेशने शेषसे कहा—'सम्पाति, जटायु और श्येनको शीघ्र मुक्त करके यहाँ ले आओ।'

शेषने आज्ञा दे दी। नागलोग विनताके तीनों पुत्रोंको मुक्त करके वहाँ ले आये। उन तीनोंने मयूरेशके चरणोंमें प्रणाम किया। मयूरने अपने तीनों भाइयोंका आलिङ्गन कर उनका समाचार पूछा। तदनन्तर सम्पाति आदिने अपनी माताका हाल पूछा।

'माता प्रसन्न हैं।' यह सुनकर तीनों भाइयोंको संतोष हुआ।

मयूरेश मयूरपर आरूढ़ होकर पृथ्वीपर लौटे। आश्रमकी ओर जाते समय वे बालकोंसे घिरे थे। उन बालकोंने छत्र, चामर और दण्ड आदि धारण कर रखा था। कोलाहल सुनकर मुनिगणोंने जाकर देखा—'बालकोंसे घिरे मयूरवाहन मयूरेश आ रहे हैं।'

'मेरा बालक तो घरपर है।' चकित होकर सभी मुनि परस्पर कहने लगे। फिर उन्होंने देखा, वे सभी बालक मयूरेश ही हैं। एक नहीं, शत-शत मयूरेश।

'पाताल-विजयी मयूरेशकी जय!'—यह गगनभेदी स्वर मुनियोंके मुँहसे स्वयं निकल गया।

* * *

त्रिसंध्या-क्षेत्रसे विदा

मयूरेशके नौ वर्ष पूरे हुए। उन्होंने दसवें वर्षमें प्रवेश किया। इतनी अल्पायुमें ही उन्होंने अनेक वीराग्रणी असुर-योद्धाओंका संहार तो किया ही, प्रख्यात नागलोकपर भी विजय प्राप्त कर ली, इस समाचारसे सिन्धु उत्तरोत्तर अधिक चिन्तित होता जा रहा था और उसके वीर सैनिक मयूरेशके सम्मुख जानेमें भयभीत होने लगे थे।

भगवान् शंकर और पार्वती अपने पुत्रका पौरुष और असुरोंका उत्तरोत्तर क्षय देखकर मन-ही-मन प्रसन्न थे, किंतु दण्डकारण्यमें मयूरेशकी उपस्थितिके कारण ऋषियोंको असुरोंकी अनेक यातनाएँ सहनी पड़ती थीं। इस कारण महादेवने त्रिसंध्या-क्षेत्रसे अन्यत्र जानेका निश्चय कर लिया।

ऋषि-वृन्द, ऋषि-पत्नियाँ और मयूरेशके मित्र दुःखी हुए। उन्होंने शिवसे प्रार्थना की, किंतु पार्वतीवल्लभ अनेक कारणोंसे अपने निश्चयसे विचलित नहीं हुए।

जब शिव-पार्वती मयूरेश और अपने गणोंके साथ दण्डकारण्यसे विदा हुए, तब बड़ा ही करुण दृश्य उपस्थित हुआ। शिव-पार्वती तथा मयूरेशके अनन्य भक्त ऋषि-मुनि और बालक उनके साथ चले। बृहत् समुदायके चलनेसे उड़ी हुई धूलिसे अन्तरिक्ष भर गया।

कमलासुरकी मुक्ति

शिव-पार्वती अपने गणादिके साथ जिस मार्गसे जा रहे थे, उसी मार्गमें दैत्यराज सिन्धुका भेजा हुआ कमलासुर-नामक प्रसिद्ध असुर बारह अक्षौहिणी सशस्त्र वाहिनीके साथ डट गया। उसकी सेनामें गज, अश्व, रथ और पैदल सभी प्रकारके सैनिक थे।

असुरोंका महासैन्य देखकर शिवगणोंने मयूरेशको सूचना दी । उन गणोको चिन्तित देखकर मयूरेशने कहा—'भगवान् शिवकी उपस्थितिमें चिन्ताका कोई कारण नहीं है ।'

फिर उन्होंने जाकर अपने पिताके चरणोंमें प्रणाम कर निवेदन किया—'कमलासुर-नामक प्रख्यात वीर असुर महान् सैन्यके साथ सम्मुख उपस्थित है । यदि आप सानुग्रह आज्ञा प्रदान करें तो मैं उससे युद्धके लिये जाऊँ ?'

शिवने प्रसन्न होकर कहा—'तुमने सुखद बात कही, पर तुम एकाकी बारह अक्षौहिणी सैनिकोंके साथ कैसे युद्ध करोगे ? अतः अपने साथ सात कोटि गणोंको भी ले जाओ और शीघ्र ही शत्रुको मारकर विजय प्राप्त करो ।'

मयूरेशने अपने पितासे पुनः निवेदन किया—'आपकी कृपासे मैं त्रैलोक्यको भस्म कर सकता हूँ; इस क्षुद्र दैत्यकी कौन गिनती है ? मैं अभी उसपर विजय प्राप्त करके लौट आता हूँ ।'

मृत्युंजयने पुत्रका आलिङ्गन किया । उसे अपना त्रिशूल देकर सिरपर हाथ फेरते हुए आशिष् दी । तदनन्तर उसे अपने गणोंके साथ समराङ्गणमें जानेकी आज्ञा प्रदान की ।* वृषारूढ़ शिवा-शिव भी पुत्रका रण-कौशल देखने चले ।

मयूरेश असुर-सैन्यके सम्मुख पहुँचे । उन्होंने कमलासुरकी विशाल वाहिनी देखकर अपने शरीरसे असंख्य सैनिक उत्पन्न किये ।

'मयूरेशके पास तो थोड़े-से ही सैनिक थे, अभी तुरत इतनी विशाल सेना कहाँसे आ गयी ?'—यह सोचकर असुर चकित हो गया।

उभय पक्षकी सेनाएँ एक-दूसरेपर टूट पड़ीं । मयूर-वाहन मयूरेशने महादैत्यको अश्वारूढ देखकर अपनी दस भुजाओंमें दसों आयुध लिये । भयंकर संग्राम हुआ। असंख्य असुर-सैनिक कालके गालमें चले गये और रक्तकी सरिता प्रवाहित हो गयी ।

हाथमें खड्ग लिये अतिशय क्रुद्ध कमलासुर मयूरेशसे युद्ध कर रहा था । उसने मयूरेशको मारनेके लिये विविध प्रकारके अस्त्रोंका प्रयोग किया, किंतु उसके सभी शस्त्रास्त्र व्यर्थ हो गये । इसी बीच गुणेश-वाहन मयूरने अपने पक्ष एव तीक्ष्ण चञ्चु-प्रहारसे असुरके अश्वको मार डाला । उस असुरने आकाशमें जाकर कहा—'मेरा घोड़ा गिर गया; यह मैं अद्भुत दृश्य देख रहा हूँ ।'

फिर उसने मयूरेशसे कहा—'बालक ! तू मेरे साथ क्या युद्ध करेगा ? जाकर अपनी माताका स्तन-पान कर और बालकोंके साथ खेल । मेरे भयसे त्रिभुवन काँपता है ।'

'तू पिशाचकी तरह क्या प्रलाप करता है ?' देवदेव मयूरेशने असुरको डाँटते हुए कहा—'देवद्विजविनिन्दकको कभी जय प्राप्त नहीं होती । मैं तो अपने रोषानलसे ही त्रिभुवनको भस्म कर सकता हूँ, किंतु तुम्हें यश प्रदान करनेके लिये ही इस युद्धमें प्रवृत्त हुआ हूँ ।'

यह सुनकर क्रुद्ध कमलासुर गरज उठा । पृथ्वी काँपने लगी । उसने अपने अस्त्रोंकी इतनी भयानक वर्षा की कि शिवगण व्याकुल हो गये । यह देखकर मयूरेशने जल-धारावत् तीक्ष्णतम शरोंकी वृष्टि प्रारम्भ कर दी ।

असुर अपनी पूरी शक्तिसे उन शरोंका निवारण करने लगा; यह देखकर गुण-ग्राहकोंमें श्रेष्ठ गुणेश संतुष्ट हुए । उन्होंने उसे अपने अनन्त विश्वरूपका दर्शन करा दिया । उसने दसों दिशाओंमें मयूरेशको देखा । अत्यन्त चकित होकर उसने नेत्र बंद किये तो हृदयमें भी उसे मयूरेशके ही दर्शन हुए ।†

तब प्रचण्ड शूर कमलासुर युद्ध-भूमिसे भाग चला; किंतु

---

* बारह सालका बालक गुणेश ! किंतु वह ऐसी विशाल सेनाके साथ युद्धके लिये जाता है और उसे इसके लिये माँ-बाप अनुमति देते हैं । ये बातें सचमुच बोधप्रद—प्रेरणादायक ही हैं । घरकी शिक्षा कैसी होनी चाहिये, यह बात इस प्रसङ्गसे अच्छी तरह समझमें आती है । बारह वर्षके बालकपर उसके पिताका इतना विश्वास ! जिस जातिके बच्चे इतने शूर हों, वह कभी परतन्त्र नहीं रह सकती ।

—पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

† ततस्तुतोष भगवान् मयूरेशो गुणाग्रणीः ॥
दर्शयामास तस्मै स विश्वरूपमकल्मषम् ।
दशदिक्षु मयूरेशं ददर्श कमलासुरः ॥
निमील्य नयने हृदि [illegible] परिदृष्टवान् ।
(गणेशपु० २ । १०६ । २-५)

देवताओंने उसकी शिखा पकड़ ली और उसे लाकर कहा— 'दैत्य ! तू अपने वचनका पालन करनेके लिये यहाँ युद्ध कर।'

यह सुनकर उस महादैत्यने भयानक गर्जना की और वह विविध प्रकारके अस्त्रोंद्वारा प्रहार करने लगा। उसने अनेक प्रकारकी मायाएँ रचीं, किंतु मायापतिके सम्मुख उसकी एक न चली। मयूरेशने अपने त्रिशूलसे प्रहार किया ही था कि कमलासुरका मस्तक कटकर भीमानदीके दक्षिणी तटपर जा गिरा। मयूरेश कृष्णा नदीके उत्तरी तटपर थे।

'मयूरवाहन मयूरेशकी जय।' सम्पूर्ण असुर-सैन्यके विनाशसे प्रसन्न होकर देवताओं, मुनियों और शिवगणोंने बार-बार उच्चस्वरसे उद्घोष किया—'मयूरवाहन मयूरेशकी जय! मयूरवाहन मयूरेश की जय !!'

फिर प्रमथ-गणोंसे आवृत उमा-महेश्वर और गौतमादि ऋषि मयूरेशके समीप पहुँचे। विजयसे आह्लादित शिव पुत्रको गले लगाकर उसके सिरपर हाथ फेरने लगे। आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी और मुनिगण पार्वतीनन्दन मयूरवाहन मयूरेशकी स्तुति करने लगे।

विश्वकर्माने वहाँ गणोंसहित पार्वती-महेश्वर और मुनियोंके रहनेके लिये अत्यन्त सुन्दर नगर और एक अत्यन्त अद्भुत मन्दिरका निर्माण कर दिया। पार्वतीसहित भगवान् शंकर वहीं रहने लगे। मुनिगण तपस्यामें निरत हुए। ब्राह्मणोंका भजन-पूजन आरम्भ हुआ और मयूरेश बालकोंके साथ पूर्ववत् क्रीड़ा करने लगे।

महर्षियोंने उक्त पवित्र क्षेत्रका नाम रखा—'मयूरेश'।*

बाल-विनोद

मङ्गलमूर्ति भगवान् मयूरेशकी प्रत्येक लीला प्रेरक, सुखद एवं मनको मुग्ध कर देनेवाली थी। प्राकट्य-कालसे ही वे पुण्यात्माओं, तपस्वियों एवं सदाशय व्यक्तियोंके हित-साधनमें संलग्न थे। असुर-विनाश उनका लक्ष्य था। वे ब्रह्मादि देवताओं, ऋषियों, शिवगणों एवं मुनिपुत्रोंको भी अपनी अनिर्वचनीय शक्ति एवं महिमाके कभी-कभी दर्शन करा देते थे।

मयूरेशका तेरहवाँ वर्ष प्रारम्भ हुआ। वे बालकोंके साथ क्रीड़ा-रत थे। उसी समय मङ्गल-नामक दैत्य कज्जलगिरि-तुल्य वराहके रूपमें वृक्षोंको ध्वस्त करता हुआ मुनि-पुत्रोंके सम्मुख आया। उसके नेत्र प्रज्वलित अग्निकुण्डके समान लाल-लाल थे। उस कुपित एवं काल-तुल्य वराहको देखकर मुनि-पुत्र किंकर्तव्यविमूढ एवं स्वेद-सिक्त हो गये।

दैत्य-सूदन उछले। उन्होंने असुरको सोचनेका अवसर दिये बिना ही उसके दोनों दाँत पकड़ लिये। वराह गुर्रा भी नहीं पाया था कि अत्यन्त चपलतासे सर्वशक्तिमयने उसके वज्र-तुल्य दाँतोंको नीचे-ऊपर इतने जोरसे झटका दिया कि असुर पीड़ासे चिल्ला उठा। मयूरेशने उसके दाँतोंको नीचे-ऊपर झटका देते तथा पीछे ढकेलते हुए शिथिल ही नहीं कर दिया, उसे मार डाला।

'पार्वती-पुत्र ! धन्य हो ! धन्य हो !!' उस विशाल वराहके संहारसे चकित और प्रसन्न होकर मित्र-मण्डली मयूरेशकी प्रशंसा करने लगी।

एक दिनकी बात है; कर्पूरगौरने देखा, ललाटपर चन्द्रमा नहीं था। 'सुधांशु क्या हुआ ?' लीलामय शिव इधर-उधर देखने लगे। गणोंने बताया—'प्रभो ! सुधांशुको लेकर मयूरेश क्रीड़ा करने चले गये हैं।'

'तुमलोग इतने असावधान कैसे रहते हो ?' रोषमयी मुद्रामें लीलामयने कहा—'जाओ ! सुधांशुको ले आओ।'

शिवगण दौड़े। मुनि-पुत्रोंके साथ क्रीड़ा-रत मयूरेशके समीप पहुँचकर उन्होंने कहा—'मयूरेश ! तुम भगवान् शिवके पास चलो, अन्यथा चन्द्रमा दे दो।'

'मैं त्रिभुवनको उत्पन्न करनेवाली अमित महिमाशालिनी जननीका पुत्र हूँ। इस कारण तुम-जैसे गणोंकी तनिक भी चिन्ता नहीं करता।' मयूरेशने गणोंको उत्तर दिया और दूसरे ही क्षण शिवगण उनके श्वास-वायुसे पत्तेकी तरह उड़ते हुए परम प्रभु शिवके समीप पहुँच गये।

उनकी दशा देखकर कुपित पार्वतीनाथने प्रमथादिकोंको आज्ञा दी—'तुमलोग मयूरेशको पकड़ लाओ।'

प्रमथादि गण मयूरेशको पकड़नेके लिये क्रीड़ा-रत बालकोंके समीप पहुँचे; किंतु विनायकने उन्हें मोहित कर दिया और स्वयं अदृश्य हो गये। प्रमथादि गण मयूरेशको घर-घर और वनोंमें ढूँढ़ने लगे।

'हमलोग तुम्हें पकड़कर प्रभुके सम्मुख ले चलेंगे।' मयूरेशके दर्शन हुए तो प्रमथादिकोंने कहा और उन्हें पकड़नेके लिये दौड़े। मयूरेश कभी प्रकट और कभी गुप्त

* मोरेश्वर

हो जाते थे। प्रमथगण थककर चूर और खिन्न हो गये, तब कृपामय मयूरेश उनके हाथ आ गये। प्रमथगण बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें बाँधकर अपने स्वामीके समीप ले चले। कुछ दूर चलनेपर मयूरेश जडवत् बैठ गये। प्रमथगणोंने उन्हें उठानेका प्रयत्न किया, पर वे हिल भी न सके। तब उन्हें उठानेके लिये सबने मिलकर अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी, पर मयूरेश भूधर-तुल्य अडिग हो गये थे; अपने स्थानसे टस-से-मस नहीं हो सके।

'प्रभो! हम तो उन्हें लानेमें सफल नहीं हुए। हमारी शक्ति व्यर्थ हो गयी।' प्रमथगणोंका संवाद पाकर नीलकण्ठने नन्दीको आज्ञा दी—'तुम जाओ और मयूरेशको शीघ्र ले आओ।'

'प्रभो! आपकी आज्ञासे मैं सूर्य, चन्द्र और शेषको समाप्त कर सकता हूँ; मयूरेशकी क्या गणना है?'—नन्दीने स्वामीके चरणोंमें प्रणाम किया और मयूरेशको पकड़नेके लिये द्रुतगतिसे चल पड़े।

नन्दी मुनि-पुत्रोंके साथ क्रीड़ा करते मयूरेशके समीप पहुँचे। क्रोधसे उनके नेत्र लाल हो गये थे। उन्होंने कठोर शब्दोंमें कहा—'तुम स्वामीके पास चलो, नहीं तो मैं स्वयं तुम्हें पकड़कर ले चलूँगा। मुझे प्रमथादि गणों-जैसा न समझो।'

नन्दीका अहं-भाव देखकर व्यक्ताव्यक्तस्वरूप मयूरेशने श्वास छोड़ा। उस श्वासचक्रसे नन्दी रक्तका वमन करते हुए पृथ्वीपर गिरकर मूर्च्छित हो गये। दो मुहूर्तके अनन्तर मूर्च्छा-भङ्ग होनेपर लज्जित नन्दी शिवके समीप पहुँचे तो अत्यन्त चकित हुए। उन्होंने देखा, दिव्य वस्त्राभरण धारण किये देदीप्यमान मयूरेश अपने पिता शिवके अङ्कमे विराजमान हैं और चन्द्र देवाधिदेव महादेवके भालपर सुशोभित हैं।

'प्रभो! सुधांशु तो आपके मस्तकपर विराजित हैं।'

नन्दीके वचन सुन शोकशूल-निर्मूलन शिवने अपने भालपर चन्द्र देखकर कहा—'अरे हाँ, चन्द्रमा तो ललाटपर ही है। मैंने व्यर्थ ही प्रमथादि गणोंको कष्ट दिया।'

प्रमथगणोंने शिवसे प्रार्थना की—'प्रभो! ये मयूरराज आजसे हमारे स्वामी हों।'

गणोंने शिव, गणेश और गणेश-जननीके चरणोंमें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रणाम कर प्रसन्नतापूर्वक गर्जना की—'जय गणराज! जय गणपति!! जय गणेश!!! जय मयूरवाहन मयूरेश!!!!'

विवाहका निश्चय

मयूरेशकी तेरहवीं वर्ष-गाँठपर गौतमादि ऋषिगण माता पार्वतीके समीप पहुँचे। पार्वतीने उनकी पूजा की। ऋषियोंके परामर्शके अनुसार इन्द्र-याग प्रारम्भ हुआ। उसी समय वहाँ कल और विकल-नामक दो असुर प्रचण्ड महिषके वेषमे पहुँच गये। वे दोनों विकट असुर मयूरेशके हाथों मुक्त हुए।

मयूरेशके द्वारा अपनी उपेक्षा देखकर देवेन्द्र कुपित हुए; पर उन चिदानन्दके सम्मुख उनका गर्व खर्व हुआ। उन्होंने देवदेव मयूरेशके चरणोंमें प्रणाम करके उनकी स्तुति की। वे निर्विकार मयूरेशके द्वारा क्षमा प्राप्तकर आश्वस्त हुए।

पार्वतीनन्दनने पंद्रहवें वर्षमें प्रवेश किया। एक दिन सिन्धुप्रेरित एक महादैत्य व्याघ्रके रूपमें मयूरेशके सम्मुख पहुँचा। वह शिवनन्दनको मारकर खा जाना चाहता था, किंतु पराक्रमी मयूरेशके द्वारा स्वयं काल-कवलित हुआ।

सूर्यनन्दन यम सदसद्रूप मयूरेशपर क्रुद्ध हुए, पर उनका अहंकार नष्ट हुआ। उन्होंने निखिलसृष्टिनायक गणपतिसे क्षमाकी याचना की।

इस प्रकार अत्यन्त बलवान्, विद्या-विनय-सम्पन्न, अद्भुत प्रतिभाशाली, अप्रतिम शूर मयूरेशकी ख्याति सर्वत्र फैल गयी। इस कारण एक दिन माता पार्वतीने अपने प्राणवल्लभ शिवसे प्रार्थना की—'प्रभो! मयूरेश पंद्रह वर्षका हो गया। यह अत्यन्त सुन्दर, सुशील, बुद्धि-वैभव-सम्पन्न, शूरवीर एवं सर्वसद्गुण-सम्पन्न है। अतएव अब इसका विवाह कर देना चाहिये।'

'तुमने बड़ी सुन्दर बात कही। मैं भी इसके परिणयके पक्षमें हूँ।' इतना कहकर श्रीसदाशिव सोचने लगे—'मयूरेशके अनुकूल कन्या कहाँ प्राप्त होगी?'

उसी समय वहाँ ब्रह्मपुत्र देवर्षि नारद पहुँचे। माता पार्वतीने उनका स्वागत-सत्कार कर उन्हें श्रेष्ठ आसन प्रदान किया।

भगवान् शंकरने नारदजीसे कहा—'मुनिवर! आप बहुत दिनोंके बाद यहाँ पधारे; मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। आप

कृपापूर्वक परम मेधावी रूप-गुण-सम्पन्न मयूरेशके योग्य कोई कन्या बतलाइये। इसकी माता पुत्र-विवाहके लिये आतुर हैं।'

'कन्या—एक नहीं दो हैं।' अत्यन्त प्रसन्नताके साथ नारदजीने उत्तर दिया—'ब्रह्मदेव आपके पुत्रका यश सुनकर पुलकित हैं। सिद्धि और बुद्धि-नामक उनकी दो कन्याएँ हैं। दोनों कन्याएँ सौन्दर्य, शील, गुण, कर्म आदि प्रत्येक दृष्टिसे अनुकूल एवं मङ्गलमयी हैं। स्वयं पद्मयोनिने मयूरेशके विवाहके लिये मुझे आपकी सेवामें प्रेषित किया है। आपलोग कृपापूर्वक यह सम्बन्ध स्वीकार कर लें।'

महर्षि नारदके ये वचन सुनकर भगवान् शंकर और जगज्जननी पार्वती अत्यन्त प्रसन्न हुईं। देवता, ऋषिगण, शिवगण और मुनि-पुत्र—सभी आनन्दित हुए। मङ्गल-यात्रा प्रारम्भ हुई।

भगवान् शंकर माता पार्वतीके साथ नन्दीपर बैठे थे। इन्द्रादि देवगण और ऋषिगण प्रसन्नतापूर्वक चल रहे थे। मयूरेश अपने वाहन मयूरपर बैठे थे। महर्षि नारद आकाशमार्गसे और शिवगण अपने शस्त्रास्त्रसहित यात्रा करते हुए हर्षोत्फुल्ल थे। मङ्गल-वाद्य बज रहे थे। आकाश धूलिकणोंसे आच्छादित हो रहा था। विशाल समूह आनन्दमग्न था।

मयूरेशकी प्रतिज्ञा

भुजगेन्द्रहार शिव बृहत्तम समुदायके साथ गण्डकी-नगर जानेवाले मार्गसे जा रहे थे। उन्हें बीचमें ही सात कोटि प्रचण्ड असुर-योद्धाओंका शिविर मिला। वे सभी युद्धप्रिय असुर अत्यन्त उद्दण्ड थे। शिवका विशाल जन-समुदाय देखकर असुर-सेनापतिने मार्ग अवरुद्ध कर दिया।

उद्धत सेनापतिने कहा—'तुमलोग कौन हो, कहाँसे आ रहे हो और कहाँ जाओगे? तुम दैत्यराज सिन्धुकी आज्ञा प्राप्त किये बिना यहाँसे आगे नहीं बढ़ सकते।'

मयूरेशने तुरंत उत्तर दिया—'मैं साधुपुरुषोंका संरक्षक एवं दैत्यों और असुरोंका संहार करनेवाला पूर्ण स्वतन्त्र हूँ। अतएव तुम मुझे जाने दो; अन्यथा यहीं ससैन्य मारे जाओगे।'

गणराजके अत्यन्त कर्णकटु वचन सुनते ही असुर क्रोधसे उन्मत्त हो गया। उसके नेत्रोंसे ज्वाला निकलने लगी। बोला—'तुम्हीं लोग मेरे आहार हो।' और उसने तत्क्षण असुरोंको आक्रमण करनेकी आज्ञा दे दी।

मयूरराज भी कुपित हुए। उन्होंने मुनि-पुत्रोंको दर्भास्त्र-प्रयोगकी आज्ञा दे दी।

मुनि-पुत्रोंने हाथमें जल लेकर संकल्प किया। मन्त्र-पाठके अनन्तर जल छोड़ते ही दर्भके अत्यन्त छोटे-छोटे टुकड़े असुर-सैन्यमें फैल गये* और असुर-सेनाकी नासिका, कान, आँख और श्वासके साथ उसके लघुतम खण्ड हृदयमें प्रविष्ट होने लगे।

वीर असुर-सैनिक छींकने लगे; उनके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे। कानमें दर्भके छोटे-छोटे टुकड़े प्रविष्ट होनेसे वे बहरे हो गये। उनका श्वास अवरुद्ध हो गया। कुछ ही क्षणोंमें असुरोंकी विशाल वाहिनी कुछ ही निरस्त्र ब्राह्मण-बालकोंद्वारा समाप्त हो गयी।

ब्राह्मण-बटुकोंने गणेशसे कहा—'गुणेश्वर! तुम्हारी कृपासे हमने सम्पूर्ण असुरोंका संहार कर दिया। अब तुम जो आज्ञा दो, हमलोग वही करें।'

उक्त स्थानपर उपस्थित ऋषि-वृन्द बालकोंके दर्भास्त्रसे महान् असुर-सैन्यका विनाश देखकर अत्यन्त चकित हुए। पार्वतीने अपने पुत्रको गोदमें उठा लिया। भगवान् शंकरने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—'बेटा गुणेश! आज मैंने तेरा पराक्रम देख लिया। तुम्हारी शक्ति देवगण नहीं जानते और फिर तू क्या-क्या करेगा, यह भी विदित नहीं।'

विजयी मयूरेश आगे चले। उनके पीछे मुनि-पुत्र थे। उनके बाद वृषभारूढ़ उमा-महेश्वर, देवता, ऋषि और शिवगण आदि प्रसन्न होकर चलने लगे। शिवके साथ यह बृहत् समुदाय सिन्धुकी राजधानी गण्डकी-नगरसे एक योजन दूर था, तभी मयूरेश अपने वाहनसे उतर गये।

वहाँ मयूरेशने एक अतिशय सुन्दर बहुमूल्य विस्तीर्ण सिंहासन स्थापित किया। उसपर पार्वती, शिव और ऋषियोंको बैठाया। उस समय वाद्य बजने लगे।

---

* पहले इस अस्त्रका प्रयोग उन्मत्त सम्राट् दण्डोद्भवके लिये भगवान् नरने किया था।

('कल्याण'—'श्रीविष्णु-अङ्क', पृष्ठ २०२)

मयूरेशने सबके सम्मुख कहा—"मेरी प्रतिज्ञा है कि मैं महादैत्य सिन्धुके कारागारसे देवताओंको मुक्त किये बिना अपना विवाह नहीं करूँगा। अतएव आपलोग किसी बुद्धिमान् पुरुषको बलवान् दैत्यराजके पास भेजकर अनुरोध करें कि 'वह देवताओंको कारागारसे मुक्त कर दे।' उसके अस्वीकार करनेपर मैं उसे पराजित कर देवताओंको उसके बन्धनसे छुड़ाऊँगा और तभी मेरा विवाह हो सकेगा।"

गुणेश्वरके वचन सुन ब्रह्मदेवने कहा—'मयूरेश! तुम्हारी प्रतिभा बृहस्पति-तुल्य है। यद्यपि तू बालक है, पर तूने अत्यन्त उचित बात कही है। देवताओंकी ओरसे वार्ता करनेके लिये नीति-निपुण पुष्पदन्तको भेजना चाहिये। पुष्पदन्त चतुर वक्ता एवं बलवान् हैं; उन्होंने महिम्नःस्तोत्रके द्वारा महेश्वरको संतुष्ट कर लिया है।'

ब्रह्मदेवका प्रस्ताव श्रवण कर पुष्पदन्तने गणेशसे निवेदन किया—'मयूरेश! आपकी महिमा मन और वाणीसे परे है। मायामोहित जीव आपकी महिमा नहीं जानते। नित्यज्ञान-स्वरूप मयूरेश! आपने भू-भार-हरण करनेके लिये शिवके घरमें अवतार लिया है। आप सर्वज्ञ और सर्वान्तर्यामी हैं। इस कार्यके लिये कृपया मुझे न भेजकर, किसी दूसरेको भेज दें। अत्यन्त उद्धत और पराक्रमी सिन्धुके सम्मुख होते ही मैं क्रुद्ध हो जाऊँगा; नीति और मर्यादाकी रक्षा नहीं कर पाऊँगा। मैं उससे समरभूमिमें ही मिलूँगा।'

माता पार्वतीने कहा—'पुष्पदन्त! तुमने अत्यन्त प्राचीन नीतिकी बात कही है; क्योंकि शत्रु क्रोधी, बलवान् और सामके योग्य नहीं है। पर षडाननको भेजा जाय तो वह इसे पकड़ लेगा, वीरभद्रको भेजा जाय तो यह तुरंत क्रुद्ध हो जायगा, शृङ्गी तो वहाँ जानेपर युद्ध कर बैठेगा और प्रमथको भेजा जाय तो पता नहीं, वह क्या कर डाले! भूतराज भी इसके उपयुक्त नहीं और रक्तलोचन तो स्त्री-सौन्दर्यमें ही भूल जायगा।'

इस प्रकार माताके द्वारा सबका निषेध करनेपर मयूरेशने कहा—'नन्दी अवश्य ही अत्यन्त धीर, वीर, गम्भीर, बुद्धिमान्, धूर्त और दूसरेका आशय समझनेवाले हैं, इसलिये इन्हें भेजा जाय।'

भगवान् शंकरने कहा—'मयूरेश! तुमने उत्तम निर्णय किया। नन्दीको विविध रत्न और वस्त्र दो।'

मयूरेशने नन्दीको वस्त्राभूषण देकर कहा—'आप उसी नीतिका अनुसरण करें, जिससे बंदी देवता मुक्ति प्राप्त कर लें।'

नन्दीने मयूरेश एवं गौरी-शंकरके चरणोंमें प्रणाम किया तथा फिर गणोंके साथ समस्त देवताओंकी वन्दना कर समयके अनुसार कहा—'प्रभो! आप जिसपर अनुग्रह करते हैं, वही श्रेष्ठ हो जाता है। अतएव मैं श्रेष्ठ नीतिका पालन कर आपका प्रयोजन सिद्ध करूँगा। आपके प्रसादसे निश्चय ही मैं सम्पूर्ण पृथ्वी, शेष और सूर्यको पकड़कर आपके सम्मुख ला सकता हूँ।'

इस प्रकार कहकर नन्दी गणेश, शिव एवं जगज्जननी पार्वतीका स्मरण करते हुए वायुवेगसे चले। वे अपनी प्रतिज्ञा-पूर्तिके लिये अपने आराध्य शिवा-शिवसे मन-ही-मन प्रार्थना करते जा रहे थे।

महादैत्य सिन्धुसे वार्ता

नन्दी सीधे सिन्धुकी राजसभाके द्वारपर पहुँचे। द्वारपालने सिन्धुको इसकी सूचना दी। नन्दी असुरराजकी सभामें पहुँचे। वह सभा विशाल और अतिशय सुन्दर थी। उस समय अङ्गरक्षकोंसे घिरा रत्नसिंहासनासीन सिन्धु वाराङ्गनाके नृत्यका आनन्द ले रहा था। मधुर वाद्य बज रहे थे।

नन्दी असुरोंको ऐसे प्रतीत हुए, जैसे राजसभामें साक्षात् सूर्यदेवका आगमन हुआ हो। कुछ असुर नन्दीकी सुदृढ काया और उनकी महती शक्तिका अनुमान कर भयभीत हुए एवं कुछ डरसे काँपने लगे। संकेतानुसार नन्दी आसनपर बैठे। सभा सर्वथा नीरव हो गयी। असुर जैसे काष्ठ-पुत्तलिका बन गये थे।

देवगुरु बृहस्पतिकी भाँति परम बुद्धिमान् नन्दीने सिन्धु-दैत्यसे कहा—'असुरराज! आजतक मैं कितनी ही राजसभाओंमें गया, किंतु तुम्हारे-जैसा मूढ अन्यत्र नहीं देखा। तुमलोग अत्यन्त बलवान् और सुन्दर हो, किंतु भेड़िये-जैसे बुद्धिहीन हो।* अपनी सभामें आये सम्मानित, बलवान् और बुद्धिमान् पुरुषका स्वागत करना नीति है, किंतु उसे तुम्हारे यहाँ न देखकर मैं अत्यन्त चकित हूँ।

---

* सुन्दराः कामसदृशा बुद्ध्या हीनाः वृका इव।

(गणेशपु० २।१११।८)

तुम्हारे अमात्य; सभासद् और समस्त नागरिक भी महामूर्ख हैं; क्योंकि यह धर्म केवल राजाका नहीं; अमात्यादिका भी है ।'

गुणेशके शान्तिदूत नन्दीके वचन सुन सिन्धुने कहा—'गुणाकर ! तुम्हारी बुद्धि ब्रह्माके समान है । तुम्हारा तेज अग्नि-तुल्य प्रतीत हो रहा है । वृषवर ! तुम कौन हो, कहाँसे आये हो और तुम्हारा उद्देश्य क्या है ?'

नन्दीने उत्तर दिया—"मैं ब्रह्माण्डाधिपति भगवान् शूलपाणिका वाहन हूँ । मेरा नाम नन्दी है । उन भगवान् शिवके घरमें दुष्टोंका संहार कर पृथ्वीका भार उतारनेके लिये गुणेश अवतरित हुए हैं । वे अबतक सहस्रों वीराग्रणी असुरोंका वध कर चुके हैं । उनकी महिमाका गान करनेमें शेष भी समर्थ नहीं । तुम उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर लो; अन्यथा तुम्हारा सर्वनाश निश्चित है । उन मयूरेशने कहा है कि—'तुम बंदी देवताओंको मुक्तकर सानन्द जीवन-निर्वाह करो । अन्यथा मैं युद्धके लिये विवश हूँ ।'"

नन्दीके वचन सुनकर सिन्धु अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा । उसके नेत्र लाल हो गये और वह अग्नि-तुल्य जलन पैदा करनेवाली वाणी कहने लगा—'वृषभ-पुत्र ! तेरी बृहस्पति-तुल्य बुद्धिमानी व्यर्थ होगी । तू मेरे पौरुषको नहीं जानता । मैंने जिन देवताओंको अपने बाहुबलसे बंदी बनाया है, वे युद्धमे मुझे पराजित करनेपर ही मुक्त हो सकेंगे । तृणपर जीवन-निर्वाह करनेवाले शिव मेरे भयसे मारे-मारे फिर रहे हैं और तू उसके दुधमुँहे बालकका मुझे भय दिखाता है । भला, शृगाल सिंहके सम्मुख क्या कर सकता है ? तू शान्ति-दूत होकर आया है, अन्यथा तेरे दुर्वचनसे यहाँ तेरे प्राण चले जाते । अरे वृष ! मेरे कुपित होनेपर उन्हें त्रिभुवनमें भी शरण नहीं मिलेगी ।'

सिन्धुके विषदग्ध वाक्शरसे क्षुब्ध होकर नन्दीने कहा—'असुराधम ! तेरी बुद्धि विपरीत हो गयी है । इसी कारण तू संनिपातग्रस्तकी भाँति प्रलाप कर रहा है । नीतिके उपदेश खलोंको प्रभावित नहीं करते । तू शिव और उनके सर्वशक्तिसम्पन्न महान् पुत्र मयूरेशकी निन्दा करता है । इससे प्रतीत होता है कि तेरी मृत्यु तेरे सिरपर नाच रही है । यहीं मैं ही तुझे मृत्यु मुखमें ढकेल देता, किंतु मेरे शान्तिप्रिय स्वामीकी आज्ञा नहीं है ।'

इस प्रकार कहते हुए नन्दीने हुंकार किया । फलस्वरूप कितने ही भयभीत असुर पृथ्वीपर गिर पड़े । नन्दीने हर्षपूर्वक गर्जना की और तुरंत अपने स्वामी शिवके पास चले आये ।

उन्होंने पार्वती-शिव तथा अन्य देवर्षियोंके सम्मुख मयूरेशसे कहा—'स्वामिन् ! मैंने सम्राट् सिन्धुकी भर्त्सना करते हुए उसे समझाया; पर उस मूढ़मति असुरपर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा । अब उसपर आक्रमण करना ही श्रेयस्कर है ।'

नन्दीके वचनसे प्रसन्न होकर मयूरेशने प्रमथगणों और सभासदोंको आक्रमणकी आज्ञा देते हुए कहा—'हमें युद्ध प्रिय नहीं । हम शान्तिकामी हैं, पर युद्धके बिना सत्त्वगुणी निरीह देवताओंकी मुक्ति सम्भव नहीं; इस कारण हमें असुरोंका प्राण-हरण करना ही होगा । यह हमारा परम पवित्र धर्मयुद्ध है । यह रणका अवसर हमें बड़े भाग्यसे प्राप्त हुआ है और असुरोंकी पराजय होकर ही रहेगी । सुनिश्चित विजयश्रीकी प्राप्तिके लिये हमें तुरंत प्रबल आक्रमण करना चाहिये ।' यों कहकर मयूरेशने सिंह-गर्जना की ।

'मयूरेशकी जय !' प्रमथादि गणोंके सामूहिक उद्घोषसे आकाश गूँज उठा ।

युद्धारम्भ

सन्नद्ध प्रमथादिगण प्रस्तुत थे । मयूरेशने अपने करकमलोंमें चारों आयुध धारणकर मयूरपर बैठते ही गर्जना की । मयूरेश-वाहिनी चली । त्रिशूल लिये वृषभारूढ़ शिव भी उनके साथ थे ।

नन्दीने मयूरेशसे निवेदन किया—'स्वामिन् ! आपकी वाहिनीके साथ गणनायक वीरभद्र और मैं ही शत्रुओंका सर्वनाश करनेमे समर्थ हूँ । आप पहले अपने सेवकोंका पराक्रम देखिये; फिर हमसे बचे-खुचे असुरोंका संहार कर लीजियेगा ।'

अत्यन्त प्रसन्न होकर परम पराक्रमी मयूरेशने कहा—'अच्छी बात है । तुम सिंधु-दैत्यके सम्मुख अपना शौर्य-प्रदर्शन करो । वीर्यवान् भूतराज, पुष्पदन्त और एक करोड़ गणोंके साथ पहले तुम्हीं जाकर युद्ध करो ।'

'जय मयूरेश !' नन्दीने गर्जना की ।

सिन्धुके दस करोड़ असुर-सैनिक गण्डकी-नगरसे बाहर निकले । वे अत्यन्त वीर, धीर, पराक्रमी, युद्धमें दक्ष एवं विविध शस्त्रास्त्रोंसे सज्ज थे ।

असुरोंकी सेना सम्मुख आयी और प्रमथादि गणोंके साथ नन्दीने उनपर आक्रमण कर दिया। भयानक युद्ध हुआ। विविध प्रकारके शस्त्रास्त्रोंकी वर्षा हुई। असुरोंके शवसे धरती पटने लगी। अन्ततः राक्षसोंकी विशाल सेना समाप्त हो गयी।

कुछ बचे सैनिक भागकर सिन्धुके समीप गये और बोले—'असुरराज! मयूरेशकी सेनाने हमारे सुदक्ष दस करोड़ वीर-सैनिकोंको काट डाला। उन्होंने नगरकी सीमापर, काननों, प्रमुख मार्गों एवं महत्त्वके सभी स्थलोंपर अधिकार कर लिया है। आप शीघ्रता करें, अन्यथा सम्पूर्ण नगर ध्वस्त हो जायगा।'

'अरे! मेरी अजेय वाहिनी तुच्छ गणोंसे पराजित कैसे हो गयी? पतंगोंके आक्रमणसे क्या मन्दरगिरि समाप्त हो जायगा?' सिन्धु व्यग्र हो गया। उसकी यह दशा देखकर उसके शेष वीर सैनिकोंने कहा—'राजन्! आप निश्चिन्त रहें। हमे आज्ञा दें। हम मयूरेश-वाहिनीको मक्खियोंकी तरह मसल देते हैं।'

'मेरे वीर सैनिको! तुम तुरत जाओ और शत्रुको युद्धमें पराजित कर दो।' सिन्धुकी आज्ञा प्राप्तकर उसके वीर सैनिक गर्जन करने लगे। विशाल राक्षसी सेना धरतीको कँपाती गण्डकी-नगरसे बाहर निकली। स्वयं सिन्धुने शस्त्र धारण किया और अश्वपर आरूढ हो युद्धभूमिमे जा डटा।

असुरोंने भयानक आक्रमण किया, किंतु नन्दी, भूतराज और पुष्पदन्तकी सेना पराक्रममें कम नहीं थी। घमासान युद्ध हुआ, पर शिव-वाहिनीके पैर उखड़ते देख भूतराज और पुष्पदन्त मयूरेशके समीप पहुँचे। युद्धमें अपनी सेनाके शिथिल होनेका समाचार पाकर स्वयं मयूरेश अपने शस्त्र धारणकर मयूरपर आरूढ़ हुए। वे तीव्रगतिसे युद्धभूमिमें पहुँचे। वृषभारूढ़ शिव भी समरके लिये जा डटे।

नन्दीने मयूरेशके चरणोंमे प्रणामकर भीषण गर्जना की। इस भयानक युद्धमे नन्दीके प्रहारसे सिन्धुका अश्व मारा गया और उसका दीप्तिमान् ध्वज टूटा। असुरने दूसरे अश्वपर बैठकर नवीन छत्र धारण किया, तब नन्दीने उससे कहा—'असुरराज! तुम्हारा पराक्रम कहाँ गया?'

'शत्रु सैन्यका विनाश किये बिना हम आपको मुँह नहीं दिखायेंगे। आप तनिक भी चिन्ता न करें।'—सिन्धुके अन्यतम प्रीतिभाजन वीर अमात्य कौस्तुभ और मैत्र दो असुरोंने उसे संतोष दिया और वे तुरंत युद्ध-भूमिमें चले गये।

मयूरेशकी सेना इन योद्धाओंका आक्रमण न सह सकी। रात्रि आरम्भ हो गयी और दैत्य विजयी हुए। हर्षमे भरे कुछ दैत्य गर्जन करते और सिन्धु दैत्यकी जय मनाते नगरमे प्रविष्ट हुए।

वीरभद्र और षडानन मयूरेशके समीप पहुँचे तो उन्होंने अपने कुछ और गणोके साथ उन्हे तुरंत पुनः आक्रमण करनेकी आज्ञा दी।

विजयोन्मत्त असुरोपर षडानन और वीरभद्र शिव-गणोंके साथ टूट पड़े। इस युद्धमें षडानन मूर्च्छित हो गये, पर मैत्र और कौस्तुभ मारे गये। अवशिष्ट असुर भाग गये। विजय मयूरेशको सेनाके हाथ लगी। हर्षोन्मत्त गणोंने गगनभेदी गर्जन किया—'जय मयूरेश! जय गणेश!! जय विनायक!!!'

* * *

असुर-सैन्यकी पराजय

अपने सैनिकोंकी पराजयके संवादसे असुरराज सिन्धु अत्यन्त चकित, विस्मित और खिन्न हुआ। उसने असुर-सैनिकोंसे कहा—'वीरो! त्रैलोक्यको पराजित करनेवाले असुरोंको पराजयका मुँह देखना पड़े, यह कितने आश्चर्यकी बात है? निश्चय ही तुमलोग परम पराक्रमी और रणाङ्गणमे शत्रुके मस्तकोंको कन्दुककी तरह उछालनेवाले हो। अब चक्रपाणि-पुत्र मैं शत्रुसे युद्ध करूँगा। तुमलोग शत्रुओंका सर्वनाश करनेके लिये प्रस्तुत हो जाओ।'

सेनाको आज्ञा देकर सिन्धु-दैत्यने शस्त्रास्त्र धारण किये और वह अश्वपर आरूढ़ हो गया। उसके साथ अमर्षमय गन्धासुर, मदनकान्त, वीर, ध्वज, महाकाय, शार्दूल और धूर्त—ये सात महारथी अपने-अपने सैनिकोंके साथ चले। उन सातों असुरोंने समर-भूमिमें पृथक्-पृथक् व्यूहकी रचना की।

उधर युद्ध करनेके लिये सर्वप्रथम मयूरारूढ गणपति चले। तदनन्तर महाबलवान् नन्दी और पुष्पदन्त बढे। भूतराज और विकट दस लाख योद्धाओंके साथ थे। युद्धमें जयकी कामना करनेवाले चपलके सैनिक अर्बलक्ष थे। वीरभद्र और षडानन असंख्य सैनिकोंके साथ वहाँ पहुँचे। इन

सातों सेनानायकोंने पृथक्-पृथक् अपनी अद्भुत सात व्यूह-रचना की।

भीषण युद्ध प्रारम्भ हुआ। दोनों ओरके पराक्रमी सैनिक शत्रुको परास्त करनेके लिये विविध प्रकारके शस्त्रास्त्रोंकी वर्षा करते थे, किंतु मयूरेशकी वाहिनी प्रबलतर होती जा रही थी। उस दिन युद्धमें सिन्धुके परम पराक्रमी गन्धासुर, मदनकान्त, वीर, ध्वज, महाकाय, शार्दूल और धूर्त—ये सातों सेनानायक परलोक सिधारे। असुरोंको आशातीत दुःखद पराजय प्राप्त हुई।

मयूरेशकी सेनामें विजय-दुन्दुभि बज उठी।

'जय मयूरेश!' शिवगणोंने उच्च स्वरसे हर्ष व्यक्त किया—'मयूरेशकी सदा जय!!'

सिन्धु-पराजय

अपनी पराजयका संवाद पाकर सिन्धु अत्यन्त खिन्न हुआ। उसका मुख मलिन हो गया। दुःखसे विकल होकर वह सोचने लगा—'यह सर्वथा विपरीत कैसे हो रहा है? देवताओंका दलन करनेवाले मेरे अन्यतम वीर सैनिक कैसे मार डाले गये? जिनके सम्मुख देवता मच्छरकी तरह भागते थे, उन्हें शिवके नगण्य बालकने यमपुरी कैसे भेज दिया?'

इस प्रकार सोचते हुए सिन्धु धनुष-बाण तथा अन्य अस्त्र लेकर अश्वारूढ़ हुआ और अत्यन्त कुपित होकर मयूरेशकी सेनाके सम्मुख पहुँचा। उस समय सिन्धु साक्षात् काल प्रतीत हो रहा था। उसने तीक्ष्णतम शरोंकी इतनी वर्षा की कि देवता तथा शिवगण त्राहि-त्राहि करने लगे। कुछ ही देरमें उस महादैत्यने मयूरेशके अधिकांश सैनिकोंका नाश कर दिया। उसकी शस्त्र-वर्षासे वे कहीं भाग भी नहीं सकते थे। अवशिष्ट मयूरेश-वाहिनी अतिशय व्याकुल हो गयी।

क्रोधोन्मत्त असुर सिन्धु अश्वसे उतरकर पैदल युद्ध करने लगा। उसने वीरवर वीरभद्रका पैर पकड़ लिया और उन्हें घुमाकर इतने जोरसे पृथ्वीपर पटका कि वे फिर उठ न सके। फिर उसने नन्दीके मस्तकपर इतना तीव्र प्रहार किया कि उनका मस्तक फट गया, रक्तकी धारा फूट पड़ी।

यम-तुल्य सिन्धुने भूतराजकी कमर तोड़ दी और पुष्पदन्तका पेट चीर दिया। हिरण्यगर्भकी शिखा पकड़ उन्हें पृथ्वीपर पटका। बाणके प्रहारसे श्यामकण्ठका शिरश्छेद किया और वीर चपलकी टाँगें तोड़ दीं। रक्तलोचनका पैर पकड़कर पृथ्वीपर पटक दिया। सुमुख उसके हाथसे बचकर दूर भागे। तलवारके प्रहारसे भृङ्गीका उदर विदीर्ण हो गया। इस प्रकार पराक्रमी सिन्धुके प्रहारसे देवताओं और गणोंके निष्प्राण शरीरोंसे धरती पट गयी। हर्षित महादैत्यने मेघ-गर्जन किया। दिक्पाल आदि सभी पराजित हो गये। मुनियोंके साथ केवल मयूरेश ही युद्धरत थे।

मयूरेश विकराल असुर सिन्धुके सामने पहुँचे। वे रक्त-पिपासु सिन्धुको देखकर सिंहके सम्मुख गज-शावककी भाँति भयभीत हो गये।

मयूरेशको देखकर क्रोधोन्मत्त सिन्धुने कहा—'शिव-पुत्र! मैंने तेरे पौरुषकी बड़ी प्रशंसा सुनी थी; किंतु तू तो शृगालकी तरह काँप रहा है। तू तो मातृ-स्तनोंका पान कर गृहाङ्गणमें क्रीड़ा करनेवाला है। अरे मूर्ख! मैं तो यही सोच रहा हूँ कि तुम्हारे कोमल शरीरपर अपने तीक्ष्ण शरोंका प्रहार कैसे करूँ?'

मयूरेशने तुरंत उत्तर दिया—'पामर! तू प्रलाप क्या करता है? मैं तो तेरा क्षणार्द्धमें ही वध कर डालूँगा। तूने सूर्यप्रदत्त वरके प्रभावसे भयानक पाप किया है; अब तेरी मृत्यु समीप आ गयी है। मैं तेरा वध करके देवताओंको मुक्त करूँगा। अन्तकाल समीप आनेपर सारे पुरुषार्थ व्यर्थ हो जाते हैं। तू मेरे द्वारा मरकर दुर्लभ मुक्ति प्राप्त करेगा।'

सिन्धुने कुपित होकर कहा—'मूर्ख! जबतक मैं तेरा कोमल शरीर छिन्न-भिन्न नहीं कर देता, तबतक तू जल्पना कर ले। जो जिसका भक्त होगा, वह उसके लोक जायगा। तू व्यर्थ आत्म-प्रशंसा क्यों करता है?'

इतना कहकर सिन्धुने शत्रुजयी जिस शरका कभी प्रयोग नहीं किया था, उसे उसने सूर्य-देवका स्मरण कर अपने धनुष-पर रखा। उसने प्रत्यञ्चा कानतक खींची और उसे मयूरेशपर छोड़ दिया। किंतु मयूरेशने उक्त धनुष और बाणके लक्ष्यपर अपने वज्र-तुल्य परशुसे प्रहार किया। असुरका दुर्लभतम शर आकाशमें ही सैकड़ों टुकड़े होकर बिखर गया और उसके हाथके भी सैकड़ों टुकड़े हो गये। धनुष पृथ्वीपर गिर पड़ा।

क्रुद्ध दैत्यने मयूरेशपर चक्रसे प्रहार किया, किंतु गणेश्वरने तुरंत उसपर शूल फेंका। भयानक शब्दके साथ वह चक्र जल गया और शूल सिन्धुके वक्षःस्थलपर गिरा। उसके मुकुट तथा

कुण्डलसहित दोनों कान लिये वह शूल मयूरेशके पास लौट आया ।

छिन्नकर्ण सिन्धुने अत्यन्त व्याकुल होकर कहा—'तुमने अपना पौरुष प्रदर्शित कर लिया, अब मैं तुम्हारी नाक काटता हूँ।' इतना कहकर वह पराक्रमी असुर खड्ग लेकर गुणेशकी ओर दौड़ा ।

किंतु वह चकित हो गया । उसके चारों ओर विभिन्न रूपोंमें सायुध मयूरेश दीखने लगे । वह जिधर दृष्टि डालता, उधर ही चार आयुधोंसे विभूषित मयूरेश । लज्जित महादैत्यने अपने नगरमें जानेका विचार किया, किंतु उधर भी सायुध मयूरेशको खड़े देखा । आकुलतासे उसने नेत्र बंद कर लिये, पर हृद्देशमें भी वही मयूरेश ! असुरने नेत्र खोले तो सम्मुख चार आयुध धारण किये मयूरवाहन मयूरेश ।

पराजयसे दुःखी, चकित और लज्जित सिन्धु अपने भवनको लौटा और चुपचाप मुँह ढककर सो गया ।

मयूरेशने अपने मङ्गलमय विग्रहके अमृतमय वायुसे नन्दी, पुष्पदन्त, भूतराज, विकट, चपल और वीरभद्रादिको जीवित और स्वस्थ कर दिया । निद्रासे जगे व्यक्तिकी तरह सैनिकोंने मयूरेशसे निवेदन किया—'स्वामिन् ! कहाँ युद्ध करना है ?' किंतु सिन्धुकी पराजयके संवादसे वे सभी हर्ष-मग्न हो गये । मृत असुरादि परम प्रभुके मङ्गलमय धाम पहुँच गये थे ।

पत्नी-परामर्श

अत्यन्त दुःखी, उदास, म्लान वदन, निस्तेज, निष्फल और चिन्तित सिन्धु मुँह ढके पड़ा था । उसी समय उसकी वस्त्रालंकारभूषिता अनुपम लावण्यवती पत्नी दुर्गा उसके समीप गयी । उसने कहा—'स्वामिन् ! आप चिन्तित और उदास कैसे पड़े हैं ? प्रत्येक प्राणी ईश्वरके अधीन है; अतएव जो होना है, वह तो होगा ही, किंतु आप अपनी चिन्ताका कारण स्पष्ट करें तो मैं अपनी बुद्धिके अनुसार कुछ युक्ति बताऊँ ।'

दुर्गाकी मधुर वाणी सुनते ही गण्डकी-नरेश उठ बैठा और उससे कहने लगा—'प्रिये ! अत्यन्त दुःखकी बात है; मैं तुम्हें क्या बताऊँ ? रणमें मैंने सात कोटि देवता और शिवगणोंको धरतीपर सुला दिया, किंतु शिवके छोटे बच्चेने शूल फेंककर मेरे दोनों कान काट लिये । इसी कारण मैं लज्जावश मुँह छिपाये बैठा हूँ । तुम वह उपाय बताओ, जिससे मेरे शत्रुका वध हो ।'

'स्वामिन् ! आपने कोटि-कोटि शत्रुओंका वध कर वीर-धर्मका पालन करते हुए अद्भुत पराक्रम और पौरुषका परिचय दिया ।' दुर्गाने अपने पतिसे कहा—'किंतु स्वामिन् ! देवता, ब्राह्मण और गायसे द्वेष करनेवाला कभी यश नहीं प्राप्त कर सकता । इनसे द्वेष करनेसे कभी कल्याण नहीं होता । इनकी सेवा, वन्दन, ध्यान और पूजनसे ही इन्द्रादि देवताओंने सुस्थिर स्थान प्राप्त किया है ।* जैसा बीज बोया जाता है, वैसा ही अङ्कुर उत्पन्न होता है । अशुभ कर्मोंका परिणाम दुःख और शुभ कर्मोंका फल सदा सुख होता है । इस कारण सज्जन पुरुष सदा आदरपूर्वक शुभ कर्म करते और अपने शरीर, मन तथा वाणीसे सदा सबके हितका प्रयत्न करते रहते हैं ।'†

सिन्धु-प्रिया दुर्गाने आगे कहा—''इसके सर्वथा विपरीत आपके पुरुषार्थसे देवता और ऋषि पीड़ित हुए हैं । पुरुषार्थ तो धर्म-अर्थ-काम-मोक्षका साधक होता है । जिससे मन दूसरेके धनपर लुब्ध न हो, पर-स्त्रीकी ओर आकृष्ट न हो सके, वह 'पुरुषार्थ' है । जो अनिन्द्यकी निन्दा नहीं करते; जो शरणागतकी रक्षा करनेमें सतत तत्पर, धर्मपरायण और सम्पूर्ण भूतोंमें समदृष्टि-सम्पन्न हैं, वे 'पुरुषार्थी' कहलानेयोग्य हैं । स्वामिन् ! आप मेरी प्रार्थनापर ध्यान देंगे तो निश्चय ही आपका कल्याण होगा । आप समस्त सुरोंको मुक्त कर अखिललोकपालक मयूरेशकी चरण-शरण ग्रहणकर सानन्द जीवन व्यतीत करें । इसके विपरीत आपके निर्विघ्न सुखका अन्य कोई साधन या पथ नहीं दीखता ।''

मरणोन्मुख रोगीके लिये ओषधिकी भाँति दुर्गाके प्रीतिपूर्ण शुभ-वचन सिन्धुको विष-दग्ध शर-तुल्य प्रतीत हुए । क्रोधसे उसके नेत्र लाल हो गये । उसने कहा—'कल्याणि ! मैं तुम्हें चतुरा और बुद्धिमती समझता था, किंतु अपकीर्ति प्रदान करनेवाली तुम्हारी वाणी सुनकर मैं चकित हो गया हूँ । मैं मनसे भी कभी शत्रुकी प्रशंसा नहीं करता; युद्धारम्भ करके समर्पण करना तो

* न यशः प्राप्यते स्वामिन् गोब्राह्मणसुरद्विषाम् ॥
तद्द्वेषाच्चैव कल्याणं कस्यापि हि न जायते ।
सेवनाद् वन्दनाद्ध्यानात् स्मरणात् पूजनादपि ॥
देवैरिन्द्रादिभिः स्थानान्याप्तानि च स्थिराणि च ।
(गणेशपु० २ । ११७ । १३—१५)

† अशुभात् कर्मणो दुःखं सुखं स्याच्छुभकर्मणः ।
अतः सन्तः प्रकुर्वन्ति शुभं कर्म सदाऽऽदरात् ॥
हितं च सर्वजन्तूनां कायेन मनसा गिरा ।
(गणेशपु० २ । ११७ । १७-१८)

मैंने सीखा ही नहीं। मैं सुख-दुःख, यश-अपयश, लाभ-हानि और जीवन-मृत्युकी चिन्ता नहीं करता। रणमें विजय प्राप्त करनेसे त्रिभुवनमें ख्याति और मृत्यु प्राप्त होनेपर स्वर्गकी प्राप्ति होती है। युद्धसे विरत होकर शत्रुकी शरण जानेपर निश्चय ही मुझे लोकमें अयश और मृत्युके पश्चात् पूर्वजोंके साथ नरककी प्राप्ति होगी।'

अन्ततः सिन्धुने अपनी सहधर्मिणीसे अपने अन्तर्हृदयकी बात कह दी—'मैं जगद्गुरु देवदेव मयूरेशको अच्छी तरह जानता हूँ। लङ्काधिपति रावणके लिये भगवान् श्रीरामकी भाँति ये परमप्रभु मुझे मुक्त करनेके लिये ही अवतरित हुए हैं; किंतु मैंने रणाङ्गणमें उनका शिरश्छेद करनेका निश्चय कर लिया है। मैं कालको भी तुच्छ समझता हूँ। शूर जीवनमें अहंकार नहीं छोड़ते।'

इतना कहकर सिन्धु वस्त्राभूषण, केयूर, मुकुट, रत्नहार, धनुष, तूणीर, तलवार और ढाल आदि शस्त्र और शिरस्त्राण धारणकर राज-सभामें जाकर अत्युत्तम सिंहासनपर आसीन हुआ।

सिन्धु-पुत्र धर्म और अधर्मका वध

सिन्धु अपने त्रैलोक्य-विजयी वीर कौस्तुभ और मैत्रकी मृत्युपर दुःख प्रकट करते हुए अत्यन्त उद्विग्न हो गया। उस समय कल और विकल-नामक दो वीर असुरोंने मयूरेशकी सेनाको पराजित करनेकी आज्ञा माँगी। सिन्धुने उन दोनों सेनानायकोंकी प्रशंसा करते हुए उन्हें शत्रुको ध्वस्त करनेका आदेश दे दिया।

विशाल सैन्यके साथ कल और विकल रणाङ्गणमें पहुँचे। भीषण युद्ध हुआ। देव-सेनाका संहार होने लगा। फिर तो पुष्पदन्त और नन्दी असुरोंका नाश करने लगे। लाखों दैत्योंको मृत्युमुखमें झोंककर वीरवर नन्दी और पुष्पदन्त असुरके भीषणप्रहारसे मूर्च्छित हुए ही थे कि वीरभद्र और षडानन आगे बढ़े। उन्होंने राक्षसोंका बड़ा विनाश किया और अन्तमें वीरभद्रने कलके ऊपर पत्थर पटककर उसे मार डाला और विकल षडाननके कराघातसे मुक्त हुआ।

विजयी देव-सेना प्रसन्नमन शिविरमें पहुँची, किंतु सिन्धुका दुःख बढ़ता गया। उसे व्याकुल देखकर उसके वीर पुत्र धर्म और अधर्मने कहा—'हमारे वीर सैनिकोंने युद्धमें अद्भुत वीरताका परिचय देकर मुक्ति प्राप्त कर ली। अब आप हमें आज्ञा दें। हम शत्रु-सैन्यको नष्ट कर मयूरेशको बंदी बनाकर ही लौटेंगे। हमारे जीवित रहते आपके लिये चिन्ताका कोई कारण नहीं।'

सिन्धुने उन्हें प्रोत्साहित किया और वे दोनों धर्म और अधर्म गज, अश्व और पैदल असुरोंकी सेना लेकर युद्ध-भूमिमें जा डटे। उन्होंने इतना भयानक युद्ध किया कि वीरभद्र, हिरण्यगर्भ, भूतराज तथा मयूरेशकी सेना व्याकुल होकर भागने लगी। षडाननने अपने बारहों हाथोंसे भयानक युद्ध किया। फिर धर्म-अधर्म उनसे बाहुयुद्ध करने लगे। षडाननने उन दोनों असुरोंको एक साथ ऊपर उठा लिया और आकाशमें अनेक बार घुमाकर पृथ्वीपर जोरसे पटक दिया। धर्म और अधर्मके शरीर शतधा विदीर्ण हो गये। षडाननकी जय जयकार होने लगी। प्रसन्न मन देवताओंने विजयके हर्षमें उच्च घोष किया—'जय मयूरेश!'

सिन्धु-दैत्यकी पुनः पराजय

अपने पुत्र धर्म और अधर्मकी मृत्युका संवाद सुनकर सिन्धु मूर्च्छित हो गया। सचेत होनेपर वह करुणामूर्ति बना अवसन्न बैठा ही था कि उसकी लावण्यवती सहधर्मिणी केश बिखेरे करुण विलाप करती सभा-भवनमें पहुँची। उसका क्रन्दन सुनकर सभी सभासदोंके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे।

'मेरे दुधमुँहे बच्चोंको युद्ध करनेकी आज्ञा किसने दी?' रोती हुई दुर्गा कह रही थी। 'उन्हें मेरा आशीर्वाद भी नहीं लेने दिया गया। यदि मैं उन्हें आशिष् दे देती तो उनका संहार कदापि नहीं होता। मेरे आशीर्वादको विधाता भी नहीं टाल सकते थे।' दुर्गा उत्तरोत्तर रोती और विलाप करती जा रही थी। किसी प्रकार उसे पकड़कर अन्तःपुर भेजा गया।

महादैत्य सिन्धु अत्यन्त क्रोधोन्मत्त हुआ। उसने शस्त्रास्त्र ग्रहण किये और दाँत पीसता हुआ देव-सेनाका सर्वनाश करनेके लिये प्रस्थित हुआ। उसके पीछे असुरोंकी विशाल सेना भी जा रही थी।

वीरभद्रादि वीरोंने मयूरेशको सूचना दी—'हमारा संहार करनेके लिये पुनः काल-तुल्य सिन्धु ससैन्य आ गया है।'

मयूरेश प्रसन्न होकर मयूरपर आरूढ़ हुए। उन्होंने चारों आयुध धारणकर मेघ-गर्जन किया, किंतु षडाननने उनके समीप पहुँचकर कहा—'विघ्नराज! वीरभद्रादिकोंके

साथ मेरे रहते आप रण-भूमिमें न जायँ । हमारे पराक्रम-प्रदर्शनके अनन्तर आप युद्ध कीजियेगा ।'

इतना कहकर षडाननने मयूरेशके चरणोंमें प्रणाम किया और चतुरङ्गिणी सेनाके साथ शत्रुके सम्मुख जा डटे ।

देवताओं और असुरोंमें संग्राम छिड़ा । कई दिनोंतक भयानक युद्ध चलता रहा । उसमें दोनों पक्षोंकी हानि हुई, पर असुर अधिक मारे गये । अन्ततः सिन्धुने मायाका प्रयोग किया, तब मयूरवाहन रण-भूमिमें पधारे । उनके सम्मुख असुरकी प्रत्येक माया नष्ट हो गयी । प्रायः सभी असुर मार डाले गये । सिन्धुके मुकुट, कुण्डल तथा सभी शस्त्रास्त्र नष्ट हुए । वह भागकर अपने भवनमें छिप गया ।

महादैत्य सिन्धुकी मुक्ति

देवाधिदेव मयूरेश अपने गणोंसे घिरे सुन्दर सिंहासनपर आसीन थे । उन परमप्रभुकी गौतमादि ऋषिगण स्तुति करने लगे । उसी समय वहाँ माता पार्वती पहुँचीं; उन्होंने तुरत अपने पुत्रको अङ्कमें भर लिया । वे बोलीं—'बेटा ! तू युद्धमें बुरी तरह थक गया होगा ।' भगवान् शंकरने भी आते ही अपने प्राणप्रिय पुत्र मयूरेशका आलिङ्गन किया और कहने लगे—'तुमने इन्द्रादि देवताओंके लिये असाध्य कर्म कर दिया । परब्रह्मस्वरूप, चराचरगुरु, सर्वज्ञ और पृथ्वीका भार उतारनेमें तत्पर तुम्हें ब्रह्मादि देव भी नहीं जानते, फिर अन्य ऋषिगण कैसे जान सकेंगे ?'

इस प्रकार भगवान् शंकर कह ही रहे थे कि वहाँ देवर्षि नारदने पहुँचकर माता पार्वतीसे कहा—'माता ! मुझे यहाँ आये अधिक दिन बीत गये और दैत्य-वध सम्भव नहीं दीखता । दुष्ट सिन्धु न मरेगा और न मयूरेशका विवाह होगा; अतएव मुझे तो अब जानेकी आज्ञा प्रदान कीजिये ।'

महामुनि नारदके वचन सुन षडानन बोले—'निष्पाप महामुनि ! आप सर्वज्ञ होकर भी ऐसी बात कैसे कह रहे हैं ! आप सर्वगुणसम्पन्न और निर्गुण मयूरेशकी महिमा नहीं जानते; अन्यथा ऐसी बात नहीं करते ।'

'मैं तो प्रत्यक्ष सिन्धुकी मुक्ति देखकर ही आपलोगोंकी बात मान सकता हूँ ।' नारदजीने स्पष्ट कह दिया ।

'सर्वज्ञ ब्रह्मपुत्र मुनीश्वर ! अब मैं कुछ विचार किये विना सिन्धु-दैत्यकी जीवन-लीला समाप्त करूँगा ।' देवर्षिको उत्तर देते हुए मयूरेश अपने वाहन मयूरपर जा बैठे । उन्होंने नन्दी और भृङ्गीसे कहा—'मैं युद्ध करता हूँ, तुमलोग मेरा रण-कौशल देखो ।'

मयूरेशके पीछे नन्दी और भृङ्गी भी तीव्रगतिसे गण्डकी-नगरमें प्रविष्ट हुए । वीरभद्र और भूतराज भी वहाँ पहुँचे । उस समय धरती काँपने लगी ।

देवदेव मयूरेशके साथ चारों गण दुर्गपर चढ़ गये । यह समाचार सुनते ही सिन्धु अवसन्न हो गया । उसकी बुद्धि काम नहीं करती थी । रोती हुई उसकी पत्नी दुर्गाने कहा—'महाराज ! मैंने आपको पहले ही समझाया, पर आपने मेरी बात नहीं मानी । अब फल सामने आ जानेपर चिन्ता करनेसे क्या लाभ होगा ?'

तबतक भृङ्गी उड़कर सुवर्ण-रत्ननिर्मित शिखरपर पहुँच गये । उन्होंने सभा-मण्डपके बहुमूल्य स्तम्भोंको बलपूर्वक ध्वस्तकर उसके टुकड़ोंको चारों ओर फेंक दिया । युद्धावेशसे उनका मुख लाल हो गया था ।

यह देखते ही सिन्धु-दैत्यके असंख्य सैनिक ढाल-तलवार, धनुष-बाण, भाला और मुद्गर आदि लिये 'मारो ! मारो !!' चिल्लाते बाहर निकले । पराक्रमी असुर अपने प्राणोंपर खेल गये, किंतु कुछ ही देरमें उन्हें इन चार वीरोंने समाप्त कर दिया । एक भी असुर सैनिक शेष नहीं बचा ।

वे सिन्धुके भवनमें पहुँचे, जहाँ वह पर्यङ्कपर विश्राम कर रहा था । ये चारों उसके केश पकड़कर खींचने लगे । तब अत्यन्त क्रुद्ध सिन्धु-दैत्य बाहर निकला और भीषण युद्ध करने लगा ।

सिन्धु भयानक संग्राम कर रहा था । सहसा उसने मयूरेशके विराट् रूपका दर्शन किया । उनका मस्तक अन्तरिक्षको भी लाँघ रहा था, चरण पातालमें थे एवं कानोंसे दिशाएँ आच्छादित थीं । उन विराट् प्रभुके सहस्र सिर, सहस्र नेत्र, सहस्र हाथ और सहस्र पैर थे । उसे भगवान् सूर्यके वचनका स्मरण हुआ—'ऐसे ही पुरुषके हाथों तुम्हारा प्राणान्त होगा ।'

सिन्धुने मयूरेशपर एक-से-एक भयानक अस्त्रोंका प्रहार किया, किंतु देवदेव मयूरेश उन समस्त अस्त्रोंको विफल करके मयूरसे उतर पड़े । उन्होंने शुद्ध जलसे आचमन किया । फिर अमृतके बीजमन्त्रसे संयुक्त कर पवित्र मन्त्रका जप करते हुए दसों दिशाओंमें तेज बिखेरनेवाले अपने

परशुको अभिमन्त्रित किया और क्रोधारुणलोचन मयूरेशने उक्त परशुसे असुरकी नाभिपर प्रहार किया। वह परशु आकाश और दसों दिशाओंको निनादित करता तथा पृथ्वीपर विद्युत्तुल्य प्रकाश फैलाता धनुषपर शर-संधान करते हुए असुरकी नाभिमें प्रविष्ट हो गया। अमृतस्थलीके ध्वस्त होते ही महादैत्य सिन्धु कटे वृक्षकी तरह पृथ्वीपर गिर पड़ा।

मयूरेशके अनुग्रहसे उसे दुर्लभ मुक्ति प्राप्त हुई।

आकाशसे सुमन-वृष्टि होने लगी। मेघ मन्द-मन्द स्वरोंमें गर्जन करने लगे। सुखद वायु बहने लगी। दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं; गन्धर्व गान और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। देवता-मुनि और षडाननादि वीर आदिदेव मयूरेशकी गद्गद कण्ठसे स्तुति करने लगे—

परब्रह्मरूपं चिदानन्दरूपं सदानन्दरूपं सुरेशं परेशम्।
गुणाब्धिं गुणेशं गुणातीतमीशं मयूरेशमाद्यं नताः स्मो नताः स्मः॥
जगद्वन्द्यमेकं परोंकारमेकं गुणानां परं कारणं निर्विकल्पम्।
जगत्पालकं हारकं तारकं तं मयूरेशमाद्यं नताः स्मो नताः स्मः॥
महादेवसूनुं महादैत्यनाशं महापूरुषं सर्वदा विघ्ननाशम्।
सदा भक्तपोषं परं ज्ञानकोशं मयूरेशमाद्यं नताः स्मो नताः स्मः॥
अनादिं गुणादिं सुरादिं शिवाया महातोषदं सर्वदा सर्ववन्द्यम्।
सुरार्यन्तकं भुक्तिमुक्तिप्रदं तं मयूरेशमाद्यं नताः स्मो नताः स्मः॥
परं मायिनं मायिनामप्यगम्यं मुनिध्येयमाकाशकल्पं जनेशम्।
असंख्यावतारं निजाज्ञाननाशं मयूरेशमाद्यं नताः स्मो नताः स्मः॥
अनेकक्रियाकारणं श्रुत्यगम्यं त्रयीबोधितानेककर्मादिबीजम्।
क्रियासिद्धिहेतुं सुरेन्द्रादिसेव्यं मयूरेशमाद्यं नताः स्मो नताः स्मः॥
महाकालरूपं निमेषादिरूपं कलाकल्परूपं सदागम्यरूपम्।
जनज्ञानहेतुं नृणां सिद्धिदं तं मयूरेशमाद्यं नताः स्मो नताः स्मः॥
महेशादिदेवैः सदा सेव्यपादं सदा रक्षकं योगिनां चित्स्वरूपम्।
सदा कामरूपं कृपाम्भोनिधिं तं मयूरेशमाद्यं नताः स्मो नताः स्मः॥

सदा भक्तानां त्वं प्रसभपरमानन्दसुखदो
यतस्त्वं लोकानां परमकरुणामाशु तनुषे।
षडूर्मीणां वेगं सुरवर सदा नाशय विभो
ततोऽभुक्तिश्लाघ्या तव भजनतोऽनन्तसुखदात्॥
किमस्माभिः स्तोत्रं गजवदन ते शक्यमतुलं
विधातुं वा रम्यं गुणनिधिरसि प्रेम जगताम्।
न चास्माकं शक्तिस्तव गुणगणं वर्णितुमहो
त्वदीयोऽयं धाता निधिरिव जगत्सर्जनविधिः॥*

(गणेशपु० २ । १२३ । ४०-४९)

'जो परब्रह्मस्वरूप, चिदानन्दमय, सदानन्दरूप, देवेश्वर, परमेश्वर, गुणोंके सागर, गुणोंके स्वामी तथा गुणोंसे अतीत हैं, उन आदि ईश्वर मयूरेश्वरको हम नमस्कार करते हैं, नमस्कार करते हैं। जो एकमात्र विश्ववन्द्य और एकमात्र परम ओंकारस्वरूप हैं, जो गुणोंके परम कारण एवं निर्विकल्प हैं, उन जगत्के पालक, संहारक एवं उद्धारक आदि-मयूरेश्वरको हम नमस्कार करते हैं, नमस्कार करते हैं। जो महादेवजीके पुत्र, महान् दैत्योंके नाशक, महापुरुष, सदा विघ्न-विनाशक तथा सदैव भक्तोंके पोषक हैं, उन परम ज्ञानके कोष आदि-मयूरेश्वरको हम नमस्कार करते हैं, नमस्कार करते हैं। जिनका कोई आदि नहीं है, जो समस्त गुणोंके आदि-कारण तथा देवताओंके भी आदि-उद्भावक हैं, पार्वती-देवीको महान् संतोष देनेवाले तथा सबके द्वारा सदा ही वन्दनीय हैं, उन दैत्यनाशक एवं भोग तथा मोक्षके प्रदाता आदि-मयूरेशको हम नमस्कार करते हैं, नमस्कार करते हैं। जो परम मायावी (मायाके अधिपति) और मायावियोंके लिये भी अगम्य हैं, महर्षिगण जिनका सदा ध्यान करते हैं, जो अनादि आकाशके तुल्य सर्वव्यापक हैं, जीवमात्रके स्वामी हैं तथा जिनके असंख्य अवतार हैं, उन आत्मतत्त्वविषयक अज्ञानके नाशक आदि-मयूरेश्वरको हम

* इस स्तुतिकी महिमा इस प्रकार कही गयी है—

इदं यः पठेत् स्तोत्रं स कामांल्लभतेऽखिलान्॥
सहस्रावर्तनात्कारागृहस्थं मोचयेज्जनम्।
अयुतावर्तनान्मर्त्योऽसाध्यं यत्साधयेत्क्षणात्॥
सर्वत्र जयमाप्नोति श्रियं परमदुर्लभाम्।
पुत्रवान् धनवांश्चैव वशतामखिलं नयेत्॥

(गणेशपु० २ । १२३ । ५५-५७)

'जो इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह सम्पूर्ण मनोवाञ्छित कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। इसकी एक सहस्र आवृत्ति करनेसे मनुष्य कैदमें पड़े हुए अपने स्वजनको भी मुक्त कर सकता है। दस हजार बार इसका पाठ करनेसे मनुष्य असाध्य वस्तुको भी क्षणमात्रमें सिद्ध कर लेता है। उसे सर्वत्र विजय प्राप्त होती है; परम दुर्लभ लक्ष्मी उपलब्ध होती है। वह पुत्रवान् और धनवान् होता है तथा सबको वशमें कर लेता है।'

भारतके प्रमुख श्रीगणेश-विग्रह—१

बड़े गणपति—उज्जैन [पृष्ठ ४३८
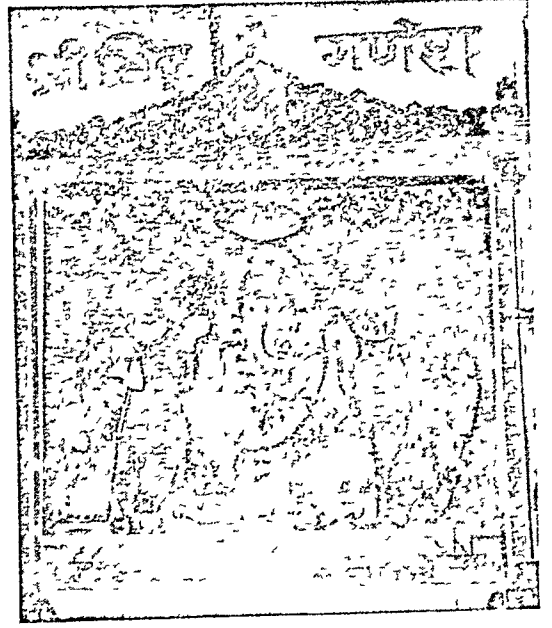
श्रीसिद्धिगणेश—भीलवाड़ा (राजस्थान) [पृष्ठ ४४०

पर्वतमें स्वतः प्रकट श्रीगणेश—रेजंतल (आन्ध्रप्रदेश) [पृष्ठ ४३५

श्रीढुण्ढिराज गणपति—बड़ोदा [पृष्ठ ४३७

भारतके प्रमुख श्रीगणेश-विग्रह—२

श्रीसिद्धगणेश, वृन्दावन [पृष्ठ ४५०

श्रीढुण्ढिराज-विनायक, वाराणसी [पृष्ठ ४४२
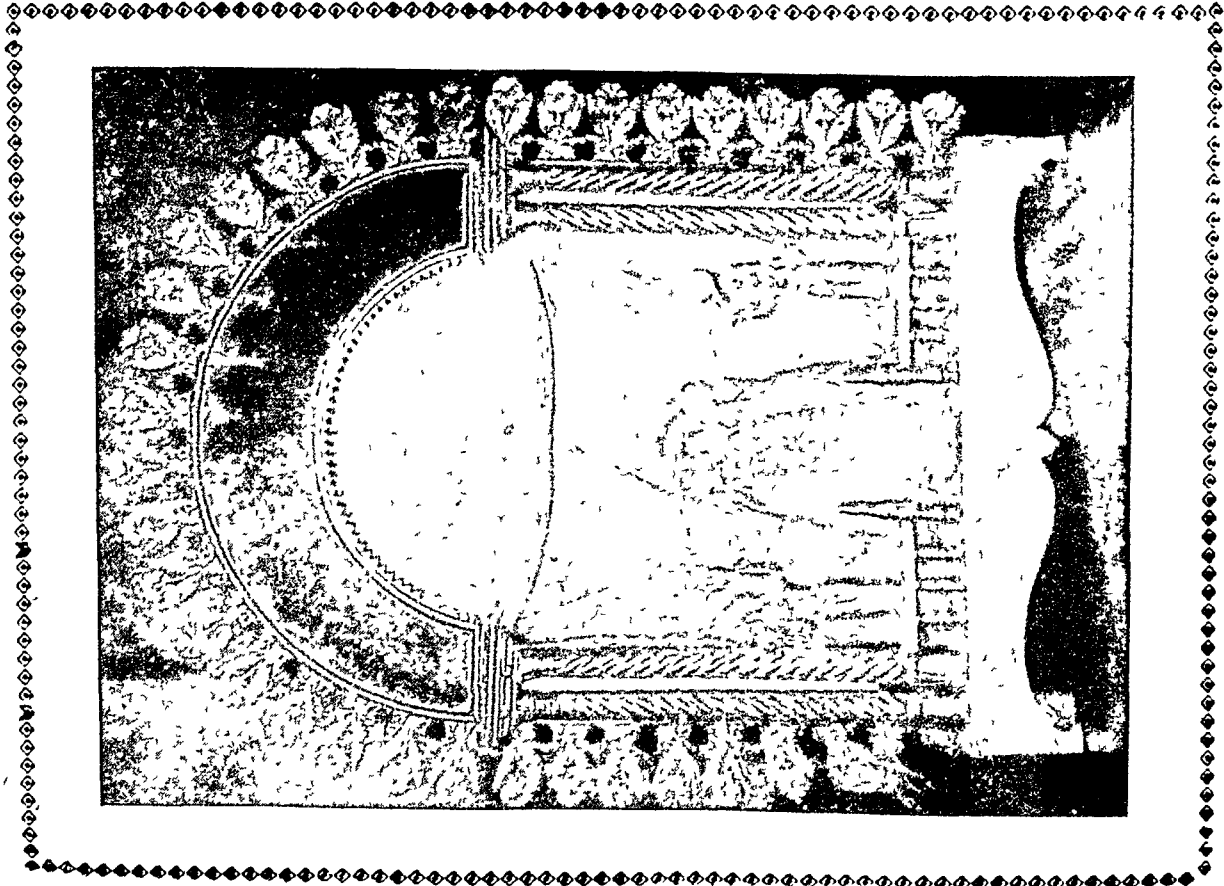
नमस्कार करते हैं, नमस्कार करते हैं। जो अनेकानेक क्रियाओंके कारण हैं, जिनका स्वरूप श्रुतियोंके लिये भी अगम्य है, जो वेदवोदित अनेकानेक कर्मोंके आदिबीज हैं, समस्त कार्योंकी सिद्धिके हेतु हैं तथा देवेन्द्र आदि जिनकी सदा सेवा करते हैं, उन आदि-मयूरेश्वरको हम नमस्कार करते हैं, नमस्कार करते हैं। जो महाकालस्वरूप हैं, लव-निमेष आदि भी जिनके ही स्वरूप हैं, जो कला और कल्परूप हैं तथा जिनका स्वरूप सदा ही अगम्य है, जो लोगोंके ज्ञानके हेतु तथा मनुष्योंको सब प्रकारकी सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं, उन आदि-मयूरेश्वरको हम नमस्कार करते हैं, नमस्कार करते हैं। महेश्वर आदि देवता सदा जिनके चरणोंकी सेवा करते हैं, जो योगियोंके नित्य रक्षक, चित्स्वरूप, निरन्तर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले और करुणाके सागर हैं, उन आदि-मयूरेश्वरको हम नमस्कार करते हैं, नमस्कार करते हैं। सुरश्रेष्ठ! आप सदा भक्तजनोंके लिये हठात् परमानन्दमय सुख देनेवाले हैं; क्योंकि आप संसारके जीवोंपर शीघ्र परम करुणाका विस्तार करते हैं। प्रभो! काम-क्रोधादि छः प्रकारकी ऊर्मियोंके वेगको शान्त कीजिये, क्योंकि आपके अनन्त सुखदायक भजनकी अपेक्षा मुक्ति भी स्पृहणीय नहीं है। हे गजानन! क्या हम आपके योग्य कोई उत्तम या सुन्दर स्तवन कर सकते हैं! आप समस्त गुणोंकी निधि और सम्पूर्ण जगत्के प्रेमपात्र हैं। आपके गुण-समूहोंका वर्णन करनेकी शक्ति हममें नहीं है। आपका जो यह जगत्की सृष्टि-रचनाका क्रम है, वह समुद्रके समान अपार है।'

इस प्रकार स्तुति करनेके अनन्तर देवताओंने कहा—'मयूरेश्वर! आपने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर दी। आपने असुरोंका वध कर देवताओंको निश्चिन्त और सुखी कर दिया।'

'मयूरेश्वरके द्वारा महादैत्य मारा गया।'—यह समाचार सुनते ही माता पार्वती आनन्द-विह्वल हो गयीं। उन्होंने आकर अपने परम पराक्रमी पुत्र मयूरेशको छातीसे लगा लिया। जननीके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु भर आये थे।

आनन्दमग्न पार्वतीवल्लभ शिव भी वहाँ पहुँचे। उन्होंने अपने पुत्रका आलिङ्गन करते हुए कहा—'बेटा! तुमने अद्भुत कार्य किया। जिस महादैत्यके भयसे देवता प्राण लिये भागते फिरते थे, उसे तुमने मारकर पृथ्वीका बोझ उतार दिया। त्रैलोक्य हर्षित हो गया।'

मयूरेश-स्तवनके अनन्तर देवगण स्वधाम पधारे।

लीला-संवरण

महावीर सिन्धुके निधनका संवाद जब नगरमें पहुँचा तो सिन्धुके माता-पिता उग्रा और चक्रपाणि तथा सहधर्मिणी दुर्गा हाहाकार करने लगी। उनके करुण-क्रन्दनसे सम्पूर्ण राजभवन शोकाकुल हो उठा। विलाप करती हुई दुर्गा अपने पतिके शवके साथ विल्व और चन्दनकी चितापर जा बैठी।

चक्रपाणिने देवदेव मयूरेशके समीप पहुँचकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर उनकी स्तुति करने लगे—'प्रभो! आप निर्गुण, चराचर-गति, गुणाध्यक्ष, शुद्ध और विश्वपति हैं। आपकी मायासे मोहित प्राणी आपको नहीं जानते। आपके दुर्लभ दर्शनसे आज मेरा और मेरे समस्त नागरिकोंका जीवन सफल हो गया। हम सभी धन्य हो गये।'

करुणासागर मयूरेशने अत्यन्त संतुष्ट होकर चक्रपाणिसे कहा—'नरेश! तुम्हारा वीर पुत्र मेरे हाथों मुक्त हुआ। अब तुम कोई वर माँगो।'

राजाने हाथ जोड़कर निवेदन किया—'देवेश्वर! यदि आप मुझपर संतुष्ट हैं तो कृपापूर्वक अपने त्रैलोक्यपावन चरण-कमलोंसे मेरे राज-भवन और नगरको पवित्र करें।'

करुणामूर्ति मयूरराजने स्वीकृति दे दी।

ध्वजा और पताका आदिसे सजे गण्डकी-नगरमें गणोंसहित मयूरराजने प्रवेश किया। राजा तथा समस्त प्रजाने उनका उन्मुक्त हृदयसे अभिनन्दन किया। मयूरेश चक्रपाणिकी सभामें अत्युत्तम सिंहासनपर विराजमान हुए। उनके चारों ओर गणोंका समुदाय था। चक्रपाणि-नरेशके द्वारा मुक्त किये गये नवीन वस्त्राभरण धारण किये विष्णु आदि समस्त देवता भी श्रेष्ठ आसनपर विराजमान थे।

समस्त देवताओं और नागरिकोंने उक्त विशाल रत्न-मण्डपमें देवदेव मयूरेशकी पूजा और स्तुति की। फिर नरेशने सम्पूर्ण देवताओंकी विधिवत् पूजा की और हाथ जोड़कर कहा—'आज मेरा जीवन और जन्म धन्य है, जिससे मुझे समस्त देवताओंका एक साथ दर्शन और पूजन-का परम पुनीत अवसर प्राप्त हुआ। मेरे शत-शत जन्मोंके पुण्य उदित होनेसे मुझे परम प्रभु मयूरेशके प्रत्यक्ष दर्शन हो रहे हैं।'

परम प्रभुकी अद्भुत लीलासे मोहित होकर मोहाच्छन्न इन्द्रने रुष्ट होकर कहा—'राजन्! आज इतने श्रेष्ठ देवताओं-

की उपस्थितिमें एक बालककी प्रथम पूजा करके तुमने बुद्धि-हीनताका परिचय दिया है। स्रष्टा पद्मयोनि, पालक विष्णु, सृष्टि-स्थिति-संहारकारिणी त्रैलोक्यजननी अम्बा और सूर्यादि महान् देवोंकी उपेक्षा करके तुमने एक बच्चेको सम्मान प्रदान किया, यह कदापि उचित नहीं था।'

चक्रपाणिने देवेन्द्रका समाधान करनेका प्रयत्न किया—'महामान्य सुरेन्द्र! रुद्र, सूर्य, कुबेर, इन्द्र, वायु, अग्नि आदि समस्त देवताओंको मेरे वीर पुत्रने पराजित कर दिया था। सभी देवता उसके भयसे छिप गये, बंदी हुए; किंतु परमपराक्रमी सर्वात्मा मयूरेशने मेरे पुत्रसहित समस्त योद्धाओंको मुक्ति प्रदान कर देवताओंको भी स्वतन्त्रता प्रदान की। मेरी दृष्टिमें इस धरतीका उद्धार करनेवाले सर्वसमर्थ सर्वप्रभु शिवा-शिवनन्दन मयूरेश ही अग्र-पूजाके अधिकारी हैं।'

उसी समय मयूरेशने भयंकर गर्जना की। उक्त गर्जनसे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो ब्रह्माण्ड फट जायगा। कितने ही लोग मूर्च्छित हो गये। पृथ्वी काँपने लगी। सहसा कोटि-कोटि सूर्य-तुल्य प्रकाशसे जगत् आच्छादित हो गया। तदनन्तर देवताओंने मयूरेशके रूपमें अनेक वस्त्रालंकार-विभूषित, दशबाहु अत्यन्त सुन्दर गजाननका दर्शन किया।

देवगण अत्यन्त विस्मित हुए। उन्हें तुरंत दशबाहु गजाननके स्थानपर मध्यमें पद्मासनस्थ वक्रतुण्ड, अग्निकोणमें शिव, नैर्ऋत्यमे सूर्य, वायव्यमें पार्वती और ईशानकोणमें बैठे नारायणके दर्शन हुए। समस्त देवता भ्रमित हो गये।

उस समय देवताओंने भ्रम-निवारिका आकाशवाणी सुनी—'सबकी आराधनाके योग्य अनादिनिधन जगद्व्यापी गजानन ही पाँचों रूपोंमें प्रकट होते हैं। वे समस्त विघ्नोंका नाश करनेवाले प्रभु देव, मनुष्य, यक्ष, नाग और राक्षस—सबके पूज्य हैं; इन एक मयूरेशकी पूजासे ही पञ्चदेवोंकी पूजा सम्पन्न हो जाती है; अतएव भेदबुद्धि नहीं करनी चाहिये।'

इन्द्रादि देवताओंने शुण्डदण्डसे सुशोभित मयूरेशको आदिपुरुष और ओंकारके रूपमें देखा, तब उनके भ्रमका निवारण हो गया और उन्होंने आदरपूर्वक 'मयूरेशकी जय' बोलते हुए उनकी पूजा की। फिर तो चक्रपाणिने अत्यन्त प्रसन्न होकर मयूरवाहन मयूरेशकी अत्यन्त श्रद्धापूर्वक पञ्चामृत, शुद्ध जल, दिव्य वस्त्र, आभूषण, पुष्प, धूप, दीप, विविध प्रकारके उत्तम नैवेद्य, फल, ताम्बूल, पुष्कल दक्षिणा, नीराजन, मन्त्र-पुष्प, नमस्कार और स्तुतिके द्वारा विधिपूर्वक पूजा की।

वहीं आनन्दित देवर्षिने ब्रह्मासे कहा—'कमलोद्भव! आपके आदेशानुसार मैंने पार्वती-शिवसे आपकी सिद्धि और बुद्धि दोनों पुत्रियोंका परिणय मयूरेशके साथ निश्चित कर दिया था, किंतु मयूरेशने देवताओंकी मुक्तिके पूर्व विवाह न करनेकी प्रतिज्ञा कर ली थी। वह प्रतिज्ञा उन्होंने पूरी कर दी। अब आप उन पुत्रियोंका विवाह परम पराक्रमी मयूरेशके साथ कर दें।'

विधाता अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने अपनी अनिन्द्य सुन्दरी, सद्गुण-सम्पन्ना सिद्धि-बुद्धिका विवाह विधिपूर्वक मयूरेशके साथ कर दिया और बोले—'मयूरेश! मेरी कामना आज पूरी हो गयी। आजतक मैंने बड़े ही प्यारसे इन पुत्रियोंका लालन-पालन किया है, अब इनकी रक्षा तुम करो।'

इन्द्रादि देवताओंने हाथ जोड़कर मयूरेशसे निवेदन किया—'प्रभो! आपने हमें पराधीनतासे मुक्त कर दिया और कृपापूर्वक आपने सिन्धुको भी मोक्ष प्रदान किया। अब आप आज्ञा दें, हम सब और गौतमादि ऋषि भी अपने-अपने धामको प्रस्थान करें।'

मयूरेशने आज्ञा प्रदान कर दी। समस्त देवताओं और ऋषियोंने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और सब अपने-अपने स्थानके लिये प्रस्थित हुए।

मयूरेश मोरपर आरूढ हुए। उन्होंने पार्वती-शिव और गणोंसहित अपने नगर जानेकी इच्छा व्यक्त की। चक्रपाणि-नरेश और समस्त नागरिक उन्हें पहुँचाने नगरसे बाहर एक योजन दूर आये। मयूरेशने जब उन्हें लौटनेके लिये कहा तो सबके नेत्र सजल हो गये। उन्होंने कहा—'प्रभो! आपका वियोग असह्य है। हमपर सदा कृपा रखें।' प्रेममूर्ति मयूरेशने उन्हें समझा-बुझाकर विदा किया और अपने नगर पहुँचे।

एक दिन मयूरेशने ब्रह्मदेव, विष्णु और शंकर आदि समस्त देवताओंके सम्मुख अत्यन्त मधुर वाणीमें कहा—'देवताओ! मैंने जिस उद्देश्यसे पृथ्वीपर अवतार ग्रहण किया था, वह पूर्ण हो गया। दैत्योंकी मृत्युसे धरतीका बोझ उतर गया और सिन्धु-कारागारसे मुक्त देवगण

स्वतन्त्र हुए। स्वाहा, स्वधा, वषट्कार पूर्ववत् होने लगा। अब मैं अपने धामको जाऊँगा।'

प्रभु मयूरेशके ये वचन सुनकर देवताओंके नेत्रोंसे अश्रु बह चले। उन्होंने कहा—'प्रभो! आप हमें छोड़कर कहाँ जा रहे हैं?'

मयूरेशके जानेकी बात सुनकर माता पार्वती तो मूर्च्छित हो गयीं। सचेत होनेपर वे रोती हुई बोलीं—'हे दीनानाथ! हे दयासागर! तुम माताको छोड़कर कहाँ जा रहे हो? मैं तुम्हारे बिना जीवित नहीं रह सकती।'

मयूरेशने जननीको समझाया—'माता आपके वियोगका दुःख मुझे भी है, पर मैं एक स्थानपर सदा नहीं रह सकता। एक भयंकर दैत्यका वध करनेके लिये मैं द्वापरमें पुनः आपके पुत्रके रूपमें प्रकट होकर आपको पुत्र-सुख प्रदान करूँगा। मेरा वचन मिथ्या नहीं होता।'

षडाननने व्याकुल होकर कहा—'आप जहाँ जाते हैं, वहाँ मुझे भी साथ ले चलें। मुझ कृपण, दीन और बालककी उपेक्षा न करें।'

परम प्रभुने रोते हुए षडाननको आश्वस्त किया—'भाई! तुम चिन्ता मत करो। मैं सर्वान्तर्यामी तुम्हारे हृदयमें भी हूँ। तुमसे मेरा वियोग कदापि सम्भव नहीं।'

तदनन्तर उन्होंने अपना मयूर षडाननको देते हुए कहा—'मयूरध्वज!'

और मयूरेश प्रभु वहीं अन्तर्धान हो गये।

जय मयूरेश्वर!
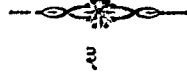
३

श्रीगजानन

सिन्दूरका जन्म

द्वापर युगकी बात है। एक दिन पार्वतीवल्लभ शिव ब्रह्म-सदन पहुँचे। उस समय चतुर्मुख शयन कर रहे थे। कमलासनने निद्रासे उठते ही जँभाई ली। उसी समय उनके मुखसे एक महावीर पुरुष प्रकट हुआ। जन्म लेते ही उसने त्रैलोक्यमें भय उत्पन्न करनेवाली घोर गर्जना की। उसके उस गर्जनसे सम्पूर्ण वसुधा काँप गयी, दिक्पाल चकित हो गये और शेषनाग क्षुब्ध होकर विष उगलने लगे। पर्वत खण्ड-खण्ड हो गये और मनुष्य-जाति तो कल्पान्तके भयसे अत्यन्त व्याकुल हो गयी।

उस महावीर पुरुषकी अङ्ग-कान्ति जपा-पुष्पके समान लाल थी और उसके शरीरसे अत्यन्त सुगन्ध निकल रही थी। वह पुष्पधन्वाकी तरह अत्यन्त सुन्दर था। उसके अनुपम रूप-सौन्दर्यको देखकर पद्मयोनि भी चकित हो गये। उन्होंने उससे पूछा—'तुम कौन हो? तुम्हारा जन्म कहाँ हुआ है और तुम्हें क्या अभीष्ट है?'

उक्त पुरुषने उत्तर दिया—'देवाधिदेव! आप अनेक ब्रह्माण्डोंका निर्माण करते हैं, सर्वज्ञ हैं; फिर अनजानकी तरह कैसे पूछ रहे हैं? जँभाई लेते समय मैं आपके मुखसे प्रकट हुआ आपका पुत्र हूँ, अतएव आप मुझे स्वीकार कीजिये और मेरा नामकरण कर दीजिये। हे नाथ! आप मुझे रहनेका स्थान और आहार प्रदान कीजिये तथा मुझे क्या करना है, यह भी बता दीजिये।'

विधाता अपने पुत्रका सौन्दर्य देखकर मुग्ध हो गये थे; अब उसकी मधुर वाणी सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—"बेटा! अतिशय अरुण वर्ण होनेके कारण तेरा नाम 'सिन्दूर' होगा। त्रैलोक्यको अधीन करनेकी तुझमें अद्भुत शक्ति होगी।"

अपने पुत्रसे अत्यधिक तुष्ट वेदगर्भने उसे वर प्रदान करते हुए आगे कहा—'तू क्रोधपूर्वक अपनी विशाल भुजाओंमें पकड़कर जिसे दबोच लेगा, उसके शरीरके सैकड़ों टुकड़े हो जायँगे। पञ्चभूतोंसे तुम्हें कभी कहीं भय नहीं रहेगा। देव, दानव, यक्ष और मनुष्यसे तू सदा निर्भय रहेगा। इन्द्रादि लोकपाल और काल भी तेरी क्षति नहीं कर सकेंगे। दिनमें और रात्रिमें भी तुझे कभी भय नहीं प्राप्त होगा। बेटा सिन्दूर! सजीव और निर्जीव किसी वस्तुसे तुझे भय नहीं; त्रैलोक्यमें तेरी जहाँ इच्छा हो, तुझे जो स्थान प्रिय लगे, वहीं निवास कर।'

पितामहसे इतने वर प्राप्तकर सिन्दूरने प्रसन्नतापूर्वक गर्जन किया। उसके अतिशय कर्कश स्वरसे समुद्र क्षुब्ध हो गये। उनमें ऊँची-ऊँची लहरें उठने लगीं। सिन्दूरने अपने पिताके चरणोंमें प्रणामकर कहा—'अखिल ब्रह्माण्डनायक! मैं आपके

वचनामृतसे अत्यन्त प्रसन्न हो गया। आप सत्त्व, रज और तम—तीनों गुणोंके योगसे विश्वकी रचना, पालन और संहार करते हैं। आपके शयन करनेसे सम्पूर्ण सृष्टि तमसाच्छन्न हो जाती है; सभी जीव शान्त हो जाते हैं। कोटि-कोटि कल्पोंतक कठोर तपश्चरण करनेपर आपके दुर्लभ दर्शनका सौभाग्य प्राप्त होता है और आप सहज ही मुझपर प्रसन्न हो गये; अतएव इससे बढ़कर मुझे और क्या चाहिये ?'

इतना कहकर उसने लोक-पितामहकी प्रदक्षिणा कर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और उनकी अनुमति लेकर वह भू-लोकके लिये प्रस्थित हुआ। सिन्दूर मार्गमें सोचने लगा—'जन्म लेकर मैंने तो जप, तप एवं वेदाध्ययन आदि कुछ भी नहीं किया, फिर पिताने मुझे इतने वर कैसे दे दिये ? उनका वर-प्रदान सत्य है कि नहीं, कैसे पता चले ? यहाँ कोई है भी नहीं, जिसे मैं आलिङ्गन कर वरका परीक्षण कर लूँ। कहाँ जाऊँ ? कहीं तो कोई नहीं दीखता।'

चतुर्मुख पलायित हुए

सिन्दूर वहींसे लौटा। वह सीधे पितामहके समीप पहुँचा। उसने अपनी दोनों भुजाओंको तौलते हुए गर्जना की। उसकी कुचेष्टाकी कल्पना कर भयभीत पद्मयोनिने दूर जाकर पूछा—'लौट कैसे आये बेटा ?'

'आपके वरकी परीक्षा करना चाहता हूँ।'

सिन्दूरका कथन सुनकर पितामहने उससे कहा—'सिन्दूर ! तेरे सौन्दर्यको देखकर मैंने तेरी कुटिलताका विचार किये बिना ही पुत्र-स्नेहवश तुझे वरदान दे दिया और तू उसकी परीक्षा मुझपर ही करना चाहता है ? मैं तेरी दुष्टता नहीं जान सका।'

अपने सुन्दर पुत्र सिन्दूरसे सावधान विधाता दूरसे ही दुःखभरे हृदयसे पश्चात्ताप करते हुए कह रहे थे—'विषधरको दुग्ध-पान करानेसे उसका विष ही बढ़ता है, यह मैं नहीं समझ पाया था। पर अब तू असुर हो जायगा। सिन्दूर-प्रिय सिन्दूरारुण प्रभु गजानन तेरे लिये अवतरित होंगे और निश्चय ही तुझे मार डालेंगे।'

इस प्रकार शाप देते हुए पितामह प्राण लेकर भागे। उनके पीछे अत्यन्त बलवान् वर-प्राप्त असुर भी दौड़ा। असुरकी तुलनामें लोकस्रष्टा दुर्बल थे; किंतु प्राण-रक्षाके लिये वे तीव्र गतिसे दौड़ रहे थे। मूढ़ असुर भी वरकी परीक्षा करनेके लिये उनके पीछे-पीछे दौड़ता जा रहा था। आगे-आगे विधाता और उनके पीछे-पीछे देखनेमें अतिशय सुन्दर, किंतु हृदयका अत्यन्त क्रूर कुटिल पुत्र उनको अपनी भुजाओंमें जकड़कर पीस डालनेके लिये दौड़ रहा था।

दौड़ते-दौड़ते वयोवृद्ध पितामहका शरीर पसीनेसे लथपथ हो गया। वे हाँफते-काँपते साँस लेनेके लिये जरा-सा रुकना चाहते थे, पर पीछे देखा तो चिरंजीव दौड़े आ रहे हैं। स्रष्टाने साहस किया। फिर दौड़े। दौड़ते-दौड़ते वे वैकुण्ठ पहुँचे।

अत्यन्त भयभीत, कम्पित, स्वेद-सिक्त, म्लानवदन स्रष्टा और उनके पीछे विशालकाय शक्तिशाली असुरको देखकर श्रीहरिने तुरंत उठकर पितामहका आलिङ्गन किया और उनका हाथ पकड़कर उन्हें अपने आसनपर बैठाया, उनकी पूजा की। फिर उन्होंने पूछा—'आप इतने भीत और उदास कैसे हैं ? आपका शरीर पसीनेसे भीग कैसे गया है ?'

भयभीत पितामहने निवेदन किया—'प्रभो ! मैं सो रहा था, उस समय दयामय कर्पूरगौर मेरे यहाँ पधारे। निद्रासे उठकर मैंने जँभाई ली, उसी समय यह अत्यन्त सुन्दर सिन्दूर पैदा हुआ। पुत्र-सौन्दर्यसे मुग्ध होकर मैंने इसे त्रैलोक्यको वशमें करनेका वरदान दे दिया और पुत्र-स्नेहके वश मैंने इसे किसीका आलिङ्गन करनेपर उसे समाप्त कर देनेका वर प्रदान कर दिया; किंतु यह दुरात्मा मुझे ही अपने भुज-पाशमें आबद्ध कर मार डालना चाहता है। दयामय ! इस दुष्टसे आप मेरी रक्षा कीजिये।'

श्रीविष्णुने कहा—'पितामह ! पहले बिना सोचे वर-प्रदान करनेका जो दुष्परिणाम होता है, वह तो होगा ही। मोहग्रस्त पिताके अविचारपूर्ण वरसे त्रिभुवनको यातना सहनी पड़ेगी।'

इस प्रकार ब्रह्मा और विष्णुमें वार्ता हो ही रही थी कि दौड़ता हुआ सिन्दूर आ पहुँचा। वह गर्जन करते हुए विधाताको अङ्क-पाशमें लेनेके लिये झपटा ही था कि वे चिल्ला पड़े—'प्रभो ! रक्षा कीजिये ! रक्षा कीजिये !!'

वर-प्राप्त सिन्दूरकी सुगठित प्रचण्ड काया देखकर श्रीविष्णुने अत्यन्त मधुर वाणीमें उस महामूढ़ असुरको समझाया—'बेटा ! तू शक्तिशाली तरुण है और पितामह वयोवृद्ध निर्बल ब्राह्मण हैं। अतएव इनसे युद्ध करनेमें तुम्हें किसी प्रकारका यश तो प्राप्त होगा नहीं, अपितु तुम्हारी सर्वत्र निन्दा होने लगेगी। अतएव इन्हें छोड़ दे।'

'तब तुम्हीं युद्ध करो।' सर्वथा मूर्ख, उद्दण्ड, प्रचण्ड असुर विष्णुकी ओर बढ़ा।

'अरे बेटा! मैं तो सत्त्वगुण-सम्पन्न होनेके कारण सृष्टिके पालनमें लगा रहता हूँ। इस कारण युद्धमें मुझे पराजित करना तुम्हारे लिये अत्यन्त सरल है।' श्रीविष्णुने असुरको वहाँसे हटानेका प्रयत्न किया—'हाँ, वीरतामें कामारि प्रसिद्ध हैं। तुम उनसे युद्ध करो; तब तुम्हें संतोष तो होगा ही, तुम्हारी कीर्ति भी बढ़ेगी।'

कैलासपर

त्रलोकास मूर्ख असुर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। वह बड़े वेगसे उड़ा। त्रिभुवनको कम्पित, पर्वतोंको चूर्ण और वनोंको ध्वस्त करता हुआ वह कैलासपर्वतपर पहुँचा। वहाँ आशुतोष शिव पद्मासन लगाये ध्यानस्थ थे। नन्दी और भृङ्गी आदि गण उन परम प्रभुके आसपास थे और माता पार्वती उनकी सेवा कर रही थीं।

भस्माच्छादित व्याघ्राजिनधर तपस्वी कर्पूरगौरके ललाटपर अर्धचन्द्र सुशोभित था। उनके विशाल स्कन्धपर गजचर्म पड़ा हुआ था। ऐसे परम पावन एवं परम शान्त त्रैलोक्य-त्राता शिवको देखकर सिन्दूर उनकी निन्दा करने लगा। उसने कहा—'इस अरण्यवासी तपस्वीसे क्या युद्ध करूँ! हाँ, इसकी परम सुन्दरी सहधर्मिणीको ही ले जाऊँ।'

यह सोचकर सिन्दूर सतीकी ओर मुड़ा ही था कि वे वट-पत्रकी भाँति काँपती हुई मूर्च्छित हो गयीं। महापापकी असुरने जगज्जननीकी वेणी पकड़ ली और उन्हें बलपूर्वक ले चला।

नन्दी और भृङ्गी आदि गण उक्त असुरका कुछ बिगाड़ न सके। सर्वथा असहाय और निरुपाय माता पार्वती रोती हुई विलाप करती जा रही थीं।

व्याकुल नन्दी और भृङ्गी आदि शिवगण हाहाकार करने लगे। अत्यधिक कोलाहलसे त्रिपुरारिकी समाधि भङ्ग हुई। त्रिनेत्रने गणोंसे चिन्ताका कारण पूछा तो अधीर गणोंने बताया—'प्रभो! आप प्रगाढ़ समाधिमें स्थित थे, उस समय अत्यन्त बलवान् पर्वताकार एक दैत्य आया। उसके गर्जनसे धरा काँपती थी, पर्वत चूर्ण होते जा रहे थे और वृक्ष टूट-टूटकर गिर पड़ते थे। उसे देखते ही माता काँपने लगीं और उसकी दृष्टि पड़ी तो वे भयवश मूर्च्छित हो गयीं। दुष्ट कुलघ्न असुर मूर्च्छित माता पार्वतीको बलात् ले गया। राक्षसराज दशाननके पुत्र ज्यों ही जनकनन्दिनीकी तरह माता रोती और विलाप करती जा रही थीं। हमलोग कुछ नहीं कर सके, हाथ मलते रह गये।'

क्रोधसे भगवान् शंकरके नेत्र लाल हो गये। उन्होंने तुरंत अपनी दसों भुजाओंमें त्रिशूलादि शस्त्रास्त्र धारण किये और वृषभपर आरूढ़ होते ही तीव्रतम गतिसे सिन्दूरकी ओर दौड़े तथा क्षणभरमें ही उसके समीप पहुँच गये। उन्होंने मदान्ध असुरके सम्मुख जाकर कहा—'महादुष्ट! मेरी पत्नीको तुरंत छोड़ दे। मेरी दृष्टिमें पड़कर तू भाग नहीं सकता।'

अतिशय गर्वोन्मत्त सिन्दूरने क्रोधपूर्वक उत्तर दिया—'मैं मच्छरके भिनभिनानेकी चिन्ता नहीं करता। मेरे श्वास वायुसे सुमेरु काँप जाता है, फिर तुझ तपस्वीकी क्या गणना है! तू यहाँसे सीधे जाकर किसी दूसरी स्त्रीसे विवाह कर ले; अन्यथा यदि युद्ध करना चाहता है तो आ जा।'

सिन्दूरका शिवसे युद्ध

इस प्रकार कटूक्ति कहकर दर्पोन्मत्त सिन्दूर त्रिपुरारिसे बाहु-युद्धके लिये आगे बढ़ा। अत्यन्त कुपित वृषभध्वज भी असुरसे युद्ध करनेके लिये प्रस्तुत थे ही; उसी समय माता पार्वतीने मन-ही-मन मयूरेशका चिन्तन किया। तत्क्षण कोटि-सूर्यसमप्रभ देवदेव मयूरेश्वर ब्राह्मणके वेषमें सिन्दूर और शंकरके बीच प्रकट हो गये। वे अत्यन्त सुन्दर एवं सर्वाभूषण-भूषित थे। उन्होंने अपने तीक्ष्णाग्र तेजस्वी परशुसे असुरको पीछे हटाकर अत्यन्त मधुर वाणीमें कहा—'माता गिरिजाको तुम मेरे पास छोड़ दो; फिर शिवके साथ युद्ध करो। युद्धमें जिसकी विजय होगी, पार्वती उसीकी होंगी; अन्यथा नहीं।'

ब्राह्मणवेषधारी मयूरेशके वचन सुनकर सिन्दूर सहमत हुआ। उसने माता पार्वतीको मयूरेशके पास बैठा दिया और फिर युद्ध आरम्भ हुआ। एक-प्रत्य असुर बलिष्ठ था और दैत्येश पराक्रमी और युद्धपटु थे। क्रोधसे उन दोनोंके नेत्र लाल थे। जब असुर भगवान् शिवको अपने मुष्टिप्रहारसे पीड़ित करता, तब मयूरेश अदृश्य रूपसे उसके विशाल वक्षपर अपने अँगूठेके नखसे प्रहार कर देते; वह छटपटा उठता। इस प्रकार अनेक बार पादुके आघातसे सिन्दूरकी शक्ति अत्यन्त क्षीण हो गयी। असुरके शिथिल होते ही मदनान्तकने उसपर अपने कठोर त्रिशूलका प्रहार किया।

आहत असुर गिर पड़ा। तब ब्राह्मण-वेषधारी मयूरेशने उससे कहा—'त्रैलोक्यका विनाश करनेवाले शिवको तुम युद्धमें पराजित नहीं कर सकते। इस कारण माता पार्वतीको छोड़कर यहाँसे चले जाओ, अन्यथा कालकण्ठ तुम्हें यहीं समाप्त कर देंगे।'

विवश हो सिन्दूरने पार्वतीकी आशा छोड़ दी और वह पृथ्वीके लिये प्रस्थित हुआ। शंकर विजयी हुए।

तब माता पार्वतीने ब्राह्मणसे कहा—'मुनिवर! पातकी असुरके करोंसे मुझे मुक्ति दिलानेवाले आप कौन हैं? आप कृपापूर्वक मुझे अपने वास्तविक स्वरूपका दर्शन कराइये। आप मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं। मुनिनाथ! मैं प्राण देकर भी आपकी कृपाका प्रतिदान देनेमें समर्थ नहीं हूँ।'

'माता! मैंने कुछ नहीं किया।' ब्राह्मणवेषधारी मयूरेशने उत्तर दिया—'भगवान् शंकरने ही असुरको पराजित कर आपको मुक्त कराया है।'

मयूरेश्वर अपने स्वरूपमें प्रकट हो गये। अत्यन्त सुन्दर दस भुजाएँ, मस्तकपर विद्युच्छटा बिखेरता मणिमय मुकुट, ललाटपर कस्तूरी-तिलक, कानोंमें झिलमिलाते कुण्डल, सुन्दर गोल कपोल, शुक-चञ्चु-तुल्य नासिका, वक्षपर अद्भुत मणियों एवं रत्नोंसे निर्मित दिव्य माला सुशोभित थी। वे मालाकी ओर देखकर मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे।

मयूरेश्वरको देखकर माता परमानन्दमें मग्न हो गयीं। उन्होंने अपना मस्तक मयूरेश्वरके चरणोंपर रखा ही था कि उन्होंने उन्हें तुरंत उठाकर कहा—"माता! त्रेतामें मैंने आपको पुनः दर्शन देनेके लिये कहा था; अतएव अब पुनः मैं इस द्वापरमें भी आपके पुत्रके रूपमें प्रकट होऊँगा। उस समय 'गजानन' मेरा नाम विख्यात होगा और मैं इस दुर्दान्त सिन्दूरासुरका वध कर धरतीका बोझ उतार दूँगा।'

मयूरेश्वर अदृश्य हो गये। स्नेहमयी माता पार्वती उनका वियोग न सह सकीं; तत्क्षण मूर्च्छित हो गयीं।

'प्रिये! तुम अपने मनको शान्त करो। तुम मयूरेशको अपने हृदयमें देखो। उन देवदेव विनायककी वाणी कभी मिथ्या नहीं होती। वे अपना कथन चरितार्थ करते ही हैं।' इस प्रकार भगवान् शंकरने माता पार्वतीको आश्वस्त किया और उनके साथ वृषभारूढ़ हो तीव्र गतिसे कैलासके लिये चल पड़े।

सिन्दूरासुरकी विजय

ब्रह्मदेवको पराजित करनेवाले वर-मदोन्मत्त मूढ़ सिन्दूरने मर्त्यधाममें पहुँचकर आसुरी गर्जना की। उसके गर्जनसे विशाल भूधर हिल उठे, वृक्ष समूल उखड़कर पृथ्वीपर गिरने लगे, भयाक्रान्त पक्षी आकाशमें उड़ गये और सिंहादि वन्य-पशु व्याकुल होकर अरण्यमें इधर-उधर भागने लगे।

दुष्ट सिन्दूरकी शक्ति देखकर उसके समीप अनेक उद्दण्ड आसुरी प्रकृतिके मनुष्य एकत्र हो गये। सिन्दूरके साथ उनकी निरङ्कुश दानवी प्रवृत्तियाँ तुष्ट होती जा रही थीं, इस कारण वे सभी शक्तिशाली सिन्दूरका सम्मान तो करते ही थे, उसकी रुचि और इच्छाकी पूर्तिके हेतु मर-मिटनेके लिये भी तैयार रहते थे।

इस प्रकार सिन्दूरकी शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। थोड़े ही समयमें उसके अधीन अत्यन्त निष्ठुर, क्रूरकर्मा, हिंसक असुरोंकी विशाल सेना एकत्र हो गयी। पितामहका अमोघ वर, अमित शक्ति, तरुणावस्था, तामसिक प्रवृत्तियोंका अहर्निश प्रभाव, विशाल वाहिनी और सर्वोपरि बुद्धिहीनता—ऐसी स्थितिमें ब्रह्मपुत्र सिन्दूरका नियन्त्रण कैसे सम्भव था?

उद्दण्ड एवं निरङ्कुश शक्तिशाली सिन्दूरने राजाओंपर आक्रमण किया। उसने अत्यन्त निर्दयतापूर्वक कितने ही नरेशोंको चीरकर उनके दो टुकड़े कर दिये और कितने राजाओंको आकाशमें फेंक दिया। उसके सम्मुख जो प्रजा-पालक राजा युद्ध करने आये, वे सब स्वर्गवासी हुए। कुछ नरपालोंने उसकी शरण ग्रहण कर ली, किंतु स्वाभिमानी नरेश अपना राज्य छोड़ अरण्यादिमें छिप गये और अनुकूल अवसरकी प्रतीक्षा करने लगे। इस प्रकार सिन्दूरने सम्पूर्ण नरपतियोंपर विजय प्राप्त कर ली।

इसके अनन्तर दुरात्मा सिन्दूर परम विरक्त ऋषियों और मुनियोंके पीछे पड़ा। उसने निस्स्पृह तपस्वी ऋषियोंको निर्दयतापूर्वक मार डाला और कुछ ऋषियोंको दण्ड देकर कारागारमें भेज दिया। शेष ऋषिगण भयवश गिरि-कन्दराओं एवं अरण्योंमें छिपकर जीवन-निर्वाह करने लगे। असुराधमने समस्त मन्दिरों एवं देव-प्रतिमाओंको नष्ट कर उन्हें धूलमें मिला दिया। उक्त असुर-शासनमें समस्त वैदिक क्रियाएँ

लुप्त हो गयीं। स्वाहा, स्वधा और वषट्कारके स्वर शान्त हो गये, सर्वत्र हाहाकार व्याप्त हो गया।*

पर्वतकी गुफाओंमें गुप्त-रीतिसे निवास करनेवाले देवता, मुनि, यक्ष और किंनरादि एकत्र होकर दुर्दान्त दानवके क्रूरतम शासनसे मुक्त होनेका उपाय सोचने लगे।

उस समय देवगुरु बृहस्पतिने कहा—"देवताओ और ब्राह्मणो! भगवान् विनायक सर्वत्र विद्यमान हैं। उनके रहते भयभीत होनेका कोई कारण नहीं। आप सब लोग उन देवदेव विनायककी प्रार्थना करें। वे दयामय 'गजानन'-नामसे भगवान् शिवके घर अवतरित होंगे और निश्चय ही असुराधम सिन्दूरका वध करेंगे। उस समय सम्पूर्ण जगत्की यातना दूर हो जायगी।"

सुरगुरु बृहस्पतिके ये वचन सुन देवगण करुणामय विनायककी स्तुति करने लगे—

जगतः कारणं योऽसौ रविनक्षत्रसम्भवः।
सिद्धसाध्यगणाः सर्वे यत एव च सिन्धवः॥
गन्धर्वाः किंनरा यक्षा मनुष्योरगराक्षसाः।
यतश्चराचरं विश्वं तं नमामि विनायकम्॥
यतो ब्रह्मादयो देवा मुनयश्च महर्षयः।
यतो गुणास्त्रयो जातास्तं नमामि विनायकम्॥
यतो नानावताराश्च यश्च सर्वहृदि स्थितः।
यं स्तोतुं नैव शक्नोति शेषस्तं गणपं भजेत्॥
सिन्दूरो निर्मितः केन विश्वसंहारकारकः।
तेनार्तिंप्रापितं विश्वं त्वयि स्वामिनि जाग्रति॥
अन्यं कं शरणं याम को नु पास्यति नोऽखिलान्।
जह्येनं दुष्टबुद्धिं त्वमवतीर्य शिवालये॥
(गणेशपु० २। १२९। १४-१९)

'जो जगत्के कारण हैं, सूर्य और नक्षत्रकी उत्पत्ति जिनसे हुई है, सिद्ध, साध्यगण और समस्त सागर जिनसे प्रकट हुए हैं, गन्धर्व, किंनर, यक्ष, मनुष्य, नाग, राक्षस तथा समस्त चराचर जगत् जिनसे प्रकट हुए हैं, उन भगवान् विनायकको हम प्रणाम करते हैं। जिनसे ब्रह्मा आदि देवता, मुनि, महर्षि और तीनों गुण प्रकट हुए हैं, उन विनायकको हम नमस्कार करते हैं। जिनसे नाना अवतारोंका प्रादुर्भाव होता है, जो सबके हृदयमें विराजमान हैं तथा शेषनाग भी जिनकी स्तुति करनेमें समर्थ नहीं हैं, उन भगवान् गणपतिका भजन करना चाहिये। जगत्का संहार करनेवाले इस सिन्दूरासुरका निर्माण किसने किया है? आप-जैसे स्वामीके जागरूक रहते हुए उस असुरने सम्पूर्ण विश्वको संकटमें डाल दिया है। इस दशामें हम आपको छोड़कर किसकी शरणमें जायँ? कौन हम सबका पालन करेगा? आप ही भगवान् शिवके घरमें अवतीर्ण हो इस दुष्टबुद्धि असुरका संहार कीजिये।'

इस प्रकार स्तुति कर देवता और मुनि, सभी तपस्यामें संलग्न हुए। कुछ देवता और मुनि निराहार रहकर, कुछ एक पैरपर खड़े होकर, कुछ अपने दोनों हाथ ऊपर उठाये और कुछ जलमें खड़े होकर विनायकका ध्यान और जप करने लगे। इस प्रकार देवताओं और ऋषियोंके कठोर तपसे देवदेव गणराज प्रसन्न हो उनके समक्ष प्रकट हुए।

वे अनेकों सूर्य और प्रलयाग्निके तुल्य तेजस्वी थे। देवता और मुनिगणोंने गणराजका दर्शन कर अत्यन्त प्रसन्नतासे उनके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर हाथ जोड़े अपलक दृष्टिसे वे उनके परम तेजस्वी मुखारविन्दकी ओर निहारने लगे।

भक्तवाञ्छाकल्पतरु गणेशने कहा—"देवताओ! मैं असुर सिन्दूरका वध करूँगा। तुमलोग निश्चिन्त हो जाओ। तुम्हारे द्वारा किया हुआ यह स्तवन 'दुःखप्रशमन-स्तोत्र'के नामसे प्रसिद्ध होगा।† जो इसका दिनमें एक बार, दो बार या तीन बार पाठ करेगा, उसके त्रिविध तापोंका शमन हो जायगा। मैं शिवके घरमें अवतरित होऊँगा। 'गजानन'—यह मेरा सर्वार्थसाधक नाम प्रसिद्ध होगा।

---

* अकरोद्दुष्टबुद्धिः स बबन्ध सहसा च तान्।
तदा केचिन्मुनिगणास्त्यक्त्वा देहं दिवं गताः॥
केचिच्च मेरुकन्दर्यां न्यवसन् विगतज्वराः।
केचिच्च निहतास्तेन केचिच्च ताडिता भृशम्॥
प्रासादाः सकलास्तेन विध्वस्ता देवता अपि।
एवं तु प्रलये जातेऽलुप्यन् क्रियाश्च वैदिकाः॥
स्वाहास्वधावषटकारा हाहाकारोऽप्यजायत।
(गणेशपु० २। १२९। ६-९)

† हनिष्ये सिन्दुरं देवा मा चिन्तां कर्तुमर्हथ।
दुःखप्रशमनं नाम स्तोत्रं वः ख्यातिमेष्यति॥
(गणेशपु० २। १२९। २६)

मैं सिन्दूरका वध कर पार्वतीके सम्मुख अनेक प्रकारकी लीलाएँ करूँगा।"

इतना कहकर गजानन अन्तर्धान हो गये।

श्रीगजाननका प्राकट्य

देवाधिदेव भगवान् शंकरके अनुग्रहसे माता पार्वतीने गर्भ धारण किया। वह गर्भ धीरे-धीरे बढ़ने लगा। माताका तेजोमय शरीर अत्यधिक उद्दीप्त हो उठा। माता पार्वतीने एक दिन अपने प्राणवल्लभ शिवसे निवेदन किया—'स्वामिन्! आप मुझे किसी शीतल-सुखद स्थानपर ले चलें।'

भगवान् शंकर हिमगिरिनन्दिनीके साथ वृषभपर आरूढ़ होकर चले। उनके तथा माता पार्वतीके शरीरके तेजसे दिशाएँ प्रकाशित हो रही थीं। शिवगण आनन्दोल्लासपूर्वक वृषभके पीछे-पीछे चल रहे थे। अन्तरिक्षमें देवगण मङ्गलमय मधुर वाद्य बजा रहे थे। इस प्रकार अनेक प्राकृतिक दृश्योंकी छटा निहारते भगवान् शंकर पर्यलीके सुन्दर काननमें पहुँचे।

उस वनमें अनेक प्रकारके सद्गन्धपूरित पुष्प खिले थे। नाना प्रकारके वृक्ष सुस्वादु फलोंसे लदे थे। वहीं एक शीतल निर्मल जलसे पूरित सरोवर था। सरोवरके तटपर सघन वृक्ष थे, जिनकी छाया अत्यन्त शीतल थी। उक्त मनोरम कानन माता पार्वतीको प्रिय लगा, इस कारण भगवान् शंकर वहीं रुक गये।

'स्वामिन्! यह पवित्र स्थल मुझे अतिशय सुखद प्रतीत होता है; अतएव यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं यहाँ कुछ समय रहकर मन बहलाऊँ।' माता पार्वतीने भगवान् शिवसे निवेदन किया।

दयामय शिवकी रुचिके अनुसार गणोंने वहाँ अत्यन्त भव्य मण्डप प्रस्तुत कर दिया। उक्त मण्डपमें माता पार्वतीके अनुकूल समस्त सुविधाओंकी व्यवस्था थी। यह देखकर शिवने कहा—'प्रिये! तुम्हारे लिये यहाँ सभी आवश्यक व्यवस्था हो गयी है; अतएव तुम गणोंके साथ यहाँ इच्छानुसार सुखपूर्वक रहो।'

जगदीश्वरीकी सेवामें एक कोटि गणोंको छोड़कर कृपालु शिव कैलास लौटकर समाधिस्थ हो गये।

माता पार्वती वहाँ सखियोंके साथ क्रीडा करने लगीं। एक कोटि शिवगण उनकी रक्षा करते थे। वे प्रतिक्षण जननीकी आज्ञाकी उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करते रहते थे।

नवाँ महीना पूर्ण हुआ। आकाश स्वच्छ था। वातावरण अत्यन्त शान्त और सुखद था। शीतल और सुगन्धित समीर मन्द-मन्द बह रहा था। जगज्जननी पार्वतीके सम्मुख अतिशय तेजोराशिसे उद्दीप्त चन्द्र-तुल्य परमाह्लाद कर परम तत्त्व प्रकट हुआ।

अनुपम सुन्दर वदनारविन्द था गुणेशका। उसके विशाल नेत्र प्रफुल्ल कमलके समान शोभा पाते थे। उसके मस्तकपर अत्यन्त सुन्दर किरीट सुशोभित था। अरुण अधरोष्ठ प्रवालकी आभाको तिरस्कृत कर रहा था। उसके चार भुजाएँ थीं। उन भुजाओंमें परशु, माला, मोदक और कमल शोभा दे रहे थे। गलेमें सुन्दर मोतियोंकी माला और कटिमें करधनीकी छटा निराली थी। चारु चरण ध्वज, अङ्कुश और कमलके चिह्नोंसे युक्त थे। अपरिमित प्रभापुञ्ज-मयी उस मूर्तिको देखकर पार्वती काँपने लगीं।

माता पार्वतीने उस परम तेजस्वी मूर्तिसे पूछा—'आप कौन हैं? कृपया परिचय देकर आप मुझे आनन्द प्रदान करें।'

तेजस्वी विग्रहने उत्तर दिया—"माता! आप उद्विग्न न हों। मैं सम्पूर्ण सृष्टिका स्वामी गुणेश हूँ। जगत्‌की सृष्टि, स्थिति और लय मैं ही किया करता हूँ। त्रेतामें शुभ्रवर्ण, षड्भुज मयूरेश्वरके रूपमें मैंने ही आपके पुत्रके रूपमें अवतरित होकर सिन्धु-दैत्यका वध किया था और द्वापरमें पुनः आपको पुत्र-सुख प्रदान करनेका जो वचन दिया था, उसका पालन करनेके लिये मैं आपके पुत्र-रूपमें प्रकट हुआ हूँ। मैंने ही ब्राह्मण-वेषमें आकर सिन्दूरके हाथसे आपकी रक्षा की थी। माता! अब मैं सिन्दूरका वध कर त्रिभुवनको सुख-शान्ति दूँगा और भक्तोंकी कामना-पूर्ति करूँगा। मेरा नाम 'गजानन' प्रसिद्ध होगा।"

देवदेव विनायकको पहचानकर गौरीने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर हाथ जोड़कर वे उनका स्तवन करने लगीं—

निर्विकल्पचिदानन्दघनं ब्रह्मस्वरूपिणम्॥
भक्तप्रियं निराकारं साकारं गुणभेदतः।
नमाम्यहमतिस्थूलमणुभ्योऽणुतरं विभुम्॥

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं रजःसत्त्वतमोगुणम्।
मायाविनं मायिनं च सर्वमायाविदं प्रभुम्॥
सर्वान्तर्यामिणं नित्यं सर्वाधारं परात्परम्।
चतुर्णामपि वेदानां मानसस्याप्यगोचरम्॥
महद्भाग्यं मम विभो स त्वं मे पुत्रतां गतः।
प्रतीक्षन्त्या मम विभो प्रत्यक्षं दर्शनं गतः।
इदानीं त्वद्वियोगो मे न स्याद्वै च तथा कुरु॥

(गणेशपु० २ । १३० । १६–२०)

'जो निर्विकल्प, चिदानन्दघन, ब्रह्मस्वरूप, भक्तप्रिय, निराकार तथा गुणभेदसे साकार हैं, उन परमेश्वरको मैं नमस्कार करती हूँ। प्रभो! आप अतिशय स्थूल, सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म, सर्वत्र व्यापक तथा अव्यक्त होते हुए भी भक्तजनोंपर अनुग्रह करनेके लिये व्यक्त-भावको धारण करनेवाले हैं; आप सत्त्व, रज और तम—तीनों गुणोंके आधार हैं; मायावी, मायाके आश्रय, सम्पूर्ण मायाओंके ज्ञाता, सर्वसमर्थ, सर्वान्तर्यामी, नित्य, सर्वाधार और परात्पर हैं; आपतक चारों वेदों और मनकी भी पहुँच नहीं होती; प्रभो! मेरा बड़ा सौभाग्य है कि आप मेरे पुत्र हो गये। मैं दीर्घकालसे इस शुभ अवसरकी प्रतीक्षा कर रही थी। आज आपने मुझे प्रत्यक्ष दर्शन दे दिया। अब ऐसी कृपा कीजिये, जिससे मुझे आपका कभी वियोग न देखना पड़े।'

इस प्रकार माता पार्वतीकी प्रार्थना सुनते ही परम प्रभु अत्यन्त अद्भुत चतुर्भुज शिशु हो गये। उनके चार भुजाएँ थीं। नासिकाके स्थानपर शुण्डदण्ड सुशोभित था। उनके मस्तकपर चन्द्रमा और हृदयपर चिन्तामणि दीप्तिमान् थी। वे गणपति दिव्य वस्त्र धारण किये, दिव्यगन्धयुक्त नवजात शिशुकी तरह माताके सम्मुख उपस्थित थे।

माता पार्वतीने अपने पुत्रको ध्यानपूर्वक देखा तो व्याकुल हो गयीं। ऊबड़-खाबड़ सिर, छोटी-छोटी आँखें, हाथीकी सूँड़की तरह नाक, शूर्पाकार कर्ण, छोटे-छोटे हाथ-पैर और विशाल उन्नत उदर। शिशुका विकट रूप देखकर गौरी अधीर हो गयीं।

शिवप्रिया मन-ही-मन सोचने लगीं—'रक्तवर्णका इतना कुरूप और भयानक पुत्र तो मैंने कहीं नहीं देखा। देवता, ऋषि, देव-पत्नियाँ और ऋषियोंकी स्त्रियाँ इसे देखेंगी तो अपने मनमें क्या कहेंगी? शिशु थोड़ा कम सुन्दर हो, तब भी उसका प्यारपूर्वक पालन किया जाता है; किंतु इसके तो प्रत्येक अवयव—हाथ-पैर, सिर, आँख, कान, नाक और पेट—सभी एक-से-एक विचित्र, विकट और भयावह हैं। इस शिशुको देखनेवाले सभी हँसेंगे।' माताके नेत्रोंमें आँसू भर आये।

उसी समय वहाँ सर्वात्मा शिव पहुँचे। सम्मुख नवजात शिशुका आकार-प्रकार देखकर वे पार्वतीके दुःखका कारण समझ गये। पुत्रको ध्यानपूर्वक देखकर उन्होंने कहा—'प्रिये! बाह्य सौन्दर्यसे व्यक्तित्वका सर्वथा सत्य अनुमान कठिन है। यह रक्तवर्ण, चतुर्भुज, गजमुख, लम्बोदर शिशु असाधारण है। यह निखिल सृष्टिका स्वामी, सर्वसमर्थ, सर्वात्मा एवं मङ्गल-मूल-निधान है। यह त्रैलोक्यकी रक्षाके लिये कृतयुगमें दशभुज विनायकके रूपमें अवतरित हुआ था। त्रेतामें शुक्लवर्ण, षड्भुज मयूरेशके रूपमें इसीने तुम्हारा पुत्र होकर सिन्धुका वध कर त्रिभुवनको स्वतन्त्रता प्रदान की थी और अब इस द्वापरमें अपने कथनानुसार पुनः सिन्दूर-वधके लिये तुम्हारे पुत्रके रूपमें प्रकट हुआ है। कलियुगमें यह पापाचार और अनाचारको ध्वस्तकर सत्त्वकी स्थापनाके लिये पुनः सुन्दर चतुर्भुज रूपमें अवतरित होगा। उस समय इसका 'धूम्रकेतु' नाम प्रसिद्ध होगा।'*

'आशुतोष! आपने सर्वथा उचित कहा। आपने मुझे समझ लिया।' पार्वतीवल्लभके वचन सुन शिशु बोल उठा—'मैं त्रैलोक्यविजयी सिन्दूरासुरका वध कर धरतीका भार उतारनेके लिये अवतीर्ण हुआ हूँ। मैं सम्पूर्ण जगत्को तुष्ट करूँगा। वैदिक कर्म प्रारम्भ हो जायँगे और मैं भक्तोंकी वाञ्छा सिद्धकर राजा वरेण्यको वर एवं ज्ञान प्रदान करूँगा।'

---

* गणेशपुराणमें गणेशके कलियुगीय अवतार धूम्रकेतुको यहाँ 'चतुर्भुज' बताया गया है। परंतु इसी पुराणमें अन्यत्र धूम्रकेतुको 'द्विभुज' भी कहा गया है। यहाँ क्रमशः चतुर्भुज और द्विभुजके सूचक वचन प्रमाणरूपमें प्रस्तुत किये जाते हैं। भगवान् शिव पार्वतीसे कहते हैं—

अथ कलियुगे देवि धूम्रकेतुरिति प्रभुम्।
चतुर्बाहुश्चारुनेत्रो भास्वरो रुचिरो भुवि॥

(२ । १३१ । ३२)

द्विभुज बतानेवाले वचन इस प्रकार हैं—

'कलौ तु धूम्रवर्णोऽसावश्वारूढो <u>द्विहस्तवान्</u>।'

(२ । १ । २१)

'धूम्रकेतुरिति ख्यातो <u>द्विभुजः</u> सर्वदैत्यहा॥'

(२ । ८५ । १५)

शिशुरूपधारी परम प्रभु गजाननने शिवसे आगे कहा—"सदाचारपरायण परम पवित्र धर्मात्मा राजा वरेण्य मेरा भक्त है। वह देवता, ब्राह्मण एवं अतिथियोंका पूजक तथा पञ्चयज्ञोपासक है। वह सदा श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पुराण-श्रवण करता है। उसकी सत्य और धर्मका पालन करनेवाली सुन्दरी साध्वी पत्नीका नाम पुष्पिका है। पुष्पिका पतिव्रता, पतिप्राणा और पतिवाक्यपरायणा है। उन दोनोंने मुझे संतुष्ट करनेके लिये बारह वर्षोंतक कठोर तप किया था। मैंने प्रसन्न होकर उन्हें वर प्रदान किया था—'निश्चय ही मैं तुम्हारा पुत्र बनूँगा।' पुष्पिकाने अभी-अभी प्रसव किया है, किंतु उसके पुत्रको एक राक्षसी उठा ले गयी। वह मूर्च्छिता है। पुत्रके बिना वह प्राण त्याग देगी। अतएव आप मुझे तुरंत उस प्रसूताके पास पहुँचवा दीजिये।"

गजाननकी वाणी सुनकर भगवान् शंकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने विविध उपचारोंसे उनकी पूजा और प्रार्थना की।

नवजात गजमुख अरण्यमें

भगवान् शंकरने नन्दीको बुलाकर कहा—'पराक्रमी नन्दी! मैंने तुम्हें एक आवश्यक कार्यसे स्मरण किया है; तुम अत्यन्त सावधानीसे उसे पूरा करो। माहिष्मती-नामक श्रेष्ठ नगरीमें वरेण्य-नामक प्रजापालक, धर्मपरायण वीर नरेश राज्य करते हैं। उनकी अत्यन्त साध्वी उदार सहधर्मिणीका नाम पुष्पिका है। पुष्पिकाने अभी कुछ ही देर पूर्व प्रसव किया है। वह तो कष्टसे मूर्च्छित हो गयी, किंतु उसके शिशुको एक राक्षसी उठा ले गयी। तुम इस पार्वती-पुत्रको तुरंत उसके समीप रखकर लौट आओ। पुष्पिकाकी मूर्च्छा दूर होनेके पूर्व ही यह शिशु उसके समीप पहुँच जाय; अन्यथा प्रसूताके प्राण-संकटकी सम्भावना है।'

नन्दीने अपने स्वामीके चरणोंमें प्रणाम किया और गजाननको लेकर वायुवेगसे उड़ चले। मार्गमें अनेक बाधाएँ उपस्थित हुईं, किंतु पराक्रमी नन्दीने शिवके ध्यान और स्मरणसे उनपर विजय प्राप्त की और मूर्च्छिता पुष्पिकाके सम्मुख चुपचाप गजमुखको रखकर तुरंत लौट आये।

नन्दीने शिव और पार्वतीके चरणोंमें प्रणाम कर गजमुखको सुरक्षित पुष्पिकाके समीप पहुँचा देनेका समाचार सुनाया तो उन लोगोंने प्रसन्न होकर नन्दीकी प्रशंसा करते हुए उन्हें आशिष् दी।

रात्रि व्यतीत हुई। अरुणोदय हुआ। पुष्पिकाने ध्यानपूर्वक अपने शिशुको देखा—रक्तवर्ण, चतुर्बाहु, गजवक्त्र, कस्तूरी-तिलक, चन्दन-चर्चित अङ्गपर पीत परिधान और मोतियोंकी माला तथा विविध रत्नाभरण शोभित हो रहे थे।

इस प्रकारका अद्भुत बालक देखकर पुष्पिका चकित और दुःखी ही नहीं हुई, भयसे काँपती हुई वह प्रसूति-गृहसे बाहर भागी। वह शोकसे व्याकुल होकर रोने लगी। रानीका रुदन सुनकर परिचारिकाएँ प्रसूति-गृहमें गयीं। अलौकिक बालकको देखकर वे भी भयाक्रान्त हो काँपती हुई बाहर आ गयीं। दूसरे जिन-जिन स्त्री-पुरुषोंने उन शिशु-रूपधारी परम पुरुषका दर्शन किया, वे सभी भयभीत हुए। कुछ तो मूर्च्छित हो गये।

प्रत्यक्षदर्शियोंने राजासे कहा—'आजतक मनुष्यके यहाँ ऐसा पुत्र कभी कहीं नहीं उत्पन्न हुआ और न भविष्यमें ऐसे शिशुके उत्पन्न होनेकी सम्भावना ही है। अतएव इस वंश-विनाशक बालकको घरमें नहीं रखना चाहिये।'

सबके मुँहसे भयभीत करनेवाले ऐसे वचन सुनकर नरेश वरेण्यने अपने दूतको बुलाकर आज्ञा दी—'इस शिशुको निर्जन वनमें छोड़ आओ।'

राजाके दूतने नवजात शिशुको उठाया और शीघ्रतासे नगरसे बाहर निकल गया। वह निर्जन सघन वनमें पहुँचा। वहाँ एक स्वच्छ जलपूरित सरोवर था। हिंस्र पशुओंके अतिरिक्त वहाँ और किसी मनुष्यके पहुँचनेकी सम्भावना नहीं थी। दूतने उक्त परम तेजस्वी शिशुको वहीं सरोवर-तटपर धीरेसे रख दिया और द्रुत गतिसे लौट चला।

दूत नगरमें पहुँचा। उसने राज-सभामें जाकर नरेशका अभिवादन कर निवेदन किया—'राजेन्द्र! आपके आदेशानुसार मैं शिशुको हिंस्र-जन्तुओंसे भरे निविड़ वनमें रख आया। निश्चय ही उसे व्याघ्रादि हिंस्र-पशु खा जायँगे।'

धर्मात्मा वरेण्यने खिन्न मनसे समाचार सुना और सिर झुका लिया।

महर्षि पराशरके आश्रममें

सृष्टिके सर्वश्रेष्ठ प्राणी मनुष्यके मनमें विद्या-बुद्धिका कितना अहंकार होता है; किंतु कितना अल्पज्ञ होता है वह!

लोक-पितामहका पुत्र स्वस्थ और सुन्दर था; उसे देखकर विधाता इतने प्रसन्न हुए कि पात्र-अपात्रका विचार किये बिना उसे अनमोल निधि दे दी और माता पार्वती तथा धर्म-परायण बुद्धिमान् नरेशके यहाँ त्रैलोक्यत्राता परम पुरुष अवतरित हुए । गजमुख उनकी दृष्टिमें सुन्दर नहीं थे और इस कारण देवताओं, ऋषियों, ब्राह्मणों एवं पृथ्वीके उद्धारक अवतारी महापुरुष प्रकट होते ही हिंसक पशुओंके आहारके लिये निर्जन वनमे फेंक दिये गये ।

गहन काननमे सरोवरके तटपर पड़े नवजात शिशुपर एक जम्बुककी दृष्टि पड़ी । जम्बुक प्रसन्न होकर शिशुकी ओर दौड़ा ही था कि उसी मार्गसे महर्षि पराशर आ गये। उन्होंने धरतीपर हाथ-पैर उछालते दीप्तिमान् बालकको देखा तो मन-ही-मन सोचने लगे—'मुझे तपभ्रष्ट करनेके लिये देवेन्द्रने कोई माया रची है। मैं स्वाभाविक ही पापभीरु हूँ। जान-बूझकर मैंने कोई पाप किया नहीं है । हे दीनानाथ! हे चन्द्रचूड़! मेरी रक्षा कीजिये ।'

इस प्रकार मन-ही-मन प्रार्थना करते हुए करुणामूर्ति महर्षि पराशरने शिशुके समीप पहुँचकर देखा—'दिव्य वस्त्रालंकारविभूषित, सूर्यतुल्य-तेजस्वी, चतुर्भुज, गजमुख अलौकिक शिशु ।'

महामुनिने शिशुको बार-बार ध्यानपूर्वक देखा । उसके नन्हे-नन्हे अरुण चरण-कमलोंपर दृष्टि डाली—उनपर ध्वज, अङ्कुश और कमलकी रेखाएँ दिखायी दीं ।

महर्षिको रोमाञ्च हो आया । हर्षातिरेकसे हृदय गद्गद, कण्ठ अवरुद्ध और नेत्र सजल हो गये। आश्चर्यचकित मुनिके मुँहसे निकल गया—'अरे, ये तो साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर हैं। ये मुझसे छल क्यों करेंगे ? इन करुणामयने देवता और ऋषियोंका कष्ट-निवारण करने और मेरा जीवन-जन्म सफल बनानेके लिये अवतार ग्रहण किया है ।'

महर्षिके नेत्र बरस रहे थे । अपने भाग्यकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए उन्होंने जगद्वन्द्य परम प्रभुके त्रिताप-नाशक भवाब्धिपोत नन्हे-नन्हे लाल-लाल चरणोंको अपने मस्तकसे स्पर्श कराया । उन्हें अपने नेत्रोंसे स्पर्श किया, वक्षसे लगाया और फिर साष्टाङ्ग,दण्डवत्-प्रणाम किया । तदनन्तर उन्होंने हाथ जोड़कर स्तुति करते हुए कहा—'आज मैं धन्य हो गया । मेरा जीवन, जन्म, मेरे माता-पिता और मेरा तप, सभी धन्य हुए । अब मैं जन्म-मृत्युसे मुक्त हो गया; मेरी सम्पूर्ण वाञ्छाओंकी पूर्ति हो गयी । मैं ही नहीं—यह धरती, यह आकाश, यह पवन, यह निविड़ वन, यह सरोवर और सरोवरका तट, सभी धन्य हो गये—सभी कृतकृत्य हो गये । आह ! किस निष्ठुर अभागेने इन महामहिमको यहाँ छोड़ दिया ।'

महर्षिने शिशुके चरणोमे पुनः प्रणाम कर उसे अत्यन्त आदरपूर्वक अङ्कमें ले लिया और प्रसन्न-मन द्रुत गतिसे आश्रमकी ओर चले । आश्रममे पहुँचनेपर उनकी सहधर्मिणी वत्सलाने शिशुको देखा तो वह अत्यन्त प्रसन्न हुई और जब उसने महर्षिके मुखसे उस शिशुकी अनिर्वचनीय महिमा सुनी तो उसके आनन्दकी सीमा न रही ।

वत्सलाने शिशुको लेकर अपने वक्षसे लगाया ही था कि वह आनन्द-विभोर हो गयी । हर्षातिरेकसे उसने कहा—'स्वामिन् ! आपके दीर्घकालीन कठोर तपका फल आज प्रत्यक्ष प्राप्त हो गया । ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर जिन्हें नहीं जानते, वे परम प्रभु हमें दृष्टिगोचर हो रहे हैं । जो निखिल ब्रह्माण्डके सर्जक, पालक और संहारक हैं; जो भूमिका भार हरण करनेके लिये अवतरित हुए हैं, वे अखिल-लोकनायक प्रभु अनायास ही हमारे मन, वाणी और इन्द्रियोंके विषय हो गये । उन दयामयकी दया और हमारे भाग्यकी प्रशंसा कैसे की जाय ?'

स्नेहाधिक्यके कारण नवजात शिशु गजाननके स्पर्शसे सती वत्सलाके स्तनोंमें दूध उतर आया । महर्षि पराशर और वत्सला प्यारपूर्वक शिशु-पालनमें अपने परम सौभाग्यका अनुभव करते थे । अब अग्निहोत्र, जप, तप एवं स्वाध्यायकी महर्षि चिन्ता नहीं कर पाते थे । बस, नियमोंका निर्वाह-मात्र कर वे तो निखिलसृष्टिनियामक गजमुखके समीप ही अपना अधिकांश समय व्यतीत करते । जब जप करने बैठते तो शिशुके सम्मुख रहे बिना उनसे जप हो नहीं पाता था । वत्सला भी वहीं बैठी रहती । दोनों उस गजमुखको प्रतिपल निहारा करते, फिर भी अतृप्त ही रहते ।

गजाननके चरण-स्पर्शसे ही महर्षि पराशरका सुविस्तृत आश्रम अतिशय मनोहर हो गया । वहाँके सूखे वृक्ष भी पल्लवित और पुष्पित हो उठे । वहाँकी गायें कामधेनु-तुल्य हो गयीं । सुखद पवन बहने लगा । आश्रम दिव्यातिदिव्य हो गया ।

'मेरे शिशुका पालन दिव्यदृष्टि-सम्पन्न महर्षि पराशर कर रहे हैं।' इस संवादसे नरेश वरेण्य अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने यहाँ पुत्रोत्सव मनाया। वाद्य बजने लगे। घर-घर मिष्टान्न-वितरण हुआ। नरेशने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंको बहुमूल्य वस्त्र, स्वर्ण और रत्नालंकरण देकर संतुष्ट किया।

सिन्दूरका विस्मय

मदमत्त सिन्दूरने एक दिन अपनी सभामें कहा—'मेरी अतुलनीय शक्ति व्यर्थ गयी। मेरा पौरुष निष्क्रिय रहा। इन्द्रादिकोंने मेरे साथ युद्ध नहीं किया और ब्रह्मा-विष्णु आदि मेरे सम्मुख ही नहीं हुए। मृत्युलोकके नरेशोंमें तो मुझसे युद्ध करनेकी सामर्थ्य ही नहीं। मेरी युद्ध-कामना तृप्त नहीं हो पा रही है।'

उसी समय आकाशवाणी हुई—'अरे मूर्ख! तू व्यर्थ क्या प्रलाप कर रहा है? तेरी युद्ध-कामनाकी पूर्ति करनेवाला शिव-प्रिया पार्वतीके यहाँ प्रकट हो गया है। वह शुक्लपक्षके शशि-सदृश उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है।'

सहसा अत्यन्त अप्रिय एवं भयानक वाणी सुनकर सिन्दूर मूर्च्छित हो गया। फिर सचेत होनेपर उसने कहा—'यह कौन बोल रहा था? यदि ऐसा दुर्वचन बोलनेवाला सामने आ जाय तो मैं उसका मस्तक उतार लूँ।'

इतना कहकर असुरने भयानक गर्जन किया और वह तुरंत उड़कर कैलास पहुँचा। अत्यन्त चिन्तित सिन्दूर पार्वतीके नवजात शिशुके लिये बड़ा होनेका अवसर ही नहीं आने देना चाहता था। पर्वतोंको चूर्ण एवं वनोंको ध्वस्त करता हुआ दुरात्मा सिन्दूर भगवती उमाके भवन गया, किंतु वहाँ किसीको न देख वह पुनः पृथ्वीपर लौट आया।

गिरिराज-नन्दिनी तथा शिवको ढूँढ़नेके लिये सिन्दूर पृथ्वी-पर चारों ओर घूमने लगा। अन्ततः वह पर्यली-काननमे पहुँचा। वहाँ उसने सुन्दर सरोवर, पार्वती-शिवका विशाल मनोहर मण्डप एवं उनके गणोंको देखा। सिन्दूर सीधे गिरिजाके प्रसूति-गृहमें जाकर शिशुको ढूँढ़ने लगा, किंतु वहाँ शिशुको न पाकर उस दुरात्माने सोचा—'यदि बालकने जन्म नहीं लिया है तो पार्वतीके ही उदरसे प्रकट होगा। यदि पार्वतीकी जीवन-लीला समाप्त कर दी जाय तो इसके पुत्रका प्रश्न ही नहीं उठेगा।'

यह सोचकर क्रूरतम सिन्दूरने पार्वतीपर प्रहार करनेके लिये अपना अस्त्र उठाया ही था कि उसके सम्मुख पार्वतीकी गोदमे पाश, परशु, कमल और माला धारण किये वस्त्रालंकारविभूषित अमित तेजस्वी बालक दीखा। असुरने बालकका हाथ पकड़ लिया और उसे समुद्रमें डुबा देनेकी दृष्टिसे अपने साथ ले चला।

मार्गमे वह बालक पर्वत-तुल्य भारी हो गया। उस असह्य भारसे व्याकुल होकर असुर काँपने लगा। वह शिशुको किसी प्रकार आगे ले जानेमें समर्थ नहीं था, इस कारण उसने कुपित होकर उसे पृथ्वीपर पटक दिया।

शिव-शिशुको पटकनेसे पर्वत हिल गये, पृथ्वी काँपने लगी, समुद्र क्षुब्ध हो उठा और ब्रह्माण्ड जैसे विदीर्ण हो गया। शिशु नर्मदा नदीमें गिरा। वह पवित्र स्थल 'गणेश-कुण्ड' नामसे प्रख्यात हुआ।* गणेशके शरीरके रक्तसे वहाँके पत्थर लाल हो गये। वे पापोंको नाश करनेवाले 'नार्मद गणेश' कहे जाते हैं। उनके दर्शन और पूजनकी बड़ी महिमा है।

'मेरा शत्रु समाप्त हो गया।' यह समझकर आनन्दित सिन्दूरासुर वहाँसे चलना ही चाहता था कि गणेश-कुण्डसे एक अत्यन्त भयंकर पर्वताकार क्रोधोन्मत्त पुरुष निकला। उसकी जटा विशाल थी। उसके मुख और दाँत अत्यन्त भयंकर थे। जिह्वा सर्पिणीके सदृश थी। उसके हाथ-पैर अत्यन्त लंबे और सुपुष्ट थे। उसके नेत्रोंसे अग्निकी ज्वालाएँ निकल रही थीं।

महाबलवान् सिन्दूरासुरने उसे मारनेके लिये अपने खड्गसे प्रहार किया ही था कि वह भयानक पुरुष आकाशमें दीखने लगा। उसने कहा—'अरे मूढ़! तेरा काल अन्यत्र बढ़ रहा है। वह साधुजनोंकी रक्षामे तत्पर होनेके कारण तेरा वध अवश्य करेगा।'

यह संकेत देकर भयंकर पुरुष अदृश्य हो गया।

सिन्दूरको बड़ा विस्मय हुआ। उसने अपने सेवकोंसे कहा—'कठोर वचन बोलनेवाले उस भयानक पुरुषको धिक्कार है, जो मेरे भयसे छिप गया। यदि वह मेरे सम्मुख होता तो उसे मेरे बल-वीर्यका पता चल जाता।'

---

* गणेश-कुण्ड श्रेष्ठ तीर्थ है। इस तीर्थके दर्शन, इसमें स्नान एवं इसके स्मरणका भी बड़ा माहात्म्य है।

सिन्दूरने चारों ओर देखा; पर किसीको कहीं न देखकर चिन्ता-निमग्न अपनी राजधानी सिन्दूरवाड लौट गया।

असुरके उत्पातसे चिन्तित माता पार्वतीने अपने जीवन-धन महेश्वरसे निवेदन किया—'प्रभो! इस पर्यली-महारण्यमें भी दैत्यका उपद्रव प्रारम्भ हो गया है। अतएव अब आप मुझे कैलास ले चलिये।'

अपनी प्रियतमाकी इच्छा जानकर देवाधिदेव शंकर प्रसन्न हुए। वे पार्वतीसहित वृषभपर आरूढ़ हुए और अपने गणोंसहित कैलासके लिये चल पड़े। कैलासके अपने भवनमें पहुँचकर भगवती उमा प्रसन्न हो गयीं।

मूषक-वाहन

सुरपति इन्द्रकी सभामें क्रौञ्च-नामक एक श्रेष्ठ गन्धर्व था। वह सभासे उठकर शीघ्रतासे जाना चाहता था। असावधानीसे उसके पैरका वहाँ उपस्थित मुनिवर वामदेवसे स्पर्श हो गया। अपनेको अनादृत अनुभवकर कुपित हुए मुनिने उसे तुरंत शाप दे दिया—'गन्धर्व! तू मूषक हो जायगा।'

भयभीत गन्धर्व हाथ जोड़कर मुनिसे करुण प्रार्थना करने लगा। तब दयालु ऋषिने पुनः कहा—'तू देवदेव गजाननका वाहन होगा, तब तुम्हारा दुःख दूर हो जायगा।'

उसी समय क्रौञ्च-गन्धर्व मूषक होकर पराशर-आश्रममें गिर पड़ा। वह मूषक पर्वत-तुल्य अत्यन्त विशाल और भयानक था। उसके रोम और नख गिरिशृङ्गके समान महान् थे। उसके दाँत अत्यन्त बड़े, तीक्ष्ण और भय उत्पन्न करनेवाले थे। उसका कर्कश स्वर भी अत्यधिक भयावह था।

उस महाबलवान् मूषकने पराशर-आश्रममें भयानक उपद्रव किया। उसने मृण्मय पात्रोंको तोड़-फोड़कर समस्त एकत्र अन्न समाप्त कर दिया। ऋषियोंके समस्त वस्त्रों, वल्कलों और ग्रन्थोंको कुतरकर टुकड़े-टुकड़े कर डाले। उस भूधराकार मूषकके पुच्छ-प्रहारसे आश्रमके वृक्ष धराशायी हो गये; वाटिका उजाड़ हो गयी।

आश्रमकी समस्त उपयोगी वस्तुओंके नष्ट हो जानेसे महर्षि पराशर अत्यन्त दुःखी होकर कहने लगे—'दुष्टोंके उपद्रवसे स्थान छोड़कर चले जाना चाहिये, किंतु इस समय मैं कहाँ जाऊँ, जहाँ निश्चिन्त होकर साधन-भजन कर सकूँ! प्राण-त्याग करना शास्त्र पातक बताते हैं। मेरे किस अपकर्मके फलस्वरूप इस आश्रमकी सुख-शान्ति नष्ट हो गयी है। इस विपत्तिसे त्राण पानेके लिये मैं क्या करूँ? किसका स्मरण करूँ? मेरा यह दुःख कौन दूर करेगा? मैं किसकी शरण ग्रहण करूँ?'

इस प्रकार दुःखसे व्याकुल अपने पिताके वचन सुन तुरंत गजमुखने अत्यन्त मधुर वाणीमें कहा—'पूज्य पिताजी! मैं दुष्टोंका संहार करनेवाला हूँ। मेरे रहते आप चिन्ता न करें। मैं आपको पुत्र-रूपमें प्राप्त हुआ हूँ तो आपका प्रिय कार्य भी करूँगा। मेरे गर्जनमात्रसे पृथ्वी विशीर्ण और पदाघातसे पर्वत चूर्ण हो जायँगे। आप मेरी क्रीड़ा देखिये। उक्त मूषकको मैं अपना वाहन बना लेता हूँ।'

महर्षि पराशरसे इतना कहकर गजाननने मूषकपर सूर्य-सदृश अपना तेजस्वी पाश फेंका। उस पाशसे सम्पूर्ण अन्तरिक्ष प्रकाशित हो उठा और उसके भयसे देवताओंने अपना स्थान त्याग दिया। उक्त अग्निमुख पाशने दसों दिशाओंमें घूमते हुए पातालमें प्रवेश कर मूषकका कण्ठ बाँध लिया, और उसे बाहर निकालने लगा। महाबलाढ्य, महावीर्यवान्, महापर्वत-सरीखा महामूषक सर्वथा अवश हो गया था। वह भय और पीड़ासे व्याकुल होकर मूर्च्छित हो गया।

कुछ देर बाद सचेत होनेपर तीव्र श्वास छोड़ता हुआ शोकाकुल मूषक कहने लगा—'अचानक दैवनिर्मित काल कैसे आ गया? निश्चय ही होनी होकर रहती है; वहाँ पुरुषार्थ कुछ नहीं कर पाता। मैं अपने दंष्ट्राग्रसे पर्वतोंको नष्ट कर देता था और देवता, असुर, राक्षस और मनुष्योंकी तो कोई गणना ही नहीं करता था; ऐसे मुझ शक्तिशालीका गला किसने बाँध लिया!'

जैसे गरुडास्त्र साँपको वशमें कर लेता है, उसी प्रकार गजाननके तेजस्वी पाशने मूषकको बाँध लिया और उसे खींचकर गजाननके सम्मुख उपस्थित कर दिया। पाश-बद्ध मूषकने गजमुखका दर्शन प्राप्त किया तो उसे ज्ञानोदय हुआ। उसने परम प्रभुके चरणोंमें सिर झुकाकर प्रणाम किया और स्तुति करते हुए कहने लगा—'प्रभो! आप सम्पूर्ण जगत्के स्वामी, जगत्के कर्ता, हर्ता और पालक हैं। ब्रह्मादि देवताओंके लिये अगम्य और मुनि-मन-मानस-मराल दयामय देव! आपका दर्शन करनेसे मैं धन्य हो गया; मेरे दोनों नेत्र सफल हो गये। अब आप मुझपर दया करें।'

मूषककी इस प्रकार दृढ़ भक्तिपूरित स्तुति सुनकर पराशरनन्दन प्रसन्न हो गये। उन्होंने मूषकसे कहा—'अनघ!

तूने देवताओं और ब्राह्मणोंको बड़ा कष्ट दिया और मैंने दुष्टोंके नाश और साधु-पुरुषोंको सुखी करनेके लिये अवतार ग्रहण किया है। तू मेरी शरण आ गया, इसलिये निर्भय हो जा और तेरी कोई इच्छा हो, वह वर माँग ले।'

मूषकका अहंकार जगा। बोला—'मुझे आपसे कुछ नहीं माँगना है। आप चाहे तो मुझसे वरकी याचना कर सकते हैं।'

'यदि तेरा वचन सत्य है तो तू मेरा वाहन बन जा।'* गर्वोन्मत्त मूषकसे गर्वहारी गणेशने कहा।

'तथास्तु!' मूषकके कहते ही पिङ्गाक्ष तत्क्षण उसके ऊपर जा बैठे।

'आह!' मूषक गजाननके भारसे दबकर अत्यन्त कष्ट पाने लगा। उसे प्रतीत हुआ कि 'मैं चूर्ण-विचूर्ण हो जाऊँगा।' तब उसने देवेश्वर गणेशसे प्रार्थना की—'प्रभो! आप इतने हल्के हो जायँ कि मैं आपका भार वहन कर सकूँ।' मूषकका गर्व खर्व हो गया और गजमुख उसके वहन करनेयोग्य हल्के हो गये।†

गजाननकी यह लीला देखकर महर्षि पराशरने अत्यन्त विस्मयके साथ उनके चरणोंमें प्रणाम निवेदन कर कहा—'अत्यन्त आश्चर्य! बालकोंमें इतना पौरुष मैंने कहीं नहीं देखा। जिस मूषकके शब्दसे पर्वत विदीर्ण हो जाते थे, उसे आपने क्षणभरमें ही अपना वाहन बना लिया।'

उसी समय वहाँ गजाननकी माता वत्सला आ गयीं। वे अत्यन्त आनन्दपूर्वक पुत्रको अङ्कमें लेकर स्तन-पान कराती और उसके मस्तकपर धीरे-धीरे अपना हाथ फेरती हुई कहने लगीं—'मैं तेरे स्वरूप और पराक्रमको नहीं जानती। मैं केवल इतना ही जानती हूँ कि तू मेरे जन्म-जन्मातरके परम पुण्यसे मेरे अङ्कमें आया है।'

दूसरे दिन गजाननने मूषकके गलेमें रस्सी बाँधी और फिर उसके साथ उनकी क्रीड़ा प्रारम्भ हो गयी।

सिन्दूरासुरका उद्धार

गजानन नौ वर्षके हुए। इस बीच उन्होंने अपनी भुवनमोहिनी बाल-क्रीड़ाओंसे महर्षि पराशर, माता वत्सला और आश्रमके ऋषियों, ऋषि-पत्नियों तथा मुनि-पुत्रोंको अतिशय सुख प्रदान किया। साथ ही कुशाग्रबुद्धि, विचक्षण गजानन समस्त वेदों, उपनिषदों, शास्त्रों एवं शस्त्रास्त्र-संचालन आदिके पारंगत विद्वान् हो गये। उनकी प्रखर प्रतिभाका अनुभव कर महर्षि पराशर चकित हो जाते; ऋषिगण विस्मित रहते। गजमुख सबके अन्यतम प्रीति-भाजन बन गये थे।

इधर सर्वथा निरङ्कुश, परम उद्दण्ड, शक्तिशाली सिन्दूरका अत्याचार पराकाष्ठापर पहुँच गया था। उसके भयसे देव-पूजन और यज्ञ-यागादि सब बंद हो गये थे तथा देवता, ऋषि और ब्राह्मण त्रस्त थे, भीत थे। कुछ गिरि-गुफाओं और निविड़ वनोंमें छिपकर अपने दिन व्यतीत करते थे। अधिकांश सत्त्वगुणसम्पन्न धर्मपरायण देव-विप्रादि सिन्दूरके कारागारमें यातना सह रहे थे।

---

* वाहनं मम याहि त्वं यदि सत्यं वचस्तव। (गणेशपु० २। १३४। ३८)

† क्रौञ्च-नामक गन्धर्वको आदिदेव गजाननका वाहन बननेका सौभाग्य कैसे प्राप्त हुआ, इसके सम्बन्धमें गणेशपुराणमें ही एक कथा आती है, जिसका अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है—

प्राचीन कालमें सुमेरुपर सौभरि ऋषिका अत्यन्त मनोरम आश्रम था। उनकी अत्यन्त रूपवती और पतिव्रता पत्नीका नाम मनोमयी था। एक दिन ऋषि समिधा लेने अरण्यमें गये और मनोमयी गृह-कार्यमें लग गयी। उसी समय दुष्ट क्रौञ्च-गन्धर्व वहाँ आया। उसने अनुपम लावण्यवती मनोमयीको देखा तो व्याकुल हो गया।

कामातुर क्रौञ्चने ऋषि-पत्नीका हाथ पकड़ लिया। रोती और काँपती हुई ऋषि-पत्नी उससे दयाकी भीख माँगने लगी। उसी समय सौभरि ऋषि आ गये। क्रोधके कारण उनके नेत्रोंसे ज्वाला निकलने लगी। उन्होंने गन्धर्वको शाप देते हुए कहा—'दुष्ट! तूने चोरकी तरह आकर मेरी सहधर्मिणीका हाथ पकड़ा है, इस कारण तू मूषक होकर धरतीके नीचे और चारों ओर चोरीके द्वारा अपना पेट भरेगा।'

काँपते हुए गन्धर्वने मुनिसे प्रार्थना की—'दयालु मुनि! अविवेकके कारण मैंने आपकी पत्नीके केवल हाथका स्पर्श किया था। आप कृपया मुझे क्षमा कर दें।'

ऋषिने कहा—'मेरा शाप व्यर्थ नहीं होगा; तथापि द्वापरमें महर्षि पराशरके यहाँ देवदेव गजमुख पुत्ररूपमें प्रकट होंगे। तू उनका वाहन बन जायगा। तब देवगण भी तुम्हारा सम्मान करने लगेंगे।'

हर्ष और शोकसे भरा क्रौञ्च वहाँसे लौट गया।

उस उद्धत असुरकी इस अनीतिका संवाद जब पराशर-आश्रममें पहुँचता तो गजानन अधीर और अशान्त हो जाते और अब तो त्रैलोक्यकी दारुण स्थिति उनके लिये असह्य हो गयी। क्षुब्ध गजाननने अपने पिता पराशरके समीप जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—'मुनिवर! सिन्दूरासुरके दुराचारसे धरती त्रस्त हो गयी है, सर्वत्र अनीति और अनाचारका साम्राज्य छा गया है; सद्धर्म लुप्त हो गया और सदाचारपरायण जन अत्यन्त पीड़ित हैं। उन्हें अपने त्राणका कोई मार्ग नहीं सूझ रहा है। ऐसी परिस्थितिमें मैं उद्विग्न हो उठा हूँ; धरतीका बोझ उतारनेके लिये मैं अधीर, अशान्त और आकुल हो गया हूँ। आप कृपापूर्वक अपना वरद हस्त मेरे सिरपर रख दें, जिससे मैं अपने पवित्रतम कर्तव्यका पालन करूँ।'

महर्षि हँस पड़े, किंतु गजमुखके शुभ आन्तरिक भावोंसे उन्हें प्रसन्नता भी हुई। उन्होंने स्नेहपूर्वक गजाननको समझाते हुए कहा—'बेटा गजानन! तेरे विचार अत्युत्तम हैं; किंतु तू अभी केवल नौ वर्षका सुकुमार बालक है; आकाशका चन्द्र कैसे पकड़ेगा? जिस सिन्दूरके हुंकारसे पर्वत शतधा विदीर्ण होकर धरतीपर बिखर जाते हैं और जिसके पदाघातसे त्रिभुवन काँप उठता है, उस अमित शौर्यशाली असुरके साथ तुम केवल मेरे अनुग्रहसे युद्ध करना चाहते हो तो मेरा शुभाशीर्वाद तो सदा तुम्हारे साथ ही है।'

'परम पूज्य मुनिनाथ! आप अपना मङ्गलमय वरद हस्त मेरे सिरपर रख दें, फिर आप प्रत्यक्ष देखेंगे कि आपका यह पुत्र धरतीका बोझ उतारकर देवताओं, मुनियों एवं ब्राह्मणादिकोंको स्वतन्त्र और सुखी कर देगा।' गजमुखने बलपूर्वक कहा—'असुर निश्चय मारा जायगा। सिन्दूरका संहार होकर रहेगा।'

पुलकित महर्षि पराशरने अपने प्राणप्रिय गजाननके मस्तकपर स्नेहपूरित वरद हस्त रखा तो उनके नेत्र सजल हो गये। अवरुद्ध कण्ठसे उन्होंने कहा—'चन्द्रचूड़ तुम्हें विजय प्रदान करें।'

गजाननने प्रसन्नतापूर्वक अपने वृद्ध पिताके चरणोंपर मस्तक रख दिया। महर्षि अपना हाथ बालकके सिरपर अतिशय स्नेहसे फेरते रहे और जब गजाननने अपनी माता वत्सलाके चरणोंपर सिर रखा तो उन्होंने उन्हें उठाकर छातीसे लगा लिया।

'माँ! मुझे आशिष् दो, जिससे मैं अधर्मका नाश और धर्मकी स्थापना कर सकूँ।'

'प्राणप्रिय वत्स!' वत्सलाके नेत्र बरस पड़े। गजाननके सिरपर हाथ फेरती हुई स्नेहमयी जननी बोल नहीं सकीं। उनके मुँहसे केवल अधूरा वाक्य निकल सका—'माता तो अपने प्राण-प्रिय पुत्रकी सदा ही विजय······।'

सिर झुकाये गणेश मातासे विदा हुए तो उनके नेत्रोंसे दो मुक्ता-कण ढुलक पड़े, जिन्हें उन्होंने इस सावधानीसे छिपा लिया कि माता नहीं देख सकीं। गजाननने महर्षि पराशर और जननीके अनन्तर दुर्गा, शिव एवं श्रीहरिके चरणोंमें प्रणाम किया। वहाँ उपस्थित ऋषियोंके चरणोंमें शीश झुकाया।

फिर वत्सलानन्दन अपने चारों हाथोंमें अङ्कुश, परशु, पाश और कमल धारणकर मूषकपर आरूढ़ हुए। वीर बालक गजाननने गर्जना की। उनके गर्जनसे त्रिभुवन काँपने लगे। गजानन वायुवेगसे चले। उनके परम तेजस्वी स्वरूपसे प्रलयाग्नि-तुल्य ज्वाला निकल रही थी।

सिन्दूरासुरकी राजधानी घृष्णेश्वरके समीप सिन्दूरवाड़ नगरमें थी। वह वहींसे त्रैलोक्यका शासन करता था। महाप्रभु गजानन उक्त राजधानीके उत्तर पहुँचे। वहाँ वे भयानक गर्जन करने लगे। गजाननके गर्जनसे पर्वत टूट-टूटकर गिरने लगे, सागरमें गगनचुम्बी लहरें उठने लगीं, भीरुजन मूर्च्छित हो गये और दैत्योंका हृदय काँप उठा। कुछ देरके लिये सिन्दूर भी मूर्च्छित हो गया।

प्रकृतिस्थ होनेपर सिन्दूरने अपने सेवकोंसे कहा—'अरे, यह कौन वीर गर्जन कर रहा है, जिससे वीर पुरुष भी काँप उठे हैं। तुमलोग पता लगाओ; फिर मैं उसके सम्मुख चलता हूँ।'

दूत तुरंत चले। जब उन्होंने गजाननका अत्यन्त विकट रूप देखा तो काँपने लगे। अत्यन्त साहससे उन्होंने पूछा—'अरे, तुम नौ-दस वर्षके बालक कौन हो, कहाँसे आये हो, तुम्हारा नाम क्या है और तुम त्रैलोक्यविजयी सिन्दूरकी सीमापर गर्जन क्यों कर रहे हो? तुम्हें महाबलशाली असुरराजकी शक्तिका पता नहीं है क्या?'

क्रोधारुणलोचन विकटतम मुनि-पुत्रने उत्तर दिया—'राक्षसो! मैं तुम्हारे राजा सिन्दूरासुर और उसकी शक्तिसे अच्छी तरह परिचित होकर ही उसका वध करने यहाँ

आया हूँ। मैं पार्वती-परमेश्वरका पुत्र हूँ। मेरा नाम गजानन है। मैं समस्त असुर-कुलका सर्वनाश करके देवताओं तथा मुनियोंको त्राण देकर सद्धर्मकी स्थापना करने आया हूँ। मेरा यह संदेश तुम शीघ्र ही असुरराजके पास पहुँचा दो।'

भयभीत दूतोंने सिन्दूरके पास जाकर बताया—'स्वामिन्! शिवा और शिवका केवल नौ-दस वर्षका महाभयानक पुत्र गजानन आप जैसे अमित पराक्रमी शूरसे युद्ध करने आया है। वह काल-तुल्य बालक दैत्य-कुलका संहार करनेके लिये आतुर प्रतीत होता है; किंतु आप-जैसे अद्वितीय वीर योद्धाके सम्मुख वह मच्छर-तुल्य बालक कैसे बच सकेगा?'

सिन्दूर आकाशवाणीकी स्मृतिसे चिन्तित हो गया; किंतु दूसरे ही क्षण क्रोधसे उसके नेत्र लाल हो गये। बोला—'दूतो! तुम जानते हो, मेरे भयसे त्रैलोक्यके समस्त चराचर प्राणी काँपते हैं। पराक्रमी नरेश और देवता मेरे कारागारमें अपने जीवनके दिन गिनते हैं और शेष प्राण लेकर पर्वतों एवं वनोंमें छिपे बैठे हैं। इस नगण्य बालकको मसल देनेमें मुझे कितनी देर लगेगी।'

जब सिन्दूरने भयानक गर्जना की और अपने शस्त्रास्त्र धारण करने लगा, तब उसके अमात्योंने उसे समझाते हुए कहा—'स्वामिन्! आपकी परम पराक्रमी विशाल वीर-वाहिनीको बहुत दिनोंसे युद्धका अवसर नहीं मिला; अतएव आप हमें आज्ञा प्रदान करें। हम तुरंत उस गर्वोन्मत्त बालकका वध कर देते हैं। हमलोगोंके रहते आपको शस्त्र उठानेकी आवश्यकता नहीं।'

'वीरो! मैं तुम्हारे शौर्यसे परिचित हूँ, किंतु उक्त अहंकारी बालकको मृत्यु-दण्ड देनेके लिये मैं आतुर हो गया हूँ।' कहता हुआ सिन्दूर वेगसे चला और गजमुखके सम्मुख पहुँच गया।

'मूर्ख बालक!' महामदमत्त सिन्दूरासुर गजाननके समीप पहुँच उनकी उपेक्षा करते हुए कहने लगा—'तू गर्जन तो ऐसा कर रहा है, जैसे त्रैलोक्यको निगल जायगा, किंतु मेरे भयसे ब्रह्मा, विष्णु और शिव—सभी त्रस्त हैं। त्रैलोक्य मुझसे काँपता है। इस कारण क्षुद्रतम बालकसे युद्ध करनेमें मुझे लज्जा आ रही है। तू सुकुमार बच्चा है। जा, अपनी माताके अङ्कमें बैठकर दुग्ध-पान कर; अन्यथा व्यर्थ ही मृत्यु-मुखमें चला जायगा और तेरी माता रोती हुई विलाप करने लगेगी।'

'दुष्ट असुर!' गजाननने अत्यन्त निर्भीकतासे उत्तर दिया—'तूने बात तो उचित कही; किंतु अग्निका एक स्फुलिङ्ग सम्पूर्ण नगरको दग्ध करनेमें समर्थ होता है। मैं जगत्‌का सर्जन, पालन और संहार भी करता हूँ। मैं दुष्टोंका सर्वनाश कर धरणीका उद्धार और सद्धर्मकी स्थापना करनेवाला हूँ। यदि तू मेरी शरण आकर अपने पातकोंके लिये क्षमा-प्रार्थनाकर सत्कर्मपरायण नरेशकी भाँति जीवित रहनेकी प्रतिज्ञा कर ले, तब तो तुम्हें छोड़ दूँगा; अन्यथा निश्चय कर, तेरा अन्त-काल समीप आ गया है।'

इतना कहते ही पार्वतीनन्दनने विराट् रूप धारण कर लिया। उनका मस्तक ब्रह्माण्डका स्पर्श करने लगा। दोनों पैर पातालमें थे। कानोंसे दसों दिशाएँ आच्छादित हो गयीं। वे सहस्रशीर्ष, सहस्राक्ष, सहस्रपाद विश्वरूप प्रभु सर्वत्र व्याप्त थे। वे अनादिनिधन, अनिर्वचनीय विराट् गजानन दिव्य वस्त्र, दिव्य गन्ध और दिव्य अलंकारोंसे अलंकृत थे। उन अनन्त प्रभुका तेज अनन्त सूर्योंके समान था।

महामहिम गजाननका महाविराट् रूप देखकर परम प्रचण्ड वर-प्राप्त असुर सिन्दूर सहम गया, पर उसने धैर्य नहीं छोड़ा। उसने भयानक गर्जना की और फिर वह प्रज्वलित दीपपर शलभकी तरह अपना खड्ग लेकर प्रहार करना ही चाहता था कि देवदेव गजाननने कहा—'मूढ़! तू मेरे अत्यन्त दुर्लभ स्वरूपको नहीं जानता; अब मैं तुझे मुक्ति प्रदान करता हूँ।'

देवदेव गजाननने महादैत्य सिन्दूरका कण्ठ पकड़ लिया और उसे अपने वज्र सदृश दोनों हाथोंसे दबाने लगे। असुरके नेत्र बाहर निकल आये और उसी क्षण उसका प्राणान्त हो गया।

क्रुद्ध गजाननने उसके लाल रक्तको अपने दिव्य अङ्गोंपर पोत लिया। इस कारण जगत्‌में उन भक्तवाञ्छाकल्पतरु प्रभुका 'सिन्दूरवदन' और 'सिन्दूरप्रिय' नाम प्रसिद्ध हो गया।*

'जय गजानन!' उच्च घोष करते हुए आनन्दमग्न देवगण आकाशसे पुष्प-वृष्टि करने लगे। वहाँ हर्षके वाद्य बज उठे। अप्सराएँ नृत्य करने लगीं।

---

* ततः सिन्दूरवदनः सिन्दूरप्रिय एव च।
अभवज्जगति ख्यातो भक्तकामप्रपूरकः॥

(गणेशपु० २। १३७। २१)

ब्रह्मा, इन्द्रादि देव और वसिष्ठादि मुनि 'गजाननकी जय' बोलते हुए पवित्रतम उपहार लिये धरणीका दुःख दूर करनेवाले परम प्रभु गजमुखके सम्मुख एकत्र हुए। सिन्दूर-वधसे प्रसन्न नृपतिगण भी वहाँ पहुँच गये।

उन सबने सर्वाभरणभूषित, पाश, अङ्कुश, परशु और मालाधारी, चतुर्भुज, मूषक-वाहन गजाननकी षोडशोपचारसे भक्तिपूर्वक पूजा की। तदनन्तर इन्द्रादि देवगण परम प्रभु पार्वती-पुत्र गजाननकी स्तुति करने लगे—

……………स्तोतुं त्वां न हि शक्नुमः॥
यत्र कुण्ठाश्चतुर्वेदा ब्रह्माद्याश्च मुनीश्वराः।
त्वं कर्ता कारणं कार्यं रक्षकः पोषकोऽपि च॥
संहर्ता मोहनश्चास्य विश्वस्य ज्ञानदः क्वचित्।
सरितः सागरा वृक्षाः पर्वताः पशवोऽखिलाः॥
वायुराकाशपृथिवी वह्निर्वारि त्वमेव च।
ब्रह्मा विष्णुः शिवः शक्रो मरुतो मुनयोऽपि च॥
गन्धर्वाश्चारणाः सिद्धा यक्षराक्षसपंनगाः।
अप्सरःकिंनरा देव त्वमेव सचराचरम्॥
वयं धन्या यतो दृष्टः प्रत्यक्षं मोक्षसाधनः।
सिन्दूरे तु हते देव सुखं प्राप्ताः सुरोत्तमाः॥
राजानो मुनयो लोकाः स्वस्वकार्ये मुदा रताः।
भविष्यन्ति स्वधास्वाहावषट्काराश्रिताः क्रियाः॥
नानावतारैः कुरुषे पालनं त्वं विशेषतः।
दुष्टानां नाशनं सद्यो भक्तानां कामपूरकः॥
(गणेशपु० २। १३७। २८–३५)

'प्रभो! हम आपकी स्तुति करनेमे असमर्थ हैं; जिनके विषयमें कुछ कहनेमे चारों वेद, ब्रह्मादि देवता और मुनीश्वर भी कुण्ठित हैं, वहाँ हमारी क्या गिनती है? आप इस जगत्के कर्ता, कारण, कार्य, रक्षक, पोषक, संहारक, मोहक और कहीं ज्ञानदाता भी हैं। नदियाँ, समुद्र, वृक्ष, पर्वत, समस्त पशु, वायु, आकाश, पृथ्वी, अग्नि और जल भी आप ही हैं। देव! आप ही ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, मरुद्गण, मुनि, गन्धर्व, चारण, सिद्ध, यक्ष, राक्षस, नाग, अप्सराएँ, किंनर तथा चराचर प्राणियोंसहित समस्त जगत् हैं। हम धन्य हैं; क्योंकि हमने मोक्ष-साधक आप परमेश्वरका प्रत्यक्ष दर्शन किया है। देव! इस सिन्दूरासुरके मारे जानेसे समस्त श्रेष्ठ देवताओंको सुख प्राप्त हुआ है। अब राजा, मुनि, लोक अपने-अपने कार्यमे प्रसन्नतापूर्वक लग जायँगे। स्वधा, स्वाहा और वषट्कारके आश्रित समस्त क्रियाएँ निर्विघ्न होंगी। आप नाना प्रकारके अवतार लेकर विशेषरूपसे जगत्का पालन करते हैं एवं दुष्टोंका विनाश करके भक्तोंकी कामनाओंको तत्काल पूर्ण करते हैं।'

इस प्रकार स्तुति कर देवताओंने वहाँ एक भव्य मन्दिरका निर्माण किया और फिर उसमें गजाननकी सुन्दर मूर्ति स्थापित की। उसके दर्शनमात्रसे प्राणी निष्पाप हो जाता है।

देवताओंने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक उस मूर्तिकी विविधोपचारसे पूजा कर उसे प्रणाम किया। तदनन्तर मुनियोंने भी प्रसन्न मनसे उक्त गजानन-प्रतिमाका पूजन किया। सिन्दूरासुरको मारकर उन्हें सुखी करनेके कारण देवताओं और ऋषियोंने उक्त मूर्तिका नामकरण किया—'सिन्दूरहा'। फिर वे सभी अपने-अपने स्थानको चले गये।

इसके बाद श्रेष्ठ मुनियोंने नाना प्रकारके द्रव्योंसे गजानन-मूर्तिकी पूजा करके उसे प्रणाम किया और उक्त स्थानका नाम 'राजसदन' रखा।

'मेरे पुत्रने लोककण्टक सिन्दूरको समाप्त किया है।' इस समाचारसे प्रसन्न होकर राजा वरेण्य वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने यह विचारकर कि गजाननने दैत्यका नाश करके राजाओंको उनका पद प्रदान किया, उन्हे 'दैत्य-विमर्दन!' कहा।

अपने पुत्रका प्रत्यक्ष प्रभाव देखकर राजा वरेण्य अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने अत्यन्त प्रीतिपूर्वक गजाननकी पूजा की। अत्यधिक प्रेमके कारण राजा वरेण्यकी वाणी अवरुद्ध थी; नेत्रोंसे अश्रुपात हो रहा था। फिर दुःखके कारण रोते हुए उन्होंने देवदेव गजाननसे कहा—'जिस अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड-नायकको ब्रह्मादि देवगण भी नहीं जान पाते, भला मैं अज्ञानी मनुष्य उसे कैसे जान पाता। मै अपनी मूढ़ताको क्या कहूँ! घर आयी कामधेनु और सुरतरुको मैंने बाहर खदेड़ दिया। आपकी मायासे मोहित होकर मैंने बड़ा अनर्थ किया है। आप मुझे क्षमा करें।'

पश्चात्ताप करते हुए राजा वरेण्यकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर वरेण्यनन्दन गजाननने उन्हें अपनी चारों भुजाओंसे आलिङ्गन किया और फिर कहा—'नरेश! पूर्वकल्पमे जब तुमने अपनी पत्नीके साथ सूखे पत्तोंपर जीवन-निर्वाह करते हुए दिव्य सहस्र वर्षोंतक कठोर तप किया था, तब मैंने प्रसन्न होकर

तुम्हें दर्शन दिया। तुमने मुझसे मोक्ष न माँगकर मुझे पुत्र-रूपमें प्राप्त करनेकी इच्छा व्यक्त की। अतएव तुम्हारे पुत्र-रूपमें सिन्दूर-वधकर भू-भार-हरण करने तथा साधु-जनोंके पालनके लिये मैंने साकार विग्रह धारण किया; अन्यथा मैं तो निराकार रूपसे अणु-परमाणुमें व्याप्त हूँ। मैंने अवतार धारणकर सारा कार्य पूर्ण कर लिया। अब स्वधाम-प्रयाण करूँगा। तुम चिन्ता मत करना।'

'प्रभो! जगत् शाश्वत दुःखालय है।' प्रभुके स्वधाम-गमनकी बात सुनते ही राजा वरेण्यने अत्यन्त व्याकुलतासे हाथ जोड़कर कहा—'आप कृपापूर्वक मुझे इससे मुक्त होनेका मार्ग बता दीजिये।'

कृपापरवश प्रभु गजानन वहीं आसनपर बैठ गये। अपने सम्मुख बद्धाञ्जलि आसीन राजा वरेण्यके मस्तकपर उन्होंने अपना त्रितापहारी वरद हस्त रख दिया। तदनन्तर उन्होंने नरेश वरेण्यको सुविस्तृत ज्ञानोपदेश प्रदान किया।

तत्पश्चात् भगवान् श्रीगजानन अन्तर्धान हो गये।

परम प्रभुकी संनिधि, उनके कर-स्पर्श एवं अमृतमय उपदेशसे नरेश वरेण्य पूर्ण विरक्त हो गये। उन्होंने राज्यका दायित्व अमात्योंको सौंपा और स्वयं तपश्चरणार्थ वनमें चले गये। वहाँ उन्होंने अपना चित्त विषयोंसे हटाकर परब्रह्म श्रीगजाननमें केन्द्रित किया तथा अपना जीवन-जन्म सफल कर लिया।

श्रीगजानन-प्रदत्त अमृतोपदेश 'गणेश-गीता' के नामसे प्रख्यात हुआ।

(४)

श्रीधूम्रकेतु

श्रीगणेशका कलियुगीय भावी अवतार 'धूम्रकेतु'के नामसे विख्यात होगा। उस समय देश-समाजकी कैसी परिस्थिति रहेगी, इसका दिग्दर्शन गणेशपुराण १४९ वें अध्यायमें इस प्रकार कराया गया है—

कलियुगमें प्रायः सभी आचारभ्रष्ट एवं मिथ्याभाषी हो जायँगे। ब्राह्मण वेदाध्ययन और संध्या-वन्दनादि कर्म त्याग देंगे। यज्ञ-यागादि और दान कहीं नहीं होगा। परदोष-दर्शन, पर-निन्दा एवं परस्त्री-अपमान सभी करने लग जायँगे। सर्वत्र विश्वासघात होने लगेगा। मेघ समयपर वर्षा नहीं करेंगे। कृषक नदियोंके तटपर खेती करेंगे। बलवान् दुर्बलका धन छीन लेंगे और उनसे अधिक बलवान् उनकी सम्पत्तिका अपहरण करेंगे। ब्राह्मण शूद्र-कर्म करने लगेंगे और शूद्र वेद-पाठ करेंगे। क्षत्रिय वैश्योंके और वैश्य शूद्रोंके कर्म करने लग जायँगे। ब्राह्मण चण्डालका प्रतिग्रह स्वीकार करने लगेंगे। प्रायः सभी मूर्ख और दरिद्र होंगे। सर्वत्र हाहाकार मच जायगा। कलियुगी मनुष्य दूसरेका धन लेकर भी शपथपूर्वक अस्वीकार कर जायँगे।

सभी लोग पर-धनकी याचना करनेवाले होंगे और पर-धन स्वीकार करनेमें लज्जा एवं संकोचका अनुभव नहीं करेंगे। उत्कोच लेकर मिथ्या साक्षी देनेमें लोगोंको तनिक भी झिझक या आत्म-ग्लानि नहीं होगी। लोग सज्जनोंकी निन्दा और दुष्टोंसे मैत्री करेंगे। ब्राह्मण मांसाहारी हो जायँगे। सज्जनोंका उच्छेद और दुर्जनोंका उत्कर्ष होगा। मनुष्य देवताओंको त्यागकर इन्द्रिय-सुखमें तल्लीन रहने लगेंगे। वे भूत, प्रेत और पिशाचकी पूजा करने लगेंगे। नाना प्रकारके वेष बनाकर दम्भपूर्वक उदर-पूर्तिका प्रयत्न होगा। क्षत्रिय अपने धर्मका पालन छोड़कर भिक्षाटन करने लगेंगे। व्रत, नियम, आचरण—सभी लुप्त हो जायँगे।

संतान वर्णसंकर होगी। घोर कलिके उपस्थित होनेपर साध्वी स्त्रियाँ अपने व्रतसे भ्रष्ट हो जायँगी। पर-धन-हरण करनेवाले सभी मनुष्य म्लेच्छप्राय हो जायँगे। वे कुमार्गगामी होंगे। पृथ्वीकी उर्वरा शक्ति नष्ट हो जायगी और वृक्ष रसहीन हो जायँगे।

पाँच और छः वर्षकी कन्याएँ प्रसव करने लगेंगी। उस समय स्त्री-पुरुषोंकी पूर्णायु सोलह वर्षकी होगी। देवता और तीर्थ लुप्त हो जायँगे। धनार्जन ही प्रधान धर्म होगा। इस प्रकार सर्वत्र अधर्म, अनीति, अत्याचार और दुराचारका साम्राज्य व्याप्त हो जायगा। ईर्ष्या, द्वेष एवं मानसिक ज्वालासे सभी जलते रहेंगे। कलिकी अत्यन्त दारुण स्थितिका विवेचन सम्भव नहीं।

उस समय स्वाहा, स्वधा और वषट्कार-कर्म न होनेसे देवगण उपवास करने लगेंगे। वे अत्यन्त भयभीत होकर देवाधिदेव गजाननकी शरण जायँगे। फिर विविध प्रकारसे उन सर्वविघ्नविनाशन गजानन प्रभुका स्तवन कर उन्हें बार-बार नमस्कार करेंगे।

तब कलिके अन्तमें सर्वदुःखापह परम प्रभु गजानन धराधामपर अवतरित होंगे। उनका 'शूर्पकर्ण' और 'धूम्रवर्ण' नाम प्रसिद्ध होगा। क्रोधके कारण उन परम तेजस्वी प्रभुके शरीरसे ज्वाला निकलती रहेगी। वे नीले अश्वपर आरूढ होंगे। उन प्रभुके हाथमें शत्रु-संहारक तीक्ष्णतम खड्ग होगा। वे अपने इच्छानुसार नाना प्रकारके सैनिक एवं बहुमूल्य अमोघ शस्त्रास्त्रोंका निर्माण कर लेंगे।

फिर पातकध्वंसी परमप्रभु शूर्पकर्ण अपने तेज एवं सेनाके द्वारा सहज ही म्लेच्छोंका सर्वनाश कर देंगे। म्लेच्छ या म्लेच्छ-जीवन व्यतीत करनेवाले निश्चय ही परम प्रभु धूम्रकेतुके द्वारा मारे जायँगे। उन धर्म-संस्थापक प्रभुके नेत्रोंसे अग्नि-वर्षा होती रहेगी।

वे सर्वाधार, सर्वात्मा प्रभु धूम्रकेतु उस समय गिरि-कन्दराओं एवं अरण्योंमें छिपकर वनफलोंपर जीवन-निर्वाह करनेवाले ब्राह्मणोंको बुलाकर उन्हें सम्मानित करेंगे और वे करुणामय धर्ममूर्ति शूर्पकर्ण उन सत्पुरुषोंको सद्धर्म एवं सत्कर्मके पालनके लिये प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्रदान करेंगे। फिर सबके द्वारा धर्माचरण सम्पादित होगा और धर्ममय सत्ययुगका शुभारम्भ हो जायगा।

श्रीगणेशके प्रमुख आठ अवतार

(मुद्गलपुराणमें)

मुद्गलपुराणमें कहा गया है कि विघ्नविनाशन गणेशके अनन्त अवतार हैं। उनका वर्णन सौ वर्षोंमें भी सम्भव नहीं है। उनमें कुछ मुख्य हैं। उन मुख्य अवतारोंमें भी ब्रह्मधारक आठ मुख्य अवतार हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

वक्रतुण्डावतारश्च देहानां ब्रह्मधारकः।
मत्सरासुरहन्ता स सिंहवाहनगः स्मृतः॥
एकदन्तावतारो वै देहिनां ब्रह्मधारकः।
मदासुरस्य हन्ता स आखुवाहनगः स्मृतः॥
महोदर इति ख्यातो ज्ञानब्रह्मप्रकाशकः।
मोहासुरस्य शत्रुर्वै आखुवाहनगः स्मृतः॥
गजाननः स विज्ञेयः सांख्येभ्यः सिद्धिदायकः।
लोभासुरप्रहर्ता वै आखुगश्च प्रकीर्तितः॥
लम्बोदरावतारो वै क्रोधासुरनिबर्हणः।
शक्तिब्रह्माखुगः सद् यत् तस्य धारक उच्यते॥
विकटो नाम विख्यातः कामासुरविदाहकः।
मयूरवाहनश्चायं सौरब्रह्मधरः स्मृतः॥
विघ्नराजावतारश्च शेषवाहन उच्यते।
ममतासुरहन्ता स विष्णुब्रह्मेतिवाचकः॥
धूम्रवर्णावतारश्चाभिमानासुरनाशकः।
आखुवाहन एवासौ शिवात्मा तु स उच्यते॥
(मुद्गलपुराण २० । ५-१२)

'वक्रतुण्डावतार' देह-ब्रह्मको धारण करनेवाला है, वह मत्सरासुरका संहारक तथा सिंहवाहनपर चलनेवाला माना गया है। 'एकदन्तावतार' देहि-ब्रह्मका धारक है, वह मदासुरका वध करनेवाला है; उसका वाहन मूषक बताया गया है। 'महोदर'-नामसे विख्यात अवतार ज्ञान-ब्रह्मका प्रकाशक है। उसे मोहासुरका विनाशक और मूषक-वाहन बताया गया है। जो 'गजानन'-नामक अवतार है, (वह सांख्य ब्रह्म-धारक है), उसको सांख्ययोगियोंके लिये सिद्धिदायक जानना चाहिये। उसे लोभासुरका संहारक और मूषकवाहन कहा गया है। 'लम्बोदर'-नामक अवतार क्रोधासुरका उन्मूलन करनेवाला है; वह सत्स्वरूप जो शक्तिब्रह्म है, उसका धारक कहलाता है। वह भी मूषकवाहन ही है। 'विकट'-नामसे प्रसिद्ध अवतार कामासुरका संहारक है, वह मयूर-वाहन एवं सौरब्रह्मका धारक माना गया है। 'विघ्नराज'-नामक जो अवतार है, उसके वाहन शेषनाग बताये जाते हैं, वह विष्णुब्रह्मका वाचक (धारक) तथा ममतासुरका विनाशक है। 'धूम्रवर्ण'-नामक अवतार अभिमानासुरका नाश करनेवाला है, वह शिवब्रह्म-स्वरूप है। उसे भी मूषक-वाहन ही कहा जाता है।"

उन आठ अवतारोंकी अत्यन्त संक्षिप्त कथा इस प्रकार है—

(१)
वक्रतुण्ड

देवराज इन्द्रके प्रमादसे महान् असुर मत्सरका जन्म हुआ। उसने दैत्यगुरु शुक्राचार्यसे शिव-पञ्चाक्षरी मन्त्र (ॐ नमः शिवाय) की दीक्षा प्राप्त की। मत्सरने इस मन्त्रका जप करते हुए कठोर तप किया। उसके तपश्चरणसे संतुष्ट होकर भगवान् शंकरने अपनी सहधर्मिणी पार्वती और गणोंके साथ उसे दर्शन दिया।

मुदितमन मत्सरने शिवा और शिवकी प्रेमपूर्ण स्तुति की। भगवान् शंकरने प्रसन्न होकर उसे वरप्रदान किया—'तुम्हें किसीसे भय नहीं रहेगा।'

प्रसन्नचित्त मत्सर घर लौटा तो शुक्राचार्यने उसे दैत्यराजके पदपर अभिषिक्त किया। दैत्योंने सामर्थ्यशाली मत्सरको विश्व-विजयका परामर्श दिया।

फिर क्या था, वर-प्राप्त मत्सरासुरने अपनी विशाल वाहिनीके साथ पृथ्वीके नरेशोंपर आक्रमण कर दिया। पृथ्वीके नरपति युद्धभूमिमें उस महान् असुरके सम्मुख टिक नहीं सके। कुछ पराजित हो गये और कुछ प्राण लेकर भागे। सम्पूर्ण पृथ्वी मत्सरासुरके अधीन हो गयी।

तदनन्तर गर्वोन्मत्त असुरने पाताललोकपर आक्रमण किया। अमित शक्ति-सम्पन्न असुरके द्वारा सर्वनाश होते देख शेषने विनयपूर्वक उसके शासनमें रहकर नियमित-रूपसे कर देना स्वीकार कर लिया।

पृथ्वी और पातालको अपने अधिकारमें ले लेनेके अनन्तर महासुरने देवलोकपर चढ़ाई कर दी। वरुण, कुबेर और यम आदि देवता पराजित हो गये। फिर उसने अमरावतीको घेर लिया। सुरेन्द्र भी पराक्रमी असुरके सम्मुख टिक नहीं सके। मत्सरासुर स्वर्गका अधिपति हुआ।

असुरोंसे त्रस्त ब्रह्मा और विष्णु आदि देवता कैलास पहुँचे। उन्होंने भगवान् शंकरसे दैत्योंके उपद्रवका वृत्तान्त सुनाया। भगवान् शंकरने असुरकी निन्दा की।

यह समाचार जब मत्सरको प्राप्त हुआ तो वह अत्यन्त कुपित होकर कैलासपर जा चढ़ा। त्रिपुरारिने मत्सरासुरसे युद्ध किया; किंतु उस त्रैलोक्यविजयी दैत्यने भवानीपतिको भी पाशमें बाँध लिया। वह कैलासका स्वामी बनकर वहीं रहने लगा।

मत्सरासुरने कैलास और वैकुण्ठके शासनका भार अपने पुत्रोंको देकर स्वयं वैभव-सम्पन्न मत्सरावासमें रहने लगा। उस निष्ठुर असुरका शासन अत्यन्त क्रूर था। अनीति और अत्याचारका ताण्डव होने लगा।

दुःखी देवता मत्सरासुरके विनाशका उपाय सोचनेके लिये एकत्र हुए। कोई मार्ग न देखकर वे अत्यन्त चिन्तित हो रहे थे। उसी समय वहाँ भगवान् दत्तात्रेय आ पहुँचे। उन्होंने देवताओंको वक्रतुण्डके एकाक्षरी मन्त्र (गं) का उपदेश देकर उन्हें अनुष्ठान करनेके लिये प्रेरित किया।

समस्त देवताओंके साथ भगवान् पशुपति वक्रतुण्डके ध्यानके साथ एकाक्षरी मन्त्रका जप करने लगे। उनकी आराधनासे संतुष्ट होकर सद्यः फलदाता वक्रतुण्ड प्रकट हुए। उन्होंने कहा—'आपलोग निश्चिन्त हो जायँ। मैं मत्सरासुरका गर्व खर्व कर दूँगा।'

वक्रतुण्डके स्मरणमात्रसे गणोंकी असंख्य सशस्त्र सेना एकत्र हो गयी। वे मत्सरासुरकी राजधानी पहुँचे। शत्रु द्वारपर आ गये—यह समाचार पाकर अमर्षसे भरे हुए असुर युद्धके लिये निकल पड़े; किंतु जब उन्होंने असंख्य गणोंकी विशाल सेनाके साथ महाकाय वक्रतुण्डको देखा तो वे अत्यन्त भयभीत होकर काँपने लगे।

'पराक्रमी शत्रुसे युद्ध उचित नहीं।' लौटकर असुरोंने मत्सरासुरसे कहा। इसपर त्रैलोक्यविजयी असुर अत्यन्त कुपित हुआ। वह स्वयं आक्रमणकारी शत्रुको मिटा देनेके लिये समर-भूमिमें उपस्थित हुआ।

उसके आते ही अत्यन्त भयानक युद्ध छिड़ गया। पाँच दिनोंतक वह युद्ध चलता रहा, किंतु किसी पक्षकी विजय नहीं हो सकी। मत्सरासुरके दो पुत्र थे, सुन्दर-प्रिय और विषयप्रिय। उन दोनोंने समर-भूमिमें पार्वती-बल्लभको मूर्च्छित किया ही था कि वक्रतुण्डके दो गणोंने उन्हें मार डाला।

मत्सर छटपटा उठा। पुत्र-वधसे व्याकुल मत्सरासुरको असुरोंने समझाया और उससे शत्रुका संहार कर प्रतिशोध लेनेके लिये कहा। तब वह रण-भूमिमें उपस्थित हुआ। वहाँ उसने वक्रतुण्डका अत्यन्त तिरस्कार किया।

'दुष्ट असुर! यदि तुझे प्राण प्रिय हैं तो मेरी शरण आ जा; अन्यथा निश्चय ही मारा जायगा।' देवदेव वक्रतुण्डने उससे प्रभावशाली स्वरमें कहा।

पुत्र-वधसे आहत भयाक्रान्त मत्सरासुर भयानकतम वक्रतुण्डको देखकर विनयपूर्वक उनकी स्तुति करने लगा। उसकी प्रार्थनासे संतुष्ट होकर दयामय वक्रतुण्डने उसे अपनी भक्ति प्रदान कर दी।

प्रभु-कृपा-प्राप्त मत्सरासुरने निश्चिन्त होकर सुखका अनुभव किया और देवगण आनन्दमग्न होकर वक्रतुण्डकी स्तुति करने लगे। देवताओंको पूर्ण स्वतन्त्र कर प्रभु वक्रतुण्डने उन्हें अपनी भक्ति भी प्रदान कर दी।

* * *

प्रलयके अनन्तर सृष्टि-निर्माणमें अनेक व्यवधान उत्पन्न होनेपर लोक-पितामहने षडक्षरी मन्त्र ('वक्रतुण्डाय हुम्')-का जप करते हुए गणेशको संतुष्ट करनेके लिये कठोर तप करना प्रारम्भ किया। उनके तपश्चरणसे प्रसन्न होकर वक्रतुण्ड प्रकट हुए और विधाताको अभीष्ट वर प्राप्त हुआ। तदनन्तर वे सृष्टिकार्यमें समर्थ हो गये।

लोक-पितामहके कम्पसे दम्भका जन्म हुआ। उसने स्रष्टाको प्रसन्न करनेके लिये बड़ी कठोर तपस्या की। पद्मयोनिने संतुष्ट होकर उसे सर्वत्र निर्भयताका वर प्रदान कर दिया।

तब दम्भने अपने लिये एक अत्यन्त सुन्दर नगरका निर्माण करवाया और वहीं रहने लगा। दैत्यगुरु शुक्राचार्यने उसे दैत्याधिपतिके पदपर अभिषिक्त कर दिया।

अजेय दम्भासुरके अत्यन्त पराक्रमी सैनिक युद्धमें वीरोंका सहज ही मान-मर्दन किया करते थे। उन असुर वीरोंके साथ दम्भने सम्पूर्ण पृथ्वीको तो अपने अधीन किया ही, स्वर्ग, वैकुण्ठ और कैलासपर भी अधिकार कर लिया।

निराश्रित देवगण अत्यन्त चिन्तित और दुःखी होकर विधाताके समीप पहुँचे और उनकी स्तुति करने लगे। अत्यन्त दुःखसे उन्होंने प्रार्थना की—'प्रभो! हमारी रक्षा कीजिये।'

समस्त देवताओंके साथ ब्रह्माने एकाक्षरी मन्त्रसे वक्रतुण्डका यजन किया। वक्रतुण्ड प्रसन्न होकर देवताओंके सम्मुख प्रकट हुए। देवताओंने उन करुणामूर्ति वक्रतुण्डका स्तवन करते हुए निवेदन किया—'दारिद्र्य-दुःखहर प्रभो! दम्भासुरके द्वारा हमें अतिशय कष्ट हो रहा है। आप कृपा-पूर्वक हमें सुख-शान्ति प्रदान करें।'

'मैं दम्भासुरको पराजित करूँगा।' समस्त आपदाओंका हरण करनेवाले परम प्रभुने सुर-समुदायको आश्वस्त किया।

भगवान् वक्रतुण्डने सुरेन्द्रको दूतके रूपमें दम्भासुरके पास भेजा। उन्होंने असुरसे कहा—'तुम प्रभुकी आज्ञा स्वीकार कर लो और देवताओंको मुक्त कर उन्हें स्वाधीन रहने दो; अन्यथा परम प्रभु वक्रतुण्डसे युद्ध करनेके लिये रणाङ्गणमें आ जाओ। विश्वास करो, युद्ध करनेपर तुम्हारा सर्वनाश सुनिश्चित है।'

'मैं तुमलोगोंका अहंकार चूर्ण कर दूँगा।' दम्भका उत्तर प्राप्तकर शचीपति वक्रतुण्डके समीप पहुँचे।

'यह गणेश कौन है? सिद्धि-बुद्धि उसकी कौन हैं तथा उसका स्वरूप कैसा है?' मघवाके प्रयाणके बाद दम्भने तुरंत शुक्राचार्यके पास जाकर पूछा। शुक्राचार्यने उसे गणेशके यथार्थ स्वरूपका परिचय दिया।

अमित महिमामय वक्रतुण्डके अभूतपूर्व एवं अश्रुतपूर्व दिव्य स्वरूपको जानकर दम्भासुरके मनमें श्रद्धा उदित हुई। उसने गणेशकी शरण जानेका निश्चय किया, किंतु दैत्यगण उसका विरोध करने लगे। दैत्यपतिने सबकी उपेक्षा कर दी और वह नगरके बाहर महोदर महाकाय वक्रतुण्डके चरणोंपर गिरकर उनकी स्तुति करते हुए उनसे क्षमा-प्रार्थना की।

सहज दयामय गणेशने उसे क्षमा कर अपनी भक्ति-प्रदान कर दी। देवगण सुखी होकर निश्चिन्ततापूर्वक अपने-अपने कार्यमें लग गये।

(२)

एकदन्त

महर्षि च्यवनने मदकी सृष्टि की। मदने महर्षिके चरणोंमें प्रणाम किया और उनकी अनुमतिसे वह पातालमें शुक्राचार्यके पास पहुँचा। वहाँ उसने दैत्य-गुरुके चरणोंमें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर दूर खड़ा हो गया।

दैत्य-गुरुके पूछनेपर अपना परिचय देते हुए उसने कहा—"प्रभो! मैं आपके भाई महर्षि च्यवनका पुत्र हूँ; इस प्रकार आपका भी पुत्र हुआ। मेरा नाम 'मद' है। आप कृपापूर्वक मुझे अपना शिष्य बना लें। मैं ब्रह्माण्डका महान् राज्य चाहता हूँ। आप मेरी इच्छा पूरी कर दें।"

शुक्राचार्यने संतुष्ट होकर मदको शिष्य बनाना स्वीकार कर लिया। सर्वार्थकोविद आचार्यने उसे एकाक्षरी विधानसे ('ह्रीं' यह) शक्तिमन्त्र दे दिया।'

मदने अत्यन्त भक्तिपूर्वक अपने गुरुके चरणोंमें प्रणाम किया और उनका आशीर्वाद प्राप्तकर अरण्यमें तप करने चला गया। शक्तिध्यानपरायण मद सर्वथा निराहार रहकर तपश्चरण करने लगा। सहस्रों वर्ष व्यतीत होनेपर उसका अस्थिमात्र-अवशिष्ट शरीर वल्मीकावृत हो गया। उसके चारों ओर वृक्ष उग गये; लताएँ फैल गयीं। असुरके दिव्य सहस्र वर्षोंतक कठोर तपसे संतुष्ट सिंहवाहिनी भगवती प्रकट हुईं। आदिशक्तिने उसे सावधान किया

तो असुर जगज्जननीके चरणोंमें गिर पड़ा। उसकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर माताने उसे इच्छानुसार वर प्रदान किया—'तुम नीरोग रहोगे और तुम्हें ब्रह्माण्डका निष्कण्टक अचल राज्य प्राप्त होगा। तुम्हारी प्रत्येक इच्छा पूरी हो जाया करेगी।'

परमेश्वरी अन्तर्धान हो गयीं। मद प्रसन्न मनसे घर लौटा। उसने अपने सुन्दर नगरको और भी भव्य एवं सुखद बनवाया। तदनन्तर उसने प्रमादासुरकी कन्या सालसासे विवाह किया।

दूर-दूरके पराक्रमी दैत्य आकर उसके नगरमें रहने लगे। वे अत्यन्त आदरपूर्वक गुरु शुक्राचार्यको ले आये। उन्होंने अपने शिष्य मदको राज्य-पदपर प्रतिष्ठित कर दिया।

सुख-सुविधाओंसे सम्पन्न दैत्यराज मद सानन्द जीवन व्यतीत करने लगा। उसकी प्राणप्रिया सालसासे तीन पुत्र उत्पन्न हुए—विलासी, लोलुप और धर्मप्रिय।

अत्यन्त शक्ति-सम्पन्न मदासुरने पहले सम्पूर्ण धरतीपर अपना साम्राज्य स्थापित किया। फिर उसने स्वर्गपर चढ़ाई की। इन्द्रादिक देव पराजित हो गये। मदासुर स्वर्गका शासक हुआ।

उस असुरने शूलपाणि त्रिनेत्रको भी पराजित कर दिया। त्रैलोक्य उसके अधीन हो गया। सर्वत्र असुरोंका क्रूरतम शासन चलने लगा। पृथ्वीपर स्वाहा, स्वधा और वषट्कार आदि समस्त धर्म-कर्म लुप्त हो गये। देवताओं और मुनियोंके दुःखकी सीमा नहीं थी। सर्वत्र हाहाकार मच गया।

चिन्तित देवगण सनत्कुमारके समीप पहुँचे। उन्होंने अपनी व्यथा-कथा सुनाते हुए असुर-विनाश एवं धर्म-स्थापनाका उपाय पूछा।

सनत्कुमारने कहा—'देवगण! आप श्रद्धा-भक्तिपूर्वक एकदन्तकी उपासना करें। वे संतुष्ट होकर अवतीर्ण होंगे और निश्चय ही आपलोगोंका मनोरथ पूर्ण होगा।'

देवताओंके पूछनेपर सनत्कुमारने उन्हें एकाक्षरी मन्त्रका उपदेश कर एकदन्तका ध्यान इस प्रकार बताया—

एकदन्तं चतुर्बाहुं गजवक्त्रं महोदरम्।
सिद्धिबुद्धिसमायुक्तं मूषकारूढमेव च॥
नाभिशेषं सपाशं वै परशुं कमलं शुभम्।
अभयं दधतं चैव प्रसन्नवदनाम्बुजम्॥
भक्तेभ्यो वरदं नित्यमभक्तानां निषूदनम्।
(मुद्गलपु० २।५२।९—११)

'गणेशजीके एक दाँत और चार भुजाएँ हैं। उनका मुख हाथीके समान है। वे लम्बोदर हैं। उनके साथ सिद्धि और बुद्धि भी हैं। वे मूषकपर आरूढ़ हैं। उनकी नाभिमें शेषनाग हैं। वे अपने हाथोंमें पाश, परशु, सुन्दर कमल और अभय मुद्रा धारण करते हैं। उनका मुखारविन्द प्रसन्नतासे खिला हुआ है। वे भक्तोंके लिये सदा वरदायक और अभक्तोंके विनाशक हैं (मैं उनका ध्यान करता हूँ)।'

इसके अनन्तर महर्षिने 'एकदन्त'-शब्दकी व्याख्या करते हुए देवताओंसे कहा—

एकशब्दो मता माया देहरूपा विलासिनी।
सत्तात्मको दन्तशब्दः प्रोक्तस्तत्र न संशयः॥
मायाया धारकोऽयं वै सत्तामात्रेण संस्थितः।
एकदन्तो गणेशानः कथ्यते वेदवादिभिः॥
(मुद्गलपु० २।५२।१३-१४)

"'एक'-शब्द मायाका सूचक माना गया है; वह माया देहस्वरूपा एवं विलासवती है। 'दन्त' शब्द सत्तास्वरूप (परमात्मा) कहा गया है, इसमें संशय नहीं है। ये गणेश मायाके धारक हैं और स्वयं सत्तामात्र (परमात्मस्वरूप)से स्थित हैं; इसलिये वेदवादी विद्वान् इन्हें 'एकदन्त' कहते हैं।"

महर्षिके उपदेशानुसार देवगण एकदन्तको संतुष्ट करनेके लिये उनकी उपासना करने लगे। उन्हें तप करते हुए सौ वर्ष बीत गये, तब मूषकवाहन एकदन्त प्रकट हुए।

प्रभुके दर्शन कर प्रसन्न हुए देवताओं और ब्राह्मणोंने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर उनकी स्तुति की। इससे संतुष्ट होकर एकदन्तने देवताओंसे कहा—'वरं वृणुत।'

देवताओंने निवेदन किया—'प्रभो! मदासुरके शासनमें देवगण स्थानभ्रष्ट और मुनिगण कर्मभ्रष्ट हो गये हैं। आप हमारा विघ्न नष्टकर हमें अपनी भक्ति प्रदान करें।'

तथास्तु। एकदन्तने कह दिया।

उधर देवर्षिने मदासुरके समीप जाकर सूचना दी—'ब्राह्मणोंने कठोर तपके द्वारा एकदन्तको प्रसन्न कर लिया। एकदन्तने प्रकट होकर उनकी इच्छापूर्तिका वरदान दे दिया है। अब वे तुम्हारा प्राण-हरण करना ही चाहते हैं।'

मद अत्यन्त कुपित हुआ। वह अपनी विशाल सेनाके साथ एकदन्तसे युद्ध करने चला। मार्गमें एकदन्त प्रकट हो गये। राक्षसोंने देखा—'अत्यन्त उग्र मूषकारूढ़ महाकाय नर-कुञ्जर! चार हाथोंमें भयानकतम परशु और पाश आदि आयुध।'

'यह मूषकारूढ़ भयानक नर-नाग कौन है?' भयाक्रान्त असुर कोलाहल करने लगे। दैत्य डर गये थे। मदासुरने अपने दूतसे कहा—'तुम जाकर पूछो, वह विकट नर-नाग कौन है?'

दूतने एकदन्तके समीप जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर अत्यन्त आदरपूर्वक उनसे पूछा—'मैं त्रैलोक्याधिपति मदासुरका दूत हूँ। मेरे स्वामी आपकी अद्भुत मूर्ति देखकर अत्यन्त विस्मित हो गये हैं। वे जानना चाहते हैं कि आप कौन हैं, कहाँसे आ रहे हैं और आपका क्या कार्य है? आप उनका संशय निवारण करें।'

एकदन्तने हँसते हुए कहा—'मैं स्वानन्दवासी हूँ और अभी स्वानन्दसे ही यहाँ मदासुरका वध कर देवताओंको सुख प्रदान करनेके लिये आया हूँ। तुम अपने स्वामीसे कह दो कि वह यदि जीवित रहना चाहता है तो देवतादिकोंका द्वेष छोड़कर मेरी शरणमें आ जाय, अन्यथा मैं उसका वध अवश्य करूँगा।'

दूतने जब एकदन्तका संदेश मदासुरको दिया तो उसे नारदजीकी बात स्मरण हो आयी। उसने एकदन्तके कर-कमलोंमें अमित तेजस्वी परशु और पाश देखा। इतनेपर भी महाक्रूर असुर मद युद्धके लिये प्रस्तुत हो गया।

'आह!' मदासुरने अपने धनुषकी प्रत्यञ्चापर शर रखा ही था कि तीव्र परशु उसके वक्षमें प्रविष्ट हो गया। असुर पृथ्वीपर गिरा और मूर्च्छित हो गया। कुछ ही देर बाद सचेत होनेपर उसने परशु उठाकर देखना चाहा, पर वह दिव्य अस्त्र उसके हाथसे छूटकर एकदन्तके कर-कमलोंमें लौट गया।

आश्चर्यचकित मदासुरने कुछ देर विचार किया। उसने समझ लिया—'ये सर्वात्मा, सर्वसमर्थ परमात्मा हैं।' बस, वह अपना आसुरी भाव छोड़ दौड़कर प्रभुके चरणोंमें लेट गया और हाथ जोड़कर स्तुति करते हुए उसने कहा—'प्रभो! आज मुझे आपका दुर्लभ दर्शन प्राप्त हो गया, यह मेरा परम सौभाग्य है। मैं आपकी शरण हूँ। आप मुझे क्षमा कर अपनी दृढ़ भक्ति प्रदान करें।'

'जहाँ दैवी सम्पदासे पूर्ण मेरी पूजा-आराधना हो, वहाँ तुम मत जाना।' कहते हुए प्रसन्न एकदन्तने उससे कहा—'इसके विपरीत आसुरी-भावके कर्मोंका फल तुम भक्षण करते रहना।'

एकदन्तसे वर प्राप्तकर मदासुर पातालमें चला गया और प्रसन्न देवगण मूषक-वाहनकी स्तुति कर अपने-अपने स्थानको गये।

एक बार विष्णुने एकदन्तकी उपासना की। एकदन्तने प्रसन्न होकर उन्हें मणि-रत्न चिन्तामणि दे दी। वह चिन्तामणि शचीपतिने विष्णुके अवतार कर्दम-पुत्र महामुनि कपिलको दी। प्रसिद्ध गणासुरने बलात् उक्त मणि महर्षि कपिलसे छीन ली। कपिलकी प्रार्थनापर गणेशने आश्रमपर आये कुपित गणासुरका शिरश्छेद कर वह मणि पुनः कपिलदेवको लौटा दी।

महाविरक्त कपिलने उक्त चिन्तामणि अत्यन्त आदर-पूर्वक त्रैलोक्यपावन एकदन्तके गलेमें पहना दी।

(३)

महोदर

प्राचीनकालमें तारक-नामक अत्यन्त दारुण असुर हुआ। वह ब्रह्माके वरदानसे त्रैलोक्यका स्वामी हो गया। उसके शासन-कालमें देवता और मुनि अत्यन्त पीड़ित थे। वे वनोंमें रहकर अत्यन्त कष्ट सहते हुए अपना जीवन व्यतीत करते थे। देवताओं और ऋषियोंने बहुत समयतक शिव और शिवाका ध्यान किया। भगवान् आशुतोष समाधिस्थ थे। इस कारण देवता और मुनियोंने माता पार्वतीकी शरण ग्रहण की।

माता पार्वती अत्यन्त रूपवती युवती भीलनीके रूपमें शिवके आश्रममें गयीं। वे सुगन्धित पुष्पोंका चयन करती हुई मोह उत्पन्न कर रही थीं। त्रिनयनकी समाधि टूटी। उन्होंने बलात् आकृष्ट करनेवाली लावण्यवतीको ध्यानपूर्वक देखा ही था कि भीलनी अदृश्य हो गयी। तब शिवके द्वारा अत्यन्त उग्र महान् पुरुष मोह उत्पन्न हुआ। वह अत्यन्त सुन्दर और मानी था।

ध्यानसे पार्वतीकी लीला समझ भगवान् शंकरने कुपित होकर कामदेवके शरीरको दग्ध कर दिया। शापमुक्त होनेके लिये कामदेवने महोदरकी उपासना की। महोदर प्रकट हो गये। कामदेव उनके चरणोंमें प्रणाम कर गद्गद कण्ठसे उनकी स्तुति करने लगा।

प्रसन्न महोदर बोले—'मैं शिवके शापको तो अन्यथा नहीं कर सकता, किंतु तुम्हारे रहनेके लिये तुम्हें अन्य देह दे रहा हूँ।' ऐसा कहकर उन्होंने कामदेवके निवास-योग्य शरीर एवं स्थानोंका यों वर्णन किया—

यौवनं स्त्री च पुष्पाणि सुवासानि महामते।
गानं मधुररसश्चैव मृदुलाण्डजशब्दकः॥
उद्यानानि वसन्तश्च सुवासाश्चन्दनादयः।
सङ्गो विषयसक्तानां नराणां गुह्यदर्शनम्॥
वायुर्मृदुः सुवासश्च वस्त्राण्यपि नवानि वै।
भूषणादिकमेवं ते देहा नाना कृता मया॥
तैर्युतः शंकरादींश्च जेष्यसि त्वं पुरा यथा।
मनोभूः स्मृतिभूरेवं त्वन्नामानि भवन्तु वै॥

(मुद्गलपु० ३। ४। ४३-४६)

"महामते! यौवन, नारी और पुष्प, तुम्हारे सुन्दर वास-स्थान हैं। गान, मकरन्द-रस, पक्षियोंके मधुर कलरव, उद्यान, वसन्त और चन्दनादि तुम्हारे सुन्दर आवास हैं। विषयासक्त मनुष्योंका सङ्ग, गुह्य अङ्गोंका दर्शन, मन्द-वायु, सुन्दर वास, नये वस्त्र और आभूषण आदि—ये सब मैंने तुम्हारे लिये नाना प्रकारके शरीर निर्मित किये हैं। इन शरीरोंसे युक्त होकर तुम पहलेकी ही भाँति शंकरादि देवताओंको भी जीत सकोगे। इस प्रकार तुम्हारे 'मनोभूः' और 'स्मृतिभूः' आदि नाम होंगे।"

कामदेवकी प्रार्थनापर दयामय गणेशने पुनः कहा—'श्रीकृष्णके अवतरित होनेपर तू उनका पुत्र प्रद्युम्न होगा।'

शिव-पुत्र कार्तिकेयने षडक्षर-विधान ('वक्रतुण्डाय हुम्' के जप)से गणेशको प्रसन्न किया और सद्यःफलदाता गणेशने प्रसन्न होकर उन्हें वर-प्रदान किया—'तू तारकासुरका वध करेगा।' और फिर कार्तिकेयने तारकको मारकर देवताओंको संतोष प्रदान किया।

असुर-गुरु शुक्राचार्यने मोहासुरका संस्कार कर उसे दीक्षा दी। उनके आदेशानुसार मोहासुरने सूर्यको प्रसन्न करनेके लिये निराहार रहकर दिव्य सहस्र वर्षोंतक कठोर तपस्या की। उस तपसे संतुष्ट हो सूर्यदेव प्रकट हुए।

मोहासुरने उनके चरणोंमें प्रणाम कर षोडशोपचारसे उनकी पूजा की और सिर हाथ जोड़कर वह सूर्यदेवकी स्तुति करने लगा। प्रसन्न सूर्यदेव उसे रोगहीन और सर्वत्र विजयी होनेका वर प्रदान करके अन्तर्धान हो गये।

वर पाकर दर्पमग्न हुआ असुर अपने स्थानपर लौटा। शुक्राचार्यने उसे दैत्यराजके पदपर अभिषिक्त कर दिया। महान् असुरोंका सम्राट् होते ही मोहासुरने त्रैलोक्यपर अधिकार कर लिया। देवता और मुनि पर्वतों और अरण्योंमें छिप गये। मोहासुर अपनी परम रूपवती पत्नी (प्रमादासुरकी पुत्री) मदिराके साथ सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगा।

कर्ममार्ग, धर्माचरण और वर्णाश्रम-धर्म आदि सब नष्ट हो गये। दुःखी देवगण और ऋषि-समुदायको भगवान् सूर्यने एकाक्षर-विधानसे गणेशको संतुष्ट करनेकी प्रेरणा दी। देवता और मुनिगण अत्यन्त कष्ट सहकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक मूषक-वाहनकी उपासना करने लगे।

इससे प्रसन्न हो महोदर प्रकट हुए। देवता और मुनियोंकी स्तुतिसे अत्यन्त संतुष्ट होकर उन्होंने उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा—'मैं मोहासुरका वध करूँगा। आपलोग निश्चिन्त हो जायँ।'

मूषक-वाहन महोदर मोहासुरसे युद्धके लिये प्रस्थित हुए। यह समाचार देवर्षिने मोहासुरको दे दिया। साथ ही उन्होंने अनन्त पराक्रमशील, सर्वसमर्थ एवं सर्वाधार महोदरका सत्यस्वरूप भी उसे समझाया और उसे उनकी शरण ग्रहण करनेकी प्रेरणा दी। दैत्यगुरु शुक्राचार्यने भी उसे महोदरकी शरण लेनेका ही शुभ परामर्श दिया। उसी समय महोदर-दूत विष्णुने उपस्थित होकर मोहासुरसे कहा—'अचिन्त्यशक्ति-सम्पन्न प्रभु महोदरको तुम्हारी मैत्री अभीष्ट है। यदि तुम महोदरकी शरण ग्रहण कर देवताओं, मुनियों, ब्राह्मणों एवं सद्धर्मपरायण स्त्री-पुरुषोंके सुखपूर्वक जीवन-यापन करनेमें कभी व्यवधान उपस्थित न करनेका वचन दो तो दयामय प्रभु तुम्हें क्षमा कर देंगे; अन्यथा रणाङ्गणमें तुम्हारी रक्षा सम्भव नहीं।'

'मैं अखण्डज्ञान-सम्पन्न महोदरकी शरण लेता हूँ।' अहंकार-शून्य चित्तसे मोहासुरने अत्यन्त आदर, प्रेम और विनयपूर्वक

विष्णुसे निवेदन किया। 'आप परम प्रभु महोदरको मेरे नगरमें लाकर मुझे उनके सादर अभिनन्दनका दुर्लभतम अवसर प्रदान करें।'

महोदरने मोहासुरके नगरमें पदार्पण किया। मोहासुरने उनका अभूतपूर्व स्वागत किया। उसने प्रभुकी श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक पूजा और गद्गदकण्ठसे स्तुति की। असुरने महोदरकी प्रत्येक आज्ञाके पालनका वचन दिया।

सहज कृपालु महोदरने उसे अपनी दुर्लभ भक्ति प्रदान कर दी। मोहासुरके शान्त होनेसे देवता, ऋषि, ब्राह्मण एवं सद्धर्मपरायण स्त्री-पुरुष—सभी सुखी हो गये।

देवता और मुनि महोदर प्रभुका स्तवन एवं जय-जयकार करने लगे।

* * *

भगवान् गजमुखने दुर्बुद्धि नामक दैत्यका वध कर दिया था; इस कारण उक्त दैत्यका महान् पुत्र ज्ञानारि गजमुखसे प्रतिशोध लेनेके लिये अधीर और आतुर था। उसने दैत्यगुरु शुक्राचार्यसे शिवके पञ्चाक्षरी मन्त्र (नमः शिवाय) की दीक्षा प्राप्त की और तप करने लगा। ज्ञानारिके कठोर तपसे संतुष्ट होकर भगवान् शंकर प्रकट हुए और उसे निर्भयताका वर प्रदान कर दिया।

फिर क्या था; वर-प्राप्त असुर सर्वत्र विजय प्राप्त कर सर्वथा निरंकुश जीवन व्यतीत करने लगा। उसके शासनमें सत्य, धर्म और नीति-नामकी कोई वस्तु नहीं रह गयी। सर्वत्र छल, प्रवञ्चना, असत्य, अधर्म, अनीति, अनाचार और दुराचार व्याप्त थे। पापपरायण असुरोंसे धरती काँप उठी।

दुःखी, पीड़ित, अनाथ, अनाश्रित, असहाय और सर्वथा निरुपाय देवताओंको लक्ष्मीपति श्रीविष्णुने गणेशके दशाक्षरी मन्त्र (गं क्षिप्रप्रसादनाय नमः) का उपदेश दिया। देवगण देवदेव महोदरकी उपासना करने लगे। प्रसन्न महोदरने स्वप्नमें लक्ष्मीसे कहा—'मैं तुम्हारी इच्छापूर्तिके लिये तुम्हारे पुत्र-रूपमें प्रकट होऊँगा।'

समुद्रतनया मन-ही-मन गणेशका स्मरण कर रही थीं। सहसा उन्होंने अपनी शय्यापर देखा—'परम तेजस्वी अद्भुत शिशु।'

स्वप्नका स्मरण कर माताने उस अलौकिक बालकको गोदमें ले लिया और उसका नामकरण किया—'पूर्णानन्द'।

महादैत्य ज्ञानारिके पुत्रका नाम सुबोध था। सुबोधके हृदयमें पूर्णानन्द महोदरके प्रति अमित श्रद्धा एवं भक्ति थी। वह निरन्तर महोदरका स्मरण, उन्हींका ध्यान एवं उनके नामका जप किया करता था। सुबोध प्रायः महोदरके गुण गाता था। उसके पिता ज्ञानारिको यह सब सह्य नहीं था।

ज्ञानारिने अपने पुत्र सुबोधको अनेक प्रकारसे समझाया, किंतु उसपर उसका कोई प्रभाव पड़ता न देख वह उसे मार डालनेके लिये प्रस्तुत हो गया। अत्यन्त कुपित होकर उसने अपने पुत्रसे पूछा—'तेरा पूर्णानन्द महोदर कहाँ रहता है?'

'पृथ्वी, आकाश, जल, थल, पवन, तरु-लता-वल्लरियों, सर-सरिताओं, समुद्रों, वनों, पर्वतों, सचराचर प्राणियों और अणु-परमाणुमें वे सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापी, सर्वसमर्थ मूषक-वाहन गजमुख महोदर सदा निवास करते हैं।'

सुबोधके वचन सुन क्रोधोन्मत्त ज्ञानारिका हाथ खड्गपर गया। दाँत पीसते हुए उसने कहा—'यदि तेरा महोदर सर्वत्र है तो यहाँ भी होगा।'

'हाँ।' सुबोधने उत्तर दिया ही था कि भयानक शब्द हुआ, जैसे ब्रह्माण्ड विदीर्ण हो गया हो। काँपते हुए ज्ञानारिने अद्भुत, अलौकिक, अत्यन्त तेजस्वी, परम पराक्रमी, महाभयानक, मूषकारूढ़, सायुध नर-नाग-स्वरूप महोदरको देखा।

'यह अद्भुत प्राणी कौन है?' आश्चर्यचकित ज्ञानारि कुछ निश्चय भी नहीं कर पाया था कि पूर्णानन्दने उसका वध कर दिया।

सबकी आपदा टल गयी। सभी स्वतन्त्र और सुखी हो गये।

(४)
गजानन

एक बार धनाधिपति कुबेर कैलास पहुँचे। वहाँ उन्होंने जगद्वन्द्य शिवा-शिवका दर्शन किया। अमित सौन्दर्यशालिनी परम सती शिवा कुबेरको अपनी ओर लुब्ध-दृष्टिसे निहारते देख अत्यन्त क्रुद्ध हो गयीं। जगज्जननीकी कोप-दृष्टिसे भयभीत कुबेरसे लोभासुर उत्पन्न हुआ। वह अत्यन्त पराक्रमी और प्रतापी था।

लोभासुरने दैत्यगुरु शुक्राचार्यके पास जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया। आचार्यने उसे पञ्चाक्षरी मन्त्र (नमः शिवाय) की दीक्षा देकर तप करनेके लिये प्रेरणा दी।

लोभासुर गुरु-चरणोंमें आदरपूर्वक प्रणाम करके वनमें चला गया।

निर्जन अरण्यमें जाकर असुरने स्नानादिसे निवृत्त हो भस्म धारण किया। फिर वह पार्वतीवल्लभ शिवका ध्यान करता हुआ पञ्चाक्षरी मन्त्रका जप करने लगा। वह सर्वथा निराहार रहता था। इस प्रकार दीर्घकालतक अखण्ड तप करते रहनेसे उसका शरीर वल्मीकसे आवृत हो गया। दिव्य सहस्र वर्षतक तप करनेके अनन्तर करुणामय शिव उसके समक्ष प्रकट हुए।

लोभासुर देवाधिदेव महादेवके चरणोंमें प्रणाम कर उनकी स्तुति करने लगा। प्रसन्न फणिभूषणने उसे अभीष्ट वर प्रदान करते हुए सबसे निर्भय कर दिया।

सर्वथा निर्भय लोभासुरने प्रमुख दैत्योंको एकत्र किया। वे सभी लोभासुरका समर्थन करने लगे। उन असुरोंके सहयोगसे लोभासुरने पृथ्वीपर अपना एकच्छत्र राज्य स्थापित कर लिया। फिर उसने स्वर्गपर आक्रमण किया। वज्रायुध पराजित हो गये। लोभासुर स्वर्गाधिप बना।

पराजित सुरेशने अपनी व्यथा-कथा श्रीविष्णुसे कह सुनायी। श्रीविष्णु असुर-नाशके लिये चले। युद्ध हुआ। वर-प्राप्त असुरके सम्मुख श्रीविष्णु भी टिक नहीं सके; पराजित हो गये।

'विष्णु तथा अन्य देवताओंके रक्षक महादेव हैं'—यह सोचकर लोभासुरने अपना दूत शिवके पास भेजा। दूतने उनसे कहा—'आप परम पराक्रमी लोभासुरसे युद्ध कीजिये या कैलास उनके लिये रिक्त कर दीजिये।'

भगवान् शंकरको उसे अपना दिया हुआ वर स्मरण हो आया और वे कैलास त्यागकर सुदूर अरण्यमे चले गये।

लोभासुरके हर्षकी सीमा न रही। उसके शासनमें समस्त धर्म-कर्म समाप्त हो गये; पापोका नग्न ताण्डव होने लगा एवं ब्राह्मण और ऋषि-मुनि यातना सहने लगे।

रैभ्यने देवताओको गणेशोपासनाका परामर्श दिया। देवगण आदिदेव गजमुखकी आराधना करने लगे। इससे संतुष्ट होकर मूषकारूढ़ गजानन प्रकट हुए। उन्होंने देवताओको निश्चिन्त करते हुए कहा—'मैं लोभासुरको पराजित कर दूँगा।'

तदनन्तर गजाननने शिवको लोभासुरके समीप भेजा। वहाँ शिवने असुरसे स्पष्ट शब्दोंमें कहा—'तुम गजमुखकी शरण ग्रहणकर शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करो, अन्यथा युद्धके लिये उद्यत हो जाओ।'

इसके अनन्तर शिवने लोभासुरको गजमुख-माहात्म्य सुनाया। उसके गुरु शुक्राचार्यने भी उसे गजाननकी शरण लेना कल्याणकर बतलाया। लोभासुरने गणेश-तत्त्वको समझ लिया। फिर तो वह परमप्रभुके चरणोंकी वन्दना करने लगा।

शरणागतवत्सल गजाननने उसे सान्त्वना प्रदान की। देवता, मुनि और ब्राह्मण आदि सभी सुखी हुए। सभी देवदेव गजाननका गुणगान करने लगे।

(५)

लम्बोदर

श्रीविष्णुके महामोहप्रद अनुपम रूप-लावण्य-सम्पन्न मोहिनी रूपको देखकर कामारि काम-विह्वल हो गये थे। जब हँसते हुए श्रीविष्णुने मोहिनी-रूपको त्यागकर पुरुष-रूप धारण किया, तब शिव खिन्न हो गये; किंतु उनका शुक्र स्खलित हो गया। उससे एक परम शक्ति-सम्पन्न असुर पैदा हुआ। उस परम प्रतापी असुरका वर्ण श्याम था। उसके नेत्र ताँबेके समान चमक रहे थे।

उक्त असुरने शुक्राचार्यके समीप जाकर उनके चरणोंमें अत्यन्त विनयपूर्वक प्रणाम किया; फिर विनीत स्वरमें कहा—'प्रभो! आप मुझ शिष्यका पालन कीजिये।'

शुक्राचार्य कुछ देरके लिये ध्यानमग्न हुए। फिर उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—"शिवके क्रोधके समय सहसा उनके शुक्रका स्खलन हो गया और उसीसे तुम्हारी उत्पत्ति हुई; इस कारण तुम्हारा नाम 'क्रोधासुर' होगा।

शुक्राचार्यने उक्त क्रोधासुरका संस्कार कर उसे प्रत्येक रीतिसे योग्य बनाया। फिर उन्होने शम्बरकी अत्यन्त लावण्यवती पुत्री प्रीतिके साथ उसका विवाह करा दिया। अत्यन्त प्रसन्न होकर आचार्य-चरणोमे प्रणाम कर हाथ जोड़े असुरने निवेदन किया—'मैं आपकी आज्ञा प्राप्तकर ब्रह्माण्ड-विजय करना चाहता हूँ; अतएव आप मुझे यश प्रदान करनेवाला मन्त्र देनेकी कृपा कीजिये।'

दैत्योके हितचिन्तक शुक्राचार्यने उसे सविधि सूर्य-मन्त्र (घृणि सूर्य आदित्य ओम्) प्रदान किया। क्रोधासुरने गुरुके चरणोंमें प्रणाम किया और वह अरण्यमें चला गया।

वहाँ वह एक पैरपर खड़ा होकर उक्त सूर्य-मन्त्रका जप करने लगा। उसकी दृष्टि ऊपर उठी हुई थी। वह निराहार रहकर वर्षा, शीत और आतपका दुःख सहता हुआ सूर्यदेवको प्रसन्न करनेके लिये दारुण तप कर रहा था।

असुरके दिव्य सहस्र वर्षोंतक तप करनेके अनन्तर भगवान् सूर्यदेव प्रसन्न होकर प्रकट हुए और बोले—'वरं वृणु।'

क्रोधासुर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने तिमिरारिके चरणोंमें प्रणाम कर उनका भक्तिपूर्वक पूजन किया। फिर उसने विनयपूर्वक वरकी याचना की—'उत्पत्ति-स्थिति-संहारयुक्त देवनायक! मेरी मृत्यु न हो। मैं सम्पूर्ण ब्रह्माण्डपर विजय प्राप्त कर लूँ। आप मुझे चराचरका राज्य प्रदान कीजिये; आरोग्य दीजिये। मैं अद्वितीय सिद्ध होऊँ।'

क्रोधासुरके भयोत्पादक वचन सुन अत्यन्त विस्मित सूर्यदेवने उसे वर दे दिया—'तुम्हारा अभीष्ट सफल होगा।'

क्रोधासुर अत्यन्त प्रसन्न होकर लौटा। उस सफल-मनोरथ महायशस्वीको देखकर उसके सुहृद् आनन्दित हुए। उसने पहले गुरुके चरणोंकी वन्दना की, फिर अपने घर गया। उसकी सहधर्मिणी प्रीतिने दो पुत्र उत्पन्न किये—हर्ष और शोक। वह विविध प्रकारके भोग भोगने लगा।

क्रोधासुरने परम नीतिज्ञ शुक्राचार्यको आदरपूर्वक बुलाकर उनकी पूजा की। शुक्राचार्यने उसे अत्यन्त सुन्दर आवेशपुरीमें दैत्याधिपतिके पदपर प्रतिष्ठित कर दिया। असुर अपने महादारुण प्रधानोंके साथ शासन करने लगा।

कुछ दिनों बाद उसने असुरोंके सम्मुख अपनी ब्रह्माण्ड-विजयकी इच्छा व्यक्त की। असुर बड़े प्रसन्न हुए। विजय-यात्रा प्रारम्भ हुई। उसने सहज ही पृथ्वीपर अधिकार कर लिया। फिर वह अमरावतीपर दौड़ा। उसके डरसे देवगण भागे। इससे स्वर्ग असुरके अधीन हो गया। इसी प्रकार वैकुण्ठ और कैलासपर भी उस महादैत्यका राज्य स्थापित हुआ।

अन्ततः क्रोधासुरने अपना दूत भगवान् सूर्यदेवके पास भेजा। सूर्यदेव वर प्रदान कर चुके थे; अतएव दुःखी हृदयसे उन्होने सूर्यलोक त्याग दिया। वहाँ क्रोधासुरका शासन होने लगा।

अत्यन्त दुःखी देवताओं और ऋषियोंने गणेशकी आराधना की। इससे संतुष्ट होकर लम्बोदर प्रकट हुए। उन्होंने कहा—'देवताओ और ऋषियो! मैं क्रोधासुरका अहंकार चूर्णकर उसे नष्ट कर दूँगा। आपलोग निश्चिन्त हो जायँ।'

आकाशवाणीसे यह संवाद क्रोधासुरने भी सुना। वह भयाक्रान्त हो मूर्च्छित हो गया। चेतना लौटनेपर उसके वीर सैनिकोंने उसे समझाया—'सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड हमारे अधीन है। आप आज्ञा प्रदान करें; हम किसी भी शत्रुका नाश करनेमें समर्थ और प्रतिक्षण प्रस्तुत हैं।'

अपने वीर सैनिकोंके वचन सुन क्रोधासुर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। वह अपनी अजेय सेनाके साथ समराङ्गणमें पहुँचा। वहाँ उसने मूषकारूढ़ गजमुख, त्रिनयन, लम्बोदरको देखा। उनकी नाभिमें शेष लिपटे हुए थे। लम्बोदरके इस विचित्र स्वरूपको देखकर क्रोधासुर अत्यन्त कुपित हुआ।

भीषण संग्राम होने लगा। लम्बोदरके साथ देवगण भी असुरोंका सर्वनाश करने लगे। क्रोधासुरके बलि, रावण, जृम्भ, माल्यवान्, कुम्भकर्ण और राहु आदि महाबलवान् योद्धा अत्यन्त आहत होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। वे मृतप्राय हो गये। क्रोधासुर दुःखसे अत्यन्त व्याकुल हो गया।

उसने लम्बोदरको सम्मुख देखकर कहा—'मूर्ख लम्बोदर! तू ब्रह्माण्ड-विजयी शूरके सम्मुख युद्ध करना चाहता है। तेरी बुद्धि मारी गयी है। तू शीघ्र ही मेरी शरण आ जा, अन्यथा मैं तेरा लम्बा उदर एक ही शरसे फोड़ दूँगा।'

भगवान् लम्बोदरने उत्तर दिया—'अरे दैत्य! तू व्यर्थ क्यों बकता है? मैं तुझ-जैसे खलका वध करनेके लिये ही यहाँ आया हूँ। तूने सूर्यके वरके प्रभावसे बड़ा अधर्म किया। पर तेरे अत्यन्त पापसे वे सारे शुभ कर्म निष्फल हो गये। अब मैं तेरा और तेरे अधर्मोंका नाश कर धर्मकी स्थापना करूँगा। मैं मन-वाणीसे परे, आनन्दस्वरूप और सम्पूर्ण भूतोंमें वास करता हूँ, फिर तू मुझपर कैसे विजय प्राप्त कर सकेगा?'

असुरने तुरंत पूछा—'ब्रह्मका जन्म नहीं होता और मन-वाणीसे अगोचरको मैं देख कैसे रहा हूँ?'

लम्बोदर बोले—"मेरे वामाङ्गमें जो यह सिद्धि है, वह भ्रान्तिस्वरूपा है। सब लोग सिद्धिके लिये भटकते हैं और भ्रममें पड़े रहते हैं। दायें भागमें स्वयं बुद्धि विराजमान है, जो भ्रान्तिको धारण करती है। बुद्धिसे विचार करके फिर उस विषयमें मनुष्य भ्रान्त होता है। स्वयं बुद्धि चित्तरूपा है और वह पाँच प्रकारकी बतायी गयी है। सिद्धि पञ्च भ्रान्तिमयी है और मैं इन दोनों बुद्धि और सिद्धिका पति हूँ। नाना प्रकारका विश्व और ब्रह्म सदा मेरे उदरमें स्थित है, इसलिये मैं 'लम्बोदर' कहा गया हूँ। सारा जगत् मेरे उदरसे उत्पन्न हुआ है, मुझसे ही पालित होता है और अन्तमें सबको अपने उदरस्थ करके मैं निरन्तर क्रीड़ा करता रहता हूँ। अतएव यदि तुम जीवित रहना चाहते हो तो मेरी शरणमें आ जाओ। शुक्राचार्य मुझे जानते हैं। तुम तो समझानेपर भी मेरे तत्त्वको नहीं समझ सकते। न तो मैं दैत्योंके वधका अभिलाषी हूँ और न देवताओंका ही वध मुझे प्रिय है। अपने-अपने धर्ममें लगे हुए सब लोगोंका मैं पालन करता हूँ; इसमें संशय नहीं है।"

क्रोधासुरकी शङ्काओंका समाधान होते ही वह प्रभुके चरणोंमें गिर पड़ा। उसने भक्तिभावसे उनकी पूजा कर गद्गद कण्ठसे स्तुति की। सहज कृपालु लम्बोदरने उसे क्षमा तो कर ही दिया, उसे अपनी भक्ति भी प्रदान कर दी।

क्रोधासुरने परम प्रभु लम्बोदरके चरण-कमलोंमें पुनः प्रणाम कर उनकी पूजा की। फिर वह उनकी आज्ञा प्राप्तकर शान्त जीवन व्यतीत करनेके लिये पातालको चला गया।

प्रसन्न देवगण देवदेव लम्बोदरका स्तवन करने लगे।

* * *

एक बारकी बात है, लोकपितामह सत्यलोकमें ध्यानस्थ बैठे थे। उसी समय उनके श्वास-वायुसे एक पुरुष प्रकट हुआ।

उक्त पुरुषने विधाताके चरणोंमें प्रणाम कर अत्यन्त भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति की। संतुष्ट ब्रह्माने उससे पूछा—'तुम कौन हो और तुम्हें क्या अभीष्ट है?'

उक्त पुरुषने अत्यन्त विनयपूर्वक निवेदन किया—'प्रभो! मैं आपके श्वास-वायुसे उत्पन्न आपका पुत्र हूँ। मेरा नामकरण कर मुझे रहनेके लिये स्थान प्रदान करनेका अनुग्रह करें।'

ब्रह्मा बोले—"महामते! तुम्हारे दर्शनमात्रसे ही माया बढ़ती है, इस कारण तेरा नाम 'मायाकर' होगा। तुम जो इच्छा करोगे, वही पूरी हो जायगी। तुम्हारी अव्याहत गति होगी। सब तुम्हारे वशीभूत होंगे। तुम सदा स्वस्थ रहोगे।"

मायाकर पितामहके चरणोंमें प्रणाम कर वहाँसे लौट पड़ा। अत्यन्त शक्तिशाली मायाकरको देखकर विप्रचित्ति-नामक असुरने उसके चरणोंमें प्रणाम किया। उसने मायाकरकी अधीनता स्वीकार कर ली और शुक्राचार्यके द्वारा उसे दैत्याधिपतिके पदपर प्रतिष्ठित करवाया। प्रत्येक दृष्टिसे मायाकरको संतुष्ट कर लेनेके अनन्तर विप्रचित्तिने उसे सांसारिक भोग-सामग्रियोंकी ओर आकृष्ट किया।

फिर तो मायावी दैत्यने सबको पराजित कर अपने अधीन कर लिया। तदनन्तर उसने पातालपर आक्रमण किया। मायाकरके सम्मुख किसीका वश नहीं था। पातालमें हाहाकार मच गया।

इसपर शेषनागने विघ्नराज गणेशका स्मरण किया। प्रकट होकर देवदेव लम्बोदरने कहा—'मैं आपके पुत्रके रूपमें प्रकट होकर असुर मायाकरका वध करूँगा।'

जब सर्वान्तर्यामी, सर्वसमर्थ, मूषक-वाहन प्रभु लम्बोदर शेषके पुत्रके रूपमें प्रकट हुए तो देवगण हर्ष-विभोर होकर उनकी स्तुति करने लगे।

जगत्त्राता मूषक-वाहन लम्बोदर रणाङ्गणमें उपस्थित हुए। मायाकर भी अपनी वीर-वाहिनीके साथ डट गया। तुमुल युद्ध हुआ। दैत्योंको शिथिल होते देख मायाकरने अपनी मायाका आश्रय लिया, किंतु मायापतिके सम्मुख उसकी एक न चली। मायाकर मारा गया।

देवगण प्रसन्न हो गये।

(६)

विकट

क्षीराब्धिशायी विष्णु जब जलन्धर-पत्नी वृन्दाके समीप पहुँचे, उस समय उनके शुक्रसे अत्यन्त तेजस्वी कामासुरकी उत्पत्ति हुई। उसने दैत्यगुरु शुक्राचार्यके यहाँ जाकर उनके चरणोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। दैत्य-शुभाकाङ्क्षी शुक्राचार्यने उसे शिव-पञ्चाक्षरी मन्त्रकी दीक्षा दे दी। असुरने पुनः अपने गुरुके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर तपश्चरणार्थ वनको चला गया।

वहाँ उसने देवाधिदेव महादेवको संतुष्ट करनेके लिये अन्न, जल और फलादिका सर्वथा परित्याग कर उक्त महिमामय पञ्चाक्षरी मन्त्रका जप करते हुए तपस्या प्रारम्भ की। अत्यन्त धीर कामासुरने अनेक कष्ट सहते हुए दिव्य सहस्र वर्षोंतक कठोरतम तप किया।

उस तपसे प्रसन्न आशुतोषने प्रकट होकर उससे वर माँगनेके लिये कहा। कामासुर हर्षोत्फुल्लनेत्र, प्रसन्नवदन, भक्तवत्सल प्रभुके दर्शन कर कृतार्थ हुआ। उसने कर्पूरगौरके चरणोंमें प्रणिपात कर वर-याचना की—'प्रभो! आप मुझे अपने चरणोंकी भक्ति और ब्रह्माण्डका राज्य प्रदान कीजिये। मैं बलवान्, निर्भय एवं मृत्युजयी होऊँ।'

स्वर्गापवर्गदाता करुणामय शिवने कहा—'यद्यपि तुमने अत्यन्त दुर्लभ और देव-दुःखद वरकी याचना की है, तथापि तुम्हारे कठोर तपसे संतुष्ट होकर मैं तुम्हारी कामना पूरी करता हूँ।'

शूलपाणि अन्तर्धान हो गये। प्रसन्न कामासुरने अपने गुरु शुक्राचार्यके समीप जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर उन्हें शिव-दर्शन एवं उनके द्वारा वर-प्राप्तिका वृत्तान्त कह सुनाया।

महायशस्वी दैत्याचार्यने संतुष्ट होकर उसका महिषासुरकी रूपवती पुत्री तृष्णाके साथ विवाह करा दिया। उक्त मङ्गल-अवसरपर दूर-दूरके सभी प्रसिद्ध दैत्यगण एकत्र हुए। उसी समय शुक्राचार्यने उसे दैत्यराजके पदपर प्रतिष्ठित कर दिया। समस्त दैत्योंने उसके अधीन रहना स्वीकार किया।

कामासुरने अत्यन्त सुन्दर रतिद-नामक नगरमें अपनी राजधानी बनायी। उसके रावण, शम्बर, महिष, बलि और दुर्मद—ये पाँच शूर प्रधान थे। कामासुर इन प्रचण्ड दैत्योंके साथ सुशोभित होने लगा।

महा-असुरने अपने प्रधान दैत्योंके साथ विचार-विमर्शकर पृथ्वीपर आक्रमण कर दिया। उसके तीक्ष्णतम अमोघ शरोंसे धरतीके प्राणी व्याकुल होकर उसके वशमें हो गये। फिर वह स्वर्गपर दौड़ा। उसके शस्त्रोंके सम्मुख देवता भी नहीं टिक सके; सभी उसके अधीन हो गये। वरप्राप्त कामासुरने कुछ ही समयमें त्रैलोक्यपर अधिकार प्राप्त कर लिया।

उसने समस्त धर्म-कर्मोंको नष्ट कर दिया। छल-कपट और झूठ सर्वत्र व्याप्त हो गये, स्वाहा, स्वधा और वषट्कार लुप्त हो गये, वर्णाश्रम-धर्म मिटने-सा लगा और देवता, मुनि एवं धर्मपरायण जन अतिशय कष्ट पाने लगे।

विपत्तिसे त्राण पानेके लिये समस्त देवता एकत्र हुए। उसी समय वहाँ योगिराज मुद्गल ऋषि पधारे। देवताओंने अर्घ्य-पाद्य आदिसे उनकी आदरपूर्वक पूजा की। भगवान् शंकरने पूछा—'हमें स्थान-भ्रष्ट करनेवाले कामासुरके विनाशका मार्ग बताइये।'

मुनिवर मुद्गलने कहा—'आपलोग सिद्धक्षेत्र मयूरेशमें जाकर तप करें। वहाँ आपलोगोंके तपसे संतुष्ट होकर स्वयं भगवान् गणेश प्रकट होंगे और आपके संकटोंका निवारण करेंगे।'

शिवादि देवता पावनतम मयूरेश-क्षेत्रमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने श्रद्धा एवं विधिपूर्वक गणेशकी पूजा की। तदनन्तर वे एकाक्षरी-विधानसे गणेशकी उपासना और गद्गद-कण्ठ तथा अश्रुपूरित नेत्रोंसे उनका स्तवन करने लगे।

भक्तवत्सल मयूर-वाहन गणेशने प्रकट होकर कहा—'देवताओ! वर माँगो। मैं प्रसन्न हूँ।'

देवताओंने निवेदन किया—'प्रभो! दैत्यराज कामासुरकी क्रूरतासे हम सभी देवता स्थान-भ्रष्ट हैं और मुनिगण कर्मरहित हो गये हैं। आप हमारी रक्षा करें।'

'मैं कामासुरका वध कर समस्त देवताओं और मुनियोंको निरापद करूँगा।' मयूरेशने कहा।

आकाशवाणीसे यह घोषणा सुनकर कामासुर मूर्च्छित हो गया। कुछ देर बाद विचार-विमर्श कर उसके वीर असुरोंने देवताओं और मुनियोंपर आक्रमण कर दिया। देवता और मुनि परम प्रभु मयूरेशको पुकारने लगे।

पाश-अङ्कुशधारी मयूर-वाहन महाविकट गजानन प्रकट हुए। उन्होंने भयानक गर्जना की। शिवादि देवता उनकी स्तुति करने लगे।

'मैं कामासुरको नष्ट करूँगा।' मयूर-वाहनने कहा और देव-सैनिकोंके साथ रहकर युद्धार्थ प्रस्तुत हो गये।

अपने प्रबलतम सैनिकोंके साथ कामासुर भी पहुँचा। संग्राम छिड़ा। देवताओंके प्रबल प्रहारसे दैत्यगण व्याकुल हो गये। वे भयसे यत्र-तत्र भागने लगे। उस भीषण युद्धमें कामासुरके दो प्रिय पुत्र शोषण और दुष्पूर मारे गये।

तब अत्यन्त क्रुद्ध होकर कामासुर सम्मुख आया। उसने प्रभुसे कहा—'मूर्ख! मैंने त्रैलोक्यको वशमें कर लिया है। तेरे वीर देवगण मूर्च्छित पड़े हैं। यदि तू प्राण-रक्षा चाहता है तो यहाँसे भाग जा।'

हँसते हुए मयूर-वाहन विकटने उत्तर दिया—'असुर! तूने शिव-वरके प्रभावसे बड़ा अधर्म किया है। मैं सृष्टि-स्थिति-संहारकर्ता एवं जन्म-मृत्यु-रहित हूँ। तू मुझे किस प्रकार मार सकता है? अपने गुरु शुक्राचार्यके उपदेशका स्मरण करके मेरे स्वरूपको समझ। यदि तू जीवित रहना चाहता है तो मेरी शरण आ जा। अन्यथा तेरा सम्पूर्ण गर्व खर्व होकर रहेगा और तू निश्चय ही मारा जायगा।'

मयूर-वाहनकी वाणी सुनते ही कामासुर अत्यन्त कुपित हुआ। उसने अपनी भयानक गदा मयूर-वाहनपर फेंकी, किंतु वह गदा प्रभुवर विकटका स्पर्श न कर पृथ्वीपर गिर पड़ी; यह देख दैत्यराज कामासुर सहसा मूर्च्छित होकर गिर पड़ा।

कुछ देर बाद सचेत होनेपर उसने अपने अङ्ग-प्रत्यङ्गमें भयानक पीड़ा और अकल्पित अशक्तिका अनुभव किया। कामासुरने अत्यन्त आश्चर्यसे अपने मनमें सोचा—'इस अद्भुत देवने शस्त्रके बिना ही मेरी ऐसी दुर्दशा कर दी और जब शस्त्रका स्पर्श करेगा, तब क्या होगा? युद्धमें तो यह निश्चय ही मुझे मार डालेगा।'

यह सोच उसने प्रभु विकटसे उनके सम्बन्धमें अनेक प्रश्न किये और उसका समाधान होते ही वह दयामय मयूर-वाहन विकटकी शरणमें गया। मूषकध्वजने उसे अपनी भक्ति प्रदान की।

कामासुर शान्तजीवन व्यतीत करनेके लिये प्रस्थित हुआ। देवता और मुनि प्रसन्न हो गये। सर्वत्र धर्म-प्रधान आचरण होने लगे।

(७)

विघ्नराज

एक बारकी बात है। विवाहोपरान्त हिमगिरिनन्दिनी अपनी सखियोंके साथ बात करती हुई हँस पड़ीं। उनके हास्यसे अत्यन्त मनोरम पर्वत-तुल्य एक महान् पुरुष उत्पन्न हुआ।

उसे देखकर अत्यन्त चकित शिवप्रियाने पूछा—'तुम कौन हो, कहाँसे आये हो और क्या चाहते हो?'

उक्त पुरुषने अत्यन्त विनयपूर्वक उत्तर दिया—'माता! मैं अभी-अभी आपके हास्यसे उत्पन्न हुआ आपका पुत्र हूँ। आप आज्ञा प्रदान करें, मैं उसका अवश्य पालन करूँगा।'

माता पार्वती बोलीं—'मैं अपने प्राणनाथसे मान किये बैठी थी; उस मानकी स्थितिमें तुमने जन्म लिया है। अतएव मानपरायण तुम्हारा नाम मम (ममता) होगा। तुम जाकर गणेशका स्मरण करो। उनके स्मरणसे तुम्हें सब कुछ प्राप्त हो जायगा।'

माता पार्वतीने ममताको गणेशका षडक्षर (वक्रतुण्डाय हुम्) मन्त्र प्रदान कर दिया। ममताने अत्यन्त भक्तिपूर्वक माताके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर वनमें तप करने चला गया।

वहाँ उसकी शम्बरासुरसे भेंट हुई। पार्वती-पुत्र ममने उससे पूछा—'आप कौन हैं तथा यहाँ कैसे पधारे हैं?'

शम्बरने उत्तर दिया—'महाभाग! मैं तुम्हें विद्या-दान करने आया हूँ। उस विद्यासे तुम निस्संदेह सामर्थ्यशाली हो जाओगे।'

इतना कहकर शम्बरने ममताको नाना प्रकारकी आसुरी विद्याएँ सिखा दीं। उन विद्याओंके अभ्याससे ममता कामरूप हो गया। विविध प्रकारकी शक्तियोंको प्राप्तकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ।

तब उसने शम्बरके चरणोंमें प्रणाम कर हाथ जोड़े अत्यन्त विनीत स्वरमें कहा—'महाभाग! आपने मुझपर अद्भुत कृपा की है। अब मैं आपका शिष्य हूँ। आज्ञा प्रदान कीजिये, मैं क्या करूँ?'

शम्बरने ममताको समझाया—'अब तुम महान् शक्तिकी प्राप्तिके लिये विघ्नराजकी उपासना करो। उनके प्रसन्न होकर प्रकट होनेपर उनसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका राज्य और अमरण-वरके अतिरिक्त अन्य कुछ मत माँगना। वर प्राप्तकर तुम मेरे पास चले आना।'

इतना कहकर शम्बर प्रसन्नतापूर्वक अपने घर चला गया और मम वहीं बैठकर कठोर तप करने लगा। वह केवल वायुपर निर्भर रहकर गजमुखका ध्यान एवं उनके मन्त्रका जप कर रहा था। इस प्रकार उसे तप करते हुए दिव्य सहस्र वर्ष बीत गये।

प्रसन्न होकर गणनाथ प्रकट हुए। उन्होंने ममतासे कहा—'मैं तुम्हारे कठोर तपसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम इच्छानुसार वर माँग लो।'

परम प्रभु गजाननकी वाणी सुनकर ममताके नेत्र खुले और जब उसने विघ्नेश्वर गजवक्त्रका दर्शन किया तो आनन्द-विभोर हो गया। उसने विघ्नराजके चरणोंमें प्रणाम कर अत्यन्त भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की और फिर गद्गद कण्ठसे स्तुति करने लगा।

अन्तमें वर-याचना करते हुए उसने कहा—'वरदाता प्रभो! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो कृपापूर्वक मुझे ब्रह्माण्डका राज्य प्रदान करें, युद्धमें मेरे सम्मुख कभी विघ्न उपस्थित न हो। मैं शंकर आदिके लिये भी सदा अजेय रहूँ। आप मुझे अमोघ शस्त्रधर करें।'

विघ्नराज बोले—'दैत्येन्द्रनायक! तुमने दुस्साध्य वरकी याचना की है; किंतु तुम्हारे तपसे संतुष्ट होकर मैं तुम्हारी कामना पूरी करूँगा।'

इतना कहकर विघ्नराज अन्तर्धान हो गये। वर-प्राप्त ममतासुरने प्रसन्नतापूर्वक शम्बरके घर जाकर उसे प्रणाम किया। ममताके तप एवं वर-प्राप्तिका वृत्तान्त सुनकर शम्बर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने उससे अपनी रूपवती पुत्री मोहिनीका विवाह कर दिया। ममतासुर अपनी प्राणप्रियाके साथ सुखपूर्वक रहने लगा।

कुछ ही समय बाद शम्बर दैत्य-गुरु शुक्राचार्यके समीप पहुँचा। प्रणामके अनन्तर उसने ममतासुरके तप और वर-प्राप्तिका वृत्तान्त कह सुनाया। शुक्राचार्य बड़े प्रसन्न हुए। वे समस्त असुरोंको सूचितकर स्वयं शम्बरके साथ ममासुरके भवन पहुँचे। ममासुरने आचार्य-चरणोंमें प्रणाम कर उनकी भक्तिपूर्वक पूजा की।

इससे प्रसन्न होकर शुक्राचार्यने समस्त दैत्योंके सम्मुख ममको दैत्याधीशके पदपर अभिषिक्त कर दिया। उन्होंने दैत्यराज ममके यहाँ अत्यन्त बलवान् प्रेत, काल, कलाप, कालजित् और धर्महा-नामक पाँच प्रधान भी नियुक्त कर दिये।

ममने उपस्थित दैत्य, दानव और राक्षस राजाओंको प्रत्येक रीतिसे संतुष्ट किया। उसकी सेवासे प्रसन्न सभी असुर अपने-अपने राज्यमें लौटे। ममासुर अपनी चिन्ता-नाशक निर्मम पुरीमें सुखपूर्वक निवास कर रहा था। वहाँ उसकी सहधर्मिणी मोहिनीसे धर्म और अधर्म-नामक दो पुत्र हुए।

एक दिन ममासुरने शुक्राचार्यके चरणोंमें प्रणाम कर उनके सम्मुख ब्रह्माण्ड-विजयकी इच्छा व्यक्त की। दैत्यगुरुने कहा—'राजन्! तुम दिग्विजय तो करो, किंतु विघ्नेश्वरका विरोध कभी मत करना। स्मरण रखना, [illegible] अनुग्रहसे ही तुम्हें यह शक्ति एवं वैभवकी प्राप्ति हुई है।'

ममासुरने पर्वतोन्मूलनमें समर्थ अपने महावीर्यवान् असुरोंको युद्धार्थ उद्यत होनेका आदेश दिया। उसने अ[illegible] वीर पुत्रों एवं परम पराक्रमी सैनिकोंके द्वारा पृथ्वी और पातालपर अधिकार कर लिया। फिर उसने स्वर्गपर आक्रमण किया। वज्रायुधके साथ भयानक संग्राम हुआ। रक्तकी सरिता प्रवाहित हो चली; किंतु वर-प्राप्त असुरके सामने देवगण टिक न सके। स्वर्ग ममासुरके अधीन हो गया। ममासुरने समर-क्षेत्रमें विष्णु और शिवपर भी विजय प्राप्त कर ली। सम्पूर्ण ब्रह्माण्डपर उस महासुरका निरङ्कुश शासन व्याप्त हो गया। देवगण बंदी-गृहमें पड़े। सर्वत्र अनीति और अनाचारका साम्राज्य छा गया।

ममासुरके कारागारमें पीड़ित देवता एकत्र होकर अपनी मुक्तिका उपाय सोचने लगे। लक्ष्मीपति विष्णुने कहा—'हम सभी मिलकर विघ्नेश्वरकी आराधना करें। उनकी प्रसन्नतासे ही असुर-विनाश एवं धर्मकी स्थापना हो सकेगी।'

समस्त देवताओंने मन्त्र-स्नानकर विघ्नेश्वरकी मानसिक पूजा की। फिर वे एकाक्षरी-विधानसे भक्तिपूर्वक उनका स्मरण करने लगे। एक वर्ष व्यतीत होनेपर भाद्र-शुक्ल-चतुर्थीके मध्याह्नमें शेष-वाहन विघ्नराज प्रकट हुए। देवताओंने अत्यन्त प्रसन्न होकर उनका स्तवन करनेके अनन्तर कहा—'प्रभो! धर्मका ध्वंस करनेवाले ममासुरके कारागारमें हम सभी देवता अतिशय कष्ट पा रहे हैं। सर्वत्र पाप-तापका साम्राज्य है। आप हम पीड़ितोंकी रक्षा करें।'

संतुष्ट गणनाथ देवताओंको अभीष्ट वर प्रदान कर अदृश्य हो गये। यह समाचार सुनकर ममासुर चकित, चिन्तित और अत्यन्त क्रुद्ध हुआ।

उसी समय महर्षि नारद ममासुरके सम्मुख पहुँचे। असुरने उनकी अनेक उपचारोंसे पूजा की। फिर देवर्षिने उससे कहा—"मुझे देवदेव विघ्नराजने भेजा है। वे सर्वात्मा, सर्वसमर्थ, धर्म-पालक एवं अधर्मके शत्रु हैं। उन्हींके वरसे तुम शक्तिमान् हुए हो। अब तुम्हारे अपकर्मोंसे देवगण बंदी-गृहमें यातना पा रहे हैं। धर्म लुप्त हो गया है। अतएव विघ्नेश्वरने आज्ञा दी है कि तुम इस अधर्म और अनाचार-को समाप्त कर तुरंत मेरी शरण आ जाओ, अन्यथा तुम्हारा सर्वनाश निश्चित है।"

दैत्यगुरु शुक्राचार्यने भी उसे यही परामर्श दिया, पर उस मदोन्मत्त ममासुरपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह युद्धके लिये प्रस्तुत हो गया।

महर्षि नारदसे यह संवाद पाकर परम प्रभु गणेशने कहा—'मैं ममासुरका दर्प दलन करूँगा।'

ममासुर अपने दोनो पुत्रों एवं अजेय वाहिनीके साथ पृथ्वीको कम्पित करता हुआ युद्धके लिये नगरके बाहर निकला। मत्त एवं निरङ्कुश दानव ममकी दुष्टता देखकर विघ्नराज कुपित हुए। उन्होंने अपना कमल असुर-सैन्यके बीच छोड़ दिया। उक्त पद्म-गन्धसे समस्त असुर सर्वथा अशक्त एवं मूर्च्छित हो गये। ममासुर आधे पहरतक मूर्च्छित रहा। सचेत होनेपर उसने अपने समीप कमल देखा तो काँपने लगा। वह विघ्नराजके चरणोंपर गिर पड़ा। फिर उसने भक्तिपूर्वक प्रभुकी पूजा और स्तुति करके उनसे क्षमा याचना की।

दयामय विघ्नराज संतुष्ट हुए। उन्होंने ममको अपनी भक्ति प्रदान करते हुए कहा—

स्वस्थाने निर्भयो भूत्वा तिष्ठ त्वं मत्परायण।
स्वधर्मविधिहीनं त्वं कर्म भुङ्क्ष्व जनैः कृतम्॥
यत्रादौ पूजनं मे न स्मरणं वा ममासुर।
मम भावेन सम्मोह्य राज्यं कुरु हृदि स्थितः॥
मद्भक्तान् दासवन्नित्यं रक्षस्व स्नेहभावतः।
मम भावविहीनांश्च कुरु मे ममतायुतान्॥

(मुद्गलपु० ७।८।३२—३४)

'तुम अपने स्थानपर मेरी आराधनामें लगे रहकर निर्भयतापूर्वक निवास करो। अन्य लोगोंद्वारा जो अपने धर्मकी विधिसे रहित कर्म किया गया हो, उसके श्रेष्ठ फलको तुम भोगो। असुर! जहाँ पहले मेरा पूजन अथवा स्मरण न किया गया हो, वहाँ लोगोंको ममतासे मोहित करके उनके हृदयमें विराजमान होकर तुम राज्य करो। जो मेरे भक्त हों, उनकी प्रतिदिन स्नेहभावसे दासकी भाँति रक्षा करो। जिनका मेरे प्रति भाव या प्रेम न हो, उन्हें ममतासे युक्त कर दो।'

दैत्यराजने देवाधिदेव विघ्नराजके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर उनकी अनुमति प्राप्त कर शान्तभावसे उनका स्मरण करने चला गया।

देवगण मुक्त होकर प्रसन्न हुए। अधर्मके स्थानपर धर्मका राज्य सस्थापित हो गया।

(८)

धूम्रवर्ण

एक बार लोक-पितामहने सहस्रांशुको कर्मराज्यके अधिपतिके पदपर सविधि अभिषिक्त किया। राज्य-पद प्राप्तकर सूर्यदेवके मनमें अहंकारका उदय हो गया। वे सोचने लगे—'कर्मके प्रभावसे पितामह सृष्टि रचना करते हैं, कर्मसे ही विष्णु जगत्का पालन करते हैं, कर्मके द्वारा शिव संहार समर्थ हैं और कर्मोंके ही फलस्वरूप शक्ति जगत्की पालिका और पोषिका हैं। निस्संदेह सम्पूर्ण जगत् कर्माधीन ही है और मैं उन कर्मोंका संचालक देवता हूँ। सभी मेरे अधीन हैं।'

यह सोचते ही उन्हें छींक आ गयी और उससे एक महाबलवान्, महाकाय, विशालाक्ष सुन्दर पुरुष उत्पन्न हुआ। वह सर्वाङ्ग-सुन्दर पुरुष विद्वान् शुक्राचार्यके समीप पहुँचा। शुक्राचार्यने उसका परिचय पूछा।

उक्त पुरुषने विनीत स्वरमें उत्तर दिया—'प्रभो! मैं सूर्यदेवकी छींकसे उत्पन्न उनका पुत्र हूँ! मैं धरतीपर सर्वथा अनाथ और अनाश्रित हूँ। मैं आपके अधीन रहना चाहता हूँ और आपकी प्रत्येक आज्ञाका पालन करूँगा।'

उस मनोरम पुरुषके वचन सुन शुक्राचार्य कुछ देरके लिये ध्यानावस्थित हुए। फिर उन्होंने कहा—'तुम्हारा जन्म सूर्यके अहंभावसे हुआ है, इस कारण तुम्हारा नाम 'अहम' होगा। तुम तपश्चरणके द्वारा शक्ति अर्जित करो।' इतना कहकर दैत्य-गुरुने उसे गणेशका षोडशाक्षर मन्त्र[1] दिया। उसे मन्त्र-जपकी विधि भी विस्तारपूर्वक बता दी।

'अहम' वनमें जाकर उपवास करता हुआ गणेशके ध्यानके साथ गुरुप्रदत्त मन्त्रका जप करने लगा। वह शीतोष्ण-वात-वर्षादिका कष्ट सहता हुआ दृढ़ निश्चयके साथ तप करता रहा। इस प्रकार कठोर तप करते हुए उसे दिव्य सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये।

उसके समक्ष भक्तवत्सल मूषक-वाहन, त्रिनेत्र, गजवक्त्र, एकदन्त, शूर्पकर्ण, पाशादिसे सुशोभित चतुर्भुज महोदर प्रकट हुए। उन मङ्गलमूर्ति प्रभुका दर्शन होते ही अहमने उठकर उनके

---

१. ब्रह्मवैवर्तपुराण (कृष्णज० १२१।१००)में षोडशाक्षरी मन्त्र इस प्रकार है—

'ॐ ग गौं गणपतये विघ्नविनाशिने स्वाहा।'

पाशांकुशवरद हस्त । एके करीं मोदक शोभत ॥
मूषकावरि अति प्रीत । सर्वांगी सिंदूर चर्चिला ॥

चरणोंमें प्रणाम किया और फिर भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की। तदनन्तर वह प्रथमेश्वरके चरणोंमें पुनः प्रणाम कर भक्तिभावसे उनकी स्तुति करने लगा। स्तवनके अनन्तर उसने पुनः दयानिधान गजवक्त्रके चरणोंमें बार-बार प्रणाम किया।

इससे संतुष्ट होकर लम्बोदरने कहा—'मैं तुम्हारे तप और स्तवनसे प्रसन्न हूँ। तुम इच्छित वर माँग लो।'

अहमने हाथ जोड़कर निवेदन किया—'प्रभो! आप मुझे अपनी भक्ति दीजिये। मेरी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जायँ। आप मुझे आरोग्य, विजय, अमोघास्त्र और सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका राज्य प्रदान करें। माया-विकारसे मेरी मृत्यु न हो।'

'तथास्तु!' कहकर गणनाथ अन्तर्धान हो गये।

अहम्‌ने प्रसन्नतापूर्वक अपने गुरुके यहाँ जाकर उनके चरणोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। उसके तप एवं वर-प्राप्तिका वृत्तान्त सुनकर शुक्राचार्य अत्यन्त मुदित हुए। उन्होंने समस्त असुरोंको बुलाकर अहमके तप एवं प्रभावका वर्णन किया। असुर-समुदायने प्रतापी अहम्‌के अधीन रहकर उसकी इच्छाका अनुसरण करना स्वीकार कर लिया। तब शुक्राचार्यने उसे सविधि दैत्याधीशके पदपर अभिषिक्त कर दिया। उस समय हर्षोत्फुल्ल असुरोंने वाद्यादिके साथ अद्भुत महोत्सव मनाया।

विषय-प्रिय-नामक सुन्दर नगर निर्मित हुआ। अहम् वहाँ असुरोंके साथ निवास करने लगा। उसे योग्यतम पात्र समझ प्रमादासुरने अपनी रूप-यौवन-सम्पन्ना ममता-नामकी पुत्री उसके साथ व्याह दी। कुछ ही दिन बाद उसे ममताके द्वारा गर्व और श्रेष्ठ-नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए।

कुछ समय बाद एक दिन अहम्‌के श्वसुर प्रमादासुरने उससे कहा—'तुमने सर्वत्र विजय एवं निर्भयताका वर प्राप्त कर लिया है, फिर व्यर्थ क्यों बैठे हो? ब्रह्माण्डपर विजय प्राप्तकर सुखोपभोग करो।'

अहम्‌को अपने पूज्य श्वसुरकी बात प्रिय लगी। उसने गुरुवर शुक्राचार्यके चरणोंमें प्रणाम किया और उनकी पूजा करके उनका शुभ आशीर्वाद प्राप्त कर लिया।

फिर उसने अपने अत्यन्त बलवान् और क्रूर सशस्त्र सैनिकोंको विजययात्राके लिये आज्ञा दी और स्वयं भी वह शस्त्र धारणकर रथपर आरूढ़ हुआ। प्रचण्ड अहंतासुर अपने पुत्र तथा वीर असुरोंके साथ सर्वत्र विजय प्राप्त करने चला। असुरोंने भयानक संहार किया। सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच गयी। इस प्रकार मार-काट मचाकर उसने सप्तद्वीपवती पृथ्वीपर अधिकार कर लिया और सर्वत्र उच्चतम पदोंपर अपने असुरोंको नियुक्त कर दिया।

तदनन्तर उसने पातालपर आक्रमण किया। परम प्रतापी अहंतासुरसे भयभीत शेषने उसे कर देना स्वीकार कर लिया। फिर उस असुरने स्वर्गपर आक्रमण किया। स्वयं विष्णु रण-भूमिमें उपस्थित हुए, किंतु वर-प्राप्त असुरके अमोघास्त्रसे उन्हें भी पराजित होना पड़ा। सर्वत्र अहंकारासुरका आधिपत्य हो गया। देवता, ऋषि एवं धर्मात्मा पुरुष पर्वतों और वनोंमें छिपकर कष्ट सहते हुए जीवन व्यतीत करने लगे। परम स्वतन्त्र अहंतासुर मद्य और मांसका तो अत्यधिक सेवन करता ही था, वह मनुष्यों, नागों और देवताओंकी भी कन्याओंका बलात् अपहरण कर निर्लज्जतापूर्वक उनका शील हरण करता। इस प्रकार अत्यन्त पाप-रत दुष्टात्मा अहम्‌को अपने आराध्य विघ्नराजकी विस्मृति हो गयी।

एक दिन अहम्‌की राजसभामें अधर्मधारक उपस्थित हुआ। उसने दैत्यराजका अभिवादन कर निवेदन किया—'राजन्! आपका राज्य सम्पूर्ण ब्रह्माण्डपर स्थापित हो गया है, किंतु अमरगण पहाड़ोंकी गुफाओं और वनोंमें छिपकर हमारे समूलोन्मूलनका निरन्तर उद्योग कर रहे हैं। तनिक-सा छिद्र पाते ही वे हमारा सर्वनाश कर देंगे। अतएव उनका अस्तित्व समाप्त करनेका प्रयत्न आवश्यक प्रतीत होता है। अमरोंका पोषण यज्ञादि-कर्मसे होता है। उस कर्मकी समाप्तिसे वे स्वयं समाप्त हो जायँगे।'

'तुमने सर्वोत्तम परामर्श दिया।' अहंतासुरने अधर्म-धारककी प्रशंसा की और असुरगण सत्-कर्मोंके पीछे पड़ गये। प्रचण्ड असुरोंने यज्ञादि कर्मोंका खण्डन कर दिया। वर्णाश्रम-धर्म समाप्त-प्राय हो चला। धर्म-कर्मका दर्शन भी दुर्लभ हो गया। दुरात्मा असुरोंने देवताओंको अतिशय पीड़ित करनेके लिये पर्वतों और अरण्योंको नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया। अहम्‌ने देवालयोंसे गणेशादिकी प्रतिमाएँ फेंकवा दीं और उनके स्थानपर अपनी मूर्ति स्थापित करायी।* उनके पूजक भी अहम्-

---

* सर्वत्राहप्रतिमाश्च स्थापिता भूमिमण्डले।
पूजका राक्षसास्तत्र कृतास्तेन सुपापिना॥
(मुद्गलपु० ८। ४। १६)

के अन्यतम श्रद्धालु असुर नियुक्त हुए। इस प्रकार सभी घरोंमें आसुरी कर्मोंकी प्रवृत्ति एवं अहंतासुरकी उपासना होने लगी। यह देखकर अधर्मधर अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

देवताओंके दुःखकी सीमा नहीं थी। ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि समस्त देवता एकत्र हुए। ब्रह्माने दुःखी देवताओंके सम्मुख कहा—'अहंतासुर गणनाथके वरसे मत्त होकर त्रैलोक्यको त्रस्त कर रहा है, किंतु अब उसे देवदेव विघ्नेश्वरकी भी विस्मृति हो गयी है। अतएव हमलोग उन्हीं सर्वसमर्थ प्रभुको प्रसन्न करनेका प्रयत्न करें। वे करुणामूर्ति गजानन शीघ्र प्रसन्न होकर हमारा दुःख दूर कर देंगे।'

भगवान् शंकरने पितामहके परामर्शका अनुमोदन किया और सभी देवता उपवास करते हुए अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक एकाक्षरी-विधानसे देवदेव गणेशकी उपासना करने लगे। इस प्रकार गणेशकी आराधना करते उन्हें सौ वर्ष व्यतीत हुए।

इससे संतुष्ट होकर मूषक-वाहन द्विरदानन प्रकट हुए। देवताओंने अत्यन्त प्रसन्न होकर उन धूम्रवर्ण प्रभुके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर उन्होंने आदरपूर्वक उन सुरश्रेष्ठकी पूजा की। इसके अनन्तर देवताओंने पुनः प्रभुके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर हाथ जोडकर उनकी स्तुति करने लगे। परम प्रभु धूम्रवर्णका स्तवन करते हुए देवताओंने अन्तमें निवेदन किया—'प्रभो! कृपामय देव! आप हमारी विपत्ति दूर करें।' 'तथास्तु' कहते हुए परम प्रभु धूम्रवर्ण अदृश्य हो गये। देवगण प्रसन्न हुए और वहीं उचित समयकी प्रतीक्षा करते हुए साधन-भजन करने लगे।

रात्रि हुई। प्रभु धूम्रवर्णने अहंतासुरको स्वप्नमें दर्शन दिया। उनके परम तेजस्वी स्वरूपका दर्शन कर असुर भयभीत होकर काँपने लगा। दूसरे दिन उसने अत्यन्त चिन्तित मनसे असुरोंसे कहा—'मैंने रात्रिमें धूम्रवर्ण गणेशको प्रत्यक्ष देखा है। क्रोधसे उनके नेत्र अरुण थे। उन्होंने हमारे सम्पूर्ण नगरको अग्निमें जलाकर भस्म कर दिया और हम सर्वथा अशक्त हो गये। देवगण पुनः स्वतन्त्र होकर धर्ममय जीवन व्यतीत करने लगे। मुझे इस अशुभके शीघ्र फलद होनेकी आशङ्का प्रतीत हो रही है।'

अहम्को चिन्तित देखकर दूसरे दैत्यने कहा—'राजन्! आप वरके प्रभावसे सर्वथा निर्भय हो चुके हैं, अतएव चिन्ताका कोई कारण नहीं। स्वप्नमें धन-प्राप्ति और मृत्यु आदि मिथ्या सिद्ध होती हैं। अतएव स्वप्नका व्यर्थ विचार नहीं करना चाहिये।' इस प्रकार हास्य-विनोद करता हुआ दैत्य वहाँसे उठ गया।

स्वप्नके अप्रभावकारी हो जानेपर सर्वान्तर्यामी धूम्रवर्णने पुनः देवर्षि नारदको दूतके रूपमें अहम्के समीप भेजा। महर्षि नारदने असुरको धूम्रवर्ण गणेशकी शरण-ग्रहण कर शान्त जीवन व्यतीत करनेका संदेश दिया। तब अहंतासुर अत्यन्त कुपित हो गया। महर्षिने लौटकर प्रभुको सूचना दे दी।

उधर देवगण धूम्रवर्णके समीप पहुँचकर कातर स्वरमें प्रार्थना करने लगे। भक्तवत्सल धूम्रवर्णने देवताओंसे कहा—'आपलोग यहीं बैठकर मेरी लीलाका दर्शन करें। मैं अहंकारासुरका वध करता हूँ।'

उन प्रभुने अपना अत्यन्त उग्र पाश छोड़ दिया। उक्त पाश प्रभु धूम्रवर्णके हाथसे पृथक् होते ही अनन्त रूपोंमें परिवर्तित हो गया और जहाँ-कहीं असुर मिलते, वहीं उनके कण्ठमें लिपटकर उन्हें मार डालता। उस बलवान् पाशने गाँव, नगर तथा प्रान्तोंके असंख्य असुरोंको यम-सदन भेज दिया। असुर हाहाकार करने लगे।

यह समाचार सुनकर अहंतासुर अत्यन्त व्याकुल होकर कहने लगा—'मैंने पहले ही कहा था कि धूम्रवर्ण गणेशका स्वप्न शीघ्र फल देगा; पर अब क्या करूँ, कुछ समझमें नहीं आता।'

अहंतासुरके पुत्रोंने पिताको सान्त्वना दी—'हमलोगोंके रहते आप व्यर्थ क्यों चिन्तित होते हैं? मायायुक्त धूम्रवर्ण क्या करेगा? देवताओंके समर्थक देहधारीको हम शीघ्र नष्ट कर देते हैं।' इतना कहकर गर्व और श्रेष्ठने पिताके चरणोंमें प्रणाम किया और अपनी सशस्त्र सेनाके साथ वे युद्धभूमिमें पहुँचे।

असुरोंने भीषणतम युद्धकी चेष्टा की; किंतु अमित-तेजस्वी पाशकी ज्वालामें वे सभी जलकर भस्म हो गये। यह देखकर अहंकार-तनय गर्व और श्रेष्ठ खड्ग लेकर पाशपर टूट पड़े। वे पाशकी ज्वाला सह नहीं पाते थे; किंतु अपने खड्गसे पाशको नष्ट कर देना चाहते थे। प्रज्वलित पाश उनके कण्ठमें लिपटा और दैत्य-पुत्रोंका श्वास अवरुद्ध हो गया। नेत्र बाहर निकल आये और उनका झुलसा हुआ शव पृथ्वीपर गिर पड़ा।

कुछ बचे असुर हाहाकार करते दैत्यपतिके पास पहुँचे। अपने पुत्रोंकी मृत्युका संवाद सुनकर अहंकार दुःखातिरेकसे मूर्च्छित हो गया। किंतु सावधान होनेपर उसके नेत्रोंसे अग्निवर्षा होने लगी। वह अपने सैनिकोंके साथ समर-भूमिमें पहुँचा।

रणाङ्गणमें पाशकी भयानक ज्वालासे असुर भस्म होने लगे। पाश उनका गला कसकर प्राण ले लेता। अहम्की प्रायः समस्त सेना मर मिटी। कुछ बचे असुर प्राण बचानेके लिये भागे। अत्यन्त कुपित अहम्ने अपने अनेक अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग किया। उन शस्त्रास्त्रोंकी विफलता और पाशकी असह्य ज्वालासे व्याकुल होकर उसने अपने अमोघ अस्त्रोंका प्रहार किया; किंतु उसके आश्चर्यकी सीमा नहीं थी। वे शस्त्र भी निष्फल हो गये और यदि अहम् वहाँसे नहीं भागता तो धूम्रवर्ण गणेशका पाश उसका कण्ठ पकड़कर निश्चय ही उसे मार डालता।

अत्यन्त भयाक्रान्त अहंतासुरने अपने गुरु शुक्राचार्यके चरणोंमें प्रणाम कर निवेदन किया—'देव! मायायुक्त धूम्रवर्णके पाशके सम्मुख वर-प्राप्त मेरे अमोघास्त्र कैसे निष्फल हो गये? मैं किसी प्रकार अपनी रक्षा कर यहाँ आ सका हूँ।'

शुक्राचार्यने कहा—'मूर्ख! तू मायातीत गणेशको नहीं जानता। उनकी वाणी कभी मिथ्या नहीं होती। वे स्वर्गमें देवताओं, धरतीपर मनुष्यों और पातालमें असुरोंके निर्विघ्न जीवनकी व्यवस्था करते हैं। तूने उनके वरके प्रभावसे त्रैलोक्यपर अधिकार कर देवताओं और मुनियोंको बड़ा कष्ट दिया। तुम्हारे इस अनाचारसे सर्वेश्वर धूम्रवर्ण तुम्हारा सर्वनाश कर देंगे। यदि प्राण-रक्षा चाहते हो तो तुरंत उनके चरणोंकी शरण ग्रहण करो।'

अहम्ने गुरुके चरणोंमें प्रणाम किया और तुरंत धूम्रवर्णकी शरण ग्रहण करने चला। उसने परम तेजस्वी पाशसे अपने नगरको भस्म होते देखा तो अत्यन्त व्याकुलतासे हाथ जोड़कर पाशका स्तवन करने लगा। अहम्की स्तुतिसे तुष्ट पाश शान्त हो गया और अपने स्वामी धूम्रवर्णके कर-कमलोंमें पहुँच गया। तदनन्तर अहम् अत्यन्त विनम्रतापूर्वक सर्वशान्तिप्रदायक सुरासुरमय देवदेव धूम्रवर्णके समीप जाकर उनके चरणोंमें गिर पड़ा। फिर उसने दयामय धूम्रवर्णकी विविध उपचारोंसे भक्तिपूर्वक पूजा की। तदनन्तर वह साश्रुनयन हाथ जोड़े सर्वेश्वर धूम्रवर्णकी गद्गद कण्ठसे स्तुति करने लगा।

अहंतासुरकी स्तुतिसे संतुष्ट होकर परमदेव धूम्रवर्णने उसे अपनी भक्ति प्रदान करते हुए कहा—'महासुर! जहाँ आदिमें मेरा पूजन नहीं होता है, उन कर्मोंमें तुम्हारे निवासके लिये स्थान दिया जाता है। तुम वहाँ रहकर उन कर्मोंके महान् फलका उपभोग करो। किसी भी कार्यके प्रारम्भमें जहाँ मेरा स्मरण नहीं किया जाता हो, वहाँ तुम सुस्थिर होकर बैठ जाओ और अपने आसुर स्वभावके अनुसार वहाँ कार्यमें सफलता न होने दो। अब तुम अपने नगरको जाओ और मेरे भक्तोंकी सदा रक्षा करते रहो।'

अहंतासुरने परम प्रभुके चरणोंपर अपना मस्तक रख दिया।

अहंकारासुरको अत्यन्त शान्त भावसे धूम्रवर्ण गणेशके चरणोंकी भक्तिपूर्वक वन्दना कर प्रस्थित होते देख देवगण बहुत विस्मित हुए। उन्होंने श्रद्धापूर्वक सुरनायक मङ्गलमूर्ति धूम्रवर्ण गणेशकी पूजा और स्तुति की। दयामय गणेशने उन्हें अपनी भक्ति प्रदान की।

'सिद्धि-बुद्धिके स्वामी भक्तवत्सल गणेशकी जय!' बोलते हुए देवगण मुदित मनसे अपने-अपने धाम पधारे।

उपसंहार

इस प्रकार मङ्गलमूर्ति आदिदेव परब्रह्म परमेश्वर श्रीगणपतिके अवतारोंकी अत्यन्त संक्षिप्त मङ्गलमयी लीला-कथा पूरी हुई। इसका पठन, श्रवण और मनन चिन्तन जन-जनके लिये परम कल्याणकारक है। इन अवतारोंका पौराणिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व तो है ही, उससे भी बढ़कर आध्यात्मिक महत्त्व है। श्रीगणपति सर्वव्यापी परमात्मा सबके हृदयमें नित्य विराजमान हैं। नव और प्राक्तन संस्कारवश प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें समय-समयपर मात्सर्य, मद, मोह, लोभ, काम, ममता एवं अहंता—इन आन्तरिक दोषोंका उद्बोधन होता ही है। आसुरी सम्पत्तिके प्रतीक होनेसे इनको 'असुर' कहा गया है। इन आसुरी वृत्तियोंसे परित्राण पानेका अमोघ उपाय है—'भगवान् गणपतिका चरणाश्रय।' गीतामें भी भगवान्ने यही कहा है—'मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥' अतः इन आसुरी वृत्तियोंके दमन तथा दैवी सम्पदाओंके संवर्धनके लिये परम प्रभु गणपतिका मङ्गलमय स्मरण करना ही सबके लिये सर्वथा श्रेयस्कर है और यही इस अवतार-कथाका सार-भूत संदेश है।

मङ्गलमूर्ति भगवान् गणेशकी जय! जय!! जय!!!

श्रीगणेशजीके शिरश्छेदनका हेतु

(ले०—श्रीमती सावित्रीदेवी त्रिपाठी, बी०ए०, बी० एड०)

देवदेव गणेश सर्वाधार शिवके पुत्र और विघ्नोंका नाश करनेवाले हैं। स्वयं परब्रह्म परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण अपने अंशसे पार्वतीनन्दनके रूपमें अवतरित हुए थे, फिर उन ग्रहाधिराज भगवान् श्रीकृष्णका ग्रह (शनि) की दृष्टिसे मस्तक कैसे कट गया ? इस सम्बन्धमें ब्रह्मवैवर्तपुराणमें एक कथा इस प्रकार है—

एक बारकी बात है। भक्तोंको प्राणाधिक प्यार करनेवाले जगद्वन्द्य शिव माली और सुमालीको मारनेवाले सूर्यपर अत्यन्त कुपित हुए। उन्होंने अपने ही समान अपने परम तेजस्वी तीक्ष्णतम त्रिशूलसे सूर्यपर प्रहार कर दिया। उक्त अमोघ त्रिशूलका आघात सूर्यके लिये असह्य था। वे तुरंत मूर्छित होकर रथसे नीचे गिर पड़े।

लोक-पितामहके पौत्र परम तपस्वी महर्षि कश्यपने जब अपने चेतना-शून्य पुत्र सूर्यकी ऊपर चढ़ी आँखोंको देखा तो उन्होंने उसे अपने वक्षसे लगा लिया और करुण-क्रन्दन करने लगे। उस समय समस्त सुर-समुदाय भी शोक-विह्वल होकर रुदन करने लगा और तिमिरारिके बिना सम्पूर्ण जगत् तमसाच्छन्न हो गया। सर्वत्र हाहाकार मच गया।

ब्रह्मतेजसे प्रज्वलित महर्षि कश्यपने अपने पुत्रको म्लान देखकर दुःखके आवेगमें पार्वतीवल्लभको शाप दे दिया—'आज जिस प्रकार तुम्हारे तीक्ष्णतम अमोघ त्रिशूलसे मेरे पुत्रका वक्ष विदीर्ण हुआ है, उसी प्रकार तुम्हारे प्राणप्रिय पुत्रका भी शिरश्छेद हो जायगा।'

सहज करुणामय आशुतोषका रोष कुछ ही देरमें शान्त हो गया। बस, उन्होंने उसी क्षण ब्रह्मज्ञानके द्वारा सूर्यको जीवित कर दिया।

त्रिगुणात्मक भक्तवत्सल सविताके पूर्ववत् स्वस्थ हो जानेके कारण देवगण एवं समस्त प्राणी सुखी हो गये; किंतु महर्षि कश्यपके अमोघ वचनसे सूर्य-पुत्र शनिकी दृष्टि पड़ते ही शिव-पुत्र गणेशका मस्तक कट गया।

श्रीगणेश-चिन्तन

एकदन्तं शूर्पकर्णं गजवक्त्रं चतुर्भुजम्।
पाशाङ्कुशधरं देवं ध्यायेत् सिद्धिविनायकम्॥
ध्यायेद् गजाननं देवं तप्तकाञ्चनसंनिभम्।
चतुर्भुजं महाकायं सर्वाभरणभूषितम्॥
दन्ताक्षमालापरशुं पूर्णमोदकधारिणम्।
मोदकासक्तशुण्डाग्रमेकदन्तं विनायकम्॥

'जिनके एक दाँत, सूपके समान विशाल कान, हाथीके सदृश मुख और चार भुजाएँ हैं, जो अपने हाथोंमें पाश और अङ्कुश धारण करते हैं, ऐसे सिद्धि-विनायक-देवका ध्यान करे। जिनकी अङ्ग-कान्ति तपाये हुए सुवर्णके समान दीप्तिमय है, जो चार भुजाधारी, विशालकाय और सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित हैं, उन गजाननदेवका ध्यान करे। जो अपने हाथोंमें दन्त, अक्षमाला, परशु और मोदकसे भरा हुआ पात्र धारण करते हैं, जिनकी सूँड़का अग्रभाग लड्डूपर लगा हुआ है, उन एकदन्त विनायकका मैं ध्यान करता हूँ।'

श्रीगणेश—वैदिक देवता

(लेखक—याज्ञिकसम्राट् प० श्रीवेणीरामजी शर्मा गौड, वेदाचार्य)

शास्त्रोंमे जिस प्रकार एक ही ब्रह्म (परमात्मा) के ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये तीनों रूप कहे गये हैं, उसी प्रकार 'गणेश'को भी ब्रह्मका ही विग्रह कहा गया है। जिस प्रकार एक ब्रह्मके होते हुए भी ब्रह्मा, विष्णु, महेशकी अपनी-अपनी भिन्न-भिन्न विशेषताएँ हैं, उसी प्रकार 'गणेश'की भी है।

समस्त देवताओंमें गणेश ही एक ऐसे देवता हैं, जिनका समस्त शुभ कार्योंके प्रारम्भमे सर्वप्रथम पूजन किया जाता है। इनकी पूजा किये विना किसी भी शास्त्रीय तथा लौकिक शुभ कर्मका प्रारम्भ नहीं होता। अतएव वेद भगवान्ने भी कहा है—

'न ऋते त्वत् क्रियते किं चनारे।'
(ऋग्वेद १० । ११२ । ९)

'हे गणेश ! तुम्हारे विना कोई भी कर्म प्रारम्भ नहीं किया जाता।'

जिन गणेशका प्रत्येक शुभ कार्यके प्रारम्भमे सर्वप्रथम पूजन करना अनिवार्य है, उन्हें पूज्य वैदिक देवता मानकर ही उनका प्रत्येक शुभ कार्यमे पूजनके समय सर्वप्रथम स्मरण करते हुए भक्तगण कहते हैं—

'गणानां त्वा गणपतिꣳहवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳहवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳहवामहे।'
(शुक्लयजुर्वेद २३ । १९)

'हे गणेश ! तुम्हीं समस्त देवगणोंमें एकमात्र गणपति (गणोंके पति) हो, प्रिय विषयोंके अधिपति होनेसे प्रियपति हो और ऋद्धि-सिद्धि एवं निधियोंके अधिष्ठाता होनेसे निधिपति हो; अतः हम भक्तगण तुम्हारा नाम-स्मरण, नामोच्चारण और आराधन करते हैं।'

भगवान् गणेश सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंके ईश हैं। गुणोंका ईश ही प्रणवस्वरूप 'ॐ' है। प्रणवस्वरूप 'ॐ'मे गणेशजीकी मूर्ति सदा स्थित रहती है। अतः 'ॐ'—यह गणेशजीकी प्रणवाकार मूर्ति है, जो वेदमन्त्रके प्रारम्भमें रहती है। इसीलिये 'ॐ'को गणेशकी साक्षात् मूर्ति मानकर वेदोंके पढ़नेवाले सर्वप्रथम 'ॐ'का उच्चारण करके ही वेदका स्वाध्याय करते हैं। वेदके स्वाध्यायके प्रारम्भमें 'ॐ' का उच्चारण करना गणेशजीका ही नाम-स्मरण अथवा नामोच्चारण करना है। अतः सिद्ध है कि प्रणवस्वरूप ओंकार ही भगवान् गणेशकी आकृति (मूर्ति) है, जो वेद-मन्त्रोंके प्रारम्भमे प्रतिष्ठित है।

'गणेशपुराण'मे भी लिखा है—

ओंकाररूपी भगवान् यो वेदादौ प्रतिष्ठितः।
यं सदा मुनयो देवाः स्मरन्तीन्द्रादयो हृदि ॥
ओंकाररूपी भगवानुक्तस्तु गणनायकः।
यथा सर्वेषु कार्येषु पूज्यतेऽसौ विनायकः ॥

'ओंकाररूपी भगवान् जो वेदोंके प्रारम्भमे प्रतिष्ठित हैं, जिनको सर्वदा मुनि तथा इन्द्रादि देवगण हृदयमें स्मरण करते हैं। ओंकाररूपी भगवान् गणनायक कहे गये हैं। वे ही विनायक सभी कार्योंमे पूजित होते हैं।'

गणेशजीके अनन्त नाम हैं, जिनका उल्लेख समस्त श्रुति-स्मृति-पुराण आदि धार्मिक ग्रन्थोंमें बड़े विस्तारसे मिलता है।

महाभारतके आदिपर्व (१ । ७५—८३) मे गणेशजीके हेरम्ब, गणेशान, गणनायक, विघ्नेश और गणेश—ये नाम आये हैं।

स्कन्दपुराणके माहेश्वरखण्ड, उत्तरार्ध (१७ । २३) मे गणेशजीके गजानन, हेरम्ब आदि नाम कहे गये हैं तथा उसी पुराणके काशी-खण्डमे गणेशजीके वक्रतुण्ड, कपिल, चिन्तामणि तथा विनायक-प्रभृति अनेकों नामोंका उल्लेख किया गया है।

गणेशपुराणके उपासनाकाण्ड (४६ । १४; ४६ । १०५) मे गणेशजीके कवि, ब्रह्मणस्पति, बृहस्पति और ज्येष्ठराज—ये नाम आये हैं।

पद्मपुराणके सृष्टिखण्ड (६५ । ३२) मे गणेशजीके गणपति, विघ्नराज, लम्बतुण्ड, गजानन, द्वैमातुर, हेरम्ब, एकदन्त और गणाधिप—ये नाम कहे गये हैं।

इसी प्रकार अन्य पुराण और उपपुराणोंमें तथा 'गणेश-सहस्रनामस्तोत्र' आदिमें भी गणेशजीके गजानन, गणपति, गणनायक, गणाध्यक्ष, विनायक, विघ्ननाशक, लम्बोदर, भालचन्द्र और एकदन्त आदि अनेक नाम आये हैं।

पुराणादिमे जिस प्रकार गणेशजीके अनेक नामोंका उल्लेख है, उसी प्रकार गणेशजीके अवतार, स्वरूप एवं महत्त्व आदिका भी वर्णन है, जो वेदोंके आधारपर ही भगवान् वेदव्यासजीने किया है।

अब हम वैदिक-संहिता तथा वैदिक वाङ्मयके कुछ महत्त्वपूर्ण मन्त्र उद्धृत करते हैं, जिनसे गणेशजीकी वैदिकता और महत्ता स्पष्ट सिद्ध है—

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्॥*

(ऋग्वेद २।२३।१)

'तुम देवगणोंमे प्रभु होनेसे गणपति हो, ज्ञानियोंमे श्रेष्ठ ज्ञानी हो, उत्कृष्ट कीर्तिवालोंमें श्रेष्ठ हो। तुम शिवके ज्येष्ठ पुत्र हो, अतः हम तुम्हारा आदरसे आह्वान करते हैं। हे ब्रह्मणस्पते गणेश! तुम हमारे आह्वानको मान देकर अपनी समस्त शक्तियोंके सहित इस आसनपर उपस्थित होओ।'

नि षु सीद गणपते गणेषु त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम्।
न ऋते त्वत् क्रियते किं चनारे महामर्कं मघवञ्चित्रमर्च॥

(ऋग्वेद १०।११२।९)

'हे गणपते! आप देव आदिके समूहमें विराजमान होइये; क्योंकि विद्वज्जन आपको ही समस्त बुद्धिमानोंमे श्रेष्ठ कहते हैं। आपके बिना समीपका अथवा दूरका कोई भी कार्य नहीं किया जा सकता। हे पूज्य एवं आदरणीय गणपते! हमारे सत्कार्योंको निर्विघ्न पूर्ण करनेकी कृपा कीजिये।'

'गणानां त्वा०' इत्यादि मन्त्रका उल्लेख तो पहले किया ही गया है।

'गणपत्यथर्वशीर्षोपनिषद्'मे गणेशके विभिन्न नामोंका उल्लेख करते हुए उन्हें नमस्कार किया गया है—

'नमो व्रातपतये नमो गणपतये नमः प्रमथपतये नमस्तेऽस्तु लम्बोदरायैकदन्ताय विघ्नविनाशिने शिवसुताय श्रीवरदमूर्तये नमो नमः।' (१०)

'व्रात अर्थात् देवसमूहके नायकको नमस्कार; गणपतिको नमस्कार; प्रमथपति अर्थात् शिवजीके गणोंके अधिनायकको नमस्कार; लम्बोदरको, एकदन्तको, विघ्नविनाशकको, शिवजीके पुत्रको और श्रीवरदमूर्तिको नमस्कार, नमस्कार।'

'यजुर्विधान'मे 'गणानां त्वा०' (शुक्लयजुर्वेद २३।१९)—इस मन्त्रको गणपति-देवतापरक कहा गया है; अतः इस मन्त्रका गणेशके पूजन और हवनादिमे विनियोग होता है।

'शुक्लयजुर्वेद' (२२।३०)मे 'गणपतये स्वाहा'मे गणेशजीके लिये आहुति देनेका विधान है।

'कृष्णयजुर्वेदीय काण्वसंहिता' (२४।४२) मे 'गणपतये स्वाहा'के द्वारा गणेशजीके निमित्त आहुति देनेके लिये कहा गया है।

'कृष्णयजुर्वेदीय मैत्रायणी-संहिता' (३।१२।१३) मे 'गणपतये स्वाहा'से गणेशजीको आहुति प्रदान करनेके लिये लिखा है।

'बौधायन-गृह्यशेषसूत्र' (३।१०।१) के विनायककल्पमे लिखा है—

'मासि मासि चतुर्थ्यां शुक्लपक्षस्य पञ्चम्यां वा अभ्युदयादौ सिद्धिकाम ऋद्धिकामः पशुकामो वा भगवतो विनायकस्य बलिं हरेत्।'

'प्रत्येक महीनेके शुक्लपक्षकी चतुर्थी अथवा पञ्चमी तिथिको अपने अभ्युदयादिके अवसरपर सिद्धि, ऋद्धि और पशु कामनावाला पुरुष भगवान् विनायक (गणेश) के लिये बलि (मोदकादि नैवेद्य) प्रदान करे।'

महर्षि पराशरने 'गणानां त्वा०' (शु० य० २३। १९)—इस मन्त्रके अन्तमे 'स्वाहा' जोड़कर गणेशजीके लिये हवन और पूजन करनेके लिये कहा है—

विनायकाय होतव्या घृतस्याहुतयस्तथा॥
सर्वविघ्नोपशान्त्यर्थं पूजयेद् यत्नतस्तु तम्।
गणानां त्वेति मन्त्रेण स्वाहाकारान्तमादृत॥
चतस्रो जुहुयात् तस्मै गणेशाय तथाऽऽहुती।

(बृहत्पाराशरस्मृति ४।१७६–१७८)

आचार्य आश्वलायनने 'गणानां त्वा०'—इस मन्त्रसे गणेशजीका पूजन करनेके लिये कहा है।

भगवान् वेदव्यासजीने गणेशजीका मन्त्र 'गणानां त्वा०' लिखा है—

'गणानां त्वेति मन्त्रेण विन्यसेदुत्तरे ध्रुवम्।'

(भविष्यपुराण, मध्यपर्व, द्वितीय भाग २०।१४२)

---

* यह मन्त्र कृष्णयजुर्वेदसंहिता (२।३।१४) और त्रिपुरातापिन्युपनिषद् (३) में भी है।

बृहत्पाराशरस्मृति (११ । ३३९) में—

'आ तू न इन्द्र वृत्रहन् सुरेन्द्रः स गणेश्वरः ।'

—इस मन्त्रको गणेश्वरपरक कहा है । ऋग्वेद (८ । ८१ । १) में—

आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सं गृभाय ।
महाहस्ती दक्षिणेन ॥

—इस मन्त्रको गणेश्वरपरक माना है । शुक्लयजुर्वेद (३३ । ६५–७२) में—

'आ तू न इन्द्र वृत्रहन्०' इत्यादि आठ मन्त्रोंको गणपतिपरक कहा गया है । अतः इन आठ मन्त्रोंसे गणेशजीका स्मरण, पूजन और हवन करनेका विधान है ।

सामवेदीय रुद्राष्टाध्यायीमें 'विनायकसंहिता' है, जिसमें 'अदर्दरूत्०' इत्यादि आठ मन्त्र (३१५ से ३२२) गणपतिपरक कहे गये हैं, जिनका गणपति-पूजन और गणपति-हवनमें उपयोग होता है ।

उपर्युक्त वैदिक प्रमाणोंसे स्पष्ट सिद्ध होता है कि गणेशजी वैदिक देवता हैं । अतएव ऋषि-महर्षियोंने 'गणानां त्वा०' आदि वैदिक मन्त्रोंसे गणेशजीके निमित्त पूजन, हवन और बलि देनेके लिये कहा है ।

वेदों और उपनिषद् आदिमें गणेशजीकी विविध गायत्रियोंका उल्लेख है, जिनमें गणेशजीके तत्पुरुष, एकदन्त, हस्तिमुख, वक्रतुण्ड, दन्ती, कराट आदि अनेक नाम आये हैं, जो गणेशजीके ही पर्यायवाचक नाम हैं और वे सभी नाम गणेशजीके स्वरूप और महत्त्वको व्यक्त करनेवाले हैं एवं भक्तोंके लिये शुभ और लाभप्रद हैं । ये गणेश-गायत्रियाँ इस प्रकार हैं—

ॐ तत्कराटाय विद्महे हस्तिमुखाय धीमहि ।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥

(कृष्णयजुर्वेदीय मैत्रायणीसंहिता २ । ९ । १ । ६)

तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि ।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥

(कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीयारण्यक, नारायणोपनिषद् १० । १)

एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि ।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥

(गणपत्यथर्वशीर्षोपनिषद्)

लम्बोदराय विद्महे महोदराय धीमहि ।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥

(अग्निपुराण ७१ । ६)

ॐ महोल्काय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि ।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥

(अग्निपुराण १७९ । ४)

उपर्युक्त समस्त वैदिक प्रमाणोंसे स्पष्ट है कि वेदादिमें तथा समस्त शास्त्रोंमें गणेशजीका विशिष्टरूपमें वर्णन है । अतः गणेशजी वैदिक देवता हैं, यह निर्विवाद है । गणेशजीको वैदिक देवता मानकर ही भक्तगण अपने प्रत्येक कार्यके प्रारम्भमें सर्वप्रथम गणेशजीका पूजन करते हैं और उनका स्मरण करते हैं ।

जिस प्रकार गणेशजी वैदिक देवता हैं, उसी प्रकार वे अनादिसिद्ध, आदिदेव, आदि-पूज्य और आदि-उपास्य हैं । गणेशतापिन्युपनिषद्के 'गणेशो वै ब्रह्म' एवं गणपत्यथर्वशीर्षोपनिषद्के 'त्वं प्रत्यक्षं ब्रह्मासि' के अनुसार गणेशजी प्रत्यक्ष ब्रह्म ही हैं । गणेशजीके 'ब्रह्म' होनेके कारण ही उन्हें कर्ता, धर्ता एवं संहर्ता कहा गया है । गणेशजी जीवात्माके अधिपति हैं । गणपत्यथर्वशीर्षोपनिषद्में 'त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णुः' इत्यादिद्वारा गणेशजीको 'सर्वदेवरूप' कहा गया है । अतएव गणेशजी सभीके वन्दनीय और पूजनीय हैं । प्राणिमात्रका मङ्गल करना गणेशजीका प्रमुख कार्य है, अतः वे 'मङ्गलमूर्ति' कहे जाते हैं । इसलिये जो मनुष्य मङ्गलमूर्ति गणेशजीका श्रद्धा-भक्तिसे प्रतिदिन स्मरण, पूजन और उनके स्तोत्रादिका पाठ तथा गणपति-मन्त्रका जप एवं 'गणेशसहस्रनाम'से हवन करता है, वह निष्पाप होकर धर्मात्मा बन जाता है । उसके यहाँ समस्त प्रकारकी ऋद्धि-सिद्धिका भंडार भरा रहता है और वह गणेशजीकी कृपासे अपना इहलौकिक एवं पारलौकिक जीवन सुखद बना लेता है । अतः मनुष्यमात्रको आत्मकल्याणार्थ ऋद्धि-सिद्धि-नवनिधिके दाता मङ्गलमूर्ति गणेशजीका सर्वदा समाराधन करना चाहिये ।

पाञ्चरात्र आगममें श्रीगणेश

(लेखक—प्राध्यापक डा० श्रीवे० वरदाचार्य)

विष्णुको परदेवता मानकर जो उपासना करते हैं, वे 'वैष्णव' कहलाते हैं। पर-तत्त्वका स्वरूप, उसकी प्राप्तिका उपाय, निःश्रेयसका स्वरूप आदिका निश्चय वैष्णवमतसे श्रुति-स्मृति तथा पाञ्चरात्र आगमके द्वारा होता है। इस आगममे यह निर्णय किया गया है कि विष्णु ही देवताओमे अग्रणी हैं, दूसरे देवता उनकी अपेक्षा अवर (गौण) है, इसमे कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। 'विष्लृ व्याप्तौ'—इस धातुसे 'विष्णु'-पद निष्पन्न हुआ है। इससे सर्वत्र गुणोसे, स्वरूपसे तथा गुण-गणोसे विष्णुकी व्याप्तिका बोध होता है। इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि विश्व-ब्रह्माण्डमे जो देवता, जीव तथा पदार्थ-समूह हैं, वे सब बाहर और भीतर सर्वत्र श्रीभगवान्के द्वारा व्याप्त हैं। अन्तरात्माके रूपमे भगवान् उनके नियन्ता हैं। परमपुरुषका माहात्म्य, गृह और मन्दिरमे उनकी अर्चा-विधि, उनके मन्दिर-निर्माण की विधि आदि विषयोको लेकर आलोचना करनेवाले पाञ्चरात्र आदि आगम विष्णुके परिवारके रूपमे अन्य देवताओका निर्देश करते हैं और मन्दिरोमे तथा उनके गोपुर-विमान आदिमे अधिकारानुसार उन देवताओकी प्रतिष्ठाकी विधिको बतलाते हैं।

'गणेश'-पद 'गणानामीश.' अर्थात् गणोके ईश, इस योग-वृत्तिसे व्युत्पन्न होता है। शिवके परिवारके लोगोका 'प्रमथगण' नाम है। उन गणोका ईश होकर, पशुपतिका अपकार सोचनेवालोको दण्ड प्रदान करके उनके विघ्नोका नाश करते हुए वे 'विघ्नेश्वर' नामको प्राप्त होते हैं।

श्रीवैष्णव अर्थात् विशिष्टाद्वैत-सम्प्रदायके लोग तो भगवान्से ही सब अर्थोंकी याचना करते हुए उनके ही शरणापन्न होते हैं। विघ्नोका निवारण करनेके साथ-साथ सारे अभिवाञ्छित फलकी प्राप्ति उनके द्वारा ही होगी, यह इन लोगोका दृढ़ निश्चय है। अतएव इनके आचारमे गणेश-पूजाका कोई अवसर नहीं आता।

विष्णु-परिवारके देवताओमे केवल चतुर्मुख ब्रह्मा आदि देवताओका ही समावेश नहीं होता, बल्कि पशुपतिके पुत्र गणेशकी भी उसमे गणना होती है। इसके सिवा कुछ और देवता भी गणनायकके रूपमें प्रसिद्ध हैं। जैसे—कुमुद, कुमुदाक्ष, सुमुख, शङ्कुकर्ण, पुण्डरीकाक्ष* आदि देवताओ-का गणोके अधिनायकके रूपमे पाञ्चरात्र आगममे निर्देश है। तथापि 'गणेश' नामकी प्रसिद्धि विनायककी ही है, इसमे कोई संदेह नहीं।

भगवान्के मन्दिरके प्राकारो और विमानोमे दिक्पाल तथा ब्रह्मा आदि देवता विम्बरूपसे स्थापित होते हैं—यह पाञ्चरात्र ग्रन्थोमे प्रतिपादित हुआ है। जैसे—

कौशिकं च गणेशं च कंदर्पं स्कन्दमेव च।
आग्नेयादिषु कोणेषु यथासंख्यं प्रकल्पयेत् ॥
(सनत्कुमारसंहिता, इन्द्ररात्र ५। ३१)

'आग्नेय आदि कोणोमे क्रमशः कौशिक, गणेश, कामदेव तथा स्कन्दको स्थापित करे।'

उसी ग्रन्थमे लिखा है कि—

गणेशसिंहयोर्मध्ये कुर्यान्मिश्रं विचक्षण।
श्रीधरस्य गणेशस्य मध्ये तु वरुणं न्यसेत् ॥

'गणेश और सिंहके बीचमे विद्वान् पुरुष मिश्रकी स्थापना करे तथा श्रीधर और गणेशके बीचमे वरुण देवताका निवेश करे।'

इन परिवार-देवताओके लिये मङ्गलाशासन प्राप्त होता है। यथा—

कुमारी च कुमारश्च गणेशश्च विनायक.।
सिद्धाश्च किंनराश्चापि मङ्गलं प्रदिशन्तु न. ॥
(सनत्कुमारसंहिता, ऋषिरात्र, अ० ६)

'कुमारी, कुमार, गणेश, विनायक, सिद्ध तथा किंनर-गण हमे मङ्गल प्रदान करे।'

उसी संहितामे शिवरात्रमे अध्याय १ श्लोक ८९-९० मे लिखा है कि ग्रामके दक्षिण भागमे उत्तरमुख गणेशकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये।

आवाहन और निवेदनकी यह विधि कही गयी है—

गायत्रीयं गणपते. प्रतिष्ठाकर्मसु स्मृता।

---

* विश्वामित्र-संहिता अ० १७। १३३, १३६, १३९, १४२, १४८, १५३।

महोल्कायेति मन्त्रेण स्वाहान्तेन यथाविधि ।
तेनैवावाहयेद्देवं गणेशं विघ्ननायकम् ॥
(सनत्कुमारसंहिता अ० १ । ९४, ९९)

'महोल्काय ' । गणेशकी यह गायत्री प्रतिष्ठा-कर्ममें गृहीत हुई है । उसी मन्त्रके अन्तमें 'स्वाहा' जोड़कर विघ्न-नायक गणेशका आवाहन करे ।'

गणपतिकी पूजामें गणपति गायत्रीका प्रयोग करना चाहिये—ऐसा कहा गया है और मन्त्रका इस प्रकार निर्देश हुआ है—

ॐ नमो गणाधिपतये शूर्पकर्णाय विद्महे ।
कोटिरक्षाय धीमहि तन्नो गणपतिः प्रचोदयात् ॥
(सनत्कुमारसंहिता अ० १ । ९४)

पूजाके अवसरपर मुद्राका प्रयोग करना चाहिये—यह तान्त्रिकोंका सिद्धान्त है । मुद्राकी महत्ता यों बतायी गयी है—

मोदनात् सर्वदेवानां द्रावणात् पापसंततेः ।
तस्मान्मुद्रेति सा ख्याता सर्वकामार्थसाधिनी ॥
(शब्दकल्पद्रुम, भा० ३, पृ० ७४५)

'यह सब देवताओंको मोद देती और पापराशिका द्रावण (निवारण) करती है, इसलिये 'मुद्रा' कही जाती है ।'

इस प्रकार 'मुद्'-धातुसे यह 'मुद्रा' शब्द निष्पन्न हुआ है । लक्ष्मीतन्त्र अ० ३७ । ६१ में, विष्णु-संहिता अ० ३९ में, विश्वामित्र-संहिता अ० १८ । २९ में लिखा है कि विमानस्थ गणेशकी पूजा करते समय उनकी मुद्रा* प्रदर्शित करनी चाहिये । गणेश-पूजाकी क्रम-विधि नारदीय संहिता अ० २८ । ३३—३७ में संग्रहपूर्वक वर्णित है ।

वर्णोंके अधिष्ठाताके रूपमें अनेक देवताओंका निर्देश किया गया है । ओंकारके अधिष्ठाता गणेश हैं—यह श्रीप्रश्नसंहिताके 'ओंकार एकदंष्ट्रश्च वक्रतुण्डश्च खड्गधृक् ।' (अ० ५० । ४३) के वाक्यसे प्रकट होता है ।

इस प्रकार विष्णुके परिवारके रूपमें शिवात्मज गणेशकी अवस्थिति भलीभाँति प्रकल्पित है—यह स्पष्ट हो जाता है ।

जय विघ्नेश्वर हे !

तोहि मनाऊँ गणपति हे, गौरीसुत हे,
करो विघ्नका नाश, जय विघ्नेश्वर हे ॥
विद्याबुद्धि-प्रदायक हे, वरदायक हे,
रिद्धि-सिद्धिदातार, जय विघ्नेश्वर हे ॥
वक्रसूँडके धारक हे, उद्धारक हे,
जय गजवदन गणेश, जय विघ्नेश्वर हे ॥
मङ्गलकर दुखहर्ता हे इकदन्ता हे,
मूषकवाहन देव, जय विघ्नेश्वर हे ॥
'निर्मल' की यह विनय सुनो लम्बोदर हे,
करो बुद्धिका दान, जय विघ्नेश्वर हे ॥

— नन्दकिशोर गौतम 'निर्मल'

---

* 'शारदातिलक'की व्याख्यामें गणपति-मुद्रा इस प्रकार बतायी गयी है—

मुखात् प्रलम्बितं हस्तं कृत्वा सकुञ्चिताङ्गुलिम् । मध्या तर्जनिर्गताग्राङ्गुष्ठं चाधःस्थमध्यमम् ॥
कुर्यान्मुद्रा गणेशस्य प्रोक्तेयं सर्वसिद्धिदा ।

'मुखसे लगाकर अपना हाथ लंबा करे । उसकी अङ्गुलियाँ सकुचित हों, मध्यमा और तर्जनी अङ्गुलियोंका अग्रभाग आगेकी ओर निकलता रहे और अङ्गुष्ठ मध्यमाके ऊपर रहे । ऐसी मुद्रा प्रदर्शित करे । यह गणेशकी सर्वसिद्धिदायिनी मुद्रा कही गयी है ।'

अथवा

कुञ्चिताग्रस्य हस्तस्य मूले नासानियोगतः । गणेश्वरी भवेन्मुद्रा । इति ।

'हाथके अग्रभागको सिकोड़ ले और उसके मूलभागमें नाक सटा ले । यह गणेश्वरी मुद्रा है ।' यह सभी गणपति-मन्त्रोंके लिये साधारण मुद्रा है—ऐसा जानना चाहिये ।

स्मृतियोंमें श्रीगणेश

(लेखक—पं० श्रीरामाधारजी शुक्ल शास्त्री, साहित्यकेसरी)

संसिद्ध्यर्थमिलत्सुरासुरनमन्मौलिस्थितप्रोल्लसत्-
सद्रत्नप्रभवप्रकृष्टविविधप्रेङ्खन्मयूखोज्ज्वलम् ।
श्रेयोविघ्नमहामयप्रगमने दिव्यं यदेकौषधं
भूयान्नो द्विरदाननाङ्घ्रिकमलद्वन्द्वं तदिष्टाप्तये ॥

'अभीष्ट-सिद्धिके लिये संगठित होकर आये हुए देवताओं और असुरोंके द्वारा नमस्कार करनेके कारण उनके मस्तकपर स्थित आबदार बहुमूल्य रत्नोंसे उद्भूत विभिन्न रंगोंकी झिलमिलाती हुई उत्कृष्ट किरणोंसे जो उद्भासित हो रहा है तथा कल्याणमार्गके विघ्नरूपी महान् रोगका प्रशमन करनेमें जो एकमात्र दिव्य औषध है, गजानन गणेशजीका वह युगल चरण-कमल हमारी इष्ट-प्राप्तिका साधन हो।'

हमारे पूर्वज महर्षियोंकी तपःपूत वाणीसे निस्सृत श्रुतिमूलक अनुभव-पूर्ण प्रवचनोंका संकलन जिन ग्रन्थोंमें किया गया है, वे 'स्मृतियाँ' कहलाती हैं। जिन महर्षिका विवेचन जिस स्मृतिमें संग्रथित है, वह उन्हींके नामसे प्रचलित है।

यद्यपि ग्रन्थ-प्रणयन-कालमें 'ग्रन्थादौ ग्रन्थमध्ये ग्रन्थान्ते च मङ्गलमाचरणीयम्—ग्रन्थके आदि, मध्य और अन्तमें मङ्गलका उल्लेख करना चाहिये' का प्राचीन विधान है, परंतु इन स्मृतियोंमें इस नियमका पूर्णतया पालन नहीं हुआ है। यही कारण है कि इनमें गणेशजीका प्रसङ्ग नाममात्रको ही है। जो कुछ उपलब्ध हो सका, वही इस लेखका प्रतिपाद्य है।

हिंदू-धर्मशास्त्रोंमें प्रत्येक कार्यारम्भमें विघ्ननिवारणार्थ गणेश-स्मरणका विधान है। इसी आधारपर परम्परानुसार हमलोग सर्वप्रथम गणेशजीका पूजन-स्तवन करते हैं। यहाँतक कि ब्रह्मा आदि देवगण भी गणेशजीको नमस्कार करते हैं—

वागीशाद्याः सुमनसः सर्वार्थानामुपक्रमे ।
यं नत्वा कृतकृत्याः स्युस्तं नमामि गजाननम् ॥

'ब्रह्मा आदि देवगण सभी कार्योंके आरम्भमें जिन्हें नमस्कार करके कृतकृत्य होते हैं, उन गजानन गणेशजीको मैं प्रणाम करता हूँ।'

स्मार्त-प्रक्रियामें जो पञ्चदेवोपासना प्रचलित है, उसमें भी गणेशजीका एक प्रमुख स्थान है। साथ ही भक्तिमार्गके आचार्योंमें भी इनकी गणना है—

शैवं च वैष्णवं शाक्तं सौरं वैनायकं तथा ।
स्कान्दं च भक्तिमार्गस्य दर्शनानि षडेव हि ॥

'शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर, वैनायक और स्कान्द—ये ही भक्तिमार्गके छः दर्शन कहे गये हैं।'

आह्निक कर्मोंमें भी नित्य गणेशजीकी पूजाका विधान है। जैसा कि 'बृहत्पाराशरस्मृति'में आया है—

विनायकाय होतव्या घृतस्याहुतयस्तथा ॥
सर्वविघ्नोपशान्त्यर्थं पूजयेद्यत्नतस्तु तम् ।
गणानां त्वेति मन्त्रेण स्वाहाकारान्तमादृतः ॥
चतस्रो जुहुयात्तस्मै गणेशाय तथाऽऽहुतीः ।
(वैश्वदेवप्र० ४ । १७६—१७८)

"बलिवैश्वदेव-कालमें गणेशजीके लिये घीकी आहुतियाँ देनी चाहिये और सम्पूर्ण विघ्नोंकी शान्तिके लिये यत्नपूर्वक उनका पूजन करे। पुनः 'गणानां त्वा'—इस मन्त्रसे अन्तमें स्वाहाका प्रयोग करके गणेशजीके निमित्त आदर-पूर्वक चार आहुतियोंसे हवन करे।"

महर्षि लौगाक्षिका कथन है कि विभिन्न देवता भिन्न-भिन्न प्रकारकी कामनाओंकी पूर्ति करते हैं, परंतु गणेशजी तो सभी अभिलषित वस्तुओंके प्रदाता हैं—

आरोग्यं भास्करादिच्छेच्छ्रियमिच्छेद्धुताशनात् ।
ईश्वराज्ज्ञानमन्विच्छेन्मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात् ॥
दुर्गादिभिस्तथा रक्षां भैरवाद्यैस्तु दुर्गमम् ।
विद्यासारं सरस्वत्या लक्ष्म्या चैश्वर्यवर्धनम् ॥
पार्वत्या चैव सौभाग्यं शच्या कल्याणसंततिम् ।
स्कन्दात् प्रजाभिवृद्धिं च सर्वं चैव गणाधिपात् ॥
मूर्तिभेदा महेशस्य त एते यन्मयोदिताः ॥
(लौगाक्षिस्मृति)

'सूर्यसे आरोग्यकी, अग्निसे श्रीकी, शिवसे ज्ञानकी, जनार्दनसे मोक्षकी, दुर्गा आदि देवियोंसे रक्षाकी, भैरव आदिसे कठिनाइयोंसे पार पानेकी, सरस्वतीसे विद्या-तत्त्वकी, लक्ष्मीसे

ऐश्वर्य-वृद्धिकी, पार्वतीसे सौभाग्यकी, शची-इन्द्राणीसे कल्याण-परम्पराकी, स्कन्दसे संतान-वृद्धिकी और गणेशसे सभी वस्तुओंकी याचना करनी चाहिये। ये सभी, जिनका मैंने वर्णन किया है, महेश्वरकी विभिन्न मूर्तियाँ हैं।

भगवान् गणेश विघ्नोंके अधिपति हैं, अतः उनके पूजनसे विघ्नोंकी शान्ति होती है। इस विषयमें याज्ञवल्क्य-स्मृतिके आचाराध्यायमें एक समूचे प्रकरणका ही वर्णन है, जिसे 'गणपतिकल्प' कहते हैं। उसमें उल्लेख है—

विनायकः कर्मविघ्नसिद्ध्यर्थं विनियोजितः।
गणानामाधिपत्ये च रुद्रेण ब्रह्मणा तथा॥
(२७१)

'ब्रह्मा, रुद्र तथा विष्णुने गणेशजीको कर्मोंमें विघ्न डालनेका अधिकार तथा पूजनोपरान्त उसे शान्त कर देनेकी सामर्थ्य प्रदान की है। साथ ही पुष्पदन्त आदि गणोंके अधिपति-पदपर भी नियुक्त किया है।'

अब आगे विनायकसे गृहीत जनोंके लक्षण और उसकी शान्तिके विधानका वर्णन किया जाता है—

जो विनायकके चंगुलमें फँस जाता है, वह स्वप्नमें अगाध जलमें डूबता-उतराता है, गेरुए वस्त्रधारी मुण्डित सिरवाले पुरुषोंका दर्शन करता है, मांसभक्षी पक्षियोंकी सवारी करता है, चण्डालों, गधों और ऊँटोंसे घिरकर एक साथ बैठता है, चलते समय वह अपनेको शत्रुओंद्वारा पीछा किया जाता हुआ मानता है, उसका चित्त विक्षिप्त रहता है, उसके सभी कार्य निष्फल होते हैं, अकारण ही वह दीन बना रहता है, राज-पुत्र होनेपर भी उसे राज्यकी प्राप्ति नहीं होती। कुमारी कन्या अभीष्ट पतिको, गर्भिणी स्त्री संतानको, ऋतुमती गर्भको, श्रोत्रिय आचार्यत्वको, शिष्य अध्ययनको, बनिया लाभको और किसान खेतीके लाभको नहीं पाता। अतः उसकी शान्तिके निमित्त किसी पुण्य दिनमें विधिपूर्वक उस व्यक्तिको स्नान कराना चाहिये। स्नानकी विधि यों है—

उस मनुष्यके शरीरमें घी मिलाकर पीली सरसोंका उबटन लगावे; सिरपर सर्वौषधि और सर्वगन्धसे लेप करे। तदनन्तर उसे भद्रासनपर बैठाकर ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्तिवाचन करावे। पुनः एक ही वर्णके चार कलशोंको किसी नदी या सरोवरके जलसे पूर्ण करके मँगावे और उन्हें भद्रासनके चारों दिशाओंमें क्रमशः स्थापित करे। फिर उन कलशोंमें घुड़साल, गजशाला, बिमवट, नदीके संगम और कुण्डकी मिट्टी, गोरोचन, चन्दन आदि गन्ध और गुग्गुल डाले। तत्पश्चात् आचार्य उन्हीं कलशोंके जलसे अभिषेक करे। अभिषेकके मन्त्र ये हैं—

सहस्राक्षं शतधारमृषिभिः पावनं कृतम्।
तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमान्यः पुनन्तु ते॥
भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः।
भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः॥
यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्धनि।
ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद् घ्नन्तु सर्वदा॥
(२८१—२८३)

'ऋषियोंने अनेकों शक्तियों तथा बहुत-से प्रवाहोंद्वारा जिस जलको पवित्र बनाया है, उसी जलसे मैं तुम्हारा अभिषेक करता हूँ। ये पावन करनेवाले जल तुम्हें पवित्र करें। अब राजा वरुण, सूर्य, बृहस्पति, इन्द्र, वायु और सप्तर्षियोंने तुम्हें कल्याण प्रदान किया। ये जल तुम्हारे बाल, सीमन्त, मूर्धा, ललाट, दोनों कानों और दोनों नेत्रोंमें जो दौर्भाग्य स्थित है, उसका नाश करें।'

इस प्रकार स्नान कर लेनेके उपरान्त बायें हाथसे सिरपर कुशा रखकर दाहिने हाथसे गूलरके स्रुवासे सरसोंके तेलका अग्निमें हवन करे। हवनका मन्त्र यों है—

मितश्च सम्मितश्चैव तथा शालकटङ्कटौ।
कूष्माण्डो राजपुत्रश्चेत्यन्ते स्वाहासमन्वितैः॥
(२८५)

'मित, सम्मित, शाल, कटङ्कट, कूष्माण्ड और राजपुत्र—इन नामोंके अन्तमें (चतुर्थी विभक्ति और) 'स्वाहा' जोड़कर (जैसे—मिताय स्वाहा) हवन करना चाहिये।'

तत्पश्चात् चौराहेपर जाकर, वहाँ सूप रखकर उसपर चारों ओर कुशा बिखेर दे। फिर उसपर चावल, तिलकी पीठीसहित भात, अनेकों रंगोंके पुष्प, चन्दन आदि सुगन्ध, मूली, पूरी, पूआ, छोटे-छोटे पूओंकी गुँथी हुई माला, दही मिला हुआ अन्न, खीर, गुड़मिश्रित चावलका चूर्ण और लड्डूकी बलि दे। तदनन्तर पृथ्वीपर सिर रखकर विनायककी माता अम्बिकाका उपस्थान करना चाहिये। उपस्थानका मन्त्र यों है—

रूपं देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे ।
पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वकामांश्च देहि मे ॥

'भगवति ! आप मुझे रूप, यश, ऐश्वर्य, पुत्र और धन प्रदान करें तथा मेरी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण करें।' इस प्रकार उन्हें अर्घ्य देकर दूब, सरसों और पुष्पोंसे भरी हुई अञ्जलि प्रदान करनी चाहिये।

तत्पश्चात् स्वच्छ वस्त्र, उज्ज्वल पुष्पोंकी माला और मलयागिरि चन्दन धारण करके यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन करावे और आचार्यको दक्षिणामें दो वस्त्र प्रदान करे। इस प्रकार विधिपूर्वक विनायककी पूजा करनेसे कर्मोंके फल तथा सर्वश्रेष्ठ लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। जो महागणपतिकी सदा पूजा करके उनको चन्दन लगाता है, उसे सभी सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं।

श्रीवैष्णव-सम्प्रदाय एवं विशिष्टाद्वैत-वेदान्तमें श्रीगणेश

(लेखक—प्राचार्य श्रीजयनारायणजी मल्लिक, एम्० ए० (द्वय) स्वर्णपदकप्राप्त, डिप० एड्०, साहित्याचार्य, साहित्यालंकार)

श्रीवैष्णव-सम्प्रदाय एवं विशिष्टाद्वैत-वेदान्तमें श्रीगणेशजीका स्थान बहुत उच्च एवं विशिष्ट है। परमपदमें श्रीवैकुण्ठपति भगवान् माया-मण्डलसे परे अखिल हेयप्रत्यनीक परब्रह्म सगुण साकाररूपमें सदैव वर्तमान रहते हैं, जहाँ नित्यसूरि सदा उनका दर्शन करते रहते हैं।

'ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।'
(ऋग्वेद १। २२। २०)

इन्हीं नित्यसूरियोंमें अग्रगण्य स्थान श्रीअनन्त (शेषजी) तथा श्रीविष्वक्सेनजीका है। भगवान् विष्णु शेष पर्यङ्कपर विराजमान हैं और विष्वक्सेन उनके सेनानायक हैं। यह माया-मण्डल या लीला-विभूतिः जहाँ भू-देवी या त्रिगुणात्मिका प्रकृतिका राज्य है; नित्य-विभूति या त्रिपाद्विभूतिका प्रतिबिम्बमात्र है। केवल लीला-विभूति सत्त्व रज तमके कारण परिणामशीला है और परिणामवादके कारण सदैव बदलती रहती है, किंतु परमपदमें शुद्ध-सत्त्वके कारण वहाँकी विभूति शाश्वत और चिरन्तन है। वहाँ मुक्तात्माओंका शरीर तथा सभी भोग्य-पदार्थ शुद्ध सत्त्वके बने हैं और वहाँ परिणामशीला प्रकृतिका अस्तित्व नहीं है। अतः वहाँ अक्षय यौवन, अनन्त सौन्दर्य और अनिन्द्य माधुर्य है। लीला-विभूतिमें हम जो सौन्दर्य और माधुर्यकी झलक देखते हैं वह परमपदके दिव्य सौन्दर्य और माधुर्यका प्रतिबिम्बमात्र है। पर चाहे लीला-विभूति हो या नित्य विभूति, परमात्मा सर्वत्र हैं। परमपदमें माया-मण्डलसे परे परब्रह्म श्रीमन्नारायण भगवान् हैं और लीला-विभूतिमें भगवान्का व्यूहरूप विराजमान है। व्यूहरूपके अन्तर्गत गुणत्रयसम्पन्न शेषशायी श्रीवासुदेव भगवान् हैं। पर लीला-विभूतिमें परिणामशीला प्रकृतिके कारण जन्म-मरणका चक्र चलता रहता है, अतः सृष्टि-संचालनके लिये भगवान्को दो-दो गुणोंसे सम्पन्न तीन रूप धारण करने पड़ते हैं; जिन्हें पाञ्चरात्रकी भाषामें संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध तथा पौराणिक भाषामें ब्रह्मा-विष्णु-महेश कहा गया है। ये सृष्टि-संचालन करते हुए उत्पत्ति-पालन-संहारका कार्य सँभालते रहते हैं। जब-जब अन्यायियों एवं अत्याचारियोंके उपद्रवसे सत्त्वपर रज और तमकी यवनिका आ जाती है, मानवतामें पशुता घुस जाती है, मानवता उलट जाती है, धर्मका पतन और पापका उत्कर्ष होने लगता है, तब-तब शेषशायी वासुदेव भगवान्का अवतार होता है। भगवान् शरीर धारणकर मानवताका संरक्षण और पथ-प्रदर्शन करने लगते हैं।

परमपदमें जो परब्रह्म श्रीमन्नारायण हैं, व्यूहरूपमें वे ही श्रीवासुदेवभगवान् हैं; परमपदमें जो नित्यसूरि अनन्त हैं, लीला-विभूतिमें वे ही श्रीशंकरजी हैं और परमपदमें जो सेनानायक श्रीविष्वक्सेनजी हैं, वे ही लीला-विभूतिमें विघ्नोंको दूर करनेवाले तथा सिद्धि और सफलताको देनेवाले गणोंके अधिनायक श्रीगणेशजी हैं। परमपदके सेनानायक ही लीला-विभूतिमें गणनायकके नामसे प्रसिद्ध हैं। विद्या और ज्ञानकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वती हैं तथा विद्या और ज्ञानके अधिष्ठाता देवता श्रीगणेशजी हैं। यही कारण है कि प्रत्येक हिंदूके घरमें धनकी अधिष्ठात्री देवी 'लक्ष्मी' तथा विद्या एवं ज्ञानके अधिष्ठाता देव 'श्रीगणेश'की पूजा होती है।

विशिष्टाद्वैत-वेदान्तमें 'अर्थ-पञ्चक'-ज्ञानका बहुत बड़ा महत्त्व है। अर्थ-पञ्चक-ज्ञानके अन्तर्गत पाँच विषयोंका समावेश है—

१–स्वरूप (जीवात्माका स्वरूप),

२–परस्वरूप (परमात्माका स्वरूप),

३–पुरुषार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष),

४–उपाय [जीवात्माको परमात्मासे मिलनेका साधन क्या है अर्थात् कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, प्रपत्तियोग (शरणागति) तथा आचार्याभिमान],

५–विरोधी (अर्थात् जीवात्माको परमात्मासे मिलनेके मार्गमें विघ्न) क्या हैं और वे कैसे दूर होंगे ?

यहींपर श्रीगणेशजी हमारी सहायता करते हैं। जबतक साधन-पथके विघ्न दूर नहीं होंगे, तबतक हम परमात्माको प्राप्त नहीं कर सकते और ये विघ्न श्रीगणेशजीकी कृपासे ही दूर हो सकते हैं।

विशिष्टाद्वैत-वेदान्तके प्रवर्तक तथा श्रीवैष्णव-सम्प्रदायके आदि आचार्य सेनाधीश श्रीविष्वक्सेन स्वामी हैं, जिनका लीला-विभूतिमें नाम श्रीगणेशजी है। श्रीवैष्णवोंकी गुरु-परम्परा इस बातको स्पष्ट करती है। विशिष्टाद्वैत-वेदान्त एवं शरणागति-मार्गके प्रवर्तक श्रीमन्नारायणभगवान्‌से लेकर श्रीरामानुज स्वामीतक दस आचार्य हुए हैं—

१–श्रीमन्नारायणभगवान्, २–श्रीलक्ष्मीजी, ३–सेनाधीश श्रीविष्वक्सेनस्वामी, ४–श्रीशठकोपस्वामी, ५–श्रीनाथ-मुनिस्वामी, ६–श्रीपुण्डरीकाक्षस्वामी, ७–श्रीराममिश्रस्वामी, ८–श्रीयामुनाचार्यस्वामी, ९–श्रीमहापूर्णस्वामी और १०–श्रीरामानुजस्वामी।

इनमेंसे भगवान् और श्रीलक्ष्मीजी प्राप्य और आराध्य हैं। इनके अतिरिक्त आचार्योंमें श्रीविष्वक्सेनस्वामीका नाम सर्वप्रथम आता है। श्रीविष्वक्सेनस्वामीने ही शठकोप-स्वामीको शरणागति-मन्त्रका उपदेश दिया। इसी शरणागति-मन्त्र तथा मन्त्रार्थके आधारपर श्रीशठकोपस्वामीने द्राविड़ी (तमिळ) भाषामें 'तिरुवायमौलि'-नामक ग्रन्थकी रचना की, जिसका संस्कृतमें अनुवाद एक हजार श्लोकोंमें 'सहस्र-गीति'के नामसे हुआ और जिसकी टीका 'भगवद्विषय'के नामसे प्रसिद्ध है। श्रीसम्प्रदायमें 'तिरुवायमौलि' या 'सहस्र-गीति'का स्थान बहुत श्रेष्ठ है। श्रीवैष्णवोंका मुख्य साधन प्रपत्ति (शरणागति) एवं आत्मसमर्पण इसी 'सहस्रगीति'पर अवलम्बित है। श्रीवैष्णवोंमें भक्ति और प्रपत्तिके अतिरिक्त एक मुख्य साधन आचार्याभिमान है। इसी आचार्यनिष्ठाके कारण श्रीविष्वक्सेनस्वामी अथवा श्रीगणेशजी प्रथमपूज्य माने गये हैं।

वैष्णवोंके चार सम्प्रदाय हैं—

१–श्रीसम्प्रदाय—यह विशिष्टाद्वैत-वेदान्तको मानता है। इसके प्रवर्तक श्रीरामानुजाचार्य हैं।

२–मध्व-सम्प्रदाय—यह द्वैत-वेदान्तको मानता है, इसके प्रवर्तक श्रीमध्वाचार्य हैं।

३–श्रीविष्णुस्वामि-सम्प्रदाय—यह शुद्धाद्वैत-वेदान्तको मानता है, इसके प्रवर्तक श्रीवल्लभाचार्य हैं।

४–श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय—यह भेदाभेद या द्वैताद्वैत-वेदान्तको मानता है। इसके प्रवर्तक श्रीनिम्बार्कस्वामी हैं।

चारों वैष्णव-सम्प्रदायोंने और इनसे उत्पन्न सब शाखाओंने मुक्तकण्ठसे विघ्न-बाधाओंको दूर करनेके लिये श्रीगणेशजीकी आराधना स्वीकार की है। सभी वैष्णव-सम्प्रदायोंने संसारकी सत्यता और भक्तिकी उपादेयता स्वीकार की है। संसार सत्य है और संसारमें सिद्धि तथा सफलता प्राप्त करनेके निमित्त श्रीगणेशजीकी आराधना भी आवश्यक है। स्वामी शंकराचार्यजीने परमार्थ-पक्षमें ब्रह्मको निर्गुण और संसारको मिथ्या माना है तथा ज्ञानको ही ब्रह्म-प्राप्तिका साधन बतलाया है; पर व्यवहार-पक्षमें उन्होंने भी संसारकी स्थिति तथा भक्तिकी उपयोगिता स्वीकार की है। इन्होंने ही व्यावहारिक जगत्‌में पञ्चदेवोपासना प्रचलित की, जिसमें भगवान् गणपतिका स्थान सर्वोपरि है—

'ॐ गणपत्यादिपञ्चदेवता इह आगच्छत इह तिष्ठत।'

तान्त्रिक उपासनामें तो गणेशजीका महत्त्व है ही, वैदिक आराधनामें भी गणेशजीका स्थान बहुत ऊँचा है।

'गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे।'

(शुक्लयजु० २३। १९)

विशिष्टाद्वैत-वेदान्तने ब्रह्मको सगुण और संसारको सत्य माना है। ब्रह्म यदि सत्य है तो ब्रह्मसे निकला हुआ संसार भी सत्य है। सत्यसे मिथ्या पदार्थकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। ब्रह्म ही जगत्‌का उपादान-कारण और निमित्त-कारण है। ब्रह्मके अतिरिक्त और कोई पदार्थ ही नहीं है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन।' शंकरने इसी ब्रह्मको निर्गुण माना है, पर रामानुजने इसे चिदचिद्विशिष्ट माना है, अतः सगुण है। चित् (चैतन्य जीव) तथा अचित्

(अचेतन या जड प्रकृति)से बना संसार ब्रह्मका शरीर है और ईश्वर इस संसारकी आत्मा । जिससे जगत्के जन्म आदि (सृष्टि, स्थिति और संहार) होते हैं, (वह ब्रह्म है)—

'जन्माद्यस्य यतः ।' (ब्रह्मसूत्र १ । १ । ३)

जिससे ये भूत (प्राणी) उत्पन्न होते, उत्पन्न होकर जिनसे जीवन धारण करते और मृत्युको प्राप्त हो जिनमें ही लीन होते हैं; उसे जाननेकी इच्छा करो । वह ब्रह्म है ।

'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद् विजिज्ञासस्व, तद् ब्रह्म ।' (तैत्तिरीय उप०, भृगुवल्ली १ । १)

यह संसार ब्रह्मकी विभूति है और ब्रह्मसे ओत-प्रोत है । सर्वत्र ब्रह्मका प्रकाश है और सारा विश्व ब्रह्मसे ओत-प्रोत है—

'सीय राम मय सब जग जानी । करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥'
(मानस १ । ७ । १)

'ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत् ।'
(ईशावास्योपनिषद्)

यह सारा विश्व ब्रह्ममय है और संसारके प्रत्येक नर-नारी भगवत्स्वरूप हैं । प्रत्येक नर-नारीका शरीर परमात्माका मन्दिर है । परमात्मा अनन्त अपरिमित प्रकाशके समूह हैं और जीवात्मा कर्म-संस्कारमें उलझा हुआ तथा अविद्याकी राखसे ढका हुआ प्रकाशकण (चैतन्यकी चिनगारी) है । इस माया-मण्डलमें परिणामवादके कारण जो सृष्टि-चक्र चल रहा है, उसके सफल संचालनके हेतु लीला-विभूतिमें परमात्माको अनेक रूप धारण करने पड़ते हैं । जब जैसी आवश्यकता पड़ती है, परमात्मा वैसा ही रूप धारण कर लेते हैं ।

एक ही ईश्वर भिन्न-भिन्न परिस्थितियोंमें भिन्न-भिन्न कार्य करते हैं । वे ही सृष्टि करते हैं, वे ही संसारका पालन और संहार भी करते हैं । वे ही जल देते हैं, वे ही रोशनी देते हैं और वे ही विघ्न-बाधाओंका शमन करते हैं । वे ही ब्रह्मा हैं, वे ही विष्णु हैं, वे ही रुद्र हैं, वे ही इन्द्र हैं, वे ही वरुण, कुबेर, मित्र (सूर्य) तथा गणपति हैं । काली एवं दुर्गा उन्हींकी शक्तियाँ हैं । परमात्माकी हम किसी रूपमें आराधना करें, उन्हींको प्राप्त होंगे ।

आकाशात् पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम् ।
सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति ॥

'जैसे आकाशसे गिरा हुआ जल अन्ततः समुद्रमें चला जाता है, उसी प्रकार सम्पूर्ण देवताओंके प्रति किया गया नमस्कार भगवान् केशवको ही प्राप्त होता है ।'

गणेशजी वस्तुतः परमात्माके अवतार हैं । विघ्नोंको दूर करनेके लिये तथा मनुष्यको सिद्धि और सफलता प्रदान करनेके निमित्त भगवान्ने ही गणेशका रूप धारण किया है । भारतके चिरस्मरणीय वैष्णव-कवि तुलसीदासजीने श्रीगणेशकी वन्दना की है—

जो सुमिरत सिधि होइ गन नायक करिबर बदन ।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन ॥
(श्रीरामचरितमानस १ । १ सो०)

संस्कृत वाङ्मयमें पाञ्चरात्रका साहित्य बहुत विशाल है । इसमें १०८ संहिताएँ हैं । उन्हींमेंसे एक 'श्रीविष्वक्सेन-संहिता' है, जिसमें श्रीगणेशभगवान्की दक्षिणपंथी आराधनाका विस्तृत वर्णन है । भगवान् श्रीगणेशजीकी कृपासे ही मुमुक्षुओंके मोक्ष-पथसे विघ्न-बाधाओंका शमन होता है । यही 'श्रीविष्वक्सेन-संहिता' हमें बतलाती है कि भगवान् विष्वक्सेन ही लीला-विभूतिमें गणेशजीके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं । श्रीविष्वक्सेन-संहितामें भगवान् विष्वक्सेन हमें बतलाते हैं कि 'परमात्मा अन्तर्यामीरूपसे सर्वत्र वर्तमान हैं; अतः ऐसा कोई भी स्थल नहीं, जहाँ हमलोग छिपकर पाप कर सकें । भगवान् तो साक्षीरूपसे सर्वत्र हमारे कर्मोंको देख रहे हैं । अन्तर्यामी भगवान् प्रत्येक प्राणीके अन्तःकरणमें वर्तमान हैं, अतः प्रत्येक नर-नारीको अपनी अन्तरात्मा—अपना अन्तःकरण पवित्र और निर्मल रखना चाहिये । श्रीवैष्णव-सम्प्रदाय एवं विशिष्टाद्वैत-वेदान्तमें श्री-गणेशजीका स्थान श्रीविष्वक्सेनस्वामीके रूपमें बहुत ऊँचा है । वे सेनानायक और गणनायक तो हैं ही, साथ-ही-साथ देवताओंमें और श्रीवैष्णव-सम्प्रदायके आचार्योंमें भी प्रथम पूज्य हैं ।

मध्व-सम्प्रदायमें श्रीगणेश

(लेखक—श्रीभाऊ आचार्यजी टोणपे)

मध्व-सम्प्रदाय निर्गुण उपासनाका समर्थक नहीं, अपितु सगुण उपासनाको मानता है। इस सम्प्रदायमें प्रत्येक देवताके सगुण रूपका ध्यान एवं पूजन श्रेष्ठ माना गया है। मध्व-सम्प्रदाय किसी भी देवताकी प्रत्यक्ष पूजा एवं ध्यानको मान्यता नहीं देता, बल्कि सर्वलोकान्तर्यामी विष्णुकी पूजा एवं ध्यानको प्रश्रय देता है। जैसा कि मध्वाचार्यकृत 'तत्त्वसंख्यानम्'का प्रारम्भिक श्लोक है—

स्वतन्त्रमस्वतन्त्रं च द्विविधं तत्त्वमिष्यते।
स्वतन्त्रो भगवान् विष्णुर्भावाभावौ द्विधेतरत्॥

अर्थात् तत्त्व दो प्रकारके हैं—स्वतन्त्र एवं परतन्त्र। भगवान् विष्णु स्वतन्त्र तत्त्व हैं। अस्वतन्त्र अथवा परतन्त्र तत्त्व दो प्रकारके होते हैं—एक तो भावस्वरूप और दूसरा अभावस्वरूप।

श्रीमन्मध्वाचार्यकृत 'तन्त्रसार'में एक उदाहरण मिलता है—

तत्र तत्र स्थितो विष्णुस्तत्तच्छक्तीः प्रबोधयन्।
एक एव महाशक्तिः कुरुते सर्वमञ्जसा॥

"उन-उन देवताओंमें स्थित रहते हुए अथवा उन-उनको अपने 'अन्तर्गत' (अधीन) रखते हुए एवं उनकी शक्तियोंको जाग्रत् करते हुए एक ही महाशक्ति भगवान् विष्णु सभी कार्य शीघ्र सम्पन्न करते हैं।"—इस दृष्टिसे प्रत्येक देवता अपना स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रखता, अपितु विष्णुके ही अधीन रहते हुए वह कार्य करता है। यथा विघ्नेश्वर गणेशको ही लें। भगवान् विष्णु जब विघ्नेश्वरको अपने अधीन रखते हैं, तब वे उनकी विघ्नहारिणी शक्तिको प्रबोधित करते हैं। इस प्रकार गणेश भी सर्वलोकान्तर्यामी विष्णुके अधीनस्थ देवता हैं। उनके अनुसार श्रीगणेशका भगवान् विष्णुके अधीनस्थ देवताओंमें अठारहवाँ स्थान है। जैसी कि उक्ति है—

'विष्वक्सेनोऽश्विनौ तौ गणपतिधनपावुक्तशेषाः शतस्था-'...

अन्य सम्प्रदायोंमें 'श्रीगणेशाय नमः' कहते हुए गणेश-पूजन किया जाता है, किंतु मध्व-सम्प्रदायमें 'ॐ श्रीगणेशान्तर्गतविश्वम्भरमूर्तये नमः'—यह नमस्कार-मन्त्र पूजनके समय प्रयुक्त होता है। अर्थकी दृष्टिसे विष्णुभगवान्‌के अधीन श्रीगणेश कार्य करते समय अपनी विघ्नहारिणी शक्तिको जाग्रत् करते हुए विश्वम्भर अर्थात् समस्त विश्वका पालन करनेवाले होते हैं।

मध्व-सम्प्रदायमें श्रीगणेशको आकाशका अभिमानी देवता माना गया है। 'श्रीमन्मध्वाचार्य-सिद्धान्त-सार-संग्रह' पुस्तकके अन्तर्गत 'पञ्चभूत-प्रकरण'में यह उल्लिखित है—

'तत्र शब्दादाकाशोत्पत्तिः। तदभिमानी विनायकः।'

तात्पर्य यह कि शब्दसे आकाशकी उत्पत्ति होती है। उसके अभिमानी देव विनायक अर्थात् गणेश हैं। यह नाम-मन्त्र भी इसी सिद्धान्तको प्रतिपादित करता है—

'ॐ आकाशात्मने श्रीमहागणपतये नमः।'

मध्व-सम्प्रदायमें आकाशके दो रूप माने गये हैं। एक व्यक्त आकाश और दूसरा अव्यक्त आकाश। व्यक्त आकाशसे दिक् और कालके ज्ञानका बोध होता है तथा अव्यक्त आकाश अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक भगवान् विष्णुके प्रकाशपुञ्जमय शरीरमें ही व्याप्त है। उनकी 'नाभि'से शब्दकी उत्पत्ति होती है; अतः शब्द या वाणीके देवता गणेश हैं। इसलिये गणेशको 'नाभ्याकाशाभिमानी गणेश' कहा गया है—'नाभ्याकाशाभिमानी गणेश।'

'गणेशपुराण'के 'गणेशसहस्रनामस्तोत्र'में गणेशजीको 'क्षिप्रप्रसादन' नामसे सम्बोधित किया गया है—

'महागणपतिर्बुद्धिप्रिय. क्षिप्रप्रसादन।'

इसका अर्थ है—शीघ्र कृपा करनेवाला या शीघ्र प्रसन्न होनेवाला, मध्व-मतमें भी गणेशको 'क्षिप्रप्रसाद' कहा गया है। इस सम्प्रदायमें क्षिप्रप्रसादन गणपतिका अष्टाक्षर मन्त्र इस प्रकार है—

'ॐ क्षिप्रप्रसादाय नम. ॐ'

उक्त मन्त्र मध्वाचार्यप्रणीत 'तन्त्रसार'में उल्लिखित है। इस मन्त्रके द्रष्टा महर्षि कौशिक हैं एवं इसका छन्द

गायत्री है । मध्व-मतमे क्षिप्रप्रसाद-गणपतिका ध्यान इस प्रकार है—

रक्ताम्बरो रक्ततनू रक्तमाल्यानुलेपन. ।
महोदरो गजमुखः पाशदन्ताङ्कुशाभयान् ॥
बिभ्रद् ध्येयो विघ्नहरः कामदस्त्वरया ह्ययम् ।

अर्थात् 'रक्त वस्त्र पहननेवाले, रक्त वर्ण, रक्त माला एव रक्त चन्दनसे सुशोभित, विशाल उदरशाली, भुजाओंमें पाश, दन्त, अङ्कुश एवं अभय-मुद्राको धारण करनेवाले, विघ्नहर्ता, शीघ्र कामनापूर्ति करनेवाले गजाननका ध्यान करना चाहिये ।'

गणेशजीका द्वितीय ध्यान-मन्त्र इस प्रकार है—

गजाननं चतुर्बाहुं लम्बकुक्षिं सितप्रभम् ।
....लम्बयज्ञोपवीतिनम् ॥
वामहस्तेन मुख्येन संगृहीतमहाफलम् ।
इतरेण तु हस्तेन भग्नदन्तपरिग्रहम् ॥
अपराभ्यां च हस्ताभ्यां पाशाङ्कुशवराभयान् ।
आरब्धकर्मनिर्विघ्नफलं दुग्धे यथेप्सितम् ॥

अर्थात् 'गजानन गणेश चतुर्भुज, लम्बोदर, शुभ्रकान्ति-वाले,...लंबा यज्ञोपवीत धारण करनेवाले, मुख्य वाम करसे महाफल लेनेवाले दक्षिण करसे खण्डित दन्त धारण करनेवाले एवं अन्य दो करोंसे पाश, अङ्कुश, वर और अभय मुद्रा धारण करनेवाले, प्रारम्भ किये हुए कार्यको निर्विघ्न रूपसे समाप्त करनेवाले और मनोरथ पूर्ण करनेवाले हैं ।'

माध्व कवियोंकी दृष्टिमें गणेश

मध्व-सम्प्रदायमे कुछ ऐसे महान् कवि हुए हैं, जिन्होने अपने जीवन-कालमें मध्व-साहित्यको अपने भक्ति-गीतोंद्वारा पोषित किया है और समृद्ध बनाया है। इन कवियोंने, जो मध्व-सम्प्रदायके अनुयायी हैं, गजानन गणेशकी स्तुति बड़े ही सुन्दर ढंगसे की है। मध्व-सम्प्रदायकी दास-परम्परामें पुरन्दरदास, जगन्नाथदास, विट्ठलदास आदि भक्त-श्रेष्ठ कन्नडभाषी कवि हैं। इन कवियोंने अपनी भक्ति और विद्वत्तासे कन्नड-साहित्य-जगत्‌को आलोकित किया है। पुरन्दरदासजीका समय १४८४ से १५६४ ई० तक माना गया है। ये दक्षिण भारतके प्रसिद्ध कवि थे। जगन्नाथदास और विट्ठलदास भी मध्व-सम्प्रदायके श्रेष्ठ कवि हैं। दासश्रेष्ठ पुरन्दरदास गजानन श्रीगणेशकी वन्दना करते हुए कहते हैं—

गजवदनाबेडुवे । गौरीतनया,
त्रिजगवंदिताने। सुरनरपोरेदने। पाशांकुशधर परमपवित्रा॥
मूषकवाहना । मुनिजनप्रेमा,
मोदर्दिंदलिनिम पादवतोरो । साधुवंदितने।
आदर्दिंदलि। सरसिजनाभ श्रीपुरंदरविट्ठलन,
निरुत नेनेवंते भरदि दयमाडो ॥

अर्थात् 'गणेश ! मैं तुम्हारी आराधना करता हूँ। हे गौरीपुत्र ! तीनो लोकोंमें वन्दित होनेवाले, देवोंके प्रिय, पाश और अङ्कुशधारी, परम पवित्र देव, मूषक (चूहा)-वाहनवाले, मुनियोंके प्रिय गणेश तुम जो साधुजनोंद्वारा वन्दित हो, मेरा उद्धार करो। मुझे ऐसी शक्ति प्रदान करो कि मैं नाभिमे कमल धारण करनेवाले विष्णुका निरन्तर ध्यान कर सकूँ। हे गणेश ! मेरे ऊपर दया करो।'

श्रीविट्ठलदासजी गणपतिभगवान्‌की स्तुति करते हुए कहते हैं—

वंदिसुवेनु श्रीगणराया, वरगणराया।
सुरमुनिकिंनरसंस्तुतिचर्या, हरगौरीसुतपंकजसूर्य।
आनंदवकोट्टु नीसलहो विघ्नेशा ॥

अर्थात् 'हे गणराज गणपति ! मैं तुम्हारी वन्दना करता हूँ। तुम सभी देवताओंमे ऊँचे हो। देवता, ऋषि-मुनि-नर आदिकी संस्तुतिके तुम विषय हो। ये लोग तुम्हारी ही स्तुति करते हैं। शंकर और पार्वतीके पुत्र ! तुम कमलके समान कोमल एवं सूर्यके समान प्रकाशमान हो। हे विघ्नहर्त्ता ! मुझे आनन्द प्रदान कर मेरा उद्धार करो।'

इस प्रकार हमे मध्व-सम्प्रदायके गणेशभक्त कवियोके भक्ति-गीतोका अवलोकन प्राप्त होता है। मध्व-सम्प्रदाय श्रीगणेशको विष्णुके अधीन मानता है और विष्णुके माध्यमसे गणेशकी पूजा या ध्यानको प्राथमिकता देता है।

श्रीरामोपासनामें भगवान् गणेश

(लेखक—प० श्रीअवधकिशोरदासजी श्रीवैष्णव 'प्रेमनिधि')

श्रीरामोपासक भगवान् गणेशके प्रति अत्यन्त आदर-भाव रखते हैं। प्राचीन तथा अर्वाचीन श्रीराम-साहित्यका अन्वेषण करनेसे भगवान् गणेशके प्रति श्रीरामभक्तोंकी भावनाका स्पष्टीकरण हो जाता है। यों तो श्रीरामोपासक **'सीयराम मय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥'** (मानस १।७।१) का आदर्श अपने जीवनमें चरितार्थ करनेका पूर्णतः प्रयत्न करते ही रहते हैं, इसलिये सनातनधर्मके पञ्चदेवोंके प्रति उनका विशेष-सम्मान होना स्वाभाविक है। यही कारण है कि श्रीरामानन्द-सम्प्रदायके अनेकानेक मन्दिरोंमें श्रीहनुमान्‌जी तथा श्रीगणेशजीके विग्रहोंकी स्थापना दृष्टिगोचर होती है।

परब्रह्म श्रीरामके अनन्त नाम हैं, अनन्त रूप हैं। अतएव शुक्लयजुर्वेद २३।१में **'गणानांत्वा गणपतिꣳहवामहे'** ···'—इस मन्त्रके द्वारा परब्रह्मको 'गणपति'-नामसे पुकारा गया है। शास्त्रों एवं संतोंने नाम तथा नाम-जापकमें एक-रूपता मानी है। भगवान् श्रीगणेशजी श्रीराम-नामकी अनन्यनिष्ठाके कारण ही प्रथम पूज्य माने गये हैं :—

'महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ ॥'

(मानस १।१८।२)

जिस प्रकार मन्त्र तथा मन्त्र-जापकमें एकरूपता मानी गयी है, उसी प्रकार भगवान् एवं भक्तमें भी अभेदान्वय सम्बन्ध स्वीकृत है—

भक्ति-भक्त-भगवंत-गुरु चतुर-नाम बपु एक।
इनके पद-बन्दन किए नासत बिघ्न अनेक ॥

(भक्तमाल—१)

पुन—

संत-भगवंत अंतर-निरंतर नहि·········,

(विनयपत्रिका)

भगवान् गणेशको यदि श्रीराम-भक्त-शिरोमणि मानते हैं तो भी **'राम ते अधिक राम कर दासा'** तथा **'आराधनानां सर्वेषां विष्णोराराधनं परम्। तस्मात् परतरं देवि तदीयानां समर्चनम् ॥'** (पद्मपुराण) इस दृष्टिकोणसे श्रीरामोपासकोंद्वारा भगवान् गणेशका पूजनाराधन होना शास्त्र एवं सम्प्रदायके अनुकूल है। इसे अधिक स्पष्ट करनेके लिये श्रीरामानन्द-सम्प्रदायके सर्वमान्य शास्त्रीय ग्रन्थों एवं श्रीराम-भक्त-संतोंके वचनोंके कतिपय उद्धरण कल्याणोपासकोंके सम्मुख प्रस्तुत किये जाते हैं :—

विघ्नं दुर्गां क्षेत्रपालं च वाणीं बीजादिकांश्चाग्निदेशादिकांश्च।
पीठस्याङ्घ्रिष्वेषु धर्मादिकांश्च नञ्पूर्वांस्तांस्तस्य दिक्ष्वर्चयेच्च ॥

(श्रीरामपूर्वतापनीयोपनिषद् १०।३)

विघ्न गणेश, दुर्गा, क्षेत्रपाल और सरस्वती; इनके आदिमें इन्हींके 'बीज' लगाकर 'ॐ वि विघ्नाय नमः' 'ॐ दुं दुर्गायै नमः' इत्यादि रूपसे—इन चारोंका पीठके ऊपर यथास्थान पूजन करे। पीठके पायोंमें धर्म आदिका आग्नेय आदि कोणोंमें तथा अधर्म आदिका इन पायोंके पार्श्ववर्ती पूर्वादि दिशाओंमें पूजन करे।'

श्रीराम-पूजन-पीठमें विघ्नेश भगवान् गणपतिका ही सर्व-प्रथम नाम लिया गया है। इसी प्रकार—

गणाधिप नमस्तुभ्यमिहागच्छ गजानन।
पूर्वभागे ममातिष्ठ पूजनं गृह्यतामिदम् ॥

(श्रीरामार्चापद्धति १।३)

इस मन्त्रके द्वारा श्रीरामार्चा-महायज्ञमें भगवान् गणेशके पूजनका विधान है।

'गणेशादिचतुर्णां तु रामाङ्गत्वं प्रतीयते।
सर्वे वेदा स्तुवन्तीति सामान्यश्रुतिचोदनात् ॥

(श्रीरामार्चनचन्द्रिका, पटल—१)

'सब वेद जिनकी स्तुति करते हैं।' इस सामान्य श्रुतिके विधानसे गणेश आदि चार देवता श्रीरामके अंग प्रतीत होते हैं।'

'ॐ नमो रामभद्राय गं गणेशाय ते नमः ॥

(श्रीरामार्चनचन्द्रिका, पटल—२)

श्रीअगस्त्यसंहितान्तर्गत—'रामार्चनचन्द्रिका'के इस मन्त्रमें भी श्रीरामभद्रजूके साथ ही श्रीगणेशजीको नमस्कार किया गया है।

विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय
लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय ।
नागाननाय श्रुतियज्ञविभूषिताय
गौरीसुताय गणनाथ नमो नमस्ते ॥
(श्रीसीतायज्ञ-पद्धति)

नमस्ते ब्रह्मरूपाय विष्णुरूपाय ते नमः ।
नमस्ते रुद्ररूपाय करिरूपाय ते नमः ॥
(श्रीरामयज्ञ-पद्धति)

—इन मन्त्रोंद्वारा श्रीसीताराम-युगलप्रभुके महायज्ञार्चन-के अवसरपर भी श्रीगणेशजीकी आदरपूर्वक पूजा तथा प्रार्थना की जाती है ।

गणेशं पार्वतीं शम्भुं सूर्यं विष्णुं सनातनम् ।
मारुतिं नारदं नत्वा वाल्मीकिं कविपुंगवम् ॥
(वाल्मीकीय काव्योपनिषद्—१)

यहाँपर भी सभी श्रीराम-प्रिय-परिकरोंके साथ श्रीगणेश-जीका सर्वप्रथम सादर स्मरण किया गया है ।

नित्यं नौमि गुरुं गणेश्वरमजं देवीं तथा भारतीं
शेषं चैव तथा शिवं कपिवरं व्यासं च कुम्भोद्भवम् ।
वाल्मीकिं च सुरर्षिमेव सगुरुं तीर्थं सरय्वादिकं
साकेतादिपुराणि रामचरणध्यान्तःपुरानन्ददम् ॥
(श्रीमद्रामपवनात्मजचतुर्दशरहस्य—८)

इस वन्दनामें भी सर्वप्रथम श्रीगणेशजीकी ही गणना की गयी है ।

श्रीसीता रघुनायकश्च गिरिजा शम्भुर्गणेशस्तथा
नन्दी षण्मुखलक्ष्मणौ च भरतः कंजोद्भवः शत्रुहा ।
सर्वे ते मुनयः सुराश्च दितिजास्तीर्थानि नद्यो नदा
दिक्पालाः शशिभास्करौ च हनुमान् कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥
(आनन्दरामायण-विवाहकाण्ड—४ । १)

श्रीदाशरथि रामभद्रजूके साथ राजकुमारोंके विवाह-प्रसङ्गमें आशीर्वादात्मक मङ्गलाचरण करते हुए 'मंगलभवन अमंगल हारी' श्रीसीताराम एवं श्रीगौरीशंकरके साथ ही 'श्रीगणेशजी भी आपका मङ्गल करें', ऐसी शुभ कामना की गयी है ।

अर्वाचीन श्रीरामानन्दीय-श्रीवैष्णव-संत-साहित्यकारोंमें कवि-कुल-सम्राट्, श्रीराम-भक्त-शिरोमणि श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजसे लेकर अद्यावधि-पर्यन्त श्रीरामोपासक संत-साहित्यकारोंके श्रीगणेश-सम्बन्धी वचनोंका संकलन यदि किया जाय तो लेखका कलेवर अतिवृहत् हो जायगा । अतः उसमेंसे यत्किंचित् ही उदाहरण पाठकोंके आत्मतोषार्थ दिये जा रहे हैं—

जो सुमिरत सिधि होइ गननायक करिबर बदन ।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभगुन सदन ॥
(रामचरितमानस १ । १)

'गाइये गनपति जगबंदन ।' (विनयपत्रिका १)

इतना ही नहीं, उन्होंने लोक-मर्यादा-संरक्षणार्थ अपने परमाराध्य भगवान् श्रीराम तथा परमाराध्या जगज्जननी श्रीजनकनन्दिनीजू एवं श्रीरामचरितमानसके, अन्यान्य विशिष्ट पात्रोंद्वारा भी समयानुसार श्रीगणेशजीका स्मरण-पूजन-प्रार्थनादि करवाया है, जो श्रीतुलसी-साहित्यके मर्मज्ञोंको सुविदित ही है ।

श्रीसीताराम-रहस्योपासक, रसिकशिरोमणि तथा श्रीराम-चरितमानसके सम्माननीय सर्वप्रथम टीकाकार श्रीस्वामी करुणासिन्धुजी महाराजने अपने रहस्य-ग्रन्थकी वन्दनामें भी श्रीगणेशजीका अभिवन्दन किया है—

श्रीगनेस, श्रीसंभु, ब्रह्मश्री, सरस्वतीश्री ।
श्रीसुरसरि, श्रीगौरि, चंद्र श्रीसूर्य, यतीश्री ॥
(रसमालिका—१)

अनन्य श्रीरामोपासक संत श्रीरघुनाथदासजी 'रामसनेही' ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'विश्रामसागर' में श्रीगणेशजीके प्रति क्या ही सुन्दर भाव व्यक्त किया है—

एकरदन करिबदन सदन सुख के, दुखनासक ।
ईसतनय गन ईस, सीस रजनीस-प्रकासक ॥
ऋद्धि-सिद्धि-बुधि देत, लेत हरि कुमति न जागत ।
जो सुमिरै मन लाय, विघ्न ता जन के भागत ॥
जय-जय गनेश गिरिजासुवन, भुवन त्रिदित जस अघहरन ।
'रघुनाथदास' बंदन करत बार-बार गनपति-चरन ॥

श्रीसीतारामजीकी अन्तरङ्ग निष्ठामें रस-मग्न संत, जिन्होंने अपने भौतिक पुरुष-शरीरका भी बादशाही परीक्षाके समय अपूर्वभावनामय दिव्य सखीस्वरूपमें दर्शन कराया था, ऐसे विलक्षणभावुक श्रीबालाअलीजीने भी अपनी 'ध्यानमञ्जरी'में श्रीगणेश-वन्दना करना नहीं छोड़ा—

श्रीरघुबर गुरुचरन तरन भवसागर जल के ।
बिघ्नहरन सुख-खानि, दानि बिद्या-बुधि-बल के ॥

श्रीयुगल-नाम-लीला-धाम तथा स्वरूपके अनन्योपासक, जिन्होंने चौरासी लक्ष योनियोंसे जीवोंको विमुक्त करनेहेतु चौरासी सद्ग्रन्थोंकी रचना की है तथा शयनावस्थामें भी जिनकी वाणीसे श्रीसीतारामनाम-ध्वनि होती थी, ऐसे परम-भावावेदी, रसिकाग्रणी, संतशिरोमणि श्रीस्वामी युगलानन्य-शरणजी महाराजने अपने ग्रन्थोंमें श्रीगणेशजीके प्रति भाव व्यक्त किये हैं—

श्रीगौरीस-सुवन सरस, सदन सुमति गुन-ऐन।
मंगलकरन सुचरन नित, नमो मयन मद मैन॥

(श्रीसीतारामनामप्रताप-प्रकाश)

श्रीसुषमा-सुद-मोद-निधि, मच विधि रिधि-सिधि-दानि।
बंदौं बेध विचित्र बरदायक गुन-गुनखानि॥

(उज्ज्वल-उत्कण्ठा-विलास)

श्रीमिथिला-रस-रसिक, मधुर-भाव-विभोर संत श्रीप्रधान कविजीने भी अपने ग्रन्थोंके मङ्गलाचरणमें श्रीगणेशजीकी वन्दना की है—

जय गनपति गिरिजा गिरिजापति, जयति सरस्वतिमाता।
जय गुरुदेव केसरीनंदन, चरन-कमल सुखदाता॥

(रामकलेवा-रहस्य)

जय गनेश गिरिजा महेस जय, जय भारती-भवानी।
जय सियराम भगत रिपुसूदन, लखनलाल सुखदानी॥

(रामहोरी-रहस्य)

संत-भगवन्तमें अनन्य निष्ठा एवं अटूट विश्वास रखनेवाले, जिनके लिये भक्तवत्सल भगवान्‌ने स्वयं पहरेदारका कार्य किया तथा श्रीसरयू महारानीने अपने विमल जलको ही दिव्य घृत बनाकर संत-सेवार्थ जिन्हें समर्पण किया, ऐसे महात्मा श्रीस्वामी रघुनाथदासजी महाराजने भी श्रीगणेश-वन्दना की है—

'श्रीगुरु-प्रताप उर आनि कैं, प्रथम पद बंदन करौं—
गननायक बिनायक को॥'

(हरिनाम-स्मरणिका)

श्रीसीताराम-लीला-रस-केलि-निरन्तर-निमग्न-रसिक-संत श्री-ज्ञानाअलीजी महाराजने भी, जिनके प्रेम-रस-भरे पदोंका श्रवण-मनन करते ही रसिकोंका मन दिव्य भावनामें मग्न हो जाता है, श्रीगणेशजीका सप्रेम स्मरण किया है—

श्रीयानी गौरीसपद, गनपति कविवर सेस।
वालमीक आदिक अमित, तिन सों लहि उपदेस॥

(श्रीसियवरकेलि-पदावली)

समस्त श्रीतुलसी-साहित्यके विलक्षण टीकाकार श्रीवैज-नाथजीने भी श्रीगणेशजीका मङ्गलमय वन्दन किया है—

श्रीसीतापति पद सुमिरि, श्रीगुरुचरन मनाय।
विघ्नहरन गननाथ-पद मंगल-मोद-निकाय॥

(श्रीअनुभावशतक)

श्रीसीताराम-परतत्त्व-प्रकाशक, स्नेह तथा वैराग्यके सजीव सद्विग्रह, वेद-वेदान्त एवं तन्त्र-विद्याके प्रकाण्ड पण्डित श्रीमन्मैथिली-पद-पद्म-पराग-मानस-मधुप श्रीकाष्ठ-जिह्व—श्रीदेवस्वामीजीने तो श्रीगणपतिको श्रीराममन्त्रका मूर्तिमान् स्वरूप ही माना है—

मंत्रमय गनेस विघ्नहरन सदा गाइये।
प्रथम जाहि गाय-गाय सकल सिद्धि पाइये॥
मंत्र को सरूप सोई गजमुख ठहराइये।
मंत्रभाग चारिभुजा भालचंद्र ध्याइये॥
अंकुस-सी दूब ज्ञानरूप सो बढ़ाइये।
मदहर सिंदूर सीस मोदक फल भाइये॥
भक्तमान एकदंत केवल सुखदाइये।
देव-देव भक्तन के मानस में आइये॥

(वैराग्य-प्रदीप—१)

एवंविध अन्यान्य श्रीरामभक्त कवियोंने भी अपनी भव्य भावनाद्वारा श्रीगणेशजीका स्मरण-कीर्तन किया है—

एकरदनवारे सुमिर, बंदि जुगलपद-कंजु।
गिरिजा सुअन करहु मम पूर्न मनोरथ मञ्जु॥

(रामशिरोमणि)

गनपति-गो-द्विज-सारदा, महि-मुनि-देव-दिनेस।
बिधि-ससि-सुरसरि, मातु-पितु-नारद-उमा-महेस॥

(श्रीसीतारामीय-प्रथम पुस्तक)

प्रनवौं गनपति चरन हमेसा॥
जिनकी कृपा बिघ्न सब नासे—
छूटत कठिन कलेसा॥
'कंचनकुवँरि' कृपा करि दीजै—
सिय-पिय-प्रेम-परेसा॥'

(कञ्चनकुसुमाञ्जलि)

सब बिघ्नहर गननाथ सारद, गिरिसुता हर ध्याइ कैं।
भगवत् सरूप समस्त-साधुन के चरन चित लाइ कैं॥
सियरामपद-पंकज-मधुप सब भक्तवृन्द मनाइ कैं।
सियराम-प्रेम-प्रवाह बरनौं गुरु-चरन सिर नाइ कैं॥'

(श्रीसीताराम-प्रेम-प्रवाह)

धूम्रकेतु संकर-सुअन, सिद्धिसदन-गननाथ।
कृपा करिय मंगलकरन, नावौं तव पद माथ॥
(गणेशचालीसा)

राजस्थानके श्रीराम-रसभरित, अमृतमय काव्यप्रणेता श्रीअमृतलालजी माथुरने अपने 'श्रीमद्-राम-रसामृत' काव्यमें श्रीगणेशजीकी क्या ही सुन्दर वन्दना की है—

सुमति-भरन, मंगल-करन, सुमरन हरन-अकाज।
विजय, सुजस, सुख-संचरन, नमो चरन गनराज॥
(अमृतसतसई ९)

अन्तमें श्रीमिथिला-रस-मोद-प्रमोद-भरित, श्रीसीताराम-विवाहोत्सवमें परमानन्द-रस-लहरी लहरानेवाले, अनन्य-अन्तरङ्ग-भावना-विभोर भावुक भक्त श्रीमोदलताजीके द्वारा श्रीमिथिलेशराजकिशोरीजीकी परमप्रिय मातृभाषा-मैथिलीमें सुरचित श्रीराम-नाम-निष्ठा, परिक्रमाके प्रचण्ड प्रताप एवं अपने अनन्य आत्मविश्वासका दिग्दर्शक तथा श्रीगणेश-गुण-गानपरक एक मधुर पद देकर हम इस लेखको समाप्त करते हैं—

ऐ उमा, अहाँक नन्दन।
देखते-देखते भेला जगत-वंदन॥
सुनितहि नामक निष्ठा कएलनि,
दए परदच्छिन कलिकए धएलनि;
ताहिसँ भए गेलनि,
गनाधिप-विघ्नबाधा-निकन्दन ॥ १ ॥
कनि हमरा पर दृष्टि करथु,
हियमें भव्य-भाव भरथु,
झटदै हरथु सकल,
भ्रम-भेदक फंदन ॥ २ ॥
किछु चाहैं छी प्रभु-गुन-गावक,
कहिऔन 'मोद'क उर में आवक;
सत्पथ दरसावक,
नसावक द्वन्द ॥ ३ ॥

योगसाधनामें श्रीगणेशका स्वरूप-चिन्तन

अनन्त, अखण्ड, अव्यक्त, परम ज्योतिःस्वरूप तथा सर्वेश चिन्मय परमात्माकी सर्वव्यापिका अनुभव अथवा बोध ही 'योग' है। इस आध्यात्मिक रहस्यका परिशीलन भगवत्कृपा तथा सत्सङ्गसे ही सहज सम्भव है। श्रीगणेशजीको षट्चक्र-साधनायोगका आधार स्वीकार किया गया है। वे मूलाधार-चक्रमें संस्थित रहते हैं। इसी मूलाधार-चक्रसे कुण्डलिनीको जगानेकी साधना आरम्भ होती है। मूलाधारसे निम्न भागमें गोलाकार वायुमण्डल है। उसमें वायुका बीज 'यं'कार स्थित है। उस बीजसे वायु प्रवाहित होती है। उससे ऊपर अग्निका त्रिकोणमण्डल है। उसमें अग्निके बीज 'रं'कारसे आग प्रकट होती है। वायु तथा अग्निके साथ मूलाधारमें स्थित कुल-कुण्डलिनी सोयी हुई सर्पिणीके आकारवाली है। वह स्वयम्भूलिङ्गको आवेष्टित करके सोती है। उसे जगाकर ब्रह्मरन्ध्रतक ले जाया जाता है तथा वहाँके अमृतमें निमग्नकर आत्मचिन्तन किया जाता है, ऐसा वर्णन नारदपुराणके पूर्व-भागके ६५वें अध्यायमें मिलता है। मूलाधारचक्र—आधारपद्मका ध्यान करनेपर योगीका पाप-समूह नष्ट हो जाता है।

मूलपद्मं यदा ध्यायेद् योगी स्वयम्भूलिङ्गकम्।
तदा तत्क्षणमात्रेण पापौघं नाशयेद् ध्रुवम्॥
(शिवसंहिता ५। ९६)

दूसरा चक्र स्वाधिष्ठान है। स्वाधिष्ठान-कमलके ध्यानसे योगी दिव्य सौन्दर्यसे सम्पन्न हो उठता है। तीसरे मणिपूर-चक्र-कमलके ध्यानसे योगीकी सारी इच्छाएँ पूर्ण होती हैं। वह शोक-रोगपर विजय पाता है। अनाहतचक्र-कमल चौथा है; इसके ध्यानसे योगी त्रिकालज्ञ होता है। पाँचवें विशुद्ध-चक्र-कमलके ध्यानसे वह वेदज्ञ बन जाता है। इस चक्रका ध्यानी जब क्रोधयुक्त नेत्रसे विश्वको देखता है, तब त्रिलोकीको प्रकम्पित कर देता है। छठे आज्ञाचक्र-कमलके ध्यानसे योगी साक्षात् विश्वनाथका दर्शन करता है और दुःख-शोकसे परे हो जाता है—

'पुमान् परमहंसोऽयं यज्ज्ञात्वा नावसीदति॥'
(शिवसंहिता ५। १३०)

योगी उपर्युक्त चक्र-कमलोंका ध्यान करते हुए ब्रह्मरन्ध्रमें स्थित सहस्रार-पद्मसे प्रवाहित अमृतका पान करता है। यह दिव्य सहस्रार-पद्म मुक्ति प्रदान करता है। इसका नाम 'कैलास' है। कुण्डलिनी—जीवशक्तिको जाग्रत् करते हुए आत्मा-चैतन्य जीव इस कैलासमें शिवका साक्षात्कार कर अमरपदमें प्रतिष्ठित हो जाता है—

अत ऊर्ध्वं दिव्यरूपं सहस्रारं सरोरुहम्।
ब्रह्माण्डाख्यस्य देहस्य बाह्ये तिष्ठति मुक्तिदम्॥

कैलासो नाम तस्यैव महेशो यत्र तिष्ठति ।

(शिवसंहिता ५ । १९६-१९७)

मूलाधारचक्रमे चार दलका कमल है, जो बन्धूक-पुष्पके समान लाल है। उसके चारो दलोंमें (व, श, ष, स) अक्षर अङ्कित हैं। उसमे अपनी शक्तिके साथ मूषकवाहन गणेशजी विद्यमान हैं। वे चारों हाथोंमे क्रमशः पाश, अङ्कुश, सुधापात्र और मोदक लेकर उल्लसित हैं—

मूलाधारे वादिसान्तबीजयुक्ते चतुर्दले ।
बन्धूकाभे स्वशक्त्या तु सहितायाखुगाय च ॥
पाशाङ्कुशसुधापात्रमोदकोल्लासपाणये ।

(नारदपुराण, पूर्व०, तृ० ६५ । ८१-८२)

निष्कर्ष यह है कि मूलाधारचक्रमे स्थित गणेशके पाद-पद्ममे यौगिक साधनाका समारम्भ कर योगी षट्चक्रोंका भेदन कर सहस्रार—कैलासके शिवका साक्षात्कार कर परम पदमे स्थित हो जाता है। योगसाधनाके आधार मूलाधारस्थ श्रीगणेश हैं—

श्रीगणेशजी पूर्णानन्द, परानन्द, पुराण-पुरुषोत्तम साक्षात् परब्रह्म परमात्मा है—

'पूर्णानन्दः परानन्दः पुराणपुरुषोत्तमः ॥'

(गणेशपु० २ । १५ । १०३)

उनमे योगस्थ होनेपर जीवात्माकी समस्त मायिक भ्रान्तियो और प्रपञ्चोंका अन्त हो जाता है। वे अव्यक्त हैं, परम ज्योतिःस्वरूप हैं एवं मायासे अतीत हैं। उनके योगध्येय रूपका तात्त्विक विश्लेषण गणेशपुराणके उत्तरखण्ड (३१ । १४-१५) मे मिलता है।

श्रीगणेशजी चिदानन्दस्वरूप और वेदोंके भी अगोचर हैं। वे निर्गुण और परब्रह्मस्वरूप योगप्रतिपाद्य परम तत्त्व हैं। उनकी संस्तुति है—

परब्रह्मस्वरूपाय निर्गुणाय नमो नम. ।
चिदानन्दस्वरूपाय वेदानामप्यगोचरः ॥

(गणेशपु० २ । ३७ । ४)

योगकी साधनाभूमिपर श्रीगणेशजी सत्, असत्, व्यक्त, अव्यक्त—सब कुछ हैं। ब्रह्माकी उक्ति है—

'सदसद् व्यक्तमव्यक्तं सर्वं हि गणनायकः ॥'

(गणेशपु० १ । १२ । ९)

श्रीगणेशजी इच्छा, ज्ञान, क्रिया—तीनों शक्तियोंमे व्याप्त हैं। वे मूलाधारचक्रमे स्थित हैं—

'त्वं मूलाधारस्थितोऽसि नित्यम्। त्वं शक्तित्रयात्मक. । त्वां योगिनो ध्यायन्ति नित्यम्।'

(गणपत्यथर्वशीर्षोपनिषद् ६)

सृष्टिके आदिमे आविर्भूत प्रकृति और पुरुषसे परे श्रीगणेशजीका जो नित्य ध्यान करता है, वह योगी सब योगियोंमे श्रेष्ठ है—

आविर्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात् परम् ।
एवं ध्यायति यो नित्यं स योगी योगिनां वरः ॥

(गणपत्युपनिषद्)

मूलाधारचक्रमे योगियोंद्वारा गणेशका ध्यान किया जाता है। यह चक्र चार दलोसे युक्त कमल है। इसका स्वर्ण-वर्ण है—

किं च हेमनिभे चक्रे मूलाधारे चतुर्दले ।
गणेशोऽस्ति······························॥

(शंकरदिग्विजय धनपतिसूरिकृत टीका १५ । ३५०)

मूलाधारचक्रकी स्थिति और उसमे संस्थित इष्ट देवता श्रीगणेशका वर्णन प्रसिद्ध अघोरी संत बाबा कीनारामने भी किया है—'गणेशजीका वर्ण अरुण है, उनका ध्यान और दर्शन करनेवाला पण्डित—ज्ञानी हो जाता है—

मूलचक्र वश गूद मझारा। चारि पत्र जनु अगिनि अँगारा ॥
ताहि कमल महँ योनि तृकोना। ता महँ पुरुष वसे गहि मौना ॥
'रा' अक्षर जस दीपक जोती। तेहि महँ पुरुष कान्ति उद्योती ॥
नाम गणेश अरुण तन सोई। ताहि लखत बड़ पण्डित होई ॥
मानसिक पूजा तहवाँ कीजै। लड्डुवा धूप गणेशहि दीजै ॥

(पोथी विवेकसार)

संत गरीबदासजीकी उक्ति है—

'मूलचक्र गनेस बासा रक्त बरन जहँ जानिये ।'

श्रीगणेशजी योगियोंके हृदयमे सदा अधिष्ठित रहते हैं। आचार्य शंकरकी उक्ति है कि 'जिनकी दन्तकान्ति अत्यन्त रमणीय है, जिनका रूप अचिन्त्य है, जिनका अन्त नहीं है, जो योगियोके हृदयमें सदा अधिष्ठित हैं, मैं उन प्रणवस्वरूप, मृत्युंजयनन्दन, विघ्नविनाशक एकदन्त श्रीगणेशजीका चिन्तन करता हूँ'—

नितान्तकान्तदन्तकान्तिमन्तकान्तकात्मजं
अचिन्त्यरूपमन्तहीनमन्तरायकृन्तनम् ।

हृदन्तरे निरन्तरं वसन्तमेव योगिनां
तमेकदन्तमेव तं विचिन्तयामि संततम्॥

(श्रीगणेशपञ्चरत्न ५)

योगिराज निवृत्तिनाथके शिष्य बालयोगीश्वर महात्मा ज्ञानेश्वरने ज्ञानेश्वरीके पहले अध्यायमें अखिल विश्वके मूल बीज ओंकारस्वरूप गणेशजीकी यों वन्दना की है—'गणेशजीके दोनों चरण 'अकार' हैं, विशाल उदर 'उकार' है और मस्तकका महामण्डल 'मकार' है। अकार, उकार और मकार—इन तीनोंके योगसे ओंकार होता है, जिसमें सारा शब्द-ब्रह्म समाविष्ट है। मैं सद्गुरुकी कृपासे अखिल विश्वके मूल बीज—गणेशजीको नमस्कार करता हूँ'—

अकार चरणयुगुल । उकार उदर विशाल ॥
मकार महामंडल । मस्तकाकारें ॥
हे तिन्ही एकवटले । तेथें शब्दब्रह्म कवळलें ॥
तें मियां गुरुकृपा नमिलें । आदिबीज ॥

(ज्ञानेश्वरी १ । १९-२०)

श्रीगणेशजी अनादिकालसे ही बड़े-बड़े योगीश्वरोंद्वारा पूज्य होते चले आ रहे हैं। गणेशपुराणके उपासना-खण्डमें योगेश्वर विष्णुद्वारा श्रीगणेशजीके प्राणायाम-पूर्वक ध्यान, मन्त्रजप तथा आराधनका विवरण उपलब्ध होता है। पृथ्वीपर सिद्धि प्रदान करनेवाले भगवान् विष्णुने सिद्धिक्षेत्रमें घोर तप किया। उन्होंने षडक्षर-मन्त्रका जपकर विधिपूर्वक श्रीगणेशजीका ध्यान किया। यत्नपूर्वक इन्द्रियोंको अपने वशमें कर गणेशजीकी आराधना की। चित्तको प्रसन्न करनेवाली आवाहन आदि मुद्राओंसे पूजा कर योगेश्वर विष्णुने परम मन्त्रका जप किया—

प्राणानायम्य मूलेन ध्यात्वा देवं गजाननम्।
आवाहनादिमुद्राभिः पूजयित्वा मनोमयैः॥
द्रव्यैर्नानाविधैश्चैव षोडशैश्चोपचारकैः।
जजाप परमं मन्त्रं विष्णुर्योगीश्वरेश्वरः॥

(गणेशपु० १ । १८ । ६-७)

योगियोंके परमाराध्य भगवान् योगेश्वर शिवकी दृष्टिमें लीला विग्रहधारी, स्वयं-प्रकाश श्रीगणेशजी त्रिगुणातीत परात्पर परमात्मा हैं। वे शुद्ध सत्त्वमय, समस्त जीवोंके ईश्वर भुवनेश्वर हैं। वे ही पार्वतीके पुत्ररूपमें प्रकट हुए हैं। भगवान् शिवकी पार्वतीके प्रति उक्ति है—

लीलाविग्रहवानेषः स्वप्रकाशो गुणातिगः।
शुद्धसत्त्वमयः सर्वजीवेशो भुवनेश्वरः॥
परमात्मा गुणातीतः पुत्रतां ते समागतः॥

(गणेशपुराण २ । ८२ । ५, ८)

हिमाचलके प्रासादमें विवाहके समय मण्डपमें विराजित योगिराज शिवने जगदम्बा पार्वतीके साथ मुनियोंके आदेशसे गणपतिका पूजन किया था। नानापुराणनिगमागमसम्मत रामचरितमानसमें गोस्वामी तुलसीदासजीकी उक्ति है—

मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि।
कोउ सुनि संसय करै जनि सुर अनादि जियँ जानि॥

(मानस १।१००)

अनादि, अनन्त, विश्वरूपी एवं सर्वविघ्ननिवारक ये श्रीगजानन देव ही सबके लिये सदा पूज्य हैं।

अनादिनिधनो देवो जगद्रूपी गजाननः॥
अयमेव सदा पूज्यः सर्वविघ्ननिवारणः।

(गणेशपु० २ । १२५ । २०-२१)

गणेशजी योगियोंके परमाराध्य स्वीकार किये जाते हैं। उनकी ही वाणीमें संयोजित 'श्रीगणेशगीता' योगमार्गप्रकाशिनी कही गयी है। इसमें कर्म, भक्ति और ज्ञानके तत्त्वका अत्यन्त समीचीन विश्लेषण किया गया है।

यह योगमार्गप्रकाशिका गीता श्रीगणेशजीके वचनामृतका सागर है। इसके भाष्यकार महामति नीलकण्ठकी स्वीकृति है; आरम्भमें ही निवेदन है—

क गणनाथवचोऽमृतसागरो जडतरा मम बुद्धिरियं क वा।
तदपि तं गुरुलक्षणपादुकातरणिसंश्रयणेन तितीर्षति॥

'कहाँ तो गणेशवचनामृतका सागर और कहाँ मेरी यह अत्यन्त जड बुद्धि; तथापि गुरुपादुका रूप नौकाका सहारा लेकर यह उसके पार जाना चाहती है।'

श्रीव्यासजीकी सूतके प्रति उक्ति है कि 'मैं योगमार्गप्रकाशिका 'गणेशगीता'का वर्णन करता हूँ, जिसका राजा वरेण्यके पूछनेपर श्रीगणेशजीने कथन किया था'—

अथ गीतां प्रवक्ष्यामि योगमार्गप्रकाशिनीम्।
नियुक्ता पृच्छते सूत राज्ञे गजमुखेन या॥

(श्रीगणेशगीता १ । ४)

श्रीगणेशने राजा वरेण्यसे कहा कि 'मैं योगामृतमयी गीताका प्रवचन करता हूँ; मेरे अनुग्रहसे आपकी बुद्धि अच्छी तरह संयत है; इसे सुनिये'—

सम्यग्व्यवसिता राजन् मतिस्तेऽनुग्रहान्मम।
शृणु गीतां प्रवक्ष्यामि योगामृतमयीं नृप॥

(श्रीगणेशगीता १ । ५)

योगामृतमयीका आशय उस गीतासे है, जो ब्रह्म और

आत्माकी एकता—अभिन्नताका प्रतिपादन करती है। उपर्युक्त श्लोकके भाष्यमे महामति नीलकण्ठका स्पष्टीकरण है—

'कीदृशीं योगामृतमयीम्। ब्रह्मात्मैक्यप्रतिपादकं शास्त्रं तत्प्रधानम्।' गणेशगीतामे योग वही है, जिसके द्वारा ज्ञानी संसारसे विरक्त होते हैं। जीवन्मुक्त होकर ब्रह्मानन्दपदमे लीन हो ज्ञानयोगी हृदयमे स्थित परब्रह्मका दर्शन करते हैं। वे योगसे वशीभूत चित्तमे परब्रह्मका ध्यान करते हैं और सम्पूर्ण प्राणियोंको आत्मवत् समझते हैं—

ध्यायन्तः परमं ब्रह्म चित्ते योगवशीकृते।
भूतानि स्वात्मना तुल्यं सर्वाणि गणयन्ति ते॥
(श्रीगणेशगीता १। १६)

गणेशजी योगसाधनाकी पद्धति यों प्रकट करते हैं कि 'योगीको उचित है कि वह मनसे समस्त कर्मोंका त्याग कर सुखसे जीवन-यापन करे'—

'मनसा सकलं कर्म त्यक्त्वा योगी सुखं वसेत्।'
(श्रीगणेशगीता ४। १२)

उपर्युक्त श्लोकके भाष्यमें नीलकण्ठका कथन है—

'योगी—यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधिरूपैरष्टभिरङ्गैर्युक्तो योगोऽस्यास्तीति योगी। अतएव मनसा सह सकलं कर्माहं ब्रह्मेतिवाक्यार्थानुसंधानमपि त्यक्त्वा निर्बीजसमाधिस्थः सम्मुखमखण्डानन्दमनुभवन् वसेत्।'

गणेशजीने सुखकी व्याख्यामे कहा कि 'जो अपनी आत्मामे रमण करते हैं और कहीं भी आसक्त नहीं हैं, वे ही आनन्दका भोग करते हैं; यही अविनाशी सुख है, विषयोंमे सुख नहीं। जो योगी मुझ परमात्मामे ही रमण—सुख-आनन्दका अनुभव करते हैं, वे जीवन्मुक्त हैं। देह रहते भी वे अदेह अथवा विदेह हैं। ऐसे योगी तीनो लोकोंमें ब्रह्मादिको तथा देवताओंके वन्दनीय हैं'—

आनन्दमश्नुतेऽसक्तः स्वात्मारामो निजात्मनि।
अविनाशि सुखं तद्धि न सुखं विषयादिषु॥
जीवन्मुक्तः स योगीन्द्रः केवलं मयि संगतः।
ब्रह्मादीनां च देवानां स वन्द्यः स्याज्जगत्त्रये॥
(श्रीगणेशगीता ४। २१; ५। १८)

निस्संदेह योगप्रतिपाद्य श्रीगणेश परम शक्ति—चिन्मय ज्योति हैं। वे आकाश और वायुरूप हैं, विकारोंके आदि-कारण, कला और कालके उत्पत्ति-स्थान हैं, अनेक क्रिया और शक्तिके स्वरूप हैं—

प्रकाशस्वरूपं नभोवायुरूपं
विकारादिहेतुं कलाकालभूतम्।
अनेकक्रियानेकशक्तिस्वरूपं
सदा शक्तिरूपं गणेशं नमामः॥
(गणेशपुराण, उपा० १३। ११)

निस्संदेह—गणेशजी योगियोंके परम ध्येय हैं। वे योगशास्त्रके तत्त्वज्ञ और योगप्राप्य ब्रह्म हैं।

—रामलाल

श्रीगणेश—ऐश्वर्यदाता एवं संरक्षक

दोर्द्योतद्दन्तखण्डः सकलसुरगणाडम्बरेषु प्रचण्डः सिन्दूराकीर्णगण्डः प्रकटितविलसच्चारुचान्द्रीयखण्डः।
गण्डस्थानन्तघण्डः स्मरहरतनयः कुण्डलीभूतशुण्डो विघ्नानां कालदण्डः स भवतु भवतां भूतये वक्रतुण्डः॥

जिनके एक हाथमे दाँतका खण्ड (टुकड़ा) उद्दीप्त हो रहा है, जो समस्त देवगणोंकी मण्डलीमे प्रचण्ड हैं, जिनके गण्डस्थलमें सिन्दूरका रंग फैला हुआ है, भालदेशमें प्रकट मनोहर चन्द्रखण्ड शोभा पाता है, कपोलोंपर अनन्त भ्रमर मँडरा रहे हैं, जिन्होंने अपने शुण्डको कुण्डलाकार (गोल) कर लिया है तथा जो विघ्नोंके लिये कालदण्ड हैं, वे कामारि शिवके पुत्र वक्रतुण्ड आपलोगोंके लिये कल्याणकारी एवं ऐश्वर्यदाता हों।

विघ्नध्वान्तनिवारणैकतरणिर्विघ्नाटवीहव्यवाड् विघ्नव्यालकुलाभिमानगरुडो विघ्नेभपञ्चाननः।
विघ्नोत्तुङ्गगिरिप्रभेदनपविर्विघ्नाम्बुधौ वाडवो विघ्नाघौघघनप्रचण्डपवनो विघ्नेश्वरः पातु वः॥

वे विघ्नेश्वर आपलोगोंकी रक्षा करें, जो विघ्नान्धकारका निवारण करनेके लिये एकमात्र सूर्य हैं, विघ्नरूपी विपिनको जलाकर भस्म करनेके लिये दावानलरूप हैं, विघ्नरूपी सर्पकुलके अभिमानको कुचल डालनेके लिये गरुड हैं, विघ्नरूपी गजराजको पकड़ खानेके लिये सिंह हैं, विघ्नोंके ऊँचे पर्वतका भेदन करनेके लिये वज्र हैं, विघ्न-समुद्रके लिये वड़वानल हैं तथा विघ्न एवं पाप समूहरूपी मेघोंकी घटाको छिन्न-भिन्न करनेके लिये प्रचण्ड पवन हैं।

श्वेताम्बर जैन-कवियोंद्वारा श्रीगणेशका स्मरण

(लेखक—श्रीभँवरलालजी नाहटा)

जैन-धर्म भारतका प्राचीन धर्म है। उसके प्रमुख दो सम्प्रदाय हैं—१—श्वेताम्बर और २—दिगम्बर। इनमेंसे दिगम्बर सम्प्रदायवाले काफी कट्टर रहे हैं, अतः उनके यहाँ तो श्रीगणेश-सम्बन्धी कोई सामग्री नहीं मिलती। बाबू श्री-सम्पूर्णानन्दजीकी 'गणेश' नामक पुस्तकके नवें अध्यायमें पं० श्रीकैलासचन्द्रजी शास्त्रीकी सूचनाके अनुसार यह उल्लेख किया गया है कि जैन-धर्ममें जिनेन्द्र भगवान्‌को ही 'गणेश' और 'विनायक' कहते हैं। इसके अतिरिक्त इस नामके किसी पृथक् देवका उल्लेख नहीं मिलता। विवाहके समय विनायक-यन्त्रकी पूजा की जाती है। उस अवसरपर जो श्लोक पढ़े जाते हैं, उनमेंसे दो श्लोक नीचे दिये जा रहे हैं—

गणानां मुनीनामधीशस्त्वतस्ते गणेशाख्यया ये भवन्तं स्तुवन्ति।
सदा विघ्नसंदोहशान्तिर्जनानां करे संलुठत्यायतश्रेयसानाम्॥
यतस्त्वमेवासि विनायको मे दृष्टेष्टयोगानवरुद्धभावः।
त्वन्नाममात्रेण पराभवन्ति विघ्नारयस्तर्हि किमत्र चित्रम्॥*

श्वेताम्बर-सम्प्रदायमें गणेशजीके समान ही गजमुखवाले पार्श्वयक्षकी कई प्रतिमाएँ जैन-मन्दिरोंमें प्रतिष्ठित हैं। इससे कई बार लोगोंको भ्रम भी हो जाता है कि गणेशजीकी मूर्ति जैन-मन्दिरोंमें कैसे? पर वास्तवमें २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ-का अधिष्ठायक शासनदेव श्वेताम्बर-ग्रन्थानुसार वे पार्श्वयक्ष ही हैं।

यद्यपि श्वेताम्बर विद्वान् और कवियोंने अपनी रचनाओंके मङ्गलाचरणमें प्रायः तीर्थंकरों, गौतमगणधर एवं विशेषतः सरस्वती आदिका ही स्मरण किया है, पर कई कवि ऐसे भी हुए हैं, जिन्होंने विघ्नविनाशक गणेशजीकी लोक-प्रसिद्धिके कारण अपनी रचनाओंके मङ्गलाचरणमें श्रीगणेशजीको नमस्कार और उनका स्मरण किया है। ऐसे कुछ कवियोंके मङ्गलाचरणके श्रीगणेश-सम्बन्धी पद्य नीचे उद्धृत किये जा रहे हैं, जिनसे श्वेताम्बर कवियोंकी उदार भावना और समन्वयवृत्तिका परिचय मिल जाता है।

१—सं० १५६५में उदयभानुरचित 'विक्रमसेन रास'के प्रारम्भमें—

संभु शक्ति मनिधरी, करिसि कवि नव नवइ छंदि।
सिद्धि बुद्धिवर विघनहर, गुण निधान गणपति प्रसादि॥

२—सं० १५७५में अमृतकलशरचित 'हमीर-प्रबन्ध'के प्रारम्भमें—

गवरीपुत्र गजवदन विशाल, सिद्धि बुद्धि वर वचन रसाल।
सुर-नर-किंनर सारइं सेव, धुरि प्रणमूं लम्बोदर देव॥

३—सं० १६४५ कवि हेमरत्नरचित 'गोरा बादल चौपाई'के प्रारम्भमें—

सकल सुखदायक सदा सिद्धि बुद्धि सहित गणेश।
विघन विडारण रिध करण, पहिली तुझ प्रणमेश॥

४—सं० १७७२ में दलपतिविजयरचित 'खुम्माण रासो'के प्रथममें—

शिव सुत सुंढालो सजल, सेवे सकल सुरेश।
विघन विडारण वरदीयण, गवरी-पुत्र गणेश॥

भृकुटिचंद भलहले गंग झलहले समुज्जल
एकदंत उज्जलो, सुंडल लवले रुंडगल
पुहप धूप प्रमाले, सेस सलवले जीहलल
धुम्र नेत्र प्रजले अङ्ग अकले अतुल बल
यम वले विघन छालिईअल चमर-ढलें उज्जल कमल।
सुंढाल देव रिद्ध सिद्ध दीअण, समरी दलपति भवल॥

५—सं० १७७६ मे केशरकविरचित 'चंदनमलियागिरी चौ०'के प्रारम्भमे—

विघन विडारन सुख करन आनंद अंग उल्लास।
गवरी-सुत प्रणमु धवर प्रत्यक्ष पूरो आस॥

६—सं० १६०५ पं० मतिसारके 'कपूर मञ्जरी रास' के प्रारम्भमें—

---

* आप गणों और मुनियोंके अधीश्वर हैं, अतः जो लोग 'गणेश'-नामसे आपकी स्तुति करते हैं, वे 'आयतश्रेयस' (विस्तृत कल्याणके भागी) होते हैं; उनके विघ्न-समूहोंकी शान्ति सदा उनके हाथमें लोटती रहती है। चूँकि आप ही मेरे विनायक हैं, आपका भाव प्रत्यक्ष-दृष्ट योगसे अवरुद्ध नहीं होता है; अतः यदि आपके नाम लेनेमात्रसे विघ्नरूपी शत्रु पराजित हो जाते हैं तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात है?

प्रथम गणपति वर्णवऊं गवरी-पुत्र उदार।
लक्ष लाभ जे पूरवइ, देव सविहुं प्रतिहार॥
सेवंत्रे जस मुगट भर, सींदूर सोहि सिरीर।
सिद्धि बुद्धि नउ भरतार, जे बुद्धि दातार वड वीर॥

७–सं० १६३० मे महेश्वरसूरि-शिष्यरचित 'चंपक सेन रास'के प्रारम्भमें—

'गणपति गुण निधि विनऊँ, सरस्वति करो पसाद।'

८–सं०१७३६ मे कवि लालचन्द्ररचित 'लीलावती' (गणित) भाषा बीकानेरमे रचित—

गणपति देव मनाइ कै, समरि देवि सरसत्ति।
भाषा लीलावती करूं चतुर सुनो इक चित्त॥
सोभित सिंदूर पूर, गजसीस नीके नूर,
एकदंत सुंदर विराजे भालचंद जू।
सुर कोरि कर जोरि, अभिमान दूर छोरि,
प्रणमत जाके पद पंकज अमंद जू॥
गौरी-पूत सेवे जेउ सोउ मन चिंत्यो पावे,
ऋद्धि वृद्धि सिद्धि बुद्धि होत आनंद जू।
विघन निवारै संत लोककूं सुधारै जैसे,
गणपति देव जय जय सुखकंद जू॥

९–सं० १७२० मे कवि रामचन्द्ररचित 'रामविनोद' के प्रारम्भमे—

सिद्धि-बुद्धिदायक सलहीये, गवरी-पुत्र गणेश।
विघन विडारण सुख करण, हरख धरी प्रणमेश॥

१०–सं० १७२५ के लगभग लक्ष्मीवल्लभरचित 'कालज्ञान'के प्रारम्भमे—

सकति शंभु शंभू-सुतन, धर तीनोंका ध्यान।
सुन्दर भाषा बंध करि, करिहुँ कालज्ञान॥

११–सं० १७६४ मे समरथ कवि वि० 'रसमञ्जरी' भाषाके प्रारम्भमे

सवैया—

गणेशको रूप अनूप विराजित गंडौं-स्थल मद वारि झरै।
ते पान कीयें अति मत्त भए भर गुंजित भौंर अनेक फिरैं॥
ते गुंजत ही मुखकी छवि देखि, मनों मनि नील की संक हरै।
सो देव विनायक सदा सुखदायक, तुमको नित ही सौख्य करै॥

इस तरह और भी कई ऐसी रचनाएँ हैं, जिनके मङ्गलाचरणमें श्रीगणेशजीका स्मरण किया गया है, पर उनमे अन्दर 'रासो' आदिके तो रचयिताका नाम नहीं मिलता और कइयोंके रचयिता जैन हैं या नहीं, ठीकसे पता नहीं चलता।

१६ वीं शताब्दीसे १८ वीं शताब्दीके श्वेताम्बर कवियोंके हिंदी और राजस्थानी—दोनों भाषाओके ग्रन्थोके प्रारम्भमे गणेशजीका स्मरण किया गया है। इनमेसे कई ग्रन्थ तो वैद्यक एवं गणितके हैं। वैद्यकादि ग्रन्थ तो सार्वजनिक हैं ही, अन्य कई संस्कृत एवं चरित-काव्य भी हैं, जिनकी कथाएँ भी ऐतिहासिक एवं सर्वजनोपयोगी हैं। श्रीगणेशजीके भक्त भी उन रचनाओसे लाभ उठा सकें—इस विशाल दृष्टिसे गणेशजीकी अति प्रसिद्धिके कारण ही जैन-विद्वानोंने इनका स्मरण ग्रन्थके प्रारम्भमे किया है।

स्तवन

वन्दे चन्दारुमन्दारमिन्दुभूषणनन्दनम्।
अमन्दानन्दसंदोहवन्धुरं सिन्धुराननम्॥

जो वन्दना करनेवाले भक्त-जनोंके लिये मन्दार (कल्पवृक्ष) के समान इच्छापूरक हैं, चन्द्रभूषण शिवको आनन्दित करनेवाले पुत्र हैं और अमन्दानन्दराशिसे मनोहर प्रतीत होते हैं, उन सिन्धुर वदन (गजानन) की मैं स्तुति करता हूँ।

हस्तपङ्कजनिविष्टमोदकव्याजसंचरदशेषपुमर्थम्।
नौमि किंचिदवधूनितशुण्डादण्डकुण्डलितमण्डितगण्डम्॥

जिनके चारो कर-कमलोंमे रखे हुए लड्डूके व्याजसे चारो पुरुषार्थ ही वहाँ संचार करते हैं। कुछ-कुछ हिलाये जाते हुए शुण्डदण्डका जो कुण्डलाकार रूप हैं, उससे मण्डित गण्डस्थलवाले उन गणेशजीकी मैं स्तुति करता हूँ॥

अगजाननपद्मार्कं गजाननमहर्निशम्।
अनेकदं तं भक्तानामेकदन्तमुपास्महे॥

जो गिरिराजनन्दिनी उमाके मुख-कमलको विकसित करनेके लिये सूर्यरूप हैं और भक्तोंको अनेकानेक अभीष्ट वस्तुएँ प्रदान करते हैं, उन एकदन्तधारी गजाननकी हम दिन-रात उपासना करते हैं।

जैन-मतमें गणेशका स्वरूप

(लेखक—श्रीताराचन्दजी पाण्ड्या)

'गणानाम्' (अथवा गणस्य) अर्थात् साधुगण—जनगणके ईश (नियामक या नेता) को 'गणेश' कहते हैं। आज-कलके माने गये शब्दार्थमें लोकतन्त्रके सर्वमान्य या बहुमान्य नेताको भी हम 'गणेश' मान सकते हैं। 'संघे शक्तिः कलौ युगे'—इस दृष्टिसे लोकतन्त्रका या लोकमान्यताका समर्थन प्राप्त करनेसे विघ्नोंका नाश हो जाता है।

महाभारतकी रचना तो वेदव्यासजीने अपने मनमें कर ली, लेकिन उसे लिपिबद्ध करने—बाह्यरूप देनेका कार्य गणेशजीने किया और वे बिना अर्थ समझे लिपिबद्ध करते नहीं थे। अतः ज्ञानके संकलनका कार्य भी गणेशजी करते थे।

गणेशजीके सिरपर गज-मस्तक है, अर्थात् सब तरहका ज्ञान है; लेकिन दन्त एक ही है। इसका भाव यह है कि 'ज्ञान नाना अपेक्षात्मक होनेपर भी उद्देश्य-सिद्धि तो एक अपेक्षाको ही मुख्य कर कार्य करनेसे होती है, अन्यथा अनिश्चयात्मा (संशयात्मा) नष्ट हो जाता है।' मूषकवाहन यह इंगित करता है कि 'सूक्ष्म तर्क-वितर्क करके विश्लेषण करनेसे ज्ञान प्राप्त होता है।' इसी प्रकार उनके स्वरूपके विभिन्न अङ्गों आदिके अर्थ ग्रहण किये जा सकते हैं।

जैन-धर्ममें ज्ञानका संकलन करनेवाले 'गणेश' अर्थात् 'गणधर'की मान्यता है। केवलज्ञान (सर्वज्ञता) को उपलब्ध करनेपर अरहन्त (तीर्थंकरों) का उपदेश प्रायः गणधरके निमित्तसे ही होता है—गणधर ही उसका मुख्य पात्र होता है और वे ही उस ज्ञानका बारह अङ्गों और चौदह पूर्वोंमें संकलन करते हैं। वे मति, श्रुत, अवधि (परोक्ष बातोंका सीमासहित प्रत्यक्ष ज्ञान) और दूसरेके मनकी बातोंको प्रत्यक्ष जाननेवाला मन-पर्यय-ज्ञान—इन चार प्रकारके ज्ञानवाले होते हैं। तीर्थंकर तो किसीको शिष्य बनाते नहीं, किसीको दीक्षा आदि देते नहीं हैं। तीर्थंकरोंके साथ जो साधुओंका संघ रहता है, उसके नियामक गणधर होते हैं; क्योंकि तीर्थंकर अनादि कालसे होते आये हैं और अनन्त कालतक होते रहेंगे, इसलिये गणधर भी अनादि सिद्ध हैं और अनन्त कालतक होते रहेंगे ?

जैन-मान्यताके अनुसार वर्तमान कल्पके अन्तिम तीर्थंकर श्रीमहावीरस्वामीको केवलज्ञान होनेपर उनकी 'दिव्य-ध्वनि' (उपदेश) सुननेके लिये समवशरण (दिव्य-सभा-भवन) में शचीपतिसहित देव, मनुष्य, पशु, पक्षी बैठे रहे, लेकिन योग्य पात्रके अभावमें भगवान्की दिव्य-ध्वनि ६२ दिनोंतक नहीं खिरी। शचीपति इन्द्र इसका कारण विचारकर उस कालके महाविद्वान् एवं पाँच सौ शिष्योंवाले इन्द्रभूति गौतमको श्रीमहावीरस्वामीसे शास्त्रार्थ करनेके बहानेसे ले आये। समवशरणके बाहर स्थित 'मानस्तम्भ'के दर्शनसे गौतमका अभिमान गलित हो गया और वे विनयशील हो गये, तब वे समवशरणके अंदर प्रविष्ट हुए। उनके प्रविष्ट होते ही श्रीमहावीरस्वामीकी दिव्य ध्वनि खिरने लगी और गौतमके मनकी शङ्काओंका समाधान हो गया। निर्मल भावोंके फलसे वे उसी समय बुद्धि, औषध, अक्षय, ऊर्ज, रस, तप और विक्रिया—इन सात प्रकारकी अद्भुत शक्तियों (ऋद्धियों) एवं चार प्रकारके ज्ञानके धारी हो गये और वे ही महावीरस्वामीके मुख्य 'गणधर' बने और उन्होंने उसी दिन एक ही मुहूर्तमें भगवान्के उपदेशका १२ अङ्ग और १४ पूर्वोंके रूपमें संकलन किया। जैन-मतमें इन्हीं गौतम-गणधरको 'गणेश' माना जाता है।

सभी तीर्थंकरोंकी भाँति महावीरस्वामीकी भी दिव्य-ध्वनि 'ॐकार' रूप एवं निरक्षरात्मक होनेपर भी सर्वभाषा-मयी थी; अर्थात् मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सब श्रोतागणोंकी श्रवणेन्द्रियमें पहुँचनेपर वह उन-उनकी भाषामें परिणत हो जाती थी और उस दिव्य-ध्वनिमें समस्त विश्वके सभी पदार्थों एवं विषयोंका शाब्दिक (अक्षरात्मक) ज्ञान-विज्ञान, सभी विद्याएँ एवं कलाएँ प्रकट होती थीं। अतः 'गणधर' द्वारा संकलित शास्त्र भी सभी विषयों, पदार्थों, विद्याओं एवं कलाओंके शाब्दिक ज्ञान-विज्ञान रूप थे। यह सही है कि सर्वज्ञके सम्पूर्ण ज्ञानका अति अल्प अंश ही उसकी दिव्य-ध्वनिद्वारा प्रकट हो सकता था और उसके भी अति अल्प अंशका ही सकलन शाब्दिकरूपमें अर्थात् अक्षरात्मक शास्त्ररूपमें प्रकट किया जा सकता था; (क्योंकि भाव-ज्ञान तो असीम-अनन्त है, जब कि अक्षरात्मक एवं शाब्दिक ज्ञान सीमित ही होता है) लेकिन वह अति अल्प अंशका शाब्दिक ज्ञान भी सुविशाल ज्ञान-विज्ञानका महासागर है, जो सामान्य जनोंके लिये तो असीम ही है। इससे 'गणधर'के भी ज्ञानका अथाहपना सूचित होता है।

बौद्ध धर्म, साहित्य एवं संस्कृतिमें श्रीगणेश

(लेखक—श्रीअक्षयवरमणिजी त्रिपाठी, एम्० ए०, बी-एड०, आचार्य)

बौद्ध धर्म, साहित्य, संस्कृति एवं साधनाने लङ्का, वर्मा, मलयद्वीप, सुमात्रा (स्वर्णद्वीप), जावा, बालीद्वीप, बोर्नियो, चीन, अफगानिस्तान, कोरिया, जापान, तिब्बत, मंगोलिया, नैपाल, मेसोपोतामियाँ और मलाया प्रभृति विश्वके बहुत बड़े भू-भागको प्रभावित किया है। मानव-जातिके इतने बड़े भू-भागपर बौद्धधर्मके सफलतापूर्वक प्रसारका रहस्य यह है कि बुद्धका जोर 'शील', 'समाधि' और 'प्रज्ञा'पर था। शीलमें अवैर (मैत्रीभाव) को ही प्रधानता दी गयी है। अवैरके लिये वैरके सभी कारणोंको छोड़ना पड़ता है। बुद्ध और उनके शिष्योंने इस बातका प्रचार केवल मौखिक ही नहीं किया, अपितु इसको अपनी कार्यप्रणालीका भी एक अङ्ग बना लिया। बुद्ध और उनके शिष्य अपने विचारोंको तो श्रेष्ठ मानते थे, लेकिन उसको हठात् दूसरोंके ऊपर लादनेका प्रयास वे नहीं करते थे। वे इस मनोविज्ञानको जानते थे कि ज्ञान समझानेसे दूसरोंके मस्तिष्कमे प्रविष्ट होता है, बलात्कारसे नहीं। अपने धर्मके प्रचारार्थ बौद्धोंने कभी बलात्कार करनेकी कोशिश नहीं की। धर्मोंके इतिहासमे यह अद्वितीय उदाहरण है। बौद्धोंने अपने विचारोंके प्रचारार्थ जिस मार्गका अनुसरण किया, वह था—'समझा-बुझाकर विचारोंमें परिवर्तन लाना।' प्रत्येक देश, जाति एवं समाजकी अपनी एक संस्कृति होती है, जिसका सम्बन्ध मनुष्यके विचारोंसे उसी प्रकार होता है, जिस प्रकार चेतन आत्मा और स्थूल शरीरका। मानव-मनकी इसी विशेषताको जानकर बौद्ध-धर्म जिस देशमे गया, वहाँकी भाषा और संस्कृतिमे उसने बहुत बड़े परिवर्तनका प्रयास नहीं किया; अपितु उन्हींकी भाषा, धर्म एवं संस्कारोंपर बौद्धधर्मका लेप कर दिया। अपनी-अपनी भाषामे बुद्ध-वचनोंको सीखनेकी सुविधा भी प्रदान कर दी। यहाँतक कि उस देश और जातिमे पूर्व-प्रचलित देवी-देवताओंका विरोध नहीं किया, अपितु उनको मान्यता प्रदान करके अपने धर्मका अङ्ग बना लिया। उदाहरणार्थ—भारतमें बौद्धोंने श्रीगणेश, इन्द्र, ब्रह्मा, सनत्कुमार, प्रजापति, सूर्य, चन्द्रमा, पर्जन्य (वरुण), लक्ष्मी (श्री), श्रद्धा, आशा, लोकपाल, चतुर्महाराजिकदेव, धृतराष्ट्र, महाराज, यक्ष, नाग, वृक्ष-पूजा, गन्धर्व, गरुड़, वृषभ और कुबेर इत्यादि देवी-देवताओंको ज्यों-का-त्यों मान लिया। सभी बौद्ध-ग्रन्थोंमें इन देवी-देवताओंका वर्णन सादर किया गया है। अतः बौद्धोंके द्वारा 'हमारे देवता-तुम्हारे देवता'का झगड़ा ही नहीं उत्पन्न हुआ। विचार बौद्ध, परंतु रूप राष्ट्रीय रखना उनकी कार्य-प्रणालीका एक अङ्ग था। इस प्रकार संघर्षके एक जबरदस्त कारणका हल बौद्धोंने निकाल लिया।

भारतीय देववाद तो विश्वमें प्रसिद्ध ही है। इन देवी-देवताओंकी लंबी सूचीमे श्रीगणेशका विशेष महत्त्व है। भारतके सभी हिंदू लेखक अपनी रचना 'श्रीगणेशाय नमः'से ही प्रारम्भ करते हैं। बच्चोंका विद्यारम्भ-संस्कार भी 'हरिः गणपतये नमः' लिखवाकर ही किया जाता है। दक्षिणी भारतमे तो इसका विशेष प्रचलन है। पुरातात्त्विक महत्त्वके स्थानोंकी खुदाईसे 'श्रीगणेश'की जो मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, उनसे यह प्रमाणित होता है कि 'श्रीगणेशपूजा'की परम्परा बौद्धकालके बहुत पूर्वसे भारतके कोने-कोनेमें प्रचलित थी। इसके अतिरिक्त विश्वके सभी बौद्ध-राष्ट्रोंमे भी 'श्रीगणेश'की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। अतः 'श्रीगणेश' विश्व-देवालयके एक प्रमुख देवता हैं। बौद्ध महायान-सम्प्रदायकी वज्रयान-शाखाके साधकोंने तो 'श्रीगणेश'को अपनी साधनाकी सिद्धिके लिये एकमात्र सहायक मान लिया।

'गणपति-हृदय'में श्रीगणेश

'गणपति-हृदय' नेपाली बौद्ध-साहित्यका एक प्रमुख ग्रन्थ है। इस ग्रन्थरत्नमे 'गणपति' अर्थात् 'गणेश'की वन्दनाको देखनेके बाद प्रत्येक प्रज्ञावान् पुरुष यह निर्णय ले सकता है कि बौद्ध धर्म एवं साहित्यमें 'श्रीगणेश'-पूजाका विशेष स्थान है। इस ग्रन्थके अनुसार—एक बार जब भगवान् तथागत बुद्ध राजगृहमे विहार कर रहे थे, उसी समय वे स्वयं आनन्दसे कहते हैं—'हे आनन्द! जो गणपति-हृदयको श्रद्धासे पढ़ता और सुनता है, वह शीघ्र अपनी इच्छाओंको पूरा कर लेता है।' इस ग्रन्थके प्रत्येक मन्त्र निम्न वाक्योंसे प्रारम्भ हुए हैं—

'ॐ नमोऽस्तु ते गणपतये स्वाहा, ॐ गणपतये स्वाहा ।' इस ग्रन्थकी कुछ प्रारम्भिक पक्तियाँ इस प्रकार हैं—'ॐ नमो भगवते आर्यगणपतिहृदयाय । ॐ नमो रत्नत्रयाय । एवं मया श्रुतमेकस्मिन् समये राजगृहे विहरति स्म गृद्धकूटपर्वते महता भिक्षुसंघेन सार्द्ध त्रयोदशभिक्षुशतैः सम्बहुलैश्च बोधिसत्त्वो महासत्त्वः। तेन खलु पुनः समये भगवान् आयुष्मानानन्दमामन्त्रयते स्म । यः कश्चित् कुलपुत्र आनन्द ! इमानि गणपतिहृदयानि धारयिष्यति वाचयिष्यति पर्यवाप्स्यति प्रवर्तयिष्यति तस्य सर्वाणि कार्याणि सिद्धानि भविष्यन्ति। तद्यथा—ॐ नमोऽस्तु ते गणपतये स्वाहा ।' इत्यादि । इस ग्रन्थके अन्तमे लिखा है—

'इदमवोचद् भगवानात्तमनास्ते च बोधिसत्त्वाश्च सर्वावनी पर्षत् सदेवमानुषासुरगरुडगन्धर्वाश्च लोका भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्निति ।'

और ग्रन्थकी समाप्ति की गयी है, निम्नवाक्योके साथ—

'आर्यगणपतिहृदयनाम-धारणी समाप्ता'

बौद्धधर्मके वज्रयान-शाखावालोका तो यहॉतक विश्वास है कि 'श्रीगणेश'की स्तुतिके बिना मन्त्रोकी सिद्धि हो ही नहीं सकती । बौद्धोने शाक्यमुनि गौतमबुद्धका गर्भ-प्रवेश भी हाथीके शरीरके रूपमे करवाया है । यही बीज 'गणेश-पूजा' रूपी विशाल वटवृक्षकी टहनियोकी तरह बौद्ध-धर्मकी सभी शाखाओमे दूर-दूरतक फैला हुआ दृष्टिगोचर होता है । नेपाली एवं तिब्बती वज्रयान बौद्ध-सम्प्रदायवालोके घर-घरमे तथागतकी मूर्तिके साथ-साथ श्रीगणेशकी मूर्ति भी रहती है। ये बौद्ध लोग गणेशकी पूजा विघ्नविनाश एवं ऐश्वर्यकी वृद्धिहेतु करते हैं । डा० राजेन्द्रलाल मैत्रने अपने ग्रन्थ 'The Sanskrit Buddhist Literature of Nepal' और एच० हेरासने अपनी पुस्तक 'The Problem of Ganapati' मे ऐतिहासिक एव पुरातात्त्विक साक्ष्योके आधारपर बौद्धतन्त्रमे 'श्रीगणेश'के एक महत्त्वपूर्ण स्थानका उद्घाटन किया है।

बौद्ध राष्ट्रोंमें 'श्रीगणेश'

नेपाल, बर्मा' थाईलैंड, तिब्बत, अफगानिस्तान, मध्येशिया, चीन, श्याम, कम्बोडिया, तुर्किस्तान, मंगोलिया, तथा समुद्रपारके देशो—जापान, इंडोनेशिया, जावा, बोर्नियो और बालिद्वीप प्रभृति तमाम शुद्ध बौद्धदेशोंके धर्म, साहित्य एवं साधनामें भी 'श्रीगणेश'-पूजाका विशेष स्थान है। इन बौद्ध राष्ट्रोमे श्रीगणेश-पूजाकी प्राचीनताकी परम्पराका ज्ञान उन राष्ट्रोमे प्राप्त पुरातात्त्विक एवं खनन-सामग्रियोसे प्रमाणित होता है ।

जावासे प्राप्त कई मुद्राओसे श्रीगणेशकी मूर्तियॉ आज भी 'ब्रिटिश म्यूजियम'मे सुरक्षित है। नेपालके काठमाण्डू—नामक शहरमे निर्मित अनेक बौद्ध-मन्दिरोमे भगवान् बुद्धकी मूर्तिके साथ-साथ 'श्रीगणेश'की भी मूर्तियॉ कई मुद्राओमें सुरक्षित हैं। कहते हैं कि महान् बौद्ध सम्राट् अशोककी एक पुत्रीने नेपालमे अनेक बौद्ध-मन्दिरोका निर्माण कराया और उनमे स्वयं अपने हाथोसे 'श्रीगणेश'की मूर्तियॉ स्थापित कीं। चीनी बौद्ध-साहित्यके अध्ययनसे ज्ञात होता है कि ५ वीं और ८ वीं शताब्दीके मध्य चीनने भारतसे बहुत कुछ लिया । उदाहरणार्थ प्रसिद्ध चीनी यात्री फाहियान जब ५ वी शताब्दीमे भारतसे चीन वापस गया तो वह 'श्रीगणेश'-पूजाकी परम्परा और अनेक मूर्तियाँ अपने साथ ले गया । महायानी बौधग्रन्थोंमे 'श्रीगणेश'-सम्बन्धी अनेक छोटी-छोटी परम्परागत दन्तकथाओका वर्णन आया है । बौद्ध-साहित्यमे श्रीगणेशसे सम्बन्धित दन्तकथाऍ जब दृष्टिगोचर होती हैं तो यह विश्वास हो जाता है कि बौद्ध धर्म एवं साधनामे 'गणेश-पूजा'का बहुत महत्त्व है । नेपालमे मजुश्री नामक एक बुद्ध-मूर्तिके समीप ही 'श्रीगणेश'की मूर्ति आज भी स्थापित है। भगवान् बुद्धके धर्मचक्रप्रवर्त्तन-स्थान सारनाथ (वाराणसी) की खुदाईमें 'श्रीगणेश' और 'कार्तिकेय' की मूर्तियाँ मिली हैं, जो परिनिर्वाणमुद्रामे सोये हुए भगवान् गौतमबुद्धकी सेवा कर रहे हैं । लङ्काके 'मन्तक चेतया' स्तूपके पास दो हाथोवाली 'श्रीगणेश'की मूर्ति आज भी स्थापित है। इससे प्रमाणित होता है कि 'श्रीगणेश'ने महायान बौद्धोकी सीमासे बाहर जाकर लङ्का-जैसे बौद्धदेशमे भी प्रवेश किया है । 'कप्पद्रुमावदानम्' एक महायानी-मिश्रित संस्कृतका ग्रन्थ है । इसमे श्रीगणेशस्तुति-सम्बन्धी एक कथा आयी है, जो इस प्रकार है—श्रावस्तीके एक वणिक्-पुत्रने, जो बौद्ध-उपासक था, व्यापारके लिये अपने साथियोके साथ 'रत्नाकार द्वीप'के लिये प्रस्थान किया । उसकी नाव कुछ ही दिनोके बाद एक तूफानसे टकराकर डूब गयी । उसने अपने प्राणरक्षार्थ उस समयके समाजमे मान्यताप्राप्त अनेक देवी-

देवताओंकी स्तुति की। इसीके साथ उसने 'श्रीगणेश'की भी स्तुति की थी। इस दृष्टान्तसे यह सिद्ध होता है कि 'श्रीगणेश' बौद्धधर्ममें बहुत प्राचीन कालसे अन्य देवी-देवताओंके साथ-साथ स्तुत्य हैं। 'श्रीगणेश'की मूर्तिकी रचना जिस प्रकार की गयी है, बौद्धोंने भी उसीसे मिलती-जुलती ही अपने कुछ महापुरुष-लक्षणोंकी भी कल्पना की है।

वास्तवमें श्रीगणेश-पूजाकी परम्पराने महायानी बौद्ध-सम्प्रदायरूपी यानपर आरूढ़ होकर विश्वके अधिकाधिक देशोंकी यात्रा की है। इस संक्षिप्त विवेचनसे भी यह सिद्ध हो जाता है कि बौद्ध धर्म, साहित्य एवं साधनामें 'श्रीगणेशपूजा'की परम्परा सदैवसे रही है और आज भी, विशेषकर महायान बौद्ध-सम्प्रदायमें संस्कारवश प्रतिष्ठित है।

समर्थ श्रीरामदासस्वामीजीके काव्यमें श्रीगणेश

(लेखक—डा० श्रीकेशव विष्णु मुळे)

समर्थ श्रीरामदासस्वामीजीकी ख्याति महाराष्ट्रके रामभक्त संतके रूपमें है। वे गो-ब्राह्मण-प्रतिपालक छत्रपति श्रीशिवाजी महाराजके गुरुदेव थे। उन्होंने मराठी तथा हिंदी-भाषामें विपुल काव्य-रचना की है। उन्होंने स्थान-स्थानपर अपने काव्यमें श्रीगणेशकी स्तुति तथा वन्दना करते हुए श्रीगणेशका मनोरम रूप व्यक्त किया है।

'मनोबोध' काव्यके प्रारम्भिक श्लोकमें श्रीगणेशजीका वर्णन निम्न प्रकारसे किया गया है—

'गणाधीश जो ईश सर्वांगुणांचा। मुळारंभ आरंभ तो निर्गुणाचा॥ नमू ....॥'

'जो समस्त गणोंके अधिपति हैं, जो यश, श्री, धर्म, निर्वाण, वैराग्य, ऐश्वर्य आदि गुणोंके स्वामी हैं तथा जिनसे निर्गुण परब्रह्मका आरम्भ होता है, ऐसे श्रीगणेशजीको मैं प्रणाम करता हूँ।'

श्रीगणेशको 'गुणपति' भी कहा जाता है। 'गुणाधीश'में उनके समस्त गुणोंके स्वामित्वका निर्देश है। गणोंमें सांख्यके चौबीस तत्त्व अर्थात् पञ्चेन्द्रिय, पञ्चप्राण, पञ्च विषय एवं अन्तःकरणचतुष्टय आदिका अन्तर्भाव होता है। उपासनामें इन चौबीस तत्त्वोंके ज्ञानसे उपासक मूल उपास्य पुरुषकी उपासना सहज ही कर पाता है।

'श्रीमद्दासबोध' समर्थ श्रीरामदासस्वामीजीका श्रेष्ठ काव्य-ग्रन्थ है। उसमें प्रथम दशकके द्वितीय समासमें 'श्रीगणेश-स्तवन' है। उस समासका आरम्भ निम्न प्रकार है—

ॐ नमोजि गणनायेका। सर्वसिद्धिफळदायेका।
अज्ञान-भ्रांति छेदका। बोधरूपा॥

श्रीगणेश ओंकार—प्रणवस्वरूप हैं। वे श्रीगणेशरूपमें प्रणवाकार हैं, ऐसा उल्लेख श्रीसंत ज्ञानेश्वरजीने भी अपनी 'ज्ञानेश्वरी'के मङ्गलाचरणकी काव्य-पंक्तियोंमें किया है—

अकार चरणयुगुळ। उकार उदर विशाळ।
मकार महामंडळ। मस्तकाकारें॥ (१।१९)

'अकार' श्रीगणेशका चरणद्वयरूप है; 'उकार' विशाल उदररूप है और 'मकार' मस्तकरूप है।' इस प्रकार श्रीगणेश एकाक्षर ब्रह्मरूप हैं।'

ये ओंकारस्वरूप श्रीगणेशजी प्रकृतिके गुणोंके नायक हैं। ऐसे ओंकाररूप, गणनायक, सर्वसिद्धिफलदायक, अज्ञान-भ्रान्ति-विभेदक तथा ज्ञानस्वरूप श्रीगणेशजीकी समर्थ श्रीरामदासस्वामीजी वन्दना करते हैं। वन्दनाके बाद इस 'गणेश-स्तवन'में फिर प्रार्थना करते हैं कि "आप मेरे हृदयमें आकर निरन्तर निवास करें। मैंने केवल आपके लिये ही अपने हृदयको पूर्णरूपसे रिक्त कर दिया है। मुझ-जैसे वाक्शून्य-पर आपकी कृपादृष्टि हो, जिससे मेरे मुखसे इस ग्रन्थकी निष्पत्ति हो सके। आपकी कृपासे मेरे भ्रम नष्ट होंगे तथा विश्वभक्षक काल भी मेरा दास बन जायगा। आपकी कृपा प्राप्त होते ही विघ्न काँप उठते हैं तथा आपका मङ्गल नामस्मरण करते ही वे भाग जाते हैं। इसीलिये आपको 'विघ्नहर्ता' कहा जाता है। आप हम अनाथोंके आधार हैं। हरि, हर आदि देवगण नित्य आपको विनम्र प्रणाम करते हैं। मङ्गलनिधि श्रीगणेशजीको श्रद्धापूर्वक नमन करके जो कार्यारम्भ किये जाते हैं, वे निर्विघ्न पूर्ण होते हैं; उनमें कोई संकट, आघात या बाधा उत्पन्न नहीं होती। श्रीगणेशजीका ध्यान करनेसे पूर्ण समाधान प्राप्त होता है। एकाग्र अन्तः-करणसे ध्यान करनेपर वे नेत्रोंमें समा जाते हैं। इस (ध्यानकी प्रगाढ़ता) से शरीरकी इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं।"

समर्थ श्रीरामदासस्वामी पुनः कहते हैं—“श्रीगणेश ! आपका सगुण रूप महालावण्ययुक्त है । आपके कुशल, ललित-नृत्यसे सारे देवतागण चकित हो जाते हैं । ब्रह्मानन्दके मदसे उन्मत्त आपका शरीर थिरकता है तथा मुखपर अवर्णनीय प्रसन्नता दिखायी देती है । आपका रूप प्रचण्ड, भव्य, महान् हाथीके सदृश है । आपके विशाल मस्तकपर सिन्दूरकी लालिमा दमक रही है । आपके ज्ञानरूप गण्डस्थलसे स्रवित होनेवाले परमार्थोपदेशका सेवन करनेके लिये भक्त-भ्रमरोंका समूह 'सोऽहम्' का शुभ गुंजार करते हुए आपके चरण-कमलोंपर मँडराता रहता है । आपकी शुण्ड सरल दण्डस्वरूप है तथा अन्तमें मुड़ी हुई है । आपका मस्तक चमत्कारी तथा शोभायुक्त है; अधर कुछ लंबे हैं और मस्तकसे लगातार मद झरता रहता है । आप चौदह विद्याओंके स्वामी हैं । आपके लघु नेत्रोंकी तथा विशाल कर्णोंकी क्रीडाएँ विलोभनीय हैं । आपके मस्तकपर रत्नखचित तेजस्वी मुकुट सुशोभित है, जिसके रत्नोंसे भिन्न-भिन्न प्रकारके प्रकाशकी किरणें विकीर्ण होती रहती हैं । कर्ण-कुण्डलोंकी नीलमणिकी ज्योति अवर्णनीय है । आपके शुभ्र दन्तपर रत्नजटित सुवर्ण-कङ्कण है, जो लटकते हुए लघु सुवर्ण-पत्रोंसे सुशोभित है । आपका उदर थुल-थुल है तथा नागराजसे घिरा हुआ है, मानो वह आपका कटिबन्ध ही है । कमरबंदमें लगे हुए घुँघुरू मधुर ध्वनि करते हैं । आप चतुर्भुज तथा लम्बोदर हैं एवं पीताम्बर पहने हुए हैं । आपके उदरपर बैठा नागराज नाभि-कमलपर बैठकर फूत्कार करता है तथा सतत इधर-उधर देखता है । कण्ठसे लटकती हुई विविध पुष्प-मालाएँ सर्प-मालाओंसे मानो स्पर्धा करती हैं । रत्नजटित कण्ठमालाका स्वर्णपदक आपके हृदयपर विराजमान है । आपके एक हाथमें फरसा, दूसरे हाथमें कमल, तीसरेमें अङ्कुश और चौथेमें आपका अति प्रिय लड्डू है ।”

“आप उत्कृष्ट नट हैं । नाना छन्द तथा तालोंपर होनेवाले आपके कुशल नृत्यकी कला आकर्षक है । आपके नृत्यके समय झाँझरियाँ, मृदङ्ग आदि वाद्य बजाये जाते हैं । आपका पद-विन्यास इतना गतिमान् है कि आप एक क्षण भी स्थिर नहीं रहते । आपकी वह नृत्यमूर्ति शोभापूर्ण, सुलक्षण और अतीव सुन्दर है । आप जब नृत्य करते हैं, तब आपके चरणोंके नूपुर मधुर रुनझुन ध्वनि करते हैं, बाजूबंदकी घंटियाँ निनादित हो उठती हैं तथा घुँघुरुओंसे युक्त आपके चरण-विन्यास अत्यन्त मनोहर होते हैं । आपके नृत्यसे सारी शिवसभा अपूर्व शोभासे मण्डित हो जाती है । वह शिव-सभा दिव्य अम्बरोंसे आच्छादित है । उस सभामें आपके नृत्यके समय अष्ट-नायिकाओंके गानके स्वर मुखरित होते रहते हैं ।”

“इस तरह सर्वाङ्गसुन्दर, सकल विद्यानिधि श्रीगजाननको मैं भावभरे अन्तःकरणसे साष्टाङ्ग प्रणिपात करता हूँ । श्रीगणेशका ध्यान करनेसे भ्रान्त व्यक्तिको मति-प्रकाश प्राप्त होता है तथा श्रीगणेशका गुणगान सुननेसे श्रीसरस्वतीजी प्रसन्न होती हैं । जिन श्रीगणेशका ब्रह्मादिक देवता वन्दन करते हैं, वहाँ मानवकी क्या गणना ? मन्दमति मानवको विनम्रतासे गणेश-पूजन करना चाहिये, जिससे वह मूर्ख, हेय लक्षणोंवाला तथा दीनातिदीन होनेपर भी कुशल एवं सर्वकला-प्रवीण हो जाय । श्रीगणेशके भजनसे उसकी सारी कामनाएँ सफल होती हैं । परम समर्थ श्रीगणेश सर्वमनोरथ पूर्ण करते हैं । शास्त्रका वचन है कि 'कलौ चण्डीविनायकौ' । ऐसे मङ्गलमूर्ति श्रीगणेशकी यह स्तुति मैंने यथामति परमार्थ-प्राप्तिकी इच्छासे की है ।”

इसी प्रकार श्रीदासबोधमें स्थान-स्थानपर गणेशजीका स्मरण और उनकी स्तुति की गयी है । समर्थ श्रीरामदास स्वामी-द्वारा रचित श्रीगणेशकी आरती महाराष्ट्रमें तो घर-घरमें पूजाके समय सर्वप्रथम गायी जाती है । इतना ही नहीं, उनके 'ओवी चतुर्दशशतक' नामक अध्यायमें तथा उनकी अनेक रचनाओंके विभिन्न स्थानोंपर बड़े भावपूर्ण हृदयसे श्रीगणेशजी-का स्मरण-वन्दन हुआ है । जहाँ-जहाँ श्रीगणेशजीका स्मरण-वन्दन हुआ है, वहाँ-वहाँ समर्थ श्रीरामदासस्वामीजी महाराज-की अगाध गणेश-भक्तिका मधुर दर्शन मिलता है । कहीं श्रीगणेशजीके भव्य स्वरूपका वर्णन है, कहीं उनकी लीलाओंका चिन्तन है, कहीं उनके अमित सामर्थ्यका प्रकाश है, कहीं उनके अनन्त गुणोंकी जय-जयकार है, कहीं उनके परब्रह्म और ओंकार-तत्त्वकी ओर संकेत है, कहीं उनसे कातर याचना है, कहीं उनकी कृपाके प्रभावका दिग्दर्शन है, कहीं उनके भजन-पूजनके फलका उन्मुक्त गान है, कहीं गणेशाराधनके निजी अनुभवका उल्लेख है । समर्थ श्रीरामदासजी महाराजको जब-जब अवसर मिला है, श्रीगणेश-जीके स्मरण-वन्दनमें वे विभोर हो उठे हैं ।

श्रीज्ञानेश्वरमहाराजकी गणेश-भावना

(लेखक—ह० भ० प० श्रीधुडा महाराजजी देगलूरकर)

महाराष्ट्रके प्रसिद्ध संत श्रीज्ञानेश्वरमहाराजने श्रीमद्भगवद्-गीतापर मराठी भाषामें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सारगर्भित एवं सुबोध टीका लिखी है, जिसका विद्वानोंमें और साधकोंमें बड़ा ही आदर है। महाराष्ट्रमें वारकरी भक्त और अन्य भावुक व्यक्ति भी नियमसे इस ग्रन्थका पारायण वैयक्तिक या सामूहिक रूपसे करते हैं। इस टीका-ग्रन्थ 'ज्ञानेश्वरी'के आरम्भमें विस्तृत मङ्गलाचरण है। ग्रन्थके आरम्भमें मङ्गला-चरण करना अनादिकालीन शिष्टाचार है, जिससे ग्रन्थ-प्रणयनका कार्य निर्विघ्न पूर्ण हो सके। मङ्गलाचरणमें श्री-ज्ञानेश्वर महाराजने श्रीगणेशभगवान्‌का ही स्मरण किया है। महान् भक्त श्रीतुलसीदासजीने भी रामचरितमानसके आरम्भमें श्रीगणेशको ही नमन किया है, जिससे कार्यके मध्यमें आनेवाले सम्पूर्ण विघ्न शान्त हो जायँ।

उपनिषदोंमें तथा गीतामें निर्गुण-निर्विशेष परब्रह्मके प्रतीकस्वरूपमें प्रणवका वर्णन आया है। उस प्रणवका स्मरण करनेके बाद श्रीज्ञानेश्वरमहाराज उसी प्रणवसे भगवान् श्रीगणेशजीकी एकात्मताकी स्थापना अपने मङ्गला-चरणमें करते हैं। वे कहते हैं—'हे ओंकार! आप आद्य हैं; वेद आपका प्रतिपादन करते हैं, आप आत्मस्वरूप हैं; आपका ज्ञान केवल अनुभवसे हो सकता है; आप ही श्रीगणेश हैं, जो सभीकी बुद्धिके प्रकाशक हैं। आपको प्रणाम है।'

ॐ नमो श्रीआद्य। वेदप्रतिपाद्य।
जय जय स्वसंवेद्य। आत्मरूप॥ १॥
देव तू ही श्रीगणेश। सकल मति प्रकाश।
कहे निवृत्तिका दास। सुनिये जी॥ २॥*

कोई भी उपासक अपने उपास्यकी मूर्ति अपनी भावना, रुचि तथा शक्तिके अनुसार ताम्र, रजत, सुवर्ण आदि धातुओंसे या स्फटिक, प्रवाल, रत्न, शिला, काष्ठ, मृत्तिका आदि वस्तुओंसे बनाता या बनवाता है। श्रीज्ञानेश्वर महाराजने यदि वैसी मूर्ति ही बनायी तो सामान्य उपासकोंमें और उनमें क्या भेद रहेगा? उन्होंने श्रीगणेश-मूर्तिका आकार तो 'एकदन्तं चतुर्हस्तं पाशमङ्कुशधारिणम्' ऐसा ही रखा है; परंतु उनकी मूर्ति-निर्माणकी सामग्री स्थूल नहीं, सूक्ष्म है। गणपत्यथर्वशीर्षका 'त्वं वाङ्मयस्त्वं चिन्मयः।' (४) 'त्वं चत्वारि वाक्पदानि' (५) सूत्र लेकर श्रीज्ञानेश्वर महाराजने शब्दब्रह्मस्वरूप श्रीगणेश-मूर्तिका निर्माण किया है। प्रणव, जो ब्रह्मस्वरूप है तथा वेद और वाणीका मूल है, उसकी आकृति ॐ ही भगवान् श्रीगणेशकी साकार मूर्ति है। प्रणवको 'तू' कहकर सम्बोधन करना और स्पष्ट शब्दोंमें प्रणवको गणेश कहना यह सिद्ध करता है कि सम्पूर्ण सत्य श्रीज्ञानेश्वरमहाराजको पूर्णतः प्रत्यक्ष है। इस वर्णनमें साहित्य और तत्त्व-ज्ञानका योग्य समन्वय दिखायी देता है। अखिल 'शब्दब्रह्म' श्रीगणेशजीकी सुन्दर और सुवेषवाली मूर्ति है। शब्द-ब्रह्ममें जो निर्दोष वर्ण-रचना है, वही उनका सौन्दर्य है। वेदस्वरूप निर्दोष है, इस कारण शब्दब्रह्मरूप श्रीगणेशके स्वरूपको निर्दोष कहा है। स्वरूप-निश्चयके पश्चात् मङ्गलाचरणमें श्रीगणेशजीके पृथक् अवयवोंका विचार किया गया है। वाङ्मय कहनेसे उसमें वेद, स्मृति, पुराण, षड्दर्शन, वार्तिक, काव्य-नाटकादि—सबका समावेश होता है। परंतु किस अङ्गमें किसकी योजना उचित है, उसका क्रम बड़ी योग्यतासे बताया गया है। श्रुतियोंके पश्चात् स्मृतियोंका क्रम आता है, जिनमें वर्णाश्रम-धर्म, सामान्य-विशेष-धर्म, शौचाशौच-विचार, प्रायश्चित्त और आपद्धर्मादि विषयोंका विस्तृत विचार किया गया है। स्मृतियाँ ही श्रीगणेशजीके विभिन्न अवयव हैं और उनका अर्थ-सौन्दर्य ही श्रीगणेशजीका लावण्य है—

शब्द-ब्रह्म यह अशेष। वही है जो मूर्ती सुवेष।
वहाँ वर्ण भी है निर्दोष। सजाया जो॥ ३॥
स्मृति ही है अवयव। रेखाएँ अङ्गके भाव।
लावण्य रूप-वैभव। अर्थ शोभा॥ ४॥

आभूषण अङ्गके सौन्दर्यको अत्यधिक बढ़ा देते हैं। पुराण-साहित्य ही आभूषणस्थानीय हैं। पुराणोंने श्रुति-प्रतिपादित गूढार्थपर अधिक प्रकाश डाला है, इस कारण पुराणोंकी मणिजटित आभूषणोंसे उपमा दी गयी है—

अष्टादश जो पुराण। वही हैं मणि भूषण।
पदपद्धति कोंदण। प्रमेय रत्नका॥ ५॥

अब श्रीगणेशजीके वस्त्रका वर्णन करते हैं—

* ज्ञानेश्वरी हिंदी (समवृत्त), अनुवादक, श्रीबाबूराव कुमठेकर, प्रकाशक. सन साहित्य-सदन, मसूरी (उ० प्र०)

पदबन्ध है वसन। रँगाया अति महीन।
साहित्य शोभायमान। किनारी है ॥ ६ ॥

शब्द-ब्रह्मस्वरूप साहित्यमें जो रचना-कौशल है, वही सुन्दर और चमकीला रंगीन वस्त्र है। उस रचनामें अनेक-विध जो शब्दालंकार और अर्थालंकार हैं, वे ही उस वस्त्रके सूक्ष्म और चमकीले तन्तु हैं। साहित्यमे जो काव्य-नाटकादिकोंका भी समावेश है; उनकी योजना शब्दब्रह्मस्वरूप श्रीगणेशके चरण-युगलमें मञ्जुल ध्वनि करनेवाले नूपुरोंके स्थानपर की है—अनेक तत्त्वोंका निरूपण विलक्षण-निपुणता तथा शुभ लक्षण उचित वचन रत्नके समान दीखते हैं।

मानो है काव्य-नाटक। सोचनेसे सकौतुक।
पदकी क्षुद्र घंटिका। अर्थ ध्वनि ॥ ७ ॥
अनेक तत्त्वोंका निरूपण। उसका नैपुण्य विलक्षण।
उचित वचन सुलक्षण। दीखे रत्न सम ॥ ८ ॥

श्रीगणेशकी कमरमें बँधा हुआ एक उपवस्त्र होता है, उसको 'मेखला' कहते हैं। व्यास-वाल्मीकि आदि महाकवियोंकी बुद्धिकी प्रतिभा अद्वितीय है। वही मेखला-स्थानीय है—

व्यासादिकोंका शुद्ध ज्ञान। शोभता मेखला समान।
उसकी दशा है महीन। झलकती सदा ॥ ९ ॥

शब्द-ब्रह्मस्वरूप श्रीगणेशजीके कर-कमलका स्वरूप दिखाते हुए श्रीज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं—

कहलाते जो षड्दर्शन। जैसे भुजदंड महान्।
तभी है असंगतपूर्ण। आयुध करमें ॥१०॥

षड्दर्शनोंकी हाथके स्थानपर योजना की है। जैसे भारतीय आस्तिक-दर्शन छः हैं, वैसे ही भगवान् श्रीगणेशके छः हाथ हैं। यहाँ 'आस्तिक'का अर्थ है—वेदोंके अस्तित्व और महत्त्वको स्वीकार करनेवाले। हमलोग चतुर्भुज गणेशकी वन्दना करते हैं; किंतु त्रेतायुगमें अवतरित श्रीगणेशजीके छः हाथ हैं। ये छः दर्शन-शास्त्र ही छः हाथ हैं।

षड्दर्शनोंमें प्रत्येक दर्शनके प्रमाण-प्रमेय-विचार स्वतन्त्र हैं। ये भिन्न-भिन्न विचाररूपी आयुध ही भिन्न-भिन्न हाथोंमें सुशोभित हैं। कहा है—

तर्क ही है परशु। नीति-भेद अङ्कुश।
वेदान्त महारस। शोभता मोदक ॥११॥

तर्कको परशु (कुल्हाड़ी) कहा है। न्यायदर्शनमें तर्ककी प्रधानता है। गौतमप्रणीत न्यायदर्शनरूपी हाथमें तर्करूपी परशु आयुध है। वैशेषिक-दर्शनरूपी हाथमें नीति-भेदरूपी अङ्कुश है। श्रीगणेशजीके एक हाथमें मोदक रहता है। वेदान्तको महारसस्वरूप मोदक माना गया है।

एक हाथमें है दन्त। स्वभावसे ही खण्डित।
जो बौद्धमत संकेत। वार्तिकोंका ॥१२॥

श्रीगणेशजीके एक हाथमें खण्डित दन्त रहता है। यह टूटा हुआ दन्त बौद्धमतके समान है, जिसका खण्डन श्रीकुमारिलभट्टने अपने 'श्लोक-वार्तिक' और 'तन्त्रवार्तिक'में किया है। वार्तिकमें भारतके प्रचलित अवैदिक मतका खण्डन है। श्रीगणेशजीके एक हाथमें पद्म (कमल) है और एक हाथ अभयमुद्राङ्कित है। इस विषयमें श्रीज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं—

सहज सत्कारवाद। है पद्मकर वरद।
धर्म प्रतिष्ठामें सिद्ध। अभय हस्त ॥१३॥

सांख्यशास्त्रका सत्कार्यवाद ही पद्मपुष्प है। वेदान्त और सांख्यदर्शनमें मत-भिन्नता है; फिर भी दोनोंने ही सत्कार्यवाद माना है। सेश्वर-सांख्य कहलानेवाला पातञ्जल योगदर्शन ही अभयमुद्राङ्कित हाथ है। श्रीगणेशजीके अवयवोंमें शुण्ड प्रमुख होता है; अतः निर्मल विवेकको शुण्डका स्थान दिया गया है—

विवेकवन्त सुविमल। वही शुण्ड दण्ड सरल।
है परमानन्द केवल। महासुखद ॥१४॥

सत्यासत्यनिर्णायक विवेक ही शब्द-ब्रह्म श्रीगणेशका सरल शुण्ड है। गज सूँड़से सूँघकर ही भले-बुरेकी पहचान करता है। श्रीगणेशका एक नाम 'एकदन्त' है। उसके विषयमें कहा गया है—

अजी संवाद है दशन। जो है समता शुभ्रवर्ण।
देव उन्मेष सूक्ष्मेक्षण। विघ्नराज ॥१५॥

शास्त्रमें संदेहोंके निवारणके लिये अथवा सिद्धान्त-निरूपणके लिये जो परस्पर प्रश्नोत्तर हैं, वे संवाद ही शुभ्र वर्णात्मक दन्त हैं। गजके नेत्र बहुत सूक्ष्म होते हैं। सत्यका उद्घाटन करनेके लिये शास्त्रोंकी सूक्ष्म दृष्टि ही श्रीगणेशके नेत्र हैं। पूर्वोत्तर-मीमांसा, दोनों श्रीगणेशके कान माने गये हैं—

पूर्व उत्तर मीमांसा मान। उसके हैं दो श्रवण स्थान।
मुनि-मन बोधामृत पान। करते भ्रमरसे ॥१६॥

गजके गण्डस्थलसे जो मदस्राव होता है, उसके विषयमें श्रीज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि 'शास्त्रोंसे निस्सृत होनेवाला बोधरूपी अमृत ही मदका स्राव है और बोधामृतरूपी मद-स्रावपर मननशील मुनिरूपी भ्रमर उसका सेवन करनेके लिये सतत मँडराते रहते हैं।' श्रीगणेशजीके गलेमें प्रवालकी माला पहनायी जाती है, उसका स्वरूप बताते हैं—

प्रमेय प्रवाल सुप्रभ। द्वैत अद्वैत है निकुम्भ।
तुल्य बल है जो सुलभ। मस्तक पर ॥१७॥

उपनिषदोंके जो प्रमेय सिद्धान्त हैं, वे ही श्रीगणेशके गलेमें धारण की जानेवाली प्रभायुक्त प्रवालमणियोंकी माला हैं। द्वैताद्वैतके शास्त्रीय सिद्धान्त ही दोनों गण्डस्थल हैं, जो समानरूपसे शोभित हो रहे हैं। इन शब्दब्रह्म श्रीगणेशजीकी पूजा सदा चलती रहती है। पूजनोपरान्त जो पुष्पाञ्जलि चढ़ायी जाती है, उस सम्बन्धमें वर्णन करते हुए श्रीज्ञानेश्वरमहाराज कहते हैं—

उसपर हैं दस उपनिषद्। जिसके उदार ज्ञान मकरंद।
मुकुटपर जो सुमन सुगन्ध। सुहाते हैं ऐसे ॥१८॥

ज्ञानरूपी मकरन्दसे युक्त दशोपनिषद्रूपी पुष्पाञ्जलि श्रीगणेशजीको अर्पित की गयी है, वही उनके मस्तकके मुकुटपर विराजमान है। इससे उनकी शोभा बहुत बढ़ गयी है। श्रीगणेशजीके अवयवोंको प्रणवकी तीन मात्राओंके समान बताया गया है।

अकार चरण युगुल। उकार उदर विशाल।
मकार है महामंडल। मस्तकाकार ॥१९॥
जहाँ ये तीनों हुए एक। शब्दब्रह्म प्रकटानेक।
गुरु-कृपासे जाना देख। यह आदिबीज ॥२०॥

'अ'कार चरण-युगल है, 'उ'कार उदरस्थानीय है और 'म'कार महामण्डलाकार मस्तक है। इन तीन मात्राओंके संयोगसे ॐकी रचना होती है, जिसमें सम्पूर्ण शब्दब्रह्म समाविष्ट है। श्रीज्ञानेश्वरमहाराज कहते हैं कि 'मुझे श्रीगुरु-कृपासे इन शब्दब्रह्मस्वरूप श्रीगणेशभगवान्‌का ज्ञान हुआ एवं दर्शन मिला; मैं उनको नमस्कार करता हूँ।'

संत श्रीएकनाथजीका श्रीगणेश-चिन्तन

(लेखक—श्रीवसन्त शेषगीरराव कुलकर्णी)

महाराष्ट्रके संत-समुदायमें श्रीएकनाथजीका स्थान बहुत ही ऊँचा है। संत एकनाथजीके बारेमें न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानडे महोदयकी एक उक्ति प्रसिद्ध है कि 'ये ही महाराष्ट्रके सच्चे नाथ प्रतीत होते हैं'। श्रीएकनाथजी एक महान् साक्षात्कारी संत थे। उन्होंने अपने अनुभवके आधार-पर मुक्ति-प्राप्तिके लिये भगवन्नाम-सकीर्तनका सीधा-सादा मार्ग लोगोंको दिखाया। श्रीएकनाथजीकी ग्रन्थ-सम्पदा तो बहुत बड़ी है। इन ग्रन्थोंमें श्रीमद्भागवतके एकादश-स्कन्धके ऊपर मराठीमें उन्होंने जो विस्तृत टीका लिखी है, वह महाराष्ट्रमें 'श्रीएकनाथी भागवत'के नामसे सुविख्यात है। इस ग्रन्थके मङ्गलाचरणमें श्रीएकनाथजीने श्रीगणेशजीकी जो स्तुति की है, वह बहुत ही रहस्यमयी जान पड़ती है। श्रीगणेशजीके अनेक नामोंमें 'एकदन्त', 'लम्बोदर' और 'विघ्नहर'—ये तीन नाम भी है। अपनी स्तुतिमें श्रीएकनाथ-जीने पहले-पहल इन तीन नामोंकी व्याख्या की है और इसके बाद उन्होंने श्रीगणेश-विग्रहका विशद वर्णन किया है। भगवान् श्रीगणेशको 'एकदन्त' बताकर तथा उनको नमस्कार करके उन्होंने 'एकदन्त' नामकी व्याख्या की है। वे कहते हैं कि "श्रीगणेशजीका 'एकदन्त'-नाम एकत्वका बोधक है। अतः श्रीगणेशजी एकमेवाद्वितीय ब्रह्म ही हैं। ब्रह्मरूपी गणेशकी उस एकतामें ही सृष्टिरूपी अनेकता विद्यमान है। इस अनेकतामें भी उनकी एकता कभी भङ्ग नहीं हो पाती"—

नमन श्रीएकदंता। एकपणें तूंचि आतां॥
एकी दाविसी अनेकता। परी एकात्मता न मोडे॥

'गणपत्यथर्वशीर्षोपनिषद्' (४)में कहा है—

'त्वं सच्चिदानन्दाद्वितीयोऽसि। त्वं प्रत्यक्षं ब्रह्मासि।'

श्रीगणेशजीका दूसरा नाम 'लम्बोदर' है। लम्बोदरका अर्थ है—विशाल उदरवाले। ब्रह्मतत्त्व तो बृहत् है, 'महतो महीयान्' है और परिमाणशून्य है; अतः गणेशजीका उदर या स्वरूप भी विशाल है। उस उदरसे जगत्‌का आविर्भाव होता है और अन्तमें वह उस विशाल उदरमें ही प्रविष्ट हो जाता है—

तुजमाजी वासु चराचरा। म्हणोनि बोलिजे लंबोदरा॥
यालागीं सकळांचा सोयरा। साचोकारा तूं होसी॥

'गणपत्यथर्वशीर्ष' (५)में यह बात आयी है—

'सर्वं जगदिदं त्वत्तो जायते। सर्वं जगदिदं त्वत्तस्तिष्ठति।
सर्वं जगदिदं त्वयि लयमेष्यति।'

इतना ही नहीं, इस 'लम्बोदर' नामसे वे सभीके माता-पिता भी हैं। उपरिनिर्दिष्ट क्रमसे गणेशजीका तीसरा नाम है

'विघ्नहर'। श्रीगणेशजीको परमब्रह्म मानते हुए जो उपासना करता है, उस नरके समक्ष संसारमें विघ्न नहीं आते। पर नर बनना सहज नहीं। 'नर'-शब्दकी व्याख्या है—'न+रम्' अर्थात् विषयोमे जो रममाण नहीं होता, वही 'नर' है। विषय-विरक्त नरके सम्पूर्ण विघ्नोको श्रीगणेशजी हर लेते हैं—

तुज देखे जो नरु। त्यासी सुखाचा होय संसारु॥
यालागीं विघ्नहरू। नामादरू तुज साजे॥

हर्ष तो गणेशजीका मुख ही है। उस मुखमे सूर्य-चन्द्रादिकोको भी प्रकाशयुक्त बनानेवाला उनका दाँत अति निर्मल है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चार ही उनकी चार भुजाएँ हैं—

हरुष तें वदन गणराजा। चाऱ्ही पुरुषार्थ त्याचि चाऱ्ही भुजा॥
प्रकाशिया प्रकाशी वोजा। तो झळकत तुझा निजदंतु॥

पूर्व-मीमांसा और उत्तर-मीमांसा ही श्रीगणेशजीके श्रवणस्थानीय हैं। परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी आदि वाणी उनके मुखमे नित्य विराजित रहती है—

पूर्वउत्तरमीमांसा दोनी। लागलिया श्रवणस्थानी॥
नि:शब्दादि वाचा वदनी। कर जोडूनि अभिया॥

'गणपत्यथर्वशीर्षोपनिषद्' (४-५)मे भी कहा है—

'त्वं चत्वारि वाक्पदानि। त्वं वाङ्मयः।'

जब गणेशजी दृष्टिपात करते हैं, उसी समय यह समग्र सृष्टि आविर्भूत होती है। यही उनकी आनन्दमय दृष्टि है—

एकेचि काळीं सकळ सृष्टी। आपुलेपणें देखत उठी॥
तेचि तुझी देखणी दृष्टी। सुखसंतुष्टी विनायका॥

उपनिषद्मे 'कं ब्रह्म' जो कहा है, इस उक्तिके अनुसार गणेशजी सुखमय है। उनके नाभिस्थानमें आनन्द समाया हुआ है। इतना ही नहीं, वे कटिमे बोधरूपी कटिसूत्र बाँधकर मानो विघ्ननाशके लिये कटिबद्ध हैं—

सुखाचें तेललें दोंद। नाभीं आवर्तला आनंद॥
बोधाचा मिरवे नागबंध। दिसे सन्नद्ध साजिरा॥

श्रीगणेशजी शुद्ध सत्त्वका शुभ्र वस्त्र पहनकर बैठे हैं। अद्वैत-वेदान्तमे शुद्ध सत्त्वका दूसरा नाम 'माया' है। इस वेदान्तमें प्रकृतिके दो भेद हैं। एक तो वह, जिसमें सत्त्वगुण शुद्ध रहता है और दूसरा वह, जिसमे सत्त्वगुण अन्य दो गुणोंके साहचर्यसे अशुद्ध हो जाता है। पहलेका नाम 'माया' है और दूसरेका नाम 'अविद्या'। यह माया ही ईश्वरकी उपाधि है। गणेशजीका शुद्ध सत्त्वमय वस्त्र पहनना मायाशबल ब्रह्म-का परिचायक है। इस प्रकार शुभ्र वस्त्र पहनकर बैठे हुए श्रीगणेशजी अनेक सुवर्णमय अलंकारोंसे सुशोभित हैं—

शुद्धसत्वाचा शुक्लांबर। कासे कसिला मनोहर॥
सुवर्णवर्ण अलंकार। तुझेनि साचार शोभति॥

प्रकृति और पुरुष, जिनको उपनिषद्में 'रयि' और 'प्राण' बताया गया है, साथ ही जिनसे बहुविध प्रजा उत्पन्न होती है, वे दोनो श्रीगणेशजीके दो चरण हैं। श्रीगणेशजी सहजासनके ऊपर पूर्णरूपसे स्थित हैं। उनकी कृपासे विघ्न तो ढूँढ़नेसे भी नहीं मिलते—

प्रकृतिपुरुष चरण दोनी। तळी घालिशी वोजावुनी॥
तयांवरी सहजासनीं। पूर्णपणीं मिरवसी॥
तुझी अणुमात्र झालिया भेटी। शोधिता विघ्न न पडे दृष्टी।

संसारके पाश तो बड़े भीषण है। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश—ये ही संसारके प्रधान पाश हैं। जीववर्गको इन पाशोसे ही बहुत क्लेश उठाना पड़ता है। श्रीगणेशजी अपने परशुसे इन पाशोंको काट देते हैं। इसमे संशय नहीं कि श्रीगणेशजीके अनन्यभक्त इन पाशोसे मुक्त हो जाते हैं—

तोडिसी संसार फांसोटी। तोचि तुझे मुष्टी निजपरशु॥
भावें भक्त जो आवडे। त्याचें उगविसी भवसांकडें॥

अनन्यभक्तिसे युक्त नरको श्रीगणेशजी अपने अङ्कुश-द्वारा संसार-समुद्रसे अपनी ओर खींच लेते है। श्रीएकनाथ-जी निरपेक्षताको बहुत महत्त्व देते हैं। वे कहते हैं कि 'जो सच्चा निरपेक्ष है, उसके सुखको श्रीगणेशजी बढ़ाते हैं। इतना ही नहीं, वे उस भक्तको हर्षमय मोदक अपने हाथसे खिलाकर उसको शान्ति प्रदान करते है—

वोढुनि काढिसी आपणाकडे। निजनिवाडें अंकुशे॥
साच निरपेक्ष जो नि:शेख। त्याचें चि वाढविसी सुख॥
देऊनि हरिखाचे मोदक। निववीसी देख निजहस्तें॥

उपनिषद्में 'अणोरणीयान् महतो महीयान्' वचन आया है। अर्थात् ब्रह्मका अधिष्ठान सूक्ष्म-से-सूक्ष्म वस्तुमे भी है और महान्-से-महान्मे भी। श्रीगणेशजीद्वारा मूषकको वाहन बनाया जाना यह सूचित करता है कि सूक्ष्म-से-सूक्ष्म वस्तुमे उनका अधिष्ठान है—

सूक्ष्माहूनि सूक्ष्म सान । त्याम:जी तुझे अधिष्ठान ॥
यालागीं मूषकवाहन । नामाभिधान तुज साजे ॥

श्रीगणेशजीकी आकृति सम्पूर्णतः न तो नराकार है और न गजाकार । वास्तवमें वे व्यक्त और अव्यक्तसे अतीत हैं और निर्विकार हैं । यही उनका स्वरूप है—

पाहतां नरू ना कुंजरू । व्यक्ताव्यक्तासी परू ॥
ऐसा जाणोनि निर्विकारू । .... ॥

महाराष्ट्रका भागवत-धर्म अद्वैतका मतानुयायी और भक्तिप्रधान है । भागवत-धर्ममें 'विष्णु', 'वासुदेव', 'राम' और 'कृष्ण'—इन देवताओंका यद्यपि प्राधान्य है, तथापि महाराष्ट्रका भागवत-धर्म 'शिव', 'गणेश', 'विष्णु' आदि देवताओंमें तारतम्य नहीं देखता । वह 'विष्णु', 'शिव', 'गणेश'—इन सभीको एक ही परमात्माका रूप मानता है । इस दृष्टिकोणसे श्रीएकनाथजीका यह श्रीगणेश-वर्णन यथार्थ ही है ।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीद्वारा गणेश-स्मरण

(१)

(लेखक—प्रो० श्रीरामाश्रयप्रसादसिंहजी)

भक्तशिरोमणि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने अपने ग्रन्थोंमें, विशेषकर 'श्रीरामचरितमानस', 'विनय-पत्रिका', 'श्रीरामलला-नहछू', 'पार्वती-मङ्गल', 'जानकी-मङ्गल' एवं 'बरवै-रामायण'के प्रारम्भमें गणेशजीकी वन्दना बड़ी भक्तिसे की है । गोस्वामीजी वैष्णव भक्तकवि थे और इनके इष्टदेव थे मर्यादापुरुषोत्तम परात्पर भगवान् श्रीराम । अतः यह प्रश्न उठ सकता है कि गोस्वामीजीने सबसे पहले गणेशजी और सरस्वतीजीकी ही वन्दना क्यों की ? श्रीरामचरितमानसमें संस्कृतके प्रथम श्लोकमें ही सरस्वती और गणेशकी वन्दना मिलती है । फिर सोरठामें जब वन्दना प्रारम्भ करते हैं, तब गणेशको ही प्रथम स्थान देते हैं । 'विनयपत्रिका'का पहला ही पद गणेश-वन्दनाका है । श्रीरामचरितमानस एवं विनयपत्रिका गोस्वामीजी महाराजके सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ माने जाते हैं और इन दोनों ही ग्रन्थोंका प्रारम्भ श्रीगणेशजीकी ही वन्दनासे हुआ है ।

गोस्वामीजीके इष्टदेव भगवान् राम हैं । इन्होंने अपने सारे ग्रन्थ भगवान् रामको आधार मानकर ही लिखे । उनका श्रीरामचरितमानस अद्वितीय ग्रन्थ है । वेदों, उपनिषदों एवं पुराणोंसे लेकर धर्म-शास्त्रों, नीतिशास्त्रों तथा इतिहास-ग्रन्थोंके सार-तत्त्वको गोस्वामीजीने इस ग्रन्थमें रख दिया है । हमारे धर्मचिन्तन और संस्कृति-सभ्यताका मूर्तिमान् वाङ्मय है—रामचरितमानस । गोस्वामीजीकी इच्छा एक ऐसे काव्य-ग्रन्थके निर्माणकी थी, जो देवनदी गङ्गाकी सुविमल धाराके समान सबका हित करनेवाला हो । उनकी मान्यता भी है—

'कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥'
(मानस १ । १३ । ४½)

अतः ऐसे विश्व-कल्याणकारी काव्य-ग्रन्थके पूर्ण समापनके लिये मङ्गलके देवता गणेशकी वन्दना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य थी ।

योगकी दृष्टिसे देखनेपर भी गणेशजीका स्मरण बड़ा ही उचित, स्वाभाविक और समीचीन लगता है । योगपथके अनुसार हमारे शरीरमें छः चक्र हैं । इनमें सर्वप्रथम चक्र है—'मूलाधार-चक्र' । इसके नीचे कुण्डलिनी शक्ति सोयी हुई है । कुण्डलिनी जगकर जब सुषुम्णामें प्रवेश करती है, तब सर्वप्रथम वह मूलाधारमें ही आती है । मूलाधारके जाग्रत् होनेका फल ही है—अपार प्रतिभाकी प्राप्ति । मूलाधार-चक्रके देवता हैं—गणेश । उस चक्रकी बनावट ऐसी है कि गणेशजीकी आकृतिका ध्यान करनेसे मूलाधारकी सिद्धि प्राप्त हो जाती है । अतः अव्याहत प्रतिभाकी प्राप्तिके लिये गोस्वामीजीने गणेशजीका स्मरण आवश्यक समझा ।

हमारे यहाँ अति प्राचीनकालसे ही 'मङ्गलाचरण'की परम्परा चली आ रही है । ऐसा समझा जाता है कि मङ्गलाचरण करनेसे ग्रन्थकी निर्विघ्न समाप्ति हो जाती है । इसीलिये कविगण अपने काव्य-ग्रन्थोंकी निर्विघ्न-समाप्तिके लिये अपनी इच्छाके अनुरूप देवताओंका स्मरण करते आ रहे हैं । मङ्गलाचरणमें गोस्वामीजी श्रीगणेशजीके स्थानपर अपने आराध्य भगवान् श्रीरामका स्मरण कर सकते थे, परंतु चली आती हुई परम्पराको आदर देनेके लिये तथा धर्मशास्त्रोंकी मर्यादाकी रक्षाके लिये उन्होंने श्रीगणेशजीका ही स्मरण

मङ्गलाचरणमें किया। हमारे धर्मशास्त्रोंके अनुसार मङ्गलके दाता हैं—गणेशजी। 'मङ्गलानां च कर्तारौ' (१।१ श्लोक) तथा 'मोदक-प्रिय, मुद-मंगलदाता'(१)—कहकर गोस्वामीजीने 'श्रीरामचरितमानस' तथा 'विनयपत्रिका'मे श्रीगणेशजीकी वन्दना की है। गोस्वामीजी श्रीरामजीके चरितमें माधुर्य एवं प्रसादगुणकी विशिष्टता अनिवार्य मानते थे। वे सभी प्रकारके विघ्नोंसे निश्चिन्त होकर पूर्ण शान्तिसे राम-काव्यकी रचना करना चाहते थे; अतः विघ्नेश्वर विनायक श्रीगणेशका स्मरण नितान्त आवश्यक था।

गोस्वामीजीके विचारसे गणेशजी 'विद्या-वारिधि' और 'बुद्धि-विधाता' हैं। इस प्रकार गणेशजी विवेकके देवता हैं। मानव-जीवनमे सब कुछ हो और विवेक न हो तो उसका जीवन व्यर्थ है। विवेककी प्राप्ति किसी महान् संतसे ही हो सकती है और वह भी जिसपर भगवान् रामकी कृपा हो। संत-वन्दना-प्रकरणमे गोसाईंजी कहते भी हैं—

'बिनु सतसंग बिबेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥'
(मानस १।२।२½)

गणेशजी उच्चकोटिके संत हैं। गणेशजीका समग्र स्वरूप ही उनके विवेकमय स्वरूपका प्रतीक है। सदसत्‌की पहचान जिस शक्तिसे हो, वह 'विवेक' है; अतः विवेकी बड़ा गम्भीर होता है और सुचिन्तन करता है। यही कारण है कि गणेशजीकी सवारी चूहा है। विवेकी सबकी सुनता है; अतः गणेशजीके कान बहुत बड़े-बड़े हैं। विवेकी वाचाल नहीं होता; अतः गणेशजी लम्बोदर हैं, हल्के पेटवाले नहीं। चूहा कर्मका प्रतीक है। गणेशजी वाहन-सहित ऐसे सुशोभित होते हैं, मानो विवेकने कर्मपर आसन जमा लिया हो। विवेकमे सत्सङ्गकी अटूट आस्था होती है। इसीलिये जब प्रथमपूज्यका आसन ग्रहण करनेके लिये प्रतियोगिता हुई, तब जहाँ अन्य देवताओंने रास्तेमे नारद-जैसे संतका मिलना विघ्नप्रद समझा, उन्हें नमस्कारतक नहीं किया, वहाँ गणेशजी उनसे मिलकर अति प्रसन्न हुए। उन्होंने नारदजीको अपना प्रणाम निवेदित किया और वे सत्सङ्गके लिये ठहर भी गये। परिणाम यह हुआ कि नारदजीके सत्सङ्गसे वे ही प्रथमपूज्य बने। अतः राम-काव्यके निर्माणके पूर्व ऐसे प्रथमपूज्य एवं सत्सङ्गपरायण बुद्धि-विधाता देवता श्रीगणेशजीका स्मरण अनिवार्य था।

गणेशजीके विषयमें पौराणिक मान्यता है कि वे शंकरजीके विघ्न डालनेवाले गणोंके अधिष्ठाता एवं शासक हैं। अतः उन गणोंके विघ्नोंको सर्वथा रोककर आनन्द एवं मङ्गलका विधान करनेके लिये ही गोस्वामीजीने गणेशजीका स्मरण किया।

गोस्वामीजीने सारी मानव-जातिको ही राममय एवं रामप्रेमी (ईश्वर-प्रेमी) बनानेका पावन संकल्प लिया था। अतः उनके लिये यह आवश्यक था कि सबसे पहले उसी देवताका स्मरण किया जाय, जो राम-नाम-माहात्म्यका अनुपम ज्ञाता हो। गोस्वामीजीकी दृष्टि गणेशजीपर पड़ी। राम-नामकी महिमाके वे अद्वितीय ज्ञाता हैं। श्रीरामचरित-मानसमें ही गोस्वामीजीने लिखा है—

'महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ॥'
(मानस १।१८।२)

गोस्वामीजी अपने मानसमें राम-नाम-महिमाका ही गान करनेवाले थे। अतः श्रीराम-नाम-माहात्म्यके ज्ञाता एवं अद्वितीय रामभक्त श्रीगणेशका स्मरण कर उनका आशीर्वाद प्राप्त करना अनिवार्य था। इसलिये गोस्वामीजीने गणेशजीका स्मरण सबसे पहले किया।

ऐसी लोकश्रुति है कि भगवान् शंकरने दक्ष और गणेश—दोनोके सिर काटे। दक्ष एवं गणेश दोनो ही अनुपम बुद्धिमान् माने जाते हैं; किंतु विश्वासद्वारा दोनोको ही दण्डित किया गया। भगवान् शंकर विश्वासके स्वरूप हैं। दक्षको अज (बकरा) का और गणेशको गज (हाथी) का सिर प्रदान किया गया। गजका सिर पा लेनेपर गणेशजी 'विद्यावारिधि' और 'बुद्धि-विधाता' बन गये; साथ ही विश्वासी रामभक्त भी; क्योंकि गजका यह सिर उन्हें विश्वासके प्रतीक भगवान् शंकरद्वारा प्रदान किया गया था, जो भक्तिका जनक है। मानसमें स्पष्ट कथन है—

'बिनु बिस्वास भगति नहिं, तेहि बिनु द्रवहिं न रामु।'
(७।९०)

अतः मानस-निर्माणके समय 'विश्वास'-द्वारा पुष्ट राम-भक्त गणेशका स्मरण अनिवार्य था।

गणेशजी शिव और पार्वतीके पुत्र हैं, अर्थात् विश्वास और श्रद्धाके पुत्र हैं। भगवान् शिवको 'विश्वास' और भगवती पार्वतीको 'श्रद्धा' कहा गया है। मानसके मङ्गलाचरणमें वन्दना है—

'भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।'

(मानस १ । २ श्लोक)

गणेशजी इन्हीं श्रद्धा-विश्वासरूपी भवानी-शंकरके सुपुत्र हैं। अतः वे षट्सम्पत्ति-सम्पन्न ज्ञानके स्वरूप हैं। विश्वास और श्रद्धाके अभावमें न तो ज्ञान ही सम्भव है और न भक्ति ही। गीतामें कहा गया है—'श्रद्धावॉल्लभते ज्ञानम्।' अर्थात् श्रद्धावान् पुरुष ज्ञानको प्राप्त होता है। मानस (७।९०)मे कहा गया है—'**बिनु बिस्वास भगति नहिं।**' श्रद्धा और विश्वासके पुत्र होनेके नाते गणेशजी ज्ञान एवं भक्तिके समन्वित रूप हैं। रामचरितमानसमें भक्ति और ज्ञानका ही विशेष विवेचन है। अतः भक्ति-ज्ञानसे परिपूर्ण श्रीरामचरितमानसके प्रणयनके समय सबसे प्रथम भक्ति और ज्ञानके स्वरूप श्रीगणेशजीकी वन्दना आवश्यक थी; इसलिये तुलसीदासजीने गणेशजीका स्मरण किया।

ऐसा माना जाता है कि रामजीके दरबारके सर्वप्रथम द्वारपाल भी गणेशजी ही हैं। द्वारपालकी अनुमतिके बिना राम-दरबारमें प्रवेश पाना कठिन है। यही कारण है कि 'विनयपत्रिका'में जब सभी द्वारपालोंकी वन्दना करनेकी बात हुई, तब सर्वप्रथम पुस्तकके प्रारम्भमें गणेशजीकी ही वन्दना की गयी। गोस्वामीजी जानते थे कि बिना गणेशजीकी कृपाके श्रीरामके दर्शन, उनकी भक्ति तथा उनकी कृपाकी प्राप्ति असम्भव है; अतः गणेशजीकी वन्दना करते हुए गोस्वामीजीने श्रीसीतारामको अपने हृदयमें निवास करनेकी प्रार्थना की—

'**माँगत तुलसिदास कर जोरे। बसहिं राम सिय मानस मोरे॥**'

(विनय-पत्रिका १)

गणेशजी अद्वितीय लेखक माने जाते हैं। कहा जाता है कि अठारहों पुराणोंके मननशील द्रुत लेखक गणेशजी ही हैं। व्यासदेव बोलते गये और गणेशजी चुपचाप लिखते गये। गोस्वामीजीने समझा कि श्रीशंकरभगवान्द्वारा रचित तथा उनके ही द्वारा पार्वतीसे कथित इस अद्वितीय राम-कथाको उनके (तुलसीदास) द्वारा भाषामें निबद्ध करनेके लिये लेखन-कार्यमें निपुण गणेशजीके सहयोगकी नितान्त आवश्यकता है; अतः गोस्वामीजीने 'मानस'के प्रारम्भमें इनका बड़ी श्रद्धा और भक्तिसे स्मरण किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गणेशजीके स्मरणके पीछे गोस्वामी तुलसीदासके बड़े ही पवित्र भाव छिपे थे। गणेशजी मङ्गलदाता, बुद्धि-विधाता, बाधा-हर्ता और सिद्धि-दाता तो हैं ही, स्वभावसे परम संत, राम-नाम-माहात्म्यके अद्वितीय ज्ञाता, अनुपम लेखक, भक्ति तथा ज्ञानके मूर्तिमान् विग्रह एवं सच्चे श्रीसीताराम-भक्त भी हैं। कुछ संतों और महात्माओंकी तो यह भी धारणा है कि "गणेशजीका स्मरण स्वयं भगवान्का स्मरण है। गणेशजीकी मूर्तिका ध्यान करनेसे 'ॐ' का ध्यान हो जाता है। वेदों और उपनिषदोंमें कहा गया है कि "ॐ' ही सब कुछ है। 'ॐ' ब्रह्मका वाचक है।" गणेशजीका सर्वप्रथम स्मरण कर गोस्वामीजीने उपनिषद्की भाषामे पुरुषोत्तम भगवान् परात्पर ब्रह्मका ही स्मरण किया। 'वसिष्ठ-संहिता'में भी गणेशजीको श्रीरामका स्वरूप कहा गया है—

रामस्य नाम रूपं च लीला धाम परात्परम्।
एतच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानन्दविग्रहम्॥

पं० श्रीरामकुमारजी रामायणीकी मान्यता है कि—

जो सुमिरत सिधि होइ गननायक करिबर बदन।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धिरासि सुभ गुन सदन॥

(मानस १ । १ सो०)

—में भगवान्के नाम (गणनायक), रूप (करिवरवदन), लीला (सुमिरत सिधि होइ) और धाम (शुभगुणसदन) सब कुछ आ जाते हैं। अतः गोस्वामीजीने श्रीगणेशकी वन्दनाके रूपमें परात्पर भगवान् रामकी ही वन्दना की है।

(२)

(लेखक—डा० श्रीरामचरणलाल शर्मा, एम्० ए०, पी-एच० डी०)

अतीतके पृष्ठोंके आलोडनसे विदित होता है कि भारतीयोंके प्रत्येक शुभ कार्यका सूत्रपात श्रीगणेश-पूजन एवं स्तवनद्वारा होता रहा है। उनकी दृष्टिमें गणेश आदिदेव, विघ्न-विनाशक, मङ्गलकर्त्ता और सिद्धि-प्रदाता रहे हैं। भारतीय समाजका कोई भी अङ्ग श्रीगणेश-पूजन एवं स्तवनकी प्रथासे अछूता नहीं रहा। तभी तो साधारण कवि तथा भक्तकवि—दोनोंकी ही रचनाओंके प्रारम्भमें मङ्गलाचरणके रूपमें श्रीगणेश-वन्दना उपलब्ध होती है। भारतकी इस परम्पराको आदर देने तथा स्थिर रखनेकी दृष्टिसे ही कविकुल-गुरु भक्त-शिरोमणि महात्मा तुलसीदासजीने अपनी रचनाओंके प्रारम्भमें गणेश-वन्दनाको स्थान दिया है। उन्होंने अपने

पूर्वजनोंकी ही भाँति गणेशजीको कृपा-सिन्धु, सर्वसमर्थ, विद्या-वारिधि, बुद्धि-विधाता और सिद्धि-प्रदाताके रूपमें निहारा है। भक्ति-भावनासे ओत-प्रोत उनकी प्रसिद्ध रचना 'विनय-पत्रिका' का प्रथम पद इसका प्रतीक है—

गाइये गनपति जगवंदन। संकर-सुवन भवानी-नंदन॥
सिद्धि-सदन, गज-बदन, विनायक। कृपा-सिंधु, सुंदर, सब लायक॥
मोदक-प्रिय, मुद-मंगल-दाता। विद्या-वारिधि, बुद्धि-विधाता॥
माँगत तुलसिदास कर जोरे। बसहिं राम सिय मानस मोरे॥

पदकी अन्तिम पङ्क्तिसे स्पष्ट होता है कि गणेशजी मनोरथदाता भी हैं, तभी तो तुलसीने उनसे अपने इष्टदेव भगवान् श्रीरामको सीतासहित अपने हृदयमें निवास करानेकी याचना की है। विनयपत्रिकाके इस प्रथम पदमें श्रीगणेश-स्मरणद्वारा मङ्गलाचरण करके काव्य-परम्पराका निर्वाह तो हुआ ही है, भक्तिभावकी याचना भी की गयी है। सर्व-प्रथम श्रीगणेशजीसे भक्तिकी याचना करके गोस्वामीजीने यह संकेत किया है कि न केवल काव्य-रचना, अपितु ईश-अर्चना-प्रार्थनादि भी श्रीगणेशजीसे आरम्भ करनी चाहिये। तभी तो 'विनयपत्रिका'-पर उनके आराध्य अनाथनाथ श्रीरघुनाथने अपने हाथसे 'सही' कर दी।

गोस्वामीजीने श्रीगणेशजीका वन्दन एवं स्मरण अपनी रचनाओंकी सफलता तथा निर्विघ्न-समाप्ति-हेतु भी किया है। उदाहरणस्वरूप 'पार्वती-मङ्गल,' 'जानकी-मङ्गल,' 'रामाज्ञा-प्रश्न' और 'रामचरितमानस' को रखा जा सकता है। 'पार्वती-मङ्गल' तथा 'जानकी-मङ्गल'मे उन्होंने दो-दो छन्दोंमे गुरु, शिव, पार्वती, शारदा, विष्णु तथा राम आदिके सहित श्रीगणेशजीकी वन्दना की है। यथा—

बिनइ गुरहि गुनिगनहि गिरिहि गननाथहि।
हृदयँ आनि सिय राम धरे धनु भाथहि॥१॥
गावउँ गौरि गिरीस बिबाह सुहावन।
पाप नसावन पावन मुनि मन भावन॥२॥
(पार्वती-मङ्गल)

गुरु गनपति गिरिजापति गौरि गिरापति।
सारद सेष सुकबि श्रुति संत सरल मति॥१॥
हाथ जोरि करि बिनय सबहि सिर नावौं।
सिय रघुबीर बिबाहु जथामति गावौं॥२॥
(जानकी-मङ्गल)

'रामाज्ञा-प्रश्न' के प्रथम सर्गके प्रथम सप्तकमें उन्होंने गणेश-स्मरणकी महत्ता प्रतिपादित की है। उसके अनुसार—स्वदेश अथवा विदेशमें गणेश-स्मरणसे प्रारम्भ किये गये सभी शुभ कार्योंका परिणाम कल्याणकारी होता है। श्रीगणेशजीका स्मरण सभी देवताओंको अनुकूल बनानेवाला, सभी सिद्धियोंको देनेवाला तथा यात्राको सफल करनेवाला होता है। वह विद्या, विनय और धर्मके फलको सुलभ करानेवाला तथा सुमङ्गलकी खानको प्रकट दिखानेवाला है। अतः सभी कार्योंकी सफलताके लिये यह अत्यन्त आवश्यक है।

'रामचरितमानस'के आरम्भमें 'गणेश-वन्दना' श्लोक तथा सोरठेके माध्यमसे की गयी है। श्लोकमें गणेश और वाणी (सरस्वती) की सम्मिलित वन्दना है। यथा—

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ॥१॥

दोनोंकी वन्दनाका कारण बतलाते हुए गोस्वामीजीने स्पष्ट किया है—'वर्णों अर्थसमूहों, रसों, छन्दों और मङ्गलोंके विधायक सरस्वतीजी और गणेशजीकी मैं वन्दना करता हूँ।'

सोरठामें उन्होंने मात्र गणेशजीसे अनुग्रह (कृपा) करनेकी अभ्यर्थना की है—

जो सुमिरत सिधि होइ गन नायक करिबर बदन।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन॥१॥

अभ्यर्थनाका कारण स्पष्ट करते हुए कहा है—'जो गणोंके नायक (स्वामी) हैं, बुद्धिकी राशि और शुभ गुणोंके घर हैं तथा जिनका गजके समान मुख है, उन गणेशजीका स्मरण करते ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है।'

मङ्गलाचरण या भक्ति-याचनाके अवसरपर की गयी गणेश-वन्दनाके अतिरिक्त गोस्वामीजीने विवाहादि माङ्गलिक अवसरोंपर भी गणेश-पूजनकी प्राथमिकताकी भी चर्चा की है। पार्वती-शिव और सीतारामके विवाह इसके द्योतक हैं। पार्वती-शिवके विवाहके अवसरपर किये गये गणेश-पूजनकी झाँकी देखिये—

'मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि।'
(मानस १। १००)

सीतारामके विवाहकी झाँकी भी द्रष्टव्य है। इस अवसरपर सीताजीद्वारा गणेश-पूजन कराया गया है—

'आचारु करि गुर गौरि गनपति मुदित बिप्र पुजावहीं।'

(मानस १ । ३२२ । १ छन्द)

स्पष्ट है, जब सीताजीको विवाह-मण्डपमें लाया गया, तब दोनों कुल-गुरुओंने कुलाचार करके प्रथम तो उनसे गणेशजी और गौरीजीकी पूजा करवायी और तदुपरान्त उनको सुन्दर सिंहासनपर बैठाया।

यात्राके पूर्व भी तुलसीदासजीने गणेश-स्मरणकी बात कही है। जैसे—अयोध्यानरेश दशरथ राम-विवाहके अवसर-पर जनकपुरीको प्रस्थान करते समय रथारूढ़ होनेसे पूर्व गणेश, गुरु, शिव, पार्वती आदिका स्मरण करते हैं—

तेहि रथ रुचिर बसिष्ठ कहुँ हरषि चढ़ाइ नरेसु।
आपु चढ़ेउ स्यंदन सुमिरि हर गुर गौरि गनेसु॥

(बालकाण्ड ३०१)

कतिपय ऐसी स्थितियोंमें भी गोस्वामीजीने गणेश-स्मरण कराया है, जहाँ कार्यकी अथवा मनःकामनाकी सफलतामें पूर्णतः बाधा उपस्थित हो जाती है और उस बाधाको दूर करनेमें मानवकी बुद्धि और शक्तिके सम्मुख प्रश्नवाचक चिह्न लग जाता है, वहाँ मनुष्य दैवी शक्तियोंकी शरणमें जा गिरता है। इस सम्बन्धमें धनुष-यज्ञका प्रसङ्ग द्रष्टव्य है।

गुरु श्रीविश्वामित्रकी आज्ञा पाकर शिव-धनुष तोड़नेके लिये जब भगवान् श्रीराम चापके समीप आते हैं, तब वज्रसे भी कठोर शिव-धनुष और श्रीरामके सुकोमल शरीरको देख जानकीजी मन-ही-मन अत्यन्त ही व्याकुल होती हैं और उनकी यह व्याकुलता जब चरम सीमापर पहुँच जाती है, तब वे इससे मुक्त होनेके लिये पार्वती-शिव और गणेशजी-की मन-ही-मन वन्दना करके उन्हें मनाने लगती हैं—

मन हीं मन मनाव अकुलानी। होउ प्रसन्न महेस भवानी॥

* * *

गन नायक बरदायक देवा। आजु लगें कीन्हिउँ तुअ सेवा॥
बार बार बिनती सुनि मोरी। करहु चाप गुरुता अति थोरी॥

(बालकाण्ड २५६ । ३-४)

—और वरदाता गणेशजीके स्मरण एवं वन्दनद्वारा उनका मनोरथ सिद्ध भी हो गया।

पञ्चदेवोंकी उपासनाके समय भी श्रीगणेशजीकी उपासना श्रीगोस्वामीजीने सर्वप्रथम करवायी है। अयोध्यावासियोंकी पञ्चदेवोंमें निष्ठा है। पञ्चदेवोपासना उनका दैनिक नियम है। इस नियम-पालनकी झाँकी चित्रकूटमें देखनेको मिलती है—

करि मज्जनु पूजहिं नर नारी। गनप गौरि तिपुरारि तमारी॥
रमारमन पद बंदि बहोरी। बिनवहिं अंजुलि अंचल जोरी॥

(मानस २ । २७२ । २-२½)

चित्रकूटमें अयोध्यावासी श्रीगणेश, गौरी, शंकर, सूर्य तथा विष्णुकी वन्दना करके फिर सीतारामके राजा-रानी होनेकी करबद्ध प्रार्थना करते हैं।

उल्लासका उत्कर्ष तथा भावकी अगम्यता प्रदर्शित करनेके लिये श्रीगणेशजीकी कहीं-कहीं असमर्थता भी प्रस्तुत की गयी है। श्रीसीतारामके विवाहोपरान्त अयोध्याका उल्लास-सागर इतना उच्छलित हुआ कि अयोध्याके प्रेम, प्रमोद, विनोद एवं मनोहरताका वर्णन करनेकी सामर्थ्य शत-शत शारदा, शेष, गणेश, महेश, वेद और ब्रह्मा आदिमें भी नहीं है—

प्रेमु प्रमोद बिनोदु बढ़ाई। समउ समाजु मनोहरताई॥
कहि न सकहिं सत सारद सेसू। बेद बिरंचि महेस गनेसू॥

(मानस १ । ३५४ । २-२½)

इसी प्रकार भरतजीकी मति-रति-गति, उनका भाव-वैभव शारदा, शेष, गणेशके लिये भी अगम्य है—

भरत रहनि समुझनि करतूती।
....
सेस गनेस गिरा गमु नाहीं॥

(मानस २ । ३२४ । ४)

इस प्रकार हम देखते हैं कि गोस्वामी तुलसीदासजीने विभिन्न परिस्थितियोंमें श्रीगणेशजीका पूजन, स्तवन, वर्णन एवं स्मरण स्वयं करके मानवमात्रके लिये हितकारी सिद्ध किया है। इसके पीछे उनका दृष्टिकोण केवल परम्पराका निर्वाह करना ही नहीं है, अपितु उनके अन्तरकी आस्था अभिव्यक्त हुई है। श्रीगोस्वामीजी श्रीराम-भक्त होकर भी श्रीगणेशजीको आदिदेव एवं प्रथमपूज्य देवता मानते हैं। कुछ भी हो, इतना अवश्य है कि गोस्वामीजीने रामचरित-मानस तथा अन्य रचनाओंके माध्यमसे श्रीगणेशजीके पूजन, वन्दन, स्तवन एवं स्मरणका जो संदेश दिया है, वह आज भी बड़ा ही उपयोगी और कल्याणकारी है। उसमें मानव-समाज और राष्ट्र—दोनोंका हित समानरूपसे निहित है।

तमिळनाडुमें श्रीगणेशका प्रभाव

(लेखक—विद्वान् डॉ० श्रीनिवासवरदन् एम्० ए० [तमिळ एवं हिंदी])

श्रीगणेशजी ओंकारकी साक्षात् मूर्ति हैं तथा सम्पूर्ण तमिळ-प्रदेशमें उनकी सभक्ति पूजा की जाती है। तमिळ-प्रदेशकी जनता श्रीगणेशके सभी नामोंसे परिचित है। (१) विनायक, (२) विघ्नेश, (३) विघ्नविनाशक, (४) गणपति, (५) एकदन्त, (६) मोदकहस्त, (७) मूषकवाहन, (८) गजमुख, (९) गजानन, (१०) वक्रतुण्ड तथा (११) हेरम्ब आदि सभी नाम उनकी जिह्वापर रहते हैं। ये सब संस्कृत-शब्द होकर भी सामान्य जनताकी वाणीमे नित्यप्रति प्रचलित हैं। इनके अतिरिक्त तमिळ-भाषासे सम्बद्ध तथा लोकप्रिय एक और नाम है 'पिळ्ळैयार' (पिल्लैयर)। 'पिळ्ळै'का अर्थ है—पुत्र तथा 'आर' आदरसूचक प्रत्यय है। अतः हिंदीमे इसे 'पुत्रजी' कह सकते हैं। यह सभी जानते हैं कि श्रीगणेश पार्वती-शिवजीके पुत्र हैं।

पिळ्ळैयार शुळि

तमिळ हिंदू-जनता पत्र लिखते समय प्रारम्भमे ऊपर श्रीगणेशसूचक एक विशेष चिह्न बनाती है जो श्रीगणेशजीका ही द्योतक है। इस चिह्नविशेषको तमिळ-प्रजा पिळ्ळैयार शुळि (श्रीगणेशगोल्) कहती है।

श्रीगणेशजीके सेवा-प्रकार

तमिळनाडुकी भक्त-जनता विष्णु तथा शिवजीके मन्दिरोंमे साष्टाङ्ग प्रणाम करती है, परंतु विनायक-मन्दिरके सामने अपनी विनतीको दूसरे प्रकारसे प्रकट करती है। भक्त विनायकके सामने खड़े होकर अपने मस्तकके दोनों ओर दोनो मुष्टियोसे मृदुल आघात करते हैं। अपने दोनो कानोको दोनो हाथोसे पकड़कर उठते-बैठते हैं। यह सेवा-प्रकार बड़ा विचित्र है। ये दोनों क्रियाएँ यौगिक दर्शनसे सम्बद्ध हैं। मस्तकपर मुष्टिसे मृदुल आघात करनेसे आज्ञाचक्र उत्तेजित किया जाता है; उठने-बैठनेकी क्रियासे सुषुम्णा नाड़ीपर प्रभाव पड़ता है; अतः सुषुम्णा ऊर्ध्वमुखी हो जाती है। तमिळनाडुमें श्रीगणेशजीकी प्रसिद्ध पूजा-सामग्री है—(१) दूर्वा, (२) वह्निपत्र (शमी-पत्र) और (३) अर्कपत्र।

गणेश-सम्बन्धी रचना

ग्रन्थ-लिपिमें एक छोटी-सी पुस्तिका 'गणेशसहस्रनाम' की है, जिसमें प्रत्येक नाम गकार-अक्षरसे प्रारम्भ होता है। एक दूसरा 'गणेशसहस्रनाम' भी है, जिसमें दूसरे अक्षर प्रारम्भिक अक्षरके रूपमें प्रत्येक नामके आदिमें अवस्थित हैं। उनकी अष्टोत्तरशत नामावलियाँ बहुत-सी हैं। इससे परब्रह्मकी इस विशिष्ट मूर्तिके प्रति सर्वसाधारणकी यथार्थ भक्तिकी स्पष्ट सूचना मिलती है।

दो सौ वर्षके पहले तंजौर जिलेके 'क्षेत्रपालक'-नामक ग्राममें 'साम्बशिवशास्त्रीजी' का जन्म हुआ। वे जन्मसे शैव होनेपर भी अपनी आयुके मध्यकालमें गणपत्युपासक बन गये। इन्होंने अपनी अप्रतिम प्रतिभासे (१) गणेशाद्वैतम्, (२) ज्ञानकाण्डम्, (३) कर्मकाण्डम्, (४) उपासनाकाण्डम् तथा (५) गणेश-उपनिषद् आदि कई संस्कृत गाणपत्य-वेदान्त ग्रन्थोंकी रचना की थी। इन्होंने इन समस्त ग्रन्थोंको योगीन्द्र मठको समर्पित किया, जो पूनासे तीन मील दूर 'मयूरेश' नामक स्थानपर है।

श्रीगणेश-विषयक ग्रन्थ तमिळ भाषामें अनेक हैं। इनमें 'औवैयार' (कवयित्री) द्वारा रचित 'विनायकर् अकवळ' सुप्रसिद्ध है। इनके द्वारा रचित 'नल्वळि'-ग्रन्थका मङ्गलाचरण श्रीगणेशजीके वन्दनापरक है। यह पद्य समस्त तमिळनाडुमे प्रचलित है—

पालुम् तेळितेनुम् पाकुम् परुप्पुमिवै
नालुम् कलन्दुनक्कु नान् तरुवेन्-कोलम् शेय्।
तुङ्गकरिमुखत्तूमणिये नीयेनक्कु
शङ्गत्तमिळ मुन्रुम् ता॥

भाव यह है कि 'हे तुङ्ग गजशुण्डाकार मुँहवाले! मैं तुम्हारे लिये दूध, शुद्ध मधु, पाक् तथा दाल—इन चारोंको मिलाकर दूँगा। तुम मेरे लिये शंगत्तमिल तीनोंको दे दो।'

इसके अतिरिक्त अरुणगिरिनाथन्, रामलिंगम् स्वामिगळ् आदि शैव संतोंने भगवान् श्रीगणेशके विषयमें कई मुक्तक-रचनाएँ की हैं, जिनको भक्तगण गा-गाकर भावविभोर हो जाते हैं।
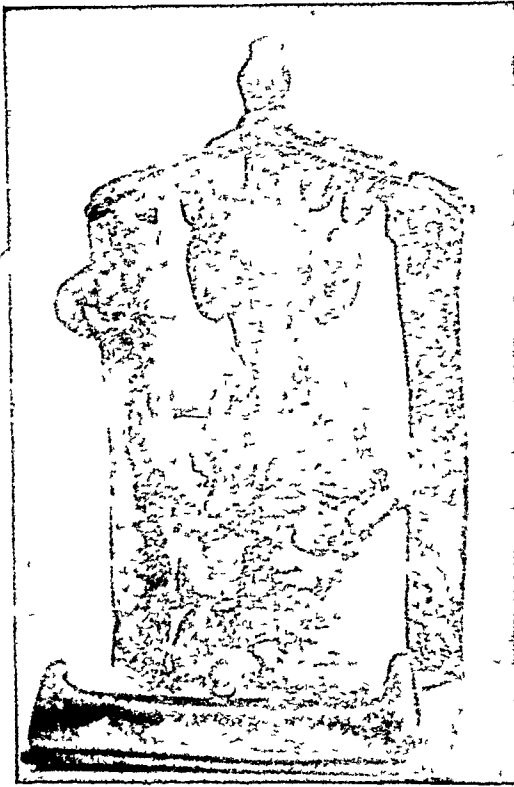
विदेशोंमें श्रीगणेश-मूर्तियाँ

ब्रिटिश संग्रहालयकी श्रीगणेशमूर्ति

श्रीगणेशकी स्थानक मूर्ति—जावा [पृष्ठ ४५१

श्रीगणेशकी कांस्य मूर्ति—बोर्नियो [पृष्ठ ४५२
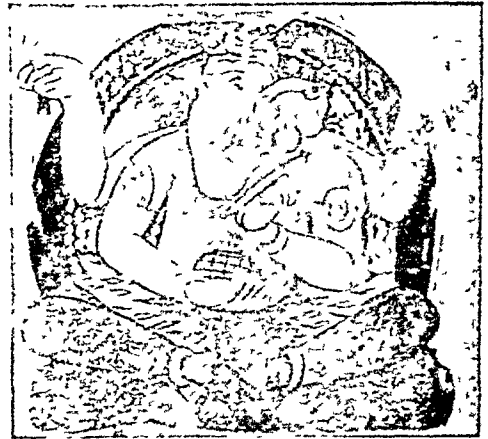
श्रीगणेशका भित्तिचित्र—चीनी तुर्किस्तान

दो प्रसिद्ध प्राचीन गणेश-मूर्तियाँ
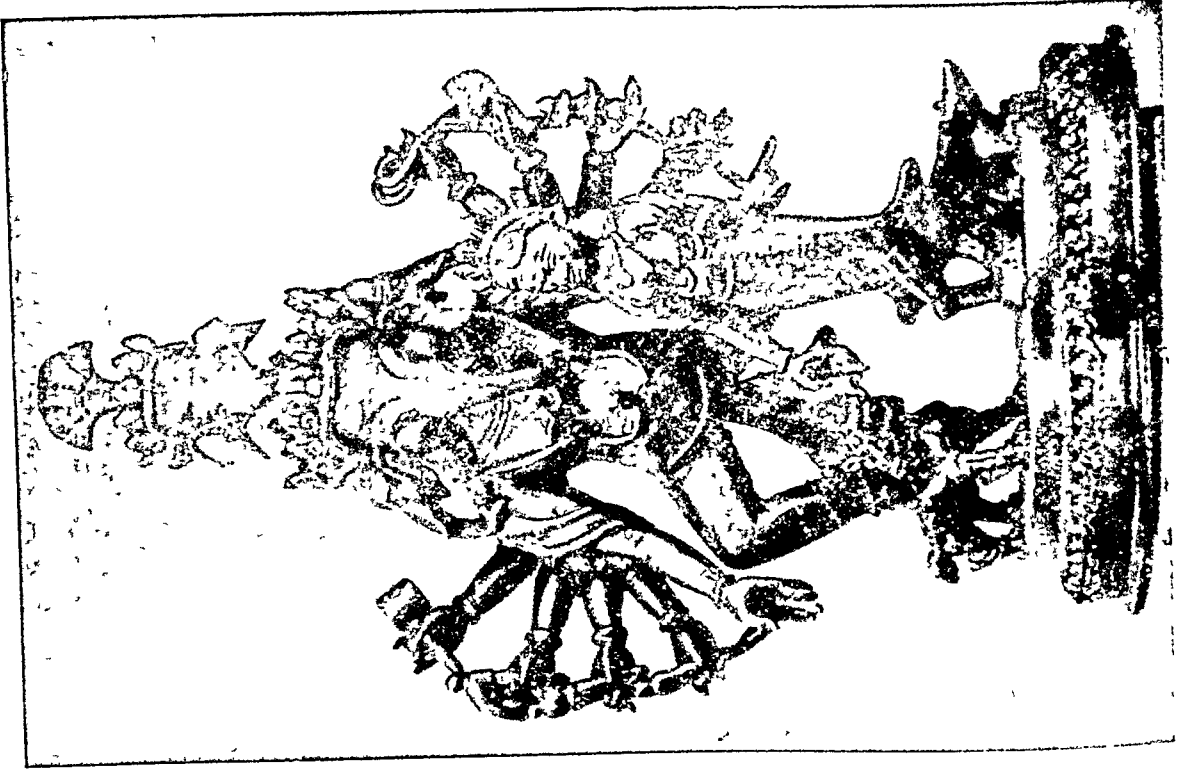
सिंहवाहिनी शक्ति-सहित मूषकवाहन श्रीहेरम्बकी मूर्ति—नेपाल [पृष्ठ ४५२

श्रीगणेशकी कांस्य मूर्ति—कंबोडिया [पृष्ठ ४५२
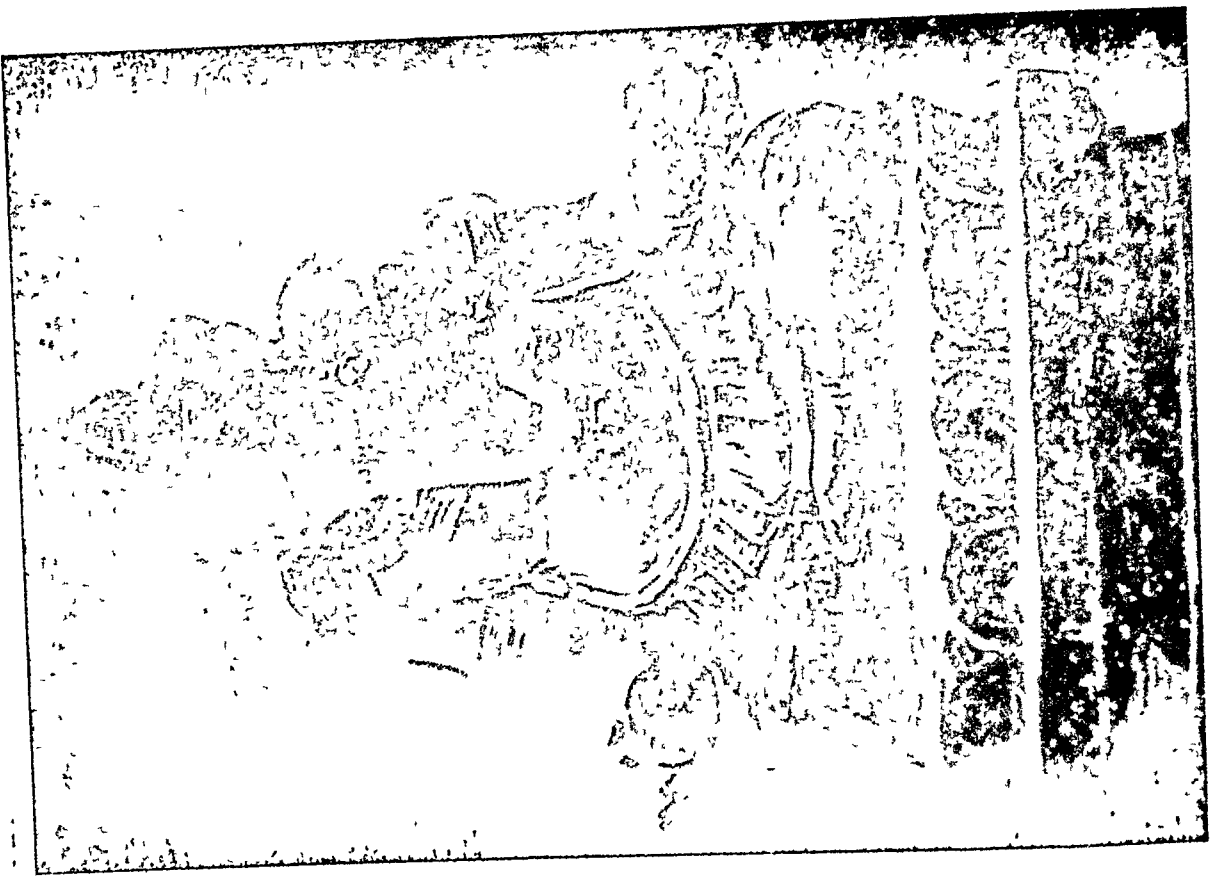
तमिळ भक्ता औवैयार्-विरचित 'विनायकर् अकवल'में श्रीगणेश

(लेखक—प्रो० के० एस० चिदम्बरम्, एम्० एद्०, 'भारद्वाजन्')

अनादिकालसे सनातनधर्मावलम्बी इस भारतीय श्रीगणेशकी प्रार्थनाके बलपर सभी कार्योंमें सफलता प्राप्त करते आये हैं। पौराणिक प्रमाण है कि देवगणतक अपनी कार्य-सिद्धिके लिये प्रथमतः गणेशकी वन्दना करते हैं। ऐसे श्रीगणेशजीकी अमोघ साधनामें सिद्धिप्राप्त एक तमिळ वृद्धाकी आत्मानुभूतिपूर्ण प्रार्थना ही प्रस्तुत 'विनायकर् अकवल'का विषय है।

तमिळ्नाडुकी जनतामें 'औवैयार्' नामकी एक वृद्धा कवयित्रीकी बालजनोचित नीतिपरक रचनाएँ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। तमिळमें 'औवै' शब्द—पूर्वजा, माता, मातामही-जैसा अर्थका निर्देशक है। आदरवाची 'आर्' प्रत्यय लेकर वही उनका नाम हो गया। जन्मसे ही वे देवांश-युक्त थीं और अपने माँ-बापकी सात संतानोंमें अग्रजा थीं। नियतिकी ही बात थी कि इनके जन्म होते ही इन्हें छोड़कर माताको अपने यात्री-पतिके साथ-साथ आगे बढ़ना पड़ा। इसपर व्याकुलहृदया माताको आश्वासन देते हुए उस नवजात बच्चीके मुँहसे वाणी निकली, जिसका सार था कि 'सर्वनियन्ता शिव मेरी रक्षा करेंगे, तुम दुःखी मत होना।' थोड़ी ही देर बाद उस रास्तेसे वाणकुलके एक दम्पति आये। उन्होंने उस शिशुको गोदमें उठा लिया। बालिकाका पालन-पोषण होने लगा। बचपनसे ही उनकी लगन गणेश-पूजापर रही, फलतः वे अल्पकालमें ही विदुषी हो गयीं। वयःप्राप्त होते-होते सांसारिक जीवनकी असारता उनकी समझमें आ गयी और उन्होंने इस संसारमें पावन जीवन व्यतीत करनेके लिये वृद्धा रूप ही उचित समझा। अतः गणेशसे प्रार्थना कर उन्होंने यौवनमें ही वार्धक्यका वरदान प्राप्त कर लिया और तत्कालीन तमिळ-प्रदेशभरमें धर्मका प्रचार किया। चेर-चोळ-पाण्ड्य राजाओंसे आदृत हो उन्होंने तमिळ-जनताको विविध प्रकारसे आत्मबोधपूर्ण उपदेश दिये। उनके कई महत्कार्योंके वृत्तान्त तमिळ्नाडुके बच्चोंके लिये आज भी स्मरणीय हैं। उनकी सूत्ररूप सूक्तियाँ तमिळ बाल-शिक्षामें प्रमुख स्थान रखती हैं।

यद्यपि उनके कालके सम्बन्धमें विद्वानोंमें ऐकमत्य नहीं है, पर उनके जीवनकी एक घटना प्रमाणित करती है कि वे राजा चेरमान पेरुमाळ तथा 'तमिळ तेवारम्' के गायकोंमें अग्रगण्य और सुन्दरर्‌की समकालीन थीं। वे दोनों शिवभक्त एक बार ईश्वराज्ञा पाकर कैलास-यात्राको निकले। बीच रास्तेमें राजाने औवैयार्‌को याद किया। औवैयार् अपने निवास-स्थानपर गणेश-पूजामें लीन थीं। उनका मन थोड़ा विचलित हो उठा। प्रज्ञाबलसे बात समझकर वे तत्क्षण कैलास-यात्रामें उनके साथ होनेके विचारसे पूजामें जल्दी करने लगीं। उसी समय गजमुख श्रीगणेशजीने उन्हें शान्त करते हुए कहा कि 'अनुष्ठानके सम्पन्न होनेपर तुम उनके पहले ही कैलास पहुँच जाओगी।' तब शान्त एवं सानन्द मनसे उन्होंने गणेशकी प्रार्थनामें जो स्वानुभूतिपूर्ण गान गाया, वही यह 'विनायकर् अकवल' माना जाता है। इस प्रार्थना-गानकी समाप्तिके बाद क्षणभरमें भगवान् गणेशने औवैयार्‌को उठाकर कैलास-शिखरपर खड़ा कर दिया। स्वयं देरीसे पहुँचनेपर राजाने चकित मनसे उनसे प्रश्न किया। प्रश्नके उत्तरमें उनका कथन था—

मतुर मोळि नल् उमैयाळ् पुतल्वन् मलर् पतत्तै
मुतिर निनैय वल्लार्क्करितो ? मुकिल् पोल् मुळंकि
अतिर नटन्तिटु यानैयुं तेरुं अतन् पिन् वरुम्
कुतिरैयुं कातं किळवियुं कातं कुलमन्नने।

अर्थात् उमानन्दन गणेशका अनवरत स्मरण करनेवालोंके लिये दुस्साध्य क्या है? रथ-गज-तुरगादि कोसों पीछे रह जायँ, पर बूढ़ी कोसों आगे निकल जा सकेगी। स्पष्ट है कि गणेशध्यानमें निमग्न अजपा-जाप-सिद्ध योगबलसे ही औवैयार् कैलास-शिखरपर एकदम पहुँच गयी थीं। ब्रह्मरन्ध्र-सरसीरुहोदरस्थित शिव-परमहंससे एक हो चिदानन्दामृतपान करती हुई वे अमर हैं, ऐसी उस प्रदेशवासियोंकी मान्यता है।

'केकारव'को तमिळमें 'अकवल' कहा जाता है। तमिळके एक छन्दविशेषका भी यह नाम होता है। केकारव-आलापमें गणेशको पुकारकर प्रार्थना करनेकी रीतिसे रचित ७२ पंक्तियोंका यह गीत है। इस गीतमें भगवान् गणेशको सम्बोधित करते हुए उनके संक्षिप्त पादादिकेशान्तका वर्णन है। तत्पश्चात् स्वानुभूतिका निवेदन करते हुए अन्तमें उनके चरणोंपर अपनेको न्योछावर कर दिया गया है। इस भक्ति-रस-सिक्त गीतका एक अंश इस प्रकार है—

शीतकळशचन्दनास्वासरैन्पूस्
पग्वञ्जिळ्डंपु पलविशै पाड
प्रोन्गरै ञाणुं पून्तुकिल् आटैयुं
यन्न मरुंकिद् वळन्तंळकेरिष्प
तत्तुव निलैयैत्तन्तेनै आण्ट
वित्तक विनायक निरै कळल् शरणे ॥

'शीतल कलश-गन्धसे युक्त लाल कमल-सम चरणोंपर संगीत-वैविध्यमें बजनेवाले नूपुरोंसे शोभित होनेवाले तथा स्वर्ण-कटिसूत्र एवं कोमल शुक्लाम्बर-परिधानसे देदीप्यमान सूक्ष्म कटि प्रदेशवाले सर्वसमर्थ विनायक! दैवी गन्धयुक्त तेरे चरण-कमल ही शरण्य हैं (उन्हींपर मैं न्योछावर हूँ)।'

तेलुगु कवियोंका गणेश-स्मरण

(लेखक—श्रीचल्लपल्लि भास्कर रामकृष्णमाचार्युलु बी०ए०, बी०एड०)

तेलुगु भाषा दक्षिण भारतकी प्रधान भाषाओंमेंसे एक है। गत एक हजार वर्षोंमें तेलुगु-भाषाके लगभग सभी प्रसिद्ध कवियोंमें श्रीगणेशजीका स्मरण किया है। यहाँ सीमित स्थानमें कुछ कवियोंके गणेश-स्मरणोंका परिचय दिया जाता है—

नन्नेचोड कविराज (११-१२ शती)—इनका 'कुमार-सम्भव' आन्ध्र वाङ्मयका अद्भुत रत्न है। इसमें इन्होंने गणेशकी स्तुति अनोखे ढंगसे की है—

सितदन्तयुगंबचिरांशुलात्म गचं
बुदसिताम्बुजंन बुरु गर्जनम्बुग
रसद्रुचि शक्रशरासनंबुनै चन
मदवारिवृष्टि हितसस्यं समृद्धियनथ वेळ नों
जनु गणनाथुडिच्चु ननिशम्बु न भीष्ट फलंबु माकिकन् ॥

'गणेशजीके शरीरकी छवि काले मेघकी तरह, सफेद कान्तिवाले दाँत मेघके अरे (Edge) की भाँति, उनके कटाक्ष इन्द्रचापके सदृश और उनका मदस्राव जल-वृष्टि (जो धन-धान्य-समृद्धिका हेतु है) के समान है। ऐसे मेघरूपी श्रीगणेशजी हमारे अभीष्टोंकी पूर्ति करें।'

यहाँ श्रीनन्नेचोडद्वारा गणेशजीकी शरीरकान्तिको काला कहना तथा उनको मेघसे अभिन्न कहना दोनो विशिष्ट ही हैं।

एर्रना (१३००—१३५० ई०)—अपने 'नरसिंहपुराण'के आरम्भमें इन्होने गणेशजीकी स्तुति इस प्रकार की है—'अम्बिकाजी पुत्र-प्रेमके वशीभूत हो गणेशजीका आलिङ्गन करने लगीं। माताजीके इस आलिङ्गनसे मुदित गणेशजी हमारा मनोरथ पूरा करें।'

बम्मेर पोतना (चौदहवीं शती)—ये तेलुगु-भाषाके भक्त-कवियोंमें अग्रगण्य हैं। इन्होंने दारिद्र्य-पीड़ित होनेपर भी राजाश्रयकी उपेक्षा करके खेतीसे जीविकोपार्जन किया और श्रीरामचन्द्रकी प्रेरणासे 'श्रीमद्भागवत'को आन्ध्र भाषामें लिखकर आत्महित तथा लोक-कल्याणको सिद्ध किया। इन्होंने अपने भागवतमें श्रीगणेशजीकी प्रार्थना बहुत ही सुन्दर ढंगसे की है।

अल्लसानि पेद्दना (सोलहवीं शती)—इन्होंने 'मनुचरित्र'-नामक एक प्रबन्ध-काव्यकी रचना की है, जिसका आन्ध्रभाषामें अपनी मौलिकताके कारण विशिष्ट स्थान है। रचना-वैशिष्ट्यके कारण आप प्रबन्ध-शैलीके प्रवर्तक कहे जाते हैं। इन्होंने गणेशजीकी बाल्यलीलाका वर्णन गणेश-स्मरणमें यों किया है—

'गणेशजी सतीजीके अङ्कमें लेटकर स्तन-पान करने लगे। उन्होंने बाल-चापल्यसे सतीजीके दूसरे स्तनको अपने शुण्डसे पकड़नेकी चेष्टा की। परंतु अर्द्धनारीश्वरका शेष भाग शिवस्वरूप था और दूसरे स्तन-भागपर नागराज विद्यमान थे। उन नागराजको मृणाल समझकर उसे पकड़नेकी कोशिश करनेवाले श्रीगणेशजी कृतिपतिको समस्त सौभाग्य प्रदान करें।'

धूर्जटि (सोलहवीं शती)—इन्होंने अपने 'काळहस्तीश्वर-माहात्म्य'मे गणेशकी स्तुति उदात्त रीतिसे की है—

'अपने-अपने कार्यके निर्विघ्न सम्पादनकी अभिलाषासे प्रेरित होकर सृष्टि, स्थिति तथा लयके समय ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्रके द्वारा प्रार्थना किये जानेपर जो श्रीगणेशजी अपने स्मरणमात्रसे ही विघ्न-नाश तथा कामना-पूर्ति कर देते हैं, उन दया-समुद्र श्रीगणेशजीकी हम उपासना करते हैं।'

इस तरह समय तथा स्थानाभावके कारण बहुत ही परिमितरूपमें कवियोंका परिचय दिया गया है।

वङ्गदेशमें श्रीगणेशोपासना

(लेखक—श्रीरासमोहन चक्रवर्ती एम्० ए०, पी-एच्०डी०, पुराणरत्न, विद्या-विनोद)

वङ्गदेशमें सेन राजवंशके संस्थापक विजयसेन और उनके पुत्र वल्लालसेन (बारहवीं शताब्दी) शैव-मतावलम्बी थे। वे लोग 'परम माहेश्वर' उपाधि धारण करते थे। उनके पूर्वज दक्षिण भारतके अन्तर्गत कर्णाटकसे वङ्गदेशमें आये थे। सम्भवतः उस समय दक्षिण भारतीय शैव-गाणपत्य-सम्प्रदायका आविर्भाव भी उनके ही द्वारा वङ्गदेशमें हुआ था। राजा लक्ष्मणसेनने शैवमत त्यागकर वैष्णवधर्ममें दीक्षा ली थी। लक्ष्मणसेनके सभासद और सुहृद् वटुदासके पुत्र श्रीधरदासने १२०६ ई०में 'सदुक्तिकर्णामृत'-नामक एक प्रसिद्ध संस्कृत-कविता-संग्रहका संकलन किया था। 'सदुक्तिकर्णामृत'में गणेशके सम्बन्धमें पाँच कविताएँ प्राप्त होती हैं, जिनमें वसुकल्परचित दो, दक्षरचित एक, पापाकरचित एक तथा लक्ष्मणसेनके एक सभाकवि उमापतिधररचित एक श्लोक है। इन कविताओंसे तत्कालीन वङ्गीय समाजमें गणेशके सम्बन्धमें जो तत्त्व-भावना थी, उसका परिचय प्राप्त होता है। सभाकवि उमापतिधररचित श्लोक इतना प्रसिद्ध है कि वह तभीसे पूजा-अर्चनामें गणेशके नमस्कारके मन्त्रके रूपमें वङ्गीय समाजमें व्यापकरूपसे व्यवहृत होता चला आ रहा है। वह इस प्रकार है—

देवेन्द्रमौलिमन्दारमकरन्दकणारुणाः ।
विघ्नं हरन्तु हेरम्बचरणाम्बुजरेणवः ॥*

(सदुक्ति कर्णामृत १ । २९ । ५)

सिद्धिदाता गणेश

इस बातमें बंगाली हिंदूमात्रकी प्रगाढ़ आस्था है। सब प्रकारकी आपद-विपदमें गणेशका नाम लेनेसे विपत्तिका नाश होता है। किसी धर्म-कार्यको करते समय, पुस्तक लिखते समय, गृह-निर्माणके समय—सब कार्योंके प्रारम्भमें गणेशजीका नाम लिया जाता है। बंगाली हिंदू गणेशको नमस्कार करके यात्रा करता है; व्यवसायी अपने कार्यालयमें सिन्दूरसे 'सिद्धिदाता गणेश', 'श्रीगणेशाय नमः' आदि लिखता है। वङ्गदेशमें बंगाली हिंदूमात्र प्रथम वैशाख नववर्षके मेलेसे गणेशकी एक मूर्ति खरीदकर सबसे पहले अपने घरके द्वारदेशमें उसका स्थापन करके पञ्चोपचार-पूजन करते हैं और गणेशको सिन्दूर अर्पण करते हैं, पश्चात् उस सिन्दूरसे रौप्यमुद्राको वेष्टित करके उस मुद्राको माङ्गलिक द्रव्यके रूपमें यत्नपूर्वक पेटीमें रखते हैं और दीवारके ऊपर तथा बही-खातेमें सिन्दूरसे 'सिद्धिदात्रे गणेशाय नमः' लिखते हैं। पूजाके अन्तमें उस गणेशमूर्तिको द्वारदेशके ऊपरी भागमें स्थापित करते हैं और प्रातः-संध्याकालमें उसे धूपादि प्रदान करते हैं। गृहस्थ किसी कार्यके लिये यात्रा करते समय सिद्धिदाता गणेशको प्रणाम करके बाहर जाते हैं।

स्कन्दपुराणके मतसे भाद्रमासके शुक्लपक्षकी चतुर्थी तिथिको गणेशने पार्वतीनन्दनके रूपमें कैलासमें जन्म लिया था। किंतु दूसरे मतसे वे माघमासकी शुक्ल-चतुर्थीको आविर्भूत हुए थे। इस कारण गणेश-पूजा और व्रत आदि साधारणतया दाक्षिणात्य और बम्बई-प्रदेशमें भाद्रमासकी शुक्ल-चतुर्थीको अनुष्ठित होते हैं और गृह आदि आलोक-मालासे सुसज्जित होते हैं। किंतु वङ्गदेशमें गणेश-पूजामें विशेष आडंबर नहीं दिखलायी देता और थोड़े ही लोग मूर्ति खरीदकर पूजादि करते हैं। वङ्गदेशमें कहीं-कहीं भाद्रमासकी शुक्ल-चतुर्थीके दिन सिद्धि-विनायकीय-व्रत अनुष्ठित होता है।

(क) गणेश-पूजा—वङ्गदेशमें गणेश-पूजामें दो प्रकारके ध्यान-मन्त्र प्रचलित हैं। उनमेंसे एक पौराणिक है और दूसरा तान्त्रिक। निम्नाङ्कित पौराणिक ध्यान-मन्त्र अधिक प्रचलित है—

खर्वं स्थूलतनुं गजेन्द्रवदनं लम्बोदरं सुन्दरं
प्रस्यन्दन्मधुगन्धलुब्धमधुपव्यालोलगण्डस्थलम् ।
दन्ताघातविदारितारिरुधिरैः सिन्दूरशोभाकरं
वन्दे शैलसुतासुतं गणपतिं सिद्धिप्रदं कामदम् ॥*

गणेशजीका पौराणिक मन्त्र है—'ॐ नमो गणेशाय।'

---

* देवराज इन्द्रके मुकुटमें विद्यमान मन्दार-मालाके मकरन्द-कणोंसे अरुणवर्ण हुई श्रीगणेशके चरण-कमलोंकी धूलियाँ हमारे विघ्नोंका निवारण करें।

* जिनका शरीर नाटे कदका और स्थूल है; मुख गजराजका-सा है और उदर लंबा है; जो सुन्दर हैं, जिनके गण्डपर झरते हुए मधुकी गन्धके लोभी भ्रमर मँडरा रहे हैं; जो अपने दाँतके आघातसे विदीर्ण किये गये शत्रुओंके रुधिरसे मानो सिन्दूरकी शोभा धारण करते हैं, उन सिद्धिदाता, मनोरथ-पूरक, गिरिजा-नन्दन गणपतिकी मैं वन्दना करता हूँ।

गणेशजीका तान्त्रिक ध्यान है—

सिन्दूराभं त्रिनेत्रं पृथुतरजठरं हस्तपद्मैर्दधानं
दन्तं पाशाङ्कुशेष्टान्युरुकरविलसद् बीजपूराभिरामम्।
बालेन्दुद्योतमौलिं करिपतिवदनं दानपूरार्द्रगण्डं
भोगीन्द्राबद्धभूषं भजत गणपतिं रक्तवस्त्राङ्गरागम्॥*

गणेशका तान्त्रिक मन्त्र है—'गं गणपतये नमः।'

गणेशका प्रणाम-मन्त्र है—

एकदन्तं महाकायं लम्बोदरं गजाननम्।
विघ्ननाशकरं देवं हेरम्बं प्रणमाम्यहम्॥†

(ख) सिद्धिविनायकव्रत—सर्वाभीष्ट-सिद्धिकी कामनासे वङ्ग-देशमें यह व्रत भाद्रपद-मासकी शुक्लचतुर्थीमें अनुष्ठित होता है। पूजाके अन्तमें भविष्यपुराणोक्त 'सिद्धि-विनायक-व्रत-कथा'-का पाठ होता है। इस व्रत-कथासे ज्ञात होता है कि 'कौरव-पाण्डव-युद्धके पूर्व युधिष्ठिरने श्रीकृष्णसे प्रश्न किया था कि उस महायुद्धमें जय प्राप्त करनेके लिये किस देवताकी पूजा करना ठीक होगा।' श्रीकृष्णने उत्तर दिया था—

पूजयध्वं गणाध्यक्षं उमामलसमुद्भवम्।
तस्मिन् सम्पूजिते देवे ध्रुवं राज्यमवाप्स्यथ॥

'उमाके देहमलसे समुद्भूत गणेशकी तुमलोग पूजा करो; उनके सम्यक् रूपसे पूजित होनेपर तुम निश्चय ही राज्य प्राप्त करोगे।'

(ग) वङ्गीय स्मृति-निबन्धोंमें पञ्चदेवोपासना और श्रीगणेश—सनातनधर्मावलम्बी हिंदू प्रधानतः दो भागोंमें विभक्त हैं—श्रौत और स्मार्त। स्मार्त लोगोंकी संख्या यहाँ अत्यधिक है और इनमें दीक्षित-अदीक्षित प्रायः सभी पञ्चदेवता अर्थात् विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य और गणेशकी एक साथ उपासना करते हैं। किसी विशेष देवताके मन्त्रमें दीक्षित स्मार्त-उपासक पूजाके समय अपने इष्ट देवताको स्वभावतः प्राधान्य प्रदान करता है, किंतु वह पञ्चदेवोपासनाके अङ्गीभूत अन्य देवताको भी हार्दिक श्रद्धा-भक्ति समर्पण करता है। पञ्चदेवोपासनाके अभिन्न अङ्गके रूपमें गणपतिकी उपासना स्मार्त-मतावलम्बी हिंदूमात्रमें सर्वत्र प्रचलित है। स्मार्त गृहस्थके घर नित्य-नैमित्तिक पूजा आदिमें तथा अन्नप्राशन, उपनयन एवं विवाहादि संस्कारोंमें सर्वप्रथम विघ्नविनायक सिद्धिदाता गणेशकी अर्चना की जाती है। इसी कारण पुरोहित 'गणेशादिपञ्चदेवेभ्यो नमः'—इस मन्त्रसे पुष्पाञ्जलिद्वारा गणेशसे ही आरम्भ करके पञ्चदेवोंकी पूजा समाप्त करते हैं और तत्पश्चात् वे अभीष्ट कार्यमें लगते हैं।

वङ्गीय स्मृति-निबन्धोंसे ज्ञात होता है कि बंगालीके जीवनमें बारहों महीने पूजोत्सवादि लगा रहता है। ध्यान देनेकी बात यह है कि वङ्गदेशमें मध्ययुगमें वैदिक याग-यज्ञ आदिका विशेष प्रचलन नहीं था। समाजमें व्रतानुष्ठानका प्रचलन अवश्य अधिक था। इन व्रत-संक्रान्ति-आचार आदिमें विशेषतः स्नान-काल आदिमें पुराणोंका यथेष्ट प्रभाव दीख पड़ता है। वङ्गीय स्मृति-निबन्ध-समूहपर, विशेषतः शूलपाणि (पंद्रहवीं शताब्दी) से लेकर रघुनन्दन और गोविन्दानन्दके काल (१६-१७ वीं शताब्दी) तक रचित निबन्धोंपर तन्त्रोंका प्रगाढ़ प्रभाव दीख पड़ता है। वङ्गदेशके पूजा-उत्सवादिमें तान्त्रिक मन्त्रोंका प्रयोग, तान्त्रिकमण्डल, मुद्रा, यन्त्र आदिका व्यवहार विशेषरूपसे परिलक्षित होता है। जीवनमें तान्त्रिक दीक्षाकी अपरिहार्यता भी इस देशमें स्वीकृत हुई थी। समाजमें जिन सम्प्रदायोंका प्रभाव था, उनमें शैव, शाक्त और वैष्णव प्रधान थे। इन तीन प्रधान सम्प्रदायोंके अतिरिक्त वङ्गदेशके हिंदू-समाजमें सौर, गाणपत्य, पाशुपत, पाञ्चरात्र, कापालिक आदि अनेक सम्प्रदाय विद्यमान थे।

वङ्गदेशके स्मृति-निबन्धकारोंमें सबसे अधिक प्रसिद्ध स्मार्त रघुनन्दन भट्टाचार्य थे। उनका समय १५००से १६०० ई०के बीच माना जाता है। अपनेद्वारा रचित सुप्रसिद्ध स्मृतिनिबन्ध 'अष्टाविंशति तत्त्व'में उन्होंने जो अगाध शास्त्र-ज्ञान, स्वाधीन-चिन्तन और सूक्ष्म-विचार-विश्लेषणका परिचय दिया है, वह अत्यन्त विस्मयप्रद है। रघुनन्दन भट्टाचार्यने अपने 'आह्निकतत्त्व' निबन्धके देव-पूजा-प्रकरणमें पद्मपुराणके

* जो सिन्दूरकी-सी अङ्गकान्ति धारण करनेवाले और त्रिनेत्रधारी हैं; जिनका उदर बहुत मोटा है; जो अपने चार हस्त-कमलोंमें दन्त, पाश, अङ्कुश और वर-मुद्रा धारण करते हैं; जिनके विशाल शुण्ड-दण्डमें बीजपूर (बिजौरा नीबू या अनार) शोभा दे रहा है; जिनका मस्तक बालचन्द्रसे दीप्तिमान् और गण्डस्थल मदके प्रवाहसे आर्द्र है; नागराजको जिन्होंने भूषणके रूपमें धारण किया है तथा जो लाल वस्त्र और अरुण अङ्गरागसे सुशोभित हैं, उन गजेन्द्र-वदन गणपतिका भजन करो।

† जो एक दाँतवाले, विशाल काय, लम्बोदर, गजानन एवं विघ्नविनाशक हैं, उन हेरम्बदेवको मैं प्रणाम करता हूँ।

वचन उद्धृत करके पञ्चदेवताकी पूजाका विधान इस प्रकार दिया है—

> आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रं यथाक्रमम्।
> नारायणं विशुद्धाख्यमन्ते च कुलदेवताम्॥*

सब देवताओंमें पहले गणेशकी पूजा करनी चाहिये—'आदौ विनायकः पूज्यः अन्ते च कुलदेवता।' सबसे पहले गणेशकी पूजा नहीं करनेसे किस प्रकार विघ्न उपस्थित होता है, इस सम्बन्धमें उन्होंने भविष्यपुराणसे निम्नलिखित प्रमाण उद्धृत किया है—

> **देवतादौ यदा मोहाद् गणेशो न च पूज्यते।**
> **तदा पूजाफलं हन्ति विघ्नराजो गणाधिपः॥**

'यदि मोहवश देवताओंके आदिमें गणेशकी पूजा नहीं की जाती है तो विघ्नराज गणेश पूजाके फलको नष्ट कर देते हैं।'

"अथ गणेशपूजनम्। तत्र तुलसीव्यतिरेकेण। 'न तुलस्या विनायकम्' इति वचनात्।" (आह्निकतत्त्वम्)। गणेशकी पूजामें तुलसीदलका व्यवहार निषिद्ध है। गणेशके आवाहन-मन्त्रमें भी वैशिष्ट्य है। तीनों व्याहृतियोंके द्वारा गणेशका आवाहन करते हैं। यथा '**ॐ भूर्भुवः स्वर्गणपते इहागच्छागच्छ, इह तिष्ठ इह तिष्ठ, अत्राधिष्ठानं कुरु, मम पूजां गृहाण।**'

रघुनन्दनने इस सम्बन्धमें वायुपुराणका निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया है—

> **विनायकं तथा दुर्गां वायुमाकाशमेव च।**
> **आवाहयेद् व्याहृतिभिस्तथैवाश्विकुमारकौ॥**
> (आह्निकतत्त्वम्)

(घ) वङ्गदेशके तान्त्रिक निबन्धोंमें गणेश और गाणपत्य-सम्प्रदाय

वङ्गदेशके पूजा-उत्सवों तथा स्मृति-निबन्धोंपर तान्त्रिक प्रभाव स्पष्ट दीख पड़ता है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुके समकालीन अथवा किंचित् परवर्ती श्रीकृष्णानन्द आगम-वागीश (१६वीं शताब्दीके अन्तिम भागमें) तन्त्रशास्त्रके धुरंधर विद्वान् थे। उनके द्वारा रचित सुप्रसिद्ध पुस्तक 'तन्त्रसार'में हिन्दुतन्त्रके सब सम्प्रदायोंका सार लिपिबद्ध है। इस ग्रन्थमें शैव, शाक्त, वैष्णव, सौर और गाणपत्य-सम्प्रदायोंके उपास्य देवी-देवताओंके मन्त्र-यन्त्र, पूजा-विधि इत्यादि विशद रूपमें वर्णित हैं।

'तन्त्रसार'में संक्षेप-दीक्षा, पञ्चायतनी-दीक्षा आदि कतिपय अन्य दीक्षा-विधियाँ भी वर्णित हैं। पञ्चायतनी-दीक्षाके पूजा-क्रमका जो वर्णन यामल-तन्त्रशास्त्रसे उद्धृत करके आगम-वागीश महोदयने 'तन्त्रसार' पुस्तकमें विवृत किया है, उसको देखनेपर स्मार्त पञ्चोपासनाकी बात ध्यानमें आती है। पञ्चायतनी-दीक्षामें शक्ति, विष्णु, शिव, सूर्य और गणेश—इन पाँच देवताओंके पाँच यन्त्र अङ्कित करके उनमें उपर्युक्त पञ्चदेवताओंकी पूजा की जाती है। इनमें विशेषता यह है कि गुरु यदि इन पाँच देवताओंमें शक्तिको प्रधान मानकर भावना करता है (शाक्त-सम्प्रदायके पक्षमें) तो शक्तिका यन्त्र मध्य भागमें अङ्कित करके उसकी पूजा की जाती है। उस यन्त्रके ईशानकोणमें विष्णु, अग्निकोणमें शिव, नैर्ऋत्यकोणमें गणेश और वायुकोणमें सूर्यका यन्त्र निर्माण करके उनकी पूजा की जाती है। गाणपत्य-सम्प्रदायके साधक मध्यस्थानमें गणपति-यन्त्र अङ्कितकर अन्य देवताओंको निम्नोक्त क्रमसे स्थापित करके पूजा करते हैं—

> गणनाथं यदा मध्ये ऐशान्यां केशवं यजेत्।
> आग्नेय्यामीश्वरं चैव नैर्ऋत्यां तपनं तथा॥
> वायव्यां पार्वतीं चैव पूजयेन्मोक्षसाधिनीम्।
> स्वस्थानवर्जिता देवा दुःखशोकभयप्रदाः॥

'मध्यस्थानमें गणेशकी पूजा करते समय ईशानकोणमें विष्णु, अग्निकोणमें महादेव, नैर्ऋत्यकोणमें सूर्य तथा वायुकोणमें मोक्ष-साधिनी पार्वतीकी पूजा करें। स्थान-व्यतिक्रम होनेपर देवता दुःख, शोक और भय प्रदान करते हैं।'

'तन्त्रसार'के द्वितीय परिच्छेदमें गणेश-प्रकरण प्राप्त होता है। उसके प्रारम्भमें ही लिखा है—

> अथ वक्ष्ये गणपतेर्मन्त्रान् सर्वार्थसिद्धिदान्।
> यज्ज्ञात्वा मानवा नित्यं साधयन्ति मनोरथान्॥

'अब सर्वार्थसिद्धिप्रद गणेशके मन्त्रोंको बतलाऊँगा। इन मन्त्रोंको जानकर साधक सब प्रकारके मनोरथोंको सिद्ध करता है।'

तन्त्रसारमें गणेशकी विभिन्न प्रकारकी मूर्तियाँ, उनके मन्त्र और पूजाकी विधियोंका वर्णन है। वङ्गदेशमें मध्ययुगमें गाणपत्य-सम्प्रदायका अस्तित्व था और उसकी उपासक मण्डली भी थी—आगमवागीशके सुप्रसिद्ध तान्त्रिक निबन्ध 'तन्त्रसार'से यह प्रमाणित होता है।

---

* पहले क्रमशः सूर्य, गणेश, दुर्गादेवी, रुद्र तथा विशुद्ध नारायणदेवकी पूजा करके अन्तमें कुलदेवका पूजन करे।

छत्तीसगढ़ी लोकगीतोंमें श्रीगणेश

(लेखक—श्रीचतुर्भुजसिंहजी वर्मा)

गणेशजीका प्रायः सभी सम्प्रदायों एवं सभी धर्मोंमें पूजनीय होनेके कारण जन-मानसपर जो अमिट प्रभाव पड़ा है, उसीको देखकर गाँवके एक अबोध बच्चेने अपनी मूक-भाषामें प्रथम श्रीगणेशजीकी वन्दना कर फिर अपने इष्टदेव श्रीहनुमानजीका गुणगान किया है। यहाँ छत्तीसगढ़ी भाषाका इसी प्रकारका एक बाल-गीत प्रस्तुत किया जा रहा है—

हाथी लोलो हाथी लोलो, पावके पदोलो लो।
दोनों भुजा बंम लाल, छाती सुर्ख लाल॥
नदी नाला टीप टाप, कहैय्या ला मारे तीन लात।
बोको फदम्मा, फदम्मा, फदम्मा॥

'हे हाथीके बच्चेके समान सूँड़वाले श्रीगणेशजी! हम आपके पाँवको पकड़कर प्रणाम करते हैं।' फिर हनुमानजीको आवाहन करके कहते हैं कि "आपकी दोनों भुजाएँ और छाती लाल हैं, ऐसे हनुमानको मैं प्रणाम करता हूँ। नालासे नदी और नदीसे समुद्रमें पानी इस पारसे उस पारतक भरा हो, ऐसे समुद्रको एक छलाँगमें कूदकर पार जानेवाले तथा 'मोर अहार लंक कर चोरा······।' इस प्रकार कहनेवाली उस लङ्किनीको लातसे मारकर मूर्छित कर देनेवाले श्रीहनुमानजीको मैं सादर नमस्कार करता हूँ। फिर प्रज्वलित पूँछसे कदम-कदम उछल-कूदकर लङ्काको जलानेवाले श्रीहनुमानको प्रणाम कर मैं अपना खेल शुरू करता हूँ।"

छोटा नागपुरमें श्रीगणेश-भक्ति

(लेखक—श्रीगोकुलचन्द्रजी रावत)

बिहार-प्रान्तका दक्षिणी भाग छोटा नागपुर पाँच जिलोंकी एक कमिश्नरी है। यहाँकी रीति-नीति उत्तर-बिहारसे सर्वथा भिन्न है। यह बिल्कुल जंगली स्थान था, जहाँपर आदिवासी मुण्डा-जातिके राजा थे। अब इस जंगलको 'झारखण्ड' कहते हैं।

यहाँके ग्राम्यगीतोंमें फगुआ और झूमर अधिक प्रसिद्ध हैं। सबसे पिछड़ा भाग होनेपर भी यहाँके कई अनपढ़ कवियोंने अपनी रचनाओंमें सर्वप्रथम गणेशजीकी वन्दना की है, जो बहुत ही प्रभावशाली प्रतीत होती है। प्रत्येक कार्यके आरम्भमें 'गौरी-गणेश'की पूजा अनिवार्य है। जहाँ-तहाँ पर्वतोंमें भी चट्टानपर गणेशकी प्रतिमाएँ मिलती हैं। इससे प्रतीत होता है कि जंगल-निवासी लोग भी अनादिकालसे गणेशकी पूजा करते आ रहे हैं। उनके गीतोंमें गणेशका वर्णन बड़े सुन्दर ढंगसे किया गया है। दो गीत यहाँ दिये जा रहे हैं, जिनसे गिरिजा-वनवासियोंकी श्रीगणेश-भक्तिकी झलक मिल सके।

फगुआ गीत (होलीके अवसरपर गाया जाता है)

बंदौं गणेश गणनायक, देहु बुधि वरदान, बंदौं गणेश गणनायक॥
बुधि सागर, अति नागर, प्रभु दयाके निधान।
जन-रक्षक, अघ-भक्षक, सब गुन कर खान॥
सेन्दुर भूषण, भभूती तन, सिद्धिप्रद सुख-खान।
मूस-वाहन, गज-वदन, गौरी-शंकर-संतान॥
लम्बोदर, अति सुन्दर, जेहि सूप-सम कान।
एक-रदन, गज-वदन रूप अनूप सुजान॥
घासी मति रंकपर ढरु वेगी प्रभू देहु शुभ ग्यान।
जेहिते करब हम वर्णन, हरि-हर-गुन-गान॥

झूमर (वर्षामें गाया जाता है)

दोहा

गजेन्द्र वदनं, लम्बोदरं, शैलसुता कर सूत।
द्विज विशेश्वर पद वंदत, दुइयो कर संजूत॥
विघन-हरन, हर-नन्दन करौं पद-वन्दन।
लम्बोदर, गजमुख, बुधके सदन सुख, सुमिरत कटे जम-फंदन॥
सादर आरज मोरि, देहु न आछर जोरि, चाहत करन गुन कन्दम।
जत हरि विद्या पाय, कण्ठमें वसहु आय, विशेश्वर केर उर आनंद॥

लोकाचारमें श्रीगणेश

(लेखक—डा० श्रीधनवतीजी)

मङ्गल-मूर्ति श्रीगणेशका अस्तित्व शक्ति एवं शिवके युगल-तत्त्वोंका साकार स्वरूप है। कुछ पौराणिक कहानियोंके अनुसार स्वयं विष्णुभगवान् ही माता पार्वतीकी इस वात्सल्य-मूर्तिमें समाविष्ट हैं। इसीलिये जीवनके प्रत्येक महत्त्वपूर्ण कार्यके आरम्भका शुभारम्भ तभी होगा, जब इन दोनों तत्त्वोंका सुखद स्वरूप सर्वोपरि होगा, सर्वप्रथम होगा। श्रीगणेशकी सर्वप्रथम पूजाका यही रहस्य है, यही कारण है।

सिद्धिदाता गणेश वैदिक तथा पौराणिक देवी-देवताओंमें जिस प्रकार मान्य हैं, साधारण लोक-जीवनमें भी उसी प्रकार सर्वपूज्य हैं।

लोक-जीवन प्रकृतिका प्रतिरूप है। जटिल-से-जटिल तथ्यों और गूढ़-से-गूढ़ तत्त्वोंको भी जन-मानसके लिये सरल, सुबोध, सुग्राह्य ही नहीं, सरस भी कर देना लोक-जीवनकी अपनी विशेषता है। लोकाचार इसके प्रमाण हैं। लोक-व्यवहार एवं रीति-रिवाजोंमें इसकी पुष्टि सहज ही होती है।

शुभारम्भका पर्याय 'श्रीगणेश' एक मुहावरा बन गया है। किसी भी कार्यको आरम्भ करनेका आग्रह यह कहकर किया जाता है कि 'श्रीगणेश कीजिये'। किसी महत्त्वपूर्ण कार्यके लिये घरसे दूर जाते समय 'सिद्धि-गणेश' कहना अत्यन्त शुभ समझा जाता है। गृह या मन्दिर-निर्माण कराते समय सबसे पहले गणपतिको स्थापित करा देनेसे सब संकट टल जाते हैं, विघ्न-बाधाएँ दूर हो जाती हैं, ऐसा लोक-विश्वास है। इसी प्रकार लोकाचारके रीति-रिवाजोंमें, शुभ-संस्कारोंमें तथा तिथि-त्योहारोंमें विघ्न-विनाशक गणेशजी-की स्थापनाके बिना कोई भी कार्य सम्पन्न नहीं किया जाता। कुछ उदाहरण देखिये—

सह-भोजोंमें—भोजन एवं तृप्तिकी देवी माता अन्नपूर्णा हैं। किंतु (उत्तर-प्रदेशके ग्राम्य-जीवनमें, जैसा मैंने देखा है,) भोजके आयोजनके आरम्भमें कड़ाही चढ़ानेके पूर्व ही मङ्गल-घट चूल्हेके पास रख दिया जाता है और कड़ाहीका श्रीगणेश 'गणेश-गोंठ'से किया जाता है। एक मोटी पूड़ी, जिसके चारों ओर गुझियाकी-सी नक्काशी की जाती है, कड़ाहीमें तलकर मङ्गल-घटपर रख दी जाती है। कुछ अनाज और द्रव्य भी साथमें रखा जाता है। भोजकी समाप्तिपर यह सामग्री किसी मान्य ब्राह्मणको दे दी जाती है। असावधानीसे यदि 'गणेश-गोंठ' भूल जाय तो क्षमा माँगते हुए शीघ्र ही पहले यह कार्य सम्पन्न किया जाता है, फिर आगेकी कार्यवाही बढ़ायी जाती है। इस प्रकार सहभोजके आयोजनमें भोजनकी बढ़ोतरी तथा भोजकी सफलताके लिये सर्वप्रथम 'गणेश गोंठे' जाते हैं।

संस्कार-समारोहोंमें—हिंदू-जातिके सभी संस्कारोंमें किसी-न-किसी प्रकारके समारोह अवश्य आयोजित किये जाते हैं। संस्कारोंके प्रारम्भमें देव-पूजाके लिये जहाँ शक्ति एवं सौभाग्य-दायिनी माता गौरीकी स्थापना मिट्टीकी पाँच या सात ढेलियाँ रखकर की जाती है, वहीं जल-भरे घट या मङ्गल-कलशमें गणेशजीकी भी प्रतिष्ठा की जाती है। इस प्रकार गणेश-गौरी या गौरी-गणेश-पूजनके पश्चात् ही आगेके कार्य सम्पन्न किये जाते हैं।

विद्यारम्भ-संस्कार-समारोहमें तथा वसन्तपञ्चमीके महोत्सव-पर (विशेषकर बंगालियोंमें) सरस्वती-गणेशकी पूजा होती है। महाराष्ट्रमें लेखन-कला सीखते समय 'श्रीगणेशाय नमः' से ही लिखना प्रारम्भ करते हैं। बहीखातोंमें, शुभ-संस्कारोंके निमन्त्रण-पत्रोंमें तथा साधारण पत्रोंमें भी 'श्रीगणेशाय नमः' लिखना अत्यन्त शुभ माना जाता है। यही कारण है कि बुद्धिदाता विनायकके बिना वाणीकी आराधना अधूरी ही रहती है।

तिथि-त्योहारोंमें—दीपावली लक्ष्मी-आवाहनका अनुपम पर्व है; किंतु लक्ष्मीके साथ भी गणेशजी प्रतिष्ठित हैं। कारण, क्षेम और लाभके जनक तो गणेशजी ही हैं। इसीलिये दीपावलीपर बाजारमें गणेश-लक्ष्मीकी युगल-मूर्ति ही मिलेगी।

इसके पश्चात् कुछ ऐसे त्योहार भी हैं, जिनका सम्बन्ध गणेश-जन्म-कथा तथा उनकी संकट-निवारण-शक्तिसे है। पौराणिक साहित्यके अनुसार गणेशजीकी उत्पत्ति भाद्र-पद-मासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी तिथिको मानी गयी है। उत्तर-प्रदेशमें इसे 'बहुला' या 'बहुरा चौथ' कहते हैं। 'बहुरा' का अर्थ (अवधी भाषाके अनुसार) है—गया हुआ, जिसके आनेकी आशा कम थी या थी नहीं; आ गया। गणेश-जन्म-

कथाओंके अनुसार गणेशजीका पुनः जीवित होना सर्वविदित है और इस 'बहुरा चौथ'में इतने बड़े तथ्यको किस सरलतासे निरूपित किया गया है, यह देखकर लोक-मानसकी सूझ-बूझका लोहा मानना पड़ता है।

'गणेश-चतुर्थी' या 'बहुरा चौथ' पुत्रवती माताओंका त्योहार माना जाता है। माताएँ विधि-विधानसे गणेशजीका पूजन करती हैं तथा पुत्रोंकी दीर्घायुकी कामना करते हुए उनके विघ्न-बाधाओंके निवारणकी प्रार्थना करती हैं। इस व्रतकी मुख्य कथा एक गाय और बाघकी है। किस प्रकार वह गाय बाघके चंगुलमें पड़ जाती है और अपने जीवनका अन्त निकट देख बाघसे प्रार्थना करती है कि अपने बच्चेको दूध पिलाकर वह शीघ्र ही लौट आयेगी। बाघको उसके कथनमें सत्यकी झलक मिलती है; अतएव वह उसे छोड़ देता है तथा उसके आनेकी प्रतीक्षा करने लगता है। इधर माता दूध पिलाते समय बच्चेको सब कथा सुनाती है और शीघ्र ही जानेको उद्यत होती हैं। किंतु बच्चा माँके बिना कैसे रहता; अतः माँने उसे अपनी सखियोंको सौंपकर प्रस्थान किया। गायको सामने पाकर बाघ उसके सत्य और वचन-पालनसे अत्यन्त प्रभावित हुआ और उसने उसे अभयदान दिया। इसी प्रकारकी अन्य कथाएँ भी हैं, जिनका सार यह निकलता है कि माँकी अनुपस्थितिमें बच्चोंपर संकट आते हैं, किंतु माँकी तपस्यासे वे सब दूर हो जाते हैं तथा माँ पुनः अपने बच्चोंको पा जाती है। इस प्रकारकी कथाएँ कहते हुए माताएँ बारंबार अपने पुत्रोंकी कल्याण-कामना करती हैं। यह गणेश-चतुर्थी सम्भवतः उत्तर-भारतमें ही मनायी जाती है। दक्षिण-भारतमें विशेषकर महाराष्ट्र-समाजमें भाद्र-सुदी चतुर्थीको गणेश-उत्सवका आयोजन किया जाता है। घरों, देवालयों तथा सार्वजनिक स्थानोंमें गणेशजीकी प्रतिमाएँ समारोहके साथ प्रतिष्ठित की जाती हैं। दस दिन तक भजन-पूजन चलता है। इसे 'गणेश-उत्सव' या 'गणपति-पूजा' कहा जाता है। इसके पश्चात् अनन्त-चतुर्दशी-को पासके किसी जलाशयमें बड़ी धूम-धामसे गणेश-विसर्जन किया जाता है। इस प्रकार गणपति-पूजाकी इस प्रक्रियामें हमारा पूरा जीवन-दर्शन ही निहित मिलता है।

एक और चतुर्थीका लोक-जीवनमें विशेष महत्त्व है। वह है—माघ-कृष्ण-पक्षकी चतुर्थी। इसे 'संकट-चौथ' (उत्तर-प्रदेशमें सकठ-चौथ) कहते हैं। माताओं, विशेषकर पुत्रवती माताओंके लिये यह व्रत अनिवार्य है। इस व्रतमें जो कथाएँ कही जाती हैं, उन सबका अभिप्राय यही रहता है कि 'सज्जनोंपर चाहे जैसे संकट आयें, संकटा माता या संकटके देवता आकर उनकी रक्षा करते हैं; किंतु दुर्जनोंको या बनावटी संकट दिखानेवालोंको दण्ड ही मिलता है।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि जन-जीवनके लोकाचार, व्यवहार तथा विचारमें गणेशजीका वही स्थान है, जो माता पार्वतीने चाहा था। पार्वतीजी चाहती थीं कि मेरा पुत्र देवताओंके मध्य प्रथम-पूज्य हो। शिवजीने भी उनकी मातृ-भक्ति या सेवा-लगनसे प्रभावित होकर यही घोषित किया था कि 'गणेश देवताओंमें प्रथमपूज्य होंगे'।

स्मरणीय युगल

(श्रीहनुमान् और श्रीगणेश)

(रचयिता—मानस-तत्त्वान्वेषी पं० श्रीरामकुमारदासजी रामायणी)

इत लहरत लांगूल, उतै गज-सुंड बिराजत।
ऊर्धपुंड इत भाल, उतै चंद्रार्ध सुछाजत॥
इतै गदा, उत परसु, दोउ खल-बिघ्न-बिनासक।
दोऊ संकर-सुअन, दोउ सिय-राम-उपासक॥
राम-नाम जापक दोऊ, जगत-पूज्य दोउ सुर-प्रवर।
नाम-नेह दोउ सौं चहत जन 'कुमार' दोउ जोरि कर॥

पंजाबके जन-जीवनमें श्रीगणेश

(लेखक—डा० श्रीनवरत्नजी कपूर, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, पी०ई०एस्०, एवं श्रीमती सरोजबाला कपूर, एम्० ए०)

पंजाबमें स्वतन्त्र-मन्दिरके निर्माण या मूर्तिकी स्थापनाके द्वारा जिस परिमाणमें शक्ति-शिवको सम्मान प्राप्त हुआ है, उतना महत्त्व शक्ति-शिव-तनय विघ्नविनाशक श्रीगणेशजीको भले ही उपलब्ध न हुआ हो, किंतु मङ्गलमूर्ति गजानन पंजाबमें पार्थक्यकी प्रतिमा न बनकर हमारे लोक-जीवनमें समन्वयके प्रतीक बनकर अवतरित हुए हैं। वे पंजाबियोंके दैनिक जीवनके आस्था-विश्वासोंमें इतने घुल-मिल गये हैं कि गणेशजीके प्रति हमारी श्रद्धा अनन्यताकी सीमाएँ लाँघ गयी है।

नवनिर्मित मकानोंको बुरी नजरसे बचानेके लिये अब भी धार्मिक प्रवृत्तिके अनेक महानुभाव अपने घरोंके सिंहद्वार-पर मिट्टी या प्लास्टिककी बनी गणेशजीकी मूर्ति छोटे-से चौखटे और शीशेमें मँढ़वाकर लगवाते हैं। सम्पन्न परिवारके अध्यात्मवादी घरोंके मुख्य द्वारपर अब भी गजानन भगवान्‌की पाषाण-प्रतिमाके दर्शन कहीं-कहीं हो जाते हैं। अधिकांश वैश्य-परिवारोंमें लोहेकी छड़ोंवाले रोशनदान या खिड़कीमें सिन्दूरी रंगमें पुती गणेश एवं लक्ष्मीकी मिट्टीकी मूर्तियाँ ही प्रायः दृष्टिगोचर होती हैं।

पुराने मन्दिरों और पुरानी हवेलियोंके मुख्य द्वारके बिल्कुल ऊपर एक छोटेसे आलेमें अब भी गणेशजीकी पत्थरकी प्रतिमाएँ देखनेको मिलती हैं। कहीं-कहीं तो लकड़ीके दरवाजेके चौखटके ऊपरवाले पल्लेमें बढ़ईद्वारा गढ़ी गणेशजीकी मूर्ति भी दिखायी पड़ती है। आर्थिक बोझसे विपन्न ये खानदानी लोग जब साल दो सालके बाद घरमें रंग-रोगन करवाते हैं, तब चौखटपर विराजमान गणेशजी बड़े भव्यरूपमें सम्पन्न होकर दृश्यमान होते हैं।

पंजाबके हिंदू-मन्दिरोंमें श्रीगणेशजी समन्वय-भावनाके साक्षात् प्रतीक बनकर प्रतिष्ठित होते हैं। मन्दिर-विशेषकी मुख्य प्रतिमाके आवास-कक्षके बिल्कुल बाहर एक ओर गणेशजी और दूसरी ओर हनुमानजी (जिन्हें पंजाबमें 'महावीरजी'की संज्ञासे विभूषित किया जाता है) आशीर्वादकी मुद्रामें दिखायी पड़ते हैं। पटियालाके प्रसिद्ध 'सत्यनारायण-मन्दिर' में यद्यपि लक्ष्मी एवं नारायणकी विशाल मूर्ति स्थापित है, तब भी उनके आवास-कक्षके बाहर अगल-बगल गणेशजी और हनुमानजी प्रहरीके रूपमें प्रत्यक्ष विद्यमान हैं। स्वभावतः ही पार्वती-पुत्र एवं रामसेवकके सम्मुख भक्तजन शीश झुकाकर भगवान् सत्यनारायणका चरणामृत प्राप्त करते हैं।

श्रीगणेशजी ठहरे भोलेबाबाके आत्मज। वे पैतृक गुणोंसे विभूषित सभी स्थानोंपर सामञ्जस्य स्थापित कर लेते हैं। पंजाबके प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्रोंकी ओरसे छपनेवाले नये वर्षके कलेंडरोंमें वीणावादिनी सरस्वती और ऐश्वर्य-वर्षा करती लक्ष्मीके पास अपने वाहन मूषकके साथ गजाननके भी दर्शन होते हैं।

श्रीगणेशजीने पंजाबी-जीवनको और भी प्रभावित किया है। भगवान् रामके सिंहासनासीन होनेके उपलक्ष्यमें उन्हें लक्ष्मीकी उपलब्धिके प्रतीकस्वरूप दीपावली त्योहार पंजाबी घरोंमें तबतक नहीं मनाया जाता है, जबतक बाजारसे लक्ष्मीसहित गणेशका नया चित्र अथवा नयी मूर्ति खरीदकर नहीं लायी जाती।

हिंदू परिवारोंमें भले ही चैत्र और आश्विनके नवरात्रोंमें दुर्गाष्टमीके दिन दुर्गा-पूजन हो, विजयादशमी (दशहरे) के दिन राम-पूजा हो, करवा चौथ (दीवालीसे ग्यारह दिन पहले) के माध्यमसे भले ही सुहागिनें पतिकी शुभकामनाके लिये 'पोजा मनसे' (बड़ी-बड़ी मठड़ियाँ घरकी सबसे बड़ी महिलाको देना), 'अहोई आठें' (दीवालीसे सात दिन पूर्व) के दिन बालकोंके मङ्गलमय जीवनके लिये 'अहोई माता' से प्रार्थना करें, 'देवोठान' (देवोत्थान) एकादशीका पर्व परिवारके लोग मना रहे हों—सर्वत्र गणेशजीका ध्यान अवश्यम्भावी है।

इन सभी त्योहारोंसे सम्बन्धित देवी-देवताओंका नाम लेकर 'रोला चर्चने' (रोली छिड़कना)से पहले मौली लिपटी सुपारीपर रोली छिड़ककर गणेशजीको तिलक लगाया जाता है। घरमें मुण्डन-संस्कार हो, यज्ञोपवीत हो, विवाह हो अथवा नामकरण-संस्कार—पूजनसे पहले पण्डितजीका आदेश होता है—'बिब्बीजी! सुपारी जरूर ले आना।' पूजनकी प्रत्येक प्रक्रियामें सुपारीपर रोली लगानेका संकेत करते हुए पण्डितजी कहते रहते हैं—'गनेशजीका ध्यान धरोजी' और उधरसे उनके मुखसे मन्त्र निकलते रहते हैं—'ॐ

सिरी गनेशाय नमः, मङ्गलकारी विवनहारी (विघ्नहारी) जय सिरी गणेशजी नमः' इत्यादि ।*

'संकटहारी'-नाम पंजाबमें गणेशजीके लिये प्रचलित है । सम्भवतः भोलेबाबाकी भाँति भोले-भाले होनेके कारण शीघ्र प्रसन्न हो जानेवाले एव शक्तिपुञ्ज, माता पार्वतीके सदृश पराक्रमपूर्ण गणेशजीको 'संकटहरण'की उपाधि मिली है । पंजाबीमें 'क' से 'ग' (प्रकट-प्रगट) और 'ट' से 'ड' या 'ड़' (कटु-कड़वा) होनेकी प्रवृत्ति है । इसी प्रकार संस्कृत-हिंदीका शब्द 'संकट' पंजाबीमे 'सॅगड़' में परिणत हो गया । कार्तिकके कृष्णपक्षकी चतुर्थीको हिंदू महिलाएँ कठिन उपवास करती हैं; दिनभर जलकी एक बूँद भी मुँहमें नहीं डालतीं । सूर्यास्तके उपरान्त सारा परिवार सम्मिलित होकर 'गणेश-पूजन' (सुपारीको तिलक लगाकर) करता है । यह त्योहार चौकेमें मनाया जाता है । चकलेपर सुपारी रखकर पूजा होती है । चढ़ावेके रूपमें गुड़ मिलाकर तिलकुटे और रोटीके टुकड़ोंके (चूरीके) अलग-अलग पदार्थ (जो रूईकी पूनी-जैसे लंबे होते हैं) बनाकर गणेशजीको अर्पित किये जाते हैं । इन्हींका नैवेद्य-वितरण होता है । 'करवा चौथ'की भाँति रात्रिमें 'चन्द्रदर्शन' के उपरान्त ही व्रतधारिणी देवी भोजन करती है । गणेशजीकी तुष्टिके निमित्त उसे 'विघ्नहरण'से प्रार्थना करनेके लिये भूखे रहनेका संकट सहना पड़ता है । तभी इस व्रत-त्योहारको 'सॅगड़ चौथ' की अभिधा प्रदत्त की गयी है ।

विवाहके समय वर और वधूके हाथमें जो कङ्कण (पंजाबी शब्द 'कंगना') पहनाया जाता है, वह मौलीका बना रहता है । उसमें लोहेके एक छल्ले और कौड़ीके साथ सुपारी भी पिरोयी जाती है । कङ्कणमे सुपारीका होना गणेशजीके अङ्ग-सङ्ग रहनेका प्रतीक है । मकानकी छतमें लकड़ीका नया शहतीर या लोहेका गर्डर डालनेके समय राज-मजदूर लोग मकान-मालिकसे मौलीमे सुपारी बाँधकर शहतीर या गर्डरमें लटकानेके लिये कहते हैं । मकानकी नयी चौखट लगाते समय बढईका भी ऐसा ही निवेदन होता है । प्रायः लाल कपड़ेमे सुपारी लपेटकर और मौलीसे कपड़ेको बाँधकर यथास्थान लटका दिया जाता है । यह गणेश-पूजाका प्रतीक है । इसके उपलक्ष्यमें मुँह मीठा करवानेके लिये लड्डुओंकी माँग भी श्रमिक-वर्गकी ओरसे होती है, जो मोदकका प्रतीक है ।

पंजाबमें प्रणीत और गुरुमुखी लिपिमें लिखित बहुत-से प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोंमें रंग-बिरंगी रोशनाईसे 'ॐ श्रीगणेशाय नमः' आरम्भमें ही मिलता है । कुछेक पोथियोंमें गजानन गणेशका चित्र भी पुस्तकारम्भमें दृष्टिगोचर होता है और कई बार प्रत्येक अध्यायके आरम्भमें 'ॐश्रीगणेशाय नमः' शब्दोंके दर्शन भी होते हैं । 'विजया-दशमी'-पूजनसे पूर्व, भले ही वे गृहस्थ व्यापारी हों अथवा नौकरी पेशेवाले, वर्षोंसे घरमें मँगवाकर रखी कापी या रजिस्टरमें सबसे पहले 'ॐ श्रीगणेशाय नमः' लिखते हैं, तदनन्तर परिवारमें सुख-शान्ति-हेतु भगवान् रामकी कृपाकाङ्क्षा-विषयक शब्द लिखे जाते हैं । पंजाबका व्यापारी-वर्ग नया बही-खाता लगाते समय आरम्भिक पृष्ठपर 'ॐ श्रीगणेशाय नमः' भी लिखता है और इसी खुशीमें लड्डू—अथवा बताशा वितरण करता है ।

गणेशजीकी मोदक-प्रियताने पंजाबी-जीवनमें माधुर्यका सचार कर दिया है । घरमें कोई भी शुभावसर हो, भले ही पुत्रजन्म, मुण्डन-संस्कार, बेटी या बहूका गौना, सगाई-विवाह या बच्चोंकी परीक्षामें साफल्य-प्राप्तिकी कामना हो, सर्वत्र बेसनकी बूँदीसे बने मोदकोंके (जिन्हें 'मोतीचूरके लड्डू' कहा जाता है) बिना हृदयके आह्लादकी पूर्ति नहीं होती । शादीके अवसरपर तो सफेद शक्करके लड्डू मोतीचूरके मोदकोंसे सहयोग करते दिखायी पड़ते हैं । बेटीके दहेजमें माँ-बाप कितने भी वस्त्राभूषण, कार, फ्रिज भेंट कर दें, किंतु यदि सूतके लड्डू और मोतीचूरके लड्डू अर्पित न किये जायँ तो आज भी बड़ी-बूढ़ियाँ उलाहना देती हैं— "समधीको बचत करनी थी तो एक आध 'टूम-छला' (आभूषण) कम दे देता, सगन (शकुन-सगुण) की चीज तो देनी थी ।" कितने 'सद्गुण'-सम्पन्न हैं मोदक महाराज कि नवविवाहिताके गृह-प्रवेशके समय अथवा किसी समीपस्थ सम्बन्धीके यहाँ नवविवाहिता नवप्रसूताके जानेपर लड्डुओंके 'सगुन' का ही बोलबाला रहता है ।

शारीरिक गरिमाके सम्मुख गणेशजीका वाहन इतना छोटा क्यों है ? मूषकको अपनी सवारी मानना गणेशजीकी अपार महिमाका प्रतीक है । इतना विशालकाय होकर भी हाथी मांसाहारी जीव नहीं है । ठीक ऐसे ही चूहा भी निरामिष प्राणी है । इसी कारण वाहक और वाहनमें

*'श्रीगणेशाय नमः' के स्थानपर जो वाक्य ऊपर दिया गया है, उसका वैसा प्रयोग पंजाबी उच्चारणकी भिन्नताके कारण होता है ।

भावैक्य है। दूसरी बात यह कि सभी देवताओंके प्रदर्शनका भाव उनके वाहनसे प्रकट होता है; गणेशजी इस बारेमें नितान्त विरक्त हैं और चूहे-जैसे तुच्छ जीवको महानता प्रदान करते हैं। गरुड़का दर्शन बड़ा शुभ माना जाता है; क्योंकि उसके दृष्टिगोचर होते ही भगवान् विष्णुका स्मरण हो आता है। ठीक ऐसे ही घर-घरमें मूषकराजकी संतान सर्वत्र गणेशजीकी मङ्गलमूर्तिकी उपस्थितिकी सूचना देती है। बहुत-से घरोंमें चूहे पकड़ना अथवा उन्हें मारना पाप समझा जाता है।

धन्य हैं गणेशजी! आप सर्वव्यापक हैं, हृदय, मन, बुद्धिमें आपका एकच्छत्र राज्य है। दृश्य स्वरूप और अदृश्य स्वरूपमें आपने पंजाबियोंको विमुग्ध कर लिया है और वे भी निजी प्रवृत्तियोंके अनुरूप ही आपको सामञ्जस्य-भावनासे भरपूर देखते हैं। 'भक्तके वशमें हैं भगवान्'—इस उक्तिको पंजावियोंने भली प्रकार चरितार्थ कर दिखाया है।

मरुप्रदेशीय सिद्ध-साहित्यमें श्रीगणेश-स्तवन

(लेखक—श्रीसूर्यशंकरजी पारीक)

विद्या विनायक सिंवरिये पौरस में हणवंत।
रिधि सिधि दाता सिंवरिये, गौर तिमिणों कंत॥
(सवद-ग्रन्थ)

मरुप्रदेशीय सिद्ध-साहित्यमें भगवान् गणेशका स्तवन बड़ी ही श्रद्धा-भक्तिसे हुआ है। इस साहित्यके आदि उद्गाता सिद्ध जसनाथजी (सं० १५३९—१५६३ विक्रमी) एवं उनकी शिष्य-परम्पराके प्रायः समस्त कवियोंने अपने ग्रन्थोंके आदिमें जहाँ त्रिदेव, सरस्वती, शक्ति, धरित्री, अन्नदेव, पवन-पानी आदि महाशक्तियोंका मङ्गलाचरणके रूपमें स्तवन किया है, वहाँ उन्होंने विघ्न-विनाशक, सर्वसिद्धि-दाता, साफल्य-प्रदायक भगवान् गणेशका स्तवन कहीं उक्त शक्तियोंके साथ तथा कहीं स्वतन्त्र रूपसे किया है।

मरुप्रदेशीय सिद्ध-साहित्य-धारा एवं 'सिद्ध-सम्प्रदाय'-के प्रवर्तक सिद्धाचार्य जसनाथजीने अपने नैतिक एवं आध्यात्मिक सिद्धान्त निर्गुण तथा सगुण—दोनों रूपोंमें स्थिर किये हैं। जहाँ इनके निर्गुण सिद्धान्त औपनिषद विचार-धाराके निकट हैं, वहाँ इनके सगुण सिद्धान्त कई अंशोंमें आचार-विचारकी पृथक्ता रखते हुए भी स्मार्त अधिक प्रतीत होते हैं। यह निर्विवाद है कि स्मार्त-धर्मावलम्बी गणेशादि माङ्गलिक देवोंकी आराधना-उपासना तथा स्तुति-वन्दनाकी किसी भी प्रकारसे अवहेलना नहीं कर सकता। 'सिद्ध-सम्प्रदाय'में भी गणेशादि देवाराधन एव आचार-विचारकी शुद्धता प्रायः स्मार्त-धर्मावलम्बियोंकी भाँति ही है।

अग्राङ्कित पङ्क्तियोंमें मरुप्रदेशीय सिद्ध-साहित्यमेंसे गणेश-स्तवनके कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं। सिद्ध देवोजीने अपने भक्ति-नीतिपरक 'गुणमाला'-ग्रन्थमें गणेश-की स्तुति की है—

जाग जाग ओ! गवरी पूत अवधूत, जाग स्वामी सूंडाळा।
खासा खाने जाग, बीनती गाऊँ बाळा॥
जपां तिमिणों जाप, हाथ ले हर की माळा।
सुध बुध आवै साच, हियै बिच हुवै उजाळा.
अर तो सिंवरयां रिध सिध हुवै, सह बिध आवै सूत
चरण बिनै देवो कहै, गवर पूत अवधूत॥

सिद्ध देवोजीने अपने 'देसूँटै' नामके ग्रन्थमें गणेश-स्तुति की है—

रथ आयो गवरी रो पूत, झाड़ जटा जोगी अवधूत।
गवरी नंदन विद्या वियास, रिध-सिध दाता थांरी आस॥

भक्तवर करमोजीने अपने भक्ति-ग्रन्थ 'हरकथा' में गणेश-स्तवन किया है—

पैली निवण गणेश नै, गवर पूत गुणवंत।
राग छतीसूं सनमुखी, विद्या पार अणंत॥
निजहि निंवण कुंजर कंवर, कंठां सोवती माळ।
जटा मुकट सिर आपरै, ठमक्या कांसी थाळ॥
लिखमा करै ज आरतो, धणी रा केळ करंत।
रिधि-सिधि करभों कयै, गवर पूत गुणवंत॥

सिद्ध-कवि संत लालनाथजीने अपने ग्रन्थोंमें गणेश-स्तवन बड़ी ही श्रद्धासे किया है। आपके 'वरणविद्या' ग्रन्थमें गणेश-स्तुति—

ॐ शिव का पुत्र गणेश, माय पारबती गौरां।
साखी समरथ, ज्ञान द्यो गणपत ओरां॥
विप्र करै बिधान, बिनती प्रज बिनोरां।
[illegible] थांरी जोत, ज्ञान द्यो गुरु कठोरां॥

चित्या मेव्या चतरभुज, ध्यान धरणीधर दोरां ।
'लाल्लू' परसण पात ज्ञान का माडळ वोरां ॥

इसी प्रकार आपने अपने 'हरिलीला' और 'निकळंग-पुराण' में गणेश-स्तुति की है—

(१) 'सनमुख हो गणपात, सिधि स्वामी सूंडाळा ।'
(२) 'ध्यावां गुरु गणेश'नैं, खुलै गुणां भंडार ।

सिद्ध रुस्तमजीने अपने अत्यन्त लोक-प्रिय ग्रन्थ 'क्रिसन-ब्यावलो' में गणेश-वन्दना की है—

हित कर सिंवरां गुरु गणेश । मात पारवती पिता महेश ॥
सुरग पियाळां निवैं सो देश । गुणपतनैं मानैं आदेश ॥

सिद्ध रुस्तमजीने अपने 'क्रिसनव्यावलो' ग्रन्थ-निर्माण-के लिये श्रीगणेशजीसे सहायता माँगी है—

गुणदाता गुणपत जपां, संविध अवो सिहाय ।
कथां ब्यावलो क्रिसन को, सोझी द्यो समझाय ॥

इसी प्रकार 'सिद्ध-सम्प्रदाय'के आधुनिक युगके अगुआ कवि सिद्ध रामनाथजीने अपने 'श्रीशब्दपदन्ति' ग्रन्थमें श्यामकल्याण-रागके अन्तर्गत विघ्नहरण और मङ्गलकरण श्रीगणेश भगवान्‌की स्तुति की है—

(१) श्रीगणपति मेरा विघ्न हरो री,
विघ्न हरो री स्वामी करुणा करो री ॥ टेक ॥

❁ ❁ ❁

सब सुख कारण विघ्न विडारण, गजानन आप वरो री ।
विद्या सुधारण ज्ञान उधारण, या विध याद करो री ॥
मुक्ति के कारण, भव से तारण, ताकैं चरण परो री ।
'रामनाथ' गावैं भजन सुणावैं, सुणतांहि पाप जरो री ॥

❁ ❁ ❁

(२) संतों भाई गणपति तेरा गुण गाई ।
विघ्न बिडारण संपन मारण, सरस्वती सार मिलाई ॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि अनेकशः बातोंमें 'सिद्ध-सम्प्रदाय' अपनी मौलिकता एवं भिन्नता रखता हुआ भी श्रीगणेश-स्तवनमें सनातन परम्पराका पोषक एवं पालनकर्ता है ।

राजस्थानी लोक-साहित्यमें श्रीगणेश

(लेखक—डॉ० श्रीमनोहरजी शर्मा)

भारतके अन्य भू-भागोंकी तरह राजस्थानमें भी श्रीगणेश-की पूरी मान्यता है । यहाँ प्रत्येक कार्यके प्रारम्भमें उनका सादर स्मरण किया जाता है । सुदृढ़ लोक-विश्वास है कि श्रीगणेशकी कृपा प्राप्त कर लेनेपर किसी भी कार्यमें उपस्थित होनेवाले विघ्न स्वयं समाप्त हो जाते हैं ।

श्रीगणेश विद्या-बुद्धिके विधायक माने जाते हैं । अतः विद्यार्थी बालकोंके लिये वे परम पूज्य हैं । राजस्थानमें बालकोंका प्रमुख त्योहार 'गणेशचौथ' (भाद्रपद-शुक्ला-चतुर्थी) है । इस दिन बालकोंमें बड़ा उत्साह एवं उल्लास रहता है । वे नये वस्त्र धारण करते हैं । उनके लिये मिष्टान्न बनाया जाता है । पाठशालाओंकी ओरसे भी यह त्योहार बड़े उत्साहके साथ मनाया जाता है । लोकभाषामें इसे 'चौक-चाँदणी' (अर्थात् च्यानणी चौथ) कहा जाता है । पाठशालाओंकी ओरसे विशेष झाँकी तथा जुलूस निकलते हैं । इस अवसरपर बालक समवेत स्वरमें गीत भी गाते हैं । इन गीतोंको 'गजल'[1] कहा जाता है । 'चौक-चाँदणी'के अवसरपर गायी जानेवाली गजलोंमें 'गणेशजीकी गजल' प्रमुख है । इसमें श्रीगणेशजीके जन्मकी पुराण-कथा है ।

राजस्थानमें प्रत्येक भवनके प्रमुख द्वारपर ताखमें श्रीगणेशकी प्रतिमा स्थापित किये जानेका नियम है । इस प्रकार वे भवन एवं उसमें निवास करनेवाले लोगोंके 'आरक्ष देव' हैं । कन्या-विवाहके अवसरपर उस भवनके द्वारपर पहुँचनेवाला 'वर' सर्वप्रथम उन्हींकी वन्दना करता है । इस प्रथाको 'तोरण-वन्दना' कहा जाता है । इसे आजकल 'तोरण मारणो' नाम दे दिया गया है, जो मध्यकालीन राजपूत-जीवनका प्रभाव है ।

सम्पूर्ण वैवाहिक कार्यके सानन्द सम्पन्न किये जानेका भार तो विशेषरूपसे श्रीगणेशजीपर ही छोड़ा जाता है । राजस्थानमें रणथंभौर गढ़के गणेशकी विशेष ख्याति है । वहाँ गणेश-चौथके अवसरपर बड़ा भारी मेला लगता है; जहाँ दूर-दूर-के यात्री अपनी मनौती पूरी करनेके लिये, देवदर्शन-हेतु पहुँचते हैं । वैवाहिक कार्य प्रारम्भ करते समय सर्वप्रथम उन्हीं-का आवाहन किया जाता है । इस अवसरपर गाया जानेवाला गीत बड़ा ही महत्त्वपूर्ण एवं लोकप्रिय है । गीत इस प्रकार प्रारम्भ होता है—

१. राजस्थानमें नगर-वर्णन-सम्बन्धी काव्यको 'गजल' कहा जाता है और यहाँ ऐसे 'गजल'-नामक काव्योंकी पुरानी परम्परा है । जैसे—'चूरूकी गजल', 'बिसाऊकी गजल' आदि ।

गढ़ रणथंभोर सूँ आवो विनायक, करो ए बनीनैं निरदुखी।
रिद्ध विनायक दोनूं ही आया, आय पधार्‌या सीळे बड़ तळे।
बूझत-बूझत नगर पहुंच्या, पोळ बतावो लाडेला रै बाप की।
ऊँची-सी मेड़ी, लाल किंवाड़ी, केळ झबूकै लाडेला रै बारणैं।

"हे विनायक! रणथंभोर-गढ़से आओ और आकर हमारे विवाहके कार्यको सर्वथा चिन्तारहित करो। ऋद्धि और विनायक दोनों ही आये और आकर उन्होंने शीतल बड़के नीचे ठहराव किया। वे नगरमें यह पूछते-पूछते प्रविष्ट हुए कि कोई हमें दुल्हेके पिताकी 'पोल' (घरका प्रधान दरवाजा) बतलावे। उन्हें उत्तर मिला—"दुल्हेके घरकी 'मेड़ी' ऊँची-सी है। उसके किवाड़ लाल रंगके हैं। उसके दरवाजेके पास केला हवामें लहलहा रहा है।"

पहलो तो बासो कांकड़ बसियो, कांकड़ निपजै मोठ र बाजरो।
(दूजो तो बासो सरवर बसियो, सरवर भरियो ठंडै नीर सूं।
भरियो तो सरवर लेवै हिलोळा, नीर भरै जी पणिहारियाँ।)
दूजो तो बासो बाड़ी जी बसियो, बाड़ी भरी ए खिजूर सूं।
फल-फूल बाड़ी में फळ फळिया, फूलां जी मरवा केवड़ा।
(अगलो तो बासो बड़ तळै बसियो, बड़ नारेळां जी छाइयो।)
तीजो तो बासो नगरी जी बसियो, नगरी में बैठ्या बामण बाणिया।
चौथो तो बासो तोरण बसियो, तोरण छायो रूड़ी चिड़कल्यां।
है तो दुबक-डोळ्यां सात चिड़कली, बिच हरियाळो सूवटो।
बै तो चम चम बोलै सात चिड़कली, इमरत बोलै हरियो सूवटो।
पांचवों तो बासो फेरां जी बसियो, फेरां में बैठ्या लाडो-लाडली।
म्हारी लाडली को चीर पळज्यो, राईवर को बागो-बीटली।
बधज्यो-फळज्यो ए दोन्यूं गोत तुम्हारो, एक पिवर दूजो सासरो।
छट्ठो तो बासो थापे जी बसियो, थापे में बैठ्या देई-देवता।
सातमों तो बासो ओवरै बसियो, ओवरड़ो घी-गुड़ भरयो।

"उन्होंने पहला ठहराव सीमान्तपर किया। वहाँके खेतोंमें 'मोठ' और 'बाजरा' अन्न प्रचुरमात्रामें पैदा होता है। उन्होंने दूसरा ठहराव सरोवरके पास किया। यह सरोवर ठंढे पानीसे भरा हुआ है। उसमें लहरें उठ रही हैं और पनिहारिनें जल भर रही हैं। उन्होंने दूसरा ठहराव 'बाड़ी' (वाटिका) में किया। बाड़ी खजूर-जैसे मधुर फलोंसे भरी-पूरी है। उसमें अन्य भी नाना प्रकारके फल हैं और कुछ, मरवा तथा केवड़ा आदि फूले हुए हैं। उन्होंने अगला, अर्थात् तीसरा ठहराव नगरीमें किया। नगरीमें स्थान-स्थानपर ब्राह्मण और बनिये बैठे हुए हैं। उन्होंने चौथा ठहराव 'तोरण'के पास किया। तोरण सुन्दर चिड़ियोंसे छाया हुआ है। उसमें इधर-उधर सात चिड़ियाँ हैं और बीचमें हरा सुग्गा है। वे चिड़ियाँ चहचहा रही हैं और वह सुग्गा अमृत-वाणी बोल रहा है। उन्होंने पाँचवाँ ठहराव 'फेरों' (भाँवर) में किया। वहाँ दुल्हा और दुलहिन बैठे हुए हैं। हमारी दुलारी दुलहिनका 'चीर' (ओढ़ना) तथा 'राईवर' (दुल्हे) का 'बागा' (शरीरपर धारण करनेका वस्त्र) और 'बींटली' (पगड़ी) वृद्धिको प्राप्त हों। हे दुलहिन! तुम्हारे पीहर और ससुरालके दोनों ही 'गोत' (गोत्र) अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हों। उन्होंने छठा ठहराव 'थापे' (देवस्थापनाका स्थान) के पास किया। वहाँ समस्त देवियाँ और देव विराजमान हैं। उन्होंने सातवाँ ठहराव 'ओवरे' (अपवरक—सुन्दर कमरा) में किया। 'ओवरा' (अर्थात् भंडार) गुड़ और घीसे भरा-पूरा है।

एक कोथळड़ी जस देईं विनायक, लाडलै रै दादा-बाप नैं।
बै तो खाय-खरचै सो मन हिलसै, जस रैवै परवार में।
एक बाँहड़ली जस देईं विनायक, लाडलै कै चाचै-बीर नैं।
एक जीभड़ली जस देईं विनायक, लाडलै की दादी-माय नैं।
बै तो मीठी सी बोलै नै कर चालै, ज्यूँ सरसै परवार में।
एक भात में जस देईं विनायक, लाडलै कै नानै-मामां नैं।
एक आरतै जस देईं विनायक, लाडलै की भूवा-बैण नैं।

"हे विनायक! दुल्हेके दादा और पिताको 'कोथळी' (थैली) का यश देना अर्थात् उनकी थैलीको सदैव भरी-पूरी रखना। वे अपने मनका अच्छी तरह आनन्द लें, उसे खायें-खरचें, जिससे पूरे परिवारमें उनको यश प्राप्त हो। हे विनायक! दुल्हेके चाचा और भाइयोंको भुजाका यश देना। हे विनायक! दुल्हेकी दादी और माँको जीभ-सम्बन्धी यश देना। वे मधुर वाणी बोलें और नम्रताका व्यवहार करें, जिससे पूरे परिवारमें सरसताका प्रचार रहे। हे विनायक! दुल्हेके नाना तथा मामोंको 'भात' (मायेरा) में यश देना। हे विनायक! दुल्हेकी बूआ और बहनको 'आरते'में यश देना।"

एक गाजत-बाजत आवो विनायक, सावणियां के मेह ज्यूं।
एक रमझोळां-झबूकतो आवो विनायक, भिणजारै के टेक ज्यूं।
एक मोरकी-सूंड्यो आवो विनायक, सरब-सुहागण कै हाथ (सीस) ज्यूं।

थे तीज पवन निवारो विनायक, धूल न पाणी बसन्दरा।
गली-गली मत जाई विनायक, सीधो ही आई म्हारी साळ में।

"हे विनायक! सावनके मेघके समान गर्जना करते हुए आना, जो सर्वत्र उल्लासका विस्तार कर देता है। हे विनायक! बनजारेके बैलकी तरह सब प्रकारसे भरे-पूरे होकर आना। हे विनायक! सर्वसुहागिन स्त्रीके हाथ जिस प्रकार मेहदीके 'माँडनों' (अलंकरणों) से सुन्दर बन जाते हैं, उसी प्रकार सब तरहसे मण्डित होकर आना। हे विनायक! पवन, जल तथा अग्नि—इन तीनोंकी बाधाका निवारण करना। हे विनायक! इधर-उधरकी गलियोंमें न चले जाना, सीधे हमारे घरकी सामनेवाली 'साल' (कमरेमें) ही आना।"

या तो आवै गूगळियां की वास सुगंधी, कूण सुहागण गणपत पूजियो
गणपत पूजै लाडेके की माय सुहागण, जां घर बिड़द उतावळी।

"गुग्गुलकी सुगन्ध फैल रही है। किस सुहागिनने गणपतिकी पूजा की है? दुल्हेकी माता सुहागिन गणपतिकी पूजा कर रही है, जिसके घरमें वैवाहिक कार्यके लिये उतावली हो रही है।"

राजस्थानमें श्रीगणेशसे सम्बन्धित अन्य लोकगीत भी प्रचलित हैं, परंतु उपर्युक्त गीतमें इस वर्गके सभी गीतोंकी विशेषताएँ समाविष्ट हैं; अतः अधिक उदाहरण देकर लेखका कलेवर बढ़ाना उचित नहीं है।

प्रस्तुत गीतमें श्रीगणेशका गुण-गौरव भलीभाँति प्रकट है। साथ ही उनके प्रति प्रकट लोकश्रद्धा भी स्पष्ट है। मङ्गल-कामना तो इस गीतका प्राणतत्त्व ही है।

गीत कुछ बड़ा-सा है। इसमें धनसम्पन्नता, भुज-बल, मधुर व्यवहार, पारस्परिक सहयोग एवं सद्भावनाकी चर्चा है और ये सब प्रदान करनेके लिये विनायकसे विनय की गयी है। यहाँ परिवारका अत्यन्त उज्ज्वल एवं सुखपूर्ण चित्र प्रकट हुआ है। भारतीय लोक-जीवनका यह पुरातन आदर्श है, जो यहाँ वैदिक-कालसे चला आ रहा है। इसमें एक ऐसे गृहस्थ-जीवनकी झाँकी है, जो सब प्रकारसे सम्पन्न, शक्तिशाली एवं सौहार्दपूर्ण है। भारतीय गृहस्थ इसी आदर्श-को प्राप्त करना चाहता है और इसीके लिये प्रस्तुत राजस्थानी गीतमें प्रार्थना की गयी है, जो 'लोके वेदे च' का तथ्य प्रकट करते हुए निम्नलिखित वेदमन्त्रका सहज ही स्मरण करा देती है—

आब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्।
आराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्।
दोग्ध्री धेनुः, वोढानड्वान्, आशुः सप्तिः, पुरन्धिर्योषा,
जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्।
निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु।
फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम्।
योगक्षेमो नः कल्पताम्। (यजुर्वेद २२ । २२)

इस प्रकार कहना न होगा कि यह लोकगीत असाधारण सांस्कृतिक महत्त्वसे सम्पन्न है और भारतकी अतिप्राचीन जीवन-धारासे इस महान् देशकी वर्तमान जीवन-पद्धतिको जोड़ने-वाला एक प्रकाशमान स्वर्णसूत्र है।

लोकगीतोंके समान ही लोक-साहित्यका एक प्रमुख अङ्ग लोककथा भी है। नहीं कहा जा सकता कि किसी देश-में प्रचलित कोई लोककथा कितनी पुरानी है और समयानुसार वह किस प्रकार अपना रूप-परिवर्तन करती हुई चली आ रही है। राजस्थानमें 'विनायक'-विषयक अनेक लोककथाएँ भी प्रचलित हैं और उनका अपना सांस्कृतिक महत्त्व है। श्रीगणेशके जन्म और उनके विवाहकी कथाएँ तो प्रसिद्ध ही हैं। उनमें पुराण-कथाके सूत्र हैं और उनको आधारभूत मानकर राजस्थानमें काव्य-रचना भी हुई है; परंतु अन्य कथाओंमें विनायक-महिमा देखते ही बनती है।

राजस्थानमें व्रत-कथाओंका बड़ा प्रचार है। प्रत्येक व्रतके बाद उससे सम्बन्धित कथा कही जाती है। इन कथाओंमें कई पौराणिक कथानकपर आधारित हैं तो कई सर्वथा लौकिक भी हैं। इस प्रकारकी लौकिक व्रत-कथाको राजस्थानमें सामान्यतया 'कहाणी' कहा जाता है। ध्यान रखना चाहिये कि किसी भी व्रतकी 'कहाणी' कहने-सुननेके बाद नियमसे 'विनायकजी'की 'कहाणी' कही ही जाती है। विनायकजीकी 'कहाणी' कहे बिना किसी भी व्रतकी 'कहानी' फलवती नहीं मानी जाती। इस नियमसे राजस्थानी महिला-समाजमें व्याप्त श्रीगणेश-महिमाका महत्त्व भी पता चल सकता है।

राजस्थानी कहानियोंमेंसे कुछ यहाँ संक्षिप्त रूपमें दी जाती हैं, जिससे कि इस वर्गकी कहानियोंका सार-तत्त्व स्पष्ट हो सके—

(१)

एक बार विनायकजी बालक-रूपमें घर-घर घूम

और मुट्ठी-भर चावल लिये हुए जरूर गलियोंमें घूम रहे थे और पुकार-पुकारकर कह रहे थे—'कोई मेरे लिये खीर बना दे; कोई मेरे लिये खीर बना दे'; परंतु इतने थोड़े-से दूध तथा चावलसे खीर किस प्रकार बन सकती है? अतः कोई भी व्यक्ति उस बालकका काम कर देनेके लिये तैयार नहीं हुआ। अन्तमें बालक विनायक एक बुढ़ियाके घरके सामने पहुँचा तो उसने स्नेहवश उसकी बात स्वीकार कर ली और बर्तनमें उसका दूध-चावल भर-कर उसे आगपर चढ़ा दिया। बालक स्नान करनेके लिये बाहर चला गया और इधर बुढ़ियाका बड़ा बर्तन खीरसे भर गया। अब तो बुढ़ियासे खीर खाये बिना नहीं रहा गया। पहले उसने एक थाली भरकर बालकके लिये अलग रख दी और फिर अपने लिये थाली खीरसे भर ली तथा आरामसे उसे खा लिया। इसके बाद बालक स्नान करके आया और उसने खीर माँगी तो बुढ़ियाने उसके सामने खीरकी थाली रख दी। परंतु बालकने उस खीरको देखते ही कहा कि 'यह तो जूठी है'। इसपर बुढ़ियाने सारी बात प्रकट कर दी। बालक विनायक बुढ़ियाके सत्य वचनपर परम प्रसन्न हुआ और उसे सब प्रकारसे सुखी बना दिया।

(२)

किसी गाँवमें एक ब्राह्मण और उसकी पत्नी रहते थे; परंतु दुर्भाग्यवश वे दोनों ही अंधे हो गये और घरमें एक पुत्रीके अतिरिक्त अन्य कोई भी न था। वह बालिका ही अपने माता-पिताकी सेवा करती थी। एक बार गणेशजीके मेलेका दिन आया तो छोटी लड़कीने अपने माता-पिता-के सामने मेलेमें जानेकी इच्छा प्रकट की। पिताने उसे दो पैसे दिये और वह मेलेमें जा पहुँची। वहाँ कोई कुछ खरीद रहा था और कोई कुछ खा रहा था; परंतु लड़कीने किसी ओर भी ध्यान नहीं दिया। वह तो केवल गणेशजी-की प्रतिमाकी ओर ही टकटकी लगाये खड़ी रही। बालिका-की इस भक्ति-भावनासे गणेशजी बड़े प्रसन्न हुए और उससे वरदान माँगनेके लिये कहा। लड़कीने बुद्धिमानी की और वह एक साथ ही कह गयी—"मैं अंगुली पकड़े हुए दो भाई माँगती हूँ, माता-पिताके लिये नेत्र-ज्योति माँगती हूँ, जरी-बादल-के वस्त्र माँगती हूँ और मोती-मूँगोंका जेवर माँगती हूँ।" गणेशजीने कहा 'तथास्तु' और उसी समय दो बालकोंने आकर उस बालिकाके दोनों हाथोंकी अँगुलियाँ पकड़ लीं। अब लड़की घरकी ओर चली तो उसे ध्यान आया कि कई बार उसकी अंधी माता गरम बर्तन पकड़ लेती है और उसके हाथ जल जाते हैं; अतः उसने अपनी माताके लिये दो पैसोंका एक 'चिमटा' खरीद लिया। जब वह घर पहुँची तो अपने माता-पिताको चिमटा देखनेके लिये दिया। उसी समय उन दोनोंके नेत्रोंमें ज्योति आ गयी। भाई तो साथ थे ही। वह घर धनसे भी भरा-पूरा हो गया।

(३)

किसी बनियेके बेटेकी बहूके कोई संतान न थी। उसकी सासने विनायकजीकी मनौती मानी कि 'यदि उसकी पुत्रवधू गर्भ धारण कर ले तो वह उनको सवा सेरका चूरमा चढ़ायेगी।' देवकृपासे ऐसा ही हो गया। उसकी पुत्र-वधू गर्भवती हुई तो फिर सासने विनायकजीकी मनौती मानी कि 'यदि उसके घरमें पोता जन्म लेगा तो वह देवता-को अढ़ाई सेरका भोग चढ़ा देगी।' समयपर उसकी बहूने पुत्रको जन्म दिया, परंतु उसने अपनी मनौती पूरी नहीं की और कहा कि 'जब पोता पैरों चलने लगेगा तो एक साथ ही सवा पाँच सेरका भोग चढ़ा दिया जायगा।' इससे विनायकजी रुष्ट हो गये और उसके पोतेको उन्होंने सूक्ष्म-रूप देकर उसीके घरकी चौखटमें छिपा दिया। जब शिशुकी खोज हुई तो शिशु बोल उठा—'चरक्क हूँ विनायकजी हैं गहणै हूँ'। इस आवाजको सुनकर सब चकित हो गये तो फिर नयी आवाज आयी—'चरक्क चूँ, चौखट में हूँ।' सबने विनायकजीकी वन्दना की और तत्काल मनौती पूरी की गयी तो उन्होंने सुरक्षित रूपमें शिशुको लाकर पालनेमें लिटा दिया।

इसी प्रकार अन्य भी कई लघु-कथाएँ लोकस्मृतपर अवस्थित हैं और वे व्रत-कथाके बाद बड़ी ही श्रद्धा-भक्तिके साथ कही जाती हैं। इनमें विनायकजीकी प्रसन्नताका मधुर फल प्रकट किया गया है; परंतु नाराज होनेपर वे बाधा भी उत्पन्न कर देते हैं, ऐसा उनका स्वभाव है। अतः प्रत्येक कार्यके प्रारम्भमें उनका श्रद्धापूर्वक स्मरण किया जाता है। विवाहके अवसरपर तो एक छोटे बालक-को वरके साथ रहनेवाला विनायक बनानेकी प्रथा भी है। इन लोककथाओंमें लोकहृदयकी सरलता देखते ही बनती है। साथ ही यह भी ध्यानमें रखना चाहिये कि इन पुण्य-कथाओंमें सुखी एवं सम्पन्न गृहस्थीकी कामनाके साथ ही लोकमङ्गलकी भावना भी व्याप्त है, जो भारतीय संस्कृतिका एक प्रकाशमान तत्त्व है। प्रत्येक व्रत-कथाके अन्तमें नियम-

पूर्वक कहा जाता है—'हे विनायक महाराज! जिस प्रकार आपने इस कथाके पात्रपर प्रसन्न होकर उसे सब प्रकारसे सुखी बना दिया, उसी प्रकार सबपर कृपा कीजियेगा—कथा कहनेवालेपर, कथा सुननेवालेपर और हुँकारा देनेवालेपर।'

असलमें यह अन्तिम वाक्य इन व्रत-कथाओंका माहात्म्य प्रकट करता है, जिससे सहज ही लोकहृदयमें श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। यही कारण है कि राजस्थानी जन-साधारणका अटल विश्वास है—

विघन-हरण मंगल-करण, काटण सकल कलेस।
सारां पहली सुमरिये, गौरीपुत्र गणेस॥

'विघ्नोंको हरनेवाले, मङ्गलको करनेवाले, सब प्रकारके क्लेश मिटानेवाले गौरीपुत्र गणेशका स्मरण सभी देवी-देवताओंसे पहले करना चाहिये।'

इसीलिये यात्रारम्भके पूर्व घरसे निकलते ही यह स्तुति की जाती है—

सदा भवानी दाहणी, सनमुख रहै गणेस।
पाँच देव रक्षा करैं, ब्रह्मा विष्णु महेस॥

'श्रीगणेश मेरे सम्मुख रहें, भवानी सदा दाहिनी ओर रहें तथा ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये पाँचों देवी-देवता मेरी रक्षा करते रहें।'

इस प्रकार स्पष्ट है कि राजस्थानी जनताके रोम-रोममें श्रीगणेशजीके प्रति अपार श्रद्धा और भक्ति-भावना रमी हुई है। वे यथार्थ ही गणपति एवं परम पूजनीय हैं।

खम्भात-क्षेत्रके कवियोंद्वारा श्रीगणेश-स्मरण

गुजरातके खम्भात क्षेत्रमें भी कवियोंने श्रीगणपतिका स्मरण करके अपने काव्यका शुभारम्भ किया है। कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं—

(१) कवि विष्णुदास (समय १६२४ से १६८१ वि०)

(क) 'जालन्धरा-आख्यान' के प्रारम्भमें कहते हैं—

श्रीशंकर सुतने प्रणमुं रे, मागुं मति मनोहर सार।
मुज मंदने करुणा करो रे, गणपति बुद्धि-दातार॥

ढाल

बुद्धितणो दातार गणपति, सुख-सुख स्वामी सुजाण।
लक्ष-लाभ कुमार छे मन-कामना नथु प्रमाण॥
मूषक वाहन, आहार मोदक, विघ्नहर विवेक।
गजानन, गुणवंत पूरण, दंत उज्ज्वल एक॥

(ख) 'शल्यपर्व-आख्यान'में—

श्रीगुरु गणपतिने विनवुं रे प्रणामि लागूं पाय।
शुभमति मुजने आपो रे, स्वामी श्रीगणराय॥

(ग) 'रुक्मांगदके आख्यान'में (रचना-काल १६३४ ई०)

प्रथमे प्रणमुं गणपति राय, जेथी कारजतणी सिद्धि थाय।
दया करो मने दुंदाला देव, निर्मल मति मने आपो अवश्यमेव॥

(घ) 'हरिश्चंदपुरी-आख्यान' (रचना-काल १६५७ ई०)

गणपति गिरिजानन्दन, वंदन करूँ शिर नामी रे।
नामी रे सेवक, कार्य सिद्ध करो रे॥

इस कविने अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है।

(२) कवि शिवदास (विष्णुदासके समकालीन)

(क) 'जालन्धराख्यान'—

प्रथमे प्रणमुं आद्य अनंत कृपा करो श्रीपरमानंद।
सदा आपो गणपति, गुणराय प्रेम धरीने लागुं पाय॥

(ख) 'परशुरामाख्यान'—

'गार माग लिने करूँ वीनति सुन्दर शुन्द परद त्रिभुवन पति।'

(ग) 'डांगवाख्यान'—

श्रीगणपतिने लागूं पाय, जग आयो सकला काय।
करो सहाय महासुता, तुजने लागुं रे॥

(३) कवि रेवाशंकर (१९वीं सदी)
(रचना-काल १८२६ ई०)

शंभुसुतने वर्णवुं प्रेमे, पूजीने लागुं रे पाय।
सिद्धि तणया गजराजसमस्तां शुभ अति सुरधीश राय॥
गौरी-नंदन जय जगवंदन विघ्नविनायक देव।
संकटहरण अघमोचारण, सुर करे जेनी सेव॥
लंबोदर शुभ लक्षण पूरण, पावन परम पवित्र
कृपा करो करुणासागर, वरणवुं विष्णुचरित्र॥

इस कविने कई ग्रन्थोंकी रचना की है। उनमें गणपतिका स्मरण पहले किया है।

(४) कवि दुर्गाशंकर (१९ वीं सदी)

'पुरुषोत्तम मासकी कथा'काव्यमें (रचनाकाल १८५० ई०)

विघ्नविदारण सरस्वतीने श्रीगुरु इष्ट दयाल।
पुटलाने वंदीने हुं तो ग्रंथ रचुं आ काल॥

इस कविने अनेक ग्रन्थ रचे हैं। उनमें पहले गणपतिका स्मरण किया है।

महाराष्ट्रमें श्रीगणेशोत्सव और लोकमान्य तिलक

(लेखक—श्रीशंकरलालजी पोशा)

"पूनामें लोकमान्य तिलकके नेतृत्वमें गणेश-उत्सव देश-भक्तिके प्रचारार्थ एक राष्ट्रीय उत्सव बन गया था। उसे राष्ट्रधर्म-का स्वरूप मिला। उसीके अनुकरणपर ही बम्बई, अमरावती, वर्धा, नागपुर आदि नगरोंमें भी सार्वजनिक गणेश-उत्सव आरम्भ हुए। गणेशजी 'गणानां त्वा गणपतिं हवामहे'—इस मन्त्रके अनुसार व्यापक रूपसे गणराज्य देनेवाले, स्वतन्त्र देवता हैं, यह प्रचार आरम्भ हुआ। उत्तम भाषण और देशभक्तोंके द्वारा गणेशके आश्रयमें क्रान्तिकारियोंको संगठित करनेका कार्य सफल रहा। धार्मिक उत्सव होनेके कारण पुलिस उसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकती थी।"

—ये विचार सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्रीखानखाजेने अपने संस्मरणोंमें प्रकट किये हैं, जो 'केसरी'में धारावाहिक रूपसे प्रकाशित हुए थे।

बात भी सच है। लोकमान्यने देशके लिये अपना जीवन अर्पण करनेका दृढ़ निश्चय किया था। इसीलिये राष्ट्रीय शिक्षासे ओत-प्रोत नवयुवकोंको तयार करनेके लिये इन्होंने 'न्यू इंग्लिश स्कूल'की स्थापनाके एक वर्षके बाद ही 'केसरी' और 'मराठा'—इन दो पत्रोंका प्रकाशन आरम्भ किया, जिनका मुख्य ध्येय प्रौढ़ जनताको राजनीतिक दृष्टिसे जाग्रत् करना था।

गणेशका मूलस्वरूप ॐ माना जाता है। इस रूपमें उनकी प्रार्थना और पूजा अनादिकालसे चली आ रही है। किसी भी देवताका उपासक हो, फिर भी वह प्रथम गणेश-पूजाके बाद ही अपने उपास्य देवकी पूजा करता है। सभी धार्मिक कर्मकाण्ड प्रथम गणेश-पूजनसे आरम्भ होते हैं। यहाँतक कि कोई भी मन्त्र हो—आदिमें ॐ अवश्य लगा रहता है और यदि मन्त्रके अन्तमें भी ॐ लगा दिया जाता है तो इसकी शक्ति और बढ़ जाती है।

केवल भारतमें ही नहीं, ब्रह्मदेश, हिंद चीन, स्याम, तिब्बत, चीन, मैक्सिको, अफगानिस्तान, रूस, हिंदेशिया आदि देशोंमें ऐसे प्रमाण आज भी उपलब्ध हैं, जिनसे यह प्रकट होता है कि वहाँ भी श्रीगणेश-उपासकका प्रभाव था। उन देशोंसे प्राप्त मूर्तियोंके कई चित्र मूर्तिविज्ञान-विषयक ग्रन्थोंमें मिलते हैं।

हिंदू-धर्ममें अनेक उपासना-मार्ग हैं, जैसे—शैव, वैष्णव, शाक्त आदि। इनमें गणेशकी उपासना करनेवालोंको 'गाणपत्य' कहते हैं। ये लोग गणेश-पञ्चायतनकी उपासना करते हैं। इनके उपासक दक्षिणमें और विशेषरूपसे महाराष्ट्रमें मिलते हैं। श्रीमन्त पेशवा-सरकार गणेशकी उपासक थी। उनके शासनकालमें गणेशोत्सव बड़े ही राजकीय ठाट-बाटसे मनाया जाता था। श्रीमन्त सवाई माधवरावके शासनकालमें यह उत्सव शनिवारवाडाके गणेश महलमें विशाल रूपसे होता था। उस समय यह उत्सव छः दिनोंतक चलता था। गणेश-विसर्जनकी शोभायात्रा सरकारी लाव-लश्करके साथ निकलकर ओंकारेश्वर घाट पहुँचती थी; जहाँ नदीमें विग्रहका विसर्जन होता था।

इसी तरह पटवर्धन, दीक्षित, मजुमदार आदि सरदारोंके यहाँ भी उत्सव होता था। उत्सवमें कीर्तन, प्रवचन, रात्रि-जागरण और गायन आदि भी होते थे।

पूनामें निजीरूपसे इस चालू उत्सवको सरदार कृष्णाजी काशीनाथ उर्फ नाना साहेब खाजगीवालेने सर्वप्रथम सार्वजनिक रूप दिया। सन् १८९२में वे ग्वालियर गये थे, जहाँ उन्होंने राजकीय ठाट-बाटका सार्वजनिक गणेश-उत्सव देखा था, जिससे प्रभावित होकर पूनामें भी उन्होंने इसे १८९३ ई० में आरम्भ किया। पहले वर्ष खाजगीवाले, घोटवडेकर और भाऊ रंगारीने अपने यहाँ सार्वजनिक रूपसे गणेश-उत्सव आरम्भ किया। विसर्जनके लिये शोभायात्रा भी निकली। कहा जाता है कि खाजगीवालेके गणेशको शोभायात्रामें पहला स्थान मिला।

अगले वर्ष १८९४ ई० में इनकी संख्या बहुत बढ़ गयी। कौन-से गणेश आगे रहें, यह प्रश्न उठा। इसके लिये ब्रह्मचारी बोवाने लोकमान्य और अण्णा साहेब पटवर्धनको निर्णायक बनाया। इन दोनोंने पूनाके ग्रामदेवता श्रीकसबा-गणपति और जोगेश्वरीके गणपतिको क्रमशः पहला, दूसरा और तीसरा स्थान खाजगीवालेको दिया। यह क्रम आज भी चालू है।

राष्ट्रीय चेतनाके लिये लोकमान्यने महाराज शिवाजीकी स्मृतिमें शिवाजी-जयन्तीका महाराष्ट्रमें प्रचलन किया। प्रथम बार मराठा-नरेशोंने भी इसमें भाग लिया था। इससे ब्रिटिश सरकार अप्रसन्न हो गयी; क्योंकि लोगोंमें राष्ट्रीयताका संचार होता था तथा उसमें सरकारको विद्रोहके बीज दिखायी दे रहे थे, जिसे वह अङ्कुरित होने देना नहीं चाहती थी। अतः बादमें सरकारी कोपसे बचनेके लिये मराठा-नरेश उससे उदासीन हो गये।

लोकमान्यको गणेश-उत्सवके रूपमें स्वर्ण अवसर हाथ लगा। उन्होंने इसे राष्ट्रीय उत्सवके रूपमें परिवर्तित कर दिया—ज्ञान-यज्ञका रूप दे दिया। छः दिनोंके उत्सवको अब दस दिनोंका बना दिया गया। अंग्रेजी शिक्षाके कारण हिंदू युवक आचार-भ्रष्ट और विचार-भ्रष्ट होने लगे। उनमें हिंदू-धर्मके प्रति अश्रद्धा पैदा होने लगी। देवी-देवताओं और पूजा-उपासनाका वे मजाक उड़ाने लगे। इस अनिष्टकी ओर कई लोगोंका ध्यान गया और वे इसके निराकरणका उपाय भी सोचने लगे। लोकमान्यने इसके लिये गणेश-उत्सवको अपना साधन बनाया। इसके माध्यमसे उन्होंने हिंदुओंमें जीवन और जागरण उत्पन्न करनेवाले कार्यक्रम रखने आरम्भ किये। कीर्तन, प्रवचन, व्याख्यान और मेला (ख्याल) के साथ संगीतके तीनों अङ्ग-गायन, वादन और नृत्यकी त्रिवेणीको भी इसमें स्थान मिला। प्रहसन और नाटक भी इसकी शोभा बढ़ाने लगे। व्याख्यानोंके विषय ऐसे रखे जाते थे, जिनसे अपने अतीत—धर्म, वेदों और पुराणों, भारतीय साहित्य और संस्कृति, अपने देश, राम और रामायण, कृष्ण और गीता, ज्योतिष, संस्कृत और आयुर्वेदके प्रति लोगोंकी उत्पन्न होनेवाली घृणा श्रद्धामें बदल गयी। उन्हें यह भान हुआ कि वेद और पुराण कल्पित नहीं हैं। विदेशियों और विशेषकर अंग्रेजोंने हमारे इतिहासको इस ढंगसे लिखा है कि हमारा अतीत कलुषित दिखायी दे। पर इन उत्सवोंके माध्यमसे अतीतके उज्ज्वल पृष्ठ उजागर होकर सामने आने लगे। अपने-अपने विषयके विद्वान् वक्ता सब कुछ इस ढंगसे व्याख्या करने लगे कि लाख प्रयत्न करनेपर भी वे सरकारी कानूनके शिकंजेमें नहीं आ सके और जो कुछ कहना चाहते, धर्मकी आड़में कह देते।

प्रारम्भमें तो सरकारने कुछ और विशेष ध्यान नहीं दिया। पर जैसे-जैसे यह उत्सव अपना प्रभाव फैलाने लगा, इसकी किरणें देशमें ही नहीं, विदेशोंमें, जैसे—अदन, नैरोबी आदिमें—अपना प्रकाश फैलाने लगीं, सरकारके कान खड़े हो गये। उसमें उसे विद्रोहकी झलक दिखायी देने लगी। इसको लेकर हिंदुओंमें फूट डालनेका भी प्रयत्न किया गया। लोकमान्य इन सब विरोधियों और सरकारके पक्षपातियोंको अपने व्याख्यानों और 'केसरी' और 'मराठा'के इन दो पत्रोंके माध्यमसे मुँहतोड़ जवाब दिये, जिससे उनकी एक नहीं चली और जनता इसमें दुगुने उत्साहसे सम्मिलित होने लगी।

बादमें अंग्रेजोंने मुसलमानोंको भड़काया कि 'गणेश-उत्सव तो तुम्हारे विरोधमें है।' पर जब वे लोग इसमें सम्मिलित होते तो उनके सामने इसकी सत्यता उजागर हो जाती थी कि यह तो विशुद्ध धार्मिक पर्व है, जिसकी आड़में राष्ट्रीयताका प्रचार होता है; किसी धर्म, जाति या सम्प्रदायके विरोधमें नहीं; अतः उनके भाषण भी उत्सवोंमें होने लगे। १८९२ ई० के बादसे १९२० ई० तक एकाध अपवादको छोड़कर कहीं भी हिंदू-मुस्लिम दंगे नहीं हुए। यह गणेशजीकी ही कृपा थी।

लोकमान्य गणेश-उत्सवके माध्यमसे राष्ट्रीयताकी पोषक चतुःसूत्री योजना—स्वदेशी मालका प्रचार, विदेशी मालका बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षाका प्रसार और मद्यपान-निषेधका प्रचार आदिके संदेशको जनतातक पहुँचानेमें पूर्ण सफल रहे। किंतु इन उत्सवोंके पूर्णतया धार्मिक होनेसे प्रत्यक्षरूपसे सरकारके लिये उनपर प्रतिबन्ध लगाना असम्भव था, अतः उसने दूसरे मार्गका अवलम्बन किया। लोकमान्यपर 'केसरी'में प्रकाशित लेखोंको राजद्रोहात्मक सिद्ध कर उन्हें मांडले जेलमें भेज दिया गया। सरकारको आशा थी कि लोकमान्यके जेल चले जानेसे उत्सव स्वयं ही बंद हो जायेंगे; पर ऐसा हुआ नहीं। जन-जनके हृदयमें स्वतन्त्रताकी लहरें हिलोरें ले रही थीं।

वङ्ग-भङ्ग भी इसी कालमें हुआ था; अतः गणेश-उत्सव दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही रहा। अब बड़े नगरोंमे ही नहीं, छोटे-छोटे गाँवोंमें भी उत्सव मनाया जाने लगा। उत्सवोंमें कर्जनशाहीके विरुद्ध मेलों (ख्याल) के गीतोंमें प्रहार होने लगा। उस समय आजकी तरह बिजली नहीं थी। इसलिये तेलकी मशाल जलायी जाती थी, जो लकड़ीपर कपड़ा लपेटकर तैयार होती थी। सरकारने लाठी लेकर उत्सवमें भाग लेनेपर पाबंदी लगा दी, जिसमें बेचारी मशाल भी गयी। लेझिमका खेल भी उत्सवमें बंद हो गया। नकली माला लेकर जो करामात दिखाते थे, उन अखाड़ोंपर भी रोक लगा दी गयी। इतना ही नहीं, मेला (ख्याल) गानेवाले बालकोंके नाम-ग्राम भी लिखकर उनके माता-पिताको तंग किया जाने लगा। इससे मेला गानेवालोंकी संख्या कुछ समयके लिये घट गयी। इतना ही नहीं, 'तिलक महाराजकी जय'का नारा भी गैरकानूनी घोषित किया गया। इस नारेके लगानेके झूठे आरोपपर लोगोंको चार-चार सौ रुपयोंके अर्थ-दण्ड भी दिये गये। 'शिवाजी महाराजकी जय' पर भी लोगोंको सजा होने लगी। शोभा-यात्रामें शिवाजी और लोकमान्यके चित्रोंपर रोक लगा दी गयी। इस तरह सरकारने उत्सवमें भाग लेनेवालोंको तंग करना आरम्भ कर दिया। फिर भी जन-जनमें व्याप्त स्वाधीनताका संदेश अपना प्रभाव प्रकट करने लगा। लोगोंने कानून तोड़ना आरम्भ कर दिया। यहाँतक कि शोभा-यात्राको पुलिसने कहीं रोका तो गणेशजीकी सवारीको वहीं रखकर लोग चले गये और बादमें पुलिसको उठाकर उन्हें विसर्जित करना पड़ा और इन लोगोंपर सड़क रोकनेके अपराधमें सजा हुई। इस तरह भावी सत्याग्रह-संग्रामका प्रशिक्षण जनताको सरकारकी अदूरदर्शिताके कारण अनायास ही मिलने लगा। महात्मा गांधीके भावी सत्याग्रह-संग्रामके लिये सरकारने सत्याग्रही तैयार किये। उसके लिये भूमिका सरकारने बनायी। यह सब कुछ १९१४ ई० तक सरकारने किया। लोकमान्यके जेलसे छूटते ही वह चुप हो गयी।

अब गणेश-उत्सव केवल महाराष्ट्रतक ही सीमित नहीं रहा, सारे देशमें यह उत्साहके साथ मनाया जाने लगा। महात्मा गांधी, स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपतराय, विपिनचन्द्र पाल, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, अब्दुला ब्रेल्वी, महामना मदनमोहन मालवीय, आचार्य ध्रुव, बाबू भगवानदास, नरीमान, सरोजिनी नायडू, मौलिचन्द्र शर्मा, जमनादास मेहता, पन्नालाल व्यास-जैसे हिंदू, मुसल्मान, पारसी आदि सभी धर्मोंके प्रभावशाली लोग इनमें भाषण देने लगे। तब आजकी तरह ध्वनिप्रसारक-यन्त्र (लाउडस्पीकर) नहीं थे; अतः वक्ताको अपनी वाणीपर ही अधिकार रखकर अपनी बात हजारों श्रोताओंतक पहुँचानी पड़ती थी। यह साहस और जीवटका काम था।

गणेश-उत्सवके कारण एक ओर जहाँ राष्ट्रीय चेतनाको बल मिला तो दूसरी ओर साहित्य और कलाको प्रोत्साहन मिला। उत्सवोंके सभी कार्यक्रम मराठी, हिंदी या स्थानीय भारतीय भाषामें होते थे, जिससे भारतीय भाषाओंके प्रति जन-जनमें आदर पैदा हुआ कि ये भी विद्वानोंकी भाषाएँ हैं।

मेला (ख्याल)के लिये कवि गीत बनाकर देने लगे। पोवाडे (वीररस-काव्य) और भी लोकप्रिय हो गये। रंगमञ्चने प्रगति की। नये-नये नाटक-प्रहसन आदि लिखे और खेले जाने लगे। उत्सवके कारण ही मराठी रंगमञ्चमें नया जीवन आया। शाहीर (लोकगीत) और लावनीके प्रति लोगोंमें आकर्षण बढ़ा। मूर्तिकार गणेशजीकी छोटीसे लेकर बड़ीतक असंख्य मूर्तियाँ प्रतिवर्ष बनाने लगे, जिससे मूर्तिकला और उसके कलाकारोंको संरक्षण मिला; क्योंकि मूर्तियाँ मिट्टीकी रहनेसे प्रतिवर्ष नयी बनाकर स्थापित की जाती हैं। इस तरह लोकमान्यने गणेश-उत्सवको देशकी सर्वाङ्गीण प्रगतिका लोकप्रिय आधार बना दिया। लोकमान्य तिलक तो १९२० ई० में तिरोहित हो गये, पर उनके द्वारा प्रवर्तित राष्ट्रीय 'चेतनाका पर्व गणेश-उत्सव' आज भी देश-विदेशमें दुगुने उत्साह और ठाट-बाटसे मनाया जा रहा है। गत ८० वर्षोंमें अनेक उतार-चढ़ाव आये, देश दासतासे मुक्त हुआ, पर भगवान् गणेशजीकी कृपासे इन उत्सवोंमें कोई कमी नहीं आयी। वह सतत चल रहा है और चलता रहेगा। उसके साथ लोकमान्यकी राष्ट्रीय जागरणकी भावना जो है। जन-जागरणकी यह महान् ज्योति सदा प्रज्वलित रहेगी। इसीलिये बाल गङ्गाधर तिलक 'लोकमान्य' कहलाये।

श्रीगणेशप्रतिमा-पूजाका मूल्याङ्कन

निस्संदेह श्रीगणेशजी सर्वसौन्दर्य निधि हैं। वे मङ्गलमूर्ति हैं। उनकी रूपाकृतिका महत्त्व उनकी ही कृपासे वाणीमें अङ्कित किया जा सकता है। स्वरूपसे गणेशजी समस्त कर्तृत्वके आरम्भ हैं। वे ही मूल पुरुष और मूलारम्भ हैं, परात्पर हैं तथा सबके आदि, अन्त और स्वयम्भू हैं,—इस तरह समर्थ रामदासने अपने 'दासबोध'में उनके स्वरूपका स्मरण किया है—

तैसी मंगळमूर्ती आद्या। पासूनि जाल्या सकळ विद्या॥
मूळ पुरुषाचेनि द्वारे। तैसे कवी। नमूं ऐसिया गणेंद्रा॥
(दासबोध ७। १। १-४)

श्रीगणेशजीकी प्रतिमा सौन्दर्यकी प्रतीक है। जो व्यक्ति गणेशजीकी पूजा करता है, उसे विघ्नका भय नहीं रहता—

'गणेशं पूजयेद्यस्तु विघ्नस्तस्य न जायते।'
(पद्मपुराण, सृष्टि० ५१। ९९)

श्रीगणेशजी प्रकृतिस्वरूप हैं। वे महत्तत्त्वरूप हैं। वे पृथ्वी और जलके रूपमें अभिव्यक्त हैं। वे ही दिक्पालोंके रूपमें प्रकट हैं। असत् और सत्—दोनों ही उनके स्वरूप हैं। वे जगत्के कारण हैं। वे विश्वरूप—सर्वत्र व्यापक हैं। उनका यह साकार स्वरूप ही उनका रूप है। उनकी मूर्ति अथवा प्रतिमामें इसी साकार स्वरूप अथवा रूपकी अभिव्यक्ति उपलब्ध होती है—

प्रधानस्वरूपं महत्तत्त्वरूपं धरावारिरूपं दिगीशादिरूपम्।
असत्सत्स्वरूपं जगद्धेतुभूतं सदा विश्वरूपं गणेशं नताः स्मः॥
(गणेशपु० १। १३। १२)

श्रीएकनाथ महाराजने अपनी प्रसिद्ध रचना 'भावार्थ-रामायण'के आरम्भमें वेदान्तवेद्य, स्वसंवेद्य आद्यदेव अनादि गणेशकी वन्दनामें उनके अरूप-रूप—स्वरूपकी वन्दना की है; महाराजकी इस संस्तुतिमें श्रीगणेशके रूपका महत्त्वाङ्कन सहज सुलभ है—

ॐ नमो अनादि आद्या। वेद वेदान्त वंद्या॥
वंद्य ही परम वंद्या। स्वसंवेद्या श्रीगणेशा॥
तुझें निर्धारिता रूप। केवळ अरूपा पैं स्वरूप॥
(भावार्थ-रामायण, बाल० १। १-२)

श्रीगणेशजीका रूप परम सुन्दर है। उनकी मूर्ति बड़ी ही मनोहर स्वीकार की गयी है। उन्हें सौन्दर्यमण्डित कहा गया है—

'सौन्दर्यमण्डितः।' (गणपतिसहस्रनामस्तोत्र-५६)

वेद उनके रूपका वर्णन करनेमें अपने-आपको सर्वथा असमर्थ पाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी उन्हींकी कृपासे उन्हें मूर्तिमान् देखनेमें समर्थ होते हैं। एक बार प्रलय हो गया।'' ब्रह्मा, विष्णु और महेशने गणेशजीकी स्तुति की। उन्होंने करुणा कर त्रिदेवोंको अपना रूप दिखलाया। यह रूप मन और नेत्रोंको आनन्द देनेवाला था—

ततोऽतिकरुणाविष्टो लोकाध्यक्षोऽखिलार्थवित्॥
दर्शयामास तान् रूपं मनोनयननन्दनम्।
(गणेशपु० १। १२। ३२-३३)

श्रीगणेशजीने ब्रह्माजीको प्रत्यक्ष दर्शन दिया। वे दिव्य मायाविभूषित हैं। उनके हाथमें परशु और कमल सुशोभित हैं। वे समस्त पापोंको हरनेवाले तथा सर्वसौन्दर्य-कोश हैं। उनका मुख हाथीके मुखके समान है। वे अपने भक्तोंकी कामनाको पूरी करनेवाले हैं; सुर, मनुष्य और मुनियोंके सम्पूर्ण विघ्नोंको नष्ट करनेवाले हैं—इस रूपमें ब्रह्माजीने उनका दर्शन किया—

परशुकमलधारी दिव्यमायाविभूषः
सकलदुरितहारी सर्वसौन्दर्यकोशः।
करिवरमुखशोभी भक्तवाञ्छाप्रपोषः
सुरमनुजमुनीनां सर्वविघ्नैकनाशः॥
(गणेशपु० १। १५। १९)

भगवान् विष्णुद्वारा श्रीगणेशके प्रतिमा-पूजनका उल्लेख मिलता है। गणेशपुराणके उपासनाखण्डमें वर्णन है कि मधु-कैटभपर विजय प्राप्तकर भगवान् विष्णुने सिद्धिविनायककी प्रतिमाकी स्थापना की थी। शिवजीने भगवान् विष्णुको श्रीगणेशका पूजन कर मधु-कैटभसे लड़नेके लिये युद्धमें प्रस्थान करनेकी सम्मति दी। भगवान् विष्णुने सिद्धिक्षेत्रमें जाकर गणेशजीको प्रसन्न करनेके लिये घोर तप किया। श्रीगणेशजी प्रकट हो गये। श्रीविष्णुने उनकी स्तुति की। गणेशजी उन्हें अभीष्ट-पूर्तिका वर देकर अन्तर्धान हो गये। विष्णुने राक्षसोंको जीता और श्रीगणेशजीके मन्दिरका निर्माण कराया। वह स्फटिकका बना हुआ था। उसमें प्रचुर रत्न जड़े हुए थे। उसका शिखर सोनेका था, उसमें चार द्वार थे। वह मन्दिर सुन्दर शोभासे सम्पन्न था। उसमें गण्डकीय पाषाणोंसे

निर्मित श्रीगणेशकी प्रतिमा स्थापित की; देवताओं और ऋषि-मुनियोंने इस मूर्तिका नाम 'सिद्धविनायक' रखा और विष्णुका यह तप-क्षेत्र 'सिद्धिक्षेत्र'के नामसे विख्यात हुआ—

ततः आनन्दपूर्णोऽसौ मेने तावसुरौ जितौ ।
प्रासादं निर्ममे तत्र स्फाटिकं भूरिरत्नकम् ॥
कसत्काञ्चनशिखरं चतुर्द्वारं सुशोभनम् ।
प्रतिमां स्थापयामास गाण्डकीयोपलैः कृताम् ॥
देवाश्च मुनयः सिद्धविनायक इति प्रथाम् ।
चक्रुरत्र यतः सिद्धिः प्राप्तेयं हरिणा शुभा ॥
सिद्धिक्षेत्रं ततस्तत्तु पप्रथे भुवि सर्वशः ।

(गणेशपु० १ । १८ । २०-२३)

विष्णुके ही स्वरूप श्रीवामनने गणेशजीकी मूर्ति स्थापित की थी । गणेशजीको प्रसन्न करनेके लिये कश्यपके संकेतसे श्रीवामनने ('वक्रतुण्डाय हुम्' इस) षडक्षरमन्त्रका जप किया था । गणेशजीने उनको प्रत्यक्ष दर्शन दिया था। वे शुण्डदण्डसे सुशोभित और मयूरपर विराजमान थे—

'मयूरवाहनो देवः शुण्डादण्डविराजितः ।'

(गणेशपु० २ । ३१ । १०)

श्रीवामनने उनकी स्तुति की। गणेशजीके अन्तर्धान हो जानेपर श्रीवामनने काश्मीरीय पाषाणसे उनकी उत्तम मूर्तिका निर्माण करवाकर उसको स्थापित करवाया । यह मूर्ति चतुर्भुज, तीन नेत्रोंवाली, शुण्ड-मण्डित, प्रसन्नमुखी तथा दो श्रेष्ठ हाथोंसे भक्तोंको अभय प्रदान करनेवाली थी । इस मूर्तिके लिये उन्होंने रत्न-काञ्चन-जटित एक मन्दिर बनवाया और गणेशजीकी कृपासे बलिपर विजय पायी ।

........................वामनोऽकारयच्छुभाम् ।
काश्मीरोपलजां सोऽथास्थापयन्मूर्तिमुत्तमाम् ॥
चतुर्भुजां त्रिनयनां शुण्डादण्डविराजिताम् ।
प्रसन्नां वरहस्ताभ्यां भक्तानामभयप्रदाम् ॥
स्मरणाद्दर्शनाद्ध्यानात् पूजनात् सर्वकामदाम् ।
प्रासादं कारयामास रत्नकाञ्चननिर्मितम् ॥

(गणेशपु० २ । ३१ । २१-२३)

भगवान् शंकरद्वारा गणेशजीकी मूर्ति-स्थापना और मन्दिर-निर्माणका प्रसङ्ग गणेशपुराणमें उपलब्ध होता है । उन्होंने श्रीगणेशकी प्रसन्नतासे ही त्रिपुरपर विजय पाकर अपना 'त्रिपुरारि' नाम सार्थक किया था। संक्षिप्त आख्यान यह है कि त्रिपुरासुरको श्रीगणेशजीने सोने, चाँदी और लोहेके तीन नगर प्रदान किये थे । उसने काश्मीरके पाषाणसे श्रीगणेशजीकी मूर्ति बनवाकर मन्त्र-विद्या-विचक्षण ब्राह्मणोंके द्वारा उसकी विधिपूर्वक प्रतिष्ठा करायी । इसके लिये उसने गणेशपुरमें रत्न और स्वर्ण आदिसे उनका एक भव्य मन्दिर बनवाया था ।

ततः काश्मीरपाषाणभवां मूर्तिं गजाननीम् ।
स्थापयामास विधिवद्ब्राह्मणैर्मन्त्रकोविदैः ॥
महान्तं काञ्चनं दिव्यं मणिमुक्ताविभूषितम् ।
गणेशपुरमध्ये स प्रासादं कृतवान् शुभम् ॥

(गणेशपु० १ । ३९ । २-३)

त्रिपुरासुरने अमरावतीपर अधिकार कर लिया । ब्राह्मणवेष धारणकर गणेशजीने त्रिपुरासुरसे कहा कि 'मैंने कैलासमें शिवजीके पास गणेशजीकी मूर्ति देखी है । वह मूर्ति चिन्तित कामनाओंकी पूर्ति करनेवाली है । यह शिवजीद्वारा पूजित है'—

अहं कैलासमगमं दृष्टवान् मूर्तिमुत्तमाम् ।
शिवेन पूजितां सम्यग्गाणेशीं चिन्तितार्थदाम् ॥

(गणेशपु० १ । ४१ । २०)

त्रिपुरासुरने दूत भेजकर शिवजीसे उस चिन्तामणि-मूर्तिकी याचना की—

'मूर्तिश्चिन्तामणेस्तेऽस्ति गृहे सर्वार्थदा शुभा ।'

(गणेशपु० १ । ४२ । ५)

शिवजीने कहलाया कि 'बिना युद्धके वह मूर्ति नहीं दी जा सकती ।' त्रिपुरासुर कैलास गया । भ्रमण करते हुए उसे वहाँ एक चिन्तामणिमयी सुन्दर मूर्ति दीख पड़ी । वह सहस्रों सूर्योंके समान प्रभामयी, अनेक आभूषणोंसे शोभित एवं त्रैलोक्य-सुन्दर थी । उसे लेकर वह अपने स्थानपर लौट आया—

भ्रमन् ददर्श तत्रैकां मूर्तिं चिन्तामणेः शुभाम् ॥
सहस्रसूर्यसंकाशां नानालंकारशोभिनीम् ।
त्रैलोक्यसुन्दरीं सद्यो गृहीत्वा स्वस्थलं ययौ ॥

(गणेशपु० १ । ४३ । ४३-४४)

शिवने घोर तपके द्वारा गणेशजीको प्रसन्न किया । उनकी कृपासे उन्होंने त्रिपुरासुरपर विजय प्राप्त की । शिवजीने श्रीगणेशकी मूर्ति स्थापित करनेके लिये एक भव्य मन्दिर बनवाया, उसमें मूर्ति स्थापित की और गणेशजीकी पूजा की—

'संस्थापयामास महागणेशं प्रासादमुच्चैरकरमाशु चक्रे ॥'

(गणेशपु० १ । ४५ । १९)

गणेशजीकी मूर्तिकी पूजा देवता, ऋषि-मुनि आदि करते थे। देवराज इन्द्रने भी गणेश-मूर्ति स्थापित की थी। उन्होंने महर्षि गौतमके शापसे मुक्त होनेके लिये गणेशजीकी आराधना की। गणेशजीने उनको प्रत्यक्ष दर्शन दिया। इन्द्रने चिन्तामणिपुर-तीर्थमें रत्न और सुवर्णसे जटित एक विशाल मन्दिर बनवाकर उसमें श्रीगणेशजीकी एक दिव्य, सर्वावयवसुन्दर स्फटिकमयी मूर्ति स्थापित की —

स्थापयामास शक्रोऽपि स्फाटिकीं मूर्तिमाद्दराम्॥
वैनायकीं शुभां दिव्यां सर्वावयवसुन्दराम्।
कारयामास विपुलं प्रासादं रत्नकाञ्चनैः॥
(गणेशपु० १ । ३४ । २७-२८)

मुद्गल ऋषि गणेशजीके महान् भक्त थे। कमलासुरके पुत्र दक्षने मुद्गल ऋषिको गणेशजीकी मूर्तिकी षोडशोपचार एवं विधि-विधानसे पूजा करते देखा था। वह मूर्ति रत्न-काञ्चनसे निर्मित, चार भुजा तथा तीन नेत्रोंवाली एवं अनेक आभूषणोंसे अलंकृत थी—

वैनायकीं महामूर्तिं रत्नकाञ्चननिर्मिताम्॥
चतुर्भुजां त्रिनयनां नानालंकारशोभिताम्।
उपचारैः षोडशभिः पूजयन्तं विधानतः॥
(गणेशपु० ११ । १०-११)

गृत्समद मुनिकी गणना श्रेष्ठ गणेश-भक्तोंमें है। उनके तपसे प्रसन्न होकर श्रीगणेशजीने प्रकट होकर उन्हें प्रत्यक्ष दर्शनसे कृतार्थ किया था। मुनिने पुष्पक क्षेत्रमें उनका विशाल मन्दिर बनवाकर उसमें वरद-गणेशमूर्तिकी स्थापना की थी। यहाँ गणेशकी कृपासे सिद्धिका स्थान हो गया। वह पुष्पक क्षेत्र सबकी कामनाओंका पोषण (भरण) करता है।

गणेशमूर्तिप्रासादं कारयामास सुन्दरम्॥
वरदेति च तन्नाम स्थापयामास पावनम्।
सिद्धिस्थानं च तत्रासीद् गणेशस्य प्रसादतः॥
कामान् पुष्णाति सर्वेषां पुष्पकं क्षेत्रमित्यपि।
(गणेशपु० १ । ३७ । ४५-४७)

स्पष्ट है कि अनादिकालसे श्रीगणेशकी कृपा-प्राप्तिके लिये उनकी प्रतिमाकी पूजा होती आ रही है और यह परम्परा अनवरत चलती ही रहेगी। समय-समयपर अनेक गणेश-मन्दिरोंके निर्माणका उल्लेख इतिहासमें उपलब्ध होता है। नेपालके पशुपतिनाथ मन्दिरके उत्तरमें एक प्राचीन गणेश-मन्दिर है; कहा जाता है कि इसका निर्माण सम्राट् अशोककी लड़की चारुमतीने कराया था। काञ्चीमें शंकराचार्य और शारदादेवीके मन्दिरमें उच्छिष्टगणपतिकी प्रतिमा प्रतिष्ठित है। त्रिचनापल्लीमें [illegible] गणपतिकी प्रसिद्ध [illegible] है। १८४६ ई०में [illegible] नेपालमें [illegible] मन्दिर बनवाया था, जिसमें [illegible] गणपतिकी मूर्ति स्थापित है। [illegible] स्वामी-मन्दिरमें उच्छिष्टगणपतिकी मूर्ति प्रतिष्ठित है। [illegible] नदीके किनारे [illegible] मन्दिरमें उच्छिष्टगणपतिकी मूर्ति स्थापित है। [illegible] नदीके किनारे [illegible] निर्मित शिव-मन्दिरमें प्रसन्नगणपतिकी विलक्षण प्रतिमा प्रतिष्ठित है। [illegible] मन्दिरमें [illegible] गणपतिकी मूर्ति स्थापित है। विष्णुवर्धनके शासनकालमें ११२१ ई०में [illegible] मन्दिरका निर्माण आरम्भ हुआ था।

[illegible] ग्रन्थोंमें श्रीगणेशजीके विभिन्न रूपोंके ध्यानका वर्णन उपलब्ध होता है। ये बालगणपति, तरुणगणपति, भक्तगणपति, वीरगणपति, शक्तिगणपति, द्विजगणपति, सिद्ध-गणपति, उच्छिष्टगणपति, विघ्नगणपति, क्षिप्रगणपति, हेरम्बगणपति, लक्ष्मीगणपति, महागणपति, विजयगणपति, नृत्यगणपति, ऊर्ध्वगणपति, एकाक्षरगणपति, वरगणपति, त्र्यक्षरगणपति, क्षिप्रप्रसादगणपति, हरिद्रागणपति, एकदन्त-गणपति, सृष्टिगणपति, उद्दण्डगणपति, ऋणमोचनगणपति, ढुण्ढिगणपति, द्विमुखगणपति, त्रिमुखगणपति, सिंहगणपति, योगगणपति, दुर्गागणपति तथा संकष्टहरणगणपति आदि रूपोंमें वर्णित किये गये हैं। इन्हीं रूपोंके ध्यानके अनुसार मन्दिरोंमें इनकी प्रतिमाएँ स्थापित की गयी हैं।

श्रीगणेशजीकी मूर्ति प्रायः स्थानक (खड़ी) होती है, उनकी आसन-मूर्तियाँ (बैठी प्रतिमाएँ) भी उपलब्ध होती हैं। श्रीगोपीनाथ रावने अपनी पुस्तक 'एलीमेंट्स् आफ हिंदू आइकोनोग्राफी' के प्रथम खण्डमें गणेश प्रतिमाके लक्षणोंपर विशेष प्रकाश डाला है। गणेशजीकी स्थानक मूर्तियाँ द्विभुज और चतुर्भुज प्राप्त होती हैं। उनकी प्रतिमाएँ चतुर्भुज, षड्भुज, अष्टभुज, दशभुज, षोडशभुज होती हैं, पर प्रायः चतुर्भुज गणेश मूर्तियाँ ही देखनेमें आती हैं।

श्रीगणेशकी मूर्तिके निर्माणके सम्बन्धमें कहा गया है कि 'विनायकको गजमुख तथा चार भुजावाला बनाना चाहिये। उनके दाहिने हाथोंमें शूल, अक्षमाला और बायें हाथोंमें परशु और मोदकपूर्ण पात्रका संयोजन करना चाहिये।

उनका बायाँ दाँत नहीं बनाना चाहिये। एक आसनसे स्थित उनके चरणका निर्माण पादपीठपर करना चाहिये। उनके करके अग्रभागमें मोदकपूर्ण पात्र रखना चाहिये। उनका उदर बड़ा तथा कान स्तब्ध होने चाहिये। उनके वक्षको सर्पयज्ञोपवीत तथा शरीरको व्याघ्रचर्मसे अलंकृत करना चाहिये।'

विनायकस्तु कर्तव्यो गजवक्त्रश्चतुर्भुजः।
शूलकं चाक्षमालां च तस्य दक्षिणहस्तयोः ॥
पात्रं मोदकपूर्णं तु परशुश्चैव वामतः।
दन्तश्चास्य न कर्तव्यो वामो रिपुनिषूदन ॥
पादपीठकृतः पाद एक आसनगो भवेत्।
पूर्णमोदकपात्रं तु करगे तस्य कारयेत् ॥
लम्बोदरस्तथा कार्यः स्तब्धकर्णश्च यादव।
व्याघ्रचर्माम्बरधरः सर्पयज्ञोपवीतवान् ॥

(विष्णुधर्मोत्तरपु० ३।७१।१३-१६)

'शिल्परत्न' तथा सूत्रधार मण्डनकृत 'रूपमण्डन' आदि ग्रन्थोंमें भी गणेशमूर्ति-निर्माणकी विधिका समीचीन विवेचन उपलब्ध होता है। श्रीगणेशजीकी प्रतिमा-पूजा और उनकी उपासना सनातन है, सिद्धिदात्री और मङ्गलदायिनी है।

श्रीगणेशजीकी मूर्ति कृपामयी; मङ्गलमयी है। असंख्य देवताओंके उपास्य हैं—श्रीगणपति। उनकी प्रतिमा अनन्त शुभदायिनी और अनन्त सुखदात्री है। —रामलाल

मूर्तिकलामें श्रीगणेश

(लेखक—डॉ० श्रीब्रजेन्द्रनाथजी शर्मा, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्०, एफ्० आर्इ० ए० एस्०)

जेतुं यस्त्रिपुरं हरेण हरिणा व्याजाद् बलिं बध्नता
स्रष्टुं वारिभवोद्भवेन भुवनं शेषेण धर्तुं धराम्।
पार्वत्या महिषासुरप्रमथने सिद्धाधिपैः सिद्धये
ध्यातः पञ्चशरेण विश्वजितये पायात् स नागाननः ॥*

गणेश अथवा गणपतिके, जो 'गणानां त्वा गणपतिं हवामहे' इस मन्त्रके अनुसार शिवके गणोंके नायक भी हैं, एकदन्त, विघ्नेश्वर, लम्बोदर, हेरम्ब, शूर्पकर्ण, गजानन, गजेन्द्र, गणेश्वर, गुहाग्रज आदि अनेक नाम हैं। शिवपुराण, स्कन्दपुराण, वराहपुराण, मत्स्यपुराणमें इनके जन्मकी कथाके विस्तृत एवं विविध वर्णन प्राप्त होते हैं। दसवीं शतीमें उत्पन्न हुए हरिभद्रसूरिने 'धूर्ताख्यान'-नामक प्रसिद्ध ग्रन्थमें भी इनके जन्मकी कथाका बृहद् वर्णन दिया है। अमरसिंहके 'अमरकोष'में इनके अनेक नामोंकी सूची दी गयी है। गरुडपुराणमें गणेशको हिंदुओंके अन्य चार प्रमुख देवताओंके समान स्थान दिया है तथा अग्निपुराणमें इनकी पूजाका विस्तारसे वर्णन मिलता है।

गणेशकी पूजा अत्यन्त प्राचीन कालसे प्रचलित है। गणेशकी प्राचीनतम मूर्तियाँ यक्षों और नागोंकी प्रतिमाओंका प्रतिरूप प्रतीत होती हैं। यक्ष और नागोंकी मूर्तियोंकी पूजा ईसासे भी कई शताब्दी पूर्व भारतमें प्रचलित थी, जैसा कि प्राचीन साहित्य तथा मथुरा, विदिशा और पवाया आदि अनेक स्थानोंसे मिली मूर्तियोंसे ज्ञात होता है। इनके अतिरिक्त अमरावतीसे प्राप्त एक शिलापट्टपर (२ री शती), जो अब मद्रास-संग्रहालयमें प्रदर्शित है, गजानन यक्षका अङ्कन मिलता है। इसमें बड़े कान भी गजके हैं, परंतु मुख गजका नहीं है। जयपुरके समीप रेढ़-नामक स्थानसे प्राप्त (प्रथम शती ई० पूर्वसे प्रथम शती ई०) एक मिट्टीकी बनी गजमुखी मातृकाकी भी मूर्ति मिली है। मथुरासे प्राप्त एक शिलापट्टपर (२ री शती ई०) भी गजमुखी यक्षोंका अङ्कन मिलता है। इन सभी उदाहरणोंसे स्पष्ट है कि प्राचीन कलाकार गजमुखी मानव-आकृतियाँ बनानेमें भलीभाँति निपुण थे और जब लगभग चौथी शती ई०के करीब उनसे गणपतिकी मूर्तियाँ बनानेको कहा गया तो उन्होंने पाषाणके माध्यमसे हिंदू, बौद्ध एवं जैनधर्मके देवी-देवताओंके साथ ही गणेशकी भी कलात्मक प्रतिमाओंका निर्माण किया।

प्रारम्भिक गुप्त युग लगभग चौथी शती ई०की स्वतन्त्ररूपसे सर्वप्रथम गणेशकी स्थानक-मूर्तियाँ भगवान् कृष्णकी जन्मस्थली मथुरासे प्राप्त हुई हैं, जो वहाँके पुरातत्त्व-संग्रहालयमें

---

* त्रिपुरको जीतनेके लिये शिवने, भू-दान माँगनेके ब्याजसे बलिको बाँधनेवाले विष्णु (वामन) ने, सृष्टिके लिये ब्रह्माजीने, पृथ्वीको धारण करनेके लिये शेषने, महिषासुरका मर्दन करनेके निमित्त पार्वतीजीने, सिद्धिके लिये सिद्धेश्वरोंने तथा विश्व-विजयके लिये कामदेवने जिनका ध्यान किया था, वे गजमुख गणेश हमारी रक्षा करें।

सुरक्षित हैं। इनमें उनके केवल दो हाथ हैं तथा शुण्ड बाँयीं ओर मुड़ी हुई है, जिसका अग्रभाग बाँयें हाथमें पकड़े मोदक-पात्रपर रखा है। भूमरासे भी लगभग इन्हींकी समकालीन एक आसन-मूर्तिमें गणेश सुन्दर यज्ञोपवीत तथा उदर-बंध पहने दिखाये गये हैं। गुप्तकालीन पाँचवीं शतीकी एक अन्य मूर्तिमें भी उनके केवल दो हाथ हैं और उनके बाँयें हाथमें एक मोदक-पात्र है। परंतु इस मूर्तिमें 'ऊर्ध्वरेतस्' भावकी स्पष्ट अभिव्यक्ति की गयी है। यह मूर्ति उदयगिरि (मध्यप्रदेश) में आज भी देखी जा सकती है। उत्तर गुप्तयुगीन ५वीं-६ ठी शती ई०की मूर्तियोंमें गणेशके दोके स्थानपर चार भुजाओंका प्रदर्शन मिलना प्रारम्भ हो जाता है और यह बादकी मध्यकालकी मूर्तियोंमें भी मिलता है। झाँसी जिलेके देवगढ़के प्रसिद्ध दशावतार-मन्दिरपर इस प्रकारकी चतुर्भुजी मूर्तियाँ विद्यमान हैं।

पूर्व-मध्ययुगीन प्रतिहार-काल (लगभग ७५६-१०१८ ई०) में गणेशकी अनेक मूर्तियोंका निर्माण हुआ है। राजस्थानमें घटियालाके स्तम्भ-लेखके, जो 'ॐ विनायकाय नमः' से प्रारम्भ होता है, ऊपरी भागमें गणेशकी चार मूर्तियाँ चारों दिशाओंकी ओर मुँह किये हुए बनी हुई हैं। जोधपुर-जिलेके मण्डोरके पास रावणकी खाईके समीप सप्तमातृकाओंके साथ भी गणेशका अङ्कन हुआ है, जिसका एक अन्य उदाहरण इलोरामें भी देखा जा सकता है। आबानेरीसे प्राप्त एक मूर्तिमें चतुर्भुजी गणेशको ललितासनमें बैठे दिखाया गया है। ओसियामें गणेशकी कई मूर्तियाँ आज भी वहाँके प्रतिहार-कालीन मन्दिरोंपर देखी जा सकती हैं। वहाँके अम्बिका-माता-मन्दिरमें गणेश, महिषासुरमर्दिनी दुर्गा तथा कुबेरकी विशाल प्रतिमाएँ विद्यमान हैं। ओसियाके सूर्य-मन्दिरके बाह्य भागपर गणपति-अभिषेककी एक अद्वितीय मूर्ति बनी है, जो मूर्ति-कलाका उच्चतम उदाहरण है। चित्तौड़-दुर्गमें निर्मित कालिका-माता-मन्दिरके बाह्य भागपर भी गणेशकी अत्यन्त सुन्दर मूर्ति उत्कीर्ण है, जो आठवीं शती ई०की प्रतीत होती है। उत्तर-प्रदेशमें कन्नौजसे लगभग इसीकी समकालीन चतुर्भुजी नृत्य-गणपतिकी मूर्ति मिली है, जिसमें वे सर्पयज्ञोपवीत एवं बाघकी खाल पहने दिखलाये गये हैं। ग्वालियर-संग्रहालयकी एक ऐसी ही मूर्तिमें नृत्य-गणपतिके साथ मृदङ्ग-वादकको भी दिखाया गया है। नृत्य-गणपतिकी एक अन्य सुन्दर मूर्ति भारत कलाभवन, वाराणसीमें भी विद्यमान है।

अमेरिकाके वर्जीनिया-संग्रहालयमें नृत्य-गणपतिकी अष्ट-भुजी प्रतिमा प्रदर्शित है। इसमें वे चार प्रकारकी मुद्राओंमें नृत्य करते दिखाये गये हैं। इनकी दाहिनी ओर एक मृदङ्ग-वादक एवं बायीं ओर वंशी-वादक बना है। मूर्तिपर सिन्दूरके चिह्न स्पष्ट हैं, जिससे विदित होता है कि वहाँ पहुँचनेसे पूर्व उस मूर्तिकी किसी देवालयमें पूजा होती रही होगी। ऐसी ही एक अन्य भव्य मूर्ति वहाँके 'क्लीवलैंडम्यूज़ियम आफ आर्ट'में भी है, जिसमें उनके अधिकतर हाथ, जो नृत्य-मुद्रामें हैं, खण्डित हो गये हैं और वे अपने दो बायें हाथोंमें कमल एवं मोदक-पात्र पकड़े हैं। उनका वाहन मूषक उनके बायें पैरके पास चित्रित है। यह मूर्ति भी दसवीं शतीकी बनी हुई लगती है। राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्लीमें भी इसीकी समकालीन नृत्य-गणपतिकी एक मूर्ति है, जो अपने एक दाहिने हाथमें परशु लिये है और उसके अन्य हाथ टूट चुके हैं।

प्रतिहारकालीन १०वीं शतीकी भूमरासे प्राप्त शक्ति-गणेशकी एक सुन्दर प्रतिमा बोस्टनके कला-संग्रहालयमें प्रदर्शित है। इसमें चतुर्भुज गणेश अपनी शक्ति लक्ष्मीके साथ एक ऊँचे आसनपर बैठे दिखाये गये हैं। इसीसे साम्य रखती एक मूर्ति मथुरा-संग्रहालयमें भी है। इस आशयकी मध्य-भारतसे प्राप्त मूर्तियाँ भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता एवं राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्लीमें भी सुरक्षित हैं।

प्रतिहार-साम्राज्यके पतनके पश्चात् उत्तरी भारतमें अनेक राज्योंकी स्थापना हो गयी। दिल्ली-अजमेरके चौहान सम्राटोंने, जो मुख्यतः शैवमतानुयायी थे, अनेक गणेश-प्रतिमाओंका भी निर्माण करवाया। हर्षनाथ, सीकरसे गणेशकी कई सुन्दर मूर्तियाँ मिली हैं। यहाँसे प्राप्त एक मूर्तिमें, जो १० वीं शतीकी है, गणेश स्थानकमुद्रामें दिखाये गये हैं। वे अपने हाथोंमें पद्म, परशु, अक्षमाला और मोदक-पात्र लिये तथा यज्ञोपवीत धारण किये हुए हैं।

अलवर-संग्रहालयमें नृत्य-गणेशकी एक तोमरकालीन मूर्ति प्रदर्शित है, जो अपने ऊपरके दो हाथोंमें एक सर्प पकड़े है। पैरोंके समीप मूषक तथा गण बने हैं। मूर्तिकी पीठिकापर उत्कीर्ण लेखसे ज्ञात होता है कि बरबर नगर (सम्भवतः रेवाड़ीके समीप बावल)-निवासी महालोकस्-नामक व्यक्तिने इस गणेश-मूर्तिका निर्माण विक्रम संवत् ११०१ (१०४४ई०) में करवाया था।

मध्यप्रदेशके खजुराहो-क्षेत्रमें चन्देलोंने अनेक विशाल मन्दिरोंका निर्माण करवाया, जिनमें कई आज भी विद्यमान हैं। यहाँपर बनी द्विभुजी, चतुर्भुजी, षड्भुजी आदि अनेक प्रकारकी स्थानक, आसन, नृत्य करती हुई तथा अपनी शक्तिके साथ मूर्तियाँ अब भी देखी जा सकती हैं। खजुराहोमें गणेश-मूर्तियोंके जितने प्रकार मिलते हैं, उतने सम्भवतः भारतके किसी अन्य स्थानमें प्राप्त नहीं हैं। खजुराहोके पुरातत्त्व-संग्रहालयमें गणेशकी आदमकद कई प्रतिमाएँ हैं, जिनमें वे अनेक नृत्य-मुद्राओंमें चित्रित किये गये हैं। इसी संग्रहालयमे गणेशकी आसन, स्थानक, शक्तिसहित तथा सप्त-मातृकाओं एवं वीरभद्रके साथ प्रतिमाएँ भी प्रदर्शित हैं, जो मूर्ति-विज्ञानकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। खजुराहो-संग्रहालयमें ही उनके वाहन मूषककी भी एक स्वतन्त्र मूर्ति है, जो मोदक-पात्र पकड़े है।

मध्यप्रदेशमें चन्देलोंके समकालीन चेदि या हैहय-वंशीय शासकोंने भी अनगिनत मन्दिरों एवं प्रतिमाओंका निर्माण करवाया। रायपुर-संग्रहालयमें गणेशकी एक कांस्य-मूर्तिमें उन्हें एक ऊँचे आसनपर बैठे हुए दिखाया गया है, जिसमें वे योगपट्ट बाँधे हैं। चतुर्भुजी गणेश पद्म तथा त्रिशूल, दन्त एवं मोदक-पात्र पकड़े हैं और मूषक-पीठिकापर अङ्कित हैं। यह ९वीं-१०वीं शतीकी कृति है। इसी समयकी दो नृत्य-गणपतिकी प्रस्तर-प्रतिमाएँ अमरपाटन एवं चौंसठ योगिनियोंके मन्दिर, भेड़ाघाटमें भी विद्यमान हैं। अन्तिम दोनों मूर्तियाँ खजुराहोसे मिली नृत्यगणपतिकी प्रतिमाओंसे काफी साम्य रखती हैं और चेदि-कलाके अनुपम उदाहरण हैं।

प्रतिहारोंकी शक्तिका अन्त होनेपर गाहवालवंशीय नरेशोंने वर्तमान उत्तरप्रदेशके विशाल भूभागपर शासन किया तथा अपनी कीर्तिके लिये अनेकों मन्दिरोंका निर्माण कराया, जिन्हें बादमें मुसलमानी शासकोंने पूर्णतया नष्ट कर दिया। इस वंशकी कलाके अब थोड़े ही उदाहरण शेष बचे हैं। इनमें सम्भवतः सबसे प्रमुख कमपिल्ल, जिला फर्रुखाबादसे प्राप्त नृत्य-गणपतिकी मूर्ति है, जो अब राज्य-संग्रहालय, लखनऊमें प्रदर्शित है। भाग्यवश यह मूर्ति पर्याप्तरूपसे अच्छी दशामें है और १२ वीं शतीकी मूर्ति-कलाका सुन्दर उदाहरण है।

पालवंशीय सम्राटों (७५०–११९९ ई०) ने पूर्वी भारतमें लंबे समयतक शासन किया। बौद्ध होनेपर भी इन्होंने अन्य धर्मोंको समानरूपसे पनपनेका अवसर दिया, जिसके फलस्वरूप सनातन-धर्मावलम्बियोंके अनेक देवी-देवताओंकी मूर्तियाँ भी पर्याप्त संख्यामें मिली हैं। नृत्य-गणपतिकी बिहारसे प्राप्त एक मूर्ति पटना-संग्रहालयमें तथा बंगालसे प्राप्त एक अन्य मूर्ति मद्रास-संग्रहालयमें प्रदर्शित है। यद्यपि बंगालसे प्राप्त मूर्तिका ऊपरी भाग खण्डित है, फिर भी कलाकी दृष्टिसे वह बिहारसे प्राप्त मूर्तिसे कहीं अधिक सुन्दर एवं कलात्मक है। दोनों मूर्तियाँ पाल-कला—लगभग ११वीं शती ई०में बनी लगती हैं। इनके अतिरिक्त बिहारसे प्राप्त दो चतुर्मुखी शिवलिङ्गपर भी गणेशका अङ्कन मिला है, जो महत्त्वपूर्ण है। ऐसा ही एक अन्य शिवलिङ्ग, जो प्रतिहार-युगीन ९वीं शती ई०का है, काशीनरेश वाराणसीके संग्रहमें भी है।

आसाममें नौगाँव जिलेके गचतल-नामक स्थानपर बने एक मध्यकालीन मन्दिरपर, जो अब खण्डित दशामें है, चतुर्भुजी गणेशकी आसनमूर्ति विद्यमान है। गणेशकी एक काष्ठप्रतिमा गौहाटीके राज्य-संग्रहालयमें भी प्रदर्शित है।

दक्षिण भारतमें भी गणेश-मूर्तियोंकी पूजा एवं निर्माणकी प्रथा प्राचीनकालसे ही प्रचलित है। बदामीकी गुफाओंमें, जो प्रारम्भिक पश्चिमी चालुक्य-युग छठी शती ई० की है, शिव नटराज-मूर्तिकी बाँयीं ओर द्विभुज खड़े गणेशका अङ्कन मिलता है। इसपर प्रारम्भिक गुप्तकलाका प्रभाव स्पष्ट दीखता है। इसीसे साम्य रखती हुई एक पूर्वी चालुक्य-युगीन प्रतिमा आठवीं शतीकी बिक्कोवल्लसे प्राप्त है। इसमें भी गणेशके केवल दो ही हाथ हैं। गणेशकी चतुर्भुजी मूर्तियाँ दक्षिणमें चोल-कालसे बनने लगी थीं। इस प्रकारकी एक कास्य-प्रतिमा तंजौर जिलेके वेलानकण्ढी-से मिली है, जो अब मद्रास-संग्रहालयमें रखी हुई है। इसकी तिथि दसवीं शती ई० है। बारहवीं शती ई०की एक अन्य गणेश-मूर्ति, जो तंजौर जिलेके सेमंगलम्-स्थानसे प्राप्त हुई थी, इसी संग्रहालयमें सुरक्षित है। इस कालमें पाषाणमें भी गणेशकी अनगिनत मूर्तियाँ बनीं, जिनमेंसे कई राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्लीमें प्रदर्शित हैं।

विजयनगर-कालमें भी गणेश-पूजाके साथ उनकी मूर्तियों का निर्माण जारी रहा। इस कालकी अनेक मूर्तियोंमें

सम्भवतः सबसे प्रमुख तंजौर जिलेके नागपट्टिनम-नामक स्थानसे प्राप्त हेरम्ब-गणेशकी कांस्य-प्रतिमा है। इसमें पञ्च-मुखी एवं दसभुजी गणेशका वाहन मूषक न होकर सिंह है। यह १५ वीं शती ई०का विलक्षण उदाहरण है।

वर्तमान मैसूर-राज्यमें हलेबिद एवं बेलूरमें होयसलकालीन अनेक मन्दिर हैं। इन मन्दिरोंपर अनेक पौराणिक कथाओंके चित्रणके साथ-साथ गणेशकी भी कई प्रकारकी मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। हलेबिदके होयसलेश्वर-मन्दिरपर, जो १२ वीं शती ई०में बना था, नृत्य-गणपतिकी एक अद्वितीय मूर्तिका अत्यन्त भव्य अङ्कन हुआ मिलता है, जो अपने प्रकारका बेजोड़ उदाहरण है। उनके दस हाथ हैं, जिनमें वे विविध आयुध लिये हुए हैं। नीचेकी पट्टिकामें उपासकोंके अतिरिक्त उनका वाहन मूषक लड्डू खाता दिखाया गया है। इसीकी समकालीन हलेबिदसे प्राप्त एक आसन-मूर्ति वर्जीनिया-संग्रहालयमें भी प्रदर्शित है। इसमें वे ऊपरके दो हाथों-में परशु और कमल तथा निचले हाथोंमें दन्त और मोदक-पात्र लिये हुए हैं। उन्होंने जटामुकुट तथा सर्पका उदरबन्ध धारण कर रखा है।

इन प्रतिमाओंके अतिरिक्त उत्तरी आर्कट जिलेमें वेल्लोरके जलकण्ठेश्वरके मन्दिरमें बाल-गणेशका एक अद्वितीय चित्रण मिलता है, जिसमें वे सूँड़ उठाये बालकृष्णकी भाँति हाथमें मोदक लिये भागते दिखाये गये हैं। यह लगभग १८वीं शतीकी कृति है।

केरल-प्रान्तसे भी गणेशकी कुछ प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। इनमें या तो वे मूषकपर सवार दिखाये गये हैं, अथवा अपनी शक्तिके साथ बैठे हैं। ऐसी मूर्तियाँ, जो अधिकतर कांस्य-निर्मित हैं, १६ वीं-१७ वीं शती ई०की हैं।

गुजरात-प्रान्तके शामलाजीसे मिली गणेशकी अपने गणसहित एक स्थानक-मूर्ति (४ थी शती ई०), टिंटोईसे मिली माता पार्वतीके साथ नृत्य-गणपति (६ठीं शती ई०) की तथा रोडासे मिली आसन-मूर्ति (८वीं शती ई०) विशेषरूपसे उल्लेखनीय है।

उड़ीसासे भी गणेशकी अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनमेंसे अधिकतर भुवनेश्वरके मन्दिरोंपर देखी जा सकती हैं। इनके अतिरिक्त किचिंगसे प्राप्त तथा वहाँके स्थानीय संग्रहालयमें ११वीं शती ई०की एक स्थानक एवं एक नृत्य करती गणेश-प्रतिमा प्रदर्शित है।

बौद्ध एवं जैनियोंने भी गणेशका अपने देवी-देवताओंके साथ अङ्कन किया है, परंतु उन्हें हीन स्थान दिया है। बौद्धों की देवी अपराजिताकी मूर्तियोंमें, जो नालन्दासे मिली हैं, गणेशको पैरोंसे कुचलते दिखाया गया है। ऐसे ही मथुरासे भी प्राप्त एक जैनदेवी अम्बिकाकी मूर्तिमें गणेश उनके पैरोंके पास कुबेरके साथ प्रदर्शित किये गये मिलते हैं।

विदेशोंमें भी गणेशकी अनेक मूर्तियाँ मिली हैं। अफगानिस्तानके गरदेजसे प्राप्त लेखयुक्त मूर्तिमें, जो ६ठी शती ई०की है, स्थानक-गणेश मुकुट, सर्प-यज्ञोपवीत तथा व्याघ्रचर्म धारण किये हुए हैं। ऊर्ध्वरेतस् भी स्पष्ट हैं। ऐसी एक अन्य मूर्ति काबुलके पास सकरधरसे भी प्राप्त हुई है।

पूर्वी नेपालके सनेपा-नामक स्थानसे एक मूर्ति, जिसपर १३९० ई०का लेख है, कुछ वर्ष पूर्व प्राप्त हुई थी। उसमें ये सर्पफणोंकी छायामें परशु, दन्त तथा मोदक-पात्र लिये बैठे दिखाये गये हैं। एक अन्य मूर्तिमें उनके चार मुख और दस हाथ हैं तथा वे दो चूहोंपर सवार हैं। नेपालसे ही हेरम्ब-गणेशकी भी अनेक कांस्य-प्रतिमाएँ मिली हैं। तिब्बतमें शक्ति-सहित हेरम्ब-गणेशकी मूर्तियाँ प्रकाशमें आयी हैं।

इनके अतिरिक्त कंबोडिया, जावा, इंडोचीन, जापान, इंडोनेशिया, चीनी तुर्किस्तान, बोर्नियो, बाली आदि देशोंमें भी अनेक गणेश-प्रतिमाओंका निर्माण हुआ, जो आज वहाँ-के तथा अन्य देशोंके संग्रहालयोंमें प्रदर्शित हैं। इससे सर्वथा ज्ञात होता है कि गणेशकी पूजा न केवल भारतमें ही प्रचलित थी, वरन् पड़ोसी देशोंके अतिरिक्त सुदूर देशोंमें भी समान-रूपसे प्रचलित थी और सभी प्रार्थना करते थे कि—

सिन्दूराभं त्रिनेत्रं पृथुतरजठरं हस्तपद्मैर्दधानं
दन्तं पाशाङ्कुशेष्टान्युरुकरविलसद्बीजपूराभिरामम्।
बालेन्दुद्योतमौलिं करिपतिवदनं दानपूरार्द्रगण्डं
भोगीन्द्राबद्धभूषं भजत गणपतिं रक्तवस्त्राङ्गरागम्॥

भारतीय साहित्य और कलामें श्रीगणेश तथा उनका प्रतीकत्व

(लेखक—प्रो० श्रीकृष्णदत्तजी वाजपेयी)

भारतीय देवोंमें गणेशजीका विशिष्ट स्थान है। इस विशिष्टताका मुख्य कारण यह है कि वे पाँच उदात्त तत्त्वोंके समन्वित रूप हैं। ये तत्त्व हैं—१—शौर्य-साहस, २—आनन्द-मङ्गल, ३—बुद्धि, ४—कृषि तथा ५—व्यवसाय-वाणिज्य। यहाँ हम इन पाँचो तत्त्वोका संक्षिप्त विवेचन करेंगे।

१—शौर्य-साहस

'अमरकोश'मे गणेशजीके आठ नाम इस प्रकार दिये गये हैं—

विनायको विघ्नराजद्वैमातुरगणाधिपा ।
अप्येकदन्तहेरम्बलम्बोदरगजानना. ॥
(१ । १ । ३३)

प्रथम दोनों नाम, विनायक एवं विघ्नराज, गणेशजीके शौर्य-साहस तथा तज्जनित नेतृत्वके परिचायक हैं। उनकी युद्धप्रियताका भान उनके लिये प्राचीन साहित्यमें प्रयुक्त 'हेरम्ब' (युद्धमे नाद करनेवाला) संज्ञासे होता है। गणेशजीकी असाधारण वीरता तथा साहसके कारण उन्हे शिवगणोके नायकत्वका पद प्राप्त हुआ। 'विनायक'-शब्द गणेशके यक्षों-जैसी भयंकरताकी ओर भी इङ्गित करता है। 'मानवगृह्यसूत्र', 'महाभारत' आदि ग्रन्थोमे विघ्नकारी विनायकोके उल्लेख मिलते है। शान्ति-कामनाहेतु उनकी अर्चा-पूजा की जाती थी। ऐसा न करनेपर वे कतिपय स्त्री-पुरुषोके सिरोपर आ जाते थे, जिससे मङ्गल-कार्योंमे बाधा उत्पन्न हो सकती थी। पूजा-पाठद्वारा वे सिरोंसे उतारे जाते थे। गणेशजीके युद्धप्रियरूपके द्योतक उनके आयुध हैं, जो उनकी प्राचीन मूर्तियोमे मिलते हैं। ये आयुध परशु, त्रिशूल, असि, अङ्कुश, पाश तथा नाग हैं। मूषक उनका वाहन हुआ। नाग तथा मूषक मूलतः शिवजीसे सम्बद्ध थे। बादमे शिवजीने मूषकको गणेशके लिये उधार दे दिया। यह उधार कभी न लौटाया जानेवाला था। नाग काल (मृत्यु या समय) का द्योतक है। मूषक आयु (या आयुका मूल आधार अन्न) को शनैः-शनैः नष्ट करनेवाला है। शिवजीने नाग तथा मूषक—दोनोको अपने वशमे कर लिया था। गणेशजीको वाहनरूपमे मूषक प्रदान करनेका तात्पर्य यही है कि जीवनके आधार अन्नको नष्ट करनेवाले तत्त्वोको नियन्त्रित रखा जाय। नेतृत्वके गुणोसे सम्पन्न होनेके कारण उन्हें गणाधिप, गणपति या गणेशकी संज्ञासे विभूषित किया गया।

२—आनन्द-मङ्गल

विघ्नराजके अनन्तर गणेशजीका दूसरा रूप 'विघ्नहर्ता' सामने आता है। यह उनका मनोहर रूप था। इसी रूपमे वे पार्वती-शिवके पुत्र प्रख्यात हुए। अब वे कल्याण एवं मङ्गलकारी प्रवृत्तियोके प्रतिनिधि माने गये। गोस्वामी तुलसीदासजीने उनकी **'मोदक, प्रिय, मुद-मंगल-दाता'** छविकी वन्दना की है। 'याज्ञवल्क्य-स्मृति'मे अम्बिका-पुत्रके रूपमे विनायकका उल्लेख है। पुराणोमें उनके इस रूपकी विस्तृत चर्चा मिलती है। विविध संस्कारों, उत्सवों आदिके निर्विघ्न-समाप्ति-हेतु गणेशजीको सिद्धिदाता मानकर उनकी वन्दना सर्वप्रथम की जाने लगी। मोदक उनका प्रिय भोज्य पदार्थ हुआ। उनकी प्राचीन प्रतिमाओमें उन्हे लड्डू लिये हुए या खाते हुए प्रदर्शित किया गया है।

३—बुद्धि

गणेशजी बुद्धिके भी प्रतिनिधि देवता मान्य हुए। वैदिक साहित्यमे 'गणपति' शब्द आया है। इसका प्रयोग 'अग्र-पूज्य देव' के लिये मिलता है, यथा—**'गणानां त्वा गणपतिं हवामहे। कविं कवीनाम्'** (ऋग्वेद २ । २३ । १) और **'नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमः।'** (यजुर्वेद १६ । २६) आदि। यहाँ 'गणपति'-शब्द वाग्देवताके लिये प्रयुक्त हुआ है। परवर्ती साहित्य-पुराणादिमे वेदव्यासजीके लेखकरूपमे भी गणेशजीकी परिचर्चा मिलती है। यह इस बातका द्योतक है कि एक अच्छे श्रोता एवं लेखक-के रूपमे गणेशजी पौराणिक साहित्यमे आदृत हुए। वे विद्या और बुद्धिके देवता कहे जाते हैं।

४—कृषि

कृषिके प्रारम्भिक देवता देवराज इन्द्र हैं। वे उस वर्षाके प्रतिनिधि हैं, जो भूमिको उर्वरा बनाती है। भूमि अन्न, जल, वनस्पतियों तथा खनिज-पदार्थोंका अक्षय भंडार है। इसीलिये उसे हमारे यहाँ माता कहा गया है—**'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'** (अथर्ववेद)। भारतीय साहित्य और कलामें 'गजलक्ष्मी'की कल्पना मिलती है। अनेक

मूर्तियोंमें दो हाथियोंद्वारा जलपूरित कलशोंसे लक्ष्मीदेवीका अभिषेक मिलता है। यहाँ लक्ष्मी पृथिवीकी द्योतक हैं और हाथी (ऐरावत) इन्द्रके प्रतिनिधि हैं। अनेक प्राचीन कलाकृतियोंमें श्रीलक्ष्मी तथा गणेशजीको एक साथ दिखाया गया है। गणेशजीका गजमस्तक जलके देव इन्द्रका परिचायक है और इस प्रकार वर्षाका द्योतक है, जो कृषिको प्रवर्धित करता है। इस देशकी वसुधाको धन-धान्य-सम्पन्न करनेमें प्रमुख हाथ खेतीका रहा है। अन्न नामक चूहेको गणेशजी-द्वारा वशवर्ती बनानेकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है।

५—व्यवसाय-वाणिज्य

खेतीके अतिरिक्त अन्य उद्योग-धंधों तथा व्यापारद्वारा देशकी समृद्धि बढ़ती है और उसका आर्थिक आधार पुष्ट होता है। वाणिज्यके प्रवर्धकरूपमें गणेशजीकी मान्यता मध्यकालमें बहुत बढ़ी। वे वणिकोंके विशेष पूज्य देवता हो गये। कुबेरको हमारे यहाँ धनका अधिपति माना जाता है। उनका भारी-भरकम तोंदवाला शरीर वणिकोंद्वारा पूज्य था। कुबेर-जैसी तुन्दिल प्रतिमाएँ गणेशजीकी भी बड़ी संख्यामें मिली हैं। इन दोनों देवोंमें अन्तर यह था कि कुबेर बहुत कम हिलने-डुलने थे, जब कि गणेशजी युद्ध तथा नृत्यादि व्यायामोंसे मोदक-पुष्ट अपने शरीरको कृशकाय बनानेका उद्यम करते रहते थे। विविध आयुधधारी योद्धा तथा नृत्यरत रूपोंमें गणेशजीके ध्यान साहित्यमें उपलब्ध हैं। इन दोनों रूपोंमें उनकी प्रतिमाएँ भारत तथा विदेशोंमें प्रचुर संख्यामें प्राप्त हुई हैं।

उपर्युक्त पाँचों तत्त्वोंका असाधारण समन्वय गणेशजीमें मिलता है। इसीलिये इन्हें भारतीय देवोंमें असाधारण स्थान प्राप्त हुआ। अनेक लेखकोंने गणेशजीके प्रतीकत्वको सही अर्थोंमें न समझनेके कारण उनके विषयमें भ्रान्त धारणाओंकी सृष्टि कर ली है। उनके गजशीर्ष, तुन्दिल शरीर, मूषकवाहन आदिको लेकर अनेक अनर्गल बातें लिखी गयी हैं। भारतीय परम्पराको समुचित ढंगसे न समझ सकनेके कारण ऐसी भ्रान्तियोंका होना स्वाभाविक है।

गणेशजीकी गणना हमारे प्रमुख पञ्चदेवोंमें है। विष्णु, शिव, सूर्य, देवी तथा गणेश—ये पञ्चदेव हैं। गुप्त-युगमें इस पञ्चदेवोपासनाका विस्तार हुआ। गणेशजीकी गुप्तकालीन प्रतिमाएँ बहुत कम मिली हैं। कार्तिकेयकी पूजा उनके पहले प्रचलित हो चुकी थी। यौधेयगण, कुणिन्द तथा उज्जयिनी-जनपदने अपनी मुद्राओंपर कार्तिकेयको महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। गुप्त-सम्राट् कुमारगुप्त प्रथमने भी अपने एक विशेष प्रकारके स्वर्ण-सिक्कोंपर कार्तिकेयकी छवि अङ्कित करायी। जहाँतक गणेश-पूजाका सम्बन्ध है, गुप्त-युगके पहले किसी ग्रन्थ या अभिलेखमें इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। मथुरा-कलामें नृत्य करते हुए गणेशकी एक गुप्तकालीन मूर्ति मिली है। सम्भवतः सर्वप्रथम भूमरा (जिला सतना, मध्य-प्रदेश) में गणेशजीकी पूज्य मूर्ति मिली है, जो ईसवी पाँचवीं शतीकी है। आन्ध्रप्रदेशके अमरावती स्थानमें भी गजानन यक्षकी एक उल्लेखनीय प्रतिमा मिली है।

शिव-पुत्रके रूपमें मान्य होनेपर गणेशजीका महत्त्व अधिक बढ़ा। गुप्तकालके पश्चात् तो उनकी बहुसंख्यक प्रतिमाएँ बनने लगीं। समृद्धिके प्रतिनिधिरूपमें उन्हें मान्यता मिली, तब उनकी पूजाकी व्यापकता बढ़ी। जोधपुरके पास घटियाला (राजस्थान) से गणेशजीकी एक चतुर्मुखी प्रतिमा मिली है, जिसपर विक्रम संवत् ९१८ (८६७ ई०) का लेख उत्कीर्ण है। लेखसे ज्ञात होता है कि व्यापारियोंद्वारा यह पूजनीय प्रतिमा यहाँ स्थापित की गयी थी।

हालमें मुझे होशंगाबाद जिला (मध्यप्रदेश)-के सिवनी-मालवा-नामक स्थानपर गणेशजीका एक दुर्लभ मन्दिर देखनेको मिला, जिसमें गणेशजीकी एक विशिष्ट मूर्ति अब भी सुरक्षित है। इस मन्दिरका प्रारम्भिक निर्माण ई० नवीं शतीमें सम्पन्न हुआ है।

सातवीं शती ईसवीसे गणेशजीकी बहुसंख्यक मूर्तियाँ बनने लगीं। उनकी मूर्तियाँ चार, आठ, दस तथा सोलह भुजाओंवाली भी मिली हैं। कुछ प्रतिमाओंमें उनकी शक्ति भी साथमें दिखायी गयी है। पौराणिक तथा तान्त्रिक साहित्यमें उनकी पत्नीकी संज्ञा श्रीभारती, विघ्नेश्वरी आदि मिलती है। कभी-कभी उनकी दो पत्नियाँ, बुद्धि और कुबुद्धि कही गयी हैं। मध्य-कालीन गणेश-पूजापर तान्त्रिक प्रभाव भी बढ़ता गया, जो इन मूर्तियोंसे स्पष्ट है।

गणेश-पूजा भारततक ही सीमित नहीं रही, मध्य एशिया, नेपाल, तिब्बत, चीन, बर्मा, स्याम, कंबोडिया, जावा, सुमात्रा आदि देशोंमें उनकी बहुसंख्यक मूर्तियाँ मिली हैं, जो गणेश-अर्चाके व्यापक प्रसारको द्योतित करती हैं।

वङ्गदेशकी मूर्तिकलामें गणेश

(लेखक—श्रीरासमोहन चक्रवर्ती एम्० ए०, पी-एच्० डी०, पुराणरत्न, विद्याविनोद)

वङ्गदेशमें गाणपत्य धर्मका स्पष्ट प्रमाण न मिलनेपर भी सिद्धिदाता, विघ्नहर गणेशकी अनेक मूर्तियाँ गुप्तयुगसे ही पायी गयी हैं। बैठी, खड़ी और नृत्य करती हुई गणेशकी तीन प्रकारकी मूर्तियोंकी कल्पना की गयी है। उत्तर वङ्गके एक पहाड़पुरमें (आठवीं शताब्दीकी) पत्थरकी, पकाई मिट्टी तथा धातुकी अनेक बैठी और खड़ी मूर्तियाँ पायी गयी हैं और मूर्तितत्त्वकी दृष्टिसे सभी बहुमूल्य हैं। इनमें एक नृत्यपरायण गणेशकी प्रतिमा है और उस प्रतिमामें लोकायत मतके सरल, सरस, कौतुकपूर्ण शिल्पमय प्रकाश सुस्पष्ट हैं। गणेशका जो कुछ प्रधान लक्षण और चिह्न है, वह सब इन प्रतिमाओंमें सम्यक् रूपसे परिस्फुट हुआ है। एक धूसर वर्णके बेल पत्थर (पत्थरकी एक जाति) की गणेश-मूर्ति विशेषरूपसे उल्लेखनीय है। मूर्ति चतुर्भुजी है, जिसने एक ओरके एक हाथमें जपमाला और दूसरेमें एक पत्र-गुच्छयुक्त मूली तथा दूसरी ओरके एक हाथमें त्रिशूल और दूसरेमें एक सर्पकी पूँछ धारण कर रखी है। सर्प यज्ञोपवीतकी तरह देहको आवेष्टित करके स्थित है। इस प्रतिमाकी वेदीमें गणेशका वाहन मूषक अङ्कित किया गया है और मूर्तिके कपालके मध्य-भागमें तृतीय नेत्र विराजित है। पकी मिट्टी (Terra-cotta plaque) की एक खड़ी गणेशमूर्ति उल्लेखनीय है। वह चतुर्भुजी है और उसमें वाहन मूषक प्रभुकी ओर ताक रहा है।

इस शिल्पलेखसे यह ज्ञात होता है कि पालवंशके सम्राट् महाराज महीपालके राज्य-कालके (९८८-१०३८ ई०) क्रमशः तृतीय और चतुर्थ राज्याङ्कमें विलकिन्दक (त्रिपुरा जिलेका आधुनिक विलकान्दि) ग्रामनिवासी दो वणिक्—बुद्धमित्र और लोकदत्तने एक नारायण और एक गणेशकी मूर्ति प्रतिष्ठापित की थी। रामपाल (१०७७—११२० ई०) ने रामावतीमें शिवके तीन मन्दिर, एकादश रुद्रका एक मन्दिर और सूर्य, स्कन्द एवं गणपतिके मन्दिरोंकी स्थापना की थी, ऐसा उल्लेख है। पालवंशमें गणेशकी अधिकांश प्रतिमाएँ मूषक-वाहनके ऊपर नृत्यपरायण हैं। उसके एक हाथमें फल है। यह फल सिद्धिका प्रतीक है। गणेश वङ्गदेशके सब सम्प्रदायोंमें, विशेषरूपसे व्यवसायीवर्गमें सिद्धि-फलदाताके रूपमें ही पूजित और आदृत हैं। वङ्गदेशमें पालवंशके राज्यकालमें किसी-किसी देवी-प्रतिमामें भगवतीके पारिवारिक सदस्यके रूपमें भी गणेशकी मूर्ति दृष्ट होती है।

पालयुगके तान्त्रिक बौद्धधर्ममें भ्रुकुटी ताराके परिवार देवताके रूपमें गणेश भी पूजित होते थे। इस प्रकारकी एक मूर्ति ढाका जिलेके भवानीपुर गाँवसे प्राप्त हुई है। देवी त्रिशिरस्का, अष्टभुजा वीरासनमें बैठी हुई है। उसके मुकुटमें अमिताभ बुद्धकी और पादपीठमें गणेशकी मूर्ति उत्कीर्ण है। पालवंशके शासनकालमें बौद्ध देव-देवियाँ कुछ-कुछ ब्राह्मण (हिंदू-शास्त्रोक्त) देव-देवियोंके साथ मिश्रित होती जा रही थीं और ब्राह्मण देव-देवियोंको भी बौद्ध और शैवतन्त्रमें स्थान प्राप्त होने लगा था। पालयुगमें बौद्ध साधनमालामें ब्राह्मण, महाकाल और गणपतिका स्थान तथा बौद्ध तन्त्रमें शिवलिङ्ग एवं शैव देव-देवियोंका स्थान ही घट गया था।

वङ्गदेशमें गणेशमूर्तिके प्रकारभेद और वैशिष्ट्य

वङ्गदेशमें आविष्कृत प्राचीन गणेश-मूर्तियोंको तीन भागोंमें विभाजित कर सकते हैं। जैसे—(१) स्थानक (खड़ी), (२) आसीन (बैठी) और (३) नृत्यरत। प्रथम भागकी अर्थात् खड़ी मूर्तिकी संख्या अपेक्षाकृत कम पायी जाती है। 'स्थानक' गणेश कहीं-कहीं 'सम-पद स्थानक' रूपमें अवस्थित मिलते हैं और कहीं द्विभङ्ग या त्रिभङ्ग-रूपमें खड़े पाये जाते हैं। 'आसीन' अर्थात् बैठी हुई मुद्रामें अनेक मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं। 'आसीन' मूर्तियोंमें गणेशका वामपद आकुञ्चित है और पीठके ऊपर स्थित है। दक्षिणपद पीठके ऊपर प्रस्थापित या अन्य प्रकारसे न्यस्त है। वङ्गदेशमें गणेशकी नृत्य मूर्तिका प्राचुर्य है। द्विभुजगणेश-मूर्तिकी संख्या अपेक्षाकृत कम है। चतुर्भुज गणपतिका अपेक्षाकृत बाहुल्य है और षड्भुज तथा अष्टभुज गणेश-मूर्ति भी विरल नहीं है। नृत्यरत भावमें प्रदर्शित देवताकी पूजाकी अधिकता विचारणीय है। द्विभुज गणेशके एक हाथमें मोदक-भाण्ड, दूसरे हाथमें परशु, अक्षमाला या मूलक

श्रीगणेश-लोक

(१)

श्रीगणेशजी विभु हैं, सर्वत्र व्यापक आद्य—प्रथम पूज्य देव हैं। उनके धाम—निवासस्थलको 'स्वानन्दधाम' कहा गया है। सर्वसौन्दर्यनिधि श्रीगणेश अपने स्वानन्दधाममें निरन्तर नित्य निवास कर समस्त लोकका मङ्गल करते रहते हैं। गणेशपुराणके उपासनाखण्डमें उनका सर्वसौन्दर्य-कोशके रूपमें वर्णन उपलब्ध होता है—

परशुकमलधारी दिव्यमायाविभूपः
सकलदुरितहारी सर्वसौन्दर्यकोशः।
करिवरमुखशोभी भक्तवाञ्छाप्रपोषः
सुरमनुजमुनीनां सर्वविघ्नैकनाशः॥
(गणेशपु० १। १५। १९)

यह बात सहज सिद्ध है कि सर्वसौन्दर्यकोशका प्रतीक है—उनका 'स्वानन्दधाम'। पूर्णानन्द, परानन्द और पुराणपुरुषोत्तम श्रीगणेशजीका धाम आनन्दसे परिपूर्ण है। उन्हें 'चिन्तामणि-द्वीपपति' कहा गया है; कल्पद्रुमवनालय—कल्पद्रुम-के उपवनमें निवास करनेवाला निरूपित किया गया है—

'चिन्तामणिद्वीपपतिः कल्पद्रुमवनालयः।'
(गणेशसहस्रनामस्तोत्र-२९)

'शारदातिलक'में महागणपतिके ध्यान-निरूपण-प्रसङ्गमें उनके इक्षुरसके समुद्रके मध्यमें स्थित नवरत्नमय द्वीपका वर्णन उपलब्ध होता है—

नवरत्नमयं द्वीपं स्मरेदिक्षुरसाम्बुधौ।
तद् वीचिधौतपर्यन्तं मन्दमारुतसेवितम्॥
मन्दारपारिजातादिकल्पवृक्षलताकुलम्।
तदुद्भूतरत्नच्छायाभिररुणीकृतभूतलम्॥
उद्यद्दिनकरेन्दुभ्यामुद्भासितदिगन्तरम्।
तस्य मध्ये पारिजातं नवरत्नमयं स्मरेत्।
ऋतुभिः सेवितं षड्भिरनिशं प्रीतिवर्द्धनैः॥
तस्याधस्तान्महापीठे रचिते मातृकाम्बुजे।
षट्कोणान्तस्त्रिकोणस्थं महागणपतिं स्मरेत्॥
(शारदातिलक १३। ३२-३५)

आशय यह है कि साधकको ईखके रसके समुद्रमें नवरत्नमय द्वीपका ध्यान करना चाहिये। उस द्वीपका प्रान्त-भाग उक्त सागरकी लहरोंसे प्रक्षालित है। उसमें मन्द-मन्द पवनका संचार हो रहा है। मन्दार, पारिजात आदि पञ्चविध कल्पवृक्षोंकी लताओंसे वह व्याप्त है। वहाँ प्रकट हुए रत्नोंकी प्रभासे भूतल अरुण दीखता है। उदित सूर्य और चन्द्रमाके प्रकाशसे दिग्-दिगन्त प्रकाशित है। उस द्वीपके मध्यमें नवरत्नमय पारिजात है, प्रीतिवर्धक छहों ऋतुओंद्वारा वह नित्य सेवित है। उसके नीचे निर्मित महापीठपर मातृकामय कमलके मध्यमें षट्कोण है। षट्कोणके भीतर त्रिकोण है। उसके भीतर महागणपति स्थित हैं। इस प्रकार उनका ध्यान करना चाहिये।

गणेशपुराणके उत्तरखण्डके ५०वें अध्यायमें मुद्गल-मुनिद्वारा श्रीगणेशके स्वानन्दलोक अथवा धामका वर्णन मिलता है। उस लोकमें कामदायिनी शक्तिमय पीठपर सदा गणेशजी विराजमान रहते हैं। यह स्वानन्दलोक या धाम चिन्तामणि द्वीपका ही पर्याय है—

'स कामदायिनीपीठे संतिष्ठति विनायकः।'
(गणेशपुराण २। ५०। ३१)

श्रीगणेशजीका यह स्वानन्दधाम पाँच सहस्र योजनके विस्तारमें स्थित है। दिशाओंको प्रकाशित करनेवाली रत्न-काञ्चन-मयी भूमि है इसकी। यह इक्षुरस-सागरके मध्यमें विराजित है। वेदाध्ययन, दान, व्रत, यज्ञ, जप-तपसे यह किसी भी स्थितिमें प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसकी प्राप्ति तो भक्तिके परिणामस्वरूप विनायकदेवकी कृपासे ही होती है। विघ्नेश्वर इसमें समष्टि-व्यष्टिरूपसे निवास करते हैं—

विस्तीर्णं पञ्चसाहस्रं योजनानि महामते॥
रत्नकाञ्चनभूमौ स राजते भासयन् दिशः।
स्वानन्दनामा दिव्योऽयमिक्षुसागरमध्यगः॥
न वेदैर्न च दानैश्च व्रतैर्यज्ञैर्जपैरपि।
तपोभिर्विविधैश्चायं प्राप्यते नैव कर्हिचित्॥
विनायकस्य कृपया प्राप्यते नित्यभक्तितः।
समष्टिव्यष्टिरूपोऽत्र सदा तिष्ठति विघ्नराट्॥
(गणेशपु० २। ५०। ३१-३४)

स्वानन्दभवनकी अमित शोभा है। उसमें गजमुक्तामणि-

मय असंख्य प्रकाशमान गृह हैं। दुःख और मोहसे रहित वह गणेश-लोक उनकी कृपासे ही प्राप्य है। उसके उत्तरभागमें इक्षुसागर शोभा पाता है। उसमें सहस्र पत्रोंसे युक्त पद्मिनी है। उसमें चन्द्रमाके समान कान्तिमान् सहस्रदलवाला कमल शोभित है। उसकी कर्णिकामें रत्न-काञ्चननिर्मित शय्या है। दिव्याम्बरयुक्त विनायक उसपर शयन करते हैं। सिद्धि-बुद्धि अत्यन्त भक्ति-भावसे उनके चरणोंकी सेवा करती रहती हैं। तीन मूर्तियोंसे युक्त सामवेद उनका गान करता है। शास्त्र मूर्तिमान् होकर उनकी स्तुति करते हैं। समस्त पुराण उनके सद्गुणोंका वर्णन करते हैं। उसमें शुण्ड-दण्डसे विभूषित बालरूप श्रीगणेशजी विराजमान हैं। उनका अङ्ग कोमल है। अरुण वर्ण है। उनके बड़ी-बड़ी आँखें हैं और एक दाँत है। वे मुकुट एवं कुण्डल, कस्तूरी-तिलकसे शोभित हैं। उनकी माला दिव्य है। उनका अम्बर—परिधान दिव्य है। उनके शरीरमें दिव्यगन्धका लेप है। वे मुक्ता-मणि गणोंसे युक्त रत्नमण्डित हार धारण करते हैं। अनन्त कोटि सूर्योंके समान तेजस्वी हैं। उनके मस्तकपर अर्धचन्द्रका मुकुट है। स्मरण करते ही वे शीघ्र ही पापोंका नाश करते हैं—

असंख्याता गृहा भान्ति भास्वरा गजमौक्तिकाः।
तस्यैव कृपया प्राप्यो दुःखमोहविवर्जितः।
तदुत्तरे भाति परं इक्षुसागर एव तु॥
सहस्रपत्रसंयुक्ता तन्मध्ये पद्मिनी शुभा।
सहस्रपत्रं कमलं तस्यां भाति यथा शशी॥
तत्कर्णिकागतस्तल्पो रत्नकाञ्चननिर्मितः।
दिव्याम्बरयुतः शेते नृप तत्र विनायकः॥
सिद्धिबुद्धी सदा तस्य पादसंवाहनं मुदा।
कुर्वाते परया भक्त्या सामवेदस्त्रिमूर्तिमान्॥
गानं करोति शास्त्राणि मूर्तिमन्ति स्तुवन्ति तम्।
पुराणानि च सर्वाणि वर्णयन्त्यस्य सद्गुणान्॥
बालरूपधरस्तत्र शुण्डादण्डविराजितः।
कोमलाङ्गोऽरुणनिभो विशालाक्षो विषाणवान्॥
मुकुटी कुण्डली राजत्कस्तूरीतिलकः स्वराट्।
दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यगन्धानुलेपनः॥
मुक्तामणिगणोपेतं सरत्नं दाम संदधत्॥
अनन्तकोटिसूर्योजाश्चन्द्रार्धकृतशेखरः।
स्मरणात् पापहा सद्यः·····················

(गणेशपुराण २। ५०। ५१–५९)

तेजोवती और ज्वालिनी—ये दो शक्तियाँ उस पर्यङ्कके निकट सदा स्थित रहती हैं। ये शक्तियाँ सहस्र सूर्योंके समान तेजस्विनी हैं—

तेजोवती ज्वालिनी च शक्ती पर्यङ्कपार्श्वयोः।
सहस्रादित्यसंकाशे तिष्ठतो नृप सर्वदा॥

(गणेशपु० २। ५०। ६०)

श्रीगणेशजीका यह स्वानन्दधाम शीत, जरा, क्लम, स्वेद, तन्द्रा, क्षुधा, तृषा, दुःख आदिसे सर्वथा रहित है, पुण्यात्मा जन ही इसमें आनन्दमग्न होकर निवास करते हैं।

सर्वसौन्दर्यनिधि श्रीगणेशजीका स्मरण परम मङ्गलकारी है। वे समस्त समृद्धि प्रदान करते हैं। उनके स्वरूप, रूप, अङ्ग-प्रत्यङ्ग, आभरण-आभूषण, परिधान, परिवार, प्रतिहार, पार्षद, वाहन तथा लोकादि—सब-के-सब दिव्य हैं। उनसे परमानन्दकी प्राप्ति होती है। उनके चिन्तनसे बड़ी शान्ति और आत्मतृप्तिकी उपलब्धि होती है। वे संसारमें यात्रा करनेवालोंके श्रम हर लेते हैं। उनके चरण-कमलके ध्यानसे यह लोक और परलोक—दोनों सफल होते हैं। वे पापतरुको नष्टकर विघ्नोंके गढ़को धूलि-धूसरित कर अपने स्वजनोंका—समस्त संसारके प्राणियोंका आनन्द-संवर्धन करते हैं। महाकवि भूषणने श्रीगणेशजीकी बड़ी ललित स्तुति की है—

अकथ अपार भवपंथ के चले को स्रम-
हरन, करन बीजना-से बरदाइयें।
यह लोक परलोक सफल करन कोक-
नद से चरन हियें आनिकें जुड़ाइयें॥
अलिकुल कलित कपोल ध्याय ललित
अनंदरूप-सरित में भूषन अन्हाइयें।
पापतरु-भंजन बिघनगढ़ गंजन, भगत-
मन-रंजन द्विरदमुख गाइयें॥

(शिवराजभूषण)

श्रीगणेशजी परब्रह्म परमात्मा हैं। वे सर्वविघ्नविनाशक और सदा पूज्य हैं—

'अयमेव सदा पूज्यः सर्वविघ्नविनाशनः॥'

(गणेशपुराण २। १२५। ३१)

निस्संदेह श्रीगणेशजी परम समर्थ हैं। वे समस्त मनोरथ और संकल्प पूर्ण कर देते हैं। उनका भजन करनेसे समस्त कार्य सिद्ध होते हैं। मङ्गल-मूर्ति श्रीगणेशजीके

स्वरूपके चिन्तन, रूपके ध्यान और पूजनसे परमार्थकी सिद्धि होती है। —रामलाल

(२)

(लेखक—श्रीमोहनजी खारकर)

गणेशलोकको 'दिव्य लोक' भी कहते हैं। यह इक्षु-सागरमें स्थित है। भगवान् श्रीगणेशने अपनी कामदायिनी योग-शक्तिद्वारा इस लोकका निर्माण किया। इसका विस्तार पाँच हजार योजन है। गणेशलोकका प्रकाश अत्यन्त सौम्य होते हुए भी कोटि-कोटि सूर्योंके प्रकाशको भी मन्द करनेवाला है। गणेशलोकमें श्रीगणेश व्यष्टि और समष्टि रूपसे विराजमान रहते हैं।

इक्षु-सागरमें एक विशेष प्रकारका सहस्रदल कमल है। उसके ऊपर एक सुन्दर मञ्च है। उस मञ्चपर भगवान् श्रीगणेश शयन करते हैं। वहाँ शीतल, मन्द तथा सुगन्धित वायु सदा बहती रहती है।

मञ्चशायी भगवान् श्रीगणेशका वर्णन प्रसिद्ध महाराष्ट्रीय ब्रह्मलीन कवि श्रीविनायक महादेव नातूने अपने 'गणेश-प्रताप' ग्रन्थमें इस प्रकार किया है—

सिद्धि बुद्धिचे प्राण जीवन। स्वस्वरूपी करी शयन।
दो पदांचे संवाहन। दीन युवती करिती सदा॥
ज्याचा न कळे वेदा पार। निर्गुण आनंदमय साचार।
भक्तावरी दया थोर। यदर्थ साकार मिरवे सदा॥
बालभावे गजवदन। सुंदर शोभे हास्य वदन।
पादांगुष्ठी कोटि मदन। ओवाळावे क्षणो क्षणी॥
चरण तळवे आरक्त दोन। तो नभी रंग भासमान।
ध्वज पताका वज्र चिन्ह। तळी शोभती सामुद्रिके॥
आरक्त शोभे बालगती। नखे शोभती पदे तेंनी।
चरणी नूपुरे झणत्कारेसी। गजर करिती असुरांवरी॥
जंघा वर्तुल सोज्ज्वळ। सूर्यापरी उरु तेजाळ।
कटि पश्चात् भाग वर्तुळ। उदर लांबट साजिरे॥
विशाल शोभे वक्षस्थल। नव रत्नमाला अति तेजाळ।
कर्णी कुंडले रत्नमय सळ। सदा वाहती शशि सूर्यी॥
बाहुदंड वर्तुळ सुलक्षण। गंडस्थली आमोद घन।
भ्रमर करिती वरी भ्रमण। सदा दान सेविती॥
त्यावरी मुकुट नवरत्नमय। भक्ताभिमानी गणराय।
जे सेविती त्याचे पाय। नाही भय त्यांसी कधी॥
क्षीर सागरी नारायण। तैसा इक्षु सागरी गजकर्ण।
पाचां मध्ये भेद जाण। नाही नाही सत्य हैं॥

(गणेश-प्रताप, क्रीडा-खण्ड, अध्याय १२। २३—३२)

गणेशलोककी भूमि सुवर्णमय है। वहाँ देवताओंके मन्दिर भी रत्नों और हीरोंसे बने हुए हैं। वहाँके घर भी सुवर्ण तथा रत्नमय हैं। गणेशलोकका प्रत्येक वृक्ष कल्पतरु है तथा प्रत्येक पाषाण सुवर्ण तथा रत्नमय है। वहाँके रहनेवाले गणेश-भक्तोंको 'गणेश-दूत' कहा जाता है। उनका स्वरूप भी भगवान् श्रीगणेश-जैसा ही है। वे अत्यन्त तेजस्वी हैं। सुख-दुःख, जन्म-मृत्यु आदिकी पीड़ा गणेशलोकमें नहीं है। ऋद्धि-सिद्धि गणेशलोकमें रहनेवाले गणेश-दूतोंकी सेवा सदा-सर्वदा करती रहती हैं। गणेशदूतोंका गुणगान सामवेद सदा करते रहते हैं। वहाँके रहनेवाले लोगोंके मनोरथ तत्काल सिद्ध हो जाते हैं। गणेशलोककी प्राप्ति केवल उसीको होती है, जो भगवान् श्रीगणेशजीकी दृढ़ भक्तिमें निमग्न रहता है तथा जिसपर भगवान् श्रीगणेशकी कृपा है।

श्रीगणेशकी अद्भुत झाँकी

जंगल मैं जन्न के करै मंगल, देव के दंगल मैं पिल्यो पेख्यौ।
दंत मैं जाके दिगन्त 'द्विजेश' जिन्हें सत संत अनंत उलेख्यौ॥
है तो निरांकुस पै त्रिकुसांकुस मंत्र महावत सों यों परेख्यौ।
मातु की गोद प्रमोदमयी गज सिंह चढ्यो पय पीवत देख्यौ॥

—महाकवि द्विजेश

श्रीगणेश-सम्बन्धी तीर्थस्थलों एवं प्रतिमाओंके विषयमें नम्र निवेदन

पञ्चदेवोंमेंसे एक, पार्वती-शिवके आत्मज, सब देवी-देवताओंमें सर्वाग्रपूज्य और जन-जीवनमें अत्यधिक परिव्याप्त भगवान् श्रीगणेशसे सम्बन्धित सभी तीर्थ-स्थलों, मूर्तियों और क्षेत्रों आदिका पूर्ण विवरण प्रस्तुत करना असम्भव है। श्रीगणेशजीके स्वतन्त्र मन्दिर भले ही अधिक न हों, परंतु प्रायः प्रत्येक आस्तिक हिंदू-घरमें, दूकानमें, व्यवसाय-केन्द्रमें श्रीगणेशकी प्रतिमा, चित्रपट या अन्य कोई प्रतीक अवश्य विद्यमान रहता है। इसी प्रकार प्रायः सभी श्रीशक्ति-शिव-मन्दिरोंमें श्रीगणेशके मङ्गल-विग्रह प्रतिष्ठित हैं। अन्य देव-स्थलोंपर भी श्रीगणेश उनके रक्षणार्थ विद्यमान हैं। भारत ही क्या, भारतके बाहर भी श्रीगणेशोपासना किसी-न-किसी रूपमें प्रचलित है। आगेके पृष्ठोंमें भगवान् श्रीगणेशसे सम्बन्धित तीर्थों आदिका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है। अनेक स्थलोंका विवरण प्रयत्न करनेपर भी प्राप्त नहीं हो पाया है तथा कुछ स्थलोंका बहुत विस्तृत रूपमें प्राप्त हुआ था, जिसे स्थान-संकोचके कारण संक्षिप्त करना पड़ा है। विवरण अनेकों बन्धुओंद्वारा प्रेषित सूचनाओंके आधारपर तैयार किया गया है, अतएव सम्भव है, उसमें कहीं कोई त्रुटि रह गयी हो। इतना होनेपर भी, आशा है कि इससे पाठकोंको श्रीगणेशोपासनाके विस्तारकी एक झलक मिल जायगी।

इस विवरणको तैयार करनेमें जिन महानुभावोंसे सहयोग प्राप्त हुआ है, उनके हम हृदयसे आभारी हैं। सहयोग प्रदान करनेवाले सज्जनोंके नाम प्रकाशित नहीं हो सके, इसके लिये हम क्षमा-प्रार्थी हैं।

—सम्पादक

इक्कीस प्रधान गणपति-क्षेत्र

(लेखक—श्रीहेरम्बराज बालशास्त्री)

१. मोरेश्वर—गाणपत्य-तीर्थोंमें यह सर्वप्रधान श्री-भूस्वानन्दक्षेत्र है। यहाँ 'मयूरेश-गणेश'की मूर्ति है। पूनासे ४० मील और जेजूरी स्टेशनसे १० मील यह स्थान पड़ता है।

२. प्रयाग—यह प्रसिद्ध तीर्थ उत्तरप्रदेशमें है। यह 'ओंकार-गणपतिक्षेत्र' है। यहाँ आदिकल्पके आरम्भमें ओंकारने वेदोंसहित मूर्तिमान् होकर गणेशजीकी आराधना एवं स्थापना की थी।

३. काशी—यहाँ ढुण्ढिराज गणेशका मन्दिर प्रसिद्ध है। यह 'ढुण्ढिराजक्षेत्र' है।

४. कलम्ब—यह 'चिन्तामणि-क्षेत्र' है। महर्षि गौतमके शापसे छूटनेके लिये इन्द्रने यहाँ 'चिन्तामणि-गणेश'की स्थापना करके उनका पूजन किया था। इस स्थानका प्राचीन नाम कदंब-पुर है। बरारके यवतमाल नगरसे यहाँ मोटर-बस जाती है।

५. अदोष—नागपुर-छिंदवाड़ा रेल्वे-लाइनपर सामनेर स्टेशन है। वहाँसे लगभग पाँच मीलपर यह स्थान है। इसे 'शमी-विघ्नेश-क्षेत्र' कहा जाता है। महापाप, संकट और शत्रु-नामक दैत्योंके संहारके लिये देवताओं तथा ऋषियोंने यहाँ तपस्या की और भगवान् गणेशकी स्थापना की। वामन-भगवान्ने भी बलि-यज्ञमें जानेसे पूर्व यहाँ गणेशजीकी आराधना की थी।

६. पाली—इस स्थानका प्राचीन नाम पल्लीपुर है। बल्लाल-नामक वैश्य-बालककी भक्तिसे यहाँ गणेशजीका आविर्भाव हुआ, इसलिये इसे 'बल्लाल-विनायकक्षेत्र' कहते हैं। यह मूल क्षेत्र तो सिन्धुदेशमें शास्त्रोंद्वारा वर्णित है, किंतु वह अब लुप्त हो गया है। अब तो महाराष्ट्रके कुलाबा जिलेमें पाली-नामक क्षेत्र प्रसिद्ध है।

७. पारिनेर—यह 'मङ्गल-मूर्तिक्षेत्र' है। मङ्गल ग्रहने यहाँ तपस्या करके गणेशजीकी आराधना की थी। ग्रन्थोंमें यह क्षेत्र नर्मदाके किनारे बताया गया है, किंतु स्थानका ठीक पता नहीं है।

८. गङ्गा-मसले—यह 'भालचन्द्र-गणेशक्षेत्र' है। चन्द्रमाने यहाँ गणेशजीकी आराधना की है। काचीगुडा-मनमाड रेल्वे-लाइनपर परभनीसे छब्बीस मील दूर सैलू

स्टेशन है। वहाँसे पंद्रह मीलपर गोदावरीके मध्यमें श्रीभालचन्द्र-गणेशमन्दिर है।

९. राक्षसभुवन—जालनासे ३३ मीलपर गोदावरीके किनारे यह स्थान है। यह 'विज्ञान-गणेश-क्षेत्र' है। गुरु दत्तात्रेयने यहाँ तपस्या की और विज्ञान-गणेशकी स्थापना-अर्चना की है। विज्ञान गणेशका मन्दिर यहाँ है।

१०. थेऊर—पूनासे पाँच मीलपर यह स्थान है। ब्रह्माजीने सृष्टिकार्यमें आनेवाले विघ्नोंके नाशके लिये गणेशजीकी यहाँ स्थापना की थी।

११. सिद्धटेक—बंबई-रायचूर लाइनपर धौंड जंक्शनसे ६ मील दूर बोरीवली स्टेशन है। वहाँसे लगभग ६ मील दूर भीमा नदीके किनारे यह स्थान है। इसका प्राचीन नाम 'सिद्धाश्रम' है। यहाँ भगवान् विष्णुने मधु-कैटभ दैत्योंको मारनेके लिये गणेशजीका पूजन किया था। द्वापरान्तमें व्यासजीने वेदोंका विभाजन निर्विघ्न सम्पन्न करनेके लिये भगवान् विष्णुद्वारा स्थापित इस गणपति-मूर्तिका पूजन किया था।

१२. राजनगाँव—इसे 'मणिपुर-क्षेत्र' कहते हैं। शंकरजी त्रिपुरासुर-युद्धमें प्रथम भग्न-मनोरथ हुए। उस समय इस स्थानपर उन्होंने गणेशजीका स्तवन किया और तब त्रिपुरध्वंसमें सफल हुए। शिवजीद्वारा स्थापित गणेश-मूर्ति यहाँ है। पूनासे राजनगाँव मोटर-बस जाती है।

१३. विजयपुर—अनलासुरके नाशार्थ यहाँ गणेशजीका आविर्भाव हुआ था। ग्रन्थोंमें यह क्षेत्र तैलंगदेशमें बताया गया है। स्थानका पता नहीं है। मद्रास-मङ्गलोर लाइनपर ईरोडसे १६ मील दूर विजयमङ्गलम् स्टेशन है; वहाँका गणपति-मन्दिर प्रख्यात है; किंतु यह वही क्षेत्र है या नहीं, कहा नहीं जा सकता।

१४. कश्यपाश्रम—यह क्षेत्र भी शास्त्रवर्णित है, पर स्थानका पता नहीं है। महर्षि कश्यपजीने अपने आश्रममें गणेशजीकी स्थापना-अर्चना की है।

१५. जलेशपुर—यह क्षेत्र भी अब अज्ञात है। मयदानवद्वारा निर्मित त्रिपुरके असुरोंने इस स्थानपर गणेशजीकी स्थापना करके पूजन किया था।

१६. लेह्याद्रि—पूना जिलेमें जुअर तालुका है। वहाँसे लगभग पाँच मीलपर यह स्थान है। पार्वतीजीने यहाँ गणेशजीको पुत्ररूपमें पानेके लिये तपस्या की थी।

१७. वेरोल—इसका प्राचीन नाम 'एलापुर-क्षेत्र' है। औरंगाबादसे वेरोल (इलोरा) मोटर-बस जाती है। घृष्णेश्वर (घुश्मेश्वर) ज्योतिर्लिङ्ग यहाँ है। उसी मन्दिरमें गणेशजीकी भी मूर्ति है। तारकासुरसे युद्धमें स्कन्द विजय-लाभ करनेमें पहले सफल नहीं हुए। पश्चात् शंकरजीके आदेशसे इस स्थानपर गणेशजीकी स्थापना करके उनका अर्चन किया और तब उन्होंने तारकासुरको युद्धमें मारा। स्कन्दद्वारा स्थापित मूर्तिका नाम 'लक्ष-विनायक' है।

१८. पद्मालय—यह प्राचीन प्रवाल-क्षेत्र है। बम्बई-भुसावल रेलवे-लाइनपर पाचोरा जंक्शनसे १६ मील दूर महसावद स्टेशन है। वहाँसे लगभग पाँच मील दूर यह पद्मालय-तीर्थ है। यहाँ कार्तवीर्य (सहस्रार्जुन) तथा शेषजीने गणेशजीकी आराधना की थी। दोनोंके द्वारा स्थापित दो गणपति-मूर्तियाँ यहाँ हैं। मन्दिरके सामने ही 'उगम' सरोवर है।

१९. नामलगाँव—काचीगुडा-मनमाड लाइनपर जाल्ना स्टेशन है। जाल्नासे बीड़ जानेवाली मोटर-बससे घोसापुरी गाँवतक जाया जा सकता है। वहाँसे पैदल नामलगाँव जाना पड़ता है। यह प्राचीन 'अमलाश्रम-क्षेत्र' है। यम-धर्मराजने माताके शापसे छूटनेके लिये यहाँ गणेशजीकी आराधना की है। यमराजद्वारा स्थापित आशापूरक गणेशकी मूर्ति यहाँ है। यहाँपर 'सुबुद्धिप्रद-तीर्थ'-नामक कुण्ड भी है। भुशुण्डि योगीन्द्रकी भी यहाँ मूर्ति है।

२०. राजूर—जालना स्टेशनसे यह स्थान चौदह मील है। इसे 'राजसदन-क्षेत्र' कहते हैं। सिन्दूरासुरका वध करनेके पश्चात् गणेशजीने यहाँ राजा वरेण्यको 'गणेश-गीता'का उपदेश किया था।

२१. कुम्भकोणम्—यह दक्षिण-भारतका प्रसिद्ध तीर्थ है। इसे 'श्वेत-विघ्नेश्वरक्षेत्र' भी कहते हैं। यहाँ कावेरी-तटपर सुधा-गणेशकी मूर्ति है। अमृत-मन्थनके समय जब पर्याप्त श्रम होनेपर भी अमृत नहीं निकला, तब देवताओंने यहाँ गणेशजीकी स्थापना करके पूजा की थी।

महाराष्ट्रके कुछ प्रसिद्ध गणेश-मन्दिर

(लेखक—प्रो० श्रीमाधव अनन्त फडके, एम्० ए०, साहित्य-पुराणेतिहासाचार्य)

महाराष्ट्रमें गणेशोपासना अत्यधिक प्रचलित है। गणेशजीके विख्यात अष्टगणपति-क्षेत्र महाराष्ट्रमें ही हैं। उन अष्टगणपति-क्षेत्रोंके नाम इस प्रकार हैं—१–मोरगाँव, २–थेऊर, ३–लेह्याद्रि, ४–ओझर, ५–राजनगाँव, ६–महड़, ७–पाली और ८–सिद्धटेक। इनका तथा महाराष्ट्रके अन्य स्थानोंका संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

मोरगाँव (जिला-पूना)—पूनासे चालीस मीलकी दूरीपर गाणपत्य सम्प्रदायका यह आद्य पीठ है। यहाँके देवता हैं—मयूरेश्वर। इस अत्यन्त जाग्रत् देवस्थानकी गणना अष्टविनायकोंमें है। यहाँ गणेशजीके आगे एक बहुत बड़े चूहेकी प्रतिमा है, जो पैरमें लड्डू पकड़े है। भीतरी आँगनमें मुद्गल पुराणोक्त श्रीगणेशकी आठ प्रतिमाएँ आठ कोनोंमें हैं। प्रतिमाके अगल-बगल धातुकी सिद्धि-बुद्धिकी प्रतिमाएँ हैं। मूर्तिके सामने वाहनके रूपमें मूषक एवं मयूर है। इन सिद्धिदाता मयूरेश्वर-गणपतिकी अनन्य उपासना महागणपति-भक्त मोरया गोसावीने चौदहवीं शताब्दीमें इस क्षेत्रमें आकर की और उन्हें यहाँके 'ब्रह्म-कमण्डलु'-तीर्थमें भगवत्कृपासे जो उपास्य देवताकी मूर्ति मिली, उसीकी स्थापना बादमें इन्होंने चिंचवड़में करके भव्य मन्दिर खड़ा किया। आगे चलकर श्रीमोरया गोसावी सालमें दो बार माघ एवं भाद्रपदकी चतुर्थीको मोरगाँवमें आने लगे। आज भी 'चिंचवड़'से भगवान्‌की पालकी इन दो चतुर्थियोंको यात्राके निमित्त यहाँ आती है। इसी प्रकार अठारहवीं शताब्दीके अन्तमें एक दूसरे सिद्ध सत्पुरुष श्रीगणेश-योगीन्द्रका भी सम्बन्ध इस क्षेत्रसे रहा है।

थेऊर (जिला-पूना)—थेऊर पूनासे चौदह मीलपर है। अष्टविनायकोंमें यह भी एक स्थान है। यहाँके गणेशजीका नाम 'चिन्तामणि' है। चिंचवड़के श्रीमोरया गोसावीने थेऊरके जंगलमें उग्र तपश्चर्या की थी। इनकी तपश्चर्यासे प्रसन्न होकर श्रीगणेशजी व्याघ्रके रूपमें प्रकट हुए थे। उस व्याघ्रके प्रतीकरूपमें आज भी यहाँ एक पाषाणखण्ड है। यहाँपर स्थित श्रीगणेश-प्रतिमा पालथी मारे हुए बैठी मुद्रामें है तथा प्रतिमाकी सूँड़ बायीं ओर एवं पूर्वाभिमुख है। यह देवस्थान चिंचवड़-संस्थानके अधिकारमें है।

लेह्याद्रि (जिला-पूना)—यह अष्टविनायक-स्थान पूनासे ६० मील दूर है। यह स्थान पहाड़ खोदकर तैयार किया गया है। इसके आस-पास बौद्ध गुफाएँ भी हैं। गणेशपुराणमें इस स्थानका उल्लेख है। यहाँपर गणेश-प्रतिमा एक ताम्बेके भीतर है, जो 'गिरिजात्मज' के नामसे प्रसिद्ध है।

ओझर—यह अत्यन्त रमणीय स्थान लेह्याद्रिके पास है। अष्टविनायकोंमें यहाँके 'श्रीविघ्नेश्वरजी'की बड़ी प्रतिष्ठा है। यहाँका मन्दिर अत्यन्त भव्य एवं सुन्दर है। मूर्तिकी सूँड़ बायीं तरफ है।

राजनगाँव (जिला-पूना)—अष्टविनायकोंमें यह भी एक स्थान है, जो पूनासे ३१ मील है। मन्दिर पूर्वाभिमुख है। मन्दिरकी रचना ऐसी है कि उत्तरायण एवं दक्षिणायनके मध्यकालमें सूर्यकी किरणें निश्चितरूपसे मूर्तिपर पड़ती हैं। यहाँके श्रीविग्रहको 'महागणपति' कहते हैं। इस समय मन्दिरमें जो पूजामूर्ति है, उसके नीचे तहखानेमें दूसरी एक छोटी मूर्ति है। वही असली मूर्ति है। मुस्लिम-शासन-कालके आक्रमणकारी मुसल्मानोंके डरसे उस प्राचीन मूर्तिको इस प्रकार छिपाकर रखा गया था। इन श्रीगणेशका नाम 'महोत्कट' है।

चिंचवड़ (पूना)—पूनासे ग्यारह मील दूर यह एक जाग्रत् देव-स्थान है। महाराष्ट्रके श्रेष्ठ गणपति-भक्त मोरया गोसावीने इस स्थानपर 'मङ्गलमूर्ति' नामके गणेशजीकी स्थापना की। यहींपर इन्होंने जीवित समाधि भी ली थी। इस क्षेत्रको समर्थ रामदास, संत तुकाराम भी बहुत मानते थे। प्रशस्त सभा-मण्डपके अंदर जानेपर समाधि है। इस समाधिपर मोरया गोसावीकी उपास्य-मूर्ति है। समाधिपर स्थित श्रीगणेश-मूर्ति पद्मासनमें है। सूँड़ दाहिनी ओर मुड़ी है। केवल दो आँखें दिखलायी देती हैं।

पूना शहरके गणपति-विग्रह

(क) कसबागणपति—ठकार-नामक एक गणेश-भक्तको प्राप्त आदेशके आधारपर जमीन खोदकर यह प्रतिमा मिली थी। यही आदेश शिवाजी एवं जीजाबाईको भी हुआ था। यह 'स्वयम्भू-मूर्ति' है एवं ये पूना-नगरके ग्रामदेवता हैं। इन्हें 'जयति गणपति' भी कहते हैं।

(ख) सिद्धि-विनायक—श्रीगणेशजीसे आदेश पाकर गणेश-भक्त सवाई श्रीमाधवराव पेशवाने दाहिनी सूँड़की

गणेश-प्रतिमा बनवाकर सारसबाग तालाबके शान्त वातावरणमें इसकी स्थापना की थी।

(ग) वरद-गुपचुप गणपति—लोकमान्य तिलकजीके समयके शनिवार पेठमें यह एक प्रसिद्ध गणेशस्थान है। देवस्थानकी स्थापना श्रीरामचन्द्र विष्णु गुपचुपने करके प्रतिमाका नाम 'श्रीवरदगणपति' रख दिया।

(घ) दशभुज चिन्तामणि—यह मूर्ति भी आदेशके आधारपर कुएँसे मिली है। गणेशपुराणमें गणेशमन्दिर-निर्माणके सम्बन्धमें जो आवश्यक निर्देश है, तदनुरूप ही गणेश-लोकके भावनानुसार इस मन्दिरका निर्माण हुआ है।

(ङ) त्रिशुण्ड—नागझरीके किनारे पूनाका अत्यन्त प्राचीन एवं विशिष्ट रचनावाला मन्दिर है। मन्दिरकी दीवारपर एक गणेश-यन्त्र खुदा हुआ है, जिसके आधारपर शोध करनेवालोंका कथन है कि यह तन्त्रमार्गीय मन्दिर है। मन्दिरके नीचे गुप्त तहखानेमें मन्दिरके संस्थापक महंत श्रीदत्तगुरु महाराजकी समाधि है। इस मन्दिरकी ऐसी रचना की गयी है कि गजानन-मूर्तिके अभिषेकका पानी सीधे समाधिपर पड़े। इन मुख्य स्थानोंके अतिरिक्त पूना नगरमें अन्य भी कई बड़े श्रीगणेश मन्दिर हैं।

पाली (जिला-कुलाबा)—यह अष्टविनायकस्थान है। यहाँके श्रीगणेशजीका नाम बल्लालेश्वर है। गणेशपुराण तथा मुद्गलपुराणमें भी इसका उल्लेख है। प्राचीनकालसे ही यह एक जागरूक स्थान है। मन्दिरकी ऐसी रचना है कि सूर्योदय होते ही सूर्यकी किरणें सभामण्डपसे होकर मूर्तिपर पड़ती हैं। इस मन्दिरके पीठकी ओर श्रीधुण्डिविनायकका मन्दिर है, जिसमें श्रीधुण्डिविनायककी स्वयम्भू-मूर्ति है।

महड़ (जिला-कुलाबा)—महड़के श्रीवरदविनायक अष्टविनायकोंमें प्रसिद्ध हैं। ऐसी धारणा है कि 'मन्दिरकी स्थापना वेद-प्रसिद्ध गृत्समद ऋषिने की।' ये ऋषि हजारों वर्ष पहले हुए हैं। 'गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे' इस ऋचाको सिद्ध करनेवाले एवं ऋग्वेदके दूसरे मण्डलके मन्त्रद्रष्टा ऋषि श्रीगृत्समदने गणेशजीकी प्रखर उपासना की और उनकी कृपाका प्रत्यक्ष अनुभव किया। गृत्समद ऋषि गाणपत्य-सम्प्रदायके आद्यप्रवर्तक हैं। इसीलिये इस स्थानका अधिक महत्त्व है।

नाँदगाँव (जिला-कुलाबा)-यहाँ स्वयम्भू गणपति देवता हैं एवं इन सिद्धि-विनायककी स्थापना 'मुद्गलकार' श्रीगणेश दैवजने की थी। यह मन्दिर चौदहवीं शताब्दीमें ही प्रसिद्ध है।

कनकेश्वर (जिला-कुलाबा)—ढाई सौ वर्ष पूर्व कल्हाड़के लम्बोदरानन्दस्वामीजीको भगवान् परशुरामने पीले संगमर्मरके पत्थरकी सिद्धि-बुद्धि एवं लक्ष-लाभ बालकोंसहित श्रीलक्ष्मी-गणेशकी एक सुन्दर एवं कलापूर्ण मूर्ति दी और कहा कि 'यह मूर्ति केवल ध्यानके लिये है, पूजनके लिये नहीं।' बादमें श्रीगणेशजीके आदेशानुसार एक दूसरी मूर्ति यहाँपर स्थापित की गयी एवं मूल मूर्ति ताम्बेके एक सदूकमें बंद करके रखी हुई है। उस मूर्तिका दर्शन सबको मिले, इसलिये आजकल उसकी एक प्रतिकृति बनाकर वहाँ रखी हुई है। इन श्रीगणेशजीका नाम 'श्रीराम सिद्धि-विनायक' है।

कुडाव (जिला-कुलाबा)—के श्रीदिगम्बर सिद्धि-विनायकका मन्दिर एक अत्यन्त जाग्रत् देवस्थान है। इस मन्दिरका जीर्णोद्धार नाना फडनवीसने कराया था। तीन सौ वर्ष प्राचीन यह मूर्ति 'एकदन्तं शूर्पकर्णम् ''श्लोकके भावानुसार निर्मित है।

टिटवाला (जिला-थाना)—भारतके प्रसिद्ध कण्व-मुनिका आश्रम यहीं था। दुष्यन्त-शकुन्तलाका गान्धर्व-विवाह एवं अन्य घटनाएँ यहीं हुई थीं। शकुन्तलाको कण्वमुनिने गणेश-व्रत करनेको कहा था। जिन गणेशकी कृपासे उसे उसके पतिकी पुनः प्राप्ति हुई थी, यह वही गणेश-प्रतिमा है। इसे 'वरविनायक' या 'विवाहविनायक' भी कहते हैं।

बंबई—यहाँ दो प्रसिद्ध गणपति-मन्दिर हैं। एक है, प्रभादेवीका 'सिद्धिविनायक-मन्दिर' और दूसरा है, मूलजी जेठा कापड़ मार्केटका 'सिद्धिविनायक-मन्दिर'। ये दोनों गणपति-मन्दिर अति प्राचीन हैं। मूलजी जेठा मार्केटमें एक बार भयानक आग लगी थी, तब यह मन्दिर उससे केवल २५-३० कदम दूर था; फिर भी वह पूर्णतः बच गया था। आगकी ज्वाला दूर-दूरतक फैल गयी, तथापि इस मन्दिरको और इसके अंदर मौजूद बसवतराव पुजारीको कुछ भी आँच नहीं आयी। इस अग्निकाण्डमें यह एक चामत्कारिक बात हुई कि इस मार्केटमें आनेवाली अनेक गलियोंमें आग लग गयी थी, परंतु अंदरके 'गणेश चौक' तथा उसकी दूकानोंकी कोई क्षति नहीं हुई थी। भक्त लोग मानते हैं कि यह चमत्कार सिद्धिविनायकका ही है। बंबईमें अनेक गणेश-मन्दिर हैं। गिरगाँवके फड़के गणपतिजी और मुम्बादेवीके

गणेशजीके दर्शनके लिये भक्तोंकी भीड़ लगी रहती है। इनके अतिरिक्त बाणगङ्गा; बालकेश्वर, मुलेश्वर; गणेशवाड़ी, वडाला, माटुंगा, कालबादेवी, मदार-गणेश, बांद्रा आदि स्थानोंके श्रीगणेश मन्दिर दर्शनीय हैं।

पुल्या (जिला-रत्नागिरि)—यहाँका गणपति-मन्दिर अष्टविनायकोंसे अलग समुद्रतटवर्ती होकर भी एक प्रख्यात देवस्थान है। गणेशजीके दाँत साफ दिखलायी देते हैं। यहाँकी व्यवस्था ऐसी है कि सूर्यास्तके समय सूर्यकी किरणें ठीक स्वर्णिम-कलशसे होकर मूर्तिपर पड़ती हैं।

नाशगाँव (जिला-साँगली)—यहाँ गणपति-पञ्चायतनका मन्दिर है। बीचमें श्रीसिद्ध-विनायक हैं। उनकी दाहिनी ओर उमा रामेश्वर और बायीं ओर श्रीविष्णुका मन्दिर है।

साँगली—यहाँका गणपति-मन्दिर चमकते हुए काले पत्थरका है। कृष्णानदीके पूर्वी किनारेपर स्थित इस मन्दिरका सभा-मण्डप एवं गर्भगृहका शिखर कलापूर्ण है।

वाई (जिला-सतारा)—यहाँके ढोल्या गणपतिके देवालयका पिछला हिस्सा मछली-जैसा है, जिससे कृष्णा नदीकी बाढ़से मन्दिरकी रक्षा होती है। मूर्ति विशाल होनेके कारण ही लोग इसे 'ढोल्या (विशालकाय) गणेश' कहते हैं।

सतारा—शहरके 'ढोल्या-गणपति'का मन्दिर अत्यन्त प्राचीन है एवं मूर्ति स्वयम्भू है। यह मूर्ति आकारमें काफी बड़ी है। सताराके सभी मङ्गलकार्य इन्हें अक्षत देकर शुरू होते हैं। शहरके पास आजिंक्य किलेकी पहाड़ीके उतारपर भी गणेश-मन्दिर है।

सिद्धटेक (जिला-अहमदनगर)—यहाँके 'सिद्ध-विनायक' अष्टविनायकोंमेंसे एक हैं। यह प्रसिद्ध एवं ऐतिहासिक महत्त्वका स्थान है। गणेशमूर्ति स्वयंभू है। इसकी सूँड़ दाहिनी ओर झुकी है।

मालीवाडा(जिला-अहमदनगर)—यहाँका गणपति-मन्दिर प्राचीन एवं जाग्रत् है। पचास साल पूर्व यहाँके गणेशजीको पसीना आने लगा, जो कि यज्ञादिके अनुष्ठानसे बंद हुआ। तबसे यह स्थान अधिक प्रसिद्ध हो गया।

नासिक—यहाँके मोदकेश्वर 'हिंगल्याका गणपति' नामसे भी प्रसिद्ध हैं। इनकी गणना छप्पन विनायकोंमें होती है। यह 'कामवरद महोत्कट-क्षेत्र' है। यहाँकी मूर्ति मोदकाकार है, इसीलिये इन्हें 'मोदकेश्वर' कहा जाता है। इसके अतिरिक्त नासिक नगरमें और भी सात-आठ गणेश-मन्दिर हैं।

परंडोल (जिला-जलगाँव)—भारतके गणेशजीके प्रसिद्ध अढाई पीठोंमें अर्धपीठके रूपमें इस स्थानका उल्लेख होता है। इसे 'पद्मालय-क्षेत्र' कहते हैं एवं इसकी कथा गणेशपुराणमें है। गर्भगृहमें गणेशजीकी दो स्वयम्भू मूर्तियाँ हैं। एक दाहिनी ओर मुड़ी सूँड़की एवं दूसरी बायीं ओर मुड़ी सूँड़की है। यह इक्कीस क्षेत्रोंमेंसे एक है।

कदम्बपुर (जिला-यवतमाल)—मन्दिरके सामने ही 'चौमुखी गजानन'की मूर्ति है। इसकी विशेषता यह है कि एक ही पत्थरमें चारों ओर चार गणेश-मूर्तियाँ खुदी हुई हैं। सामनेके गर्भगृहमें मुख्य चिन्तामणि गणेशकी मूर्ति है। 'कलम्ब' नामसे इक्कीस गणपतिक्षेत्रमें इसकी गणना है।

केलझर (जिला-वर्धा)—यहाँकी गणेश प्रतिमा पाण्डवोंके द्वारा स्थापित है। महाभारतकालीन एकचक्रा-नगरी ही आधुनिक केलझर है। यहाँ एक अति प्राचीन मन्दिर है।

आधासा (जिला-नागपुर)—इक्कीस गणेश क्षेत्रोंमें यह 'अदोष क्षेत्र'के नामसे प्रसिद्ध है। यह जाग्रत् देवस्थान है। मन्दिर टीलेपर एवं पूर्वाभिमुख है। यहाँ 'श्रीशमीविघ्नेश'की मूर्ति है।

नागपुर—शहरमें सीताबर्डी किलेमें गणपतिका पहले बना हुआ बड़ा मन्दिर था, जो मुस्लिमकालमें ध्वस्त किया गया। उसके अवशेष आज भी दिखलायी देते हैं। मूर्ति पेड़के नीचे है। पहले यह मूर्ति स्पष्ट दिखायी देती थी, किंतु अब अधिक सिन्दूर लगनेके कारण मूर्ति स्पष्ट नहीं दीखती है। नागपुर शहरमें शुक्रवार-तालाबके पास एक उत्तम गणेश-मन्दिर है। मूर्ति दाहिनी ओर झुकी सूँड़की एवं संगमरमरकी है।

अजिंठा (जिला-औरंगाबाद)—यह गणेशस्थान अत्यन्त जागरूक है और अर्धचन्द्राकार है। गणेश-गुफामें प्रवेश करनेपर बड़ा सभा-मण्डप आता है। मण्डपके मध्य-भागमें दीवारमें चार फीट ऊँचाईपर मङ्गलमूर्ति है।

वेरुल (जिला-औरंगाबाद)—इक्कीस गणपति-क्षेत्रोंमेंसे यह एक है। यहाँ 'श्रीलक्ष-विनायक'की स्थापना श्रीशिवपुत्र स्कन्दने की थी।

महाराष्ट्र-प्रदेशके प्रमुख अष्ट विनायक

[पृष्ठ ४२६-२७
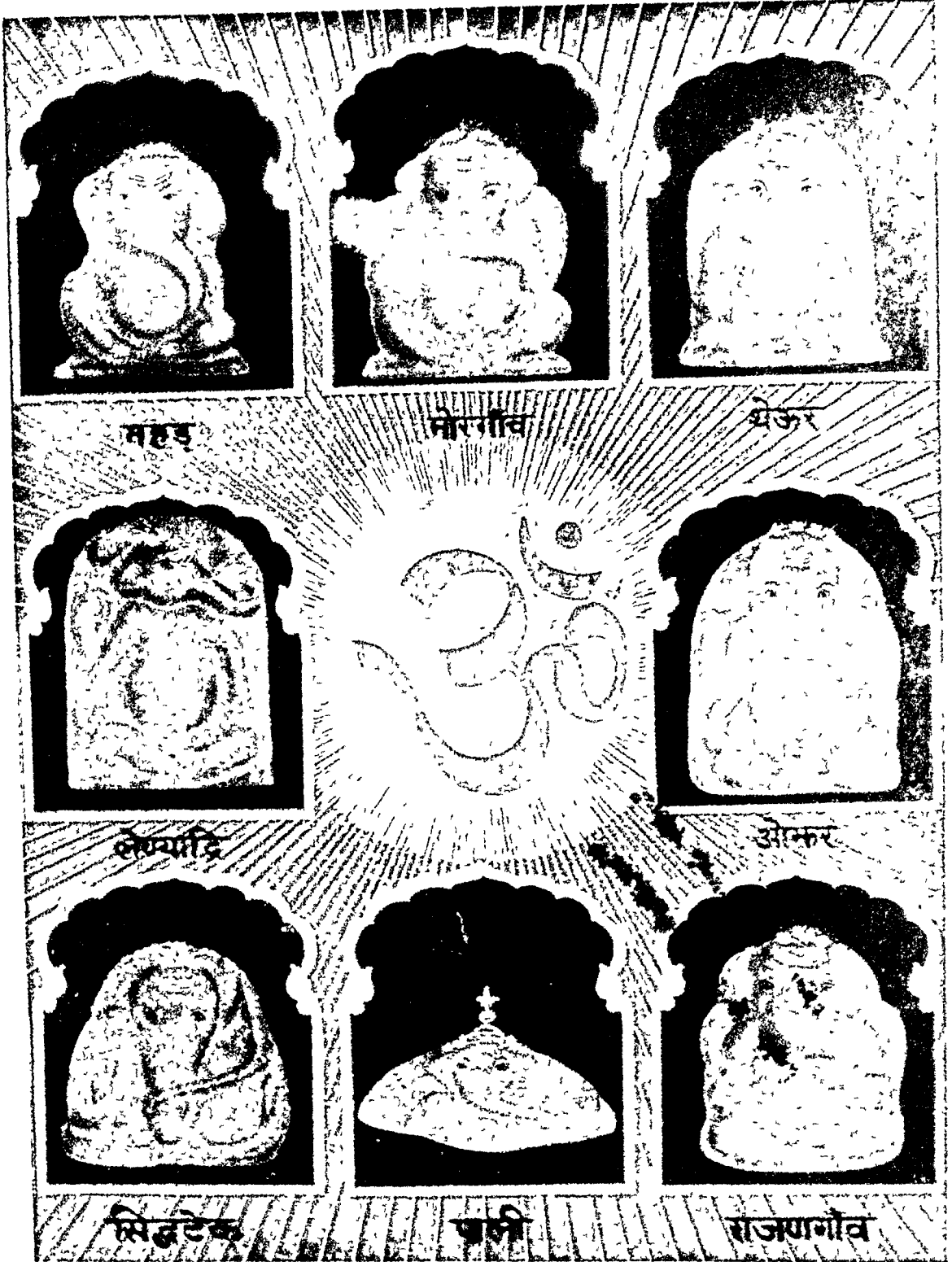
सेन्दुवाड़ा (जिला-औरंगाबाद)—यहाँ सिन्दूरासुरका राजधाग था। सिन्दूरासुरका अन्त करनेके कारण यहाँके श्रीगणेशजी 'सिन्दूरान्तक' कहलाते हैं।

सातारा (जि०-औरंगाबाद)—पहले बाजीराव पेशवाद्वारा यहाँकी श्रीगणेशमूर्ति तैयार करवायी गयी थी। मूर्ति पचरसी धातुकी है। इसके बारह हाथ हैं। सूँड़ बायीं ओर मुड़ी है।

राजूर (जि०-औरंगाबाद)—भारतमें श्रीगणेशके साढ़े तीन पीठोंमें यह पूर्ण पीठ माना जाता है। यहाँके अति जाग्रत् एवं सिद्धि देनेवाले देव 'वरेण्य-पुत्र गणपति' कहलाते हैं। यहाँ गणेशजीने राजा वरेण्यको गीताका उपदेश दिया था। यहाँका मन्दिर गाँवके पास एक ऊँचे टीलेपर स्थित है। निरन्तर जलनेवाले तैल-दीपके मन्द प्रकाशमें ईश्वरका दर्शन होता है।

गङ्गामसले (जि०-परभणी)—यह स्थान पुराणोक्त है। यहाँ श्रीभालचन्द्र एवं गणेशके तीर्थक्षेत्रको 'भालचन्द्रपुर' भी कहते हैं। गणेशजीके इक्कीस गणपति-क्षेत्रोंमें इसकी भी गणना है। प्राचीनकालमें इसका नाम 'सिद्धाश्रम'-क्षेत्र था।

परभणी—जिलेके 'औढ्या नागनाथ-मन्दिर'में निज-मन्दिरके दक्षिण द्वारपर गणेशकी कुछ सुन्दर मूर्तियाँ हैं। उनमें 'दिगम्बर गणेश', 'बैठा गणेश', 'खड़ा गणेश' 'ऋद्धि-सिद्धि गणेश' एवं 'दशभुज गणेश' हैं।

मानवतरोड (जि०-परभणी)—स्टेशनसे २० मीलपर गोदावरीके किनारे मुद्गलतीर्थ है, जहाँ नदीमें एक गणपति-मन्दिर एवं तीर्थ है।

नांदेड़—यहाँके 'चित्रकूट गणेश'का महाराष्ट्रके अष्ट-विनायकोंके समान ही माहात्म्य है एवं यह मन्दिर मराठवाड़ेका स्वयम्भू सिद्ध-स्थान है। यह छोटा-सा मन्दिर गोदावरी-असना नदियोंके सगमपर नदीमें ही पत्थरोंसे बना हुआ है। शिवलिङ्ग एवं उसीके ऊपर गणेशजीकी स्वयम्भू प्रतिमा है। यह सिंदूर-चर्चित है। लोगोंकी यह धारणा है कि यह प्रतिमा प्रतिवर्ष तिल-तिल बढ़ती है। नांदेड़ नगरमें तथा नांदेड़ जिलेमें भी कुछ गणपति-मन्दिर एवं क्षेत्र हैं।

नवगण राजुरी (बीड़)—यह मराठवाड़ेका प्रसिद्ध गणेशक्षेत्र है। गाँवमें प्रवेश करते ही सरहदपर पेशवाई ढगका यह 'श्रीनवगणपति'का मन्दिर है। यहाँ चार गणेश मूर्तियाँ है एवं एक चौकोर पत्थरके चार दिशाओंमें हैं। प्रत्येक मूर्तिकी बैठक विशिष्ट आसनमें है। उनके नाम इस प्रकार हैं—पूर्वकी ओर 'महामङ्गल', दक्षिणकी ओर 'मयूरेश्वर', पश्चिमकी ओर 'शेषाधिविष्ठित' तथा उत्तरकी ओर 'उच्छिष्ट गणेश'की मूर्तियाँ हैं। मन्दिरमें चारों गणेशजीके अतिरिक्त एक पूजाके गणेश हैं। बीड़के जिलेके आँबेजोगाई तथा नामल गाँवके गणेश-मन्दिर भी दर्शनीय हैं। नामल गाँव इक्कीस गणपति-क्षेत्रोंमेंसे एक है।

राक्षस भवन (बीड़)—'श्रीविज्ञान गणेश'का मन्दिर गोदावरीके दक्षिण किनारेपर गाँवके बाहर है। विज्ञान-गणेशकी मूर्ति पहले वर्तमान स्थानके नीचे गुफामें थी। दो सौ साल पूर्व किसी गणेश-भक्त शंकर बुआ मङ्गलमूर्तिजीने इसे निकालकर बाहर स्थापित किया।

खाण्डोले (गोवा)—यहाँका गणपति मन्दिर छोटा है, फिर भी सुन्दर है। यह पहाड़के नीचे नारियलके झुरमुटमें है, जिससे इसकी नैसर्गिक शोभा अप्रतिम है।

वाँदिवडे (गोवा)—यहाँकी श्रीगोपाल गणपतिकी मूर्ति जंगलमें मिली थी। इसकी ऊँचाई एक फुट है। पहले तो इसे नारियलके पत्तोंसे ढके हुए मण्डपके नीचे स्थापित किया गया था, किंतु बादमें यह मूर्ति काफी लोगोंकी मान्यताको पूरा करनेमें विख्यात हो गयी।

इसके अतिरिक्त महाराष्ट्रमें अनेकों छोटे-बड़े गणपति-मन्दिर एवं क्षेत्र तथा तीर्थ और कुण्ड हैं। जैसे—१-पूना जिलेके जुन्नर, २-कोलाबा जिलेके उरण, गरुड, आवास, ३-थाणा जिलेके अणजूर, मुरबाड, आणा, ४-रत्नागिरि जिलेके अगरगुळे, हेदवी, आँबोळी, गुहागर, आँजर्ले, दोणवली, कैलशी, सोनगाँव, परशुरामें, ५-कोल्हापुर जिलेके गणेशवाड़ी, कोल्हापुर, बीड़, इचनाल, ६-सातारा जिलेके अगापुर, ७-शोलापुर जिलेके पंढरपुर, अक्कलकोट, ८-नासिक जिलेके सिन्नर गाँव, त्र्यम्बकेश्वर, गणेशकुण्ड और ९-गोवाके धारगल, हरमल तथा भद्रवाड़ी स्थानोंके श्रीगणेश-मन्दिरोंका दर्शन श्रीगणेश भक्तोंको अवश्य करना चाहिये।

द्रविड़-देशमें श्रीगणेश

(लेखक—श्री एन० कनकराज ऐयर, एम्० ए०)

द्रविड़-देश तमिळनाडमे श्रीगणेशजी देवताके रूपमे सर्व-साधारणके चित्तको बहुत आकर्षित करते हैं। नदियोंके तटपर; पीपल वृक्षके नीचे तथा कण्टकाकीर्ण उदेयरम्-वृक्षकी छायामे बिना किसी प्रकारके आवरणके खुली जगहमे सहस्रों छोटी-छोटी वेदिकाओंके ऊपर उनकी अर्चना होती है। कोई भी धनी या गरीब आदमी सच्ची श्रद्धा भक्तिसे उनके लिये कहीं भी स्थान बनवा देता है। इस प्रकार भक्तोंके हृदयमें गणपतिने एक विशिष्ट स्थान बना लिया है।

परमक्कुड़ि—पीपलका वृक्ष सब वृक्षोंका वस्तुत. राजा है। उसके नीचे श्रीगणेशजीकी महत्ता बढ़ जाती है। परमक्कुड़िके समीप वे एक काँटेदार वृक्षके नीचे अपने भाई स्कन्दके साथ आसीन हैं। नव-दम्पति अपने वैवाहिक जीवनकी सफलताके लिये गणेशजीसे प्रार्थना करते हैं और वे उसे पूर्ण भी करते हैं।

मद्रास—यहाँ कई मन्दिर हैं। शिव-मन्दिर अम्बाजीके मन्दिरसे कुछ ही दूरीपर एक साधारण-सा मन्दिर है। उसमे भगवान् शंकरकी लिङ्ग-मूर्ति है। मन्दिरमें ही पार्वतीजीकी मूर्ति अलग मन्दिरमे है। नवग्रह, शिवभक्त-गण, श्रीगणेशजी आदि देवताओंकी मूर्तियाँ भी जगमोहन तथा परिक्रमामे हैं। इसके अतिरिक्त मइलापुर मुहल्लेमे कपालीश्वरका मन्दिर है। प्रधान मन्दिरमे कपालीश्वर शिव-लिङ्ग प्रतिष्ठित है। मन्दिरमें ही पार्वतीजी तथा सुब्रह्मण्यस्वामीके पृथक्-पृथक् मन्दिर हैं। मुख्य मन्दिरकी परिक्रमामे सुब्रह्मण्य, पार्वती, नटराज, नायनार (शिवभक्तगण) गणेश एव दक्षिणामूर्ति आदिके दर्शन हैं।

कालहस्ती—यह रेनीगुंटासे १५ मील है। दक्षिण भारतमे भगवान् शंकरके जो पाँच तत्त्वलिङ्ग माने जाते हैं, उनमेंसे कालहस्तीमे वायुतत्त्वलिङ्ग मूर्ति है। परिक्रमामे श्रीगणेशजीका मन्दिर है।

वेङ्कटगिरि—यह रेनीगुंटासे ३० मील है। काशीपेट मुहल्लेमे काशी-विश्वेश्वर शिव-मन्दिर है। मन्दिरके परिक्रमा-मार्गमे अन्नपूर्णा, कालभैरव, सिद्धिविनायक आदि देवताओंकी मूर्तियाँ भी हैं।

अरुणाचलम् (तिरुवण्णामलै)—विल्लुपुरम्से बयालीस मील दूर तिरुवण्णामलै स्टेशन है। अरुणाचल पर्वतके नीचे पर्वतसे लगा हुआ अरुणाचलेश्वरका विशाल मन्दिर है। इस मन्दिरके दूसरे आँगनमे सरोवरके किनारे कई मण्डप हैं, उनमे गणेश आदि देवताओंके मन्दिर हैं।

काञ्ची—यह चेंगलपटसे बाईस मील दूर है। इस नगरके दो भाग हैं—शिवकाञ्ची और विष्णुकाञ्ची। शिवकाञ्चीमे एकाम्रेश्वर भगवान्का मुख्य मन्दिर है। मन्दिरके द्वारके दोनो ओर क्रमशः श्रीकार्तिकेयजी तथा श्रीगणेशजीके मन्दिर हैं। मन्दिरकी दो परिक्रमाएँ हैं। पहली परिक्रमामें अनेक मूर्तियोंके साथ भगवान् श्रीगणेशजीकी भी भव्य मूर्ति है। विष्णुकाञ्चीमे भगवान् श्रीवरदराजका विशाल मन्दिर है। भगवान्के निज मन्दिरकी परिक्रमामे अण्डाल, धन्वन्तरि एव श्रीगणेशजीकी मूर्तियाँ हैं।

सक्कोत्तरी—एक दूसरा विनायक-मन्दिर है। इसमे विशालकाय गणेशके दर्शन और पूजाके लिये हजारों भक्त आते हैं।

चिदम्बरम्—तमिळनाडमे पूजे जानेवाले विनायक ब्रह्मचर्यके अधिष्ठातृ-देवता हैं। भारतदेशके इस भागमें प्रायः सारी गणेश-मूर्तियाँ ब्रह्मचर्यकी पवित्र भावनाकी अभिव्यक्ति हैं। इस नियमके बहुत ही कम अपवाद मिलते हैं। तमिळनाडमे वल्लभ-विनायकको व्यक्त करनेवाली दक्षिण गोदमे नारीमूर्तिके साथ गणेशकी मूर्ति बहुत ही दुर्लभ है। इस प्रकारकी एक मूर्ति चिदम्बरम्मे श्रीनटराज-मन्दिरमे पायी जाती है। श्रीवल्लभ-गणपति, जो मुख्य शिव-मन्दिरके बहुत समीपमे प्रतिष्ठित हैं, यहाँ अत्यन्त भक्तिभावसे पूजे जाते हैं।

तिरुनारैयूर—चिदम्बरम्के समीप तिरुनारैयूरमे श्रीगणेशजीका एक विशेष मन्दिर है। उसमे जिस मूर्तिकी पूजा होती है, उसके विषयमे पुजारियों और भक्तोंमे एक अपूर्व ही कथा प्रचलित है। दसवीं शताब्दीमे नंबि-नामका एक कुआँरा ब्राह्मण इस स्थानमे रहता था। बाल्यकालमे वह एकदम निरक्षर था, किंतु वैदिक पाठशालामे वेदाध्ययनके लिये प्रविष्ट हुआ। उस समय उसकी अवस्था नौ वर्षसे

अधिक न थी। वह इस विनायक-मन्दिरके पुजारीका इकलौता पुत्र था। माता-पिता उस मन्दिरमें प्रतिदिन सनातन रीति-रिवाजके अनुसार पूजा और सेवा आदि करते थे। एक दिन उस पुजारीको किसी दूसरी जगह अनुष्ठान आदि कार्यसे जाना पड़ा। उसने अपने पुत्र नंविके ऊपर उस दिन पूजा करने और गणेशजीसे वरदान माँगनेका कार्य सौंप दिया। नंवि निरा बालक था और विनायक-मन्दिरमें पूजा तथा वैदिकाचारका ज्ञान उसमें पर्याप्त नहीं था। वह मन्दिरमें गया, मूर्तिके सामने खड़ा हो गया और श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भूलोंके लिये क्षमा-प्रार्थना करके पूजा करने लगा। उस बालकके अन्तःकरणमें दयालु प्रभुकी अपूर्व कृपा हुई। उसके मुखसे कुछ श्लोक और वेदमन्त्र उच्चरित होने लगे और उसने अपने ढंगसे देवताके अभिषेक और अर्चनाका अनुष्ठान किया। जब नैवेद्य-निवेदनका समय आया तो उसने एक छोटे-से पात्रमें ओदन भरकर मूर्तिके आगे रखा और पूर्ण भक्तिपूर्वक हृदयसे प्रार्थना करने लगा। विघ्नेश्वर उस ब्रह्मचारीकी मानसिक अवस्थाको स्पष्टतः देख रहे थे। नंवि अपनी सरल भाषामें अपने हृदयके उद्गारको व्यक्त करते हुए प्रार्थना करने लगा—'हे मेरे प्रभु विघ्नेश्वर! तुम हमारे प्रभु हो, तुम सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहर्ता हो। तुम्हारे एकान्त भक्त, मेरे पिताने अपनी अनुपस्थितिमें मुझको अपने स्थानमें तुम्हारी सेवामें लगाया है। वे आशा लगाये हैं कि मैं उनके स्थानमें तुम्हारी सेवा-पूजा करके तुम्हें पूर्ण संतुष्ट करूँ। मैं तुम्हारे चरणोंमें शरणापन्न हूँ। मैं प्रार्थना करता हूँ कि तुम अनुग्रह करके प्रसाद ग्रहण करो और अपने कृपा-कटाक्षसे मुझको कृतार्थ करो। यदि तुम मेरा यह नैवेद्य स्वीकार न करोगे तो मैं तुम्हारी इस चौखटपर अपना सिर फोड़ दूँगा और तुम्हारे सामने इस असार संसारसे विदा हो जाऊँगा।' भगवान् गणपति उस नौ वर्षके बालककी इस विचित्र प्रार्थनाको सुनकर दंग रह गये। नारैयूरके विघ्नेश्वरने अपनी सूँड़रूपी उस लंबे पाँचवें हाथको फौरन बढ़ाया और सारे नैवेद्यको उठाकर उस बालक नंविके देखते-देखते उदरस्थ कर लिया। वह बालक पुजारी आनन्दसे तथा हृदयमें असीम तृप्तिसे देवताके सामने नाचने लगा। पूरे एक घंटेतक आनन्दमग्न रहनेके बाद उसे अपना घर याद आया। बहुत देरसे उसकी माँ घरके द्वारपर खड़ी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। उसे बालकके आनेमें देरी अद्भुत और विलक्षण प्रतीत हो रही थी। वह सोच रही थी कि पूजा तो कुछ ही मिनटोंमें समाप्त हो जानी चाहिये। अपने इकलौते बेटेकी वह प्रतीक्षा कर रही थी और घंटेभरसे दोपहरका भोजन बनाकर उसकी राह देख रही थी। वह बालकके इस व्यवहारपर चकित थी। उसको माता-पिताकी सुधि न थी, बल्कि वह एक अदम्य ईश्वरीय शक्तिसे अभिभूत था। नंवि घर पहुँचा और उसने गणपतिदेवके प्राकट्यके विषयमें अपनी माताको अवगत कराया। माता बालककी मानसिक दशाको पिताकी अपेक्षा कहीं अधिक आसानीसे समझ सकती थी। उसने विघ्नेश्वरके उस कृपापात्र बालकको घरमें ले जाकर उसके लिये विशिष्ट भोजन तैयार किया, किंतु उस बालकको उसे ग्रहण करनेकी इच्छा न हुई।

दूसरे दिन पिताके आनेपर माताने उस दिन मन्दिरमें घटित अपूर्व घटनाका वर्णन किया और पिताने पूजाका काम सँभाला। उसने अपने पुत्रको भी साथ लेकर स्वभावतः मन्दिरमें प्रवेश किया। उसने वेद-मन्त्रोंका उच्चारण करके शास्त्रविधिसे पूजा-अनुष्ठान किया, देवताके सम्मुख नैवेद्य रखा और पिछले दिनके समान उसे ग्रहण करनेकी प्रार्थना की। विनायक उस वयस्क पुजारीके समक्ष प्रकट न हुए। तब पिताने अपने बालकसे अनुरोध किया कि 'वह पिछले दिनके समान ही नैवेद्य ग्रहण करनेके लिये देवतासे प्रार्थना करे।' बालक देवताके सामने खड़ा हो गया और पूर्ववत् उसने बड़े ही अनुनय-विनयपूर्वक प्रभुसे नैवेद्य-ग्रहणके लिये प्रार्थना की। विघ्नेश्वरको अपने भक्त और प्रिय सेवककी प्रार्थनाके आगे झुकना पड़ा। उन्होंने अपने पाँचवें हाथ—सूँड़के द्वारा एक ही लपेटमें सारे नैवेद्यको ग्रहण कर लिया। इसपर उसका पिता चिल्ला उठा—'नंवि! अब तुम मेरे पुत्र नहीं रहे। अबसे तुम हमारे प्रभु नारैयूरके विघ्नेश्वरके परम प्रिय भक्त और शिष्य हो गये। उन्होंने तुमको अपनी शरणमें ले लिया है। तुमको उनके तत्त्वावधानमें सारे वेद-शास्त्र और दूसरी अध्यात्म-विद्याकी शिक्षा ग्रहण करनी है। वे तुम्हारी सारी मनःकामना पूर्ण करेंगे। मेरे कर्तव्यकी इतिश्री हो गयी। प्रभुके प्रति तथा जगत्के प्रति तुम्हारे कर्तव्यका श्रीगणेश हो गया। तुम्हारी माँ अपने अभ्यासके अनुसार तुम्हारी देख-भाल करती रहेगी।' इतना कहकर पिताने अपने पुत्रको गणेशके सिपुर्द कर दिया।

तमिळ भक्तिग्रन्थोंमें इन गणेशजीको 'पोल्लैप्पिळ्ळैयार'के नामसे पुकारते हैं। इनकी मूर्ति किसी शिल्पकारके द्वारा नहीं गढ़ी गयी है। यह एक शुभ मुहूर्तमें पाताललोकसे स्वयं उद्भूत हुई है। अतएव यह एक विदग्ध-विनायक-विग्रह है। बालक नम्बि इसी विघ्नेश्वरका शिष्य बना। उसको स्वयं प्रभुने अपनी शरणमें ग्रहण किया। तबसे उसका नाम नम्बियाण्डार नम्बि पड़ा। इस बालकने अपने देव गुरुसे सम्पूर्ण ज्ञातव्य विषयोंकी शिक्षा ग्रहण की और वह एक महान् भक्त तथा संस्कृत और तमिळका महान विद्वान् हो गया। शिवभक्तोंकी महिमापर उसने एक काव्य-रचना की है।

राजाराज चोल नृपति कतिपय प्रसिद्ध मन्दिरोंके चट्टानोंपर देवारम् शिवस्तुतिको उत्कीर्ण देखकर चिदम्बरम् पधारे। इस स्तुतिकी पूर्ण लिपिका उद्धार करनेकी उनकी अभिलाषा हुई। उन्होंने यथासम्भव इसे खोज निकालनेकी चेष्टा की, जो स्वयं प्रभुके द्वारा मानवीय दृष्टिसे अन्तर्हित कर दी गयी थी। वे चिदम्बरम् आये। श्रीनटराजके तीन हजार भक्तोंने मन्दिरकी ओरसे राजाका स्वागत किया और उनको परामर्श दिया कि इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये नम्बियाण्डार नम्बिके पास जाना चाहिये। चोल-नृपति तिरुनारैयूर गये और इस बालकसे इस दिव्य देवारम्-स्तुतिका अनुसंधान करनेका अनुरोध किया, जो वहाँ मन्दिरमें कहीं गुप्तावस्थामें स्थित थी। नम्बिने अपने गुरु और प्रभुसे प्रार्थना की। उन्होंने इसको चिदम्बरम् तहखानेसे स्तोत्रको ढूँढ़ निकालनेका आदेश देकर भेजा, जहाँ यह तीन शिवभक्तों—सम्बन्ध, अप्पर और सुन्दरके द्वारा भोजपत्रमें लपेटकर रखा गया था।

यह तहखाना तीन हजार ब्राह्मणों और चोल नृपतिकी उपस्थितिमें नम्बिके द्वारा खोला गया। प्रेम, भक्ति, प्रार्थना और तत्त्वज्ञानका यह खजाना तहखानेसे निकला। देवारम्-स्तोत्रोंकी संख्या शिव-भक्तोंके द्वारा तहखानेमें रखते समय दस लाख थी। भोजपत्रपर लिखित अधिकांश पदोंको दीमक चाट कर गये थे।

नम्बिके द्वारा उपस्थित किये गये सात सौ पदोंको चोल नृपतिने अपने अधिकारमें लिया। उन्होंने इसे लेकर एक बड़ी शोभायात्रा निकाली और सर्वत्र घोषित किया कि 'देवारम्-स्तोत्रका गुप्त खजाना अब हाथ लग गया है।' भोजपत्रमें देवारम्-स्तोत्र एक हाथीके शानदार हौदेके ऊपर स्वर्ण-आसनपर रखा गया और नम्बियाण्डार नम्बि उस ग्रन्थके पास बैठाये गये। दो श्वेत चँवर हाथमें लेकर राजा पीछे बैठे तथा उन सबके ऊपर एक श्वेत छत्र लगाकर एक मन्त्री आसीन हुए। उस शोभायात्राने चिदम्बरम्‌की परिक्रमा की और श्रीनटराजके मन्दिरमें विशेष पूजाका आयोजन किया गया। इस प्रकार देवारम्-स्तोत्रको उसके गुप्त स्थानसे ढूँढ़ने तथा तीन भक्तोंके तमिळ वेदके रूपमें तमिळ-जनताके सामने लानेमें नम्बि निमित्तकारण बने।

शियाली—चिदम्बरम्‌से यह स्थान बारह मीलपर है। यहाँका ब्रह्मपुरीश्वर शिव-मन्दिर प्रसिद्ध है। मन्दिरकी परिक्रमामें भगवती पार्वती, श्रीकार्तिकेय तथा श्रीगणेशजी और अन्य देवताओंके श्रीविग्रह हैं।

पिळ्ळैयार पट्टी—कराइकुडिके समीप एक चट्टानको तराशकर विनायक-मन्दिर बनाया गया है। कराइकुडिके समीप एक दूसरा विनायक-मन्दिर है।

तिरुच्चेङ्कट्टाङ्कुडि—मायावरम्-कराइकुडि लाइनपर मायावरम्‌से पंद्रह मील दूर नन्निलम्‌के पास यह स्थान है। यह अपने विनायक-मन्दिरके कारण बड़ा विख्यात है। यहाँ भगवान् विनायक गजवदन न होकर नरवक्त्र (मनुष्यके मुख) से ही विराजते हैं। प्रसिद्धि है कि गजमुखासुरका वध इन्हीं विनायकद्वारा हुआ था।

कोट्टाइयूर—कराइकुडिके समीप एक विशेष विनायक हैं, जिनकी बड़ी अभ्यर्थना होती है। सरोवरके निकट एक छायाकार कुञ्ज है। इस सरोवरके पश्चिममें एक खुला प्लेटफार्म (चबूतरा) है, जिसके चारों ओर न दीवार है और न ऊपरसे कोई आच्छादन है। कोई भी भक्त, चाहे वह किसी भी जातिका हो, बिना किसीकी सहायताके सरोवरसे जल लेकर देवताके अभिषेकके लिये इस देवस्थानमें जा सकता है।

तिरुप्पुरंपयम्—यह स्थान कुम्भकोणम्‌से छः मील दूर है। यहाँ एक सरोवरके किनारे दक्षिणामूर्ति तथा गणपतिके मन्दिर हैं। यहाँके गणपतिका नाम 'प्रलयंकर्ता विनायक' है। इन्होंने जगत्‌की प्रलयसे रक्षा की थी, ऐसा कहा जाता है।

तिरुवलम्-चुलि—चोलदेशमें कुम्भकोणम्‌के पास एक छोटा शिवालय है। यह स्थान तिरुवलम्-चुलि कहलाता

है; क्योंकि कावेरी इस स्थानको लगभग चारों ओरसे घेरे हुए है। यह मन्दिर अपनी शिल्पकला, पचीकारी और चित्रकलाके लिये प्रसिद्ध है। इस मन्दिरके सामनेके मण्डपमें एक विनायकका विग्रह है। इस मूर्तिके विषयमें यह किंवदन्ती है कि जब देवताओंने अमृत प्राप्त करनेके लिये क्षीरसागरका मन्थनकार्य आरम्भ किया, तब उससे गगनचुम्बी फेन-राशि उत्थित हुई। उसी फेनराशिसे यह गणपतिकी मूर्ति निकली थी। इस विग्रहकी रचना विशुद्ध दुग्धफेनसे हुई है। अतएव यहाँ अर्चा करनेवाले विग्रहका अभिषेक शुद्ध उदक या गो-दुग्धसे भी नहीं करते। वहाँ गणपतिकी पूजा-प्रार्थना सुनी जाती है और भक्तोंकी मनःकामना पूर्ण होती है। कुम्भकोणम्-क्षेत्रमें कई गणपति-मन्दिर हैं, जिनके सम्बन्धमें अनेक पौराणिक गाथाएँ प्रचलित हैं। यह क्षेत्र इक्कीस गणपति-क्षेत्रोंमेंसे एक है।

पुदुचेरि (पांडिचेरी)--इस स्थानके समुद्रतटपर श्रीगणेशजीका एक मन्दिर है। यह मन्दिर विदेशियोंने बनवाया था। कहा जाता है कि जब इस विनायककी पूजाके लिये भक्त जनताकी भीड़ बढ़ने लगी, तब विदेशी शासकोंने इस मूर्तिको समुद्रमें फेंकवा दिया। दूसरे ही दिन यह मूर्ति उसी स्थानपर स्वतः विराजित हो गयी। इसे देखकर आश्चर्यचकित विदेशी शासकोंने भक्तिपूर्वक यहाँ मन्दिर बनवाया। इन गणेशजीकी अद्भुत महिमाके विषयमें 'भारतियार' ने गाया है।

तंजौर--कुम्भकोणम्से चौबीस मीलपर तंजौर स्टेशन है। बृहदीश्वर-मन्दिर ही यहाँका मुख्य मन्दिर है। इस शिव-मन्दिरके पश्चिम गणेशजीका मन्दिर है।

कोडमुडी--ईरोदके निकट कोडमुडीमें एक अति प्राचीन शिवालय है। उसका पूरा नाम है—तिरुप्पाण्डिकोडमुडी। यह शिवमूर्ति मनुष्यके द्वारा विरचित नहीं है, अपितु एक भूमिस्थ पहाड़ीका उच्च शिखर है। इसी कारण भगवान् शंकरका नाम 'कोडमुडी' है। तमिळ भाषामें 'कोडमुडी' पर्वतके उच्च शिखरका पर्याय है। इस मन्दिरमें स्थित विनायककी मूर्तिका नाम 'कावेरीकान्त विनायक' है (अर्थात् वे विनायक, जो कावेरीको भूतलपर लाये)।

त्रिचिनापल्ली--त्रिशीर्षगिरि आधुनिक (तिरुचिरापल्ली) की पहाड़ीपर तीन शिखर दीख पड़ते हैं। उनमें सबसे ऊँची पहाड़ीपर गणपति विराजमान हैं। उनको वहाँ 'उचिप्पिळ्ळैयार'के नामसे पुकारते हैं; क्योंकि वे सर्वोच्च मन्दिरमें आसीन हैं। इस सर्वोच्च देवताका दर्शन करनेके लिये बड़े परिश्रम और कठिनाईसे पूजा करनेवाले ऊपर पहाड़ीपर चढ़ते हैं। उसी मन्दिरसे पहाड़ीकी निम्नतम सतहपर एक नवाविर्भूत विनायक हैं। ये गणेश सीकर-विनायककी अपेक्षा कहीं अधिक लोकप्रिय देवता हैं; क्योंकि द्वार-मण्डपसे वे भक्तोंको आमन्त्रित करते हैं और जब कभी वे उनके पूजास्थलमें जाते हैं, उनपर अपनी कृपावृष्टि करते हैं।

जम्बुकेश्वर--यह स्थान श्रीरङ्गम्-नगरका एक अङ्ग है। दक्षिणी भारतके पञ्चतत्त्वलिङ्गोंमें जम्बुकेश्वर आपोलिङ्गम् (जलतत्त्व-लिङ्ग) माना जाता है। जम्बुकेश्वर-मन्दिरके प्राङ्गणके बायीं ओर एक फाटक है। उससे भीतर जानेपर भगवती जगदम्बाका मन्दिर मिलता है। यहाँ अम्बाको 'अखिलाण्डेश्वरी' कहते हैं। यह मन्दिर विशाल है। श्रीजगदम्बाके निज-मन्दिरके ठीक सामने गणेशजीका मन्दिर है। इसमें भगवान् शंकराचार्यद्वारा प्रतिष्ठित श्रीगणेशजीकी मूर्ति है। यह मूर्ति इस ढंगसे स्थापित है कि जगदम्बाके ठीक सामने पड़ती है। अम्बाके निज-मन्दिरमें भगवतीकी भव्य मूर्ति प्रतिष्ठित है। यह मूर्ति तेजोदीप्त है। कहा जाता है, यह मूर्ति पहले इतनी उग्र थी कि इसका दर्शन करनेवाला वहीं प्राण त्याग देता था। आद्य शंकराचार्य जब यहाँ पधारे, तब उन्होंने जगदम्बाके उग्र तेजको शान्त करनेके लिये उनके कानोंमें दो हीरकजटित श्रीयन्त्रके कुण्डल पहना दिये और उनके सम्मुख श्रीगणेशजीकी मूर्ति स्थापित कर दी। पुत्रकी मूर्ति सामने होनेसे जगदम्बाका उग्र तेज वात्सल्यके कारण सौम्य हो गया।

रामेश्वरम्--चार दिशाओंके चार धामोंमें रामेश्वर दक्षिण दिशाका धाम है। द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमें भी रामेश्वरकी गणना है। भगवान् श्रीरामने इनकी स्थापना की थी। कहते हैं, भगवान् श्रीराम जब यहाँ पधारे, तब उन्होंने पहले उप्पूरमें श्रीगणेशजीकी प्रतिष्ठा की। फिर रामेश्वरम् जाकर उन्होंने रामेश्वर-स्थापन तथा पूजन किया। रामेश्वर-मन्दिरके दक्षिण श्रीपार्वती-मन्दिरका द्वार है। यहाँ श्रीपार्वतीजीको 'पर्वतवर्द्धिनी' कहते हैं। श्रीपार्वतीजीके मन्दिरकी परिक्रमामें पीछे संतान-गणपति तथा पळ्ळिकोंड पेरुमाल्के मन्दिर हैं। रामेश्वरसे पाम्बन् जानेवाली सड़कपर रामेश्वरसे लगभग डेढ़ मील दूर 'वन-विनायक'-मन्दिर है। इसमें साक्षी-विनायककी मूर्ति है। रामेश्वरधामकी यात्रा करके चलते समय इनका दर्शन किया जाता है।

मदुरा—हलास्यक्षेत्र मदुरामें मीनाक्षी और सुन्दरेश्वर-का एक बहुत बड़ा मन्दिर है। दोनों देवालयोंके प्राकार बहुत लंबे हैं। इस मन्दिरमें विनायककी दिव्य प्रतिमाके

विषयमें एक कथा प्रचलित है। यह मूर्ति एक छोटी चट्टानसे ढकी एक गहरी गुफासे खोदकर निकाली गयी है। कहते हैं कि यह चट्टान एक बड़ा जलाशय खोदते समय विघ्नके रूपमें उपस्थित हो गयी थी। दक्षिणभारतके महान् मन्दिर-निर्माणकर्ता तिरुमलैनायकने मीनाक्षी और सुन्दरेश्वरके लिये तेप्पकुलम् बनानेके उद्देश्यसे इस स्थानमें एक बड़ा जलाशय खुदवाया था। भक्त श्रमिकोंके एक दलके ऊपर इस कार्यका भार सौंपा गया था और राजा सरोवर खुदवानेके कार्यकी देखभाल करता था। उसने उस चट्टानको देखा और श्रमिकोंको आदेश दिया कि चट्टानको हटाते समय बहुत सावधानीसे काम लें। धीरे-धीरे और बहुत सावधानीसे वह चट्टान हटायी गयी और उसके नीचे जो गुफा थी, उसमें यह महान् विनायक-विग्रह पूर्णतः दीप्तिमान् अवस्थामें अवस्थित था। नायक राजाने उस वैभवशाली विग्रहको तत्काल केन्द्रीय मन्दिरमें पहुँचाया। उसने अपने इस अभीष्ट देवताकी प्रतिष्ठाका विशेष आयोजन किया।

तिरुप्परंकुन्नम्—यह मदुरासे पाँच मील दक्षिण है। पर्वतको काटकर यहाँ गुफा बनायी गयी है, जिसमें अति विशाल मन्दिर है। यहाँ निज-मन्दिरमें श्रीकार्तिकेयस्वामीकी एक प्रमुख भव्य मूर्ति है। इनके अतिरिक्त महाविष्णु, शिव-पार्वती, श्रीगणेशजी आदिकी मूर्तियाँ भी मन्दिरमें हैं। यहाँ एक ही मण्डपमें एक पंक्तिमें मयूर, नन्दी तथा मूषककी मूर्तियाँ बनी हैं। कहा जाता है, स्वामी कार्तिकेयका विवाह इसी तीर्थमें हुआ था। इस स्थानसे तीन फर्लांगपर 'शरश्रवण' तालाब है। उसे पवित्र तीर्थ माना जाता है। उसके किनारे श्रीगणेश-जीका मन्दिर है।

वंडियूर तेप्पकुलम्—मदुरासे दो मील दूर वैगै (वेगवती) नदीके दक्षिण यह सुविस्तृत सरोवर है। इसी सरोवरसे वह विशाल गणपति-मूर्ति मिली थी, जो मीनाक्षी-मन्दिरसे सुन्दरेश्वर-मन्दिरमें जाते समय द्वारके सामने ही प्रतिष्ठित है।

तिरुप्पारुणडुराई—माणिक्कवाचकद्वारा निर्मित यहाँका शिवालय अनेक दृष्टियोंसे निराला है। इस मन्दिरमें विनायकमूर्तिकी आराधनाका एक विशेष स्थान है। एक लघु मण्डपमें, जो चार स्तम्भोंसे निर्मित है तथा आच्छादनविहीन है, यह अकेली मूर्ति विराजती है। ये 'वेपिल उकाण्डा विनायकर्' नामसे पुकारे जाते हैं, जिसका अर्थ है—वह विनायक, जिसे सूर्यकी धूप प्रिय लगती है। उस मन्दिरके अधिष्ठातृ-देव और देवीके दर्शनके लिये प्रवेश करनेके पूर्व इस विनायककी पूजा करनी पड़ती है।

कुत्तालम्—तेन्काशी स्टेशनसे साढ़े तीन मीलपर कुत्तालम्-प्रपात है। प्रपातसे थोड़ी दूरपर कुत्तालेश्वर शिव-मन्दिर है। मन्दिरकी परिक्रमामें नटराज, श्रीगणेशजी, सुब्रह्मण्यम् आदिके श्रीविग्रह हैं।

तिरुनेल्वेली (तिन्नेवली)—तेन्काशीसे ४३ मील दूर ताम्रपर्णी नदीके किनारे तिरुनेल्वेली एक अच्छा नगर है। इस नगरका मुख्य मन्दिर नीलप्पुश्वर-मन्दिर है, जिसके एक भागमें शिव-मन्दिर और दूसरे भागमें पार्वती-मन्दिर है। इस मन्दिरके द्वारपर गणेशजीकी मूर्ति है। पार्वतीजीके मन्दिरके उपवनमें दक्षिणामूर्ति, गणेशजी, नन्दी तथा सुब्रह्मण्यम्की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं।

कन्याकुमारी—यह स्थान भारतकी दक्षिणी सीमापर तिन्नेवलीसे साठ मील है। कन्याकुमारीमें, जहाँ अरबसागर, हिंद महासागर तथा बंगालकी खाड़ीके तीनों समुद्रोंका संगम है, यह पवित्र तीर्थ है। समुद्रतटपर जहाँ स्नानका घाट है, वहाँ एक छोटा-सा गणेशजीका मन्दिर घाटसे ऊपर दाहिनी ओर है। लोग गणेशजीका दर्शन करके कुमारीदेवीका दर्शन करने जाते हैं। मन्दिरकी द्वितीय प्राकारके भीतर 'इन्द्रकान्तविनायक'-नामक गणपति-मन्दिर है। इन गणेशजी-की स्थापना देवराज इन्द्रने की थी। कई द्वारोंके भीतर जानेपर कुमारीदेवीके दर्शन होते हैं।

शुचीन्द्रम्—यह स्थान कन्याकुमारीसे उत्तर आठ मील दूर स्थित है। गौतमके शापसे इन्द्रको यहीं मुक्ति मिली थी। यहाँ इन्द्र उस शापसे पवित्र हुए, इसलिये इस स्थानका नाम 'शुचीन्द्रम्' पड़ा। शुचीन्द्रम्-मन्दिरमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इन तीनोंके अलग-अलग मन्दिर हैं। शिव-मन्दिरमें पार्वती, नटराज, सुब्रह्मण्यम् तथा गणेशजी आदिकी प्रतिमाएँ हैं। यहाँके 'मायागणपति', 'शक्तिविनायक' तथा 'वल्लभ-विनायक'के श्रीविग्रह दर्शनीय हैं।

तिरुवदनाई ताल्लुकाके तोंडी-विनायक, मायावरम्के गणेशत्रय (स्थल-विनायक, अगस्त्य-विनायक और कोढी-विनायक), तिरुकदैयूरके अमृतसिद्धि-विनायक, गुड्डुवाचेरीके सिद्धि-गणपति, नेगापट्टम्के हेरम्ब-गणपति आदि श्रीगणेश-स्थलों एवं मन्दिरोंकी तमिळनाडुमें बड़ी ख्याति है।

आन्ध्र, कर्नाटक तथा केरलके कुछ गणेश-स्थल

(लेखक—श्रीवल्लपल्लि भास्कर रामकृष्णमाचार्युलु एवं श्रीमाणिकराव कोतिरकर)

हम्पी—विजयनगर-राज्यकी इस प्राचीन राजधानीको अब 'हम्पी' कहा जाता है। इसका घेरा चौबीस मील है। हम्पीके मध्यमें श्रीविरूपाक्ष-मन्दिर है। यह मन्दिर हॉस्पेटसे नौ मील दूर है। विरूपाक्षके निज-मन्दिरके उत्तरवाले मण्डपमें भुवनेश्वरीदेवीकी प्रतिमा है और उनसे पश्चिम पार्वतीजी विराजती हैं। उनके समीप ही श्रीगणेशजी तथा नवग्रह विराजमान हैं। विरूपाक्ष-मन्दिरसे अग्निकोणमें पास ही ऊँची भूमिपर एक मण्डपमें लगभग बारह हाथ ऊँची बड़े गणेशजीकी मूर्ति है। बड़े गणेशजीसे थोड़ी दूर दक्षिण-पश्चिम एक छोटे मण्डपमें छोटे गणेशजीकी भग्नमूर्ति है। यह स्मरण रखनेकी बात है कि यह हम्पी-नगर दक्षिणके वैभवशाली राज्य विजयनगरकी राजधानी था। दक्षिणके मुसल्मानी राज्योंके सम्मिलित आक्रमणसे यह राज्य ध्वस्त हुआ। आक्रमणकारियोंने उसी समय और पीछे भी वहाँके मन्दिरों तथा मूर्तियोंको नष्ट-भ्रष्ट किया।

कुमारस्वामी—यह संडूरसे छः मीलकी दूरीपर पड़ता है। यहाँ पर्वतपर स्वामिकार्तिकेयका भव्य मन्दिर है। मुख्य मन्दिरके पास हेरम्ब-गणपतिका मन्दिर है। कहा जाता है कि गणेशजी और स्वामिकार्तिकेयमें कुछ विवाद हो गया था। गणेशजीका विवाह पहले हो गया; इससे रुष्ट होकर स्वामिकार्तिकेय कैलास छोड़कर दक्षिण चले आये और यहीं क्रौञ्चगिरिपर उन्होंने अपना निवास बनाया। पीछे स्वामिकार्तिकेयके स्नेहवश भगवान् शंकर तथा पार्वतीजी भी कैलाससे दक्षिण आकर श्रीशैलपर स्थित हुए।

गोकर्ण—समुद्र-तटपर छोटी पहाड़ियोंके बीचमें गोकर्ण एक छोटा नगर है। यह हुबलीसे सौ मील है। गोकर्णमें भगवान् शंकरका आत्मतत्त्वलिङ्ग है। महाबलेश्वर-मन्दिरमें आत्मतत्त्वलिङ्गका दर्शन करके गर्भगृहसे बाहर आनेपर सभा-मण्डपमें गणेश तथा पार्वतीकी प्रतिमाएँ मिलती हैं। महाबलेश्वर-मन्दिरके पास चालीस कदमपर सिद्धगणपतिकी मूर्ति है। इसमें गणेशजीके मस्तकपर रावणद्वारा आघात करनेके चिह्न हैं। इनका दर्शन-पूजन करके ही आत्मतत्त्वलिङ्गके दर्शन-पूजनकी विधि है। इसकी कथा इस प्रकार है—

कहते हैं कि एक बार रावणने कैलासपर तपस्या करके भगवान् शंकरसे आत्मतत्त्वलिङ्ग प्राप्त किया। रावण जब गोकर्ण-क्षेत्रमें पहुँचा; तब संध्या होनेको आयी। रावणके पास आत्मतत्त्वलिङ्ग होनेसे देवता बड़े चिन्तित थे। उनकी मायासे रावणको शौचादिकी तीव्र आवश्यकता हुई। देवताओंकी प्रार्थनासे गणेशजी वहाँ रावणके पास ब्रह्मचारीके रूपमें उपस्थित हुए। रावणने उन ब्रह्मचारीके हाथमें वह लिङ्ग-विग्रह दे दिया और स्वयं शौचादिसे निवृत्त होनेके लिये चला गया। इधर सहसा मूर्ति भारी हो गयी। ब्रह्मचारी बने गणेशजीने तीन बार नाम लेकर रावणको पुकारा; पर वह नहीं आ पाया। और उसके न आनेपर उस ब्रह्मचारीने मूर्तिको पृथ्वीपर रख दिया।

रावण शौचादिसे निवृत्त होकर जब वहाँ आया तो वह बहुत परिश्रम करनेपर भी उस मूर्तिको उठा न सका। खीझकर उसने गणेशजीके मस्तकपर प्रहार किया और निराश होकर लङ्काको चला गया। रावणके प्रहारसे व्यथित गणेशजी वहाँसे चालीस कदम जाकर खड़े रह गये। भगवान् शंकरने प्रकट होकर उन्हें आश्वासन दिया और वरदान दिया कि 'तुम्हारा दर्शन किये बिना जो मेरा दर्शन-पूजन करेगा, उसे उसका पुण्यफल नहीं प्राप्त होगा।' गोकर्णके 'पट्टविनायक' और 'केतकी-विनायक' भी दर्शनीय हैं।

रेजंतल—यह स्थान जहिराबाद रोड (बीदर) के पास है। यहाँका गणेश-मन्दिर पर्वतकी गोदमें स्थित है। ये शिवप्रभु महागणपति अद्भुत चमत्कारी हैं। कहते हैं, शक-संवत् १७२३ पौष शुक्लकी विनायकीचतुर्थीके दिन गणेश-भक्त श्रीशिवराम महाराज चिंतलगिरिने पूजाके समय 'जय सिद्धविनायक' कहकर भूमिपर हाथ रखा। तत्काल श्रीशिवप्रभु महागणपतिकी मूर्ति भूमिसे साकार प्रकट हो गयी। पश्चात्

महाराजने यथाविधि उसकी पूजा की। तभीसे इसकी बड़ी मान्यता है।

अइनविल्लि—प्रसिद्ध शैवक्षेत्र मुक्तीश्वरम्से एक किलोमीटरपर अइनविल्लिमें गणपति-क्षेत्र तथा तीन किलोमीटरपर भगवान् षण्मुखका क्षेत्र है। अइनविल्लि-में स्थित गणपति बड़े प्रसिद्ध तथा प्रत्यक्ष फलदायक हैं।

(फ्रेंच) यानाम्—गोदावरी-तटपर स्थित यहाँका गणपति-मन्दिर प्रसिद्ध है। यह मन्दिर दक्षिणाभिमुख है। यहाँके गणपति भी प्रत्यक्ष फलदायक कहे जाते हैं। साठ वर्ष पूर्व एक साधुने इस गणपति-मन्दिरमें रहकर सैकड़ों रोगियोंको आरोग्य-दान दिया था।

भद्राचलम्—राजमहेन्द्रीसे भद्राचलम् लगभग अस्सी मील है। गोदावरीके किनारे भगवान् श्रीरामका यह प्राचीन मन्दिर है। मुख्य मन्दिरके अतिरिक्त अन्य मन्दिरोंमें हनुमान्, गणेश आदि देवता प्रतिष्ठित हैं।

विजयवाड़ा—राजमहेन्द्रीसे तिरानबे मीलपर बैजवाडा (विजयवाड़ा) एक प्रसिद्ध नगर है। विजयवाड़ामें एक पर्वतपर पुराना जीर्ण-शीर्ण किला है। उसमें चट्टान काटकर कई बौद्धगुफाएँ बनी हैं। विजयवाड़ा नगरके पूर्वोत्तर बड़ी पहाड़ीके पादमूलमें एक छोटी गुफामें श्रीगणेशजीकी मूर्ति है।

कुरूडमडे (कर्नाटक)—मन्दिरका महाद्वार, प्राकार तथा मुखमण्डप विजयनगर-कालका है। मन्दिरमें हरे संगमर्मरकी श्रीसुब्रह्मण्यम्की मूर्ति है। मन्दिरके गर्भगृहमें महागणपतिकी हरे संगमर्मरकी मूर्ति है। इसकी कारीगरी प्रमाणबद्ध एवं सुन्दर है। मूर्तिके आगे एक बड़ा चूहा है।

इडगुंजी (कर्नाटक)—यहाँके पञ्चखाद्यप्रिय महागणपतिकी मूर्ति द्विहस्त तथा सर्पालंकार-भूषित है। ये गणेशजी बालब्रह्मचारी हैं।

कोकड (कर्नाटक)—कोकड-गाँवमें एक मैदानमें एक पेड़के नीचे ये गणेशजी हैं। यहाँके चरवाहे इन गणेशजीको ककड़ीका नैवेद्य चढाते हैं। इनका कोई मन्दिर नहीं बना; क्योंकि गणेशजीने सपनेमें आकर मन्दिर बनानेके लिये मना कर दिया था।

मंगलूर (कर्नाटक)—यहाँके 'शरऊ-गणपति' कर्नाटक एवं केरल राज्योंमें जाग्रत्-देवताके रूपमें प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि इस मूर्तिकी स्थापना एक तान्त्रिकने की थी। यहाँकी विशेष बात यह है कि यहाँपर कुटुम्बीलोग ही गण-हवन करने आते हैं। गणेश-चतुर्थीको यहाँ एक हजार नारियल फोड़े जाते हैं।

कासरागोड—केरलमें मद्रास-मंगलोर रेलवे लाइनपर कासरागोड स्टेशन है। यह स्थान पयस्विनी नदीपर है। श्रीसमर्थ स्वामी रामदास, पुरन्दरदास आदि संत इस स्थानपर आये और रहे थे। इस स्थानके पास ही माधुरे-नामक स्थानपर श्रीमहागणपति-मन्दिर है। कहते हैं, यह प्रतिमा स्वयं उद्भूत है। एक बार एक हरिजन-स्त्री घासके मैदानमें घास काट रही थी। अचानक उसका हँसिया प्रतिमासे जा टकराया। उस समय गणपतिकी प्रतिमा ३×१½ इंच बाहर निकली हुई थी। हँसिया लगनेसे, कहते हैं कि उनके अङ्गसे रक्त बहने लगा। स्त्री अत्यन्त आश्चर्यमें पड गयी और उसने अन्य लोगोंको बुलाया। लोगोंने उसी समय वहाँपर भगवान्का गर्भगृह बना दिया और पूजा प्रारम्भ हो गयी। यह घटना आठ सौ वर्ष पुरानी कही जाती है। तबसे मूर्ति लगातार बढ़ती जाती है। अब वह १०×४½ इंचकी हो गयी है तथा उसने प्रायः समूचे गर्भ-गृहको ढक लिया है।

कर्नाटकमें कुमठाके लवणेश-गणपति, अग्निहोत्र-गणपति और चिंतामणि-गणपति, शिगीके महागणपति, सिद्धापुरके सिद्ध-गणपति और मधुरैके मदनेश्वर-सिद्धि-विनायकका दर्शन भक्तोंको करना चाहिये। कर्नाटक-प्रदेशके श्रीक्षेत्र धर्मस्थल, मुडाजे, कारकल, सेडी, कुणीगल, हलेविद, कडलेकाळु, बेलूर, मुत्तुर, शिरानी, अणेगड्डे, गिब्बलगुड्डे, कोडसाद्री, तंबट्ढे, गिरकेमठ, लंबापुर, उरकेरी, हाल्नगद्दे, अग्रहार, बनवासी, शृङ्गेरी आदि स्थानोंके श्रीगणेश-मन्दिर एवं विग्रह दर्शनीय हैं। भक्तोंको आन्ध्रप्रदेशके द्राक्षाराम तथा आरासवल्लीलाकी गणपति प्रतिमाओंका भी दर्शन करना चाहिये।

गुजरातके गणेश-स्थल

गुजरातमें भगवान् गणेशजीकी बड़ी मान्यता है। गुजरातके कुछ गणेश-मन्दिरोंका विवरण श्रीअरविन्द नर्मदाशंकरजी शास्त्री, श्रीहिम्मतलाल मूलशंकर काव्यशास्त्री और श्रीनर्मदाशंकर त्र्यम्बकराम भट्टद्वारा प्रेषित विवरण एवं अन्य सूत्रोंके आधारपर दिया जा रहा है।

मोढेरा—बेचराजीसे मोढेरा १८ मील दूर है। श्रीमातङ्गीदेवी यहाँका मुख्य देवस्थान है। यहीं श्रीगणेशजीका उप-मन्दिर है। मोढेरा गाँवके दक्षिण श्रीगणेशजीका एक मन्दिर और है। इसमें सिद्धि और बुद्धि-नामक पत्नियोंके साथ श्रीगणेशजीकी मूर्ति है।

सोमनाथ—यह सौराष्ट्रका प्रमुख स्थान है और भगवान् शंकरके द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमें सोमनाथ-लिङ्ग यहीं है। प्राचीन सोमनाथ-मन्दिरके पास श्रीअहल्याबाईद्वारा निर्मित एक अन्य सोमनाथ-मन्दिर भी है, जहाँ सोमनाथ-लिङ्ग भूमिके नीचे है। मन्दिरके घेरेमें ही श्रीगणेशजीका भी मन्दिर है। इसके अतिरिक्त नगरमें भी भगवान् श्रीगणेशका एक मन्दिर है। सोमनाथ-नगरके पास भालकतीर्थ एक स्थान है। यहाँ मोक्ष-पीपल है। कहते हैं, यहाँ पीपलके नीचे बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्णके चरणमें जरा-नामक व्याधने बाण मारा था। चरणोंमें लगा हुआ बाण निकालकर भालकुण्डमें फेंका गया। भालकुण्डके पास ही दुर्गकोटि-गणेशजीका मन्दिर है।

जूनागढ़—सौराष्ट्रके इस प्रसिद्ध नगरमें ही भक्त श्रीनरसीमेहताका घर था। नगरमें रेवतीकुण्डसे आगे मुचुकुन्द-महादेव तथा भवनाथ महादेव हैं। मुचुकुन्द-महादेवकी स्थापना राजा मुचुकुन्दने की थी। उस मन्दिरकी परिक्रमामें श्रीगणेशजीका मन्दिर है।

सायर—यह स्थान नर्मदाके उत्तरतटपर फतेपुरसे चार मीलपर है। यहाँ सागरेश्वर-मन्दिर है। गाँवमें कपर्दीश्वर-मन्दिर है, जिसे नारेश्वर भी कहते हैं। यहाँ श्रीगणेशजीने तप किया था।

सूरत—सूरतमें अम्बादेवीका विशाल मन्दिर है। इसमें जो देवी-मूर्ति है, वह एक स्वप्नादेशके अनुसार चार सौ वर्ष पहले अहमदाबादसे सूरत लायी गयी थी। देवीके दाहिने श्रीगणेशजी और शंकरजी तथा बायीं ओर बहुचरा-देवीकी मूर्ति है।

बड़ोदा—यहाँ कई गणेश-मन्दिर हैं। सावरकर-गणेश-मन्दिरकी मूर्ति मादारकी है। श्रीढुण्ढिराज-गणपतिका मन्दिर शिल्पकला तथा वैभवकी दृष्टिसे बड़ा विख्यात है एवं श्रीविग्रह बहुत भव्य है। नीलकण्ठेश्वर-गणपतिकी रचना भी कलापूर्ण है। सिद्धनाथ-गणपतिके मन्दिर-निर्माणकी विशेषता यह है कि जब भगवान् सूर्य उत्तरायणसे दक्षिणायन और दक्षिणायनसे उत्तरायण जाते समय भूमध्यरेखापर अवस्थित होते हैं, तब उनकी किरणें मूर्तिपर पड़ती हैं। बड़ोदा शहरमें अन्य कई छोटे-छोटे मन्दिर हैं।

गणेश-वट सीसोदरा—यह नवसारी शहरके पास है। यहाँ बड़े-बड़े वटवृक्षके झुण्ड हैं और उनके बीचमें यह एक पक्का बना हुआ मन्दिर है। श्रीगणेशजीकी मूर्ति एक फुट ऊँची है। इसकी सूँड़ बायीं ओर मुड़ी है। आगेके थोड़े भागमें जलाहरीके साथ महादेव हैं। गणेशजीकी मूर्तिके पास पार्वती-माताकी एक प्रतिमा है। इस मन्दिरके आगेके भागमें यहाँ जमीनमें एक पट्ट गड़ा हुआ है, जिससे इसके ऐतिहासिक महत्त्वका पता चलता है।

वलसाड—इस नगरमें एक भव्य गणपति-मन्दिर है। यह मन्दिर बहुत प्राचीन है, जिसका जीर्णोद्धार विपुल धन-राशि लगाकर हालमें ही कराया गया है। यहाँ दाहिनी सूँड़वाली गणेशमूर्ति चमत्कारिक तथा सिद्धि प्रदान करनेवाली है।

खम्भात—यहाँ श्रीगणेशजीका स्वतन्त्र मन्दिर ब्राह्मण-वाड़ामें है, जहाँ श्रीगणेशजीकी मनुष्यके कदकी भव्य प्रतिमा विराजित है। इसके चार हाथोंमें चार फणवाले सर्प हैं इसमें सर्पका यज्ञोपवीत भी है। यह मूर्ति बहुत प्राचीन है।

ध्रांगध्रा—यहाँकी सात फीट ऊँची एकदन्त-मूर्ति एक अखण्ड पत्थरमें उत्कीर्ण है। मन्दिर जोगसर-तालाबके एक किनारेपर है। दूसरे किनारेपर अन्य मन्दिर भी हैं।

गोरज—यहाँके सिद्धि-विनायककी मूर्ति चतुर्भुज है। यह मन्दिर पहलेसे ही एक शमीके पेड़के नीचे है।

अहमदाबाद—भद्रमें यह मन्दिर पेशवाओंके समयका बना हुआ है। भगवान् गणेशकी मूर्ति सिंदूरी रंगकी है। इसकी सूँड दाहिनी ओर है।

धोलका—यहाँ गणेशजीका एक प्राचीन एवं विशाल मन्दिर है। यहाँ गणेशजीकी प्रतिमाके समक्ष अखण्ड दीपक सदैव जलता रहता है।

घलाला—यहाँके मन्दिरकी गणेश प्रतिमा कुआँ

खोदते समय मिली थी। बादमें लिंबडी-नरेशने एक भव्य मन्दिर बनवा दिया।

रामकुण्ड—तापी नदीके किनारे गणेशजीका मन्दिर है। ऐसा कहा जाता है कि कभी ताड़का-वधके बाद भगवान् श्रीरामने यहाँ आकर इनका पूजन किया था।

सेजकपुर—इस ऐतिहासिक ग्राममें पुरातन सभ्यता तथा संस्कृतिके भग्नावशेष हैं, जिनकी खुदाई करते समय विशाल मूर्तियुक्त एक गणेश-मन्दिर भी प्राप्त हुआ है।

मध्यप्रदेशके गणेश-स्थान

मध्यप्रदेशकी आस्तिक जनताकी गणेशजीमें बड़ी आस्था है। स्थान-स्थानपर श्रीगणेशके दर्शनीय स्थल हैं। पं० श्रीनाथूशंकरजी शुक्ल, श्रीमोहरेजी, श्रीनारायणाश्रमस्वामी-जी आदिसे प्राप्त विवरण तथा अन्य सूत्रोंके आधारपर यहाँके गणेश-स्थानोंकी अल्प झलक प्रस्तुत की जा रही है।

खोड़—शिवपुरीके पास खोड़ग्राममें धाय-महादेवका प्रसिद्ध मन्दिर है। यह मूर्ति एक धाय-वृक्षके नीचे भूमिमें पायी गयी थी, इसीसे इन्हें 'धाय-महादेव' कहते हैं। इस मन्दिरका स्थान तीन ओर उमंग नदीसे घिरा हुआ है। मुख्य मन्दिरके सामने गणेशजीकी मूर्ति है।

उज्जैन—द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमें अत्यन्त प्रसिद्ध महाकाल-लिङ्ग यहीं है और महाकालका मन्दिर ही उज्जैनका प्रधान मन्दिर है। महाकालेश्वरकी विशाल लिङ्गमूर्तिके एक ओर गणेशजी हैं, दूसरी ओर पार्वती और तीसरी ओर स्वामिकार्तिक। महाकाल-मन्दिरके पास ही बड़े गणेशका मन्दिर है। यह मूर्ति यद्यपि है तो आधुनिक, किंतु बहुत बड़ी और अत्यन्त सुन्दर है। यहाँके पट्-विनायकके मन्दिर इस प्रकार स्थित हैं—१–मोदी-विनायक—महाकालेश्वरके मन्दिरमें कोटितीर्थपर इमलीके नीचे। २–प्रमोदविनायक (लड्डूविनायक)—विराट् हनुमान्के पास रामघाटपर। ३–सुमुखविनायक (स्थिर-विनायक या थल-महागणपति)—गढ़कालिकाके मन्दिरके पीछे। ४–दुर्मुखविनायक—मङ्गलनाथकी सड़कपर खाकचोके अखाड़ेके पीछे अङ्कपाद (चित्रगुप्तमार्ग)की सड़कके पास। ५–अविघ्न विनायक—खाकचोके अखाड़ेके सामने है, तथा ६–विघ्नविनायक-(विघ्नकर्ता) चिन्तामणि गणेश-मन्दिर स्टेशनके पास बहुत प्रसिद्ध है। इन पट्-विनायकोंके पूजन आदिका बड़ा महत्त्व है।

यहाँ एक गणेश-तीर्थ भी है, जो पूजाभिषेकके लिये रामभ्राता श्रीलक्ष्मणजीद्वारा स्थापित किया गया माना जाता है। उज्जैनमें और भी कई गणेश-मन्दिर हैं।

चिन्तामनगणपति—यह स्थान उज्जैनसे चार किलो-मीटरकी दूरीपर स्थित है। यहाँ गणेशजीका पुराना मन्दिर है, जो अहिल्याबाई होल्करद्वारा निर्मित है। यहाँपर चैत्र महीनेके हर बुधवारको यात्रा लगती है।

नवगढ़—(गोंडवानी)—श्रीतात्याजी विश्वम्भरपंत मोहरेजीने इस मन्दिरका निर्माण करवाया। यह मन्दिर बहुत पुराना है। इसमें श्रीगणेशजीकी एक बड़ी भव्य सिद्धिदायक मूर्ति है। इसी मन्दिरमें एक किनारेपर श्रीकृष्ण-राधा-रुक्मिणीकी तथा अन्य देवी-देवताओंकी मूर्तियाँ स्थापित हैं। मन्दिरके सामने एक बड़ा शमी-वृक्ष है, जिसकी पत्तियाँ गणेशजीकी पूजाके काममें आती हैं।

अमरकण्टक—शोण-नर्मदाके उद्गमस्थल अमर-कण्टकके गहन वनमें महर्षि भृगुका आश्रम है। यहाँ सिद्ध-विनायककी भव्य द्विभुज मूर्ति है। इनके दाहिने-बायें ऋद्धि-सिद्धि अवस्थित हैं। मूर्ति सजीव-जैसी लगती है।

ओंकारेश्वर—अजमेर-खण्डवा-लाइनपर ओंकारेश्वर रोड स्टेशन है। द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमें ओंकारेश्वरकी भी गणना है। श्रीओंकारेश्वरकी मूर्ति अनगढ है। यह मूर्ति मन्दिरके ठीक शिखरके नीचे न होकर एक ओर हटकर है। मूर्तिके चारो ओर जल भरा रहता है। पासमें ही पार्वतीजीकी मूर्ति है। मन्दिरके हातेमें पञ्चमुख गणेशजीकी मूर्ति है।

पगारा—माण्डवगढ़से नर्मदा-प्रवाहके ऊपरकी ओर दस मील दूर यह स्थान है। यहाँ वक्रतुण्ड गणेशजीका मन्दिर है।

राजघाट—चिखल्दाके सामने नर्मदाके दक्षिण तटपर बड़वानी नगरसे यह स्थान तीन मील दूर है। यहाँ अनेकों मन्दिर हैं, जिनमें भगवान् गणपतिका मन्दिर मुख्य और भव्य है।

लोणार—मेहकरसे लोणार पंद्रह मील दूर है। यहाँ हाथीकी सूँड़के समान एक प्रपात एक कुण्डमें गिरता है। इस पवित्र कुण्डमें उतरनेके लिये सीढ़ियाँ बनी हैं। पासमें ही गणेशजी तथा अन्य देवी-देवताओंके बड़े दर्शनीय मन्दिर हैं।

इन्दौर—यहाँ बारह फीट ऊँची विशाल गणेश-मूर्ति है। तैल रंगसे रँगी मूर्ति बड़ी सुन्दर लगती है।

निष्कलङ्केश्वर गणेश—उज्जैनके पास निष्कलङ्केश्वर महादेवके मन्दिरके प्रवेशद्वारमें ही यह गणेशमूर्ति है।

राजस्थानके श्रीगणेश-क्षेत्र

राजस्थान जिस प्रकार अपनी वीरताके लिये प्रसिद्ध रहा है, वैसे ही प्रसिद्ध है अपनी सुदृढ़ धर्मनिष्ठा एवं भक्ति-भावनाके लिये भी। राजस्थानकी आस्तिक जनताका मस्तक भगवान् श्रीगणेशके चरणोंमें सदा ही नत है। श्रीगणेशका राजस्थानी-साहित्यमें स्मरण एवं राजस्थानी भूमिपर गणेश-मन्दिरोंकी अवस्थिति इसके प्रबल प्रमाण हैं। अनेक सहयोगियोंके द्वारा प्राप्त विवरणके आधारपर आगे इन मन्दिरोंका यत्किंचित् वर्णन किया जा रहा है।

जोधपुर—शहरमें गणपतिके मन्दिर, मूर्तियाँ स्थान-स्थानपर दर्शनीय हैं। चाँदपोल दरवाजेके बाहर दरवाजेके सम्मुख रामेश्वरके मन्दिरकी मूर्ति दर्शनीय है। सनावड़ा-गणेशजीकी मूर्ति इतनी स्पष्टरूपसे अङ्कित नहीं है, परंतु प्रत्येक बुधवारको दर्शनार्थियोंकी भीड़ यहाँ रहती है। सोजतियाँ गेटकी छतरीपर हर समय दर्शनार्थियोंकी भीड़ रहती है।

पिचियाक (जोधपुर)—बिलाड़ा नगरके उत्तरकी ओर स्थित यह ग्राम एक अति प्राचीन एवं ऐतिहासिक स्थान है। इस ग्रामके दक्षिण दिशामें राजा बलिका मन्दिर और गजानन्दजीके स्थान दर्शनीय हैं। इस स्थानपर गणेशजीका एक प्राचीन देवालय था, जिसके अवशेषरूपी पत्थर ग्रामके आस-पास यत्र-तत्र बिखरे दीख पड़ते हैं। इस स्थानके गणेशजी बड़े चमत्कारी एवं फलदाता माने जाते हैं तथा प्रायः रात्रि-जागरणका भी यहाँ आयोजन होता है। इस स्थानके आस-पास बिखरे हुए गणेशजीके देवालयकी छोटी-बड़ी कई प्राचीन भव्य प्रतिमाएँ पिचियाक-ग्रामके अन्य स्थानोंपर रखी हुई हैं। इन प्रतिमाओंमेंसे एक बड़ी सुन्दर प्रतिमा इसी ग्रामके पासवाले जसवंतसागर-नामक बाँध (झील)में खोदे गये 'खारोलोंका लाम्बड़ो' नामक अरहटपर रखी हुई है। सम्भव है, गणेशजीकी प्राचीन प्रतिमाएँ अन्य स्थानोंपर भी रखी हुई हों।

घटियाला—जोधपुरके पास इस जगहपर एक प्राचीन पाषाण-स्तम्भ है, जिसपर गणेश-स्तुतिका लेख उत्कीर्ण है। इसका समय सन् ८६२ ई० है। स्तम्भके शिखरपर चार गणेश चार दिशाओंकी ओर मुँह किये पीठसे पीठ सटाकर बैठे हुए हैं।

रायपुर (पाली)—यहाँ गणेशजी महाराजका एक प्राचीन मन्दिर है। गणेशजीकी मूर्ति चमत्कारी होनेसे हजारों नर-नारी यहाँ दर्शनार्थ आते हैं। गणेशजीके मन्दिरके सामने ही एक गणेश-तालाब है। यहाँ प्रतिवर्ष भाद्र-शुक्ल चौथको गणेशजीकी जयन्ती धूम-धामसे मनायी जाती है।

जयपुर—यहाँकी मोता डूँगरीकी मूर्ति दर्शनीय है। यहाँ भी प्रति बुधवारको दर्शनार्थियोंकी भीड़ रहती है। यहाँकी पुरानी राजधानी आमेरके मन्दिरोंमें स्थित गणपतिकी मूर्तियाँ दर्शनीय हैं। गल्ता-तीर्थके शिव-मन्दिरोंमें भी गणपति-की मूर्तियाँ देखनेयोग्य हैं। यहाँके विश्वेश्वर-मन्दिरमें एक अत्यन्त प्रसिद्ध गणेश-प्रतिमा है।

सिद्धगणेश—सवाई-माधोपुर स्टेशनसे पाँच मील दूर एक पर्वतशिखरपर सिद्धगणेशका मन्दिर है। कहा जाता है कि ये गणेशजी मेवाड़के इतिहास-प्रसिद्ध राणा हम्मीरके आराध्यदेव थे।

चौथका बरवाड़ा—सवाई-माधोपुरके बीच इस स्थानसे कुछ दूर पहाड़पर चौथ माताजीका मन्दिर है। वहाँ एक गणेश-मूर्ति है, जिसके आगे विगत कई वर्षोंसे एक अखण्ड-ज्योति जल रही है।

बरुँधन (बूँदी)—आमथूँण-ग्रामके श्रीपञ्चाङ्ग साहको इसका स्वप्नादेश हुआ। साथ ही कुछ चमत्कार भी हुए। अतः उन्होंने बरुँधनमें गणेशजीका मन्दिर बनवा दिया। इसमें उपस्थित गणेशजीके पूजनसे अन्य भक्तोंकी भी कामनाएँ पूर्ण हुईं, अतः क्रमशः जन-सहयोगसे मन्दिरका विस्तार होता गया। मन्दिरके पास एक कुण्ड भी है। इस क्षेत्रका यह प्रसिद्ध मन्दिर है।

रणथम्भौर--सवाई-माधोपुर स्टेशनसे दक्षिण-पूर्वकी ओर गिरि-शृङ्खलाओंसे घिरा भारतीय इतिहासमें सुप्रसिद्ध वीर हम्मीरका रणथम्भौर-दुर्ग पर्वतके ऊपर बना हुआ है । यहाँ लाखों निवासियोंके आराध्य 'सिद्धिदाता भगवान् गजानन'का सुप्रसिद्ध तीर्थ है । मुसलमानोंके बहुत दिनोंतक अधिकारमें रहनेके कारण प्राचीन मन्दिर तो नष्ट कर दिया गया, पर भगवान् गजाननके श्रीविग्रहकी केवल सूँड़मात्र ही पूर्णरूपसे अक्षुण्ण है । दोनों ओर ऋद्धि-सिद्धिकी परम मनोरम प्रतिमाएँ हाथोंमें चँवर लिये शोभित हैं । यह स्थान गणपतिका सिद्धपीठ है । मन्दिर आधुनिक है, पर बड़ा ही भव्य एवं दर्शनीय है । यहाँ सभी प्रकारके मङ्गल-अनुष्ठान और मनः-कामनाएँ सिद्ध होती हैं । राजस्थानकी प्राचीन ख्यालों, वार्ताओं, शिलालेखों तथा ताम्रपत्रोंमें विक्रमकी छठी शताब्दीसे ही अनेक स्थानोंपर इनका भव्य वर्णन मिलता है । आषाढ़ और कार्तिक-मासोंमें खेतोंकी बुवाईके पूर्व यहाँका कृषकवर्ग गणपति-नौतन (निमन्त्रण देने) के लिये सहस्रोंकी सख्यामें नित्य आता है । विवाह-शादियोंके समय तो गणेशजीको नौतनेवालोंका ताँता ही लगा रहता है ।

श्रीकेशवराय पाटण--यह स्थान कोटा-जंक्शनसे पाँच मील दूर है । यहाँ चर्मण्वती (चम्बल) नदीमें विष्णुतीर्थ है । उसके तटपर भगवान् श्रीकेशवरायकी चतुर्भुज मूर्तिका मुख्य पीठ स्थित है । मुख्य मन्दिरके चारों ओर मण्डपमें कई देवताओंके मन्दिर हैं, उनमेंसे एक मन्दिर गणेशजीका भी है ।

उदयपुर--घाटेश्वर-मन्दिरके बाहर तोरण-सदृश दो खंभोंपर गणेशजी एव नारदजीके मन्दिर हैं । ये मन्दिर मेवाड़की उत्कृष्ट शिल्पकृतिके नमूने हैं ।

चित्तौड़गढ़--गणेशपोलके पासकी एव प्रत्येक द्वारपर अङ्कित गणपतिकी मूर्तियाँ दर्शकके मनको अकस्मात् मोह लेती हैं । जिस भूमिपर बार-बार सतियोंने अपने सतीत्वकी रक्षाके लिये जीते-जी आगमें जलकर अपनी कञ्चन-सी कमनीय कायाको भस्मकर अपने नामको अमर कर दिया, वहाँ भी मङ्गलदाता गजाननकी कई मूर्तियाँ दर्शनीय हैं । उदयपुर शहरमें गणेशघाटीकी गणेश-मूर्तियाँ एवं किलेके दरवाजोंपर अङ्कित मूर्तियाँ भी दर्शनीय हैं । शिव मन्दिरोंमें भी गणपतिकी छोटी-बड़ी मूर्तियाँ देखनेयोग्य हैं ।

एकलिङ्गजी--उदयपुरसे नाथद्वारा जाते समय मार्गमें हल्दीघाटी और एकलिङ्गजीका स्थान आता है । एकलिङ्गजीका मन्दिर विशाल है । ये मेवाड़के राजाओंके आराध्यदेव हैं । मन्दिरसे थोड़ी ही दूरपर इन्द्रसागर-नामक स्थान है । सरोवरके पास गणेशजीका एक मन्दिर है ।

गोगुन्दा (उदयपुर)--यहाँसे दो मीलकी दूरीपर गणेशजीका विग्रह स्थित है । यह मन्दिर बड़ा ही सुन्दर है । यहाँपर वर्षमें एक बार गणेशचतुर्थीपर विशाल मेला आयोजित किया जाता है ।

सोहागपुर--इसके पास ही भग्नावस्थामें एक शिव-मन्दिर है । मन्दिरके सभामण्डपके ऊपरी भाग (Bracket) पर उत्कीर्ण नृत्य करती हुई गणेशमूर्ति है । इस मूर्तिके छः हाथ हैं ।

शंकरगढ़--यहाँ अनेक मन्दिर हैं, जिनमें एक जगह नृत्यमुद्रामें एक षड्भुजी गणेश-मूर्ति है ।

जालोर--जालोर-दुर्गकी गणपतिकी मूर्तियाँ दर्शनीय हैं । मकरानेके पत्थरपर बनी हुई मूर्तियाँ देखकर मन-मयूर नाच उठता है । प्राचीन कालकी स्थापत्य-कलाका सुन्दर रूप यहाँके किलेमें दृष्टिगोचर होता है ।

नागौर--लगभग सातवीं शताब्दीमें बने नागौरके दुर्गमें गणपतिकी विशाल मूर्ति दर्शनीय है । यद्यपि पूर्ण देखभालके अभावमें किलेकी मूर्तिका दृश्य इतना मनोरम नहीं रह गया है, तथापि यहाँ प्राचीन कालकी पूजाका स्वरूप अवश्य दृष्टिगोचर होता है ।

भीलवाड़ा--यहाँ श्रीमूलचन्द्र चौयाद्वारा निर्मित श्रीसिद्ध-गणेश-मन्दिरके विग्रह विशेष दर्शनीय हैं ।

इसी प्रकार अलवर, कोटा, सिरोही, बाँसवाड़ा, डूँगरपुर, प्रतापगढ, बीकानेर, पुष्कर, अजमेर आदि स्थानोंपर भी भगवान् गणेशके स्वतन्त्र मन्दिर हैं और कहीं वे श्रीराम-मन्दिर अथवा श्रीशिव-मन्दिरके अङ्गरूपमें भी विराजित हैं । राजस्थानियोंके मध्य (चाहे वे सनातनी हों अथवा जैनी) श्रीगणेशकी बड़ी मान्यता है ।

पंजाब-काश्मीरके गणेश-स्थल

पटियाला (पंजाब)—श्रीनैनादेवीजी, श्रीगौरीदेवीजी, श्रीसत्यनारायणजी आदिके मन्दिरोंमें श्रीगणेशकी सुन्दर मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं।

अचलेश्वर—अमृतसर-पठानकोट लाइनमें बटाला स्टेशनसे चार मीलपर यह स्थान है। यह स्थान भगवान् श्रीगणेशकी लीलास्थली रह चुकी है। मन्दिरके समीप एक सुविस्तृत सरोवर है। यहाँ मुख्य मन्दिरमें शिवलिङ्ग तथा स्वामिकार्तिककी मूर्ति है। उत्तर भारतमें स्वामिकार्तिकका यह एक ही मन्दिर है। कहा जाता है कि एक बार पारस्परिक श्रेष्ठताको लेकर गणेशजी तथा स्वामिकार्तिकमें विवाद हो गया। भगवान् शंकरने इन लोगोंसे पृथ्वी-प्रदक्षिणा करके श्रेष्ठताका निर्णय कर लेनेका निर्देश दिया। इसपर गणेशजीने माता-पिताकी ही परिक्रमा कर ली और वे ही विजयी माने गये। पृथ्वी-परिक्रमाको निकले स्वामिकार्तिकको मार्गमें जब यह समाचार मिला तो उन्होंने अपनी आगेकी यात्रा व्यर्थ समझी और वे वहीं अचलरूपमें समाधिमें स्थित हो गये। पीछे भगवान् शिव पार्वतीजीके साथ वहीं उनसे मिलने आये।

वैजनाथ (काँगड़ा)—वैजनाथके षड्भुज-गणेश यहाँके प्रसिद्ध एक शिव-मन्दिरमें अवस्थित हैं। इनके हाथोंमें वे ही आयुध हैं, जिनका वर्णन श्रीज्ञानदेवने अपने ग्रन्थ भावार्थ-दीपिकामें किया है।

गणेशबल (काश्मीर)—यहाँ गणेशजीके रूपमें पूजित एक विशाल स्वयम्भू-शिला है।

हरिपर्वत—यह स्थान श्रीनगर (काश्मीर)के पास है। यहाँ गणपतिका विग्रह एक टीलेके नीचे है। इनका नाम 'भीमस्वामी' है। इसमें गणेशजीका मस्तक स्पष्ट दीखता है।

गणेशघाटी—यहाँ एक अति प्रसिद्ध स्वयम्भू-गणेश-मूर्ति है। यहाँ प्रकृतिके प्रभावसे एक चट्टानका आकार गणेशजी-जैसा हो गया है, जिसमें उनकी सूँड लटकी दीखती है।

अमरनाथ—यहाँ जो बर्फके लिङ्ग बनते हैं, उनमें एकको 'पार्वती' एवं दूसरेको 'गणेश' कहा जाता है।

नेपालके गणेश-स्थल

जनकपुर—जनकपुरमें विशेष प्रख्यात दो मन्दिर हैं। एक टीकमगढ़की रानीका बनवाया हुआ जानकीजीका नौलखा-मन्दिर तथा दूसरा नेपाल-नरेशका बनवाया हुआ स्वर्ण-शिखरवाला राम-मन्दिर। इसी राम-मन्दिरके घेरेमें गणेशजीकी भी सिद्ध प्रतिमा है।

फुलहर—जनकपुरसे दस मील दक्षिण यह स्थान है। जहाँ जानकी-रामका प्रथम दर्शन पुष्पवाटिकामें हुआ था और सीताने गिरिजाकी स्तुति भी की थी। इसी स्थानपर गणेशजीका भी विग्रह है।

भाटगाँव—यह काठमाण्डूसे आठ मीलकी दूरीपर है और प्राचीन मेवाड़-राजवंशकी तीन राजधानियोंमेंसे एक है। यहाँ देवी भवानी आदि कई दूसरे मन्दिर भी बड़े आकर्षक हैं। यहाँका सूर्यविनायक-गणेशका मन्दिर अत्यन्त भव्य है। मन्दिरके समक्ष एक स्तूप है, जिसके सिरेपर कमल बना है। कमलके ऊपर गणेशजीका वाहन चूहा है। इसकी बायीं ओर घंटा है, जिसके बगलमें कई क्षुद्र घण्टिकाएँ हैं।

गोर्खा—पश्चिम नेपालके इस स्थानपर गुरु गोरखनाथजीका एक विशाल मन्दिर है। इसके पास ही गणेशजीका मन्दिर है, जो बड़ा प्रसिद्ध है। नेपालके प्रसिद्ध गणपतियोंमेंसे ये एक माने जाते हैं। गोर्खा-क्षेत्रके निवासी इन्हें 'विजय-गणपति' या 'कामना-गणेश' भी कहते हैं।

उत्तरप्रदेशके गणेश-स्थल

गाणेश्वरी शिला (टिहरी गढ़वाल)—इस क्षेत्रमे एक गाणेश्वरी शिला है। वह लाल रंगकी है एवं इसका आकार हाथी-जैसा विशाल है।

सोमद्वार (सोम-प्रयाग)—यह स्थान केदारनाथ-के मार्गमे त्रियुगी-नारायणके पास पड़ता है। यहाँ सोमनदी मन्दाकिनीमे मिलती है। पुल-पार एक मीलपर छिन्नमस्तक गणपतिका मन्दिर है। महादेवजीने गणेशजीका सिर भ्रमसे यहीं काटा था और पीछेसे हाथीका सिर लगाकर उन्हे जीवित कर दिया। यह स्थान भी इसीलिये तीर्थ बन गया।

केदारनाथ—बदरीनाथके यात्री केदारनाथ प्रायः जाते ही हैं। यह मन्दिर अत्यन्त प्राचीन है। लोगोका कहना है कि यह मन्दिर पाण्डवोके समयका बना हुआ है। मुख्यद्वारपर पहले गणेशजीका पूजन होता है और इसके बाद यात्री मन्दिरके अंदर जाते हैं।

काँड़ी चट्टी—हरिद्वारसे काँड़ी ४५वें मीलपर है। काँड़ी चट्टीसे कुछ दूरपर शुकदेव और गणेशजीके दर्शन होते हैं।

कुबेरशिला—इस रमणीक स्थानसे सुन्दर हिमाच्छादित श्वेत पर्वत-माला दिखायी देती है। यहाँ गणेशजीका एक छोटा-सा मन्दिर है। यहाँसे बदरीनाथके मन्दिरके भी दर्शन होते हैं।

बदरीनाथ—भारतके चार प्रधान धामोमेसे यह एक है। श्रीबदरीनारायणजीकी मूर्ति काले पत्थरकी बनी है। पासमें उसी सिंहासनपर नर-नारायण, कुबेर, उद्धवजी, गरुड़जी और लक्ष्मीजी हैं। पासमे ही गणेशजी और वीणा लिये हुए नारदजी विराजमान हैं।

गणेशगुफा—बदरीनाथसे २ मील दूर भाणा-ग्रामके निकट, व्यासगुफाके समीप ही गणेश-गुफा है। यहाँ श्रीगणेशकी अनगढ़ आकृतिस्वरूप एक पाषाण है। कहते हैं, यहीं व्यासद्वारा वर्णित पुराणोको श्रीगणेशने लिपिबद्ध किया था।

आदिबदरी—यहाँके मन्दिरमे भी श्रीगणेश-विग्रह है। यह प्रतिमा काले पाषाणकी है तथा कलाकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है। जनश्रुतिके अनुसार यह श्रीआद्य शंकराचार्यजीद्वारा स्थापित है।

हरिद्वार—यहाँ गणेशघाट है, जहाँ गणेशकी एक विशालकाय मूर्ति है।

वृन्दावन—यहाँ श्रीमोटागणेशका मन्दिर है तथा श्रीकात्यायनीमन्दिरका श्रीसिद्धगणेशका श्रीविग्रह दर्शनीय है।*

अयोध्या—यहाँ श्रीगणेशजीका कोई स्वतन्त्र मन्दिर नहीं है। मणिपर्वतके दक्षिण एक गणेश-कुण्ड है। वहीं पासमें सहस्रशीर्षा-मन्दिर और गणेश-मन्दिरके अलग-अलग भग्नावशेष भी हैं, जिन्हे यवनोंने धराशायी कर दिया था। पुराने लोग बतलाते हैं, उस गणेश-मन्दिरकी प्रतिमा वही है, जो आजकल कैथाना मुहल्लेमें बड़ी सड़कके पास एक पीपलके पेड़की जड़पर रखी है। मूर्ति-विशेषज्ञोका कहना है कि यह गणेश-प्रतिमा डेढ़ हजार वर्षसे भी पुरानी है। वैसी ही एक प्रतिमा भरत-कुण्डपर थी, जिसे कोई विदेशी पर्यटक दो-तीन वर्ष पहले चुरा ले गया। नागेश्वरनाथ-मन्दिर और सीता-कुण्डपर भी एक गणेश-प्रतिमा है, जो लगभग चार-पाँच सौ वर्षकी है। हनुमानगढ़ीसे थोड़ी दूरपर अयोध्यानरेशके महलमें एक पद्ममन्दिर है, जिसमें गणेशजीका भी एक मन्दिर है।

चित्रकूट—यहाँ चित्रकूट एव करवीके बीच गणेशकुण्ड एवं गणेशजीका एक प्राचीन मन्दिर है।

प्रयाग—ऐसे तो सिद्धिसदन गजवदन विनायककी बहुत-सी मूर्तियाँ प्रयागमें जगह-जगहपर स्थापित हैं, किंतु महामना मालवीयनगर और झंझरियापुलकी विशाल मूर्तियाँ अपने ढंगकी निराली ही हैं। इन दोनों मूर्तियोंसे भी अधिक भव्य मूर्ति गङ्गाके किनारे कमलनालतीर्थ तथा दशाश्वमेध महादेवके संनिकट प्राचीन, बहुत बड़ी, बहुत सुन्दर 'बड़े गणेशजी'के नामसे पुकारी जाती है। प्रयागको 'ओंकार-गणेश-क्षेत्र' कहा जाता है।

वाराणसी—प्रसिद्ध अन्नपूर्णा-मन्दिरकी पश्चिमी गलीकी दाहिनी मोड़पर सर्वफलप्रद श्रीढुण्ढिराज गणेश विराजमान हैं। काशीके समस्त विनायक-विग्रहोंमे सर्वाधिक पूज्य एवं श्रेष्ठ स्थान इन्हे ही प्राप्त है। काशी-निवासके लिये इनकी कृपा नितान्त अपेक्षित मानी जाती है।†

गोरखपुर—यहाँके प्रसिद्ध श्रीगोरखनाथ-मन्दिरमें श्रीगणेशभगवान्‌का नव-प्रतिष्ठित विग्रह दर्शनीय है।

पडरौना—गोरखपुरसे पैंतालीस मील दूर इस स्थानपर गणेशजीका एक छोटा-सा, किंतु स्वतन्त्र तथा सिद्धिप्रदायक मन्दिर है।

---

* श्रीसिद्धगणेशका विस्तृत विवरण इसी अङ्कमें अन्यत्र देखना चाहिये।

† काशीके विनायक-विग्रहोंका विस्तृत परिचय इसी अङ्कके पृष्ठ ४४८–४५० पर दिया जा रहा है।

बिहार-प्रान्तके गणेश-स्थल

बिहारशरीफ—यहाँके 'बड़े मन्दिर'में अन्य देवी-देवताओंके साथ भगवान् गणेशकी संगमर्मरकी बनी हुई एक आकर्षक प्रतिमा है। यहाँका दूसरा मन्दिर चँदियाहा-गणेशजीका है। यद्यपि इस मन्दिरकी प्रतिमा कई बार चोरी गयी, तथापि श्रद्धालु भक्तोंने हर बार नव-निर्मित प्रतिमा स्थापित करवायी। यह जनताकी श्रद्धाका द्योतक है।

सोहसराय—यहाँ बुढ़वा-गणेशजीका एक भग्न मन्दिर है। यहाँ मेला भी लगा करता है। यहाँका दूसरा मन्दिर जवनका गणेशजीका है, जो कई सौ वर्ष पुराना है।

गया—श्रीरामशिलाके समीप भगवान् श्रीगणेशका अति मनोहर मन्दिर है। यहाँका श्रीविग्रह अतीव भव्य और सौन्दर्यपूर्ण होनेके कारण दर्शकोंको अपनी ओर आकृष्ट करता रहता है।

गणेश-स्थान, मौंझा—हथुआ रेलवे स्टेशनसे तीन मील दूर यह श्रीगणेशजीका एक स्वतन्त्र मन्दिर है, जो हथुआनरेश श्रीकृष्णप्रताप शाहीका बनवाया हुआ है। यहाँ मेला भी लगता है।

बड़का-गाँव—सीवानसे तीन मीलकी दूरीपर स्थित इस ग्राममें श्रीगणेशजीका एक स्वतन्त्र मन्दिर है। यहाँ दूर-दूरसे दर्शनार्थी आते हैं।

घडरम—यह ग्राम सीवानसे दक्षिण-पूर्वके कोटेपर लगभग दो मीलपर है। यहाँ श्रीगणेशजीके विशाल एव प्राचीन मन्दिरके भग्नावशेष हैं। यहाँ श्रीगणेशजीकी विशाल काले पत्थरकी बनी हुई एक प्राचीन मूर्ति है।

बेदौल—मुजफ्फरपुरसे सत्रह मीलपर जनाढ़-बेदौल-नामक ग्रामसे दक्षिण ओर एक सरोवर है। उस सरोवरसे आजसे लगभग सौ वर्ष पूर्व बहुत-सी गुप्तकालीन मूर्तियाँ—शंकर, नारायण एव शेषशायीकी निकली हैं। उसीमें एक भव्य प्रतिमा गणेशजीकी भी है।

देकुली—सीतामढ़ीसे बारह मीलपर भुवनेश्वरनाथ महादेवका स्थान है। यहाँपर एक मन्दिर स्थूलकाय गणेशजी-का भी है।

कन्हौली गजपति—सीतामढ़ीसे बारह मील दक्षिण इस गाँवमें एक ब्राह्मणके यहाँ २५० वर्षोंसे पूजित एक भव्य गणेश-विग्रह है, जो अत्यन्त मनोहारी है।

पुनौरा—यह स्थान सीतामढ़ीसे तीन मील पश्चिम है। कुछ लोगोंकी मान्यताके अनुसार यहीं भूमिसे जानकीजी प्रकट हुई थीं। यहाँ श्रीमहादेव-मन्दिरमें एक भव्य गणेश-विग्रह है।

राजनगर—यहाँ गणेशजीका एक अत्यन्त मनोरम, भव्य एवं विशाल मन्दिर है, जिसे दरभंगा नरेश-रामेश्वर-सिंहने बनवाया है। पासमें ही एक सरोवर भी है। यह दरभंगा-जयनगर लाइनमें पड़ता है। यहाँ स्टेशन भी है।

वासुकिनाथ—वैद्यनाथधामसे अट्ठाईस मीलकी दूरीपर वासुकिनाथ महादेव हैं। यहाँपर श्रीगणेशजीका एक भव्य विग्रह है। बिहारमें वैद्यनाथधामके बाद वासुकिनाथकी ही अधिक प्रसिद्धि है।

सीतामढ़ी—रक्सौल-दरभंगा रेलवे लाइनपर सीतामढ़ी स्टेशन है, जहाँ भगवती सीताका प्राकट्य हुआ था। यहीं एक घेरेके भीतर श्रीसीताजीका मन्दिर है। मुख्य-मन्दिरके पास श्रीगणेशजीका मन्दिर है।

अजगैवीनाथ—हवड़ा-क्यूल लाइनपर भागलपुर जंक्शनसे पंद्रह मील दूर सुल्तानगंज स्टेशन है। स्टेशनसे थोड़ी दूर उत्तर जहाँगीरा गाँवके पास गङ्गाजीकी बीच धारामें एक चट्टानपर 'अजगैवीनाथ'-महादेवका मन्दिर है। कहा जाता है कि यहीं जह्नुऋषिका आश्रम था। आस-पास और भी कई पुराने मन्दिर हैं। एक ओर चट्टानपर काटकर गणेश, सूर्य, विष्णुभगवान्, देवी तथा हनुमान्जी आदिकी मूर्तियाँ बनायी गयी हैं।

वैद्यनाथधाम—यह हवड़ा पटना लाइनपर जसीडीह स्टेशनके पास है। श्रीवैद्यनाथ-लिङ्ग द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमेंसे एक है। श्रीवैद्यनाथ-मन्दिरके घेरेमें ही अनेक मन्दिर हैं, जिनमें एक मन्दिर भगवान् श्रीगणेशका भी है।

श्रीमहादेव सिमरिया—यह स्थान क्यूल-गया लाइनपर स्थित शेखपुरा स्टेशनके पास है। इस स्थानपर धनेश्वरनाथ महादेवका विशाल मन्दिर है। मुख्य मन्दिरके अतिरिक्त यहाँ श्रीगणेशजीका भी एक प्रसिद्ध स्थान है।

राजगृह—यह एक बौद्ध-तीर्थस्थल है। यहाँ विपुलाचल-पर्वतके दक्षिणमें एक सुन्दर गणेश-मन्दिर है। इनके सिवा शाहाबाद जिलेके अन्तर्गत रामगढ़, मसाढ़ तथा राँची-जिलेके जगरनाथपुर और भागलपुर-उचैठाके श्रीगणेश-विग्रह दर्शनीय है।

उत्कल-प्रदेशके श्रीगणेश-सम्बन्धी तीर्थ, मन्दिर एवं प्रतिमाएँ

प्राचीनकालसे उत्कल-प्रदेश धर्मक्षेत्रके रूपमे प्रख्यात रहा है। उस प्रदेशमे पञ्चदेवोंके पाँच प्रसिद्ध क्षेत्र हैं। भुवनेश्वर शैवक्षेत्र, पुरी वैष्णवक्षेत्र, कोणार्क सौरक्षेत्र जाजपुर (विरजा) शाक्तक्षेत्र एवं महाविनायक गाणपत्यक्षेत्रके रूपमे प्रसिद्ध है। इस प्रकार पाँच प्रसिद्ध क्षेत्रोंसे समन्वित होनेका महान् गौरव उत्कल-प्रदेशको प्राप्त है।

महाविनायकक्षेत्र कटक-जिलेमें हरिदासपुर स्टेशनसे चार मीलकी दूरीपर अवस्थित है। यहाँ महाविनायकका भव्य मन्दिर एवं तीर्थ है। कहा जाता है कि जब रावण कैलाससहित सपरिवार भगवान् शंकरको उठाकर लङ्का ले जा रहा था, तब भगवान् शंकर यहाँ कुछ देर विश्राम-के लिये रुके थे। यहाँ महाविनायकका मन्दिर एवं क्षेत्र होनेके कारण यह स्थान 'महाविनायक'-नामसे ही प्रसिद्ध हो गया है।

श्रीजगन्नाथपुरी—यह भारतके चार प्रधान धामोंमेंसे एक है। श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरमे कई गणेश-विग्रह हैं, जो इस प्रकार हैं—

(क) कर्णाटक-गणपति—जगन्नाथ-मन्दिरके अन्त-र्गृहके पश्चिमके प्रवेश-पथमे एक रमणीय मन्दिरके अंदर श्रीकर्णाटक-गणेशजीकी मूर्ति विराजमान है। ये गणेशजी 'उच्छिष्टगणेश' अथवा 'भण्ड-गणपति'के नामसे प्रसिद्ध हैं। इनकी स्थापना प्रतापी राजा पुरुषोत्तम देव गजपतिने सम्भवतः ५०० वर्ष पूर्व कर्णाटक-विजयके प्रतीकके रूपमे की थी।

(ख) नृत्यगणपति—श्रीजगन्नाथ-मन्दिरके प्राङ्गणमे माता विमलादेवीजीके मन्दिरके सामने सुरम्य मन्दिरमे रमणीय नृत्यगणेशजीकी मूर्ति विराजमान है। ऐसी मान्यता है कि राजा अनङ्ग भीमदेव इस सुंदर गणेश-प्रतिमाके प्रतिष्ठाता है।

(ग) कल्पगणपति—श्रीजगन्नाथ-मन्दिरके प्राचीनतम कल्प-वृक्षके नीचे कल्प-गणपतिजी स्वतन्त्र मन्दिरमे विराजमान हैं। स्वयं ब्रह्माजीने इन गणेशभगवान्‌के पूजनोपरान्त भगवान् श्रीजगन्नाथके दर्शन किये थे।

(घ) चारगणपति—१०४०ई०के लगभग श्रीअनन्तवर्म चोडगंगदेवने जगन्नाथपुरीके मन्दिरको दूसरे ढंगसे बनवाना शुरू किया और उसी दिन उन्होंने चारगणपति-विग्रहकी स्थापना की। यहाँ ज्येष्ठ पूर्णिमाको विशेष उत्सव होता है। इस दिन श्रीजगन्नाथजी, सुभद्रा तथा बलरामजीकी स्नान-यात्रा होती है। ये श्रीविग्रह स्नानमण्डपमे ले जाये जाते हैं। वहाँ उन्हें १०८ कलशोंके जलसे स्नान कराया जाता है। स्नानके पश्चात् भगवान्‌का गणेशवेषमे शृङ्गार होता है। कहा जाता है कि इस अवसरपर श्रीजगन्नाथजीने एक गणेश-भक्तको गणेशरूपमें दर्शन दिया था। इसके पश्चात् पंद्रह दिनोंतक मन्दिर बंद रहता है।

(ङ) पञ्च-विनायक—पुरी-नगरके उत्तरमें सिद्ध हनुमान्‌जीके मन्दिरमे पञ्च-मस्तक-विशिष्ट गणेशजीका भव्य विग्रह है, जो आद्य शंकराचार्यद्वारा स्थापित है।

(च) मणिकर्णिका-गणेश—पुरीके कपाल-मोचन महादेवजीके प्राङ्गणमे मणिकर्णिका-कुण्ड तथा मणिकर्णिका-गणेशजीके अति मनोरम विग्रह स्वतन्त्र मन्दिरोंमें विराजित हैं। यहाँका पूजा-विधान आथर्वणीय 'गणेशकल्प'के अनुसार होता है।

पुरीमें 'सिद्धविनायक'का प्रसिद्ध मन्दिर भी है, जिसमे सिद्धविनायककी लगभग आठ फीट ऊँची दर्शनीय मूर्ति है।

पुरीके निकट ही उत्कल-प्रदेशकी वर्तमान राजधानी भुवनेश्वर है, जो कभी मन्दिरोंके नगरके रूपमे प्रसिद्ध रही है। इस नगरके प्राचीन भागमे तथा उसके आस-पास अनेकों मन्दिर एवं प्राचीन मन्दिरोंके भग्नावशेष हैं। भुवनेश्वरके सभी मन्दिरोमे पार्श्वदेवताके रूपमे गणेशजीकी विविध प्रतिमाएँ मिलती हैं। यहाँके प्रसिद्ध लिङ्गराज-मन्दिर (११वीं शताब्दी ई०)मे सिंहद्वारसे प्रवेश करते ही सबसे पहले भगवान् गणेशकी लगभग दस फीट ऊँची विशालकाय प्रतिमाके दर्शन होते हैं। मूर्तिकला, स्थापत्यकला, केशविन्यास, अलंकरण आदिकी दृष्टिसे यह भुवनेश्वर-प्रतिमा शिल्पका सुन्दर नमूना है। ध्यानमन्त्रके अनुसार यह मूर्ति 'कपिलगणपति'की है, परंतु यह 'एकाम्रगणपति'के नाम-से प्रसिद्ध है। श्रीगणेशकी बिल्कुल ऐसी ही एक विशाल मूर्ति भारतीमठके गणपति-मन्दिरमे भी है। भुवनेश्वरसे कुछ दूर धौली-पहाड़ीके नीचे स्थित गणेश-मन्दिरकी प्रतिमा आकार-प्रकार-शिल्पादिमे लिङ्गराज-मन्दिरमे स्थित श्रीगणेश-प्रतिमाके समान ही है। भुवनेश्वरकी पश्चिम दिशामे लगभग पाँच मीलकी दूरीपर उदयगिरि-नामक दर्शनीय पहाड़ी स्थान

है। यहाँ जैनधर्मसे सम्बन्धित अनेक महत्त्वपूर्ण पर्वतीय गुम्फाएँ भी हैं। उन्हींमें एक गणेश-गुम्फा भी है। इस गुम्फाके अदर दीवारमे गणेशकी सुन्दर मूर्ति उट्टङ्कित है।

भुवनेश्वरमें मुक्तेश्वरका बालुका-प्रस्तरसे निर्मित मन्दिर अत्यन्त सुन्दर है एवं भारतके अत्यन्त प्राचीन तीन मन्दिरोंमे इसकी गणना होती है। इसका निर्माण सन् ८०० एवं १०६० ई० के बीच हुआ। इस मन्दिरमे नृत्यगणेशकी अष्टभुजा मूर्ति है। इस नृत्यमुद्रामें गणेश सबसे ऊपरके दो हाथोंमें सिरके ऊपर सर्पको पकड़े हुए हैं। शेष छः हाथोंमेंसे दो हाथ अब गायब हैं। अवशिष्ट चार हाथोंमें मोदक, कुठार, भग्न-गजदन्त एवं कमल हैं। इस प्रतिमाकी बायीं ओर एक सेवक खड़ा हुआ मँजीरा (झाँझ) बजा रहा है तथा दायीं ओर खड़ा दूसरा सेवक अङ्कय-मृदङ्गपर थाप दे रहा है।

परमेश्वर-मन्दिर (६५०ई०) की गणना भुवनेश्वरके अति प्राचीन मन्दिरोंमें होती है। यह अतिशय अलंकृत-शैलीमें निर्मित सुन्दर मन्दिर है। इसकी दीवारोंके आलेमे विभिन्न देवी-देवताओंकी मूर्तियाँ हैं। ऐसे ही एक आलेमें शिव-पार्वतीके साथ गणेशकी सुन्दर छोटी-सी मूर्ति है। यह मूर्ति देवीवाहन सिंह एवं शिववाहन वृषके मध्यमे स्थित है। इसी मन्दिरके जगमोहनमे शिवचरितके दृश्य प्रतिमा-शैलीमे उट्टङ्कित हैं। एक दृश्य है—रावणद्वारा शिव-परिवारको कैलाससहित उठाकर ले जानेका। उस दृश्यमें कुठार उठाये हुए आतङ्कित गणेशका अङ्कन हुआ है। उसी मन्दिरकी चारदीवारीकी पूर्व दिशाकी दीवारमे शिव-विवाहका दृश्य उट्टङ्कित है। उस प्रतिमा-दृश्यमे शिवकी दाहिनी ओर अग्निदेव दोनो ओर ज्वाला उगलते हुए बैठे हैं तथा अग्निके नीचे गणेशकी लघुकाय प्रतिमा है।

भुवनेश्वरके शैव-मन्दिरोंमे नटराज शंकरकी अनेक प्रतिमाएँ हैं। प्रत्येक नटराज-प्रतिमाके साथ उसकी दाहिनी ओर गणेशकी प्रतिमा है। मुक्तेश्वर-मन्दिरके प्राङ्गणमे अवस्थापित नटराजकी विशाल प्रतिमा विशेषरूपसे अवलोकनीय है। इन प्रतिमाओंके साथ गणेश दाहिने हाथमे मूलकन्द एवं बायें हाथमे मोदकपात्र (जिसपर गजाननका सूँड टिका हुआ है) धारण किये हुए दिखाये गये हैं। परमेश्वर-मन्दिर-वर्गकी नटराज-प्रतिमाओंके साथ गणेशकी प्रतिमा नहीं है।

परशुरामेश्वरके जगमोहन एवं वैताल-मन्दिर (७७५ ई०) की दीवारोंके आलेमे सप्तमातृकाओंके साथ गणपतिकी प्रतिमा मिलती है। यहाँ गणेशके हाथोंमे कुठार, मोदक, अक्षमाला एवं मूलक-कन्द है। प्रतिमा मूषकरहित है। वैताल-मन्दिरमे गणेश-प्रतिमाके नीचे आधारपर स्थित पूजापात्रमे दो कटहल, मोदक एवं मध्यमे पुष्प रखे हुए हैं।

भरतेश्वर-मन्दिरके द्वारका टूटा हुआ ऊपरी भाग (करगहना) उड़ीसाके सरकारी म्यूजियममे सुरक्षित है। इसपर सजावटके लिये उत्कीर्ण मूर्तियोंमे सिद्ध, विद्याधर एवं तपस्वीगण गणेशको प्रणाम करनेके लिये शीघ्रतापूर्वक आते हुए दिखाये गये हैं।

गणेशके मन्दिर एवं तीर्थ उड़ीसामें प्रायः सर्वत्र ही मिल जाते हैं, जिननेसे कुछका परिचय दिया जा रहा है—

नइगुआ—पुरी-जिलेके काकटपुर थानाके पास नइगुआ-नामक ग्रामके मन्दिरमे भोगद-गणेशकी विचित्र मूर्ति पूजित होती थी। किंतु सम्प्रति वहाँ एक हाथीकी मूर्ति पूजित होती है। साथ ही पूजाके समय भोगद-गणनाथका ध्यान भी किया जाता है।

गोप—यह स्थान पुरीसे कुछ दूर है। ऐतिहासिक तथ्योंसे विदित होता है कि राजा भानुदेवने अपने पुरोहित वामदेव-याजिसे एक महागाणपत्य-यज्ञ करवाया था। यज्ञकी समाप्तिके बाद यहाँ ब्राह्मणोंको गणेशभगवान्‌की खदिरकाष्ठकी मूर्ति दानमे दी थी। यहाँ खदिर-गणपतिकी पूजा प्रचलित है।

कटक—यहाँ नगरकी कालीगलीके पास वरद-गणनाथके नामपर एक मुहल्ला और मन्दिर है, जिसमें गणेशजीकी प्राचीन मूर्ति विराजित है। महाराष्ट्र-शासनकालमे श्रीरघुजी भोसलेने इनकी सेवा-पूजाके लिये जमीन तथा अर्थकी व्यवस्था की थी।

गणेश-घाट-गणेश—प्राचीन कालमें कटकके श्रीनगरकी रक्षाके लिये मर्कटकेसरीद्वारा काठयोड़ि नदीपर प्रस्तर-बाँधका निर्माण हुआ था। उक्त महान् बाँधके निर्माणमे विघ्न-विनाशके लिये वहीं श्रीगणेशजीकी मूर्ति स्थापित हुई थी और गणेश-घाट भी बनवाया गया था।

महाविनायक पर्वत—यहाँ उत्कल प्रान्तका प्रधान गाणपत्य-पीठ है। यह स्थान कटक जिलेमें चण्डिखोल पर्वतमालान्तर्गत है। यहाँपर महाविनायक श्रीगणेशजीका सुन्दर मन्दिर है। मूर्तिकी सेवा-पूजा उड्डामरेश्वर-महातन्त्रके अनुसार होती है।

गुहा-गणपति—उत्कलके उदयाचल-पर्वतमे प्राचीनतम गुहा-मन्दिर विद्यमान हैं। वहाँकी गणेश-गुम्फा अति प्राचीन है। इसमे गाणपत्य-सम्प्रदायकी प्राचीन गणेशमूर्तियाँ प्रतिष्ठित थीं; किंतु सम्प्रति ये मूर्तियाँ हटा दी गयी हैं।

याजपुर—हवड़ा-वाल्टेयर लाइनपर कटकसे चौवालीस मील पहले ही याजपुर-क्योझर-रोड स्टेशन है। याजपुर नाभि-गया-क्षेत्र माना जाता है। यहाँ श्राद्ध-तर्पण आदिका महत्त्व है। कहते हैं कि यहाँ पहले ब्रह्माजीने यज्ञ किया था। यहाँ वैतरणी-नदीके घाटपर मन्दिर हैं। इनमेंसे एक मन्दिरमे श्रीगणेशजीकी सुन्दर मूर्ति है।

धेनकानल जिलेमें 'कविलास'-नामक स्थानमें श्रीगणेशका सुन्दर महिमाशाली मन्दिर है। बहरामपुर जिलेमें बहरामपुरसे दक्षिण दिशामें ७-८ मीलकी दूरीपर 'पञ्चम' नामक महत्त्व-पूर्ण गणेशतीर्थ है। यहाँके मन्दिरकी गणपति-प्रतिमा 'पञ्चम गणेश' के नामसे प्रसिद्ध है। कोरापुट जिलेमें कोरापुटसे दक्षिण दिशामें लगभग २८ मीलकी दूरीपर नन्दपुर-नामक रमणीय पर्वतीय स्थान है। यहाँ केवल एक कृष्ण-प्रस्तर-खण्डसे निर्मित गणेशकी लगभग दस फीट ऊँची विशालकाय प्रतिमा एवं भव्य मन्दिर है। कहते हैं कि इस मूर्तिकी प्रतिष्ठापना चन्द्रगुप्त विक्रमार्कके द्वारा हुई थी। गणेश-जन्म-चतुर्थीके दिन यहाँ भारी मेला लगता है। इसी प्रकारका एक अन्य प्रसिद्ध गणेशस्थान है—'ओणकाडेल'। यह कोरापुटसे ५५ मीलकी दूरीपर जयपुर-लाभतापीट-मार्गपर स्थित है। माघ-मासकी चतुर्थीको यहाँ विशेष पूजा-समारोह होता है।

गणेश-प्रतिमाका निर्माण भुवनेश्वर-प्रतिमा-शिल्पका एक प्रिय विषय रहा है। विभिन्न युगोंमें भुवनेश्वरके मन्दिरोंमे गणेशकी नाना प्रकारकी प्रतिमाओंका निर्माण हुआ है, जो शिल्पकला, संस्कृति एवं धर्मके विकासके विविध चरणोंका संकेत करती हैं। भुवनेश्वरकी गणेश-प्रतिमाओंकी जो विशेषताएँ हैं, वे ही उड़ीसा एवं उत्तर-भारतके अन्य भागोंमें उपलब्ध गणपति-प्रतिमाओंमे भी मिलती हैं।

भुवनेश्वरकी गणेश-प्रतिमाओंको मुख्यरूपसे दो वर्गोंमें विभक्त किया जा सकता है। एक वर्ग तो गणेशके प्रसिद्ध वाहन मूषकसे रहित प्रतिमाओंका है, जिनके ऊर्ध्व दक्षिणहस्त-मे मूलक-कन्द है तथा दूसरा वर्ग मूषकसहित प्रतिमाओंका। इस वर्गकी प्रतिमाओंके दाहिने ऊर्ध्वहस्तमें मूलक-कन्दके स्थानपर भग्न-गजदन्त है। ये दोनों वर्ग संस्कृति एवं इतिहासकी दृष्टिसे भिन्न-भिन्न युगोंके है। एक तीसरा वर्ग इन दोनोंके मध्यवर्ती कालका भी है, जिस वर्गकी प्रतिमाओंमें विशेषताएँ तो प्रथम वर्गकी ही हैं, परंतु साथमें मूषक भी है। ऐसी प्रतिमाएँ संख्यामें बहुत कम हैं।

प्रथमवर्गकी मूषकरहित सभी प्रतिमाएँ बैठी हुई स्थितिमें, आसनस्थ मुद्रामें हैं। शायद ही इस वर्गकी कोई प्रतिमा खड़ी हुई स्थितिमें मिले। इस वर्गके चतुर्भुज गणेश-के हाथोंमें मूलक-कन्द, जपमाला, उठा हुआ कुठार और मोदकपात्र है। इनमें सर्पको कमरबंद एवं यज्ञोपवीतके रूपमें धारण किया गया है। इन मूर्तियोंके सिरपर जटा-मुकुट नहीं है। प्रतिमाके नीचे आधार-प्रस्तर या तो सादा है या उसके नीचे तिपाई निर्मित है, जिसपर पूजापात्रमें फल-फूल रखे हुए हैं एवं जिसके दोनों ओर दो सिंह एक दूसरेकी ओर देखते हुए स्थित हैं। मूषकका अभाव इन मूर्तियोंकी विशेषता है। ये मूर्तियाँ गणेशकी प्राचीनतम मूर्तियाँ हैं, जिनका निर्माण लगभग छठी-सातवीं शताब्दीमें हुआ है। बृहत्संहिताके प्रतिमाध्यायमें गणपति-मूर्तिकी इन्हीं विशेषताओंका उल्लेख मिलता है।

इस वर्गकी मूर्तियोंके दो उपभेद हो सकते हैं। एक भेद तो प्रतिमामें गजाननकी सूँड़के दायीं या बायीं ओर मुड़े हुए होनेपर निर्भर है एवं दूसरा भेद प्रतिमाके सिरपर जटा-मुकुट होने एवं प्रतिमाधारपर रखे पूजापात्रमें एक या दो कटहलके फलोंके होनेके कारण है।

दूसरे वर्गकी सभी प्रतिमाएँ खड़ी हुई मुद्रामें निर्मित हैं एवं उन सबके साथ मूषक अवश्य है। इन प्रतिमाओंके ऊपरके दाहिने हाथमें भग्न-गजदन्त है तथा नीचेके दाहिने हाथमें जपमाला। दूसरी ओर ऊपरके बायें हाथमें मोदक-पात्र है, जिसपर सूँड स्थापित है एवं नीचेके वामहस्तमे कुठार है। सर्प यज्ञोपवीतके रूपमे है। सिरपर जटा-मुकुट है। प्रतिमाका आधार-प्रस्तर पूर्ण विकसित कमलके रूपमे है। मूषक या तो देवमूर्तिके एक ओर है या आधारप्रस्तरपर देवताके चरणोंके नीचे।

प्रथमवर्गकी मूषकरहित गणेश-प्रतिमाएँ सातवीं-आठवीं शताब्दी ईस्वीयुगके परशुरामेश्वर, वैताल तथा शिशिरेश्वरके मन्दिरोंमे मिलती हैं। उनके अतिरिक्त ये इनसे प्राचीनकालके भरतेश्वर, स्वर्णजालेश्वर, मार्कण्डेयेश्वर, मोहिनी एवं बहिरंगेश्वर आदि मन्दिरोंमें भी पायी जाती हैं। प्राचीन-कालके मन्दिरोंके अङ्ग होनेके कारण इस वर्गकी प्रतिमाओंको भुवनेश्वरकी प्राचीन मूर्तिकलाका रूप मानना चाहिये। उत्तरेश्वर, लिङ्गराज एवं यमेश्वरके उत्तरकालीन मन्दिरोंमे

भी इस वर्गकी पुनः स्थापित प्रतिमाएँ मिलती हैं। चिन्तामणीश्वर एवं भारतीमठमें भी ऐसी प्रतिमाएँ उपलब्ध हैं, जो दूसरे प्राचीन भग्न मन्दिरोंसे लाकर पुनः वहाँ स्थापित की गयी हैं।

प्रथमवर्गकी गणेश-प्रतिमाका एक प्रथम उपभेद वह है, जिसमे गजाननकी सूँड बायीं ओर मुड़ी हुई है। ऐसी मूर्ति परमेश्वर-मन्दिर (६५० ई०)मे पार्श्वदेवताके रूपमे दक्षिण दिशाकी भित्तिके आलेमे प्रतिष्ठित है। चिन्तामणीश्वर, रामेश्वर एवं भारती-मठमें इस वर्गकी प्रतिमाएँ अन्य किन्हीं भग्न प्राचीन मन्दिरोंसे लाकर प्रतिष्ठापित की गयी हैं। यमेश्वरमे मूल-मन्दिरके निर्माण होनेके बहुत पीछे जाकर उस वर्गकी गणेश-प्रतिमाओंको कहींसे लाकर स्थापित किया गया है। परशुरामेश्वर, चिन्तामणीश्वर एवं भारती-मठकी गणपति-प्रतिमाओंकी एक विशेषता यह है कि प्रतिमाधारके नीचे दोनों ओर दो सिंह परस्पर सम्मुख दृष्टि रखे हुए स्थित हैं।

इस वर्गकी प्रतिमाका दूसरा उपभेद वह है, जिसमे गजाननकी सूँड दाहिनी ओर मुड़ी हुई है। इस प्रकारकी प्रतिमाएँ वैताल-मन्दिर, शिशिरेश्वर-मन्दिर एवं उदयगिरि-पर स्थित गणेश-गुम्फामे हैं।

गणेश-गुम्फाके समीप ही उपलब्ध प्रस्तर-लेखसे यह ज्ञात होता है कि इस गुम्फामे स्थित गणेश-मूर्तिका नाम 'गजास्यमूर्ति' है एवं इसका निर्माण भौम राजा शान्तिकर देवके समयमें ८०० ई०में हुआ है। इस मूर्तिके साथ भी मूषक है, जो प्रतिमाधारपर रखे मोदक-पात्रसे मोदकको चुराते हुए दिखाया गया है। इसी कोटिकी दो मूर्तियाँ और भी हैं—एक तो लिङ्गराज-मन्दिरमे एवं दूसरी उड़ीसा सरकारके म्यूजियममे।(पहले यह मूर्ति दूदवावाला धर्मशालाके निकट एक छोटे-से मन्दिरमें थी) लिङ्गराज मन्दिरकी गणेश-प्रतिमासे दाहिनी ओर एक महिला मोदक-पात्र हाथमे लिये हुए बैठी है, जिससे मूषकको मोदक चुराते हुए दिखाया गया है। दूसरी मूर्तिमें केवल मूषक ही देवतासे दाहिनी ओर है। देव-प्रतिमासे दूसरी ओर बायीं तरफ कटहल रखा हुआ है। इन तीनो मूर्तियोंके साथ यद्यपि मूषक है, तथापि इनकी सभी विशेषताएँ प्रथमवर्गकी गणपति-प्रतिमाओंकी हैं। अतः इनका निर्माण-काल प्रथम एवं द्वितीय वर्गकी प्रतिमाओंके निर्माण-कालके मध्यमें रखा जा सकता है।

मूषक (वाहन)-सहित द्वितीय वर्गकी प्रतिमा सबसे पहले मुक्तेश्वर (८००–१०६० ई०के मध्य)में मिलती है। इसके बाद इस वर्गकी गणेश-प्रतिमाएँ ब्रह्मेश्वर (१०६० ई०), केदारेश्वर (११०० ई०), मेघेश्वर (११९५ ई०) के युगके मन्दिरोंमें तथा इनके बाद निर्मित सभी शैव-मन्दिरों—लिङ्गराज, सिद्धेश्वर, रामेश्वर, भास्करेश्वर, यमेश्वर, चित्रेश्वर, ईशानेश्वर—आदिमें मिलती हैं। मुक्तेश्वर-मन्दिरकी भित्तिके दक्षिण-पूर्व-कोनेमें स्थित छोटी-सी गणेश-प्रतिमाके साथ जो मूषक है, वह अपने पिछले पैरोंपर खड़ा है।

उड़ीसामें उपलब्ध गणपतिकी सभी प्रतिमाएँ कृष्ण-प्रस्तरसे निर्मित हैं। ऐसा सम्भवतः आगम-प्रभावके कारणसे हैं। सनत्कुमारसंहिताके अनुसार कलियुगमें कृष्णप्रस्तर-खण्डसे निर्मित श्यामवर्णके देवविग्रहकी उपासना शुभ एवं मङ्गलदायिनी है। भुवनेश्वरके मन्दिरोंमें उपलब्ध गणेश-प्रतिमाओंमे शिल्पकलाकी दृष्टिसे एक और भेद परिलक्षित होता है। प्राचीनकालमे गणेश-प्रतिमाका निर्माण एक ही विशाल कृष्ण प्रस्तरखण्डसे होता था एवं उस निर्मित प्रतिमाको लाकर मन्दिरमें मुख्य या पार्श्वदेवताके रूपमें प्रतिष्ठित किया जाता था या लघुदेवमूर्तिको मन्दिरकी चारदिवारीके आलेमे स्थापित किया जाता था। परमेश्वर-मन्दिर-वर्गके मन्दिरोंमें ऐसी ही मूर्तियाँ हैं। पीछे जाकर जब पुरातत्त्व-संग्राहकोंद्वारा ऐसी मूर्तियाँ मन्दिरोंसे हटाकर चुरायी जाने लगीं, तब भौम-युगके शिल्पकारोंने इस शैलीको बदल दिया। वे मन्दिरकी दीवारके अङ्गरूपमें प्रतिमाओंका निर्माण करने लगे। मन्दिरके अङ्गभूत प्रस्तर-खण्डके दो-तीन टुकड़ोंसे प्रतिमाका निर्माण करनेकी शैली प्रचलित हुई। दीवारका अङ्ग होनेसे प्रतिमाको निकालकर चुरा ले जाना सम्भव नहीं था। इस प्रकार देव-विग्रहोंको सुरक्षित रखा गया। नवीं शताब्दी एवं उसके बादकी उत्तरकालीन देवमूर्तियाँ इसी शैलीमें दीवारके प्रस्तरखण्डोंसे बनी हैं एवं मन्दिरके अङ्गके रूपमें सुरक्षित हैं।*

—सोमचैतन्य श्रीवास्तव

* इस लेखमें वर्णित श्रीगणेशकी प्रतिमाओंके चित्र श्रीकृष्णचन्द्र पाणिग्रही-लिखित ग्रन्थ 'Archeological remains at Bhubaneshwar' में उपलब्ध हैं। इस लेखकी गणपति-प्रतिमा-विवेचन-सम्बन्धी अधिकांश सामग्री इसी ग्रन्थसे ली गयी है, जिसके लिये लेखक श्रीपाणिग्रहीका आभारी है।

बंगाल* और आसाम†के श्रीगणेश-स्थल

बडनगर (बंगाल)—अजीमगंज स्टेशनके पास इस गाँवमें अनेक देवालय हैं, जिनमें अष्टभुज गणेशका भी एक श्रेष्ठ मन्दिर है ।

गोहाटी (असम)—कामाक्षादेवीके मन्दिरमें श्रीगणेशजीका एक सुन्दर विग्रह है ।

काशीके छप्पन विनायक

(लेखक—श्रीअवधेशनारायणसिंहजी)

भारतीय देवताओंमें शिव-पुत्र गणेशकी अत्यधिक महत्ता है । लोकप्रिय देवताके रूपमें इनका स्थान सर्वोपरि है । प्रायः सम्पूर्ण भारतमें गणेशकी पूजा की जाती है । काशीकी सुरम्य स्थलीमें गणेशकी कई प्रतिमाएँ स्थापित हैं । सभी गणेश-मूर्तियोंमें अन्नपूर्णा-मन्दिरके पश्चिममें गलीकी मोड़पर स्थित ढुण्ढिराज विनायककी विशेष प्रतिष्ठा है । ढुण्ढिराज गणेश ही काशीके सात आवरणोंमें प्रत्येक आवरणमें आठ रूप धारणकर छप्पन विनायक हो गये हैं । गणेशकी संख्या छप्पन होनेके कारण इन्हें 'छप्पन विनायक'की संज्ञा दी गयी है । छप्पन विनायक सात आवरणोंपर रक्षाके निमित्त विराजमान होकर आततायियोंका निग्रह एवं उच्चाटन करते तथा अपने भक्तोंको सिद्धि देते रहते हैं ।

काशीके छप्पन विनायकोंके नामों और उनकी स्थितियोंका उल्लेख काशीखण्डमें मिलता है । जो लोग छप्पन विनायकोंका स्मरण करते हैं, उनका कल्याण होता है और उनके सभी कष्ट दूर हो जाते हैं ।

काशीखण्डके ५७वें अध्यायमें लिखा है—

षट्पञ्चाशद् गजमुखानेतान् यः संस्मरिष्यति ।
दूरदेशान्तरस्थोऽपि स मृतो ज्ञानमाप्नुयात् ॥
इमे गणेश्वराः सर्वे स्मर्तव्या यत्र कुत्रचित् ।
महाविपत्समुद्रान्त: पतन्तं पान्ति मानवम् ॥

(स्कन्द, काशीखं०, ५७ । ११५—११७)

इस वचनके अनुसार काशीके छप्पन विनायक सात आवरणोंमें विभक्त हैं । प्रथमावरणके अन्तर्गत अर्क-विनायक, दुर्गविनायक, भीमचण्डविनायक, देहलीविनायक, उद्दण्डविनायक, पाशपाणिविनायक, खर्वविनायक तथा सिद्धिविनायकका वर्णन किया गया है । द्वितीयावरणके अन्तर्गत लम्बोदरविनायक, कूटदन्तविनायक, शालकटङ्क-विनायक, कूष्माण्डविनायक, मुण्डविनायक, विकटदन्त-विनायक, राजपुत्रविनायक एवं प्रणवविनायकका उल्लेख मिलता है । तृतीयावरणके अन्तर्गत वक्रतुण्डविनायक, एकदन्तविनायक, त्रिमुखविनायक, पञ्चास्यविनायक, हेरम्बविनायक, विघ्नराजविनायक, वरदविनायक और मोदकप्रियविनायकके विग्रह प्रसिद्ध हैं । चतुर्थावरणके अन्तर्गत अभयदविनायक, सिंहतुण्डविनायक, कूणिताक्ष-विनायक, क्षिप्रप्रसादविनायक, चिन्तामणिविनायक, दन्तहस्त-विनायक, पिचिण्डिलविनायक तथा उद्दण्डमुण्डविनायकके नाम आते हैं । पाँचवें आवरणमें स्थूलदन्तविनायक, कलिप्रियविनायक, चतुर्दन्तविनायक, द्वितुण्डविनायक, ज्येष्ठ-विनायक, गजविनायक, कालविनायक एवं नागेशविनायकका उल्लेख हुआ है । छठे आवरणके अन्तर्गत मणिकर्ण-विनायक, आशाविनायक, सृष्टिविनायक, यक्षविनायक, गजकर्णविनायक, चित्रघण्टविनायक, स्थूलजङ्घविनायक और मङ्गलविनायकका नामोल्लेख हुआ है । मोदविनायक, प्रमोदविनायक, सुमुखविनायक, दुर्मुखविनायक, गणनाथ-विनायक, ज्ञानविनायक, द्वारविनायक तथा अविमुक्त-विनायककी प्रतिमाएँ सातवें आवरणके अन्तर्गत प्रसिद्ध हैं ।

उपर्युक्त छप्पन विनायकोंमेंसे छःके दो-दो नाम मिलते हैं । लम्बोदरविनायक, वक्रतुण्डविनायक, दन्तहस्तविनायक, द्वितुण्डविनायक, गजविनायक तथा स्थूलजङ्घविनायक—ये क्रमशः चिन्तामणिविनायक, सरस्वतीविनायक, हस्तदन्त-विनायक, द्विमुखविनायक, राजविनायक और मित्रविनायकके नामसे पुकारे जाते हैं ।

वैसे काशीखण्डमें प्रमाणित इन सभी विनायकोंकी बड़ी महत्ता है, किंतु पञ्चकोशी-यात्राकी दृष्टिसे केवल दस गणेश ही अधिक महत्त्वपूर्ण हैं । इनके नाम हैं—अर्कविनायक, दुर्गविनायक, देहलीविनायक, उद्दण्डविनायक, पाशपाणि-विनायक, सिद्धिविनायक, मोदविनायक, प्रमोदविनायक, सुमुखविनायक और दुर्मुखविनायक ।

* इसके सदर्भमें इसी अङ्कके पृष्ठ ४१९-२० भी देखने चाहिये ।

† प्रयत्न करनेपर भी इस प्रदेशके गणेश-स्थलोंका विशेष विवरण उपलब्ध नहीं हो सका ।

छप्पन विनायकोंमें सुप्रसिद्ध देहलीविनायकका मन्दिर वाराणसी-नगरसे १२-१३ मील पश्चिम तथा रामेश्वरसे डेढ़-दो मील दक्षिण पञ्चक्रोशी-मार्गमे काशीके पश्चिमद्वार देहलीविनायक-नामक तीर्थस्थानपर स्थित है। देहलीविनायक-मन्दिरका निर्माण लेखपट्टके आधारपर संवत् १८४८ ज्ञात होता है; किंतु मन्दिर-विग्रहकी स्थापना पुरानी है। इस मन्दिर-की ऊँचाई ४५-५० फीट है। प्रवेशके लिये उत्तर, दक्षिण और पूर्व दिशामे कुल तीन द्वार हैं। मुख्य प्रवेशद्वार उत्तर-दिशामे है, जिसपर 'देहलीविनायक—काशीखण्ड' नामका शिलालेख लगा है। देहलीविनायक-मन्दिरका भीतरी कक्ष लगभग ११ फीट लंबा, ११ फीट चौड़ा वर्गाकार है। इस कक्षमे पश्चिमकी दीवारमे ३ फीट ऊँची गणेशकी प्रतिमा स्थापित है। यह मूर्ति गणेश-वाहन चूहेपर स्थापित की गयी है चतुर्भुज गणेशके चारों हाथोमे चार वस्तुऍ दिखायी पड़ती हैं। एक हाथमें वे शस्त्र और दूसरे हाथमें माला धारण किये हुए हैं। तीसरे हाथमें वे फल लिये हुए प्रतीत होते हैं और उनके चौथे हाथमे एक लड्डू है, जिसे पकड़कर वे खानेकी मुद्रामे दृष्टिगत होते हैं। मूर्ति अति श्रेष्ठ है। इस मूर्तिपर पञ्चकोशीके यात्री लड्डू, लावा, ईख और सत्तू चढ़ाते हैं। 'काशीखण्ड'के अनुसार भगवान् शशिशेखर शंकरने इन विनायकको द्वारपालके रूपमे प्रतिष्ठित कर काशीके पश्चिमी भागकी रक्षा करनेका आदेश दिया है। देहलीविनायक-मूर्तिके उत्तरमें १ फुट ८ इंच ऊँची नृसिंहभगवान्की प्रतिमा स्थापित है। द्वारगणेशके-निकट ही पूर्वोत्तर दिशामें एक नन्दीकी मूर्ति है तथा सात शिवलिङ्ग भी स्थापित हैं।

'उद्दण्डविनायक'का यह मन्दिर देहलीविनायक और रामेश्वर-तीर्थके मध्य भुइली-ग्रामके पूर्व पञ्चक्रोशी-मार्गमे पड़ता है। पञ्चक्रोशी-सड़कसे तीन सीढ़ियाँ चढ़नेके बाद मन्दिरके बरामदेमे प्रवेश होता है। उद्दण्डविनायक-मन्दिरका बरामदा उत्तर-दक्षिण ७ फीट ९ इंच लंबा तथा पूर्व-पश्चिम ६ फीट चौड़ा है। इसकी ऊँचाई लगभग ६॥ फीट है। बरामदेके पूर्वी द्वारसे प्रवेश करनेपर उद्दण्डविनायक-मन्दिरका भीतरी कक्ष है, जो करीब ५ फीट लंबा और ५ फीट चौड़ा वर्गाकार है। इसमे दीपक जलानेके लिये ताखे बने हुए हैं। कक्षके दक्षिणकी दीवारमे उद्दण्डविनायककी प्रतिमा स्थित है। सर्वदा बड़े उद्दण्ड विघ्नोंको दण्ड देनेवाले ये विनायक 'उद्दण्डविनायक' कहे जाते हैं। उद्दण्डविनायककी मूर्तिकी ऊँचाई लगभग ४ फीट है। इनका पेट निकला हुआ है। ऐसा लगता है, ये पद्मासन लगाकर बैठे हैं। इनकी मूर्ति अस्पष्ट मालूम पड़ती है। गणेशके हाथ दिखायी नहीं पड़ते। मन्दिरके पूर्वकी दीवारमें 'उद्दण्डविनायक'—काशीखण्ड अङ्कित है।

'पञ्चास्यविनायक-मन्दिर' पिशाचमोचन-सरोवरके पूर्वभाग-में भूतनाथके पीछे स्थित हैं। ये गणेश वाराणसीपुरीकी रक्षा करते हैं। पञ्चास्यविनायक-मूर्तिकी ऊँचाई २॥-३ फीट है। इस मूर्तिमें गणेशजी बैठे हुए दिखायी पड़ते हैं। इनका मुख पूर्वदिशामे है। पञ्चास्यविनायकके चार हाथ हैं। दो हाथोंमे क्रमसे वे त्रिशूल और शस्त्र धारण किये हुए हैं। शेष दो हाथ उनकी जाँघपर हैं। गणेशके निकट दक्षिण दिशामें एक प्रस्तरका शिवलिङ्ग स्थापित है। शिवलिङ्गके निकट क्रमशः दुर्गा, अष्टभुजी दुर्गा और विष्णुभगवान्की प्रतिमाएँ स्थापित हैं।

त्रिमुखविनायककी मूर्ति सिगरा-नामक स्थानपर है। इनके मुख क्रमशः वानर, सिंह और हस्तीके हैं, इसीलिये इनको 'त्रिमुखविनायक' कहते हैं। ये गणेश काशीके भयहर्ता कहे जाते हैं।

'हेरम्बविनायक'का मन्दिर काशी अनाथालयके निकट वाल्मीकिके टीलेपर स्थित है। यह टीला महर्षि वाल्मीकिकी तपःस्थली बताया जाता है। पक्की सड़कसे इस टीलेकी ऊँचाई ७०-८० फीट या इससे भी अधिक है। सड़कसे ४२ सीढ़ियाँ चढ़नेके पश्चात् हम वाल्मीकिके टीलेपर पहुँचते हैं। यहाँ लगभग १४ फीट लंबा और उतना ही चौड़ा एक मन्दिर है, जिसमें हेरम्बविनायककी एक फुट ऊँची प्रतिमा स्थापित है। इसमे गणेशजी बैठे हुए दिखाये गये है। हेरम्बविनायकके निकट मन्दिरकी पश्चिमी दीवारमें महर्षि वाल्मीकिकी मूर्ति चित्रित है। इस मूर्तिके समक्ष एक सुन्दर शिवलिङ्ग स्थापित है।

'दन्तहस्तविनायक'की मूर्ति 'आज-कार्यालय'के निकट स्थित बड़े गणेशके घेरेमें है। मन्दिरके उत्तरी द्वारसे हम बड़े गणेश-के घेरेमे प्रविष्ट होते हैं। यहाँसे कुछ दूर जानेपर एक बरामदेमे पूर्वकी दीवारमे दन्तहस्तविनायककी ढाई फीट ऊँची प्रतिमा स्थित है। दन्तहस्तविनायकके दस हाथ हैं। उनका एक हाथ मुँहमे है। ऐसा जान पड़ता है कि ये कुछ भक्षण कर रहे हैं। एक हाथके सहारे वे लक्ष्मीको धारण किये हुए हैं। इन गणेशके चरणोंके निकट उनका वाहन चूहा भी दृष्टिगत होता है। गणेशकी बायीं और दायीं ओर सिद्धि-बुद्धिकी मूर्तियाँ हैं।

'ज्येष्ठविनायक'की मूर्ति काशीपुरा मुहल्लेमें कालीदेवीके मन्दिरके निकट स्थित है । यह मूर्ति ज्येष्ठेश्वर महादेव (काशीखण्डमें प्रमाणित) के मन्दिरमें पश्चिमी दीवारमें स्थापित है। ज्येष्ठविनायक खड़े दिखायी पड़ते हैं। इनकी ऊँचाई करीब दो फीट है । ज्येष्ठविनायक सब विनायकोंमें जेठे बताये गये हैं। ज्येष्ठ मासकी शुक्ल चतुर्दशीके दिन ज्येष्ठता पानेके लिये लोग इनकी पूजा करते हैं ।

'मोदविनायक'की प्रतिमा काशी करवटमें एक पण्डितजीके मकानमें स्थित है । इस मूर्तिकी ऊँचाई करीब एक फीट है। मोदविनायक बैठे हुए दृष्टिगत होते हैं। मोदविनायक-मूर्तिके दक्षिण करीब ३० फीटकी गहराईमें भीमशंकर (भीमेश्वर) स्थित हैं। भीमेश्वरका वर्णन काशी-खण्डके ६९वें अध्यायमें किया गया है । मोदविनायक-मन्दिरमें प्रतिमास कृष्ण गणेशचतुर्थीके दिन स्कन्दपुराणमें वर्णित 'संकष्ट-गणेशचतुर्थी-व्रत-कथा' होती है ।

'प्रमोदविनायक'की प्रतिमा कचौड़ीगलीमें एक अग्निहोत्रीजीके मकानके पास स्थित है। इन गणेशकी ऊँचाई एक-डेढ़ फुट है । प्रमोदविनायक खड़े दृष्टिगत होते हैं। इस मूर्तिके निकट ९ शिवलिङ्ग तथा ४ नन्दीकी मूर्तियाँ हैं।

'सुमुखविनायक'की प्रतिमा श्रीखत्रीजीके मकानके एक कक्षमें स्थित है । इस मूर्तिकी ऊँचाई ४-४॥ फीट और चौड़ाई ३।-३॥ फीट है। ये गणेश बैठे हुए दिखाये गये हैं।

'दुर्मुखविनायक'की मूर्ति सुमुखविनायकके निकट स्थित है । इस मूर्तिकी ऊँचाई ३ फीट है। दो भुजाओंवाले दुर्मुखविनायकके एक हाथमें लड्डू है और उनका दूसरा हाथ घुटनेपर है। इस मूर्तिके निकट एक ब्रह्माकी और एक नन्दीकी मूर्ति स्थापित है ।

वृन्दावनके सिद्धगणेश

(लेखक—महन्त स्वामी श्रीविद्यानन्दजी महाराज)

श्रीराधाबाग वृन्दावनका एक प्रसिद्ध मन्दिर है, जहाँ भगवती कात्यायनीका दिव्य श्रीविग्रह प्रतिष्ठित है । श्रीकात्यायनी-पीठमें स्थित गणपतिकी मूर्तिका भी एक विचित्र इतिहास है, जो इस प्रकार है—

एक अंग्रेज श्रीडब्लू० आर० यूल कलकत्तेमें मेसर्स एटलस इंस्योरेंस कंपनी लिमिटेडमें ईस्टर्न सेक्रेटरीके पदपर कार्य करते थे। इस कंपनीका कार्यालय ४, क्लाइव रोडपर स्थित था। इनकी पत्नी श्रीमती यूलने सन् १९११ या १९१२ ई०के लगभग जयपुरसे एक श्रीगणपतिकी मूर्ति खरीदी,जब कि वे इंग्लैंड जा रही थीं। वे अपने पतिको कलकत्ता छोड़कर इंग्लैंड चली गयीं तथा उन्होंने अपनी बैठकमें कारनिसपर गणपतिजीकी प्रतिमा सजा दी ।

एक दिन श्रीमती यूलके घर भोज हुआ तथा उनके मित्रोंने गणेशजीकी प्रतिमाको देखकर उनसे पूछा—'यह क्या है ?'

श्रीमती यूलने उत्तर दिया—'यह हिंदुओंका सूँडवाला देवता है' । उनके मित्रोंने गणेशजीकी मूर्तिको बीचकी मेजपर रखकर उनका उपहास करना आरम्भ किया । किसीने गणपतिके मुखके पास चम्मच लाकर पूछा—'इसका मुँह कहाँ है ?'

जब भोज समाप्त हो गया, तब रात्रिमें श्रीमती यूलकी पुत्रीको ज्वर हो गया, जो बादमें बड़े वेगसे बढ़ता गया। वह अपने तेज ज्वरमें चिल्लाने लगी, 'हाय ! सूँडवाला खिलौना मुझे निगलनेको आ रहा है !' डाक्टरोंने सोचा कि वह संनिपातमें बोल रही है; किंतु वह रात-दिन यही शब्द दुहराती रही एवं अत्यन्त भयभीत हो गयी। श्रीमती यूलने यह सब वृत्तान्त अपने पतिको कलकत्ते लिखकर भेजा। उनकी पुत्रीको किसी भी औषधने लाभ नहीं किया ।

एक दिन श्रीमती यूलने स्वप्नमें देखा कि वे अपने बागके संलापगृहमें बैठी हैं। सूर्यास्त हो रहा है । अचानक उन्हें प्रतीत हुआ कि एक घुँघराले बाल और मशाल-सी जलती आँखोंवाला पुरुष हाथमें भाला लिये, वृषभपर सवार, बढ़ते हुए अन्धकारसे उन्हींकी ओर आ रहा है एवं कह रहा है—'मेरे पुत्र सूँडवाले देवताको तत्काल भारत भेज; अन्यथा मैं तुम्हारे सारे परिवारका नाश कर दूँगा।' वे अत्यधिक भयभीत होकर जाग उठीं। दूसरे दिन प्रातः ही उन्होंने उस खिलौनेका पार्सल बनाकर पहली डाकसे ही अपने पतिके पास भारत भेज दिया। श्रीयूल साहबको पार्सल मिला और उन्होंने श्रीगणेशजीकी प्रतिमाको कंपनीके कार्यालयमें रख दिया। कार्यालयमें श्रीगणेशजी तीन दिन रहे, पर उन तीन दिनों-तक कार्यालयमें सिद्ध-गणेशके दर्शनार्थ कलकत्तेके नर-नारियोंकी

भीड़ लगी रही । कार्यालयका सारा कार्य रुक गया । श्रीपूल्ने अपने अधीनस्थ इंस्योरेंस एजेंट श्रीकेदारबाबूसे पूछा कि 'इस देवताका क्या करना चाहिये ?' अन्तमें केदारबाबू गणेशजीको अपने घर ७, अभयचरण मित्र स्ट्रीटमें ले गये एवं वहाँ उनकी पूजा प्रारम्भ करवा दी । तबसे सभी श्रीकेदारबाबूके घरपर ही जाने लगे।

इधर वृन्दावनमें स्वामी केशवानन्दजी महाराज कात्यायनी-देवीकी पञ्चायतन पूजन-विधिसे प्रतिष्ठाके लिये सनातन-धर्मकी पाँच प्रमुख मूर्तियोंका प्रबन्ध कर रहे थे । श्रीकात्यायनी-देवीकी अष्टधातुसे निर्मित मूर्ति कलकत्तेमें तैयार हो रही थी तथा भैरव चन्द्रशेखरकी मूर्ति जयपुरमें बन गयी थी । जब कि महाराज गणेशजीकी प्रतिमाके विषयमें विचार कर रहे थे, तब उन्हें माँका स्वप्नादेश हुआ कि 'सिद्ध-गणेशकी एक प्रतिमा कलकत्तेमें केदारबाबूके घरपर है । जब तुम कलकत्तेसे मेरी प्रतिमा लाओ, तब मेरे साथ मेरे पुत्र-को भी लेते आना।' अतः स्वामी श्रीकेशवानन्दजीने अन्य चार मूर्तियोंके बननेपर गणपतिकी मूर्ति बनवानेका प्रयत्न नहीं किया।

अन्तमें जब स्वामी श्रीकेशवानन्दजी श्रीश्रीकात्यायनी माँकी अष्टधातुकी मूर्ति पसंद करके लानेके लिये कलकत्ते गये, तब केदारबाबूने उनके पास आकर कहा—''गुरुदेव ! मैं आपके पास वृन्दावन ही आनेका विचार कर रहा था । मैं बड़ी आपत्तिमें हूँ । मेरे पास पिछले कुछ दिनोंसे एक गणेशजीकी प्रतिमा है । प्रतिदिन रात्रिको स्वप्नमें वे मुझसे कहते हैं कि 'जब श्रीश्रीकात्यायनी माँकी मूर्ति वृन्दावन जायेगी तो मुझे भी वहाँ भेज देना ।' कृपया आप इन्हें स्वीकार करें ।'' गुरुदेवने कहा—'बहुत अच्छा, तुम वह मूर्ति स्टेशनपर ले आना । मैं तूफान एक्सप्रेससे जाऊँगा । जब माँ जायगी तो उनका पुत्र भी उनके साथ ही जायगा । सिद्ध-गणेशजीकी यही मूर्ति भगवती कात्यायनीजीके राधाबाग-मन्दिरमें प्रतिष्ठित है ।

युगलविहार-धर्मशालाके पास 'श्रीमोटे गणेश'का एक विशाल मन्दिर है । मन्दिरमें श्रीगणेशजीकी विशाल मूर्ति है । इनकी वृन्दावनमें बड़ी मान्यता है ।

विदेशोंके गणेश-विग्रह और मन्दिर

(लेखक—श्रीगणेशप्रसादजी जैन)

उन सभी देशोंमें, जिनपर भारतीय-संस्कृतिका प्रभाव पड़ा या भारतीय जाकर बस गये, भारतीय देवताओंकी उपासनाका स्पष्ट प्रभाव दीखता है । भारतीय संस्कृतिका प्रभाव पश्चिममें तुर्किस्तान, उत्तरमें चीन और ईशानकोणमें जापानतक फैला हुआ था ।

मलयद्वीप-पुञ्जमें जो 'गणेश'की प्रस्तरनिर्मित या धातु-निर्मित प्रतिमाएँ मिलती हैं, वे सामान्यतः भारतीय प्रतिमाओंके सदृश तो हैं ही, किंतु उनमें अन्य अनेक विशेषताएँ भी हैं । भारतीय गणेश-प्रतिमाएँ प्रायः पद्मासन, स्वस्तिकासन या अर्द्धासनसे बैठी मिलती हैं । इन आसनोंमें पाँव प्रायः एक-दूसरेके ऊपर-नीचे होते हैं । किंतु जावा आदिकी मूर्तियोंमें 'गणेश' इस प्रकार पालथी मारकर बैठे हैं कि दोनों पाँव भूमिपर समरूपसे पड़े हैं एवं उनके तलवे मिले हुए हैं। भारतमें सूँड़ प्रायः बीचमें ही दाहिनी या बायीं ओर मुड़ी होती है, किंतु विदेशोंमें वह बिल्कुल सीधी जाकर सिरेपर मुड़ती है । कतिपय प्रतिमाओंके गलेमें मुण्डमाल है और उनके सिंहासनमें भी मुण्ड खुदे हैं । 'बाली'के जमबरन-स्थानकी एक मूर्तिके सिंहासनके चारों ओर अग्निशिखाएँ बनी हुई हैं और उनके दाहिने हाथमें मसाल है ।

जावामें नदियोंके घाटों और दूसरे भयके स्थानोंपर गणेश-जीकी मूर्तियाँ उपलब्ध हैं । वहाँकी श्रीगणेशकी स्थानक मूर्ती विशेष उल्लेखनीय है । यहाँ गणेशका कोई स्वतन्त्र मन्दिर नहीं है। शिव-मन्दिरमें ही इनकी पूजा होती है । बर्मामें 'गणेशजी'की अधिक मूर्तियाँ हैं । यहाँ इन्हें 'महापिएन' कहा जाता है । 'पिएन' विनायकका विकृतरूप हो या विघ्न-शब्दका रूपान्तर (जिससे गणेशजी 'विघ्नेश्वर' कहलाये) 'पिएन' हो सकता है ।

स्यामदेशमें भी गणेशजीकी अनेक मूर्तियाँ हैं । इनमें अनेक कलात्मक और सुन्दर हैं । मूर्ति-कलाकी जिस शैलीके अनुसार ये निर्मित हुई हैं, उसको 'अयूथियन' कहते हैं; क्योंकि उन दिनों स्यामदेशकी राजधानीका नाम भी अयूथिया (अयोध्या) था ।

'स्यामदेश'के निवासी मंगोल हैं, परंतु उनकी संस्कृति आर्य संस्कृतिसे ओत-प्रोत है । पहले तो वैदिक-धर्म ही वहाँका

राजधर्म था, आज वे लोग बौद्ध हो गये हैं। किंतु राज्याभिषेक आदि आज भी वैदिक-विधिसे ही होते हैं।

कंबोडिया एशिया महाद्वीपके उस भागका टुकड़ा है, जिसे 'हिंद चीन' कहा जाता है। यहाँ 'गणेशजी'को 'केनेस' कहते हैं। कंबोडिया स्यामसे पूर्व है। इसका प्राचीन नाम 'कम्बुज' था। यह देश अपनी मूर्ति-राशिके लिये प्रसिद्ध है। यहाँकी श्रीगणेशकी आसन कांस्य-मूर्ति विशेष विख्यात है। पुरानी राजधानी 'अङ्कुरवट'को 'प्रतिमाओंकी खान' कहा जाता है। यहाँकी गणेश-मूर्तियाँ रूप एवं कलामें भिन्न पायी जाती हैं।

चीनमे गणेशजीका प्रवेश 'विनायक'-रूपमें ही हुआ होगा। उनकी मूर्तियाँ चीनी यात्री अपने साथ ले गये होंगे। वहाँ जाकर उनकी प्रतिष्ठा बढ गयी। कारण स्पष्ट है कि "जातकके कथानुसार 'बुद्धदेव'की माताको स्वप्न हुआ कि एक हाथी उनके कोखमे प्रवेश कर रहा है। उसी गर्भसे तथागत बुद्ध जन्मे थे। इसलिये चीनमें हाथी बुद्धका प्रतीक मानकर पूजा जाता है। सम्भवतः इसी कारण हस्तिमुख गणेश भी उनके आराध्य देवता हो गये हो।"

चीनके तुनहु-आङ्गमे एक गुफाकी दीवारपर मूर्तियाँ बनी हैं। ये मूर्तियाँ उसी ढंगकी हैं, जैसी कि अजन्ताकी हैं। इनको या तो भारतीय शिल्पियोने चित्रित किया है या उनके चीनी शिष्योंने। इनमे बुद्ध-मूर्तियोके अतिरिक्त सूर्य, चन्द्र, कामदेव आदिके साथ-साथ गणेशजीकी भी मूर्ति है। उन्होंने सिरपर पगड़ी और पाँवमे सलवार पहन रखा है। कुङ्ग-हिस-एनके गुफा-मन्दिरमे जो मूर्ति है, उसके साथ उसके निर्माणकी तिथि (सं० ५८८) अङ्कित है। इतनी प्राचीन मूर्ति कदाचित् भारतमें भी उपलब्ध नहीं है। यह विनायककी मूर्ति है। इसपर चीनी-भाषामे लिखा है कि 'यह हाथियोंके अमानुष राजाकी मूर्ति है।' वहीं नागो, मछलियों तथा पेड़ोके अमानुष राजाओकी भी मूर्तियाँ हैं। चीनमे गणेशजी दो नामोसे प्रख्यात हैं—'विनायक' और 'कांगितेन'। यहाँ अन्य देवताओंकी अपेक्षा विनायक-पूजनका विशेष महत्त्व है। नृत्यगणपतिकी पूजा यहाँ विशेषरूपमें होती है।

जापानके कोबो दाइशी (सुप्रसिद्ध) विद्वान्ने चीनके बौद्धाचार्योंसे शिक्षा ग्रहणकर १९वीं शतीमें अपने यहाँ 'विनायक'-पूजन प्रचलित कर दिया था। अब यहाँके चिङ्गबैन-सम्प्रदायमें भी विनायक-पूजाका प्रचलन जारी है।

तिब्बतमें प्रत्येक मठके अधीक्षकके रूपमें विनायक (गणपति)-पूजन प्रचलित है। बोर्नियों तथा बालीद्वीपमें गणेश-पूजनके प्रति अत्यधिक श्रद्धा है। यहाँ बड़े ही समारोह-पूर्वक गणेश-पूजनके सभी कृत्य होते हैं। नेपालमें बौद्ध-धर्मके साथ-साथ हेरम्ब और विनायकके नामसे गणपति-मूर्तिका पूजन देशभरमें बड़ी भक्ति और श्रद्धासे होता है। वहाँकी सिंहवाहिनी शक्ति-सहित मूषकवाहन हेरम्बकी मूर्ति विशेष प्रख्यात है।

अमेरिकामें लम्बोदर गणेशकी मूर्ति मिलती है। दीवान श्रीचम्मनलालने अपनी रचना 'हिंदू-अमेरिका'में विस्तृतरूपसे गणेश-पूजापर प्रकाश डाला है। कोलंबसद्वारा अमेरिकाका आविष्कार होनेके पूर्व ही वहाँ गणेश, सूर्य आदि भारतीय देवताओंकी मूर्तियाँ उपलब्ध हो चुकी थीं। इससे सिद्ध है कि भारतीयोंने ईस्वी सन्से बहुत वर्षों पूर्व अमेरिकामें भी अपना उपनिवेश स्थापित कर लिया था।

यूना-निवासी गणेशका पूजन 'ओरेनस'के नामसे करते हैं। उनके धार्मिक-ग्रन्थोंमें ओरेनसकी अत्यधिक महत्ताका वर्णन उपलब्ध है। हिंदू-धर्म-ग्रन्थोंके अनुसार गणेश 'लक्षसिन्दूर-वदन' कहलाते हैं। यूनानियोंके 'ओरेनस' और भारतीयोंके 'अरुणास्य' सम्बोधन एक-से प्रतीत होते हैं। 'अरुणास्य'का अपभ्रंशरूप 'ओरेनस' प्रतीत होता है।

ईरानी पारसियोंमें 'अहुरमज्दा' नामसे गणेशकी उपासना की जाती है। 'जेन्दवस्ता'की पचासों आयतें 'अहुरमज्दा'की लोकोत्तर शक्तियोंका वर्णन करती हैं। फारसी-भाषामें 'स' प्रायः 'ह' कारमे परिवर्तित हो उचरित होता है। 'सप्त' को 'हप्त', मास'को 'माह' आदि बोलते हैं। इसी प्रकार 'अहुरमज्दा' भी 'असुरमदहा'का ही अपभ्रंश होना चाहिये। हिंदू-पुराणोंमें 'गणेश'द्वारा असुरोंके पराजित होनेकी अनेक गाथाएँ हैं। इसीलिये गणेश 'असुरमदहा' (असुरोंका मद हरनेवाला) नामसे विख्यात हैं और यह नाम अन्वर्थक भी है।

चीनी और जापानी बौद्ध त्रिमूर्ति गणेशकी उपासना (फो) नामसे करते हैं। मिस्रदेशके इतिहासज्ञ 'हर्मिज'ने लिखा है कि "सब देवोका वह अग्रिम है जिसका विभाग नहीं हो सकता, जो बुद्धिका अधिष्ठाता है, उसका नाम 'एकटोन' है। सम्भवतः वे देव 'गणेश' ही हैं; क्योंकि ये ही अग्रपूजनीय हैं। और 'एकटोन'-शब्द एकदन्तका ही पर्यायवाची है।"

श्रीमती एलिस गेट्टीने अपनी पुस्तक 'गणेश' मे जो १९३६ मेंऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटीप्रेससे प्रकाशित हुई है, गणेश-पूजन आदिपर विस्तृत विवेचना की है। एलिस गेट्टीके कथनानुसार तमिळ भाषामे गणेशका नाम—'पिल्लैयर', भोटमे 'सोम्सदान, बर्मामे 'महापिएन', मंगोलियामें 'ग्रातरलारुमलागान्', कंबोडियामें 'पाट्टकेनीज', जापानीमे 'कांगितेन' और चीनीमे 'कुआन-शी-तिएन' आदि-आदि हैं।

- उपर्युक्त तथ्यों और प्रमाणोंसे यह सिद्ध है कि उत्तरी मंगोलियासे लेकर दक्षिणमें बालीद्वीपतक और जापानसे अमेरिकातकमें श्रीगणेशका पूजन पद्धति-अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकारोंसे अति प्राचीनकाल, बल्कि आदिकालसे ही प्रचलित था।

दक्षिण अमेरिकाके ब्राजील-नामके स्थानकी खुदाईमें जो गणेशकी मूर्ति मिली है, उसे पुरातत्त्वविदोंने चार-पाँच हजार वर्ष प्राचीन माना है। इससे यह सिद्ध है कि कोलंबसके जन्मके पूर्वकालसे ही अमेरिकी-जनतामें श्रीगणेश श्रद्धाके पात्र रहे और उनका पूजन आदि होता रहा। आज भी गणेशके भक्त वहाँ विद्यमान हैं।

विदेशोंमें श्रीगणेश-पूजा

(लेखक—पं० श्रीहिमांशुशेखरजी झा, एम्० ए०)

सर्वलोकवन्दित भगवान् गणेशकी अर्चनाका आलोक केवल भारतवर्षको ही नहीं, प्रत्युत विश्वके अन्य अञ्चलोंको भी सदियोंसे उद्भासित करता आया है। वाचस्पति विनायककी आराधनाका जो प्रदीप अनेक शताब्दियोंके पूर्व भारतेतर राष्ट्रोंमें जलाया गया था, वह आज भी निर्धूम और निष्कम्प जल रहा है। इससे लोकभावन भगवान् गणेशके प्रति लोक-मानसमें व्याप्त श्रद्धा और प्रेमका पता चलता है।

विदेशोंमे श्रीगणेश-पूजाके सम्बन्धमे ऑक्सफोर्डके क्लारेंडन प्रेससे प्रकाशित 'गणेश—ए मोनोग्राफ ऑफ द एलीफेंट-फेस्ड गॉड'[1]-नामक पुस्तकमे विशद वर्णन किया गया है। इस पुस्तकमे प्रकाशित तथ्योके अनुसार भारतके अतिरिक्त चीन, चीनी तुर्किस्तान, तिब्बत, जापान, बर्मा, स्याम, हिंद-चीन, जावा, बाली तथा बोर्नियोमे भी श्रीगणेशकी प्रतिमाएँ मिलती हैं। इन मूर्तियोंसे उन-उन देशोमे श्रीगणेशके नाम और पूजनके प्रसारका पता चलता है। बोर्नियोकी श्रीगणेशकी आसन कांस्य मूर्ति विशेष प्रसिद्ध है। चीनमें श्रीगणेशकी दो मूर्तियाँ एक साथ जुड़ी हुई खड़ी मुद्रामें पायी जाती हैं। चीनी भाषामे भगवान् श्रीगणेशका नाम है—'कुआन-शी-तिएन'! जापानमें विघ्नेश श्रीगणेशकी जो मूर्तियाँ मिली हैं, उनके दो अथवा चार हाथ दिखाये गये हैं। जापानी भाषामें भगवान् श्रीगणेशको 'कांगितेन'के नामसे सम्बोधित किया जाता है। चीन और जापानके अतिरिक्त जावामें भी श्रीगणेश-पूजनके प्रमाण मिलते हैं। 'शैवमत'[2]-नामक पुस्तकके लेखकके मतानुसार जावामें ब्राह्मणधर्मका प्रचार प्राचीनकालमें ही हो चुका था। आठवीं शतीके उत्तरार्ध अथवा नवीं शतीके पूर्वार्धतक वहाँ गणेश-पूजाका प्रचार भी हो गया था। जावा-स्थित 'चण्डी-बनोन'-नामक शिवमन्दिरमें ब्रह्मा, विष्णु एवं महेशके साथ गणेशकी मूर्ति भी अङ्कित है। तिब्बतमें भी गणेशकी प्रतिमाएँ पायी जाती हैं। तिब्बतमे शैव एवं बौद्ध—दोनों ही प्रकारके मन्दिरोंमें गणेशजीकी मूर्तियाँ पायी गयी हैं। नेपालमें भी गणेशपूजाके सम्बन्धमें प्रमाण मिले हैं। नेपालकी राजधानी काठमाण्डूमें गणेशकी प्रतिमाएँ पायी गयी हैं। नेपालमें 'सूर्य-विनायक'के रूपमे भगवान् श्रीगणेशकी पूजा की जाती थी। स्याममें भी श्रीगणेशकी प्रतिकृति मिली है। चंपाकी तरह कंबोडियामें शिवोपासनाके प्रमाण उपलब्ध होते हैं। इन क्षेत्रोंमें गणपति-विग्रह पाये जाते हैं। हिंद-चीनमें अन्य देवताओंके साथ गणपतिकी प्रतिमा भी पायी जाती है। वहाँ ऐसे शिलालेख मिले है, जिनसे यह ज्ञात होता है कि उस क्षेत्रमें अनेक शताब्दियों-पूर्व भगवान् गणेशके नामका प्रचार हो गया था। तिब्बत, बर्मा, स्याम, हिंद-चीन, जावा, बाली, बोर्नियो, चीन, जापान तथा खोतानके अतिरिक्त उत्तरी मंगोलियामें भी श्रीगणेश-पूजाका प्रचार

१. 'गणेश-ए मोनोग्राफ ऑफ द एलीफेंट-फेस्ट गॉड'—एलिस गेट्टी, क्लारेन्डन प्रेस, ऑक्सफोर्ड, युनाइटेड किंग्डम।

२. 'शैवमत'—डॉ० यदुवंशी, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद, पटना (१९५५ ई०)।

था। 'पुराण-विमर्श'[३] के लेखकके मतानुसार "नेपालमें बौद्धधर्मके साथ ही गणपति-पूजाका भी प्रचलन है और वहाँसे गणेशोपासनाका प्रसार खोतान, चीनी तुर्किस्तान तथा तिब्बतमें भी हुआ। चीनी तुर्किस्तानसे प्राप्त चतुर्भुज गणेशका भित्ति-चित्र विशेष महत्त्वपूर्ण है। नवम शतीके बाद जापानमें भी श्रीगणेशकी पूजा आरम्भ हुई।" 'पुराण-विमर्श' नामक पुस्तकमें अमेरिकामें भी श्रीगणेशकी मूर्तिके मिलनेका उल्लेख है। इस प्रकार भारतके बाहर भी यत्र-तत्र न्यूनाधिक मात्रामें वक्रतुण्ड श्रीगणेशकी पूजा प्रचलित रही है।

भले ही भगवान् गणेशके नाम तथा गुणोंसे संसारके अधिकांश मानव अपरिचित हों तथा उनकी पूजामात्र भारत एवं भारतेतर कुछ क्षेत्रोंतक ही सीमित हो, परंतु प्राणियोंकी बुद्धि-रूपिणी गुहाओंमें तो ज्योतियोंकी भी ज्योति परमात्मा सदा विराजमान हैं ही। ब्रह्माण्डका कोई ऐसा भाग नहीं है, जहाँ परमब्रह्म श्रीगणेशका निवास न हो तथा कोई ऐसा जीव नहीं है, जो उनसे रहित हो—

> ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
> ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्॥
> (गीता १३। १७)

उदयवर्ष (जापान) में गणेश

(लेखक—डा० श्रीलोकेशचन्द्र, डी० लिट्०)

देवत्वका वह प्रकटीकरण, जिसे हमारी इन्द्रियाँ समझ सकें, गणोंके रूपमें अभिव्यक्त किया जाता है। जो भी गण्य—बुद्धिगम्य हैं, वे गण हैं—'गण्यन्ते बुद्ध्यन्ते ते गणाः' यह गण ही सृष्टिके अस्तित्वका मूलतत्त्व है और इन गणोंका अधिपति 'गणपति' ही सृष्टिका स्वामी है। गजशीर्ष-मानव अर्थात् गणपति लघु ब्रह्माण्डकी महत् ब्रह्माण्डसे एकता अभिव्यक्त करता है, जिसमें महत्को गजके रूपमें चित्रित किया गया है। गणपति लम्बोदर हैं; क्योंकि 'नाना विश्व उन्हींके उदरसे उत्पन्न हुए हैं—तस्योदरात् समुत्पन्नं नाना विश्वम्।' किंतु वे स्वयं इन सबसे परे हैं।

जापानकी आत्माने कोबो दाइशिके विलक्षण व्यक्तित्वके रूपमें पारगामी मार्ग अपने लिये चुना; इसलिये जापानकी गुह्य-प्रणाली अर्थात् मन्त्र-यानमें गणेश भी अन्तर्भूत हो गये हैं। सन् ८०४में कोबो दाइशि (७७४–८३५ ई०) 'धर्मकी खोज'में चीन गया, जहाँ वज्रबोधि और अमोघवज्र-जैसे महान् भारतीय आचार्योंद्वारा मूल ग्रन्थों और भाष्योंके किये गये चीनी अनुवादोंके कारण यह गुह्य-प्रणाली अपने उच्चतम शिखरपर पहुँची हुई थी।

अमोघवज्र या अमोघज्ञान (सन् ७०५–७७४ ई०) एक भारतीय ब्राह्मण था, जो सन् ७२० ई० में चीनकी राजधानी लो-याङ् पहुँचा और लो-याङ्के कुआङ्-फू-मन्दिरमें उसे दीक्षित किया गया। चीनी सम्राट्ने उसपर विशेष कृपा-वृष्टि की और अपने राज-दरबारमें उसे अत्यधिक सम्मान प्रदान किया। युआन्-चाउने अपने 'वाग्मिता और प्रज्ञाके त्रिपिटक-भदन्त अमोघकी संस्मरणावली'में उसे 'प्राचीनों और नवीनोंमें अप्रतिम' कहा है। उसने साम्राज्यके विविध मठोंमें बिखरी हुई संस्कृत पाण्डुलिपियाँ एकत्र करायीं तथा उनका पुनरुद्धार, अनुवाद और प्रचार कराया। वज्रबोधिके अधीन अमोघने 'वज्रधातुकल्प'का मूल्यरूपसे अध्ययन किया। उसके इस वैचारिक विकासका आधारतत्त्व यही बना कि 'आचरण और उपलब्धिकी दृष्टिसे लोक-प्रचलित धर्मकी अपेक्षा मन्त्र-यानकी रीति ही अधिक उपयोगी और कार्यक्षम है।' जटिल मन्त्रयानी ग्रन्थोंको चीनीमें अनूदित करना लगभग असम्भव था। यह अमोघवज्रकी ही प्रतिभा और अपने जीवनमें अधिक समयतक चीनमें रहनेके कारण चीनी भाषापर उसके अधिकारके वशकी बात थी कि कठिन संस्कृत-विषयवस्तु प्रवाहपूर्ण सुन्दर चीनीमें अनूदित की जा सकी। उसने 'वज्रधातुकल्प'के अंशोंका चीनीमें अनुवाद किया, जो 'चिन्-काङ्-तिङ्-ई-चियै-जु-लई-चन्-शिह-तशे-चङ्-य्येन-चङ्-ता-चियाओ-वाङ्-चिङ्' नामसे वज्रशेखर योगसूत्रके प्रथम संग्रहका एक भाग है, जिसका संस्कृत रूपान्तर 'वज्रशेखर-सर्वतथागत-तत्त्वसंग्रह-महायान-प्रत्युत्पन्नभिसम्बुद्ध-महातन्त्रराज-सूत्र' होगा। अतः आगेके लिये वज्रधातुकल्प गुह्य तन्त्र-योगकी विविध ध्यान-पद्धतियोंका आधार बन गया, जिनमें गणेशको सम्मानपूर्ण स्थान मिला हुआ है।

अमोघवज्रके प्रतिभावान् चीनी शिष्य हुई-कुओ

३. 'पुराण-विमर्श'—श्रीबलदेव उपाध्याय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी–१

(सन् ७४६–८०५ ई०) से कोबो दाइशिने मन्त्रयानकी दीक्षा या अभिषेक प्राप्त किया। कोबो दाइशिने मन्त्रयानके नये मार्गका सारतत्त्व लिया, जिसका रोपण तो चीनमें किया गया था, परंतु वह पुष्पित और फलित हुआ जापानमें। सन् ८०६ ई०में जब कोबो जापान लौटा, तब उसमें गहन देवताओंने अवतार ले लिया था। होमने निम्न वासनाओंको समाप्त कर दिया और उसका सम्पूर्ण अस्तित्व एक नयी दृष्टिसे जगमग-जगमग कर रहा था।

वज्रधातुकी विवेचना करनेवाले सूत्रोंके साथ कोबो दाइशि अपने साथ वज्रधातु-मण्डलके रूपमें उनके चित्र भी ले गया। इन्हें हुई-कुओने कोबो दाइशिके लिये 'तत्त्वसंग्रह'के अनुसार प्रसिद्ध चित्रकार ली-चनसे चित्रित करवाया, जिसकी इस कार्यमे सहायता दससे अधिक अन्य चित्रकारोंने की। मूल-मण्डल बहुरंगी था; केन्द्रीय वज्रधातु-मण्डलमें महाभूतमण्डल-नामक केन्द्रीय वर्गके बाह्य-वृत्तमें गणेश या विनायक पाँच रूपोंमें अभिव्यक्त किये गये। इसलिये जापानमें गणेश-पूजाका सर्वप्रथम उल्लेख सन् ८०६ ई० माना जायगा, जिस वर्ष कोबो दाइशि स्वदेश अर्थात् जापान लौटकर आया था।

जापानीमें गणेशके नाम विनायक, शोदेन और कांगितेन हैं। हिजोकीमे सामान्यतः 'विनायक' शब्दका प्रयोग हुआ है। कांगितेनका अर्थ 'सुख-समृद्धि और कुशलताका देवता' है। शोदेनको संस्कृतमें 'आर्यदेव' कहा जा सकता है। इनके अतिरिक्त उनके विशिष्ट रूपोंके पृथक्-पृथक् नाम भी हैं।

वज्रधातु-मण्डलमें गणेशके पाँच रूप इस प्रकार चित्रित हैं—

१—विनायक अथवा विनायक-तेन अथवा कांगि-तेन—जापानीमें जिसका अर्थ है—'भाग्य-देवता'। इसके एक हाथमें मूली है तथा दूसरेमें लड्डू।

२—हिजोकीके अनुसार, जिसमें कोबो दाइशिने मन्त्रयानके सिद्धान्तपर अपनी टिप्पणियाँ संगृहीत की हैं, प्रदक्षिणा उत्तर-पूर्वके कोनेसे आरम्भ की जाती है। पूर्वमें वज्रच्छित्र हैं, जिसे जापानीमें 'कोंगो-जाई-तेन' कहते हैं। हिजोकी इसे 'छत्र-विनायक' कहता है। ये श्वेत छत्रधारी हैं।

३—दक्षिणमे वज्रभक्षण है, जिसे जापानीमें 'कोंगो-जिकी-तेन' कहते हैं। हिजोकीमें इसे 'माल्यविनायक' कहा गया है। यह पुष्प-मालासे अलंकृत है।

४—पश्चिममें 'वज्रवासिन्' है, जिसे जापानीमें 'कोंगो-एतेन' कहते हैं। हिजोकीके अनुसार यह धनुष-बाणधारी विनायक अर्थात् 'धनुर्विनायक' है।

५—उत्तरमें 'जय' है, जिसे जापानीमें 'जोबुकुतेन' कहते हैं। हिजोकीके अनुसार यह खड्गधारी है और इसका वर्ण रक्ताभ है। यह 'खड्ग-विनायक' है।

यह द्रष्टव्य है कि हिजोकीके अनुसार गणेशके सभी रूपाभिधानोंके साथ 'विनायक' संज्ञा दी हुई है। कोबो दाइशिने इसे हुई-कुओसे उस मौलिक परम्पराद्वारा ग्रहण किया होगा, जो पीछेकी ओर अमोघवज्र और वज्रबोधितक पहुँचती है। गणेशके ये पाँचों रूप मन्त्रयानकी रक्षा करनेवाले बीस देवताओंमें सम्मिलित किये गये हैं। इनकी गणना 'कांगोचोयुग-चूर्याकुशुत्सुनेनजुक्यो' में भी की गयी है, जिसका अनुवाद ताङ्वंशके समय सन् ७२३ ई०मे वज्रबोधिने किया था। गणेशके विविध रूपोंके नाम और स्थान ग्रन्थ-ग्रन्थमें थोड़े-थोड़े भिन्न हैं; जैसे कि 'कियाओ वाङ् चिङ'में देखनेको मिलता है। इसका चीनी अनुवाद उत्तर शुङ्वंश-कालमें सन् ९८०-१००० ई०में संस्कृतके 'सर्वतथागततत्त्व-संग्रह'-नामक ग्रन्थसे दानपालने किया। पञ्च-गणेशोंकी गणना 'कोंगोजुरोकुशोन'में भी की गयी है।

वज्रधातु-मण्डलके अन्य नौ भागोंमे पञ्च-गणेशोंमेंसे प्रत्येकके और रूपोंका उल्लेख भी है। इन नौ भागोंके नाम इस प्रकार हैं—१—वज्रधातु-महाभूतमण्डल, २—समयमण्डल, ३—सूक्ष्ममण्डल, ४—पूजामण्डल, ५—चतुर्मुद्रामण्डल, ६—एकमुद्रामण्डल, ७—नयमण्डल, ८—त्रैलोक्यविजय-कर्ममण्डल तथा ९—त्रैलोक्यविजय-समयमण्डल। ऊपर बताये रूपोंका वर्णन और अङ्कन पहले महाभूतमण्डलके अनुसार है।

दूसरे समय-मण्डल अर्थात् धारणी-मण्डलमें गणेशके रूप, महाभूतमण्डलके रूपोंका समय अर्थात् गुह्य रूप है। इसमें प्रत्येक देवताको किसी प्रतीक अथवा उसकी एक या एकाधिक विशिष्ट वस्तुओंके अङ्कनसे प्रकट किया गया है। 'समय'का अर्थ व्रत या संकल्प या देवताकी मूलभूत विशिष्टता है। समय-रूपमें पञ्च-गणेशोंके अङ्कनमें उनके विशेष चिह्नोंको कमल-पत्रोंपर अङ्कित किया गया है, जिनसे किरणें प्रतिभासित हो रही हैं। विनायकका प्रतीक लड्डू रखा गया है। इन्हें लेखककी 'दि इसोटेरिक इकानोग्राफी आफ जैपेनीज मंडल्स' पुस्तकमें भी देखा जा सकता है।

तीसरे सूक्ष्म-मण्डलमे देवताओंको वज्र अर्थात् परमके सूक्ष्म और अनश्वर ज्ञानके रूपमें दिखाया गया है । इसीलिये 'शे पा हुएई चे कुएई' इसे 'सूक्ष्म-वज्र-मण्डल' कहता है । चित्रोंमे देवताओंको त्रिशूली वज्रपर अधिष्ठित दिखाया गया है । बीस देवता, जिनमे पञ्च-गणेश भी हैं, वज्रपर अधिष्ठित नहीं हैं, इसलिये उनके रूप, हस्तमुद्राओंमें सामान्य परिवर्तनके अतिरिक्त, प्रथम महाभूत-मण्डलके समान ही हैं । इनके चित्र भी लेखककी अंग्रेजी पुस्तक 'दि इसोटरिक इकानोग्राफी आफ जैपेनीज मण्डलस' मे देखे जा सकते हैं ।

चौथे पूजामण्डलमे पञ्च-गणेशोंकी स्थिति पहले मण्डलके समान ही है । इन्हे भी उपर्युक्त पुस्तकमे देखा जा सकता है । मूल काष्ठचित्रोंमे, जिनसे पुनरङ्कन किया गया है, माल्य-विनायक और खड्ग-विनायक दो बार हैं तथा छत्रविनायक और धनुर्विनायक नहीं हैं । विनायक वहाँ ६७२ संख्या-पर है ।

आठवें अर्थात् त्रैलोक्यविजय-कर्ममण्डलमें भी देवाङ्कन प्रथम महाभूत-मण्डलके ही समान है । नवें त्रैलोक्यविजय-समय-माडलमे पञ्च-गणेशोंका अङ्कन द्वितीय समय-मण्डल-जैसा है । इन्हे कमलपत्रपर आसीन अङ्कित किया गया है, जिसके चतुर्दिक् ज्वालाएँ बनायी गयी हैं । इन्हे भी उपर्युक्त पुस्तकमें देखा जा सकता है ।

पञ्च-गणेशोंके चित्राङ्कनको दो वर्गोंमे रखा जा सकता है—(१) मानवपशु-आरोपित, जैसा भारतमे है और (२) प्रतीक या समयरूपी, जिसकी परम्परा भारतमे लुप्त हो गयी है; यद्यपि मूल संस्कृत-ग्रन्थोके चीनी और तिब्बती अनुवादोसे यह देखी जा सकती है ।

वज्रधातुमण्डलके अतिरिक्त कोबो दाइशि 'महाकरुणगर्भ-मण्डल' भी लाया था । इसके 'वज्रलोक'मे गणपतिको परशु और मूलीद्वारा अङ्कित किया गया है । जापानीमे इसका नाम 'विनायक' तथा सिद्धम्-लिपिमे 'गणपत' दिया गया है और इसका बीज 'ग' है ।

९ वीं शताब्दीकी हस्तलिपिमें परशु और मूलीवाले गणेशका एक सुन्दर चित्र क्योतोके दाइगोजी-विहारमें रखा हुआ है । यह हस्तलिपि सन् ८२१ ई० में लिखी गयी तथा इसका शीर्षक 'शिशु-गोम-होनजन-नरबिनी-केनजोकु-शुजो' अर्थात् 'चतुर्विध होमके प्रधान देवता और उनके परिचरोंके चित्र' है ।

जापानी पूजा-पद्धतिमें भक्तके अन्तरको रूपान्तरित करनेके लिये देवताओंके रूपकी स्थितिको मनमें बैठानेमे मुद्राओंका अविभाज्य अंश है । जापानी ग्रन्थ 'दाइनिचिक्यो'के अनुसार मुद्राएँ हस्त-संकेत, विचारों, समर्पणों, धारणी-मन्त्रों—सभी कुछको, जो रूपसे परे है, दृश्यमान रूप प्रदान करती हैं, जिससे चिन्तनके क्षेत्रमें भौतिक जगत्से परेकी स्थिति सुदृढ़ हो जाती है । पूजाके लोकप्रिय मुद्रा-ग्रन्थमें, जिसका नाम 'शिंगो-मिक्क्यो-शु-इन-शू' अर्थात् 'मन्त्रयान-मुद्राओंके उद्रेखणोंका संग्रह' है, विनायककी मुद्रा भी दी हुई है ।

शोदेन (आर्यदेव) या गणपतिकी भी दो मुद्राएँ हैं । महाकरुणोद्भव-महामण्डलके 'बुसेत्सु-दईशीरुशान-जोबुत्सु-जिम्बेन-काजी-क्यों-शु-शिंगो-ग्यो-दाइही-तइजोग्गो-दई-मन्दर-ओ-फुत्सु-नेजु-गिकी'-नामक कल्पमे पञ्च-गणेशोंकी अलग-अलग मुद्राएँ और मन्त्र दिये गये हैं—

१—विनायक और उसकी देवी । साथमे 'ओं वज्र विनाय हूम्' मन्त्र है; २—वज्रछिन्न और वज्रछिन्नी, ३—वज्रभक्षण और वज्रभक्षिणी, ४—वज्रवासिन् और वज्रवासिनी तथा ५—वज्रजय और वज्रजयी ।

गणेशको बीजरूपमे भी चित्रित किया गया है । बीज अक्षरको जापानीमें 'शुजि' कहते हैं; बीज-मन्त्रके उच्चारणसे भक्तमें उसकी शक्ति और सत्त्व व्याप्त हो जाते हैं और उस देवता और भक्ति-कर्तामे आध्यात्मिक सांनिध्य स्थापित हो जाता है । क्वाम्बुन-युग (सन् १६६१—७३ ई०) मे भिक्षु चोजेनद्वारा प्रकाशित शुजि-शु' बीज-संग्रहमे पृष्ठ ५९ पर गणेशका बीज 'गः' या 'गःगः'-की यह परम्परा आजतक सुललित सिद्धम्-लिपिमे दी हुई है । यह बीज-परम्परा यथावत् चली आ रही है । 'बोनशु-शित्तान-शुजि रुइशु' नामक आधुनिक 'सिद्धम्-बीजसंग्रह'मे चोजेनद्वारा बनाये हुए बीज उद्धृत किये गये हैं । गः-द्वय गणेशके दो रूपोके स्वरूप चित्रणके प्रतीक हैं । उसी ग्रन्थमें दूसरा बीजाक्षर 'कं' है, जो 'ॐ गः गः हूम् स्वाहा' मन्त्रसे संयुक्त है ।

कोबो दाइशिद्वारा सन् ८०६ ई०मे चीनसे लाये गये मूल बहुरंगी-मण्डलसे लगभग सन् ८२४ ई०मे टैंको-युगमे ताकाओ-मण्डल चित्रित किया गया । इसकी अनुकृति बैंगनी कौशेय वस्त्रपर सोने-चाँदीकी रेखाओंमे की गयी । इस समय यह जिंगोजी

जापानकी मूर्तिकलामें प्राप्त श्रीगणेशके कुछ रूप

'विनायक'-विग्रह [पृष्ठ ४५६

'कोबोदाइशि'के 'वज्रलोक'के अनुसार

(हाथमें परशु और मूली लिये हुए)

त्रिमुख-चतुर्भुज गणेश [पृष्ठ ४५८

(दो हाथ जुड़े हुए, अन्य दोमें मूली और लड्डू)

सुवर्णगणपति [पृष्ठ ४५८

(हाथमें अङ्कुश, गदा, परशु, लड्डू, खड्ग और वज्र-असि लिये हुए)

युग्म-गणेश [पृष्ठ ४५८

विहारमे सुरक्षित है। इसमे सभी पञ्च-गणेश अपने सम्पूर्ण रूपोंमें वज्रधातु-मण्डलके छः उपमण्डलोंमे चित्रित किये गये हैं।

मूल बहुरंगी-मण्डलकी दूसरी प्रति तोजी-विहारमे रखी हुई है । ९वीं शताब्दीके अन्तमे इसकी पहली प्रतिलिपि तैयार की गयी। इसकी खोज एक काले लाक्षित बक्समे १९३४ ई०मे की गयी, जिसके ढक्कनकी पीठपर ८९९ ईस्वीका लाक्षित अभिलेख भी है। यह शिंगोन-इन-मन्दिरमे रखी हुई है। इसमे पञ्च-गणेशोंके सभी रूप बनाये हुए हैं।

केन्कूय-युग (११९०—११९८ ई०) मे मूल तोजी-मण्डलसे कौशेय(रेशमी)-वस्त्रपर वज्रधातु-मण्डल चित्रित किया गया। इसमे छः उपमण्डलोंमें आये हुए पञ्च-गणेशोंके सभी रूप विद्यमान हैं । वज्रधातु-मण्डलकी निम्नलिखित हस्त-लिपियोंमे भी पञ्च-गणेश अपने लोकप्रचलित तथा गुह्य रूपोंमे दिखाये गये हैं।

१—कोजानजी-हस्तलिपिमे कामाकुरा-कालकी समाप्तिके लगभग १४ वीं शताब्दींमे ताकाओ-मण्डलकी नयी प्रतिलिपि तैयार की गयी, जो क्याताके कोजानजी-विहारको सौंपी गयी।

२—केईशो-इन-हस्तलिपिमे १६९२ ई०मे भिक्षु शूकाकुने दाता केईशो-इनके लिये मण्डल चित्रित किया। यह प्रति तोजी-विहारमे उपयोग की जाती है।

३—१७७३ ई०मे काष्ठ-खण्डोसे छपाई करानेके लिये कोया-सानके भिक्षु जोतोने शिमिजु नोबुमाससे तोजी-मण्डलकी प्रतिलिपि करायी। इसका आकार घटाकर मूल-मण्डलका चौथाई रखा गया। काष्ठखण्ड आगमे जलकर नष्ट हो गये।

४—हासेदेरा-हस्तलिपिमे १८३४ ई०मे कोबो दाइशिके निर्वाणकी १०००वीं वार्षिकीके स्मारकस्वरूप बुजान-केन्द्रके भिक्षु युको और काइन्योने चित्रकार तोशुकू हासेगावाको तोजी-मण्डलकी प्रतिलिपि करनेके लिये नियुक्त किया।

५—ओमुमे काष्ठ-मुद्रित संस्करणमें १८६९ ई०मे शिमा-प्रान्तके सोम्पोने भिक्षु होऊनसे काष्ठफलक तैयार कराये। शुद्धताकी दृष्टिसे ये बहुत सुन्दर हैं।

वज्रधातु-मण्डलपर लिखे गये विभिन्न ग्रन्थोंमे पञ्च-गणेश अपने विविध रूपोंमे चित्रित किये गये हैं—

१—कोंगो-काइ-मन्दर, दाईगोजी-विहार क्योतोमें रखाया हुआ।

२—ईशीयामार्जा-विहारमे रखे हुए कोंगो-काइ-सम्मय-मन्दर-जूमे पञ्च-गणेशोंके केवल समय-रूप दिखाये गये हैं।

३—सम्मय-ग्यो-होरिन-इन-ब्रोनमे, जो पहले होरिन-इन-विहारमे थी और इस समय दाइगोजी-विहार, क्योतोमें सुरक्षित है, पञ्च-गणेशोंके प्रतीक रूप चित्रित किये गये हैं।

४—गोहित्स-शिशु-गोमा-दान-सजुशिची-सोन-केगी-सम्मय-ग्यो, अर्थात् 'चार प्रकारकी होम-वेदिकाओंके लिये सैंतीस देवताओं तथा भद्रकल्पके सोलह बोधिसत्त्वोंके समय-प्रतीक' जो क्योतोके दाइगोजी-विहारमे रखी हुई है, पञ्च-गणेशोंको उनके समय-रूपमे चित्रित किया गया है।

महाकरुणा-गर्भ-मण्डलके विनायकके प्रधान रूप (मूली और परशुयुक्त) तथा वज्रधातु-मण्डलके विविध रूपोंके अतिरिक्त जापानमे गणेशके अन्य रूप भी मिलते हैं। वज्रधातु-मण्डलमे गणेशके रूप द्विभुज हैं, परंतु अन्यत्र गणेश चतुर्भुज या षड्भुज या युग्म-रूपमे चित्रित किये गये हैं। वज्रधातु-मण्डलमे पञ्चगणेशोंके अतिरिक्त चार गणेशोंका भी अङ्कन उपलब्ध होता है, जिनका सर्वप्रथम १२ वीं शतीमे शिनकाकु, १३ वीं शतीमे शोचों और उसके बाद जु-जोगो-द्वारा चित्रण किया गया है। इनमेसे कुछ अलग-अलग अन्य ग्रन्थ-मालाओंमे भी चित्रित किये गये हैं, जिनका वर्णन आगे दिया जा रहा है।

चार गणेश

शिनकाकु (११८० ई०) ने बेस्सोनजाकीमे देवताओंका वर्णन किया है, जो इस समय निन्नाजी-विहार, क्योतोकी ५७ हस्तलिपियोंमे सुरक्षित है। अपने ग्रन्थराजमे शिनकाकुने गणेश-मूर्तियोंका वर्णन किया है, उनका मन्त्र दिया है तथा चार रूपोंमे स्थानक शोदेन या गणेशका अङ्कन किया है।

१३ वीं शताब्दींमे तेन्दाई-सम्प्रदायके शोचो (१२०५—१२८२ ई०)ने देवताओंके विषयमे अपना 'असब-शो' नामक एक विशाल ग्रन्थ लिखा। असब मन्त्रमे 'अ' (अज) अजन्मे तथागत, 'स' कमल तथा 'ब' वज्रके लिये हैं; ये तीनों बीजाक्षर 'महाकरुणोद्भव-मण्डल'के प्रत्येक देवताके लिये प्रयुक्त होते हैं। इस ग्रन्थके १४९वें खण्डमे लेखकने 'कांगितेन' या गणेश और उनकी पूजाका वर्णन किया है । पहले सिद्धम्-लिपिमें संस्कृत-नाम 'गणपति' दिया गया है। उसके बाद जापानी-नाम 'विनायक' और

'श्रौदेन' दिये गये हैं। चार गणेशोंके चित्रोंमेंसे एकमें गणेश-पूजाकी तीन वेदियोंकी व्यवस्था है, जो क्रमशः प्रभात, मध्याह्न तथा रात्रिपूजासे सम्बद्ध है; दूसरेसे विनायकदेवकी सामान्य पूजा कढ़ी (रसा), भात, रोटी, मूली और होमाग्नि आदिसे संयुक्त है।

खण्ड १०५ में उदक-गणपतिकी पूजाका विधान वर्णित है। 'ताइशो जुजो' के नवें खण्डके पृष्ठ ४८७पर उदक-गणपतिकी वेदीकी व्यवस्था दी गयी है। जुजो-शो अर्थात् चुने हुए चित्र दस आवलियोंमें एन्तसुजी-विहार (कोयमानमें) सुरक्षित हैं और उनमें चार गणेशोंके चित्र दिये हुए हैं—

१—षड्भुज-गणेशके हाथोंमें गदा, हस्तिदन्त, पाश, खड्ग, कमण्डलु और चक्र हैं।

२—चतुर्भुज-गणेशके चार हाथोंमें लड्डू, परशु, गदा और हस्तिदन्त हैं।

३—सुवर्णगणपतिके छः हाथोंमें अङ्कुश, गदा, पाश, लड्डू, खड्ग और वज्र-असि हैं।

४—युग्मगणेश।

अन्य रूप

शिनकाकुने दो खण्डोंमें 'शोसोन-जुजो' अर्थात् 'देव-चित्रावली' भी तैयार की, जो तोजी-विहार, क्योतोके कॉर्ची-इन-मन्दिरमें सुरक्षित है। इसमें गणेशके छः रूप चित्रित हैं, जिनमें षड्भुजगणेश तथा सुवर्णगणपतिका एक अन्य रूप—ये दो नये हैं।

काकुजेनने (११८३–१२१३ के लगभग) सभी देवताओंका विस्तृत अध्ययन लेखबद्ध किया और उनके चित्र भी बनाये। ये क्योतोके कानूजी-विहारमें १३६ आवलियोंमें सुरक्षित हैं तथा कोयमान और तोक्योके विहारोंमें भी इनकी प्रतिकृतियाँ उपलब्ध हैं। इसमें विस्तृत वर्णनसहित गणेशके नौ विभिन्न रूप चित्रित किये गये हैं। १ युग्मगणेश, २ चतुर्भुजगणेश।

१—चतुर्भुज-गणेश—इनके हाथोंमें पाश, (?), वज्र और परशु हैं।

२—षड्भुज-गणेश—इनके हाथोंमें पाश, गदा, अङ्कुश, खड्ग, लड्डू और चक्र हैं।

३—षड्भुज-गणेश—इनके हाथोंमें गदा, अङ्कुश, पाश, खड्ग, लड्डू और चक्र हैं।

४—त्रिमुख-चतुर्भुज-गणेश—इनके दो हाथ जुड़े हुए हैं और अन्य दोमें मूली और लड्डू हैं।

५—त्रिमुख-चतुर्भुज-गणेश—इनके चार हाथोंमें गदा,''', खड्ग, लड्डू, हैं।

६—युग्मगज-शीर्ष-वराहशीर्ष गणेश—यह हाथीके मस्तक और वराहके मस्तकसे शोभित युग्मगणेश है।

गणेशके ऊपर वर्णित रूप अन्य ग्रन्थोंमें भी दुहराये गये हैं, जिनमें कुछका वर्णन नीचे दिया जाता है। इनमें कोई विशिष्टता तो नहीं है, परंतु उनके हाथोंके क्रममें थोड़ा-बहुत अन्तर है।

तोजी-विहारमें युग्मगणेशकी एक शोतेन-जो या परत है। यह चिनकाई (१०९१–११५२ ई०) ने बनायी। ताइशो-जुजो भाग ७ में इसका उल्लेख है।

१४वीं शताब्दीमें रयोसोन (१२७९–१३४९ ई०) ने १६७ आवलियोंके 'ब्याकु-होक्कु-शा' अर्थात् श्वेतमणि मौक्तिक परम्पराएँ बनायीं, जो कांगो-सम्मई-इन विहार, कायसानमें सुरक्षित हैं। इसके १३० से १३४ खण्डोंमें गणेश-पूजा-विधिका वर्णन है।

'शिका-शो-जुजो' अर्थात् 'चार आचार्योंद्वारा उतारे गये चित्रों'में गणेशके चार रूप दिये गये हैं—

१—षड्भुज-गणेश,
२—विनायक (मूली और परशुसे युक्त),
३—सुवर्णगणपति और
४—षड्भुज युग्मरूप।

एइहानद्वारा संकलित 'जो-वोदाई-शू'के एक अध्यायमें गणेशकी साधनापर प्रकाश डाला गया है।

कानाजावा-बुन्को, कानाजावामें रखायी हुई 'शोजोन-जुजो-शू' की तीन आवलियोंमें गणेशके चार रूप चित्रित किये गये हैं—१-षड्भुज-गणेश, २-युग्म-गणेश, ३-विनायक और ४-षड्भुज-गणेश।

इस प्रकार ज्ञात होता है कि जापान गणेशके मूर्ति-अङ्कनमें बहुत सम्पन्न है। जापानमें अङ्कित विभिन्न मूर्तियोंका सार इस प्रकार दिया जा सकता है—

१—विनायक (परशु और मूलीयुक्त)—

पञ्चगणेश (सभी द्विभुज)

२—विनायक (लड्डू और मूली)।

३—छत्र-विनायक या वज्रच्छिन्न (छत्र)।

४—माल्य-विनायक या वज्रभक्षण (माला)।

५—धनुर्विनायक या वज्रवासिन् (धनुष और वाण)।

६—खड्ग-विनायक या (जय खड्ग)।

सभीके गुह्य रूप, बीज और मुद्राएँ हैं।

चार गणेश

७—षड्भुज-गणेश (हाथोंमें गदा, हस्तिदन्त, पाश, खड्ग, कमण्डलु, चक्र)।

८—चतुर्भुज-गणेश (हाथोंमें लड्डू, परशु, गदा, हस्तिदन्त)।

९—सुवर्णगणपति (छः हाथोंमें अङ्कुश, गदा, पाश, लड्डू, खड्ग और वज्र-असि)।

१०—युग्मगणेश।

अन्य रूप

११—षड्भुज गणेश (हाथोंमें चक्र, हस्तिदन्त, गदा, खड्ग, कमण्डलु, पाश)।

१२—सुवर्णगणपति (छः हाथोंमें मूली, वज्र, पाश, खड्ग, लड्डू, वज्र-असि),

१३—चतुर्भुज-गणेश (हाथोंमें पाश, वज्र, परशु तथा ··)।

१४—षड्भुज-गणेश (हाथोंमें पाश, गदा, अङ्कुश, खड्ग, लड्डू, चक्र)।

१५—षड्भुज-गणेश (हाथोंमें गदा, अङ्कुश, पाश, खड्ग, लड्डू, चक्र (१४ का एक विभेद)।

१६—त्रिमुख-चतुर्भुज-गणेश (दो हाथ जुड़े हुए, अन्य दो हाथोंमें मूली और लड्डू)।

१७—त्रिमुख-चतुर्भुज-गणेश (हाथोंमें गदा, खड्ग, लड्डू,)।

१८—युग्म-गजशीर्ष-वराहशीर्ष गणेश।

जापानमें आजकल भी गणेशकी पूजा की जाती है। ताकओके जिंगोजी-विहारमें गुह्य युग्म-गणेशको जो एक विशेष मन्दिर समर्पित है, प्रत्येक वर्ष उनका पूजन होता है। अन्य मन्त्रयानी-विहारोंमें भी गणेशको समर्पित किये गये विशेष मन्दिर हैं। कोयसानमें पिछली बार ठहरनेपर मैं रेल्वे स्टेशन जानेवाली बसकी प्रतीक्षामें एक बेंचपर बैठा था। जिज्ञासावश भीतर दूकानमें गया तो देखा, वहाँ 'श्वेत-काष्ठके गणेशकी एक स्थानक-प्रतिमा रखी है। बारंबार देनेके लिये कहनेपर भी दूकानदार केवल मुस्कराता और विनम्रतापूर्वक वन्दना करता रहा। खेद है कि मेरी इच्छा पूरी नहीं हो सकी। गणेशकी अतिप्लावी करुणाकी आभा जापानके पूजामय हृदयोंमें अभी भी जगमगा रही है।

(रूपान्तरकर्ता—श्रीनाथूरामजी वर्मा)

मूषकध्वजके ध्यानका माहात्म्य

एकदन्तं चतुर्हस्तं पाशमङ्कुशधारिणम्। अभयं वरदं हस्तैर्बिभ्राणं मूषकध्वजम्॥
रक्तं लम्बोदरं शूर्पकर्णकं रक्तवाससम्। रक्तगन्धानुलिप्ताङ्गं रक्तपुष्पैः सुपूजितम्॥
भक्तानुकम्पिनं देवं जगत्कारणमच्युतम्। आविर्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात्परम्॥
एवं ध्यायति यो नित्यं स योगी योगिनां वरः।

(गणपत्यथर्वशीर्षोपनिषद्)

'एकदन्त, चतुर्भुज, चारों हाथोंमें पाश, अङ्कुश, अभय और वरदानकी मुद्रा धारण किये हुए तथा मूषक-चिह्नकी ध्वजा लिये हुए, रक्तवर्ण, लंबे उदरवाले, सूप-जैसे बड़े-बड़े कानोंवाले, रक्तवस्त्रधारी, शरीरपर रक्त चन्दनका लेप किये हुए, रक्त पुष्पोंसे भलीभाँति पूजित, भक्तके ऊपर अनुकम्पा करनेवाले देवता, जगत्के कारण, अच्युत, सृष्टिके आदिमें आविर्भूत, प्रकृति और पुरुषसे परे मूषकध्वज श्रीगणेशजीका जो नित्य ध्यान करता है, वह योगी सब योगियोंमें श्रेष्ठ है।'

गाणपत्य-सम्प्रदाय

(लेखक—श्रीरासमोहन चक्रवर्ती, एम्० ए०, पुराणरत्न, विद्याविनोद, पी-एच्० डि०)

गणेशका पर्यायवाची 'गणपति'-शब्द अत्यन्त प्राचीन है। ऋग्वेद २। २३। १ मन्त्रमें 'गणपति' शब्दका प्रथम बार उल्लेख हुआ है—'गणानां त्वा गणपतिं हवामहे'। तैत्तिरीय-आरण्यकके १०। १। ५ मन्त्रमें भी इस देवताके गायत्रीमन्त्रमें 'वक्रतुण्ड' और 'दन्ती'-शब्दका उल्लेख हुआ है। जैसे—

'तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥'

इससे ज्ञात होता है कि गणेश-उपासना अति प्राचीन कालसे हिंदू-समाजमें प्रचलित है। पुराणोंमें शिवपुराण, स्कन्द-पुराण, अग्निपुराण तथा ब्रह्मवैवर्त्तपुराण आदिमें गणेशजीके सम्बन्धमें बहुत-सी आख्यायिकाएँ, तत्त्वचिन्तन और पूजा-पद्धतियाँ आदि मिलती हैं। गणेशजीके नामसे एक उपपुराण भी है, जिसका नाम 'गणेशपुराण' है। गणपति सर्वतोभावेन जन-साधारणके देवता हैं तथा यह भी उनकी प्रतिष्ठाका एक कारण है। इसका एक दूसरा कारण यह था कि वे केवल 'विघ्नराज' या 'विघ्नविनाशक'के रूपमें ही प्रसिद्ध न थे, बल्कि सिद्धिदाताके रूपमें भी उनकी ख्याति थी। यह विश्वास भी जन-साधारणमें बद्धमूल रहा कि उनका स्मरण करके कोई शुभ कार्य प्रारम्भ करनेपर वह पूर्णतः और बिना किसी विघ्न-बाधाके सुसम्पन्न होगा तथा वाञ्छित फलकी प्राप्ति होगी, इस कारण सनातनमतावलम्बी देवसमूहके अन्तर्गत होते हुए भी गणेशजीने बौद्ध और जैनमतावलम्बियोंके देवताओंमें भी श्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया है।

सनातनमतावलम्बियोंमें मुख्यतः पाँच सम्प्रदाय हैं—वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर और गाणपत्य, जो क्रमशः भगवान् विष्णु, भगवान् शिव, भगवती शक्ति, भगवान् सूर्य और भगवान् गणेशकी आराधना मुख्य रूपमें करते हैं। गाणपत्य-सम्प्रदायके साधक गणपतिकी ही परब्रह्मके रूपमें भावना तथा उपासना करते हैं। वे छः दलोंमें बँटे हैं और एक-एक दल पृथक्-पृथक् रीतिसे गणपतिकी उपासना करता है—यथा महागणपति, हरिद्रागणपति, उच्छिष्टगणपति, हेरम्बगणपति, स्वर्णगणपति और संतान-गणपति। आनन्दगिरि या अनन्तानन्दगिरि-रचित 'शंकर-विजय' काव्यके डिण्डिम-भाष्यमें भाष्यकार धनपतिने गाणपत्य-सम्प्रदायकी विभिन्न शाखाओंका जो संक्षिप्त विवरण दिया है, उससे ज्ञात होता है कि वे वामाचारी कौल-तन्त्रके अनुयायी थे। उनके मतसे गणेश आनन्दस्वरूप परमात्मा हैं तथा ब्रह्मा आदि देवता उनके अंशमात्र हैं। इस अंश-अंशीमें स्वरूपतः पार्थक्य नहीं है। यह उनके मतसे श्रुति-सम्मत है। यथा—

आनन्दात्मा गणेशोऽयं तदंशाः पद्मजादयः।
अंशांशिनोरभेदस्तु वेदे सम्यक् प्रकीर्तितः॥

कुछ विद्वानोंके मतसे आद्य शंकराचार्यके अद्वैत मतके प्रसारसे गाणपत्य-सम्प्रदायकी मान्यताएँ भी प्रभावित हुईं और गणपति-उपासनाका विस्तार कुछ अवरुद्ध हो गया; किंतु वह उपासना लुप्त न हुई। पूर्व-बङ्गके रामपालके ध्वंसावशेषमें प्राप्त एक मध्ययुगीय हेरम्ब-गणपतिकी प्रस्तरमूर्तिसे उपर्युक्त बात प्रमाणित होती है।

श्रीमत्कृष्णानन्द आगमवागीश (१६ वीं शताब्दी) ने अपने सुप्रसिद्ध 'तन्त्रसार'-नामक बंगला तान्त्रिक ग्रन्थके चतुर्थ परिच्छेदमें एक 'गणेशस्तोत्र'का संकलन किया है, जिसमें गाणपत्य-सम्प्रदायमें प्रचलित तत्त्वभावनाका सुन्दर निदर्शन हुआ है।

श्रीगणेश वेदान्तप्रतिपाद्य ब्रह्मतत्त्व हैं। वे प्रणव-स्वरूप हैं। इस सम्बन्धमें गणेश-स्तोत्रमें लिखा है—

ओंकारमाद्यं प्रवदन्ति संतो वाचः श्रुतीनामपि यं गृणन्ति।
गजाननं देवगणानताङ्घ्रिं भजेऽहमर्धेन्दुकृतावतंसम्॥

"सत्पुरुष जिनको आदि अक्षर 'ॐ' कहते हैं तथा श्रुतियोंके वचन भी जिनका स्तवन करते हैं, देवगण जिनके पाद-पद्ममें प्रणत होकर रहते हैं और अर्द्धचन्द्र जिनके सिरका आभूषण है, मैं उन गजाननका भजन करता हूँ।"

'तन्त्रसार'के द्वितीय परिच्छेदमें विभिन्न गाणपत्य-सम्प्रदायोंके उपास्य (१) महागणेश, (२) हेरम्बगणेश, (३) हरिद्रा-गणेश तथा (४) उच्छिष्ट-गणेशके मन्त्र, ध्यान-पूजा और प्रयोगविधि विस्तृत रूपसे वर्णित हैं। गाणपत्य-सम्प्रदायकी छः शाखाओंमेंसे चार शाखाओंकी पूजा-पद्धतिकी एक झलक संक्षेपमें यहाँ प्रस्तुत की जा रही है।

(१) महागणेश या महागणपति

'तन्त्रसार'मे महागणेशके विविध ध्यान और मन्त्र दीख पड़ते हैं—(क) महागणपति दशभुज और रक्त वर्णके हैं तथा (ख) प्रकारान्तरसे महागणपति चतुर्भुज और गौरवर्ण भी हैं।

महागणपतिलोक—'तन्त्रसार'मे 'महागणपति-लोक'का निम्नोक्त वर्णन देखा जाता है—

नवरत्नमयं द्वीपं स्मरेदिक्षुरसाम्बुधौ।
तद्वीचिधौतपर्यन्तं मन्दमारुतसेवितम्॥
मन्दारपारिजातादिकल्पवृक्षलताकुलम्।
उद्भूतरत्नच्छायाभिररुणीकृतभूतलम्॥
उद्यद्दिनकरेन्दुभ्यामुद्भासितदिगन्तरम्।
तस्य मध्ये पारिजातं नवरत्नमयं स्मरेत्॥
ऋतुभिः सेवितं षड्भिरनिशं प्रीतिवर्द्धनैः।
तस्याधस्तान्महापीठे रचिते मातृकाम्बुजे॥
षट्कोणान्तस्त्रिकोणस्थं महागणपतिं स्मरेत्॥
(द्वितीय परिच्छेदमें उद्धृत 'शारदातिलक' १३। ३२—३४)

'साधक ध्यानमें देखे कि इक्षुरसमय सिन्धुमे नवरत्नमय द्वीप है। इस द्वीपका प्रान्तभाग उस सिन्धुकी लहरोंसे प्रक्षालित और मन्द-मन्द समीरणसे परिसेवित है तथा वह मन्दार, पारिजात और कल्प-वृक्षकी लता आदिसे परिपूर्ण है। उद्भूत रत्नोंकी कान्तिसे उस द्वीपका भूतल अरुणीकृत है तथा उदीयमान सूर्य और चन्द्रके द्वारा दिग्-दिगन्तर आलोकित हैं। उस द्वीपके मध्यभागमें नवरत्नमय पारिजात-वृक्षका चिन्तन करे। उस स्थानकी प्रीतिवर्धिनी छः ऋतुएँ निरन्तर सेवा करती हैं। उस पारिजात-वृक्षके नीचे एक महापीठ है। उसके ऊपर पञ्चाशत्-मातृका (वर्ण) मय कमल अङ्कित है। उसकी कर्णिकामे षट्कोण है और उसके भीतर एक त्रिकोणमण्डल है, जिसमें महागणपति विराजमान हैं, उनका स्मरण करे।'

(क) दशभुज, रक्तवर्ण महागणपतिका ध्यान इस प्रकार है—

हस्तीन्द्राननमिन्दुचूडमरुणच्छायं त्रिनेत्रं रसा-
दाश्लिष्टं प्रियया सपद्मकरया स्वाङ्कस्थया संततम्।
बीजापूरगदाधनुस्त्रिशिखयुक्चक्राब्जपाशोत्पल-
व्रीह्यग्रस्वविषाणरत्नकलशान् हस्तैर्वहन्तं भजे॥
(तन्त्रसार, परि० २; शा० ति० १३। ३६)

'श्रीमहागणपतिका मुख श्रेष्ठ हाथीका है। उनके सिरमें अर्द्धचन्द्र विराजित है। उनके देहकी कान्ति अरुणवर्णकी है। वे त्रिनयन हैं और अपनी गोदमे स्थित पद्महस्ता प्रियाके द्वारा सप्रेम आलिङ्गित हैं। वे दस भुजाओंमे क्रमशः दाड़िम, गदा, धनुष, त्रिशूल, चक्र, पद्म, पाश, उत्पल, धान्यगुच्छ, स्वदन्त और रत्नकलश धारण किये हुए हैं; इस प्रकारके महागणपतिका ध्यान करे।'

गण्डपालीगलद्दानपूरलालसमानसान्।
द्विरेफान् कर्णतालाभ्यां वारयन्तं मुहुर्मुहु॥
कराग्रधृतमाणिक्यकुम्भवक्त्रविनिःसृतैः।
रत्नवर्षैः प्रीणयन्तं साधकान् मदविह्वलम्।
माणिक्यमुकुटोपेतं रत्नाभरणभूषितम्॥
(तन्त्रसार, परि० २ तथा शा० ति० १३। ३७-३८)

'महागणपतिके गण्डयुगलसे जो मदप्रवाह झर रहा है, उसका पान करनेकी लालसासे युक्त भ्रम-समूह निरन्तर उसके चारों ओर भ्रमण करता रहता है। वे कर्ण-संचालनके द्वारा उन भ्रमरोंका बारंबार निवारण करते रहते हैं। वे अपने हाथके अग्रभागमें धारण किये हुए माणिक्य-कुम्भसे विनिस्सृत रत्नोंकी वर्षाके द्वारा साधकोंको परितृप्त करते हैं। वे स्वयं मदविह्वल रहते हैं। उनके मस्तकपर माणिक्य-निर्मित मुकुट विराजित है और उनके सर्वाङ्ग रत्नाभरणोंसे भूषित हैं। महागणपतिके इस रूपका मैं ध्यान करता हूँ।'

उपर्युक्त ध्यानसम्मत महागणपतिका अष्टाविंशति अक्षरोंका मन्त्र है—**'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वर वरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा।'**

(ख) महागणपतिका ध्यान—

इसमें मुक्ताके समान गौरवर्ण, चतुर्भुज गजाननका क्रोधमें स्थित शक्तिसहित ध्यान करते हुए द्वादशाक्षर मन्त्र-के जपका विधान है—*'ॐ ह्रीं गं ह्रीं महागणपतये स्वाहा।'*

उपर्युक्त ध्यानसम्मत महागणपतिका एकादशाक्षर मन्त्र है—**'ॐ ह्रीं गं ह्रीं वशमानय स्वाहा।'**

(२) हेरम्बगणपति—

'तन्त्रसार'में हेरम्बगणपतिके भी दो प्रकारके ध्यान और मन्त्र हैं—(क) पञ्चहस्तिमुख, दशभुज और सिंहवाहन। तथा (ख) चतुर्भुज-हेरम्ब।

(क) हेरम्बगणपतिका ध्यान इस प्रकार है—

मुक्ताकाञ्चननीलकुन्दघुसृणच्छायैस्त्रिनेत्रान्वितै-
र्नागास्यैर्हरिवाहनं शशिधरं हेरम्बमर्कप्रभम्।
दृप्तं दानमभीतिमोदकरदान् टङ्कं शिरोऽक्षात्मिकां
मालां मुद्गरमङ्कुशं त्रिशिखिकं दोर्भिर्दधानं भजे॥
(तन्त्रसार, परि० २, शा० नि० १३। १०९)

"हेरम्बगणपति पाँच हस्तिमुखोंसे युक्त हैं। चार हस्तिमुख चारों ओर और एक ऊर्ध्व दिशामें है। उनका ऊर्ध्व हस्तिमुख मुक्तावर्णका है। दूसरे चार हस्तिमुख क्रमशः काञ्चन, नील, कुन्द (श्वेत) और कुङ्कुमवर्णके हैं। प्रत्येक हस्तिमुख तीन नेत्रोंवाला है। वे सिंहवाहन हैं। उनके कपालमें चन्द्रका विराजित है और देहकी कान्ति सूर्यके समान प्रभायुक्त है। वे बलदृप्त हैं और अपनी दस भुजाओंमें वर और अभयमुद्रा तथा क्रमशः मोदक, दन्त, टङ्क, सिर, अक्षमाला, मुद्गर, अङ्कुश और त्रिशूल धारण करते हैं। मैं उन भगवान् हेरम्बको भजता हूँ।'

उक्त ध्यानसम्मत हेरम्बगणपतिका चतुरक्षर मन्त्र है—'ॐ गूं नमः।' 'तन्त्रसार'के चतुर्थ परिच्छेदमें जो 'गणेशस्तोत्र' मिलता है, उसमें हेरम्बकल्पकी भावना इस प्रकार व्यक्त हुई है—

मदोल्लसत्पञ्चमुखैरजस्रमध्यापयन्तं सकलागमार्थान्।
देवानृषीन् भक्तजनैकमित्रं हेरम्बमर्कारुणमाश्रयामि॥
(तन्त्रसार, परि० २ तथा शा० नि० १३। ४१)

'जो मदोल्लसित पञ्चमुखोंद्वारा देवता और ऋषियोंको निरन्तर सारे आगमोंका अर्थ पढ़ाते रहते हैं, भक्तोंके एकमात्र परम मित्र हैं और सूर्यके समान अरुणवर्ण हैं, उन हेरम्बदेवका मैं आश्रय लेता हूँ।'

(ख) हेरम्बगणपतिका प्रकारान्तरसे ध्यान—

'तन्त्रसार' (परिच्छेद, हेरम्ब-मन्त्र) में चतुर्भुज हेरम्बके इस प्रकार ध्यान और मन्त्र प्राप्त होते हैं—

पाशाङ्कुशौ कल्पलतां विषाणं दधत्सुशुण्डाहितबीजपूरः।
रक्तस्त्रिनेत्रस्तरुणेन्दुमौलिर्हारोज्ज्वलो हस्तिमुखोऽवताद् वः॥

'हेरम्बगणपतिकी चार भुजाओंमें क्रमशः पाश, अङ्कुश, कल्पलता और गजदन्त हैं। उनकी सूँड़के ऊपर एक दाड़िम-फल है। उनका शरीर रक्त वर्णका है। वे त्रिनयन हैं और उनके सिरपर तरुण-चन्द्र सुशोभित है। गलेमें उज्ज्वल हार प्रकाशित हो रहा है। वे गजानन हेरम्बदेव तुम्हारी रक्षा करें।'

उपर्युक्त ध्यानसम्मत चतुर्भुज हेरम्बका दशाक्षर मन्त्र है—

'गं क्षिप्रप्रसादनाय नमः।'

(३) हरिद्रागणपति—

'तन्त्रसार'के द्वितीय परिच्छेदमें हरिद्रागणपतिके निम्नाङ्कित ध्यान और मन्त्र प्राप्त होते हैं—

हरिद्राभं चतुर्बाहुं हारिद्रवसनं विभुम्।
पाशाङ्कुशधरं देवं मोदकं दन्तमेव च॥

'हरिद्रा 'गणपति'का शरीर पीतवर्णका है। वे चतुर्भुज हैं तथा हरिद्रारञ्जित वस्त्र ही धारण भी करते हैं। उनके चारों हाथोंमें क्रमशः पाश, अङ्कुश, मोदक और दन्त विराजित हैं।'

हरिद्रागणपतिका एकाक्षर मन्त्र है—'ग्लम्'

'तन्त्रसार'के चतुर्थ परिच्छेदमें 'हरिद्रागणपति'का कवच भी उपलब्ध होता है।

(४) उच्छिष्टगणपति—

'तन्त्रसार'के द्वितीय परिच्छेदमें गाणपत्य-सम्प्रदायके अन्तर्गत उच्छिष्टगणपतिका ध्यान, मन्त्र, पूजा और प्रयोग-विधि प्राप्त होती है। उच्छिष्टगणपति चतुर्भुज और रक्तवर्ण हैं। उनका ध्यान इस प्रकार है—

रक्तमूर्तिं गणेशं च सर्वाभरणभूषितम्।
रक्तवस्त्रं त्रिनेत्रं च रक्तपद्मासने स्थितम्॥
चतुर्भुजं महाकायं द्विदन्तं सस्मिताननम्।
दृष्टं च दक्षिणे हस्ते दन्तं च तदधः करे॥
पाशाङ्कुशौ च हस्ताभ्यां जटामण्डलवेष्टितम्।
ललाटं चन्द्ररेखाढ्यं सर्वालंकारभूषितम्॥

'उच्छिष्टगणपतिकी मूर्ति रक्तवर्ण तथा सब प्रकारके आभूषणोंसे सुशोभित है। उनके परिधेय वस्त्र रक्तवर्ण है। वे त्रिनयन हैं और रक्तवर्णके पद्मासनपर आसीन हैं। उनके चार हाथ हैं, शरीर विशाल है, दो दन्त हैं और मुखपर हास्यच्छटा है। उनके दक्षिण भागके ऊपरवाले हाथमें वरमुद्रा और निचले हाथमें एक दन्तका दर्शन होता है। वामभागके ऊपरवाले हाथमें पाश तथा निचले हाथमें अङ्कुश विद्यमान है। उनका सिर जटामण्डलसे वेष्टित है तथा उनके ललाटपर अर्द्धचन्द्र सुशोभित है। वे सब प्रकारके अलंकारोंसे विभूषित हैं।'

उच्छिष्टगणपतिका मन्त्र है—'ॐ हस्ति पिशाचिनि खे स्वाहा।'

'तन्त्रसार'में उच्छिष्टगणपतिकी पूजा-विधिके विषयमें लिखा है कि उच्छिष्टमुखसे और अशुचि-अवस्थामें ही इस देवताके मन्त्र-जप और पूजा आदि कार्य किये जाते हैं। किसी-किसी

तन्त्रके मतसे इस देवताकी आराधनामें पूजा नहीं करनी पड़ती, केवल मानसिक जप ही करना होता है। गर्गमुनि कहते हैं कि इनका साधक निर्जन वनमें बैठकर रक्तचन्दनसे लिप्त ताम्बूल चबाते हुए इनकी पूजा करे।' दूसरे तन्त्रके मतसे देवताकी अर्चना करके मोदक चबाते हुए मन्त्र-जप करना पड़ता है। भृगुमुनिका मत है कि 'उच्छिष्ट गणपतिकी आराधनामें फल खाते हुए जप करे।'

उच्छिष्टगणपति-पूजनका माहात्म्य इस प्रकार कहा गया है—राजद्वारपर, अरण्य, सभा, गोत्र-समाज, विवाद, व्यवहार, युद्ध, शत्रुसंकट, नौका, कानन और द्यूतकार्यमें, विपद्के समय, ग्रामदाह तथा चौर-भयमें, सिंह-व्याघ्र आदिके भयके समय उच्छिष्टगणपतिका मन्त्रजप करनेसे सब विघ्न दूर हो जाते हैं। इस मन्त्रसे दश सहस्र होम करनेपर राजा तत्काल वशीभूत होता है। उक्त मन्त्रका एक कोटि जप करनेपर साधकको अणिमा आदि अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, उसमें आकाश-गमनकी शक्ति उत्पन्न होती है तथा सर्वज्ञताकी प्राप्ति होती है।

हेरम्बगणपति-सम्प्रदाय, स्वर्णगणपति-सम्प्रदाय एवं संतान-गणपति-सम्प्रदायके उपासकोंकी पूजा-पद्धति सामान्यतः वैदिक विधानके अनुसार देखनेमें आती है।

गुरु गणेश

(लेखक—श्रीपरिपूर्णानन्दजी वर्मा)

महादेव गणेशके विषयमें बहुत-सी भ्रान्तियाँ भी हैं एवं कुतर्क भी। उदाहरणके लिये पञ्चमुख गणेशकी मूर्ति दक्षिण भारतमें देखकर लोग पूछते हैं कि 'ब्रह्माके चार ही मुख हैं—चारों वेदोंके प्रतीक; पर गणेशके पाँच मुख कैसे हो गये। क्या वे उनसे भी बड़े हैं?'

देव-परिवारमें बड़े-छोटेका प्रश्न नहीं उठता। एक ही परमात्माके भिन्न गुणोंको व्यक्त करनेवाली विभूतियोंके भिन्न रूप हैं। दुर्गासप्तशतीमें जब निशुम्भने देवियोंकी सेनाको देखकर कहा कि 'तुम तो अन्य देवियोंका सहारा लेकर लड़ रही हो',— उस समय भगवतीने कहा था, 'अहं विभूत्या बहुभि '—'मैं अपनी ऐश्वर्य-शक्तिसे अनेक रूप धारण करके युद्धभूमिमें खड़ी थी; देखो अब उन्हें समेट लेती हूँ।' फिर तो निशुम्भके देखते-ही-देखते समूची देवी-सेना भगवतीके शरीरमें विलीन हो गयी।

हमारे प्रत्येक देवता भिन्न-भिन्न विभूतिके द्योतक या परिचायक हैं। जिनकी, जैसी जहाँ रुचि हो, वह वैसी, वहाँ उपासना करे। इसीलिये प्रत्येक देव-परिवार प्रतीकात्मक है। स्कन्दपुराणमें दक्षिण भारतमें चन्द्र मृगमुखवाली मृगमुखीकी तथा बकरीके मुखवाली शतशृङ्ग-कन्याकी गाथा है। गणेशका मुख भी एक महान् दैवी-विभूतिको प्रकट करता है।

रही बात पञ्चमुख-गणेशकी। गीताशास्त्रने जीवनके सम्बन्धमें जो अकाट्य सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं, उनके अनुसार प्रत्येक कर्मके पाँच हेतु हैं अधिष्ठान कर्ता, करण, विविध चेष्टा और दैव। इनमेंसे करण पंद्रह हैं—श्रोत्रादि पाँच ज्ञानकरण, वाग् आदि पाँच कर्मकरण तथा प्राणादि पाँच वायु चेष्टाकरण। इन पाँचों त्रिविध करणों तथा पाँच हेतुओंका अपनेमें समन्वयकर, इस विनाशवान् शरीरकी सब विघ्न-बाधाएँ हरकर हमें सन्मार्गपर लगानेवाले ये 'गणेश' हैं।

गणपति-प्रतिमाका अर्थ

गणपति हैं कौन? गणोंके गणपति। 'गणानां त्वा गणपति'—इस श्रुतिके अनुसार वे गणोंके अधिपति हैं। गणपति-प्रतिमाका क्या अर्थ है—इसका स्पष्टरूपसे निरूपण एक बार स्वर्गीय डॉ० भगवानदासजीने किया था। वह व्याख्या प्रायः हम भूल गये हैं। यदि नित्य गणेशके अर्चनके समय हम उसे ध्यानमें रखें, यदि उनके रूपका हम एक अंश भी अपने जीवनमें उतार सकें, यदि हमारे नेता गणेशका यह अर्थ समझ लें तो आज हम और हमारा देश ही बदल जाय।

जिसके नेत्र इतने छोटे हैं कि वह दूसरेके अवगुण देखता ही नहीं या बहुत कम देखता है; जिसके कान इतने बड़े हैं कि सब ओरकी, सभी बातें उसके कानमें पड़ जाती हैं, पर उसका पेट इतना गम्भीर है कि सब कुछ पेटमें ही रख लेता है, गहरे पेटका है—दूसरेकी निन्दा या बकवासमें समय नष्ट नहीं करता, जो फूँक-फूँककर हाथीकी तरह पैर रखता है तथा जिसकी सवारी चूहा है—यानी चूहा जितनी दूर जाता है, बड़ी तेजीसे जाता है; फिर रुककर चारों ओरकी स्थिति देखकर तीव्रगतिसे आगे बढ़ता है—

ऐसे जो देवता हैं, वे ही 'गणेश' या 'गणपति' हो सकते हैं। उन्हींके दोनो हाथोमे लड्डू हैं—यश तथा कीर्ति हैं; दोनो ओर सिद्धि और बुद्धि हैं। ऐसे गणेशको हम गणपति मानते हैं और उनकी उपासना करते हैं।

गणपतिका यह सांसारिक अर्थ हुआ। लेखके आरम्भमे हम आध्यात्मिक अर्थ दे चुके हैं। इन दोनोके सामञ्जस्य तथा देव-परिवारके इस सर्वोपरि देवताकी उपासनासे ही कार्य-सिद्धि होती है। जो व्यक्ति 'गणेश-सहस्रनाम'का जप तथा विधिपूर्वक हवनका अनुष्ठान करता है, उसके लिये सिद्धि तथा सफलता अवश्यम्भावी है।

'मोदकप्रिय मुद-मंगलदाता'

(लेखक—श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

जय गणेश, जय गणेश, जय गणेश देवा।
माता तेरी पारवती, पिता महादेवा॥
पान चढ़े फूल चढ़े और चढ़े मेवा।
लड्डुअनको भोग लगै, संत करें सेवा॥
एकदन्त दयावन्त चार भुजाधारी।
मस्तक सेंदूर सोहे मूसकी सवारी॥
जय गणेश०॥

* * *

गणराज्य भारतमे गणदेवताका राज्य है शताब्दियोसे। वैदिक कालसे ही हम प्रार्थना करते आ रहे हैं—

'गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे।'

परात्पर ब्रह्मका नाम है—महागणाधिपति।

गजानन हैं—परात्पर ब्रह्मके अवतार।

कहा जाता है कि महागणाधिपतिने ही अपनी इच्छासे अनन्त विश्वोका निर्माण किया। प्रत्येक विश्वमे अनन्त ब्रह्माण्डोकी रचना की और प्रत्येक ब्रह्माण्डमे अपने अंगसे त्रिमूर्ति प्रकट की।

तो ऐसे हैं हमारे आदिदेव गणपति, गणेश, गजानन।

* * *

गणेशजीकी और विशेषताओकी बात छोड़कर मुझे तो एक ही विशेषता सबसे अच्छी लगती है और वह है उनका मोदक-प्रिय होना।

मोदक, लड्डू, लाड्डू !

क्या बढ़िया चीज !

मीठा-मीठा, गोल-गोल। देखनेमे बढ़िया, खानेमे बढ़िया! कुछ लोगोके मुँहमे इमली, नीबू, खटाई, अचार और पुरब्बाके नामसे पानी भर आता है; पर यहाँ तो लड्डू देखकर वैसा ही हाल होता है।

लड्डू कैसा भी हो, बेसनका हो या मोतीचूरका—देखते ही तबीयत फड़क उठती है। पचास साल पहले लड्डू जैसा अच्छा लगता था, आज भी वैसा ही अच्छा लगता है।

रामकृष्ण परमहंसको जलेबी बहुत प्रिय थी। पेट भरा रहता, फिर भी जलेबी आती तो उसे पा लेते। लोग पूछते तो कहते—'स्टेशनपर तमाम गाड़ियाँ खड़ी हों, पर अचानक वाइसरायकी गाड़ी आ जाय, तो उसे तुरंत 'लाइन क्लीयर' मिल जाता है। वही हाल मेरे लिये जलेबीका है!'

कोई पैंतीस साल पहलेकी बात है। काशी आनेपर एक बन्धुसे परिचय बढ़ा। उनका सबसे छोटा भाई उस समय आठ-दस सालका रहा होगा। वह जब मुझे देखता तो जोरसे कह उठता—

'भट्ट कढ़ी चट्ट, लाड्डू गप्प, टका दक्षिणा!'

सोचता, शायद ऐसा कहनेसे मैं चिढ़ूँगा, पर लाड्डू गप्प करनेमे चिढनेका सवाल ही कहाँ था?

* * *

हाँ, तो हमारे गणेशदादा भी हमारी ही बिरादरीके हैं। बचपनसे लाड्डूके शौकीन।

बड़ी मुसीबत रहती जगज्जननीको। भभूतिया बाबा शंकरके घर, जहाँ भूँजी भाँगका ठिकाना न होता, वहाँ **'पूत मोदक को मचलै!'**

आप बिस चाखै, भैया षट्मुख राखै देखि
आसन में राखै बस बात जाको अचलै।
भूतन के छैया, आस-पास के रखैया और
काली के नथैया हूँ के ध्यान हूँ ते न चलै॥
बैल-बाघ-बाहन, बसनको गयंद खाल,
भाँग को धतूरे को पसारि देत अँचलै।

घर की हवाल यहै संकर की बाल कहैं—
लाज रहै कैसे पूत मोदक को मचलै ॥

पिताजीके तबेलेका हाल तो और भी बुरा है। जब देखिये—'रागि सी मची है त्रिपुरारि के तबेला में'।—

बार बार बैल को निपट ऊँचो नाद सुनि
हुंकरत बाघ बिरझानो रस रेला में।
'भूधर' भनत ताकी बास पाइ सोर करि
कुत्ता कोतवाल को बगानो बगमेला मे ॥
फुंकरत मूषक को दूषक भुजंग तासों
जंग करिबे को झुक्यो मोर हद हेला मे।
आपस में पारषद कहत पुकारि कछु
रागि सी मची है त्रिपुरारि के तबेला मे ॥

अब भला बताइये, त्रिपुरारिकी हालत क्या होगी ? इस धमा-चौकड़ीसे किसकी तबीयत न खीझ उठेगी ? जो देखो, दूसरेपर गुर्रा रहा है। एक-दूसरेको फाड़ खानेको तैयार है।

तब शिवजी यदि धूनी रमानेको त्रिशूल लेकर चल पड़ें तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात ?

आपु को वाहन बैल बली बनिताहू को वाहन सिंहहि पेखि कै।
मूसे को वाहन है सुत एक सुदूजो मयूर के पच्छ बिसेखि कै ॥
भूपन हैं कवि 'चैन' फनिंद के बैर परे सब ते सब लेखि कै।
तीनहुँ लोक के ईस गिरीस सु जोगी भए घर की गति देखि कै ॥

विषमता ही विषमता।
'विरोध ही विरोध।'
कहीं बैल तो कहीं बाघ। कही चूहा तो कही साँप।
शिवका तबेला माने विरोधाभासोंका जमघट।

और इन सारे वैर-विरोधोके कालकूटको पी जानेवाला, हँसते-हँसते गटक जानेवाला ही तो नीलकण्ठ है, सदाशिव है, शंकर है।

उसीके यहाँ माल-मलीदा, मेवा-मिष्ठान्न नहीं, भाँग और धतूरा चलता है। गरीब-से-गरीबके लिये गुंजाइश।

उसीके गण हैं—'कोउ मुख हीन बिपुल मुख काहू।' (मानस १।९२।३½) नगे-लूले-लँगडे—दरिद्र, सर्वहारा—ऐंडे-बेंडे-टेढ़े !

जिन्हें कहीं ठिकाना नहीं, उन्हें शिवजीकी बारातमें बराती बननेका सौभाग्य हासिल है।

भोलेबाबाके दरबारमें किसीका प्रवेश निषिद्ध नहीं।

* * *

हाँ, तो इन्हीं विरोधाभासोंके बीच पलते हैं—गणेशजी ! कौन गणेशजी ?

वही, जो शिवजीके सपूत हैं—और वही, जिनकी पूजा करते हैं अपने विवाहके अवसरपर शिवजी भवानीके साथ—

मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि।
कोउ सुनि संसय करै जनि सुर अनादि जियँ जानि ॥
(मानस १।१००)

इन गणेशजीकी पूजा सबसे पहले की जाती है।
प्रत्येक मङ्गल-कार्यमे पहला नंबर गणेशजीका।
विद्या पढने चलिये, गुरुजी पाटीपर लिख देंगे—
'ॐ नमः सिद्धम् !'
पढो बेटा, 'ॐ नमः सिद्धम्।'

बच्चा ठीक नहीं बोल पाता। 'ओनामासीधम !' कहकर किसी प्रकार पीछा छुड़ाता है। और सिद्धि-सदन गणेशजी इतनेसे ही खुश।

दीवालीमे लक्ष्मी-पूजन करिये। गणेश-लक्ष्मीकी पूजा करिये। नयी बहीमे सबसे ऊपर लिखिये—'श्रीगणेशाय नमः।'

विवाह-शादी है, कथा-पूजा है—सबसे पहले गणेश-जीका पूजन अनिवार्य।

पत्र लिखिये ! पुस्तक लिखिये, सबमे गणेशकी वन्दना सबसे पहले।

* * *

तुलसीबाबा दर्खास्त लिखते है—रामजीको; किंतु 'विनयपत्रिका'का श्रीगणेश करते हैं—गणेश-वन्दनासे—

गाइये गनपति जगबंदन। संकर-सुवन भवानी-नंदन ॥
सिद्धि-सदन गज-बदन बिनायक। कृपा-सिंधु सुंदर सब लायक ॥
मोदक-प्रिय मुद-मंगल-दाता। बिद्या-बारिधि बुद्धि-बिधाता ॥

धन्य हो, गणेशजी ! सारा संसार तुम्हारी वन्दना करता है। तुम शंकर-सुअन हो, भवानी-नन्दन हो। सिद्धियोंके सदन हो, गजबदन हो, समस्त विघ्नोंके नाशक हो। कृपासिन्धु हो, सुन्दर हो, सब तरहसे लायक हो, योग्य हो। मोदक

प्रिय हो, मुद भी देते हो, मङ्गल भी देते हो। विद्या-सागर हो एवं बुद्धिके विधाता हो।

ये सब गुण आपमें हैं।

दर्खास्तमें इतनी प्रशस्ति गणेशजीकी कर लेनेके बाद असली मुद्दा, तनकीहका मुद्दा पेश करते हैं, तुलसीदासजी। 'माँगत तुलसिदास कर जोरे। बसहिं राम सिय मानस मोरे ॥'

गोसाईंजीसे पूछनेकी बात यह है कि 'महाराज! राम-सिय-को जब मानसमें बैठाना था, तब राम-सियसे ही दर्खास्त करनी चाहिये थी? गणेशजीसे प्रार्थना करनेकी कौन जरूरत थी? गणेशजी कोई पेशकार हैं रामजीके?'

न हों पेशकार। पर कायदा यही है कि हर दर्खास्त इसी ड्योढ़ीसे पहले पास होनी चाहिये। पहले लड्डू चढ़ाइये गणेशजीको। उसके बाद आपकी रपट लिखी जायगी—'सिद्धि करहु गनपति सुमिरि!' नहीं तो खाते रहिये धक्के, कोई पूछनेवाला नहीं?

* * *

सवाल है कि गणेशजीको यह रुतबा मिल कैसे गया?

कहते हैं कि एक बार देवताओंमें यह विवाद छिड़ गया कि सबसे पहले किसकी पूजा की जाय।

आज मिनिस्टरकी एक कुर्सी खाली होती है तो एक सौ एक दर्खास्तें पहुँच जाती हैं। जो देखिये, अपनेको तीसमारखाँ बताकर कुर्सीका दावा करने लगता है।

देवताओंके दरबारमें भी यही हाल था।

सब अपनी-अपनी पीठ ठोंक रहे थे।

बड़ी मुश्किलसे तय यह हुआ कि 'सारे ब्रह्माण्डकी परिक्रमा करके जो सबसे पहले लौट आये, उसीको यह ओहदा मिलेगा।'

बस, दौड़ शुरू हो गयी।

सब अपने-अपने वाहन लेकर निकल पड़े।

एक से-एक तेज वाहनोंका बाजार था।

गणेशजी भी इस प्रतियोगिता (कम्पटीशन) में शामिल थे। पर इनका वाहन ठहरा—'चूहा'।

मूषकराज किताबें-कापियाँ कुतरनेमें तो तेज हैं, पर इस रैकेट-दौड़में पार पाना उनके वशकी बात कहाँ थी।

अजीब परेशानी थी गणेशजीके सामने।

कहनेवाले कहते हैं कि नारदजीने आकर गणेशजीको अकल सुझायी। पर हमारी मान्यता है कि गणेशजी तो स्वयं विद्या-वारिधि, बुद्धि-विधाता हैं; उन्होंने स्वयं ही अकल लगायी होगी। जो हो, हुआ यह कि गणेशजीने 'राम'-नाम लिखकर उसीकी परिक्रमा कर डाली।

मिनटोंका तो काम था।

खरहे दौड़ते रह गये। कछुआ फर्स्ट आ गया।

राम-नामकी महिमा! गणेशजी खूब समझते हैं—

'महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ ॥'

* * *

काशीमें 'बड़े गणेश'पर गणेशजीकी एक विशालकाय मूर्ति है।

एकाध बार गणेश-चतुर्थीपर मैंने भी उसके दर्शन किये हैं।

क्या कहना है गणेशजीके शृङ्गारका।

एक तो विशाल काया, दूसरे ऊपरसे नीचेतक लड्डू-ही-लड्डू।

दो-चार, दस-बीस लड्डू नहीं—हजारों।

देखकर तबीयत खुश हो जाती है।

मन्दिरके आस-पास रास्तेमें फर्लांगोंतक लड्डुओंकी पीली, गुलाबी, लाल कतारें। बेसनके, मोतीचूरके। किसीके पास आलूके, किसीके पास शकरकन्दके।

लम्बोदरको क्या चाहिये? लड्डू, लड्डू, लड्डू।

दाँत तो एक है, चबायेंगे कैसे?

लड्डू लिया—गप्पसे उदरस्थ कर लिया। एक-दो-चार-दस...। भक्तोंकी रेल-पेल मची है। गणेशजी लड्डू उड़ा रहे हैं।

* * *

लड्डू मिले कि तबीयत खुश—'जा बेटा, तेरा कल्याण होगा।'

प्रसन्नतामें सहज ही आशीर्वाद निकलता है। गणेशजी मोदक पाते ही मुद और मङ्गल बाँटने लगते हैं।

लेकिन एक बात है—गणेशजी विनायक भी हैं।

विनायक माने विघ्न।

आप उन्हें लड्डू नहीं चढ़ायें तो समझ लीजिये कि खैर नहीं। क्या तमाशा करते हैं विनायक?

आप कोई काम करनेमें समर्थ हैं, कर सकते हैं, करने जाते हैं, पर आप उस कामको कर ही नहीं पाते।

आप मतलबके काम नहीं कर पाते, व्यर्थके काम करने लगते हैं।

मिट्टीके ढेले उठाकर पीसने लगते हैं; घास काटने लगते हैं; अपनी उँगलियोंसे अपने ही शरीरपर लिखने लगते हैं।

सपना देखते हैं तो पानी, ऊँट, सूअर, मुण्डित मस्तकवाले आदमी दीखने हैं। हवामें उड़ते हैं तो लगता है, कोई पीछा कर रहा है!

* * *

विनायकके इन उत्पातोंसे बचनेका उपाय?

उपाय भी विनायक।

तुम्हींने दर्द दिया, तुम्हीं दवा देना।

विनायक विघ्ननाशन भी हैं।

'सर्वविघ्नोपशान्तये'—गणेशजीकी पूजा कर लीजिये। 'जय गणेश देवा' कहकर लड्डुओंका भोग लगा दीजिये—विघ्न-बाधाएँ कपूर बनकर उड जायँगी।

दो लड्डू चढ़ाये कि काम बना।

निषाद कहता है—

'तजउँ प्रान रघुनाथ निहोरें। दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरें॥'

(मानस २। १८९। ३)

आपको तो निषाद-जैसा खतरा उठानेकी भी जरूरत नही। सिर्फ दो लड्डू चढ़ानेकी देर है। फिर वह प्रसाद भी तो आपके ही हाथमें रहेगा। 'दुहूँ हाथ मुद 'मोदक' हैं। लोक भी बनेगा, परलोक भी। मुद भी, मंगल भी।

आइये—गणेशजीसे हम प्रार्थना करें—'महाराज! ऐसी कृपा करो कि हम जो शुभ कार्य करें, वह सब निर्विघ्न पूरा हो'—

वक्रतुण्ड महाकाय सूर्यकोटिसमप्रभ।
निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा॥
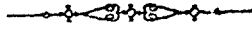
दैनिक जीवनमें गणेशका स्थान

(लेखक—श्रीरामकृष्णप्रसादजी)

देशमें शायद ही ऐसा कोई हिंदू-परिवार होगा, जहाँ श्रीगणेशजीकी पूजा न होती हो। सभी हिंदू-परिवारोंमें श्रीगणेशकी पूजा व्याप्त है। 'गणेश'-शब्दका विग्रह है—गण ईश। 'गण'का अर्थ देवताओंका समूह और 'ईश'का अर्थ उसका स्वामी है। अतएव 'गणेश'का अर्थ हुआ 'देवताओंके समूहका स्वामी', जो परमपिता परमेश्वरके अतिरिक्त अन्य कोई हो ही नहीं सकता। अतएव गणेशकी पूजासे हम प्रभु परमेश्वरकी ही पूजा करते हैं।

श्रीगणेशजीके पिता जगद्-विख्यात श्रीशिवजी हैं। इनकी माता जगज्जननी श्रीपार्वतीजी हैं और इनके भाई युद्धविद्या-विशारद श्रीकार्तिकेयजी हैं। ऐसे छोटे और महान् परिवारके एक सदस्य श्रीगणेशजी हैं। इनके विषयमें केवल इतना ही संकेत करना आवश्यक होगा कि यदि महाभारतके रचयिता श्रीवेदव्यासको श्रीगणेशजी-जैसा लिखनेवाला न मिला होता तो यह असम्भव था कि महाभारत-जैसा महान् ग्रन्थ आज हमलोगोंको देखनेको मिला होता। श्रीगणेशजीके गुणोंकी महत्ताको समझते हुए ही अपने शास्त्रकारोंने इनकी पूजाको प्रथम स्थान दिया है।

विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा।
संग्रामे संकटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते॥

सभी हिंदू-परिवारोंमें बच्चोंको जब विद्या-आरम्भ करायी जाती है, तब उनसे गणेशजीका पूजन कराया जाता है, जिससे भविष्यमें बच्चा पढ़े, इच्छानुकूल विद्या प्राप्त करे, परीक्षामें उत्तीर्ण हो और वह श्रेष्ठ विद्वान् बने। ठीक उसी प्रकार विवाहके लिये भी पद-पदपर गणेश-स्मरण होता है, जिससे वर या कन्याके मनोनुकूल जोड़ा मिले, भविष्यमें दोनोंका जीवन सुखी हो और वे योग्य संतान प्राप्त करें। ठीक इसी प्रकार घरसे बाहर जानेके समय प्रायः गणेश-स्मरण किया जाता है, जिससे यात्रा सानन्द सम्पन्न हो। व्यापार-व्यवसायके करनेके पूर्व भी गणेशजीकी वन्दना की जाती है, जिससे लाभ हो। किसान तो गणेशजीको याद करना भूलते ही नहीं। गणेश-चतुर्थीके दिन उनके मन्दिरोंमें पूजाके घड़ी-घंट बजते ही हैं। इस प्रकार श्रीगणेशजी जीवनके प्रत्येक कार्यमें हमारे साथ रहते हैं और उनकी कृपासे हम मङ्गलको प्राप्त करते हैं
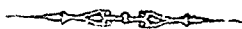
गणतन्त्रके आदि प्रणेता एवं नेता गणेश

(लेखक—श्रीबजरगबलीजी ब्रह्मचारी, एम्० ए०, साहित्यरत्न)

राष्ट्र-धर्म प्रत्येक युगमे भारतका प्रधान धर्म रहा है। इस देशका 'गणपति'—राष्ट्रपति वही बन सकता है, जो देशको भौतिक ऋद्धि-सिद्धि-समृद्धिसे परिपूर्ण कर लोगोको परमात्मतत्त्वकी ओर भी अग्रसर कर सके। इसके लिये आवश्यकता है—सत्-असत्-विवेचनी बुद्धिकी। यही हेतु है कि हमारे 'गणपति'—राष्ट्रपतिका सिर हाथीके समान, धड मनुष्य-जैसा तथा वाहन भी चूहे-जैसा ही होना चाहिये। हाथीकी एक यह भी विशेषता है कि वह कभी जोशमें नहीं आता; किंतु यदि परिस्थितिवश उसे जोश आ जाय तो उसका जोश कभी व्यर्थ नहीं जाता। इसी प्रकार 'राष्ट्रपति'मे भी गुरुता और गम्भीरता—दोनों होनी चाहिये। गणपतिके वाहन मूषककी भी कुछ विशेषताएँ हैं। चूहा बिलके अदर गुप्त रहता है, पर आवश्यकता पड़नेपर किसी वस्तुको नष्ट करनेके पहले उसकी जड़ें काट देता है। उसी प्रकार राष्ट्रपतिको भी अपनी नीति गुप्त रखनी चाहिये और विपक्षी राष्ट्रोंका विनाश करनेके पहले उनकी लोक-प्रतिष्ठाको भङ्ग करना चाहिये। प्रचारद्वारा उनकी अन्ताराष्ट्रीय स्थितिको निर्बल बना देना चाहिये।

हमारे बुद्धिमान् गणेशजीमें बुद्धिकी विशिष्टता भी है। इसीलिये उन्हें ऋद्धि-सिद्धि-दाताके साथ 'बुद्धि-विधाता' भी कहा जाता है। बुद्धिमान् होनेके कारण ही वे प्रथम-पूज्य-पद प्राप्त करनेमे समर्थ हो सके हैं। प्रथम-पूज्य होनेकी कथाका वर्णन भिन्न-भिन्न ढंगसे हुआ है, किंतु गणेशजीको यह राष्ट्रपतिका प्रथम-पूज्य पद केवल सम्मानमे नहीं, अपितु कठिन परीक्षाके बाद प्राप्त हुआ है। इस 'गणपति'के प्रथम-पूज्य पदकी लिखित परीक्षामे वेदव्यासद्वारा गणेशजीको योग्यता-क्रमके अनुसार प्रथम स्थान दिया गया। गणेशजी इतनी द्रुतगतिसे लिखते थे कि उतनी शीघ्रतासे व्यासजी श्लोकोकी रचना ही नहीं कर पा रहे थे। फलस्वरूप उन्हें यह प्रतिबन्ध लगाना पड़ा कि श्लोकका अर्थ समझे बिना वे (गणेशजी) उसे लिपिबद्ध न करें। भगवान् वेद व्यासद्वारा रचित श्लोकोके अर्थ-गाम्भीर्यको समझते हुए उसे द्रुतगतिसे लिखना गणेशजीकी बौद्धिक प्रतिभाका अनुपम उदाहरण है। इसी प्रकार एक और भी परीक्षा हुई। उस प्रथम-पूज्य पदके अभ्यर्थियों—सभी देवताओंके समक्ष सम्पूर्ण विश्वकी परिक्रमा करके सर्वप्रथम आनेका प्रश्न रखा गया। अन्य देवता प्रश्नकी बारीकी न समझकर शारीरिक भाग-दौड़ करने लगे, किंतु गणेशजीने अपनी सूक्ष्म सूझ-बूझसे विश्वकी परिक्रमा विश्व-निर्माता श्रीरामके नामकी परिक्रमा लगाकर कर ली। बुद्धि-कौशलद्वारा इसमे भी उन्होंने प्रथम स्थान प्राप्त कर लिया तथा समस्त जनमतको अपनी ओर आकृष्ट कर सर्वसम्मतिसे 'गणपति'—'राष्ट्रपति'के प्रथम-पूज्य पदपर प्रतिष्ठित हो गये।

ऐसे बुद्धिमान्के गणपति—राष्ट्रपति बनते ही सारा देश धन-जनसे सम्पन्न होने लगा। स्वयं सिद्धि-बुद्धि अनुचरी—अर्धाङ्गिनी बनकर गणपतिकी सेवा करने लगीं। क्षेम और लाभ पुत्र बनकर सम्पूर्ण समाजके कुशल-क्षेमके लिये कार्यमे जुट पड़े। भौतिक समृद्धिके साथ-साथ अन्तःशान्ति और अनिर्वचनीय आनन्दकी प्राप्तिसे लोग कृतकृत्य हो उठे। परिणामस्वरूप राष्ट्रके नेता, प्रणेता, कर्णधार—गणपति (राष्ट्रपति) को स्तुति-प्रशस्तिके जयकारोसे सभी दिग्दिगन्त गूँजने लगे, जिसकी प्रतिध्वनि आज भी गणेशजीकी वन्दनाके माध्यमसे सुननेको मिलती है। सभी देवताओंने गणेशजीकी इस राष्ट्र-सेवासे प्रसन्न होकर उन्हें वरदान दिया।

'गणेशो विघ्नहर्ता हि सर्वकामफलप्रदः।'

गणतन्त्रके निर्माता गणेशजीके आदर्शोंको अपनाकर आजका यह गणतन्त्र—प्रजातन्त्र-शासन भी देशका सर्वाङ्गीण सार्वभौमिक विकासकर राष्ट्रको सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक शक्तिशाली राष्ट्रके रूपमे संसारके समक्ष उपस्थित कर सकता है।

राष्ट्रोद्धारक श्रीगणपति

(लेखक—श्रीत्रिभुवनदास दामोदरदास सेठ)

गणेशजीका जन्म राष्ट्रके अभ्युदयकी प्रेरणा देता है। गणेशजीके जन्मके पहले संघभावका बिल्कुल ही अस्तित्व न था। गणेशजीने दस वर्षमें सबको संगठित और उन्नत किया, जिससे वे सम्मानके पात्र बने। इतना ही नहीं, उनका स्थान पूजामें प्रथम हुआ, जो स्थान अबतक चला आ रहा है। गणेशजीने धूम्राक्ष, नरान्तक, देवान्तक आदि राक्षसोंका नाश किया, जो राज्य करते समय सज्जनोंको पीड़ित करते थे। इससे गणेशजी सर्वपूज्य बन गये तथा विघ्ननाशक माने गये। एक पतित राष्ट्र या जातिकी उन्नति थोड़े समयमें कैसे हो गयी, यह राष्ट्रीय उन्नतिके लिये आदर्श है, अनुकरणीय है। यह उन्नति गणेशजीके संगठन और बुद्धिके बलसे सम्पन्न हुई।

गणेशजीकी सारी योजनाएँ गुप्त रहती थीं; उनके अनुसार काम हो जानेपर ही सबको पता चलता था। गणेशजीकी विद्वत्ता अपार थी, जिससे छोटी उम्रमें ही वे सारे शास्त्रोंको सीख गये।

गणेशजी पाखण्डवादका खण्डन करके शास्त्रोंका सार लेकर सबकी एकरूपता करनेमें अद्वितीय हैं। वे श्रेष्ठ वक्ता एवं ब्रह्मविद्याके स्वामी हैं। इस कारण उनकी योजनाओंमें अध्यात्मविद्याकी प्रधानता रही है। गणेशजी महान् गणितज्ञ और इतिहासके ज्ञाता हैं तथा 'गणक गणितागमसारवित् गणकश्लाघ्य' कहे गये हैं।

युद्धमें भी गणेशजी अजेय हैं। कार्तिकेय सेनापति थे, परंतु राष्ट्र-संगठनके विषयमें वे इतने प्रख्यात न थे। गणेशजी राष्ट्र-संगठन और सेना-संचालन—दोनों ही कार्योंमें जगत्-प्रसिद्ध हैं। गणेशजीमें अनुपम बुद्धिमत्ता है। जो काम दूसरोंसे नहीं हो सकता, उसे वे अपनी बुद्धि और बलसे सहज ही कर लेते हैं। दूरदृष्टि, प्रज्ञा, बुद्धि और धारणाशक्तिका अद्भुत सम्मिश्रण गणेशजीमें पाया जाता है।

इन विनायकका उपनयन कश्यप ऋषिके आश्रममें हुआ था। उस आश्रममें यज्ञ तो होता ही रहता था; वहाँ बटुकको लाकर उसे यज्ञोपवीत, कौपीन, दण्ड एवं मेखला भी धारण कराये गये। तब विनायकने भिक्षा माँगी। भिक्षामें वरुणदेवने विनायकको 'पाश' दिया और उस पाशसे शत्रुओं-को बाँधनेकी रीति सिखलायी। भगवान् शंकरने 'त्रिशूल' प्रदान किया और शत्रुओंपर उसे चलानेकी रीति सिखला दी। परशुरामजीकी माता रेणुकादेवीने 'फरसा'-प्रदान किया और आशीर्वाद दिया कि 'तू शत्रुओंका विनाश करेगा'। इस प्रकार वहाँ उपस्थित देवताओंने विनायकको अस्त्र-शस्त्र प्रदान किये और सबने सामूहिकरूपसे आशीर्वाद दिया कि 'इन शस्त्रोंसे तू शीघ्र दुष्टोंका नाश करेगा'। इस प्रकार राष्ट्रोद्धारके कार्यमें गणपतिको अलौकिक स्थान प्राप्त हो गया।

गणपतिका राष्ट्र-संगठन-तत्त्व बड़ा ही सरल और बोधप्रद है तथा वह उन्नतिमें सहायक है। हिंदुओंके घर-घर गणेशकी पूजा होती है; परंतु गणेशजीके द्वारा किये गये कार्योंकी ओर रत्तीभर भी ध्यान नहीं दिया जाता। उनको समझनेका भी प्रयत्न नहीं किया जाता, तब फिर उनके आचरणकी तो बात ही कैसे की जा सकती है। किंतु जो राष्ट्र उनका अनुसरण करता है, वह उन्नत बनता है।

जय जय मतंग-आनन !

गान सरस अलि करत परस मद मोद रंग रचि।
उघटन ताल रसाल करन चल चाल चोप सचि॥
चिंतामनिमय जटित हेमभूषनगन बज्जत।
चलत लोल गति मृदुल अंग नवतुंड बसज्जत॥
लखि प्रनति समय मुख तात को बिहँसि मातु लिय लाय उर।
जय जय मतंग-आनन अमल, जय जय जय तिहुँ-लोक-गुर॥

—महाकवि गुमान मिश्र

लोकमान्य तिलकद्वारा प्रवर्तित गणेशोत्सव

(लेखक—श्रीकाशीनाथजी सोमण, एम्० ए०, साहित्यरत्न)

पराधीन देशका स्वातन्त्र्य-संग्राम उसी दिनसे आरम्भ होता है, जिस दिनसे उसके पैरोंमें गुलामीकी जंजीर पडी है। और उस गुलामीको नष्ट करनेके कई मार्ग हो सकते हैं। शत्रुके पॉव पड़नेसे लेकर उसके पैरोंको खींचनेतक सभी मार्ग वैध ही हैं। अपना देश भी उसके लिये अपवाद नहीं है। इसीलिये स्वराज्यकी प्राप्तिके लिये 'साधनाना अनेकता'—यह लोकमान्यका साधन-सूत्र था। स्वराज्यकी प्राप्तिके मार्गपर जिस साधनसे एक पैर भी आगे पड़ता हो, उस साधनका उपयोग करनेमें लोकमान्य कभी हिचकिचाते नहीं थे। इसी दृष्टिसे महाराष्ट्रमे लोकमान्यने सर्वजनीन गणेशोत्सव शुरू किया था। गणेशोत्सव-जैसे धार्मिक और शिवाजी-जयन्ती-जैसे ऐतिहासिक उत्सवोंका उपयोग स्वातन्त्र्य-संग्रामके साधन समझकर ही किया गया। घर-घरमे व्यक्तिगत रूपसे मनाये जानेवाले गणेशोत्सवको उन्होंने सार्वजनिक समष्टिरूप दिया; गणेशोत्सवको जन-जागरणका एक प्रभावशाली साधन बना डाला।

किसीके मनमे यह बात आ सकती है कि 'लोकमान्यने राम, कृष्ण, शकर, विष्णु आदिके स्थानपर गणेशजीको ही क्यों चुना ?' उसके कई कारण हैं। सनातन वैदिक हिंदूधर्मके उपास्य देवताओंमे श्रीगणेशजीका महत्त्व असाधारण है। चाहे जो मङ्गल-कार्य हो, बिना गणेश-पूजनके उसका आरम्भ हो ही नहीं सकता। यहाँतक कि अन्य किसी देवताका पूजन या महोत्सव मनाते समय भी पहले महागणपतिका पूजन और स्मरण किया जाता है। श्रीगणेशजीका इतना महत्त्व इसीलिये है कि वे विघ्नहर्ता हैं। गणेशजी वेदकालसे ही परिचित एवं पूज्य माने जाते हैं। ऋग्वेदमे **'गणानां त्वा गणपतिम्'**-नामक ऋचाको 'गणपति-सूक्त' कहते है। 'गणपति-अथर्वशीर्ष'मे गणपतिको ओंकाररूप माना गया है। उसी रूपमे गणेशजीकी प्रार्थना और पूजाकी परम्परा अखण्डरूपसे चलती आयी है। कोई किसी भी देवताका उपासक क्यो न हो, वह गणेशजीका विरोधी नहीं हो सकता। गणपतिका प्रथम वन्दन करके ही उपासक अपने उपास्य देवताकी पूजा किया करता है।

हिंदू-धर्ममे शैव-वैष्णव-जैसे कई उपासना-पंथ हैं। इनमे गणपतिकी उपासना करनेवालेको 'गाणपत्य' कहा जाता हैं। उत्तर भारतकी अपेक्षा दक्षिण भारतमे यह उपासना अधिक प्रचलित है। महाराष्ट्रमे गणपतिके उपासक अधिक हैं। पेशवाओंके राजत्व-कालमे गणेशोत्सव बड़ी धूम-धामसे मनाया जाता था। पेशवा-शासक स्वयं गणपतिके उपासक थे। सवाई माधवराव पेशवाके शासनकालमे तो पूनाके प्रसिद्ध शनिवारवाड़ा-नामक राजमहलमे भव्य गणेशोत्सव मनाया जाता था। अंग्रेजोंके आते ही पेशवा-शासन लगभग समाप्त-प्राय हो गया, पर गणेशोत्सवकी परम्परा बनी ही रही। मजूमदार, पटवर्धन, दीक्षित आदि सरदारोंके परिवारोंमें गणेशोत्सव ठाट-बाटसे मनाया जाता रहा।

पर गणेशोत्सवको सार्वजनिक रूप देनेके केवल ये ही कुछ कारण नहीं थे। अंग्रेजी शासन यहाँ स्थिर हो चुका था। लोगोंके विचारोमे भ्रष्टता आने लगी थी। धर्मके सम्बन्धमे लोग उदासीन-से दिखायी देने लगे। युवकवर्गमे अपने आचार-विचारोंके प्रति घृणा और अंग्रेजी आचार-विचारोंके प्रति प्रेम बढने लगा था। सारे समाजमे गरमाहट पैदा कर राष्ट्रीय भावनाको जगाना आवश्यक था। लोकमान्यने सोचा कि गणेशजी ही एक ऐसे देवता हैं कि जो समाजके सभी स्तरोंमे पूजनीय हैं। उन्हींका उत्सव मनाकर अस्त-व्यस्त समाजको संघटित किया जा सकेगा; नवयुवकोंमे राष्ट्रीय भाव प्रज्वलित किये जा सकेंगे एवं राजनीतिक आन्दोलनको बढ़ावा मिल सकेगा। गणेशोत्सव एक धार्मिक उत्सव होनेके कारण अंग्रेज शासक भी उसमे दखल नहीं दे सकेंगे। धार्मिक उत्सवोंमे हस्तक्षेप करनेसे पहले शासकोंको कई बार सोचना होगा। इसके अतिरिक्त गणेशोत्सव शुरू करनेमे और भी एक कारण था। ईसाइयों तथा मुसलमानोंके क्रिसमस या मुहर्रम-जैसे महोत्सवोंमे, ताजियोंके जुलूसमे हिंदू-समाजके निम्न श्रेणीके लोग भी सम्मिलित हुआ करते थे। यह देखकर लोकमान्यके दिलमे बेचैनी महसूस होती थी। अतः उत्सवप्रिय जनताको एक ऐसा महोत्सव मिलना चाहिये था, जिसमे हिंदू-समाजके सभी वर्ग एक साथ सम्मिलित हो सकें। इसी विचार-मन्थनसे उनके मनमे सार्वजनिक

गणेशोत्सवकी कल्पना उदित हुई। सन् १८९३ में पूनामे यह कल्पना कार्यान्वित हो गयी।

लोकमान्य तिलकने गणेशोत्सवको स्वाधीनताके आन्दोलनका एक प्रभावशाली साधन बनाया। उन्होंने गणेशोत्सवको राष्ट्रीय महोत्सवके रूपमे ही प्रसारित किया। फिर भी, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, सार्वजनिक था गणेशोत्सव मनानेके पीछे यह भी एक विचार कार्य कर रहा था कि अन्य धर्मवालोंके त्यौहार, जुलूस आदिका बुरा असर हिंदू-समाजके नवयुवकोंपर न पड़े। सन् १८९३ मे ही गणेशोत्सवको सार्वजनिक रूप मिलनेका भी यही कारण था। सन् १८९३मे बंबई तथा महाराष्ट्रके चंद अन्य नगरोंमे भी हिंदू-मुस्लिम दंगे हुए। इसी सम्बन्धमें पूनामे एक सभा हुई। मुस्लिम-उपद्रवोंका सामना करनेके लिये हिंदू-समाजको किस प्रकार संगठित किया जाय, इस बारेमे उस सभामें विचार हुआ। सार्वजनिक गणेशोत्सव उसी विचारकी फलश्रुति थी। महाराष्ट्रमे भाद्रपद और माघ-मासकी शुक्लचतुर्थी-तिथिको गणेश-देवताका उत्सव मनानेकी परम्परागत परिपाटी है। अब यह तय हुआ कि भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थीसे लेकर भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्दशी (अनन्तचतुर्दशी) तक गणेशोत्सव मनाया जाय। दस दिनके इस सार्वजनिक गणेशोत्सवमे धार्मिक पूजा-अर्चाके साथ-साथ कीर्तन-प्रवचन-व्याख्यान भी आयोजित किये जायँ। समाजको स्वराज्यके आन्दोलन-हेतु सुसंगठित बनानेका प्रयत्न किया जाय। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता स्वर्गीय खानखोजेने लिखा है कि 'पूनामें तिलकजीके नेतृत्वमे गणेशोत्सवका प्रारम्भ हुआ। वह केवल कोई धार्मिक उत्सव नहीं था, देशभक्तिके प्रसारके लिये शुरू हुआ एक राष्ट्रीय महोत्सव था। उसे चंद ही दिनोंमे राष्ट्रधर्मका स्वरूप प्राप्त हुआ। पूनासे प्रेरणा लेकर वर्धा, नागपुर, अमरावती आदि नगरोंमे भी गणेशोत्सव मनाया जाने लगा।' खानखोजे आगे चलकर लिखते हैं कि "गणानां त्वा गणपतिं हवामहे'—इस व्यापक दृष्टिसे गणराज्य दिलानेवाले गणपति हमारे स्वातन्त्र्यके देवता हैं, इस प्रकारका प्रचार शुरू हुआ। गणेशोत्सवके माध्यमसे प्रभावशाली और देशभक्त वक्ता एवं कीर्तनकारोंके द्वारा क्रान्तिकारी कार्यकर्ताओंको इकट्ठा करनेका काम सुलभ हुआ। धार्मिक उत्सव होनेके कारण पुलिस भी गणेशोत्सवमे हस्तक्षेप करनेमे हिचकिचाती थी। खुद लोकमान्य तथा अन्य राजनीतिक कार्यकर्ता गणेशोत्सवके अवसरपर व्याख्यान-द्वारा स्वराजका ही प्रचार किया करते थे।"

गणेशोत्सवके अवसरपर दिये गये एक व्याख्यानमें लोकमान्यने कहा था कि "गणपतिकी आराधना करते समय स्वराज्य, वैराज्य, पारमेष्ठ्य-राज्यकी माँग करनेको परिपाटी प्राचीन समयसे चली आयी है। ये शब्द जिस मन्त्रमे आये हैं, वह कोई नया नहीं। बगालके विभाजन-जैसे आन्दोलनके बाद वह मन्त्र गठित नहीं हुआ। वह हमारा प्राचीन मन्त्र है। हाँ, हम उसे अंग्रेजोंके यहाँ आनेके बाद भूल-से गये हैं। मन्त्रके प्राचीनत्वका स्मरण दिलानेके लिये ही हम यह गणेशोत्सव मना रहे हैं। इस मन्त्रमें कई शब्द है। सभी समानार्थी नहीं हैं। यों ही फिजूल शब्दोंका इस्तेमाल करनेकी हमारे ऋषियोकी आदत नहीं थी। अतः नाहकका शब्दजाल नहीं बनाये। मन्त्रकी प्रथम सीढ़ीसे शुरू करें, अन्तिम सीढ़ीतक गजानन देवता आपको पहुँचा देंगे।"

'गणपति' शब्दसे ही प्रतीत होता है कि वे गणोंके पति है—गणोंके अधिपति हैं। यानी सब समाजके—जनताके—ये राष्ट्र-देवता हैं। समाजमे इकाईका भाव कैसे पैदा किया जा सकता है, इस अनुशासनके पालनका पाठ भी हमें गणेश-देवताकी उपासनासे मिलता है। आत्मसयम कैसे किया जाय, इसकी शिक्षा भी हमे गणेशोत्सवसे मिलती है; क्योंकि गणेश-देवता बुद्धि और शक्ति, दोनोके प्रतीक हैं।

लोकमान्यने राष्ट्रोद्धारका विशिष्ट उद्देश्य मनमे रखकर इस राष्ट्रीय उत्सवको प्रवर्तित किया था। तिलकसे प्रेरणा लेकर अन्य राजनीतिक कार्यकर्ताओंने भी इसमें जी-जानसे हाथ बँटाया। हिंदुओंको संगठित करनेका एक साधन समझकर गणेशोत्सव शुरू किया गया। शुरू-शुरूमें वह एक धार्मिक उत्सवके रूपमें मनाया गया, पर कुछ ही वर्षोंमें गणेशोत्सवको राष्ट्रीय रूप प्राप्त हुआ। सब भारतीय एक हैं—इस प्रकार एकताका मन्त्र इस महोत्सवमे दिया गया। व्यक्तिगतरूपसे घर-घरमें छुआछूतका भाव भले ही रहा हो, गणेशोत्सवके अवसरपर समान स्तरपर ही सभी काम करने लगे। यहाँतक कि पूनामें मुसलमान-समाजकी ओरसे भी राष्ट्रीय भावनासे गणेशोत्सव मनाया गया। गणेशोत्सवमे होनेवाली सभाओं-मे मुस्लिम नेता भी सम्मिलित होने लगे। इस सम्बन्धमें सन् १९०८ की एक घटनाका उल्लेख करना अनुचित न

होगा। लोकमान्य तिलकके 'केसरी-कार्यालय'में प्रसिद्ध नेता श्रीसैय्यद हैदरी रेझाका व्याख्यान हुआ। आपका विषय था— 'हिंदू-मुस्लिम-आपसी-सम्बन्ध'। उसी समय पूनाके जिलाधीश महोदयने रेझा साहबको मिलनेके लिये बुलाया। उन्होंने उनको समझाया, 'क्या आपको यह मालूम नहीं कि यह गणेशोत्सव मुसलमानोंके खिलाफ है; किंतु फिर भी आप उसमे सम्मिलित हो रहे हैं। ऐसा ही है तो फिर आप हिंदू ही क्यों नहीं हो जाते ?' रेझा साहबने झट उत्तर दिया—'ऐसा होना न होना मेरी मर्जीपर निर्भर है; उसमे आपके दखल देनेकी कोई जरूरत नहीं।' रेझाजीका वह व्याख्यान श्रीमान् नरसिंह चिन्तामणि केल्करकी अध्यक्षतामें सम्पन्न हुआ था।

सार्वजनिक गणेशोत्सवमे सामाजिक-धार्मिक सुधार तथा राष्ट्रीय भावनाको प्रखर बनानेका काम गीत-गायकोंने किया, जिन्हे उस समय 'मेळा' नामसे सम्बोधित किया जाता था। मेळा यानी मण्डली। बालक-बालिकाओ तथा युवकोंका एक गुट होता था, जिसके सभी सदस्य विशिष्ट गणवेशधारी हुआ करते थे और यह अनुशासित मण्डली गणेशोत्सवके सुअवसरपर राष्ट्रीय गीत गाया करती थी। गणेशोत्सवके प्रति समाजको आकर्षित करनेका बहुमूल्य कार्य इस मेळा-मण्डलीने किया। इस मेळा-मण्डलीके बिना सार्वजनिक गणेशोत्सव इतना प्रख्यात कभी न हो पाता। मेळा-मण्डलीका नाम गणेशोत्सवके साथ जुड़ा हुआ है।

पूनामे १८९३ ई०मे एक राष्ट्रीय महोत्सवके रूपमे गणेशोत्सवकी नींव डाली गयी। लोकमान्यकी प्रेरणासे महाराष्ट्रभरमें उसका विस्तार हुआ। महाराष्ट्रका प्रत्येक नगर और नगरका मुहल्ला-मुहल्ला 'गणपति बाप्पा मोरया' के जयघोषसे गूँज उठा। महाराष्ट्रके बाहर भी बड़े-बड़े नगरोंमें मराठी-भाषी समाजने स्थानीय समाजके सहयोगसे गणेशोत्सव मनाया, जो प्रथा आजतक प्रचलित है। इस प्रकार काश्मीरसे कन्याकुमारीतक और करांचीसे कलकत्तातक गणेशोत्सव सार्वजनिक रूपमे मनानेकी प्रथा प्रारम्भ हुई। यहाँतक कि भारतके बाहर अदन, नैरोबी, लंदन आदि स्थानोंमे भी गणेशोत्सव मनाया जाने लगा। १९२० ई०मे लोकमान्य तो चल बसे, पर गणेशोत्सव मनानेकी परिपाटी ज्यों-की-त्यों चालू रही। महात्माजीके नेतृत्वमे स्वराज्यके नये-नये आन्दोलन शुरू हुए। गणेशोत्सवोंमें उन सभी आन्दोलनोंका प्रचार किया गया। जन-जागृतिका व्रत चलता रहा। १९४७ ई०में देश स्वतन्त्र हुआ; अतः गणेशोत्सवके स्वरूपमे अपने-आप परिवर्तन होने लगा। अबतक वह स्वराज्य-प्राप्तिका एक साधन समझा गया था, अब प्राप्त स्वराज्यको सुराज्य कैसे बनाया जाय, इस सम्बन्धकी जन-जागृतिका कार्य गणेशोत्सवके द्वारा होने लगा। सार्वजनिक गणेशोत्सवोंकी संख्या बढ़ गयी। पहले विदेशी सत्ताके प्रति जनतामें असंतोष पैदा करनेकी दृष्टिसे गणेशोत्सवका उपयोग किया गया, स्वाधीनता-प्राप्तिके बाद अब वह भूमिका नहीं रही। इसी कारण गणेशोत्सवके कार्यक्रममे व्याख्यान, प्रवचन, राष्ट्रीय गीत-गायन आदि कार्यक्रमोंपर जो बल दिया जाता था, वह अब नहीं रहा। गणेशोत्सवके उद्देश्यका रुख ही बदल गया। अब रोशनीकी सजावटकी जगमगाहटकी ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। वैसा होना स्वाभाविक भी था। आज सन् १९७३मे गणेशोत्सवका प्रारम्भ हुए ८० वर्ष बीत जानेके बाद भी सार्वजनिक गणेशोत्सवका सिलसिला ज्यों-का-त्यों बना है। लोकमान्यके समयमे पूनामे सार्वजनिक रूपसे मनाये जानेवाले गणेशोत्सवोंकी संख्या कोई सौ रही होगी, पर अब वह संख्या लगभग हजारतक हो गयी है। गणेशोत्सवको प्रारम्भ हुए १९५३ ई०मे साठ वर्ष पूरे हो चुके थे, उसीके उपलक्ष्मे पूनामे गणेशोत्सवका हीरक-महोत्सव मनाया गया। १९५२ ई०मे ही २६ जनवरीको भारत गणराज्य घोषित किया गया। अब भी प्राप्त स्वातन्त्र्यकी रक्षा और सुराज्यकी साधना-हेतु गणेशोत्सवका उपयोग किया जा सकता है। इसके लिये लोकमान्यकी प्रेरणा हमे हमेशा मिलती रहेगी।

'श्रीसिद्धिसहित गणराज प्रणाम !'

रक्तवर्ण शुभ, एकदन्त शुचि, ध्वज-मूषक, शोभित शशि भाल।
वसु कर-कंज-युग, कम्बु, पाश, पुस्तक, त्रिशूलवर, चक्र, माल॥
गज-मुख-धान्य-मञ्जरी राजत, विपद-विघ्न-वारण, शुभधाम।
अखिल अमङ्गलहर, हर-सुत, श्रीसिद्धिसहित गणराज प्रणाम॥

—'भाईजी'

श्रीगणेशगीता और श्रीमद्भगवद्गीता—एक तुलनात्मक अध्ययन

(लेखक—श्रीनागोराव बासरकर, एडवोकेट)

गणेशं गाणेशाः शिवमिति च शैवाश्च विबुधा
रविं सौरा विष्णुं प्रथमपुरुषं विष्णुभजकाः ।
वदन्त्येकं शाक्ता जगदुदयमूलां परशिवां
न जाने किं तस्मै नम इति परं ब्रह्म सकलम् ॥

(पुष्पदन्तकृत गणेशमहिम्नःस्तोत्रम् २)

"जिस एक तत्त्वको गणपतिके उपासक 'गणेश', शैव विद्वान् 'शिव', सूर्योपासक 'सूर्य', विष्णुभक्त 'आदि पुरुष विष्णु' तथा शक्तिके उपासक जगत्की उत्पत्तिकी मूल कारणभूता 'परा शिवा' कहते हैं, वह वास्तवमें क्या है ! यह मैं नहीं जानता; किंतु सब कुछ परब्रह्मस्वरूप है; इसलिये ब्रह्मभावसे ही उस अद्वितीय तत्त्वके प्रति मेरा नमस्कार है।"

जिस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता महाभारतके भीष्मपर्वका एक भाग है, उसी प्रकार श्रीगणेशपुराणके क्रीडाखण्डके अध्याय १३८–१४८ को 'गणेशगीता' कहते हैं । श्रीमद्भगवद्गीताके १८ अध्यायोंमें ७०० श्लोक हैं तो 'श्रीगणेशगीता'के ११ अध्यायोंमें ४१४ श्लोक हैं । भगवद्गीताका उपदेश युद्धके आरम्भमें कुरुक्षेत्रकी पावन भूमिपर अर्जुनके प्रति दिया गया था तो गणेशगीताका उपदेश युद्धके बाद राजूरकी पवित्र स्थलीमें नरेश वरेण्यके प्रति किया गया था । यह स्थान जालना स्टेशनसे चौदह मीलपर स्थित है । भगवद्गीताके अनुकरणमें लगभग सैकड़ों अन्य गीताओंकी रचना हुई है, जिनमें कुछ ये हैं—रामगीता, हंसगीता, गुरुगीता, अवधूतगीता, पाण्डवगीता आदि। इनमें भी 'गणेशगीता'को एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । इन सारी गीताओंके विषय भिन्न-भिन्न होनेपर भी गणेशगीतामें वे ही विषय आये हैं, जो श्रीमद्भगवद्गीतामें हैं । गणेशगीता तथा भगवद्गीतामें कर्मयोग-सांख्ययोग-भक्तियोगपरक जो वर्णन आये हैं, वे भी प्रायः समान भावमय हैं । गणेशगीतामें योगसाधन, प्राणायाम, तान्त्रिकपूजा, मानसपूजा, सगुणोपासना इत्यादिको विस्तारके साथ समझाया गया है और विभूतियोग, विश्वरूपदर्शन आदिका सक्षेपमें वर्णन किया गया है । उसमें शब्दोंकी भिन्नता अवश्य है, परंतु विषय वे ही हैं ।

जिस प्रकार अर्जुनको भगवान् श्रीकृष्णने योगमार्गका उपदेश किया, उसी प्रकार राजा वरेण्यको श्रीगजाननने यह योग बताया । परंतु इन दोनों गीताओंमें दोनों श्रोताओंकी मनःस्थिति और परिस्थितियाँ भिन्न हैं । भगवद्गीताके प्रथम अध्यायसे स्पष्ट है कि मोहके कारण अर्जुनकी मूढ़-अवस्था हो गयी थी; वह अपने कर्तव्यका भी ठीक-ठीक निर्णय नहीं कर पाता था और निष्क्रियता, विमूढ़ता, नपुंसकता, भ्रान्तता एवं शिथिलता आदिसे भी आक्रान्त था । परंतु राजा वरेण्यकी ऐसी विमोह-ग्रस्त अवस्था नहीं थी; अपितु वह साधनचतुष्टय-सम्पन्न मुमुक्षु स्थितिमें था । वह अपने धर्म तथा कर्तव्यको जानता था । उसने धर्मयुक्त राज्य किया था । उसके मनमें केवल एक ही पश्चात्ताप था । उसे बड़ा खेद था कि 'हाय ! मैं कैसा अभागा हूँ कि स्वयं भगवान् गणेशजीने मेरे घर जन्म लिया, उसपर भी मैंने उन्हें कुरूप पुत्र मानकर सरोवरपर त्याग दिया । यह अच्छा हुआ कि यह बालक मुनि पराशरजीको मिला और उन्होंने उसका पालन-पोषण किया । इसी नौ वर्षके बालक गजाननने सिन्दूरासुरका संहार करके भू-भार हटाया है । अब मैं उन्हीं गजाननसे चरणाश्रयकी याचना करूँगा ।' तदनन्तर राजाने उनसे प्रार्थना की—

विघ्नेश्वर महाबाहो सर्वविद्याविशारद ।
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ योगं मे वक्तुमर्हसि ॥

(गणेशगीता १ । ५)

'हे महाबाहु विघ्नेश्वर ! आप सब शास्त्रों तथा विद्याओंके ज्ञाता हैं । मुझे विमुक्तिके लिये योगका उपदेश कीजिये ।' इसके उत्तरमें गजाननने कहा—

सम्यग्व्यवसिता राजन् मतिस्तेऽनुग्रहान्मम ।
शृणु गीतां प्रवक्ष्यामि योगामृतमयीं नृप ॥

(गणेशगीता १ । ६)

'राजन् ! तेरी बुद्धि मेरे अनुग्रहसे उत्तम निश्चयपर पहुँच गयी है । मैं तुम्हें योगामृतसे भरी गीता सुनाता हूँ, सुनो ।'—यह कहकर श्रीगणेशने 'सांख्यसारार्थ'-नामक प्रथम अध्यायमें योगका उपदेश देकर उन्हें शान्तिका मार्ग बतलाया । स्थितप्रज्ञ पुरुषका जो वर्णन किया, वह भगवद्गीताके दूसरे अध्यायमें भी आया है । तदनुसार ही श्रीगणेशजीने कहा—'सच्चे योगयुक्त पुरुषके लक्षण तो और ही होते हैं । वे तृष्णासे मुक्त, दयामय,

जगत्का उद्धार करनेवाले, हृदयस्थित परब्रह्मको सदा ही सर्वत्र व्याप्त देखनेवाले और सर्वदा संतुष्ट रहनेवाले होते हैं। उनकी दृष्टिमें सोना, मिट्टी, पत्थर—सब समान है।'

शिवे विष्णौ च शक्तौ च सूर्ये मयि नराधिप।
याभेदबुद्धिर्योगः स सम्यग्योगो मतो मम॥
(गणेशगीता १। २१)

'नरेश्वर! शिव, विष्णु, शक्ति, सूर्य तथा मुझमें भी जो अभेद-बुद्धि है, वही मेरे मतमें उत्तम योग है।'

'मैं ही सब कुछ हूँ और मुझसे ही सब हैं। मैं ही सत्, चित् और आनन्दरूप ब्रह्म हूँ।

अच्छेद्यं शस्त्रसंघातैरदाह्यमनलेन च॥
अक्लेद्यं भूप भुवनैरशोष्यं मारुतेन च।
अवध्यं वध्यमानेऽपि शरीरेऽस्मिन् नराधिप॥
(गणेशगीता १। ३१-३२)

'शस्त्र उसका छेदन नहीं कर सकते, अग्नि उसे जला नहीं सकती, जल उसे भिगो नहीं सकता, वायु उसे सुखा नहीं सकती और नरेश्वर! इस शरीरका वध होनेपर भी वह अवध्य है।' भगवद्गीताके दूसरे अध्यायके श्लोक १८, २०, २३-२४ में भी यही कहा गया है।

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रशंसन्ति श्रुतीरिताम्।
त्रयीवादरता मूढास्ततोऽन्यन्मन्वतेऽपि न॥
(गणेशगीता १। ३३)

''पुष्पित लताके समान आपातरम्य 'अक्षय्यं सुकृतं भवति' इत्यादि वेदवाक्योंसे मोहित मूढलोग यज्ञादिकी ही प्रशंसा करते हैं। उससे अलग दूसरा कोई श्रेय-साधन माननेको भी वे लोग तैयार नहीं होते। अतः स्वर्ग-ऐश्वर्यकी भोगबुद्धिमें आसक्त वे स्वयं संसारके बन्धनमें पड़ते हैं।'' अतः सुनो—

यस्य यद्विहितं कर्म तत्कर्तव्यं मदर्पणम्।
ततोऽस्य कर्मबीजानामुच्छिन्नाः स्युर्महाङ्कुराः॥
(गणेशगीता १। ३६)

'वर्णाश्रम-धर्मयुक्त कर्मोंका अनुष्ठान करके मुझे अर्पण करनेपर उनके पाप-पुण्यरूप बीजाङ्कुर नष्ट हो जाते हैं।' ऐसा ही भगवद्गीताके दूसरे अध्यायमें श्लोक ४२से ४६ तक कहा गया है।

धर्माधर्मौ जहातीह तयाऽत्यक्त उभावपि।
अतो योगाय युञ्जीत योगो वैधेषु कौशलम्॥
(गणेशगीता १। ४९)

'इस प्रकार आत्मानात्मविवेक-बुद्धिसे युक्त पुरुष पाप पुण्यसे मुक्त हो जाता है। यही योग विधियुक्त कर्मोंमें यही कुशलता है।' ऐसा योगी 'स्थित प्रज्ञ' कहलाता है। गणेश-गीताके अ० १ श्लोक ५३से ६४तक ऐसे स्थितप्रज्ञके लक्षण दिये गये हैं। ये ही बातें भगवद्गीताके दूसरे अध्यायके श्लोक ५६से ७१तक बतलायी गयी हैं।

एवं मामाश्रितं भूप यो विजानाति दैवतः।
तुर्यामवस्थां प्राप्यापि जीवन्मुक्तिं प्रयास्यति॥
(गणेशगीता १। ६९)

'भूप! यदि दैवकी अनुकूलतासे वृद्धावस्थामें भी ऐसी ब्रह्म-बुद्धि प्राप्त हो जाती है तो वह भी जीवन्मुक्तिको प्राप्त होगा।' यही बात भगवद्गीतामें भी कही गयी है—

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥
(भगवद्गीता २। ७२)

'इस ब्राह्मी स्थितिको प्राप्त पुरुष कभी मोहित नहीं होता और अन्तकालमें भी इसमें निष्ठाको प्राप्त होकर वह ब्रह्ममें विलीन हो जाता है।'

'कर्मयोग'-नामक दूसरे अध्यायमें श्रीगजाननने वरेण्यको कर्मयोगका उपदेश दिया। 'सांख्यसारार्थ'-नामक पिछले प्रथम अध्यायमें ज्ञानका प्रकाशमय मार्ग बतलाया गया था; परंतु केवल मार्ग देख लेना ही पर्याप्त नहीं; उसपर चलना भी आवश्यक है तथा श्रद्धा या भक्तिकी भी इसमें आवश्यकता पड़ती है। गणेशगीताके पहले अध्यायमें श्लोक ३४ तथा ३८में कुछ विरोधाभास-सा दिखायी देनेसे वरेण्यने भी इस सम्बन्धमें अर्जुन-जैसा ही प्रश्न किया—

ज्ञाननिष्ठा कर्मनिष्ठा द्वयं प्रोक्तं त्वया विभो।
अवधार्य वदैकं मे निःश्रेयसकरं नु किम्॥
(गणेशगीता २। १)

'प्रभो! आपने ज्ञाननिष्ठा और कर्मनिष्ठा दोनोंका वर्णन किया है। अब यह निश्चय करके बताइये कि इन दोनोंमें कौन मेरे लिये कल्याणकारी है।'

भगवद्गीताके तीसरे अध्यायके दूसरे श्लोकमें अर्जुनने भी ऐसा ही अनुरोध किया है। श्रीगजाननने कहा कि ''स्थिर स्वभाववालोंके लिये 'बुद्धियोग' और अस्थिर स्वभाववालोंके लिये 'कर्मयोग' बताया गया है। विधियुक्त कर्मको आलस्य या

विषादसे कोई त्याग देता है तो वह निष्क्रियताको नहीं प्राप्त होगा। कोई क्षणभर भी विना कर्म किये नहीं रह सकता, मायाके स्वभावानुसार तीनों गुण उससे कर्म करवाते हैं। कर्मेन्द्रियको रोककर मनसे विषयोंका चिन्तन भी निन्द्य कर्म है; अतः केवल परमेश्वरकी प्रीतिके लिये कर्म करनेवाला ही श्रेष्ठ पुरुष और सच्चा कर्मयोगी है।'

मदर्थे यानि कर्माणि तानि बध्नन्ति न क्वचित्।
सवासनमिदं कर्म बध्नाति देहिनं बलात्॥
(गणेशगीता २। ९)

'जो कर्म मेरे लिये किये जाते हैं, वे कहीं और कभी कर्ताको बाँधते नहीं हैं। वासना या फलासक्तिपूर्वक किया गया यह कर्म देहधारीको बलपूर्वक बाँध लेता है।'

मैंने ही सारे वर्ण और उनके धर्म एक साथ उत्पन्न किये हैं। वे ही धर्म-कर्म-यज्ञ हैं। इसे निष्काम बुद्धिसे करनेपर यह कल्पवृक्ष-सा फल देता है—

वर्णान् सृष्ट्वावदं चाहं सयज्ञांस्तान् पुरा प्रिय।
यज्ञेन ऋध्यतामेष कामदः कल्पवृक्षवत्॥
(गणेशगीता २। १०)

भगवद्गीता ३। ७-१० के भाव भी इसके समानार्थक हैं। उपरिनिर्दिष्ट गणेशगीताके श्लोकसे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि वर्णाश्रमधर्मके अनुसार विधियुक्त कर्मको निष्काम भावसे केवल ईश्वरार्पण-बुद्धिसे करना ही 'यज्ञ' है। ऐसे यज्ञका जो वर्णन भगवद्गीतामें आया है, वही गणेशगीतामें भी उपलब्ध है—

श्रेयान्स्वधर्मोऽगुणो निजो धर्मः साङ्गादन्यस्य धर्मतः।
निजे तस्मिन् मृतिः श्रेयो परत्र भयदः परः॥
(गणेशगीता २। ३५)

'अपना धर्म गुणरहित हो तो भी दूसरेके साङ्गोपाङ्ग धर्मसे उत्तम है। अपने धर्ममें मर जाना भी परलोकमें कल्याणकारी है, परंतु दूसरेका धर्म भय देनेवाला है।'

यही तथ्य भगवद्गीतामें कहा गया है—

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥
(भगवद्गीता ३। ३५)

'विज्ञानयोग'-नामक तीसरे अध्यायमें भगवान् गजाननने भी अपने अवतार-धारणके सम्बन्धमें वे ही बातें बतलायी हैं, जो भगवद्गीताके चौथे अध्यायमें कही गयी हैं। गणेशगीताके 'वैधसंन्यासयोग'-नामक चौथे अध्यायमें योगाभ्यास तथा प्राणायामके सम्बन्धमें जो विशेष बातें बतलायी गयी हैं, वे इस प्रकार हैं:—

"प्राणायामके तीन प्रकार हैं—बारह वर्णोंके उच्चारण करनेतकके समयतक जो प्राणायाम किया जाय, वह 'लघु', चौबीस वर्णोंके उच्चारणका समय लेनेवाला 'मध्यम' तथा छत्तीस वर्णोंके उच्चारणका समय लेनेवाला 'उत्तम' प्राणायाम है। प्राणायामका अभ्यास करनेसे भूत और भविष्यकी बातोंका ज्ञान होने लगता है"—

'अतीतानागतज्ञानी ततः स्याज्जगतीतले॥'
(गणेशगीता ४। ११)

बारह उत्तम प्राणायाम होनेतक चित्त स्थिर करनेको 'धारणा' कहते हैं। दो धारणाओंको 'योग' कहते हैं। इस योगका अभ्यास करनेसे साधकको 'त्रिकालज्ञान' प्राप्त होता है।

'योगवृत्तिप्रशंसनयोग'-नामक पाँचवें अध्यायमें योगाभ्यासके अनुकूल-प्रतिकूल देश-काल-पात्रकी चर्चा की गयी है—

तप्तः श्रान्तो व्याकुलो वा क्षुधितो व्यग्रचित्तकः।
कालेऽतिशीतेऽत्युष्णे वानिलाग्न्यम्बुसमाकुले॥
सध्वनावतिजीर्णे गोः स्थाने साग्नौ जलान्तिके।
कूपकूले श्मशाने च नद्यां भित्तौ च मर्मरे॥
चैत्ये सवल्मिके देशे पिशाचादिसमावृते।
नाभ्यसेद् योगविद् योगं योगध्यानपरायणः॥
(गणेशगीता ५। ७-९)

'जो संतप्त, श्रान्त (थका-माँदा), व्याकुल, भूखा अथवा व्यग्रचित्त हो, वह योगाभ्यास न करे। जहाँ अत्यन्त सर्दी या अत्यन्त गर्मी हो; वायु, अग्नि और जल—तीनोंसे जो स्थान व्याप्त हो, जहाँ कोलाहल होता हो; जो स्थान अधिक जीर्ण खंडहर हो; वहाँ, और अग्नियुक्त गोशालामें, जलके निकट, कुएँके किनारे, श्मशान-भूमिमें, नदीमें, दीवारपर, मर्मर-ध्वनिसे युक्त सूखे पत्तोंकी राशिपर, जहाँ बाँबी लगी हो, ऐसे चैत्यवृक्षके नीचे और पिशाच आदिसे घिरे हुए स्थानमें योग-ध्यानपरायण योगवेत्ता पुरुष योगाभ्यास न करे।'

उपरिनिर्दिष्ट स्थिति एवं देश-कालको योगाभ्यासके लिये अयोग्य बताया है। अविहित रीतिसे योगाभ्यास करनेपर लाभके स्थानपर हानि होनेकी सम्भावना रहती है।

स्मृतिलोपश्च मूकत्वं बाधिर्यं मन्दता ज्वरः ।
जडता जायते सद्यो दोषाज्ञानाद्धि योगिनः ॥
एते दोषाः परित्याज्या योगाभ्यसनशालिना ।
अनादरे हि चैतेषां स्मृतिलोपादयो ध्रुवम् ॥

(गणेशगीता ५ । १०-११)

'इन दोषयुक्त स्थानोंका ज्ञान न होनेसे योगके साधकको शीघ्र ही स्मरण-शक्तिका लोप, गूँगापन, बहरापन, मन्दता (आलस्य), ज्वर और जडता आदि दोष प्राप्त होते हैं । योगाभ्यासशाली पुरुषको इन दोषोंका परित्याग कर देना चाहिये । इनकी अवहेलना करनेपर स्मृति-लोप आदि दोष निश्चय ही प्राप्त होते हैं ।'

योगीको सदा संयमी रहना चाहिये । राजा वरेण्यने भी अर्जुनकी तरह यही शङ्का प्रकट की कि 'यदि कोई योगभ्रष्ट हो जाय तो उसकी क्या गति होगी ?' उत्तरमें भगवान् गणेशने कहा—'ऐसा योगी अपने योग्यतानुसार स्वर्गके भोगोंको भोगकर उच्चकुलमें जन्म लेता तथा फिर योगाभ्यास करके मुक्तिको प्राप्त होता है ।'

'न हि पुण्यकृतां कश्चिन्नरकं प्रतिपद्यते ।'

(गणेशगीता ५ । २६)

'पुण्य कर्म करनेवालोंमेंसे कोई भी नरकमें नहीं पड़ता ।' इसीको भगवद्गीतामें इस प्रकार कहा गया है—

'न हि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति ॥'

(भगवद्गीता ६ । ४०)

'बुद्धियोग'-नामक छठे अध्यायमें कहा गया है—'अपने किसी पूर्व सुकृतके कारण ही मनुष्य मुझे जाननेकी इच्छा करेगा । जिसका जैसा भाव होता है, तदनुरूप ही मैं उसकी इच्छा पूर्ण करता हूँ । अन्तकालमें मेरी इच्छा करनेवाला मुझमें मिलता है । मेरे तत्त्वको जाननेवाले भक्तोंका योग-क्षेम मैं चलाता हूँ ।'

'उपासनायोग'-नामक सातवें अध्यायमें भक्तियोगका वर्णन है । यहाँ सगुण भक्तिको ही 'उपासना' कहा गया है—

ध्यानाद्यैरुपचारैर्मां तथा पञ्चामृतादिभिः ॥
स्नानवस्त्राद्यलंकारसुगन्धधूपदीपकैः ।
नैवेद्यैः फलताम्बूलैर्दक्षिणाभिश्च योऽर्चयेत् ॥
भक्त्यैकचेतसा चैव तस्येप्सितं पूरयाम्यहम् ।
एवं प्रतिदिनं भक्त्या मद्भक्तो मां समर्चयेत ॥
अथवा मानसीं पूजां कुर्वीत स्थिरचेतसा ।
अथवा फलपत्राद्यैः पुष्पमूलजलादिभिः ॥

(गणेशगीता ७ । ६-९)

'जो मनुष्य ध्यान आदि, पञ्चामृत आदि तथा स्नान, वस्त्र, अलंकार, सुगन्ध, धूप, दीप, नैवेद्य, फल, ताम्बूल और दक्षिणा आदि उपचारोंद्वारा भक्तियुक्त एकाग्र चित्तसे मेरी अर्चना करता है, मैं उसका अभीष्ट पूर्ण करता हूँ । मेरा भक्त इसी प्रकार प्रतिदिन भक्तिभावसे मेरी पूजा करे । अथवा सुस्थिर चित्तसे मानसी पूजा करे या फल, पत्र, पुष्प, मूल और जलादिके द्वारा प्रयत्नपूर्वक मेरी अर्चना करे ।'

तान्त्रिक, मानसी, पत्र-पुष्पादि—ऐसे पूजाके तीन प्रकारोंमेंसे किसी भी एक प्रकारसे पूजा करनी चाहिये । परंतु निष्काम भावसे की गयी पूजा श्रेयस्कर है । मेरा द्वेष करते हुए किसी दूसरे देवताके प्रति की हुई पूजा भी मुझे ही प्राप्त होगी; परंतु वह विधि विरुद्ध है । ऐसा प्राणी दुःख भोग कर रास्तेपर आ जायगा । पूजामें भूतशुद्धि, प्राणायाम, न्यास, मन्त्र जप एवं स्तोत्र-पाठ आवश्यक है । पूजामें अधिकार सभीका है । मैं ही सारे विश्वमें परिव्याप्त हूँ । जो मेरी इन विभूतियोंको जानकर मेरी उपासना करता है, वह कभी नष्ट नहीं होता ।

लोकमें जो-जो अतिशय श्रेष्ठ वस्तु है, वह मेरी विभूति है, ऐसा समझो—

'यद्यच्छ्रेष्ठतमं लोके सा विभूतिर्निबोध मे ।'

(गणेशगीता ७ । २५)

इसीके समानार्थक भाव भगवद्गीतामें भी प्राप्त होते हैं—

'यद्यद्विभूतिमत् सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।'

(गीता १० । ४१)

'विश्वरूपदर्शनयोग'-नामक आठवें अध्यायमें श्रीगणेशने भी भक्त वरेण्यको विश्वरूपका दर्शन कराया है । जैसे समुद्रसे उत्पन्न सारे जलबिन्दु समुद्रमें ही लीन होते देखे जाते हैं, वैसे ही अनेक विश्व भगवान् गणेशके उस विशाल रूपमें समाते ही जा रहे थे । वरेण्य उस अनन्तरूपसे भयभीत होकर फिर उसी सौम्य रूपको दिखलानेके लिये प्रार्थना करते हैं । इसपर गणेशजीने सगुण रूप धारण किया और बतलाया कि सगुणोपासना ही मुझे अधिक मान्य है—

यो मां मूर्तिधरं भक्त्या मद्भक्तः परिसेवते ।
स मे मान्योऽनन्यभक्तिर्नियुज्य हृदयं मयि ॥

(गणेशगीता ९ । ३)

'राजन् ! जो मेरा भक्त मुझमें अपना मन लगाकर अनन्यभक्ति रखते हुए प्रेमपूर्वक मुझ साकार ईश्वरका सेवन करता है, वह मेरे लिये समादरके योग्य है ।'

'क्षेत्रज्ञातृज्ञानज्ञेयविवेकयोग'-नामक नवें अध्यायमें क्षेत्र-क्षेत्रज्ञका ज्ञान तथा सत्त्व-रज-तम आदि तीनों गुणोंके लक्षण भी बतला दिये और संक्षेपसे कह दिया—

येन येन हि रूपेण जनो मां पर्युपासते ।
तथा तथा दर्शयामि तस्मै रूपं सुभक्तितः ॥

(गणेशगीता ९ । ४०)

'लोग जिस-जिस रूपमें मेरी उपासना करते हैं, उनकी उत्तम भक्तिसे प्रसन्न होकर मैं उन्हें उसी-उसी रूपमें दर्शन देता हूँ ।'

अब श्रीमद्भगवद्गीतासे इसकी तुलना करें—

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥

(गीता ७ । २१)

'उपदेशयोग'-नामक दसवें अध्यायमें दैवी, आसुरी और राक्षसी—ऐसी तीन प्रकारकी प्रकृतियोंके लक्षण बतलाये गये हैं, जब कि भगवद्गीतामें केवल दैवी और आसुरी दो ही प्रकारकी प्रकृतियोंका वर्णन किया गया है । दैवी प्रकृतिके लक्षण अपैशुन्य, अक्रोध, धैर्य, तेज, अभय, अमानित्व आदि हैं, जो मुक्ति प्रदान करते हैं । अतिवाद, अभिमान, गर्व, भोगेच्छा आदि आसुरी स्वभावके चिह्न हैं, जो पहले भोग तथा बादमें दुःख प्रदान करते हैं । निष्ठुरता, मद, मोह, द्वेष, क्रूरता, जारण-मारणादि प्रयोग, अविश्वास, अपवित्रता, निन्दा, भय एवं असत्य आदि राक्षसी प्रकृतिके गुण हैं, जो नरक और दुःख देनेवाले हैं । पूर्वकृत पापोंके कारण ही नारकी जीव पुनः संसारमें कुबड़े, अन्धे, पङ्गु एवं दीन-हीन होकर उत्पन्न होते हैं—

दैवान्निःसृत्य नरकाज्जायन्ते भुवि कुब्जकाः ।
जात्यन्धाः पङ्गवो दीना हीनजातिषु ते नृप ॥

× × × ×

कामो लोभस्तथा क्रोधो दम्भश्चत्वार इत्यमी ।
महाद्वाराणि वीचीनां तस्मादेतांस्तु वर्जयेत् ॥

(गणेशगीता १० । १३, २३)

'नरेश्वर ! दैववश नरकसे निकलकर वे पृथ्वीपर कुबड़े, जन्मके अंधे, पङ्गु और दीन होकर हीन जातियोंमें जन्म लेते हैं ।'

× × × ×

'काम, क्रोध, लोभ और दम्भ—ये चार नरकोंके महाद्वार हैं । अतः इनका त्याग कर देना चाहिये ।'

अतः दैवी-प्रकृतिका आश्रय लेकर मोक्षका साधन करना चाहिये ।

'त्रिविधवस्तुविवेकनिरूपणयोग'-नामक अन्तिम ग्यारहवें अध्यायमें कायिक, वाचिक तथा मानसिक भेदसे तपके तीन प्रकार बताये गये हैं । ऋजुता, श्रद्धा, शौच (शुद्धता), ब्रह्मचर्य और देव-द्विज-पूजन आदि 'कायिक तप' है, सत्य और प्रियभाषण 'वाचिक तप' है एवं निष्कपटता, समाधान, शान्ति और दया आदि 'मानसिक तप'के प्रकार हैं । तीन गुणोंके सम्बन्धके कारण भी तपके तीन प्रकार और होते हैं । इन्हीं तीन गुणोंके कारण यज्ञ, दान, ज्ञान, कर्म, कर्ता, सुख इत्यादिके भी तीन-तीन भेद हो जाते हैं । इनमें सत्त्वगुण श्रेष्ठ और मोक्षदायक है । चातुर्वर्ण्य भी इन्हीं गुणोंके आधारपर प्रतिष्ठित हुए हैं । प्रत्येकके धर्म भी अलग-अलग हैं—

स्वस्वकर्मरता एते मय्यर्प्याखिलकारिणः ।
मत्प्रसादात् स्थिरं स्थानं यान्ति ते परमं नृप ॥

(गणेशगीता ११ । ३४)

'राजन् ! अपने-अपने कर्मोंमें लगे हुए ये चारों वर्णोंके लोग मुझे समर्पित करके यदि समस्त कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं तो मेरी कृपासे सुस्थिर परम पदको प्राप्त होते हैं ।'

इसी भावकी झलक भगवद्गीतामें भी दिखलायी पड़ती है—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥

(गीता १८ । ४६)

जिस प्रकार भगवद्गीता और गणेशगीताका आरम्भ भिन्न-भिन्न परिस्थितियोंमें हुआ था, उसी तरह इन दोनों गीताओंके श्रवणका परिणाम भी भिन्न-भिन्न हुआ । अर्जुन अपने क्षात्र-धर्मके अनुसार युद्ध करनेको तैयार हो गये, परंतु राजा वरेण्य पुत्रको राज्यभार सौंपकर वेगपूर्वक वनमें चले गये । वहाँ उन्होंने योगका आश्रय ले मोक्ष प्राप्त कर लिया—

त्यक्त्वा राज्यं कुटुम्बं च कान्तारं प्रययौ त्वरात् ।
उपदिष्टं यथा योगमास्थाय मुक्तिमाप्तवान् ॥

(गणेशगीता ११ । ३८)

उस मुक्त-स्थितिका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

यथा जलं जले क्षिप्तं जलमेव हि जायते।
तथा तद्ध्यानतः सोऽपि तन्मयत्वमुपाययौ ॥

'जिस प्रकार जल जलमें मिलनेपर जल ही हो जाता है, उसी प्रकार ब्रह्मरूपी गणेशका चिन्तन करते हुए राजा वरेण्य भी उस ब्रह्मरूपमें समा गये।'

प्रचारकी दृष्टिसे गणेशगीताका प्रचार अत्यल्प है। भगवद्गीताका प्रचार अनन्त गुना है। गणेशगीतापर भाष्य भी बहुत ही कम लिखे गये हैं, जब कि भगवद्गीतापर लिखे गये भाष्योंकी संख्या करनी कठिन है। इतना होनेपर भी दोनों गीताओंकी फलश्रुति एक ही है। साधक इन दोनोंमेंसे चाहे भगवद्गीताका आश्रय ले, चाहे गणेशगीताका, किसी भी गीताके अनुसार साधन-भजन करनेपर प्रत्येक साधकको समान प्रकारकी ब्राह्मी स्थितिकी प्राप्ति होगी। यह इसलिये कि दोनोंका प्रतिपाद्य विषय एक ही है तथा विषयकी प्रतिपादन-शैली भी लगभग एक-सी है।

श्रीगणेश-साहित्य-संकेतिका

भगवान् श्रीगणेशकी मान्यता और उनकी आराधना केवल भारतमें ही नहीं, अपितु भारतेतर अनेक देशोंमें भी प्रचलित है। जैसे—नेपाल, तिब्बत, चीन, जापान, जावा, बर्मा, श्रीलंका तथा मैक्सिको आदि। जिन-जिन अन्य देशों और भारतके विभिन्न प्रदेशोंमें भगवान् श्रीगणेशकी मूर्तियाँ पायी जाती हैं तथा उनकी आराधना की जाती है, उन-उन देशों और प्रदेशोंकी तत्तत्-भाषाओंमें श्रीगणेश-सम्बन्धी प्रभूत साहित्य अवश्य उपलब्ध होना चाहिये। उस सम्पूर्ण साहित्यकी तालिका हमें प्राप्त नहीं हो सकी है। फिर भी देशके कतिपय मूर्धन्य विद्वानों एवं श्रीगणेश-आराधकोंके कृपापूर्ण सहयोगके आधारपर प्रस्तुत 'श्रीगणेश-साहित्य-संकेतिका' तैयार की गयी है। उसमें सहयोग प्रदान करनेवाले महानुभावोंमें प्रमुख हैं—(१) श्रीअमरेन्द्रजी गाडगील, पूना, (२) श्रीशिवनारायणजी खन्ना, कलकत्ता, (३) श्रीसुखमयजी भट्टाचार्य, शान्तिनिकेतन, (४) श्रीउमियाशंकरजी ठाकर, आनन्द, (५) डा० एन० एम० दक्षिणामूर्ति, मैसूर, (६) डा० श्री के० टी० नीलकण्ठम्, मैसूर, (७) पद्मश्री सदाशिवरथ शर्मा, पुरी, (८) श्री वी० आर० के० आचार्युलु, वेमावरम्, (९) श्री एस० आर० सारङ्गपाणि, एम्० ए०, (१०) प० श्री ए० वी० शौरिराजन्, शिरोमणि, नेलवेलि और (११) श्रीरासमोहन चक्रवर्ती, एम्० ए०, पी-एच्०डी०, पुराणरत्न, विद्याविनोद आदि। हम इन सभी कृपालु महानुभावोंके हृदयसे आभारी हैं।

'संकेतिका'के सभी ग्रन्थोंकी मान्यता इस विशेषाङ्कके अनुरूप ही हो, यह सम्भव नहीं है। 'भिन्नरुचिर्हि लोक'—के अनुसार सभीने अपनी-अपनी आँखोंसे श्रीगणेशको देखा है। तालिकामें प्रयुक्त सांकेतिक चिह्नोंका अर्थ इस प्रकार समझना चाहिये—ले०—लेखक, स०—सम्पादक, अ०—अनुवादक, प्र०—प्रकाशक, पृ०—पृष्ठ-संख्या।

संस्कृत भाषा

१–गणेशपुराण *
२–श्रीमुद्गलपुराण*—रचयिता—मुद्गल ऋषि, प्र०—श्रीमन्त बापूसाहेब अर्थात् गणपति हरिहर पटवर्द्धन, राजा साहेब कुरुन्दवाड संस्थान, कुरुन्दवाड; पृष्ठ-६०७
३–पद्मपुराण–(सृष्टिखण्ड, अध्याय ६१–६३)
४–भविष्यपुराण–(चतुर्थ–उत्तरपर्व, अ० ३१–३३)
५–वराहपुराण–(अध्याय २३)
६–लिङ्गपुराण–(पूर्व०, अ० १०४—५)
७–शिवपुराण–(रु० स०, कु० ख० १३—२१)
८–गरुडपुराण–(सारोद्धार; १५ वाँ अध्याय)
९–ब्रह्मपुराण–(अध्याय ३९)
१०–ब्रह्मवैवर्त्तपुराण–(गणपतिखण्ड)
११–स्कन्दपुराण–(का० खं० ५५–५७)
१२–अग्निपुराण–(अ० ७१, १७९, ३१३, ३१८, ३४८)
१३–ब्रह्माण्डपुराण–(अध्याय १—५)
१४–सौरपुराण–(४३ वाँ अध्याय)
१५–विष्णुधर्मोत्तरपुराण–(खं० ३, अ० १०४)
१६–नारदपुराण–(अध्याय ५१, ६५, ६६, १४३)

* विशेष परिचयके लिये मार्च, १९७४ का अङ्क देखना चाहिये। दोनों ग्रन्थोंकी प्रतियाँ अब प्रायः अप्राप्य हैं।

१७–याज्ञवल्क्यस्मृति (विनायक-शान्ति प्रकरण)
१८–गणेशभागवत (यह इस समय प्रायः अप्राप्य है; मराठी विद्वानोंके अनुसार इसकी श्लोक-संख्या २१,००० कही जाती है ।)
१९–गणपत्युपनिषद्
२०–हेरम्ब-उपनिषद्
२१–गणेशपूर्वतापिन्युपनिषद्
२२–गणेशोत्तरतापिन्युपनिषद्
२३–गणपतिसूक्त
२४–ब्रह्मणस्पतिसूक्तम्–सं०–विद्याविनोद नारायण वामन-शास्त्री आंजर्लेकर; प्र०–गंगाधर महादेव केलकर, बंदर रोड, रत्नागिरि; पृ०–९२
२५–तन्त्रसार [श्रीगणेश-सम्बन्धी अंश] सं०–श्रीकृष्णा-नन्द आगमवागीश भट्टाचार्य; प्र०–चौखम्भा संस्कृत-सीरीज, वाराणसी–१
२६–गणेशगीता–टीकाकार नीलकण्ठ; प्र०–आनन्द-आश्रम-प्रेस, पूना; पृ०–१८२
२७–गणेशगीताशास्त्रम्–सं० व प्र०–हेरम्बराज बाल-शास्त्री, योगीन्द्र मठ, मोरगाँव, पूना; पृ०–६८
२८–गणेशतत्त्वसुधालहरी–ले०–कवि श्रीनीलकण्ठजी शास्त्री पद्मनदम्; प्र०–पण्डित एन० विद्यानाथ शास्त्री शिरोमणि, के० वी० बालादेवी, सुपरिंटेंडेंट एकाउंटेंट जनरल, कचेरी, मद्रास; पृ०–२३
२९–मन्त्रमहार्णवः [श्रीगणेश-सम्बन्धी अंश] (प्र०–श्रीवेङ्कटेश्वर स्टीम् प्रेस, बम्बई)
३०–मन्त्रमहोदधि [श्रीगणेश-सम्बन्धी अंश] (प्र०–श्रीवेङ्कटेश्वर स्टीम् प्रेस, बम्बई)
३१–विनायकमाहात्म्यम्–सं०–वासुदेवशास्त्री पणशीकर; प्र०–निर्णयसागर प्रेस, डा० एम्० बी० वेलकर स्ट्रीट, बम्बई; पृ०–५१
३२–शाक्तप्रमोदः [श्रीगणेश-सम्बन्धी अंश] (प्र०–लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर यन्त्रालय, कल्याण, बम्बई)
३३–शारदातिलकतन्त्रम् [श्रीगणेश-सम्बन्धी अंश]–(प्र०–आगमानुसंधान-समिति, ७१, चल्ला बागान, कलकत्ता)
३४–श्रीमदुच्छिष्टगणपतिसहस्रनामस्मरण–सं० एवं प्र०–वी० राघवन्, संस्कृत-प्राध्यापक, मद्रास विद्यापीठ, मद्रास–५; पृ०–२४
३५–गणपतिस्तोत्रम्–प्र०–निर्णयसागर प्रेस, डा० एम्० बी० वेलकर स्ट्रीट, बम्बई–२; पृ०–२२
३६–गणेशसहस्रनामस्तोत्रम्–(सहस्रनामावली एवं गणपत्यथर्वशीर्षसहित)–सं०–पं० नारायण शास्त्री खिस्ते; प्र०–बैजनाथप्रसाद बुकसेलर, राजा-दरवाजा, वाराणसी १; पृ०–६४
३७–गणेशसहस्रनाम–भास्कररायप्रणीत खद्योतभाष्य; प्र०–निर्णयसागर प्रेस, २६ | २८, डा० एम्० बी० वेलकर स्ट्रीट, बम्बई–२; पृ०–९१
३८–गणेशस्तोत्राणि–सं०–तंजापुरि कृष्णार्य राजगोपालन्; प्र०–निर्णयसागर प्रेस, डॉ० एम्० बी० वेलकर स्ट्रीट, बम्बई–२; पृ०–९२
३९–गाणपत्योपयोगिपुस्तकानां संग्रहः–प्र०–गाणपत्य चिन्तामणिराव बालकृष्ण घडफले; पृ०–२८
४०–गणपतितत्त्वरत्नम्–प्र०–चिन्तामणि बालकृष्ण घडफले, राजराजेश्वर मुद्रणालय, काशी; पृ०–३०
४१–महागणत्यथर्वशीर्ष–प्र०–केशव भिकाजी ढवळे, बम्बई; पृ०–४८
४२–महागणपतिसपर्यापद्धति–सं०–सी० वी० स्वामि-शास्त्री; प्र०–गणेशभक्त-मण्डली, गुहानन्द-मण्डली, पाझवनथंगाल, मद्रास २७; पृ०–१४८
४३–उच्छिष्टगणपत्युच्छिष्टचाण्डालिन्युपासना–प्र०–श्रीवेङ्कटेश्वर स्टीम् प्रेस, बम्बई; पृ०–८९
४४–(गकारादि) श्रीगणेशसहस्रनामस्तोत्रम्–प्र०–गीताप्रेस, गोरखपुर; पृ०–६४
४५–श्रीगणेश-आराधना–ले०–नारायणशास्त्री जोशी; प्र०–मयूरेश प्रकाशन, बम्बई; पृ०–९६

हिंदी भाषा

१–गणेश–ले०–डा० श्रीसम्पूर्णानन्द; प्र०–काशी विद्यापीठ, वाराणसी; पृ०–५०
२–श्रीगणेशमीमांसा–(सम्पूर्ण कुतर्क-कर्तन) ले०–'श्रीकृष्ण', प्र०–हेन्वार, के० २४ | ८ रामघाट, वाराणसी; पृ०–९५
३–गुप्तगणपति परिचय और गणपति संगीत–ले०–श्रीरणछोड़दास उद्धव, प्र०–श्रीरणछोड़ प्रकाशन मन्दिर, श्रीरणछोड़ टीकम मन्दिर, महिदपुर, मालवा; पृ०–६४
४–गणेशचालीसा, गणेशाष्टक– ले०–अवध-विहारी; प्र०–श्रीलोकनाथ पुस्तकालय, १७३, महात्मा गांधी रोड, कलकत्ता–७

५–गणेशका वैदिक तथा पौराणिक स्वरूप–ले०–हंसराज, गणेशकोश-मण्डल पुस्तकालय

६–माघ-भादो गणेशचतुर्थीव्रतकथा–प्र०–मास्टर खेलाड़ीलाल एंड संस, वाराणसी

७–गणेशकथा–ले०–भगवानदास अवस्थी; प्र०–ज्ञानलोक, प्रयाग

८–गणेशपुराण–अ० मोतीलाल, प्र०–गणेशीलाल लक्ष्मीनारायण, मुरादाबाद; पृ०–८८

९–गणेश-आराधना–ले०–राजेश दीक्षित, प्र०–देहाती पुस्तक-भण्डार, दिल्ली; पृ०–२०८

१०–श्रीगणेश और अन्य कथाएँ–ले०–श्रीनाथसिंह; प्र०–'दीदी'-कार्यालय, इलाहाबाद

११–गणेशाङ्क–मासिक 'कल्याण'का प्रस्तुत विशेषाङ्क, जनवरी, १९७४ सं०–चिम्मनलाल गोस्वामी, प्र०–मोतीलाल जालान, पो०–गीताप्रेस, गोरखपुर (उ० प्र०); पृ०–५४०

१२–गणेशगीता–[मूल संस्कृत हिंदी अर्थसहित] अ०–पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र, प्र०–श्रीवेङ्कटेश्वर स्टीम् प्रेस, बम्बई; पृ०–१२४

१३–गणपति-सम्भवम्–[मूल संस्कृत हिंदी अर्थसहित] ले०–पं० प्रभुदत्त शास्त्री; प्र०–अर्चना प्रकाशन, ७६ रामदास पेठ, नागपुर; पृ०–२७२

१४–श्रीगणेशपुराण–[भाषानुवाद प्रथम भाग] अ०–पूर्णचन्द्र कासलीवाल, जयपुर; मुद्रक–हरिहर इलैक्ट्रिक मशीन प्रेस, छत्ता, मथुरा; पृ०–१४१

१५–श्रीगणेश–ले०–प० श्रीमाधवाचार्य शास्त्री; प्र०–माधव पुस्तकालय, कमलानगर, दिल्ली; पृ०–५६

मराठी भाषा

१–चिन्तामणिविजय–ले०–कवि धुंडीदास; प्र०–प्रमिला शिवराम आवटी, रानडे रोड, मुकुन्द बिल्डिंग, दादर, बम्बई; पृ०–३६०

२–गणेशपुराण–(मूल संस्कृत और मराठी भाषान्तर) अ०–श्रीविष्णुशास्त्री बापट; प्र०–दामोदर लक्ष्मण लेले, मोदवृत्त छापखाना, वाई; पृ०–९३३

३–गणेशपुराण–ले० एवं प्र०–कवि बलभीम मोरेश्वर भट, ४०६, नारायण, पूना २; पृ०–४८२

४–गणेशप्रताप–ले०–कवि कै० विनायक महादेव नातू; प्र०–श्रीमयूरेश प्रकाशन, रुक्मिणीनिवास, ब्लाक क्र० २, मोरबाग रस्ता, दादर, बम्बई-१४; पृ०–४८२

५–श्रीगणेशप्रभाव–ले० एवं प्र०–श्रीपाद नारायण सातघर, एडवोकेट, न्यू बम्बई आगरारोड, कुर्ला, बम्बई; पृ०–३११

६–श्रीगणेशलीलामृत–प्र०–मु० नारायण रामचन्द्र सोहनी, जगदीश्वर छापाखाना, बम्बई; पृ०–८६

७–गणेशविजय–ले०–श्रीमत् गणेशयोगीन्द्राचार्य; सं० एवं प्र०–श्रीहेरम्बराज बालशास्त्री शर्मा, श्रीयोगीन्द्रमठ संस्थान, मोरगाँव, जिला– पूना; पृ०–प्रथम खण्ड ४४८, द्वितीय खं० ३८२, तृ० खण्ड ६७५

८–गणेशविलास–ले०–एकनाथ महाराज; प्र०–अनन्त चिन्तामण जोशी, श्रीबल्लालविनायक छापाखाना, मुरुड, जंजिरा; पृ०–९८

९–श्रीगणेश-शारदा-सद्गुरु–ले०–सदाशिव कृष्ण फड़के; प्र०–स्वाध्याय-मण्डल, पारडी, सूरत; पृ०–१५२

१०–श्रीमङ्गलमूर्ति–ले०–सदाशिव कृष्ण फड़के; प्र०–केशव भिकाजी ढवळे, श्यामहाल लेन, बम्बई–४; पृ०–१९०

११–मङ्गलमूर्ति श्रीगणेश–ले०–पु० रा० बेहरे; प्र०–सौ० मनोरमा पु० बेहरे, रामेश्वरनिवास, जोगेश्वरी, (पूर्व) बम्बई; पृ०–१०८

१२–मङ्गलमूर्ति गणेश–ले०–पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर; प्र०–स्वाध्याय-मण्डल, पारडी, जि० सूरत; पृ०–१६४

१३–मुद्गलपुराण–अ०–चिन्तामण गङ्गाधर भानु; पृ०–२६७

१४–श्रीमद्योगीन्द्रविजय–ले०–श्रीअङ्कुशधारी योगीन्द्र महाराज, सं० एवं प्र०–हेरम्बराज बालशास्त्रीशर्मा, योगीन्द्रमठ, मोरगाँव, पूना; पृ०–२३४०

१५–श्रीमद्योगीश्वरी–ले०–श्रीमद्गणेशयोगीन्द्राचार्य; प्र०–हेरम्बराज बालशास्त्रीशर्मा, योगीन्द्रमठ, मोरगाँव, पूना; पृ०–१३९२

१६–गणपतीची कथा–ले०–अ० शं० अग्निहोत्री; प्र०–श्रीराम प्रकाशन, ठाकुरद्वार, बम्बई २; पृ०–३२

१७–गणपतीची गोष्ट–ले०–अमरेन्द्र; प्र०–वोरा एंड कंपनी, ३, राउण्ड बिल्डिंग, काल्बादेवी रोड, बम्बई २; पृ०–१६

१८–**गणपतीच्या गोष्टी**—लें०–क० मा० कु० शिंदे; प्र०–ताडदेव बुकडिपो, ताडदेव, बम्बई–७; पृ०–३२

१९–**गणपतीच्या गंमती**—लें०–पु० रा० वेहेरे; प्र०–सौ० सुधा गजानन रायकर,कमला-निवास, ए ब्लाक, मुगभाट, बम्बई–४; पृ०–२४

२०–**महागणपति**—लें०–त्र्यं० ग० वापट; प्र०–द० र० कोपर्डेकर, ५२९ सदाशिव, पूना; पृ०–३१

२१–**मुलांचा गणपती**—लें०–शं० रा० देवले और वि० न० गोघलेकर; प्र०–वीनस प्रकाशन, ४१०, शनिवार पेठ, पूना–२; पृ०–३२

२२–**मङ्गलमूर्ति**–लें० एवं प्र०–दा० वि० कुलकर्णी, कोल्हापुर; पृ०–३०

२३–**अष्टविनायक**–लें०–सदानन्द चेंदवणकर; प्र०–साहित्य-रसमाला प्रकाशन, नितीन मैंशन, ७वीं खेतवाड़ी, बम्बई ४; पृ०–६१

२४–**श्रीअष्टविनायक**–लें०–द० म० खेर; प्र०–आनन्द-कार्यालय प्रकाशन, १०१५, सदाशिव, पूना २; पृ०–१२०

२५–**अष्टविनायक कथा**–लें०–दत्ताजी कुलकर्णी; प्र०–नलिनी प्रकाशन, ९७७, सदाशिव पेठ, पूना २; पृ०–३०

२६–**श्रीअष्टविनायक मार्गदर्शिका**–लें० एवं प्र०–म० ना० सोमण, क्वेट्टा टेरेस, दूसरा बाबुलनाथ क्रॉस रोड, बम्बई ७; पृ०–४२

२७–**एकविंशति गाणेशक्षेत्र महिमा**–लें० एवं प्र०–हेरम्बराज बालशास्त्रीशर्मा, योगीन्द्रमठ, मोरगाँव, पूना; पृ०–१४६

२८–**गणपतिपुळे माहात्म्यवर्णन**–लें०–के० जनार्दन विठ्ठल पाठक, गणपतिपुळे, रत्नागिरि; पृ०–५३

२९–**गणपतिपुळे क्षेत्राची संक्षिप्त माहिती**–लें०–प्रभाकर वासुदेव शास्त्री शेंड्ये; प्र०–द० वा० शेंड्ये, पूना; पृ०–१२

३०–**श्रीगणेश कथासार**–लें०–रामराव मोहनीराज शास्त्री; प्र०–गणपति-संस्थान, राजूर, औरंगाबाद; पृ०–२६

३१–**गिरगाँवचा फडके श्रीगणपती**–लें०–सदानन्द चेंदवणकर, प्र०–निर्णयसागर प्रेस, डॉ० एम्० बी० वेलकर स्ट्रीट, बम्बई २; पृ०–१६

३२–**टिटवाळा श्रीमहागणपति दर्शन**–लें०–शि० मो० घैसास; प्र०–जयहिंद प्रकाशन, झावबाची वाडी, बम्बई २; पृ०–१६

३३–**पुण्यांतील एक जागृत दैवत**–लें०–दामोदरशास्त्री दाते; प्र०–सौ० नलिनी दामोदर दाते, १२२, शनिवार, नेने घाट, पूना २; पृ०–८

३४–**फडके श्रीगणपति-मन्दिर**—लें०–शि० मो० घैसास; प्र०-जयहिंद-प्रकाशन, झावबाची वाडी, बम्बई-२; पृ०-१६

३५–**श्रीभूस्वानन्दक्षेत्रमहिमा मोरेश्वर क्षेत्रवर्णन**—लें० एवं प्र०–हेरम्बराज बालशास्त्रीशर्मा, योगीन्द्रमठ, मोरगाँव, पूना; पृ०–८४

३६–**महाराष्ट्रांतील महागणपति**—लें०–सदानन्द चेंदवणकर; प्र०-निर्णयसागर प्रेस, डॉ० एम्० बी० वेलकर स्ट्रीट, बम्बई- २; पृ०–१३६

३७–**लक्षविनायक-माहात्म्य—लक्षविनायक-सप्तशती** लें० एवं प्र०—हेरम्बराज बालशास्त्रीशर्मा, योगीन्द्रमठ, मोरगाँव, पूना; पृ०-१३२

३८–**सिद्धिविनायकदर्शन**—लें०–यशवंत रामकृष्ण; प्र०–जयहिन्द-प्रकाशन, झावबाची वाडी, बम्बई–२, पृ०–१६

३९–**ओंकारस्वरूप (श्रीगणेश) चिन्तामणीस्तवन**—लें०–कवि रा० गो० परांजपे; प्र०–प्रकाश संजीवन औषधालय, श्रीगिरीधारी भुवन, सदाशिव गली, गिरगाँव, बम्बई–४; पृ०–१२

४०–**श्रीअष्टविनायक स्तोत्र व माहात्म्य**—प्र०–सौ० मेघा माधव परचुरे, रुक्मिणी-निवास, दादर, बम्बई-१४; पृ०–२८

४१–**आरती-संग्रह**—प्र०–सौ० जयश्री घनेश्वर, जयलक्ष्मी प्रकाशन,शिवाजी पार्क, दादर, बम्बई २८; पृ०-१८

४२–**उपासनामार्गाचें तत्त्व**—लें० एवं प्र०–हेरम्बराज बालशास्त्रीशर्मा, योगीन्द्रमठ, मोरगाँव, पूना; पृ०-४४

४३–**गणपत्यथर्वशीर्ष**—अ०–डा० सी० ग० देसाई; प्र०–आर० बी० मजीठिआ, भानु मैंशन, खजुरी तलाव, कांदिवली, बम्बई ६७; पृ०–३२

४४–**गणपति पुष्पहार**—प्र०–सीताराम नारायण लेले शास्त्री, नवी अमृतवाडी, रूम नं० २१३, बम्बई–४; पृ०–१६

४५–गणपतिः प्रमुख अवतार व आराधना—ले०–अनंत वासुदेव मराठे; प्र०—निर्णयसागर प्रेस, डॉ० एम्० बी० वेलकर स्ट्रीट, बम्बई-२; पृ०–८६
४६–गणपतीचीं एकवीस स्तोत्रें—प्र०—ग० का० रायकर, जयहिंद-प्रकाशन, झावबाची वाडी, बम्बई-२; पृ०–५०
४७–गणपतिस्तोत्र—प्र०—ग० का० रायकर, जयहिंद-प्रकाशन, झावबाची वाडी, बम्बई-२; पृ०–१६
४८–गणेश-उपासना—प्र०–ग० मो० काले, पु० ग० पटवर्धन; रावपुरा, बड़ौदा; पृ०–११६
४९–श्रीगणेश-उपासनाः दैनिक नित्यकर्म—प्र०–चिंतामण गणेश पाठक (कड्डूसकर), ३८३, शनिवार पेठ, पूना–२; पृ०–२४
५०–गणेशगीता [सार्थ]—अ०–दत्तात्रेय रघुनाथशास्त्री देवधर; प्र०–विनायक रंगो फड़के, गणेश-मन्दिर, फड़के वाड़ी, वसई, थाना; पृ०–१२८
५१–गणेशगीता—अ०–निरंजनदास वल्लाल; प्र०-जगद्धितेच्छु छापाखाना, शनिवार पेठ, मेहुणपुरा, पूना; पृ०–२७७
५२–गणेशपूजा—ले०–कृष्णाजी विट्ठल सोमण; प्र०—ग० का० रायकर, जयहिंद-प्रकाशन, झावबाची वाडी, बम्बई-२; पृ०–३२
५३–गणेशभक्तिरसामृत—ले० एवं प्र०–लक्ष्मण महादेव जोशी, १७, मोघेभवन, गोखले रोड (नार्थ), दादर, बम्बई-२८; पृ०–१२८
५४–गणेशमहिम्नस्तोत्रम् [सार्थ]—अ०–अ० वि० काणे; प्र०–आपटे एंड कंपनी, ठाकुरद्वार, बम्बई–२; पृ०–२४
५५–गणेशवरदस्तोत्र—ले०–कवि त्र्यम्बकराय; प्र०–सौ० लक्ष्मीबाई नारायण देशपाण्डे, इन्दिरानिवास, न्यू बम्बई-आगरा-रोड, कुर्ला, बम्बई-७०; पृ०–३२
५६–बल्लाल विनायकदर्शन—ले० एवं प्र०—गजानन लक्ष्मण धारण, वकील, पाली, कुलावा; पृ०–३०
५७–गणेशपुराण आर्या—ले०–गणपति हरिहर पटवर्धन, माधवपुर, बेलग्राम
५८–गणेशाथर्वशीर्ष—ले०–सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव; प्र०—शं० र० दांते, ३९५ । २, सदाशिव पेठ, पूना-२, पृ०–२०
५९–गणेशमटादर्श श्रीमद्योगीन्द्रानुशासनम्–ले० एवं प्र०—हेरम्बराज बाल्शास्त्रीशर्मा, योगीन्द्रमठ, मोरगाँव, पूना; पृ०–८८
६०–पदांचा गाथा—प्र०–विश्वस्त, श्रीदेव-संस्थान, चिंचवड, पूना; पृ०–११२
६१–भाद्रपद महिना सण-व्रते व उत्सव—ले०–वैद्य गंगाधर वासुदेव साठे; प्र०–अ० म० मेहेंदले, १९८, सदाशिव, पूना-२; पृ०—४८
६२–महागणपति अथर्वशीर्ष—ले०–य० वि० शालिग्राम; प्र०–गणेशपीठ-प्रकाशन, २२ । ३२२, लोकमान्यनगर, पूना-९; पृ०–२८
६३–मङ्गलप्रभु-गुणगान—ले०– कवि यति श्रीनारायणानन्द सरस्वती; प्र०–समर्थसेवामण्डल, सज्जनगढ़, सतारा; पृ०–५६
६४–संकट मुक्तता व इच्छापूर्ति—ले० एवं प्र०–गोपाल लक्ष्मण वोटेकर, भुसावल; पृ०–३४
६५–संकष्टीचतुर्थी-स्तोत्र—ले०–डा० म० वि० खरे; प्र०—सेवा-मुद्रणालय, १६७ बी, कोल्हापुर; पृ०–१४
६६–श्रीसत्यविनायकव्रतपूजा सार्थ कथा—प्र०–निर्णयसागर प्रेस, डॉ० एम्०-बी० वेलकर स्ट्रीट, बम्बई-२; पृ०–४०
६७–श्रीसिद्धिविनायकपूजा सार्थ कथा—प्र०–निर्णयसागर प्रेस, डॉ० एम्० बी० वेलकर स्ट्रीट, बम्बई-२; पृ०–३२
६८–गणेशोत्सवाचीं साठ वर्षे—सं०-ज० स० करंदीकर; प्र०-(सार्वजनिक गणेशोत्सव) हीरक महोत्सव मण्डल, गायकवाडवाडा, ५६८, नारायण-पेठ, पूना-२; पृ०–५१६
६९–पुरुषार्थ 'गणेशाङ्क'—(सितम्बर १९३५-३६)–सं०–श्री दा० सातवलेकर, स्वाध्याय-मण्डल, पारडी, सूरत
७०–भालचंद्र-मासिक 'गणेशाङ्क' (सितम्बर १९६७) नासिक
७१–'प्रसाद', 'गणेशाङ्क'—सं०–श्रीमनोहर य. जोशी; प्र०–प्रसाद प्रकाशन, १८९२, सदाशिव, पूना-२; पृ०–९६
७२–श्रीगणेश कोश—सं०–श्रीअमरेन्द्र गाडगील, प्र०–श्रीगणेश-कोश-मण्डल, ११९४, सदाशिव पेठ, पूना-२; पृ०–६३२

गुजराती भाषा

१–सत्यविनायक-कथा—ले० एवं प्र०–श्रीइच्छाराम सूर्यराम देसाई, गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, फोर्ट, बम्बई–१; पृ०–८०

२–गणपति-पूजा-विधि—ले० एव प्र०–श्रीइच्छाराम सूर्यराम देसाई, गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, फोर्ट, बम्बई–१; पृ०–१५६

३–गणपति-अध्यात्मज्ञान—ले० एवं प्र०–श्रीइच्छाराम सूर्यराम देसाई, गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, फोर्ट, बम्बई–१;

४–गणेशसहस्र-नामावलि—ले० एव प्र०–श्रीइच्छाराम सूर्यराम देसाई, गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, फोर्ट, बम्बई–१; पृ०–५०

५–गणपति-अथर्वशीर्ष—ले० एवं प्र०–श्रीइच्छाराम सूर्यराम देसाई, गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, फोर्ट, बम्बई–१; पृ०–४०

६–गणपति-एकाक्षर-मन्त्र—ले० एव प्र०–श्रीइच्छाराम सूर्यराम देसाई, गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, फोर्ट, बम्बई–१; पृ०–२४

७–गणपति-उपासना—प्र०–महादेव रामचन्द्र जागुष्टे, मण दरवाजा, अहमदाबाद; पृ०–१००

८–गणपति अथर्वशीर्ष—प्र०–महादेव रामचन्द्र जागुष्टे, मण दरवाजा, अहमदाबाद; पृ०–२४

९–गणपति-उपासना—ले०–रमाशंकर मुक्ताशंकर जोषी, प्र०–हरिहर पुस्तकालय, टावर रोड, सूरत; पृ०–१००

१०–गणपति-पूजा-कथा—प्र०–हरिहर पुस्तकालय, टावर रोड, सूरत; पृ०–४८

११–गणपति-सहस्रनामावलि—प्र०–हरिहर पुस्तकालय, टावर रोड, सूरत; पृ०–३२

१२–गणेश-पूजन-विधि—प्र०–सेठ माणेकलाल व्रजभूषणदास, ९, सी०पी० टैंक रोड, बम्बई ४; पृ०–१३२

१३–गणेश-सहस्र-नामावलि—प्र०–सेठ माणेकलाल व्रजभूषणदास, ९, सी० पी० टैंक रोड, बम्बई-४; पृ०–४०

१४–गणपति-अध्यात्मज्ञान—ले०–रमाशंकर मुक्ताशंकर जोषी; प्र०–सेठ माणेकलाल व्रजभूषणदास, ९, सी० पी० टैंक रोड, बम्बई–४; पृ०–३२

१५–गणपति एकाक्षर-मन्त्र—ले०–श्रीरमाशंकर मुक्ताशंकर जोषी, प्र०–सेठ माणेकलाल व्रजभूषणदास, ९, सी० पी० टैंक रोड, बम्बई ४; पृ०–१६

१६–सिद्धिदायक बीजमंत्रो—ले०–उमियाशंकर ठाकर, प्र०–जयन्तीलाल ठाकर, गायत्री-गीत-मजरी-सदन, घोबी फलिया, आनन्द, गुजरात, पृ०–२४४

१७–ॐकार ब्रह्म-उपासना अने मूर्तिपूजा—ले०–ब्रह्मचारी पूर्णानन्दस्वरूप महाराज, प्र०–श्रीगणपति-मन्दिर, लुणावडा, गुजरात; पृ०–२६४

१८–गणेशमहिम्नस्तोत्र—ले०–विनायक योगी महाराज

१९–सत्यविनायक-कथा—ले०–विनायक योगी महाराज

कन्नड भाषा

१–गणेशपुराण (आठ भाग)—अ०–हानगल यज्ञेश्वर शास्त्री, प्र०–जयचामराजेन्द्र-ग्रन्थमाला, मैसूर

२–गणेशपुराण—अ०–चन्द्रशेखर शास्त्री, प्र०–पैलेस लाइब्रेरी मैसूर; पृ०–५००

३–गणेशोपासना-प्रकाश—ले०–रामचन्द्रशास्त्री 'सूरि', प्र०–श्रीसिद्धिविनायक-वदिक-विद्यापीठम्, श्री-सिद्धिक्षेत्र, इडगुंजि

४–गणपतिय कल्पने—ले०–एस्० के० रामचन्द्रराव, प्र०–सुरमा प्रकाशन, बंगलोर–११

५–भविष्यपुराण (विनायक-चतुर्थी-कथा)—अ०–वी० चेन्नकेशवय्या; प्र०-जयचामराजेन्द्र ग्रन्थ-माला, मैसूर

६–लिङ्गपुराण (विनायककी कथा)—अ०–एडतोरे चन्द्रशेखर शास्त्री; प्र०–जयचामराजेन्द्र-ग्रन्थमाला, मैसूर

७–शिवपुराण (विनायककी कथा)—ले०–हासनद पण्डित वैङ्कटराव; प्र०–जयचामराजेन्द्र-ग्रन्थमाला, मैसूर

८–वराहपुराण (विनायककी कथा)—अ०–म० र० वरदाचार्य; प्र०–जयचामराजेन्द्र-ग्रन्थमाला, मैसूर

९–वराहपुराण (विनायककी कथा)—अ०–पं० पण्डरीनाथाचार्य गलगलि, प्र०–वेदपुराण-साहित्यमाला ट्रस्ट, गदग

१०-स्कन्दपुराण(विनायककी कथा)—अ०-मोटगानहल्लि सुब्रह्मण्यशास्त्री; प्र०-जयचामराजेन्द्र-ग्रन्थमाला, मैसूर

११-ब्रह्मवैवर्तपुराण (विनायककी कथा)—अ०-बी० एस्० कृष्णप्पा; प्र०-जयचामराजेन्द्र-ग्रन्थमाला, मैसूर

१२-पद्मपुराण (विनायककी कथा)—अ०-बेल्दकेरे सूर्यनारायणशास्त्री; प्र०-जयचामराजेन्द्र-ग्रन्थमाला, मैसूर

१३-गणेश-दर्शन—ले०-श्री पु० तिं० नरसिंहाचार; प्र०-गीता बुक हाउस, मैसूर; पृ०-२००

उपर्युक्त सभी रचनाएँ वर्तमान युगकी हैं। स्व० आर० नरसिंहाचार्यजीने 'कर्णाटक-कवि-चरित', भाग ३में निम्नाङ्कित रचनाओंका और उल्लेख किया है—

१४-गणपति—ले०-अगणणा; पृ०-२००

१५-विघ्नेश्वर व्रतकल्प (तीन अध्याय)—ले०-कळले-नंजरनाज (१८वीं शती)

१६-विनायक स्तोत्र रगळे—ले०-अज्ञात, १८वीं शती

१७-विनायकाष्टक—ले०-अज्ञात, १८वीं शती

इसी प्रकार कन्नड-भाषाके प्राचीन तथा मध्यकालीन कवियोंके—हरिहर, राघवाङ्क, रुद्रभट्ट, कुमारव्यास, कुमार वाल्मीकि, लक्ष्मीश आदिके काव्योंमें पुरन्दरदास-जैसे गीतकारों-के पदोंमें शतक तथा यक्षगानोंमें गणपतिकी स्तुतियाँ भी प्राप्त होती हैं।

तेलुगु भाषा

१-महागणपतिशतकमु-ले०-गुंटुपल्लि रमण कवि

२-गणेश्वरशतकमु-ले०-वेदुल वेंकटशास्त्री

३-गणपतिशतकमु-ले०-बी० शेषम्मा, नायनिवारु

४-गणनाथमुनिशतकमु-ले०-श्रीरामुलु गुप्त

५-विनायकशतकमु-ले०-बहुजनपल्लि सीतारामाचार्युलु

उपर्युक्त पाँचों शतकोंके सम्बन्धमें विवरण स्व० वंगूरि सुब्बारावजीकी पुस्तक 'शतक कवुल चरित्रमु'में उपलब्ध होता है। श्रीनिडदवोलु वेंकटरावकी भूमिकाके साथ इसका प्रकाशन 'कमल कुटीर, नरसापुरम्'से हुआ है।

६-अष्टादश पुराणसारमु-(विनायककी कथा चार भाग)—ले०-वेमूरि जगन्नाथ शर्मा; प्र०-रामा एंड को०, एलूरु

७-वराहपुराण (विनायककी कथा)—ले०-(१) मल्लय मलयमारुत कवि (२) चंद हरिभट्ट } प्राचीन कवि

८-श्रीगणपति विलासमु-ले०-चिल्लकूरि रामभद्र शास्त्री; प्र०-श्रीतिरुपति वेङ्कटेश्वर बुकडिपो, पो०-राजमहेन्द्री, जि० पूर्वी गोदावरी (आन्ध्र); पृ०-२०

९-श्रीगणेश्वरीयमु-ले० एवं प्र०-भुवनगिरि विजय रामुलु, गुंटूर (आन्ध्र); पृ०-९४

१०-गणोदयमु-ले०-चिलकल्मर्रि नारायण कवि; प्र०-चि० नरसिंहाचार्युलु, काकिनाडा, पूर्वी गोदावरी (आन्ध्र); पृ०-४६

११-गणपति (विघ्नराजावतारमु)-ले०-'विद्वत्कवि' मल्लादि अच्युतरामशास्त्री; प्र०-के० कोदण्ड रामय्य, बेजवाडा, कृष्णा; पृ०-३२

१२-गजानन विजयमु-ले० एवं प्र०-श्रीपाद कृष्णमूर्ति शास्त्री, राजमहेन्द्री, पूर्वी गोदावरी; पृ०-३२

१३-श्रीगजानन चरित्र-ले०-बुलुसु रामलिङ्गस्वामी

१४-गणेश्वरीयमु-ले०-के साम्बाशिवराजु; प्र०-जी० वर-लक्ष्मी, मद्रास; पृ०-१७४

१५-गणपतिशतकमु-ले०-मंडपाक पार्वतीश्वर कवि (१९ वीं शती)

१६-विनायक शतकमु-ले०-बहुजन पल्लि सीतारामा-चार्युलु (१९ वीं शती)

१७-विघ्नेश्वर कल्याणमु-ले०-शाहजी महराज (१८ वीं शती)

तमिल भाषा

१-तिरुमन्त्तिरम् (प्रार्थना-गीत)-ले०-तिरुमूलर; प्र०-कुमरगुरुपरन पदिप्पगम्, श्रीवैकुण्ठम्

२-पेरियपुराणम् (प्रार्थना-गीत)-ले०-चेक्किळार (११वीं शती); प्र०-कुमरगुरुपरन पदिप्पगम्, श्रीवैकुण्ठम्

३-पुरप्पोरुळ् वेण्बामालै (प्रार्थना-गीत)-ले०-ऐयनारितनार (११वीं शती); प्र०- उ. वे. स्वामिनाथ ऐयर, मद्रास

४-कल्लाडम् (एक गीत)-ले०-कल्लाडनार

(११वीं शती); प्र०—मर्रे एं० को०, मद्रास।

५–नक्कयाकप्परणि (प्रार्थना-गीत)—ले०—ओट्टक्कूत्तर (१२वीं शती); प्र०—उ. वे. स्वामिनाथ ऐयर, मद्रास

६–कलिंगत्तुप्परणि (प्रार्थना-गीत)—ले०—जय कोण्डार (१२वीं शती); प्र०—एस० राजन्, मद्रास

७–विल्लि भारतम् (प्रार्थना-गीत)—ले०—चेल्वैच्चुडुवार (१४वीं शती); प्र०—मर्रे एड को०, मद्रास

८–चोक्कनाथर उला (प्रार्थना-गीत)—ले०—तिरुमलै-नायकर (१६वीं शती); प्र०—उ. वे. स्वामिनाथ ऐयर-सस्करण।

९–तिरुप्पुकळ् (एक गीत)—ले०—अरुणगिरिनाथकर (१७वीं शती); प्र०—शैवसिद्धान्त नूर-पदिप्पुक्कळगम्, मद्रास

१०–नन्नेरि (प्रार्थना-गीत)—ले०—शिवप्रकाश स्वामिगल (१७ वीं शती)

११–कुमरगुरुपरर् प्रबन्धम् (चार स्थानोंमें)—ले०—कुमरगुरुपरर् (१७वीं शती);(मीनाक्षियम्मे पिळ्ळ तमिळ)—प्र०—उ. वे. स्वामिनाथ ऐयर-संस्करण

१२–काशिवक्कलंवकम् (प्रार्थना-गीत)—ले०—वही; प्र०—वही

१३–मदुरै मीनाक्षियम्मै कुरम् (प्रार्थना-गीत)—ले०—वही; प्र०—वही

१४–चिदंबर सुम्मणिक्कोवै (प्रार्थना-गीत)—ले०—वही; प्र०—वही

१५–मुत्तुक्कुमारसामि पिळ्ळैत्तमिळ् (प्रार्थना-गीत)—ले०—वही; प्र०—वही

१६–तिरुवारूर नान् मणिमालै (प्रार्थना-गीत)—ले०—वही; प्र०—वही

१७–मदुरैक्कलंबकम् (प्रार्थना-गीत);—ले०—वही; प्र०—वही

१८–कुट्रालक्कुरवंजि (प्रार्थना-गीत)—ले०—तिरिकूड-राचप्पकविरायर् (१७वीं शती); प्र०—एस, राजम्, मद्रास

१९–तिरुविळैयाडर्पुराणम् (प्रार्थना-गीत)—ले०—परंज्योति मुनिवर (१८वीं शती); प्र०—काशी मठम्, तिरुप्पनंदाळ

२०–विनायकर पुराणम्—ले०—कचियप्प मुनिवर (१८वीं शती)

२१–विनायकर पिळ्ळैत्तमिळ्—ले०—वही

२२–विनायकर अगवल्—ले०—औवैयार् (११वीं शती); प्र०—काशी मठम्, तिरुप्पनंदाळ

२३–तिरुवरुट्पा (गणपतिस्तोत्र–दस गीत)—ले०—रामलिङ्ग अडिगळ (१९वीं शती); प्र०—चेन्नै समरस शुद्ध सन्मार्ग-सवम्, मद्रास

२४–विनायकर् नानमणिमालै (भारतियार कवितैगळ, चालीस गीत)—ले०—सुब्रह्मण्य भारतियार, (बीसवीं शती); प्र०—शक्ति-कार्यालय, मद्रास

२५–कल्पत्रयम्—ले०—स्वामीनाथ गुरुक्कल; प्र०—गणेश-कोश-मण्डल पुस्तकालय

२६–गणेशालयपरार्थ नित्यपूजाक्रमः—ले०—के० ए० सदारत्न गुरुक्कल, गणेश-कोश-मण्डल पुस्तकालय

२७–विघ्नेश्वर प्रतिष्ठाविधि—ले०—अघोर शिवाचार्य; प्र०—गणेश-कोश-मण्डल पुस्तकालय

२८–विनायकर कोत्तु—प्र० अ०–रंगस्वामी मुदलियार एंड संस, मद्रास; पृ०—९६८

२९–विनायकर—ले०—कृपानन्द वारि, प्र०—तिरुप्पुगल-अमृतम् प्रेस, मद्रास—२; पृ०—६४

३०–गाणपत्यम्—ले०—शेन्दिल तुरवि; प्र०—शास्ता पदिप्पगम्, तिरुचेन्दूर, पृ०—१२८

३१–अरुट्कवि अमुदम्—ले०—नारण दुरैक्कण्णन्; प्र०—देवीपदिप्पगम्, मद्रास—१, पृ०—१३५

३२–विनायकपुराणम् (गद्य)—प्र०—श्रीमहालिङ्गस्वामी-देवस्थानम्, तिरुविडैमरुदूर; पृ०—४३१

३३–विनायकर वलिउप्पाट्टुनूल्—ले०—सी-अरणै वठिवेलु मुदलियार; प्र०—कचि एकंबर नूपदिप्पु-कळगम्, कांचीपुरम्; पृ०—१२४

३४–वलिपाडुमलर्—ले०—प०अ० सुब्रमणियन्; प्र०—१७०, लिंगचेट्टि गली, मद्रास—१; पृ०—२८

३५–विनायकर मंजरी—ले०—चे० वे० षंमुलिगम्; प्र०—आनंद विलासम्, भिक्षांडार कोयिल्; पृ०—२९

३६–विनायकर पुगलनूकोवै—ले०—कळगम्के कविगण (संकलन); प्र०—शैवसिद्धान्त कळगम्, मद्रास—१; पृ०—१८१

३७–विनायकर अहवलुम् विनायकर् कवचमुम्—प्र०—शैवसिद्धान्त कळगम्, मद्रास—१; पृ०—८

३८–विनायक-पुराणवचनम्—ले०—सु० अ० रामस्वामी पुलवर्, प्र०—शैवसिद्धान्त-कळगम्, मद्रास—१; पृ०—४६४

३९-पिल्लैयार वलिपाडु—प्र०-शैवसिद्धान्त-कळगम, मद्रास-१; पृ०-१६
४०-पिल्लैयारपट्टि थलवरलारु—ले०-ग्रा० गणेशन; प्र०-साउथ इंडिया प्रेस, कारैकुडी; पृ०-८०
४१-पिल्लैयार—ले०-पि० श्री० आचार्य; प्र०-अमुद-निलयम्, मद्रास-१८; पृ०-८५
४२-गणपति—ले०-ग्रा० दंडपाणि देशिकर; प्र०-तिरुवावडुदुरै आधीनम् (मठ), तिरुवावडुदुरै; पृ०-१३४
४३-श्रीगणेशर् तिरुप्पुगल (१०० पद)—ले०-टी० को० गणपति पुलवर; प्र०-गणनायकर अच्चुकूटम्, मद्रास; पृ०-८०
४४-विनायक प्रभाव विलक्कम्—ले०-करुंगुलि एकांबर मुदलियार; प्र०-गणेश यंत्रशालै, मद्रास; पृ०-८४
४५-विनायक माम्मिय स्तवम्—ले०-आरुमुग मुदलियार; प्र०-गणेश यंत्रशालै, मद्रास; पृ०-९२
४६-विनायकपुराणम्—ले०-कच्चियप्प मुनिवर; प्र०-मुरुगेश मुदलियार; पृ०-३५०
४७-विनायकपुराणम्—ले०-कच्चियप्प मुनिवर; प्र०-भानुकवि; पृ०-५८२
४८-शैल्व तिरवुकोल्—ले०-मु० अ० गणपति पुलवर; पृ०-८०
४९-मुद्गलपुराणम्—(संस्कृत मूल तमिळ अनुवादसहित) अ० सं० टा० टी० एस० राजगोपालय्यर; प्र०-टी० एस० राजगोपालय्यर; पृ०-३००
५०-वेल्लैपिल्लैयार कुरवंजी—ले०-विद्वान् वि० शोकलिंगम; प्र०-राजा सरफोजी सरस्वती-महाल लाइब्रेरी; तंजौर
५१-विनायकर स्तोत्रपटल—ले०-गणपति देशिकर
५२-गणपति—ले०-दण्डपाणि देशिकर
५३-गणपति वलिपाडु (गणपत्यम्)—ले०-शैन्दिल तुरवि

मलयालम् भाषा

१-गणपति—ले०-वल्लत्तोल नारायण मेनन; प्र०-वल्लत्तोल ग्रन्थालयम्, चिरुतुरुत्ति; पृ०-१००
२-शिष्यनुम् मगनुम्—ले०-वही; प्र०-वही
३-गणपति प्रातल्—ले०-कुंजन नंबियार; प्र०-एस० टी० रेड्डियार एंड संस, कोल्लम

बंगला भाषा

१-ऋग्वेदीय मुद्गल उपनिषद्-सं०-महेशचन्द्र पाल; प्र०-वेदमन्दिर, कलकत्ता; पृ०-१२०
२-लक्ष्मी ओ गणेश-ले०-अमूल्यचरण विद्याभूषण; पुरोगामी; प्र०-कलकत्ता; पृ०-१३८
३-पञ्चोपासना (गणपति-अंश)-ले०-श्रीजितेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय; प्र०-एस० के० एल० मुखोपाध्याय, ६।१ ए, वाञ्छाराम अक्रूर लेन; कलकत्ता-१२; पृ०-८०२
४-देवदेवी ओ तांदेर वाहन-ले०-स्वामी निर्मलानन्द; प्र०-भारत सेवाश्रम संघ, कलकत्ता; पृ०-३६५

उड़िया भाषा

१-ब्रह्मवैवर्तपुराण गणेशखण्ड-अ०—क्षेत्रमोहन कवि; प्र०—धर्मग्रन्थ स्टोर, कटक
२-श्रीगणेशपुराण-अ०-वासुदेव विप्रदास; प्र०-धर्म-ग्रन्थ स्टोर, कटक
३-गणेशविभूति-ले०-भूपति भज; प्र०-राधारमण पुस्तकालय, पुरी
४-गणेश-विशेषाङ्क-(जगन्नाथ-मन्दिर मुखपत्र)-श्रीमन्दिर-समाचार; सं०-प० सदाशिवरथ शर्मा
५-स्कन्दपुराणोक्त विनायकव्रतविधि (उड़िया अनुवादसहित)-प्र०-श्रीजगन्नाथमन्दिर, उड़ीसा जगन्नाथ-कम्पनी
६-गणेश-षोडशोपचार पूजा-विधि-प्र०-धर्मग्रन्थ-स्टोर, कटक

अंग्रेजी भाषा

1-GANAPATI—ले०-हरिदास मित्र; प्र०-शान्ति-निकेतन प्रेस, शान्ति-निकेतन; पृ०-१२०
2-GANESA (A Monograph on the Elephant-Faced God)—ले०-एलिस गेट्टी; प्र०-मुंशीराम मनोहरलाल, नयी दिल्ली; पृ०-१०३
3-(SHRI) GANESH—ले०-जीन हर्बर्ट; प्र०-जी० ए० नटेशन एंड कं०, मद्रास; पृ०-१६
4-GANESH (Clue to a Cult and a Culture)—ले०-टी० जी० अरवमूथन; प्र०-अमृत संघ, मद्रास; पृ०-२४
5-Ganesh-Gita (A Study Translation with Notes)—(नीलकण्ठी टीकासहित)—ले०-कियोशी योरोई, माउटन, हेग; पृ०—२०१

श्रीगणेशप्रिय चतुर्थीव्रत-माहात्म्य एवं व्रत-विधि

चतुर्थीतिथिकी श्रेष्ठता

शिवपुराणकी कथा है—श्वेतकल्पमें जब भगवान् शंकरके अमोघ त्रिशूलसे पार्वतीनन्दन दण्डपाणिका मस्तक कट गया, तब पुत्रवत्सला जगज्जननी शिवा अत्यन्त दुःखी हुईं। उन्होंने बहुत-सी शक्तियोंको उत्पन्न किया और उन्हें प्रलय मचानेकी आज्ञा दे दी। उन परम तेजस्विनी शक्तियोंने सर्वत्र संहार करना प्रारम्भ किया। प्रलयका दृश्य उपस्थित हो गया। देवगण हाहाकार करने लगे। तब समस्त भयनाशिनी जगदम्बाको प्रसन्न करनेके लिये देवताओंने उत्तर दिशासे हाथीका सिर लाकर शिवा-पुत्रके धड़से जोड़ दिया। महेश्वरके तेजसे पार्वतीका प्रिय पुत्र जीवित हो गया।

अपने पुत्र गजमुखको जीवित देखकर त्रैलोक्यजननी शिवा अत्यन्त प्रसन्न हुईं। उस समय दयामयी पार्वतीको प्रसन्न करनेके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि सभी देवताओंने वहीं गणेशको 'सर्वाध्यक्ष' घोषित कर दिया।

उसी समय अत्यन्त प्रसन्न देवाधिदेव महादेवने अपने वीर पुत्र गजाननको अनेक वर प्रदान करते हुए कहा—'विघ्ननाशके कार्यमें तेरा नाम सर्वश्रेष्ठ होगा। तू सबका पूज्य है, अतः अब मेरे सम्पूर्ण गणोंका अध्यक्ष हो जा।'

तदनन्तर परम प्रसन्न भक्तवत्सल आशुतोषने गणपतिको पुनः वर प्रदान करते हुए कहा—'गणेश्वर! तू भाद्रपद-मासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी तिथिको चन्द्रमाका शुभोदय होनेपर उत्पन्न हुआ है। जिस समय गिरिजाके सुन्दर चित्तसे तेरा रूप प्रकट हुआ, उस समय रात्रिका प्रथम प्रहर बीत रहा था। इसलिये उसी दिनसे आरम्भ करके उसी तिथिमें प्रसन्नताके साथ (प्रतिमास) तेरा उत्तम व्रत करना चाहिये। वह व्रत परम शोभन तथा सम्पूर्ण सिद्धियोंका प्रदाता होगा।*

फिर व्रतकी विधि बतलाते हुए सर्वसुहृद् प्रभु पार्वतीवल्लभने गणेश-चतुर्थीके दिन अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक गजमुखको प्रसन्न करनेके लिये किये गये व्रत, उपवास एवं पूजनके माहात्म्यका गान किया और कहा—'जो लोग नाना प्रकारके उपचारोंसे भक्तिपूर्वक तेरी पूजा करेंगे, उनके विघ्नोंका सदाके लिये नाश हो जायगा और उनकी कार्यसिद्धि होती रहेगी। सभी वर्णके लोगोंको, विशेषकर स्त्रियोंको यह पूजा अवश्य करनी चाहिये तथा अभ्युदयकी कामना करनेवाले राजाओंके लिये भी यह व्रत अवश्यकर्तव्य है। व्रती मनुष्य जिस-जिस वस्तुकी कामना करता है, उसे निश्चय ही वह वस्तु प्राप्त हो जाती है; अतः जिसे किसी वस्तुकी अभिलाषा हो, उसे अवश्य तेरी सेवा करनी चाहिये।'†

* * *

'गणेशपुराण'में भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थीको मध्याह्नकालमें भी आदिदेव गणेशके पूजनका माहात्म्य बताया गया है। कथा इस प्रकार है—गणेश-दर्शनकी तीव्र लालसासे शिवप्रिया लेखनाद्रिके एक रमणीय स्थानपर गणेशका ध्यान करते हुए उनके एकाक्षरी मन्त्रका जप करने लगीं। इस प्रकार बारह वर्षतक कठोर तप करनेपर गुणवल्लभ गुणेश संतुष्ट हुए और पार्वतीके सम्मुख प्रकट होकर उन्होंने उनके पुत्रके रूपमें अवतरित होनेका वचन दिया।

भाद्र-शुक्ल-चतुर्थीका मध्याह्नकाल था। उस दिन चन्द्रवार, स्वातिनक्षत्र एवं सिंहलग्नका योग था। पाँच शुभ ग्रह एकत्र थे। जगज्जननी शिवाने गणेशजीकी षोडशोपचारसे पूजा की और उसी समय उनके सम्मुख अमित महिमामय, कुन्दधवल, षड्भुज, त्रिनयन भगवान् गुणेश पुत्ररूपमें प्रकट हो गये।

भक्तसुखदायक परमप्रभु गुणेशकी प्राकट्य-तिथि होनेके कारण भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थी दयाधाम गुणेशकी वरदा तिथि प्रख्यात हुई। उस दिन मध्याह्नकालमें भगवान् गणेशकी मृन्मयी मूर्तिकी श्रद्धा-भक्तिपूर्ण पूजा एवं मङ्गलमूर्ति प्रभुके स्मरण, चिन्तन एवं नाम-जपका अमित माहात्म्य है। वह

* चतुर्थ्यां त्वं समुत्पन्नो भाद्रे मासि गणेश्वर।
असिते च तथा पक्षे चन्द्रस्योदयने शुभे॥
प्रथमे च तथा यामे गिरिजायाः सुचेतसः।
आविर्बभूव ते रूपं यस्मात्ते व्रतमुत्तमम्॥
तस्मात्तद्दिनमारभ्य तस्यामेव तिथौ मुदा।
व्रतं कार्यं विशेषेण सर्वसिद्ध्यै सुशोभनम्॥
(शिवपु०, रुद्रसं०, कु०खं० १८। ३५-३७)

† यं यं कामयते यो वै तं तमाप्नोति निश्चितम्।
अतः कामयमानेन तेन सेव्यः सदा भवान्॥
(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १८। ६०)

पुण्यमय तिथि अत्यन्त फलप्रदायिनी कही गयी है। चतुर्मुख ब्रह्माने अपने मुखारविन्दसे कहा है कि 'इस चतुर्थी-व्रतका निरूपण एवं माहात्म्य-गान शक्य नहीं।'*

'मुद्गलपुराण'में भी आता है कि परम पराक्रमी लोभासुरसे त्रस्त होकर देवताओंने परम प्रभु गजाननसे उसके विनाशकी प्रार्थना की। दयाधाम गजमुख उस महान् असुरके विनाशके लिये परम पावनी चतुर्थीको मध्याह्न-कालमें अवतरित हुए, इस कारण उक्त तिथि उन्हें अत्यन्त प्रीतिप्रदायिनी हुई।†

तिथियोंकी माता चतुर्थीकी उत्पत्ति, उनका तप और वर-प्राप्ति

श्रीगणेशको अत्यन्त प्रिय परम पुण्यमयीको 'वरदा चतुर्थी'-की उत्पत्तिकी पवित्रतम कथा मुद्गलपुराणमें प्राप्य है। वह अत्यन्त संक्षेपमें इस प्रकार है—

लोकपितामह ब्रह्माने सृष्टि-रचनाके अनन्तर अनेक कार्योंकी सिद्धिके लिये अपने हृदयमें श्रीगणेशका ध्यान किया। उसी समय उनके शरीरसे परा प्रकृति, महामाया, तिथियोंकी जननी कामरूपिणी देवी प्रकट हुईं। उन परम लावण्यवती देवीके चार पैर, चार हाथ और चार सुन्दर मुख थे। उन्हें देखकर विधाता अत्यन्त प्रसन्न हुए।

उन महादेवीने स्रष्टाके चरण-कमलोंमें प्रणाम कर अनेक स्तोत्रोंसे उनका स्तवन करनेके अनन्तर निवेदन किया—'ब्रह्माण्डनायक! मैं आपके शुभ अङ्गसे उत्पन्न हुई हूँ। आप मेरे पिता हैं। आप मुझे आज्ञा प्रदान करें, मैं क्या करूँ? प्रभो! आपके पावन पद-पद्मोंमें मेरा बारंबार प्रणाम है। आप मुझे कृपापूर्वक रहनेके लिये स्थान और विविध प्रकारके भोग्यपदार्थ प्रदान करें।'

लोकस्रष्टाने श्रीगणेशका स्मरण कर उत्तर दिया—'तुम अद्भुत सृष्टि करो।' और फिर प्रसन्न पिता ब्रह्माने उन्हें श्रीगणेशका 'वक्रतुण्डाय हुम्' —यह षडक्षर-मन्त्र दे दिया।'

महिमामयी देवीने भगवान् वेदगर्भके चरणोंमें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और फिर वे वनमें जाकर श्रीगणेशका ध्यान करते हुए उग्र तप करने लगीं। वे अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिपूर्वक दिव्य सहस्र वर्षतक तप करती रहीं।

उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर देवदेव गजानन प्रकट हुए और उन्होंने कहा—'महाभागे! मैं तुम्हारे निराहार तपश्चरणसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम इच्छित वर माँगो।'

परम प्रभुकी सुखद वाणी सुनकर महिमामयी माताने हर्षगद्गद कण्ठसे उनका स्तवन किया।

इससे अतिशय संतुष्ट हुए मूषक-वाहनने पुनः कहा—'देवि! मैं तुम्हारे तप एवं स्तवनसे अत्यन्त संतुष्ट हूँ। तुम अपनी इच्छा व्यक्त करो।'

साश्रुनयना देवीने परम प्रभु गजाननके पावनतम चरणोंमें प्रणामकर निवेदन किया—'करुणानिधे! आप मुझे अपनी सुदृढ भक्ति प्रदान करें। मुझे सृष्टि-सर्जनकी सामर्थ्य प्राप्त हो। मैं आपको सदा प्रिय रहूँ और मुझसे आपका कभी वियोग न हो।'

स्वीकृतिसूचक 'ओम्'का उच्चारण कर परम प्रभुने वर प्रदान किया—"चतुर्विध फल-प्रदायिनी देवि! तुम मुझे सदा प्रिय रहोगी! तुम समस्त तिथियोंकी माता होओगी और तुम्हारा नाम 'चतुर्थी' होगा। तुम्हारा वामभाग 'कृष्ण' एवं दक्षिणभाग 'शुक्ल' होगा। निस्संदेह तुम मेरी जन्मतिथि होओगी। तुम्हारेमें व्रत करनेवालेका मैं विशेषरूपसे पालन करूँगा और इस व्रतके समान अन्य कोई व्रत नहीं होगा।"

यह कहकर भगवान् गजमुख अन्तर्धान हो गये। तिथियोंकी माता चतुर्थी गणपतिका ध्यान करते हुए सृष्टि-रचना करने लगीं। सहसा उनका वामभाग कृष्ण और दक्षिणभाग शुक्ल हो गया। महाभाग्यवती शुक्लवर्णा अत्यन्त विस्मित हुईं। उन्होंने पुनः गणाध्यक्षका ध्यान करते हुए सृष्टि-रचनाका उपक्रम किया ही था कि उनके मुखारविन्दसे प्रतिपदा तिथि उत्पन्न हो गयी। इसी प्रकार नासिकासे द्वितीया, वक्षसे तृतीया, अंगुलीसे पञ्चमी, हृदयसे षष्ठी, नेत्रसे सप्तमी, बाहुसे अष्टमी, उदरसे नवमी, कानसे दशमी, कण्ठसे एकादशी, पैरसे द्वादशी, स्तनसे त्रयोदशी, अहंकारसे चतुर्दशी और मनसे पूर्णिमा तथा जिह्वासे अमावस्या तिथि प्रकट हुई।

सभी तिथियोंसहित दोनों चतुर्थियोंने भगवान् गजमुखके

---

*चतुर्थ्या महिमानं नो न शक्यं सुनिरूपितुम्॥
(गणेशपु० २। ८२। ३४)

† चतुर्थ्यां मध्यगे भानौ देहधारी समागतः।
सा तिथिः परमा तस्य प्रीतिदा सम्बभूव वै॥
(मुद्गलपु० ४। १। २०)

ध्यान और नाम-जपके साथ तपश्चरण प्रारम्भ किया। इस प्रकार उनके एक वर्षतक तप करनेपर भक्तवत्सल प्रभु विघ्नेश्वर प्रकट हुए। वे मध्याह्नमें शुक्ल-चतुर्थीके समीप पहुँचकर बोले—'वर माँगो।'

शुक्ल-चतुर्थीने आदिदेव गजमुखके चरणोंमे प्रणाम कर उनकी पूजा और स्तुति की। तदनन्तर उन्होंने कहा—'परमप्रभु गजमुख! मैं आपका वासस्थान होऊँ और आप मुझे अपनी शाश्वती भक्ति प्रदान करें।'

दयामय गजमुखने वर प्रदान किया—"तुम्हें मध्याह्न-कालमें मेरा दर्शन प्राप्त हुआ है; अतएव मध्याह्नकालमें शिवादि देवगण मेरा भजन करेंगे। शुक्लपक्षकी चतुर्थीको मेरे भक्तजन सदा तुम्हारा व्रत करेंगे। जो निराहार रहकर मेरे साथ तुम्हारी उपासना करेंगे, उनका संचित कर्म-भोग समाप्त हो जायगा और उन्हें मैं सब कुछ प्रदान करूँगा। तुम्हारा नाम 'वरदा' होगा।"

इतना कहकर श्रीगणेश अन्तर्धान हो गये और भगवती शुक्ल-चतुर्थीका 'वरदा'-नाम प्रख्यात हुआ। वे श्रीगणेशको अत्यन्त प्रिय हुईं। उस दिन व्रतके साथ श्रीगणेशकी उपासना कर पञ्चमीको सविधि पारण करनेसे निश्चय ही मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—सब कुछ प्राप्त कर लेते हैं। व्रतीकी प्रत्येक कामना पूरी होती है और अन्तमें वह अतिशय सुखदायक गणेश-धामको प्राप्त होता है।

इसके अनन्तर भगवान् गणपतिने रात्रिके प्रथम प्रहरमें चन्द्रमाके उदित होनेपर कृष्ण-चतुर्थीके समीप पहुँचकर कहा—'महाभाग्यवती! तुम वर माँगो। मैं तुम्हारी अभिलाषा पूरी करूँगा।'

विघ्ननिघ्न प्रभुके दर्शन एवं उनके वचनसे प्रसन्न होकर भगवती कृष्ण-चतुर्थीने उनके मङ्गलमय चरणोंमें प्रणाम कर उनकी विधिपूर्वक पूजा की। फिर उनका स्तवन कर निवेदन किया—'मङ्गलमय लम्बोदर! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो कृपापूर्वक मुझे अपनी सुदृढ भक्ति प्रदान करें। मैं आपको सदा प्रिय रहूँ और मुझसे आपका वियोग कभी न हो। आप मुझे सर्वमान्य कर दें।'

कृष्ण-चतुर्थीकी श्रद्धा-भक्तिपूर्ण वाणीसे प्रसन्न हो महोदरने वर-प्रदान करते हुए कहा—'महातिथे! तुम मुझे सदा प्रिय रहोगी और तुमसे मेरा कभी वियोग नहीं होगा। चन्द्रोदय होनेपर तुमने मुझे प्राप्त किया है; अतएव चन्द्रोदयव्यापिनी होनेपर तुम मुझे अत्यधिक प्रिय होओगी। मेरे प्रसादसे तुम उस समय अन्न-जल त्यागकर उपासना करनेवालोंका संकट हरण करो। उस दिन व्रतोपवास करनेवालोंको तुम धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—सब कुछ प्रदान करोगी। उनकी समस्त कर्मराशि ध्वस्त हो जायगी और वे निश्चय ही इस लोकमें समस्त सुखोंको भोगकर अन्तमें जन्म-मृत्युके पाशसे मुक्त हो मेरे दुर्लभ धाममें जायँगे। संकष्टहारिणी देवि! निस्सदेह मेरी कृपासे तुम सर्वदा लोगोंको आनन्द प्रदान करनेवाली होओगी।'

'उस दिन यति मेरा व्रत निराहार रहकर करें। दूसरे लोग रात्रिमें चन्द्रोदय होनेपर मेरा पूजन कर ब्राह्मणको साधिता देकर (उन्हें भोजन कराकर) स्वयं भोजन करें। पूजनके अनन्तर उस दिन श्रावणमें लड्डू और भाद्रमें दधिका भोजन करना चाहिये। व्रती आश्विनमें निराहार रहे। कार्तिकमें दुग्ध-पान, मार्गशीर्षमें जलाहार और पौषमें गोमूत्र लेना चाहिये। माघमें श्वेत तिल, फाल्गुनमें शर्करा, चैत्रमें पञ्चगव्य, वैशाखमें पद्मबीज (कमलगट्टा), ज्येष्ठमें गोघृत और आषाढ़में मधुका भोजन करना चाहिये।'

महिमामयी चतुर्थी व्रत करनेवालोंकी समस्त कामनाओं-को पूर्ण करनेवाली है। इस व्रतके प्रभावसे धन-धान्य और आरोग्यकी प्राप्ति होती है, समस्त आपदाएँ नष्ट हो जाती हैं तथा भगवान् गणेशकी कृपासे परमार्थकी भी सिद्धि होती है। अतएव यदि सम्भव हो तो प्रत्येक मासकी दोनों चतुर्थी तिथियोंको व्रत और उपवाससहित श्रीगणेशजीका पूजन करे और यदि यह सम्भव न हो तो भाद्रपद-कृष्ण-चतुर्थी 'बहुला', कार्तिक-कृष्ण-चतुर्थी करका (करवा) और माघ-कृष्ण-चतुर्थी 'तिलका'का व्रत कर ले। रविवार या मङ्गलवारसे युक्त चतुर्थी तिथिका अमित माहात्म्य है। इस प्रकारकी एक चतुर्थी-व्रतका सविधि पालन करनेसे वर्षभरकी चतुर्थी व्रतोंका फल प्राप्त हो जाता है।

कृष्णपक्षकी प्रायः सभी चतुर्थी तिथियाँ कष्ट-निवारण करनेवाली हैं और उनमें चन्द्रोदयव्यापिनी चतुर्थीमें व्रतकी पूजाका विधान किया गया है। यदि दोनों ही दिन चतुर्थी चन्द्रोदय-व्यापिनी हो तो तृतीयासे विद्धा पूर्वाका ही ग्रहण करना चाहिये; क्योंकि 'मातृविद्धा गणेश्वरे—गणेश्वरके व्रतमें मातृ-तिथि (तृतीया)से विद्धा चतुर्थी ग्रहण की जाती है',—यह वचन

मिलता है। यदि दोनों ही दिन चन्द्रोदयव्यापिनी न हो तो परा-चतुर्थी लेनी चाहिये। (व्रतराज)

यदि वह दो दिन चन्द्रोदयव्यापिनी हो या न हो तो 'मातृविद्धा प्रशस्यते'के अनुसार पूर्वविद्धा लेनी चाहिये। (व्रत-परिचय) अन्य विद्वानोंका मत है कि 'तृतीयायुक्त चतुर्थी इस व्रतके लिये श्रेष्ठ अवश्य मानी गयी है, किंतु जब सूर्यास्त होनेके पहले तृतीयामें छः घडी चतुर्थीका प्रवेश होता हो। पहले दिन चन्द्रोदय-कालमें तिथिका अभाव होनेपर दूसरे दिन ही व्रत करना चाहिये।'

इस विषयमें धर्मशास्त्रीय निर्णय इस प्रकार है—'संकष्ट-चतुर्थी चन्द्रोदय-व्यापिनी ग्राह्य है। यदि दो दिन चतुर्थी हो और दूसरे दिनकी ही चतुर्थी चन्द्रोदयव्यापिनी हो तो दूसरे दिन ही व्रत करना चाहिये। यदि दोनों दिन चन्द्रोदय-व्यापिनी तिथि हो तो पहले दिनकी तृतीयायुक्त चतुर्थीको ही व्रतके लिये ग्रहण करना चाहिये। यदि दोनों ही दिनोंकी चतुर्थी चन्द्रोदयव्यापिनी न हो तो दूसरे दिन ही व्रतका पालन करना चाहिये।' (गणेश-कोश)

वर्षभरके चतुर्थी-व्रतोंकी संक्षिप्त विधि और उनका माहात्म्य

(१) चैत्र-मासकी चतुर्थीको वासुदेवस्वरूप गणेशजीकी विधिपूर्वक पूजा कर ब्राह्मणको सुवर्णकी दक्षिणा देनेपर मनुष्य सम्पूर्ण देवताओंसे वन्दित हो क्षीराब्धिशायी श्रीविष्णुके सुखद लोकमें जाता है।*

(२) वैशाख-मासकी चतुर्थीको संकर्षण गणेशकी पूजा कर ब्राह्मणोंको शङ्खका दान करना चाहिये। इसके प्रभावसे मनुष्य संकर्षण-लोकमें कल्पोंतक सुख प्राप्त करता है।

(३) ज्येष्ठ-मासकी चतुर्थीको प्रद्युम्नरूपी गणेशकी पूजा कर ब्राह्मणोंको फल-मूलका दान करनेसे व्रती स्वर्गलोक प्राप्त कर लेता है।

ज्येष्ठकी चतुर्थीको 'सतीव्रत'-नामक एक दूसरा श्रेष्ठ व्रत होता है। इस व्रतका विधिपूर्वक पालन करनेसे स्त्री गजमुख-जननी शिवाके लोकमें जाकर उन्हींके समान आनन्द प्राप्त करती है।

* चैत्र मासकी चतुर्थीको 'दमनक'-पत्रों (दौनाके पत्तों) से गणेशजीका पूजन करके मनुष्य सुख-भोग प्राप्त करता है। (अग्निपुराण)

(४) आषाढ़-मासकी चतुर्थीको अनिरुद्धस्वरूप-गणेशकी प्रीतिपूर्वक पूजा करके संन्यासियोंको तूँबीका पात्र दान करना चाहिये। इस व्रतको करनेवाला मनुष्य मनो-वाञ्छित फल प्राप्त करता है।

रथन्तर-कल्पका प्रथम दिन होनेसे आषाढकी चतुर्थीको एक दूसरा उत्तम व्रत होता है। उस दिन मनुष्य श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक मङ्गलमूर्ति गणेशकी सविधि पूजा कर वह फल प्राप्त कर लेता है, जो देव-समुदायके लिये भी दुर्लभ है।

(५) श्रावण-मासकी चतुर्थीको चन्द्रोदय होनेपर मङ्गलमय श्रीगणेशजीके स्वरूपका ध्यान करते हुए उन्हें अर्घ्य प्रदान करे। फिर आवाहन आदि सम्पूर्ण उपचारोंसे उनकी भक्तिपूर्वक पूजा कर लड्डूका नैवेद्य अर्पित करना चाहिये। व्रत पूरा होनेपर व्रती स्वयं भी प्रसादस्वरूप लड्डू खाय और फिर रात्रिमें गणेशजीका पूजन कर पृथ्वीपर ही शयन करे। इस व्रतको करनेवाले मनुष्यकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूरी होती हैं और अन्तमें उसे गणेशजीका पद प्राप्त हो जाता है। त्रैलोक्यमें इसके समान अन्य कोई व्रत नहीं है।

श्रावण शुक्ल-चतुर्थीको 'दूर्वागणपति' (सौरपुराण) का व्रत बताया गया है। उस दिन प्रातःस्नानादिसे निवृत्त होकर सिंहासनस्थ चतुर्भुज, एकदन्त गजमुखकी स्वर्णमयी मूर्तिका निर्माण कराये और सोनेकी दूर्वा बनवाये। तदनन्तर सर्वतोभद्र-मण्डलपर कलश स्थापन करके उसमें सोनेकी दूर्वा लगाकर उसपर गणेशजीकी प्रतिमाको स्थापित करना चाहिये। मङ्गलमूर्ति गणेशजीको अरुण वस्त्रसे विभूषितकर सुगन्धित पत्र-पुष्पादिसे उनकी भक्तिपूर्वक पूजा करे। आरती, स्तवन, प्रणाम और परिक्रमा कर अपराधोंके लिये क्षमा-याचना करे। इस प्रकार तीन या पाँच वर्षतक व्रत-पालनसे समस्त कामनाएँ पूरी होती हैं।

(६) भाद्रपद-कृष्ण-चतुर्थीको बहुलासहित गणेशकी गन्ध, पुष्प, माला और दूर्वा आदिके द्वारा यत्नपूर्वक पूजा कर परिक्रमा करनी चाहिये। सामर्थ्यके अनुसार दान करे। दान करनेकी स्थिति न हो तो इस बहुला गौको प्रणामकर उसका विसर्जन कर दे। इस प्रकार पाँच, दस या सोलह वर्षोंतक इस व्रतका पालन करके उद्यापन करे। उस समय दूध देनेवाली स्वस्थ गायका दान करना चाहिये। इस व्रतको करनेवाले स्त्री-पुरुषोंको सुखद भोगोंकी उपलब्धि होती है।

देवता उनका सम्मान करते हैं और अन्तमें वे गोलोकधामकी प्राप्ति करते हैं।

भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थीको सिद्धिविनायक-व्रतका पालन करना चाहिये। इस दिन गणेशजीका मध्याह्नमें प्राकट्य हुआ था, अतः इसमें मध्याह्नव्यापिनी तिथि ही ली जाती है।

सर्वप्रथम एकाग्र चित्तसे सर्वानन्दप्रदाता सिद्धिविनायकका ध्यान करे। फिर श्रद्धा और भक्तिपूर्वक उनके इक्कीस नाम लेकर इक्कीस पत्ते समर्पित करे। उनके प्रत्येक नामके साथ 'नमः' जुड़ा हो। वे इक्कीस नाम और पत्ते इस प्रकार हैं—

'सुमुखाय नमः' कहकर शमीपत्र अर्पित करे। 'गणाधीशाय नमः' कहकर भँगरैयाका पत्ता, 'उमापुत्राय नमः' कहकर बिल्वपत्र, 'गजमुखाय नमः' कहकर दूर्वादल, 'लम्बोदराय नमः' कहकर बेरका पत्ता, 'हरसूनवे नमः' कहकर धतूरेका पत्ता, 'शूर्पकर्णाय नमः' कहकर तुलसीदल,* 'वक्रतुण्डाय नमः' कहकर सेमका पत्ता, 'गुहाग्रजाय नमः' कहकर अपामार्गका पत्ता, 'एकदन्ताय नमः' कहकर वनभंटा या भटकटैयाका पत्ता, 'हेरम्बाय नमः' कहकर सिन्दूर (सिन्दूरचूर्ण या सिन्दूर-वृक्षका पत्ता), 'चतुर्होत्रे नमः' कहकर तेजपात, 'सर्वेश्वराय नमः' कहकर अगस्त्यका पत्ता, 'विकटाय नमः' कहकर कनेरका पत्ता, 'हेमतुण्डाय नमः' कहकर अश्मातपत्र या कदलीपत्र, 'विनायकाय नमः' कहकर आकका पत्ता, 'कपिलाय नमः' कहकर अर्जुनका पत्ता, 'वटवे नमः' कहकर देवदारुका पत्ता, 'भालचन्द्राय नमः' कहकर मरुआका पत्ता, 'सुराग्रजाय नमः' कहकर गान्धारी-पत्र और 'सिद्धिविनायकाय नमः' कहकर केतकी-पत्र प्रीतिपूर्वक समर्पित करे।

इससे श्रीगणेशजी अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। इसके अनन्तर दो दूर्वादल लेकर गन्ध, पुष्प और अक्षतके साथ गणेशजीपर चढ़ाना चाहिये। फिर नैवेद्यके रूपमें पाँच लड्डू उन दयासिन्धु प्रभु गजमुखको अत्यन्त प्रेमपूर्वक अर्पण करे। तदनन्तर आचमन कराकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनके चरणोंमें बार-बार प्रणाम और प्रार्थना करते हुए विसर्जन करना चाहिये। समस्त सामग्रियोंसहित गणेशजीकी स्वर्णमयी प्रतिमा आचार्यको अर्पित करके ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनी चाहिये। इस प्रकार पाँच वर्षतक व्रत एवं गणेश-पूजन करनेवालोंको लौकिक एवं पारलौकिक समस्त सुख प्राप्त होते हैं।† इस तिथिकी रात्रिमें चन्द्र-दर्शनका निषेध है। चन्द्रदर्शन करनेवाले मिथ्या कलङ्कके भागी होते हैं।‡

(७) आश्विन-शुक्ल-चतुर्थीको 'पुरुषसूक्त'द्वारा षोडशोपचारसे कपर्दीश-विनायककी भक्तिपूर्वक पूजाका माहात्म्य है।

(८) कार्तिक-कृष्ण-चतुर्थीको 'करकचतुर्थी' (करवा चौथ) का व्रत कहा जाता है। यह व्रत स्त्रियाँ विशेषरूपसे करती हैं। इस दिन व्रतीके लिये प्रातःकाल स्नानादिसे निवृत्त होकर वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो गणेशजीकी भक्तिपूर्वक पूजा करनेका विधान है। पवित्र चित्तसे अत्यन्त श्रद्धापूर्वक पकवानसे भरे हुए दस करवे परमप्रभु गजाननके सम्मुख रखे। समर्पण करते हुए मन-ही-मन प्रार्थना करे कि 'करुणासिन्धु कपर्दिगणेश! आप मुझपर प्रसन्न हों।' तदनन्तर सुवासिनी स्त्रियों और ब्राह्मणोंको इच्छानुसार आदरपूर्वक उन करवोंको बाँट दें।

समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले भगवान् गणेशका स्मरण-चिन्तन एवं नाममन्त्रका जप करते रहना चाहिये। रात्रिमें चन्द्रोदय होनेपर चन्द्रमाको विधिपूर्वक अर्घ्य प्रदान करे। व्रत-पूर्तिके लिये स्वयं मिष्टान्न भोजन करना चाहिये।

इस व्रतको बारह या सोलह वर्षोंतक करना चाहिये। तदनन्तर इसका उद्यापन करे। इसके बाद स्त्री चाहे तो इसे छोड़ सकती है; अन्यथा सुख-सौभाग्यके लिये स्त्री इसे जीवनपर्यन्त कर सकती है। स्त्रियोंके लिये इसके समान सौभाग्य प्रदान करनेवाला अन्य व्रत नहीं है।

(९) मार्गशीर्ष-शुक्ल-चतुर्थीकी 'कृच्छ्र-चतुर्थी'-संज्ञा है। (स्कन्दपु०) इससे लेकर एक वर्षतक प्रत्येक चतुर्थीका व्रत रखकर देवदेव गजमुखका प्रीतिपूर्वक पूजन करे। उस दिन एकभुक्त (दिनमें एक समय भोजन) करे और दूसरे वर्ष प्रत्येक चतुर्थीको केवल रात्रिमें एक बार भोजन करे। तीसरे

* 'ब्रह्मवैवर्तपुराण'के अनुसार श्रीगणेशको तुलसी-अर्पण निषिद्ध है; किंतु 'नारदपुराण'में भगवान् गणेशके 'शूर्पकर्ण'-स्वरूप एवं 'व्रतराज'में 'गजवक्त्र'-स्वरूपके लिये तुलसी-पत्र अर्पण करनेका विधान है।

† भाद्रपदके शुक्लपक्षकी चतुर्थीको व्रत करनेवाला शिवलोकको प्राप्त होता है।

‡ भाद्रपदके शुक्लपक्षकी चतुर्थीको चन्द्र-दर्शन हो जानेपर दोषकी शान्तिके लिये श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्धके ५७ वें अध्यायका पाठ या श्रवण करना चाहिये। (अग्निपुराण)

वर्ष प्रत्येक चतुर्थीको अयाचित (बिना माँगे मिला हुआ) अन्न एक बार खाकर रहे और फिर चौथे वर्षमें प्रत्येक चतुर्थीको सर्वथा निराहार रहकर गणेशजीका स्मरण, चिन्तन, भजन एवं अत्यन्त प्रीतिपूर्वक पूजन करना चाहिये।

इस प्रकार विधिपूर्वक व्रत करते हुए चार वर्ष पूरे होनेपर अन्तमें व्रत-स्नान करे। उस समय व्रत करनेवाला मनुष्य गणेशजीकी सुवर्णकी प्रतिमा बनवाये। यदि सुवर्ण-मूर्ति बनवानेकी क्षमता न हो तो वर्णक (हल्दी-चूर्ण) से ही गणपतिकी प्रतिमा बना ले।

फिर विविध रंगोंसे भूमिपर पद्मपत्र बनाकर उसपर कलश स्थापित करे। कलशके ऊपर चावलसे भरा ताँबेका पात्र रखे। उक्त चावलोंसे भरे पात्रपर दो वस्त्र रखकर उसपर गणेशजीको विराजमान करे। इसके बाद गन्धादि उपचारोंसे श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक उन दयामय देवकी पूजा करनी चाहिये। फिर मोदक-प्रिय मङ्गलविग्रह गणेशजीको संतुष्ट करनेके लिये उन्हें नैवेद्यके रूपमें लड्डू समर्पित करे। प्रणाम, परिक्रमा एवं प्रार्थनाके अनन्तर सम्पूर्ण रात्रि गीत, वाद्य, पुराण-कथा एवं गणेशजीके स्तवन और नाम-जपके साथ जागरण करनेका विधान है।

अरुणोदय होनेपर स्नानादि दैनिक कृत्यसे निवृत्त हो शुद्ध वस्त्र धारणकर श्रद्धापूर्वक तिल, चावल, जौ, पीली सरसों, घी और खाँड़से मिली हवन-सामग्रीका विधिपूर्वक होम करे। गण, गणाधिप, कूष्माण्ड, त्रिपुरान्तक, लम्बोदर, एकदन्त, रुक्मदंष्ट्र, विघ्नप, ब्रह्मा, यम, वरुण, सोम, सूर्य, हुताशन, गन्धमादी तथा परमेष्ठी—इन सोलह नामोंद्वारा प्रत्येकके आदिमें प्रणव और अन्तमें चतुर्थी विभक्ति और उसमें 'नमः' पद लगाकर अग्निमें एक एक आहुति दे।

इसके बाद 'वक्रतुण्डाय हुम्'—इस मन्त्रसे एक-सौ आठ आहुतियाँ दे। तदनन्तर व्याहृतियोंद्वारा[1] यथाशक्ति होम करके पूर्णाहुति देनी चाहिये। फिर दिक्पालोंकी पूजा करके चौबीस ब्राह्मणोंको अत्यन्त आदरपूर्वक लड्डू और खीर भोजन करावे। आचार्यको दक्षिणाके साथ सवत्सा गौका दान कर दूसरे ब्राह्मणोंको अपनी शक्तिके अनुसार भूयसी दक्षिणा दे। इसके बाद उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके चरणोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर उनकी परिक्रमा करे। तदुपरान्त उन्हें आदरपूर्वक विदा करना चाहिये। फिर स्वजन-बन्धुओंके साथ स्वयं प्रसन्नतापूर्वक भोजन करे।

इस महिमामय व्रतका पालन करनेवाले मनुष्य दयासिन्धु गणेशजीके प्रसादसे इस लोकमें उत्तम भोग भोगते और परलोकमें भगवान् विष्णुके सायुज्यके अधिकारी होते हैं।

(१०) पौष-मासकी चतुर्थीको भक्तिपूर्वक विघ्नेश्वर गणेशकी पूजा और प्रार्थना कर एक ब्राह्मणको लड्डूका भोजन कराकर दक्षिणा देनी चाहिये। इस व्रतको विधिपूर्वक करनेवाले पुरुषके यहाँ धन-सम्पत्तिका अभाव नहीं होता।

(११) माघ-कृष्ण-चतुर्थीको 'संकष्टव्रत' कहा गया है। उस दिन प्रातःकाल स्नानके अनन्तर देवदेव गजमुखकी प्रसन्नताके लिये व्रतोपवासका संकल्प करके दिनभर संयमित रहकर श्रीगणेशका स्मरण, चिन्तन एवं भजन करते रहना चाहिये। चन्द्रोदय होनेपर मिट्टीकी गणेशमूर्ति बनाकर उसे पीढ़ेपर स्थापित करे। गणेशजीके साथ उनके आयुध और वाहन भी होने चाहिये। पहले उक्त मृन्मयी मूर्तिमें गणेशजीकी स्थापना करे; तदनन्तर षोडशोपचारसे उनका भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिये। फिर मोदक तथा गुड़में बने हुए तिलके लड्डूका नवेद्य अर्पित करे। आचमन कराकर प्रदक्षिणा और नमस्कार करके पुष्पाञ्जलि अर्पित करनी चाहिये।

अर्घ्य-प्रदान

तदनन्तर शान्तचित्तसे भक्तिपूर्वक गणेशमन्त्रका इक्कीस बार जप करे और फिर भगवान् गणेशको अर्घ्य प्रदान करे। अर्घ्य प्रदान करनेका मन्त्र इस प्रकार है—

> गणेशाय नमस्तुभ्यं सर्वसिद्धिप्रदायक।
> संकष्टहर मे देव गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥
> कृष्णपक्षे चतुर्थ्यां तु सम्पूजित विधूदये।
> क्षिप्रं प्रसीद देवेश गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥

'समस्त सिद्धियोंके दाता गणेश! आपको नमस्कार है। संकटोंको हरण करनेवाले देव! आप अर्घ्य ग्रहण कीजिये; आपको नमस्कार है। कृष्णपक्षकी चतुर्थीको चन्द्रोदय होनेपर पूजित देवेश! आप अर्घ्य ग्रहण कीजिये, आपको नमस्कार है।'

इन दोनों श्लोकोंके साथ 'संकष्टहरणगणपतये नमः' (संकष्टहरणगणपतिके लिये नमस्कार है) दो बार बोलकर दो अर्घ्य देने चाहिये।

इसके अनन्तर निम्नाङ्कित मन्त्रसे चतुर्थी-तिथिकी अधिष्ठात्री देवीको अर्घ्य प्रदान करे—

---

[1] 'ॐ भूः स्वाहा'—इदमग्नये न मम। 'ॐ भुवः स्वाहा'—इदं वायवे न मम। 'ॐ स्वः स्वाहा' इदं सूर्याय न मम—ये आहुतिहोमके मन्त्र हैं।

तिथीनामुत्तमे देवि गणेशप्रियवल्लभे ।
सर्वसंकटनाशाय गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥
'चतुर्थ्यै नमः' इदमर्घ्यं समर्पयामि ।

'तिथियोंमें उत्तम गणेशजीकी प्यारी देवि ! आपके लिये नमस्कार है । आप मेरे समस्त संकटोंको नष्ट करनेके लिये अर्घ्य ग्रहण करें । चतुर्थी तिथिकी अधिष्ठात्री देवीके लिये नमस्कार है । मैं उन्हें यह अर्घ्य प्रदान करता हूँ ।' [व्रतराज]

तत्पश्चात् चन्द्रमाका गन्ध-पुष्पादिसे विधिवत् पूजन करके ताँबेके पात्रमें लाल चन्दन, कुश, दूर्वा, फूल, अक्षत, शमीपत्र, दधि और जल एकत्र करके निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करते हुए उन्हें अर्घ्य दे—

गगनार्णवमाणिक्य चन्द्र दाक्षायणीपते ।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं गणेशप्रतिरूपक ॥
(नारदपु०, पूर्व० ११३ । ७७)

'गगनरूपी समुद्रके माणिक्य, दक्षकन्या रोहिणीके प्रियतम और गणेशके प्रतिरूप चन्द्रमा ! आप मेरा दिया हुआ यह अर्घ्य स्वीकार कीजिये ।'*

फिर भगवान् गणेशके चरणोंमें प्रणामकर यथाशक्ति उत्तम ब्राह्मणोंको प्रेमपूर्वक भोजन और दक्षिणासे संतुष्टकर उनकी अनुमतिसे स्वयं प्रसन्नतापूर्वक भोजन करे ।

इस परम कल्याणकारी 'संकष्टव्रत'के प्रभावसे व्रती धन-धान्यसे सम्पन्न हो जाता है और उसके सम्मुख कभी कष्ट उपस्थित नहीं होता ।

इस व्रतको 'वक्रतुण्ड-चतुर्थी' (भविष्योत्तर) भी कहते हैं । इस व्रतको माघ-माससे आरम्भ करके हर महीनेमें करे तो संकटका नाश हो जाता है ।

माघ-मासके शुक्लपक्षकी चतुर्थीको उपवास करके श्रद्धा-भक्तिपूर्वक गणेशजीकी पूजा करे और पञ्चमीको तिलका भोजन करे । इस प्रकार व्रत करनेपर मनुष्य निर्विघ्न सुखी जीवन व्यतीत करता है । 'गं स्वाहा'—यह मूलमन्त्र है । 'गां नमः ।' आदिसे हृदयादि-न्यास करे ।†

'आगच्छोल्काय' कहकर गणेशका आवाहन और 'गच्छोल्काय' कहकर विसर्जन करे । इस प्रकार आदिमें गकारयुक्त और अन्तमें 'उल्का'-शब्दयुक्त मन्त्रसे उनके आवाहनादि कार्य करे । गन्धादि उपचारोंसे सविधि गणपतिका पूजन कर उन्हे नैवेद्यरूपमें लड्डू अर्पण करे; फिर आचमन, प्रणाम और परिक्रमा आदिके अनन्तर इस गणेश-गायत्रीका जप करे—

ॐ महोल्काय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि ।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥ (अग्निपुराण)

इस व्रतकी बड़ी महिमा है ।

इसी तिथिको 'गौरी-व्रत' भी किया जाता है । उस दिन योगिनी-गणोंसहित गौरीकी पूजा करनी चाहिये । मनुष्यों, विशेषतः स्त्रियोंको कुन्द, पुष्प, कुङ्कुम, लाल सूत्र, लाल फूल, महावर, धूप, दीप, गुड़, अदरख, दूध, खीर, नमक और पालक आदिसे भगवती गौरीका प्रीतिपूर्वक पूजन करना चाहिये । अपने सुख-सौभाग्यकी वृद्धिके लिये सौभाग्यवती स्त्रियों एवं उत्तम ब्राह्मणोंकी पूजाका भी विधान है । तदनन्तर प्रसन्न-मन बन्धु-बान्धवोंसहित स्वयं भी भोजन करना चाहिये । इस 'गौरीव्रत'के प्रभावसे सौभाग्य एवं आरोग्यकी वृद्धि होती है । कुछ लोग इसे 'ढुण्ढि-व्रत,' 'कुण्ड-व्रत,' 'ललिता-व्रत' और 'शान्ति-व्रत' भी कहते हैं ।

---

* तिथिकी अधिष्ठात्री देवी एवं रोहिणीपति चन्द्रमाको प्रत्येक कृष्णपक्षकी चतुर्थीको गणेश-पूजनके अनन्तर अर्घ्य प्रदान करना चाहिये । गणेश-कोशमें दिये गये निर्णयके अनुसार भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थीको केवल तिथिके लिये मध्याह्न-कालमें तीन वार अर्घ्य देना चाहिये; परंतु कृष्ण-चतुर्थीको चन्द्रोदयकालमें गणेशके लिये तीन, तिथिके लिये तीन और चन्द्रमाके लिये सात अर्घ्य देने चाहिये । इस प्रकार शुक्ल-चतुर्थीमें तीन वार और कृष्ण-चतुर्थीमें तेरह वार अर्घ्य देनेका विधान है । किंतु ऐसी प्रथा महाराष्ट्रमें ही प्रचलित है ।

† हृदयादि षडङ्गोंका न्यास इस प्रकार करे—

'गां हृदयाय नमः । गीं शिरसे स्वाहा । गूं शिखायै वषट् । गैं नेत्रत्रयाय वौषट । गौं कवचाय हुम् । गः अस्त्राय फट् ।'

१—इस दिन काशीवासी ढुण्ढिराज गणेशका दर्शन-पूजन करे । उन्हें श्वेत तिल और चीनीका मोदक अर्पण करना चाहिये । रात्रिमें एक समय भोजन कर भगवान् ढुण्ढिराजका स्मरण, कीर्तन एवं गुणगान करते हुए जागरण करनेसे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं । (त्रिस्थलीसेतु)

२—इस दिन उपवास करके देवीकी सविधि पूजा करनेसे संतति और सौभाग्यकी प्राप्ति होती है । (देवीभागवत)

३—इस दिन भक्तिपूर्वक गणपतिकी पूजा कर उन्हें घृतसिक्त अपूप (पूआ) और लवणके पदार्थ अर्पण करने चाहिये । फिर गुरुकी पूजा कर गुड़, नमक और घी प्रदान करनेसे स्थिर शान्ति प्राप्त होती है । (भविष्यपुराण)

इस पुण्यमय तिथिके स्नान, दान, जप और होम आदि शुभ कर्म आदिदेव गजवदनकी कृपासे सहस्रगुने फलदायी हो जाते हैं।

(१२) फाल्गुन-मासकी चतुर्थीको मङ्गलमय 'ढुण्ढिराज-व्रत' बताया गया है। उस दिन व्रतोपवासके साथ गणेशजीकी सोनेकी मूर्ति बनवाकर उसकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजा करे। तदनन्तर वह मूर्ति ब्राह्मणको दान कर दे। गणेशजीको प्रसन्न करनेके लिये उस दिन तिलोंसे ही दान, होम और पूजन आदि करे। उस दिन तिलके पीठेसे ब्राह्मणोंको भोजन कराकर व्रती स्वयं भी भोजन करे। इस व्रतके प्रभावसे समस्त सम्पदाओंकी वृद्धि होती है और मनुष्य गणेशजीकी कृपासे सहज ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है।

'मत्स्यपुराण'के अनुसार फाल्गुन-शुक्ल-चतुर्थीको 'मनोरथ-चतुर्थी' कहते हैं। आराधनाकी विधि यही है। पूजनोपरान्त नक्तव्रतका विधान है। इस प्रकार बारहों महीनेकी प्रत्येक शुक्ल चतुर्थीको व्रत करते हुए वर्षभरके बाद उस स्वर्णमूर्तिका दान करनेसे मनोरथ सिद्ध होते हैं।

अग्निपुराणमें इसको 'अविघ्ना-चतुर्थी'की संज्ञा दी गयी है।

जिस किसी मासमें भी चतुर्थी तिथि रविवार या मङ्गलवारसे युक्त हो, वह विशेष फलदायिनी होती है। उसे 'अङ्गारक-चतुर्थी' कहते हैं। उस दिन गणेशजीका पूजन करके मनुष्य सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको प्राप्त कर लेता है।*

अमित महिमामयी चतुर्थी-व्रतमें पूजाके अन्तमें चतुर्थी-व्रतकथा-श्रवणकी बड़ी महिमा गायी गयी है। पौराणिक कथाओंके अतिरिक्त प्रत्येक प्रान्तमें परम्परागत कुछ लोक-कथाएँ भी कही-सुनी जाती हैं। वे सभी भगवान् गणेशकी प्रीति प्रदान करनेवाली हैं।

परम महिमामयी अङ्गारक-चतुर्थी

'अङ्गारक-चतुर्थी'की माहात्म्य-कथा गणेशपुराणके उपासनाखण्डके ६० वें अध्यायमें वर्णित है। वह कथा अत्यन्त संक्षेपमें इस प्रकार है—

पृथ्वीदेवीने महामुनि भारद्वाजके जपापुष्प-तुल्य अरुण पुत्रका पालन किया। सात वर्षके बाद उन्होंने उसे महर्षिके पास पहुँचा दिया। महर्षिने अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने पुत्रका आलिङ्गन किया और उसका सविधि उपनयन कराकर उसे वेद-शास्त्रादिका अध्ययन कराया। फिर उन्होंने अपने प्रिय पुत्रको गणपति-मन्त्र देकर उसे गणेशजीको प्रसन्न करनेके लिये आराधना करनेकी आज्ञा दी।

मुनि-पुत्रने अपने पिताके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर पुण्यसलिला गङ्गाजीके तटपर जाकर वह परम प्रभु गणेशजीका ध्यान करते हुए भक्तिपूर्वक उनके मन्त्रका जप करने लगा। वह बालक निराहार रहकर एक सहस्र वर्षतक गणेशजीके ध्यानके साथ उनका मन्त्र जपता रहा।

माघ-कृष्ण-चतुर्थीको चन्द्रोदय होनेपर दिव्य वस्त्रधारी अष्टभुज चन्द्रभाल प्रसन्न होकर प्रकट हुए। उन्होंने अनेक शस्त्र धारण कर रखे थे। वे विविध अलंकारोंसे विभूषित अनेक सूर्योंसे भी अधिक दीप्तिमान् थे। भगवान् गणेशके मङ्गलमय अद्भुत स्वरूपका दर्शन कर तपस्वी मुनिपुत्रने प्रेमगद्गद कण्ठसे उनका स्तवन किया।

वरद प्रभु बोले—'मुनिकुमार! मैं तुम्हारे धैर्यपूर्ण कठोर तप एवं स्तवनसे पूर्ण प्रसन्न हूँ। तुम इच्छित वर माँगो। मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगा।'

प्रसन्न पृथ्वीपुत्रने अत्यन्त विनयपूर्वक निवेदन किया—"प्रभो! आज आपके दुर्लभ दर्शन कर मैं कृतार्थ हो गया। मेरी माता पर्वतमालिनी पृथ्वी, मेरे पिता, मेरा तप, मेरे नेत्र, मेरी वाणी, मेरा जीवन और जन्म सभी सफल हुए। दयामय! मैं स्वर्गमें निवासकर देवताओंके साथ अमृत-पान करना चाहता हूँ। मेरा नाम तीनों लोकोंमें कल्याण करनेवाला 'मङ्गल' प्रख्यात हो।"

पृथ्वीनन्दनने आगे कहा—'करुणामूर्ति प्रभो! मुझे आपका भुवनपावन दर्शन आज माघ-कृष्ण-चतुर्थीको हुआ है। अतएव यह चतुर्थी नित्य पुण्य देनेवाली एवं संकट-हारिणी हो। सुरेश्वर! इस दिन जो भी व्रत करे, आपकी कृपासे उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाया करें।'

सद्य:सिद्धिप्रदाता देवदेव गजमुखने वर प्रदान कर दिया—"मेदिनीनन्दन! तुम देवताओंके साथ सुधा-पान करोगे। तुम्हारा 'मङ्गल' नाम सर्वत्र विख्यात होगा। तुम धरणीके पुत्र हो और तुम्हारा रंग लाल है, अतः तुम्हारा एक नाम 'अङ्गारक' भी प्रसिद्ध होगा और यह तिथि

* यह वर्षभरके चतुर्थी-व्रतोंकी संक्षिप्त-विधि और माहात्म्य 'कल्याण'के 'नारद विष्णु-पुराणाङ्क'के आधारपर प्रस्तुत किया गया है। विस्तृत पूजा-विधि तथा माहात्म्य जाननेके लिये 'व्रतराज' आदि ग्रन्थोंको देखना चाहिये।

'अङ्गारक-चतुर्थी'के नामसे प्रख्यात होगी । पृथ्वीपर जो मनुष्य इस दिन मेरा व्रत करेंगे, उन्हें एक वर्षपर्यन्त चतुर्थी-व्रत करनेका फल प्राप्त होगा । निश्चय ही उनके किसी कार्यमें कभी विघ्न उपस्थित नहीं होगा ।"

परम प्रभु गणेशने मङ्गलको वर देते हुए आगे कहा— 'तुमने सर्वोत्तम व्रत किया है, इस कारण तुम अवन्ती-नगरमें परंतप-नामक नरपाल होकर सुख प्राप्त करोगे । इस व्रतकी अद्भुत महिमा है । इसके कीर्तनमात्रसे मनुष्यकी समस्त कामनाओंकी पूर्ति होगी ।'

गजमुख अन्तर्धान हो गये ।

मङ्गलने एक भव्य मन्दिर बनवाकर उसमें दशभुज गणेशकी प्रतिमा स्थापित करायी । उसका नामकरण किया— 'मङ्गलमूर्ति' । वह श्रीगणेश-विग्रह समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला, अनुष्ठान, पूजन और दर्शन करनेसे सबके लिये मोक्षप्रद होगा ।

पृथ्वीपुत्रने मङ्गलवारी चतुर्थीके दिन व्रत करके श्रीगणेश-जीकी आराधना की । उसका एक अत्यन्त आश्चर्यजनक फल यह हुआ कि वे सशरीर स्वर्ग चले गये । उन्होंने सुर-समुदायके साथ अमृत-पान किया और वह परमपावनी तिथि 'अङ्गारक-चतुर्थी'के नामसे प्रख्यात हुई । यह पुत्र-पौत्रादि एवं समृद्धि प्रदान कर समस्त कामनाओंको पूर्ण करती है ।

परम कारुणिक गणेशजीको अन्तर्हृदयकी विशुद्ध प्रीति अभीष्ट है । श्रद्धा और भक्तिपूर्वक त्रयतापनिवारक दया-निधान मोदकप्रिय सर्वेश्वर गजमुख कपित्थ, जम्बू और वन्यफलोंसे ही नहीं; दूर्वाके दो दलोंसे भी प्रसन्न हो जाते हैं और मुदित होकर समस्त कामनाओंकी पूर्ति तो करते ही हैं, जन्म-जरा-मृत्युका सुदृढ़ पाश नष्टकर अपना दुर्लभतम परमानन्दपूरित दिव्य धाम भी प्रदान कर देते हैं ।

—शिवनाथ दुबे

श्रीगणपति-पूजनकी विधि

(लेखक—साहित्याचार्य पाण्डेय प० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री)

नित्य सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा एक और अद्वितीय हैं । वे निर्गुण-निराकार होनेके साथ ही सगुण-साकार भी हैं । जैसे उनका निर्गुण-निराकार रूप नित्य है, उसी प्रकार सगुण-साकार भी । वे परमात्मा जगत्की सृष्टिके लिये ब्रह्मा, पालनके लिये विष्णु तथा संहारके लिये रुद्र-रूप धारण करते हैं । वे ही जगत्के प्राणियोंको माताका वात्सल्य एवं संरक्षण देनेके लिये दयामयी माता दुर्गाके रूपमें कार्य करते हैं । वे ही लोकोंकी आवश्यकताओंके अनुसार ताप एवं प्रकाश प्रदान करनेके निमित्त लोक-प्रसविता सविता (सूर्य) हुए हैं । हम सब यह अनुभव करते हैं कि प्रत्येक अभीष्ट कार्यके सम्पादनमें नाना प्रकारके विघ्न आते रहते हैं, उन सभी विघ्नोंका निवारण करके जगत्-को मङ्गल प्रदान करनेके लिये परब्रह्म परमात्मा ही नित्य गणपतिरूपमें प्रतिष्ठित हैं । वे विद्या-वारिधि और बुद्धि-विधाता हैं । वे ही सदा, विशेषतः कलियुगमें, थोड़ी-सी भी आराधनासे शीघ्र प्रसन्न होकर भक्तजनोंके अभीष्ट सिद्ध करते हैं । भगवान् गणपति नित्य वैदिक देवता हैं; आर्योंकी सनातन आवास-भूमि आर्यावर्त (भारत) में इनकी अनादि-सिद्ध पूजन-परम्परा सदासे ही चली आ रही है । पुराणोंमें भी उनकी महामहिमाका विशद वर्णन उपलब्ध होता है। पञ्चदेवोंमें ये भगवान् गजानन मुख्य हैं; प्रत्येक कार्यका आरम्भ श्रीगणेशके स्मरण-वन्दनसे ही होता है । जिन लोगोंको मुक्ति या कोई भौतिक सिद्धि चाहिये, वे इस युगमें गणेशजीको शीघ्र प्रसन्न करके अपनी अभीष्ट-पूर्ति कर सकते हैं । वे मङ्गलमूर्ति, सिद्धि-सदन, गजवदन विनायक बहुत अल्प श्रमसे ही उपासकपर दयासे द्रवित हो जाते हैं । जो विनायककी पूजा करता है, उसे कभी विघ्न नहीं प्राप्त होता । * उनकी आराधनासे कर्ममें सिद्धि प्राप्त होती है । † महागणपति सम्पूर्ण जगत्को उपासकके वशीभूत कर देते हैं । ‡

यहाँ गणेशजीके पूजनकी शास्त्रीय विधि दी जाती है । जो यज्ञोपवीतधारी द्विज हों, वे वैदिक मन्त्रों तथा पौराणिक मन्त्रोंसे भी गणपतिकी पूजा कर सकते हैं । जिनके यज्ञोपवीत न हों, वे वैदिक मन्त्रोंका उच्चारण न करके केवल पौराणिक मन्त्रोंद्वारा पूजन सम्पन्न कर सकते हैं । गणपतिकी पूजामें सभी वर्णके लोगोंका अधिकार है । पूजाका मुख्य समय पूर्वाह्णकाल है । प्रातः, मध्याह्न और

---

* विघ्नो न जायते तस्य यजेद् यस्तु विनायकम् ।

† महागणपते कर्मसिद्धिं प्राप्नोति मानवः ।

‡ सर्वं जगद् वशीकुर्यान्महागणपतिः सदा ।

(वीर०, पूजाप्रकाश)

की भावना करे। पूजक यदि गृहस्थ हो तो पूजनके समय सपत्नीक बैठकर पूजा करे। पूजन आरम्भ करनेसे पूर्व घीका दीपक जलाकर देवपीठके दाहिने भागमें अक्षत-पुञ्जपर उसे रख दे और 'ॐ दीपज्योतिषे नमः'—यह मन्त्र बोलकर गन्ध-पुष्पसे उसका पूजन करे। फिर उस दीपमें इष्टदेवके ज्योतिर्मय रूपकी भावना करके इस प्रकार प्रार्थना करे—

(क) भो दीप देवरूपस्त्वं कर्मसाक्षी ह्यविघ्नकृत्।

यावत् कर्मसमाप्तिः स्यात् तावत् त्वं सुस्थिरो भव॥

'हे दीप! तुम देवताके रूप हो, कर्मके साक्षी तथा विघ्नके निवारक हो; जबतक पूजा-कर्म पूरा न हो जाय, तबतक तुम सुस्थिरभावसे संनिकट रहो।'

तदनन्तर पूर्वाभिमुख बैठा हुआ सपत्नीक यजमान निम्नाङ्कित मन्त्रोंको पढ़कर तीन बार आचमन करे—

ॐ केशवाय नमः। ॐ नारायणाय नमः। ॐ माधवाय नमः॥

फिर 'ॐ हृषीकेशाय नमः' कहकर हाथ धो ले और दाहिने हाथमें कुशकी पवित्री धारण करे। उस समय इस मन्त्रका पाठ करे—

(ख) ॐ पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। (यजुर्वेद १।१२) तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छकेयम्॥ (यजुर्वेद ४।१४)

इस प्रकार पवित्री धारण करनेके बाद तीन बार प्राणायाम करे। तत्पश्चात्—

(क) ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।

यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

'ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु॥'

१. कात्यायनने पवित्रीका लक्षण इस प्रकार बताया है—

अनन्तर्गर्भिणं साग्रं कौशं द्विदलमेव च।

प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रं यत्र कुत्रचित्॥

"कुशके प्रादेश-मात्र दो पत्ते, जिनके गर्भमें दूसरा पत्ता न हो और अग्रभाग सुरक्षित हों, वे ही प्रत्येक कर्ममें 'पवित्र' जाननेयोग्य हैं।"

'कोई पवित्र हो, अपवित्र हो, अथवा किसी भी अवस्थाको प्राप्त क्यों न हो, जो भगवान् पुण्डरीकाक्षका स्मरण करता है, वह बाहर-भीतरसे पवित्र हो जाता है।' 'सच्चिदानन्दघन पुण्डरीकाक्ष पवित्र करें।'

यह मन्त्र पढ़कर अपने ऊपर तथा पूजन-सामग्रीपर जल छिड़के। इसके बाद निम्नलिखित मङ्गल-मन्त्रोंका पाठ करे—

(ख) ॐ आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः। देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे॥

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानाᳬं रातिरभि नो निवर्तताम्। देवानाᳬं सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे॥

तान् पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम्। अर्यमणं वरुणᳬं सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत्॥

तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः। तद्ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम्॥

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम्। पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये॥

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥

पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः। अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसा गमन्निह॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाᳬंसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥
शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः॥

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ॥
विश्वे देवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥
(यजु० २५ । १४ । २३)

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षᳬ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वᳬ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥

यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु ।
शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥
(यजु० ३६ । १७, २२)

सुशान्तिर्भवतु । श्रीमन्महागणाधिपतये नमः । लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः । उमामहेश्वराभ्यां नमः । वाणीहिरण्यगर्भाभ्यां नमः । शचीपुरन्दराभ्यां नमः । मातापितृभ्यां नमः । इष्टदेवताभ्यो नमः । कुलदेवताभ्यो नमः । ग्रामदेवताभ्यो नमः । वास्तुदेवताभ्यो नमः । स्थानदेवताभ्यो नमः । सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः । सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो नमः ।

(क) विश्वेशं माधवं ढुण्ढिं दण्डपाणिं च भैरवम् ।
वन्दे काशीं गुहां गङ्गां भवानीं मणिकर्णिकाम् ॥ १ ॥
वक्रतुण्ड महाकाय कोटिसूर्यसमप्रभ ।
निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा ॥ २ ॥
सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः ।
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः ॥ ३ ॥
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः ।
द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि ॥ ४ ॥
विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा ।
संग्रामे संकटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते ॥ ५ ॥
शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ ६ ॥
अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुरासुरैः ।
सर्वविघ्नच्छिदे तस्मै गणाधिपतये नमः ॥ ७ ॥
सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ८ ॥
सर्वदा सर्वकार्येषु नास्ति तेषाममङ्गलम् ।
येषां हृदिस्थो भगवान् मङ्गलायतनं हरिः ॥ ९ ॥
तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव ।
विद्याबलं दैवबलं तदेव लक्ष्मीपते तेऽङ्घ्रियुगं स्मरामि ॥ १० ॥
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः ।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥ ११ ॥
यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥ १२ ॥
अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ १३ ॥
स्मृते सकलकल्याणभाजनं यत्र जायते ।
पुरुषं तमजं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम् ॥ १४ ॥
सर्वेष्वारम्भकार्येषु त्रयस्त्रिभुवनेश्वराः ।
देवा दिशन्तु नः सिद्धिं ब्रह्मेशानजनार्दनाः ॥ १५ ॥

उपर्युक्त माङ्गलिक श्लोकोंका भावार्थ इस प्रकार है—

“विश्वनाथ, माधव, ढुण्ढिराज गणेश, दण्डपाणि, भैरव, काशी, गुहा, गङ्गा तथा भवानी मणिकर्णिकाकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ १ ॥ कोटि सूर्योंके समान महातेजस्वी, विशालकाय और टेढ़ी सूँड़वाले गणपतिदेव ! आप सदा सब कार्योंमें मेरे विघ्नोंका निवारण करें ॥ २ ॥ सुमुख, एकदन्त, कपिल, गजकर्ण, लम्बोदर, विकट, विघ्ननाशक, विनायक, धूम्रकेतु, गणाध्यक्ष, भालचन्द्र और गजानन—ये गणेशजीके बारह नाम हैं। जो मनुष्य विद्यारम्भ, विवाह, गृहप्रवेश, यात्रा, संग्राम (युद्ध) तथा संकटके अवसरपर इन बारह नामोंका पाठ और श्रवण करता है, उसके कार्यमें विघ्न उत्पन्न नहीं होता है ॥ ३—५ ॥ शुक्लवस्त्र धारण करनेवाले, चन्द्रमाके समान गौर, चार भुजाधारी और प्रसन्न मुखवाले गणपतिदेवका ध्यान करे। इससे सम्पूर्ण विघ्नोंकी शान्ति हो जाती है ॥ ६ ॥ देवताओं और असुरोंने भी अभीष्ट मनोरथकी सिद्धिके लिये जिनका पूजन किया है तथा जो समस्त विघ्नोंको हर लेनेवाले हैं, उन गणाधिपतिको नमस्कार है ॥ ७ ॥ नारायणि ! तुम सब प्रकारका मङ्गल प्रदान करनेवाली मङ्गलमयी हो; कल्याणदायिनी शिवा हो, सब पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाली, शरणागतवत्सला, त्रिनेत्रधारिणी गौरी हो; तुम्हें नमस्कार है ॥ ८ ॥ जिनके हृदयमें मङ्गलधाम भगवान् श्रीहरि विराजते हैं; अर्थात् जो मन-ही-मन उनका चिन्तन करते हैं, उनके समस्त कार्योंमें और सदा ही अमङ्गल नहीं होने पाता है ॥ ९ ॥ लक्ष्मीपते ! मैं जो आपके युगल

चरणोंका स्मरण करता हूँ। वह स्मरण ही शुभ लग्न है, वही सुदिन है, वही ताराबल, वही चन्द्रबल, वही विद्याबल और वही दैवबल है ॥ १० ॥ जिनके हृदयमें नील कमलके समान श्याम-कान्तिवाले भगवान् जनार्दन विराज रहे हैं, उन्हींका लाभ है, उन्हींकी विजय है; उनकी पराजय किससे हो सकती है? ॥ ११ ॥ जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्ण हैं, जहाँ धनुर्धर अर्जुन हैं, वहीं श्री, विजय, भूति तथा ध्रुवा नीति है, ऐसा मेरा विश्वास है ॥ १२ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—'जो लोग अनन्य-भावसे चिन्तन करते हुए मेरी उपासना करते हैं, मुझमें नित्य संयुक्त रहनेवाले उन भक्तोंके योग-क्षेमका भार मैं स्वयं वहन करता हूँ' ॥ १३ ॥ जिनका स्मरण करते ही मनुष्य समस्त कल्याणका भाजन हो जाता है, उन नित्य, अजन्मा आदिपुरुष श्रीहरिकी मैं शरण लेता हूँ ॥ १४ ॥ त्रिभुवनके स्वामी तीन देव—ब्रह्मा, शिव तथा विष्णु—आरम्भ किये जानेवाले सभी कार्योंमें हमें सिद्धि प्रदान करें" ॥ १५ ॥

—इस प्रकार मङ्गल पाठके अनन्तर यजमान पवित्रीयुक्त हाथमें जल, अक्षत और द्रव्य लेकर निम्नाङ्कित वाक्य पढ़ते हुए संकल्प करे—

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य अद्य श्रीब्रह्मणोऽह्नि द्वितीये परार्द्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे युगे कलियुगे कलिप्रथमचरणे भूर्लोके जम्बूद्वीपे भारतवर्षे भरतखण्डे आर्यावर्तान्तर्गतैकदेशे अमुकनगरे अमुकग्रामे स्थाने वा बौद्धावतारे अमुकनामसंवत्सरे श्रीसूर्ये अमुकायने अमुकर्तौ महामाङ्गल्यप्रदमासोत्तमे मासे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे अमुकयोगे अमुककरणे अमुकराशिस्थिते चन्द्रे अमुकराशिस्थिते श्रीसूर्ये अमुकराशिस्थिते देवगुरौ शेषेषु ग्रहेषु च यथायथाराशिस्थानस्थितेषु सत्सु एवं ग्रहगुणगणविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ अमुकगोत्रः अमुकशर्मा (अमुकवर्मा अमुकगुप्तः) अहं ममात्मनः श्रीमहागणपतिप्रीत्यर्थं यथालब्धोपचारैस्तदीयं पूजनं करिष्ये।

—इस प्रकार संकल्प पढ़कर हस्तगत जलाक्षत-द्रव्य किसी भूमिगत पात्रमें छोड़ दे। तत्पश्चात् गणपति-पूजन आरम्भ करे। सबसे पहले निम्नाङ्कित श्लोकोंके अनुसार गणेशके स्वरूपका चिन्तन करते हुए उनका आवाहन करे—

आवाहन

हे हेरम्ब त्वमेह्येहि ह्यम्बिकात्र्यम्बकात्मज।
सिद्धिबुद्धिपते त्र्यक्ष लक्षलाभ पितुः पितः ॥
नागास्यं नागहारं त्वां गणराजं चतुर्भुजम्।
भूषितं स्वायुधैर्दिव्यैः पाशाङ्कुशपरश्वधैः ॥
आवाहयामि पूजार्थं रक्षार्थं च मम क्रतोः।
इहागत्य गृहाण त्वं पूजां यागं च रक्ष मे ॥

हे माता पार्वती तथा त्रिलोचन महादेवके पुत्र हेरम्ब! आप आइये, आइये। आप सिद्धि और बुद्धिके पति हैं, तीन नेत्रोंसे सुशोभित हैं; लाखोंका लाभ करानेवाले तथा पिताके भी पिता हैं; यहाँ पधारिये। आप गजानन हैं, नागमय हार धारण करते हैं; आपके चार भुजाएँ हैं; आप गणोंके राजा हैं; पाश, अङ्कुश और परशु आदि दिव्य निजी आयुध आपके हाथोंकी शोभा बढ़ाते हैं। मैं पूजनके लिये और अपने इस यज्ञकी रक्षाके लिये भी आपका आवाहन करता हूँ। यहाँ पधारकर आप पूजा ग्रहण करें और यागकी रक्षा भी करें।*

(ख) ॐ गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम ॥ आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ॥ (यजु० २३ । १९) ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहिताय गणपतये नमः, गणपतिमावाहयामि स्थापयामि।

प्रतिष्ठापन

आवाहनके पश्चात् देवताका प्रतिष्ठापन करे—

ॐ मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञꣳ समिमं दधातु। विश्वेदेवास इह मादयन्तामो३म्प्रतिष्ठ ॥ (यजु० २ । १३) ॥

अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः क्षरन्तु च।
अस्यै देवत्वमर्चायै मामहेति च कश्चन ॥
सिद्धिबुद्धिसहितगणपते सुप्रतिष्ठितो वरदो भव।

आसन-अर्पण

इसके बाद निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर दिव्य सिंहासनकी भावनासे पुष्प अर्पित करे—

* यहाँ आवाहनी मुद्राका प्रदर्शन करे। दोनों हाथोंकी अञ्जलि जोड़कर दोनों अङ्गुष्ठोंको अनामिकाओंके मूल पर्वमें लगावे—यही 'आवाहनी मुद्रा' है।

(क) विचित्ररत्नखचितं दिव्यास्तरणसंयुतम्।
स्वर्णसिंहासनं चारु गृह्णीष्व सुरपूजित॥

'देव-पूजित गणेश! यह सुन्दर स्वर्णमय सिंहासन ग्रहण कीजिये। इसमें विचित्र रत्न जड़े गये हैं तथा इसपर दिव्य आस्तरण (बिछावन) पड़ा हुआ है।'

(ख) ॐ पुरुष एवेदᳪ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥ (यजु० ३१।२)
ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, आसनं समर्पयामि।

इसके बाद निम्नाङ्कित मन्त्रसे गणेशजीके पाद-प्रक्षालनके लिये पाद्य अर्पित करे—

(क) ॐ सर्वतीर्थसमुद्भूतं पाद्यं गन्धादिभिर्युतम्।
विघ्नराज गृहाणेदं भगवन् भक्तवत्सल॥

'भक्तवत्सल भगवान् विघ्नराज! यह सब तीर्थोंके जलसे तैयार किया गया तथा गन्ध आदिसे मिश्रित पाद्य-जल आप ग्रहण कीजिये।'

(ख) ॐ एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥ (यजु० ३१।३) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः पादयोः पाद्यं समर्पयामि।

अर्घ्य-दान

तदनन्तर गन्ध आदिसे युक्त अर्घ्यजल अर्पित करे और निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़े—

(क) ॐ गणाध्यक्ष नमस्तेऽस्तु गृहाण करुणाकर।
अर्घ्यं च फलसंयुक्तं गन्धमाल्याक्षतैर्युतम्॥

'करुणानिधान गणाध्यक्ष! आपको नमस्कार है। आप गन्ध, पुष्प, अक्षत और फल आदिसे युक्त यह अर्घ्यजल स्वीकार करें।'

(ख) ॐ त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि॥ (यजु० ३१।४)
ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, हस्तयोरर्घ्यं समर्पयामि।

आचमनीय-अर्पण

इसके अनन्तर गङ्गाजलसे आचमन कराये और नीचे दिया हुआ मन्त्र पढ़े—

(क) विनायक नमस्तुभ्यं त्रिदशैरभिवन्दित।
गङ्गोदकेन देवेश कुरुष्वाचमनं प्रभो॥

'देवेश्वर! देववन्दित प्रभो! विनायक! आपको नमस्कार है। आप गङ्गाजलसे आचमन करें।'

(ख) ॐ ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः॥ (यजु० ३१।५) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, मुखे आचमनीयं समर्पयामि।

स्नानीय-समर्पण।

तदनन्तर नीचे दिये हुए मन्त्रको बोलकर गङ्गाजलसे स्नान करानेकी भावनासे स्नानीय जल अर्पित करे—

(क) मन्दाकिन्यास्तु यद्वारि सर्वपापहरं शुभम्।
तदिदं कल्पितं देव स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्॥

'देव! मन्दाकिनी (गङ्गा) का जो जल समस्तपापहारी और शुभ है, वही आपके स्नानके लिये प्रस्तुत किया गया है; आप इसे स्वीकार करें।'

(ख) ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।
पशूंस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये॥ (यजु० ३१।६)
ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नम, सर्वाङ्गे स्नानं समर्पयामि।

पञ्चामृत-स्नान

इसके बाद नीचे लिखे मन्त्रको पढ़कर पञ्चामृतसे गणपतिदेवको स्नान कराये—

(क) पञ्चामृतं मयाऽऽनीतं पयो दधि घृतं मधु।
शर्करा च समायुक्तं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्॥

'प्रभो! दूध, दही, घी, मधु और शर्कराको एकत्र मिलाकर तैयार किया गया यह पञ्चामृत मैं ले आया हूँ; इसे आप स्नानके लिये ग्रहण करें।'

(ख) ॐ पञ्च नद्यः सरस्वतीमपियन्ति सस्रोतसः।
सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित्॥ (यजु० ३४।११)
ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः पञ्चामृत-स्नानं समर्पयामि।

पञ्चामृतस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि ।

इसके बाद दूध, दही आदिसे पृथक्-पृथक् स्नान कराकर शुद्ध जलसे भी स्नान कराना चाहिये । दूधसे स्नान करानेके लिये मन्त्र निम्नलिखित है—

पयःस्नान

(क) कामधेनुसमुद्भूतं सर्वेषां जीवनं परम् ।
पावनं यज्ञहेतुश्च पयः स्नानार्थमर्पितम् ॥

'प्रभो ! कामधेनुके थनसे प्रकट, सबके लिये परम जीवन, पवित्र तथा यज्ञका हेतुभूत यह दूध आपको स्नानके लिये अर्पित है ।'

(ख) ॐ पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः। पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥ (यजु० १८ । ३६) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, पयःस्नानं समर्पयामि ।

पयःस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि ।

दधि-स्नान

(क) पयसस्तु समुद्भूतं मधुराम्लं शशिप्रभम् ।
दध्यानीतं मया देव स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

'देव ! यह दूधसे उत्पन्न, मीठा-खट्टा, चन्द्रमासदृश उज्ज्वल दही मैं ले आया हूँ, आप इसे स्नानके लिये ग्रहण करें ।'

(ख) ॐ दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः। सुरभि नो मुखा करत् प्राण आयूꣳषि तारिषत् ॥ (यजु० २३ । ३२) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, दधिस्नानं समर्पयामि ।

दधिस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि ।

घृत-स्नान

(क) नवनीतसमुत्पन्नं सर्वसंतोषकारकम् ।
घृतं तुभ्यं प्रदास्यामि स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

'भगवन् ! नवनीत (मक्खन) से उत्पन्न तथा सबको संतुष्ट करनेवाला यह घृत मैं आपको अर्पित करता हूँ; इसे आप स्नानके लिये स्वीकार करें ।'

(ख) ॐ घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम । अनुष्वधमावह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥ (यजु० १७ । ८८) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, घृतस्नानं समर्पयामि ।

घृतस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि ।

मधु-स्नान

(क) पुष्परेणुसमुद्भूतं सुस्वादु मधुरं मधु ।
तेजःपुष्टिकरं दिव्यं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

'प्रभो ! यह पुष्पके परागसे प्रकट और तेजकी पुष्टि करनेवाला दिव्य सुस्वादु, मधुर मधु सेवामें प्रस्तुत है; आप इसे स्नानके लिये ग्रहण करें ।'

(ख) ॐ मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः । मधु नक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवꣳ रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता । मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ२ अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ (यजु० १३ । २७–२९) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, मधुस्नानं समर्पयामि ।

मधुस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि ।

शर्करा-स्नान

(क) इक्षुसारसमुद्भूता शर्करा पुष्टिदा शुभा ।
मलापहारिका दिव्या स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

'जो ईखके सार-तत्त्वसे बनी है, पुष्टि देनेवाली, शुभ तथा मैलको दूर कर देनेवाली है; वह दिव्य शर्करा सेवामें प्रस्तुत है; आप इसे स्नानके लिये स्वीकार करें ।'

(ख) ॐ अपाꣳ रसमुद्वयसꣳ सूर्ये सन्तꣳ समाहितम् । अपाꣳ रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाम्युत्तममुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥ (यजु० ९ । ३) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, शर्करास्नानं समर्पयामि ।

शर्करास्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि ।

इसके बाद सुगन्ध तैल (इत्र) आदि अर्पित करे ।

माङ्गलिक स्नान (सुवासित तैल या इत्र)

(क) चम्पकाशोकवकुलमालतीमोगरादिभिः ।
वासितं स्निग्धताहेतु तैलं चारु प्रगृह्यताम् ॥

'प्रभो ! चम्पा, अशोक, मौलसिरी, मालती और मोगरा आदिसे वासित तथा चिकनाहटका हेतुभूत यह सुन्दर तैल आप ग्रहण करें ।'

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, सुवासितं तैलं समर्पयामि।

शुद्धोदक-स्नान

तदनन्तर गङ्गाजल या तीर्थ-जलसे शुद्ध स्नान कराये। मन्त्र निम्नलिखित है—

(क) गङ्गा च यमुना चैव गोदावरी सरस्वती।
नर्मदा सिन्धुः कावेरी स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्॥

'इस शुद्ध जलके रूपमें यहाँ गङ्गा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु और कावेरी उपस्थित हैं; आप स्नानके लिये यह जल ग्रहण करें।'

(ख) ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महेरणाय चक्षसे॥ (यजु० ११।५०) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि।

वस्त्र-समर्पण

(क) शीतवातोष्णसंत्राणं लज्जाया रक्षणं परम्।
देहालंकरणं वस्त्रमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥

'प्रभो! यह वस्त्र सेवामें अर्पित है। यह सर्दी, हवा और गर्मीसे बचानेवाला, लज्जाका उत्तम रक्षक तथा शरीरका अलंकार है; आप इसे स्वीकार करके मुझे शान्ति प्रदान करें।'

(ख) ॐ युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः। तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो३ मनसा देवयन्तः॥ (ऋक्० ३।८।४) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, वस्त्रं समर्पयामि।

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, आचमनं समर्पयामि।

उपवस्त्र (उत्तरीय)-समर्पण

(क) उत्तरीयं तथा देव नानाचित्रितमुत्तमम्।
गृहाणेदं मया भक्त्या दत्तं तत् सफलीकुरु॥

'हे देव! नाना प्रकारके चित्रों (बेल-बूटों)से सुशोभित यह उत्तम उत्तरीय वस्त्र मैंने भक्तिपूर्वक अर्पित किया है; आप इसे ग्रहण करें और सफल बनायें।'

(ख) ॐ सुजातो ज्योतिषा सह शर्म वरूथमाऽसदत्स्वः। वासो अग्ने विश्वरूपꣳ संव्ययस्व विभावसो॥ (यजु० ११।४०) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, उपवस्त्रं समर्पयामि। तदन्ते आचमनीयं समर्पयामि।

(वस्त्रके अभावमें लाल सूत एवं अलंकरणके लिये अक्षत चढ़ाना चाहिये।)

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, वस्त्रोपवस्त्रार्थे रक्तसूत्रं समर्पयामि।

अलंकरण

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, अलंकरणार्थमक्षतान् समर्पयामि।

यज्ञोपवीत-समर्पण

(क) नवभिस्तन्तुभिर्युक्तं त्रिगुणं देवतामयम्।
उपवीतं मया दत्तं गृहाण परमेश्वर॥

'परमेश्वर! नौ तन्तुओंसे युक्त, त्रिगुण और देवतास्वरूप यह यज्ञोपवीत मैंने समर्पित किया है। आप इसे ग्रहण करें।'

(ख) ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, यज्ञोपवीतं समर्पयामि।

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, आचमनं समर्पयामि।

गन्ध

(क) श्रीखण्डचन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम्।
विलेपनं सुरश्रेष्ठ चन्दनं प्रतिगृह्यताम्॥

'सुरश्रेष्ठ! यह दिव्य श्रीखण्डचन्दन, सुगन्धसे पूर्ण एवं मनोहर है। विलेपनस्वरूप यह चन्दन आप स्वीकार करें।'

(ख) ॐ त्वां गन्धर्वा अखनंस्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः। त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान्यक्ष्मादमुच्यत॥ (यजु० १२।९८) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, गन्धं समर्पयामि।

अक्षत

(क) अक्षताश्च सुरश्रेष्ठ कुङ्कुमाक्ताः सुशोभिताः।
मया निवेदिता भक्त्या गृहाण परमेश्वर॥

'सुरश्रेष्ठ परमेश्वर! ये कुङ्कुमसे रँगे हुए सुन्दर अक्षत हैं; मैंने भक्तिभावसे इन्हें आपकी सेवामें अर्पित किया है; आप इन्हें ग्रहण करें।'

(ख) ॐ अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत। अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी॥ (यजु० ३। ५१) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, अक्षतान् समर्पयामि।

पुष्प-माला

(क) माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो।
मयाहृतानि पुष्पाणि गृह्यन्तां पूजनाय भोः॥

'प्रभो! मालती आदिकी सुगन्धित मालाएँ और फूल मेरेद्वारा लाये गये हैं; आप इन्हें पूजार्थ ग्रहण करें।'

(ख) ॐ ओषधीः प्रतिमोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः। अश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः॥ (यजु० १२। ७७) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, पुष्पमालां समर्पयामि।

मन्दार-पुष्प

(क) वन्दारुजनमन्दार मन्दारप्रिय धीपते।
मन्दारजानि पुष्पाणि श्वेतार्कादीन्युपेहि भोः॥

'हे वन्दना करनेवाले भक्तोंके लिये मन्दार (कल्पवृक्ष)-के समान कामनापूरक! मन्दारप्रिय! बुद्धिपते गणेश! मन्दारके तथा श्वेत आक आदिके फूल ग्रहण कीजिये।'

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, मन्दार-पुष्पाणि समर्पयामि।

शमीपत्र

(क) त्वत्प्रियाणि सुपुष्पाणि कोमलानि शुभानि वै।
शमीदलानि हेरम्ब गृहाण गणनायक॥

'गणनायक हेरम्ब! आपके जो प्रिय सुन्दर पुष्प तथा कोमल शुभ शमीपत्र हैं, उन्हें ग्रहण कीजिये।'

(ख) ॐ य इन्द्राय वचोयुजा ततक्षुर्मनसा हरी। शमीभिर्यज्ञमाशत॥ (ऋग० १। २०। २) ॐ सिद्धिबुद्धि-सहिताय महागणपतये नमः, शमीपत्राणि समर्पयामि।

दूर्वाङ्कुर

(क) दूर्वाङ्कुरान् सुहरितानमृतान् मङ्गलप्रदान्।
आनीतांस्तव पूजार्थं गृहाण गणनायक॥

'गणनायक! आपकी पूजाके लिये मेरेद्वारा अत्यन्त हरे, अमृतमय तथा मङ्गलप्रद दूर्वाङ्कुर लाये गये हैं, आप इन्हें स्वीकार करें।'

(ख) ॐ काण्डात्काण्डात् प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि। एवा नो दूर्वे प्र तनु सहस्रेण शतेन च॥ (यजु० १३। २०) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, दूर्वाङ्कुरान् समर्पयामि।

सिन्दूर

(क) सिन्दूरं शोभनं रक्तं सौभाग्यं सुखवर्धनम्।
शुभदं कामदं चैव सिन्दूरं प्रतिगृह्यताम्॥

'प्रभो! सुन्दर, लाल, सौभाग्यस्वरूप, सुखवर्धक, शुभद एवं कामपूरक सिन्दूर सेवामें प्रस्तुत है; इसे ग्रहण करें।'

(ख) ॐ सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः। घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः॥ (यजु० १७। ९५) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, सिन्दूरं समर्पयामि।

नाना परिमलद्रव्य, अबीर-चूर्ण

(क) नानापरिमलैर्द्रव्यैर्निर्मितं चूर्णमुत्तमम्।
अबीरनामकं चूर्णं गन्धाढ्यं चारु गृह्यताम्॥

'भाँति-भाँतिके सुगन्धित द्रव्योंसे निर्मित यह गन्धयुक्त अबीर-नामक सुन्दर तथा उत्तम चूर्ण ग्रहण कीजिये।'

(ख) ॐ अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः। हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः॥ (यजु० २९। ५१) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, नानापरिमलद्रव्याणि समर्पयामि।

दशाङ्ग धूप

(क) वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥

'वनस्पतिके रससे प्रकट, सुगन्धित, उत्तम गन्धरूप

और समस्त देवताओंके सूँघनेयोग्य यह धूप सेवामें अर्पित है। प्रभो! इसे ग्रहण करें।'

(ख) ॐ धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योऽस्मान्धूर्वति तं धूर्वयं वयं धूर्वामः। देवानामसि वह्नितमꣳ सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम्॥ (यजु० १।८) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, धूपमाघ्रापयामि।

दीप-दर्शन

(क) साज्यं च वर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया।
दीपं गृहाण देवेश त्रैलोक्यतिमिरापहम्॥
भक्त्या दीपं प्रयच्छामि देवाय परमात्मने।
त्राहि मां निरयाद् घोराद्दीपज्योतिर्नमोऽस्तु ते॥

'देवेश! घीमे डुबोयी रुईकी बत्तीको अग्निसे प्रज्वलित करके दीप आपकी सेवामे अर्पित किया गया है; आप इसे ग्रहण करें; यह त्रिभुवनके अन्धकारको दूर करनेवाला है। मैं इष्ट देवता परमात्मा गणपतिको दीप देता हूँ। प्रभो! आप मुझे घोर नरकसे बचाइये। दीपज्योतिर्मय देव! आपको नमस्कार है।'

(ख) ॐ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा। अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा। ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा॥ (यजु० ३।९) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, दीपं दर्शयामि।

नैवेद्य-निवेदन

दीप-अर्पणके पश्चात् हाथ धोकर नैवेद्य-अर्पण करे। नैवेद्यमें भाँति-भाँतिके मोदक, गुड़ तथा ऋतुके अनुकूल उपलब्ध नाना प्रकारके उत्तमोत्तम फल प्रस्तुत करे। नैवेद्यमें देय वस्तुका पहले शुद्ध जलसे प्रोक्षण करे। फिर धेनु-मुद्रा दिखाकर देवताके सम्मुख स्थापित करे। इसके बाद निम्नाङ्कित मन्त्रोंको पढ़े—

(क) नैवेद्यं गृह्यतां देव भक्तिं मे ह्यचलां कुरु।
ईप्सितं मे वरं देहि परत्र च परां गतिम्॥
शर्कराखण्डखाद्यानि दधिक्षीरघृतानि च।
आहारं भक्ष्यभोज्यं च नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम्॥

'देव! आप यह नैवेद्य ग्रहण करें और अपने प्रति मेरी भक्तिको अविचल कीजिये। वाञ्छित वर दीजिये और परलोकमें परम गति प्रदान कीजिये। शक्कर और खाँड़से तैयार किये गये खाद्य पदार्थ, दही, दूध, घी तथा भक्ष्य-भोज्य आहार नैवेद्यके रूपमें प्रस्तुत हैं; आप यह नैवेद्य कृपापूर्वक स्वीकार करें।'

(ख) ॐ नाभ्या आसीदन्तरिक्षꣳ शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत। पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ२ अकल्पयन्॥ (यजु० ३१।१३) ॐ प्राणाय स्वाहा। ॐ अपानाय स्वाहा। ॐ समानाय स्वाहा॥ ॐ उदानाय स्वाहा। ॐ व्यानाय स्वाहा॥ ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, नैवेद्यं मोदकमयं ऋतुफलानि च समर्पयामि।

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, आचमनीयं मध्ये पानीयं उत्तरापोशनं च समर्पयामि।

करोद्वर्तनके लिये चन्दन

(क) ॐ चन्दनं मलयोद्भूतं कस्तूर्यादिसमन्वितम्।
करोद्वर्तनकं देव गृहाण परमेश्वर॥

'देव! मलयपर्वतसे उत्पन्न चन्दनमें कस्तूरी आदि मिलाकर मैंने करोद्वर्तन तैयार किया है। परमेश्वर! इसे स्वीकार करें।'

(ख) अꣳशुना ते अꣳशुः पृच्यतां परुषा परुः। गन्धस्ते सोममवतु मदाय रसो अच्युतः॥ (यजु० २०।२७) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, चन्दनेन करोद्वर्तनं समर्पयामि।

पूगीफलादिसहित ताम्बूल-अर्पण

(क) ॐ पूगीफलं महद्दिव्यं नागवल्लीदलैर्युतम्।
एलाचूर्णादिसंयुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम्॥

'प्रभो! महान् दिव्य पूगीफल, इलायची और चूना आदिसे युक्त पानका बीड़ा सेवामें प्रस्तुत है; इसे ग्रहण करें।'

(ख) ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत। वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः॥ (यजु० ३१।१४) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, मुखवासार्थमेलापूगीफलादिसहितं ताम्बूलं समर्पयामि।

नारिकेलफल-अर्पण

(क) इदं फलं मया देव स्थापितं पुरतस्तव।
तेन मे सफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि॥

'देव ! यह नारियलका फल मैंने आपके सामने रखा है; इससे जन्म-जन्ममें मुझे सफलता प्राप्त हो।'

(ख) ॐ या. फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः। बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वꣳहस ॥ (यजु० १२।८९) ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, नारिकेलफलं समर्पयामि।

दक्षिणा-समर्पण

(क) हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेम बीजं विभावसोः।
अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

'सुवर्ण हिरण्यगर्भ ब्रह्माके गर्भमें स्थित अग्निका बीज है। वह अनन्त पुण्य-फल प्रदान करनेवाला है। भगवन् ! वह आपकी सेवामें अर्पित है; अतः इसे स्वीकार कर मुझे शान्ति प्रदान करें।'

(ख) ॐ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ (यजु० १३। ४)

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, कृतायाः पूजायाः साद्गुण्यार्थं द्रव्यदक्षिणां समर्पयामि।

नीराजन या आरार्तिक (आरती)

(क) कदलीगर्भसम्भूतं कर्पूरं तु प्रदीपितम्।
आरार्तिकमहं कुर्वे पश्य मे वरदो भव ॥

'प्रभो ! केलेके गर्भसे उत्पन्न यह जलाया गया कपूर है; इसीके द्वारा मैं आपकी आरती करता हूँ। आप इसे देखिये और मेरे लिये वरदायक होइये।'

(ख) ॐ इदꣳ हविः प्रजननं मे अस्तु, दशवीरꣳ सर्वगणꣳ स्वस्तये। आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्यभयसनि। अग्निः प्रजां बहुलां मे करोत्वन्नं पयो रेतो अस्मासु धत्त ॥ (यजु० १९। ४८) आ रात्रि पार्थिवꣳरजः पितुरप्रायि धामभिः। दिवः सदाꣳसि बृहती वितिष्ठस आ त्वेषं वर्तते तमः ॥ (यजु० ३४। ३२)

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, कर्पूरनीराजनं समर्पयामि ॥

पुष्पाञ्जलि-समर्पण

(क) नानासुगन्धिपुष्पाणि यथाकालोद्भवानि च।
पुष्पाञ्जलिर्मया दत्तो गृहाण परमेश्वर ॥

'परमेश्वर ! यथासमय उत्पन्न होनेवाले नाना प्रकारके सुगन्धित पुष्प मैंने पुष्पाञ्जलिके रूपमें अर्पित किये हैं; आप इन्हें स्वीकार करें।'

(ख) ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥ (यजु० ३१। १६) ॐ गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ॥ (यजु० २३। १९) ॐ अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन। ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम् ॥ (यजु० २३। १८)

ॐ राजाधिराजाय प्रसह्यसाहिने नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे। स मे कामान् काम कामाय मह्यं कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु ॥

कुबेराय वैश्रवणाय महाराजाय नमः।

ॐ स्वस्ति साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं राज्यं महाराज्यमाधिपत्यमयं समन्तपर्यायी स्यात् सार्वभौमः सार्वायुषान्तादापरार्धात् पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकराडिति तदप्येष श्लोकोऽभिगीतो मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्यावसन् गृहे। आविक्षितस्य कामप्रेर्विश्वेदेवाः सभासद इति।

ॐ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्। सम्बाहुभ्यां धमति सम्पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥ (यजु० १७। १९)

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, मन्त्रपुष्पाञ्जलिं समर्पयामि।

प्रदक्षिणा

(क) यानि कानि च पापानि ज्ञाताज्ञातकृतानि च।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति प्रदक्षिणपदे पदे ॥

'मनुष्यद्वारा जाने या अनजानेमें जो कोई पाप किये गये हैं, वे परिक्रमा करते समय पद-पदपर नष्ट होते हैं।'

(ख) ॐ ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः। तेषाꣳसहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ (यजु० १६। ६१)

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, प्रदक्षिणां समर्पयामि।

विशेषार्घ्य-समर्पण

तदनन्तर जल, गन्ध, अक्षत, फल, फूल, दूर्वा और दक्षिणा एक ताम्रमय पात्रमें रखकर दोनों घुटनोंसे पृथ्वीपर टेककर उक्त अर्घ्यपात्र (ताम्रपात्र)को दोनों हाथोंकी अञ्जलिमें ले और उसे मस्तकसे लगाकर निम्नाङ्कित श्लोकोंको पढ़ते हुए श्रीगणपतिको अर्घ्य दे—

(क) रक्ष रक्ष गणाध्यक्ष रक्ष त्रैलोक्यरक्षक।
भक्तानामभयं कर्ता त्राता भव भवार्णवात्॥
द्वैमातुर कृपासिन्धो षाण्मातुराग्रज प्रभो।
वरदस्त्वं वरं देहि वाञ्छितं वाञ्छितार्थद॥
अनेन सफलार्घ्येण फलदोऽस्तु सदा मम।

"त्रिलोकीकी रक्षा करनेवाले गणाध्यक्ष! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। आप भक्तोंको अभय देनेवाले और भव सागरसे उनकी रक्षा करनेवाले होइये। दयासागर! आप दो माताओंके पुत्र होनेसे 'द्वैमातुर' कहे गये हैं।

"प्रभो! आप षाण्मातुर स्कन्दके बड़े भाई हैं, वरदाता हैं, वर दीजिये। अभीष्ट वस्तुओंके दाता गणेश! मेरी वाञ्छा पूर्ण कीजिये। इस फलयुक्त अर्घ्य-दानसे आप मेरे लिये सदा—फलदाता होइये।"

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये नमः, विशेषार्घ्यं समर्पयामि।

प्रार्थना

विशेषार्घ्य देनेके पश्चात् निम्नाङ्कित श्लोक पढ़कर प्रार्थना करे—

(क) विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय
लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय।
नागाननाय श्रुतियज्ञविभूषिताय
गौरीसुताय गणनाथ नमो नमस्ते॥
भक्तार्तिनाशनपराय गणेश्वराय
सर्वेश्वराय शुभदाय सुरेश्वराय।
विद्याधराय विकटाय च वामनाय
भक्तप्रसन्नवरदाय नमो नमस्ते॥
नमस्ते ब्रह्मरूपाय विष्णुरूपाय ते नमः।
नमस्ते रुद्ररूपाय करिरूपाय ते नमः॥
विश्वरूपस्वरूपाय नमस्ते ब्रह्मचारिणे।
भक्तप्रियाय देवाय नमस्तुभ्यं विनायक॥
लम्बोदर नमस्तुभ्यं सततं मोदकप्रिय।
निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा॥
त्वां विघ्नशत्रुदलनेति च सुन्दरेति
भक्तप्रियेति सुखदेति फलप्रदेति।
विद्याप्रदेत्यघहरेति च ये स्तुवन्ति
तेभ्यो गणेश वरदो भव नित्यमेव॥
गणेशपूजने कर्म यन्न्यूनमधिकं कृतम्।
तेन सर्वेण सर्वात्मा प्रसन्नोऽस्तु सदा मम॥

अनया पूजया सिद्धि-बुद्धिसहितो महागणपतिः प्रीयतां न मम।

"गणनाथ! आप विघ्नेश्वर (विघ्नोंपर शासन करनेवाले) हैं। वरदाता हैं, देवताओंके प्रिय हैं, लम्बोदर हैं, विविध कलाओंसे पूर्ण हैं, सम्पूर्ण जगत्के हितैषी हैं, गजानन हैं, वैदिक यज्ञसे विभूषित और गौरी (पार्वती)के पुत्र हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप भक्तोंके संकट मिटानेमें सदा लगे रहते हैं, गणोंके ईश्वर एवं सर्वेश्वर हैं, कल्याणप्रद एवं देवेश्वर हैं, विद्याधर, विकट और वामन हैं तथा भक्तोंपर प्रसन्न होकर उन्हें वर देते हैं; आपको बारंबार नमस्कार है। आप ब्रह्मरूप, विष्णुरूप, रुद्ररूप और गजरूप हैं; इन सभी रूपोंमें आपको बार-बार नमस्कार है। सम्पूर्ण विश्वका रूप आपका ही स्वरूप है; आप ब्रह्मचारी हैं; आपको नमस्कार है। विनायक! आप भक्तप्रिय देवता हैं; आपको नमस्कार है। लम्बोदर! आपको मोदक सदा ही प्रिय है; आपको नमस्कार है। देव! आप सदा मेरे सब कार्योंमें विघ्नोंका निवारण करें। गणेश! जो लोग आपको 'विघ्न-शत्रु-दलन', 'सुन्दर', 'भक्तप्रिय', 'सुखद', 'फलप्रद', 'विद्याप्रद' और 'अघहर' इत्यादि नामोंसे पुकारकर आपकी स्तुति करते हैं, उनके लिये आप नित्य ही वरदायक हों। गणेशजीकी पूजामें जो कर्म न्यून या अधिक किया गया है, उस सबके द्वारा सर्वात्मा गणपति सदा मुझपर प्रसन्न रहें।"

'इस पूजासे सिद्धि-बुद्धिसहित महागणपति संतुष्ट हों। इसपर उन्हींका स्वत्व है, मेरा नहीं।'

॥ श्रीगणपति-पूजन-विधि सम्पूर्ण ॥

सब प्रकारके कष्टोंके निवारणका अचूक उपाय

['ॐ गं गणपतये नमः' मन्त्र-जपका अनुभव]

(लेखक—पं० श्रीअवधेशनारायणजी मिश्र, व्याकरण-साहित्याचार्य)

श्रद्धेय श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारसे 'कल्याण' के पाठक भली प्रकार परिचित हैं ही; मैं उनका परिचय क्या दूँ। श्रीभाईजीके स्वजनोंकी परिधि विशाल थी और सभी अपना दुःख-दर्द उनको सुनाया करते थे तथा उनके निवारणके लिये अनुरोध करते थे। परमोच्च कोटिके गृहस्थ संत होनेके नाते श्रीभाईजी लोकसंग्रहकी दृष्टिसे लौकिक कामनाओं एवं आपदाओंसे पीड़ित व्यक्तियोंको कष्टोंके निवारणार्थ यथासम्भव सभी प्रकारके सात्त्विक प्रयत्न करनेके साथ-साथ विश्वम्भर प्रभुको पुकारनेका भी परामर्श देते थे। उनका स्पष्ट मत था कि 'जगत्के सामने हाथ फैलाने, दुःख रोनेकी अपेक्षा यह कहीं श्रेष्ठ है कि अशरणशरण भगवान्‌को पुकारा जाय। अपनी बातको स्पष्ट करनेके लिये वे श्रीतुलसीदासजीका यह सवैया सुनाया करते थे—

जग जाचिअ कोउ न, जाचिअ जौं,
जियँ जाचिअ जानकी जानहि रे।
जेहि जाचत जाचकता जरि जाइ,
जो जारति जोर जहानहि रे॥
गति देखु बिचारि बिभीषनकी,
अरु आनु हिएँ हनुमानहि रे।
तुलसी! भजु दारिद-दोष-दवानल,
संकट-कोटि-कृपानहि रे॥

(कवितावली, उत्तरकाण्ड २८)

'संसारमें किसीसे (कुछ) माँगना नहीं चाहिये। यदि माँगना ही हो तो जानकीनाथ श्रीरामचन्द्रजीसे मनहीमें माँगो, जिससे माँगते ही याचकता (दरिद्रता, कामना) जल जाती है, जो बरबस जगत्‌को जला रही है। विभीषणकी दशाका विचार करके देखो और हनुमान्‌जीका भी स्मरण करो। गोसाईंजी कहते हैं कि हे तुलसीदास! दरिद्रतारूपी दोषको जलानेके लिये दावानलके समान और करोड़ों संकटोंको काटनेके लिये कृपाणरूप श्रीरामचन्द्रजीको भजो।'

इतना ही नहीं, वे योग्य पण्डितोंके द्वारा आर्त व्यक्तियोंके लिये सकाम अनुष्ठान भी करवाते थे। मुझे भी उनके निर्देशनमें विविध प्रकारके अनेक सकाम अनुष्ठान करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अन्य देवी-देवताओंके अनुष्ठानके साथ-साथ वे भगवान् श्रीगणेशका भी अनुष्ठान करवाते थे। श्रीगणेशके अनुष्ठानमें वे 'ॐ गं गणपतये नमः' मन्त्रका जप ही विशेषरूपसे करवाते थे। उनकी इस मन्त्रपर बड़ी निष्ठा थी और प्रत्येक विषम परिस्थितिमें वे इसके जपका विधान करते थे। पति-पत्नीके मध्य मनमुटाव, पारिवारिक कलह, फैक्टरीमें हड़ताल, व्यापारमें घाटा, मुकदमेबाजी, सरकारी झंझट, ऋण, भीषण व्याधि आदि सभी लौकिक कष्टों एवं झंझटोंके निवारणके लिये वे इस मन्त्रका जप करवाते थे और भगवान् श्रीगणेशकी कृपासे आर्तजनोंका कष्ट बड़ी सरलतासे निवृत्त भी होता था।

इस मन्त्रके जपकी विधि यह है कि प्रातःकाल स्नान आदिसे शुद्ध होकर पवित्र स्थानमें कुश या ऊनके आसनपर पूर्व या उत्तराभिमुख बैठ जाय और भगवान् श्रीगणेशकी प्रतिमा या मँढ़वाये हुए चित्रपटको अपने सम्मुख विराजमान कर ले। चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे श्रीगणेशका पूजन कर प्रथम दिन संकल्प करे कि 'अमुक कार्यकी सिद्धिके लिये इस मन्त्रका प्रतिदिन इतना जप किया जायगा'। तत्पश्चात् भगवान् गणेशका स्मरण करते हुए एकाग्रचित्तसे जप किया जाय। जपके समय आदिसे अन्ततक शुद्ध घीका दीपक श्रीगणेश-विग्रहकी दाहिनी ओर प्रज्वलित रहे। दीपकके नीचे अक्षत आदि रख दिये जायँ। प्रतिदिन १०८ मालाका जप हो तो सर्वोत्तम है, नहीं तो सुविधानुसार ५५, ३१, ११ मालाका भी जप किया जा सकता है। कार्य-सिद्धितक यह जप चलता रहे। जप व्यक्ति स्वयं भी कर सकता है अथवा सदाचारी सात्त्विक विद्वान् ब्राह्मणद्वारा यथोचित दक्षिणा देकर भी करवा सकता है। जो यज्ञोपवीतधारी न हो, उन्हें 'ॐ' कारको छोड़कर केवल 'गं गणपतये नमः' मन्त्रका जप करना चाहिये। बिना किसी कामनाके भगवान् गणेशकी प्रसन्नताके लिये ही इस मन्त्रकी प्रतिदिन ५, ११, २१ मालाएँ जप करनेसे जपकर्ताका सर्वविध मङ्गल होता है। यह परम मङ्गलकारक मन्त्र है; इसका आश्रय ग्रहण करनेवालोंको भगवान् श्रीगणेशकी कृपा अवश्य प्राप्त होती है।

पारमार्थिक एवं लौकिक मनोरथोंकी पूर्ति करानेवाले कुछ सिद्ध स्तोत्र

नीचे कुछ सिद्ध स्तोत्र दिये जा रहे हैं, जिनका श्रद्धा-भक्तिके साथ अनुष्ठान करनेपर 'पारमार्थिक' और 'भौतिक' लाभ हो सकते हैं। आशा है, श्रद्धालु पाठक इनसे यथोचित लाभ उठायेंगे। ऐसे अनुष्ठानोंके सम्बन्धमें हमारे परमश्रद्धेय श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने एक स्थानपर लिखा है—

"यह सत्य है कि भगवान् अपनी मङ्गलमयी सर्वज्ञता और इच्छासे हमारे लिये जो कुछ भी फल-विधान करते हैं, चाहे वह हमारी सीमित और अदूरदृष्टिके कारण हमें अशुभ या दुःखप्रद ही जान पड़े, वास्तवमें वह परम शुभ और परम मङ्गलकारी ही होता है। इसलिये भगवान्पर और उनकी मङ्गलमयतापर विश्वास करनेवाले भक्त यही चाहते हैं कि उनकी 'मङ्गलमयी' इच्छा ही सदा सर्वत्र अपना काम करती रहे; हमारी कोई भी इच्छा उस मङ्गलमयी इच्छामें कभी बाधक हो ही नहीं। तथापि जो लोग भोग-कामना और भोग-वासनाको छोड़ नहीं सकते और कामना एवं आसक्तिसे अभिभूत होकर अन्याय और असत् मार्गका अवलम्बन करके भोग-सुखकी आशा रखते हैं, उनके लिये तो भगवदाराधन और देवाराधन अवश्य ही सेवन करनेयोग्य है। इसमें लाभ-ही-लाभ है। यदि श्रद्धा और विधि पूरी हो तो—'नवीन प्रारब्ध'का निर्माण होकर मनोरथकी पूर्ति हो जाती है। कदाचित् प्रतिबन्धकरूप प्रारब्ध अत्यन्त प्रबल होनेके कारण मनोरथ-पूर्ति न भी हो तो पुण्यकर्मका अनुष्ठान तो बनता ही है।"

इन स्तोत्रोंके अनुष्ठानके सम्बन्धमें यह निवेदन है कि अनुष्ठानकर्ता भगवान् श्रीगणेशकी प्रतिमा या चित्रपटके सम्मुख पवित्र स्थानमें शुद्ध आसनपर बैठे और यथोपलब्ध उपचारोंसे श्रीगणेशका पूजन करके उनका मङ्गलमय स्मरण करते हुए श्रद्धा-भक्तिके साथ अपनी कामनाके अनुकूल स्तोत्रका कम-से-कम ग्यारह पाठ प्रतिदिन करे; अधिक जितना भी हो उत्तम है। जबतक कामना पूर्ण न हो पाठ बराबर चलता रहे।

अङ्कके आरम्भमें तथा लेखों एवं लीला-कथाओंमें भी स्थान-स्थानपर अनेक स्तुतियाँ आयी हैं और वे सभी फलप्रदायिनी हैं। श्रीगणेशके कुछ मन्त्रोंका भी प्रसङ्गानुरूप उल्लेख हुआ है। श्रीगणेश-सम्बन्धी विभिन्न मन्त्र तथा उनकी अनुष्ठान-विधि, नामोंकी व्याख्यासहित 'श्रीगणेश-सहस्रनाम-स्तोत्र', अन्य सिद्ध-अनुष्ठान, फलप्रद-स्तोत्र आदि फरवरीके अङ्कमें दिये जा रहे हैं। —सम्पादक

(१)

मङ्गल-विधानके लिये*

गणपतिर्विघ्नराजो लम्बतुण्डो गजाननः। द्वैमातुरश्च हेरम्ब एकदन्तो गणाधिपः॥
विनायकश्चारुकर्णः पशुपालो भवात्मजः। द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्॥
विश्वं तस्य भवेद्वश्यं न च विघ्नं भवेत् क्वचित्। (पद्मपु० सृ० ६१। ३१—३३)

'गणपति, विघ्नराज, लम्बतुण्ड, गजानन, द्वैमातुर, हेरम्ब, एकदन्त, गणाधिप, विनायक, चारुकर्ण, पशुपाल और भवात्मज—ये बारह गणेशजीके नाम हैं। जो प्रातःकाल उठकर इनका पाठ करता है, सम्पूर्ण विश्व उनके वशमें हो जाता है तथा उसे कभी विघ्नका सामना नहीं करना पड़ता।'

(२)

मोक्ष-प्राप्तिके लिये

पञ्चश्लोकिगणेशपुराणम्

श्रीविघ्नेशपुराणसारमुदितं व्यासाय धात्रा पुरा
तत्खण्डं प्रथमं महागणपतेश्चोपासनाख्यं यथा।
संहर्तुं त्रिपुरं शिवेन गणपस्यादौ कृतं पूजनं
कर्तुं सृष्टिमिमां स्तुतः स विधिना व्यासेन बुद्ध्याप्तये॥

* 'सुमुखश्चैकदन्तश्च' आदि द्वादशनामात्मक प्रसिद्ध स्तोत्र पृ० ४९८पर देखना चाहिये।
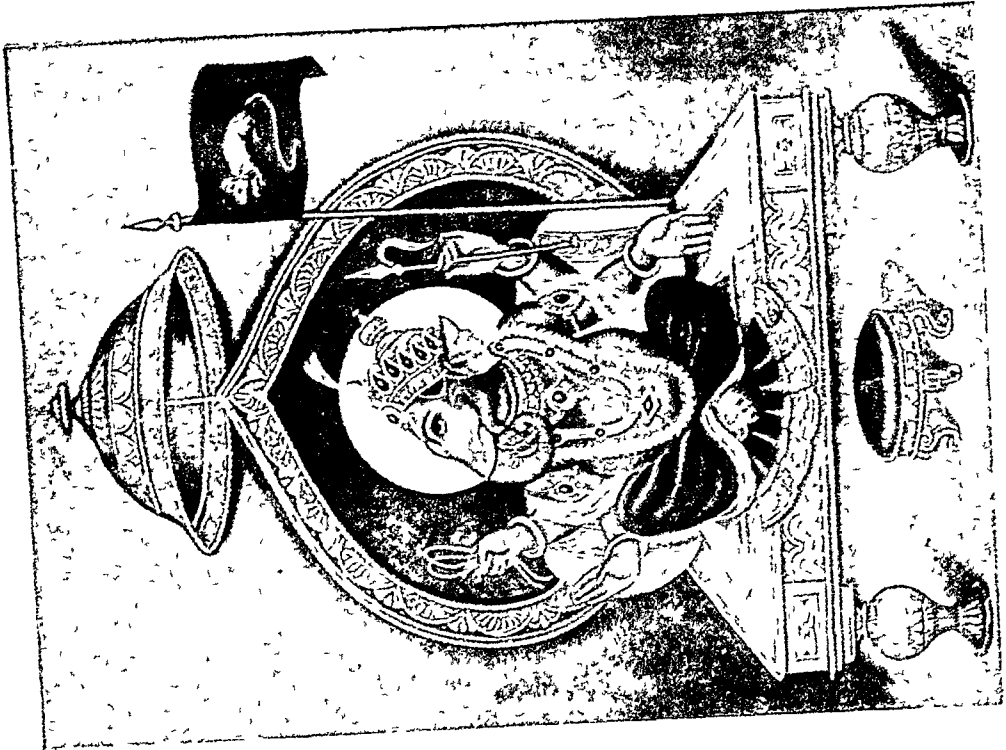
अभयदाता मूषकध्वज [पृष्ठ ४५९
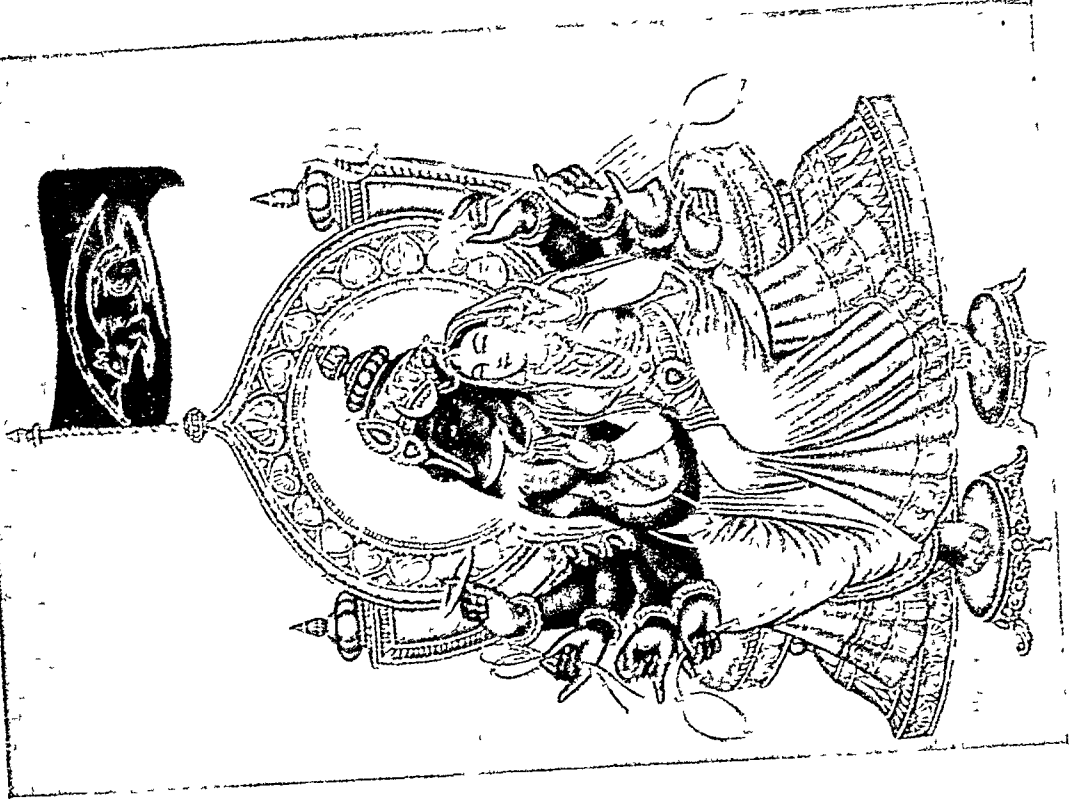
श्रीसिद्धि-गणराज [पृष्ठ ४७२

संकष्ट्याश्च विनायकस्य च मनोः स्थानस्य तीर्थस्य वै
दूर्वाणां महिमेति भक्तिचरितं तत्पार्थिवस्यार्चनम्।
तेभ्यो यैर्यदभीप्सितं गणपतिस्तत्तत्प्रतुष्टो ददौ
ताः सर्वा न समर्थ एव कथितुं ब्रह्मा कुतो मानवः॥
क्रीडाकाण्डमथो वदे कृतयुगे श्वेतच्छविः काश्यपः
सिंहाङ्कः स विनायको दशभुजो भूत्वाथ काशीं ययौ।
हत्वा तत्र नरान्तकं तदनुजं देवान्तकं दानवं
त्रेतायां शिवनन्दनो रसभुजो जातो मयूरध्वजः॥
हत्वा तं कमलासुरं च सगणं सिन्धुं महादैत्यपं
पश्चात् सिद्धिमती सुते कमलजस्तस्मै च ज्ञानं ददौ।
द्वापारे तु गजाननो युगभुजो गौरीसुतः सिन्दुरं
सम्मर्द्य स्वकरेण तं निजमुखे चाखुध्वजो लिप्तवान्॥
गीताया उपदेश एव हि कृतो राज्ञे वरेण्याय वै
तुष्टायाथ च धूम्रकेतुरभिधो विप्रः सधर्मर्धिकः।
अश्वाङ्को द्विभुजो सितो गणपतिर्म्लेच्छान्तकः स्वर्णदः
क्रीडाकाण्डमिदं गणस्य हरिणा प्रोक्तं विधात्रे पुरा॥
एतच्छ्लोकसुपञ्चकं प्रतिदिनं भक्त्या पठेद्यः पुमान्
निर्वाणं परमं व्रजेत् स सकलान् भुक्त्वा सुभोगानपि।

॥ इति श्रीपञ्चश्लोकिगणेशपुराणम् ॥

पूर्वकालमें ब्रह्माजीने व्यासको श्रीविघ्नेश (गणेश)-पुराणका सारतत्त्व बताया था। वह महागणपतिका उपासनासंज्ञक प्रथम खण्ड है। भगवान् शिवने पहले त्रिपुरका संहार करनेके लिये गणपतिका पूजन किया। फिर ब्रह्माजीने इस सृष्टिकी रचना करनेके लिये उनकी विधिवत् स्तुति की। तत्पश्चात् व्यासने बुद्धिकी प्राप्तिके लिये उनका स्तवन किया। संकष्टी देवीकी, गणेशकी, उनके मन्त्रकी, स्थानकी, तीर्थकी और दूर्वाकी महिमा यह भक्तिचरित है। उनके पार्थिव विग्रहका पूजन भी भक्तिचर्या ही है। उन भक्तिचर्या करनेवाले पुरुषोंमेंसे जिन-जिनने जिस-जिस वस्तुको पानेकी इच्छा की, संतुष्ट हुए गणपतिने वह-वह वस्तु उन्हें दी। उन सबका वर्णन करनेमें ब्रह्माजी भी समर्थ नहीं हैं, फिर मनुष्यकी तो बात ही क्या है। अब 'क्रीड़ाकाण्ड'का वर्णन करता हूँ। सत्ययुगमें दस भुजाओंसे युक्त श्वेत कान्तिमान् कश्यपपुत्र सिंहध्वज महोत्कट विनायक काशीमें गये। वहाँ नरान्तक और उसके छोटे भाई देवान्तक नामक दानवको मारकर त्रेतामें वे षड्बाहु शिवनन्दन मयूरध्वजके रूपमें प्रकट हुए। उन्होंने कमलासुरको तथा महादैत्यपति सिन्धुको उसके गणों सहित मार डाला। तत्पश्चात् ब्रह्माजीने सिद्धि और बुद्धि-नामक दो कन्याएँ उन्हें दीं और ज्ञान भी प्रदान किया। द्वापर युगमें गौरीपुत्र गजानन दो भुजाओंसे युक्त हुए। उन्होंने अपने हाथसे सिन्दूरासुरका मर्दन करके उसे अपने मुखपर पोत लिया। उनकी ध्वजामें मूषकका चिह्न था। उन्होंने संतुष्ट राजा वरेण्यको गणेश-गीताका उपदेश किया। फिर वे धूम्रकेतु-नामसे प्रसिद्ध धर्मयुक्त धनवाले ब्राह्मण होंगे। उस समय उनके ध्वजका चिह्न अश्व होगा। उनके दो भुजाएँ होंगी। वे गौरवर्णके गणपति म्लेच्छोंका अन्त करनेवाले और सुवर्णके दाता होंगे। गणपतिके इस 'क्रीड़ाकाण्ड'का वर्णन पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीसे किया था।

जो मनुष्य प्रतिदिन भक्तिभावसे इन पाँच श्लोकोंका पाठ करेगा, वह समस्त उत्तम भोगोंका उपभोग करके अन्तमें परम निर्वाण (मोक्ष) को प्राप्त होगा।

॥ इस प्रकार 'पञ्चश्लोकी गणेशपुराण' पूरा हुआ ॥

(३)

सर्वविध रक्षाके लिये

गणेशन्यास

श्रीगणेशाय नमः ॥ आचम्य प्राणायामं कृत्वा । दक्षिणहस्ते वक्रतुण्डाय नमः । वामहस्ते शूर्पकर्णाय नमः । ओष्ठे विघ्नेशाय नमः । सम्पुटे गजाननाय नमः । दक्षिणपादे लम्बोदराय नमः । वामपादे एकदन्ताय नमः । शिरसि एकदन्ताय नमः । चिबुके ब्रह्मणस्पतये नमः । दक्षिणनासिकायां विनायकाय नमः । वामनासिकायां ज्येष्ठराजाय नमः । दक्षिणनेत्रे विकटाय नमः । वामनेत्रे कपिलाय नमः । दक्षिणकर्णे धरणीधराय नमः । वामकर्णे आशापूरकाय नमः । नाभौ महोदराय नमः । हृदये धूम्रकेतवे नमः । ललाटे मयूरेशाय नमः । दक्षिणबाहौ स्वानन्दवासकारकाय नमः । वामबाहौ सच्चित्सुखधाम्ने नमः ।

॥ इति मुद्गलपुराणे गणेशन्यासः समाप्तः ॥

श्रीगणेशाय नम.—आचमन और प्राणायाम करनेके पश्चात् दाहिने हाथमे 'वक्रतुण्डाय नमः'—इस मन्त्रको बोलकर वक्रतुण्डका न्यास करे । बाये हाथमे 'शूर्पकर्णाय नम.'—इस मन्त्रसे शूर्पकर्णका, ओष्ठमें 'विघ्नेशाय नमः'—इस मन्त्रसे विघ्नेशका, दोनो ओष्ठोके बंद सम्पुटमे 'गजाननाय नमः'—इस मन्त्रसे गजाननका, दाहिने पैरमे 'लम्बोदराय नमः'—इस मन्त्रसे लम्बोदरका और बायें पैरमे 'एकदन्ताय नमः' से एकदन्तका न्यास करे । शिरमे भी इसी मन्त्रसे एकदन्तका, चिबुक (ठोढ़ी) मे 'ब्रह्मणस्पतये नम.'—इस मन्त्रसे ब्रह्मणस्पतिका, दाहिनी नासिकामे 'विनायकाय नमः'—इस मन्त्रसे विनायकका, बायीं नासिकामे 'ज्येष्ठराजाय नमः'—इस मन्त्रसे ज्येष्ठराजका, दाहिने नेत्रमे 'विकटाय नमः'—इस मन्त्रसे विकटका, बायें नेत्रमे 'कपिलाय नमः'—इस मन्त्रसे कपिलका, दाहिने कानमे 'धरणीधराय नमः'—इस मन्त्रसे धरणीधरका, बायें कानमें 'आशापूरकाय नमः'—इस मन्त्रसे आशापूरकका, नाभिमे 'महोदराय नमः'—इस मन्त्रसे महोदरका, हृदयमे 'धूम्रकेतवे नम.'—इस मन्त्रसे धूम्रकेतुका, ललाटमे 'मयूरेशाय नमः'—इस मन्त्रसे मयूरेशका, दाहिनी बाँहमे 'स्वानन्दवासकारकाय नमः'—इस मन्त्रसे स्वानन्दवासकारकका तथा बायीं बाँहमे 'सच्चित्सुखधाम्ने नमः'—इस मन्त्रसे सच्चित् सुखधामका न्यास करे ।

॥ इस प्रकार मुद्गलपुराणमे 'गणेशन्यास' पूरा हुआ ॥

(४)

समस्त कामनाओंकी सिद्धिके लिये

गणेशाष्टक

सर्वे ऊचुः

यतोऽनन्तशक्तेरनन्ताश्च जीवा यतो निर्गुणादप्रमेया गुणास्ते ।
यतो भाति सर्वं त्रिधा भेदभिन्नं सदा तं गणेशं नमामो भजामः ॥
यतश्चाविरासीज्जगत्सर्वमेतत्तथाब्जासनो विश्वगो विश्वगोप्ता ।
तथेन्द्रादयो देवसङ्घा मनुष्याः सदा तं गणेशं नमामो भजामः ॥
यतो वह्निभानूद्भवो भूर्जलं च यतः सागराश्चन्द्रमा व्योम वायुः ।
यतः स्थावरा जङ्गमा वृक्षसङ्घाः सदा तं गणेशं नमामो भजामः ॥
यतो दानवाः किंनरा यक्षसङ्घा यतश्चारणा वारणाः श्वापदाश्च ।
यतः पक्षिकीटा यतो वीरुधश्च सदा तं गणेशं नमामो भजामः ॥

यतो बुद्धिरज्ञाननाशो मुमुक्षोर्यतः सम्पदो भक्तसंतोषिकाः स्युः।
यतो विघ्ननाशो यतः कार्यसिद्धिः सदा तं गणेशं नमामो भजामः॥
यतः पुत्रसम्पद् यतो वाञ्छितार्थो यतोऽभक्तविघ्नास्तथानेकरूपाः।
यतः शोकमोहौ यतः काम एव सदा तं गणेशं नमामो भजामः॥
यतोऽनन्तशक्तिः स शेषो बभूव धराधारणेऽनेकरूपे च शक्तः।
यतोऽनेकधा स्वर्गलोका हि नाना सदा तं गणेशं नमामो भजामः॥
यतो वेदवाचो विकुण्ठा मनोभिः सदा नेति नेतीति यत्ता गृणन्ति।
परब्रह्मरूपं चिदानन्दभूतं सदा तं गणेशं नमामो भजामः॥

श्रीगणेश उवाच

पुनरूचे गणाधीशः स्तोत्रमेतत्पठेन्नरः। त्रिसंध्यं त्रिदिनं तस्य सर्वं कार्यं भविष्यति॥
यो जपेदष्टदिवसं श्लोकाष्टकमिदं शुभम्। अष्टवारं चतुर्थ्यां तु सोऽष्टसिद्धीरवाप्नुयात्॥
यः पठेन्मासमात्रं तु दशवारं दिने दिने। स मोचयेद्बन्धगतं राजवध्यं न संशयः॥
विद्याकामो लभेद्विद्यां पुत्रार्थी पुत्रमाप्नुयात्। वाञ्छिताँल्लभते सर्वानेकविंशतिवारतः॥
यो जपेत् परया भक्त्या गजाननपरो नरः। एवमुक्त्वा ततो देवश्चान्तर्धानं गतः प्रभुः॥

॥ इति श्रीगणेशपुराणे श्रीगणेशाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

सब भक्तोंने कहा—जिन अनन्त शक्तिवाले परमेश्वरसे अनन्त जीव प्रकट हुए हैं, जिन निर्गुण परमात्मासे अप्रमेय (असंख्य) गुणोंकी उत्पत्ति हुई है, सात्त्विक, राजस और तामस—इन तीन भेदोंवाला यह सम्पूर्ण जगत् जिससे प्रकट एवं भासित हो रहा है, उन गणेशका हम नमन एवं भजन करते हैं। जिनसे इस समस्त जगत्का प्रादुर्भाव हुआ है, जिनसे कमलासन ब्रह्मा, विश्वव्यापी विश्वरक्षक विष्णु, इन्द्र आदि देव-समुदाय और मनुष्य प्रकट हुए हैं, उन गणेशका हम सदा ही नमन एवं भजन करते हैं। जिनसे अग्नि और सूर्यका प्राकट्य हुआ; पृथ्वी, जल, समुद्र, चन्द्रमा, आकाश और वायुका प्रादुर्भाव हुआ तथा जिससे स्थावर-जङ्गम और वृक्षसमूह उत्पन्न हुए हैं, उन गणेशका हम नमन एवं भजन करते हैं। जिनसे दानव, किंनर और यक्षसमूह प्रकट हुए, जिनसे हाथी और हिंसक जीव उत्पन्न हुए तथा जिनसे पक्षियों, कीटों और लता-बेलोंका प्रादुर्भाव हुआ, उन गणेशका हम सदा ही नमन और भजन करते हैं। जिनसे मुमुक्षुको बुद्धि प्राप्त होती है और अज्ञानका नाश होता है, जिनसे भक्तोंको संतोष देनेवाली सम्पदाएँ प्राप्त होती हैं तथा जिनसे विघ्नोंका नाश और समस्त कार्योंकी सिद्धि होती है, उन गणेशका हम सदा नमन एवं भजन करते हैं। जिनसे पुत्र-सम्पत्ति सुलभ होती है; जिनसे मनोवाञ्छित अर्थ सिद्ध होता है, जिनसे अभक्तोंको अनेक प्रकारके विघ्न प्राप्त होते हैं तथा जिनसे शोक, मोह और काम प्राप्त होते हैं, उन गणेशका हम सदा नमन एवं भजन करते हैं। जिनसे अनन्त शक्तिसम्पन्न सुप्रसिद्ध शेषनाग प्रकट हुए; जो इस पृथ्वीको धारण करने एवं अनेक रूप ग्रहण करनेमें समर्थ हैं; जिनसे अनेक प्रकारके अनेक स्वर्गलोक प्रकट हुए हैं, उन गणेशका हम सदा ही नमन एवं भजन करते हैं। जिनके विषयमें वेदवाणी कुण्ठित है; जहाँ मनकी भी पहुँच नहीं है तथा श्रुति सदा सावधान रहकर 'नेति-नेति'—इन शब्दोंद्वारा जिनका वर्णन करती है; जो सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म हैं, उन गणेशका हम सदा ही नमन एवं भजन करते हैं।

श्रीगणेशजी फिर बोले—जो मनुष्य तीन दिनोंतक तीनों संध्याओंके समय इस स्तोत्रका पाठ करेगा, उसके सारे कार्य सिद्ध हो जायँगे। जो आठ दिनोंतक इन आठ श्लोकोंका एक बार पाठ करेगा और चतुर्थी तिथिको आठ बार इस स्तोत्रको पढ़ेगा, वह आठों सिद्धियोंको प्राप्त कर लेगा। जो एक मासतक प्रतिदिन दस-दस बार इस स्तोत्रका पाठ करेगा, वह कारागारमें बँधे हुए तथा राजाके द्वारा वध-दण्ड पानेवाले कैदीको भी छुड़ा लेगा, इसमें संशय नहीं है। इस स्तोत्रका इक्कीस बार पाठ करनेसे विद्यार्थी विद्याको, पुत्रार्थी पुत्रको तथा कामार्थी समस्त मनो-

वाञ्छित कामनाओंको प्राप्त कर लेता है । जो मनुष्य पराभक्तिसे इस स्तोत्रका जप करता है, वह गजाननका परम भक्त हो जाता है—ऐसा कहकर भगवान् गणेश वहीं अन्तर्धान हो गये ।

॥ इस प्रकार श्रीगणेशपुराणमें 'श्रीगणेशाष्टक' पूरा हुआ ॥

(५)

विघ्ननाशके लिये

श्रीराधिकोवाच

परं धाम परं ब्रह्म परेशं परमीश्वरम् । विघ्ननिघ्नकरं शान्तं पुष्टं कान्तमनन्तकम् ॥
सुरासुरेन्द्रैः सिद्धेन्द्रैः स्तुतं स्तौमि परात्परम् । सुरपद्मदिनेशं च गणेशं मङ्गलायनम् ॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं विघ्नशोकहरं परम् । यः पठेत् प्रातरुत्थाय सर्वविघ्नात् प्रमुच्यते ॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड १२१ । १०३-१०५)

श्रीराधिकाने कहा—जो परम धाम, परब्रह्म, परेश, परम ईश्वर, विघ्नोंके विनाशक, शान्त, पुष्ट, मनोहर और अनन्त हैं; प्रधान-प्रधान सुर, असुर और सिद्ध जिनका स्तवन करते हैं; जो देवरूपी कमलके लिये सूर्य और मङ्गलोंके आश्रय-स्थान हैं, उन परात्पर गणेशकी मैं स्तुति करती हूँ ।

यह उत्तम स्तोत्र महान् पुण्यमय तथा विघ्न और शोकको हरनेवाला है । जो प्रातःकाल उठकर इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह सम्पूर्ण विघ्नोंसे विमुक्त हो जाता है ।

(६)

संकटनाशके लिये

संकष्टनाशनस्तोत्रम्

नारद उवाच

प्रणम्य शिरसा देवं गौरीपुत्रं विनायकम् । भक्तावासं स्मरेन्नित्यमायुःकामार्थसिद्धये ॥
प्रथमं वक्रतुण्डं च एकदन्तं द्वितीयकम् । तृतीयं कृष्णपिङ्गाक्षं गजवक्त्रं चतुर्थकम् ॥
लम्बोदरं पञ्चमं च षष्ठं विकटमेव च । सप्तमं विघ्नराजेन्द्रं धूम्रवर्णं तथाष्टमम् ॥
नवमं भालचन्द्रं च दशमं तु विनायकम् । एकादशं गणपतिं द्वादशं तु गजाननम् ॥
द्वादशैतानि नामानि त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः । न च विघ्नभयं तस्य सर्वसिद्धिकरं परम् ॥
विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम् । पुत्रार्थी लभते पुत्रान् मोक्षार्थी लभते गतिम् ॥
जपेद्गणपतिस्तोत्रं षड्भिर्मासैः फलं लभेत् । संवत्सरेण सिद्धिं च लभते नात्र संशयः ॥
अष्टभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च लिखित्वा यः समर्पयेत् । तस्य विद्या भवेत् सर्वा गणेशस्य प्रसादतः ॥

इति श्रीनारदपुराणे संकष्टनाशनं नाम गणेशस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

नारदजी कहते हैं—पहले मस्तक झुकाकर गौरीपुत्र विनायकदेवको प्रणाम करके प्रतिदिन आयु, अभीष्ट मनोरथ और धन आदि प्रयोजनोंकी सिद्धिके लिये भक्तावास गणेशजीका स्मरण करे; पहला नाम 'वक्रतुण्ड' है, दूसरा 'एकदन्त' है, तीसरा 'कृष्णपिङ्गाक्ष' है, चौथा 'गजवक्त्र' है, पाँचवाँ 'लम्बोदर', छठा 'विकट', सातवाँ 'विघ्नराजेन्द्र', आठवाँ 'धूम्रवर्ण', नवाँ 'भालचन्द्र', दसवाँ 'विनायक', ग्यारहवाँ 'गणपति' और बारहवाँ नाम 'गजानन' है । जो मनुष्य सवेरे, दोपहर और सायं—तीनों संध्याओंके समय प्रतिदिन इन बारह नामोंका पाठ करता है, उसे विघ्नका भय नहीं होता । यह नाम-स्मरण उसके लिये सभी सिद्धियोंका उत्तम साधक है । इन नामोंके जपसे विद्यार्थी विद्या, धनार्थी धन, पुत्रार्थी अनेक पुत्र और मोक्षार्थी मोक्ष पाता है । इस गणपतिस्तोत्रका नित्य जप करे । जपकर्ताको छः महीनेमें अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है । एक वर्षतक जप करनेसे मनुष्य सिद्धिको प्राप्त कर लेता है, इसमें संशय नहीं है ।

जो इस स्तोत्रको लिखकर आठ ब्राह्मणोंको अर्पित करता है, उसे गणेशजीकी कृपासे सम्पूर्ण विद्याकी प्राप्ति होती है ।

॥ इस प्रकार श्रीनारदपुराणमें 'संकष्टनाशन'-नामक गणेशस्तोत्र पूरा हुआ ॥

(७)

चिन्ता एवं रोग-निवारणके लिये

मयूरेशस्तोत्रम्

ब्रह्मोवाच

पुराणपुरुषं देवं नानाक्रीडाकरं मुदा। मायाविनं दुर्विभाव्यं मयूरेशं नमाम्यहम् ॥
परात्परं चिदानन्दं निर्विकारं हृदि स्थितम्। गुणातीतं गुणमयं मयूरेशं नमाम्यहम् ॥
सृजन्तं पालयन्तं च संहरन्तं निजेच्छया। सर्वविघ्नहरं देवं मयूरेशं नमाम्यहम् ॥
नानादैत्यनिहन्तारं नानारूपाणि बिभ्रतम्। नानायुधधरं भक्त्या मयूरेशं नमाम्यहम् ॥
इन्द्रादिदेवतावृन्दैरभिष्टुतमहर्निशम्। सदसद्व्यक्तमव्यक्तं मयूरेशं नमाम्यहम् ॥
सर्वशक्तिमयं देवं सर्वरूपधरं विभुम्। सर्वविद्याप्रवक्तारं मयूरेशं नमाम्यहम् ॥
पार्वतीनन्दनं शम्भोरानन्दपरिवर्धनम्। भक्तानन्दकरं नित्यं मयूरेशं नमाम्यहम् ॥
मुनिध्येयं मुनिनुतं मुनिकामप्रपूरकम्। समष्टिव्यष्टिरूपं त्वां मयूरेशं नमाम्यहम् ॥
सर्वाज्ञाननिहन्तारं सर्वज्ञानकरं शुचिम्। सत्यज्ञानमयं सत्यं मयूरेशं नमाम्यहम् ॥
अनेककोटिब्रह्माण्डनायकं जगदीश्वरम्। अनन्तविभवं विष्णुं मयूरेशं नमाम्यहम् ॥

मयूरेश उवाच

इदं ब्रह्मकरं स्तोत्रं सर्वपापप्रनाशनम्। सर्वकामप्रदं नृणां सर्वोपद्रवनाशनम् ॥
कारागृहगतानां च मोचनं दिनसप्तकात्। आधिव्याधिहरं चैव भुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम् ॥

॥ इति मयूरेशस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

ब्रह्माजी बोले—जो पुराणपुरुष हैं और प्रसन्नतापूर्वक नाना प्रकारकी क्रीडाएँ करते हैं; जो मायाके स्वामी हैं तथा जिनका स्वरूप दुर्विभाव्य (अचिन्त्य) है, उन मयूरेश गणेशको मैं प्रणाम करता हूँ। जो परात्पर, चिदानन्दमय, निर्विकार, सबके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित, गुणातीत एवं गुणमय हैं, उन मयूरेशको मैं नमस्कार करता हूँ। जो स्वेच्छासे ही संसारकी सृष्टि, पालन और संहार करते हैं, उन सर्वविघ्नहारी देवता मयूरेशको मैं प्रणाम करता हूँ। जो अनेकानेक दैत्योंके प्राणनाशक हैं और नाना प्रकारके रूप धारण करते हैं, उन नाना अस्त्र-शस्त्रधारी मयूरेशको मैं भक्तिभावसे नमस्कार करता हूँ। इन्द्र आदि देवताओंका समुदाय दिन-रात जिनका स्तवन करता है तथा जो सत्, असत्, व्यक्त और अव्यक्तरूप हैं, उन मयूरेशको मैं प्रणाम करता हूँ। जो सर्वशक्तिमय, सर्वरूपधारी और सम्पूर्ण विद्याओंके प्रवक्ता हैं, उन भगवान् मयूरेशको मैं प्रणाम करता हूँ। जो पार्वतीजीको पुत्ररूपसे आनन्द प्रदान करते और भगवान् शंकरका भी आनन्द बढ़ाते हैं, उन भक्तानन्दवर्धन मयूरेशको मैं नित्य नमस्कार करता हूँ। मुनि जिनका ध्यान करते, मुनि जिनके गुण गाते तथा जो मुनियोंकी कामना पूर्ण करते हैं, उन समष्टि-व्यष्टिरूप मयूरेशको मैं प्रणाम करता हूँ। जो समस्त वस्तुविषयक अज्ञानके निवारक, सम्पूर्ण ज्ञानके उद्भावक, पवित्र, सत्य ज्ञानस्वरूप तथा सत्यनामधारी हैं, उन मयूरेशको मैं नमस्कार करता हूँ। जो अनेक कोटि ब्रह्माण्डके नायक, जगदीश्वर, अनन्त वैभव-सम्पन्न तथा सर्वव्यापी विष्णुरूप हैं, उन मयूरेशको मैं प्रणाम करता हूँ।

मयूरेशने कहा—यह स्तोत्र ब्रह्मभावकी प्राप्ति करानेवाला और समस्त पापोंका नाशक है। मनुष्योंको सम्पूर्ण मनोवाञ्छित वस्तु देनेवाला तथा सारे उपद्रवोंका शमन करनेवाला है। सात दिन इसका पाठ किया जाय तो कारागारमें पड़े हुए मनुष्योंको भी छुड़ा लाता है। यह शुभ स्तोत्र आधि (मानसिक चिन्ता) तथा व्याधि (शरीरगत रोग)को भी हर लेता है और भोग एवं मोक्ष प्रदान करता है।

॥ इस प्रकार 'मयूरेशस्तोत्र' पूरा हुआ ॥

(८)

पुत्रकी प्राप्तिके लिये

संतानगणपतिस्तोत्रम्

नमोऽस्तु गणनाथाय सिद्धिबुद्धियुताय च । सर्वप्रदाय देवाय पुत्रवृद्धिप्रदाय च ॥
गुरूदराय गुरवे गोप्त्रे गुह्यासिताय ते । गोप्याय गोपिताशेषभुवनाय चिदात्मने ॥
विश्वमूलाय भव्याय विश्वसृष्टिकराय ते । नमो नमस्ते सत्याय सत्यपूर्णाय शुण्डिने ॥
एकदन्ताय शुद्धाय सुमुखाय नमो नमः । प्रपन्नजनपालाय प्रणतार्तिविनाशिने ॥
शरणं भव देवेश संततिं सुदृढां कुरु । भविष्यन्ति च ये पुत्रा मत्कुले गणनायक ॥
ते सर्वे तव पूजार्थं निरताः स्युर्वरो मतः । पुत्रप्रदमिदं स्तोत्रं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥

॥ इति संतानगणपतिस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

सिद्धि-बुद्धिसहित उन गणनाथको नमस्कार है, जो पुत्रवृद्धि प्रदान करनेवाले तथा सब कुछ देनेवाले देवता हैं । जो भारी पेटवाले (लम्बोदर), गुरु (ज्ञानदाता), गोप्ता (रक्षक), गुह्य (गूढस्वरूप) तथा सब ओरसे गौर हैं; जिनका स्वरूप और तत्त्व गोपनीय है तथा जो समस्त भुवनोंके रक्षक हैं, उन चिदात्मा आप गणपतिको नमस्कार है । जो विश्व के मूल कारण, कल्याणस्वरूप, संसारकी सृष्टि करनेवाले, सत्यरूप, सत्यपूर्ण तथा शुण्डधारी हैं, उन आप गणेश्वरको बारंबार नमस्कार है । जिनके एक दाँत और सुन्दर मुख है; जो शरणागत भक्तजनोंके रक्षक तथा प्रणतजनोंकी पीड़ाका नाश करनेवाले हैं, उन शुद्धस्वरूप आप गणपतिको बारंबार नमस्कार है । देवेश्वर ! आप मेरे लिये शरणदाता हों । मेरी संतान-परम्पराको सुदृढ करें । गणनायक ! मेरे कुलमें जो पुत्र हों, वे सब आपकी पूजाके लिये सदा तत्पर हों—यह वर प्राप्त करना मुझे इष्ट है । यह पुत्रप्रदायक स्तोत्र समस्त सिद्धियोंको देनेवाला है ।

॥ इस प्रकार 'संतानगणपतिस्तोत्र' पूरा हुआ ॥

(९)

श्री एवं पुत्रकी प्राप्तिके लिये

श्रीगणाधिपस्तोत्रम्

सरागिलोकदुर्लभं विरागिलोकपूजितं सुरासुरैर्नमस्कृतं जरादिमृत्युनाशकम् ।
गिरा गुरुं श्रिया हरिं जयन्ति यत्पदार्चका नमामि तं गणाधिपं कृपापयःपयोनिधिम् ॥
गिरीन्द्रजामुखाम्बुजप्रमोददानभास्करं करीन्द्रवक्त्रमानताघसंघवारणोद्यतम् ।
सरीसृपेशबद्धकुक्षिमाश्रयामि संततं शरीरकान्तिनिर्जिताब्जबन्धुबालसंततिम् ॥
शुकादिमौनिवन्दितं गकारवाच्यमक्षरं प्रकाममिष्टदायिनं सकामनम्रपङ्क्तये ।
चकासतं चतुर्भुजैर्विकासिपद्मपूजितं प्रकाशितात्मतत्त्वकं नमाम्यहं गणाधिपम् ॥
नराधिपत्वदायकं स्वरादिलोकदायकं जरादिरोगवारकं निराकृतासुरव्रजम् ।
कराम्बुजैर्धरन्सृणीन् विकारशून्यमानसैर्हृदा सदा विभावितं मुदा नमामि विघ्नपम् ॥

श्रमापनोदनक्षमं समाहितान्तरात्मना समाधिभिः सदार्चितं क्षमानिधिं गणाधिपम् ।
रमाधवादिपूजितं यमान्तकात्मसम्भवं शमादिषड्गुणप्रदं नमामि तं विभूतये ॥
गणाधिपस्य पञ्चकं नृणामभीष्टदायकं प्रणामपूर्वकं जनाः पठन्ति ये मुदायुताः ।
भवन्ति ते विदाम्पुरः प्रगीतवैभवाः जनाश्चिरायुषोऽधिकश्रियः सुसूनवो न संशयः ॥

॥ इति श्रीमच्छंकराचार्यकृतं गणाधिपस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

जो विषयासक्त लोगोंके लिये दुर्लभ, विरक्त जनोंसे पूजित, देवताओं और असुरोंसे वन्दित तथा जरा आदि मृत्युके नाशक हैं; जिनके चरणारविन्दोंकी अर्चना करनेवाले भक्त अपनी वाणीद्वारा बृहस्पतिको और लक्ष्मीद्वारा श्रीविष्णुको भी जीत लेते हैं, उन दयासागर गणाधिपतिको मैं प्रणाम करता हूँ । जो गिरिराजनन्दिनी उमाके मुखारविन्दको प्रमोद प्रदान करनेके लिये सूर्यरूप हैं; जिनका मुख गजराजके समान है; जो प्रणतजनोंकी पापराशिका नाश करनेके लिये उद्यत रहते हैं; जिनकी कुक्षि (उदर) नागराज शेषसे आवेष्टित है तथा जो अपने शरीरकी कान्तिसे बालसूर्यकी किरणावलीको पराजित कर देते हैं, उन गणेशजीकी मैं सदा शरण लेता हूँ । शुक आदि मौनावलम्बी महात्मा जिनकी वन्दना करते हैं; जो गकारके वाच्यार्थ, अविनाशी तथा सकामभाव लेकर चरणोंमें प्रणत होनेवाले भक्त-समूहोंके लिये मनचाही अभीष्ट वस्तुको देनेवाले हैं; चार भुजाएँ जिनकी शोभा बढ़ाती हैं; जो प्रफुल्ल कमलसे पूजित होते हैं और आत्मतत्त्वके प्रकाशक हैं, उन गणाधिपतिको मैं नमस्कार करता हूँ । जो नरेशत्व प्रदान करनेवाले, स्वर्गादि लोकोंके दाता, जरा आदि रोगोंका निवारण करनेवाले तथा असुर-समुदायका संहार करनेवाले हैं; जो अपने करारविन्दोंद्वारा अङ्कुश धारण करते हैं और निर्विकार चित्तवाले उपासक जिनका सदा ही मनके द्वारा ध्यान करते हैं, उन विघ्नपतिको मैं सानन्द प्रणाम करता हूँ । जो सब प्रकारके श्रम या पीड़ाका निवारण करनेमें समर्थ हैं; एकाग्रचित्तवाले योगीके द्वारा सदा समाधिसे पूजित हैं; क्षमाके सागर और गणोंके अधिपति हैं; लक्ष्मीपति विष्णु आदि देवता जिनकी पूजा करते हैं; जो मृत्युंजयके आत्मज हैं तथा शम आदि छः गुणोंके दाता हैं, उन गणेशको मैं ऐश्वर्यप्राप्तिके लिये नमस्कार करता हूँ । यह 'गणाधिपपञ्चकस्तोत्र' मनुष्योंको अभीष्ट वस्तु प्रदान करनेवाला है । जो लोग प्रणामपूर्वक प्रसन्नताके साथ इसका पाठ करते हैं, वे विद्वानोंके समक्ष अपने वैभवके लिये प्रशंसित होते हैं तथा दीर्घायु, अधिक श्री-सम्पत्तिसे सम्पन्न तथा सुन्दर पुत्रवाले होते हैं, इसमें संशय नहीं है ।

॥ इस प्रकार श्रीशंकराचार्यद्वारा विरचित 'गणाधिपस्तोत्र' पूरा हुआ ॥

(१०)

लक्ष्मीप्राप्तिके लिये

ॐ नमो विघ्नराजाय सर्वसौख्यप्रदायिने । दुष्टारिष्टविनाशाय पराय परमात्मने ॥
लम्बोदरं महावीर्यं नागयज्ञोपशोभितम् । अर्धचन्द्रधरं देवं विघ्नव्यूहविनाशनम् ॥
ॐ ह्राँ ह्रीं ह्रूँ ह्रैं ह्रौं ह्रः हेरम्बाय नमो नमः । सर्वसिद्धिप्रदोऽसि त्वं सिद्धिबुद्धिप्रदो भव ॥
चिन्तितार्थप्रदस्त्वं हि सततं मोदकप्रियः । सिन्दूरारुणवस्त्रैश्च पूजितो वरदायकः ॥
इदं गणपतिस्तोत्रं यः पठेद् भक्तिमान् नरः । तस्य देहं च गेहं च स्वयं लक्ष्मीर्न मुञ्चति ॥

सम्पूर्ण सौख्य प्रदान करनेवाले सच्चिदानन्दस्वरूप विघ्नराज गणेशको नमस्कार है । जो दुष्ट अरिष्ट-ग्रहोंका नाश करनेवाले परात्पर परमात्मा हैं, उन गणपतिको नमस्कार है । जो महापराक्रमी, लम्बोदर, सर्पमय यज्ञोपवीतसे सुशोभित, अर्धचन्द्रधारी और विघ्न-समूहका विनाश करनेवाले हैं, उन गणपतिदेवकी मैं वन्दना करता हूँ । ॐ ह्राँ ह्रीं ह्रूँ ह्रैं ह्रौं ह्रः हेरम्बको नमस्कार है । भगवन् ! आप सब सिद्धियोंके दाता हैं; आप हमारे लिये

सिद्धि-बुद्धिदायक हो। आपको सदा ही मोदक (लड्डू) प्रिय है। आप मनके द्वारा चिन्तित अर्थको देनेवाले हैं। सिन्दूर और लाल वस्त्रसे पूजित होकर आप सदा वर प्रदान करते हैं। जो मनुष्य भक्तिभावसे युक्त हो इस गणपति-स्तोत्रका पाठ करता है, स्वयं लक्ष्मी उसके देह-गेहको नहीं छोड़ती।

(११)

परिवारमें पारस्परिक प्रेम-प्राप्तिके लिये

(गणपतिस्तोत्रम्)

सुवर्णवर्णसुन्दरं सितैकदन्तबन्धुरं गृहीतपाशकाङ्कुशं वरप्रदाभयप्रदम्।
चतुर्भुजं त्रिलोचनं भुजङ्गमोपवीतिनं प्रफुल्लवारिजासनं भजामि सिन्धुराननम्॥
किरीटहारकुण्डलं प्रदीप्तबाहुभूषणं प्रचण्डरत्नकङ्कणं प्रशोभिताङ्घ्रियष्टिकम्।
प्रभातसूर्यसुन्दराम्बरद्वयप्रधारिणं सरत्नहेमनूपुरप्रशोभिताङ्घ्रिपङ्कजम्॥
सुवर्णदण्डमण्डितप्रचण्डचारुचामरं गृहप्रदेन्दुसुन्दरं युगक्षणप्रमोदितम्।
कवीन्द्रचित्तरञ्जकं महाविपत्तिभञ्जकं षडक्षरस्वरूपिणं भजे गजेन्द्ररूपिणम्॥
विरिञ्चिविष्णुवन्दितं विरूपलोचनस्तुतं गिरीशदर्शनेच्छया समर्पितं पराम्बया।
निरन्तरं सुरासुरैः सपुत्रवामलोचनैः महामखेष्टकर्मसु स्मृतं भजामि तुन्दिलम्॥
मदौघलुब्धचञ्चलालिमञ्जुगुञ्जितारवं प्रबुद्धचित्तरञ्जकं प्रमोदकर्णचालकम्।
अनन्यभक्तिमानवं प्रचण्डमुक्तिदायकं नमामि नित्यमादरेण वक्रतुण्डनायकम्॥
दारिद्र्यविद्रावणमाशु कामदं स्तोत्रं पठेदेतदजस्रमादरात्।
पुत्री कलत्रस्वजनेषु मैत्री पुमान् भवेदेकवरप्रसादात्॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं गणपतिस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

जो सुवर्णके समान गौरवर्णसे सुन्दर प्रतीत होते हैं, एक ही श्वेत दन्तके द्वारा मनोहर जान पड़ते हैं; जिन्होंने हाथोंमें पाश और अङ्कुश ले रखे हैं, जो वर तथा अभय प्रदान करनेवाले हैं; जिनके चार भुजाएँ और तीन नेत्र हैं; जो सर्पमय यज्ञोपवीत धारण करते हैं और प्रफुल्ल कमलके आसनपर बैठते हैं, उन गजाननका मैं भजन करता हूँ। जो किरीट, हार और कुण्डलके साथ उद्दीप्त बाहुभूषण धारण करते हैं; चमकीले रत्नोंका कंगन पहनते हैं, जिनके दण्डोपम चरण अत्यन्त शोभाशाली हैं जो प्रभातकालके सूर्यके समान सुन्दर और लाल दो वस्त्र धारण करते हैं तथा जिनके युगल चरणारविन्द रत्नजटित सुवर्ण निर्मित नूपुरोंसे सुशोभित हैं, उन गणेशजीका मैं भजन करता हूँ। जिनका विशाल एवं मनोहर चँवर सुवर्णमय दण्डसे मण्डित है; जो सकाम भक्तोंको गृह-सुख प्रदान करनेवाले एवं चन्द्रमाके समान सुन्दर हैं; युगोंमें क्षणका आनन्द लेनेवाले हैं, जिनसे कवीश्वरोंके चित्तका रञ्जन होता है, जो बड़ी-बड़ी विपत्तियोंका भञ्जन करनेवाले और षडक्षर मन्त्रस्वरूप हैं, उन गजराजरूपधारी गणेशका मैं भजन करता हूँ। ब्रह्मा और विष्णु जिनकी वन्दना तथा विरूपलोचन शिव जिनकी स्तुति करते हैं; जो गिरीश (शिव)के दर्शनकी इच्छासे परा अम्बा पार्वतीद्वारा समर्पित हैं, देवता और असुर अपने पुत्रों और वामलोचना पत्नियोंके साथ बड़े बड़े यज्ञों तथा अभीष्ट कर्मोंमें निरन्तर जिनका स्मरण करते हैं, उन तुन्दिल देवता गणेशका मैं भजन करता हूँ। जिनकी मदराशिपर लुभाये हुए चञ्चल भ्रमर मञ्जु गुञ्जारव करते रहते हैं; जो ज्ञानीजनोंके चित्तको आनन्द प्रदान करनेवाले हैं, अपने कानोंको सानन्द हिलाया करते हैं और अनन्य भक्ति रखनेवाले मनुष्योंको उत्कृष्ट मुक्ति देनेवाले हैं, उन वक्रतुण्ड गणनायकका मैं प्रतिदिन आदरपूर्वक भजन करता हूँ। यह स्तोत्र दरिद्रताको शीघ्र भगानेवाला

और अभीष्ट वस्तुको देनेवाला है। जो निरन्तर आदरपूर्वक इसका पाठ करेगा, वह मनुष्य एकेश्वर गणेशकी कृपासे पुत्रवान् तथा स्त्री एवं स्वजनोंके प्रति मित्रभावसे युक्त होगा।

॥ इस प्रकार श्रीशंकराचार्यद्वारा विरचित 'गणपतिस्तोत्र' पूरा हुआ ॥

(१२)

पुरुषार्थचतुष्टयकी प्राप्तिके लिये

गजाननस्तोत्रम्

देवर्षय ऊचुः

विदेहरूपं भवबन्धहारं सदा स्वनिष्ठं स्वसुखप्रदं तम्।
अमेयसांख्येन च लक्ष्यमीशं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
मुनीन्द्रवन्द्यं विधिबोधहीनं सुबुद्धिदं बुद्धिधरं प्रशान्तम्।
विकारहीनं सकलाङ्कं वै गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
अमेयरूपं हृदि संस्थितं तं ब्रह्माहमेकं भ्रमनाशकारम्।
अनादिमध्यान्तमपाररूपं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
जगत्प्रमाणं जगदीशमेवमगम्यमाद्यं जगदादिहीनम्।
अनात्मनां मोहप्रदं पुराणं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
न पृथ्विरूपं न जलप्रकाशं न तेजसंस्थं न समीरसंस्थम्।
न खे गतं पञ्चविभूतिहीनं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
न विश्वगं तैजसगं न प्राज्ञं समष्टिव्यष्टिस्थमनन्तगं तम्।
गुणैर्विहीनं परमार्थभूतं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
गुणेशगं नैव च बिन्दुसंस्थं न देहिनं बोधमयं न ढुण्ढिम्।
सुयोगहीनं प्रवदन्ति तत्स्थं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
अनागतं ग्रैवगतं गणेशं कथं तदाकारमयं वदामः।
तथापि सर्वं प्रतिदेहसंस्थं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
यदि त्वया नाथ धृतं न किंचित्तदा कथं सर्वमिदं भजामि।
अतो महात्मानमचिन्त्यमेवं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
सुसिद्धिदं भक्तजनस्य देवं सकामिकानामिह सौख्यदं तम्।
अकामिकानां भवबन्धहारं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
सुरेन्द्रसेव्यं ह्यसुरैः सुसेव्यं समानभावेन विराजयन्तम्।
अनन्तबाहुं मुषकध्वजं तं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
सदा सुखानन्दमयं जले च समुद्रजे इक्षुरसे निवासम्।
द्वन्द्वस्य यानेन च नाशरूपं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
चतुःपदार्था विविधप्रकाशास्त एव हस्ताः सचतुर्भुजं तम्।
अनाथनाथं च महोदरं वै गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
महाखुमारूढमकालकालं विदेहयोगेन च लक्ष्यमानम्।
अमायिनं मायिकमोहदं तं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥

रविस्वरूपं रविभासहीनं हरिस्वरूपं हरिबोधहीनम्।
शिवस्वरूपं शिवभासनाशं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
महेश्वरीस्थं च सुशक्तिहीनं प्रभुं परेशं परवन्द्यमेवम्।
अचालकं चालकबीजरूपं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
शिवादिदेवैश्च खगैश्च वन्द्यं नरैर्लतावृक्षपशुप्रमुख्यैः।
चराचरैर्लोकविहीनमेकं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
मनोवचोहीनतया सुसंस्थं निवृत्तिमात्रं ह्यजमव्ययं तम्।
तथापि देवं पुरसंस्थितं तं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
वयं सुधन्या गणपस्तवेन तथैव मर्त्यार्चनतस्तथैव।
गणेशरूपाय कृतास्त्वया तं गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
गजास्यबीजं प्रवदन्ति वेदास्तदेव चिह्नेन च योगिनस्त्वाम्।
गच्छन्ति तेनैव गजानन त्वां गजाननं भक्तियुतं भजामः॥
पुराणवेदाः शिवविष्णुकाद्याः शुकादयो ये गणपस्तवे वै।
विकुण्ठिताः किं च वयं स्तुवीमो गजाननं भक्तियुतं भजामः॥

देवर्षि बोले—जो विदेह (देहाभिमानशून्य) रूपसे स्थित हैं; भवबन्धनका नाश करनेवाले हैं; सदा स्वानन्दरूपमें स्थित तथा आत्मानन्द प्रदान करनेवाले हैं, उन अमेय सांख्य ज्ञानके लक्ष्यभूत भगवान् गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। जो मुनीश्वरोंके लिये वन्दनीय, विधि-बोधसे रहित, उत्तम बुद्धिके दाता, बुद्धिधारी, प्रशान्तचित्त, निर्विकार तथा सर्वाङ्गपूर्ण हैं, उन गजाननका हम भक्तिपूर्वक भजन करते हैं। जिनका स्वरूप अमेय (मानातीत) है; जो हृदयमें विराजमान हैं; 'मैं एकमात्र अद्वितीय ब्रह्म हूँ'—यह बोध जिनका स्वरूप है; जो भ्रमका नाश करनेवाले हैं; जिनका आदि, मध्य और अन्त नहीं है तथा जो अपाररूप हैं, उन गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। जिनका स्वरूप जगत्को मापनेवाला, अर्थात् विश्वव्यापी है; इस प्रकार जो जगदीश्वर, अगम्य, सबके आदि तथा जगत् आदिसे हीन हैं; तथा जो अनात्मा (अज्ञानी) पुरुषोंको मोहमें डालनेवाले हैं, उन पुराणपुरुष गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। जो न तो पृथ्वीरूप हैं, न जलके रूपमें प्रकाशित होते हैं; न तेज, वायु और आकाशमें स्थित हैं, उन पञ्चविध विभूतियोंसे रहित गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। जो न विश्वमें हैं, न तैजसमें हैं और न प्राज्ञ ही हैं; जो समष्टि और व्यष्टि, दोनोंमें विराजमान हैं, उन अनन्तव्यापी निर्गुण एवं परमार्थस्वरूप गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। जो न तो गुणोंके स्वामी (प्रधान)में हैं न बिन्दुमें विराजमान हैं; न बोधमय देही हैं और न ढुण्ढि ही हैं; जिन्हें ज्ञानीजन सुयोगहीन और योगमें स्थित बताते हैं, उन गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। जो अनागत (भविष्य) हैं, गजग्रीवागत हैं, उन गणेशको हम उस आकारसे युक्त कैसे कहें! तथापि जो सर्वरूप हैं और प्रत्येक शरीरमें अन्तर्यामीरूपसे विराजमान हैं, उन गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। नाथ! यदि आपने कुछ भी धारण नहीं किया है, तब हम कैसे इस सम्पूर्ण जगत्की सेवा कर सकते हैं। अतः ऐसे अचिन्त्य महात्मा गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं।

जो भक्तजनोंको उत्तम सिद्धि देनेवाले देवता हैं; सकाम पुरुषोंको यहाँ अभीष्ट सौख्य प्रदान करते हैं और निष्कामजनोंके भव-बन्धनको हर लेते हैं, उन गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। जो सुरेन्द्रोंके सेव्य हैं और असुर भी जिनकी भलीभाँति सेवा करते हैं; जो समान भावसे सर्वत्र विराजमान हैं; जिनकी भुजाएँ अनन्त हैं और जिनके ध्वजमें मूषकका चिह्न है, उन गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। जो सदा सुखानन्दमय हैं; समुद्रके जलमें तथा इक्षुरसमें निवास करते हैं; और जो अपने [illegible] [illegible] नाश करनेवाले हैं, उन गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। त्रिविध-

रूपसे प्रकाशित होनेवाले जो चार पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) हैं, वे ही जिनके हाथ हैं और उन्हीं हाथोंके कारण जो चतुर्भुज हैं, उन अनाथनाथ लम्बोदर गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। जो विशाल मूषकपर आरूढ़ हैं; अकालकाल हैं; विदेहात्मक योगसे जिनकी उपलब्धि होती है; जो मायावी नहीं हैं, अपितु मायावियोंको मोहमें डालनेवाले हैं, उन गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। जो सूर्यस्वरूप होकर भी सूर्यके प्रकाशसे रहित हैं; हरिस्वरूप होकर भी हरिबोधसे हीन हैं; तथा जो शिवस्वरूप होकर भी शिवप्रकाशके नाशक (उसे तिरोहित कर देनेवाले) हैं, उन गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। महेश्वरीके साथ रहकर भी जो उत्तम शक्तिसे हीन हैं; प्रभु, परमेश्वर और परके लिये भी वन्दनीय हैं; अचालक होकर भी जो चालक बीजरूप हैं, उन गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। जो शिवादि देवताओं, पक्षियों, मनुष्यों, लताओं, वृक्षों, प्रमुख पशुओं तथा चराचर प्राणियोंके लिये वन्दनीय हैं; ऐसे होते हुए भी जो लोकरहित हैं, उन एक—अद्वितीय गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। जो मन और वाणीकी पहुँचसे परे विद्यमान हैं; निवृत्तिमात्र जिनका स्वरूप है; जो अजन्मा और अविनाशी हैं तथापि जो नगरमें स्थित देवता हैं, उन गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। हम गणपतिकी स्तुतिसे परम धन्य हो गये। मर्त्यलोककी वस्तुओंसे उनका अर्चन करके भी हम धन्य हैं। जिन्होंने हमें गणेशस्वरूप बना लिया है, उन गजाननका हम भक्तिभावसे भजन करते हैं। गजानन! आपके बीज मन्त्रको वेद बताते हैं; उसी बीजरूप चिह्नसे योगी पुरुष आपको प्राप्त होते हैं। आप गजाननका हम भक्ति-भावसे भजन करते हैं। वेद, पुराण, शिव, विष्णु और ब्रह्मा आदि तथा शुक्र आदि भी गणपतिकी स्तुतिमें कुण्ठित हो जाते हैं, फिर हमलोग उनका क्या स्तुति कर सकते हैं? हम गजाननका केवल भक्तिभावसे भजन करते हैं।

मुद्गल उवाच

एवं स्तुत्वा गणेशानं नेमुः सर्वे पुनः पुनः।
तानुत्थाप्य वचो रम्यं गजानन उवाच ह॥

मुद्गल कहते हैं—इस प्रकार गणेशकी स्तुति करके समस्त देवर्षियोंने उन्हें बारंबार नमस्कार किया। तब गजाननने उन सबको उठाकर उनसे यह मधुर वचन कहा—

गजानन उवाच

वरं ब्रूत महाभागा देवाः सर्षिगणाः परम्। स्तोत्रेण प्रीतिसंयुक्तो दास्यामि वाञ्छितं परम्॥

गजानन बोले—महाभाग देवताओ तथा देवर्षियो! तुम कोई उत्तम वर माँगो। तुम्हारे इस स्तोत्रसे प्रसन्न होकर मैं तुम्हें उत्तम मनोवाञ्छित वर दूँगा।

गजाननवचः श्रुत्वा हर्षयुक्ताः सुरर्षयः। जगुस्तं भक्तिभावेन साश्रुनेत्राः प्रजापते॥

प्रजापते! गजाननकी यह बात सुनकर देवता और देवर्षि हर्षसे उल्लसित हो नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बहाते हुए भक्तिभावसे उनसे इस प्रकार बोले—

देवर्षय ऊचुः

गजानन यदि स्वामिन् प्रसन्नो वरदोऽसि मे। तदा भक्तिं दृढां देहि लोभहीनां त्वदीयकाम्॥
लोभासुरस्य देवेश कृता शान्तिः सुखप्रदा। तया जगदिदं सर्वं वरयुक्तं कृतं त्वया॥
अधुना देवदेवेश कर्मयुक्ता द्विजातयः। भविष्यन्ति धरायां वै वयं स्वस्थानगास्तथा॥
स्वस्वधर्मरताः सर्वे कृतास्त्वया गजानन। अतः परं वरं ढुण्ढे याचमाना किमप्यहो॥
यदा ते स्मरणं नाथ करिष्यामो वयं प्रभो। तदा संकटहीनान् वै कुरु त्वं नो गजानन॥

देवर्षियोंने कहा—गजानन ! स्वामिन् ! यदि आप प्रसन्न होकर हमें वर देना चाहते हैं तो अपनी लोभशून्य सुदृढ़ भक्ति दीजिये। देवेश्वर ! आपने जो लोभासुरकी शान्ति की है, वह परम सुखदायिनी है। उसीसे आपने सम्पूर्ण जगत्को वरयुक्त कर दिया। देवदेवेश्वर ! अब द्विजातिगण इस भूतलपर अपने-अपने कर्मोंमें संलग्न होंगे और हम भी अपने-अपने स्थानोंमें सुखसे रहेंगे। गजानन ! आपने सब लोगोंको अपने-अपने धर्ममें तत्पर कर दिया है। ढुण्ढिराज ! अब इसके बाद भी हम कोई उत्तम वर माँग रहे हैं। नाथ ! प्रभो ! जब हम आपका स्मरण करें, गजानन ! तब आप हम सबको संकटहीन कर दिया करें।

एवमुक्त्वा प्रणेमुस्तं गजाननमनामयम्। तानुवाचाथ प्रीतात्मा भक्ताधीनः स्वभावतः॥

ऐसा कहकर देवर्षियोंने रोगादि विकारोंसे रहित गजानन गणेशको प्रणाम किया। तब स्वभावतः भक्तोंके अधीन रहनेवाले गणेशने प्रसन्नचित्त होकर उनसे कहा—

गजानन उवाच

यद्यच्च प्रार्थितं देवा मुनयः सर्वमञ्जसा। भविष्यति न संदेहो मत्स्मृत्या सर्वदा हि वः॥
भवत्कृतं मदीयं वै स्तोत्रं सर्वत्र सिद्धिदम्। भविष्यति विशेषेण मम भक्तिप्रदायकम्॥
पुत्रपौत्रप्रदं पूर्णं धनधान्यप्रवर्धनम्। सर्वसम्पत्करं देवाः पठनाच्छ्रवणान्नृणाम्॥
मारणोच्चाटनादीनि नश्यन्ति स्तोत्रपाठतः। परकृत्यं च विप्रेन्द्रा अशुभं नैव बाधते॥
संग्रामे जयदं चैव यात्राकाले फलप्रदम्। शत्रूच्चाटनादिषु च प्रशस्तं तद्भविष्यति॥
कारागृहगतस्यैव बन्धनाशकरं भवेत्। असाध्यं साधयेत् सर्वमनेनैव सुरर्षयः॥
एकविंशतिवारं च एकविंशदिनावधिम्। प्रयोगं यः करोत्येव स सर्वसिद्धिभाग् भवेत्॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां ब्रह्मभूतस्य दायकम्। भविष्यति न संदेहः स्तोत्रं मद्भक्तिवर्धनम्॥
एवमुक्त्वा गणाधीशस्तत्रैवान्तरधीयत॥

॥ इति श्रीमुद्गलपुराणे देवर्षिकृतं गजाननस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

गजानन बोले—देवताओ तथा ऋषियो ! आप लोगोंने जो-जो प्रार्थना की है, मेरे स्मरणसे आपकी वे सारी प्रार्थनाएँ सर्वदा एवं अनायास पूर्ण हो जायँगी, इसमें संदेह नहीं है। आपलोगोंद्वारा किया गया मेरा यह स्तोत्र सर्वत्र सिद्धि देनेवाला होगा, विशेषतः यह मेरी भक्ति प्रदान करेगा। देवताओ ! यह स्तोत्र पढ़ने और सुननेसे मनुष्योंको पुत्र-पौत्र प्रदान करनेवाला, पूर्ण धन-धान्यकी वृद्धि करनेवाला तथा सम्पूर्ण सम्पदाओंको देनेवाला होगा। इस स्तोत्रके पाठसे शत्रुओंद्वारा किये गये मारण और उच्चाटन आदिके प्रयोग नष्ट हो जायँगे। विप्रेन्द्र ! दूसरोंका किया हुआ आभिचारिक प्रयोग और अशुभ कर्म उसमें कभी बाधा नहीं दे सकेगा। यह स्तोत्र संग्राममें विजय और यात्राकालमें उत्तम फल देनेवाला होगा। शत्रुके उच्चाटन आदिके लिये किया गया इसका प्रयोग श्रेष्ठ सिद्ध होगा। जो कारागारमें पड़ा हुआ है, उसके द्वारा पढ़ा गया यह स्तोत्र उसके बन्धनका नाश करनेवाला होगा। देवर्षियो ! इस स्तोत्रसे ही सारा असाध्य साधन करना चाहिये। जो इक्कीस दिनोंतक प्रतिदिन इक्कीस बार इसका प्रयोग करता है, वह सम्पूर्ण सिद्धियोंका भागी होगा। मेरी भक्तिको बढ़ानेवाला यह स्तोत्र धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष तथा ब्रह्मभाव प्रदान करनेवाला होगा, इसमें संदेह नहीं है।

ऐसा कहकर गणेशजी वहीं अन्तर्धान हो गये।

॥ इस प्रकार श्रीमुद्गलपुराणमें देवर्षिकृत 'गजानन-स्तोत्र' पूरा हुआ॥

श्रीगणेश-भक्त केवट भ्रुशुण्डी

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
(गीता ९।३०-३१)

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं—'यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा निरन्तर भजन करता है तो वह साधु ही माननेयोग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है (अर्थात् उसने दृढ़ निश्चय कर लिया है कि परमात्माके भजनके समान अन्य कुछ भी नहीं है)। इसलिये वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली शान्तिको प्राप्त होता है।'

भगवान् श्रीरामकी भी यही घोषणा है—

'सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं।
जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥'
(मानस ५।४३।१)

❀ ❀ ❀

प्राचीनकालकी बात है, दण्डकारण्य-प्रदेशके नन्दुर-नामक प्रसिद्ध नगरमे नामा-नामक एक केवट रहता था। नामा अशिक्षित तो था ही, पूर्वकर्मके प्रभाव एवं सङ्ग-दोषसे वह अत्यन्त कुटिल और क्रूर भी हो गया था। करुणा तो उसे छू भी न सकी थी। चौर-कर्ममें वह बाल्यकालसे ही अभ्यस्त हो गया था। उसकी आयुके साथ ही उसके दुर्गुणोंमें भी वृद्धि होती गयी। यौवनमें प्रवेश करनेतक तो वह घोर तस्कर, मद्य-मांससेवी तथा परदारा और परधनका हरण करनेवाला अत्यन्त निर्मम नरपशु हो गया था। उसकी दुष्प्रवृत्तियोंकी चरितार्थतामे किंचित् भी व्यवधान उपस्थित करनेवालेका जीवन अरक्षित हो जाता था। नामा सर्वथा मिथ्या शपथ लेकर दूसरोंका विश्वास-भाजन बनना चाहता; किंतु मनुष्यका वध कर देना उसके लिये एक खेल था। क्षुद्र स्वार्थ-पूर्तिके लिये भी वह निरीह व्यक्तियोंकी हत्या कर बैठता था।

अधम नामाकी क्रूरतासे प्रायः सभी लोग भीत और त्रस्त रहते थे। अतः विवश होकर नन्दुर-नगरके नागरिकोंने उसे निर्वासित कर दिया। दुष्ट नामाको अपनी सम्पत्तिके साथ अरण्यमें आश्रय ग्रहण करनेके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं रहा। उसने नगरसे दूर उपत्यकाके सघन वनमें ही आवास बनाना अपने लिये सर्वथा निरापद और उपयोगी समझा।

वहाँ सपत्नीक रहता हुआ नामा पूर्ण स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करने लगा। सर्वथा निरंकुश क्रूरतम केवट जिसे जहाँ पाता, वहीं लूट लेता। इस प्रकार धन-प्राप्तिके लिये उसने अनेक हत्याएँ कीं। वह धनुष-बाण, ढाल-तलवार, पाश तथा अनेक आयुध धारणकर यात्रियोंके लिये दुर्ग्रह बन गया था। उसके पास वस्त्राभूषण तथा विविध सामग्रियोंका ढेर लग गया। अर्थका उसे अभाव नहीं था, किंतु उसका लोभ उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा था। वह निर्ममतापूर्वक मनुष्य-वध करता ही जाता था। क्रीड़ा करते हुए मूक पशुओंको मार डालनेमें उसे अद्भुत आनन्दकी अनुभूति होती थी।

एक दिन वह वन्य पशुओंको मारता और उन्हें छटपटाकर प्राण-त्याग करते देखकर प्रसन्न होता हुआ एक योजन दूर निकल गया। सहसा उसका पैर एक गड्ढेमें पड़ा। उसे मोच आ गयी। नामा कराह उठा। लँगड़ाता हुआ वह गणेश-तीर्थके समीप पहुँचा। श्रम-निवारणार्थ उसने उक्त गणेश-कुण्डमें स्नानकर उसका जलपान किया। कुछ देर बाद वह अपने घरके लिये लौटा। मार्गमें उसने गणपति-स्मरण करते हुए अनन्य गणेशोपासक महामुनि मुद्गलको देखा तो पैरकी पीड़ा भूलकर उन्हें मारने दौड़ा; किंतु उसका हाथ जैसे अवसन्न हो गया और उसी समय उसके शस्त्र धरतीपर गिर पड़े। इतना ही नहीं, गजमुखके परम प्रिय भक्त मुद्गलके दर्शनसे उसकी दुष्प्रवृत्तियाँ शान्त और कुटिल बुद्धि परिवर्तित हो गयी। मन-बुद्धिमें इस अकल्पित परिवर्तनसे नामा अत्यन्त विस्मित हुआ।

उसी समय मुस्कराते हुए महर्षि मुद्गलने उससे पूछा—'अरे! तुम्हारे शस्त्र पृथ्वीपर कैसे गिर पड़े?'

परम वीतराग गजवक्त्रके अनुपम भक्त मुद्गलके दर्शनमात्रसे ज्ञान-वैराग्यप्राप्त केवट नामाने अत्यन्त विनयपूर्वक उत्तर दिया—'पूज्य महात्मन्! मैं स्वयं आश्चर्यचकित हूँ। मैंने इस गणेशकुण्डमे स्नान किया और फिर आपका दुर्लभ दर्शन प्राप्त होते ही मेरी कुटिल वृत्तियाँ सर्वथा शान्त हो गयीं। धन-वैभव एवं विषयोंसे सर्वथा उपरति हो गयी।

ज्ञान प्राप्त हो जानेसे मैं अद्भुत शान्तिका अनुभव कर रहा हूँ।'

शुद्ध अन्तःकरणसे पश्चात्ताप करते हुए केवट नामाने अत्यन्त श्रद्धापूरित स्वरमे हाथ जोड़कर आगे कहा—'करुणामूर्ति महामुने! मै अन्यतम दुष्ट और पापात्मा हूँ। मेरे पापोकी कोई गणना और सीमा नहीं है। जन्मसे इस क्षणतक मैंने अनीति, अनाचार, व्यभिचार और हिंसा ही की है; किंतु मैं निश्चय ही भाग्यवान् भी हूँ। जैसे धातुके अन्वेषीको सहसा रत्नोका अनन्त भंडार प्राप्त हो जाय, उसी प्रकार मुझ धन-लोभी दुरात्माको ज्ञान-वैराग्य-सम्पन्न अनुपम तपस्वी आप-जैसे महापुरुषका दर्शन प्राप्त हो गया। आपके ही प्रभावसे मेरे शस्त्र पृथ्वीपर गिर पड़े और अब ये शस्त्र इस जीवनमे पुनः कभी मुझे स्पर्श भी नहीं कर सकेंगे।

'दयामय! मै आपकी शरणमे आ गया हूँ। साधु पुरुष स्वाभाविक ही दुष्टोंपर अनुग्रह करते हैं। आप मुझ पापपरायणपर कृपा करें। इस महामोहमय जगत्से मेरा त्राण करें। मेरा उद्धार कर दें प्रभो!'

नामा केवटके नेत्रोंसे अश्रुपात हो रहा था। वह महामुनिके चरणोमे साष्टाङ्ग लेट गया। वह कहता ही जा रहा था—'प्रभो! मेरा उद्धार कर दे।'

शरणागतरक्षक महामुनि मुद्गलने सदय होकर कहा—'शास्त्रोंके अनुसार तेरा दानादि कर्मोंमे अधिकार नहीं है। तू देवदेव गजाननको प्रसन्न करनेके लिये उनके सर्वसिद्धि-प्रदायक मङ्गलमय श्रेष्ठ नाम-मन्त्रका जप कर।'

केवट नामाने महामुनिके चरणोपर सिर रख दिया। महामुनिने स्नेहपूर्वक उसके मस्तकपर हाथ फेरते हुए सर्वसिद्धिदाता गजमुखका महिमामय नाम-मन्त्र-प्रदान किया—'गणेशाय नमः।'

तदनन्तर महामुनिने वहाँ एक लकड़ी गाड़कर केवट नामासे कहा—'तुम यहीं एक आसनपर सर्वथा निराहार रहकर इस नाम-मन्त्रका एकाग्र मनसे जप करो। प्रातः-सायं इस यष्टि-मूलमें जल दे दिया करना। इस प्रकार इस लकड़ीके अङ्कुरित होने और मेरे यहाँ पुनः लौटनेतक तुम श्रद्धा और विश्वासपूर्वक जप करते रहना।'

परम गाणपत्य मुद्गल चले गये।

निश्चय ही केवट नामाका भाग्य-सूर्य उदित हुआ था। उसने दृढ़ निश्चयके साथ स्त्री-पुत्रकी ममता एवं संसारकी समस्त इच्छाओं और वासनाओंका तत्क्षण त्याग कर दिया। वह अपने गुरुदेवके आदेशानुसार वहीं रोपी हुई यष्टिके सम्मुख इन्द्रियोंको वशमे कर एक आसनपर बैठा और प्रीतिपूर्वक जप करने लगा। आहारके लिये केवल वायु थी। वह दोनो समय यष्टि-मूलको जलसे सींचा करता।

आश्चर्यजनक इन्द्रियनियन्त्रण! अद्भुत निष्ठा!! और अनुपम श्रद्धा-भक्ति!!! तपस्वी कैवर्तका नाम-मन्त्र-जप चलता रहा। सहस्र वर्ष बीते। यष्टि अङ्कुरित हुई। धीरे-धीरे वह हरित पत्तो और लताओंमे आच्छादित हो गयी। नामाका चर्मावृत अस्थिमात्र शरीर वल्मीकाक्रान्त हो गया।

दयामय महर्षि मुद्गल भी आ पहुँचे। कैवर्तका कठोर तप देखकर वे सतुष्ट हुए। उन्होंने हाथमे जल लिया और उसे अभिमन्त्रित कर कैवर्तमुनिके ऊपर छिड़क दिया। बस, कठोर तपस्वीकी कृशकाया दिव्य एवं दीप्तिमान् हो गयी। उसने गणपतिका सारूप्य प्राप्त कर लिया था। कैवर्त गजमुखके ध्यानके साथ नेत्र बंद किये जप करता जा रहा था। महामुनिके सचेत करनेपर उसने नेत्र खोलकर देखा। उक्त महातपस्वीके नेत्रकी ज्वालासे त्रैलोक्य दग्ध होना ही चाहता था कि महर्षि मुद्गलने उसका निवारण किया।

गजमुख-तुल्य अपने गुरुका दर्शन कर कृतार्थ केवट उनके चरणोंमें लोट गया। उसने श्रद्धाश्रुओंसे गुरु-पद-पद्मोका प्रक्षालन किया। महर्षि मुद्गलने पुत्रकी भाँति उसे अपने वक्षसे लगा लिया। नामाकी भ्रूकुटिके मध्य एक सूँड निकल आयी थी। इसलिये महामुनिने प्रेमपूर्वक अपने पुत्रका नामकरण किया—'भ्रुशुण्डी।'

फिर महर्षिने भ्रुशुण्डीको एकाक्षर मन्त्रका उपदेश कर उसे वर-प्रदान करते हुए कहा—'तुम श्रेष्ठ ऋषि हो। इन्द्रादि देव, सिद्ध तथा गन्धर्वोंके भी पूज्य हो। जिस प्रकार परम प्रभु गजमुखके ध्यान और दर्शनसे पापोंका नाश हो जाता है, उसी प्रकार तुम भी हो। तुम्हारा भ्रुशुण्डी-नाम सर्वत्र प्रसिद्ध हो। तुम्हारा दर्शन करनेवाला कृतार्थ होगा और मेरे वचनसे तुम्हारी आयु लक्ष कल्पकी होगी।'

इस प्रकार परम वीतराग महामुनिने भ्रुशुण्डीको अनेक दुर्लभ वर दिये। उसी समय वहाँ इन्द्रादि देवगण और देवर्षि पहुँचे। उन्होने भ्रुशुण्डीको नमस्कारकर कहा—'भ्रुशुण्डे! आप गणनायक हैं। आपके दर्शनसे हमारे जन्म, माता-पिता, विद्या, तप और यज्ञ सभी सार्थक हुए।'

फिर उन समस्त देवताओंने भ्रुशुण्डीकी पूजा की और उनके चरणोंमें प्रणाम कर वे प्रस्थित हुए।

तदनन्तर देवदेव गजवक्त्रके अनन्य भक्त भ्रुशुण्डीने वहाँ मङ्गलमूर्ति गणेशजीकी अत्यन्त सुन्दर मूर्ति स्थापित की और वे उनकी षोडशोपचारसे पूजा करते हुए उनके एकाक्षर-मन्त्रका जप करने लगे। उनकी अलौकिक गणेश-भक्ति एवं मन्त्र-जपके प्रभावसे उनके आश्रमके समीप रहनेवाले हिंसक पशुओंने अपनी सहज हिंसा त्याग दी। वहाँ सिंह और मृग तथा नकुल और सर्पादि समस्त जीव वैर-भाव त्यागकर एक साथ विचरण करने लगे; सर्वत्र सात्त्विकता एवं शान्तिका साम्राज्य व्याप्त हो गया।

इस प्रकार सौ वर्ष बीते। देवदेव गजानन प्रसन्न होकर भ्रुशुण्डीके सम्मुख प्रकट हुए। उन्होंने उनसे कहा—'तुम तो मेरे ही स्वरूप हो गये। अब तप क्यों करते हो? तुम सर्वथा कृतकृत्य हो। आयु पूर्ण होनेपर तुम मेरा सायुज्य प्राप्त कर लोगे।'

भ्रुशुण्डीकी भक्तिसे प्रसन्न परम प्रभु गजाननने आगे कहा—'यह स्थल सिद्धि प्रदान करनेवाला नामल-क्षेत्र (अमलाश्रम क्षेत्र)* के नामसे प्रसिद्ध होगा। यहाँ आकर मेरा दर्शन करनेवालोंकी कामनाएँ पूरी हुआ करेंगी।'

भ्रुशुण्डीने प्रभुके चरणोपर मस्तक रख दिया और मुस्कराते हुए करुणामूर्ति सुमुख अन्तर्धान हो गये।†

(गणेशपुराणके आधारपर)

—शिवनाथ दुबे

श्रीगणपतिका जयगान

जय-जय जगवन्दन जय गणपति। गिरिजाके नन्दन जय गणपति॥
कैलास-विहारी जय गणपति। जनके उद्धारी जय गणपति॥
सुर-नर-मुनि-नायक जय गणपति। सबके सुखदायक जय गणपति॥
भव-भीति-विभञ्जन जय गणपति। निज-जन-मनरञ्जन जय गणपति॥
दानव-कुल-घालक जय गणपति। सुर-मुनि-प्रतिपालक जय गणपति॥
मायाके चालक जय गणपति। पशुपतिके बालक जय गणपति॥
जग-सृष्टि-रचैया जय गणपति। षण्मुखके भैया जय गणपति॥
देवान्तकदारण जय गणपति। कमलासुरमारी जय गणपति॥
दुख-संकटहारी जय गणपति। सेवक-सुखकारण जय गणपति॥
अघ-ओघ-विदाहन जय गणपति। कृत-मूषक-वाहन जय गणपति॥
बालेन्दु-विभासित जय गणपति। सिन्दूर-प्रकाशित जय गणपति॥
धृतशुण्ड गजानन जय गणपति। मोदित-पञ्चानन जय गणपति॥
सौभाग्य-विधायक जय गणपति। मुद-मङ्गल-दायक जय गणपति॥
मोदक-मधुराशन जय गणपति। बहुविघ्न-विनाशन जय गणपति॥
जम्बूफल-भक्षक जय गणपति। शरणागतरक्षक जय गणपति॥
धृत-अङ्कुश-पाशक जय गणपति। खल-दैत्य-विनाशक जय गणपति॥
गजवदन विनायक जय गणपति। सुन्दर सब लायक जय गणपति॥
सुर-नर-आनन्दन जय गणपति। याचक-हरिचन्दन जय गणपति॥
विद्याके दाता जय गणपति। सद्बुद्धि-विधाता जय गणपति॥
संकट-संहारी जय गणपति। नित-मङ्गलकारी जय गणपति॥

'राम'

* श्रीगणेशके इक्कीस महाक्षेत्रोंमें इस क्षेत्रकी भी गणना की जाती है।

† श्रीगणेश-भक्तोंके और चरित्र मार्च, १९७४के अङ्कमें देखने चाहिये।

श्रीगणेशकी आरतियाँ

श्रीगणेशजीकी अनेक आरतियाँ प्रचलित हैं और सभी बड़ी ही भावपूर्ण हैं। यहाँ केवल तीन आरतियाँ, जो तीन प्रसिद्ध श्रीगणेश-भक्तोंद्वारा रचित हैं, दी जा रही हैं।

कविवर मोरोपंतकृत आरती
(संस्कृतमें)

जय देव जय देव गजमुख सुखहेतो।
सेतर्विघ्नगणानां जाड्यार्णवसेतो ॥ ध्रु० ॥

येन भवदुपायनतां नीता नवदूर्वा।
विद्यासंपत्कीर्तिस्तेनाप्ताऽपूर्वा ।
मुक्तिर्लभ्या सुखतस्तव नित्यापूर्वा।
धार्या जगतः स्थितये भूमौ दिवि भूर्वा ॥जय देव० ॥१॥

प्रथमनमस्कृतिभाक् त्वं तव लोकप्रथितम्।
दृष्टं सद्व्यवहारे गुरुभिरपि च कथितम्।
यः कश्चन विमुखस्त्वयि निजसिद्धेः पथि तम्।
विविधा विघ्ना भगवन् कुर्वन्ति व्यथितम् ॥जय देव० ॥२॥

बालं सकृदनुसरति त्वद्दृष्टिश्चेत्ता।
मनुराशीनिव दासीर्विद्याः स हि वेत्ता।
पविपाणिरिव परं परपक्षाणां भेत्ता।
भवति मयूरोऽहेरिव मोहस्य च्छेत्ता ॥जय देव० ॥३॥

भावार्थ—सुखकी प्राप्तिके हेतुभूत गजानन देव! आपकी जय हो, जय हो। विघ्नगणोंके नायक तथा जडता (अज्ञान) रूपी सागरसे पार होनेके लिये सेतुरूप विनायकदेव! आपकी जय हो। जिस पुण्यात्माने आपको नूतन दूर्वादलका उपहार अर्पित किया, उसने अपूर्व विद्या, सम्पत्ति एवं कीर्ति प्राप्त कर ली। आपकी कृपासे नित्य, अपूर्व मुक्ति अनायास प्राप्त की जा सकती है। भूतलपर अथवा स्वर्गलोकमें सर्वत्र सम्पूर्ण जगत्की रक्षाके लिये दायित्वका भार आप ही वहन करते हैं। देव! आपकी जय हो! भगवन्! आपके सबसे प्रथम नमस्कार-भाजन (वन्दनीय) होनेकी बात लोकमें प्रसिद्ध है। यह परम्परागत सद्व्यवहारमें भी देखी गयी है तथा गुरुजनोंद्वारा भी बतायी गयी है। जो कोई भी आपसे विमुख हुआ, उसे उसकी साधनाके मार्गपर नाना प्रकारके विघ्न आकर पीड़ा (बाधा) देते हैं। देव! आपकी जय हो। यदि आपकी कृपा-दृष्टि एक बार भी बालकपर पड़ जाती है तो वह मन्त्रराशि-तुल्य उन विद्याओंको इस प्रकार प्राप्तकर लेता है, मानो वे उसकी दासियाँ हों। जैसे वज्रपाणि इन्द्रने पर्वतोंकी पाँखें काट डाली थीं, उसी प्रकार वह परपक्ष (वादीके मत) का खण्डन करनेमें समर्थ होता है; तथा जैसे मयूर सर्पको विदीर्ण कर देता है, उसी प्रकार वह विद्वान् बालक मोहका छेदन करनेवाला होता है। देव! आपकी जय हो।

प्रसिद्ध गणेशभक्त गोसावीनन्दनकृत आरती

शेंदुर लाल चढ़ायो अच्छा गजमुख को।
दोंदिल लाल बिराजे सुत गौरी-हर को ॥
हाथ लिये गुड-लड्डू साँई सुरवर को।
महिमा कहे न जाय लागत हूँ पद को ॥ १ ॥
जय जय जी गणराज विद्या-सुखदाता।
धन्य तुमरा दर्शन मेरा मन रमता ॥ ध्रु० ॥
अष्टौ सिद्धी दासी संकट को बैरी।
विघ्न विनाशक मङ्गल मूरत अधिकारी ॥
कोटी सूरज प्रकाश ऐसी छवि तेरी।
गण्डस्थल मदमस्तक झूले शशि-बहारी ॥जय०२ ॥
भाव-भगति से कोई शरणागत आवे।
संतत सम्पत सबही भरपूर पावे ॥
ऐसे तुम महाराज मोको अति भावे।
'गोसावीनन्दन' निशि-दिन गुण गावे ॥जय० ३॥

श्रीसमर्थ रामदासकृत आरती
(मराठी भाषामें)

सुखकर्ता दुःखहर्ता वार्ता विघ्नाची।
नुरवी पुरवी प्रेम कृपा जयाची ॥
सर्वाङ्गीं सुन्दर उटि शेंदुराची।
कण्ठीं झळके माळ मुक्ताफळांची ॥
जय देव जय देव जय मङ्गलमूर्ती।
दर्शनमात्रें मन कामना पुरवी ॥ ध्रु० ॥
रत्नखचित फरा तुज गौरीकुमरा।
चन्दनाची उटी कुङ्कमकेशरा ॥
हिरेजडित मुकुट शोभतो बरा।
रुणझुणती नूपुरें चरणीं घागरिया ॥जय०२॥
लम्बोदर पीताम्बर फणिवरबन्धना।
सरल सोंड वक्रतुण्ड त्रिनयना ॥
दास रामाचा वाट पाहे सदना।
संकटीं पावावें निर्वाणीं रक्षावें,
सुरवरवन्दना ॥ जय० ३ ॥

क्षमा-प्रार्थना एवं नम्र निवेदन

यं निर्जरासुरनरा अखिलार्थसिद्ध्यै
भूर्यन्तरायहतयेऽनुदिनं नमन्ति ।
तं भक्तकामपरिपूरणकल्पवृक्षं
भक्त्या गणेशमखिलार्थदमानतोऽस्मि ॥

'देवता, असुर और मनुष्य अपने सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि तथा बहुल अन्तरायकी निवृत्तिके लिये प्रतिदिन जिन्हें मस्तक झुकाते हैं, भक्तोंकी कामना-पूर्तिके लिये कल्पवृक्षके समान उदार उन निखिलार्थदाता श्रीगणेशको मैं भक्तिभावसे प्रणाम करता हूँ।'

भगवान् श्रीगणेशकी मङ्गलमयी अहैतुकी कृपासे उन्हींकी अर्चनाके रूपमें प्रकाशित 'श्रीगणेश-अङ्क' इन पृष्ठोंमें सम्पन्न हो रहा है। भगवान् अनन्त रूपोंमें विलास कर रहे हैं; जो कुछ भी हमारे देखने-सुनने, जानने और चिन्तन करनेमें आता है, वह सब भगवत्स्वरूप ही है। 'भगवान् ही सब कुछ बने हुए हैं; उनके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं—'सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन।' अतः किसी भी रूपमें हम उनका भजन कर सकते हैं। निराकार-साकार—सभी रूप उनके हैं। इसी तथ्यको परमश्रद्धेय श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके शब्दोंमें हम इस प्रकार समझ सकते हैं—

"सत्य-तत्त्व या परमात्मा एक हैं। वे निर्गुण होते हुए ही सगुण, निराकार होते हुए ही साकार, सगुण होते हुए ही निर्गुण तथा साकार होते हुए ही निराकार हैं। उनके सम्बन्धमें कुछ भी कहना नहीं बनता; और जो कुछ कहा जाता है, सब उन्हींके सम्बन्धमें कहा जाता है। अवश्य ही जो कुछ कहा जाता है, वह अपूर्ण ही होता है; पूर्णका वर्णन किसी भी तरह हो नहीं सकता। परंतु परमात्मा किसी भी अवस्थामें अपूर्ण नहीं हैं; उनका आंशिक वर्णन भी पूर्णका ही वर्णन होता है; क्योंकि उनका अंश भी पूर्ण ही है। इन्हीं परमात्माको ऋषियोंने, संतोंने, भक्तोंने नाना भावोंसे पूजा है और परमात्माने उन सभीकी विभिन्न भावोंसे की हुई पूजाको स्वीकार किया है।

"वे परात्पर सच्चिदानन्दघन एक परमेश्वर ही परम तत्त्व हैं। वे गुणातीत हैं, परंतु गुणमय हैं; विश्वातीत हैं, परंतु विश्वमय हैं। सबमें वे ही व्याप्त हैं; और जिनमें वे व्याप्त हैं, वे सभी पदार्थ—समस्त चराचर भूत उन्हींमें स्थित हैं। वे विज्ञानानन्दघन परात्पर प्रभु ही ब्रह्मा, महादेव, महाविष्णु, महाशक्ति, अनन्तानन्दमय साकेताधिपति श्रीराम, सौन्दर्यसुधासागर गोलोकाधीश्वर श्रीकृष्ण (भगवान् सूर्य और शिव-पार्वतीके पुत्र गजमुख गणेश) हैं। ये सभी विभिन्न स्वरूप सत्य और नित्य हैं; परंतु अनेक दीखते हुए भी वस्तुतः ये हैं सदा-सर्वदा एक ही।

"साधक या भक्त अपनी-अपनी रुचिके अनुसार इनमेंसे या इनसे अतिरिक्त अन्य किसी भी एक लीलास्वरूपकी उपासना आवश्यक समझकर किया करते हैं और उनका ऐसा करना है भी बहुत ही ठीक। भगवान्के अनेक रूपोंकी उपासना एक साथ नहीं की जा सकती; चञ्चल मनको शान्त और एकाग्र करनेके लिये एक ही रूपकी उपासना आवश्यक होती है। अनेक रूपोंकी उपासनासे तो चित्तकी चञ्चलता और भी बढ़ जाती है। इसलिये विचारशील दिव्यदृष्टिप्राप्त सद्गुरु साधककी रुचि, उसकी स्थिति, पात्रता, अधिकार और परिणामको देखकर उसे किसी एक ही रूपकी उपासना बताकर ऐसा मन्त्र भी देते हैं, जिसके द्वारा वह अपने उपास्यदेवका भजन कर सके। परंतु साथ ही यह भी बतला देते हैं कि तुम्हें जिन भगवान्की उपासना बतलायी गयी है, एकमात्र भगवान् ये ही हैं; ये ही भिन्न-भिन्न देश-काल-पात्रमें पूजित होते हैं। कोई भी स्वरूप तत्त्वतः इनसे भिन्न नहीं है; जब भिन्न ही नहीं, तब छोटे-बड़ेका तो प्रश्न ही नहीं रह जाता। तुम अपने उपास्य रूपको पूजते रहो, परंतु दूसरेके उपास्यदेवसे द्वेष न करो; उसे नीचा न समझो। यदि तुम ऐसा करोगे तो तुम अपने ही उपास्यदेवसे द्वेष करोगे और उसे नीचा समझोगे; क्योंकि तुम्हारे उपास्यदेव भगवान् ही तो दूसरे लोगोंके द्वारा दूसरे रूपोंमें पूजित होते हैं। यदि तुम यह मान बैठोगे कि दूसरोंके उपास्यदेव भगवान् कोई दूसरे हैं तो ऐसा करके तुम अपने ही भगवान्की एक सीमा बाँधकर उसे छोटा और अनेकोंमेंसे एक बना दोगे। फिर वह परात्पर नहीं रहेगा; लोकपालोंकी भाँति एक देवताविशेष रह जायगा। तब ऐसे 'अल्प' और 'सीमाबद्ध' भगवान्से तुमको असीम भूमाकी प्राप्ति नहीं होगी। तुम अपने ही दोषसे स्वयं परात्पर परमेश्वरके दर्शनसे वञ्चित रह जाओगे। इसलिये अपने ही इष्टमें अनन्यभाव

रखो, परंतु दूसरोंके इष्टोंको अपने ही इष्टका रूपान्तर समझकर उन सभीका सम्मान करो ! दूसरे सभी स्वरूपोंको अपने इष्टके विभिन्न स्वरूप मानना ही 'अनन्यता' है। इसके विपरीत करना तो 'अन्य'को आश्रय देना है, जो अनन्य भक्तके लिये व्यभिचार है।'' अस्तु।

शास्त्रोंमें भगवान्‌के सच्चिदानन्दमय पाँच मुख्य विग्रह माने गये हैं। ये सभी विग्रह अनादि, अनन्त एवं परात्पर हैं; सभीके भिन्न-भिन्न लोक हैं, जो चिन्मय एवं शाश्वत हैं। सबके अलग-अलग स्वरूप हैं, अलग-अलग शक्तियाँ हैं, आयुध हैं, वाहन हैं, पार्षद हैं, सेवक हैं, सेवाके विविध प्रकार हैं तथा उपासना एवं अर्चाकी विविध पद्धतियाँ हैं। ये सभी स्वरूप पूर्ण हैं—लीलाक्रमसे ही उनमें परस्पर मुख्यता एवं गौणता दृष्टिगोचर होती है। ये पाँच स्वरूप हैं—शिव, शक्ति, विष्णु, गणेश और सूर्य। इन पाँच देवोंकी एक साथ भी उपासना होती है और पृथक्-पृथक् भी। इन पाँच भगवद्विग्रहोंमेंसे भगवान् शिव, शक्ति एवं भगवान् विष्णुकी तो 'कल्याण'के द्वारा अर्चना हो चुकी है। इन तीनोंके तत्त्व, स्वरूप, उपासना, लोक, आयुध, वाहन, पार्षद आदिकी विशद चर्चा स्वतन्त्र विशेषाङ्कों, जैसे—'शक्ति-अङ्क', 'शिवाङ्क', 'श्रीविष्णु-अङ्क'-के रूपमें हो चुकी है। श्रीराम और श्रीकृष्णके सम्बन्धमें भी, जो भगवान् विष्णुके ही अवतार अथवा अवतारी माने गये हैं—एकसे अधिक विशेषाङ्क निकल चुके हैं। भगवान् गणेश एवं भगवान् सूर्यकी अर्चना अभी नहीं हो पायी थी। अतः इस बार भगवान् गणपतिकी अर्चनाके विचारसे यह प्रयास हुआ है।

भगवान् गणेशकी इस अर्चनामें हम तो केवल निमित्त बने हैं; वास्तवमें इस अर्चनाका सम्पूर्ण श्रेय है—हमपर एवं 'कल्याण'पर सदासे अनुग्रह तथा प्रीति रखनेवाले परम पूजनीय आचार्यों, संतों, महात्माओं, भक्तों, विद्वानों, विचारकों, लेखकों, साधकों, स्वजनों आदिको, जिन्होंने अपनी सहज उदारतासे अपनी प्रौढ़ एवं अनुभूतिपूर्ण रचनाएँ भेजकर, अमूल्य सुझाव देकर हमें अङ्कको इस रूपमें प्रस्तुत करनेका अवसर दिया है। हम अपने उन सभी पूजनीय गुरुजनों एवं बन्धुओंके प्रति हृदयसे कृतज्ञ हैं और प्रार्थना करते हैं कि भविष्यमें भी उनका कृपापूर्ण आशीर्वाद और सहयोग हमें इसी रूपमें उपलब्ध होता रहे।

भगवान् गणेशके सम्बन्धमें अनेक भ्रान्तियाँ समाजमें फैली हुई हैं, जैसे—(१) गणेश अनार्य देवता हैं; (२) गणेशका आदि स्थान दक्षिण भारत है; (३) गणेश-की उपासना आदि अति निम्न स्तरकी हैं; (४) गणपति-सम्प्रदाय दसवीं शताब्दीमें प्रादुर्भूत हुआ है, आदि। इसमें दोष किसी विद्वान्‌का नहीं है; आधुनिक पाश्चात्त्य-शिक्षाके द्वारा हमारी संस्कृति, सभ्यता एवं शास्त्रोंपर हमारे विश्वासको शिथिल करनेका जो कुप्रयास हुआ है, उसीका परिणाम है कि हम इस प्रकारकी अनर्गल बातें सोचने-कहने लगे हैं। इस अङ्कसे इन भ्रान्तियोंका बहुत-कुछ निरसन हो जायगा—ऐसा हमारा विश्वास है। 'कल्याण' तर्क-वितर्ककी शैलीको आदर नहीं देता; यह शान्तभावसे अपनी मान्यताके प्रतिपादनको ही महत्त्व देता आया है। अपनी इस मङ्गलमयी परम्पराका अनुसरण करके इस अङ्कमें भगवान् गणेशके परात्पर स्वरूपका विशद विवेचन किया गया है। भगवान् अनन्त हैं; उनके चरित्र एवं गुण भी अनन्त हैं—

'रघुबीर चरित अपार बारिधि पारु कबि कौनें लह्यो।'

ऐसी स्थितिमें हमारा यह प्रयास अनन्त आकाशकी थाह लेनेके उद्देश्यसे उड़नेवाले क्षुद्र मच्छरकी चेष्टाके सदृश ही है।

भगवान् गणेशके सम्बन्धमें समाज और अधिक जानकारी प्राप्त कर सके, इसके लिये हमने इस अङ्कमें गणेश-सम्बन्धी विभिन्न भाषाओंमें उपलब्ध साहित्यकी तालिका देनेका प्रयत्न किया है। आशा है, अध्ययनशील पाठक उसमें उल्लिखित ग्रन्थोंका स्वाध्याय करनेकी चेष्टा करेंगे।

ऋषियोंका उद्घोष है—'देवो भूत्वा देवं यजेत्', अर्थात् स्वयं देवस्वरूप होकर—देवत्वको अपनाकर देवताकी अर्चना करें। 'कल्याण' विशुद्ध आध्यात्मिक पत्र होनेके कारण इसके प्रवर्तक एवं आदि सम्पादक हमारे परमश्रद्धेय श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार ऋषियोंकी इस आज्ञाका आजीवन अक्षरशः पालन करते रहे। वे निरन्तरकी साधनासे भगवान्‌के 'यन्त्र' बन गये थे; देवर्षि नारदके शब्दोंमें—'तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्।' (नारदभक्तिसूत्र ४)—'भगवान् और उनके भक्तमें कोई अन्तर नहीं रह जाता; भक्त भगवत्स्वरूप ही हो जाता है'—की स्थितिको प्राप्त हो गये थे। इतना होनेपर भी वे अपने व्यावहारिक जीवनमें सदा इस बातके लिये पूर्ण सचेष्ट रहे कि 'कल्याण'में जो-जो बातें लिखी

जायँ, वे उनके जीवनमे अवश्य हों । एक बार उन्होंने अपने एक स्वजनसे कहा था—"सम्पादकके रूपमे हम 'कल्याण'मे जो-जो बातें लिखते हैं—कम-से-कम वे तो हमारे जीवनमे होनी ही चाहिये । यदि वे हमारे जीवनमे और व्यवहारमें न आयें तो हमे 'कल्याण'मे कुछ भी लिखनेका अधिकार नहीं है । कथनी-करनीमे एकरूपता अनिवार्य है; आचरणके बिना उपदेश व्यर्थ है—बकवास है—कुत्तेकी भाँति भूँकना है—

करनी बिन कथनी कथै, अज्ञानी दिन-रात ।
कूकर जिमि भूसत फिरे, सुनी-सुनायी बात ॥"

—सचमुच श्रीभाईजीका जीवन 'कल्याण'मे प्रकाशित उपदेशोंका मूर्तरूप था । इसी हेतु 'कल्याण'का प्रभाव उसके पाठकोंपर बहुत उत्तम एवं ठोस हुआ और उस ('कल्याण') का नन्हा-सा पौधा सबकी सद्भावना और प्रीतिका रस प्राप्तकर निरन्तर पुष्ट एवं समृद्ध होता गया और आजके विपाक्त युगमें भी विना किसी विज्ञापन-प्रयत्नके इसकी एक लाख साठ हजार प्रतियाँ प्रतिमास प्रकाशित हो रही हैं तथा इसके पाठक भारतके प्रत्येक कोनेमे तो हैं ही, भारतसे बाहर भी इसकी अच्छी माँग है । अनेकों अहिंदी भाषा-भाषियोंने 'कल्याण' पढ़नेके लिये हिंदीका ज्ञान प्राप्त किया है ! परंतु हमलोग जब अपने जीवनकी ओर देखते हैं तो अपनेको 'कल्याण'की सेवाका सर्वथा अनधिकारी पाते हैं । किंतु मल-मूत्रमे सना हुआ अबोध शिशु माँको ही पुकारता है तथा माँ दौड़कर उसके मलको धोती है । उसे निर्मल-स्वच्छ बनाती है । उसी रूपमे सब प्रकारकी त्रुटियों, अभावों, कमजोरियों और दोषोंसे भरे हुए हमलोगोंने भगवान् गणेशके स्वरूप, नाम, लीला, गुण, प्रभाव, माहात्म्य आदिका स्मरण-चिन्तन किया है और हमें आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि भगवान् गणेश हमारी इस तुच्छ अर्चनासे प्रसन्न ही हुए हैं; अन्यथा इस अर्चनाकी सम्पन्नता सम्भव नहीं थी । अनेक विघ्न उपस्थित हुए, परंतु विघ्नेश्वरने देखते-देखते उनका निराकरण कर दिया ।

अङ्कका मुद्रण आरम्भ होते ही मेरे वृक्क एवं हृदयमें विशेष दोष उत्पन्न होनेसे शरीर सर्वथा लाचारीकी स्थितिमें हो गया, किंतु हमारे पुराने सहयोगी, 'महाभारत', 'अग्निपुराण' आदि-आदि शास्त्र-ग्रन्थोंके सुप्रसिद्ध अनुवादक पाण्डेय श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री, साहित्याचार्यने वाराणसीसे यहाँ पधारकर कार्यको सँभाल लिया । सम्पादकीय विभागके हमारे सभी सदस्य—पण्डित श्रीजानकीनाथजी शर्मा, श्रीरामलालजी, श्रीमाधवशरण, श्रीदूलीचन्द दुजारी, श्रीराधेश्याम बंका, श्रीहरिकृष्ण दुजारी—जो दीर्घकालतक परमश्रद्धेय श्रीभाईजीके तत्त्वावधानमे 'कल्याण'का कार्य करते रहे हैं, इन सबका हार्दिक सहयोग तो था ही । इस व्यवस्थाके कारण मेरी सक्रिय उपस्थिति न रहनेपर भी कार्य चलता रहा और वह जिस रूपमें सम्पन्न हुआ है, वह प्रेमी पाठकोंके सम्मुख प्रस्तुत है । इन सभी बन्धुओंकी आत्मीयता एवं प्रीतिको देखते हुए इनके अमूल्य सहयोगके लिये कुछ भी कहना इनको संकोचमे डालना होगा ।

कागज एवं आर्ट पेपरकी कमी सामने उपस्थित हुई; पर सिद्धि-सदनकी कृपासे उसकी व्यवस्था भी सरलतासे हो गयी । इसी प्रकार बिजलीका संकट आदि अनेकों परेशानियाँ रहीं और उन्हींके कारण अङ्क लगभग डेढ़ मास विलम्बसे प्रकाशित हो रहा है, परंतु संतोष है कि भगवान् श्रीगणेशकी कृपासे अर्चना सम्पन्न हो गयी । यह अर्चना कितने विधि-विधानपूर्वक, कितनी सरस, कितनी सुवासित, कितनी भावपूर्ण हुई है, इसका निर्णय तो हमारे सहृदय पाठक-पाठिकाएँ ही करेंगे; हमे तो इसमें त्रुटि-ही-त्रुटि अनुभव हो रही है ।

इस अङ्कके लिये सामग्री-संचयनका कार्य आरम्भ हुआ परमश्रद्धेय महामहोपाध्याय पण्डित श्रीगोपीनाथजी कविराज महाशयके आशीर्वादसे । इतना ही नहीं, शरीरकी अत्यधिक लाचारीकी स्थितिमे भी उन्होंने कृपापूर्वक भगवान् गणेशके सम्बन्धमें अपने विचार प्रेषित कर हमारा उत्साह बढ़ाया । उनकी अहैतुकी कृपा एवं वत्सलताके प्रति हमारा हृदय कृतज्ञतासे भरा है । पूनासे प्रकाशित प्रसिद्ध मराठी 'गणेश-कोश'के सम्पादक एवं गणेशभक्त श्रीअमरेन्द्रजी गाडगील एवं महाराष्ट्रके प्रसिद्ध विद्वान् सम्मान्य पण्डित श्रीदामोदर प्रह्लाद पाठक, शास्त्री, पूर्वोत्तरमीमांसक, व्युत्पत्तिचूडामणि, शिक्षा-शास्त्री, काव्यतीर्थ, राष्ट्रभाषाकोविद महोदयके भी हम विशेष रूपसे आभारी हैं । दोनो महानुभाव कृपा करके पूनासे गोरखपुर पधारे और कई दिनोंतक यहाँ रहकर अपने ज्ञानसे हमलोगोंका मार्ग-दर्शन करते रहे । सम्मान्य श्रीपाठक शास्त्रीजीने तो श्रीगणेश-सम्बन्धी अनेक महत्त्वपूर्ण विषयोंपर अपने विचार लिपिबद्ध भी किये जिनमेंसे एक रचना इसी अङ्कमें प्रकाशित

हुई है; शेष सामग्रीका उपयोग विभिन्न लेखोमे यथावश्यक रूपमें किया गया है।

इसी प्रकार महाराष्ट्र प्रान्तके प्रसिद्ध प्रकाशक 'वोरा एंड कंपनी पब्लिसर्स (प्राइवेट) लिमिटेड'के भी हम कृतज्ञ हैं, जिनके 'श्रीगणेश-कोश'से इस अङ्कके लिये सामग्री जुटानेमे हमे अमूल्य मार्ग-दर्शन एवं सहयोग प्राप्त हुआ है। हमारे अपने पण्डित श्रीगौरीशंकरजी द्विवेदी एवं पं० श्रीरामाधारजी शुक्ल शास्त्रीने भी लेखोंके अनुवाद आदि कार्यमें सदाकी भाँति हमारा पूरा हाथ बटाया है। हम दोनों बन्धुओंके हृदयसे आभारी हैं।

भगवान्‌की लीला एवं गुणोंका कथन, श्रवण-पठन-मनन आदि भवसागरसे पार होनेके लिये सुदृढ़ नौकारूप है। यही हेतु है कि हमारे शास्त्रोंमें भगवान्‌के अवतार-स्वरूपोंकी लीला-कथाका प्रमुख रूपसे उल्लेख है। भगवान् विष्णु, भगवान् राम, भगवान् कृष्ण, भगवान् शिव आदि अवतार-स्वरूपोंकी लीला-कथाओंसे समाज बहुत-कुछ परिचित है; किंतु भगवान् श्रीगणेशकी लीला-कथासे वह विशेष अभिज्ञ नहीं है। अतएव इस अङ्कमे विभिन्न पुराणो—जैसे, 'ब्रह्मवैवर्त-पुराण', 'पद्मपुराण', 'लिङ्गपुराण', 'शिवपुराण', 'गणेश-पुराण', 'मुद्गलपुराण' तथा 'महाभारत' आदिके आधारपर भगवान् श्रीगणेशकी लीला-कथा विस्तारसे देनेका प्रयत्न किया गया है। यह कार्य सम्पादकीय विभागके पुराने सम्मानित सदस्य, भगवान्‌के चरित्र एवं पौराणिक गाथा लिखनेमे पटु तथा हमारे पाठकोंके सुपरिचित पण्डित श्री-शिवनाथजी दुबेने बड़ी ही श्रद्धा-भक्ति, लगन एवं परिश्रमके साथ पूर्ण किया है। श्रीदुबेजी अपने हैं, अतएव उनके विषयमें कुछ भी कहना अपनी ही प्रशंसा करना होगा।

अन्तमें हम श्रीभाईजीके पुराने सेवक भाई श्रीकृष्णचन्द्र अग्रवालको अन्तर्हृदयसे साधुवाद देते हैं। श्रीभाईजीकी सेवामे छब्बीस वर्ष रहकर उन्होने जो कुछ सीखा-समझा, उसका सुन्दर उपयोग वे 'कल्याण'मे बराबर कर रहे हैं। उनकी संयोजन-कुशलता, सूझ-बूझ, लगन, निष्ठा, अध्यवसाय और सबसे बढ़कर उनके निस्स्वार्थ भावके कारण ही अपनी अत्यधिक रुग्णावस्थामे भी हम 'श्रीगणेश-अङ्क' इस रूपमे सामान्य विलम्बसे प्रस्तुत करनेमे सफल हुए हैं।

इस वर्ष अन्य वर्षोंकी अपेक्षा लेख अधिक आये। विशेषाङ्कके पृष्ठ निश्चित होनेसे सबका उपयोग सम्भव नहीं हुआ। जो लेख प्रकाशित नहीं हो सके, उनके लेखक महोदयोने अपनी सहज कृपा एवं प्रीतिवश अपनी अमूल्य रचनाएँ हमे प्रेषित कीं, पर अपनी लाचारीके कारण हम उनका उपयोग नहीं कर सके। स्थान-संकोच आदिके कारण अनेकों गुरुजनोके महत्त्वपूर्ण लेखोंको भी संक्षिप्त करना पड़ा है। इन सब अवाञ्छनीय अपराधोके अतिरिक्त हमसे अज्ञान एवं प्रमादवश भी बहुत अपराध हुए होंगे। हम उन सब अपराधोके लिये हृदयसे क्षमाप्रार्थी हैं।

भगवान् गणेशकी उपासना-सम्बन्धी कुछ महत्त्वपूर्ण सामग्री, श्रीगणेश-भक्तोके चरित्र आदि आवश्यक विषय बच गये हैं। अतएव फरवरी एवं मार्चके अङ्क 'गणेश-अङ्क' के परिशिष्टाङ्कके रूपमे प्रकाशित हो रहे हैं। पाठकोसे प्रार्थना है कि वे दोनो परिशिष्टोके साथ इस अङ्कका अध्ययन, मनन एवं परिशीलन करें; इससे उन्हें पूरा परितोष होगा।

पिछले कई मास भगवान् श्रीगणेशकी लीला-कथाओं एवं गुणोके स्मरण, चिन्तन, पठन एवं लेखनमे बीते—यह हमारा परम सौभाग्य है। भगवान् श्रीगणेशकी कृपासे उनके यशोगानका यह पावनतम एवं मङ्गलमय कार्य उन्हींकी शक्ति-मतिसे सम्पन्न हुआ है और उन्हींके पावन चरणोंमे यह सभक्ति समर्पित है—

'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये।'

बस, भगवान् श्रीगणेशके चरणोंमे विनम्र एवं अनुरोधपूर्ण प्रार्थना है कि वे ऐसी कृपा करें, जिससे जीवनके शेष श्वास भगवत्स्मरणमे ही बीतें।

॥ श्रीगणेशचरणकमलेभ्योऽर्पितम् ॥

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

विनीत—

चिम्मनलाल गोस्वामी

सम्पादक